CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय संस्कृति का इतिहास

आचार्य चतुरसेन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

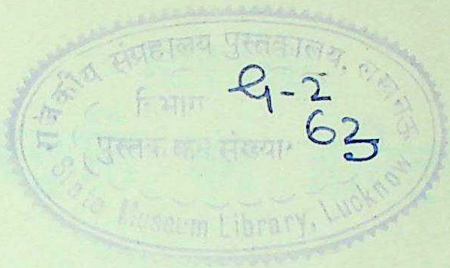

राजर्षि

श्री बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन

के

कर कमलों में सादर समर्पित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

4-2
63

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY

Acc. No. _____

Book No. _____

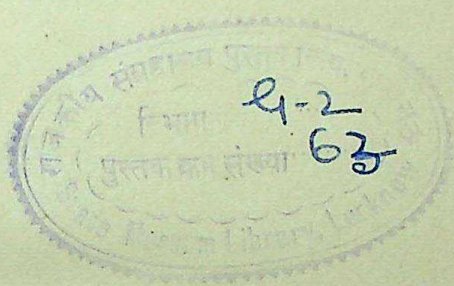

4-2
63

901.9

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

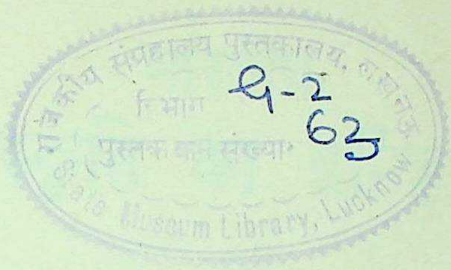

राजर्षि

श्री बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन

के

कर कमलों में सादर समर्पित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

934

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय
संस्कृति का इतिहास

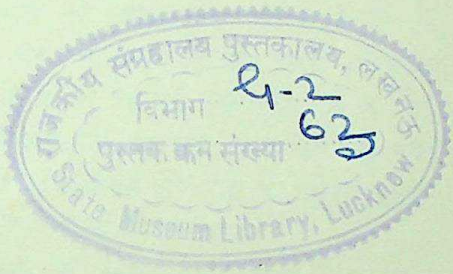

लेखक
आचार्य चतुरसेन

रस्तोगी एण्ड कम्पनी,
मुद्रक - तथा - प्रकाशक,
मेरठ, उत्तर प्रदेश.
१९५८

Rs. 5.00

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम संस्करण १००० प्रतियाँ

सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित

934

प्रकाशक
रस्तोगी एण्ड कम्पनी, मेरठ.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुस्तक क्रम संख्या 63

भूमिका

इस ग्रन्थ के लिखने में मुझे कितना कष्ट हुआ और कितना परिश्रम करना पड़ा, अब इस समय उसकी चर्चा करने से कोई लाभ नहीं है। सम्भव है कि कुछ सहृदय विज्ञ पाठक इन बातों को पढ़कर मेरे प्रति सदय हो उठें, पर इससे मुझे क्या प्राप्त होगा ? यद्यपि यह ग्रन्थ अपूर्ण है और इसमें अनेक त्रुटियाँ रह गईं, तथा प्रेस सम्बन्धी अशुद्धियाँ तो इतनी रह गईं कि शुद्धि पत्र लगाना भी अब हास्यास्पद दीख पड़ता है। फिर भी जैसे-तैसे यह ग्रन्थ प्रकाशित हो गया, बड़ी बात हुई। मैं इसी से प्रसन्न हूँ। अब यदि जीवन शेष रहा तो इसका दूसरा संस्करण संशोधित और व्यवस्थित निकले ऐसा प्रयत्न मैं करूंगा।

इस ग्रन्थ के लिखने में मुझे सबसे अधिक कठिनाई आधार ग्रन्थों और सहायक सामग्री की कमी ही प्रतीत हुई। भारतीय अतीत के इतिहास पर पाश्चात्यों ने भगीरथ प्रयत्न किये। सच पूछा जाय तो पाश्चात्यों को ही अतीत भारत के गौरव की विस्मृत मूर्ति के प्रकटीकरण का श्रेय प्राप्त है। परन्तु उन्हें कुछ तो सीमित अध्ययन के कारण और कुछ राजनीतिक कारणों के दबाव से अपना दृष्टिकोण संकुचित बनाना पड़ा, और उनका यह ध्येय रहा कि प्राच्यभारत के अतीत इतिहास के सम्बन्ध में कोई ऐसी बात न कही जाय, जिसे पढ़कर भारतीयों में अपने अतीत के प्रति अभिमान और आत्मगौरव का उदय हो। इधर भारतीय विद्वानों में श्रद्धावाद प्रबल रहा। इसलिये वे तात्त्विक ऐतिहासिक गवेषणा न कर सके। इसके अतिरिक्त हमारा बहुत साहित्य नष्ट हो चुका। जो उपलब्ध है—वह मौलिक-तौर पर अभी पढ़ा नहीं गया। खासकर ब्राह्मण ग्रन्थ और पुराण। जिनमें अतीत के गौरवपूर्ण इतिहास के अविश्रुत भेद छिपे पड़े हैं। भारतीय विद्वानों में ऐसा एक भी विद्वान् न हुआ जो ब्राह्मण ग्रन्थों, वेदों तथा पुराणों के ऐतिहासिक सन्दर्भों पर तुलनात्मक तथा विवेचनात्मक दृष्टि डालता। इधर अवश्य कुछ विद्वान भारत में इस दिशा में कार्य कर रहे हैं परन्तु उनकी खोजों ने तो नई-नई बातों की जिज्ञासा और बढ़ा दी है। उनमें से बहुतों की आस्था अब भी पाश्चात्य पण्डितों की गवेषणा में है। परन्तु अब मैं आशा करता हूँ कि नवीन भारत का तरुण रक्त अब बड़ी तत्परता से अपने पैत्रिक, सांस्कृतिक सामग्री की सही खोज जाँच करेगा; और भारतीय जीवन के अतीत पृष्ठों पर आर्थिक व्यापक प्रकाश डालेगा।

अब से ढाई हजार वर्ष पूर्व—अब से ढाई हजार वर्ष पूर्व जब बुद्ध और महावीर भारत को नई ज्योति दे रहे थे, तथा व्यास, बाल्मीकि याज्ञवल्क्य और पाणिनि अपनी ज्ञानगरिमा से भारतीय वाङ्मय को तथा भारतीय जीवन को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभ्यता और संस्कृति के नए मोड़ दे रहे थे, तथा जब भारत में अशोक अपना धर्म चक्र प्रवर्तन कर रहा था, उस समय योरोप का बड़ा भाग जंगलों से अच्छादित था। केवल दो देश ऐसे थे जहां सभ्यता का विकास हो रहा था—ग्रीस और इटली। इन दोनों देशों की सभ्यता पर पुरातन ईगियन सभ्यता का प्रभाव था, जो संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं सुमेरियन, असीरियन, इजिप्शियन, सिन्धु सभ्यता और चीनी सभ्यता की समकालीन थी। इस सभ्यता के क्षेत्र भूमध्य सागर के तटवर्ती प्रदेश और इण्डियन सागर के विविध द्वीप थे। जिनका प्रधान केन्द्र क्रीट नाम का द्वीप था। ग्रीकों ने ईगियन सभ्यता का अन्त किया, ये ग्रीक आर्यों की उस शाखा से सम्बन्धित थे, जिन्होंने इलावर्त से भारत में प्रविष्ट होकर आर्य सभ्यता की भारत में स्थापना की थी और सिन्ध सभ्यता का अन्त कर दिया था। ई० पू० पाँचवीं शताब्दी ग्रीस का समृद्ध काल था। इस समय ग्रीस का एथेन्स नगर ज्ञान, कला, कविता साहित्य और राजनीति की दृष्टि से अनुपम था। महान् राजनीति का पण्डित पैरिक्लीज, संसार का प्रथम महान् इतिहासज्ञ हीरोडाट्स, ज्योतिषाचार्य अनेक्सेगोरस, महान कवि होमर, सुकरात, अफलातून, अरस्तु, जैसे ज्वलन्त दार्शनिक और युग पुरुष इसी युग की श्रृंखला की कड़ी थे। जिन्होंने विश्व विजेता सिकन्दर को जन्म दिया। सिकन्दर ने अपने लघुजीवन में दिग्विजय कर नये सत्तर नगरों का निर्माण किया, जहाँ ग्रीक सैनिकों को आबाद किया गया। ये नगर आगे ग्रीस संस्कृति के विश्व भर में केन्द्र बन गए। इन नगरों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण नगर सिकन्दरिया था, जो मिश्र की नील नदी के तट पर था। सिकन्दर के उत्तराधिकारी टालमी ने इसे अपनी राजधानी बनाया था—जिसने वहाँ एक म्युजियम की स्थापना की थी, जो वास्तव में एक विशाल ज्ञानपीठ थी। जहाँ बहुत से विद्वान् देश देशान्तर से आ आ कर ज्ञानार्जन करते थे। ज्यामिति का प्रसिद्ध विद्वान युक्लिड यहीं का पण्डित था। प्रसिद्ध गणितज्ञ और भूगोलवेत्ता ऐरेटोस्थनीज—जिसने पृथ्वी का सही आकार-परिधि और व्यास का पता लगाया था—यहाँ का निवासी था। प्रसिद्ध ज्योतिषी हिप्पाकेस, वैज्ञानिक आर्चिमीडस और इसके अतिरिक्त अनेक वैज्ञानिक विचारक सिकन्दरिया के निवासी थे। सिकन्दरिया का पुस्तकालय विश्व में अप्रतिम था जहाँ हजारों पण्डित तो ग्रन्थों की नकल करने में लगे रहते थे। ग्रीकों के सम्पर्क ही से मिश्र में सभ्यता का प्रसार हुआ। इन दिनों सम्पूर्ण अफगानिस्तान में बौद्ध धर्म का बोलबाला था। ग्रीक कला के सम्पर्क से गान्धार, अफगानिस्तान ने युद्ध की मूर्तियाँ अति सुन्दर बनाईं उस समय तक भी गाँधार भारत ही का अङ्ग था।

भारतीय मूर्ति कला में जो गांधार शैली के नाम से प्रसिद्ध है अनेक विशेषताएं हैं।

सिकन्दर के बाद—सिकन्दर के भारत में आने के बाद यूनान का भारत से घनिष्ट सम्बन्ध हो गया। पीछे जब मौर्य साम्राज्य भंग हुआ, तो वैक्ट्रियन यूनानियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का राज्य पंजाब तक हो गया और स्यालकोट के यूनानी सम्राट मिनेन्डर ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर मिलिन्द नाम पाया। उसके बाद यूची कुशान साम्राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ। कनिष्क ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर बौद्ध धर्म को नया मोड़ दिया। कनिष्क के मूर्तिकार यूनान, भारत, ईरान और चीन देशों से आए। जिससे गान्धार कला का बहुत परिष्कार हुआ।

भारत में जब कुशान राजाओं की तूती बोल रही थी। रोम का साम्राज्य फरात नदी के तट तक फैल चुका था और भारतीय राजाओं का रोम से निकट सम्पर्क था। माकाजर से रोम तक का समुद्री मार्ग इस काम में आता था। उस समय भारत से इटली लोग सोलह सप्ताहों में पहुँचते थे। उन दिनों भारत में रोम से साढ़े पाँच करोड़ का स्वर्ण प्रतिवर्ष खिंच आता था। रोमन सुन्दरियाँ भारत की 'हवा की जाली' (मलमल) पहनकर गर्व से इतराती थीं।

तक्षशिला का महत्त्व—ईस्वी सन् के लगभग तक्षशिला विश्वविद्यालय समूचे क्षेत्र का विद्यापीठ बना हुआ था। अफलातून के दर्शन की नई व्यवस्था करने वाला प्लाटिनस भारतीय दर्शन का विद्यार्थी था। क्लिमेंट–जो दूसरी शताब्दी में अलेक्जैन्ड्रिया में रहता था—कहता है कि अलेक्जेन्ड्रिया में बौद्ध बहुत हैं और यूनान वालों ने दर्शन शास्त्र इन्हीं से सीखा है।

अरबी सभ्यता के केन्द्र—इन दिनों बगदाद, कैरो; (मिस्र) कारडोवन (स्पेन) अरबी सभ्यता के केन्द्र थे। बगदाद भारत और योरोप के बीच व्यापार का भारी केन्द्र था, तथा इसी नगर के द्वारा भारतीय ज्ञान भी योरोप पहुँचा। अरबों को भारतीय संस्कृति को अपनाकर ही संतोष हुआ था। इन्हीं के द्वारा भारतीय सभ्यता के बीज योरोप पहुँचे थे। अरबों ने अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद किया था। भारतीय ज्योतिष, गणित और चिकित्सा शास्त्र का इन देशों में बहुत आदर था।

पाश्चात्य चरण—पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में योरोप के प्रथम चरण भारत की भूमि पर पड़े। उस समय भारततवर्ष में मुगल प्रताप तप रहा था और योरोप में भारत का नाम अतुल धन सम्पत्ति के लिये विख्यात था। मुगल दरबार की भड़कीली शान की बढ़ी-चढ़ी कहानियाँ मध्य एशिया होकर तब योरोप में पहुँचती रहती थीं और योरोप के साहसिक डाकू सोने के अण्डे देने वाली चिड़िया तक पहुँचने के लिये बेचैन रहते थे। पहिला सुअवसर मिला पुर्तगाल को, और वह पूरे सौ वर्ष तक निर्द्वन्द भारत को लूटता रहा। उस समय तक भूमण्डल का बड़ा भाग पानी की ओट में छुपा था। उसके बाद हालैंड और फ्रांस के लोग आए। सबके बाद अंग्रेज साहसिक आए, जिनके धर्म शास्त्र में डकैती और क्रूरता का बहुत ऊंचा स्थान था और उस काल इङ्गलैंड में ये समुद्री डाकू देवता की भाँति पूजे जाते थे। सफल साहस ही उनका सबसे बड़ा गुण था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अङ्गरेजी साम्राज्य—उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ही संसार में जीवन का नया दौर चला। भारत और योरप सर्वत्र ही उन दिनों खून खराबी का बाजार गर्म था। नई दुनिया प्रकट हो रही थी और ब्रिटेन विश्व का राजनैतिक नेता बन रहा था। उसने अथाह स्वर्ण भण्डार एकत्र कर लिया था और अब भू सम्पत्ति के मुकाबिले इङ्गलैंड औद्योगिक केन्द्र बन रहा था। अठारहवीं शताब्दी बीतते-बीतते इङ्गलैंड के निवासी ब्रिटिश साम्राज्य रचना में जुट गये थे। उनकी केवल एक व्यापारिक संस्था ने बीस करोड़ नर नारियों से भरा पुरा भारत अधिकृत कर लिया था। संसार यह देखकर आश्चर्यचकित हो रहा था। सृष्टि के आरम्भ से कभी किसी राष्ट्र ने अब तक इतना भारी दायित्व अपने ऊपर नहीं लिया था; न कभी किसी एक देश की जनता के निर्णय के ऊपर भूमण्डल के सभी भागों का महत्वपूर्ण दायित्व भार पड़ा था जितना इस काल में ब्रिटेन के क्षुद्र टापू के मुट्ठीभर निवासियों पर था।

परन्तु जिस प्रबल अर्थ क्रान्ति और उद्योग क्रान्ति से परिचालित होकर अंग्रेज एशिया में अपना साम्राज्य संगठित करते जा रहे थे। उसके सम्बन्ध में न भारत में और न एशिया में ही कोई कुछ जानता था। परन्तु इङ्गलैंड के पीछे किसी जातीय सभ्यता का इतिहास न था। न किसी प्राचीन संस्कृति की छाप थी। पाप-पुण्य, धर्माधर्म, नीति-अनीति के सांस्कृतिक आदर्श जैसे भारत में प्राचीन वैदिक, बौद्धजैन और हिन्दु धर्म के वेद-श्रुति-स्मृति-दर्शन और आचार शास्त्र के आधार पर भारतीय जनता में सहस्त्रों वर्षों से उनकी पैत्रिक सांस्कृतिक सम्पत्ति के रूप में चले आते थे, वैसा इग्लैण्ड में एक भी सांस्कृतिक सूत्र न था। १८ वीं शताब्दी के आरम्भ तक इग्लैंड घोर दरिद्रता, निरक्षरता और अन्ध विश्वासों का दास बना हुआ था। नैतिक आदर्शों पर सुसभ्य जीवन का इङ्गलैंड में जन्म भी न हुआ था। न इन बातों पर उनकी नजर थी। भारत जैसे समृद्ध देश की धन-सम्पदा-वैभव और जाहो जलाली ने उनकी आवारा और साहसिक प्रकृति में लोलुप दृष्टि उत्पन्न कर दी थी। न्याय, अन्याय, धर्माधर्म का उन्हें संस्कार ही न था।

देखते ही देखते ब्रिटेन का भारतीय साम्राज्य नैपोलियन के अत्युच्च शिखर पर पहुँचे हुए साम्राज्य से भी बहुत बढ़ गया, और उसके भार से डाउनिंग स्ट्रीट की अट्टालिकाएं थर्राने लगीं।

इस्लाम का चरण—भारत में इस्लाम का चरण एक भारी विपत्ति को अपने साथ लाया था। जिसने देश के सामाजिक, धार्मिक, नैतिक तथा राजनैतिक जीवन को छिन्न-भिन्न कर दिया, और देश को दो विरोधी शक्तियों में बाँट दिया। जिस समय इस्लाम का चरण भारत में पड़ा, तब भारत के राजनैतिक और धर्म क्षेत्र—दोनों ही अस्तव्यस्त थे। उस समय देश में कोई बड़ी शक्ति न थी। राजपूतों की नई जाति का उदय हुआ था और उन्होंने पश्चिम से चलकर उत्तर-पूर्वीय तथा मध्य भारत में अनेक छोटी-छोटी रियासतें स्थापित कर लीं थी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मुसलमानों के आने से ठीक पहले पंजाब से दक्षिण तक और बंगाल से अरब सागर तक का लगभग समस्त देश राजपूतों के शासन में आ गया था। राजपूत निरन्तर आपस में लड़ते रहते थे। ऐसी ही अव्यवस्था धर्म-क्षेत्र में भी थी। वैष्णव, शाक्त-तांत्रिक-कापालिक, वाममार्गी, शैव और पाशुपत आदि सम्प्रदाय थे—जो बड़ी कट्टरता से परस्पर संघर्ष करते रहते थे। कुछ बड़े-बड़े दार्शनिक भी थे, पर सर्व-साधारण घोर अन्धकार में थे। जाति भेद पूरे जोरों पर था। देवी-देवता, जन्तर-मंतर, भूत-प्रेत, जप-तप, यज्ञ-हवन, पूजा-पाठ, दान-व्रत, तीर्थ यात्रा, जादू टोनों के अन्धविश्वास में जनता फंसी थी। इधर सम्राट हर्ष वर्द्धन के बाद, अर्थात् ईसा की सातवीं शताब्दी के मध्य से सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक ९०० वर्षों के दीर्घकाल में सर्वथा राजनैतिक निर्बलता, अनैक्यक और अव्यवस्था देश भर में फैली थी। परन्तु एक बात अवश्य थी, इस समय भी भारत में एक ही सभ्यता और संस्कृति अखण्ड रूप में स्थिर थी। बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव भिन्न मतावलम्बी होने पर भी उनका सांस्कृतिक जीवन एक था। सबकी एक भाषा, एक चलन और एक समाज था। परन्तु मुसलमानों के समाज में यह बात न थी। सिद्धान्त की दृष्टि से हिन्दु-मुसलमानों में अन्तर न था। पर व्यवहार उनका हिन्दुओं से विपरीत था। खास बात यह थी कि वे केवल हिन्दुओं की राजसत्ता लेकर ही संतुष्ट न हुए, हिन्दुओं की धर्म भावना और सामाजिक जीवन पर भी उन्होंने बलात् अपना प्रभाव डाला। जिसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों से सब प्रकार का असहयोग हिन्दुओं का एक धार्मिक रूप धारण कर गया, और देश विरोधी शक्तियों में बंट गया। गजनवी, गौरी, तुगलक और तैमूर ने एक के बाद एक आक्रमण करके उत्तर भारत की सांस्कृतिक प्रगति को छिन्न-भिन्न कर दिया, जिससे हिन्दु विद्या, साहित्य, धर्म और संस्कृति को भागकर सुदूर पूर्व में—बंगाल में शरण लेनी पड़ी। इससे मुस्लिम काल में बंगाल उत्तर की हिन्दू संस्कृति का सर्वोच्च केन्द्र बन गया, जो लगभग अकबर के राज्यारोहण तक वैसा ही रहा। इन ९०० वर्षों तक निरन्तर आक्रान्ताओं के अधिकार में पड़कर हिन्दु धर्म, संस्कृति तथा साहित्य की प्रवृत्ति में बड़ी बाधा उपस्थित हुई, और सामाजिक संस्थाओं, क्रियाओं, व्यवहारों तथा कला, व्यापार, स्थापत्य, विज्ञान तथा राष्ट्रीय जीवन सभी में असाधारण परिवर्तन हो गया। उस समय राजपूतों के राज्य अवश्य हिन्दुपन की रक्षा करते रहे, पर वे सब स्वेच्छारी एवं राजनीति से अनभिज्ञ थे।

अंग्रेजों का भारतीय गौरव विरोधी रुख—अंग्रेजों ने पहले बंगाल ही में अपना आसन जमाया और कलकत्ता को भारत की राजधानी बनाया। उस समय तब भी उन्हें भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान न था। वे भारत को असभ्य काले लोगों का देश समझते थे। भारतीय साहित्य के सम्बन्ध में भी उन्हें कुछ ज्ञान न था। सन् १८३५ में लार्ड विलियम बैंकटिक के काल में मैकाले ने कहा था—कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य ब्रिटिश म्यूजियम के दो ग्रन्थों के समान भी श्रेष्ठ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं है। इसी से उसने ऐसी योजना बनाई थी कि भारत में एक ऐसी श्रेणी उत्पन्न की जाय जो रूप और रंग में भारतीय हो पर रुचि, सम्मति, आचार और विचारों में तथा बुद्धि में अंग्रेज हो।[१]

तत्कालीन गवर्नर जनरल ने लार्ड मैकाले के प्रस्ताव का अनुमोदन किया, और मैकाले की नीति के अनुसार भारत में शिक्षा का प्रचार किया गया। अंग्रेज और जर्मन अध्यापक भारत में बुलाये गये। विद्यार्थी उनकी विद्या और दृष्टिकोणों को मान्य करने में बाध्य हुए। तब भारतीय पक्ष में यदि कोई बात कही जाती तो वह इतिहास विरुद्ध, तर्क विरुद्ध, बुद्धि विपरीत, तर्क शून्य, थोथी, मिथ्या, वृथा कही जाती थी। बहुधा ये विदेशी अध्यापक यही भाव भारतीय विद्यार्थियों के मस्तिष्क में पैदा करते रहते थे। इस प्रकार उस काल भारतीयों को अभारतीय संस्कृति का अन्ध भक्त बनाने का प्रयत्न किया गया, और भारतीय संस्कृति को नष्ट किया गया। जिसमें एक हद तक सफलता भी मिली। ऐसे हजारों पुरुष देश में उत्पन्न हो गये जो विचार और रुचि में आमूल अंग्रेज थे। सरकार ने भारतीय छात्रों को विदेश जाकर विशेष अध्ययन के लिये छात्रवृत्तियाँ भी देनी आरम्भ कीं। इन वृत्तियों को पाकर मेधावी छात्र योरोप मे संस्कृत, इतिहास, समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र, दर्शन आदि पढ़कर लौटे तो पूरे विदेशी बनकर। इन विद्वानों का सरकार आदर भी करती थी। बड़ी-बड़ी तनख्वाहें देती थी। उन दिनों इन बड़े-बड़े वेतनों के लालच में बहुत पढ़े लिखे भारतीय अपना आत्मगौरव बेच रहे थे। खासकर संस्कृत और इतिहास के-अध्यापकगण पूरीतौर पर अंग्रेज प्रिन्सिपलों के नीचे रहकर विदेशी प्रभाव से दब गये। नौकरी के लालच में बहुत से भारतीय विद्वान इन अंग्रेजों के सुर में सुर मिलाकर बात करने लगे।

योरोप आश्चर्यचकित रह गया—सन् १९५७ में प्लासी का निर्णायक युद्ध हुआ, जिससे ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत की अधिराज हो गई। खासकर सम्पूर्ण बंगाल अंग्रेजों की आधीनता में चला गया। सन् १७८३ में कलकत्ते में फोर्ट विलियम उपनिवेश में एक प्रधान न्यायाधीश आये इनका नाम सर विलियम जान्स था। उन्हें संस्कृत पढ़ने का चस्का था। उन्होंने अभिज्ञान शाकुन्तल और मनुस्मृति का अंग्रेजी में अनुवाद किया। यह घटना १७९४ के लगभग की है। इसी समय सर जान्स का स्वर्गवास हो गया। उनके सहकारी हेनरी टामस काल्वक ने उनके बाद उनके कार्य को बढ़ाया, और उन्होंने सन् १८०६ में 'आन-द-वेदाज' नामक एक निबन्ध वेद-विषयक लिखा। इसके कुछ वर्ष बाद ही जर्मनी के 'वान' विश्व विद्यालय में आगस्ट विल्हैल्म फान श्लैगल संस्कृत का प्रधान अध्यापक नियुक्त हुआ। उसका भाई फ्राइडिश श्लैगल भी संस्कृत का प्रेमी था। इनका एक संस्कृत

---

[१] Indian in blood and colour, but, English in taste, in opinion, in morals and intellect. G. H. I. Vol, VI. P. III

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भक्त साथी हर्न विल्हेल्म फान हम्बोल्ट था, जो गीता का बड़ा प्रशंसक था। उसने गीता के विषय में अपने एक मित्र को लिखा कि यह कदाचित गम्भीरतम उच्च वस्तु है जो संसार को दिखानी है। इसके कुछ वर्ष बाद ही जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक आर्थर शोपनहार ने फ्रैन्च लेखक अङ्क वेटिल डूपेरिन का उपनिषद् का लैटिन अनुवाद पढ़ा और कहा—कि यह मानव मस्तिष्क की सर्वोच्च उपजं है। उनके विचार अति मानुष हैं, और यह हमारी शताब्दी की सबसे बड़ी देन है। उसकी मेज पर लैटिन का यह ग्रन्थ औपनिषद् खुला पड़ा रहता था, और वह उसकी आराधना किया करता था।

इन लेखों और विचारों से जर्मन विद्वानों का प्रेम संस्कृत वाङ्मय के प्रति और बढ़ा। और भारतीय संस्कृति के महत्त्व की ओर उनका ध्यान आकर्षित हुआ। जर्मन पण्डित विण्ट निट्रेज ने भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर लिखा—When Indian literature became first known in the West, people were inclined to ascribe a hoary age to every literary work hailing from India. They used to look upon India something like the cradle of mankind, or at least of human civilization. [१]जब भारतीय साहित्य पश्चिम में सर्वप्रथम विदित हुआ तो लोगों की रुचि भारत से आने वाले प्रत्येक साहित्यिक ग्रन्थ को अति प्राचीन युग का मानने की थी। वे भारत पर इस प्रकार दृष्टि डालते थे जैसे वह मनुष्यमात्र की अथवा कम से कम मानव सभ्यता की दौलत के समान है।

उसके बाद तो बहुत विद्वान् भारतीय साहित्य, विज्ञान और स्थापत्य की खोज में लग गये, और भारत की प्राचीन साँस्कृतिक सभ्यता को देखकर योरोप आश्चर्यचकित रह गया।

यहूदी धर्म विश्वास—योरोप इस समय यद्यपि ईसाई धर्म से प्रभावित था, और उसमें भी बहुत उदार भावना आ गई थी; परन्तु अभी भी योरोप प्राचीन यहूदी धर्म के प्रभाव से प्रभावित था। यहूदी विश्वास के आधार पर उनका आदि पुरुष आदम है। जिसका समय वे ईसा पूर्व ४००४ मानते हैं। लगभग यही समय विवस्थान सूर्य का है। जो मनु के पिता हैं। सूर्य का ही नाम आदित्य, आद-आदम है। परन्तु योरोप को धर्म विश्वास का पता तो था—हिन्दु प्राचीन इतिहास का ज्ञान न था। इससे योरोप में यहूदी ही प्राचीनतम सभ्यता के प्रतीक समझे जाते थे, और ईसाई धर्म उसका परिष्कृत रूप समझा जाता था। उस समय तक समूचे योरोप की यही साँस्कृतिक दृष्टि थी कि जो देश ईसाई नहीं हैं वे असभ्य हैं। उन्हें ईसाई बनाकर सभ्य बनाया जाय।

बौडम आसन्दी का उद्देश्य—जब संस्कृत का गौरव योरोप पर प्रकट हुआ तो इंग्लैंड के कुछ लोगों ने विचार किया कि ईसाई धर्म ग्रन्थों को संस्कृत में

[१]कलकत्ता विश्वविद्यालय में अगस्त सन् १९२३ में भाषण।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुवाद कराया जाय। सन् १८११ में कर्नल बौडम ने एक विपुल दान देकर आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में एक आसन्दी इस अभिप्राय से स्थापित की कि ईसाई धर्म ग्रन्थों का संस्कृत में अनुवाद किया जाय। जिससे उच्च वर्णी भारतीयों को ईसाई बनाने में सफलता प्राप्त हो। [1]इस आसन्दी का प्रथम महोपाध्याय होरेस हेमन विलसन था—उसने एक पुस्तक लिखी—'दि रिलीजस एन्ड फिलोसोफीकल सिस्टम आफ दि हिन्दूज़। ये निबन्ध वास्तव में दो व्याख्यान थे। जो जानमूर के दो सौ पाउन्ड के पारितोषिक के लिए लिखे गए थे और जिनका उद्देश्य छात्रों को सहायता देना बताया गया था। जानमूर संस्कृत का ज्ञाता एक वृद्ध पुरुष था। उसके पारितोषिक का अभिप्राय था—हिन्दु धर्म विश्वास का उत्कृष्ट खण्डन।[2]

यूजेन वर्नफ और उसके दो प्रसिद्ध शिष्य—यूजेन वर्नफ सन् ११०१ से ११४० तक फ्रान्स में संस्कृताध्यापक रहा। उसके दो प्रधान जर्मन शिष्य थे जो एक रूडल्फ राथ और दूसरा मैक्समूलर। आगे चलकर ये दोनों शिष्य बहुत प्रसिद्ध हो गए। डा० राथ ने सन् १८४६ में एक ग्रन्थ लिखा।' सुर लिट्रेत्तर इण्ट गैशिरवृ डस वेद' (वेद और वैदिक इतिहास)। इसके बाद उसने निरुक्त को छापा। परन्तु उसने निरुक्त की अपेक्षा वेद के मन्त्रों के अर्थ जर्मन पद्धति से अधिक ठीक किए जा सकते हैं यह व्यक्त किया। इसका परिणाम यह हुआ कि वेद की अपौरुषेयत्ता की भावना को धक्का लगा। डा० राथ का समर्थन ह्विटने ने किया और इस प्रकार योरोप में निरुक्त का उल्लंघन करके वेदार्थ की एक स्वतन्त्र परिपाटी का प्रचलन हुआ।

मैक्समूलर का मत—मैक्समूलर ने वैदिक साहित्य पर बहुत परिश्रम किया। वह योरोप भर में वेद का सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता प्रसिद्ध हो गया। उसने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। स्वामी दयानन्द ने उसके वैदिक व्याख्यानों को कठोरता से खण्डित किया। मैक्समूलर ने वेदों पर परिश्रम तो बहुत किया—परन्तु वेद के सम्बन्ध में उसकी धारणा बहुत हीन रही। सन् १८६६ में उसने अपनी पत्नी को एक पत्र लिखा था, उसमें उसने लिखा था—'मेरा यह वेदों का संस्करण तथा मेरा वेद भाष्य, उत्तरकाल में भारत के भाग्य पर भी भारी प्रभाव डालेगा। यह

---

[1]The special object of his munificent bequest was to promote the translation of Scriptures into Sanskrit ; so as to enable his countrymen to proceed in the conversion of the natives of India to the Christian Religion. Sanskrit–English Dictionary, by Sir Monier Williams, preface, P IX, 1899.

[2]These lectures were written to help candidates for a prize of £200 given by John Muir, a well known old Haileybury men and great Sanskrit scholar,—for the best refutation of the Hindu Religious System. Eminent Orientalists, Madras, P 72.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनके धर्म का मूल ग्रन्थ है, और मैं निश्चयपूर्वक यह कह सकता हूँ कि उन्हें उसका दिग्दर्शन कराना गत तीन हजार वर्षों की दीर्घकालीन आस्तिक भावना को निर्मूल कर देगा।[1] एक बार उसने ड्यूक आव अर्गाइल को—जो तत्कालीन भारत मन्त्री थे—लिखा था कि —भारत का धर्म नष्ट प्रायः है। अब यदि ईसाई धर्म उसका स्थान नहीं लेता तो दोष किसका ?[2]

अलबर्ट वेबर—वेबर का मत था कि गीता और महाभारत पर ईसाई प्रभाव है। वेबर के समर्थन में लौरिसर और वाशवर्न-हापकिन्स ने[3] भी बहुत कुछ लिखा। इसका परिणाम यह हुआ कि योरोप में यह मत उत्पन्न हो गया कि महाभारत ईस्वी सन् के बाद का ग्रन्थ है। वेबर और ह्विटलिंग ने एक संस्कृत कोश बनाया, जिसमें फूहन उनका सहायक था। उसमें इन विद्वानों ने अधिक परिश्रम किया और भाषा विज्ञान पर उसे आधारित किया। अध्यापक गोल्डुस्टर ने इसकी आलोचना की थी और यह रहस्य उद्घाटन किया कि राथ, वेबर, ह्विटलिंग, फूहन, आदि विद्वान लेखक किसी रहस्यपूर्ण कारण से इस बात के लिए दृढ़ संकल्प हैं कि जैसे भी संम्भव हो भारत का गौरव नष्ट किया जाय।[4]

स्वामी दयानन्द और हर्नले तथा अन्य पाश्चात्य पण्डित—सन् १८६९ में स्वामी दयानन्द काशी गए। उस समय वहाँ के क्वीन्स कालेज के प्रिन्सिपल रुडल्फ हर्नले थे। हर्नले ने स्वामी दयानन्द से अनेक बार वैदिक सम्बन्धों पर विवाद किया था। अन्त में उसने स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में एक लेख लिखा—उसमें

---

[1]This edition of mine and the translation of the Vedas will here after tell to a great extent on the fate of India.....It is the root of their religion and to show them what the root is, I feel sure, is the only way of uprooting all that has sprung from it during the last three thousand years.

[2]The ancient religion of India is doomed and if Christianity does not step in, whose fault will it be ?

[3]India, Old and New; New York, 1902, P 146 F. F.

[4]He (Dayanand) may possibly convince the Hindus that their modern Hinduism is altogether in opposition to the Vedas. ..... If once they become thoroughly convinced of this radical error, they will no doubt abandon Hinduism at once ..... They cannot go back to the Vedic State ! that is dead and gone, and, will never revive. Something more or less new must follow. We will hope it may be Christianity,..... A. F. R. H. Quoted in "The Arya Samaj" by Lajpat Rai 1932, P. 42.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसने लिखा था—दयानन्द हिन्दुओं को विश्वास दिला सकता है कि उनका वर्तमान धर्म अवैदिक है। .....यदि उन्हें अपनी इस मौलिक भूल का पता चल जाय तो वे निस्संदेह हिन्दू धर्म को छोड़ देंगे। परन्तु अब वे मृत वैदिक धर्म की ओर न जायेंगे, वे ईसाई हो जायेंगे। बूलर, मोनियर, विलियम्स, आदि से भी स्वामी दयानन्द की वेद-विषयक वार्ता अनेक बार हुई थी, और उन्होंने पाश्चात्यों की हीन भावना को ताड़ लिया था। भारत के अन्य विद्वान भी यह बात समझ गए थे।

अन्य विद्वानों की सतर्कता—मद्रास विश्वविद्यालय के इतिहास के आचार्य नीलकण्ठ शास्त्री ने लिखा था कि भारतीय समाज और भारतीय इतिहास के के विषय में पाश्चात्यों ने जो आलोचना पद्धति आरम्भ की है वह उन्नीसवीं शताब्दी के योरोप की ईसाईयत के विचारों से प्रभावित है।

रावबहादुर सी० आर० कृष्णमाचार्लू ने भी लिखा था कि ये पाश्चात्य लेखक, जो नई जातियों के प्रतिनिधि हैं, संस्कृति के उद्देश्य के स्थान में भिन्न उद्देश्य से जो प्रायः अज्ञान और पक्षपातपूर्ण होता है, भारतीय इतिहास को लिख रहे हैं।

भाषाशास्त्र—योरोप के पण्डितों की सारी प्राच्य धारणाएं भाषा विज्ञान पर आधारित हैं, यह भाषा विज्ञान जर्मनी में प्रौढ़ हुआ। मैक्समूलर कहता है भाषा विज्ञान अखण्ड है, और प्रागैतिहासिक युगों का एकमात्र साक्षी है। परन्तु मैक्समूलर के इस भाषा साक्ष्य पर कैनाडा के साक्षर रिचर्ड अलबर्ट विलसन ने लिखा है कि भाषा के समस्त क्षेत्र पर मैक्समूलर का व्यापक विश्लेषणात्मक अधिकार न था। इस प्रकार पाश्चात्य पण्डितों ने कुछ तो अज्ञान से और कुछ पक्षपात के कारण भारतीय संस्कृति के इतिहास को बहुत विकृत कर दिया। जिसका अनुसरण हमने भारत में अङ्गेजी राज्य रहने तक किया। अब समय आ गया है कि हम स्वतन्त्र चिन्तन द्वारा अपनी संस्कृति की छानबीन करें और अपने अतीत गौरव के सही रेखा चित्र उपस्थित करें।

भारतीय संस्कृति के मूलस्त्रोत—भारतीय संस्कृति के सर्व प्राचीन स्त्रोत वेद हैं। वेदों का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन हमें अतीत जीवन के विस्मृत रेखाचित्र प्रस्तुत करता है। त्रेता के आरम्भ में वेदों की शाखाओं के प्रवचन आरम्भ हो गए थे। इन दिनों यज्ञ विधियाँ बहुत हो गई थीं। यज्ञ क्रियाओं के भेद के कारण वेद की शाखाओं का विस्तार होने लगा। तभी से शाखागत पाठान्तरों का आरम्भ हुआ। इस प्रकार वैदिक शाखाएं, ब्राह्मण ग्रन्थ, जिनमें देवासुर संग्रामों की मूल कथाएं हैं। पाश्चात्य जन उन्हें मिथ्या कल्पित (Mythology) कहते हैं। ब्राह्मणों के बाद आरण्यक-उपनिषद् हैं, जिनमें महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सन्दर्भ हैं। कल्पसूत्र भी इतिहास के बड़े साक्षी हैं। इस साहित्य में महाभारत से पूर्वकाल के महत्वपूर्ण इतिहास संकेत प्राप्त हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों से पाणिनि प्रभाव के पूर्वकाल पर भारी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रकाश पड़ता है। पाणिनि स्वयं एक बड़ा साक्षी है। छान्दोग्य में अथर्वाङ्गिरस ऋषियों के इतिहास के संकेत हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक पूर्ववर्ती इतिहास पुराणों का उल्लेख है। अनेक ऋषि-मुनि और विचारकों के संकेत और विचार हैं।

रामायण और महाभारत—वाल्मीकीय रामायण और महाभारत इसके बाद भारतीय संस्कृति के इतिहास के मूलस्रोत हैं। इन दोनों ग्रन्थों से आनन्दवर्धन, भास, भवभूति, सुबन्धु, कालीदास, अश्वघोष आदि न जाने कितने महाकवियों ने प्रेरणा प्राप्त की है। महाभारत में आदि पर्व में ही २४ पुरातन राजाओं का उल्लेख है, इसके अतिरिक्त पचास के लगभग प्रतापी राजाओं की चर्चा है। ये सब राजा कविजन कीर्तित सुप्रसिद्ध थे।

कौटिलीय अर्थशास्त्र और स्मृतिग्रन्थ—प्राचीन भारतीय संस्कृति पर एक असाधारण प्रकाश डालते हैं। स्मृतियाँ, धर्मसूत्र सब मिलकर प्राचीन भारत पर एक सच्ची सांस्कृतिक दृष्टि डालते हैं।

पुराण—पुराण वह अगाध निधि हैं। जिनमें प्राग्वैदिक काल से मध्यकाल तक के सच्चे और गूढ़ ऐतिहासिक तथ्य छिपे पड़े हैं। ब्राह्मण काल में भी पुराण पुरातन रूप में विद्यमान थे। अथर्वाङ्गिरस, उक्षनाकाव्य, सारस्वत, शरद्वान्, वाजश्रवा, वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, द्वैपायन, और ऋक्ष, वृहस्पति, इन्द्र, सविता, विवस्वान्, यम, इन्द्र-त्रिधामा, त्रिविष्ठ, भारद्वाज, गौतम, सोमशुष्म, द्वैपायन, जातुकर्ण ये पुराण वाचक पुरुष हैं। गौतम धर्मसूत्र और आपस्तम्ब-धर्मसूत्र अथवा अथर्ववेद का इतिहास पुराण से गहरा सम्बन्ध है। उत्तरकालीन सहस्त्रावधि विद्वानों को इन्हीं पुराण से प्रेरणा मिली है।

संस्कृत साहित्य—संस्कृत काव्य, नाटक, रूपकों में न केवल ऐतिहासिक संदर्भ संकेत हैं, उनमें तत्कालीन संस्कृति के भी गहरे रेखाचित्र हैं। बाण और कालिदास का वाङ्मय इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है, कथा साहित्य से भी बहुत बातों पर प्रकाश पड़ता है। कथा साहित्य बहुत सा नष्ट हो गया है। बन्धुमती कथा, भगीरथी कथा, सुमनोत्तरा कथा, पैशाची भाषा की वृहतकथा, प्राकृत की तरङ्गवती कथा, रुद्र की त्रैलोक्य सुन्दरी, वररुचि की चारुमती, धवल की मनोवती, विलासवती, नर्वदा सुन्दरी, बिन्दुमती आदि कथा ग्रन्थों का अब केवल नाम शेष ही रह गया है पर प्राचीन साहित्य इनके महात्म्य का संकेत देता है।

प्राचीन अर्थशास्त्र—इस समय हमारे समक्ष कौटलीय अर्थशास्त्र है जो प्राचीन संस्कृति और समाज व्यवस्था पर पूरा प्रकाश डालता है। परन्तु महाभारत के शान्ति पर्व में प्राचीन अर्थशास्त्रों का एक इतिहास वर्णित है। जिसके आधार पर हमें ज्ञात होता है कि इन्द्र बाहुदन्ती पुत्र, वृहस्पति, उशनस, अंङ्गिरस सुधन्वा और विरोचन, ब्रह्मा, विशालाक्ष, नारद, बुध, भीष्म-द्रोण, उद्धव-शाम्बय आदि दिग्गज अर्थशास्त्री थे। काशी विश्वविद्यालय के अध्यापक सदाशिव अल्तेकर का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कथन है कि अर्थशास्त्र सम्बन्धी बहुत प्राचीन ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं परन्तु मनुस्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति, पराशर स्मृति, शुक्रनीति आदि में प्रकट है कि प्राचीन ग्रन्थकार अज्ञात रहकर ग्रन्थ रचना करते थे, और अपनी कृतियों को दैवी या अर्धदैवी पुरुषों के नामों पर प्रसिद्ध करते थे। ... ब्रह्मा-मनु-शिव अथवा इन्द्र के नामों से लिखे गये राजशास्त्र मानव विद्वानों ने ही लिखे थे। स्वायं भुवमनु की रचना का उल्लेख महाभारत[1] और निरुक्त में है। महाभारत के ५६ वें अध्याय में प्राचेतसन मनु के राजधर्म का उल्लेख है।[3] सोमदेव सूरि ने भी वैवस्वत मनु का एकवचन उद्धत किया है।[4] प्राचीन साहित्य में केवल यही नहीं, कपिल-आसुरि, तथा पञ्चशिखाचार्य के साँख्यशास्त्र, हिरण्य गर्भ का एक लाख श्लोक का योग शास्त्र, इन्द्र-भरद्वाज का व्याकरण, अपान्तरतमा और सनत्कुमार के धर्मशास्त्र भारत की प्राचीनतम संस्कृति की लुप्त निधि हैं। इसी पर लक्ष्य करके प्राचीन आचार्य देवल कहता है— 'एतो सांख्ययोगौचाधिकृत्य यैर्युक्तितः समयतश्च पूर्व प्रणीतानि विशालानि गम्भीराणि तन्त्रामणीह संक्षिप्योद्देशतो यक्ष्यन्ते'।[5] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कुछ विषहर प्रयोग हैं। ऐसे प्रयोग वृहस्पति और उशना के अर्थशास्त्र में भी थे। ऐसे संकेतचिकित्साग्रन्थ वाग्भट तथा उसके टीकाकार डल्हण और हेमाद्री ने किए हैं।[6] अर्थशास्त्र का टीकाकार महास्वामी भी अपनी टीका में वार्हस्पत्य श्लोक उद्धत करता है।

बौद्ध और जैन ग्रन्थों का साक्ष्य—बौद्ध जैन ग्रन्थों में तत्कालीन इतिहास और लोकजीवन के महत्त्वपूर्ण संकेत हैं। बौद्ध साहित्य पहिले और जैन साहित्य पीछे विक्रम की चौथी-पाँचवीं शताब्दी में लिपिबद्ध हुए। इन ग्रन्थों में कुछ भूलें अवश्य हैं। पर उनका महत्त्व कम नहीं, तथा इन ग्रन्थों का सिलसिला ईसा की

---

[1]महा० शान्ति अ० ५३।५। तथा अध्याय ५५।४।

[2]मिथुननां विसर्गादौ मनुः स्वायंभुवंऽब्रवीत्।

[3]प्राचेतसेन मनुनाश्लोकौ चेमावुदाहृतौ।
राजधर्मेषु राजेन्द्रताविहैक मनाः शृणु।
षड्ेतान् पुरुषो जह्याद्र भिन्नां नावमिवार्णवे।
अप्रवक्तारमाचार्यं अनधीयानमृत्विजम्।

[4]यदाह वैवस्वतो मनुः—उच्छ्रषड्भाग प्रदानेन वनस्था अपि तपस्विनो राजानं संभावयन्ति। तस्यैव तद् भूयात् यस्तान् गोपायति।

[5]याज्ञ० स्मृति० अपरार्क टीका ३–१०९।

[6]'अजरुहालक्षणम् उशनासा प्रोक्तम्' (सुश्रुत टीकाकार डल्हण कल्पस्थान प्रथम अध्याय) 'सुरला पावकी सोमा भोगवत्यम्मृतानतम्। आढ़कीकिणिही सोमराजी चौशनसोऽगदः। (अष्टाङ्गसंग्रह उत्तर स्थान) 'अथयोगाः प्रवदक्षयन्ते वृहस्पतिकृताः शिवाः' (अष्टाङ्गहृदय की हेमाद्री टीका)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सातवीं शताब्दी तक चलता है। मंजु श्री मूलकल्प नामक बौद्ध ग्रन्थ में—जो लुप्त था और सन् १९१५ में प्राप्त हुआ है, बहुत इतिहास सामग्री उपलब्ध है। इस ग्रन्थ का चीनी भाषा में अनुवाद ईसवी १००० के लगभग हुआ था।

राजतरंगिणी—काश्मीरी पण्डित कल्हण का राजतरंगिणी ग्रन्थ अमूल्य इतिहास सामग्री हमें देता है। इसी प्रकार नीलमत पुराण में भूगोल सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य हैं।

विदेशी यात्री—ज्ञात विदेशी यात्रियों में प्राचीनतम मेगस्थनीज है, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में भारत आया। उसका ग्रन्थ नष्ट हो चुका है, पर कुछ यूनानी ग्रन्थकारों ने उसके यात्रा विवरण अपने ग्रन्थों में उद्धृत किये हैं जो अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ईसा की प्रथम शताब्दी से लेकर आठवीं शताब्दी तक लगभग १०० चीनी यात्री भारत आये जिनमें तीन प्रसिद्ध हैं—फाह्यान, हुवनच्वाङ्ग और इत्सिंग हैं। जिनके महत्वपूर्ण यात्रा ग्रन्थ हमें उपलब्ध हैं। इन विवरणों में कुछ ऐतिहासिक भ्रान्तियाँ अवश्य हैं, पर इससे उनका महत्व कम नहीं होता। मुस्लिम यात्रियों में सुलेमान सौदागर और अलबरूनी प्रमुख हैं। अलबरूनी का ग्रन्थ भारतीय संस्कृति पर अद्वितीय प्रकाश डालता है, और भी अरब लेखकों ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। तिब्बत के यात्री भी भारत आये। ये विद्वान बौद्ध धर्म की शिक्षा लेने पंजाब और बङ्गाल में आते थे। उनमें लामा तारानाथ का नाम प्रसिद्ध है, जिसका ग्रन्थ भी उतना ही प्रसिद्ध है। तिब्बत के लेखकों द्वारा पता चलता है कि मागध पण्डित इन्द्रभद्र तथा मालव पण्डित मठभद्र के भारतीय इतिहास के ग्रन्थ तिब्बत में विद्यमान थे।

शिला लेख, ताम्रपत्र और मुद्राएं—प्राचीन भारतीय संस्कृति और इतिहास की सबसे सच्ची और खरी साक्ष्य इन लेखों और मुद्राओं की है। इन्होंने हमारे लुप्त प्राय इतिहास की अनेक कड़ियों को जोड़ा है। सन् १९०४ में लार्ड कर्जन ने भारत में पुरातत्व विभाग की स्थापना की थी। इस विभाग ने प्राचीन भारतीय संस्कृति के इतिहास की खोज-जाँच में बड़ी सहायता दी। बड़ी महत्वपूर्ण सामग्री इस विभाग ने प्रस्तुत की।

अशोक के शिला लेखों के सम्बन्ध में काशीनागरी प्रचारिणी का संस्करण श्रेष्ठ है। डा० फ्लीट ने गुप्त अभिलेखों पर प्रकाश डाला है। अभी तक भी बहुत से प्राचीन वंशों के ऐसे अभिलेखों के संग्रह की अति आवश्यकता है। पाश्चात्य पद्धति के लेखकों ने इन अभिलेखों से बहुत सहारा लिया है। इन अभिलेखों से अत्यन्त महत्वपूर्ण बातों पर भी प्रकाश पड़ा है। कुछ लेखकों ने इन लेखों की लिपि-समता पर आधारित हो काल निर्णय किए हैं। परन्तु इसमें बहुत भूलें भी हुई हैं, वास्तव में वंशों का कालक्रम तो लिपि विद्या की सहायता के ज्ञात नहीं हो सकता। शिलालेखों आदि में दिये सम्वतों से पाश्चात्यों के सन् सम्वत् परिवर्तन में अन्तर है। कारण मलमास के हिसाब की विकृति है। ताम्र शासन की परिपाटी अति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन है, राजा महाराजा किसी आश्रित को, विद्वान् को ग्राम-भूमि दान देते थे तो ताम्रपत्र पर अपनी मुहर लगाकर उसकी सही करते थे। याज्ञवल्क्य स्मृति में ताम्रशासन सम्बन्धी विधान है।[1] व्यास स्मृति तथा वृहस्पति स्मृति में भी ऐसे ही आदेश हैं।

मुद्राओं के सम्बन्ध में जनरल कनिंघम ने बहुत काम किया था। अब तो इस सम्बन्ध में बहुत से ग्रन्थ छप चुके हैं। जिनमें श्री एलन के ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। भारत में मिलने वाली सर्व प्राचीन मुद्राएं आहत मुद्रा हैं, जिन पर कुछ चिन्ह हैं। ऐसी मुद्राओं का वर्णन मनुस्मृति, मत्स्य पुराण, अष्टाध्यायी और और अर्थशास्त्र में मिलता है। दीनारों के विषय में नारद स्मृति का भव स्वामी भाष्य संकेत करता है।

तुलनात्मक अध्ययन—अभी तक पुराणों, ब्राह्मण ग्रन्थों और प्राचीन एशिया के प्राचीन इतिहासों का तुलनात्मक अध्ययन नहीं हुआ है, जिसकी इस समय अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसा करने ही से प्राचीन नृ वंश के विस्तार और सभ्यता पर व्यापक प्रकाश पड़ सकता है।

अपने अल्प ज्ञान और अध्ययन के सहारे मैंने जो कुछ जाना और समझा शुद्ध बुद्धि से इस ग्रन्थ में लिख दिया है। सतयुग, त्रेता और द्वापर की युग कल्पना पर जो मैंने परंपरागत पौराणिक मान्यता को अस्वीकार किया है सो केवल ऐतिहासिक दृष्टिकोण ही को सामने रखा है, खासकर सतयुग काल के सम्बन्ध में पर्शियन इतिहास का तथा अरब और मिश्र के इतिहास का सहारा लेकर मैंने कुछ तथ्य आधारित किये हैं, जिनपर मैं आशा करता हूँ कि विज्ञ पाठक गम्भीरता से विचार करेंगे, तथा अध्ययन के इस दृष्टिकोण को आगे बढ़ायेंगे। अन्त में मैं अपने अल्प-ज्ञान की ओर विज्ञ पाठकों का ध्यान आकर्षित कर उन सब त्रुटियों की क्षमा मांगता हूँ जो इस ग्रन्थ में अपरिमित हैं। साथ ही उन सब मित्रों, विद्वानों और ग्रन्थकारों का मैं सादर आभार मानता हूँ जिनकी सहायता बिना मैं यह ग्रन्थ लिख ही न सकता था।

ज्ञानधाम प्रतिष्ठान
दिल्ली, शाहदरा।
२६-८-५८

चतुरसेन

---

१ दत्त्वा भूमि निवन्धं वा कृत्वा लेख्यं तुकारयेत्। आगामि क्षुद्र नृपति परिज्ञानाय पार्थिवः। ३१४। पटेवा ताम्र पट्टे वा स्वमुद्रा परि चिन्हितम्। अभिलेख्यात्मनो वंशानात्मानं च महीपतिः। ११५। प्रतिग्रह परिमाणं दानाच्छेदोप वर्णनम्। स्वहस्त काल सम्पन्नं 'शासनं' कारयेत् स्थिरम्। ११६। (आचाराध्याय)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

प्रथम अध्याय

भारत की प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृति की उत्-क्रान्ति पर एक विहंगम दृष्टि १–३०

१ **संस्कृति**—आध्यात्मिक संस्कृति, भौतिक संस्कृति, धर्ममूल, जादू, धर्म और विज्ञान, संस्कृति और जातियाँ, संस्कृति का विकास।

२ **आर्य संस्कृति**—यज्ञ संस्था का चरम उत्कर्ष, ब्रह्म, आत्मा और पुनर्जन्म के उपनिषद् तत्व।

३ **बौद्ध और जैन संस्कृति**—बौद्ध संस्कृति का उदय, जैनधर्म, अशोक का प्रयास।

४ **शुङ्ग–सातवाहन–शक–युग**—कनिष्क, भागवत धर्म की प्रतिष्ठा, कला कौशल व व्यापार में क्रान्ति, गणराज्यों का उत्थान, साहित्य, बौद्ध महायान साहित्य तथा जैन साहित्य, दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक।

५ **गुप्त युग**—वैदिक धर्म का पुनरुत्थान, साहित्य।

६ **वृहत्तर भारत**—

७ **मध्य युग**—मुस्लिम आक्रमण, कवि, दार्शनिक, मगध संस्कृति का केन्द्र।

८ **मसीह की प्रारम्भिक दस शताब्दियाँ**—धार्मिक अवस्था, बौद्ध धर्म, हिन्दु धर्म का पुनरुज्जीवन और बौद्ध धर्म का नया रूप, कनिष्क का महायान, श्रमण संस्कृति का पतन, ब्राह्मण तथा सामन्तों का गठबन्धन तथा सामाजिक अवस्था, आर्थिक अवस्था, राजनैतिक अवस्था।

९ **पौराणिक संस्कृति पर एक समीक्षा दृष्टि**—यज्ञ प्रथा, बौद्ध जैनों की प्रतिक्रिया, अशोक के प्रयत्न, ब्राह्मणों का संकट।

१० **मुस्लिम आक्रान्ताओं का हिन्दू संस्कृति पर प्रभाव**—आक्रमण का प्रमाण, मुस्लिम राज्य सत्ता जमने के बाद, अन्धकाल पर एक विहंगम दृष्टि, मुगल साम्राज्य की स्थापना, अकबर द्वारा फतहपुर सीकरी का शिलान्यास, अकबर से प्रथम, अकबर का सांस्कृतिक काल।

११ **अंग्रेजी राज्य का आरम्भ और अन्त**—योरोप के प्रथम चरण, योरोप की क्रान्ति, भारतीय वातावरण।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१२ **नई चेतना**—अंग्रेजों की शिक्षा नीति, शिक्षा प्रसार और मध्य वर्ग का उत्थान, सुधार आन्दोलनों का आरम्भ, मुसलमानों की प्रतिक्रिया, युगदर्शन, पाकिस्तान का विभाजन, स्वतन्त्र भारत ।

द्वितीय अध्याय

हमारा देश ३१–५४

१ **नाम और सीमाएं**—भारतवर्ष, हिन्दुस्तान, इण्डिया, इन्द्रद्वीप, आर्यवर्त्त और भरतखण्ड, ब्रह्मावर्त्त और ब्रह्मर्षि देश, भारत, पाकिस्तान, सीमा विस्तार व सीमाएँ, पर्वतराज हिमालय, समुद्र, प्राकृतिक दुर्ग ।

२ **प्राकृतिक विभाग**–लेमूरिया भूखण्ड, प्रकृत विभाग, सीमान्त के हिमालय प्रदेश, उत्तर पूर्वी पर्वत श्रेणियाँ, उत्तर पश्चिम की घाटियाँ, उत्तर भारत का मैदान, भौगोलिक भाग, प्राचीन महत्व, नदियाँ, सिन्ध घाटी, गंगा घाटी और ब्रह्मपुत्र घाटी, सिंध घाटी प्रदेश, गंगा की घाटी, ब्रह्मपुत्र की घाटी, विन्ध्य मेखला और मध्य प्रदेश के पठार, भौगोलिक विभाजन, राजस्थान, भारत की पश्चिमी सीमा, दक्षिणी प्रायःद्वीप, पश्चिमी घाट, पूर्वी घाट और बंगाल की खाड़ी का मध्य भाग, सुदूर दक्षिण, दक्षिणा पथ में जातियों का संगम, राम के काल में दक्षिण भारत, लंका समुद्र पथ ।

३ **जन संख्या**—जनसंख्या, जनसंख्या का घनत्व, नगर और ग्रामों की जनसंख्या, ग्रामों का नगरीकरण और नगरों का ग्रामकरण, कृषि उद्योग और स्वास्थ्य, बालमृत्यु ।

४ **भारत की प्रमुख जातियां**—जातियों का मिश्रण, आर्य, द्रविड़, अन्य जातियां, इस्लाम की विशेषता ।

५ **भारतीय भाषाएं**—आर्य भाषा परिवार, हिन्दी, खड़ी बोली की विभाषाएं, भारतीय आर्यभाषा वर्ग, द्रविड भाषा परिवार ।

६ **भारत की एकदेशीयता**—भौगोलिक दृष्टि, सांस्कृतिक दृष्टि, कला और साहित्य ।

तृतीय अध्याय

मनुष्य का आदि काल ५५–६८

१ **मनुष्य का आदि विकास**—मनुष्य की उत्पत्ति, मनुष्य का आदि विकास, पहिला विज्ञान, सभ्यता की ओर, कुटुम्ब प्रथा ।

२ **प्रथम प्रस्तर युग**—प्रथम प्रस्तर युग में विकास ।

३ **प्रथम प्रस्तर युग के भारतीय अवशेष**—दक्षिण भारत की प्राचीनता,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत की प्राचीनतम जाति, अवशेष, दक्षिण भारत में, अन्य प्रान्तों में, प्राग-सोआं सभ्यता, पुंच्छ प्रदेश, गुजरात और मद्रास।

४ **आदि प्रस्तर युग का रहन-सहन**—इस युग के मनुष्य का जीवन।

५ **उत्तरकालीन प्रस्तर युग**—प्रथम विकास युग, उत्तर विकास युग, इस युग के मनुष्यों का जीवन, सभ्यता के विकास के चिन्ह, वेड्डा और संथाल, भारत, स्पेन और आस्ट्रेलिया में तत्कालीन साम्य, हिन्दू संस्कृति पर प्रभाव, विशिष्ट बातें, व्यापार विनिमय का प्रारम्भ, धर्म और रीति-रिवाज।

६ **धातु युग**—धातु का प्रथम परिचय, स्वर्ण प्राप्ति और उन्नत धातुओं की उपलब्धि, कांसे का युग, भारतीय धातु कालीन सभ्यता, अमरीनल सभ्यता, कुल्ली सभ्यता, झोब सभ्यता।

चतुर्थ अध्याय

सिन्धु घाटी की सभ्यता ६९–८१

१ **खोज का आरम्भ**—विकसित ताम्र युग के अवशेष, खुदाई का आरम्भ, विस्तार क्षेत्र, खुदाई में प्राप्त अवशेष, जान मार्शल का विवरण ग्रन्थ।

२ **हरप्पा और मोहनजोदड़ो**—दो बड़े नगर, प्राप्त सामग्री, नगर रचना और प्रशस्त राजपथ, नालियाँ, कुंए, घर-मकान, जलाशय, परिधि और बाहरी बस्ती।

३ **सभ्यता के अवशेष**—वातावरण और पैदावार, रहन-सहन, कला-कौशल तथा व्यवसाय, धर्म, आजीविका, व्यापार, लिपि व लेख, शासनव्यवस्था।

द्वितीय खण्ड

प्रथम अध्याय

आर्यों की वैदिक-सभ्यता ८२–८५

१ **आर्य**—मनुष्यों की पाँच जातियाँ, आर्यों की आदिम एकता, आर्य भाषा परिवार, पाश्चात्यों का आर्य साहित्य अध्ययन, पाश्चात्यों की इतिहास दृष्टि, पुराणों का नव्य दृष्टि से अध्ययन, सीतानाथ प्रधान का क्रोनोलोजी आफ एन्शीयन्ट इण्डिया, पार्जीटर का एन्शीयन्ट इण्डियन हिस्टोरिक ट्रेडीशन।

द्वितीय अध्याय

सतयुग-त्रेता-द्वापर ८५–१०४

१ मन्वन्तर काल गणना, ईरान और भारत।

२ **मन्वन्तर कालगणना**—पौराणिक मन्वन्तर, हमारा मत, सिन्धु घाटी की सभ्यता और मनुर्भरतों की सभ्यता की समकालीनता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३ **मनुर्भरत वंश**—स्वायंभुव मनु वंशवृत्त, प्रियव्रत शाखा, ऋषभदेव और भरत, चार मनु, स्वारोचिषमन्वन्तर, उत्तम और तामस मन्वन्तर, रैवत मन्वन्तर, उत्तानपादशाखा, चाक्षुष मन्वन्तर।

४ **चाक्षुष मनु के सर्वजयी पाँच पुत्र**—जानन्तपति अत्यराति, अभिमन्यु, उर, अंगिरा, पुर, ईरान के ६ अमर उपास्यदेव।

५ **सतयुग की मुख्य-मुख्य घटनाएँ**—ऐतिहासिक, प्रलय, वैकुण्ठधाम, राजमर्यादा की स्थापना, कृषि, सांस्कृतिक घटना।

६ **सतयुग पर व्यापक दृष्टि**—भारत, भरतों और यदु तुर्वशों का युद्ध, दाश राज संग्राम, व्यापक दृष्टि।

तृतीय अध्याय

त्रेता-मनु-राम काल १०५–१३५

१ **नृवंश विस्तार**—त्रेता की काल गणना, वैवस्वत मन्वन्तर, मारीचि कश्यप का नृवंश, दैत्य दानव वंश, दानव वंश, नाग वंश, आदित्य, गरुड़ वंश।

२ **आदित्यों का देव कुल**—प्रलय के बाद, आर्य वीर्यान, सुषा, वरुण-ब्रह्मा।

३ **वरुण का वंश**—वरुण-ब्रह्मा, भृगु वंश और दैत्य गुरु शुक्राचार्य, भृगु, शुक्र-उशना-काव्य, अंगिरा का वंश, अग्नि पूजन, अत्रि, वसु, शिव-शंकर-रुद्र, शिव पूजन, यज्ञ भाग विरत, दक्ष यज्ञ, कैलासवास।

४ **सूर्य-विष्णु-विवस्वान्**—परिवार, यम, यम-यमीसूक्त, शनैश्चर, यम का वंश विस्तार, सूर्य की राजधानी, सूर्य पूजा।

५ **देव भूमि पर्शिया**—मूल नृवंश स्थान।

६ **देव और उनके दायाद बान्धवों के विग्रह**—सुमेरियन और सेमेटिक, बैबिलोनियन राज्य, एलाम सम्पर्क, दैत्य-दानव कुल, देवासुर संग्राम, हिरण्यकशिपु, वाराह सम्पर्क, नृग-नृसिंह देव, हिरण्यकशिपु वध, वरुण-विष्णु और उनकी संतति, नाग और गरुड़, वरुण का समन्वयवाद।

७ **इन्द्र का स्वर्ग राज्य**—स्वर्ग भूमि, इन्द्र, इन्द्र का पराक्रम, वृत्र वध, इन्द्र की राजनीति, देवपद ग्रहण।

चतुर्थ अध्याय

भारत की प्राचीन जातियों की संस्कृति का समन्वय १३६–१५६

१ **आग्नेय और आस्ट्रिक**—भारत में आगतजन, आग्नेय या औष्टिक, श्रेष्ठता के चिन्ह, आग्नेय कौन है, आग्नेयों का मूल स्थान, आग्नेय प्रभाव के अवशेष।

२ **द्रविड़**—विद्वानों का मत, द्रविड़ कौन हैं, द्रविड़ और आग्नेयों में समानता, भाषा विचार, फिनीशियन, पणि-चोल, धातु विचार, साम्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संकेत, अन्य साम्य, मय सभ्यता, द्रविड़ वसुपुत्र-धर की सन्तान हैं, कृष्ण-यजुर्वेद, कृष्ण यजुर्वेद की विशेषता, अय्यर-नैय्यर, अन्यमत ।

३ **समन्वय**—साम्य का माध्यम वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा, जाति प्रभाव और भारतीय समाज, आर्यों पर आर्येतर प्रभाव, विवाह बन्धन, संस्कृत का माध्यम, तीर्थ, राजनीतिक प्रभाव, शिव पूजन और गणेश, ग्राम देवता, गणेश, इन्द्र और सूर्य, वैदिक विष्णु की उपासना, वालिसद्म पाताल, नीच्य और अपाच्य ।

४ **आर्यों का भारत प्रवेश**—संग्राम, देवासुर संग्राम, पाँचवा देवासुर संग्राम, चन्द्र, तारकामय, चन्द्र पुत्र बुध, इलावर्त्त, महाभिनिष्क्रमण, भारत प्रवेश ।

५ **आर्यावर्त्त की स्थापना**—अयोध्या और प्रतिष्ठान, पितृसत्ता की स्थापना, वैदिक यज्ञधर्म ।

पंचम् अध्याय

त्रेता १५७–२६६

१ **आर्यों के राजवंश**—पौराणिक वंशावलि, पौराणिक आधार, पार्जीटर और प्रधान, पौराणिक महत्त्व, एक अध्ययन ।

२ **मानव सूर्यवंश**—वैवस्वत मनु, आर्य जाति की स्थापना, पहला नगर, नौ मूल मानव कुल ।

३ **इक्ष्वाकु वंश**—इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकु का सूर्यवंश, अनरण्य, मनुवंश वृक्ष ।

४ **'एल' चन्द्रवंश**—चन्द्रपुत्र बुध, पुरूरवा, पुरूरवा के वंशधर, नहुष, ययाति, पत्नि और संतान ।

५ **भारत में आर्यों के प्रथम सौ वर्ष**—आर्यों की पाँच गद्दियाँ, चन्द्रवंश, सूर्यवंश, पुरूरवा से पुरु तक, देवेन्द्र नहुष, ययाति और उसके उत्तराधिकारी, इक्ष्वाकु से विश्वराश्व, वैशाली का वंश, शर्याति वंश, निमि की मिथिला शाखा, इस शताब्दी की महत्वपूर्ण बातें, वेदर्षि, वैदिक धर्म, सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल एवं आर्यावर्त्त, पितृमूलक राज्य पद्धति और परिवार प्रथा, तारकामय का परिणाम, पुरुष का पतित्व, इक्ष्वाकु कुल का विस्तार, देवासुर संग्राम ।

६ **पुरु से मान्धाता**—सूर्यवंश की प्रगति, चन्द्रवंशियों के नए राज्य, यदुवंश, तुर्वश वंश, द्रुह्यु वंश, आनव वंश, मुख्य पुरुष और घटनाएँ ।

७ **दाय भाग और उत्तराधिकार**—दायभाग, उत्तराधिकार, शशबिन्दु के कुल में दायभाग, साम्राज्य का आरम्भ ।

८ **राजसूय और अश्वमेध यज्ञ**—यज्ञ परिपाटी, ऐन्द्राभिषेक, राजसूय, अश्वमेध ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

९ **राजा, महाराज, सम्राट, चक्रवर्ती, और सार्वभौम**—राजा, महाराज, सम्राट, चक्रवर्त्ती, सार्वभौम ।

१० **तीन प्रथम चक्रवर्त्ती—शशिबिन्दु, मान्धाता, मरुत्त**—शशिबिन्दु, दायभाग की स्थापना, मान्धाता, पौरव राज्य भंग, जनमेजय आनव की की पराजय, मान्धाता की मृत्यु, मरुत्त अवीक्षित ।

११ **चक्रवर्त्ती महामनस आनव**—आनव वंश, उत्तर पश्चिमी शाखा, महामनस के उत्तराधिकारी, उशीनर आनववंश, आंग पूर्वीशाखा, गांधार राज्य ।

१२ **दुःषन्त**—मान्धाता का कुल, मतिनार का पुरुवंश, दुःषन्त को तौर्वश मरुत्त ने गोद लिया ।

१३ **चक्रवर्त्ती भरत, सौद्युम्न**—राज्यच्युत पुरुवंश, शकुन्तला, भरत चक्रवर्त्ती सार्वभौम, भरत के उत्तराधिकारी, इस वंश के ऋषि, सांकृत्य रन्तिदेव, बृहत्क्ष ।

१४ **सुहोत्र चक्रवर्त्ती**—सुहोत्र, हस्तिनापुर की मूल गद्दी, काशिक राज्य की नींव, हस्ती का वंश, अजमीढ़ वंश, काशिक राज्य, कान्यकुब्ज, पौरवशाखा, द्विमीढ़ और पुरुमीढ़ वंश ।

१५ **आर्यों की सैंतीसवीं पीढ़ी**—आर्यों का विस्तार ।

१६ **तीन अमित तेज युग पुरुष**—सार्वभौम सहस्त्रार्जुन, भृगुओं का धर्म प्रताप, ऋचीक, जमदग्नि और विश्वामित्र, जामदग्न्य राम, दुर्घट घटना, विश्वामित्र ।

१७ **हैहय कार्तवीर्य अर्जुन सहस्त्रबाहु चक्रवर्त्ती**—माहिष्मति शाखा, यादवों का दूसरा वंश, विदर्भ की दूसरी शाखा, हैहयवंश का उत्कर्ष, शर्याति का विलय, भार्गवों का हैहयों से सम्बन्ध, भार्गवों से विग्रह ।

१८ **मुनि वशिष्ठ**—वशिष्ठ का वंश, ऋगवेद ७वां मण्डल, वशिष्ठ और विश्वामित्र ।

१९ **कौशल राजवंश की शाखाएँ**—हरिश्चन्द्र शाखा, सगर वंश, दक्षिण कौशल का नया राजवंश ।

२० **तीन सूर्यवंशी समसामायिक चक्रवर्त्ती**—हरिश्चद्र सार्वभौम, महान् घटना, शुनः शेष का नरमेध, सगर चक्रवर्त्ती, दिग्विजय और राज्य विस्तार, गंगावतरण, दशरथ आजेय ।

२१ **शंबर वध**—अनार्यों के राज्य, शंबर रथीतर, दिवोदास पांचाल, शंबर संग्राम ।

२२ **सुदास का दाशराज संग्राम**—संग्राम की पृष्ठभूमि, वशिष्ट और विश्वामित्र के विग्रह ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

State Museum, LUCKNOW.

२३ **रावण-जगदीश्वर**—तत्कालीन भारत की वहिष्कार नीति, रावण का दुर्धर्ष कार्य, आर्यावर्त्त और देवभूमि, वेद का रावणकृत सम्पादन, कृष्ण यजुर्वेद ही रावण कृत सभाष्य वेद है, रावण का आर्य-अनार्यों का नया संगठन ।

२४ **राम-परमेश्वर**—जन्म और वंश, इस वंश के महान् पुरुष और राज्य स्थापक, दशरथ और राम, वाल्मीकि और उनकी रामायण, राम एक महान् सांस्कृतिक पुरुष, राम मूर्ति पूजन, होमर और वाल्मीकि, राम का काल, विजयादशमी, सीता का अग्नि प्रवेश और सीता परित्याग, विष्णुअवतार और राम ।

षष्ठम् अध्याय

साहित्य और सभ्यता २६७–२८८

१ **ऋक्**—ऋचा, ऋग्वेद का तत्कालीन रूप, वैदिक देवता, बैबिलोनियन संस्कृति का वेदों पर प्रभाव, बोगजकोई की संन्धि, वेद और अवेस्ता, मिस्त्री देव और ऋग्वेदिक देव, यहूदी देव और वैदिक देव, यूनानी देव और वैदिक देव, याजक-वैदिक ऋषि ।

२ **विशिष्ठ नामोल्लेख**—पंचजनाः, अप्सरा, अथर्वाङ्गिरस सुमेर सभ्यता का वैदिक साम्य, इस काल का वैदिक रूप ।

३ **त्रेता एक विश्लेषण दृष्टि**—काल निर्णय, सम सामयिक, सामाजिक स्वरूप ।

४ **अन्य बातें**—राज्यों की पांच श्रेणियाँ, चार प्रकार की रानियाँ, एन्द्राभिषेक, ऋषियों के युद्ध, सोलह श्रेष्ठ पुरुष ।

५ **समाज व्यवस्था**—खेती चराई और व्यापार, कृषि, भोजन, वस्त्र और व्यवसाय, युद्ध, राज्यारोहण, सामाजिक जीवन, जाति भेद, बहुविवाह, उत्तराधिकार, मृत्यु के बाद, तत्कालीन वैदिक धर्म ।

सप्तम् अध्याय

द्वापर, राम-युधिष्ठिर काल २८९–३१२

१ **द्वापर की कालगणना**—पार्जीटर का तर्क, डा० राय चौधरी का मंतव्य, श्री सीतानाथ प्रधान का मत, दूसरा तर्क, तीसरा तर्क, अन्य मत ।

२ **द्वापर के राजवंश**—राम और उनका वंश, कुरुवंश, द्वापर का चक्र ।

३ **राम वंश**—विवरण, कुश, लव, अन्य वंश ।

४ **कुरु से शन्तनु**—कुरु वंश, परीक्षित प्रथम, जन्मेजय द्वितीय, प्रतीप, प्रातिपीय वाह्लिक ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५ **शन्तनु महाभिष**—शन्तनु, गंगा से विवाह, देवव्रत की प्राप्ति, काली से शन्तनु का विवाह, भीष्म प्रतिज्ञा, चित्रवीर्य और विचित्र-वीर्य ।

६ **उग्रायुध और दुर्मुख**—द्विमींढ़ वंश, उग्रायुध, काली की माँग पर युद्ध, उग्रायुध की मृत्यु के बाद; दुर्मुख पाँचाल ।

७ **कौरव पाँडव संघर्ष**—चित्रवीर्य, विचित्रवीर्य, भीष्म का राज्यो-धिकार, पाण्डु का राज्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, युधिष्ठिर ।

अष्टम् अध्याय

महाभारत संग्राम और तत्कालीन भारत ३१३–३५३

१ **संग्राम और उसका परिणाम**—भारत संग्राम, कृष्ण का महत्व तथा कृष्ण के बाद, महा प्रस्थान ।

२ **सांस्कृतिक त्रिकूट**—त्रिकूट, गत १५ सौ वर्ष, याजक और राजा का वर्ग, याजकों की श्रेष्ठता, श्रेणी विभाजन; त्रेता के अन्त में, महा भारत संग्राम का मूलाधार जाति व्यवस्था, भारत संग्राम में कौन-कौन सम्मिलित हुआ, सूची का महत्त्व, युधिष्ठिर का राज्य, नई राज-मर्यादा ।

३ **धर्म क्रान्ति**—धर्म लक्षण, जैमीनिमत, कणाद का मत, व्यास की धर्म मीमाँसा ।

४ **वर्ण व्यवस्था**—व्यास की धर्म व्यवस्था का प्रभाव, वर्ण, संकरत्व, संकर विद्रोह, वर्णों का बन्धन, वर्ण संक्ररत्व की समाप्ति और वर्ण-संकर जातियों का उत्कर्ष तथा जाति उप-जातियों का प्रादुर्भाव, गोत्रोत्पत्ति, आश्रम व्यवस्था, जातियों के पेशे का बन्धन ।

५ **विवाह संस्था**—विवाह की नई मर्यादा, पति पत्नी सम्बन्ध, पतिव्रत धर्म, सती, पर्दा, अन्य विवाह बन्धन ।

६ **सामाजिक जीवन**—भोजन, मांस, मद्य, अन्न, वस्त्र, भूषण और शरीर-विन्यास, आसन, रीति-रस्म ।

७ **राजा और राज्य व्यवस्था**—छोटे राज्य और पराजितों पर नीति, साम्राज्य कल्पना, राजधर्म, राजदर्बार, राज्य व्यवस्था, पर राज्य सम्बन्ध ।

८ **सैन्य व्यवस्था**—आठ अंग, रथी, रथ, बाण, कूट युद्ध, अक्षौहिणी, व्यूह ।

९ **तत्कालीन भारत का भौगोलिक रूप**—पर्वत, जनदेश, महाभारत कालीन महा जनपद, उदीच्य महा जनपद, मध्य देश महा जनपद,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राच्य महाजनपद, विन्ध्य पृष्ठवर्ती जनपद, दक्षिण के जनपद, अपरान्त जनपद, नदी और तीर्थ।

१०—**भाषा और साहित्य**—जन भाषा, साहित्य, गौतम का न्याय, मानव धर्म शास्त्र, धर्म विश्वास, दान, अन्य मानताएँ।

११—**आर्य और आर्येतर जातियां**—आर्य और आर्येतर सम्बन्ध, अर्जुन की दिग्विजय।

नवम् अध्याय

वेद और उसका साहित्य ३५४–४१३

१ **वेद का निर्माण और रक्षण**—निर्माण काल, वेदों का सम्पादन, रावण का महत्कर्म, दैत्य-दानव, वैदिक धर्म, बोगजकोई का सन्धि पत्र, अपान्तरतमा, कृष्ण द्वैपायन व्यास, वेदों का महत्त्व, वेदों की रक्षा, पद पाठ, क्रम पाठ, जटार पाठ, घन पाठ, उदात्त-अनुदात्त स्वर, ऋषि और ब्राह्मण, वैदिक साहित्य, उपवेद, उपांग, अन्तिम परिगणन, ऐतिहासिक दृष्टिकोण।

२ **ऋग्वेद**—ऋग्वेद का गौरव, वैदिक ऋषि, वैदिक ऐतिहासिक घटनाएँ, सूर्य वंश और चंद्र वंश, भरतों और यदु-तुर्वशों का युद्ध, दाशराज्ञ संग्राम. पुरूरुवा की संतति, भारत, ग्रंथ विभाग, प्रथम मण्डल, वैदिक देवता।

३ **ऋग्वेद-अन्य मण्डल**—दूसरा मण्डल, तीसरा मण्डल, चतुर्थ मण्डल, पञ्चम मण्डल, छठा मण्डल, सातवाँ मण्डल, आठवाँ मण्डल, नवम्-मण्डल, दशम मण्डल, ऋग्वेद की ऐतिहासिक घटनाओं का पूर्वा पर सम्बन्ध।

४ **ऋग्वेद की विवाह परिपाटी**

५ **साम, यजु और अथर्व**—सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद।

६ **वेदों पर एक व्यापक दृष्टि**—डा० कीथ का कथन, मैकडानल्ड का मत, विवेचना, सबसे पहिला पद्य और गद्य, व्यावहारिक बातें, जन्दावस्ता और छन्दवेद।

७ **ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषद्**—ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, ब्राह्मणों में ऐतिहासिक संकेत, ब्राह्मणों का ऐतिहासिक मूल्य, आरण्यक और उपनिषद्, ऋषि तथा ऋषि कल्पों का अवैदिक साहित्य।

८ **वेदाङ्ग**—उपवेद, वेदाङ्ग, उपाङ्ग, वेदान्त।

९ **वैदिक संस्कृति और सभ्यता**—प्राक्वेदकालीन भारतीय संस्कृति, वैदिक संस्कृति पर बैबिलोनियन संस्कृति का प्रभाव, आर्यों की अग्नि-पूजा, वेदों के अग्निसूत्र और इन्द्र के स्थापित तथा परीक्षित और जममेजय के पशु यज्ञ, यज्ञों में पशु वध, बुद्ध की आवाज, वैदिक आर्यों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का श्रौत स्मार्त धर्म तथा वैदिक संस्कृति का व्यापक विस्तार, वर्ण-विभाजन और ब्राह्मण क्षत्रियों का गठबन्धन ।

दशम् अध्याय

महाभारत और उसके प्रमुख पुरुष ४१४–४६१

१ **महाभारत**—महाभारत महान् ग्रन्थ, महाभारत प्रवचन, भारतीय ज्ञान कोष, महाभारत के कर्त्ता, ग्रन्थ कर्त्ताओं का काल, सौति, भारत संग्राम के बाद १५०० वर्षों की संस्कृति का इतिहास, भाषा, सौति का महान् प्रयास, श्रद्धावाद और बुद्धिवाद, महाभारत का महत्त्व, धर्म काव्य महाभारत आर्यों का एकमात्र राष्ट्रीय ग्रन्थ, क्या महाभारत इतिहास है ।

२ **कृष्ण द्वैपायन व्यास**—वैदिक साक्ष्य, वंश वृक्ष, विवरण, व्यास नाम की उप्पत्ति ।

३ **कृष्ण**—कृष्णचरित, कृष्ण कौन हैं, पौराणिक राजवंश और कृष्ण, शूरसेन जनपद, विवरण, कृष्ण की खोज, पुराणों का साक्ष्य, कृष्ण का ईश्वरत्व, महाभारत का साक्ष्य, महाभारत में प्रक्षेप, श्लोक संख्या, अनुक्रमणिका, तीन तह, हरिवंश का साक्ष्य, वैदिक साक्ष्य, छान्दोग्य उपनिषद्, कौशीतकि ब्राह्मण, सामविधान, ब्राह्मण, पाणिनि, कृष्ण ऋषि हैं, इन्द्र और कृष्ण का विग्रह, भागवत का वर्णन साक्ष्य ।

४ **पाण्डव**—कथा, ऐतिहासिकता पर विचार, पाण्डव और कृष्ण ।

५ **श्रीमद्भगवद्गीता**—गीता का काल,तत्त्वज्ञान और व्यवहार, ब्रह्मसूत्र और गीता, गुप्त कालीन वातावरण, महत्वपूर्ण बात, बौद्ध जैन धर्म प्रसार ।

तृतीय खण्ड

प्रथम अध्याय

पुराण युग ४६३–४८४

१ **पचाङ्गी युग**—आर्षकाल, दार्शनिक काल, बुद्ध काल, बौद्ध काल, साहित्य काल ।

२ **भारत के संग्राम के बाद**—भारत संग्राम के बाद, १९६ वर्ष, जन्मेजय तृतीय और उसका नागसत्र, भार्गव शौनक का दीर्घ सत्र, परीक्षित द्वितीय, अधिसीम कृष्णकालीन दीर्घ सत्र और पुराण संकलन, अन्ध युग, मगध राज्य, कौशल राज्य ।

३ **भारत युद्ध कालीन साहित्य**—तीन अर्थशात्र, आयुर्वेद संहिता, पुराण संहिता, दार्शनिक सूत्रकार ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

४ **दो महान् व्यक्ति**—सम्राट जनमेजय, जनक और विदेह, ऋषि और ब्राह्मण, जनक के समकालींन ९ राज्य, याज्ञवल्क्य ।

५ **जनक और प्रवाहण का नया उपनिषद् धर्म**—उपनिषदों का धर्मपथ, जर्मन दार्शनिक शोपनहार ।

६ **आर्ष कालीन सभ्यता**—आर्ष कालीन सभ्यता, कुरु पांचालों की परिषदें, वानप्रस्थ, गृहस्थ धर्म, नागरिक, नगर, वर्ण व्यवस्था, इस काल का भारत, यज्ञोपवीत, गृहस्थ आदर्श, शासन व्यवस्था, नियम, कायदे, नगर व्यवस्था, कानून, ज्योतिष, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् का समाजवाद ।

द्वितीय अध्याय

दार्शनिक काल ४८४–५५३

१ **साहित्य की नवीन परिपाटी**—साहित्य का सांस्कृतिक परिवर्त्तन, सूत्र ग्रन्थ, यूनानियों का भारत प्रवेश, आर्यों का चौमुखा विस्तार, धर्म सूत्र, स्त्रियों का पराभव, जाति विभाजन और विवाह मर्यादा ।

२ **राजतन्त्र**—राज्य और उनका संचालन, राजा का निज परिच्छद । शासन, न्याय, सेना ।

३ **धर्माचार**—श्राद्ध, अन्य धर्म विश्वास ।

४ **जनपद**—सात प्रकार के जनपद, दो प्रकार, जन किसे कहते थे, शासन स्वातन्त्र्य, शिक्षा का नया विकास, कुलों का संगठन, एक राज जनपद, गणाधीन संघ, कौटिल्य का मत, पारमेष्ठय शासन, कुल संस्था और गोत्पत्ति, श्रेणी ।

५ **इस काल का साहित्य**—साहित्य के पाँच भाग, दृष्ट-प्रोक्त उपज्ञात, कृत, व्याख्यात, वैदिक साहित्य, ब्राह्मण साहित्य, उपनिषद्, सूत्रचरण, श्रौत-सूत्र, धर्मसूत्र, गृहसूत्र, कल्पसूत्र, सुल्वसूत्र, पारायण साहित्य, ज्योतिष, दार्शनिक, साहित्य, अन्य साहित्य-आख्यान काव्य, भाषा के तीन रूप, वृत्ति, व्याकरण ।

६ **शिक्षा-पद्धति**—शिक्षा पद्धति, ब्रह्मचारी चरण, दण्ड माणव, अन्तेवासी गुरु, दूषित छात्र, छात्रों के नाम, चरण, स्वतन्त्र छात्र, स्त्री शिक्षा, अध्याय, कक्षाएँ और पाठ्यक्रम, चरणों की व्यवस्था, परिषद्, चरणों का विस्तार, गोत्र और चरण ।

७ **पाणिनि और उसका भाषा संस्कार**—पाणिनि व्याकरण, यास्क और पाणिनि, अष्टाध्यायी, साहित्य विस्तार, पाणिनि से पूर्व के व्याकरण-चार्य, तत्कालीन पठन पाठन की परिपाटी, पाणिनि का जन्म स्थान, जीवन वृत्त, कात्यायन और उनकी वार्तिक, पतञ्जली और उनका महाभाष्य ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८ **यास्क का निरुक्त**—निरुक्त जिसके आधार पर वेदार्थ होता है, का आधार ब्राह्मण है।

९ **ज्ञान का नया आदर्श दर्शन**—ज्ञान मन्थन, दर्शन, मति, 'ज्ञ' लोकायत, षड्दर्शन, पूर्वमीमांसा और वेदान्त।

१० **सांख्य दर्शन**—सांख्यदर्शन, सांख्यशास्त्र का विषय, प्रकृति का लक्षण, क्या सांख्य दर्शन कपिल प्रणीत है ? असल सांख्य दर्शन, उपनिषदों में सांख्य तत्व, एक प्राचीन सांख्य सम्प्रदाय, ईश्वर कृष्ण और उनकी सांख्यकारिका, ईसा की प्रथम शताब्दी में सांख्यकारिका, सांख्य का उद्देश्य।

११ **योग**—योग का महत्व, परिचय, योग के विषय, समाधिपाद, विभूति-पाद, कैवल्यपाद।

१२ **न्याय**—तर्कशास्त्र, सोलह पदार्थ, आत्मा, पुनर्जन्म।

१३ **वैशेषिक**—परमाणुवाद, परमार्थों के सात वर्ग।

१४ **पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा अर्थात् वेदान्त**—धर्म विप्लव की साक्षी, विज्ञानवाद को नष्ट करने का प्रयत्न, पूर्व मीमाँसा, कुमारिल भट्ट, शंवर मुनि का भाष्य, वर्ष की वृत्ति, भट्ट मत, वेदान्त, वेदान्त का विषय।

१५ **दार्शनिक साहित्य**—सांख्यदर्शन, योगदर्शन, न्यायदर्शन, वैशेषिक दर्शन, मीमांसा, वेदान्त।

तृतीय अध्याय

५५४–५७५

बुद्धकाल

१ **आर्ष काल की समाप्ति से गौतम बुद्ध तक**—एक ऐतिहासिक घटना, अवन्ति राजवंश, वत्सराज उदयन-नाद समुद्र।

२ **बौद्ध धर्म का उदय**—नया दृष्टिकोण, क्रान्ति का आरम्भ, शाक्य वंश और गौतम का जन्म, उसकी धर्म भावना, सबसे पहला विश्व धर्म, जीवन, गौतम की मृत्यु के बाद।

३ **बौद्ध साहित्य**—लुप्त ग्रन्थों का उद्धार, बौद्ध साहित्य का महत्व, उत्तरी बौद्ध साहित्य और दक्षिणी बौद्ध साहित्य, बौद्धों की तीन सभाएँ, अशोक का धर्म ग्रन्थ और पिटक साहित्य।

४ **त्रिपिटक**—विनय पिटक, सुत्त पिटक, अभिधम्म पिटक, त्रिपिटक संगठन।

५ **बुद्ध की शिक्षाएँ**—बुद्ध के विचार, चार सत्य, आठ मार्ग, विचारधारा, बुद्ध की धार्मिक आज्ञाएँ।

६ **बुद्ध के मूल सिद्धान्त**—ईश्वर नहीं है, आत्मा नहीं है, कोई ग्रन्थ अपौरुषेय और स्वतः प्रमाण नहीं है, जीवन का शाश्वत प्रवाह निर्वाण।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

७ **बुद्ध के दार्शनिक विचार**—बुद्ध और आर्यों के दार्शनिक मूलाधार, आत्मा, उपनिषद् के आत्मा का विरोध, बुद्ध जड़वादी नहीं है, अनीश्वर-वाद, स्वतन्त्र विचार, बुद्ध के दर्शन का तत्कालीन समाज पर प्रभाव, बुद्ध का असमंजस।

८ **तीर्थंकर महावीर**—जैन धर्म के प्रतिष्ठाता, श्रमण संस्कृति, अवतार-वाद का विरोध, धर्म क्रांति, चरित्र, तपस्या, जैनागम, जैन संघ, कर्मवाद।

९ **जैन धर्म साहित्य और धर्म शिक्षा**—द्वादश अङ्ग, द्वादश उपाङ्ग, दस प्रकीर्ण, षट्छेद सूत्र, चारमूलसूत्र, विविध, जैनधर्म सिद्धान्त, पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, पाँच महाव्रत, दिगम्बर श्वेताम्बर।

१० **बौद्ध और जैन धर्म का साम्य-वैषम्य**—आर्यों का वैदिक धर्म, बुद्ध का मध्यम मार्ग, पार्श्वनाथ और बुद्ध के सिद्धान्त, सम्यक् दृष्टि में उन्होंने कहा।

चतुर्थ अध्याय

विदेशी सम्पर्क और उसका परिणाम ५७८–६०५

१ **बुद्ध के तत्काल बाद का भारत**—देश के तीन मुख्य भाग, सोलह राज्य महाषोड्स जनपद, गणराज्य, बिम्बसार, प्रमुख नगर, प्रामाणिक ग्रंथ, तत्कालीन समाज व्यवस्था, व्यापार, जाति मर्यादा, धर्म भावना।

२ **मगध साम्राज्य**—चार महाराज्य, मगध साम्राज्य, वैशाली संग्राम, नन्द वंश, पहिला विदेशी आक्रमण, हिन्दू नाम।

३ **सभ्य विश्व पर एक विहगम दृष्टि**—धर्म युग, पुरातन विश्व सभ्यताएँ, विश्व के प्राचीन नगर, यूनान के नगर राज्य, ईरान का साम्राज्य और भारत पर प्रथम विदेशी आक्रमण, ईरान और यूनान का संघर्ष, यूनान का उत्थान, अफलातून, अरस्तू, सिकन्दर की पूर्व भूमि।

४ **सिकन्दर का अभियान**–सिकन्दर, रकाब में पैर, थीब्स का विनाश, ईरान पर अभियान, भारत की ओर, पुरुवर्ष से युद्ध, वापसी, सिकन्दर के मनसूबे, सिकन्दर के बाद, भारत पर प्रभाव, मौर्यवंश की स्थापना।

५ **नये काल का उदय**—महान राजनैतिक घटना, दो महान गुरू, आर्य चाणक्य का महान व्यक्तित्व, चाणक्य का कौटिल्य, चन्द्रगुप्त का अभियान, विष्णुगुप्त चाणक्य।

६ **कौटिलीय अर्थशास्त्र**—कौटिलीय अर्थशास्त्र, ग्रन्थ का महत्त्व, विषय।

७ **मौर्यों की शासन व्यवस्था**—मौर्यों का शासन, सेना, सेना की व्यवस्था, नगर शासन, कर ग्रहण और शासन।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

८— **सामाजिक जीवन**—जाति और वर्ण, मेगस्थनीज का वर्णन, साम्पतिक अवस्था, नगर ।

पंचम् अध्याय

बौद्धकाल ६०६–६७३

१ **धर्मराज अशोक**—अशोक का परिवार, कलिंग विजय, अशोक का साम्राज्य, अशोक के समकालीन राजा, अशोक की शासन व्यवस्था, धर्म विजय, धर्म प्रचार, अशोककालीन भारत, कलाकौशल और वास्तु, अशोक की महत्ता ।

२ **बौद्ध सम्प्रदाय**—दो सम्प्रदाय शाखाएँ, अशोककाल के सम्प्रदाय, अठाहर निकाय, दार्शनिक सम्प्रदाय ।

३ **बौद्ध धर्म का प्रभाव और विस्तार**—बौद्ध धर्म के प्रसार का वातावरण, मगध की अनुकूलता, अशोक की धर्म विजय, उत्तरी बौद्ध धर्म, ईसा-मसीह और ईसाई धर्म पर बौद्ध प्रभाव ।

४ **महायान का उदय**—अशोक के बाद, कनिष्क का प्रभाव, वज्रयान और सिद्धों के सहजयान ।

५ **नागार्जुन प्रथम और उसका शून्यवाद**—जन्म और शिक्षा, दार्शनिक विचार, सुहृल्लेख ।

६ **अन्य बौद्ध दार्शनिक**—असंग, दार्शनिक विचार, वसुवन्धु, दिङ्नाथ, धर्मकीर्त्ति, नागसेन ।

७ **विस्तार और लोप**—भारतीय संस्कृति पर प्रभाव, व्याकरण, काव्य-साहित्य, कला, चौरासी सिद्ध, सहजयान ।

८ **श्रमण संस्कृति पर एक विहंगम दृष्टि**—श्रमण संस्कृति के गुण-दोष, आरामिक, याम भंग, राजाश्रय, प्राप्ति का प्रभाव, बौद्ध धर्म और श्रमण संस्कृति, शकों का देवता, गुप्तों का कुल देव, शकों के पतन के बाद, पतनोन्मुखी संस्कृति, हिन्दु धर्म की दशा, इस्लाम की तलवार, विदेशी आगन्तुकों का धर्म विलयन, सरहपा का सहजयान ।

९ **मौर्योत्तर हिन्दु जागरण पर एक विहंगम दृष्टि**—मगध महाराज्य के भंग होने पर, धर्मजय, कनिष्क का साँस्कृतिक प्रभाव, आन्ध्रों का उदयास्त, राजनैतिक अन्धकार, कनिष्क, नहपान का अभियान, क्षत्रण्वदेव पुत्र, शुङ्ग काण्प अवसान, बाहरी आक्रमण और कुषाण शक, शुङ्ग सातवाहन, वैदिक धर्म का पुनरोत्थान, महायान की स्थापना, विदेशियों का भारतीयकरण, राजतरंगिणी और कनिष्क वंश, गुजरात के शाह राजा, वैदिक धर्म का हिन्दु स्वरूप, त्रिदेव, मूर्त्ति पूजन, विष्णु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और लक्ष्मी, देवताओं की संख्या, पुनर्जन्म और मुक्ति, धर्मशास्त्र और स्मृतियाँ, पौराणिक हिन्दुधर्म के प्रतिष्ठाता. त्रिमूर्ति, शुङ्ग-सातवाहन, शकों का सांस्कृतिक प्रभाव, मानव सम्प्रदाय और मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, अन्य साहित्य, बौद्ध और जैन साहित्य, षड्दर्शन, ज्योतिष और आयुर्वेद।

१० **बौद्धों की स्थापत्य कला**—यूनानी पद्धति, भारतीय पद्धति, बौद्ध कालीन इमारतें, स्तम्भ, दिल्ली का लौह स्तम्भ, भेलसा का स्तूप, काशी सारनाथ, बंगाल का स्तूप, अमरावती का स्तूप, भरहत के स्तूप, चैत्य, गुफाएं, अजन्ता, एलोरा, कन्हेरी, विहार, कटक और भुवनेश्वर, अजन्ता के बिहार, मण्डु गुफाएं, एलौरा चैत्य, कन्दहार के विहार।

११ **स्वर्ण युग**—गुप्त वंश के उद्दयिक पुरुष महाराजा चन्द्रगुप्त प्रथम, सम्राट चन्द्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य, श्वेतहूण, हूण और गुप्त सम्राट. हूण संग्राम, हूण सरदार खिंगल, स्कन्द गुप्त का खड्ग, गुप्त साम्राज्य का अवसाद, यशोधर्मन और कोलूर संग्राम, हूणों का पराभव, मिहिरकुल का अग्नि प्रवेश, यशोधर्मन विष्णुवर्धन, स्कन्द गुप्त के बाद, कृष्ण गुप्त का वंश, गुप्त वंश का पराभव।

१२—**विक्रम और उसका सम्वत्**—यशोधर्मन विक्रमादित्य, कोलूर युद्ध का परिणाम, साहित्य का विकास, गुप्त काल पर एक दृष्टि, हिन्दु धर्म का पुनर्जीवन, पौराणिक धर्म, कला, साहित्य का निर्माण, हूणों का पराभव और हिन्दुओं पर इसकी प्रतिक्रिया, राजपूतों की उत्पत्ति।

षष्ठम अध्याय

धर्म साहित्य ६७४–७००

१ **स्मृतियाँ**—मनुस्मृति, सृष्टि उत्पत्ति, आचार, मांसाहार, विवाह, स्त्रियों से व्यवहार, वर्णसंकर, नियोग, मनु के वर्णित बारह पुत्र, चाण्डाल और स्वपच, अन्य स्मृतियाँ, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उष्णासः, अंगिरसः, यम, संवर्त्तः, कात्यायन, वृहस्पति, पराशरः, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, सातातप, विष्णु स्मृति, बृहस्पति स्मृति, यम स्मृति, प्रजापति स्मृति, नारदीय धर्मशास्त्र।

२ **याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र।**

३ **पाराशर स्मृति।**

४ **स्मृति चन्द्रिका**—बौधायन धर्म सूत्र, वशिष्ठ धर्मशास्त्र।

सप्तम अध्याय

पुराण ७०१–७७१

१ **प्राचीन रूप**—प्राचीन रूप, संस्कृत साहित्य का नवीन संस्करण।

२ **पुराणों का मध्यकाल**—प्राचीन पुराणों का विषय, इतिहास, कल्प,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गाथा, नाराशंसी, आदि पुराण ग्रन्थ, पुराणों का विषय, आदिम पाँच संहिताएं और ब्राह्म या ब्रह्माण्ड पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, मत्स्य पुराण, संक्षिप्त विवरण, पौराणिक भूगोल, भूगोल का संक्षिप्त विवरण, भारत खण्ड का विवरण, पौराणिक खगोल, मत्स्य पुराण का शेष भाग, क्रिया योग और रचना काल, शुद्धि, वंश वर्णन ।

३ **वर्तमान पुराण ग्रन्थ**—पुराणों का लक्षण, पुराणों की संख्या, शेष उपपुराण, मार्कण्डेय पुराण, विष्णु पुराण, अग्नि पुराण, श्री मद्भागवत, श्री शुकदेव तथा परीक्षित की समकालीनता, भविष्यत् पुराण, पार्जिटर का मत, साम्प्रदायिकता, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, वशिष्ठ विश्वामित्र का युद्ध, वृहस्पति, शुक्र, कश्यपादि ऋषि, विष्णु, शिव, शूद्र और स्त्री, नारद पुराण, सूत शौनक संवाद, प्रथम पाद सृष्टि का संक्षेप वर्णन, नानाधर्म कथा दूसरा पाद, तीसरा पाद, चौथा पाद, पुराण का रचना काल ।

अष्टम् अध्याय

बृहत्तर भारत ७७२–७९१

१ **वैदिक विकास का गतिरोध**—प्राचीन आर्य, भारतीय विचारधारा का प्राचीन सभ्य संसार पर प्रभाव, अरब और भारत, भारतीय कथा साहित्य का प्रसार, पूर्वी द्वीप समूह, बृहत्तर भारत का महत्व, हिन्द चीन, फूनान, अङ्गकोर, चम्पा, कम्बुज राज्य, ब्रह्म देश, बाली, यव द्वीप, सुमात्रा, शैलेन्द्र वंश, श्री विजय, मज्जापहित साम्राज्य बोर्नियो, दक्षिणी पूर्वी एशिया में उपनिवेश स्थापना ।

२ **उत्तर पश्चिम के उपनिवेश**— गान्धार, काम्बोज और वाल्हीक, अन्य उपनिवेश, खोतन, कूची, कुमारजीव, तुर्फान काशगर, सहस्त्र बुद्ध विहार गुहा, सीरिया और मेसापोटामिया ।

नवम् अध्याय

हर्ष-महानृप ७९२–८२१

१ **वंश और व्यक्तित्व**—अजेय पुलकेशी द्वितीय, प्रभाकर वर्द्धन का राज्य विजय, कपिश राज्य, काश्मीर राज्य, अन्य राज्य, शशांक और भास्कर वर्मा, हर्ष की सभाएँ, युवान चाँग, कन्नौज की धर्म सभा, मोक्ष परिषद्, चीनी यात्री की बिदा, हर्ष का शासन, धर्म और विद्या ।

२ **विश्व विद्यालय**—नालन्द, प्रवेशिका और शिक्षा पद्धति, नियमानुशासन, विद्यालय के आय-व्यय आदि का प्रबन्ध, पुस्तकालय, महाविद्यालय, के कुछ प्रसिद्ध विद्वान, वस्तु तथा मूर्ति कला, कूप और जलाशय,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रहार और संहार, विक्रमशिला, उदयन्तपुर, दिवाकर मुनि का आश्रम, मदुरा का संगम, अन्य विद्या केन्द्र ।

३ **तात्कालिक संस्कृतिक जीवन**—पाठ्यक्रम, हर्ष का धर्मभाव और पाण्डित्य, आर्थिक स्थिति, सामाजिक जीवन, हर्ष के तीन रूपक, हर्ष चरित, अन्तःपुर के वर्णन ।

चतुर्थ खण्ड

प्रथम अध्याय

मध्य-युग ८२२–८७३

१ **मध्य युग**—भारतीय मध्ययुग, कन्नौज काल, राजपूत काल ।

२ **कन्नौज काल**—हर्ष की मत्यु के बाद, तिब्बत पर अधिकार, यशोवर्मन, यशोवर्मन के बाद ।

३ **राजपूत काल**—बल्लभी वंश, बङ्गाल और उड़ीसा के राज्य, मगध और बङ्गाल का पाल वंश, उड़ीसा, काश्मीर ।

४ **पंजाब और सिन्ध**—पंजाब, सिन्ध ।

५ **अन्य राजपूत वंश**—चौहान, चन्देल, ग्वालियर, बघेलखण्ड के कलचुरी, मालवा के परमार, गुजरात के सोलंकी ।

६ **दक्षिण के राज वंश**—आन्ध्र, चालुक्य वंश, द्वितीय चालुक्य वंश, पल्लव वंश, पाण्ड्य, चेर और चोल वंश, पाण्डय, राष्ट्रकूट ।

७ **दक्षिण संस्कृति**—

८ **छः शताब्दियों का सिंहावलोकन**–नीति का ह्रास, धर्म और मन, सामन्त पद्धति, साहित्य का शृंगार, सामन्त पद्धति, ग्राम संस्थाएं ।

९ **समाज**—वर्ण और जाति, ब्राह्मण, उपजातियाँ, जाति भेद, क्षत्रिय और राजपूत, वैश्य, शूद्र, कायस्थ, अन्त्यज व चाण्डाल, वर्णों के पारस्परिक सम्बन्ध ।

१० **दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी**—अलबरूनी का साक्ष्य, रहन-सहन, दण्ड, भूमि अधिकार और राज्य की आय, जातियाँ और पहनावा, सूर्य की पूजा, अष्ट देवताओं की मूर्ति, हिन्दू धर्म पर सामान्य दृष्टि, प्रायश्चित, धार्मिक सहिष्णुता तथा उसका प्रभाव, बौद्ध धर्म का पतन, हिन्दु दर्शनों का प्रभाव, अहिंसावाद की प्रतिक्रिया, युवानचांग का कथन, हर्ष वर्धन पर दोष, बौद्धों का अवसाद, बौद्ध साहित्य रचना, बौद्ध पतन, ब्राह्मणों और पाशुपतों की विरोध शक्ति ।

११ **जैन धर्म**—जैन मतान्तर, दक्षिण में प्रचार, शैवों से संघर्ष, दक्षिण और पच्छिम, शैवों के अत्याचार, ब्राह्मण धर्म ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१२ **वैष्णव सम्प्रदाय**—भागवत धर्म और उसका उत्तर कालीन रूप, पौराणिक अवतारवाद, पौराणिक तथ्य और इतिहास, वैष्णव धर्म पर एक दृष्टि, गुप्त राज्य, मध्यभारत, श्रीमद्भागवत और सूरसागर, शंकर का दुस्साहस, सम्प्रदाय और वामाचार, वल्लभाचार्य की परम्परा शंकराचार्य का उत्तर भारत में प्रवेश, पौराणिक आक्रमण ।

१३ **तन्त्र ग्रन्थ**—

द्वितीय अध्याय

हिन्दुओं और जैनों की स्थापत्य कला ८७४–८८१

उड़ीसा, भुवनेश्वर, करनार के भवन, पुरी, बुन्देलखण्ड, भूपाल, चित्तोड़ महाराष्ट्र, गिरनार, सोमनाथ, आबू के जैन मन्दिर, महाराष्ट्र और द्रविड़ कला, एलोरा का कैलाश मन्दिर, दक्षिण के मन्दिर, तन्जौर के मन्दिर, चिलम्बरम् का मन्दिर, मदुरा, रामेश्वरम्, काँचीवरम्, विटोपा के मन्दिर, दक्षिण की जैन इमारतें, मैसूर और कर्नाटक की कला, ह्यूलेविड़ और पार्थियन का कला साम्य ।

तृतीय अध्याय

साहित्य-कला ८८२–९९०

१ **नाटक और काव्य**—साहित्य सृजन का आरम्भ, महान् आश्चर्य, भास और उसकी साहित्य निधि, रूपकों की आकृति, रूपकों की रचना, अन्य पाण्डुलिपियाँ, भास का काल, वामन, विष्णुगुप्त चाणक्य, रचनाओं का मूल्यांकन, भास के उत्तरकालीन कवि, महत्त्वपूर्ण संकेत, कालिदास, कालिदास के ग्रन्थ—रघुवंश, कालिदास का भारत, अश्वघोष, हर्ष के तीन नाटक, भवभूति के तीन नाटक, मुद्रा राक्षस, वेणी संहार, भारती, भर्तृहरि, भट्टी काव्य, नैषध और माघ ।

२ **कथा साहित्य**—गोविन्द, जातक कथा, पंच तन्त्र और अनुवाद, वासवदत्ता, बृहत्कथा, हितोपदेश, कुमारदास, इतिहास, वृत्त प्रशस्ति काव्य, साहित्य-व्याकरण, कोष और दर्शन ग्रन्थ, बौद्ध दर्शन, हिन्दु दर्शन, जैन दर्शन ।

३ **ज्योतिष**—वेदाङ्ग ज्योतिष, राशि चक्र, चीन की सिउ प्रणाली, नक्षत्र, अठारह ग्रन्थों की सूची, पराशर और गर्ग, पैतामह सिद्धाँत, सूर्य सिद्धान्त, वाशिष्ठ सिद्धान्त, रोमक सिद्धान्त, पुलिश सिद्धान्त, आर्य भट्ट,वराहमिहिर, वराहमिहिर की बृहत्संहिता, ब्रह्म गुप्त, भास्कराचार्य, रेखा गणित ।

४ **गणित**—गणित का आरम्भ, विकास का क्रम, शून्य, अङ्क, और संख्या, गणना का आरम्भ, गणित का वैज्ञानिक विवेचन, दशांश पद्धति, वेदाङ्ग, दशमलव प्रणाली, अङ्का नाम वामतो गति, अङ्कों का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विकास, वैदिक पंचाङ्ग, परिक्रमष्टक, शून्य, किन्तु, क्षेत्रमिति, बीज-गणित, योरोप से तुलना, ज्योतिः शास्त्र में बीजगणित का व्यवहार, चलन कलन, खगोल विद्या, वैदिक सिद्धांत ग्रंथ, अमिऋषि, प्राचीन सूर्य सिद्धांत, अन्य सिद्धांत, ग्रंथ, युग पद्धति और ग्रहों के मगण, दिन, राशि चक्र भूकेन्द्रक और सूर्य केन्द्रक सिद्धांत, यात्रों का वर्णन, तुर्य यन्त्र, घटी यन्त्र, प्रस्थ का मान, पल, शंकु यन्त्र, जयपुर का शंकु यन्त्र ।

५ **भूगोल**— भू परिभाषा, प्राचीन सिद्धान्त, पृथ्वी का आकार, पृथ्वी का परिमाण, सूर्य की दूरी जानने की रीति, प्रकाश द्वारा ग्रहों की दूरी जानना, सूर्य और पृथ्वी का सम्बन्ध, ज्वार भाटा, देवों का एक दिन, सौर मण्डल, बुध, शुक्र या वेन, मंगल, वृहस्पति, शनैश्चर, अन्य ग्रह, राहु और केतु, अन्य खेचर, परिशिष्ट—१ ।

६ **गणित सम्बन्धी भूगोल**—परिभाषा, सौराण्ड, ग्रह, नक्षत्र, उपग्रह, अक्ष, विषुवत् वृत्त, ध्रुव, सप्तलोक या हफ्त अकलीम, दिशा, दिशाबोध, ध्रुवयन्त्र, भूमध्य रेखा, उन्नत बिन्दु, उच्च या उन्नति, अक्षांश, रेखांश ।

७ **आयुर्वेद**—चरक, सुश्रुत, अन्य ग्रन्थ, रसायन ग्रंथ, पशु चिकित्सा ।

८ **औषध विज्ञान**—द्रव्यम्, पदार्थ विवेचन, रस, पाश्चात्य वैद्यक में विवेचन, रस-अनुरस, रस तत्व, रस वर्ग, गुण, वीर्य, विपाक, औषधियों के रस वीर्य और विपाक की उपलब्धि, द्रव्य व्याख्या, प्रभाव, अधिकृत गुण, द्रव्य भेद, हिताहित, संयोग विरुद्ध, मान विरुद्ध, संस्कार विरुद्ध, रस द्वन्द्व, वैरोधिका निमित्त व्याधि चिकित्सा ।

९ **रस शास्त्र**—रसायन का आरम्भ, रस-सिद्धि-कीमिया, मूल कल्पना, मध्यस्थ, बीज कल्पना, विड, हेमकर्म, ग्रह प्रभाव, अरब और योरोप, देह सिद्धि, पारा, महारस, उपरस, रत्नोपरत्न, पारस-मणि, धातु, धातु भस्म, निरुत्थ भस्म, धातु में लय, दिव्यौषधि, रसायन, कल्प, बाजीकरण, बाजीकरण द्रव्य ।

चतुर्थ अध्याय

संस्कृत साहित्य-सम्पदा ९९१–९९८

१ **संस्कृत साहित्य-सम्पदा**—प्राच्यधर्म ग्रन्थावली, पुराण ग्रन्थावली, संस्कृत साहित्य ग्रन्थावली, बौद्ध दर्शन, हिन्दू दर्शन, जैन दर्शन, विज्ञान साहित्य ग्रन्थावली ।

२ **अपभ्रंश और प्राकृत साहित्य**—भाषा का प्रश्न, अपभ्रंश साहित्य, दो कालिकाल सर्वज्ञः अब्दुररहमान, मेरुतुङ्ग, नरपति नाल्ह, जगनिक, चन्दबरदाई ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय संस्कृति का इतिहास

अध्याय १

भारत की प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृति की क्रान्ति पर एक विहंगम दृष्टि

१—संस्कृति

आध्यात्मिक और आधिभौतिक शक्तियों को सामाजिक जीवन के लिये उपयोगी तथा अनुकूल बनाने की कला को संस्कृति कहते हैं।

आध्यात्मिक संस्कृति—मनुष्य अपने व्यक्ति में आध्यात्मिक शक्ति है और उसका संबन्ध चारों ओर जिस विश्व से है, वह आदि भौतिक शक्ति है। जब मनुष्य अपने ज्ञान और विवेक की सत्ता से अपनी इन्द्रियों को कार्यक्षम बनाता है, विकारों पर अधिकार पाता, तथा बुद्धि, भावना और आकांक्षाओं की प्रगल्भता का उदय करता है, तब वह आध्यात्मिक संस्कृति का निर्माण करता है। इस संस्कृति के निर्माण से नीति, सौंदर्य, सत्य, न्याय, श्रेयस और मीमाँसा का जीवन से सम्पर्क स्थापित होता है। जिसके फलस्वरूप कानून, कायदा, धर्म, साहित्य, विज्ञान, तर्क तथा समाज और राज्य व्यवस्था का आविर्भाव होता है।

भौतिक संस्कृति—अपने चारों ओर फैले हुये विश्व का जब वह अपने सामाजिक जीवन के अनुकूल रूपान्तर कर पाता है तो भौतिक संस्कृति का जन्म होता है। इससे मनुष्य अपने चारों ओर फैली हुई सृष्टि में से जल, भूमि, अग्नि, वायु, आकाश, वृक्ष, वनस्पति, खनिज, पशु को अपने अनुकूल और उपयोगी बनाता है और तब कृषि, शिल्प, वाणिज्य, विज्ञान, पशु पालन, युद्ध, विजय, शस्त्रों तथा विविध यन्त्र यानी अभियानों की स्थापना करता है।

भौतिक और आध्यात्मिक संस्कृतियां परस्पर एक दूसरे पर आधारित हैं, क्योंकि आसपास के जगत का उपयोग करते ही मनुष्य की आन्तरिक शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं। इसके सिवा मनुष्य के गहनतम नैतिक सम्बन्धों का आधार ही भौतिक होता है। इसलिये यह अनिवार्य है कि जिस मानव समाज की भौतिक संस्कृति उन्नत होगी उसकी आध्यात्मिक संस्कृति भी उतनी ही उच्च होगी।

धर्ममूल—संस्कृति का विकास धर्ममूल पर आधारित है। प्राथमिक परिस्थितियों के प्रत्येक मानव समूह में जीवन के धार्मिक और व्यवहारिक दो रूप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दीख पड़ते हैं। कोई भी समाज, वह चाहे प्रगतिशील हो या पिछड़ा हुआ, विश्व में ऐसा नहीं हैं जिसमें धर्ममूल नहीं। जीवन के धार्मिक रूप अलौकिक तथा श्रद्धा पर आधारित होते हैं। ऐसी श्रद्धा से जो आचरण किये जाते हैं, उनमें रहस्यमय अलौकिक शक्ति, जादू की सामर्थ्य, पाप--पुण्य, भूत, प्रेत, राक्षस, पितर, गन्धर्व यक्ष देवता आदि की कल्पना रहती है और उसका सम्बन्ध स्वर्ग, मोक्ष, परमार्थ और अध्यात्म मार्ग से होता है। धार्मिक जीवन व्यावहारिक जीवन में मिलाजुला होता है। खेत जोतना, समय पर बीज डालना, जहाज चलाना, गर्भाधान, पशु और शिशु पालन आदि बिल्कुल साँसारिक कार्य हैं, परन्तु जल बरसाने के लिये, फसल ठीक ठीक उगाने के लिये, अति वृष्टि और अनावृष्टि टालने के लिये, यात्रा निर्विघ्न पूरी होने के लिये, प्रसव ठीक ठीक होने के लिये तथा विविध संकट टालने के लिये जो चमत्कारी धर्म विधियां की जाती हैं वे सभी समाजों में श्रद्धा और अन्धविश्वास पर आधारित हैं। परन्तु इसका कारण स्पष्ट है कि मनुष्य अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिये जितना सोच सकता है करता है, पर जब अन्न रक्षा, रोग निवारण, संकटनाश, संतान उत्पादन में उसकी शक्ति काम नहीं देती तब वह देवताओं, भूत प्रेतों अथवा अलौकिक शक्तियों की शरण लेता है, यही धर्ममूल है।

यह अलौकिक शक्ति और व्यक्तियों की कल्पना वास्तविक अनुभव से बनी हुई कल्पनाओं की विपर्यस्त रचना से मन निर्माण करता है और उनके प्रति आदर-भीति, प्रीति तथा शरणागति के भाव आरोपित करता है। वह दो प्रयत्न करता है, एक उन्हें मना लेने का, दूसरा उन्हें अपने आधीन करने का। मनाने की क्रिया आराधना और वश में करने की क्रिया साधना कहलाती है। मन्त्र तन्त्र, यन्त्र अभिचार, कृत्या, जारण, मारण, उच्चाटन आदि तान्त्रिक और आथर्वण क्रियायें इसी के अन्तर्गत हैं। सम्पूर्ण कर्मकाण्ड और तन्त्र शास्त्र इसी आराधना और साधना के लिये रचा गया है।

जादू, धर्म और विज्ञान—जादू, धर्म और विज्ञान में पौर्वापर्य सम्बन्ध है। इनके बीज एकत्र मिलते हैं। बैबिलोनिया और भारत में चिकित्सा, कानून, जादू और धर्म एक ही मूल से निकले हैं। अथर्ववेद में वर्णित 'अथर्व,' चिकित्सा, जादू और पुरोहिताई एक साथ ही करते थे। कौशिक गृह सूत्रों में तथा अथर्ववेद में भी आप यातु (जादू) चिकित्सक और धर्म संस्कारों को तथा यज्ञयागों की क्रियाओं को परस्पर मिली हुई देख सकते हैं। भारत में हजारों वर्ष तक कानून भी धर्म का ही भाग रहा। न्याय निर्णय का 'दिव्य' एक प्रमाण माना जाता था, जैसे सीता ने अग्नि प्रवेश कर अपना सतीत्व प्रमाणित किया था।

संस्कृति और जातियां—किसी जाति या धर्म के साथ संस्कृति का नाता जोड़ना संस्कार तक ही सीमित है। एक पीढ़ी आती है, वह अपने आचार विचार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कला, साहित्य, लोक व्यवहार और आध्यात्मिक प्रभाव आगे आने वाली पीढ़ी पर छोड़ जाती हैं। इसी प्रकार पीढ़ी पर पीढ़ियां आती जाती हैं और अपने अपने संस्कार छोड़ती जाती हैं। ये संस्कार जब प्रौढ़ हो जाते हैं और जातियों के जीवन को प्रभावित कर लेते हैं, तब हम उन्हें संस्कृति के नाम से पुकारते हैं। परन्तु यह संस्कृति या संस्कार अचल नहीं हैं। जन जीवन के मानस पटल पर पुराने अनुभव स्मृति के रूप में बच रहते हैं फिर कालान्तर में वे धूमिल हो जाते हैं। यही कारण है कि प्राचीन काल से पूर्वजों के संस्कार रूपान्तरित होकर आगे आने वाली पीढ़ी के नये संस्कारों पर थोड़ी बहुत अपनी छाप छोड़ जाते हैं। संस्कारों का यह आदान प्रदान प्रभाव देश काल के अनुसार होता है।

संस्कृति का विकास—जब मनुष्य का शैशव काल था, तब वह पुराने और नये पाषाण के औजारों और अस्त्रों से अपना जीवन निर्वाह करता था। उसी से आत्म रक्षा भी करता था। फिर जब नई जाति के लोग इस देश में आये तो उनके साथ एक ऐसी नई संस्कृति थी जो सिन्ध से मेसोपोटामिया और मध्य एशिया तक फैली हुई थी। उन्होंने जिस प्रगतिशील संस्कृति का व्यापक विस्तार किया उसके अवशेष हम सिन्धु घाटी की सभ्यता में पाते हैं। मोहनजोदड़ो और हरप्पा के अवशेष पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि अब से पाँच छः हजार वर्ष पूर्व के ये सभ्य जन पक्की ईंटों के मकानों में रहते थे, व्यवस्थित नगरों का निर्माण कर सकते थे, जिनमें बाजार होते थे, हवेलियाँ और महल, हम्माम और क्रीड़ा-भवन एवं राज-दरबार होते थे। उन्होंने अपने युग में अनेक सुख साधन जमा कर लिये थे। उनकी नृत्य कला व मूर्ति कला भी उनकी वास्तु कला और नगर निर्माण कला जैसी ही थी। उन्होंने अपनी चित्रलिपि में हमारे लिये कुछ संदेश छोड़े हैं जो अभी तक हम पढ़ नहीं पाये हैं। परन्तु हम यह स्वीकार करते है कि भारतीय संस्कृति का मूलाधार तो यही सिन्धु घाटी की सभ्यता थी जो नये नये संस्कार और प्रभावों से सहस्त्रों वर्षों से विकसित होकर आज भी हमारी सभ्यता का रूप धारण कर चुकी है।

२—आर्य संस्कृति

आर्य संस्कृति का जीवन दीर्घकाल व्यापी है। भारत में इस सभ्यता के विकास से पूर्व मध्य एशिया में वक्षु नदी की उपत्यकाओं में इस सभ्यता की नींव पड़ी। आर्यों की उसी प्राचीन सभ्यता से प्रभावित उत्तर की जातियां सोवियत के कोमी, एस्तोनी, कटेलीय और फिन आदि हैं।। स्वात्त और सिन्ध उपत्यकाओं में आर्यों और द्रविणों की सभ्यता में प्रथम संघर्ष हुये, पीछे आदान प्रदान। दोनों ही जातियां एक दूसरे से प्रभावित हुईं।

सिन्धु तट से आर्यों को आगे गंगा यमुना की घाटी तक बढ़ते बढ़ते पांच सौ वर्षों का समय लगा। यहां उन्होंने बड़े २ साम्राज्यों व चक्रवर्ती राज्यों ही की स्थापना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं की, वैदिक सभ्यता का भी विस्तार किया, जिसने आर्य जाति की संस्कृति का नेतृत्व किया। यहाँ आर्यों ने वैदिक धर्म, वर्णाश्रम अवस्था, पितृमूलक कुटुम्ब प्रथा और साम्राज्य परिपाटी का प्रचलन किया। उनमें मनु, पुरु, अबस, नहुष, मानधाता, ययाति, इक्ष्वाकु, राम. युधिष्ठिर जैसे महा नरपति हुये जो असमुद्र, क्षितीश कहलाये। वशिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, भारद्वाज आदि ऋषि हुये जिन्होंने अपने पौरोहित्य तथा धर्म व्यवस्था ही से नहीं. राज्य व्यवस्था और कानून का भी प्रौढ़ रूप प्रकट किया। और जिनके धार्मिक और राजनीतिक स्पर्द्धा की केन्द्रस्थली, राजसूय और अश्वमेध जैसे महान यज्ञ अनुष्ठान बने।

यज्ञ संस्था का चरम उत्कर्ष—गंगा की उपत्यकाओं में आर्य राजाओं और ब्राह्मणों का स्थापित वैदिक कर्म काण्ड जो आर्यों के पुराने देवताओं और प्रथाओं पर आधारित था अपने चरम उत्कर्ष को पहुँच गया। अब इस जाति में बौद्धिक विकास हुआ।

ब्रह्म आत्मा और पुनर्जन्म के उपनिषद तत्व—तर्क और सन्देह ने उस पर प्रहार करने आरम्भ किये। तब पांचाल राज प्रवाहण और उसके शिष्य उद्यालक ने ब्रह्मज्ञान पुनर्जन्म और आत्मा की अविनश्वरता की स्थापना की। ब्रह्मज्ञानियों की बड़ी बड़ी सभायें होने लगीं। उनमें बड़े बड़े तर्क होने लगे। ब्रह्मज्ञानी गार्गी ने एक बार कर्म काण्ड और वैदिक अनुष्ठानों के महान ज्ञाता याज्ञवल्क्य को भी निरुत्तर कर दिया। ये ही तत्व उपनिषदों में वर्णित हुये। परन्तु विचारधारा यहीं नहीं रुकी वह आगे बढ़ी और दर्शनों के रूप में. धर्म समाज और साहित्य में एक क्रान्ति लाई। लोगों के सोचने विचारने लिखने पढ़ने के ढङ्ग बदल गये। भाषा बदल गई, रहन सहन बदल गये। बड़े बड़े विस्तार के ब्राह्मण ग्रन्थों और गूढ़ भाषा के वेद मन्त्रों के स्थान पर परिष्कृत भाषा में सूत्र और कार्तिक रचे गये। प्राणिति प्रमुख व्याकरणों ने भाषा का संस्कार किया और संस्कृत का आधुनिक परिष्कृत रूप स्थिर हुआ।

३—बौद्ध और जैन संस्कृति

बौद्ध संस्कृति का उदय—अब आर्यों को अपने विकसित जीवन में ढाई हजार वर्ष बीत चुके थे। वे महाभारत के निर्णायक युद्ध में जाति और अधिकारों की अपनी भारी समस्या को सुलझाने की चेष्टा कर चुके थे। उनकी शक्तियां बिखरने लगी थीं। उनके विचार प्रवाह पुराने और घिसे पिटे हो चुके थे और निरन्तर विचारों और संस्कारों के आदान प्रदान से नई नई संस्कृतियां आगे आती जाती थीं। ऐसी ही एक नई संस्कृति बौद्ध संस्कृति थी जो मसीह से छः सौ वर्ष पूर्व आगे आई और विश्व पर छा गई। बुद्ध ने 'बहुजन हिताय' 'बहुजन सुखाय' की भावना से अपने शिष्यों को देश देशान्तरों में भ्रमण करने के लिये उपदेश दिया। बुद्ध ने जिस नई संस्कृति को जन्म दिया वह वर्धमान संस्कृति थी। उसमें यह चमत्कार था कि भारत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में भी और भारत से बाहर भी वह गतिमान रही। उसने मनुष्यों को मनुष्यों की ही दासता से मुक्त नहीं किया उन्हें दिमागी गुलामी से भी मुक्त किया। बौद्ध संस्कृति का एक चमत्कार यह था कि वह तत्कालीन देश धर्म से प्रभावित होती और अपना रूप बदलती गई। इस प्रकार निरन्तर नए जीवन को वह आत्म सात करती चली गई। बिना रक्तपात और बल प्रयोग के उसने सभ्य जातियों में आदर पाया। परन्तु अन्त में उसमें मिथ्या विश्वास और दूषित वृत्तियों का प्रवेश हुआ और वह अनेक रूपों में विभाजित होकर भारत में समाप्त हो गई।

जैन धर्म – बुद्ध ही के जीवन काल में महावीर जिन ने जैन धर्म की प्रतिष्ठा की। संयम और ब्रह्मचर्य में वह बुद्ध ही के समान उपदेश देता था। उसने प्राचीन परम्परा से चले आते एक आजीविक धर्म को ही परिष्कृत किया। जीव-मुक्ति ही जैन का चरम ध्येय रहा। कायक्लेश को उसने महत्व दिया। परन्तु उसका प्रचार भारत से बाहर नहीं हुआ। उसका कारण उसकी अपरिवर्तन शीलता थी। जैन धर्म अपने को अपने में परिपूर्ण समझता था और उसने स्थिरता ग्रहण करली थी। वह दूसरों से कुछ भी न चाह रहा था। इसी से उसका विकास रुक गया आगे चल कर इसके भी अनेक रूप बने।

जैन धर्म और बौद्ध धर्म दोनों ने अनेक रूढ़ियों के बंधन तोड़े, लोगों में स्वतंत्र विचार और पवित्र जीवन के प्रवाह को कायम किया। आरम्भ में मगध ही इन धर्मों का केन्द्र बना रहा। पीछे मौर्य सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म को राजाश्रय दे उसका विश्व व्यापी प्रसार किया।

अशोक का प्रयास—अशोक ने बौद्ध धर्म को विश्व धर्म का रूप दिया और देखते ही देखते वह आधी दुनिया का धर्म बन गया। परन्तु मौर्य साम्राज्य चिर-स्थायी न रहा। शीघ्र ही वह भंग हो गया। यदि वह भी रोमन साम्राज्य की भांति चिरस्थायी रहता तो जैसे रोमन साम्राज्य ने ईसाई धर्म को यूरोप का सार्व भौम धर्म बना दिया था उसी प्रकार मौर्य साम्राज्य भी उसे भारत का व्यापक धर्म बनाने में सफल हो जाता। फिर भी मौर्यों के बाद फिर से पुष्यमित्र शुङ्ग ने हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा की। ब्राह्मणों को वह आगे लाया। पर प्राचीन वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा की वेदी पर उसकी स्थापना नहीं कर सका।

शुङ्ग-सातवाहन-शक युग

भारतीय इतिहास में यह युग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस युग में यवन-शक पल्हव-कुषाण-आक्रांत भारतीय बन गए। निस्संदेह इन विदेशियों को भारतीय बनाने में बौद्ध धर्म का प्रभाव सर्वोपरि था। पीछे वे भारत के बौद्ध-शैव और वैष्णव तीन बड़े धर्मों के प्रतिष्ठता बने।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक ने जो अन्य देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार किया था इस युग में उसे बहुत बल मिला।

कनिष्क—कुषाण राजा कनिष्क का महाराज्य हिन्दुकुश के पच्छिम व उत्तर में चीन की सीमा तक फैला था। उसके संरक्षण में सम्पूर्ण मध्य एशिया बौद्ध धर्म के प्रभाव में आ गया। इसका दूसरा रूप यह था कि सम्पूर्ण मध्य एशिया भारत के सांस्कृतिक प्रभाव में आ गया। चीन पर भी उसका प्रभाव हुआ। इन दिनों भारतीयों ने भी अनेक उपनिवेश पूर्वी व दक्षिण पूर्वी एशिया में स्थापित किए, वे वहां अपने साथ बौद्ध, जैन और वैष्णव प्रभाव ले गये जिनका वहां के मूल निवासियों पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

भागवत धर्म की प्रतिष्ठा—आर्य धर्म की तो भारत में इस युग में फिर से प्रतिष्ठा हुई ही। बौद्ध और जैन धर्म जो आर्य धर्म की परम्परा के विरोधी थे, उनकी प्रतिक्रिया स्वरूप भारत में भागवत धर्म की प्रतिष्ठा हुई।

कला कौशल व व्यापार में क्रान्ति—विदेशी शासकों का भारतीयकरण होने पर भारत की कला कौशल पर ही नहीं वहां के वाणिज्य पर भी भारी प्रभाव पड़ा। प्राचीन ग्रीस और रोम से भारत के सम्बन्ध दृढ़ हुए।

गणराज्यों का उत्थान—इसी काल में मालव-कुलिन्द, आर्जु 'नायक' शिवि, लिच्छिवि आदि पुराने गण राज्यों का पुनरुत्थान हुआ जिनका भारतीय राज शक्तियों पर भारी प्रभाव रहा।

साहित्य–पातञ्जलि ने इसी काल में व्याकरण का ग्रंथ महाभाष्य रचा। स्मृतियों की भी अधिकांश रचना इसी काल में हुई। मौर्योत्तर कालकी सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में इस काल के साहित्य का भारी भाग था। महाभारत और रामायण के वर्तमान संस्करण भी इसी काल में तैयार हुए। भास ने अपने नाटक रचे। 'सातवाहन' राजा हाल ने प्राकृत में गाथा शप्तशती लिखा। प्राकृत का महाकवि गुणाढ्य भी इसी काल में हुआ, बौद्धों के महायान सम्प्रदाय का संगठन भी इसी समय में हुआ तथा प्रमुख बौद्ध दर्शनों की रचना भी इसी युग में हुई।

बौद्ध महायान साहित्य तथा जैन साहित्य—अश्वघोष, पार्श्व, वसु मित्र, नागार्जुन, जैसे उद्भट बौद्ध पाण्डित-तथा जैनों के प्रसिद्ध छै श्रुत केबली (पूर्ण ज्ञानी) तथा सात दश पूर्वी आचार्य इसी काल में हुए। जिन्होंने जैन साहित्य में निरन्तर वृद्धि की और जैन सूची को अंग-उपाँग आदि चार भागों में बांटा।

दर्शन,ज्योतिष, वैद्यक—दर्शनों का वर्तमान रूप इसी काल में बना, वैद्यक और ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ इस समय में लिखे गए। चरक संहिता का प्रणेता चरक कनिष्क का समकालीन था नागार्जुन ने सुश्रुत का संपादान किया। रसायन और लोहशास्त्र पर भी गवेषणाएं हुई। ज्योतिष की प्रसिद्ध पुस्तक गर्ग संहिता इसी काल में लिखी गई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५—गुप्त युग

वैदिक धर्म का पुनरुत्थान—मौर्योत्तर काल में वैदिक धर्म के पुनरुत्थान की जो प्रगति हुई गुप्त युग में उसकी और उन्नति हुई। गुप्त सम्राट परम भागवत-परम वैष्णव कहलाते थे। परन्तु उन्होंने अश्वमेधादि यज्ञ में पशुवध किया। गुप्त सम्राटों के अतिरिक्त अन्य राजाओं ने भी यज्ञ अनुष्ठान किए। इतना होने पर भी प्राचीन वैदिक धर्म पनपान ही, शैव और वैष्णव धर्मों ही का ज़ोर बढ़ता गया। मन्दिरों-मूर्तियों की स्थापना होती गई। कृष्ण पूजा प्रचलित हुई। वाकाटक और भाराशिव राजा शैव थे। इस काल में सूर्य की पूजा तथा सूर्य के मन्दिर भी बने। बौद्ध और जैन धर्म का इस काल में काफी विकास हुआ। सबसे बड़ी बात यह कि सब धर्मों में सहिष्णुता रही।

साहित्य—भास और शूद्रक ने मौर्योत्तर काल में जो संस्कृत साहित्य का अलंकृत रूप प्रकट किया था, अब उसकी वृद्धि इस काल में कालिदास, विशाखदत्त, भारवि-भट्टी, मात गुप्त, सौमित्र आदि उत्कृष्ट कवि हुए। बड़ी २ प्रशस्तियाँ उत्कीर्ण की गईं जिनका आज बहुत भारी ऐतिहासिक मूल्य है। पंचतन्त्र और चान्द्र व्याकरण इसी समय रचा गया। बौद्धों की महायान शाखा के बड़े २ ग्रन्थ इसी युग में लिखे गए। प्रसिद्ध काव्यकार अमरसिंह, इसी युग में हुआ। स्मृति-गणित ज्योतिष के अमर ग्रन्थ इसी काल में रचे गए। आर्यभट्ट, बराहमिहिर जैसे उद्भट गणितज्ञ हुए। दशमलव प्रणाली चलाई गई। आर्य भट्ट ने अपना गणित का ग्रन्थ लिखा। इस काल में बड़े २ मेधावी विदेशी बटुक भारतीय पण्डितों के चरणतल में बैठ कर ज्ञानार्जन करते थे। आयुर्वेद का प्रसिद्ध ग्रन्थ वाग्भट की रचना तथा अन्य रचनाऐं इसी युग में हुईं। दार्शनिक विकास भी बहुत हुआ मीमांसा पर 'शंकर भाष्य 'अष्टाध्यायी पर महाभाष्य, साँख्य पर सांख्यकारिका योग पर व्यास भाष्य इसी काल में लिखा गया, बौद्धों के दर्शन शास्त्रों का भी काफी विकास हुआ। बुद्ध घोष, बुद्ध सन्त असंग-दिग्नाथ वसुबंधु के ग्रन्थ इसी युग में लिखे गए। जैनों के दर्शनों पर निर्युक्ति इस युग में लिखी गईं। जैनाचार्य भद्रबाहु-सिद्धसेन, और उमास्वामी इसी काल के पण्डित हुए।

गुप्तों का राज्य शासन व्यवस्थित सम्पन्न कानून द्वारा पोषित था। उस समय गुप्त साम्राज्य पृथ्वी पर सबसे बड़ा साम्राज्य था। जिसके ६ खण्ड राज्य केन्द्र द्वारा शासित होते थे। सेना-कोष-मन्त्री आदि से गुप्त राज्य सम्पन्न था पाटलीपुत्र, उज्जयिनी और वैशाली गुप्त राज्य में समृद्ध नगर थे। इस काल में पूर्व-पच्छिम दोनों ओर के समुद्रपार के देशों में व्यापार चलता था। भड़ौच के बन्दरगाह से मिश्र, रोम, ग्रीस-फारस और अरब से व्यापार सम्बन्ध थे बर्मा, जावा, सुमात्रा, चीन के व्यापारी ताम्रलिप्ति के बन्दरगाह पर बने ही रहते थे। मिस्र और रोमन राज्यों से व्यापार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के घनिष्ट सम्बन्ध थे। इस युग की मूर्तियां और लोहस्तम्भ उस काल के शिल्प के प्रमाण है।

६—वृहत्तर भारत

अशोक ने भी मोग्लीपुत्र तिष्य के नेतृत्व में विदेशों में बौद्ध धर्म के प्रचारक भेजे। तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्धों की तीसरी संगती में जो बीजारोपण हुआ था वह सात शताब्दी बाद एक विशाल वृक्ष हो गया था। जिसकी शाखायें ईरान से लेकर पूर्व में इन्डोनेशिया और जापान तक उत्तर में साइबेरिया की सीमा से दक्षिण में सिंहल द्वीप तक फैल चुकी थी। उस काल में चीन-भारत-ईरान-ग्रीस प्राचीन सभ्यता के केन्द्र थे, रोमन सभ्यता के विकास के बाद पश्चिम में सभ्यता का क्षेत्र भूमध्य सागर के पश्चिमी सिरे तक बढ़ आया था। भारतीय व्यापारी और उपदेशक उन दिनों पूर्व में चीन और पश्चिम में सिकन्दरिया तक जाते थे। उन्होंने अनेक उपनिवेश भी समुद्र द्वीपों में बसाए थे। इस प्रकार उन दिनों राजनैतिक दृष्टि की अपेक्षा भारत का सांस्कृतिक साम्राज्य अधिक विस्तृत था, सांस्कृतिक दृष्टि से ही वह अधिक अर्थों में वृहत्तर कहा जाता था। इस वृहत्तर भारत को दो खण्डों में बाँटा जा सकता था दक्षिण पूर्वी एशिया का क्षेत्र और ऊपरी भारत। इन प्रदेशों का धर्म और संस्कृति तब भारतीय ही थे। और ऐतिहासिक दृष्टि से भी तब इन्हें भारत ही का अंग माना जाता था। इनके अतिरिक्त चीन-तिब्बत और मंगोलिया भी भारत के सांस्कृतिक साम्राज्य के अन्तर्गत थे।

निस्संदेह इस वृहत्तर भारत के निर्माण में सम्राट अशोक का हाथ था, जिस का अनुसरण कनिष्क-मिलिन्द और इन्द्राग्नि मित्र यवन और शक राजाओं ने किया। गुप्त काल में भारतीय धर्म का जो सजीव और उदार रूप बन गया था उसने हूणों को जो क्रूर आक्रान्ता के रूप में भारत में आए, यवनों-शकों और कुषाणों की भांति भारतीय बना लिया। परन्तु मार्के की बात यह थी कि उदारता-तथा विश्व धर्म की एक रूपता में बौद्ध धर्म ने जो क़दम उठाया था उसका अनुकरण अब हिन्दुओं ने किया। शक कुषाण और यवन राजाओं को जहाँ बौद्धों ने बौद्ध धर्म में दीक्षित किया वहाँ हूण राजा मिहिर कुल ने शैव धर्म स्वीकार किया। इस प्रकार शैव और बौद्ध धर्म को स्वीकार कर भारतीय बन गए। आज हिन्दुओं की अनेक जातियाँ उन्हीं की वंशज है।

७—मध्य युग

मुस्लिम आक्रमण—गुप्त साम्राज्य का छठी शताब्दी में अन्त हुआ और बारहवी शताब्दी के अन्त तक उसके बाद भारत पर मुस्लिम आक्रमण होते रहे। इन छै शताब्दी में भारत में कोई महाराज्य स्थापित नहीं हुआ, इसलिए यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अराजकता और अव्यवस्था का काल था। मौर्य चन्द्रगुप्त और गुप्त सम्राटों के महाराज्य अब नष्ट हो चुके थे। छोटे छोटे राज्य परस्पर लड़ते झगड़ते रहते थे। सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में थानेश्वर और कन्नौज के राजा हर्षवर्धन ने उत्तर भारत में और चालुक्य राजा पुलकेशी तृतीय ने दक्षिण पथ में बड़े राज्यों की स्थापना की थी। पर ये राज्य देर तक नहीं चले। निरन्तर राज्यों का पतन उत्थान होता रहा। और राज्य शक्ति संगठित नहीं हुई।

राजनैतिक संगठन की कमी से इस युग में सामाजिक संकीर्णता भी उत्पन्न हो गई। प्राचीन काल में जो वर्ण धर्म का संगठन हुआ था, उसने कट्टर जातिभेद का रूप धारण कर लिया। भारतीय समाज के पुराने वर्गों-वर्णों—जनों और श्रेणियों का जात पांत के रूप में परिवर्तित हो जाना इस युग की अत्यंत महत्वपूर्ण सांस्कृतिक घटना है।

कवि दार्शनिक— यद्यपि इस युग मे भी अनेक कवि, दार्शनिक, स्मृतिकार और विज्ञानवेत्ता हुए, पर साहित्य और ज्ञान के क्षेत्र में उन्होंने किसी असाधारण प्रतिभा का परिचय नहीं दिया और गुप्तयुग तक भारत में जो असाधारण जीवन और प्रतिभा थी, वह मध्यकाल में बहुत कुछ मन्द पड़ गई। इससे भारतीय संस्कृति का विकास रुक गया। यहां तक कि अब दार्शनिक विचारों में भी निराशावाद आने लगा। इसका स्पष्ट यह अर्थ था कि मनुष्य की शक्ति और ज्ञान का ह्रास हो रहा था। यह एक मार्के की बात है कि सारे ही विश्व में इस युग में ह्रास के लक्षण प्रकट हो रहे थे। इस समय न भारत में राजनैतिक एकता और व्यवस्था ही थी, न धर्म में ही वह शक्ति रह गई थी जो मनुष्य को उच्च आदर्श की ओर ले जाती। राजा स्वेच्छाचारी और प्रजा उच्छृङ्खल थी। सर्वत्र सामन्तशाही चल रही थी। फिर भी इस युग में भवभूति, बाणभट्ट, कुमारदास, भारावि भट्टि, माघ त्रिविक्रमभट्ट, भट्ट नारायण, दंडी, सुबंधु, हर्षवर्धन, राजशेखर जैसे कवि हुए और उन्होंने सरस्वती का भण्डार भरा। बाण भट्ट ने हर्ष चरित लिखा। व्याकरण काव्य और दर्शन के ग्रन्थ भी लिखे गए। सबसे बड़ी प्रतिमा का दर्शन दिया शंकराचार्य ने। परन्तु इसी समय अनेक सम्प्रदायों ने जन्म लिया। जैसे कोई भी सामन्त जरा सी शक्ति पाकर छोटा राजा बन बैठता था, उसी प्रकार कोई भी विद्वान सम्प्रदाय प्रवर्तक बन बैठता था, गणित ज्योतिष वैधक की भी कुछ रचनाऐं हुईं।

मगध संस्कृति का केन्द्र—इस समय मगध भारत का प्रधान राज शक्ति का केन्द्र था तो काशी शिक्षा का मुख्य केन्द्र था। बौद्धों के अनेक विहार—नालन्द, विक्रम शिला और उदयन्तपुर के विहारों ने विश्वविद्यालयों का रूप धारण कर लिया था। जिनमें बौद्ध साहित्य का ही अध्ययन होता था। यहां भारत के ही नहीं चीन तिब्बत आदि के विदेशी छात्र भी ज्ञानार्जन के लिए आते थे। मथुरा का संगम, नालंद का महाविहार विक्रमशिला, का महाविहार स्थापित थे। जहाँ बड़े बड़े दिग्गज विद्वान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म और दर्शनों को हजारों छात्रों का अध्ययन कराते थे। इन सब विद्या केन्द्रों का सन् ११६९ में बख्तयार खिलजी ने महासंहार कर दिया। काशी-नवद्वीप-वल्लभी धारानगरी में भी विद्या केन्द्र के थे।

मसीह की प्रारम्भिक दस शताब्दियां

धार्मिक अवस्था—मानव-समाज एक विकासयुक्त, प्रगतिशील और अपूर्ण संस्था है। उसका भौतिक अधिष्ठान और आध्यात्मिक प्रासाद निरन्तर बदलता रहता है। प्रत्येक सामाजिक स्थिति परिमित काल तक ही आवश्यक और न्याय्य रहती है। काल-मर्यादा का व्यतिक्रम होते ही नई समाज रचना को मौका देकर पूर्ववर्ती समाज रचना नष्ट हो जाती है। वही नियम मानवीय विचार और क्रिया सत्ता पर भी लागू हैं। कोई भी विचार चाहे वह कितना ही उन्नत हो परिपूर्ण नहीं है। श्रेष्ठ और श्रेष्ठतर की परम्परा का तारतम्य बना ही रहता है। कवि, तत्त्ववेत्ता और धर्म-संस्थापक सदैव से उसकी खोज में अपनी प्रतिभा को लगाते रहे हैं। इसी से मानव समाज की धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थिति का इतिहास विकास-युक्त मंजिलों पर मंजिलें पार करता हुआ दीख पड़ता है।

धर्म एक सामाजिक वस्तु है। समाज इतिहास सम्बद्ध वस्तु है। धर्म और समाज का इतिहास ही मानव की राजनीति है। अत्यन्त पुरातन काल से इन्हीं तीनों वस्तुओं को लेकर मानव समाज ने भिन्न भिन्न संस्कृतियों की स्थापना की है। भारतीय इतिहास में वैदिक जनों द्वारा स्थापित हिन्दू-समाज-संस्कृति और जैनों और बौद्धों के द्वारा स्थापित श्रमण संस्कृति प्रमुख हैं।

हिन्दू संस्कृति में सर्वशक्तिमान परमेश्वर का बड़ा महत्व है, जिसे गुप्तों के निरंकुश राजतन्त्र ने जन्म दिया। बौद्ध और जैन यद्यपि सृष्टिकर्त्ता सर्वशक्तिमान ईश्वर को नहीं मानते, परन्तु पुनर्जन्म का उपनिषद् वाला सिद्धान्त उन्होंने स्वीकार किया है।

जिस समय मसीह के प्रथम की दो तीन शताब्दियों में यवन, शक, अमीर और गुर्जर आदि जातियां बाहर से भारत में घुसीं, उस समय बौद्धों का मध्याह्न सूर्य चमक रहा था। उन्होंने इन जातियों को समाज में समानता का स्थान देकर अपने में मिला लिया। इसके बाद इन जातियों ने ब्राह्मणों का महत्त्व स्वीकार करके समाज में उच्च स्थान—ब्राह्मणों से केवल एक सीढ़ी नीचे था—प्राप्त किया। इस प्रकार सामन्ती भारत का जन्म हुआ।

बौद्ध धर्म—गौतम बुद्ध का धर्म सर्वसाधारण का धर्म था। उसके दो मूल सिद्धान्त थे—प्राणि-मात्र पर दया और सर्व-त्याग। उसे यद्यपि गौतम के जीवन-काल में ही राजानुमोदन प्राप्त हो गया था परन्तु फिर भी बुद्ध के निर्वाण के बाद एक शताब्दी तक वह बिहार के छोटे से प्रान्त के मध्यम वर्ग के लोगों का धर्म था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक का राजाश्रय प्राप्त कर यह स्थिति बदल गई। बौद्ध धर्म राजाश्रित होगया। अशोक ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर देश-देशान्तरों में उसका विस्तार किया और भिक्षुकों के लिये अनेक विहार बनवाये। उन्होंने ऐसी व्यवस्था की कि हजारों भिक्षुओं का निर्वाह सुखपूर्वक होता रहे। अशोक का अनुकरण कर उसकी प्रजा और आसपास के राजाओं ने हजारों विहार बनवाये और इनकी संख्या नब्बे हजार तक पहुँच गई।

बुद्ध के आदेश के अनुसार भिक्षु को केवल चातुर्मास में ही एक स्थान पर रहना तथा आठ मास प्रवास करना चाहिये। उसकी सम्पत्ति तीन चार चीवर और एक भिक्षापात्र मात्र होनी चाहिये। परन्तु अशोक का राजाश्रय प्राप्त करके भिक्षु बड़े बड़े विहारों में स्थायी रूप से रहने लगे। वहां सुखद निवास और उत्तम भोजन बिना प्रयास मिल जाने तथा सुख-सुविधा सहित निश्चिन्त जीवन व्यतीत करने से नई वयके तरुण भिक्षु-भिक्षुणियों के लिये ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन असह्य हो गया। उनके धर्म में वाममार्ग की प्रवृत्ति ने जन्म लिया। 'ईसा की छठी और सातवी शताब्दियों में बौद्ध श्रमणों ने तान्त्रिक ग्रंथ रचकर वाम मार्ग की स्थापना करदी साथ ही परिग्रहवान होकर भिक्षु संघ अहिंसा, अस्तेय और सत्य पर स्थिर न रह सका। इससे उसके चारों काम खण्डित हो गये। इस प्रकार राजाश्रय प्राप्त कर बौद्ध धर्म जन-कल्याण से च्युत हो गया।

उसे राजाश्रय की लत पड़ गई। उसे विहारों की जागीरें प्राप्त थीं। राजा लोग पगड़ी उतार कर उनकी अभ्यर्थना और आतिथ्य करने में तत्पर रहते थे। वे सुखी और सुखाभिलाषी थे। जन-कल्याण की भावना की उन्हें अब क्या चिन्ता थी।

हिन्दू धर्म का पुनरुज्जीवन और बौद्ध धर्म का नया रूप—जब मौर्यों से उसके सेनापति ने उनका राज्य छीन लिया और यज्ञों को पुनरुज्जीवित किया तथा बौद्धों का पीड़न किया, तब बौद्धों ने जन-कल्याण का कार्य बिल्कुल ही त्याग दिया। वे फिर राजाश्रय प्राप्त करने की चेष्टा में लगे।

पुष्यमित्र मौर्यों के समान साम्राज्य स्थापन नहीं कर सका। उसे वायव्य दिशा से होने वाले यवनों और शकों के प्रबल आक्रमणों का सामना करना पड़ा। इन प्रबल विदेशियों का पैर भारत में आगे बढ़ता ही गया। ऐसी अवस्था में इन बौद्धों ने इन विदेशी विजेताओं को प्रसन्न और अनुकूल करने का भगीरथ प्रयत्न किया और इसमें इन्हें सफलता मिली। परन्तु भिक्षुओं के आचार विचार, उनकी प्रकृति और संस्कृति के अनुकूल न थे। वे अपने कुल देवताओं को छोड़कर केवल बुद्ध की शरण जाने को तैयार नहीं हुये। इस पर बौद्धों ने उनके अनुकूल वातावरण उपस्थित कर दिया। फलतः कनिष्क की अध्यक्षता में उन्होंने महायान सम्प्रदाय की स्थापना करदी। महायान पंथ में कनिष्क की महिमा का बखान अशोक के समान ही किया गया, पर उसने अपने कुल देवता को नहीं छोड़ा। हां, अपने सिक्कों पर उसने बुद्ध की मूर्ति छाप दी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शक राजा बड़े वीर थे। शौर्य उनकी संस्कृति में था। फिर वे विजेता थे। उनका राजाश्रय पाकर बौद्धों ने फिर अपने धर्म का प्रभाव स्थापित किया, पर उन्हे अपने अनुकूल बनाने के लिये उन्हे मूल बौद्ध साहित्य में बहुत परिवर्तन करने पड़े। यहाँ तक कि वास्तविक मूल बुद्ध के सिद्धान्तों का एक अंशमान ही उनके ग्रन्थों में रह गया। हाँ, सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त अवश्य नहीं त्यागे गये।

शकों के २–३ सौ वर्ष के राज्यकाल में इस महायान-पन्थ का बड़ा प्रसार हुआ और मूल स्थविरवाद पीछे रह गया।।

कनिष्क का महायान—कनिष्क की अध्यक्षता में महायान सम्प्रदाय की जो स्थापना हुई, उसमें कनिष्क की महिमा को अशोक के समान ही बखान किया गया। महायान-सम्प्रदाय में मूल बौद्ध साहित्य में बहुत परिवर्तन करने पड़े, यहां तक कि वास्तविक मूल बौद्ध के सिद्धान्तों का कुछ अंश ही उनके ग्रंथों में रह गया। हां सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त अवश्य नहीं त्यागे गए। शकों के दो तीन सौ वर्ष के राज्य काल में महायान पंथ का बड़ा प्रसार हुआ और स्थविरवाद पीछे रह गया। यद्यपि बुद्ध की स्पष्ट और आग्रहपूर्ण आज्ञा थी कि बुद्ध का उपदेश प्रचलित लोकभाषा में हो, पर महायान के ग्रन्थकारों ने लोकभाषा का सर्वथा त्याग कर दिया। उनकी दृष्टि में लोक-कल्याण की भावना ही न रह गयी थी। वे संघारामों की जागीर सुख से भोगते हुए उच्च वर्ग के दाताओं के लिये, जिन पर संघारामों का सारा सुख अवलम्बित था, उच्च संस्कृत भाषा में आश्चर्यचकित करने वाले न्यायादिक ग्रन्थों का निर्माण कर रहे थे।

सातवीं शताब्दी के प्रथम पाद में हर्ष उत्तर भारत का महानृप था। वह बौद्ध धर्म से सदा का प्रेमी था। उस समय भी बौद्धों के विहारों से सारा देश भरा हुआ था। हर्ष के पूर्व गुप्तकाल में तथा हर्ष के पश्चात आठवीं शताब्दी के अन्त तक बौद्ध-श्रमणों ने भारी साहित्य निर्माण किया। वसुबन्ध के अभिधर्मकोष, दिङ्नाथ का प्रमाण समुच्चय, शान्तिदेव का बोधिचर्यावतार, शान्तिरक्षक का तत्व संग्रह जैसे उच्चकोटि के संस्कृत-ग्रन्थों की रचना इसी काल में हुई।

श्रमण संस्कृति का पतन—हम पीछे बता आये हैं कि किस प्रकार राजाश्रय प्राप्त करके श्रमण संस्कृति परिग्रहवान बन गयी और ब्रह्मचर्य तथा भिक्षु जीवन के अस्वाभाविक जीवन के कारण प्रतिक्रिया के रूप में सहज सम्प्रदाय की सृष्टि हुई। पीछे उसमें वाममार्ग, तंत्र-मंत्र आदि मिथ्या विश्वासों का प्राचुर्य हुआ। अन्ततः तंत्र-मंत्र का महायान पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उसमें से मंत्रयान का सम्प्रदाय पृथक उठ खड़ा हुआ, जो ४ थी से ७ वीं शताब्दी तक जनता को आकर्षित करने का प्रयत्न करता रहा। इस सम्प्रदाय के साधक बौद्ध भिक्षु सिद्धों के नाम से प्रसिद्ध हुए। जब उत्तरी भारत में गुप्त वंश ने वासुदेव धर्म को अपनाया,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तब यह बौद्ध सिद्ध दक्षिण में आन्ध्र राजाओं की राजधानी प्रतिष्ठान के समीप श्री पर्वत पर समाश्रित हो गये। यहीं पर मंत्रयान का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'मंजु श्रीकल्प' लिखा गया। पीछे जब मंत्रयान के अभिचारों में मंत्र तंत्र और हठयोग के साथ वाममार्ग के पंचमकारों का प्रयोग हुआ, तब उसमें से 'वज्रयान' नाम से एक और नया सम्प्रदाय विकसित हुआ, जिसने जनता के हृदय में भय, आशंका और कौतूहल की उत्पत्ति की।

मंत्रयान ई० सन ७ वी शताब्दी के मध्य में वज्रयान के रूप में परिवर्तित हुआ। इसके बाद जब बंगाल के पालों ने बंगाल और बिहार में प्रतिष्ठित होकर इन बौद्ध सिद्धों के प्रति उदारता प्रकट की, तब वज्रयान का यह केन्द्र श्रीपर्वत से उठकर बिहार के पालों द्वारा स्थापित विक्रम-शिला में आ गया। विश्वविद्यालय के प्रभाव से वज्रयान में यत्किंचित मर्यादा का और संयम का प्रवेश हुआ, परन्तु अविचार से सम्बन्धित उन्हें कुछ ऐसी तान्त्रिक क्रियायें करनी पड़ीं, जिनसे सदाचार में, जो बौद्ध-परम्परा का आदर्श था, बहुत बाधा पड़ी। अब इन सिद्धों ने मध्यम मार्ग का अनुसरण कर जीवन के भोगों में सीमित प्रवृत्ति का मानदण्ड स्थापित करके सहज संयम का मध्यम मार्ग खोज निकाला और यह सिद्धांत बनाया कि सहज संयम से शरीर ही पवित्र होकर तीर्थ हो आता है। परन्तु स्वानुभूति की स्थिति में ऐसे गुरु का महत्व स्थापित किया गया, जो विशिष्ट क्रियाओं, मुद्राओं और प्रयोगों रहस्य को समझाये। इसी रहस्य को सिद्धों ने अपने रहस्यवाद के साहित्य में व्यक्त किया, जिसका अभिप्राय भोग में ही निर्वाण का तत्व प्रतिभासित करना था। इस सिद्धि में जहां मंत्र और देवता व्यर्थ प्रतीत होते थे, वहां शून्य तत्व के परम फल में महासुख की प्राप्ति व्यक्त की गई थी और ऐसा कहा गया था कि सारे संसार में इसी असीम सुख की प्राप्ति होती है।

ब्राह्मण तथा सामन्तों का गठबन्धन तथा सामाजिक अवस्था—ब्राह्मणों ने अपना पलड़ा पहले ही भारी कर लिया था, परन्तु समाज के कर्त्ता-धर्त्ता आखिर यही सामन्त थे। उन्हीं से उन्हें धन मिलता था। इनके प्रधान मन्त्री बनने पर इनके महलों का ऐश्वर्य तथा अन्तःपुर की विलासिता राजाओं से कम न रही। ब्राह्मण इस चेष्टा में प्रयत्नशील रहते थे कि जनता में जनतंत्र के भाव उत्पन्न न होने पायें और इसके बदले में यह सामन्त भी पूरी उदारता से भूमि और स्वर्णदान करते थे। राष्ट्रकूट, पाल और दूसरे राजवंश भी ब्राह्मणों के प्रति ऐसे ही उदार थे। विश्वामित्र वसिष्ठ और हरिचन्द्र के उदाहरण उनके सम्मुख थे।

वाम मार्ग में ब्राह्मण बौद्धों से पीछे न रहे। उन्होंने जनसाधारण की शक्ति को छिन्न भिन्न करने के लिये ही छुआछूत को प्रश्रय दिया था। मिथ्या विश्वासों को फैलाने वाले पुराणों के कलेवर को बढ़ाया था, बुद्धि को भूल-भुलैय्या में डालने के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिये अद्वैतवाद का प्रचार किया था। उन्होंने इस काल में अनगिनत जातियाँ पैदा कर लीं। स्त्रियों को सब अधिकारों से च्युत कर दिया था। शूद्रों में हजारों जातियां उत्पन्न हो गयीं और कैसी ही विषम अवस्था पैदा होने पर भी ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र हथियार लेकर नहीं लड़ सकते थे। यह काम केवल क्षत्रिय पुरुषों का था, परन्तु उनके युद्ध प्रायः आदर्श-हीन हुआ करते थे।

आर्थिक अवस्था—ईसा की ८ वीं शताब्दी से १२ वीं शताब्दी तक भारत की सम्पदा खूब बढ़ी-चढ़ी थी। संसार के सब सभ्य देशों का सोना भारत में एकत्रित होता था। शिल्प व्यवसाय और वाणिज्य में उन दिनों भारत दुनिया का सबसे समृद्ध देश था। यही दशा कृषि की भी थी। अरब, पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका और यूरोप से भारत में अपार धन-राशि नित्य खिंची चली आती थी। इस सम्पत्ति का सबसे बड़ा अंश राजा और सामन्त अपने विलास में खर्च करते थे। उस काल में कन्नौज, मान्यखेट और पाटलीपुत्र के राजमहल विलास की वस्तुओं से भरे रहते। फिर बगीचे, सिंहासन, हीरे-मोती महलों की सजावट आदि आदि।

सामन्तों के अन्तःपुर में जो हजारों रानियां और पुत्र, परिजन, सगे सम्बन्धी और अन्य अनगिनत लोग निठुले भरे रहते थे, वे सब बिना कुछ परिश्रम किये ही ऐश आराम का जीवन व्यतीत करते थे। इन दरबारों में कलाकार, कवि, गायक, चित्रकार और चापलूसों की भी भीड़ रहती थी। इनके सेवक और दास, जिनकी गिनती नहीं हो सकती थी, इनके लिये यथेष्ट नहीं थे। शिकार या दूसरे किसी भी मनोरंजन के काम के लिये वे चाहे जिस किसान, कारीगर या मजदूर को पकड़कर बिना कुछ मजदूरी दिये बेगार में काम ले सकते थे। पुरोहितों और महन्तों के ठाठ भी राजाओं से कम न थे। उस समय धार्मिक मठों और मन्दिरों में भारी भारी खर्च करना शान की बात समझी जाती थी। यही कारण है कि मौहम्मद बिन बख्तियार को जितना धन इन मठों की लूट से मिला, उतना किसी राजमहल में नहीं मिला। राजवंश सौ-दो-सौ वर्ष में बनते बिगड़ते रहते थे, किन्तु ये मन्दिर और मठ सहस्त्राब्दियों तक बने रहे। ब्राह्मणों के बाद देश की सम्पत्ति के भोक्ता वे सेठ साहूकार लोग थे, जिनकी कोठियों का जाल देश-विदेश में फैला हुआ था और जिनके जहाज सभ्य संसार के कोने कोने में व्यापार-विनिमय करते थे। यही तीन जन तत्कालीन देश की सम्पत्ति के भोक्ता थे।

सामन्तों का एक बहुत बड़ा भारी अपव्यय युद्ध था, जो कि बिना किसी कारण दिग्विजय करने या किसी राजा की राजकुमारी को हरण करने के लिये किया जाता था।

जिस सम्पत्ति को यह राजा, पुरोहित और सेठ लोग इस प्रकार उपयोग करते थे, वह किसान, मजदूर और कारीगरों के द्वारा पैदा की जाती थी, जो सदैव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भूखे नंगे और असहाय रहते थे, परन्तु इनसे भी अधिक दयनीय दशा उन दासों की थी, जो भारत की कुल जनसंख्या का पंचम अंश थे। ये लोग स्वामी की जंगम सम्पत्ति थे, जिनके स्वामी उन्हें जब चाहे खरीद बेच सकते थे। और जिनका जीवन स्वामियों की दया पर निर्भर था। जनता के २० प्रतिशत दास और शेष सत्तर प्रतिशत किसान, मजदूर और कारीगर उस सम्पदा के भोग से वंचित थे, जिनके स्वामी कुल जनता के १० प्रतिशत राजा, पुरोहित और सेठ लोग थे। उस समय का सारा शिल्प व्यवसाय और कृषि इन मुट्ठी भर व्यक्तियों के भोग के लिये थी। दूसरों को केवल जीवित भर रहने का अधिकार था। यह असहाय ९० प्रतिशत भारतीय जनता जब पराजित राजाओं और सामन्तों को महाराजाधिराज के सामने सिर झुकाते देखती थी, तब अपने आत्म सम्मान को खोकर यह स्वयं भी उनके चरणों में झुकी रहती थी। प्रायः इनके युवक पुत्र इन राजाओं के लिये लड़ मरने और इनकी पुत्रियां अवैध रूप से इनके रनवासों में सेवा करने के लिये ली जाती थीं। सन्तोष की बात यही थी कि अमीरों की शौकीनी की प्रायः सभी चीजें देश में ही पैदा होती थीं और देश का धन बाहर नहीं जाता था। फिर भी अकाल, बाढ़, युद्ध और महामारी में जनता कीड़ों मकोड़ों की तरह मर जाती थी।

राजनैतिक अवस्था—राजनीति आर्थिक स्वार्थों की रक्षा के लिये एक फौलादी शिकंजा है। आप देख चुके हैं कि इन शताब्दियों में जनता किस प्रकार मूक और निरीह बना रखी गयी थी और सर्वशक्तिमान राजा की निरंकुशता को कितना बढ़ा दिया गया था।

पौराणिक संस्कृति पर एक समीक्षा दृष्टि

यज्ञ प्रथा—बुद्ध के समय में यज्ञ प्रथा बड़े लोगों में थी। वहसर्व साधारण का धर्म न था। सर्व साधारण विविध देवताओं तथा यक्षों की पूजा करते थे। जिन के अनगिनत थान-चबूतरे-मठ आदि नगर जन पद में होते थे।

बौद्ध जैनों की प्रतिक्रिया—जैसे ईसाई मुसलमानों ने दूसरों के देवताओं का नाश किया उस प्रकार बौद्ध और जैनों ने नहीं किया। उन्होंने उन्हें बुद्ध और महावीर का भक्त और सेवक बना लिया, ऐसी कथाओं से त्रिपिटक तथा जैन साहित्य भरा पड़ा है।

परन्तु बौद्धों का यह प्रयास तिब्बत-चीन-स्याम और ब्रह्म देश में तो सफल हुआ। जहां पर प्रथम ही अव्याहत प्रचार हुआ। पर भारत में जहां प्रथम ही आसुर भावाविष्ट वैदिक धर्म विद्यमान था इसमें पूरी सफलता नहीं हुई फलतः यहाँ हिंसक और अहिंसक दोनों ही प्रकार के देवता रह गए। इन्हीं देवताओं की पूजा से पौराणिक संस्कृति का उदय हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्द्र हिंसक वैदिक देवता था। यज्ञों में उसके नाम से बलिदान होता था। परन्तु बौद्धों ने उसे अहिंसक और बुद्ध भक्त बना लिया। १. बुद्ध काल में किसी भी क्षत्रिय राजा का कुल देव इन्द्र नहीं था इसलिये क्रूर और व्यभिचारी इन्द्र के प्रति उस काल में किसी की श्रद्धा नहीं रही थी।

बुद्ध काल में इन्द्र देवता तो पीछे पड़ गया पर ब्रह्मा आगे आया। ऋग्वेद में 'ब्रह्म' का अर्थ है प्रार्थना मन्त्र। जो उसे गाये वह ब्रह्मा। पीछे यज्ञ के अध्यक्ष को ब्रह्मा कहने लगे। १. इन्द्र का महत्व कम होते ही ब्रह्मा सर्वोपरि-संसार का कर्ता बन गया। २. परन्तु बौद्ध साहित्य में इस ब्रह्मा का खूब, मजाक उड़ाया ३. और उसे बुद्ध का अनुगत बनाया।

जान पड़ता है कि बुद्ध काल में ब्राह्मण लोग 'ब्रह्म सायुज्यता' कैसे प्राप्त की जाय इस विषय पर बहुत मतभेद रखते थे। इस पर बुद्ध ने उन्हें खूब लताड़ बताई है। ४. इन्द्र के बाद वैदिकों ने ब्रह्म देव को उच्च पद दिया, परन्तु वह उनके प्रतिकूल ही पड़ा। क्योंकि ब्रह्म सायुज्यता की प्राप्ति के लिये समत्व की भावना होनी आवश्यक थी पर वैदिक लोग जातीय श्रेष्ठता को नहीं छोड सकते थे इससे शीघ्र ही ये ब्रह्म देव वैदिकों से छूट गये। इस इतने बड़े ब्रह्मा का केवल एक ही मंदिर पुस्कर में है। कालीदास ने भी इसे ब्रह्मा की अच्छी खिल्ली उड़ाई है। ५. मार्के की बात यह है कि कवि ने वैदिक ब्रह्म देव (केवल वेद पढ़ने वाला) और बुद्ध कालीन ब्रह्म देव (संसार का कर्ता) का सम्मिश्रण कर दिया है।

वेदों में ब्रह्म का अर्थ था 'मन्त्र' और बुद्ध काल में उसका अर्थ हुआ 'श्रेष्ठ'। पीछे उपनिषद ने 'श्रेष्ठतत्त्व' को ब्रह्म वर्णित किया और वह अब तक उसी अर्थ में व्यवहृत है। इसका किसी ने मजाक नहीं उड़ाया।

अशोक के प्रयत्न—अशोक काल में यज्ञ महत्व बिल्कुल घट गया। अशोक ने अंत तक यज्ञ विरोधी लोक मत तैयार किया और वैदिक सब देवताओं को त्याग बुद्ध को अपना देव बनाया। वह कहता है बुद्धोपासक बन कर इस देश के सब देवों को झूठा सिद्ध कर दिया। १. उसने वैदिकों को तंग नहीं किया। पाली साहित्य में 'श्रमण-ब्राह्मण' समास मिलता है। तथा शिला लेखों में ब्राह्मण को प्रथम स्थान दिया गया है। २. वह उन्हें दान तो देता था पर सम्मान नहीं करता था।

ब्राह्मणों का संकट—यज्ञों और देवों का पूजन नष्ट होने से ब्राह्मण वैदिकों को भिक्षा वृत्ति से पेट भरना पड़ा। उन्होंने मौर्यों को पुराणों में शुद्र लिख दिया, और खूब तिरस्कार किया। मौर्यों के अस्त होने पर पुष्यमित्र ने वैदिकों के यज्ञों को फिर जीवित करने का प्रयत्न किया परन्तु सफल नहीं हुआ उसकी शक्ति-शाक्य-यवन आदि के आक्रमण रोकने में खर्च हो गई। और जब ये आक्रान्ता भारत में बस गये तो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाति भेद न होने के कारण उनका झुकाव ब्राह्मण धर्म की अपेक्षा बौद्ध धर्म की ओर ही अधिक हुआ। फलतः पुष्यमित्र और अग्निमित्र के बाद राजकीय यज्ञ शताब्दियों तक प्रश्रय न पा सके।

मुस्लिम आक्रान्ताओं का हिन्दू संस्कृति पर प्रभाव

आक्रमण का प्रमाण—गजनवी गौरी, तुगलक और तैमूर ने एक के बाद एक आक्रमण करके उत्तर भारत की साँस्कृतिक प्रगति को छिन्न भिन्न कर दिया। तब हिन्दू विद्या, साहित्य, धर्म और संस्कृति को सुदूर पूर्व की ओर भाग कर बंगाल में शरण लेनी पड़ी। महान नैयायिक जगन्नाथ पण्डित ने बनारस या मिथिला की विद्या भूमि को छोड़ नवद्वीप नदिया में जगद्विख्यात न्यायपीठ की स्थापना की और १५ वीं शताब्दी में धर्म-सुधारक चैतन्यदेव ने अपना वैष्णव पंथ चलाया। यहीं कल्लूक भट्ट ने इससे पूर्व १४ वीं शताब्दी में मानव धर्म-शास्त्र पर अपनी प्रसिद्ध टीका रची। मानव धर्म-शास्त्र के प्रख्यात टीकाकार मेधातिथि ५०० वर्ष पूर्व मिथिला में हुए थे। १४ वीं शताब्दी में ही जीमूतवाहन ने 'दाय-भाग' की रचना की। इससे पूर्व ११ वीं शताब्दी में 'याज्ञवल्क्य स्मृति' पर 'मिताक्षरा' नामक टीका लिखने वाले महापण्डित ज्ञानेश्वर भी मिथिला निवासी थे। इस प्रकार महापण्डितों की जन्म भूमि उत्तर भारत का स्थान बंग देश ने ग्रहण किया। इससे पूर्व बारहवीं शताब्दी में बंगाल के वीरभूमि स्थान में अकेले स्वनामधन्य महाकवि जगन्नाथ ने ही विश्रुत ख्याति उपलब्ध की थी. जो उन्हें 'गीत गोविन्द' नामक प्रसिद्ध काव्य के लिखने से प्राप्त हुई थी। 'गीत गोविन्द' जैसा लालित्यपूर्ण काव्य संस्कृत साहित्य में दूसरा नहीं है। शृंगार काव्य में राधा-माधव की प्रेम कथा कह कर जीव ब्रह्म सम्बन्ध अर्थात् गोपीभाव का भक्ति मार्ग प्रकट किया गया है। आगे इसी सिद्धान्त को मुस्लिम सूफी सन्तों ने शृंगार रस की व्यंजना में अभिव्यक्त किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि १२ वीं शताब्दी में पण्डित जयदेव ही एक विख्यात कवि बंग देश में दीख पड़ते हैं, वहां मुस्लिम काल में बहुत समय तक जितने बड़े बड़े हिन्दू विद्वान सुनने में आते हैं, वे बंग देशीय हैं और इसका कारण उत्तर भारत का पूर्वोक्त मुस्लिम उत्क्रान्त अशान्त वातावरण है।

मुस्लिम राज्यसत्ता जमने के बाद—तैमूर के आक्रमण के बाद १४वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब उत्तर भारत में सैयद व लोदी वंश ने अपने राज्य स्थापित कर लिये तब, कुछ उनके पुरुषार्थ की कमी कुछ राज्य व्यवस्था के दायित्व एवं तत्कालीन राज-नैतिक परिस्थितियों के कारण हिन्दू प्रजा को कुछ साँस लेने का अवसर मिला, और उत्तर भारत में हिन्दू धर्म, साहित्य और संस्कृति ने विकास पाया तथा बड़े-बड़े नामी कवि, विद्वान और संतों के नाम वहां सुनाई देने लगे, जिनमें स्वामी रामानन्द प्रथम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने राम को इष्टदेव मानकर वैष्णव धर्म का प्रचार किया। इनके दीक्षित शिष्य कबीरदास ने हिन्दू मुस्लिम ऐक्य तथा भक्तिवाद का एक लोकप्रिय रूप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकट किया। इनके हिन्दी पद इतने लोकप्रिय और प्रसिद्ध हुए जो हिन्दी भाषी प्रान्तों में बहुतायत से अब तक गाये जाते हैं। इस समय के सभी वैष्णव संत धर्म-सुधारक थे। और इसका कारण यह था कि मुस्लिम राज्य की भारत में स्थापना होने पर इन धर्मात्माओं को हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष और पुराने धर्म-बन्धन असह्य प्रतीत होने लगे थे। उनमें ऐसी क्रान्तिकर भावना जन्म ले चुकी थी कि वे मूर्ति-पूजा के भी विरोधी हो गये थे। कबीर ने हिन्दू मुसलमान दोनों को अपना शिष्य बना कर कहा कि 'राम' और 'रहीम' एक ही परमात्मा के—जो सद्गुरु के उपदेश में हिन्दू और मुसलमान भक्तों को समान रूप से प्राप्त हैं, दो नाम हैं।

पूर्व की ओर बिहार में इसी समय विद्यापति ठाकुर ने श्री राधाकृष्ण की प्रेम व्याख्या पर अनुपम काव्य रचना मैथिल भाषा में की, जिसका अनुकरण बंगवासी कवि चण्डीदास ने किया। यह वह समय था जब मुगल भारत पर आक्रमण कर रहे थे।

शृंगार और भक्ति की अनुपम काव्य-रचना १५ वीं शताब्दी में मेवाड़ के राजघराने की एक प्रसिद्ध महिला मीराबाई ने की। इस भावुक कवियित्री की 'गीत गोविन्द' की टीका और बहुसंख्यक फुटकर पद आज भी द्वारिका से मिथिला तक प्रेम से गाये जाते हैं। श्रीमद्भागवत के टीकाकार श्री वल्लभाचार्य भी इसी काल में हुए, इन्होंने गोपी भाव से कृष्ण भक्ति का उपदेश दिया।

सन् १००१ से १०२४ तक गजनी के महमूद ने भारत पर १२ आक्रमण किये। इन आक्रमणों का उद्देश्य भारत की सत्ता लेने का नहीं था। वह भारत के धन-रत्न का लुटेरा था। वह यह सत्य जान गया था कि भारत की सम्पत्ति के केन्द्र मन्दिर हैं। उनमें अटूट सम्पदा भरी पड़ी है। इस लूट की लिप्सा को उसने धर्म-युद्ध का रूप दिया और अपने को बुतकिशन प्रसिद्ध किया। उसने अपने बर्बर धर्मान्ध सैनिकों द्वारा पंजाब, गुजरात, कन्नौज और बुन्देलखण्ड को जीत कर सोमनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर लूटा। ईसवी सन् ११७५ तक इस गजनी वंश का पश्चिमी पंजाब पर अधिकार रहा। विचारने योग्य बात यह है कि जिस समय महमूद केवल १४००० योद्धाओं को लेकर उत्तर भारत को रौंद रहा था, उस समय दक्षिण का चोल राजा छः लाख सेना का अधिपति था। पर उसने महमूद की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। वह बर्मा और बंगाल को जय करने की धुन में रहा। पंजाब के ब्राह्मण राजा की पुकार पर मध्यभारत, बुन्देलखण्ड, कन्नौज, अजमेर, दिल्ली और ग्वालियर के राजाओं ने सहायता की, पर इन सबको परास्त होना पड़ा।

महमूद का यह आक्रमण एक विज्ञप्ति थी। यदि भारत में कोई विलक्षण नरेश होता तो भविष्य में होने वाले आक्रमणों से भारत की रक्षा कर लेता। सिकन्दर ने भी पंजाब को अक्रान्त किया था परन्तु उस समय केवल छः वर्ष में ही भारत स्वतंत्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
हो गया था। परन्तु यह चन्द्रगुप्त चाणक्य जैसे समर्थ पुरुषों का चमत्कार था। इस काल में ऐसा कोई पुरुष पुंगव भारत में न था जो महमूद के निर्बल और असहाय पराजित उत्तराधिकारियों से भी राज्य फेर लेता।

सन ११७५ में शाहाबुद्दीन गोरी ने पंजाब जीता तथा ११९१ में पृथ्वीराज को बन्दी बनाया। ११९३ में काशी, ११९४ में ग्वालियर, ११९७ में पालों और गुजरात को, तथा ११९९ में सेनों को जीत लिया। १२०३ में बुन्देलखण्ड जय हुआ, १२०६ में शहाबुद्दीन मर गया तथा गुलाम वंश भारत का अधिपति हुआ, इस वंश में कुतुबुद्दीन अल्तमश और बलबन मुख्य थे। गुलाम बादशाहों के समय में ही मुगलों ने भारत पर आक्रमण किया जिनमें चंगेज खां हलांकू का आक्रमण अत्यन्त भयानक था।

इसके बाद ई० स० १२९४ से १३१४ तक खिलजी का दौर हुआ। इस वंश का प्रसिद्ध बादशाह अलाउद्दीन था। इसने ई० स० १३०३ में चित्तौड़, १३०४ में रणथम्भौर तथा महाराष्ट्र का देवगिरी का यादव साम्राज्य ध्वंस किया। इसने हिन्दुओं पर खूब कड़ाई की। अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद अकबर के राज्यारोहण तक मुस्लिम शक्तियां डवाँडोल रहीं। उनकी इस निर्बलता से लाभ उठाकर विजयनगर, बहमनी राज्य, जौनपुर, मालवा, गुजरात, दक्षिण बंगाल आदि देशों में स्वतन्त्र राज्य कायम हो गये। काश्मीर सन १२२५ में स्वतंत्र हुआ।

इस गड़बड़ी के मध्य काल में फिर एक बार साहित्य की प्रवृति रुकी और अकबर के राज्यारोहण तक यही दशा रही। ई० सन १३९८ में तैमूर के धावे ने दिल्ली के मुसलमान शासकों के रहे सहे बल को भी ध्वस्त कर दिया। सन १४१४ तक भारत एक प्रकार से अराजक अवस्था में रहा। सैयदों ने १४४० तक दिल्ली के आस पास राज्य किया। यही दशा लोदियों की रही। ई० सन १४७३ में बहलोल ने अलबत्ता जौनपुर को जीतकर दिल्ली में मिलाया। अन्त में बाबर ने सन १५२६ में चित्तौड़ के राणा सांगा को परास्त किया, पंजाब को आक्रान्त किया तथा बंगाल और बिहार को जीतकर मुगल राज्य का सूत्रपात किया। पानीपत और फतहपुर सीकरी के युद्धों में हिन्दू सत्ता को भारी धक्का पहुँचा। बाबर के सैनिक यद्यपि मुगल कहलाते थे, पर वे वास्तव में कई जातियों के थे। बाबर स्वय मुगल न था। उसका पूर्वज तैमूर तुर्क था माँ अवश्य मुगल थी। बाबर और हुमायूँ का संघर्ष शेरशाह सूरी से हुआ। कभी वह जीतता और कभी ये जीतते। अंत में हुमायूँ ई० १५५५ में मुगल साम्राज्य की स्थापना में सफल हुआ। इस प्रकार ई० सन ७१२ से १५५० तक का ८३८ वर्ष का दीर्घ काल संघर्षों, विचित्र परिवर्तनों तथा कठिनाइयों का काल रहा।

अन्धकाल पर एक विहंगम दृष्टि—यह स्वाभाविक था कि ८३८ वर्ष का यह दीर्घ अन्धकाल प्रगतिहीन रहा। निरन्तर आक्रान्ताओं के अधिकार में पड़कर हिन्दू

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म, संस्कृति तथा साहित्य की प्रगति रुक गई। मुसलमानों के इस देश में आने के बाद देश भर में जो राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हुई, वह बहुत ही कष्टकर थी। उनके हाथ में केवल देश का शासन ही नहीं चला गया, अपितु सामाजिक संस्थाओं, धार्मिक क्रियाओं, आर्थिक व्यवहारों तथा कला व्यापार, स्थापत्य, विज्ञान और अन्यान्य राष्ट्रीय जीवन सम्बन्धी बातों में भी बहुत भारी परिवर्तन हो गया। हिन्दुओं की सैनिक शक्ति नष्ट कर दी गई और उन्हें सेना में कोई स्थान नहीं दिया गया। अरबी और फारसी की शिक्षा प्रचलित कर दी गई। अब केवल ब्राह्मण थोड़ी सी काम चलाऊ संस्कृत धार्मिक अनुष्ठानों के लिये पढ़ते थे। यद्यपि अभी तक सारा देश मुस्लिम शासन के आधीन नहीं हुआ था। पर सारा देश मुस्लिम शासन से प्रभावित अवश्य हो गया था। केवल उड़ीसा का प्रान्त ही अकबर के काल तक इस प्रभाव से अछूता रह गया था। मुस्लिम राज्य में हिन्दू एक प्रकार से नागरिकता के अधिकारों से वंचित हो गये थे और उन्हें सामूहिक रूप से अर्ध दास के रूप में रहना पड़ता था। इन सब कारणों से उनके मन में आत्मसम्मान के भाव ही नष्ट हो गये थे। राजपूतों के हिन्दू राज्य अवश्य हिन्दूपन की रक्ष कर रहे थे। परन्तु वे पूर्ण स्वेच्छाचारी और राजनीति से अनभिज्ञ थे। उनकी राज्य पद्धति सामंतशाही थी। उसमें केवल गर्वीले राजपूत ही अधिकार-सम्पन्न थे। शेष सम्पूर्ण प्रजा उनके अनुग्रह पर निर्भर थी।

मुसलमानों के भारत में आने से प्रथम सम्पूर्ण भारत में एक ही सभ्यता और संस्कृति अखंड रूप में स्थिर थी। बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव आदि भिन्न भिन्न मत होने पर भी उनका सांस्कृतिक जीवन एक था। सबकी एक भाषा, एक चलन, एक समाज था। परन्तु मुसलमानों के सम्बन्ध में यह बात न थी। सिद्धान्त की दृष्टि से हिन्दू और मुसलमानों के धर्म में कोई अन्तर न था। परन्तु व्यवहार उनका हिन्दुओं से एक दम विपरीत था। सबसे आपत्तिजनक बात यह थी कि वे केवल भारत की राज सत्ता को लेकर ही संतुष्ट न थे। अरब के मुसलमानों ने तो ऐसा ही किया था, परन्तु पश्चिम प्रदेश के तुर्कों और पठानों ने हिन्दुओं की धर्म भावना और सामाजिक जीवन पर बलात अपना प्रभाव डालना चाहा, जिससे भारी संघर्ष उठ खड़ा हुआ, जिसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों से सब प्रकार का असहयोग हिन्दुओं का एक धार्मिक रूप धारण कर लिया। परन्तु इस संघर्ष में सबसे महत्व-पूर्ण और अदभुत बात यह थी कि जिस मुस्लिम शक्ति ने इतनी सरलता से हिन्दुओं की राजशक्ति को धूल में मिला दिया और जिसका तनिक सा धक्का खाते ही हिन्दू राज्य बिखरते चले गये, वह शक्ति अपना सारा बल खर्च करके और दीर्घ काल तक प्रयत्न करके भी हिन्दू समाज को दबाने में सफल नहीं हुई। बौद्धों का अवश्य ही उन्होंने भारत से मूलोच्छेद कर दिया। एक समय जिनकी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संस्कृति की धर्म-पताका नील महानद से ब्रह्मपुत्र तक फहरा चुकी थी, उसे इस्लाम ने उसकी जन्म भूमि से एक बारगी ही निकाल दिया। नालन्द और विक्रम-शिला के विश्व-विश्रुत विद्यापीठ भूमिसात कर दिये गये, बौद्ध मठों, विहारों को या तो ढहा दिया गया या उन पर मस्जिदें बना दी गयीं। मुण्डित बौद्धों के पूर्वी भारत में इतने सिर काट गये कि मुसलमानों को भारत में एक भी बौद्ध धर्म के सिद्धांत की व्याख्या करने वाला नहीं मिला। जो मरने से बचे, वे तिब्बत, नेपाल, भूटान और चीन की ओर भाग गये। कुछ नेपाल और उसके आसपास बिखर गये।

ब्राह्मणों के हाथ से राजनीति, शिक्षा और न्याय शासन छिन चुके थे, पर देश की धार्मिक व्यवस्था उनके ही हाथ में बनी रही। गर्वीले राजपूत, जिनके बड़े बूढ़े केसरिया बाना पहिनकर जूझ मरे थे, और जिनकी दादियां जौहर की आग में भस्म हो छार हो गई थीं, अब अपनी टूटी तलवार फेंक कर हल जोतने लगे थे। बहुत प्रथम ही बौद्धों की नैतिकता में अन्तर आ चुका था तथा हिन्दू निष्ठा डूब चुकी थी। धर्म में वाम मार्ग, तन्त्र और अन्ध विश्वासों का समावेश हो चुका था। इस पर मुस्लिम बलात्कार के कारण जो आर्थिक, नैतिक और राजनैतिक अर्धदासता हिन्दू जनता में उत्पन्न हुई, उसने उनका बहुत दूर तक नैतिक पतन कर दिया था। विजय और अधिकार में मत्त मुसलमानों के विलासी और व्यसनी जीवन की छाया उन पर पड़ चुकी थी। इसी के फलस्वरूप उस काल के नगर सदाचारहीन स्त्री-पुरुषों से भर गये थे। अकेले विजयनगर के राज्य में १५ हजार फनाम वेश्याओं पर टैक्स लगाकर वसूल किये जाते थे, जिससे पुलिस का खर्च चलता था। निकोली-कोन्ही ने लिखा है कि "विजय नगर में बहु विवाह प्रथा पर कोई रोक नहीं है। वहाँ के रहनेवाले जितनी स्त्रियों को चाहते हैं ब्याह लेते हैं और उस पुरुष के मरने पर उन्हें सती होना पड़ता है।" वह लिखता है कि 'वहाँ का राजा भारत के सब राजाओं से शक्तिवान है। उसके अन्तःपुर में १२ हजार स्त्रियां हैं, जिनमें से ४ हजार स्त्रियां जहां राजा जाता है, उसके साथ जाती हैं। इन स्त्रियों के जिम्मे पाकशाला का प्रबन्ध है। अन्तःपुर की स्त्रियां २, ३ हजार तो ऐसी हैं जो इस शर्त के साथ राजा से ब्याही गयी हैं कि राजा के मरने पर वे उनके साथ सती हो जायेंगी। यह शर्त उनकी भारी प्रतिष्ठा की सूचक है।"

इस हिन्दू राजा की भांति मुसलमान सुल्तानों ने भी हरम में स्त्रियों की भीड़ भरी। बहमनी सुल्तान फिरोजशाह के हरम में ८०० स्त्रियाँ प्रतिदिन आती थीं। उसने अस्थायी पद्धति पर एक निश्चित समय तक के लिये सैंकड़ों स्त्रियों से विवाह किया। इन बड़े लोगों के अनुकरण पर छोटे छोटे सामन्त सरदार भी अपनी अपनी शक्ति और हैसियत के अनुसार स्त्रियां रखते थे। मालाबार में खुल्लम-खुल्ला बहु-विवाह प्रचलित था। राजपूत अवश्य स्त्रियों की कुछ प्रतिष्ठा करते थे, पर बहुविवाह उनमें भी प्रचलित था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतना होने पर भी हिन्दू स्त्रियां परदा नहीं करती थीं। मुस्लिम राज्यकाल में स्त्रियों का यह विकास खो गया। वे परदों में रहने, सती होने और जौहर करने को विवश हुईं।

यह स्वाभाविक ही था कि इस प्रकार के आक्रमणकारियों के अधिकार में पड़कर हिन्दू धर्म, संस्कृति तथा साहित्य की प्रगति रुक गयी। हां, इस देश में एक नई भाषा के साहित्य का उदय अवश्य हुआ। वह फारसी थी। बाबर ने अपनी दिनचर्या फारसी में लिखकर उसका सूत्रपात किया, जिसमें उसने हिन्दुओं के प्रति घोर घृणा व्यक्त की। आगे चलकर अकबर के राज्यकाल में फारसी भाषा की और जड़ जमी। इस काल के मुस्लिम विद्वानों में हम अमीर खुसरो को छोड़कर और ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं पाते, जिसके हृदय में हिन्दुओं की पुस्तकों और साहित्य एवं उनकी भाषा के प्रति समादर के भाव हों। महमूद गजनवी के साथ आने वाले विद्वान अलबरूनी ने अवश्य हिन्दू धर्म और हिन्दू शास्त्रों का मनन किया, परन्तु सहानुभूति उसने भी नहीं रखी। केवल आलोचना मात्र ही की।

फिर भी इस प्रकार मुस्लिम शासकों के द्वारा उपेक्षित रहने पर भी हिन्दू निष्क्रिय नहीं रहे। परन्तु इस काल में भास्कराचार्य के ज्योतिष ग्रंथ, टीका और न्यामक ग्रंथों के अतिरिक्त और कोई महत्वपूर्ण रचना नहीं हुई। नाटक साहित्य का तो सर्वथा लोप ही हो गया। १३ वीं और १५ वीं शताब्दी के बीच मिथिला न्याय और स्मृति का केन्द्र रहा। रघुनन्दन ने १३ वीं शताब्दी में बंगाल में नियमों में सुधार किये। १४ वीं शताब्दी में कर्नाटक संस्कृत का प्रमुख केन्द्र रहा। व्याकरण अलंकार छन्द आदि विषयों पर इस काल में रचनाएं हुईं। सायण ने १४ वीं शताब्दी में अपना प्रसिद्ध वेद भाष्य रचा। माधवचार्य ने केवल वेदान्त पर ही ३७ ग्रंथ लिखे। निम्बार्क ने अपना प्रख्यात ग्रन्थ "वेदान्त पारिजात सौरभ" इसी काल में लिखा। इसी काल में चन्दबरदाई का प्रसिद्ध "पृथ्वीराज रासो" लिखा गया। जगनिक ने आल्हा, गजल और शारंघधर ने हम्मीर रासो और हम्मीर काव्य १४ वीं शताब्दी में लिखे। नामदेव, रामानन्द, कबीर और नानक ने १५ वीं शताब्दी में प्रेम की धारा बहाई। दक्षिण में तामिल, तेलगू और कनाड़ी भाषा का साहित्य समुन्नत हुआ।

विजयनगर के राजाओं ने तेलगू को आश्रय दिया। इनमें अनेक प्रसिद्ध साहित्य सेवी हुए। बंगाल में कृतिवास मालाधर ने महाभारत, भागवत और रामायण का अनुवाद किया। पदावलियां इसी काल में लिखी गईं, जिनमें चण्डीदास और विद्यापति ने रसोत्कृष्ट प्रकट किया। विविध ललित-कलाओं का भी प्रकटीकरण हुआ। फारस के संसर्ग से भारतीय संगीत और चित्रकला एवं स्थापत्य में नई प्राण प्रतिष्ठा हुई। खुसरो ने सितार का आविष्कार किया। दिल्ली की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुतुबमीनार, मांडू का विजय स्तम्भ तथा जहाज महल, गुलबर्गा के प्रासाद, आबू के जैन मन्दिर तथा बंगाल की राजधानी गौड़ की इमारतें, जिनके खण्डर आज २० मील तक फैले हुए हैं, इसी काल की स्थापत्य कला के नमूने हैं।

इस प्रकार हिन्दू मुस्लिम संघर्ष का एक दीर्घ काल बीत गया। ये दोनों जातियां एक देश में रहकर तथा सब प्रकार आर्थिक और राजनैतिक स्वार्थों में सम्मिलित रहकर भी एक न हो सकीं, न परस्पर सहयोग ही कर सकीं। केवल सूर वंश ने ही हिन्दुओं से सहयोग के लिये हाथ बढ़ाया। उसने समाज का यह गृह युद्ध समाप्त कर दिया। हिन्दुओं को उच्च पद दिये। सेनाओं में हिन्दुओं का प्रवेश किया तथा व्यवस्थित राज्यसत्ता का प्रारम्भ किया। मुस्लिम संसर्ग के इतिहास में प्रथमबार एक हिन्दू सरदार हेमू को सूरवंश के लिये मुगलसत्ता का सामना करके प्राणार्पण करते हम देखते हैं।

इसके बाद सम्राट अकबर के सहयोग में सम्पूर्ण हिन्दू राष्ट्र ने उत्साह के साथ उसके साम्राज्य के निर्माण में अपना लोहू-पसीना बहाया। वीर राजपूत एक के बाद दूसरा देश-विजय करके उसके चरणों में रखने लगे। कविगणों ने उसके प्रताप और गुण-गरिमा के मुक्त कण्ठ से गीत गाये। हिन्दू मुत्सद्दी मुन्शी, पण्डित, साधु, सन्त, महात्मा, सभी कोई इस वर्चस्वी सम्राट के दरबार की शोभा बढ़ाने लगे। हिन्दू राजा और सरदार इस सम्राट के दरबारी सेवक ही नहीं बने, सम्बन्धी और धर्म शिष्य भी बनकर गर्व अनुभव करने लगे। यह वास्तव में हिन्दू मुस्लिम संयुक्त जीवन का एक अकल्पित प्रारम्भ था।

मुगल साम्राज्य की स्थापना—मुगल साम्राज्य की स्थापना अपने युग की एक असाधारण घटना है। केवल राजनैतिक दृष्टिकोण से ही नहीं सांस्कृतिक दृष्टि-कोण से भी हम इस घटना को महत्व दे सकते हैं। भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना का अर्थ भारत की हिन्दू जातियों का मुसलमानों से पराजित होना नहीं कहा जा सकता। यह कार्य तो पठानों और उनके पूर्ववर्ती आक्रान्ता सुल्तानों ही के राज्यकाल में हो गया था। मुगल साम्राज्य अकबर के नेतृत्व में हिन्दू जनता के सम्मुख आतंक, पराजय और क्रांति नहीं लाया, व्यवस्था, पद्धति और संस्कृति लाया।

अकबर द्वारा फतहपुर सीकरी का शिलान्यास— जब सम्राट अकबर फतहपुर सीकरी का शिलान्यास कर रहा था, उस समय भारत दीर्घकालीन उत्पीड़नों और अनिश्चत एवं विपरीत परिस्थितियों से गुजरता हुआ भी तत्कालीन सब यूरोपियन देशों से अधिक समृद्ध और आबाद था। निस्सन्देह तब कलकत्ता, बम्बई जैसे महानगर नहीं थे। परन्तु आगरा, कन्नौज, विजयनगर, पटना, गोलकुण्डा, बीजापुर, मुलतान, लाहौर, दिल्ली, इलाहाबाद, उज्जैन, अहमदाबाद, अजमेर और सूरत अत्यन्त समृद्ध और सम्पन्न नगर थे। वे विद्या, संस्कृति और वाणिज्य के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्रुत केन्द्र थे। इनमें से किसी भी एक नगर की स्पर्द्धा तत्कालीन लन्दन और पेरिस नहीं कर सकता था। मोरलैंड के हिसाब से उन दिनों फ्रांस की आबादी इस समय से आधी थी, तथा इंगलैण्ड की आबादी इस समय से ८ वां हिस्सा थी। विजयनगर के सम्बन्ध म कण्डी, अब्दुल रजाक तथा पेज ने लिखा है कि—"उसकी आबादी इतनी अधिक है कि जिस विश्वास करना कठिन है। वहाँ के हिन्दू राजाओं के पास २० लाख सेना सदा तैयार रहती थी। ऐसी घनी आबादी, दक्षिण, गुजरात, पंजाब तथा उत्तरीय भारत की भी थी। उन दिनों दो लाख सशस्त्र योद्धा चाहे जब आगरा में एकत्र किये जा सकते थे। बंगाल की राजधानी गौड़ के मकानों की संख्या १२ लाख थी।" सूरत से लाहौर तक, लाहौर से आगरा तक, आगरे से गौड़ तक, जिन जिन यूरोपियन यात्रियों को घने बने हुए गाँवों में से होकर जाना पड़ता था वे वहां की समृद्धि और सम्पन्नता देखकर हैरान हो जाते थे। यही सब देखकर उन्होंने तत्कालीन भारत के सम्बन्ध में एक स्थिर सम्मति प्रकट की थी कि आबादी और खुशहाली दोनों ही दृष्टि से उस समय के भारत की केवल चीन ही समता कर सकता था।

मुगल और उनके संगी साथी विदेशी सब भारतीय हो चुके थे। उन्होंने भारतीय रहन-सहन, भारतीय देश और भारतीय विचारों को अपना लिया था। वे अन्य देशों के मुसलमानों से पृथक भारतीय मुसलमान बन चुके थे। वे भारतीयों से पान खाना, हिन्दी बोलना, हिन्दू पर्वों और त्यौहारों को मानना तथा हिन्दू धर्म ग्रन्थों का आदर करना सीख चुके थे।

अकबर से प्रथम—अकबर द्वारा स्थापित मुगल साम्राज्य से प्रथम बंगाल और दक्षिण में जो मुसलमान बादशाह थे, उन्होंने प्रथम ही बंगला और मराठी भाषा को विविध साहित्य की समृद्धि से सम्पन्न करना प्रारम्भ कर दिया था। उन्होंने संस्कृत, हिन्दी, फारसी, ग्रन्थों के देशी-भाषाओं में अनुवाद कराये थे।

दिनेशचन्द्र सेन ने लिखा है—"इस तरह के अनगिनत उदाहरण मिलते हैं कि जिनमें मुसलमान बादशाह और सरदारों ने संस्कृत, फारसी ग्रन्थों का अपनी ओर से बंगला में अनुवाद कराया और दूसरों को इस काम में सहायता दी····· जबकि बंगाल के बलवान बादशाहों ने देश भाषा को अपने दरबारों में उच्च स्थान दिया, तो यह स्वाभाविक था कि हिन्दू राजाओं ने उसका अनुसरण किया।···इस प्रकार हिन्दू राजाओं के दरबारों में बंगाली कवियों की नियुक्ति का रिवाज मुसलमान बादशाहों की देखादेखी हुआ।"

बहमनी बादशाहों ने दक्षिण में मराठी भाषा को समुन्नत करने में बहुत काम किया। अली आदिल शाह के दफ्तरों में मराठी भाषा ही काम में लाई जाती थी। मराठे उच्च पदों पर नियुक्त होते थे। कुतुबशाह स्वयं हिन्दी और दक्षिणी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषाओं के अच्छे कवि थे। पंजाब और सिन्ध की भाषायें भी उन्नत हुईं। सच पूछा जाय तो यह समय नई उन्नत देश भाषा के उत्थान का काल था। न केवल भाषा का, अपितु इस समय भारत के प्रत्येक क्षेत्र में एक नवीन संकलनात्मक सभ्यता का विकास हो रहा था, जो न बौद्ध थी, न हिन्दू, न मुसलमान, न वैदिक, परन्तु शुद्ध भारतीय थी तथा इन सब सभ्यताओं और संस्कृतियों के मेल से बनी थी। उसी ने आगे चलकर देश में राष्ट्रीयता और एक देशीयता को जन्म दिया, तथा उस युग में शिल्प, साहित्य, कला, व्यापार और सामाजिक जीवन में उच्चतर आदर्शों का प्रादुर्भाव किया। इस प्रकार जब भारत की विविध प्रान्तीय भाषायें पहली बार अपने अन्दर उच्च तथा स्फूर्ति दायक साहित्य का सृजन कर रही थीं, तभी भारत के मध्य केन्द्र में सम्राट अकबर ने भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी को शृंगार और जीवन प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया।

अकबर का सांस्कृतिक काल– अकबर का जन्म ई० सन १५४३ में हुआ, और उसकी मृत्यु सन १६०५ में हुई। उसने ६२ वर्ष की आयु पाई, लगभग ४० वर्ष राज्य किया। अकबर का राज्य काल तो ४० ही वर्ष है, परन्तु उसका सांस्कृतिक काल सौ वर्ष था। अकबर के अनुशासन में जो सांस्कृतिक उत्थान हुआ, उसका विकास १०० वर्षों तक चलता था। अकबर के इस सांस्कृतिक १०० वर्ष में ब्रज भाषा के साहित्य ने पूरी प्रौढ़ता प्राप्त की। इसी काल में सूर, तुलसी, खानखाना, रहीम, बिहारी, मीरा, गंग, टोडरमल, बीरबल जैसे महाकवि पैदा हुए। अकबर और उसके उत्तराधिकारी मुगल बादशाह और शहजादे सभी हिन्दी की कविता और विकास में रुचि रखते थे। अकबर को ब्रज भाषा के विकास में वही स्थान दिया जा सकता है, जो संस्कृत साहित्य के विकास के लिये भोज विक्रम और कनिष्क को दिया गया है। अकबर के इस सांस्कृतिक सौ वर्ष में लगभग ढाई सौ कवि हुए। जबकि सूरदास ने अपनी रचना का आरम्भ किया, उस समय हिन्दी की उत्पत्ति को ८०० वर्ष बीत चुके थे,, परन्तु इन ८०० वर्षों में केवल ६, ७, ही कवि उत्पन्न हुए थे। अकबर के साँस्कृतिक प्रभाव से जो हिन्दी के प्रमुख कवि हुए, वे हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे। उसमें स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान कविता करती थीं। जिनमें हिन्दुओं में मीरा और मुसलमानों में ताज का नाम प्रमुख है।

अंग्रेजी राज्य का आरम्भ और अंत

यूरोप के प्रथम चरण—१५ वीं सदी तक यूरोप के लोगों को बाहरी दुनिया का बहुत कम ज्ञान था। १५ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में वास्कोडिगामा अफ्रीका का चक्कर लगाकर पहले पहल भारत पहुँचा। उसके बाद हालैंड, फ्रांस और ब्रिटेन। इन विदेशी व्यापारियों की कम्पनियाँ केवल व्यापार के लिये भारत में आईं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुर्तगीजों ने अपना केन्द्र भारत का पश्चिमी समुद्री तट गोआ को बनाया। उस समय यह स्थान मुगल प्रभाव से बाहर था। और दक्षिण में उस समय कोई प्रभावशाली राजा न था। इससे उन्होंने पूरा फायदा उठाया। इस बीच हालैंड, फ्रांस और ब्रिटेन के व्यापारी भी भारत में आने लगे।

और जब औरंगजेब की मृत्यु के बाद देश की राजनैतिक अवस्था कमजोर हुई, तो उन्होंने उससे लाभ उठाकर अपनी सत्ता देश में स्थापित की। १८ वीं शताब्दी के समाप्त होते होते अंग्रेजों ने अपना शासन आरम्भ किया और १९ वीं शताब्दी के मध्य भाग तक पहुँचते-पहुँचते इन्होंने सम्पूर्ण भारत पर अधिकार कर लिया। परन्तु उस समय तक वे धार्मिक परम्पराएं और पुराने विश्वासों की भी परवाह नहीं करते थे। अतः भारत की जनता में उनके प्रति विरोध भावना जोर पकड़ती गई और १८५७ में उनके विरुद्ध बहुत भारी विद्रोह उठ खड़ा हुआ, जिसे उन्होंने कुचल दिया। इसके बाद भारत में अङ्गरेजी शासन की जड़ें स्थापित हो गईं।

यूरोप की क्रांति—१८ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप में राजनैतिक और व्यवसायिक क्रान्तियां हुईं, जिससे यूरोप में एक नई सभ्यता का जन्म हुआ। इस क्राँति के मूलाधार वैज्ञानिक आविष्कार थे, जिसका प्रभाव सारी विश्व की जातियों पर पड़ा। और इसके फलस्वरूप भारत भी आधुनिक युग में आ गया। ब्रिटिश साम्राज्य के स्थापित होने पर देश में व्यवस्था और शान्ति छा गई कि जिसका देश के लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ा, और उन्होंने सहयोग दिया। उन्होंने दो नई बातें कीं, एक तो यह कि अङ्गरेजी भाषा को राज भाषा बनाकर उसे भारतीयों को सिखाया और उन्हें नौकर रक्खा। दूसरे भारतीयों को अपनी सेना में भर्ती करके उन्हें नई युद्ध विद्या की शिक्षा दी। उन्होंने भारत में नई पक्की सड़कें बनवाईं, रेल, तार, डाक की व्यवस्था की। जिससे भारत का आर्थिक जीवन बड़े तेजी से बदलने लगा और उनके जीवन में विज्ञान का प्रवेश हुआ।

भारतीय वातावरण—इस समय भारत में अनेक धर्माचार्य देश का उपकार कर रहे थे, जिनमें राजा राममोहन राय और दयानन्द स्वामी विचारक और सुधारक थे। इन्होंने देश के लोगों को अपनी भाषा, अपना देश, अपनी संस्कृति के प्रति जागरुक किया। उनके और उनके अन्य साथियों के विचारों के सम्पर्क में आकर भारत में विचार क्रांति हुई, और कुछ देशभक्त लोगों ने राष्ट्रीय महासभा की स्थापना की जिसका उद्देश्य ब्रिटिश शासन का अन्त करके देश में स्वराज्य की स्थापना करना था। यह राष्ट्रीय सभा निरन्तर सुसंगठित होती गई। तिलक, गोखले, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, रासबिहारी घोष, लाला लाजपतराय, दादाभाई नौरोजी जैसे बड़े विचारकों और सुधारकों का इसमें प्रवेश हुआ और अन्त में गांधी जी के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नेतृत्व में में सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, सरदार वल्लभभाई पटेल, जवाहर लाल नेहरू, सरोजिनी नायडू आदि प्रमुख नेताओं के भागीरथ प्रयत्न से सन १९४७ में भारत अंग्रेजों के ब्रिटिश शासन से मुक्त हो गया।

नई चेतना

अंगरेजों की शिक्षा नीति—१८वी शताब्दी के मध्य में जब बंगाल में अंग्रेजों ने राज्यारम्भ किया, तो उनका ध्यान इस बात पर गया कि भारतीयों को अंग्रेजी सिखाकर उनसे राज-काज में सहायता ली जाय। १८वीं शताब्दी के अंतिम चरण में वारेन हेस्टिंग्ज ने कलकत्ते में एक मदरसे की स्थापना की जिसमें केवल फारसी और अरबी पढ़ाई जाती थी। लगभग इसी समय एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल की स्थापना हुई, और काशी में एक संस्कृत कालेज खोला गया। देश के प्रमुखों ने ईसाई, पादरियों की देखा-देखी नवीन शिक्षा से प्रेरित हो कलकत्ते में हिन्दू कालिज की स्थापना की जो आगे चलकर प्रेसीडेंसी कालिज के नाम से विख्यात हुआ। अभी तक अंग्रेजों ने शिक्षा के स्वरूप पर विचार नहीं किया था। बाद में लार्ड मैकाले की सम्मति से भारतीयों को अंग्रेजी सिखाने के लिये कलकत्ता यूनिवर्सिटी स्थापित की गई। ब्रिटिश युग की यह पहली यूनिवर्सिटी सन १८५७ में स्थापित हुई।

शिक्षा प्रसार और मध्य वर्ग का उत्थान—इसके बाद ३० वर्षों में बम्बई, मद्रास, इलाहाबाद, लाहौर में भी ४ यूनिवर्सिटियां स्थापित की गईं, और अंग्रेजी शिक्षा शुरू हुई। इन यूनिवर्सिटियों में मध्यम वर्ग के मनुष्य शिक्षा प्राप्त करके सरकारी नौकरियां प्राप्त करने लगे। अंग्रेजी नौकरी पाकर और अंग्रेजी शिक्षा पाकर उनकी भाषा, विचार, मानसिक चिन्तन, वेश-भूषा और रहन-सहन अंग्रेजी हो गये। वे अंग्रेजी बोलने और अंग्रेजों की तरह रहने लगे। परंतु कुलीन भारतीय हिन्दू और मुसलमान धार्मिक सङ्कीर्णता और कट्टरता के कारण इस नई शिक्षा में आगे बढ़ने से हिचकिचाते थे। परन्तु इन शिक्षा केन्द्रों में गणित, भूगोल, इतिहास, रसायन शास्त्र, इञ्जीनियरिंग, चिकित्सा शास्त्र, साहित्य और राजनीति का अध्ययन और अङ्गरेजों के सम्पर्क में रह कर देश का शिक्षित वर्ग, देश की सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक दुर्दशा को अनुभव करने लगा और भारत में अंगरेजी सरकार के यंत्र का पुर्जा बनकर रहने में अपनी हीनता अनुभव करने लगा। इसी समय भारत में धार्मिक और सामाजिक सुधार के आन्दोलन हुए। और १९वीं शताब्दी का अन्त होते-होते आर्य समाज, ब्रह्म समाज के सङ्गठन बन गए जिनमें नई चेतना के युवक तेजी से सम्मिलित हुए और हिन्दू जाति में एक नई जागृति उत्पन्न हुई। विचारों की स्वतंत्रता, स्त्रियों की स्वतन्त्रता, देश की सेवा के भाव सारे देश में उत्पन्न हुए और बहुत सी सामाजिक व धार्मिक सुधारों की संस्थायें बन गईं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुधार आन्दोलनों का आरम्भ—१९वीं शताब्दी के आरम्भ में जो सुधार आन्दोलन आरम्भ हुए, वे सब केवल नई शिक्षा के परिणाम न थे, हिन्दू धर्म की कुरीतिय को दूर करने के प्रयत्न भी थे। बंगाल में राजा राममोहन राय और श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर ने ब्रह्मसमाज की स्थापना की जिसमें बिना जाति और धर्म के भेद भाव के कोई भी व्यक्ति ईश्वर की उपासना कर सकता था। आगे केशवचंद्र सेन ने भी ब्रह्म समाज को उन्नति दी।

ब्रह्म समाज द्वारा चलाये गये आन्दोलन के कारण हिन्दू धर्म में भी सुधार की प्रतिक्रिया हुई। महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज बना। जस्टिस रानाडे ने महाराष्ट्र में बहुत से सुधार किये। उत्तरी भारत में स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की। स्वामी दयानन्द काठियावाड़ के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए और बुद्ध और महावीर के समान उन्होंने भी युवावस्था में घरबार त्याग दिया। उन्होंने वैदिक धर्म, हिन्दी भाषा और सदाचार के नियम की शिक्षायें दीं। उन्होंने ईसाइयों और मुसलमानों को फिर से हिन्दू बनाने की परिपाटी चलाई। उनके अनुयाइयों ने पंजाब में नई और पुरानी विद्या के केन्द्र स्थापित किये। स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की, जहां प्राचीन ब्रह्मचारियों के समान रहकर विद्यार्थी वेद शास्त्रों की नए रूप से व्याख्या करने लगे। महात्मा हंसराज और लाला लाजपतराय ने लाहौर में दयानन्द कालिज खोला, जहां विद्यार्थियों को आर्य समाज के आदर्शों पर रहकर नए ज्ञान विज्ञान की शिक्षा दी जाने लगी। लाला देवराज ने जालन्धर में कन्या महाविद्यालय खोला। इन तीनों शिक्षा केन्द्रों ने उत्तर भारत के हिन्दुओं की संस्कृति के उत्थान में बड़ा भारी कार्य किया।

रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि ने ज्ञान और सेवा का प्रसार किया। लाला लाजपतराय, गोपाल कृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक देश के उत्थान में जुट गये।

मुसलमानों की प्रतिक्रिया—आरम्भ में मुसलमानों ने इस क्रान्ति में भाग नहीं लिया। अंग्रेजों ने मुस्लिम शासकों से राज्य छीना था और सन ५७ के विप्लव में मुस्लिम रियासतों को छिन्न-भिन्न किया था, इसलिये वे अंग्रेजों से घृणा करते थे। मुस्लिम धर्म की कट्टरता भी उनके धर्म में बाधक थी। परन्तु अलीगढ़ के सर सैयद अहमद खां ने उन्हें प्रगति की राह पर लगाया और अलीगढ़ में एक मुस्लिम कालिज खोला जो मुस्लिम संस्कृति का प्रधान केन्द्र बन गया। इस राष्ट्रीय जागरण के साथ ही ब्रिटिश शासकों ने इसमें सुधार किये और सती आदि की प्रथा कानून बनाकर रोकी।

इस समय देश में अनेक विद्वान पैदा हुए जिन्होंने नवीन प्रेरणा से साहित्य को मुखरित किया। बङ्गाल के लेखकों में राजेन्द्रलाल मिश्र, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माइकेल मधुसूदन दत्त और बंकिमचंद्र चटर्जी प्रमुख हैं। इन्होंने बङ्ग भाषा और बंग साहित्य को परिष्कृत किया। हिन्दी साहित्य को नया रूप देने में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द, राजा लक्ष्मणसिंह, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि का नाम उल्लेखनीय है। गुजराती, मराठी, तामिल, तेलगू आदि भाषाओं ने भी बहुत उन्नति की; उर्दू के कवि हाली मुहम्मद, इकबाल, अकबर आदि; मराठी के तिलक, फड़के, आप्टे; गुजराती के रमणलाल बसन्तलाल देसाई आदि प्रमुख साहित्यकारों ने इन्हें नए विचारों से सम्पन्न किया। साहित्य के साथ ही कला और सङ्गीत में भी उन्नति हुई। अवनीन्द्रनाथ टैगौर की चित्रकला और विष्णु दिगम्बर की सङ्गीत कला ने बहुत कार्य किया।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के उत्थापकों में मिश्रबंधु, महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम उल्लेखनीय है।

युग-दर्शन—भारत में युग दर्शन काँग्रेस की काया पलट से आरम्भ हुआ। इस काया पलट का श्रेय गांधी जी को है। जब गांधी जी ने भारतीय रङ्गमञ्च पर प्रवेश किया तो भारतीय राष्ट्र क्रुद्ध और क्षुब्ध था। परन्तु वह गतिरोध से दबा हुआ था। गांधी जी ने भारत को राजनीति विभाग और बातचीत की राजनीति से ऊपर उठाकर लड़ाई और राजनीतिक शक्ति के रूप में परिवर्तित कर दिया। भारतीय राजनीति घर घर परिचित हो गई। भारतीय जनपद गाँधी जी के नेतृत्व में भारतीय जीवन और वातावरण में अभय हो स्वतन्त्रता, समानता के अधिकारों की प्राप्ति के लिये चाहे जिस परिणाम को भोगने को सन्नद्ध हो गये। स्त्रियां भी इस धर्म-युद्ध में पीछे न रहीं। अन्त में ब्रिटिश सरकार को भारत छोड़ देना पड़ा। यह एक ऐसी विजय थी कि जो दुनिया की सब विजयों में अप्रतिभ थी।

पाकिस्तान का विभाजन—बहुत प्रथम ही से सर सैयद अहमद खां और उनके अनुयायी यह अनुभव करते चले आते थे कि मुसलमानों के अल्पसंख्यक होने के कारण उन्हें सदा हिन्दुओं के वशवर्ती होना पड़ेगा। इसलिये भारत के मुसलमानों ने श्री मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम हितों की रक्षा के लिये पृथक राजनीतिक संस्था मुस्लिमलीग का संस्थापन किया। धीरे धीरे दोनों का राजनैतिक रूप एक दूसरे से पृथक हो गया। गांधीजी ने हिन्दू मुस्लिम एकता की बहुत चेष्टा की परन्तु उसका कोई फल न हुआ। और मुसलमान एक पृथक राष्ट्र है यह विचार पक्का होता गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों के भारत से जाते समय मुसलमानों के पाकिस्तान की स्थापना हो गई और मुसलमानों ने मुस्लिम बहुल्य प्रदेशों में पाकिस्तान स्थापित कर लिया जो पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान के नाम से दो भागों में है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वतन्त्र भारत—सन १९४७ में भारत स्वतन्त्र हुआ। इससे भारत में एक नवयुग का प्रारम्भ हुआ। यह युग अफगान, मुगल व ब्रिटिश युग से सर्वथा भिन्न है जो लोकतन्त्र नाम पर आधारित है। भारतीय लोकतन्त्र के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद हैं, जो भारत के सबसे बड़े साधु और विद्वान पुरुष हैं। प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरु हैं जो संसार के सबसे बड़े जीवित शान्तिवादी हैं। इस लोकतन्त्र में इस महान देश की अनगिनत विभूतियां देश को उन्नति के पथ पर आगे बढ़ा रही हैं। भारतीय जन राज्य के धुरीण पुरुष इस बात का भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं कि देश में समानता, न्याय और सभ्यता का प्रसार हो। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उत्कर्ष हो और आधुनिक युग की सब विशेषतायें भारत में विकसित हों।

यद्यपि भारतीय संस्कृति की मूलधारा आर्य संस्कृति है। परन्तु इसमें द्रविड़, बौद्ध, यवन, शक, हूण, अफगान, मुगल व ब्रिटिश संस्कृति का मिश्रण हुआ है और अब भारत धर्म निरपेक्ष की नीति पर चलकर समन्वय की राह पर चल रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय २

हमारा देश

नाम और सीमायें

भारतवर्ष—इस भूखण्ड का प्राचीन नाम भारतवर्ष है। यह नाम स्वायम्भुव मनु के वंशज ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम पर पड़ा था। 'विष्णु पुराण', और वायु पुराण' के कथनानुसार समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण का देश भारतवर्ष कहलाता है क्योंकि वहां भारतीय प्रजा रहती है, जो भरत के ही वंश में थी।

हिन्दुस्तान—भारतवर्ष को सबसे पहले ईरानियों ने हिन्दुस्तान कहा। उन्होंने सिन्धु नदी के नाम पर यह नामकरण किया। पीछे ईरानी भाषा से प्रभावित मध्य एशिया के लोग सारे देश को हिन्दुस्तान कहने लगे।

इण्डिया—ईरानी आक्रान्ता पश्चिम से भारत में सिन्धु नदी के ही मार्ग से आये थे। और इसी प्रकार यूनानी आक्रांता भी उसी मार्ग से आए। वे सिंधु को इन्डस कहते थे इसलिये वे इस देश को इण्डिया के नाम से पुकारने लगे। और इस प्रकार यूनानी भाषा से प्रभावित यूरोपीय देशों में भारत का नाम इण्डिया कह कर पुकारा गया।

इन्द्र द्वीप—भारत की नाम परम्परा में एक कथन यह भी है कि आर्यों के प्रारम्भिक दिनों में चन्द्रवंशी राजाओं के उत्कर्ष के कारण इसे 'इन्द्रदेव' के नाम से पुकारने लगे। चीनी यात्री यूवानचाँग ने अपनी पुस्तक में इस देश का नाम 'इन-टू लिखा है जिसका अर्थ चीनी भाषा में चन्द्रमा होता है।

आर्यवर्त और भरत खण्ड—आर्यावर्त और आर्यों के भारत में आगमन के बाद उत्तर भारत का नाम आर्यावर्त पड़ा। आर्यों का ज्यों ज्यों पूर्व और दक्षिण में विस्तार होता गया, आर्यावर्त का क्षेत्र भी अधिक व्यापक होता गया। परन्तु सम्पूर्ण भारत को कभी भी आर्यावर्त नहीं कहा गया। आयवर्त की परिधि से बाहर का भारत क्षेत्र भरत खण्ड कहलाया।

ब्रह्मावर्त और ब्रह्मर्षि देश—मनु के कथनानुसार सरस्वती और नदी के मध्यवर्ती देश को ब्रह्मावर्त कहा गया है। कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, पांचाल और शूरसेन के प्राँतों को मिलाकर ब्रह्मर्षि देश कहा गया है।

भारत—भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति के बाद समूचे अखण्ड देश का नाम भारत प्रसिद्ध हुआ है। और अब विश्व में यही नाम हमारे देश का विख्यात हो रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाकिस्तान—भारत से अंग्रेजों के चले जाने पर भारत भूमि दो भागों में विभक्त हो गई। एक भारत दूसरा पाकिस्तान। ये विभाग राजनैतिक ही हैं। ऐतिहासिक और भौगोलिक दृष्टि से दोनों देश एक हैं। इन दोनों देशों का अब तक का शताब्दियों का अखण्ड इतिहास है। इन दोनों देशों के बीच जो सीमायें निश्चित की गईं हैं, वे सर्वथा अस्वाभाविक और कृत्रिम हैं। विगत काल में इन दोनों देशों और इनके निवासियों का विकास उत्थान एक ही साथ हुआ है। भारत की साँस्कृतिक व्याख्यायें करती बार हम पाकिस्तान को भारत से पृथक नहीं कर सकते। अत्यन्त प्राचीन काल में तो अफगानिस्तान भी भारत का वैसा ही अङ्ग था जैसा बिलोचिस्तान और काश्मीर।

पाकिस्तान के दो खण्ड हैं। पश्चिमी पंजाब, सिंध, बिलोचिस्तान और पश्चिमोत्तर प्रदेश को मिलाकर पश्चिमी पाकिस्तान बनाया गया है। पूर्वी पाकिस्तान में पूर्वी बङ्गाल का भूभाग है। भारत और पाकिस्तान के रहन सहन, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक आचार विचार सब भारतीय ही हैं। परन्तु अब इस भाग को उर्दू, फारसी और मुस्लिम साम्प्रदायिक भावनाओं से प्रभावित किया जा रहा है।

सीमा—प्राचीन काल में भारतवर्ष का विस्तार आज से बहुत अधिक था। मत्स पुराण के अनुसार इन्द्र द्वीप, सुमेरु, ताम्रपर्णी, नागा द्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारुण आदि नौ द्वीपों को भी भारत से सम्बन्धित बताया गया है। सम्भव है कभी ये द्वीप भारत के उपनिवेश रहे हों। और उन्होंने भारतीय संस्कृति और सभ्यता को अपना लिया हो। प्राकृतिक साधनों का भी भारतीय संस्कृति पर भारी प्रभाव पड़ा। इस देश की सीमाओं ने यहाँ की संस्कृति और सभ्यता को एक मौलिकता प्रदान की। जिससे सम्पूर्ण पूर्वी देशों की सभ्यता उससे प्रभावित हुई। यदि भारत की उत्तरी सीमा पर पर्वतराज हिमालय न खड़ा होता और पश्चिमी दिशा में हिन्दुकुश के अन्तर्वती खैबर और बोलन जैसे दर्रे न होते तो कदाचित भारतीय संस्कृति का स्वरूप दूसरा ही होता। सत्य तो यह है कि भौगोलिक स्थिति का भारतीय संस्कृति पर बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।

विस्तार व सीमायें—भारतवर्ष एशिया महाद्वीप के तीन दक्षिण प्रायद्वीपों में से एक है। इसकी आकृति त्रिभुजाकार है। यह उत्तरी गोलार्द्ध में ७ और ३७ अक्षांश तथा ६२ और ६८ देशान्तर रेखाओं के बीच में है। कर्क रेखा भारत में कलकत्ता से होती हुई जबलपुर और कच्छ तक चली गई है। उत्तर से दक्षिण तक इसकी बड़ी से बड़ी लम्बाई लगभग दो हजार मील है, और अधिक से अधिक चौड़ाई इससे कुछ ही कम। कुल देश का क्षेत्रफल लगभग १९ लाख वर्गमील है।

पर्वतराज हिमालय—भारत के उत्तर में पर्वतराज हिमालय वर्ष के बारह महीने बर्फ से ढका रहता है। हिमालय की जो पर्वत श्रृंखलायें उत्तर पश्चिम की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओर मुड़कर अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान को भारत की सिंध घाटी से अलग करती हैं वे सफेदकोह, कोह सुलेमान, और किर्थर की पहाड़ियां हैं, जो अरब सागर तक चली गई हैं। उत्तर भारत की वास्तविक सीमा हिन्दुकुश पहाड़ है। मध्य युग में खैबर दर्रे के दोनों ओर का प्रदेश प्राय: एक ही राज्य के आधीन था। भारत के पश्चिम में खैबर और बोलन के दर्रे तथा कुर्रम, टोची और गोमल के दर्रे हैं। इन्हीं दर्रों की राह आर्यों से लेकर ईरानी, यूनानी, शक, सीथियन, हूण, तुर्क, अफगान और मुगल आक्राँता भारत में आते रहे हैं। हिमालय की पर्वतमालायें उत्तर पश्चिम से भारत और तिब्बत की सीमायें बनाती हुई पूर्व की ओर चली गई हैं। जिनमें गौरीशंकर और कंचनजंघा जैसे विश्व के सर्वोच्च पर्वत शिखर है।

पूर्वोत्तर में जाकर हिमालय की कुछ शाखायें दक्षिण की ओर मुड़कर भारत की पूर्वी सीमाओं का निर्माण करती हैं। जो पतकोई, नागा, जयन्तिया, खासी, गारो, लुशाई और अराकान योमा के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये पहाड़ियां पूर्वी पाकिस्तान और आसाम को बर्मा से पृथक करती है। और बङ्गाल की खाड़ी तक चली गई हैं।

समुद्र—दक्षिण तथा पश्चिम में भारत बङ्गाल की खाड़ी, हिन्द महासागर और अरब समुद्र से घिरा हुआ है। साँस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय समुद्र का बहुत महत्व है। प्राचीन भारतीय समुद्र द्वारा जहां वाणिज्य व्यापार का विस्तार करते थे वहां वे अपनी सभ्यता के विस्तार के लिये भी समुद्र मार्ग से दूर दूर तक जाते थे। पूर्वी एशिया में जो वृहत्तर भारत का विकास हुआ, उसका कारण समुद्र ही है।

प्राकृतिक दुर्ग—इस प्रकार भारत एक ऐसा प्राकृतिक दुर्ग है, जिसके दो तरफ समुद्र खाई के रूप में है और तीसरी तरफ दुरुह पर्वत मालायें हैं। भारत की ये सीमायें युगों से भारतीय संस्कृति और सभ्यता की रक्षा करती आई हैं। भारत के समान नैसर्गिक सीमा शायद हां संसार के किसी दूसरे देश की होगी।

२—प्राकृतिक-विभाग

यद्यपि इतिहास का निर्माण मानवीय सभ्यता-जय-विजय और जीवन विकास से सम्बन्धित है फिर भी यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि किसी भी देश की प्राकृतिक भौगोलिक स्थिति का इतिहास के मूलाधार-जय-विजय विकास और रहन सहन पर भारी प्रभाव पड़ता है। जातियों का विकास और क्षय उसके चारों ओर के प्राकृतिक साधनों पर ही अवलम्बित है। भारत की प्राकृतिक सीमाओं ने भारतीय संस्कृति जीवन और सभ्यता को एक मौलिकता प्रदान की। और उसकी सभ्यता और दर्शन सम्पूर्ण पूर्वी जातियों की संस्कृति के प्रतिनिधि बन गये। जरा सोचिये तो यदि भारत की उत्तर पूर्वी सीमा पर दुर्बन्द्ध पर्वत राज हिमालय जैसा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रहरी न खड़ा होता तथा पश्चिमोत्तर सीमापर खैबर, बोलन, टोची आदि के दर्रे न होते तो न जाने आज भारतीय संस्कृति के इतिहास की कैसी रूप रेखा होती।

लेमूरिया भूखण्ड—भूतत्व वेत्ताओं का कहना है कि अत्यन्त प्राचीन काल में एशिया से पृथक एक विशाल भूखण्ड था जो आस्ट्रेलिया से लेकर दक्षिणी अफ्रीका तक फैला हुआ था। उसका नाम लेमूरिया था। किसी साधारण भौतिक घटना से यह त्रिकोण भूभाग भारत से मिल गया। लंका, अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह और मलायन पैनिन सुला उसी महाद्वीप के अवशेष हैं।

प्रकृत विभाग—प्राकृतिक दृष्टि से सारा भारत चार भागों में विभक्त है—

(१) सीमान्त के हिमालय प्रदेश।

(२) उत्तर भारत का मैदानी भाग।

(३) विन्ध्य मेखला और मध्य भारतीय पठार।

(४) दक्षिणी प्रायः द्वीप।

(१) **सीमांत के हिमालय प्रदेश**—पश्चिम में बिलोचिस्तान से लेकर ब्रह्मा और आसाम तक हिमालय की पर्वत श्रेणियां फैली हुई हैं। जो प्राय बर्फ से ढकी रहती हैं इसी से इसका नाम हिमालय प्रसिद्ध हुआ है। यहां का जलवायु पाश्चात्य देशों की भांति ठण्डा और स्वास्थ्यकर है। यह अनेक स्थानों पर आबाद है और यहाँ के रहने वाले भारतीय भारत के अन्य प्रान्तों के निवासियों से गोरे हैं। यहाँ केसर, कस्तूरी और पश्मीने का उत्पादन उल्लेखनीय है। इन पर्वत श्रेणियों ने भारत को शेष एशिया से पृथक किया हुआ है। केवल इतना ही नहीं कि हिमालय पर्वत भारत की उत्तरी सीमा बनाता है। भारत के जीवन क्रम पर भी उसका प्रभाव है। मौसम, उपज और राजनैतिक जीवन में हिमालय ने भारत पर काफी प्रभाव डाला है। हिमालय की दुर्गमता के कारण चीन, तुर्कीस्तान और तिब्बत से भारतीय सम्बन्ध बहुत कम रहे। हिमालय की पर्वत श्रृंखला उत्तर पश्चिम से पूर्वोत्तर तक १६ हजार मील की लम्बाई में और १५० से २०० मील तक चौड़ाई में फैली हुई हैं। काश्मीर, गढ़वाल, शिमला और उसके आस पास की रियासतें, उत्तर प्रदेश के पहाड़ी इलाके, तिब्बत, सिकम नेपाल, भूटान आदि देश हिमालय ही के आंचल में है। तिब्बत का सम्बन्ध प्राचीन काल से भारत से न रहकर चीन से रहा है। शेष पूर्वोक्त पर्वतीय देश साँस्कृतिक और राजनैतिक दृष्टि से भारत से सम्बन्धित रहते आये हैं। सिन्धु, महानदी और उसकी सहायक नदियां जो पंजाब की भूमि को उर्वरा बनाये हुये हैं। और गङ्गा यमुना और उसकी सहायक नदियां जो उत्तर प्रदेश, बिहार और बङ्गाल को हरा भरा बनाये रहती हैं, हिमालय ही की पुत्रियाँ हैं। हिमालय से निकलने वाली नदियाँ व्यापार, प्रसार और यातायात का प्राचीन काल से साधन रही हैं। हिमालय की घाटियों में प्राचीन काल में भी अनेक जातियों का निवास रहा है जिनके छोटे बड़े

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य उस काल में स्वतन्त्र रूप से थे। हिमालय के पश्चिमी सीमा पर एक उरशा नामक राज्य था जो आजकल के हजारा जिले में था। इससे पूर्व वितस्ता (झेलम) की घाटी में सुरम्य काश्मीर है जो अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय कला, साहित्य और संस्कृति का प्रधान केन्द्र रहा है। काश्मीर के प्राचीन मार्तण्ड मन्दिर के अवशेष आज भी उस प्राचीन केन्द्र परम्परागत अखंड सम्बन्ध की साक्षी देते हैं, जो भारत और काश्मीर में उस काल में थे। इसके अतिरिक्त अमरनाथ का मन्दिर इसका प्रतीक है। काश्मीर की घाटी के दक्षिण पूर्व में स्थित झेलम और चुनार का मध्यवर्ती प्रदेश कभी 'अभिसार' कहाता था। आजकल इसी प्रदेश में कच्छ, राजौरी और भिन्न भिन्न रियासतें हैं, जिन पर तथा कथित आजाद काश्मीर और पाकिस्तान की गृद्ध दृष्टि है। काश्मीर के दक्षिण ओर का रावी और चुनार का मध्यवर्ती क्षेत्र, दार्व देश कहाता था। यही आजकल जम्मू देश कहलाता है। रावी और व्यास के बीच का प्रदेश जो अब काँगड़ा कहलाता है, प्राचीन काल में त्रिगर्त के नाम से प्रसिद्ध था। और कांगड़ा के साथ काला भूभाग जो अब कुल्लू कहाता है वह तब कुलूत कहाता था। सतलज की घाटी में आजकल शिमला के निकट व शहर आदि रियासतें थीं, वे कभी किन्नर देश कहाती थीं। यह किन्नर देश सतलज और यमुना के बीच की पर्वतीय घाटियों तक चला गया था। यमुना के पूर्व का प्रदेश पर्वतीय प्रदेश 'गढ़ देश' कहाता था, जो अब गढ़वाल कहाता है इसकी पूर्वी पार्श्व में कूर्माचल था जो अब कुमायुं के नाम से प्रसिद्ध है। कूर्माचल के पूर्व में नेपाल, सिकिम, भूटान के राज्य थे। भूटान के पूर्व में असम का वह उत्तरी भूभाग है जिसमें अकर-दफला-मीरी-अवोर और मिश्री जातियों का निवास है। हिमालय की पूर्वी उपत्यकायो में इन पर्वतीय जातियों का अधिक विकास हुआ था।

हिमालय की पश्चिमी सीमान्त पर पश्चिमी गान्धार था जिसकी राजधानी पुष्करावती थी, जहां आजकल पेशावर नगर बसा है। सिन्धु नदी के पश्चिम में 'सुवास्तु (स्वात)' गौरी (पंज कोटा) और कुनार नदियां कुभा (काबुल) नदी में मिलता है। और यह काबुल नदी सिंध में आ मिलती है। सुवास्तु-गौरी और कुनार कुभा नदियों से पश्चिम गान्धार हरा भरा रहता था। कुभा और स्वात के किनारों पर अब भी पुष्करावती के अवशेष हैं। पश्चिमी गांधार से आगे पश्चिम में हिन्दुकुश के निकट का प्रदेश कपिश कहाता था, कपिश के पश्चिम उत्तर में जो आजकल बदखशां और बल्ख प्रदेश हैं वहीं तब कम्बौज और वाल्हीक कहाते थे। प्राचीन काल में ये सभी देश भारतीय सीमा में ही आते थे। अत्यन्त प्राचीन काल से अनेक भारतीय राज्य इन्हीं प्रदेशों में विकसित हुये। अनेक भारतीय सम्राटों ने इन देशों पर शासन किया। उत्तर कालीन सम्राटों में चन्द्रगुप्त मौर्य और गुप्त वंशी सम्राटों ने भी इन प्रदेशों पर अपने राज्य का विस्तार किया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिमालय की दुरुह पर्वत श्रृंखलाओं ने जहां भारत के प्रहरी का काम किया वहाँ हिमालय की पुत्रियां हिमालय से निकली हुई नदियों ने कृषि, व्यापार और संस्कृति के विस्तार में बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया। चिर काल से ये नदियां व्यापार और यातायात का प्रधान साधन रही हैं। वे प्रधान नगर जो अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय कला कौशल, वैभव और विज्ञान के केन्द्र रहे हैं, इन्हीं नदियों के किनारे बसे हुये थे। कहना चाहिये कि विश्व की सर्वाधिक सभ्य प्राचीन जातियाँ हिमालय के अंचल में ही निवास करती रही हैं। वेद और प्राचीन ऋषियों का ज्ञान भी इसी के किनारे ऋषियों ने उदघोषित किया था।

हिमालय के शिखरों से टकराकर दक्षिणी सागर से उठा हुआ मानसून चार मास तक भारत को वर्षा से हरा भरा रखता है, जिसका भारतीय कृषि पर बड़ा भारी प्रभाव है।

उत्तर पूर्वी पर्वत श्रेणियां — हिमालय की उत्तर पूर्व की पहाड़ियाँ अत्यन्त दुर्गम हैं, और वहां कोई दर्रा भी नहीं है। ये पहाड़ियाँ अति दुर्गम, हिंसक जन्तुओं और हरे भरे जङ्गलों से भरपूर हैं। इस दिशा में तिब्बत चीन और हिन्द चीन की जातियां बहुत कम संख्या में भारत में आती रहीं।

उत्तर पश्चिम की घाटियां—परन्तु उत्तर पश्चिम की ओर कुछ दर्रे हैं जिनमें होकर विदेशी आक्रमणकारी समय समय पर भारत में आते रहे। इनमें खैबर का दर्रा प्रमुख है। इसमें होकर काबुल से पेशावर तक रास्ता चला आया है। बहुत प्राचीन काल से भारत के आक्रान्ता, आर्य, यूनानी हूण सीथियन, तुर्क और मङ्गोल सब इसी दर्रे से भारत में आये हैं। इस दर्रे के कारण अफगानिस्तान को अधिकार में रखने वाला कोई भी आक्रमणकारी बड़ी आसानी से पंजाब में प्रवेश कर सकता था। तुर्कों ने अपनी राजनैतिक योग्यता से वहाँ अपना एक स्थायी राज्य स्थापित कर लिया, फिर वे इस दर्रे में होकर पंजाब में घुस आए. और उन्होंने दुआबे में अपना राज्य स्थापित कर लिया। क्वेटा के दक्षिण पूर्व में स्थित बोलन दर्रा भी व्यापारिक और सैनिक दृष्टि से खैबर दर्रे की भांति महत्वपूर्ण है। कुर्रम, टोची, और गोमल के दर्रे भी महत्वपूर्ण हैं। कुर्रम खैबर के दक्षिण में है, और वह साल में कई महीने बर्फ से बन्द रहता है।

टोची की घाटी जो बन्नू से काबुल के दक्षिण के दुर्गम प्रदेशों में होकर चली गई है। दक्षिण की ओर गोमल नदी के किनारे गोमल मार्ग है, जो अफगानिस्तान तक चला गया है और गजनी को डेरा इस्माईल खां से मिलाता है। ये सभी दर्रे दुर्गम हैं। पूर्व की पर्वत श्रेणियों में तो कोई मार्ग ही नहीं है। इसी से बहुत अंश तक हिमालय ने बाहरी प्रभाव से भारतीय संस्कृति को अधूरा रक्खा है। हिमालय की ये अखण्ड और सुविस्तार पर्वत श्रृंखलायें भारत के लिये एक दृढ़ संतरी का काम

State Museum, LUCKNOW.
CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करती रही हैं। फिर भी भारत का बाहरी संसार से सम्बन्ध कायम ही रहा। पश्चिमी दर्रों से जहाँ विदेशी जातियाँ भारत में प्रविष्ट होती रहीं, वहाँ भारतवासी सभ्यता और संस्कृति का प्रसार करने और अपने देश बसाने भारत से बाहर इसी मार्ग से जाते रहे।

(२) **उत्तर भारत का मैदान** – हिमालय से दक्षिण और विन्ध्या मेखला के उत्तर का १६०० मील लम्बा प्रदेश उत्तर भारत का मैदान कहलाता है। यह भाग बहुत उपजाऊ और घनी आबादी वाला है। सिंध और गङ्गा के बीच वाला मैदान जो बड़ी बड़ी नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी से बना है, इस देश का सबसे महत्वपूर्ण भाग है।

भौगोलिक भाग—भौगोलिक दृष्टि से उत्तर भारत के मैदान को ५ भागों में बांटा जा सकता है। पंजाब, सिंध, राजपूताना, गङ्गा व उसकी सहायक नदियों का मध्यवर्ती देश, गङ्गा का मुहाना व ब्रह्मपुत्र की घाटी।

प्राचीन महत्व—प्राचीन ग्रन्थों में इसे मध्य देश कहा गया है। प्राचीन चन्द्र-वंशी और सूर्यवंशी आर्य राजाओं के महाराज जिनका वर्णन महाभारत और रामायण में है, इसी प्रदेश में रहे। वेद, उपनिषद्-ब्राह्मण, और दर्शनों का निर्माण भी यहीं हुआ। यहीं से आर्य सभ्यता विकसित हुई। बड़े बड़े ऋषि मुनि और चक्रवर्ती राजाओं का इसी भूभाग पर अवतरण हुआ। इसी भूभाग में काशी, अयोध्या, मथुरा, कन्नौज, हरिद्वार, आदि महत्वपूर्ण तीर्थ है। यहीं पर बुद्ध और महावीर ने संसार के सबसे प्रथम विश्व धर्मों की स्थापना की। यहीं पर जैमिनी और कुमारिल ने प्राचीन वैदिक धर्मों का पुनरुद्धार किया।

नदियां---सिन्धु नदी इस प्रदेश की सबसे बड़ी नदी है। जो तिब्बत की एक झील से हिमालय से निकल कर ११०० मील तक बहती हुई और पँजाब की नदियों को अपने में मिलाती हुई अरब सागर में जा गिरती है। गङ्गा गढ़वाल की पर्वत श्रेणियों में से गंगोत्री ग्लेशियर से निकल कर हरिद्वार के पास मैदान में उतरती है और १५०० मील बहती हुई यमुना, सोन और गंडक नदियों को अपने में समेटती हुई बङ्गाल की खाड़ी से समुद्र में जा समाती है। ब्रह्मपुत्र मानसरोवर झील के निकट कैलाश की ढाल से निकलकर पूर्व की ओर जाती हैं। और ७०० मील बह कर, मुड़ कर बङ्गाल के मैदानों में प्रवेश करती है।

सिन्ध घाटी, गंगा घाटी और ब्रह्मपुत्र घाटी---नदियों के महत्व को ध्यान में रख कर हम इस समूचे मैदान को तीन घाटियों में विभाजित कर सकते हैं। इन नदियों और इनकी सहायक नदियों के द्वारा न केवल कृषि वाणिज्य और यातायात की सुविधायें रही हैं ये मैदान वास्तव में शताब्दियों तक इन नदियों द्वारा बहा कर लाई हुई मिट्टी से बने हुये हैं तथा ज्ञान विज्ञान और साहित्य कला कौशल के केन्द्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहे हैं। बड़े बड़े महाराज्यों के वैभवों से प्रभावित हो अनेक विदेशी आक्रान्ताओं ने इस भू भाग पर आक्रमण किये तथा अधिकतर निर्णायक युद्ध इसी भू भाग पर हुये।

सिन्ध घाटी प्रदेश—सिन्धु घाटी प्रदेश में भारत की प्राचीनतम सभ्यताओं के चिन्ह उपस्थित हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि मध्य एशिया के सभी आक्रान्ता सिन्ध ही को पार करके पंजाब में प्रविष्ट हुये। परन्तु पंजाब में किसी स्थायी राज्य की स्थापना नहीं हुई। सदैव ही ऐसा होता रहा कि यहां का शासक आक्रान्ताओं द्वारा गङ्गा की घाटी में खदेड़ दिया गया।

पंजाब की नदियां दक्षिण पश्चिम को बहती हैं। परन्तु गङ्गा यमुना का प्रवाह दक्षिण पूर्व की ओर है। इसका कारण यह है कि यमुना और सतलज के बीच का प्रदेश ऊंचा है। इसी प्रदेश में राजस्थान है। जहाँ अरावली की पर्वत श्रेणियाँ दूर तक फैली हुई हैं। सतलज और यमुना के मध्यवर्ती यह जल विभाजक उत्तरी भारत के मैदान में एक मात्र ऐसा स्थान है जो अधिक उपजाऊ नहीं है। इस प्रदेश के उत्तरी छोर पर कुरु क्षेत्र की रणस्थली और दक्षिण में अरावली पर्वत माला तथा राजस्थान का मरुस्थली है। कुरुक्षेत्र केवल महान रण प्राङ्गण ही होने के कारण विख्यात नहीं है। वह वास्तव में सिंध और गङ्गा के क्षेत्रों में एक मात्र ऐसी तंग गली है, जिसमें होकर पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाली या पश्चिम से पूर्व की ओर आने वाली सेनाओं का आवागमन हो सकता है। इसी से भारतीय इतिहास के अनेक निर्णायक युद्ध इसी रणाङ्गण में हुये। इसी के पार्श्व में पानीपत की भी प्रसिद्ध रणस्थली है।

गंगा की घाटी—गङ्गा की घाटी इस भू भाग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग है। इस स्थान का सांस्कृतिक महत्व बहुत है। यहीं पर आर्यों के सर्व प्रथम दो महावंश मानववंश (सूर्यवंश) और एलवंश (चन्द्रवंश) की स्थापना हुई जिसकी शाखा प्रशाखायें विध्या मेखला तक को पार कर गईं। वास्तव में भारत का प्राचीन आर्य सभ्यता का इतिहास इस भू भाग के निवासियो का इतिहास है। इसी क्षेत्र में सप्त द्वीप पति चक्रवर्ती सम्राटों का उदय हुआ।

ब्रह्मपुत्र की घाटी—ब्रह्मपुत्र की घाटी अधिकांश में पर्वतीय प्रदेश और उद्गम हैं। इसी से यहाँ पर आर्यों, मुगलों, पठानों और तुर्कों का कोई महान राज्य स्थापित न हो सका।

(३) **विन्ध्य मेखला और मध्य प्रदेश के पठार**—इन प्रदेशों की पर्वत शृङ्खला देश के मध्य भाग से होती हुई समुद्र तटों पर पतली रेखायें छोड़ती हुई चली गई हैं। इसी से इसे मेखला या करधनी कहते हैं। यह प्रदेश अधिकतर गहन वनों से भरा हुआ है और दक्षिण भारत को उत्तर भारत से पृथक करता है। शताब्दियों से यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भू भाग उत्तर और दक्षिण भारत की सांस्कृतिक एकता और सम्पर्क में बाधक रहा। अब रेल मार्ग से यहाँ होकर उत्तर और दक्षिण का यातायात सुलभ हुआ है।

विन्ध्याचल से अनेक नदियां निकल कर, और उत्तर की ओर प्रवाहित होकर गङ्गा में मिल गई हैं। इनमें चम्बल, सिन्ध, बेतवा, केन और सोन नदियां प्रमुख हैं।

भौगोलिक विभाजन—विन्ध्य मेखला का भौगोलिक विभाजन पाँच भागों में होता है—

१—दक्षिण राजस्थान।

२—मालवा।

३—बुन्देलखण्ड।

४— बघेलखण्ड।

५—छोटा नागपुर।

दक्षिण राजस्थान चम्बल नदी के पश्चिम व उत्तर में नदी की तलहटी का प्रदेश है। मालवा चम्बल और सिन्ध घाटी का मध्यवर्ती तथा नर्वदा घाटी का मध्य-वर्ती प्रदेश है। सतपुड़ा पर्वतमाला का पूर्वी भाग भी इसी में है। गुजरात का हरा-भरा प्रदेश विन्ध्य मेखला को अपने प्रांत भाग से छू जाता है। वास्तव में भौगोलिक दृष्टि से गुजरात को हम न उत्तर भारत में गिन सकते हैं न दक्षिण भारत में। यह भू भाग जङ्गलों और खनिज द्रवों से भरा हुआ है। कृषि की दृष्टि से यह क्षेत्र उत्तर भारत के मैदानों की समता नहीं कर सकता। प्राचीन काल ही से यह प्रदेश बड़े-बड़े वनों से आच्छादित था तथा यहां समृद्ध नगरों और राज्यों का प्राचीन काल में भी बहुत कम विकास हो पाया था। परन्तु विन्ध्य मेखला ही उत्तर भारत को दक्षिण भारत से जोड़ने और विभाजन करने की कड़ी है। इसी से इस प्रदेश का सांस्कृतिक मूल्य बहुत है।

राजस्थान—यह मरु प्रदेश उत्तर पूर्व में पंजाब से, दक्षिण पूर्व में मध्य भारत से, तथा पश्चिम में गुजरात और सिन्ध से घिरा हुआ है। इसका दक्षिणी भाग विन्ध्य-मेखला-प्रदेश में घुस गया है पर उत्तरी भाग उत्तरी भारत के मैदानी प्रदेशों में। इससे राजस्थान की सांस्कृतिक और राजनैतिक अवस्था पर इस भौगोलिक स्थिति का भारी प्रभाव पड़ा है। राजस्थान की भाषा, साहित्य, संस्कृति और आचार-विचारों पर पंजाब—सिन्ध घाटी की सभ्यता, गुजरात और दक्षिणी भारत के साथ ही साथ उत्तरी भारत के आर्यों की सभ्यता का भी भारी प्रभाव पड़ा है।

अरावली का उत्तरी भाग रेतीला और ऊसर है, उसमें फसल नहीं उगती। किन्तु उसका दक्षिण पूर्वी भाग उपजाऊ और हरा-भरा है। वहां वर्षा भी यथेष्ट होती है। यही प्रान्त मालवा कहलाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजस्थान में हमें बर्फ से घिसे हुए पत्थर मिलते हैं जो इस बात के साक्षी हैं कि कभी वहाँ बर्फीले ग्लेशियर होंगे। राजस्थान की प्राकृतिक अवस्था ने भारत के सांस्कृतिक और राजनैतिक जीवन पर भारी प्रभाव डाला है, राजपूत अपने किलों तथा दुराह प्रदेशों के कारण जीते जाने पर भी स्वतन्त्र बने रहे। दिल्ली के मुसलमान शासक कभी भी राजस्थान पर अपना राजत्व न जमा सके। राजपूतों की वीरता और शौर्य तथा उत्सर्ग ने उनकी ख्याति को चार चाँद लगा दिये। उनकी वीरता और उत्सर्ग के बहुत से आख्यान डिङ्गल भाषा में लिखे गये हैं जिनके रचयिता चारण थे। डिङ्गल भाषा का साहित्य भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंश है। इस भू भाग में चित्तौड़ के सीसोदिया, मारवाड़ के राठौर, बून्दी के हाड़ा, जयपुर के कथवाहा राजा शताब्दियों तक राजस्थान की कीर्तिमयी संस्कृति और साहित्य के केन्द्र रहे। खास कर चित्तौड़, जो आज भी अपना ऊंचा सिर उठाये हुये शताब्दियों के अत्याचारों के सम्मुख न झुकने की एक शौर्य गाथा, मूक भाव से विश्व पर प्रकट कर रहा है भारत के साँस्कृतिक इतिहास में एक विशेष स्थान रखता है।

इसी भूभाग में अर्वली पहाड़ की सबसे ऊंची चोटी माऊंट आबू सिरोही राज्य में है, जहाँ गुजरात के जैन मन्त्री विमलदेवशाह का निर्मित मन्दिर और भवन विश्व के स्थापत्य में बेजोड़ चीज है।

भारत की पश्चिमी सीमा—बड़े-बड़े रेतीले मैदान और जल की कमी के कारण इस प्रान्त भाग को भारत का रेगिस्तान भी कहा गया है।

अब जो पश्चिमी पंजाब और सिन्ध का समूचा प्रदेश पश्चिमी पाकिस्तान में चला गया है तो यह मरुस्थली पश्चिम दिशा में सम्पूर्ण रूप से पाकिस्तान से घिर गई है। विशेषकर जैसलमेर और बीकानेर की मरुस्थलियां पश्चिम में समूची ही पाकिस्तान को छू रही हैं। इससे इसका सांस्कृतिक और राजनैतिक महत्व बहुत बढ़ गया है। दक्षिण में कच्छ की मरुस्थली और सौराष्ट्र तथा गुजरात और पूर्व में मध्य प्रदेश तथा उत्तर में पूर्वी पंजाब इस प्रदेश को घेरे हुए है।

(४) **दक्षिणी प्रायद्वीप**—इसका प्राचीन नाम दक्षिणपथ है। यह विंध्याचल पर्वत के दक्षिण में एक पठार है जो २००० फीट ऊंचा है और पूर्व पश्चिम की ओर ढालू है। इस प्रायद्वीप का भूभाग उत्तर में विन्ध्य मेखला से घिरा हुआ है, जो पूर्वी और पश्चिमी छोर को भी घेरती है। पूर्व में पूर्वी घाट और पश्चिम में पश्चिमी घाट और उत्तर में विन्ध्य और सतपुड़ा पहाड़ों की दो श्रेणियां हैं। ये दोनों श्रेणियां इस दक्षिणी भारत को उत्तरी भारत से अलग करती हैं। दक्षिण के बिल्कुल छोर पर जो भू भाग स्थित है उसे सुदूर दक्षिण कहते हैं, और उस पर आर्य संस्कृति की अपेक्षा द्रविड़ संस्कृति का अधिक प्रभाव है। दक्षिण का ढाल पश्चिम से पूर्व की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओर होने के कारण इस प्रदेश की प्रधान नदियां महानदी गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, तुङ्गभद्रा आदि पूर्व को बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। केवल नर्मदा और ताप्ती पश्चिम की ओर बहती हैं और अरब सागर में गिरती हैं। पठार के दोनों तरफ की पर्वत श्रेणियाँ उसे त्रिभुजाकार बनाती हुई पूर्वी और पश्चिमी तट के समानान्तर चली गई हैं।

पश्चिमी घाट—पश्चिमी घाट खम्मात की खाड़ी से दक्षिण से समुद्र तट के साथ साथ चला गया है। इसमें मराठा बसते हैं। इसे महाराष्ट्र प्रदेश कहते हैं। इसका उत्तरी भाग कोंकण और दक्षिणी भाग मलाबार या जिसे केरल भी कहते हैं। अरब सागर से उठने वाला मानसून यहीं टकरा कर इसी प्रदेश में बरस जाता है। इससे यह प्रदेश सदैव उपजाऊ और हरा भरा बना रहता है। कोंकण और केरल के लोग अपने सौन्दर्य, वैभव और कला कौशल के लिये प्राचीन काल से प्रसिद्ध हैं। महाराष्ट्र डामुन से नागपुर तक, और नागपुर से दक्षिण पश्चिम की ओर करवार तक चला गया है। महाराष्ट्र के लोग कद के ठिगने और कष्ट सहिष्णु होते हैं। इनकी गुरीला युद्ध पद्धति अधिक प्रसिद्ध है।

पश्चिमी घाट दुर्गम और समुद्र तट से अधिक ऊंचा होने के कारण बन्दरगाहों के बनने के योग्य नहीं है। इसे सह्याद्रि पर्वत भी कहते हैं।

पूर्वी घाट—पूर्वी घाट की पर्वत शृङ्खला उत्तर से दक्षिण की ओर को चली गई है। दक्षिण प्रायद्वीप की प्रायः सभी नदियां पश्चिमी घाट से निकल कर पूर्वी घाट को पार करती हुई बङ्गाल की खाड़ी में जा गिरती हैं। इस ओर का समुद्र तट अधिक चौड़ा है। यहां वर्षा काफी होती है और भूमि अधिक उपजाऊ है इसलिये यहां के लोग परिश्रमी और शान्तिप्रिय हैं। इसी का उत्तरी भाग कलिंग और आन्ध्र कहलाता है और दक्षिणी भाग कारोमण्डल के नाम से विख्यात है। यही वह मार्ग है, जहां से उत्तर के विजेता दक्षिण की ओर अग्रसर हुए, कलिंग के राजा मौर्य काल में शक्तिशाली थे और उन्होंने पाटलीपुत्र तक जय कर लिया था। सम्राट अशोक ने कलिङ्ग राज्य का पराभव किया।

पूर्वी घाट और बंगाल की खाड़ी का मध्य भाग—पूर्वी घाट और बङ्गाल की खाड़ी के मध्य का स्थान तीन भागों में विभक्त है, एक उत्तरी भाग, जिसमें महानदी का डेल्टा है, दूसरा मध्य भाग जो गोदावरी और कृष्णा के डेल्टाओं से बना है। तीसरा दक्षिणी जो कर्नाटक कहलाता है। दक्षिण का ऊंचा पठार तामिल है जिसमें द्रविड़ अति प्राचीन काल से निवास करते हैं।

दक्षिणी पठार की भूमि उपजाऊ है। यह प्रदेश बम्बई से मद्रास तक फैला हुआ है। बंगाल से कन्याकुमारी तक एक प्रधान मार्ग समुद्र तट के साथ साथ जाता है। प्राचीन काल के अनेक सम्राटों ने उत्तर से दक्षिण इसी मार्ग से अभियान किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। आन्ध्रों और चोल राजाओं ने भी इसी मार्ग से उत्तरी भारत पर आक्रमण किये थे।

सुदूर दक्षिण—दक्षिणापथ का बिल्कुल निचला प्रदेश, जो कृष्णा और तुङ्गभद्रा नदी से घिरा हुआ है, द्रविड़ प्रदेश कहलाता है। यहीं नीलगिरि में पूर्वी और पश्चिमी घाट आकर मिल गये हैं। और इनके बीच का पठार भी आज का मैसूर राज्य है। इसके पूर्व समुद्र तट के पीछे तामिल प्रदेश है। तामिल और केरल के बीच के प्रदेश को मलाबार कहते हैं। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण यह समस्त प्रदेश अनेक भाषाओं और संस्कृतियों का केन्द्र रहा है। जिससे उत्तर भारत की आर्य संस्कृति से इसमें भिन्नता रही।

दक्षिणापथ में जातियों का संगम—दक्षिणापथ की सभ्यता और संस्कृति से उत्तर भारत के आर्यों की संस्कृति का मेल नहीं हुआ। विन्ध्य और सतपुड़ा पर्वत शृङ्खलाओं ने आर्यों की सभ्यता को दक्षिण की ओर बढ़ने से रोक दिया। दूसरी ओर समुद्र द्वारा वे सुदूर दक्षिण की ओर फैले हुए द्वीपों के निवासियों से प्रभावित रहे और उनके आचार-विचार उनमें मिल गये। इसी से दक्षिणापथ के रहन-सहन और आचार-विचारों में उत्तरी भारत से बहुत भिन्नता आ गई। ब्राह्मणों और पुरानों के अध्ययन से पता लगता है कि आर्यों ने एक ऐसी रीति अपना ली थी कि किसी भी बहिष्कृत जन को वे दक्षिणापथ में निर्वासित कर देते थे। वशिष्ठ, विश्वामित्र और सगर ने अनेक परिवारों को निर्वासित करके दक्षिणापथ में भेज दिया था। ये परिवार वहां जाकर बस गये और वहां के मूल निवासियों से उन्होंने पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये। जिस प्रकार ये बहिष्कृत आर्य दक्षिणारण्य में आकर बस गये थे, उसी प्रकार कुछ आर्य ऋषियों ने भी यहां आकर अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। इनमें अगस्त्य, पुलस्त्य, शरभंग, सुतीक्ष्ण तथा माण्डकरण मुनि प्रमुख थे।

राम को भी जब निर्वासित किया गया तो वे भी दक्षिणारण्य में ही आये थे।

राम के काल में दक्षिण भारत—इस बात का यथेष्ट प्रमाण है कि जब राम दक्षिणारण्य में थे, उस काल के बहिष्कृत आर्यों और आर्यों के बहुत से परिवार दक्षिणारण्य में बस चुके थे, और उनके छोटे बड़े राज्य, जनपद, तथा उपनिवेश वहां उपस्थित होते जाते थे। इसके अतिरिक्त जो विदेशी जातियां समुद्र पार कर दक्षिणारण्य में बस गईं थीं, उन सब की मिली जुली एक नई जाति बनती जाती थी संक्षेप में वे आर्य और अनार्य नाम के दो दलों में विभक्त थे, जो आज भी अय्यर और नय्यर के नाम से प्रसिद्ध हैं। आज भी मद्रास प्रांत वाले महाशय के स्थान पर अय्या शब्द का प्रयोग करते हैं, जो आर्य का अपभ्रंश है। एक तीसरी जाति नागों की भी इनमें मिल गई थी। मिस्र और अफ्रीका से कुछ जातियां आकर यहाँ बस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गई थीं। और एक मिली जुली हिन्दू संस्कृति का उन्होंने निर्माण किया। जिसमें आर्यों और बाहर से आई हुई जातियों के भी रस्म रीति का प्रभाव था। आज भी वहाँ के ब्राह्मण और दूसरे हिन्दू कहे जाने वाले लोगों का धर्म विश्वास और आचार विचार उत्तर भारत से बिल्कुल ही भिन्न हैं।

लंका—भारत का सुदूर दक्षिण भाग लंका समुद्र में बसा हुआ है। परन्तु लंका भारत से सर्वथा भिन्न नहीं है। दोनों देशों के बीच सेतुबन्धु की पहाड़ियां उभरी हुई हैं, लंका और भारत के बीच साँस्कृतिक, राजनैतिक और व्यापारिक सम्बन्ध प्राचीन काल से रहते आए हैं। दोनों देशों के आचार विचारों में भी बहुत कुछ समानता है।

समुद्र पथ—भारत तीन ओर समुद्र से घिरा होने के कारण चिर काल तक विदेशी आक्रमण से सुरक्षित रहा। उस काल में ये समुद्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक यातायात के माध्यम रहे। बाद में अरबों और यूरोपीय देशवासियों ने जब समुद्र पथ से आक्रमण किये तो उसका बहुत भारी व्यापक प्रभाव उस पर पड़ा। समुद्र पथ से ही भारत ने एशिया यूरोप और अमरीका से व्यापारिक सम्बन्ध बनाये रक्खे थे।

उन दिनों भारत का व्यापार अत्यन्त उन्नत था। यूरोप की जातियाँ पहिले व्यापार ही के लालच से भारत में आईं थीं, पीछे धीरे धीरे वे राजनैतिक स्वाधीनता को समाप्त करने में सफल हुई। भारत के राज्य का लेखा जोखा करने में समुद्र ने महत्वपूर्ण भाग लिया। समुद्र के भाग से ही पाश्चात्य संस्कृति ने आकर भारत को आक्रान्त किया।

३—जन संख्या

जन संख्या—भारत की जन संख्या का विश्व का जनसंख्या में चीन के बाद दूसरा स्थान है। यह जनसंख्या विश्व की जनसंख्या से $\frac{1}{5}$ से कुछ ही कम है। जम्मू और काश्मीर सहित भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या ३६ करोड़ १८ लाख सन १९५१ में परिगणित की गई थी। जिसमें से १८ करोड़ ५९ लाख मनुष्य और १७ करोड़ १८ लाख स्त्रियाँ थीं। भारत में सबसे पहले जनगणना सन १८७२ में हुई। उसके बाद सन १८८१ में, उसके बाद हर दस वर्ष के बाद जनसंख्या होती आ रही है। जिससे ज्ञात होता है कि भारत की जन संख्या में नियमित रूप से वृद्धि होती आ रही है।

जनसंख्या का घनत्व—सन १९०१ से ११ तक कृषि सम्बन्धी उन्नति होने के कारण भारत की जनसंख्या में ५·८ प्रतिशत वृद्धि हुई। अगली शताब्दि में सन १९१८ और १९ में भारत में भयंकर इन्फ्लूएन्जा फूट निकला था, जिसमें १ करोड़ ४० लाख व्यक्ति बीमार पड़े और १० लाख व्यक्ति मर गये। इसके बाद सन १९२१ से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जनसंख्या बढ़ती ही रही है। इस बीच में महामारियों पर एक अंश तक विजभी य प्राप्त की गई और उत्तम सिंचाई की सुविधाओं तथा अन्य व्यवस्थाओं के द्वारा देश में अकाल भी नहीं पड़ने दिया गया।

यद्यपि प्रतिवर्ग मील जनसंख्या का अनुपात हर प्रदेश में भिन्न भिन्न है, तथापि सम्पूर्ण भारत की जनसंख्या का घनत्व १९६ है। घनत्व पर सबसे प्रथम जलवायु का प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्यकर स्थानों पर अधिक जनसंख्या होती है और प्रतिकूल जलवायु में कम। आसाम की अपेक्षा बङ्गाल और उत्तर प्रदेश की जनसंख्या अधिक है जहां जम्मू और काश्मीर में प्रतिवर्ग मील में ५३ व्यक्ति रहते हैं, वहाँ पश्चिमी बङ्गाल में, ८१९ राजस्थान में ११९, पंजाब में ३३९, त्रावनकोर कोचीन में १०१९, और दिल्ली में १५९९ व्यक्ति प्रति वर्ग मील में रहते हैं।

स्वास्थ्यकर जलवायु की अपेक्षा वर्षा की अनुकूलता, सिंचाई की सुविधायें, आर्थिक उन्नति, भूमि की प्रवृत्ति, क्षेत्र का आधार और सुरक्षा का प्रभाव भी क्षेत्रों की जनसंख्या पर पड़ता हैं।

नगर और ग्रामों की जनसंख्या—भारत की ८६ प्रतिशत जनता गाँव में रहती है। ग्रामीण और नागरिक क्षेत्रों में जनसंख्या का अनुपात आर्थिक आधार पर निर्भर है। ज्यों ज्यों देश में आर्थिक उन्नति होती जा रही है, त्यों त्यों नागरिक संख्या बढ़ती जा रही है। जब कि फ्रांस में जनसंख्या ५२ प्रतिशत और इङ्गलैंड में ८० प्रतिशत है। भारत की नागरिक संख्या में नगरों के रहने वालों की संख्या २० प्रतिशत से भी कम है। इसका कारण व्यापार, यातायात और उद्योग धन्धों के विकास की कमी है। अब जहाँ पंचवर्षीय योजनाओं में व्यापार, उद्योग और यातायात का विकास हो रहा है, वहाँ ग्रामीण क्षेत्रों में गृहोद्योगों की स्थापना से उनके विकसित होने की भी सम्भावनायें बढ़ गई हैं।

ग्रामों का नगरीकरण और नगरों का ग्रामकरण—इसमें सन्देह नहीं कि ग्रामीण जनता का राष्ट्रीय आचरण भी उनके विकास का बाधक रहा है। प्रायः ग्रामीण जनता आलसी, अन्धविश्वासी और पुराण पंथी होती है, नए विचारों को कठिनाई से ग्रहण करती है। परन्तु नागरिक जनता चुस्त और परिश्रमी तथा साधन सम्पन्न होती है, और शिक्षित भी होती है। भारतीय गणतन्त्र अब नागरिक विकास के साथ ही ग्रामों के विकास की भी व्यवस्था कर रही है, जिसका आधार वैज्ञानिक योजना है। भारतीय राष्ट्र को जैसे भीड़ से भरे हुये बड़े बड़े नगरों की आवश्यकता नहीं है, उसी तरह पुराने और पिछड़े हुये ग्रामों की भी आवश्यकता नहीं है। इसलिये भारतीय सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं में ऐसी व्यवस्था की है कि ग्रामीण क्षेत्रों का नागरिक रूप, और नागरिक क्षेत्रों का ग्रामीण रूप व्यवस्था और वैज्ञानिक योजना के अनुसार उद्योग और आर्थिक ढांचे पर निर्माण किया जाय।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृषि उद्योग और स्वास्थ—अभी तक भारतवर्ष कृषि प्रधान देश रहा है। और सङ्गठित उद्योग धन्धों में केवल १·५६ प्रतिशत व्यक्ति ही लगे हैं, इसके अतिरिक्त स्त्रियों की आय का अनुपात तो और भी कम है। भारत में उनके स्वास्थ्य और जीवन रक्षा पर भी बहुत कम ध्यान दिया जाता है। वे प्रायः पुराने ढङ्ग की गृहस्थी में अपना जीवन व्यतीत करती हैं, जहाँ वे प्लेग, चेचक, हैजा और पेचिश का निरन्तर सामना करती रहती हैं। इसके अतिरिक्त प्रसव सम्बन्धी भी कठिनाइयाँ हैं, कि जिनके कारण सभ्य पाश्चात्य देश की स्त्रियों की अपेक्षा वे बहुत हीन अवस्था में रहती हैं। परन्तु गत २५ वर्षों में देश में जो प्रगति हुई है, उसने स्त्रियों के स्वास्थ्य और उनके जीवन में भी वृद्धि की है।

बाल मृत्यु—यह बड़े दुख की बात है कि भारत में बच्चों की मृत्यु संख्या संसार के सब देशों से अधिक है, जिसका कारण माताओं का निर्बलता, मातृत्व कलाओं के सिद्धांतों से अनभिज्ञता, प्रसूति गृह की गन्दगी, दाइयों की अशिक्षा और असावधानी, दरिद्रता और भारी परिश्रम इसका कारण है। अब भारतीय सरकार ने जो पारिवारिक योजना बनाई है, उससे यह आशा होती है कि अनावश्यक जनसंख्या की वृद्धि रुकेगी और माताओं तथा बच्चों के स्वास्थ में सुधार होगा।

४—भारत की प्रमुख जातियां

जातियों का मिश्रण—भारत में अनेक धर्म और संस्कृतियों का मिश्रण हुआ है और यहां अनेक जातियों का मिश्रण निवास करता है। भारत एक विशाल भूखण्ड है और यहाँ की जलवायु भिन्न भिन्न प्रांतों की भिन्न भिन्न है। इन कारणों से यहां के रहन सहन और वेष भूषा में और रङ्ग में काफी अन्तर रहता रहा है। इसके अतिरिक्त चिरकाल से होते हुये आक्रमणों, धार्मिक विजयों, पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्धों से अनेक जातियों का मिश्रण होता रहा। यात्रा, व्यापार, युद्ध और उपनिवेश स्थापना के कारण भारत में एक प्रकार की अन्तरजातीय एकता का सूत्र स्थापित रहा।

आर्य—यद्यपि देश में अनेक मिश्रित और शुद्ध जातियां हैं परन्तु यहां की सबसे प्राचीन और प्रमुख जाति आर्य है, जिसका विकास मध्य देश आर्यावर्त में हुआ। प्रथम इस जाति में सूर्यवंश और चन्द्रवंश इन दो कुलों के राज्यों की स्थापना हुई और जिस भू क्षेत्र में इन दोनों वंशों के राज्यों का विस्तार हुआ वह आर्यावर्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आर्यों का रङ्ग गोरा, कद ऊंचा, सिर लम्बा, उठी हुई नाक और चौड़ा माथा था। इन्होंने वैदिक धर्म को स्वीकार किया और वैदिक ऋषियों को अपना पुरोहित बनाया तथा वर्णाश्रम धर्म और पितृ प्रधान, वंश परम्परा और संयुक्त कुल की परम्परा स्थापित की।

द्रविड़— आर्यों के बाद दूसरा स्थान भारत की प्राचीन जातियों में द्रविड़ों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का है, जिनका मूलस्थान सुदूर दक्षिण है। इनका रङ्ग काला, कद नाटा, नाक चिपटी और सिर लम्बा होता है। अब यद्यपि उत्तर भारत में भी द्रविड़ों की जातियों का विस्तार हो गया है, परन्तु इसका साहित्य और भाषा आर्यों से बिल्कुल पृथक है। द्रविड़ की संख्या भारत में १०० में २१·६ है।

अन्य जातियां—प्राचीन काल की अन्य जातियों में एक जाति शबर पुलिन्द के नाम से विख्यात थी। वे विन्ध्य मेखला और राजस्थान के आसपास के मैदानों में रहते थे। आजकल के भील, कोल और मुंड और पूर्वी प्रदेशों के संयाल कदाचित इन्हीं के वंशज हैं। इनकी कुछ बातें द्रविड़ों के समान हैं, परन्तु भाषा पृथक है। उनकी भाषा आस्ट्रिक परिवार से कुछ मिलती जुलती है। एशिया के दक्षिण पूर्वी देशों में अब भी कुछ ऐसी जातियाँ बसी हुई हैं कि जिनसे इनकी भाषा और रीति रिवाज अंशतः मिलते जुलते हैं।

हिमालय के अंचल में सिकिम, भूटान और पूर्वी इलाके में किरात जाति है, जिसमें मंगोल रक्त विस्तृत है। इस जाति का निर्माण चीन, तिब्बत और हिन्द चीन से आये हुये लोगों, आर्यों और द्रविड़ों के सम्मिश्रण से हुआ। इनका कद ठिगना, रङ्ग पीला, नाक चपटी और आंखें कुछ तिरछी होती हैं और गालों की हड्डियाँ उभरी हुई होती हैं। महाराष्ट्र भी सम्भवतः कुछ किरात रक्त से प्रभावित हैं।

इनके अतिरिक्त भारत में जो ईरानी, यूनानी, शक, कुषाण, पल्लव और हूण लोग आक्रान्ता के रूप में भारत में आये और बस गये उनका भी कालान्तर में आर्यों और द्रविड़ों से रक्त सम्पर्क हुआ और वे अब अनेक जातियों के रूप में हिन्दू धर्म के अन्तर्गत परिगणित हैं।

इस्लाम की विशेषता—अनेक जातियों की भांति मुस्लिमों ने भी भारत पर आक्रमण किया, परन्तु उनमें ये विशेषता रही कि उन्होंने भारतीय हिन्दू धर्म को ग्रहण नहीं किया। मुगल साम्राज्य की स्थापना होने तक ये निरन्तर द्विमुखी युद्ध करते रहे, जो हिन्दुओं के राज्यों को भी ध्वस्त करना चाहते थे, और उनके धर्म को भी। परन्तु हिन्दुओं ने उनका वीरता से सामना किया। परन्तु सङ्गठन शक्ति के अभाव से वे परास्त होते गये, उनकी राजसत्तायें अवश्य ही उन्होंने अपना लीं। परन्तु हिन्दुओं ने प्रान्त युद्ध करके भी धार्मिक पराजय को स्वीकार नहीं किया। और अन्त में जब मुगलों ने साम्राज्य की स्थापना की तो उन्होंने हिन्दुओं के विपरीत धर्म युद्ध बन्द कर दिया और हिन्दुओं के सहयोग से अपने साम्राज्य की स्थापना की। वे भारत को अपना देश मानने लगे और कुलीन हिन्दुओं से विवाह सम्बन्ध भी करने लगे। सम्भव है कि यदि यह सिलसिला आगे चलता तो हिन्दू मुस्लिम सभ्यता कुछ दूसरा ही रूप बन जाता। परन्तु मुगल साम्राज्य के नष्ट हो जाने और यूरोपीय जातियों के भारत में प्रवेश करने से यह काम रुक गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५—भारतीय भाषायें

भारत में अनेक भाषायें बोली जाती हैं। यद्यपि भारत में अनेक जातियाँ भी रहती हैं परन्तु भारत में भाषा और जाति की विशेषता न होकर वह भौगोलिक सीमा पर आधारित है।

आर्य भाषा परिवार—उत्तर भारत में बोली जाने वाली हिन्दी, गुजराती, बङ्गाली, मराठी, उड़िया, पर्वती, पंजाबी, पश्तो, काश्मीरी लहन्दा, सिंधी और आसामी सभी भाषायें आर्य भाषा परिवार की भाषायें हैं। भारत में आर्य भाषा भाषियों की संख्या १०० में से ७६·४ है। आर्य परिवार की सब भाषाओं में हिन्दी सबसे अधिक बोली जाती है। हिन्दी भाषा भाषियों की संख्या १४ करोड़ के लगभग है। आर्य भाषा परिवार से सम्बन्धित भाषा भाषी जन भी आंशिक रूप से हिन्दी भाषा को बोल और समझ सकते हैं। गङ्गा यमुना के दोआबे का उत्तरी भाग जो कुरु देश कहलाता था, हिन्दी भाषा के खड़ी बोली का परिष्कृत साहित्यिक रूप का केन्द्र है। खड़ी बोली, ब्रज भाषा, बाँगरु, राजस्थानी, पंजाबी, बुन्देली, अवधी, ३६ गढ़ी, बघेड़ी, भोजपुरी, मैथिली, मगही, गोरखाली कुमारनी, गढ़वाली और कन्नौजी है। पंजाब से बिहार तक हिमालय से विन्ध्याचल तक हिन्दी भाषा का क्षेत्र है। आसाम, बङ्गाल, उड़ीसा, महाराष्ट्र, सिन्ध, पश्चिमी पंजाब, सीमा प्रान्त और काश्मीर में बोली जाने वाली भाषायें भी आर्य भाषा परिवार की हैं। हिन्दी, मराठी और पहाड़ी बोलियां भी जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं, हिन्दी ही के अन्तर्गत हैं, हिन्दी ही हैं। आर्य परिवार की जिन भाषाओं की लिपि भिन्न हैं, उनकी भी वर्णमाला देवनागरी के समान ही है।

आर्य भाषा परिवार की तीन प्रमुख शाखायें हैं। (१) ईरानी (२) दरद (३) भारतीय। ईरानी भाषायें भारत में नहीं बोली जातीं। परन्तु उर्दू का शिष्ट साहित्य फारसी शब्दों से मिश्रित है। मुगल काल में फारसी ही राजभाषा थी। उसके बाद अङ्गरेजी राज में जो उर्दू अदालती रूप में रही उसमें मुगल परिपाटी के प्रभाव से फारसी शब्दों और मुहावरों का बाहुल्य रहा। पूर्वी ईरान की बलूची बिलोचिस्तान और सिंध में बोली जाती है। ईरानी भाषाओं में बलूची अधिक प्राचीन है। परन्तु उसमें साहित्य लगभग नहीं है।

बर्गिस्ता अफगानिस्तान के केन्द्र में और पश्तो सम्पूर्ण अफगानिस्तान में बोली जाती है। पश्तो से भारत का सबसे अधिक सम्बन्ध है। यह एक कर्कश, पर खूब शक्तिशालिनी भाषा है। इसके शब्द और रचना दोनों पर भारतीय प्रभाव है। और इसका कारण यह है कि वैदिक काल से लेकर अङ्गरेजी राज्य के पूर्व तक अफगानिस्तान भारत का ही एक अङ्ग रहा है। प्रसिद्ध संस्कृत व्याकरण के रचियता पाणिनी अफगान ही थे। गलचा तामीर की भाषा है। उसमें कोई साहित्य नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर वह प्राचीन भाषा है। यास्क पाणिनी और पतंजलि ने जिस काम्बोज भाषा का उल्लेख किया है, वह यही गलचा है।

तामीर और पश्चिमी पंजाब के बीच दर्दिस्तान है। वहां की भाषा दरद कहाती है। संस्कृत साहित्य में यह दरद नाम सुपरिचित है। लहन्दा, सिंधी, पंजाबी और कोंकण की मराठी पर इस भाषा का काफी प्रभाव है। यही दरद पैशाची भाषा कहाती थी। और यही भाषा काश्मीर और उसके आसपास बोली जाने वाली भाषाओं का मूल आधार है। इसी भाषा में गुणाध्य कवि ने वृहद्ध कथा लिखी थी। जिसका एक खण्ड भाग संस्कृत में कथा सरित सागर के नाम से सोमदेव पण्डित ने लिखा था।

जिप्सी भाषा भारत में अब नहीं बोली जाती है। मसीह के जन्म से बहुत पहले यह जातियां भारत से बाहर चली गई थीं। यहां हम एक सारणी देते हैं, जिसमें भाषा के तीन वर्ग दिखाये गये हैं। वह वर्गीकरण डा० ग्रहर्सन ने किया है। इनमें लगभग १७ करोड़ आदमी बेरङ्ग भाषायें, तीन करोड़ अरबी और १० करोड़ अंतरग भाषायें बोलते हैं। इस प्रकार कुल १७ भाषायें हैं जिन्हें ६ वर्ग और तीन उपशाखाओं में विभक्त किया गया है।

हिन्दी—इस वर्गीकरण में जिसे पश्चिमी हिन्दी नाम दिया गया है, वही आज भारत की राष्ट्र भाषा के नाम से विख्यात है। हिन्दी शब्द फारसी का है। इसका अर्थ है हिन्द का। फारसी ग्रंथों में हिन्दी शब्द भारतवासियों और भारत में बोली जाने वाली किसी भी भाषा के लिये बोला गया है। परन्तु अब उसका व्यवहार उस विशेष भाषा के लिये किया जाता है, जो भारत के उस बड़े भूभाग की भाषा है जिसकी पश्चिमी सीमा जैसलमेर, उत्तर पश्चिम अम्बाला, उत्तर शिमला से नेपाल परयन्त पूर्वी छोर तक के प्रदेश, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर, दक्षिण पश्चिम में खंडवा है। इस विशाल क्षेत्र के निवासियों की जिनकी संख्या ११ करोड़ के लगभग है बोलचाल और साहित्य की भाषा हिन्दी है। भाषा की दृष्टि से इस भूखण्ड के चार भाग किये जा सकते हैं। राजस्थान भाषा भाषी, बिहारी भाषा भाषी, पहाड़ी भाषा भाषी, और पूर्वी हिन्दी भाषा भाषी। इन विभागों को पृथक करके हिन्दी केवल अन्तर्वेद की भाषा रह जाती है। जिसका केन्द्र आगरा, उत्तरी सीमा हिमालय की तराई, पश्चिम में दिल्ली, पूर्व में कानपुर, दक्षिण में नर्मदा की घाटी सीमा हैं।

पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी में भेद है। पूर्वी हिन्दी अर्द्ध मागधी वंशजा है और पश्चिमी हिन्दी शौर सेनी वंश की है। यही पश्चिमी हिन्दी खड़ी बोली कहलाती है, जो भारत की राष्ट्र भाषा है। यह वास्तव में दिल्ली मेरठ की प्रचलित भाषा है। रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मुफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून, अम्बाला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और पटियाला में कुछ उच्चारण भेद से यही भाषा बोली जाती है। इसके बोलने वालों की संख्या ६० लाख के लगभग है। इसमें फारसी और अरबी तद्भव और अर्द्ध तद्भव शब्द मिश्रित हैं। ब्रज,कन्नौजी,बुन्देली, बांगरु इसी की विभाषायें हैं। खड़ी बोली जब बोलचाल की भाषा में विभक्त होती है तो वह हिन्दुस्तानी कहलाती है और जब वह साहित्य का रूप धारण करती है, तब हिन्दी कहाती है। यदि वह फारसी में लिखी जाती है. और उसमें अरबी फारसी के तत्सम और अर्द्ध तत्सम बहुतायत से होते हैं, और उसकी वाक्य रचना भी विदेशी होती है तो वह उर्दू कहलाती है। उर्दू के हमें दो रूप मिलते हैं, एक दिल्ली और लखनऊ की उर्दू, यह तत्सम बहुला कठिन उर्दू है। पर दक्षिणी उर्दू, जो हैदराबाद में बोली जाती है, वह सरल है। पहली भाषा फारसी के आधार पर विकसित है, और भारतीय परम्परा में विकसित हुई है। यह उर्दू भाषा भारतीय मुसलमानों की भाषा है।

हिन्दी, उर्दू और अङ्गरेजी के मिश्रण से एक बोलचाल की भाषा का जन्म हुआ है, कि जिसके जन्मदाता अङ्गरेज अफसर थे। इसमें तत्सम शब्दों का विभाग कम है। पर नित्य के व्यवहार के देशी विदेशी सभी शब्दों को काम में लाया गया है। वास्तव में यह हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं का बोलचाल का रूप है।

खड़ी बोली की विभाषायें—खड़ी बोली की पांच विभाषाओं में ब्रज मण्डल की ब्रज भाषा प्रमुख है। इसका विशुद्ध रूप, मथुरा, आगरा, अलीगढ़ और धौलपुर में अब भी प्रचलित है। इस भाषा के बोलने वाले लगभग १ करोड़ मनुष्य हैं। और हिन्दी का सर्वोत्कृष्ठ साहित्य बृज भाषा में ही है।

बांगरु पंजाब के दक्षिण पूर्व की भाषा है। जो करनाल, रोहतक, हिसार, पटियाला, नाभा, जींद आदि के देहातों में बोली जाती है। यह बोली पंजाबी, राजस्थानी और खड़ी बोली की खिचड़ी है। इस भाषा के बोलने वाले २५ लाख पुरुष हैं। पानीपत और कुरुक्षेत्र की रणभूमि इसी भाषा की सीमा में हैं।

गङ्गा के दुआब की बोली को कन्नौजी भाषा कहते हैं। इसमें काफी साहित्य है, यह भाषा ब्रजभाषा से बहुत मिलती है।

बुन्देली बुन्देलखण्ड की भाषा है जिसके साहित्य पर ब्रजभाषा की गहरी छाप है। इसके बोलने वाले ७० लाख आदमी हैं। झांसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर भूपाल, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी और हुशंगाबाद के इलाकों में यह भाषा बोली जाती है।

पंजाबी पूरे पंजाब की भाषा है। अमृतसर के आस पास शुद्ध पंजाबी बोली जाती है परन्तु जम्मू और काँगड़े में जो पंजाबी बोली जाती है, वह डोंगरी कहलाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय आर्य भाषा वर्ग

- १ ईरान
  - पश्चिमी—ईरान — फारसी
  - पूर्वी —ईरान
    - अफगानिस्तान बलूची वर्ग
      - बलूची
      - वगिस्ता
      - अफगान (पश्तो)
    - गालचा (पामीर की भाषायें)
- २ दरद (पिशाच वर्ग)
  - काफिर वर्ग
  - खावार वर्ग
  - दरद
    - शीना
    - काश्मीरी
    - कोहिस्तानी
- जिप्सी भाषायें (अर्मेनिया और यूरोप में)
  - १. लहंदा
  - २. सिन्धी
- बहिरङ्ग भाषायें
  - पश्चिमोत्तर वर्ग
  - दक्षिण वर्ग
    - ३. मराठी
    - ४. सिंधली
    - ५. उड़िया
    - ६. बिहारी
    - ७. बंगाली
    - ८. आसामी
- मध्यवर्ती भाषायें
- अंतरङ्ग भाषायें
  - केन्द्रिय वर्ग
    - शुद्ध
      - ९. पूर्वी हिन्दी
      - १०. पश्चिमी हिन्दी
      - ११. राजस्थानी
      - १२. भीली खान देशी
    - आरोपित
      - १३. गुजराती
      - १४. पंजाबी
  - पहाड़ी अथवा हिमालयी वर्ग
    - १५ नेपाली पूर्वी
    - १६. केन्द्रीय पश्चिमी
    - १८. पश्चिमी पहाड़ा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजस्थानी और गुजराती परस्पर आबद्ध भाषाएं हैं दोनों में स्वतन्त्र साहित्य रचना हुई है। मेवाती, मालवी, मारवाड़ी, जयपुरी आदि राजस्थानी के अनेक भेद हैं राजस्थानी से कुछ कुछ मिलती हुई पहाड़ी भाषा है, जो कुमायूँ, गढ़वाल, शिमला, सिरमौर, मण्डी, चम्पा और काश्मीर तक बोली जाती हैं।

प्राचीन आर्य भाषायें विभक्तिमय थीं। उनमें संज्ञा, विशेषण और सर्वनाम शब्दों में लिंग, वचन और कारक का भेद बताने के लिये उनके साथ प्रत्यय जोड़े जाते थे। इसी प्रकार क्रियाओं में काल, वचन, पुरुष, वाच्य आदि का भेद प्रकट करने के लिये धातु के पीछे प्रत्यय जोड़े जाते थे। प्रत्यय से मिलकर शब्द या धातु ऐसे तनमय हो जाते थे कि वे अपनी सत्ता खोकर एक शब्द बन जाते थे। ईसा पूर्व ६०० से लेकर दसवीं शताब्दी तक निरन्तर १५०० वर्ष तक भाषा का सरलीकरण होता रहा। अब से लगभग १००० वर्ष पूर्व आर्य भाषा का वह रूप बन गया कि जिस रूप में उसे हम आज पाते हैं। प्राचीन अवस्था से भाषा के इस रूप में यह विशेषता उत्पन्न हुई कि नाम की और धातु की रूप रचना अब विभक्तिमय नहीं रही। नाम रूप रचना में केवल दो ही रूप रह गये। दूसरे कारकों का बोध कराने के लिये विभक्ति प्रत्यों के स्थान में अब ऐसे शब्द प्रयुक्त होते हैं, जो प्राचीन संज्ञा या विशेषण शब्दों के अवशेष हैं।

द्रविड़ भाषा परिवार—द्रविड़ भाषायें दक्षिण में बोली जाती हैं। वर्तमान द्रांविड़ भाषायें चार वर्गों में बांटी जा सकती हैं :—

(१) द्रविड़ वर्ग, (२) आन्ध्र वर्ग,
(३) मध्यवर्ती वर्ग, (४) बहिरंग वर्ग।

द्रविड़ वर्ग में तामिल सर्वाधिक उन्नत और परिष्कृत भाषा है। उसका साहित्य भी बहुत उत्कृष्ठ है। मलयालम तामिल की बड़ी बेटी कहलाती है। जो भारत के दक्षिण पश्चिम समुद्रतट पर बोली जाती है। यह ब्राह्मणों की भाषा है, इसलिये उस पर संस्कृत का प्रभाव है। त्रावनकोर कोचीन राज्यों में इस भाषा में साहित्य रचा गया है। कनाड़ी मैसूर की भाषा है, और उसमें अच्छा साहित्य है। उसका काव्य प्राचीन है, और उसका अधिक सम्बन्ध तामिल से है। पर लिपि तेलगु से समता रखती है।

आन्ध्र वर्ग की केवल एक ही भाषा तेलगु है। यह दक्षिण पूर्व के विशाल क्षेत्र में बोली जाती है। मैसूर में इसी भाषा का प्रचार है, और तिलंगाना में भी यही भाषा बोली जाती है। इस भाषा में संस्कृत का प्रयोग अधिक है, और इसका साहित्य १८ वीं शताब्दी से प्राचीन नहीं है।

मध्यवर्ती वर्ग की भाषा गोंडी, बुई, मल्लो, कोलामी आदि हैं। इन भाषाओं में कोई साहित्य नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्राहुई वर्ग की भाषा क्लात् में बोली जाती है। इस भाषा में सिन्धी और बलूची भाषा मिलकर कुछ खिचड़ी जैसी हो गई है। इस भाषा का द्रविड़भाषा परिवार से सम्बन्ध है और कदाचित प्राचीन काल में द्रविड़ों की कोई जाति यहां रहती होगी। आर्य भाषा परिवार की भांति द्रविड़ भाषा परिवार की लिपि भी ब्राह्मी लिपि है। शवरपुलिन्द भाषा आदिवासी लोग बोलते हैं। आसाम और हिमालय के पर्वतीय प्रदेश में किरात भाषा प्रवर्तन है। इनका सम्बन्ध बर्मा और तिब्बत की भाषाओं से है, परन्तु इन पर संस्कृत का व्यापक प्रभाव है।

द्रविड़ भाषा परिवार की भाषाओं में प्रत्यय प्रधान होता है, तथा अनेकाक्षर शब्द होते हैं। इनके रूप सरल होते हैं। निर्जीव शब्दों को नपुंसक लिंग माना जाता है। अन्य शब्दों में पुलिंग और स्त्रीलिंग जोड़ा जाता है। परन्तु यह लिंग भेद अन्य पुरुष के सर्वनामों में ही पाया जाता है। नपुंसक संज्ञाओं का प्रायः बहुवचन नहीं होता। विभक्तियों के लिये परसर्गों का प्रयोग होता है। विशेषणों में विभक्ति होती ही नहीं।

५–भारत की एकदेशीयता

भारत एक अनोखा देश है। उसका बहुत बड़ा विस्तार है। प्राकृतिक दृष्टि से वह एक जैसा नहीं हैं। कही विस्तृत, हरे-भरे मैदान हैं, कहीं उबड़-खाबड़ पहाड़ी प्रदेश, कहीं उजाड़ रेगिस्तान। कुछ प्रदेश ऐसे हैं जहां साल में कई सौ इञ्च वर्षा होती है। कहीं घाटियां कहीं पठार अनेक प्रकार का जलवायु भिन्न भिन्न प्रकार के रहन-सहन, अनेक जातियां अनेक धर्म, अनेक भाषायें जिनमें परस्पर संघर्ष भी होते रहे हैं, इसके अतिरिक्त यद्यपि ब्रिटिश राज्य से पूर्व मौर्यों गुप्तों और मुगलों का साम्राज्य भी रहा, परन्तु अधिकांश में भारत छोटे छोटे खंड राज्यों में ही विभाजित रहा, जिनमें परस्पर संघर्ष होते रहे। इन सब बातों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में न भौगोलिक दृष्टिकोण से, न प्राकृतिक दृष्टिकोण से न धार्मिक और राजनैतिक दृष्टिकोण से एक देशीयता रही।

परन्तु गम्भीरता से विचार करने पर हमें ऐसे आधारभूत तत्व दीख पड़ते हैं कि जिनसे यह कहा जा सकता है कि इन सब बातों के होने पर भी भारत की अखंड एक रूपता कायम थी। मूलरूप से जो एक बात महत्वपूर्ण है, वह भारत के प्रति एकानुभूति है, जिसे भारतवासी सदैव अपने मन में धारण करते रहे। उन्होंने भारत को अपनी मातृभूमि, दैवभूमि समझा और नदियों व पर्वतों और पुरियों में तीर्थों और देव की स्थापना तथा कल्पना की। हिन्दुओं ने धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अत्यन्त धैर्यता से भारतीय एकरूपता को स्वीकार किया। सुदूर दक्षिण में पैदा हुए शंकराचार्य और दूसरे सन्त सम्पूर्ण भारत में पूज्य माने गये। भाषाओं में यद्यपि भिन्नता रही, परन्तु उनका मूलाधार एक ही था। वेद दर्शन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपनिषद, श्रुति, स्मृति यह दक्षिण में भी उसी प्रकार आदर और सभ्यता से मानी गईं, जैसे कि उत्तर भारत में। वर्णाश्रम मर्यादा और रामायण और महाभारत समान भाव से समूचे भारत में श्रद्धापूर्वक पढ़ी जाती हैं।

भौगोलिक दृष्टि—भौगोलिक दृष्टिकोण से विष्णुपुराण के अनुसार, हिमालय के दक्षिण और समुद्र के उत्तर का समूचा प्रदेश भारतवर्ष है। यद्यपि भौगोलिक स्थिति के कारण बाहरी रूप में अनेकरूपता दिखाई देती है लेकिन सारा देश हिन्दुत्व के एक रूप में बंधा हुआ है। हिन्दुत्व की अखंड परम्परा ने देश की दूरी और भिन्नता पर जय प्राप्त कर ली है। प्राचीन आश्रमों, नदियों और तीर्थ स्थानों तथा देवालयों के कारण यातायात के साधन सुलभ न होने पर भी सारा देश परस्पर सम्बन्धित और परिचित था। प्राचीन वैदिक धर्म का प्रसार सुदूर दक्षिण में व्यापक रहा और शंकराचार्य ने दक्षिण में उत्पन्न होकर बद्री, केदार, द्वारिका और श्रृंगेरी में अपने पीठ स्थापित किये। गंगा, यमुना गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु तथा कावेरी नदियों ने भी काश्मीर से कन्याकुमारी और अटक से कटक तक भारतीय एकरूपता स्थापित की। इसी प्रकार काशी, मथुरा, अयोध्या, अवन्तिका, द्वारिका और सेतुबन्ध रामेश्वर जैसे प्रसिद्ध तीर्थों ने और हिमालय, मलय, शईद, आदि पर्वतों ने भी भारत कों भौगोलिक एकता प्रदान की।

सांस्कृतिक दृष्टि—इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति की एक रूपता भी इसमें सहायक हुई। जिसमें सभी जातियों के आचार विचार आध्यात्मिक साधनों का समन्वय था। यद्यपि धर्म विश्वासों में साम्प्रदायिक भिन्नता बनी रही, परन्तु उनके नैतिक और धार्मिक सिद्धान्तों में समानता बनी रही। सभी धर्मों और सम्प्रदायों में ईश्वर, अवतार, तीर्थंकर, कर्मयोग, पुनर्जन्म, मोक्ष, कैवल्य, निर्वाण, योग, भक्ति समूचे भारत के सभी लोगों की आध्यात्मिक सम्पत्ति रही। सभी धर्मों के साधु सन्तों के समान भाव से सत्कार रहा। वर्णाश्रम धर्म, उत्तराधिकार, विवाह पद्धतियां और शिष्टाचार के नियम लगभग एक से थे।

सब जातियों और सब धर्मों के मिश्रण से जिस भारतीय संस्कृति का जन्म हुआ, उसमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि सभी धर्मावलम्बी एक सूत्र से बंधे रहे। धार्मिक भेद भाव होने पर भी उनकी परम्परागत संस्कारों में स्थिरता रही। इसी से भारतीय पुरुष ने वह चाहे जिस जाति या धर्म का हो विदेशों में जाकर उसने अपने को भारतीय ही समझा।

राजनैतिक दृष्टि से भी भारतीय एकदेशीयता स्थापित रखने की चेष्ठा की गई। चाणक्य ने इसी से यह कहा कि हिमालय से समुद्र पर्यन्त का देश एक चक्रवर्ती प्रदेश है और उसने अपने भगीरथ प्रयत्न से ऐसे ही विशाल मौर्य साम्राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की स्थापना की प्राचीन काल में भी भरत मान्धाता जैसे चक्रवर्ती पुरुष हुए। धार्मिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक एकता ने राजनैतिक एकदेशीयता को काफी आश्रय दिया। इसी से भिन्न भिन्न जातियों, राज्यों और धर्मों के रहते हुए भी भारत में अखंड एकदेशीयता स्थापित रही।

कला और साहित्य—प्रायः सभी लोग एक दूसरे को आदर की दृष्टि से देखते थे। कला और साहित्य जो संस्कृति का सबसे बड़ा माध्यम है का आधार धार्मिकता, नैतिकता, और रहस्यवादिता रहा। सभी भाषाओं में समान रूप से दृष्टिगोचर रहा। इसके अतिरिक्त, संगीत, स्थान रस, अलंकार, कथावस्तु, चरित्र चित्रण, नृत्यकला ने भारतीय संस्कृति की एकता को स्थापित करने में बड़ी सहायता दी है। इसके अतिरिक्त संस्कृत भाषा जो आर्य परिवार की भाषा की मूलाधार है, अखंड भारत की एकता स्थापित करने में सर्वाधिक प्रमाणित हुई है।

साधन—एन्शिएन्ट-ज्यागराफी आफ इण्डिया। कनिंघम
लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इन्डिया। ग्रियसेन
एन्शिएन्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन पारजीट
ओरिजिनल स्प्रेड आफ दी तामिल्स

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीसरा अध्याय

मनुष्य का आदि काल

१—मनुष्य का आदि विकास

मनुष्य की उत्पत्ति—पुरातत्व वेत्ताओं का मत है कि अब से कोई अस्सी करोड़ साल पहिले पृथ्वी पर जीवन के चिन्ह प्रकट होने लगे थे। उसके बाद प्राणियों का विकास होने में करोड़ों साल लग गये। कहा जाता है कि बानरों की एक जाति से विकसित होकर मनुष्य की उत्पत्ति हुई। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि मनुष्य की पृथ्वी पर उत्पत्ति अब से दस लाख साल पूर्व हुई। उसमें पशुओं से कई भिन्नतायें थीं। वह दो पैरों से खड़ा हो सकता था और उन्नतिशील था। उसके हाथ और अंगूठे की रचना अन्य प्राणियों से निराली थी। वह अपने और दूसरे के अनुभवों से लाभ उठा सकता था। उसमें स्मरण, मनन और चिन्तन के गुण थे। इनके द्वारा वह अपनी कृतियों को सुधार सकता तथा अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये अनेक उपाय कर सकता था। इसके अतिरिक्त वह अपने भावों को वाणी और इशारों से दूसरों पर प्रकट कर सकता था। मनुष्य की इन शक्तियों का विकास धीरे धीरे बहुत वर्षों में हुआ।

मनुष्य का आदि विकास—अब से सम्भवतः एक लाख वर्ष पहिले तक वह पशुओं की भांति रहता था। अपने हाथों के अतिरिक्त उसके पास रक्षा का कोई साधन न था। वह न अपने रहने की झोंपड़ी बनाना जानता था, न तन ढकने की कोई रीति वह जानता था। उसके पास गाय, भैंस, बकरी, भेड़, कुत्ता कुछ भी न था। अन्न भी वह नहीं जानता था, न बर्तनों का उसे खयाल था। कन्द-मूल-फूल पत्तियाँ या मरे हुये या मारे हुये पशुओं, पक्षियों का माँस ही उसका आहार था।

पहिला विज्ञान—जब उसने आग जलाना सीखा तो वह उसका सबसे पहिला विज्ञान था। लकड़ियों को जोर से रगड़ कर वह आग जला लेता था। आग से सर्दी का बचाव करने से उसे बहुत प्रसन्नता हुई। फिर उसने लकड़ी के नुकीले हथियार बनाकर माँस भूनना सीखा। पर इतनी ही बात जानने में उसे हजारों वर्ष लग गये। आग पैदा करके और हथियार बनाकर उसने सबसे पहिली मानवीय सभ्यता को जन्म दिया और अपने को पशुओं के जीवन से अलग किया। इसके बाद वह पत्थर, हड्डी, सींग के अनेक उपयोगी हथियार और पात्र बनाने और पशुओं को पालने लगा। जौं, बाजरा, गेहूं की खेती करना, ईंट पकाना, दूध दुहना, घास, बान, सन,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बांस की रस्सियां बटना, पहियों पर लुढ़कने वाली गाड़ी बनाना, मिट्टी की दीवारों पर झोंपड़ी बनाना तथा वृक्षों की छालों और चमड़े से शरीर ढकना उसने बहुत दिनों में सीखा।

सभ्यता की ओर—बहुत दिन तक वह अपने पालतू पशुओं को चराता हुआ झुण्ड बनाकर घूमता रहा। फिर जब खेती करने लगा तो गांव बसाकर बस गया। धीरे धीरे बस्तियां बसने लगीं। वस्तुओं की अदल-बदल ने उसे व्यापार और समाज रचना सिखाई। उसे सम्पत्ति का ज्ञान हुआ और अमीर, गरीब, सभ्य असभ्य का भेद होने लगा। समाज में पेशों की श्रेणियाँ बनने लगीं। भाषा का व्यवहार वह करने लगा, नाचने गाने, ढोल, तुरही और तार वाले बाजे बजाने का उसे ज्ञान हुआ। साज सिंगार भी उसने सीखे और भीतरी शक्तियों से प्रभावित होकर वह जादू, टोना, झाड़-फूंक में विश्वास करने लगा। कुछ चतुर लोग जादूगर बनकर अपने को शक्ति सम्पन्न कहने लगे। वे मेह बरसाने, खेत उगाने, रोग दूर करने, भूत-प्रेत, मृतात्माओं को, देवी-देवों को मनाने का ढोंग रचने लगे।

कुटुम्ब प्रथा—धीरे धीरे उनमें पतिपत्नी सम्बन्ध स्थापित हुये। कुटुम्ब बना, जाति बनी, बिरादरी बनी, उन्होंने दल बाँधकर युद्ध करना सीखा। आगे चलकर उन्होंने धातु ज्ञान, लिखना पढ़ना और आरम्भिक राजनीतिक संगठन करना भी सीख लिया और वह बड़ी तेजी से सभा बनाने लगा। परन्तु इस विकास में उसे लाखों वर्ष लग गये। पचास हजार वर्ष तो वह पत्थरों ही के हथियारों से काम चलाता रहा।

सबसे पहिली धातु उसे सोना मिली। फिर ताँबा, फिर कांसा और फिर लोहा। धातुओं की प्राप्ति ने उसे अधिक सभ्य बना दिया और इसी से उसकी प्रवृत्ति विज्ञान की ओर हुई।

२—प्रथम प्रस्तर युग

अपनी प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आर्थिक उत्पत्ति नहीं कर सकता था। अन्य पशुओं के समान वह अपना निर्वाह जंगली कन्द-फल-मूल या पशुओं के मांस पर करता था। पर उसके पास अन्य पशुओं की अपेक्षा बुद्धि अधिक थी और उसका मस्तिष्क अन्य जानवरों की अपेक्षा बड़ा था। इससे उसने सोचने विचारने में पशुओं से भिन्नता ग्रहण की और शिकार के लिये पत्थरों के हथियार बनाये। ये हथियार वह मुख्यतः पत्थर के बनाता था। हड्डी और लकड़ी के भी हथियार बनाता था। ये हथियार मोटे भद्दे होते थे। उसके आगे के भाग को नौकीला बनाकर उनसे वह शिकार करने या माँस काटने का काम लेता था। आग उत्पन्न करना वह इस काल में ही सीख गया था पर बर्तन बनाने नहीं सीखा था। न उसे धातु का ही ज्ञान था। वह प्रायः नदियों और जलाशयों के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किनारों पर्वतों की खोहों में, गुफाओं में टिक जाता और शिकार की तालाश में घूमता रहता। कला के नाम पर उसने केवल इतनी ही प्रगति की थी कि कभी कभी कोयले या मिट्टी के रंगों से वह गुफाओं की दीवारों पर भद्दे चित्र बना लेता था। मनुष्य की यह दशा अब से लगभग ६ लाख वर्ष पूर्व थी। मनुष्य की इस आरम्भिक अवस्था के चिन्ह और अवशेष यूरोप एशिया, अफ्रीका आदि में मिले हैं। यहां भूमि के गर्त में दबे हुये इस काल के पत्थर के हथियार मिले हैं। यद्यपि ये हथियार सुदूर देशों में मिले हैं, पर इनमें समता आश्चर्य-जनक है। दक्षिणी इंगलैंड और उत्तरी पश्चिमी फ्रांस में वैसे ही औजार मिले हैं जैसे भारत और अफ्रीका में। इससे यह अनुमान होता है कि उस काल में चिरकाल तक मनुष्य दूर दूर देशों में भटकता रहा और एक ही ढंग के औजारों और हथियारों को सहस्रों वर्ष तक काम में लाता रहा। विद्वानों का मत है कि यह युग अब से ६ लाख वर्ष पूर्व से लेकर दस हजार साल पहिले तक रहा। पुरातत्व के विद्वान् इस युग को प्रथम-प्रस्तर युग कहकर पुकारते हैं।

प्रथम प्रस्तर युग में विकास—इस युग के दीर्घकाल में मनुष्य ने बहुत धीमी प्रगति की। उत्तर काल में वह अपने हथियारों और औजारों को सुधारता गया। पशुओं की खाल के छोटे छोटे तम्बू बनाकर उनमें रहना सीख गया। पशुओं की खाल से शरीर भी ढकने लगा। इस विकास के कारण इस प्रस्तर युग को हम तीन भागों में बांट सकते हैं। आदि युग, मध्ययुग और उत्तरकालीन युग। इन तीन युगों में उसने यथोत्तर अपनी सभ्यता में उन्नति की और सोचने विचारने भी लगा।

३—प्रथम प्रस्तर युग के भारतीय अवशेष

दक्षिण भारत की प्राचीनता—उत्तर भारत की अपेक्षा भारत का दक्षिणी भाग ही अधिक प्राचीन है। वहाँ के नीलगिरि, पाली और अन्यामलय पर्वत आदिम पर्वत हैं। वैज्ञानिकों का कथन है कि दक्षिण भारत का प्रस्तर युग का मनुष्य जंगलों में नहीं, पहाड़ी मैदानों में रहता था तथा वह अन्य देशों के तत्कालीन मनुष्य की अपेक्षा सभ्य था। इस बात के पुष्ट प्रमाण नहीं हैं कि ये मूलतः किस जाति के पुरुष थे। परन्तु अवश्य ही कालान्तर में आर्यों और द्रविड़ों से इनका मिश्रण हो गया था। इनका आहार मांस और कन्द-मूल फल था और निवास गुफाओं और झोंपड़ों में। आग ने उन्हें पशु से ऊंची अवस्था में पहुँचा दिया था और वे माँस पकाकर खाना जान गये थे। फिर भी यह जाति भ्रमणशील थी। क्योंकि वह खेती करना नहीं जानती थी। मद्रास और चेंगलपेट के जिलों में प्रस्तर युग के मनुष्यों के वास के चिन्ह मिलते हैं। वहाँ कुछ उनके औजार भी मिले हैं जो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्थर के हैं और जिनसे यह प्रमाणित होता है कि तस्मानिया और आस्ट्रेलिया वासियों के तत्कालीन पुरुषों से वे कहीं अधिक सभ्य और व्यवस्थित थे।

भारत की प्राचीनतम जाति—इसमें सन्देह की बहुत कम सम्भावना है कि भारत में भी उस समय जो जातियाँ थीं, वे भारत की सर्वाधिक पुरातन निवासिनी थी। उनकी आकृति हब्शियों जैसी थी। अभी भी दक्षिण भारत की जातियों में हब्शी तत्व हैं। यह हब्शी तत्व अफ्रीकन या आस्ट्रेलियन प्रमाणित नहीं है। वह मलेशिया से प्रभावित है। कहा जाता है कि मलय द्वीप समूह के शकाहस से इनका साम्य है। यह नहीं कहा जा सकता कि यह जाति वहाँ से यहां आई या यहाँ से वहां गई। पर यह तो निश्चित है कि यह जाति आदिम पाषाण युग की निवासिनी थी। पीछे नई आने वाली जातियों में इस जाति का मिश्रण हो गया। आज भी दक्षिण भारत और पूर्वी भारत के आदि निवासियों से इनका आकृति साम्य है। भारत में अब यह जाति निश्शेष है, परन्तु हिन्द महासागर के नीकोबार द्वीप में इनके अवशेष दीख पड़ते हैं। ऐसी भी सम्भावना है कि उत्तरकाल में इस जाति के लोग खेती करने और ग्राम बनाकर बसने लग गये थे।

अवशेष—इनकी संस्कृति और सभ्यता के चिन्ह कुछ खुर्दरे पत्थर, चाकू और खुरचने के औजार, लकड़ी और पत्थर के औजार, डंडेनुमा भाले, बंधे हुये तख्तों का बेड़ा, जिससे पानी में तैरा जा सकता था, चमड़े की थैलियां आदि के रूप में अण्डामन द्वीप में प्राप्त हुये हैं।

दक्षिण भारत में—१९ वीं शताब्दी के मध्य भाग में पुरातत्वों के विद्वानों को इस युग के पुराने पत्थरों के औजारों की उपलब्धि हुई। भारत में सबसे पहिले मद्रास के समीप पल्लावरम स्थान में और गोदावरी घाटी में आदि प्रस्तर युग के कुछ औजारों की उपलब्धि हुई। ये सब अवशेष अब मद्रास के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। २० वीं सदी के आरम्भ ही में इङ्गलैंड के अन्वेषकों के कई जत्थे भारत में आदि प्रस्तर युग के अवशेषों की खोज करने आये। इन्होंने भारत के अनेक प्रान्तों से इस युग के अवशेषों की उपलब्धि की।

अन्य प्रान्तों में—रावलपिंडी जिले का पोठवार प्रान्त, कश्मीर में पुंच्छ उत्तर पश्चिमी पंजाब में ख्यूड़ा की नमक की पहाड़ियों का प्रदेश, गुजरात में साबरमती की घाटी, नर्मदा घाटी और कर्नूल जिला, मद्रास का समुद्रतटवर्ती प्रदेश, मैसूर का वैलारी प्रदेश, उड़ीसा की मयूरभंज रियासत और बम्बई के समीप तथा अन्य स्थानो में भी प्रथम प्रस्तर युग के अवशेष मिले हैं।

प्राग-सोआं सभ्यता—रावलपिंडी के पोठवार प्रदेश में सोंआ नदी की घाटी में इस युग के मनुष्यों के जो अवशेष प्राप्त हुये हैं वे सबसे अधिक संख्या में हैं और उनसे उस काल की सभ्यता पर बहुत अधिक प्रकाश पड़ता है। कहा जाता है कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एशिया भर में ये सबसे प्राचीन अवशेष हैं। यह औजार आकार में बड़े हैं और पत्थर को एक ओर से नुकीला करके बनाये गये हैं यह प्राचीनतम अवशेष अब से ४ लाख वर्ष पुराने हैं. ऐसा पुरातत्त्व वेताओं का मत है। सोआं घाटी में कुछ दूसरे प्रकार के औजार भी मिले हैं जो पूर्वोक्त औजारों की अपेक्षा विकसित अवस्था में हैं। इन औजारों के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि इस प्रदेश में चिरकाल तक अनेक लोग रहे और उन्होंने अपने जीवन में बहुत प्रकाश डाला। सोंआ घाटी में जो बाद के युग के औजार मिले हैं, उनमें लकड़ी काटने के भी औजार हैं और ऐसे पत्थर के कुल्हाड़े भी हैं, जिनमें लकड़ी का बेंटा भी पड़ सकता था। ये विकसित अवस्था औजार केवल सिन्ध और सोंआ के निकट ही नहीं सोआनक में भी प्राप्त हुए, हैं इससे विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि उस काल में उस स्थान में बसे, जो कोठवार अड़ियाला, खसलाकलां, चौंतरा, घड़ियाला और कुशलगढ़ हैं वहां से उस जाति के लोग पूर्व में काश्मीर की ओर फैलते गये।

पुंच्छ प्रदेश—काश्मीर के पुंछ प्रदेश में, और छूदा की नमक की पहाड़ियों में में जो कुल्हाड़े मिले हैं, वे सोंआ और सिन्ध की घाटी से अधिक परिष्कृत हैं। यहां मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े भी मिले हैं। इससे यह अनुमान होता है कि काश्मीर की घाटी में नूतन प्रस्तर युग का आरम्भिक विकास हुआ। नर्मदाऔर कृष्णा नदी की घाटी में मिले हुए औजार अधिक प्ररिष्कृत हैं। कुछ औजार तो आजकल की छुरी की तरह है जिनमें एक तरफ धार है। ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्णा और गोदावरी की घाटियों में और विंध्याचल पर्वत के मांदा में विकसित अवस्था में इस जाति के लोग पहुँचे थे।

गुजरात और मद्रास—गुजरात और मद्रास के क्षेत्र में कुछ विशेष विकसित चीजें मिली हैं। विकास की दृष्टि से मद्रास का अन्तिरम् पक्वम् का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है। वहां पत्थर के औजारों के साथ ही मनुष्य की हड्डी भी मिली है, जो इस समय आक्सफोर्ड में सुरक्षित है। यूरोप और जावा आदि में इस काल के मनुष्यों की खोपड़ी और अन्य अस्थियाँ मिली हैं। भारत में अभी पूर्वोक्त अस्थि को छोड़कर इस काल के मनुष्यों का कोई अस्थि पिंजर नहीं मिला है।

बम्बई के समीप जो खुदाई हुई है, उसमें सबसे निचली तह में मोटे और भद्दे औजार मिले हैं, किन्तु ऊपरली तह के औजार अधिक परिष्कृत हैं।

मैसूर प्रदेश में इन औजारों के साथ ही साथ मिट्टी के बर्तनों के भी अवशेष मिले हैं। चितल दुर्ग में जो बर्तन मिले हैं, वह हाथ से बनाये हुए हैं। चाक का इस्तेमाल वे लोग तब तक कदापि न जान पाये थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग के मनुष्यों की हड्डियां इतने दीर्घ काल के बाद तक स्थिर नहीं रह सकीं। अब तक इस युग के जो अवशेष प्राप्त हुए हैं। उनमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फरसे, बाण की अणि, भाले, खुदाई के औजार, काटने की छैनियां, कुल्हाड़े, चकमक पत्थर जो आग जलाने के काम आता था मुख्य हैं।

४– आदि प्रस्तर युग का रहन सहन

आरम्भ में इस युग का मनुष्य गुफाओं में या वृक्षों की डाल पर रहता था, बाद में वह पशुओं की खाल के तम्बू बनाने लगा। इन तम्बूओं को सीने के लिये चमड़े को काटकर उसने तागा बनाया और हड्डी की सुई को काम में लिया। इसी भांति उसने चमड़े से शरीर भी ढकना आरम्भ किया, जो सर्दी और धूप से बचने में उसकी सहायता करता था। उसका प्रधान भोजन शिकार के द्वारा ही उपलब्ध होता था। मछली पकड़ना भी उसने सीख लिया था और पृथ्वी को खोदकर कन्द मूल प्राप्त करने लगा था। खोदने के कुदाल और काटने के दरांत भी उसने बना लिये थे। अन्न को भूनना और पीसना भी उसने जान लिया था। आरम्भ में तो पत्थर फेंककर वह पशुओं ही का शिकार करता था, परन्तु बाद में उसने धनुष बाण बनाने भी सीख लिए। बाण उसने सींग के बनाये और बाण के आगे उसने पत्थर जड़े।

इस युग का मनुष्य छोटी छोटी टोलियों में आहार और शिकार की खोज में घूमता था।

इस युग के मनुष्य का जीवन—ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग का मनुष्य परलोक और धर्म के सम्बन्ध में कुछ विशेष विचार रखता था और जादू-टोना भी वह जानता था। वह प्रकृति के नियमों से बहुत भयभीत रहता था। वह समझता था कि जादू टोने से ये उपद्रव शान्त हो सकते हैं, और खाने की सामग्री प्राप्त हो सकती है। भारत में तो नहीं किन्तु दूसरे देशों में मनुष्य के पंजर के साथ औजार, आभूषण और भोजन के लिये मारकर रखे गये पशुओं की हड्डियाँ भी मिलीं है। जो अवश्य ही मनुष्य के परलोक की भावना से रखी गईं थीं। कुछ गुफाओ में दीवार के साथ दीपक रखे हुए मिले हैं, जिनके ऊपर दीवार में हिरण, बारहसिंगा आदि के चिन्ह हैं कि जिनसे वह पेट भरता था। और ये दीपक कदाचित पूजा के लिये काम में लाये जाते थे जिनमें तेल की जगह चर्बी जलाई जाती थी। कुछ ऐसे पशुओं के अस्थि-पंजर मिले हैं, जो मारकर खाये नहीं गये, समूचे ही पत्थर के नीचे दबा दिये गये। ऐसे पशुओं के अस्थि-पंजर यूरोप में बहुत मिले हैं, और विश्वास किया जाता है कि ये पशु बलि किये हुए पशु हैं, और इससे यह भी अनुमान किया गया है कि उस काल का मनुष्य अपने से अधिक शक्तिशाली किसी देवता पर विश्वास करता था, या प्रकृति की अदृष्ट शक्तियों में वह दैवी भावना की कल्पना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करता था, जिन्हें तृप्त करने के लिये वह दीप जलाता और पशुओं की बलि देता था।

यूरोप में सीटी के ढंग की कुछ हड्डी की बनी हुई चीजें मिली हैं, जो इस बात का प्रमाण है कि वह गाने बजाने का शौकीन था। इस युग का मनुष्य कौड़ी, शंख और पशुओं के दांतों को भी काम में लेता था, जो कला की दृष्टि से बहुत सुन्दर हैं।

यह एक महत्वपूर्ण बात है कि इस युग के मानवों के अवशेष प्रचुर मात्रा में यूरोप और एशिया में ही मिले हैं। भारत में तो अधिकांशतः पत्थर के औजारों की ही उत्पत्ति हुई है। इससे सहज ही अनुमान होता है कि इस युग का मनुष्य उत्तरोत्तर एशिया से यूरोप की ओर अधिक प्रसारित हुआ, और भारत में उसका प्रसार विरल हुआ।

उत्तर कालीन प्रस्तर युग

प्रथम विकास युग—इस युग को दो खंडों में विभाजित करना उपयुक्त होगा। प्रथम जबकि उसने यह समझा कि पशुओं का शिकार करने की अपेक्षा उन्हें पकड़कर पालतू बनाना अधिक लाभदायक है। इससे वह आसानी से अपनी इच्छा के अनुसार मांस, दूध और ऊन प्राप्त कर सकता है। इस विचार से उसने उपयोगी पशुओं को पालना आरम्भ किया। यह पालतु पशु धीरे धीरे उसकी सम्पत्ति बनते चले गये।

दूसरा काम जो उस युग के मनुष्य ने आरम्भ किया वह कृषि था। पहले वह अपने आप उपजने वाले जंगली फल, कन्द मूलों को अपने काम में लेता था। अब उसने बीजों को बोया और खेती करना भी सीखा। यह ऐसी अवस्था थी कि अब जबकि वह पशु पालक और कृषक बन गया था, वह अपने खेतों के पास मकान बनाकर रहे। उसने अपने कुछ औजारों का परिष्कार किया जो दिन प्रति दिन उन्नत होते चले गये। पत्थर के कुल्हाड़े से वह जलाने के लिए लकड़ी काटता था। अब उसने बड़ी बड़ी लकड़ियों को काटकर मकान बनाने आरम्भ कर दिये जो शीघ्र ही बस्तियां बन गईं। पहले वह सर्दी और गर्मी से शरीर की रक्षा के लिए केवल पशुओं की खाल ओढ़ता था, परन्तु अब वह उनके वस्त्र भी बनाने और काम में लेने लगा। अभी तक यद्यपि वह धातुओं को नहीं जानता था और उसके सब हथियार, औजार पत्थर, हड्डी और लकड़ी के होते थे, परन्तु इन्हीं के द्वारा वह तेजी से सभ्यता की ओर बढ़ता जा रहा था। इस विकास युग के अवशेष भी यूरोप और एशिया में मिले हैं। भारत में जो इस युग के औजार मिले हैं वे अर्द्धचन्द्राकार, त्रिभुजाकार, सुडौल और परिष्कृत हैं। बर्तन अवश्य हाथ से बने होने के कारण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुडौल नहीं हैं। मैसूर रियासत के चित्तलदुर्ग जिले में ब्रह्मगिरि नामक स्थान पर और हैदराबाद जिले में मास्की नामक स्थान पर अवशेष मिले हैं। नर्मदा, गोदावरी और साबरमती की घाटियों में, विन्ध्याचल की पर्वत श्रृंखला में, उत्तर प्रदेश के बांदा जिले में और दक्षिण में करनूल में इस युग के अवशेष मिले हैं। गोदावरी की घाटी में तो ऐसे विशालकार अवशेष मिले हैं, जिनमें मृत शरीर को गाड़ दिया जाता था और उसके साथ ही मृत मनुष्य के उपयोग की वस्तुएं भी रखी जाती थीं। इससे पता लगता है कि उस काल के मनुष्यों की यह भावना थी कि परलोक में भी आत्मा का अस्तित्व रहता है। इन स्थानों पर नीचे की सतहों में पुरातन युग के भी अवशेष मिले हैं। काश्मीर की घाटी और सिन्ध में अवश्य विकास अवस्था के ही औजार और मिट्टी के बर्तन मिले हैं। रावलपिंडी के दक्षिण चिट्टा नामक स्थान पर ऐसे औजारों के साथ मनुष्यों के अस्थि पंजर और हड्डियों के टुकड़े भी मिले हैं। इन अस्थि-पंजरों की खोपड़ियां आकार में लम्बी हैं।

उत्तर विकास युग—विकसित युग में तो छोटे मोटे नगरों का निर्माण होने लगा था, और उस काल का मनुष्य बहुत आरामदेह मकानों में रहता था, और अपने शरीर को वस्त्राभूषणों से अलंकृत करता था। विकसित युग के अधिक अवशेष पश्चिमी एशिया में प्राप्त हुये हैं। मैसूर प्रान्त के चित्तल दुर्ग जिले में चन्द्रवल्ली और ब्रह्मगिरि स्थानों की जो खुदाई हुई, उनमें चन्द्रवल्ली की खुदाई खास तौर से महत्व-पूर्ण है। इस खुदाई में सबसे ऊपर की सतह पर सातवाहन काल के अवशेष पाये गये हैं, उसके नीचे मौर्य के और उसके भी नीचे लोह काल के अवशेष हैं। लौह काल के अवशेषों से कोई बारह फीट नीचे इस युग के औजार और मिट्टी के बर्तन मिले हैं। मिट्टी के वर्तनों का रंग काला और लाल है। ये बर्तन अन्यत्र पाये गये वर्तनों की अपेक्षा अधिक सुडौल हैं।

दक्षिण के बेल्लारी स्थान में भी ऐसे अवशेष पाये गये हैं जो अब मद्रास संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

काश्मीर में गान्धार वल्क के समीप नूलक और बुर्जहोम में ऐसे परिष्कृत अवशेष मिले हैं। उत्तरापुर के मिर्जापुर जिले में इस युग के औजार और ऐसे घड़े भी मिले हैं जिनमें मुर्दों की भस्म रखी जाती थी वहां कुछ ऐसी गुफायें भी हैं जो उस काल के चित्रों से अंकित हैं। यद्यपि भारत में प्राप्त यह अवशेष भी पश्चिमी एशिया में पाये गये अवशेषों की अपेक्षा कम है। परन्तु अब इनसे कोई दस हजार वर्ष पूर्व की मानव सभ्यता पर जब तक कि वह धातुओं का प्रयोग नहीं जानता था प्रकाश पड़ता है।

इस युग के मनुष्यों का जीवन—इस युग के मानव जीवन का इतिहास साँस्कृतिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। इस युग में मनुष्य ने नागरिक जीवन की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थापना की जिसके कारण वह उत्तरोत्तर उन्नत होता गया। विकसित प्रस्तर युग का मनुष्य आरम्भ में पश्चिमी एशिया में विकसित हुआ। एशिया माइनर, काकेशिया, अफगानिस्तान और तुर्किस्तान ऐसे प्रदेश हैं, जहाँ जौ अपने आप ही पैदा होता है। यहीं पर मनुष्य ने जौ की खेती करके पैदा करना सीखा, और उसी में से उसने उन्नति करके गेहूं का उत्पादन किया। खेती की उपयोगिता को दृष्टि में रख कर मनुष्य नदियों की घाटियों तथा जलाशयों के निकट स्थिर रूप से जम गया और उन्नति करने लगा। कृषि के साथ ही उसने पशुओं को पालना आरम्भ किया। पश्चिमी एशिया में ये जगली पशु के रूप में पहले से ही विद्यमान थे जिनका यह माँस के लिये शिकार करता था। फिर उसने उन्हें पालतू बनाकर उनके दूध और खाल का भी उपयोग किया।

इस युग का सब से महत्वपूर्ण आविष्कार वह वाण है जो लक्ष्य वेध करके फिर वापस लौट आता था। दक्षिण आस्ट्रेलिया में बूमैरिंग नाम का ऐसा ही बाण अभी भी वहीं की जंगली जातियाँ प्रयुक्त करती हैं। वह वाण बीच में कुछ झुकाव देकर बनाया जाता है और विशेष ढङ्ग से फैंकने पर फेंकने वाले के पास लौट आता है। मछली पकड़ने के कांटे, टोकरी बुनना, ढाल के स्थान पर हमला रोकने का डंडा, नुकीली आकृति के गोल झोंपड़े, जिनकी छत और दीवारें प्रथक नहीं की जा सकतीं इस युग के अवशेष चिन्ह हैं जो दक्षिण भारत के वन्य प्रदेशों में अवशिष्ट हैं।

सभ्यता के विकास के चिन्ह—विल्लसरगम की गुफायें आरम्भिक युग की हैं। उनमें जादू के कुछ रीति रिवाज के चिन्ह अंकित हैं। कदाचित इस युग का मनुष्य प्रकृति के क्रुद्ध रूप से भयभीत होकर जादू टोने पर विश्वास करने लगा था क्योंकि वह प्रकृति के कार्य और विकार्य को समझ नहीं सकता था। विल्लसरगम के अतिरिक्त वायनाड के एडकल, उतर पश्चिम प्राँत की केमूर श्रेणियाँ मिर्जापुर, बिलारी, बघेलखण्ड,बुन्देलखण्ड, लंका, तिब्बत, और रामगढ़ में इस युग की सभ्यता के अवशेष हैं। गढ़ चित्रों में शिकार के दृश्य हैं जो स्पेन की गुफाओं में मिले चित्रों की समता के हैं। जो बर्तन मिले हैं वे प्राचीन मिश्र के जैसे हैं। उन दिनों सम्भवतः सिंघनपुर जिला उत्तर से दक्षिण जाने के मार्ग पर था। वहां भी ऐसे चिन्ह हैं। बेलारी की एक गुफा में शिकार के कुछ चित्र हैं और छै कोनों वाला एक सितारा भी बना है। एडकल और वायनाड में स्वास्तिक और सूर्य के चिन्ह हैं। घट शिला में एक चाकू मिला है जो परवर्ती कैस्पियन ढंग का है। घोरम नगर गुफा, पैरगन्नाह, बुरलूर, हरिमहरम में गेंडे के शिकार के दृश्य हैं। विन्ध्य में कुछ गुफा चित्र गेरु के बने हैं। चित्र में घोड़े जैसा पशु, तीर तरकश धारी योद्धा, शिकार के दृष्य बने हैं। इन चित्रों में कुछ धार्मिक या जादू टोने की भावना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतीत होती हैं। ये लोग मातृ पूजन भी करते थे। विल्लसरगम गुफा में ऐसे भी चिन्ह मिले हैं जिनसे पता लगता है कि ये लोग आदमियों की खोपड़ी का शिकार करते थे। वहां हड्डी के हथियार, काटने के औजार, कई तरह के तीर, छोटी छोटी छेनी, परशु के फलक आदि मिले हैं। ये लोग मांस पका कर खाते थे,

वेड्डा और संथाल—आज जो वेड्डा जाति या संथाल लोग भारत में हैं उनकी कुछ सभ्यता इस जाति में हैं। वेड्डा आज भी भूतों पर विश्वास करते हैं तथा सिंगनपुर की गुफाओं के चित्रों का स्पेन के गुफा चित्रों से बहुत साम्य है। संथालों की मुखाकृति संकरी, सिर लम्बे और चेहरे चपटे होते हैं। ये लोग घरों की दीवारों पर चित्र बनाते हैं जिनमें यूरोप की गुफाओं के चित्रों से समानता पाई जाती है।

भारत, स्पेन और आस्ट्रेलिया में तत्कालीन साम्य–यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस युग के भारत, स्पेन और आस्ट्रेलिया की सभ्यता में बहुत साम्य पाया जाता है। यद्यपि ये देश एक दूसरे से बहुत दूर हैं और उस काल में यातायात साधन भी सुलभ न थे परन्तु उस काल की भौगोलिक स्थिति कदाचित इन तीनों देशों को आज की अपेक्षा अधिक निकट बनाये हुये थी।

हिन्दू संस्कृति पर प्रभाव—हिन्दू संस्कृति पर भी इस युग के मानवों का प्रभाव पड़ा है। आज भी हिन्दू लिङ्ग को पेड़ के नीचे स्थापित करके उस पर जल चढ़ाते और पूजा करते हैं। यह इन्हीं नियोलिथिक युग के मनुष्यों की स्थापना है।

विशिष्ट बातें—उत्तर आस्ट्रेलिया, पश्चिमी न्यूगिनी, दक्षिणी अफ्रीका, दक्षिणी अमरीका में टाटेम जातियां हैं। इनकी भारत के छोटा नागपुर में रहने वाली जातियों से बहुत समता है। धर्म विश्वास इनकी प्रधान संस्कृति है। पशु, पक्षी और वृक्षों की ये उपासना करते हैं। इनके घर नीचे गोल और ऊपर से नुकीले रहते हैं। लकड़ी की ढालें, बांसुरी और तुरही का चलन इनमें प्राचीन काल से है। सम्भवतः कृषि और लोहे का प्रयोग ये जातियां अपने अन्तिम दिनों में सीख गई थीं। यह भी हो सकता हैं कि प्राचीन भारत की निषाद जाति से इनका परम्परा का सम्बन्ध रहा है।

पैलेस्टाइन के प्रदेश में अनाज काटने की मशीनें और अनाज कूटने की मशीनें भी प्राप्त हुई हैं। ऐसे अवशेष भी प्राप्त हुये हैं कि जिनसे पता चलता है कि वे लोग बैलों व घोड़ों से हल चलाना, गाड़ी खिचवाना और लकड़ी पत्थर व मिट्टी के मकान बनाना जान गया था। यूरोप और पश्चिमी एशिया में जो इस युग के अवशेष मिले हैं उनसे अनुमान होता है कि ३०–४० मकानों के ग्राम होते थे, और अनाज जमा करने को बड़े बड़े गोदाम बनाये जाते थे जो मिट्टी के बने होते थे। बहुत से ऐसे भी गाँवों के अवशेष मिले हैं, जिनमें खाई और दीवारों से किले बन्दी

State Museum, LUCKNOW.
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की गई थी। ऐसा भी प्रतीत होता है कि गांवों की खाइयां, दीवारें, गलियाँ, सड़कें सारी गाँव की सम्मिलित सम्पत्ति होती थीं। गांव के लोगों का एक सङ्गठन होता था। सम्भवतः गांव का एक मुखिया होता था, जो सम्पूर्ण गांव पर शासन करता था।

इस युग का कुम्हार अब चाक पर मिट्टी के बर्तन बनाता था, और उन पर चित्रकारी करता था, और उन्हें आग पर पकाता था। जो सबसे महत्वपूर्ण बात इस युग में प्राप्त हुई वह यह है कि श्रम विभाग की स्थापना हुई और बढ़ई, कुम्हार, कृषक आदि की पृथक परम्परागत श्रेणियां बन गईं और शिल्पी लोग अब स्वयं खेती न करके शिल्प के द्वारा ही जीविका उपार्जन करने लगे।

व्यापार विनिमय का प्रारम्भ—श्रम का श्रेणी विभाग होने से व्यापार विनिमय का आरम्भ हुआ। कुम्हार, बढ़ई आदि शिल्पी अपने परिश्रम के बदले में किसानों से अन्न पाते थे। उस समय तक विनिमय के लिये सिक्के का आरम्भ नहीं हुआ था। लोग अपनी वस्तुओं का ही विनियम करते थे। पहले यह विनिमय एक ही ग्राम में आरम्भ हुआ। फिर एक ग्राम से दूसरे सुदूरवर्ती ग्रामों में भी चला। इस प्रकार व्यापार विनिमय का आरम्भ हुआ। यूरोप और पश्चिमी एशिया के अवशेषों में ऐसी अनेक वस्तुयें प्राप्त हुईं हैं, जो उस देश में उत्पन्न नहीं हुई, और सुदूरवर्ती देशों से पहुँचाई गईं थीं।

धर्म और रीति रिवाज—दक्षिण पूर्वी यूरोप और एशिया में प्राप्त अवशेषों में मिट्टी या पत्थर की स्त्री मूर्ति मिली हैं, जो सम्भवतः पूजा के काम में लाई जाती थीं। विकसित युग का मनुष्य मातृ पूजक था। उसने इस रहस्य को जान लिया था, कि वनस्पतियों और प्राणियों की उत्पत्ति का केन्द्र स्त्री है। प्रजनन को वह एक रहस्यपूर्ण मातृशक्ति की देन मानता था।

सम्भवतः देवताओं को तृप्त करने के लिये बलि की प्रथा भी इसी युग में आरम्भ हो गई थी। उसने देखा कि जब बीज को धरती में बोया जाता है तो वह नष्ट होकर पौधे को जन्म देता है। बीज की बलि से पौधा उत्पन्न होता है। इस धारणा से उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि धरती माता को पशु की बलि देने से पैदावार बढ़ सकती है। कुछ इसी प्रकार की भावना से और प्राकृतिक घटनाओं से भयभीत होने के कारण जादू टोने का मन्द प्रयोग भी इस युग में आरंभ हुआ। मुर्दों को प्रायः जमीन में गाढ़ा जाता था। परन्तु कहीं कहीं उन्हें जलाया जाता था, और राख को मिट्टी के घड़ों में रख कर उन्हें जमीन में गाढ़ दिया जाता था। भूमध्य सागर के समीपवर्ती ग्रामों में ऐसे अवशेष मिले हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि वहाँ यह रिवाज था कि मकान के नीचे गढ़ा खोदकर एक छोटा सा मकान वैसा ही बनाया जाता था जैसा कि मनुष्य के जीवन काल में उसका निवास होता था। इसी मकान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में मुर्दे को गाड़कर उसके उपयोग की वस्तुयें रख दी जाती थीं। कुल्हाड़ी सम्भवतः शक्ति का माध्यम समझी जाती थी और वीरगण रक्षा कवच की भांति उसका उपयोग करते थे।

इस युग का मनुष्य ऊन तथा रेशम के सुन्दर वस्त्र बनाने और धारण करने लगा था जो तकलों से काता जाता था। कपास को कदाचित इस युग के लोग नहीं जानते थे।

निस्सन्देह इस युग में जनसंख्या काफी बढ़ गई थी और उसमें सामाजिक जीवन क्रमबद्ध हो गया था। अब वह श्रमिक, योद्धा, शिल्पी, व्यापारी और चिकित्सक था। सामूहिक कारणों से अब उसे युद्ध भी करने पड़ते थे। इसलिये उसने अपनी सुरक्षा के लिये गाँव के चारों ओर खाइयाँ और प्राचीर बनवा ली थीं। इस प्रकार इस युग का मनुष्य बहुत अंशों में सभ्यता के मूलाधार सामाजिक व्यवस्था की स्थापना कर सका था।

६—धातु युग

धातु का प्रथम परिचय—सम्भवतः आग ने मनुष्य को धातु से परिचित कराया। खनिज रूप में धातुओं का मिश्रण पत्थरों में होता था। मनुष्य ने जब मिट्टी के बर्तन पकाने, भोजन पकाने और भट्टियों और चूल्हों को जलाने के लिये आग जलाई तो उसकी गर्मी से पत्थर में मिली हुई धातु अलग हो गई और मनुष्य ने उसे हथियार बनाने के लिये उपयोगी समझा। उसने उसे ठोक पीट कर भिन्न भिन्न आकृतियां प्रदान कीं।

स्वर्ण प्राप्ति और उन्नत धातुओं की उपलब्धि—सबसे पहले उसे सम्भवतः स्वर्ण की प्राप्ति हुई। सोना शुद्ध रूप में भी पाया जाता है। परन्तु वह नरम था और बहुत कम था। इसलिये उसका उपयोग औजारों में नहीं हुआ और उसके आभूषण बनाये जाने लगे। इसके बाद ही उसे तांबा और लोहा प्राप्त हुये। सम्भवतः उत्तरी भारत में ताँबा और दक्षिणी भारत में लोहा प्राप्त हुआ। उन्होंने इन धातुओं के औजार और हथियार बनाये।

कांसे का युग—सिन्ध और बिलोचिस्तान में और पाश्चात्य संसार के अनेक देशों में इसी समय कांसे का प्रयोग हुआ। कांसा एक प्रकार की धातु थी जो तांबे से अधिक सख्त थी, और लोहे की खोज से पहले हथियारों के बनाने के लिये अधिक उपयुक्त थी। इसी कारण कांसे का उपयोग अधिक हुआ, और विकसित प्रस्तर युग के बाद जो धातु का नया युग आरम्भ हुआ, वह कांसे का युग था। ताम्र युग उसके बाद माना गया। कांसा और तांबे की उपलब्धि से कृषि तथा शिल्प अब कुछ परिष्कृत रूप में होने लगा, परन्तु उससे सभ्यता के विकास में कोई विशेष अन्तर नहीं आया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आज सिन्ध और बिलोचिस्तान के जो रेतीले प्रदेश हैं, यही प्रदेश भारत में ताम्रयुग के आदि प्रदेश हैं। यहीं पर ताँबे के बने हुये औजारों और हथियारों की उपलब्धि हुई है।

भारतीय धातु कालीन सभ्यता—भारत में जो अवशेष इस काल के मिले हैं उसमें क्वेटा के निकट बोलान दर्रे में पांच ऐसे खेड़े मिले हैं, जिनके नीचे इस युग के अवशेष प्राप्त हुये हैं। इनमें सबसे बड़े खेड़े का व्यास ६०० फीट और ऊंचाई ५० फीट है। इस खेड़े के नीचे एक प्राचीन बस्ती के अवशेष मिले हैं। इस बस्ती के मकान पक्की आग में पकाई हुई ईंटों के बने हुये थे। मिट्टी के जो बर्तन यहाँ मिले हैं, वे पकाये हुये हैं और उन्हें गोल और चित्रित रेखाओं से अलंकृत किया गया है। ऐसे ही बर्तन ईरान में भी मिले हैं।

अमरीनल सभ्यता—सिन्ध और बिलोचिस्तान में जो खेड़े मिले हैं वे क्वेटा की अपेक्षा बहुत लम्बे चौड़े हैं। बंधनी नामक स्थान पर जो खेड़ा है वह क्वेटा के सबसे बड़े खेड़े से दुगुना है। इससे स्पष्ट है कि यहां की बस्तियाँ क्वेटा की अपेक्षा अधिक सभ्य थीं। उनके चारों ओर परिखा और दीवारें भी थीं। दीवारों के आधार में मजबूती के लिये पत्थरों का भी उपयोग किया गया था और पूरी दीवार ईंटों की बनाई गई थी। इन दीवारों में और बस्ती के मकानों में जो कच्ची ईंटें काम में लाई गई हैं वह लम्बाई में २१ इञ्च, चौड़ाई में १० इंच और ऊंचाई में ४ इंच हैं मकानों का आकार प्रायः ४० फीट लम्बा और इतना ही चौड़ा है। मकान में अनेक छोटे बड़े कमरे होते थे और बीच में सहन रखा जाता था। ईंटें कच्ची होती थीं और उनके साथ साथ पत्थर का भी प्रयोग होता था। मकानों में दरवाजे और खिड़कियां थीं। प्रत्येक मकान में एक गली होती थी और मकान का प्रबन्ध व्यवस्थित होता था।

यहां के मनुष्य अपने मुर्दों को जमीन में गाढ़ते थे और उनके लिये ईंटों और पत्थरों की कब्र बनाते थे और उनके साथ कब्र में काम आने वाली वस्तुयें भी रख दी जाती थीं। यहाँ जो कब्र प्राप्त हुई हैं उनमें मनुष्य के अस्थि पिंजर के अतिरिक्त मिट्टी के बर्तन, आभूषण और औजार भी मिले हैं। यह औजार प्रायः तांबे के बने होते थे और आभूषण तांबे, शंख और कौड़ी के होते थे। मूंगे भी कहीं कहीं इन कब्रिस्तानों में मिले हैं। कब्रों में भेड़ या बकरी की हड्डियां बर्तनों में रखी मिली हैं। कदाचित् इन पशुओं को मार कर मृत पुरुष के लिये रख दिया जाता था। बर्तनों के जो टुकड़े यहां प्राप्त हुये हैं, वे सुडौल और परिष्कृत हैं और उन पर बैल, बारहसिंगा और मछली की चित्रकारी की गई है। इस सभ्यता को और बोलन दर्रे के आसपास की सभ्यता को पुरातत्व वेताओं ने अमरीनल सभ्यता पुकारा है। दक्षिणी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और उत्तरी बिलोचिस्तान में जो अवशेष मिले हैं उनको दो विभागों में विभक्त किया गया है।

कुल्ली सभ्यता—दक्षिण बिलोचिस्तान के मिले अवशेषों के आधार पर उसे कुल्ली सभ्यता कहते हैं। यहाँ के अवशेषों में जो बस्तियों के ध्वंसावशेष मिले हैं उन में मिट्टी का ध्वंस अधिक था। कच्ची ईंटें मिट्टी से जोड़ी जाती थीं। यहां के मकानों का आकार भी कुछ बड़ा था और फर्श लकड़ी के थे। मकान दुमंजिले भी थे जिन पर जाने के लिये पत्थर की सीढ़ियां थीं। यहां आग पर पकाई हुई पशुओं और स्त्रियों की छोटी छोटी बहुत सी मूर्तियां मिली हैं जिनके नीचे पहिये लगाने के भी निशान हैं। कुछ ऐसे पक्षियों की मूर्तियां हैं जिनकी पूंछ से सीटी बजाने का काम लिया जाता था। स्त्री मूर्ति जो प्राप्त हुई हैं उनका मुंह बेडोल है और शरीर केवल कमर तक बनाया गया है। परन्तु गहने और बाल बाँधने की विधि स्पष्ट रूप से दिखाई गई है जिससे पता लगता है कि उस काल की स्त्रियां किस प्रकार केश विन्यास किया करती थीं। आभूषणों में चूड़ियाँ कोहनी तक पहिनी हुई हैं।

यहां से प्राप्त हुये बर्तनों का पश्चिमी एशिया से मिले बर्तनों से बहुत साम्य है। इनके अतिरिक्त कुल्ली सभ्यता के स्थान मही में कुछ पत्थर के बने हुये बर्तन भी मिले हैं, जिनमें छोटे छोटे खाने बने हैं। ऐसे ही बर्तन पश्चिमी एशिया में भी प्राप्त हुये हैं। यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि इस काल में बिलोचिस्तान और उसके आसपास के लोगों में तथा पश्चिमी एशिया के लोगों में आवागमन और व्यापार विनिमय प्रारम्भ हो गया था।

मही नामक स्थान में एक कब्रिस्तान में तांबे का एक दर्पण प्राप्त हुआ है जिसका व्यास ५ इञ्च है और आकृति गोल है। दर्पण के हत्थे को स्त्री की आकृति दी गई है, जिसमें सिर नहीं दिखाया गया है। आकृति बहुत सुन्दर है। यह दर्पण प्राच्य संसार के अवशेषों में एक दुर्लभ अवशेष माना जाता है।

झोब सभ्यता—उत्तरी बिलोचिस्तान में झोब की घाटी में रनघुंडई नामक स्थान अति प्रसिद्ध है। यहां भी पशुओं की बहुत सी मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। कुल्ली सभ्यता में पशु मूर्तियों में गाय आदि की मूर्तियाँ हैं। यहाँ जो स्त्री मूर्ति मिली हैं उनकी मुखाकृति बहुत भयानक है जो मातृदेवी के रौद्र रूप की अभिव्यक्ति प्रतीत होती हैं।

उत्तरी भारत में कहीं कहीं ताम्रयुग के अवशेष प्राप्त हुये हैं, परन्तु अभी वहाँ विशेष खोज नहीं की गई है। ताम्रयुग की समाप्ति तक भारतीय अवशेषों में कहीं भी कोई लिपि या लेख नहीं प्राप्त हुआ है। इससे ऐसा अनुमान होता है कि अब से लगभग ६ हजार वर्ष पूर्व तक जबकि ताम्र सभ्यता का अन्त हो रहा था, इस युग के लोग लिखना पढ़ना नहीं जानते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौथा अध्याय

सिन्धु घाटी की सभ्यता

१—खोज का आरम्भ

विकसित ताम्र युग के अवशेष—पिछले अध्याय में हमने बताया है कि सिन्ध और बिलोचिस्तान में विकसित ताम्रयुग के अनेक महत्त्वपूर्ण अवशेष प्राप्त हुये हैं। अमरीनल सभ्यता, कुल्ली सभ्यता और झोब सभ्यता के जो अवशेष इस भू भाग में प्राप्त हुये हैं उनसे यह प्रमाणित होता है कि अब से लगभग ८ हजार वर्ष पूर्व यहाँ ऐसी जातियां रहती थीं जिनके जीवन अधिक विकसित थे और जिनके सम्पर्क पश्चिमी एशिया तक थे। इसके बाद सिन्ध घाटी में एक नई समुन्नत सभ्यता के महत्वपूर्ण चिन्ह प्राप्त हुये, जिन्हें जानकर सारा सभ्य संसार आश्चर्य चकित रह गया।

खुदाई का आरम्भ—सन् १९२२ से १९२९ तक सिन्ध घाटी के कुछ खेड़ों की खुदाई हुई। सिन्ध घाटी में बहुत से विशाल खेड़े हैं जिन पर शताब्दियों से आंधी पानी और प्रकृति के परिवर्तनों ने मोटी मिट्टी की तह जमा दी थी। खुदाई का आरम्भ तत्कालीन पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष सर जान मार्शल और उनके सहयोगी श्री राखलदास बनर्जी तथा दयाराम साहनी आदि पुरातत्व विद्वानों ने किया जो निरन्तर सात वर्ष तक चलता रहा। इस खुदाई में उन विशाल खेड़ों के नीचे जो भग्नावशेष निकले हैं उनसे प्रमाणित हुआ है कि सम्भवतः अब से ५, ६ हजार वर्ष पहिले सिन्ध घाटी में एक अत्यन्त समुन्नत और समृद्ध सभ्यता विकसित हुई थी जो उस काल में संभवतः पृथ्वी पर सर्वाधिक समुन्नत थी।

विस्तार क्षेत्र—यह सभ्यता पूर्व में काठियावाड़ से आरम्भ होकर पश्चिम में मकरान तक और उत्तर में हिमालय प्रदेश तक विस्तृत थी। इसके प्रधान नगर सिन्ध नदी व उसकी सहायक नदियों के तट पर थे। यदि इस सभ्यता के क्षेत्र विस्तार का मानचित्र बनाया जाय तो एक ऐसा त्रिभुजाकार मानचित्र बनेगा जिसकी भुजायें क्रमशः ९५०, ६०० और ५५० मील लम्बी होंगी।

खुदाई में प्राप्त अवशेष—इस विशाल भू भाग में अब तक केवल ४० बस्तियों की खुदाई हुई है तथा अभी बहुत से खेड़े, बिना खुदे पड़े हैं। जिनके नीचे न जाने किन किन प्राचीन विभूतियों के अवशेष छिपे हैं। जिन बस्तियों की खुदाई अब तक हो चुकी है उनमें कुछ गांव हं, कुछ कस्बे हैं और दो बड़े नगर हैं। खुदाई में प्राप्त सब अवशेषों में समानता है। मकान बनाने के ढंग ईंटें, बर्तन, कुंयें, सड़कें, उत्कीर्ण लेख, नाप तोल के बाट आदि सब एक जैसे ही हैं। इससे यह अनुमान होता है कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अब से लगभग ६ हजार वर्ष पूर्व हजारों वर्ग मील के इस विशाल भू भाग में एक ही व्यवस्था और एक सा संगठन था। सम्भवतः यह सारा ही क्षेत्र एक सुव्यवस्थित साम्राज्य के अन्तर्गत था।

जान मार्शल का विवरण ग्रन्थ—सिन्ध की घाटी के इस प्राचीन साम्राज्य के प्राप्त अवशेषों का विवरण तत्कालीन पुरातत्व विभाग के अद्वितीय विद्वान् सर जान मार्शल ने एक भारी ग्रंथ में लिखा है जो कई खंडों में है। इस खुदाई में मिट्टी की कई तह निकली हैं जिनमें से प्रत्येक नीचे वाली तह ऊपर वाली तह से सैंकड़ों वर्ष पुरानी है। सबसे नीचे वाली तह अब से लगभग ६ हजार वर्ष पुरानी है, ऐसा पुरातत्व विदेशों का अनुमान है।

२—हरप्पा और मोहेन जोदड़ो

दो बड़े नगर—सिन्ध घाटी की खुदाई में जिन दो बड़े नगरों के अवशेष मिले हैं उनके नाम हरप्पा और मोहेन जोदड़ो हैं। मोहेन जोदड़ो कराँची से लगभग २०० मील उत्तर में सिन्ध नदी के तट पर लरकाना प्रान्त में है। हरप्पा पंजाब में लाहौर से कोई १०० मील दक्षिण-पश्चिम में रावी नदी के तट पर है। हरप्पा और मोहन जोदड़ो में ३५० मील का अन्तर है।

दोनों नगरों की रचना व्यवस्थित रूप में हुई थी। उनमें बड़ी बड़ी चौड़ी सीधी सड़कें, बड़े बड़े महल, दुमंजिली तिमंजिली हवेलियां, पक्के कुयें, स्नानागार और सभाभवन थे। पीने के जल की तथा नगर के गन्दे पानी के निकास की उत्तम व्यवस्था थी। मकान सुन्दर पक्की इंटों के हवादार बने थे जिनमें बीच में सहन होते थे। नगर निवासी सम्पन्न और कारबारी थे। नगर में बड़े बड़े राज्यपथ थे। श्रीमन्तों की हवेलियां ईंटों तथा लाख की बनी थीं। सार्वजनिक भवन भी थे। बड़े बड़े बाजार थे जिनके ध्वंसों को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ये नगर सभ्य देशों के व्यापार की एक अच्छी खासी मण्डी थी। यहां के खण्डहरों से सोने चाँदी और जवाहरात के ऐसे आभूषण प्राप्त हुये हैं जिन्हें सभी पुरुष समान भाव से पहिनते थे। हाथी दांत और मूंगों के आभूषणों का भी काफी रिवाज था।

प्राप्त सामग्री—इन दोनों नगरों से जो सामग्री मिली है उस से तत्कालीन सभ्यता और रहन-सहन पर काफी प्रकाश पड़ता है। इन नगरों में बहुत से बर्तन, मकान, मन्दिर, स्नानागार और तालाब, मिले हैं। हड़प्पा में १५० से अधिक मिट्टी की मोहरें मिली हैं, जिन पर भाँति भांति के चित्र बने हैं। इन चित्रों तथा अन्य प्राप्त वस्तुओं के अध्ययन से तत्कालीन सभ्यता पर बहुत प्रकाश पड़ता है। मोहरों और आभूषणों से प्रगट है कि उनकी कारागरी ऊंचे दर्जे की थी। उन्होंने पत्थर और जस्त पर मनुष्यों की मूर्तियाँ बनाई थीं। वे मातृदेवी, शिव और शक्ति की मूर्तियां थीं। खुदाई में ध्यानमग्न शिव मूर्तियां और नासिका पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दृष्टि लगाये योगियों की मूर्तियां मिली हैं। जो मूर्तियाँ वहां से प्राप्त हुई हैं, उनमें सिंहवाहिनी मातृदेवी की मूर्तियाँ बहुत हैं। एक त्रिनेत्र मूर्ति भी मिली है जिसके तीन नेत्र और तीन सिर हैं। शिव के निकट हाथी, चीता, गेंडा और भैंसा हैं। नाग उनकी पूजा करते हैं, और वे दो मृगचर्मों पर बैठे हैं। बड़े बड़े स्नानागारों के ध्वंस मिले हैं, जो मकान और महलों के ध्वंस मिले हैं उनमें खेमेदार और छोटे बड़े हाल और भिन्न भिन्न कामों के कमरे हैं। यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि पूजनालय अथवा मन्दिर थे या नहीं। कुछ नंगी मूर्तियाँ मिली हैं जिनकी कारीगरी अति आकर्षक है।

मोहेन जोदड़ो में कुछ तांबे के सिक्के भी मिले हैं और तोलने के बाट भी हैं जिनमें छेद हैं। धातुओं के छड़े, अंगूठी और सुइयां भी मिली हैं। पक्की ईंटों के चिने हुए कुंए भी मिले हैं। मोहिनजोदड़ो में जो मनुष्य की हड्डियों के समूचे ढांचे मिले हैं उन का निरीक्षण करके विद्वानों ने यह विचार किया है कि वहाँ दो प्रकार के मनुष्य रहते थे। एक प्रोटो आस्ट्रिलवाइड, दूसरे मैडिट्रेनियन।

नगर-रचना और प्रशस्त राजपथ—मोहेनजोदड़ो और हड़प्पा नगरों की रचना एक योजना और नक्शे के अनुसार की गई प्रतीत होती है। नगर की सड़कें पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण दूर तक सीधी रेखा में चली गई हैं। इनमें से कुछ सड़कें तो काफी चौड़ी हैं। नगर की प्रधान सडक ३३ फीट चौड़ी है, जिससे यह अनुमान होता है कि इन सड़कों पर तेज चलने वाली गाड़ियों का काफी यातायात होता होगा। कम से कम चौड़ी सड़क ९ फुट चौड़ी है। प्रधान मार्ग को काटती हुई जो सड़क पूर्व से पश्चिम को नगर के बीचोबीच होकर गई है, वह ३३ फीट से भी अधिक चौड़ी है। नालियों कीं चौड़ाई भी कम से कम ४ फीट है। एक बात महत्व पूर्ण यह अवश्य है कि सड़कें पक्की नहीं, कच्ची हैं। एकाध सड़क को ईटें बिछा कर पक्की करने की चेष्टा अवश्य की गई थी। इन विशाल कच्ची सड़कों को देखकर हमें आज के राजस्थान और शेखावाटी के उन नगरों की कच्ची सड़कें याद आती हैं कि जिन पर रेत ही बिछा हुआ है और उनके दोनों ओर बड़ी-बड़ी अट्टालिकायें लगी हुई हैं।

सड़कों के समान ही इन दोनों नगरों में मकान भी एक निश्चित क्रम से बनाये गये हैं। गलियों और सड़कों के किनारे पर मकानों की जो दीवारें मिली हैं उनमें कई २५ फीट तक ऊंची हैं। इससे प्रमाणित होता है कि यह मकान अत्यन्त भव्य, ऊंचे, विशाल और हवादार होते होंगे।

नालियाँ—गन्दे पानी को नगर से बाहर ले जाने वाली नालियां भी इन शहरों में थीं। जो मकानों के स्नानागारों, रसोईघर आदि के पानी को नगर से बाहर पहुँचाती थीं। मकानों की भाँति वे भी पक्की ईंटों से बनाई गई हैं। यह नालियां

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगभग ९इञ्च चौड़ी और १२ इंच गहरी हैं जो ईंटों के द्वारा इस ढङ्ग से ढकी हुई थीं कि जिन्हें चाहे जब उठा कर साफ किया जा सकता था। अधिक चौड़ी नालियों को पत्थर की शिलाओं से ढका जाता था। मकानों के बाहर चौबच्चे बना दिये जाते थे जिनमें गंदा पानी एकत्र होता रहता था जिससे गंदगी चौबच्चों में बैठ जाती थी और पानी ही नाली में जाता था। इन चौबच्चों को भी अवश्य साफ रखने की योजना रही होगी। नगर की कुछ प्रधान नालियां तो मनुष्य की ऊंचाई के बराबर गहरी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल में सिन्ध में वर्षा अधिक होती थी, इससे जङ्गल भी हरे-भरे रहते थे। वर्षा के पानी के भारी प्रवाह को नगर से बाहर निकालने के लिये कदाचित ऐसी ४ फुट चौड़ी नालियाँ बनाई जाती थीं-। आजकल के आधुनिक नगरों में ड्रेनेज का समुचित प्रयोग होता है परन्तु उस काल में कदाचित ही संसार के किसी नगर में मकानों के गन्दे पानी, और वर्षा के भारी प्रवाहों को नगरसे बाहर ले जाने की ऐसी व्यवस्था की गई हो, जैसी कि इन प्राचीन नगरों में थी।

कुंए—इन नगरों में छोटे और बड़े बहुत से कुंये भी मिले हैं। साधारण-तथा उनकी चौडाई २ फुट से ७ फुट तक थी। कुछ कुएं और भी अधिक बड़े है। ये कुएं पक्की ईंटों से बने हुए हैं, और उनके किनारों पर रस्सी खींचने के निशान अथ तक विद्यमान हैं। अनेक मकानों में अपने निजी कुएं थे। सार्वजनिक कुएं अपेक्षाकृत बड़े थे।

घर-मकान—मकान सब ईंटों के बने होते थे। ईंटों का आकार भिन्न-भिन्न होता था। बड़ी ईंटें २०½ × ८½ × २¼ और छोटी १०¼ × ५ × २¼ इञ्च की होती थीं। अधिकतर छोटी ही ईंटों का प्रयोग होता था। ये ईंटें आग पर पकाई हुई खूब पक्की और रंग की लाल हैं। हजारों साल बीत जाने पर भी वे वैसी ही बनी हैं। उन्हें जोड़ने में मिट्टी का गारा और कहीं कहीं गारा चूना मिलाकर काम में लाया गया है।

साधारणतया मोहेनजोंदड़ो के छोटे मकान २६ × ३० फीट के है। पर इस से दुगने तिगने आधार के मकान भी बहुत हैं। अनेक मकान दुमञ्जिले होते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि मोहेनजोदड़ो में अभी भी २५ फीट ऊंची दीवारे खड़ी हैं जिनमें शहतीर या कड़ियाँ डाल कर दूसरी मञ्जिल उठाई जाती होगी। सीढ़ियां तंग लकड़ी और पत्थर की बनाई जाती थीं। सीढ़ियाँ सीधी और तंग हैं। पैड़ियों की ऊंचाई १५ इञ्च और चौड़ाई ५ इञ्च है। परन्तु कुछ बड़े बड़े मकानों की सीढ़िया चौड़ी और कुशादा होती थी।

मकानों के कमरे भिन्न भिन्न आकार के होते थे। साधारणतया उनमें ३ × ४ फीट के चौड़े दरवाजे लगाये जाते थे। पर कुछ विशाल फाटक भी थे, जिनमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
बैल, घोड़ा, गाड़ी भी जा सकती थी। कमरों की दीवारों के साथ सामान रखने की आलमारियाँ बनाने की भी प्रथा थी। हड्डियों और शंख की खूंटियाँ व चटखनी काम में लाई जाती थीं।

मोहनजोदड़ो में प्राप्त एक सिक्के पर एक चौकी का चित्र चित्रित है। सम्भव है बैठने और सोने के लिये चौकियाँ काम में लाई जाती हों। परन्तु पलङ्ग-चौकी आदि का कोई अवशेष प्राप्त नहीं हुआ है।

मकान के बीच में चौक और उसकी बगल में रसोईघर होता था। कुछ रसोई घरों में बने हुए चूल्हे भी मिले हैं। ये चूल्हे ईंटों के बने हैं, और वैसे ही हैं जैसे आजकल हमारे घरों में चूल्हे होते हैं। स्नानागार मकान में अवश्य होता था। स्नानागार ही में जल भी रक्खा जाता था। स्नानागार के फर्श पक्की ईंटों के होते थे, उन्हें चिकना और साफ रखा जाता था। स्नानागार चौकोर होते थे। स्नानागार के निकट ही पायखाने बनाए जाते थे।

मोहनजोदड़ो में नगर के उत्तरी खण्ड में मध्यवर्ती सड़क के साथ एक बहुत भारी इमारत के ध्वंस मिले हैं जो लम्बाई में १४२ फीट और चौड़ाई में ११२ फीट हैं। इस इमारत की बाहरी दीवार की मोटाई ५ फीट है। इसके निकट ही एक और बड़ी इमारत २२० × ११५ फीट की है. सम्भवतः ये दोनों इमारतें राजप्रासाद हों या कोई सार्वजनिक सभास्थली हों। और भी बड़ी २ इमारतों के ध्वंस नगर में हैं जो या तो सरकारी इमारतें होंगी, या श्रीमन्तों और प्रमुख राज-पुरुषों की हवेलियाँ होंगी।

सड़कों और गलियों के दोनों ओर दूकानों के छोटे बड़े अवशेष हैं। इन्हीं के साथ कुछ बड़ी इमारतें भी थीं, जो बड़े २ व्यापारियों की कोठियाँ या गोदाम के काम आती होंगी।

जलाशय—मोहनजोदड़ो में एक विशाल जलाशय के अवशेष प्राप्त हुए हैं जो ३९¼ फीट लम्बा २३½ फ़ीट चौड़ा और ८ फीट गहरा है। समूचा जलाशय पक्की ईंटों से बना हुआ है। नीचे उतरने की सीढ़ियाँ भी पक्की ईंटों की हैं। इसके चारों ओर पन्द्रह फुट की एक गैलरी है। जलाशय के साथ ८ स्नानागार हैं जो सम्भवतः दुमंजले होंगे क्योंकि ऊपर चढ़ने की सीढ़ियाँ भी इनमें थीं। हो सकता है कि ये ऊपर के कमरे तेल मालिश करने या वस्त्र बदलने के काम आते हों। जलाशय के निकट ही एक कुएं का भी अवशेष मिला है, जो जलाशय के जल की पूर्ति करता था। इसके निकट ही एक इमारत कदाचित हम्माम है जहाँ जल गर्म किया जाता था। जलाशय के गन्दे पानी को निकालने और शुद्ध पानी भरने के लिये नल हैं।

परिधि और बाहरी बस्ती—मोहनजोदड़ो और हड़प्पा ये दोनों ही नगर लगभग एक मील के वर्ग क्षेत्र में फैले थे। ये नगर शहर पनाहों की फसीलों से दुर्ग की भाँति सुरक्षित थे तथा इनके आस पास छोटे बड़े उपनगर की बस्तियाँ थीं जिनमें नगर निवासी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति किया करते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३—सभ्यता के अवशेष

वातावरण और पैदावार—आजकल सिन्ध का यह प्रदेश उजाड़ और रेगिस्तान है, परन्तु उस काल में सम्भवतः वहाँ रेगिस्तान नहीं था। यह घाटी हरी-भरी, वनों, नदियों और हरे भरे मैदानों से परिपूर्ण थी। यहाँ पर जो हाथी, गेंडा, भेड़िए, रीछ आदि अन्य पशुओं के अवशेष मिले हैं उन से यह सहज ही में अनुमान किया जा सकता है। इतिहास भी इस बात का समर्थक है। क्योंकि मसीह से पूर्व तीसरी शताब्दी में जब सिकन्दर ने सिन्ध पार कर भारत पर आक्रमण किया था तब भी सिन्ध का बहुत सा प्रदेश हरा भरा था। उन दिनों सम्भवतः सिन्ध और पजाब में आजकल की अपेक्षा अधिक वर्षा होती थी। सिन्ध के पूर्व में एक नदी थी, जो अब सूख गई है। उससे यह प्रान्त खूब हरा भरा रहता था।

सर जान मार्शल का अनुमान है कि उस काल में सिन्ध देश की पैदावार तो काफी समुन्नत दशा में थी परन्तु वहाँ की जलवायु अच्छी न थी। गर्मी शून्य से नीचे १८०° तक होती थी।

रहन-सहन—सिन्ध घाटी के निवासी जौ, गेहूँ और खजूर की पैदावार करते और उन्हीं का भोजन मुख्य तौर पर करते थे। गाय, भैंस, कुत्ता, हाथी, ऊंट, बकरा और सूअर पालते थे, गो मांस खाते थे। वस्त्र बुनना और सूत कातना जानते थे। कमर से नीचे के भाग को भली-भाँति ढके रहते थे। चीते, गैंडे और वनैले सूअरों का शिकार करते थे। वे बहुत संख्या में जानवर पालते थे। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि उनके पास जल और चारे की कमी न थी। वे लोग स्नान तथा शृंगार के बहुत शौकीन थे। समय समय पर मिल जुलकर मेले उत्सव करते थे। बच्चे मिट्टी के खिलौनों से खेलते थे जो बहुत भारी संख्या में वहीं मिले हैं। इन खिलौनों में मिट्टी की गाड़ियाँ जिनमें बैल जुते हैं बहुत मिली हैं। कुछ खिलौने ऐसे भी मिले जिनका सिर हिलता है या हाथ पैर प्रथक हैं। इन खिलोनों में बहुधा नीचे पहिए लगे हैं। वयस्क लोग पासे या चौसर खेलते थे। ये पासे चतुष्कोण मिट्टी और पत्थर के बहुत संख्या में मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में मिले हैं। कुछ पासे हाथी दाँत के भी हैं। पासो पर संख्या लिखी हैं।

नृत्यगान को भी वे महत्त्व देते थे। नर्तकियों की मूर्तियाँ मिली हैं। तबले और ढोल की उत्कीर्ण आकृतियाँ भी प्राप्त हुई हैं। तीर कमान से बारहसिंगे का शिकार होता था। शेर का शिकार और तीतर बटेरों की लड़ाई भी कराने के ये लोग शौकीन थे। पुरुष प्रायः दाढ़ी रखते थे, परन्तु ऊपर के होठ को साफ रखते थे।

कला कौशल तथा व्यवसाय—मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की मिली हुई जो मूर्तियाँ और आभूषण तथा काँसे और मिट्टी के जो बहुत से नमूने प्राप्त हुए हैं, उन्हें देखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कारीगरी और कला कौशल में वे अपने समय की सब जातियों में अग्रगण्य थे। ये लोग अपने उत्कर्ष के दिनों में मिस्र, फारस और मेसोपोटामिया तक व्यवहार करते थे और यहाँ से उनका माल टाइग्रस और यूफेट्स के मैदानों में पहुँचता था। यहाँ की कारीगरी कीं कलात्मक वस्तुएं और सौन्दर्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रसाधन सुमेरिया और मेसोपोटामिया, मिश्र और बेबिलोनिया में आदर और चाव से ग्रहण किये जाते थे। यह स्थान गेहूँ का खास केन्द्र था। यहीं से वह नीलघाटी और मेसोपोटामिया को गया।

कातना व बुनना, मिट्टी के बर्तनों पर पालिश करना तथा दूर देशों में व्यापार सम्बन्ध स्थापित करना वे भली-भाँति जानते थे और यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि वे इन कामों में संसार की तत्कालीन सभ्य जातियों में सर्वाधिक सभ्य थे। सोना, चाँदी, हीरा, जवाहरात के अलंकार वे और उनकी स्त्रियाँ पहनती थीं। उनके लिये सोना, ताँबा, टीन और जवाहरात, कोलार, अनन्तपुर, फारस, जैसलमेर, नीलगिरि, बदख्शाँ, खुरासान, तुर्किस्तान व तिब्बत से आते थे। जानवरों की बहुतायत से यह बात प्रमाणित होती है कि उनके यहाँ जंगल बहुत थे और जल की भी कमी न थी। मोहरों और आभूषणों से प्रगट है कि उनकी कारीगरी बहुत ऊँचे दर्जे की थी। उन्होंने पत्थर और जस्ते में मनुष्य की मूर्तियाँ बनाई थीं।

मिट्टी के बर्तन बनाने की कला में यहाँ के लोग बहुत दक्ष थे। मोहनजोदड़ों और हड़प्पा में जो टूटे हुए बर्तन मिले हैं वे कुम्हार के चाक पर बनाए गए हैं और उन्हें चित्रों व आकृति से निर्मित किया गया है। कुम्हार लोग पहिले चाक पर बर्तन बनाते और फिर उन पर कोई लेप चढ़ाकर उन पर पालिश करते थे। तब उन पर चित्रकारी की जाती थी। अन्त में उन्हें वहीं पर पकाया जाता था। ये बर्तन अत्यन्त सुन्दर तो होते ही थे, अत्यन्त मजबूत भी होते थे। ऐसे बर्तनों में प्याले, थालियाँ, कलश, रकाबियाँ, सुराहियाँ आदि मिले हैं। कुछ बर्तनों पर वैसी ही चमक पाई गई है जैसी चीनी मिट्टी के बर्तनों पर होती है। ये बर्तन पत्थर और धातुओं के भी होते थे। पर ऐसे बर्तन कम ही मिले हैं।

यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि ये लोग धातुओं के बर्तन और औज़ार उत्तम रीति से बना लेते थे। धातु में ताँबे का ही बाहुल्य होता था यद्यपि चाँदी-काँसा तथा सीसे का भी प्रयोग होता था। हड़प्पा की खुदाई में चाँदी के तीन बर्तन मिले हैं। इस से यह प्रमाणित होता है कि धनी लोग चाँदी के बर्तनों का उपयोग करते थे। ताँबे और कांसे के बर्तन तो भारी संख्या में मिले हैं जिनकी बनावट सुन्दर और कलापूर्ण हैं।

ताम्बे का प्रयोग अधिकतर औज़ारों के लिये ही किया गया है। यहाँ ताँबे का एक कुल्हाड़ा मिला है जिसकी लम्बाई ११ इंच है और वज़न दो सेर के लगभग। इसमें लकड़ी के बेंट डालने का छेद भी है। इसकी आकृति वैसी ही है जैसी भारत में आज भी कुल्हाड़ों की होती है। इसी प्रकार ताँबे की एक आरी भी प्राप्त हुई है जिसका हत्था लकड़ी का है। इस आरी में दाँते बने हैं और इसकी लम्बाई १६½ इंच है। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि सिन्ध घाटी के निवासी अब से पाँच हज़ार वर्ष पूर्व भी आरी का उपयोग करते थे। जब कि योरोपीय सभ्यता में रोमन युग से पूर्व आरी को लोग जानते ही न थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हथियार भी ताँबे या काँते के मिलते हैं। ये हथियार युद्ध और शिकार में काम आते होंगे। पत्थर काटने की छैनियाँ बहुत मिली हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि पत्थर काटने का शिल्प भी इस युग में उन्नति पर था। मछली पकड़ने के काँटे काँसे के तथा, काँसे और बेताँ की अनेक मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुईं।

आरी की सत्ता प्राप्त होने से हम कह सकते हैं कि यहाँ बढ़ई का काम भी अच्छी तरह होता था तथा लकड़ी को काट तथा चीर कर उसका इमारतों तथा अन्य स्थानों में उपयोग होता था।

धर्म—मोहन जोदड़ो और हड़प्पा के अवशेषों में ऐसे किसी मन्दिर या धर्मस्थान के चिन्ह नहीं मिले हैं, कि जिनसे यह प्रमाणित हो कि ये लोग किसी विशेष स्थान पर एकत्रित हो कर किसी प्रकार की कोई पूजा या धर्मानुष्ठान करते हों। मोहन-जोदड़ो के निकट ही एक प्राचीन खेड़े के ऊपर एक बौद्धस्तूप खड़ा है। विद्वानों का का अनुमान है कि इसके नीचे इसी विशाल धर्मस्थान की इमारत दबी हुई है। यह स्थान उस जलाशय के निकट ही है कि जिसका हमने पीछे उल्लेख किया है। संम्भव है कि इस जलाशय का सम्बन्ध इसी विशाल इमारत से हो, जो इस खेड़े के नीचे दबी हुई हो, और जिसके सम्बन्ध में अनुमान है कि वह मोहनजोदड़ो का कोई बड़ा स्थान होगा।

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में प्राप्त कुछ मूर्ति और मुद्राएं तत्कालीन धर्म सम्बन्धी संकेत प्रगट करती हैं। एक पत्थर की मूर्ति मिली है जो केवल सात इन्च ऊँची है और जो कमर के नीचे से टूटी हुई है। इस मूर्ति में मनुष्याकृति को ऐसा 'चोगा पहनाया हुआ है, जो बाँएं कंधे के ऊपर और दाँएं भुजा के नीचे से गया है। चोगे के ऊपर पुष्पाकृति बनी हैं। इस प्रकार की पुष्पाकृतियाँ मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में बहुत उपलब्ध हुई हैं। मूर्ति की आँखें मुंदी हुई और ध्यानमग्न दिखलाई गई हैं। विद्वानों का अनुमान हैं कि यह मूर्ति किसी देवता की है और इसका सम्बन्ध वहाँ के धर्म से है। वह पुष्पाकृति भी कोई धार्मिक चिन्ह है। मूर्ति की मूछें मुंडी हुई हैं, लेकिन दाड़ी हैं। ऐसी ही आकृति की मूर्तियाँ प्राचीन सुमेरिया में भी उपलब्ध हुई हैं जिन्हें दैवी मूर्ति कहा जाता है।

मिट्टी की बनी हुईं और पकाई हुई अनेक स्त्री मूर्तियाँ भी यहाँ से उपलब्ध हुई हैं। मूर्ति पर बहुत से आभूषण हैं। परन्तु वह प्रायः नग्न दशा में हैं। केवल कमर के नीचे जाँघों तक एक कपड़ा लपेटा हुआ दिखलाया गया है और सिर की टोपी पंखे के आकार की है। जिनके दो ओर दो दीपक हैं। जिनमें सम्भवतः तेल या धूप जलाई जाती होगी। ये स्त्री मूर्तियाँ निसन्देह पूजा के ही काम में आती थीं।

संसार की प्रायः सभी प्राचीन जातियों में मातृ देवता की पूजा प्रचलित थी। ये मूर्तियाँ सम्भव है कि मातृ देवता की मूर्तियाँ हों। ऐसी ही कुछ पुरुष मूर्तियाँ मिली हैं, जो नग्न रूप में हैं। निःसन्देह यह पुरुष भी दैवी शक्ति की पूजा का भाव रखते थे। मोहनजोदड़ो में प्राप्त एक मुद्रा पर एक किसी ऐसे नग्न देवता की आकृति अंकित है, जिसके तीन मुख हैं, और सिर पर सींग बनाये गये हैं। इस मूर्ति के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चारों ओर गेंडा, हाथी, शेर, भैंसे और हिरण दिखाये गये हैं। विद्वानों का मत है कि ये पशुपति शिव की मूर्ति हैं। ऐसी तीन मुद्राएं अब तक प्राप्त हुई हैं।

कुछ मुद्राओं पर पीपल का वृक्ष भी अंकित हैं। हिन्दू अब भी पीपल के वृक्ष को पवित्र मान कर पूजा करते है। कुछ मुद्राओं पर पशुओं की मूर्तियाँ हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मातृ पूजा, शिव पूजा, देवदासी तथा सिर के बाल देवताओं को चढ़ाना, मत्स्यावतार की कथा, नागपूजन,विवाह काल में अग्नि की प्रदक्षिणा, लिंग पूजन, पीपल, बड़ और नीम की पूजा, चन्द्रमा को अर्घदान, वृषभपूजन, स्तूप निर्माण यह सब धर्म भावनाएं हिन्दुओं में सिन्ध घाटी की सभ्यता से आई हैं, और इनकी सम्बन्ध परम्परा मोहनजोदड़ो, सुमेरु बेबीलोनिया, ऐलाम, मिस्र, दक्षिण भारत; दक्षिण यूरोप और ग्रीस में समान रूप से थी।

आजीविका—अनुमान से कहा जा सकता है कि सिन्ध घाटी के लोगों की आजीविका का आधार कृषि था। कृषि के द्वारा वे मुख्यतः गेहूँ और जौ की पैदावार करते थे, दूसरे अन्नों की भी। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में खजूर की गुठलियाँ भी प्राप्त हुई हैं और मोहरों पर गाय, बैल, भैंस की आकृतियाँ अंकित हैं। इससे प्रमाणित होता है कि वे लोग इन पशुओं को बहुतायत से पालते थे, और इनके घी, दूध और माँस का प्रयोग करते थे। इसी प्रकार वे भेड़, बकरी, हाथी, सूअर पालते थे, जो उनके निर्वाह में सहायक थे। सम्भवतः इस युग में सिन्ध की घाटी में ऊँट नहीं था, किन्तु घोड़े और गधे थे।

कपास की खेती करना और सूत कातना भी वे लोग जानते थे। मोहनजोदड़ो के अवशेषों में एक सूती कपड़ा चाँदी के एक कलश के साथ चिपका हुआ मिला है। यह कपड़ा खादी के समान है। अनुमान है कि सिन्ध घाटी में सूती कपड़ा बहुत तैयार होता था, और वह सुदूर देशों में ले जाकर बेचा जाता था। पाश्चात्य देशों में उसकी बहुत कद्र व माँग थी। प्राचीन ईराक में सूती कपड़े को सिन्धु कहते थे, और ग्रीक भाषा में उसका नाम सिन्दन था। मोहनजोदड़ो में सूत लपेटने के काम आने वाली बहुत सी लड़ियाँ मिली हैं, जिससे यह पता लगता है कि वहाँ घर घर सूत काता जाता था।

हड़प्पा में बहुत से गोदामों के अवशेष मिले हैं, जिनमें अनाज एकत्र किया जाता था, और यहीं पीसने का प्रबन्ध था। गेहूँ और जौ के अतिरिक्त राई और सरसों की खेती भी होती थी।

मोहनजोदड़ो की खुदाई में हाथी दाँत का बना हुआ एक फूलदान मिला है, जो बहुत सुन्दर है। हाथी दाँत के और भी टुकड़े प्राप्त हुये हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि सिन्ध घाटी में हाथी विद्यमान थे।

सूती कपड़ों के निर्माण और व्यापार के लिये ये लोग दूर २ तक प्रसिद्ध थे ही, वे ऊनी और रेशमी कपड़ों का भी निर्माण करते थे।
इन वस्त्रों पर फूल और आकृति काढ़ी जाती थीं, और छपाई का काम भी होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि कुम्हार के बाद जुलाहे का शिल्प इस युग में उन्नत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दशा में था। यद्यपि यहाँ पर स्त्री व पुरुषों की नग्न मूर्तियाँ मिली हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि यहाँ के लोग वस्त्र नहीं पहनते थे। मूर्तियों को कदाचित देवी होने के कारण नग्न बनाया गया था परन्तु ऐसी भी मूर्तियाँ पुरुषों और स्त्रियों की प्राप्त हैं कि जिनको वस्त्र पहनाया गया है। हड़प्पा में एक ऐसी पुरुष मूर्ति मिली है कि जिसमें धोती को टांगों के साथ कसकर लपेटा गया है।

सिन्धु सभ्यता में सुनार और जौहरी का शिल्प भी बहुत विकसित था। स्त्री व पुरुष दोनों ही आभूषण पहनने के शौकीन थे। भग्नावशेषों में जो स्त्री व पुरुषों की मूर्तियाँ मिली हैं, वे सब आभूषण पहने हुए हैं। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के भग्नावशेषों में बहुत से आभूषण मिले हैं, जो ताँबे और चाँदी के बर्तनों में सजाकर रखे गये हैं। यह आभूषण मकान में फर्शों के नीचे गड़े हुए मिले हैं, जिन्हें कदाचित् सुरक्षा की भावना से जमीन में गाड़ा गया होगा। गहनों से भरा हुआ एक कलश हड़प्पा के एक मकान में फर्श से आठ फुट नीचे गड़ा हुआ मिला है। इसमें जो सोने के गहने और उनके टुकड़े मिले हैं, उनकी संख्या ५०० के लगभग है जिनमें बाजूबन्द और हार से लेकर छोटे २ मनके तक भी हैं। इसके अतिरिक्त मोहनजोदड़ो में भी अनेक लड़ियों वाले हार, बाजूबन्द, चूड़ियाँ, कर्णफूल, झुमके, नथ आदि मिले हैं। कुछ आभूषणों में लाल, पन्ना व मूंगा का प्रयोग भी हुआ है। कुछ गहने चाँदी के हैं, कुछ हड्डी व मिट्टी के हैं।

व्यापार—सब बातों पर विचार कर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि सिन्ध घाटी में जो लोग रहते थे, उनके वाणिज्य, व्यापार का सम्बन्ध देश देशान्तरों से था क्योंकि जिन वस्तुओं के अवशेष वहाँ प्राप्त हुये हैं, वे सब वहां की पैदावार नहीं थीं, वे दूर देशों की लाई हुई थीं। सोना चाँदी, ताँबा सिन्ध घाटी में नहीं पैदा होता था। सम्भवतः सोना, चाँदी, सीसा व टीन अफ़ग़ानिस्तान व ईरान से प्राप्त करते थे। ताँबा खासतौर से राजपूताने से आता था, और कीमती पत्थर बदख्शाँ से। सीप, कौड़ी और शंख काठियावाड़ के समुद्र तट से आती थीं। मूंगा, मोती आदि रत्न भी यहीं से आते थे। यहाँ के भग्नावशेषों में देवदार के शहतीरों के टुकड़े भी मिले हैं, जो केवल हिमालय के अंचल में ही पैदा होते थे और, कदाचित वहीं से लाये जाते थे।

निस्सन्देह यह तभी सम्भव हो सकता था, जब व्यापारियों की सुगठित श्रेणियां हों और यातायात के सुलभ साधन हों। व्यापारियों के ये सार्थ, जल, थल दोनों मार्गों से आते जाते थे। जल मार्ग में जहाज़ों नावों और बेड़ों का उपयोग होता था, और स्थल मार्ग में घोड़ा, गधा और बैलगाड़ियों का। यहाँ प्राप्त एक मोहर पर, जहाज की एक सुन्दर आकृति मौजूद है और मिट्टी के एक टुकड़े पर भी जहाज का चिन्ह बना हुआ है जिससे प्रमाणित होता है कि जहाजों और नावों से यह लोग परिचित थे। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में बहुत सी बैलगाड़ियों के खिलौने प्राप्त हुये है। हड़प्पा के खंडहरों में काँसे का बना हुआ एक छोटा सा इक्का भी मिला है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में ४०० मील का अन्तर है। इतने अन्तर पर के दो स्थानों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक ही तरह के इक्कों का मिलना, और इतनी अधिक संख्या में बैलगाड़ी की मूर्तियों का मिलना इस बात का प्रमाण है कि उस काल में यातायात और व्यापार के लिये इक्के और बैलगाड़ियों का प्रचलन था।

ऐसा प्रतीत होता हैं कि सिन्धु सभ्यता के लोग पश्चिमी भागों से व्यापार सम्बन्ध रखते थे। प्राचीन सुमेरिया के अवशेषों में हड़प्पा की मुद्राएं मिली हैं। जिनमें से एक मुद्रा पर सूती कपड़े का निशान है। इसके विपरीत मोहनजोदड़ो में सुमेरियन मुद्राएं मिली हैं। ईरान के प्राचीन भग्नावशेषों में भी ऐसी वस्तुएं उपलब्ध हुई हैं जो सिन्ध देश की मान ली गई हैं। इन आधारों पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन देशों का परस्पर व्यापार विनिमय अवश्य था। पुरातत्व विद् ये स्वीकार करते हैं कि ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दि में पश्चिमी एशिया के साथ सिन्ध का व्यापार सम्बन्ध था।

सिन्ध की बस्तियों में पत्थर के बने हुये तोल के बहुत से बाट मिले हैं, जो चौकोर घनाकार के हैं। आजकल भारत में एक सेर १६ छ० में विभक्त है। और ¼ पाव १ पाव व ½ सेर के बाट भारत में प्रयुक्त किये जाते हैं। ऐसे ही बट्टे मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा के ही अवशेषों में नहीं सिन्धु घाटी की हजारों मील की फैली हुई सभ्यता में उपलब्ध हुये हैं। धातु की बनी हुई तराजुओं के भी टुकड़े मिले हैं। मोहनजोदड़ो के खंडहरों में सीप का बना हुआ एक फुटे का टुकड़ा मिला है जिसमें ९ एक जैसे भाग किये गये हैं। यह फुटा सीपी के टुकड़ों को धातु से जोड़कर बनाया गया है। हड़प्पा में काँसे की एक शाखा भी मिली है, जिस पर नापने के लिये छोटे छोटे निशान हैं। इन दोनों पैमानों के आधार पर वहाँ की ईंटों और कमरों की लम्बाई, चौड़ाई को विद्वानों ने मापकर यह परिणाम निकाला है कि इस युग में एक फुट १३.३ इंच लम्बा होता था।

जो मुद्राएं इन दोनों नगरों में प्राप्त हुई हैं, उन पर किसी पशु, देवता या वृक्ष की प्रतिमा अंकित है। इनके लेख अभी तक नहीं पढ़े गये हैं। यह मुद्राएं विक्रय पदार्थों पर छापा लगाने के काम में आती थीं। संसार की अन्य प्राचीन जातियों में भी ऐसी मुद्राओं का चलन था।

लिपि व लेख—सिन्धु घाटी के अवशेषों में प्राप्त मुद्राओं पर, ताम्रपट्टों पर और मिट्टी के बर्तनों पर जो उत्कीर्ण लेख प्राप्त हुये हैं, वे अभी तक ठीक ठीक नहीं पढ़े गये हैं। कुछ विद्वानों ने यह दावा अवश्य किया है कि वे इन लेखों को पढ़ने में सफल हुये हैं। परन्तु पुरातत्व के विद्वानों को यह दावा स्वीकार्य नहीं है। यह लेख चित्र लिपि में हैं, जिसमें विशेष शब्द और वस्तु के भाव को प्रगट करने का एक विशेष चिन्ह है। सिन्ध घाटी के ३९६ चिन्हों की सूची बनी हैं। सुमेरिया की प्राचीन लिपि में ९०० चिन्ह हैं, और उसकी प्राचीन लिपि में २००० हैं। इस लिपि में लिखे हुये कुछ बड़े बड़े लेख नहीं मिले हैं, केवल मुद्राओं और ताम्रपत्रों पर लिखे गये छोटे छोटे लेख ही प्राप्त हुये हैं। प्राचीन चित्रलिपियों के सम्बन्ध में यह धारणा है कि ज्यों ज्यों लिपि उन्नत और परिष्कृत होती है, चिन्हों की संख्या कम होती जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस दृष्टि से सिन्ध घाटी में प्राप्त यह लिपि तत्कालीन लिपियों की अपेक्षा अधिक परिष्कृत प्रतीत होती है। इस लिपि में एक विचित्र बात यह है जिस पर कुछ विद्वानों ने ध्यान दिया है कि पहली पंक्ति दाहनी ओर से बाईं ओर को, और दूसरी पंक्ति बाईं ओर से दाईं ओर को लिखी जाती थी।

छन्नू दड़ों में एक मिट्टी की दवात भी मिली है जिससे इस बात का आभास मिलता है कि वहाँ के निवासी लेखों को केवल उत्कीर्ण नहीं करते थे, स्याही से लिखते भी थे। ऐसा भी अनुमान है कि कदाचित् इस लिपि का सम्बन्ध ब्राह्मी लिपि से हो। सिन्ध, पंजाब, ऐलाम, क्रीट तथा साइप्रस की लिपियाँ फिलिशियन लिपि से प्राचीन हैं। सिन्ध, पंजाब लिपि का भूमध्यसागर सभ्यता और ब्राह्मी से अधिक साम्य है। वास्तव में सिन्ध, पंजाब, बिलोचिस्तान उत्तर पूर्वी ईरान, और पश्चिमी ईरान और सुमेरिया में संस्कृति का बहुत ही साम्य है।

शासन व्यवस्था—नगरों का निर्माण व्यवस्थित और योजना के आधार पर था और हज़ारों मील में फैले हुये इस प्रदेश में एक ही सी व्यवस्था और प्रबन्ध था, इससे यह अनुमान तो होता है कि कदाचित् उस काल में सिन्ध घाटी की यह सभ्यता एक साम्राज्य के रूप में शासित होती हो। सिन्ध, पंजाब, पूर्वी बिलोचिस्तान और काठियावाड़ तक विस्तृत इस सिन्धु सभ्यता में एक संगठन और एक शासन की सत्ता अवश्य होगी क्योंकि इस विस्तृत क्षेत्र में एक ही प्रकार के नापतोल के बटखरे, एक ही तरह का भवनों का निर्माण और एक ही तरह की मूर्तियाँ तथा एक ही तरह का प्रचार इस विशाल क्षेत्र की सभ्यता को एकरूपता प्रदान करता है। हो सकता है कि इस साम्राज्य की दो राजधानियाँ हों, एक हड़प्पा दूसरी मोहनजोदड़ो। प्राचीनकाल में इस प्रकार के बड़े बड़े राज्यों की दो राजधानियाँ रखने की प्रथा थी। सम्भव है कि साम्राज्य के दक्षिणी व उत्तरी प्रदेशों पर शासन करने के लिए इन दो नगरों को साम्राज्य का मुख्य केन्द्र बना दिया गया हो।

निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि सिन्धु सभ्यता के यह निवासी किस नस्ल, जाति के लोग थे। जो अस्थिपंजर इन नगरों में उपलब्ध हुये हैं, उनसे पता लगता है कि यहाँ के निवासी भिन्न भिन्न जाति के लोग थे। विद्वानों ने उन्हें चार नस्लों में विभाजित किया है एक आदिआस्ट्रेलोयड, दूसरी भूमध्य सागरीय, तीसरी मंगोलियन और चौथी अलपाइन। अधिक अवशेष आस्ट्रेलोयड और भूमध्य सागर के नस्लों के मिले हैं। सबसे अधिक अवशेष भूमध्य सागरीय लोगों के हैं। मंगोलियन और अलपाइन के लोगों की केवल एक ही एक खोपड़ी यहाँ मिली है। इससे विदित है कि यहाँ इस नस्ल के बहुत कम लोग थे। अत्यन्त प्राचीन काल में भूमध्यसागर के तटवर्ती क्षेत्रों और पश्चिमी एशिया में भूमध्यसागरीय नस्ल ने ही मानव सभ्यता का सबसे प्रथम विकास किया है। आर्यों से भी प्रथम संसार की प्राचीनतम सभ्यता का मूल स्रोत इसी नस्ल का है। भारत के द्रविड़ भी इन्हीं की शाखा हैं। आजकल तो बहुत दिन से द्रविड़ लोग दक्षिण भारत ही में रहते हैं। परन्तु अत्यन्त प्राचीन काल में उनकी एक नस्ल भारत के उत्तर पश्चिमी कोण में बसी हुई थी कालान्तर में ब्राहुई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक भाषा बोली जाती थी, जो द्रविड़ भाषा परिवार में है। सम्भवतः इन द्रविड़ों को आर्यों के आक्रमण के द्वारा वह देश छोड़ दक्षिण में आ जाना पड़ा। यह बहुत कुछ सम्भव है कि सिन्धु घाटी में बसने वाली जाति का इन ब्राहुई वाली भाषा के लोगों से कुछ सम्पर्क रहा हो। इस बात के बहुत से प्रमाण उपस्थित हैं कि ईसा के २००० वर्ष पूर्व एशिया माइनर पर हित्ताइत लोगों ने आक्रमण किये थे जो कदाचित आर्यों ही की एक शाखा थी। इसी जाति की अन्य शाखाओं ने ईराक, ईरान और पश्चिमी एशिया की सभ्यताओं और कदाचित् सिन्धु सभ्यता का भी विनाश ईसा पूर्व २००० में किया।

सिन्धु सभ्यता का विनाश ईसा पूर्व २००० वर्ष के लगभग हुआ और इससे पूर्व वह शताब्दियों तक संसार की सर्वाधिक सभ्य जाति बनी रही।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाँचवाँ अध्याय

आर्यों की वैदिक सभ्यता

मनुष्यों की पाँच जातियाँ—मानव शास्त्रवेत्ताओं ने मनुष्यों को पाँच जातियों में विभक्त किया है—काकेशियन, मंगोलियन या तातार, हब्शी, मलय और अमेरिकन। रंगों के हिसाब से ये लोग क्रमशः गोरे, पीले, काले, बादामी और लाल हैं। इन सबमें गोरी जाति प्रधान हैं। गोरी जाति की तीन प्रधान शाखाएं हैं—आर्य, सैमेटिक और हैमेटिक। आर्य जाति में सर्व प्रधान हैं। इसमें हिन्दुओं, जर्मनों, रूसियों, अंग्रेजों और फ्रांसीसियों आदि की गणना है। विद्वानों का मत हैं कि किसी प्राचीन काल में हिन्दुओं, जर्मनों, रूसियों, यहूदियों, अंग्रेजों और फ्रांसीसियों आदि के पूर्व पुरुष एक ही स्थान पर रहते थे, और एक ही भाषा बोलते थे। उसी भाषा से संस्कृत, यूनानी और जर्मन आदि भाषाएं विकसित हुई हैं।

आर्यों की आदिम एकता—ज्यों-ज्यों आर्यों की संख्या और साहस की वृद्धि होती गई, वे दूसरे प्रदेशों में फैलते गए और भारत, पश्चिमी एशिया और यूरोप में बस गये।

आर्य-भाषा परिवार—समूची आर्य जाति की आदिम एकता की साक्षी आर्य भाषा परिवार है। संस्कृत, जीन्द, अंग्रेजी, यूनानी, लैटिन, फारसी, अरबी, आदि भाषाओं की मूल भाषा आर्य-भाषा ही थी। इन सब भाषाओं में व्यवहार की साधारण बातों, औज़ारों, कामों, रिश्तों आदि के लिये प्रायः एक ही से शब्द हैं। इन भाषाओं को बोलने वाली जातियाँ हजारों वर्षों से पृथक हैं, इसलिये एक दूसरी से न शब्द नकल कर सकती थीं, और न शब्दों को ले सकती थीं। इस भाषा-सम्बन्धी जाँच से पाश्चात्यों ने केवल आदिम एकता ही प्रमाणित नहीं की, अपितु आर्य-जाति की उस काल तक की उन्नतियों का भी परिचय प्राप्त किया जब तक कि उन्होंने आदिम स्थान नहीं छोड़ा था। पाश्चत्य विद्वानों का मत हैं कि उस समय भी आर्य-लोग मकानों में रहते, पृथ्वी जोतते और चक्कियों से अनाज पीसते थे। वे भेड़, गाय, बैल, कुत्ता, बकरा आदि को पालते और शहद आदि से बनाया हुआ मद्य पीते थे। वे ताँबा, चाँदी सोना आदि का व्यवहार भी करते थे और धनुष-बाण तथा तलवार से लड़ाई करते थे। इनमें राज्य शासन प्रणाली आरम्भ हो चुकी थी। वे आकाश और आकाशवासी देवताओं का पूजन करते थे। कहा जा सकता हैं कि सब आर्य भाषाओं का सबसे पहला रूप वैदिक संस्कृत हैं।

पाश्चात्यों का आर्य साहित्य अध्ययन—अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यारुप के कुछ विद्वानों ने भारत के सम्पर्क में आकर संस्कृत का अध्ययन किया। तब उन्होंने जाना कि सस्कृत-लैटिन और ग्रीक भाषाओं में केवल शब्दों की ही समता नहीं है, व्याकरण में भी समानता है। ज्यों ज्यों पाश्चात्य पण्डित भाषा की इस एकता की गहराई पर विचार करते गए, वे भाषा परिवारों का नियोजन करते चले

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गए और उन्होंने योरोप और एशिया की जातियों की सांस्कृतिक एकता को समझ लिया। और उस एकता का मूलाधार वैदिक आर्य सभ्यता को स्वीकार किया और वे अब इस खोज में लगे कि योरोप और एशिया में फैली हुई इन जातियों का मूल अभिजन कहाँ है। अब उन्होने वेद और जेन्दावस्ता का तुलनात्मक अध्ययन किया। और अधिक विद्वान इस निर्णय पर पहुंचे कि आर्यों के दो ग्रुप बने। एक उत्तर पश्चिम में योरोप की ओर गया, और पाँच भिन्न भिन्न जातियों के रूप में योरोप के भिन्न भिन्न भागों में बस गया। दूसरा ग्रुप दक्षिण पूर्व में एशिया की ओर आया और सिन्धु नदी की घाटी में बस गया। इस समय उनके दो विभाग हो गये, एक देवी को पूजने वाले आर्य जो पंजाब से आगे बढ़े दूसरे असुरों के उपासक, जो फारस में गये। इन दोनों ही धाराओं का मूल अभिजन काश्यप सागर का पूर्वी तट था। भारत में प्रविष्ट होने पर आर्यों को पग पग पर यहाँ के मूल निवासियों से युद्ध करने पड़े। वे उन्हें जय करते और पूर्ववर्ती सभ्यताओं को विनष्ट करते गये। इस संघर्ष के संकेत उन्हें वेदों में मिले जो आर्यों के सर्व प्राचीन ग्रन्थ हैं। वेदों ही से उन्होंने यह भी प्रमाणित किया कि रावी नदी के तट पर एक घन-घोर युद्ध हुआ जिसमें दस बड़े राजा और उनके सहायकों ने एक निर्णायक युद्ध किया था।

पाश्चात्यों की इतिहास दृष्टि—विन्सेन्ट स्मिथ ने भारतीय इतिहास के आधारों को चार भागों में विभक्त किया है। (१) भारतीय साहित्य, (२) विदेशी साहित्य, (३) पाषाण लिपि सिक्के आदि और (४) सम सामयिक ऐतिहासिक ग्रन्थ। सिन्धु घाटी की सभ्यता के उद्घटन के बाद पाश्चात्यों की अभिरुचि अधिक भारतीय प्राचीन वैदिक सभ्यता की ओर झुकी। स्मिथ ने इतिहास के सहायक भारतीय ग्रन्थों में महाभारत, पुराण रामायण, राजतरंगिणी, जैन ग्रन्थ, जातक और अन्य बौद्ध ग्रन्थ तथा लंका में प्राप्त पाली साहित्य की गणना की है। अनेक विद्वानों ने व्याकरण ग्रन्थों में भी ऐतिहासिक तत्व निकाले हैं। पुराणों में वायु, ब्रह्माण्ड, हरिवंश, पद्म और मत्स्य पुराणों को प्रमाण माना है। स्मिथ ई० पू० छटी शताब्दी से ऐतिहासिक काल मानते हैं। इसलिये वे वेदों और ब्राह्मणों को इतिहास प्रमाण में नहीं गिनते। इन ग्रन्थों में सन् सम्वत् न देखकर उन्होंने वैदिक काल को ऐतिहासिक दृष्टि से दूर फेंक दिया है। अन्य पाश्चात्य पण्डित भी उनके ही मत पर काफी देर तक चलते रहे। श्री मैकडानल ने महाभारत को बौद्ध काल से प्राचीन माना है। पुराण प्राचीन घटनाओं को लाखों वर्षों की प्राचीनता देना चाहते हैं, इधर पाश्चात्य उन्हें कल ही की प्रमाणित करते हैं। इसी से स्मिथ ने ई० पू० छटी शताब्दी ही से इतिहास काल मान लिया। परन्तु वेदों, ब्राह्मणों, स्मृतियों, पुराणों आदि में जो प्रामाणिक घटनाएं हैं जो घटा बढ़ाकर नहीं लिखी गई हैं उनका आधार छोड़कर तो हम आर्यों की संस्कृति पर प्रकाश डाल ही नहीं सकते। वास्तव में वेदों का सबसे बड़ा मूल्य ऐतिहासिक ही है। यद्यपि वहाँ ऐतिहासिक तथ्य अप्रासंगिक हैं परन्तु वेदों की उपमा, रूपक, उदाहरण, महिमा कथन आदि के द्वारा वेदों से महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राप्त होती है। परन्तु वहाँ पूरे ऐतिहासिक वर्णन नहीं हैं, संकेत मात्र हैं। अनेक पूर्व पुरुषों के नाम, युद्ध, राज्यों, पर्वतों, नदियों आदि के वर्णन मिलते हैं। ब्राह्मणों में गाथाओं द्वारा कुछ अधिक स्पष्ट प्रकाश प्राचीन इतिहास और सांस्कृतिक सन्दर्भों पर पड़ता है। सूत्रों और स्मृतियों में भी बहुत ऐतिहासिक संकेत हैं परन्तु ऐतिहासिक सहायता की दृष्टि से पुराणों का महत्व सबसे अधिक है। सबसे प्रथम जो ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे गए वे पुराण ही हैं परन्तु ब्राह्मणों के युग में ही आर्यों में जो धार्मिक महिमा बढ़ने लगी, तो यह परिपाटी सूत्रों और स्मृतियों के काल में और बढ़ी। पुराण काल में तो वह पराकाष्ठा को पहुँच गई। वेदों में मनुष्य की आयु सौ-सवा सौ वर्ष कही गई है, कोई मनुष्य अमर नहीं माना गया परन्तु पुराणों में अनेक अमर पुरुष भी वर्णित किये गये, तथा उनकी हजारों वर्षों की आयु मान ली गई। काल-साम्य ठीक न होने से एक ही पुरुष अनेक स्थानों और समय में देखा गया, इस गड़-बड़ी के दूर होने में इस मान्यता की सहायता ली गई। देखने में पुराणों के सन्दर्भ पूर्ण और दृढ़ हैं, परन्तु संहिता के समान नहीं। इसके अतिरिक्त पुराणों में गुप्त काल तक घटाव बढ़ाव होते रहे। इसी से वैदिक साहित्य के समान वे प्रारम्भिक और निर्भ्रान्त नहीं रह गये इसी से सत्यता की दृष्टि से वैदिक साहित्य पौराणिक से अधिक प्रामाण्य है। इसी से मध्य युग में वेद प्रामाण्य को अपौरूषेय मान लिया गया था। फिर भी पुराणों के ऐतिहासिक महत्व बहुत हैं जिन पर पाश्चात्यों और भारतीय विद्वानों ने भी अभी बहुत कम ध्यान दिया है। विशेष कर विदेशी पूरक इतिहास और गवषणाओं से उनका तुलनात्मक अध्ययन हुआ ही नहीं है।

'पुराणों' का नव्य दृष्टि से अध्ययन—पुराणों के साहित्य का मूल बहुधा चारणों, सूतों और मागधों आदि के द्वारा रक्षित हुआ। जहाँ संहिता, ब्राह्मण और सूत्र ग्रन्थ वैदिक तथा ब्राह्मण साहित्य के अंग हैं वहाँ पुराण मूलतः बहुधा अब्राह्मण के हैं। पाश्चात्यों ने पुराणों की बहुधा अवहेलना की है। नव्य दृष्टि से पुराणों का अध्ययन दो पंडितों ने किया है। एक श्री पार्जीटर दूसरे श्री सीतानाथ प्रधान। पार्जीटर के मतानुसार सूत पौराणिक हैं, मागध वंश के ज्ञाता तथा वन्दित। जहाँ इतिश्रुति लिखा हो वहाँ वेद का संकेत है। इनके मत से वायु और ब्राह्मण सर्व प्राचीन हैं। उनका यह भी कथन है कि कभी ये दोनों एक ही थे। वायु, ब्रह्माण्ड, हरिवंश, पद्म और मत्स्य पुराण औरों से अधिक मान्य हैं। उनमें मूल वृत्तांत हैं।

वायु, ब्रह्मांड और विष्णु पुराणों के आधार पर व्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्प में सूक्तियां बांटी। कल्पनाओं के आधार पर उन्होंने इतिहास-पुराण बनाया जिसे लोम हर्षण ने छः रूपों में विभक्त किया और अपने छः शिष्यों को पढ़ाया। आमेय सुमति, काश्यप, कृतब्रण, भरद्वाज, अग्नि वर्चस, वशिष्ट, मित्रयु, सावर्णि, सोमदत्ति और सुदर्शनशांशपायन। इनमें काश्यप, सावर्णि और शांशपायन ने एक एक संहिता बनाई। पहिली संहिता लोम हर्षण की थी। शांशपायन की संहिता का आकार नहीं दिया गया है। शेष तीनों संहिताएँ चार चार हजार श्लोकों की थीं। आगे इन्हीं का वह वर्तमान नवीन रूप बना जो इस समय है। पुराणों में लोमहर्षण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को व्यास का समकालीन शिष्य कहा गया है। परन्तु वह उनकी पुराण परम्परा में उत्तर कालीन पुरुष है जिसकी विवेचना हम यथा स्थान करेंगे।

डा० सीताराम प्रधान के मतानुसार पुराणों के रूप भिन्न भिन्न कालों में परिवर्तित होते रहे हैं। प्रथम व्यास काल में, दूसरे मागध नरेश सेनजित के काल में, तीसरे नन्दवंश के काल में, चौथे गुप्त काल में। भागवत को वे उत्तर कालीन कहते हैं। वायु पुराण उनके मत से भी प्राचीन है।

पुराणों के ऐतिहासिक वृत्तों में सबसे बड़ी त्रुटि उनमें सन सम्वतों का न होना है। इसलिए सन सम्वतों के अभाव में हमें ही खास खास समयों को स्थिर करके आगे चलना पड़ता है। इन समयों के निर्णय में हमें पुराणोक्त राजवंश सबसे बड़े सहायक हैं। ऐतिहासिक काल निर्णय उसी से होता है। प्राचीन सूर्य और चन्द्रवंश के विवरण सभी पुराणों में हैं। परन्तु ये विवरण अस्त व्यस्त हैं। किसी में कुछ किसी में कुछ। पीढ़ियों में भी अन्तर है। इस दिशा में बाल्मीकि के विवरण भी भ्रान्त हैं। इसलिये इन सब प्रामाणिक वंशावलियों को दृढ करने के लिये सब पुराणों का सम्मिलित अध्ययन और अन्य ग्रन्थों की गवाही जोड़ने से ही ये राजवंश पुष्ट होते हैं। ये राजवंश अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, वास्तव में ये ही राजवंश वैदिक आर्यों के राजवंश हैं और इन्हीं के चरित्र और राज्यों में वैदिक संस्कृति का समावेश है।

सीतानाथ प्रधान का क्रोनोलोजी आफ एन्श्यैन्ट इन्डिया—डा० प्रधान ने अपने उस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में राम से युधिष्ठिर तक का वर्णन अत्यन्त छानबीन से किया है। यही काल द्वापर युग है। प्रधान ने तेरह प्राचीन वशावलियों प्राचीन पौराणिक ग्रन्थों से निकाल कर यह प्रमाणित किया है कि इतने काल में—राम से युधिष्ठिर तक-१२से १५ पीढ़ियाँ ही हुई हैं। उन्होंने पुराणों की अनेक वंशावलियों को अशुद्ध प्रमाणित किया है।

पार्जीटर का एन्शएन्ट इन्डियन हिस्टोरिक ट्रैडीशन—पार्जीटर ने मनुवैवस्वत से राम तक की वंशावलियों पर अच्छा प्रकाश डाला है। यही काल पुराणोक्त त्रेता युग है। एक तीसरा ग्रन्थ राय चौधरी ने पुराणों के अध्ययन पर लिखा है जिसमें परीक्षित से गुप्त काल तक प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार वैवस्वत मनु से राम, युधिष्ठिर-गुप्तकाल तक के इतिहास पर यथा सम्भव यथेष्ट प्रकाश पड़ा है। परन्तु एक मूल वस्तु अभी तक अन्धकार ही में हैं। पुराणों में स्वायंभुव मनु का भी वंश है। इसकी चर्चा न किसी आधुनिक भारतीय विद्वान ने की है न पाश्चात्यों ने। वास्तव में स्वायंभुव मनु की ४५ पीढ़ियों का भोग काल ही सत युग है।

इस प्रकार सतयुग,त्रेता,द्वापर ये तीन युग ही वैदिक आर्यों की सभ्यता के युग हैं।

सतयुग–त्रेता–द्वापर

मन्वन्तर काल गणना—पुराणों में सतयुग-त्रेता-द्वापर को त्रियुगी कहा है। इन्हीं तीनों युगों में आर्यों की वैदिक सभ्यता का उदय और अस्त हुआ। पुराणों में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इन तीनों युगों की काल गणना मन्वन्तरों के आधार पर की गई है। मन्वन्तरों को छोड़कर इस प्राचीन काल की गणना का हमारे पास दूसरा उपाय नहीं है। पुराणों में यह काल गणना बहुत बढ़ा चढ़ा कर कही गई है। परन्तु मन्वन्तरों के द्वारा हमें यह ज्ञान प्राप्त होता है कि वैवस्वत मनु से पहले हमें छै मन्वन्तर मिलते हैं। इन्हीं सात मन्वन्तरों को हम प्राचीन आर्यों को सभ्यता के विकास का प्रतीक मान सकते हैं।

इस दीर्घ काल को तीन युगों में इस प्रकार बाँटा गया है :—

१—सतयुग—मन्वत्तर काल

२—त्रेता—मनु-राम चन्द्रकाल

३—द्वापर—राम युधिष्ठिर काल

ईरान और भारत—प्राचीन भारत की सभ्यता से ईरान और एशिया का गहरा सम्पर्क है क्योंकि सतयुग में भरतों ने ईरान पर आक्रमण किया था तथा ईरान और मध्य एशिया अधिकृत कर लिया था। कदाचित् उन दिनों युद्ध और जय इतने जटिल न थे जितने आज हैं। आबादी कम थी। साहसी जन थोड़े ही प्रयास से बड़े बड़े भूभाग अपने अधिकार में कर लेते थे। भारत और ईरान के सम्पर्क पर श्री दलाल का कहना है कि आर्य ४ सहस्राब्दी ई० पू० में भारत और ईरान में थे तथा बैबीलोनियनों से उनके सम्पर्क थे। भारतीय और ईरानी भाईबंद ही थे। उनकी संस्कृति और भाषा में बहुत साम्य था। ज़न्दावस्ता और ऋग्वेद प्रायः समकालीन ही हैं। दोनों में शब्द सामजंस्य बहुत है।

छन्द		जन्द
वृत्रघ्न	——	वैरेथघ्न
तृत	——	थृत
मित्र	——	मिथ्र।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार देव और असुर प्रजापति के पुत्र थे। देवासुर संग्राम के बाद देव ईरान के उत्तर पूर्व में बसे, फिर वहाँ से भारत आए। यहाँ उन्होंने कोलों और द्रविड़ों को दास–दस्यु कहा। प्राचीन भरतों तथा आर्यों के सम्पर्क ईरान ही से नहीं अरब, अफ्रीका और मध्य एशिया के अन्य प्रदेशों से भी थे। यह कहना चाहिए कि इन प्रदेशों के निवासी भारतीयों के उत्तराधिकारी और आर्यों के दायाद बान्धव हैं।

इस सम्बन्ध में हम पुराणों, ब्राह्मण ग्रन्थों, वेदों और अन्य भारतीय ग्रन्थों तथा विदेशी गवेषणकर्ताओं के अतिरिक्त खास तौर पर ईरान के भारतीय सम्पर्क सम्बन्धी तथ्य लेफ्टिनेट कर्नल Sykes की हिस्ट्री आफ पर्शिया की दो जिल्दों के महत्त्वपूर्ण उद्धरण देंगे तथा एन्ड्रू क्रिस्टन (Andreu Crichton) की हिस्ट्री आफ अरेबिया तथा दूसरे ग्रन्थों का पुराणों से तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।

मन्वन्तर काल गणना

पौराणिक मन्वन्तर—पुराणों में इस युग का समय विभाग मन्वन्तरों में किया गया है। पूरा भूत भविष्यत काल १४ मन्वन्तरों में बाँट दिया गया है जिनमें ६ बीत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चुके। ७ आगे आने वाले हैं। एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगी से कुछ अधिक ही समय होता है। प्रत्येक चतुर्युगी में सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग होते हैं। सतयुग की संख्या ४००० वर्षों की है तथा ४/४ सौ वर्षों की संन्ध्या तथा सन्ध्यांश हैं। त्रेता ३००० वर्षों का हैं। संन्ध्या सन्ध्यांश में ६०० वर्ष लगते हैं। कलियुग में १००० वर्ष और दो सौ वर्षों की सन्ध्या और सन्ध्यांश हैं। अतः एक चतुर्युगी में बारह हजार वर्ष होते हैं। ये वर्ष हमारे नहीं देवताओं के हैं। देवताओं का एक वर्ष हमारे ३६० वर्षों का है। अतः एक चतुर्युगी ४३२०००० वर्षों की हो जाती है।[1] अब एक मन्वन्तर में ऐसी ७१ चतुर्युगी हुई तो हिसाब लगाना ही असम्भव हो जाता है।

हमारा मत—हमने पीढ़ियों के हिसाब से काल गणना इस प्रकार की है कि स्वायंभुव मनु की ४५ पीढ़ियों और ६ मन्वन्तरों में एक पीढ़ी का काल २८ वर्ष लगाकर उसे ४५×२८ से गुणा करके सतयुग की आयु १२६० वर्ष मानी है।[2]

अब सतयुग का ऐतिहासिक भोग काल इस प्रकार हुआ—

महाभारत संग्राम काल—	ई० पू०	१२७७ [3]
द्वापर भोग काल—	+	३९२ वर्ष
त्रेता भोग काल—	+	१०९२ वर्ष
सतयुग भोग काल—	+	१२६० वर्ष
		४०२१ ई० पू०

इस हिसाब से सतयुग का आरम्भ मनुर्भरतों के आदि पुरुष स्वायंभुव मनु से ई० पू० ४०२१ में होता है, तथा मनुर्भरतों के अन्तिम और ४५वें प्रजापति दक्ष पर ई० पू० २७६१ में समाप्त हो जाता है। सतयुग का पूरा योग काल १२६० वर्ष का है।

सिन्धु घाटी की सभ्यता और मनुर्भरतों की सभ्यता की समकालीनता—मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की सिन्धु घाटी की सभ्यता को पुरातत्त्वविद् ई० पू० ३२५० को मानते हैं। लगभग यही काल मनुर्भरतों की सभ्यता का है। अभी सिन्धु घाटी के लेख नहीं पढ़े गए। परन्तु यह अनुमान है कि या तो सिन्धु सभ्यता के लोग मनुर्भरत ही हैं, या उनसे विजित जाति के कोई सम सामयिक जाति वाले।

३--मनुर्भरत वंश

स्वायंभुव मनु—पुराणों में १४ मनु वर्णित हैं जिनके नाम ये हैं—स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष वैसरचत, सावर्णि, दत्त सावर्णि, ब्रह्म सावर्णि, धर्म सावर्णि, रूद्र सावर्णि, दैव सावर्णि और इन्द्र सावर्णि। इनमें सावर्णि

---

[1] श्री मद् भागवत्, विष्णु, पुराण, हरिवंश।

[2] पाश्चात्य पण्डितों ने पुराणों में वर्णित पीढ़ियों को २८ वर्ष प्रति पीढ़ी मानकर ही गिना है।

[3] महाभारत काल की विवेचना द्वापर समाप्ति काल के प्रसंग मे देखिये।

वाले सब भविष्यकाल के हैं। स्वायं भुवइन में सर्वप्रथम हैं। यही मनुर्भरत कुल के आदि पुरुष हैं। स्वायंभुव मनु संसार के सर्वप्रथम मनु हैं। इनके तीन पुत्रियाँ और दो पुत्र हुये। पुत्रियाँ—(१) आकूति (२) प्रकूति (३) देवहूति। पुत्र—(१) प्रियवत (२) उत्तानपाद। प्रियवत और उत्तानपाद के वंशज 'मनुर्भरत' कहलाए और मनुर्भरतों की ४५ पीढ़ियों ने लगभग तत्कालीन समूचे नृवंश का प्राजापत्य भोगा।

नीचे हम मनुर्भरत वंश का वृक्ष देते हैं—

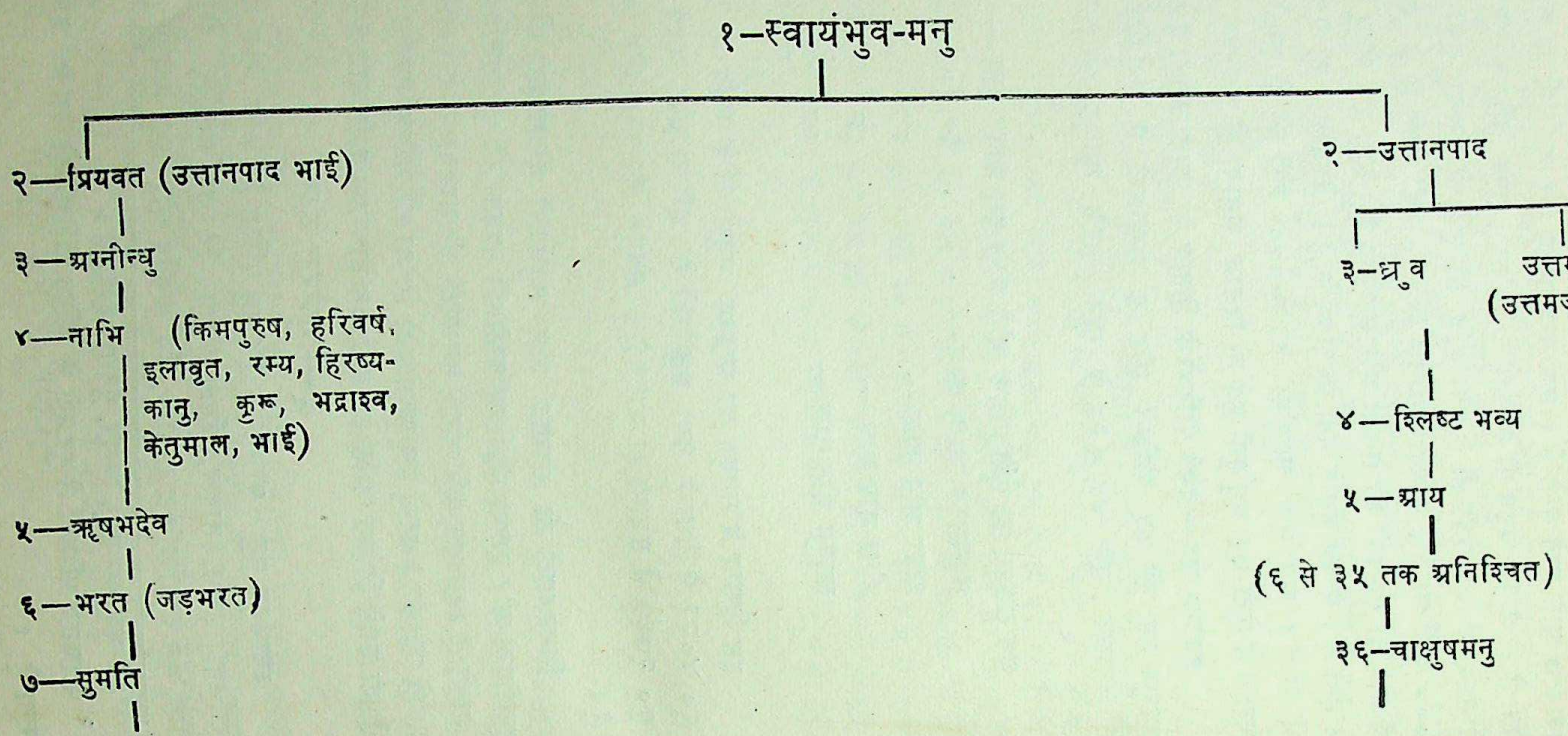

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

८—इन्द्रद्युम्न
९—परभैष्ठि
१०—प्रतिहार
११—प्रतिहर्ता
१२—भुव
१३—उद्रगीम्य
१४—प्रस्तार
५१—प्रथु
१६—नक्त
१७—गय

अत्यराति जानन्तपति — The Arrats of Armenia

अभिमन्यु — The Memnon of the Greeks The Amnan Kasibar of Persia

३७ उर — Ur. Dynasty of Elam and Ur Enqur Dynasty of Babylonia

पुर — Founder of Pours in Persia

तपोरत — The Tapuritae of Tapuria

सुद्युम्न

१

अंगिरा
Conqueror of Angora
(Angra Pequenna)

२

३८—अङ्ग
३९—वेन
४०—प्रथुवैन्य
४१—अन्तर्द्धान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१८–नर

१९–विराट्

२०–महावीर्य

२१–धीमान्

२२–महान्

२३–मनुस्थ

२४–त्वेष्टा

२५–विरज

२६–रज

२७–विषग्ज्योति

(शेष ३५ तक अनिश्चित)

४२–हविर्द्धान

४३–प्राचीन वर्हिषि

४४–प्रचेतस

४५–दक्ष (१० पुत्रियों की सन्तति)

पुत्री साध्या-यम

साध्य (सीथियन)

पुत्री वसु-यम

धर (वसु)

रूद्र (त्र्यम्बक)

रूद्र के ग्यारह कुल चले इनके वंश में द्रविड़ हूण, रमन, हयताल, किरात, मंगोल आदि ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रियव्रत शाखा—स्वायंभुव की पत्नी का नाम शतरूपा था।[1] प्रियव्रत ने पृथ्वी के भाग किए[2] और देशों के नाम रक्खे। पहिले पर्शियन ,राज्य के चार खण्ड थे, सुग्द (Sugd) मरू (मर्व) हरिपुर और निशा। कुछ काल बाद हरपू, हरितपुर, हिरात और वक्रित (काबुल) को भी मिला कर साम्राज्य सङ्गठित किया गया।[3] जो पूर्वी साम्राज्य और पश्चिमी साम्राज्य के नाम से विख्यात हुआ। दारा ने साम्राज्य के इन दोनों प्रांतों को तेरह भागों में विभक्त किया जिन्हें SATRIPIES कहते हैं। शत्रप, शतरूपा के पुत्र होने से उनके नाम पड़े क्योंकि उस काल में मातृ गोत्र प्रचलित था। प्रियव्रत ने जम्बूद्वीप अपने पुत्र अग्नीन्ध्र को दिया जिसने उसके नौ खण्ड करके अपने नौ पुत्रों को बाँट दिया।

मनु की तीन कन्याओं में से देवहूति का विवाह पुलह के पुत्र कर्दम से हुआ। कर्दम-देवहूति का पुत्र प्रसिद्ध सांख्यदर्शन का रचयिता कपिल था। कर्दम की कन्या का विवाह प्रियव्रत से हुआ जिससे १० पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं। प्रियव्रत ने षष्ठी व्रत चलाया। प्रियव्रत के पुत्र अग्नीन्ध्र ने अपने पुत्र नाभि को हिमवर्ष (हिमालय से अरब समुद्र तक का देश) दिया। हरि को हरिवर्ष (रूसी तुर्किस्तान) इलाव्रत को इलावर्ष (पामीर) रम्यक को चीनी तातार, हिरण्मय को मोगोलिया,कुरू को कुरुवर्ष (साइबेरिया), किमुरुप को उत्तरी चीन, भद्राश्व को दक्षिणी चीन और केतुमान को रूसी तुर्किस्तान दिया।

ऋषभदेव और भरत—महाराज नाभि भारत के प्रजापति हुए इनके पुत्र ऋषभदेव महात्यागी और ज्ञानी हुए। जैन इन्हें आदि तीर्थंकर मानते हैं। ऋषभ देव के पुत्र भरत हुए। जो जड़ भरत या मनु भरत कहाते हैं। इन्हीं के नाम पर देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।[4] वे महाज्ञानी और प्रतापी थे। इन्होंने आठ द्वीपों

---

[1] हरिवंश पुराण।

[2] श्री मद्भागवत।

[3] हिस्ट्री आफ पर्शिया, जिल्द १।

[4] पुरुवंश प्रवक्ष्यामि श्रुणुध्व मृषिसत्तमाः।
यत्र ते भारता जाता भारतान्वयवर्द्धनाः।
भारताद् भारती कीर्ति येनेदं भारतं कुलम्।
अपि ये चैव (पूर्वेवै) भारतो इति विश्रुताः। मत्स्य० पु० अ० २४ श्लोक ७२

प्रियव्रतो नाम सुतो मनो : स्वायंभुवस्वह।
तस्याग्नीन्ध्रस्ततः नाभिः ऋषभस्तस्य सुतस्ततः।
अवतीर्ण पुत्रशतं तस्यासीद् ब्रह्म पाश्वाम्।
तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायण परायणः।
विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना भरतमुत्तमम्। श्री मद्भागवत पु० अ० १३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर अधिकार रखा। ये द्वीप समुद्र द्वारा पृथक थे।[१] प्रियव्रत शाखा के ये दो सर्व प्रधान पुरुष हैं। इन्होंने अपने राज्य को नौ खण्डों में बाँटा। तभी से भरतों को सप्त द्वीप और नौ खण्डों का स्वामी माना गया।[२]

यह स्पष्ट है कि प्रियव्रत का अनुशासन भारत के अतिरिक्त भी अन्य देशों पर था। यह अनुशासन प्रजापति की हैसियत से था। उनके पुत्रों में अग्नीन्ध्र भारत में रहा। जब उसके नौ पुत्रों में राज्य शासन का बँटवारा हुआ तो ज्येष्ठ पुत्र नाभि भारतवर्ष में रहा। और उसी के उत्तराधिकारियों के हाथ भारत का अनुशासन रहा। परन्तु नाभि के पुत्र भारत से बाहर के देशों में अनुशासन करने लगे।[३]

चार मनु—इस वंश में चार मनु हुए। जिनके काल चार पृथक् पृथक् मन्वन्तरों के नाम से विख्यात हैं। ये नाम ये हैं—

१—स्वारोचितष मनु
२—उत्तम मनु
३—तामस मनु
४—रैवत मनु

स्वारोचिष मन्वन्तर—इस मनु का ठीक काल अथवा प्रजापति का नाम उल्लिखित नहीं है। परन्तु इस मन्वन्तर में चैत्रवंशी सुरथ कोला नामक नगर में था जिसे शत्रुओं ने मार कर वन में भगा दिया था, तथा क्षत्रियों ने फिर उसे अभिषिक्त किया था।[४] इसी मन्वन्तर में दक्षिण के महिषों ने तथा शुम्भ निशुम्भ अनार्य सरदारों ने भरतों पर आक्रमण किया था। जिसका साम्मुख्य देवी नाम्नी किसी वीर महिला ने किया था। चण्ड मुड इन अनार्यों के योद्धा थे।[५]

उत्तम और तामस मन्वन्तर—तामस मनु उत्तम के पुत्र थे। ख्याति, शत्हय, जानुजेध आदि तामस के पुत्र थे। परन्तु काल इनका भी अज्ञात है। केवल वर्णन है।

रैवत मन्वन्तर—श्रीमद्भागवत के अनुसार बैकुण्ठ का निर्माण इसी काल में

---

[१] यह वायु पुराण का कथन है। ये द्वीप—इन्द्र द्वीप, कसेरु, ताम्रवर्ण, गोमस्तिमान, नागवर, सौम्य, गन्धर्व, वरुण और भारत हैं। श्री मजूमदार इन्हें क्रमशः सिन्धु-कच्छ-सीलोन, अण्डमान, नीकोबार, सुमात्रा, जावा बोर्नियो और भारत समझते हैं।

[२] भागवत। हरिवंश।

[३] देखिये विष्णु पुराण और महाभारत के यही प्रसंग हैं।

[४] विष्णु पुराण में चैत्र को स्वारोचिष का पुत्र कहा गया है।

[५] यह विवरण स्कन्द पुराण और दुर्गा सप्तशती में है। परन्तु वेदों में इस युग के किसी पुरुष का नाम नहीं है। अतः यह युग वेद पूर्व युग है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हुआ। तपसी विकुण्ठा और उनके पुत्र वैकुण्ठ थे। जिन्होंने वैकुण्ठ बसाया था।[1] आगे यही वैकुण्ठ महाराज अत्यराति की राजधानी बना। ये चारों मनु प्रियव्रत शाखा की २७ वीं पीढ़ी के बाद हुए। २७ वीं पीढ़ी के बाद ८ अधिकारी और हुए। जिनमें ४ ये मनु और ४ प्रजापति। इस प्रकार इस वंश में ३५ पीढ़ी सत्ता रही।

उत्तान पाद शाखा—उत्तान पाद शाखा में प्राजापत्य अधिकार ३६ वीं पीढ़ी में, चाक्षुष मनु के काल में आया। उत्तानपाद की दो पत्नियाँ थीं। सुनीति और सुरुचि। सुनीति से ध्रुव और सुरुचि से उत्तम ये दो पुत्र हुए। उत्तम अधिकार सम्पन्न रहे और ध्रुव पिता से रुष्ट हो वन चले गये। पीछे उत्तम की युद्ध में मृत्यु हुई तब ध्रुव उनके उत्तराधिकारी हुए। ध्रुव बड़े तपस्वी थे। ये दृढ़चित्त और वीर थे। ध्रुव तारा इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

चाक्षुष मन्वन्तर—चाक्षुष मनु छठे मनु थे। वंशावलि के हिसाब से इनका स्थान ३६ वीं पीढ़ी में आता है। इस वंश के ३० नाम चाक्षुष के पूर्ववर्ती छूट गए हैं। इसका कारण कदाचित यह है कि प्राजापत्य अधिकार प्रियव्रत शाखा का रहा। ३६ वीं पीढ़ी में चाक्षुष के काल में अधिकार इस शाखा के हाथ में आया। इससे चाक्षुष छठे मनु और ३६ वे प्रजापति बने। इनके वंश में १० पीढ़ियों ने प्राजापत्य किया। अन्तिम प्रजापति दक्ष था। इस वंश में ध्रुव, चाक्षुष, अत्यराति जानन्तपति, अभिमन्यु, उर, पुर, तपोरत, सुद्युम्न, अंगिरा, वेन, प्रथुवैन्य, प्रचेतस, महाप्रतापी पुरुष हुये।

चाक्षुष मन्वन्तर में बड़ी बड़ी घटनायें हुईं। भरत वंश का विस्तार हुआ। राजा की मर्यादा स्थिर हुई। प्रथुवैन्य को संसार का प्रथम राजा घोषित किया गया। राज परिच्छद धारण किए। राज्य व्यवस्था आधारित की। इसी के नाम पर भूमि नाम पृथ्वी पड़ा। इसी काल में वेद रचना आरम्भ हुई। भूमि सम की गई। कृषि का आरम्भ हुआ। नगर गाँव बसाये गये। इस वंश के राजा प्रचेतस ने जङ्गलों को जलाकर भूमि को साफ किया और खेती कराई।[2]

४—चाक्षुष मनु के सर्वजयी पाँच पुत्र

चाक्षुष मनु के सर्वजयी पाँच पुत्र थे। अत्यराति जानन्तपति, अभिमन्यु, उर, पुर और तपोरत। उर के द्वितीय पुत्र अंगिरा थे।

जानन्तपति अत्यराति—महाराज अत्यराति जानन्तपति की गणना बारह

---

[1] श्री मद्भागवत। हरिवंश। विष्णु पुराण। ब्रह्मांड पु० पूर्व भाग। पाद २,३६। १०८। मत्स्य १०। ३।

[2] महाभारत। शान्ति० ५८। १२१। १२२। हरिवंश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन चक्रवर्तियों में सर्वोपरि है। इन्हें आसमुद्र क्षितीश कहा है।[1] महाराज अत्यराति की राज्य सीमा पश्चिम में आर्द्रपुर या आर्द्र सागर (ADRIANOPLE-या ADRIATIC SEA) एवं युवान सागर (IANION-SEA) तक थी। वर्तमान भारत को छूता हुआ पर्शिया का जो पूर्वी प्रांत सत्यगिदी के नाम से विख्यात है, वह उस समय सत्यलोक कहाता था।[2] उसी के सामने सुमेरु के निकट वैकुण्ठ-धाम था जो देमानन्द-एलबुर्ज पर आज ईरानियों का पैराडाइज कहाता है।[3] यह वैकुण्ठ ही महाराज अत्यराति ने अपनी राजधानी बनाया था। अत्यराति के वंशज अरीट, कहाते हैं। आरमीनिया इसका प्रांत है तथा ईरान का अरीट पर्वत भी अत्यराति ही के नाम पर है।

अभिमन्यु—अत्यराति जानन्तपति के भाई मन्यु-अभिमन्यु ग्रीक इतिहास के प्रसिद्ध पुरुष Memnon-Mainyo हैं। इन्हीं ने अर्जनम (ARZANEM) में अभिमन्यु (APHUMON) दुर्ग बनवाया था, तथा ट्राय के प्रसिद्ध युद्ध में अपनी राजधानी सुषा से ससैन्य आकर सम्मिलित हुये थे।[4] इनकी राजधानी सुषा थी[5]।

उर—अत्यराति के तीसरे भाई महाराज उर थे। जो ईलाम (ELAM) के शासक थे। यहीं से उन्होंने अफ्रीका; सीरिया; बैबिलोनिया, आदि देशों को जीता था तथा अब्राहम को उर देश से निकाल बाहर किया था।[6] पर्शिया में उर के

---

[1]—एतरेय ब्रा० ८। ४। १।

[2] Sattagydia, The Eastern Province of Persia.

(हिस्ट्री ऑफ पर्शिया जि० १ पृष्ठ १७३)

[3] Mount Demavand (The Modern Elburz) or the Iranian Paradise (हिस्ट्री ऑफ पर्शिया जि० १। ११७–१२३)

[4] Memnon, who came to the aid of Troy leading an army of Susians (Susa). (हि० आ० पर्शिया जि० १ पृष्ठ ५५)

[5] Susa or Shush or the city of Memnon the ancient Capital of Elam and the oldest known site in the world.

(हि० प० जि० १ पृष्ठ ५९)

'सुषा नाम पूरी रम्या वरुस्याँपिधीमतः। मत्स्य पुराण अ० १२३ श्लो २२ यह संसार की प्राचीनतम नगरी सुमेरु प्रांत में अँबुद (पर्शिया की खाड़ी) पर अब तक है। कुछ दिन पूर्व वहाँ खुदाई हुई थी। आर्चोलोजी को वहाँ ८ हजार वर्ष पुरानी वस्तुयें और सभ्यता के चिन्ह मिले हैं। (देखिये नवभारत टाइम्स २८ नवम्बर १९४८ का रविवासरीय अङ्क)

[6]—'A letter from the expedition of Prof. C. Leonard Woolley in Chaldea tells of wars between Elam and Ur in the time of Abraham and the utter collapse of the latter. This reveals more than 2000 years of a city life.'

'The third dynasty of Ur (Babylonia) which Ur Engur founded

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक चिन्ह हैं।[७] 'उर' प्राचीन बैबिलोनिया का एक प्रदेश है। उरल (Ural) एक पर्वत है। 'उरराट्' एक वंश है। 'उरफा' और 'उरगंज' नगर है। 'उरुक' प्रांत

---

lasted less than two centuries. At the time of Abraham's collapse as a result of the disastrous wars with Elam'—(The Englishman, dated 20th April 1925).

'The conquest of Elam by the dynasty of Ur in 2400 B. C.' (H. P. vol. I. 73.)

'The over throw of the dynasty of Ur by Elam in 2280. B. C' (H. P. vol. I. 74.)

[७] लन्दन के अजायबघर में कुछ वस्तुयें उर से प्राप्त हुईं रखी हैं। जिहोवा की आज्ञा से इस नगर को छोड़कर इब्राहीम दूसरा नगर बसाने चला गया था। उन वस्तुओं के नमूने अत्यन्त सुन्दर हैं, जिन पर खुदाई और जड़ाई का काम किया गया है। यह वस्तुयें प्राचीन काल की प्रथाओं पर प्रकाश डालती हैं। इनके अतिरिक्त बहुत सी मूर्तियाँ, विचित्र शस्त्र और खुदे हुए शास्त्र भी हैं। उर शहर की खुदाई इतिहास के पृष्ठों का एक बड़ा मनोरञ्जक अध्याय है। यह पाँच हजार वर्ष पूर्व की बात है, जब इब्राहीम अपने सामान और पशुओं को लेकर एक दूसरा नगर बसाने उर से बाहर निकला था। उर उस समय उसका बसाया हुआ नहीं था। वह एक प्राचीन नगर था। वैज्ञानिकों का कहना है कि उर संसार का सबसे पुराना नगर समझा जाता है।

इस दबे हुए नगर की खुदाई ब्रिटिश अजायबघर और पैनसिलवानिया विश्वविद्यालय के अजायबघर ने श्री लियोनर्ड वूली द्वारा कराई थी। यूफ्रेटीस और टिग्रीस की घाटी में उर नगर के स्थान पर केवल बंजर रेत की चट्टानें खड़ी हुईं थीं। इसी क्षेत्र में खोदने वालों को टेमीनोस का प्रदेश मिला, जिसको इस नगर का पवित्र देश माना जाता था। यह पौन मील लम्बा था। इसकी चौड़ाई इससे आधी थी। इसमें प्रवेश करने के लिये बहुत से दरवाजे थे। इस पर 'जुगारत की पहाड़ी' थी जो ईंटों से बनाई गई थी। पहाड़ी के ऊपर चन्द्रमा का मन्दिर था। इस मन्दिर में पुजारी प्रतिदिन चन्द्र देवता और उसकी पत्नी को भोजन कराते थे। यहाँ यात्री और भक्तजन नित्य कीमती धातुओं की भेंट लेकर आते थे, जो निकट ही एक खजाने में जमा कर दी जाती थी। यही वह स्थान था, जहाँ नगर और दूसरी जगह के विद्वान संकट के समय देवी से भिक्षा माँगने आते थे। यही वह न्याय का बड़ा द्वार था, जहाँ बैठकर राजा कानून का संचालन करता था। ईंटों की यह पहाड़ी १९५ फुट लम्बी और १०० फुट ऊँची थी। वहाँ खुदाई में ई० पू० ३६०० की दीवार निकली है, और मन्दिर में एक लेख ई० पू० २६३० का है।

खुदाई से पता चला है कि इब्राहीम के राज्य में उर में बहुत से मकान बने हुए थे। बहुत से तो खोदकर बाहर भी निकाले जा चुके हैं। ये सब मकान पक्की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। 'उरमिया' प्रदेश और नगर हैं। जहाँ जोरास्टर का जन्म हुआ। अफ्रीका में Riode ore प्रांत है।

अंगिरा—उर के पुत्र अंगिरा थे। जिन्होंने कुश द्वीप (अफ्रीका) को विजय किया था। अंगरा पिक्यूना (ANGRA-PEQUENNA) के निर्माता और विजेता भी वही थे।[१]

पुर—उर के भाई पुर थे। उनकी राजधानी पुर थी।[२] एलबुर्ज (ईरानी वैकुण्ठ) के निकट एक स्थान 'पुरसिया' है। जो इन्हीं पुर के नाम पर बसा है। पुर के भाई 'तपोरत' थे। इनका राज्य 'तपोरिया' प्रांत में था। जिसे आजकल मजदिरन (MAZANDERAN) कहते हैं।[३] ये प्रत्यागत थे।[४] ईरानी इतिहासकार इन्हें विदेशी आक्रमणकारी कहते हैं, पर यह नहीं जानते कि ये कौन थे। न उनके वंश का उन्हें पता है। परन्तु हमारे पुराण प्रमाणित करते हैं कि ये महान् विजेता मनुर्भरत थे।

ईंटों के और दो मंजिले बने हुए हैं। उनके अन्दर बड़ा चौक और बाहर चारों तरफ लकड़ी का बरामदा था। उर राजा अपने मकानों की ईंटों पर अपना नाम खुदवा लेते थे। वहाँ पृथ्वी देवी के मन्दिर में ताँबे की बनी हुई एक बैल की मूर्ति मिली, जो पशु संसार की सबसे पहली मूर्ति मानी जाती है। इसी मन्दिर के एक कोने में एक विचित्र चिड़िया की एक पुरानी मूर्ति मिली थी, जो संसार में किसी भी चिड़िया की सबसे पहली मूर्ति समझी जा सकती है। कहा जाता है कि इन दोनों मूर्तियों के बनाने वाले ईसा से ४३०० वर्ष पूर्व रहे होंगे।

(नवभारत टाइम्स, जनवरी ५५)

[१] देखिये विष्णु पुराण में चाक्षुष मन्वन्तर का कथा प्रसंग।

'Africa or Cushdwipa' टाड राजस्थान

'Angra Pequenna on the South west coast of Africa'

'Ancyra or Angira on Angora in Asia Minor देखिये नकशा

[2] Poura, now termed Pahra by the Baluchis and Pahraj by the Persians, lies in the only really fertile valley of Persian–Baluchistan. In the neighbourhood are ruins of two other forts, and the site is generally believed to be ancient Arrian States that Poura was reached in 60 days from Ora, and as the map makes the distance of 600 miles, this would in all the circumstances be a reasonable distance to be covered in the time. (H. P. vol. 297–298.)

[3] The Mardi lived further west than the Tapuritac under Demavand of Tapuria. (H. P. vol I 284).

[4] From the tablets just referred to, we learn the names of the several of the Patesis of Elam, none of whom is native of the country. As the dynasty became weak, Elam recovered its liberty and finally turned on its oppressor and caused the downfall of the dynasty of Ur (2280 B. C.) (H. P. vol. 1. 73–74)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईरान के छः अमर उपास्य देव—इन छहों विजेताओं के वर्णन—भारतीय पुराणों में तो यत्र तत्र थोड़े ही हैं। क्योंकि यह विदेशों ही में जाकर बस गये थे तथा वहीं इनके राज्यों का विस्तार हुआ था। उन दिनों राजा ही महिदेव कहते तथा देव की भाँति पूजे जाते थे अतः ये छः अमर उपास्य देव (Six Immortal Holy ones) कहाये हैं।[1] इनका वर्णन ईरानी इतिहास में बहुत है। इन्हीं को प्राचीन इतिहास और बाइबिल में 'Satanic Host, 'SATAN' कहा गया है। अवस्ता में वर्णित अहिरमन भी यही हैं।[2] इनके आक्रमण असह्य हो गये थे। ये छः अमर उपास्य देव महाविक्रम अयुध्य जन थे, उनके सर्वग्राही भयानक आक्रमण से दलित हो ईरानी उन्हें 'अहित देव', दुखदायी अहिरमन या शैतान कहने लगे।[3] मिल्टन के स्वर्गनाश की कथा में जिस शैतान का उल्लेख है वह तथा बाइबिल में

---

[1] In the later Avesta Ahura Mazda is still Supreme, but he is no longer the sole object of worship. By this time the six attributes had become the "Six Immortal Holy ones", and were worshipped as such." (H. P. vol. I page 111).

"The-sky-God Varuna, the Ouranos of the Greeks, was worshipped as the Supreme God." (H. P. vol. I page 105)

"Under the spiritualizing influence of Zoroaster's teaching, which may be defined as the attribution of a moral character to the powers of nature, Varuna became Ahura "the Lord" or more commonly Ahura Mazda (Ormuzd) ", the Lord of Great Knowledge". The Supreme God and the Creator of the world." (H. P. vol. 1. 111).

[2] "Ahriman, the Spirit of Evil—coeval with Ahura Mazda, fundamentally hostile to him and having the power to thwart his beneficient actions for a while is Angra Mainyu or Ahriman, the spirit of Evil, who thus limits the omnipotence of Ahura Mazda." (H. P. vol. I. 112)

What a terrible, nay ferocious God is this !" (H. P. vol. I 118).

[3] "Ahura Mazda created all that is good, whom it is the duty of all believers to cherish. Ahriman or Angra Mainyu created all noxious creatures which is the bounden duty of all the faithful to destroy." (H. P. vol. 1. 113)

"The Ahriman of Zorostrianism is almost identical with Satan of Judaism and Theory of Christianity. Zorostianism influenced Judaism and thereby christianity in diverse ways. The Supreme God of Judaism could not destroy the terrible and ferocious Ahriman as obviously as he would, if he could." (H. P. vol. I. 117–118)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्णित शैतान और अवस्ता के अहिरमन ये ही छः मनुर्भरत थे। जो यहाँ राजनीतिक उपासना के मध्य बिन्दु बने। ये समागत थे।[1]

५. सतयुग की मुख्य मुख्य घटनायें

ऐतिहासिक—प्रियव्रत शाखा काल में भूमि का बटवारा हुआ। भू संस्कार हुआ। भूमि को साफ करके, वनों को जलाकर भूमि को कृषि के योग्य बनाया गया। कृषि की स्थापना हुई। राज्य स्थापना की गई।[1]

उत्तानपाद शाखाकाल में ईरान की विजय, वैकुण्ठ का निर्माण, प्रलय, राजा की मर्यादा और राज्य व्यवस्था आदि बड़ी बड़ी ऐतिहासिक घटनाऐं चाक्षुष मन्वन्तर काल में हुईं।[2]

महाराज अत्यराति ने अपने पाँचों भाईयों और भतीजे सहित ईरान विजय कर प्रथम चक्रवर्ती जानन्तपति पद पाया। जिससे भरतों का वंश ईरान तथा एशिया में विस्तार पा गया। पृथु वैन्य प्रथम राजा हुआ। उसके नाम पर भूमि का नाम पृथ्वी हुआ।

प्रलय—प्रलय इस युग की सबसे बड़ी घटना है। इसका वर्णन संसार की सब प्राचीन पुस्तकों में हैं। इस घटना को मिस्री, यहूदी, बाबल, सुमेर, दक्षिणी अमेरिका वासी तथा भारतीय समान भाव से जानते थे। यह प्रलय संभवतः चाक्षुष मन्वन्तर में हुआ और ऐसे स्थान में हुआ जहाँ उस युग में इन सब जातियों के पुरखे एक ही स्थान पर रहते थे। भारतीय साहित्य में प्रलय का वर्णन शतपथ ब्राह्मण तथा अथर्ववेद में है। पुराणों में भी है। मत्स्य पुराण, महाभारत और बाल्मीकि में भी वर्णन है। विदेशी साहित्य में बेबिलोनिया की गिलगैमिश कथा में, बेबिलोनियन बेरोसस कृत वर्णन में, मिस्र के प्राचीन साहित्य में, जिससे तेम मनुष्यों के पिता का सम्बन्ध है। ग्रीस के क्लासिकल वर्णन में, बाइबिल के नूह के वर्णन में—प्रलय की कथा वर्णित है। बाइबिल में लिखा है कि ४० दिन और ४० रात निरन्तर वर्षा हुई तब

The cheif diety whose name was sacred and secret and who was reffered to as Shushinak or the 'Susian' dwelt in a forest sanctuary which was sacred and to which only the priests and the kings were admitted. Associated with Shushinak were six other deities of the first rank grouped in two triads Of these, Amman Kasibar may possibly be the Memnon of the Greeks.

(H. P. Vol. 1. 58)

'The Swarthy the Son of Kissia and the black Tihon of the Greeks. (Givtier, Rec, de trav, XXXI p.p. 41 ff.

[1] स्कन्द पुराण। शतपथ ब्रा० श्रीमद्भागवत।

[2] हरिवंश। महाभारत (द्रोण० ६९। २७) बिष्णु पुराण। वायु पुराण ६२। १७०। १६१–१७२ और ६७। ४३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रलय हुआ।[1] परन्तु भारतीय मत में प्रलय का कारण वर्षा नहीं है। पाश्चात्य जन प्रलय का काल ई० पू० ३५०० और ३००० ई० पू० अनुमान करते हैं। लगभग यही काल चाक्षुष मन्वन्तर का काल है।

भारतीय साहित्य की भाँति अन्य देशों के इतिहास में भी यह घटना भविष्य वाद के ढंग पर कही गई है। दक्षिण अमेरिका के इतिहास में तो इसे भारतीयों की भाँति उत्तर के पर्वतों में नौका बना उसमें वनस्पतियों और पशुपक्षियों के बीज रक्षित रखने का उल्लेख है।[2] यह प्रलय वास्तव में वर्तमान मैसोपोटामिया और एशिया के उत्तर-पश्चिम प्रदेशों में हुआ था। एशिया का यह भाग दक्षिण में फारस की खाड़ी और उत्तर में काश्यप सागर से दबा हुआ है। एशिया के पश्चिमोत्तर कोण में जो आरमीनिया प्रदेश है वहाँ के बर्फीले पर्वतों से फरात नदी निकल कर मैसोपोटामिया में आई है, जो मैसोपोटामिया की खास नदी है। यह नदी बहुत बड़ी है, इसका विस्तार भी बड़ा है। सम्भवतः बर्फ का बाँध टूटने से इसी दजला नदी में बाढ़ आई और उस प्रदेश को जो फारस की खाड़ी और काश्यप सागर के बीच में है समूचा डुबो दिया। इस भू भाग में कुछ ऐसे भी स्थल हैं जो समुद्र तल से १८ हजार फुट तक ऊँचे हैं। वहाँ सम्भवतः जल नहीं पहुँचा। परन्तु वृक्ष, वनस्पति और मनुष्य, पशु, पक्षी इस देश के भी नष्ट हो गये। पेलेस्टाइन का वह भाग जो फारस की खाड़ी के पच्छिम दक्षिण में है, समुद्र तल से केवल ६ हजार फुट ऊँचा है, वह सर्वथा जलमग्न हो गया और वह स्थान मृत्युलोक बन गया। इस प्रलय का कारण वहाँ के किसी ज्वालामुखी का विस्फोट था जिससे बर्फ की चट्टानें टूट गईं थीं और दजला नदी का उद्गम, काश्यप सागर और फारस की खाड़ी इन सबने मिलकर समूचे प्रदेश को जलमग्न कर दिया।

वैकुण्ठ धाम—वैकुण्ठ धाम का निर्माण सम्भवतः रैवत मन्वन्तर में या चाक्षुप मन्वन्तर में हुआ। भारत की सीमा को जो पर्शिया का पूर्वी प्रांत छूता है, उसे सत्यगिदी कहते हैं। उस काल में यह सत्य लोक के नाम से विख्यात था। उसी के सामने सुमेरू के निकट वैकुण्ठ धाम बसाया गया था। जो देमावन्द एलबुर्ज पर्वत पर था। ईरानी लोग इसे 'पैराडाइज' आज भी कहते हैं। देमावन्द तपोरिया प्रांत में है। इसी प्रांत के तपसी बिकुण्ठा और उनके पुत्र वैकुण्ठ थे। वैकुण्ठधाम उनकी राजधानी थी, जो आगे अत्यराति की राजधानी बनी।[3] तुर्किस्तान (तोखरिस्तान) में बैकुण्ड (वैकुण्ठ) नगर के प्राचीन खण्डहर मिले हैं।[4]

---

[1] बाइबिल, जिनेसस ७ अ, ७। १२ पृ० २१

इनसाइक्लोपेडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स् (आर्टिकिल आन एजेज)

[2] Tales of the Cochiti Indian's by Ruth Benedit. Smithsonian Institution Bureau of American Ethnology. Bulletin

[3] श्रीमद्भागवत। हरिवंश। विष्णु पुराण। ब्राह्मण पु० पूर्व भाग। पाद २। ३६। १०८। मत्स्य १०। ३

[4] इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली २। १९२६। पृ० ५२८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजमर्यादा की स्थापना—राजमर्यादा की स्थापना चाक्षुष मन्वन्तर में पृथु वैन्य ने भारत में स्थापित की। जबकि उससे पूर्व के भरत विजेताओं ने एशिया के दूसरे भागों में अपने राज्य स्थापित कर लिये थे। इससे पूर्व वे प्रजापति कहाते थे तथा प्रजातन्त्रीय ढंग पर शासन करते थे। सबसे प्रथम राजा वेन बनाया गया था। पर वह स्वेच्छाचारी हो गया। अतः उसे मार कर उसके पुत्र पृथु वैन्य ने अपने को राजा घोषित कर राजसेना परिच्छद धारण किए और राज व्यवस्था की। कृषि का आरम्भ किया। इसी के नाम पर भूमि का नाम पृथ्वी विख्यात हुआ।[1]

कृषि - इस काल तक 'अकृष्टपच्या भूमि थी। चाक्षुष मन्वन्तर तक गेहूं आदि धान्य नहीं बोए गए थे। न घरों में पशु पाले जाते थे। जंगलों में चरती गौओं को दूह लिया जाता था, हल चलाकर खेती नहीं की जाती थी। स्वाभाविक उपज पर लोग जीविका चलाते थे। व्यापार, लेन देन, क्रय-विक्रय भी न था।[2] अनुमान होता है कि जल प्रलय के बाद जब धरती सूख गई तो उस पर पपड़ी जम गई और अकृष्टपच्या भूमि न रही। अर्थात् आप ही आप उपज बन्द हो गई। तब खोद कर बीज बोने की परिपाटी चली और कृषि का आरम्भ हुआ।

अकृष्टपच्या अन्न की प्राचीन ग्रंथों में प्रशंसा भी है।[3]

ऋग्वेद में कृषि की बड़ी महिमा है। ऐसा प्रतीत होता है कि कृषि उस काल में एक महत्वपूर्ण और असाधारण विज्ञान समझा जाता था। इसका कारण यही था कि कृषि का अभी विकास ही हो रहा था, तथा नए नए प्रयोग होते जा रहे थे। हल-बैल, घोड़े, जुताई, वर्षा परिपाक, खेत आदि का बहुत मूल्य था। इसी से इस काल में खेती से सम्बन्धित बहुत सूक्त बने जो वैवस्वत मन्वन्तर में बनते चले गए। क्योंकि अभी कृषि का बालकाल ही था कि स्वयंभुव मनु वंश की सम्पत्ति हो गई। ऋग्वेद तथा दूसरे वेदों में कृषि की प्रशंसा है।[4] महाभारत में अकृष्टपच्या भूमि के सम्बन्ध में वर्णन है।[5] तथा ब्राह्मण ग्रंथों में भी उसका संकेत है।[6]

---

[1] महाभारत शान्ति० ५८। १२१। १२२। हरिवंश। दुर्गा शप्तशती।

[2] न सस्यानि न गो रक्षा न कृषिर्न वणिक् पथः
चाक्षुष्यान्तरे पूर्वं मत दासीत् पुरा किल। वायु पुराण। ६२। १७२।

[3] सौम्यंश्या नाकं चरूं निर्वपति। सोमोवा अकृष्टपच्यस्यराजा। तैत्तिरी ब्राह्मण १। ६। १। ११

[4] कृषिमित्कृषस्व। ऋग्वेद। १०। ३४। १३।

[5] अकृष्टपच्या पृथ्वी आसीद्वैन्यस्य कामधुक।
यदा प्रसृष्टा ओषध्यो न पुरोहन्तिताः पुनः। ततः स तासां वृत्यर्थं वार्तोपायं चकार ह्वै। ब्रह्मा स्वयं भूर्भगवान् दृष्ट्वा सिद्धिं तु कर्मजात्। ततः पृभृत्यौषध्यः कृष्टपच्यास्तुजज्ञि रे। महा० द्रो० ६९। ४ षोड़षराजोपार कान

[6] अष्टौवा एताः कामदुधा आस १. स्तोमेका समशीर्यत सा कृषिरभव दृश्यतेऽस्मै कृषौ यो एवं वेद। ताण्ड्य ब्रा० ११। ५। ८।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सांस्कृतिक घटना—वेदोदय इस युग की महान् सांस्कृतिक घटना है। चाक्षुष वंश का पृथु-वैन्य सबसे प्रथम राजा वैदषि हुआ। पृथु वैन्य सम्भवतः २९४१ ई० पू० में हुआ। उसने ऋग्वेद के १०।१४८ सूक्त की रचना की। इससे पूर्व परमेष्ठी ने १०।१२९ सूक्त। इस युग के अन्य वैदिक ऋषि ऋषभ, वैकुण्ठ, चोत्तल, वेन, विद्धीत और प्रचेतस भी हैं।

६—सतयुग पर व्यापक दृष्टि

भारत—ऋग्वेद में भरतो का कहीं नामोल्लेख नहीं हैं। क्योंकि भरत वंश वेदपूर्व का वंश है। इस वंश के उत्तर काल में वेदोदय हुआ। यद्यपि एकाध सूक्त प्रियव्रत शाखा काल में भी रचा गया, पर कदाचित् तब उसकी कोई स्थिर रूप रेखा नहीं बनी थी। उत्तर काल में भी ऐसा ही कुछ रहा। कुछ नए सूक्त रचे गए। जो संपादन काल में ऋग्वेद के दशम मण्डल में, जहाँ सभी स्फुट सूक्त हैं संग्रहीत कर लिए गए।

इसके बाद ऋग्वेद के सूक्तों का प्रसार आर्य सभ्यता के विकास के साथ साथ त्रेतायुग में हुआ। उस काल में यद्यपि वैवस्वत मनु के पुत्र और पुत्री के आर्य वंशों के हाथ भारतीय सभ्यता रही। और उसी वातावरण में सूक्तों का निर्माण भी हुआ।

मनु भरतों के प्रसिद्ध सर्वजयी नेताओं ने भारत से बाहर अपने प्रबल राज्य स्थापित कर लिए थे। भरतों का भारतीय राजवंश दक्ष के बाद समाप्त हो गया। पौराणिक कथा प्रसिद्ध है कि दक्ष प्रजापति को यज्ञ काल में उसके जामाता रुद्र ने वध किया था। यह घटना किसी हद तक सत्य हो सकती है। परन्तु रुद्र दक्ष का जामाता नहीं प्रदौहत्र प्रतीत होता है। वह दक्ष पुत्री वसु और सूर्य पुत्र यम के पुत्र धर का पुत्र हैं। धर वन्धुच्वसु प्रसिद्ध हैं। जिनके पुत्र ग्यारह रुद्र हैं।[1] जो भी हो। दक्ष भरत वंश का अन्तिम प्रजापति था। परन्तु इसके बाद भी भरत वंशियों के राज्य भारत की पश्चिमी सीमाओं पर कायम रहे। ऋग्वेद में भरत वंशी किसी प्रजापति का नामोल्लेख तो नहीं है, परन्तु 'भारतों' का उल्लेख बहुत है। ये भारत यही मनुभरत थे और इनसे आर्यों के बड़े बड़े निर्णायक युद्ध हुए थे।

ऋग्वेद में 'भरताः' नाम बारम्बार आया है। यह नाम विशेषतः तीसरे या चौथे मण्डलों में तृत्सु सुदास के नाम के साथ आया है। सातवें मण्डल में जो वशिष्ट के सूक्त हैं इनसे प्रकट होता है कि वशिष्ट कुछ दिन तक भरतों के कुल गुरु रहे थे। तथा तृत्सु भी भरतों ही के कुल में थे। इसी प्रकार विश्वामित्र के सूक्तों में भी भरतों का बहुत उल्लेख है। ये सूक्त ऋग्वेद के तीसरे मण्डल में हैं। भरतों के इष्ट राजा सुदास से वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों ही का सम्बन्ध था। एक सूक्त में

---

[1] देखिये श्री मद्भागवत। विष्णु पुराण और हरिवंश में भरत वंश।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्वामित्र 'भारत जन' का प्रयोग करते हैं। छठे मण्डल में भरद्वाज के सूक्त हैं—वे भी उनमें भारतों का व भरतों का उल्लेख करते हैं।

ब्राह्मण ग्रंथों में 'भारत' का अर्थ क्षत्रिय योद्धा या पुरोहित के अर्थ में किया गया है, निरुक्तकार 'भारती' शब्द का अर्थ सूर्य वंश से सम्बन्धित कहाता है, परन्तु महाभारत में कौरव और पाण्डव दोनों ही को 'भारत' कहा गया है। सो महाभारत के भारत और ऋग्वेद के भारत भिन्न भिन्न हैं। यह बात महाभारत ही में स्पष्ट कर दी गई है। कि प्राचीन भारत प्रसिद्ध हैं। वे अपर अर्थात् और हैं। [1]

भरतों और यदु तुर्वशों का युद्ध—ऋग्वेद में उल्लेख है कि इन्द्र ने दिवोदास के लिए यदु तुर्वशों को मारा। सरयू तट पर भरतों और तुर्वशों की लड़ाइयाँ हुईं।

दास राज्य संग्राम—ऋग्वेद में इस संग्राम का विस्तृत वर्णन है। यह युद्ध परुष्णी नदी के किनारे हुआ था। आजकल इस नदी का नाम रावी है। एक ओर भरत और सुदास तथा उनके पुरोहित वशिष्ठ और तृत्सु थे। दूसरी ओर यदु तुर्वश द्रुह्यु, अनु, राजे तथा उनके सहायक अन्य पाँच मित्र राजे थे। इस युद्ध को इन्द्र की सहायता से भरतों ने जय किया था। यह संग्राम पंजाब में प्रथम ही से बसे हुए भरतों से बाद के नए राज्यों के संस्थापकों, यदु आदि आर्य बहिष्कृत राजाओं ने अनार्य राजाओं की सहायता से किया था। यहाँ यह बात जानने योग्य है कि ययाति की दोनों पत्नियाँ अनार्य वश की थीं तथा ययाति ने अपने छोटे पुत्र पुरु को अपने चन्द्र वंश की प्रधान गद्दी का अधिकारी बना शेष चार पुत्रों को सीमान्त राज्य देकर उन्हें आर्य जाति से ही बहिष्कृत कर दिया था तथा आर्यावर्त क्षेत्र में उनका विस्तार नहीं हो सकता था। इसी से उन्होंने अन्य अनार्य राजाओं को मिला कर पंजाब के प्राचीन भारतों के राज्य को विध्वंस कर अपने राज्यों के विस्तार की चेष्टा की थी जो सफल नहीं हुई। मार्के की बात यह थी कि इस युद्ध में पौरव या 'पुरु' सम्मिलित नहीं हुआ था। यदु आदि ने इन्द्र को घूस देकर अपने में मिलाने की भी चेष्टा की थी, इसका संकेत भी एक ऋचा में है। [2]

व्यापक दृष्टि—एक महत्वपूर्ण बात सतयुग काल के सम्बंध में यह है कि उस काल में भारत एक समुद्री यात्रा का देश था। बहुत समय तक दक्षिण समुद्र भूमध्य सागर की भाँति दक्षिण से भी घिरा हुआ था। यह दक्षिण भारतीय भूमध्य सागर खूब विस्तृत था। और उसमें बिना धातु की सहायता से बने जहाज लम्बी यात्रा किया करते थे। [3] सिंधु सभ्यता में भी लोहा नहीं मिलता।

---

१. भारताद्भरतो कीर्तियेनेदं भारतं कुलम्।
अपरे च पूर्वे वै भारता इति विश्रुता। महा० १३१। आ० अ० ७४।

२. यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रह्युष्वनुषु पूरुषुस्थः।
अतः परिवृषणा वाहि यातयथा सोमस्य पिवतं सुतस्य।
ऋ० १। १०८।

३. प्रिहिस्टोरिक इण्डिया, पंचाननमिश्र।

State Museum, LUCKNOW.
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाइबिल में शैतान को सर्प और ईश्वर का समकक्ष उसका प्रतिस्पर्द्धी कहा है। हम कह चुके हैं कि शैतान पूर्व वर्णित विजेता भरतों को कहा गया है। बैबिलोनिया में सर्प पवित्र चिह्न था। वह पृथ्वी माता का प्रतीक था। एरिड में अक्काड सर्प देवता इआ की उपासना सर्वश्रेष्ठ मंदिरों में होती थी। ऐरिड सेचेल्डिया (सुमेर, सिमाइट) की सभ्यता का प्रसार हुआ था। अतः सर्प देवता वहाँ भी माना गया। तूरानी, प्रोटो, मीडीज सर्प के उपासक थे। पीछे जरथुष्ट के उपासकों का काल आया, तब ईरानी मज्दयस्न के उपासकों ने सर्प को अैंग्र मेन्युश (आंगरा, अभिमन्यु) अहित देव कहा जो कालांतर के आर्य स्वीकृत हुआ।[१] रेगोजिन को चेल्डिया के मुगेर के ध्वंसों में 'उर, इआ' अथवा 'उर-वगश' (संयुक्त बैबिलोनिया के प्रथम राजा उर) द्वारा बनाए प्राचीन 'उर' में ई० पू० ३००० वर्ष की एक लकड़ी मिली है जो भारतीय है। मेसापोटामिया की प्रलय कथा में 'मीन' (मछली) तथा नीर (पानी) तमिल शब्द हैं।[२] दक्षिण भारत और मेसापोटामिया का कभी समुद्र मार्ग से सम्बंध था।[३] एरिडु नामक सुमेर नगर की किम्वदन्ती के अनुसार पुरुष मत्स्य फारस की खाड़ी में तैर कर पहुँचा, उसे ओनीज कहा जाता है। बाइबिल के अनुसार जूडाह, एलाम, इजराइल, मिस्र, बैबिलोन आदि देशों का नाम है। ईश्वर ने इब्राहीम को मिस्र से फरात तक केनाहर, केनिजाइट, कैड-मोनाइट हिलाहत, परिजाहत, रिफेस, अमोराइट आदि का स्वामी बनाया था।[४] ऋग्वेद के अनुसार अग्नि हव्य का वहन करते थे और रुद्रों तथा वसुओं के सम्मुख स्थान पाए हुए थे।[५] अंगीरा के वंशजों का ऋग्वेद में वर्णन है। अंगिरा को पूर्व पुरुष कहा है।[६] प्रलय के सम्बन्ध में चेल्डिया, असीरियन गाथा है कि प्रलय से प्रथम ही राजा जिसुथ्रियस को मत्स्य देवता ओनीज ने सावधान कर दिया था कि विपत्ति आने वाली है। अतः जादू की किताब वह सूर्य के नगर सिघाटा में छिपा दे।[७] इस कथा में शतपथ, विष्णु पुराण से साम्य है। मत्स्यावतार की कथा अथर्व में भी है।[८] मनु को देवों के कहने से मत्स्य ने प्रलय की सूचना दी थी। यह मनु सम्भवतः अभिमन्यु भरत है। वेन्डीडेड में उल्लेख है –अहुरमज्द ने १६ देश बनाए अैंग्र मन्यु

---

१ वैदिक इण्डिया पृ० ३०९–१०।
२ ओरिजन एण्ड स्प्रेड आफ द तामिल्स।
३ ,, ,,
४ जिनेसिस, १७–१७–५। १७–१५, १८–२१।
५ ऋग्वेद १।१।४।११।५८।३।
६ ऋग्वेद–१·१·५·११–६२·२।
७ जर्नल आफ द. के. आर काम ओरिएन्टेल इन्सटीट्यूट। ३५। १९४२। पृ १·६१।
८ अथर्व–१९।२९।९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(अंगिरा अभिमन्यु) ने इन सबको जलमग्न कर दिया। विंटर निट्ज ई० पू० तीसरी शताब्दी वेदारम्भ काल की बताई है और कुरु हिमालय के परे-परेण हिमवृन्तम था। वशिष्ठ सातहव्य उसे देव क्षेत्र कहता है। उसे जानन्तपति अत्यराति ने जीतने की चेष्टा की थी।[1] ऋग्वेद में वेन को दयावान और पृथि-पृथी-पृथु का ऋषी माना गया है। उसे वैन्य कहा गया है तथा कृषि का जन्मदाता भी कहा है।[2] भरतों के बाद पुरु शासक हुआ था।[3] दक्षिण के सात्वतों को भारतों ने पराजित किया था।[4]

---

[1] वैदिक इन्डेका १। पृ० ८४।

[2] वैदिक इन्डेका पृ० ३२५। ११-१०।

[3] जनरल आफ रायल एसियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल। १९१९-पृ ५१२।

[4] एतरेय ब्राह्मण।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ७

त्रेता—मनु-राम काल

ई० पू० २६६१ से ई० पू० १५६९ तक=१०९२ वर्ष

१—नृवंश विस्तार

त्रेता की काल गणना—पुराणों के आधार पर त्रेता की काल गणना ३००० वर्ष है। परन्तु इसका कोई ऐतिहासिक आधार स्थिर नहीं होता हैं। इसलिए हम इस युग को वंशावलियों के आधार पर काल सीमा में बांधते हैं। परन्तु इस युग की वंशावलियों पर अभी तक किसी आधुनिक विद्वान् ने अनुशीलन नहीं किया है। पार्जीटर ने जो विवेचन इस युग की वंश गणना का किया है वह बहुत अधूरा है।

इस युग में आर्यों के १२ प्रमुख वंश हैं जिनमें चार की वंशावलियाँ ठीक ठीक प्राप्त नहीं हैं।

यह युग वैबस्वत मनु से प्रारम्भ होता है। वैवस्वत् मनु से रामचन्द्र तक कुल ३९ पीढ़ियाँ मिलती हैं। एक पीढ़ी का समय २८ वर्ष गिनने से इस युग का भोग काल १०९२ वर्ष होता है। इस वंश के ७६ वीं पीढ़ी के राजा प्रसेनजित निश्चित रूप से कोसल की गद्दी पर ५३३ ई० पूर्व में थे। उनसे रामचन्द्र ३७ पीढ़ी प्रथम है, और महाभारत कालीन वृहद्वल २३ पीढ़ी प्रथम। इस हिसाब से ७६—३९ =३७×२८=१०३६+५३३=१५६९ ई० पू० त्रेता युग की समाप्ति और २९×२८=१०९२+१५६९=२६६१ ई० पू० मनु काल में त्रेता युग प्रारम्भ। सम्पूर्ण भोग काल १०९२ वर्ष।

वैवस्वत मन्वन्तर—पौराणिक गणना के अनुसार वैवस्वत् मन्वन्तर अब तक चल रहा है और समाप्त नहीं हुआ। परन्तु वास्तविक बात यह है कि मन्वन्तर गणना चाक्षुष मन्वन्तर तक ही किसी तरह काम में लाई जा सकती है। वैवस्वत् के आरम्भ से एक बिल्कुल नई धारा का नया युग प्रारम्भ होता है। अब तक के ६ मनु एक ही घराने के थे। परन्तु अब वैवस्वत का एक सर्वथा प्रथक् नया घराना स्थापित होता है। जिसका पूर्व मनुष्यों से परम्परा का सम्बंध नहीं मिलता।

इन छः मन्वतरों में इने गिने कुल नौ मन्त्रदृष्टा वेदर्षि हैं। वैवस्वत मनु मानव वंश के प्रतिष्ठाता और मानवों के आदि पुरुष हैं। तथा इन्हीं के वंश से सम्बंधित तथा इनके दायाद बान्धव देव-दैत्य-दानव—आनव-नाग आदि अनेक नृवंशों का आधे संसार के भिन्न भिन्न भूभागों में प्रसार हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मारीचि कश्यप का नृवंश—मनुर्भरतों के अन्तिम प्रजापति प्रचेता पुत्र दक्ष ने साठ कन्याओं का दान किया। उसने तेरह कन्या कश्यप को, दस यम को, सत्ताईस चन्द्र को, चार अरिष्टनेमि को, दो भृगु पुत्र को, दो कृशाश्व को और दो अंगिरा को दीं। आज के विश्व का सम्पूर्ण नृवंश इन्हीं की संतति है।

मारीचि-कश्यप और दिति से दैत्य वंश चला, अदिति से आदित्य वंश, दनु से दानव वंश, इसी प्रकार तेरह भिन्न भिन्न पत्नियों से तेरह भिन्न भिन्न नृवंश चले।[1]

दैत्य-दानव वंश—दिति-कश्यप की सन्तान 'दैत्य' कहाई। यह कश्यप की ज्येष्ठ पत्नी की संतान होने से सर्वोपरि और श्रेष्ठ थी। काश्यप सागर के तट के आस पास (Caspian Sea) इनके राज्यों का विस्तार हुआ तथा अदिति पुत्र आदित्यों से इनके राज्य मामलों में तथा बटवारे के सम्बन्ध में बहुत विग्रह हुए। दैत्यों की सभ्यता को ही पुरातत्वविद् 'हीलियोलिथिक' सभ्यता कहते हैं। इसी की एक शाखा अमेरिका में 'मय सभ्यता' के रूप में विकसित हुई। दूसरी मिश्र में मेसोपोटामिया नाम से, तीसरी बैबिलोन में असुर सभ्यता नाम से।

पुराणों के अनुसार दैत्य वंश का वंश-वृक्ष इस प्रकार हैं—

मारीचि-कश्यप-दिति
|
हिरण्यकशिपु (हिरण्याक्ष, बज्रांग, अन्धक भाई)
|
प्रह्लाद (अनुह्लाद, ह्लाद, संह्लाद भाई)
|
विरोचन (कुम्भ, निकुम्भ, भाई)
|
बलि
|
बाण

हिरण्याक्ष के उत्क्रूर, शकुनी, भूत संतापन, महानाभि, महाबाहु, कालनाभ पुत्र हुए। बज्रांग का पुत्र ताटक था।

दानव वंश—दनु कश्यप की तृतीय पत्नी थी। उसकी संतति से दानव वंश चला। जिसके प्रमुख पुरुष शंवर, शंकर, एक चक्र, महाबाहु, ताटक, वृषपर्वा, पुलोमा, विप्रचित्ति आदि हुए। वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा से चन्द्रवंशी ययाति का विवाह हुआ, जिससे चन्द्रवंश के प्रमुख पुरुष पुरु का जन्म हुआ। पुलोमा और कालिका नाम की दो कन्याएँ भी दनु को हुईं। इनके पृथक् दो वंश—'कालिकेय' और 'पौलोम' चले। दिति की पुत्री 'सिंहिका' विप्रचित्त दानव को ब्याही गई, उसके वंश में शल्यना, वातापि, नमुचित, इल्वल, नरक, कालनाभ तथा चक्रयोधि राहु आदि तेरह वीर पुत्र हुए। ये सब सिंहिक्रिय कहाए। राहु अति

[1] विष्णु पुराण। महाभारत आ० ७०।८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भयंकर प्रसिद्ध था। प्रसिद्ध दैत्य निवात कवच तपस्वी थे। ये संह्लाद के वंश में थे।[1]

दैत्यों में हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष बड़े प्रतापी हुए। इन्होंने अनेक देवों को पदच्युत किया। बलि और हिरण्यकशिपु के राज्य उत्तर पश्चिम फारस और अफगानिस्तान तक फैले हुए थे। प्रह्लाद को सुरत्व की प्राप्ति हुई।[2] हिरण्यकशिपु नृसिंह द्वारा मारा गया। प्रह्लाद ने विष्णु से सुलह की। इस पर पिता पुत्र में विरोध हुआ। विष्णु ने प्रह्लाद की रक्षा की। दैत्यों में प्रह्लाद और उसके पुत्र विरोचन ने कोई महत्ता नहीं पाई पर उसका पुत्र बलि बड़ा दानी और पुरुषार्थी प्रसिद्ध हुआ। उसने दैत्य वंश का नया समर्थ राज्य स्थापित कर लिया। उसकी राजनीति से दैत्यों और दानवों का बल बढ़ा। बलि पुत्र बाण प्रबल युद्धकर्त्ता थे। उनकी उपाधि 'महातेज' थी। स्वयं राजा बलि राजनीतिज्ञता, पुरुषार्थ, न्याय-प्रियता, धर्म, दान आदि गुणों में अप्रतिम था।

हिरण्यकशिपु ने अपनी राजधानी हिरण्यपुरी बसाई थी, उसने स्वर्ण की सर्व प्रथम खान का पता लगाया; इसी से वह हिरण्यकशिपु प्रसिद्ध हुआ। उसकी नगरी काश्यप सागर तट पर अति समृद्ध थी। उसका भाई हिरण्याक्ष बैबिलोन का अधिपति था।

नाग वंश—मारीचि कश्यप की चौथी स्त्री कद्रू थी। उसकी सन्तान के २६ नाग कुल चले। इस कुल मे शेष, वासुकी, कर्कोटक, तक्षक, धृतराष्ट्र, धनञ्जय, महानील अश्वतर, पुष्पदन्त, आदि प्रमुख राजा हुए। सम्भवतः तुर्किस्तान नागलोक था। तुर्क नाग-वंशीय हैं। तुर्कों की उपजाति 'सेस' 'वासक' आदि शेष और वासुकी नाग के नाम पर हैं।[3] 'उत्तरी तुर्किस्तान' नागों का प्राचीन निवास स्थान बताया जाता है। एक पात्र अश्वतर, शेष, कर्कोटक, धन्वन्तर, सुरसा के पुत्र नाग थे।[4] अश्वतर का राज्य सिन्ध के उस पार था।[5] काबुल युसुफजाई, हसन अब्दल, टोचरिस्तान आदि नागों के देश थे। कभी सीरिया पर भी नागों का आधिपत्य था।[6] शेषनाग का ईलाम में भी आधिपत्य था।[7] विष्णु ने शेष को जीत कर आधीन किया था। इसी से उन्हें शेषशायी कहते है।

आदित्य—मारीचि कश्यप की दूसरी पत्नी अदिति से बारह पुत्र हुए। वे सब आदित्य कहाए। इनमें ज्येष्ठ वरुण थे जो पुराणों में ब्रह्मा के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा विदेशों में अलोहिम, अल्लाह और इलाही के नाम से विख्यात हैं। सूर्य का

---

[1] **विष्णु पुराण। हरिवंश। योगवशिष्ट। महाभारत आदि पर्व।**

[2] **पद्म पुराण सृष्टि खण्ड ७२ एतरेय ब्राह्मण। मत्स्य पुराण।**

[3] **देखिए नन्दलाल दे कृत—'रसातल'**

[4] **विष्णु पुराण।**

[5] **मार्कण्डेय पुराण।**

[6] Ishak, Aj-Dahak family of Syria (H. P. Vol I.)

[7] Shushinak family of Elam 2400 B.C. (H.P.Vol I.)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णु नाम पुराणों में विख्यात हुआ। विदेशों में अन्य अनेक नाम हुए। आगे ये बारहों आदित्य कुल 'देव कुल' कहाए।[१]

गरुड़ वंश—कश्यप की पाँचवीं पत्नी वनिता से छः पुत्र उत्पन्न हुए—सुनामा, सुनेत्र, सुवर्ची, सुरुक् और सुवर्ण। इनके पृथक-पृथक अनेक गरुड़ वंश चले। जिनके प्रमुख पुरुषों में—सुवर्ण चूड़, नागाशी, दारुथ, चण्डतुण्ड, अनिल, अनल, विशालाक्ष, कण्डली, पंकाजि, ब्रज, विष्कुम्भ, वामन, वातवेग, विशाचक्षु, निमिथ, विष्णुधर्मा परिवर्ह, हरि आदि हुए।[२] गरुड़ों का मुख्य स्थान गरुड़धाम था, जो अब गरडेशिया कहाता है।[३]

महाभारत में नागों और गरुड़ों के कुछ संकेत हैं।

नागों ने गरुड़ों को जीत कर अपना दास बना लिया था।[४] धीरे धीरे गरुड़ों ने अपनी शक्ति बढ़ा ली जिससे देव भी डर गए।[५] पीछे गरुड़ों का सगोत्र अरुण देवों के पक्ष में हो गया।[६] गरुड़ नागों के दास थे। वे आज्ञा पाकर नागों को समुद्र के बीच द्वीप में ले गए जो नागों का देश था। इस द्वीप का नाम रमणक था। गरुड़ों ने समुद्र वासी सदस्य मल्लाहों का नाश किया, जो निषाद थे।[७] गज और कच्छप टाटाम जातियों के द्वेष से गरुड़ों ने लाभ उठाया और उन्हें नष्ट कर दिया। गरुड़ सुमेरु शिखर या अलम्ब तीर्थ में देव वृक्षों तक पहुँच गए। यहाँ इन्द्र से अपमानित बालखिल्य मिले, जिन्होंने गरुड़ों को सहायता दी।[८] देवों और सुपर्णों में युद्ध हुआ, गरुड़ों के प्रहार से साध्य और गन्धर्व पूर्व दिशा की ओर भाग गए। वसु, अश्वकन्द्र, रेणुक, क्रथन, तपन, उलूक, श्वसन, प्ररुज, पुलिन से गरुड़ों के युद्ध हुए। गरुड़ों ने उन्हें परास्त किया। इसके बाद गरुड़ों ने नागों को विजय किया। यहाँ विष्णु और नागों में संधि हुई। देवों ने दब कर गरुड़ों से संधि की। संधि में दोनों ने नागों का साथ छोड़ दिया। गरुड़ नागों की दासता से मुक्त हो गए।[९]

२—आदित्यों का देवकुल

मारीचि कश्यप की द्वितीय पत्नी अदिति से बारह पुत्र हुए जो आदित्य कहाए। इनके कुलों का संयुक्त नाम भी आदित्य कुल प्रसिद्ध हुआ। इनमें वरुण

---

[१] देखिए विष्णु पुराण अदिति प्रसंग।
[२] महाभारत—उद्योग पर्व—अ० ९८।
[३] देखिए विष्णु पुराण अदिति प्रसङ्ग।
[४] महाभारत आदि प० १६ वाँ अध्याय
[५] महाभारत ,, ,, २३ वाँ अध्याय
[६] महाभारत ,, ,, २४ वाँ अध्याय
[७] महाभारत ,, ,, २८ वाँ अध्याय
[८] महाभारत ,, ,, ३० वाँ अध्याय
[९] महाभारत ,, ,, ३४ से ३७ तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सब से ज्येष्ठ थे। और विवस्वान सब से छोटे। विवस्वान ही का नाम सूर्य या विष्णु था।

प्रलय के बाद—प्रलय में फारस की खाड़ी और काश्यप सागर के बीच का समूचा भू प्रदेश जलमग्न हो गया था। कुछ भाग जो समुद्र तल से १६ हजार फुट ऊँचे थे; वहाँ सम्भवतः जल नहीं पहुँचा था; परन्तु वृक्ष वनस्पति सब वहाँ की भी नष्ट हो गई थीं। मनुष्य और पक्षी भी सब नष्ट हो गए थे। पैलेस्टाइन का वह भाग जो फारस की खाड़ी के पच्छिम दक्षिण में है–समुद्र तल से केवल ६ हजार फुट ऊँचा था, वह सर्वथा जल मग्न हो गया था। वहाँ बसने वाली अरर्राट जाति नष्ट हो गई थी। यह जाति महाराज अत्यराति जानन्तपति की वंशज थी। यह सारा प्रदेश मृत्युलोक बन गया था।

शतपथ ब्राह्मण तथा मत्स्य पुराण में वर्णित प्रलय कथा के अनुसार मनु के हाथ एक मत्स्य लगी, जिसने उसकी रक्षा की। यह मनु मन्यु-अभिमन्यु या उसका कोई वंशधर था। बाइबिल उसे नूह कहती है। अवस्ता में भी उसका नाम नूह दिया है, जो मनु का विकृत रूप है। बैबिलोन की दन्त कथा के अनुसार प्रलय के प्रथम बैबिलोन में मत्स्य जाति के लोगों का निवास था। यह जाति और भी प्राचीन काल से वहाँ रहती थी। प्रलय काल में इसी जाति के किसी नेता से मनु ने सहायता ली होगी।

आर्यवीर्यान (AZERBEIJAN)–मनु ने मत्यराज की सहायता से जल प्रलय से बच कर जहाँ शरण पाई वह स्थान आर्यवीर्यान के नाम से विख्यात हो गया। क्योंकि फिर आर्यों के वंश के मूल पुरुषों की उत्पत्ति वहीं हुई। इसी स्थान को 'आर्यनम बीजे' या 'अजरबेजान' कहते हैं। यह आधुनिक आरमीनिया प्रान्त है। आजकल अजरबेजान रूस का सीमान्त इलाका है।

सुषा—मन्यु ने सुषा नगरी बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाई थी। पुराणों और पर्शिया के इतिहास में इस पुरी का बड़ा वैभव वर्णन है। यह प्रसिद्ध नगरी बेरखा नदी के तट पर थी, जो उस समय सभ्यता का केन्द्र थी। सम्भवतः सुषा तक समुद्र का जल नहीं पहुँचा था। परन्तु फिर भी प्रलय के बाद वह उजड़ गई थी। बहुत लोग मर गए थे, शेष उसे छोड़ कर भाग गए थे। इस उजड़ी नगरी पर धूल के स्तर जमते चले गए। कालान्तर में जो पाँच फुट मोटे हो गए। पाश्चात्य इतिहासकार इसे संसार की प्राचीनतम नगरी कहते हैं।[३]

---

[१] देखिए, जेनेसिस।

[२] देखिए H. P. Vol. 1, 101 आदि। तथा विष्णु पुराण।

[३] कुछ दिन पूर्व वहाँ की खुदाई हुई थी उसमें ८ हजार वर्ष पूर्व की वस्तुएँ मिली हैं।

सुषा नाम पुरी रम्या वरुणस्या विधीमतः (मत्स्य पु० अ० १२३, २४, २५)

Susa or Shush or the city of Memnon the ancient capital of Elam and the oldest known site in the world. (H. P. Vol. 1. 59

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वरुण-ब्रह्मा—सुषा नगरी उजाड़ और वीरान बहुत दिन तक पड़ी रही। उस पर धूल का पाँच फुट ऊँचा स्तर जम गया। इस समय तब स्वायम्भुवमनु के अन्तिम प्रजापति दक्ष का अधिकार समाप्त हो चुका था और दक्ष की पुत्री अदिति का पुत्र वरुण सूर्य का सबसे बड़ा भाई सुषा नगरी में आया। उसने उसे खुदवाकर साफ किया। नीची ऊँची भूमि समथर की। रुके हुए जल को नहरें खोद कर समुद्र में बहा दिया, तथा सुषा नगर और प्रदेश तथा मेसोपोटामिया में आदित्यों की बस्तियाँ बसाईं। एक बात ध्यान रखने योग्य है कि जिस प्रकार आगे चल कर सूर्य कुल ने आर्य जाति का निर्माण किया, उसी भाँति वरुण ने सुमेर जाति का निर्माण किया। यह सुमेर जाति सुमेरु सभ्यता प्रसारक और ईरान की प्राचीन शासक हुई।[1]

पाश्चात्य जन वरुण को 'लार्ड क्रियेटर' कहते हैं। जिसका अर्थ है देव-कर्ता-ब्रह्मा। अवस्ता में उन्हे उरमज्द कहा गया है। इलोहिम-इलाही भी वरुण ही का नाम है, इलाही या इलोहम का अर्थ है—इलावर्त के उपास्य देव—वरुण। शतपथ ब्राह्मण में तथा जैनेसिस इतिहास में समान रूप से कहा गया है, कि वरुण देव ने पृथ्वी और आकाश को सम किया था। वरुण ने प्रलय के रुके हुए जल को समुद्र में नहरें खुदवा कर बहा दिया, समुद्रों की सीमा बाँधी, जल को अधिकार में किया। पृथ्वी को सूखी, सम और उपजाऊ बनाकर उसमें बीज बोए। इसी से वरुण को जलों का देव कहते हैं।[2]

---

[1] संसार के प्रसिद्ध पुरातत्व विद् डा० फ्रैंक फोर्ट लेंग्डन आदि का कहना है कि प्रोटो-इलामाइट सभ्यता का ही का विकसित रूप सुमेरु सभ्यता है। प्रोटो-इलामाइट जाति प्रलय के कारण स्वदेश चली गई, जहाँ उसकी सभ्यता का विकास हुआ। इस विकसित सभ्यता का नाम ही सुमेरु सभ्यता है। सुमेरु जाति फिर प्रोटो-इलामाइट लोगों के विकास स्थान पर इलाम और मेसोपोटामिया में जा बसी। परन्तु प्रोटो-इलामाइट जाति का स्वदेश कौनसा था, और वह प्रलय के बाद कहाँ चली गई तथा वहाँ से फिर सुमेरु सभ्यता को लेकर मेसोपोटामिया में आ गई। यह बात संसार के पुरातत्वविद् नहीं जानते हैं। परन्तु इस प्रश्न का उत्तर हमारे पुराणों में है, वह यह—कि जिसे प्रोटो-इलामाइट जाति कहा गया है—वह चाक्षुष मनुर्भरत जाति थी, जिसके छः महारथियों ने बिलोचिस्तान, ईरान होते हुए इलाम और मेसोपोटामिया को जय करके अपने राज्य स्थापित किए थे, तथा वह भारत ही के दक्षिण पश्चिमी इलाके में उससे पूर्व विकसित हुई थी। एवं सुमेरु सभ्यता के संस्थापक—एक प्रकार से नई सृष्टि रचने वाले सूर्य के बड़े भाई वरुण देव थे, और वही पुराणों में ब्रह्मा के नाम से विख्यात हैं। पुनः सृष्टि रच कर उन्होंने ब्रह्मा की उपाधि पाई और जलों को नियमन करने से वे जल के देवता प्रसिद्ध हुए।

[2] आदित्यश्चाहि भूतस्वात् ब्रह्मा ब्रह्म पठन्नभूत्। दिवं भूमि समं करोत्त दण्डशकल द्वयम्। मत्स्य पु० अ० १।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन दिनों फारस और अरब के बीच का सारा इलाका सुषा स्थान कहाता था। इसी से छल देश या चाल्डिया भी कहते थे। नवीन सृष्टि रचने और देवों का आदित्यों का ज्येष्ठ होने से वरुण को ब्रह्मा कहा गया है, तथा जल का विभाजन करने से नारायण कहा गया है। जल को संस्कृत में नारा भी कहते हैं, श्रीनार–क्षीर सागर, सिरी का समुद्र, पर्शिया की खाड़ी और उरमज सागर का नाम था। मत्स्य पुराण के अनुसार ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड के (अपने राज्य के) दो खण्ड किए। एक ऊपर का–पार्वत्य देश खण्ड, दूसरा नीचे का–भूमि खण्ड। ऊपर का खण्ड स्वर्ग और नीचे का भूमि कहाया। ठीक यही बात जैनेसिस आदि पाश्चात्य पुराण शास्त्र भी कहते हैं।[1] अवस्ता में जो वरुण को 'उरमज्द' कहा गया है यह 'उरमहाध्ये' का बिगड़ा नाम है, जो पुराणों में आया है। पुराणों में 'ब्रह्म संकट' का उल्लेख है। यह वह घटना है जब ब्रह्मा ने जलों को समुद्रों में विभाजित किया। जैनेसिस कहता है—इलाही ने कहा–जल से जल पृथक होने चाहिएँ।[2] इसके लिए एक शब्द है—'ORDEAL'। कोष में इसका अर्थ है जल और अग्नि की परीक्षा।[3] जैनेसिस कहता है, इलाही ने कहा—स्वर्ग के जलों को एक जगह एकत्र होने दो, और शेष पृथ्वी को सूखने दो।[4]

प्राचीन ईरानी इतिहासकार और अवस्ता दोनों में स्वीकार किया गया है कि वारुण लोग वरुण को ही सृष्टि का रचियता मानते हैं। प्राचीन ईरान के कापाडोसिया प्रान्त में इन्द्र और वरुण की शपथ के लेख मिले हैं। वरुण के इस

---

1. 'The next act of the Deity was to make a division (ordeal). This operation divided the waters into two parts as well as into two states.' (Genesis Ch. 1. Verse 6, Turner's History p. 25)

2 Elohim said—'Let there be a firmament in the midest of waters and let it divide the waters from the waters.' (Genesis Ch. 1, Verse 6—Turner's History, p. 30)

3 Ordeal=Proper division by Ur. Trial by fire and water (अंग्रेजी कोष)

4 Elohim said—'Let the waters under the Heavens be gathered together into one place and let the dry land appear.' (Turner's History Ch. 1, Genesis) 'God made man out of the water' (Turner's History)

'The earth was without form and void and darkness was upon the face of the deep ocean the Spirit of God (Elohim) moved upon the surface of the waters. (Mosaic Narrative).

'Water preceded. Light descended when ordered by the spirit of the Creator.' (Moses)

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

समूचे साम्राज्य का नाम पहिले अमर देश था और सुषा का नाम अमरावती भी था. अब भी वहाँ के प्राचीन अमरों के वंशधरों की अमरेह जाति बसती है। पीछे मनु पुत्री इला के नाम पर इस देश का नाम एलम या इलावर्त हुआ। आजकल यह इलाका किरमान इलाका कहाता है। यहीं पर सुमेरू सभ्यता का केन्द्र सुमेरु राज्य था। जैनेसिस इसे शीनार भूमि या शीशनान कहता है।[1] पुराणों में इसे श्रीनार लिखा है। जोरास्टर वरुण के उपासक थे। इनके काल में पर्शिया में वरुण ही महाराज, महाउपास्य देव, विधाता समझे जाते थे। ईरानी इतिहासकार इसी धर्म को अनइटारियानिज्म कहते हैं।

ऋग्वेद में भी वरुण के शासन की प्रशंसा हैं।[2] अन्यत्र भी मित्र वरुण के प्रति पूज्य भाव दर्शाया है[3]

३—वरुण का वंश

वरुण-ब्रह्मा के पुत्र अंगिरा और भृगु हुए जो वेदर्षि और याजक कुलों के संस्थापक हुए। अंगिरा का कुल देवयाजक हुआ और भृगु का कुल असुर याजक। यहाँ इनका वंश वृक्ष देते हैं—

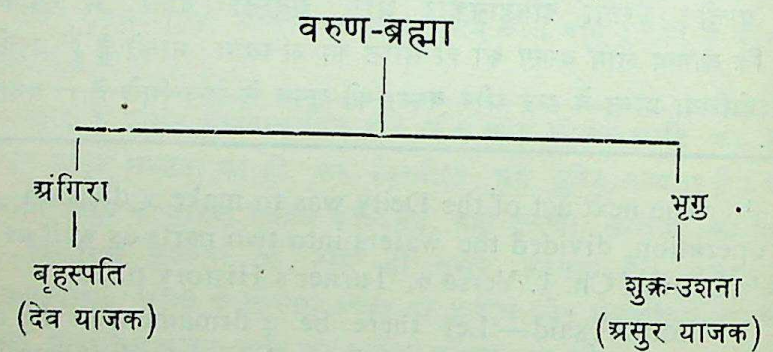

---

[1] The Ocean of Siri=The Persian Gulf. The sea of Ormaj Biremah (ब्रह्म) Shrinar (श्रीनार)

(जेनेसिस, अवेस्ता व पुराणों के संयुक्त पाठ से निश्चय होता है कि सुमेरु का प्राचीन नाम 'भूमि' था। इसे श्रीनार या शीनार भूमि कहा गया है)

[2] **तन्नो मित्रो वरुणो माम हन्ता यदितिः सिन्धुः पृथिवी उतद्यौः। ऋग्वेद प्रथम अष्ठक अध्याय ७।**

[3] **शंन्नो मित्रः शंवरुणः शंनो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो वृहस्पतिः शन्नो विष्णु सरुक्रमः। (ऋ० १।१।५६।४।६०।९)**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भृगु वंश और दैत्य गुरू शुक्राचार्य

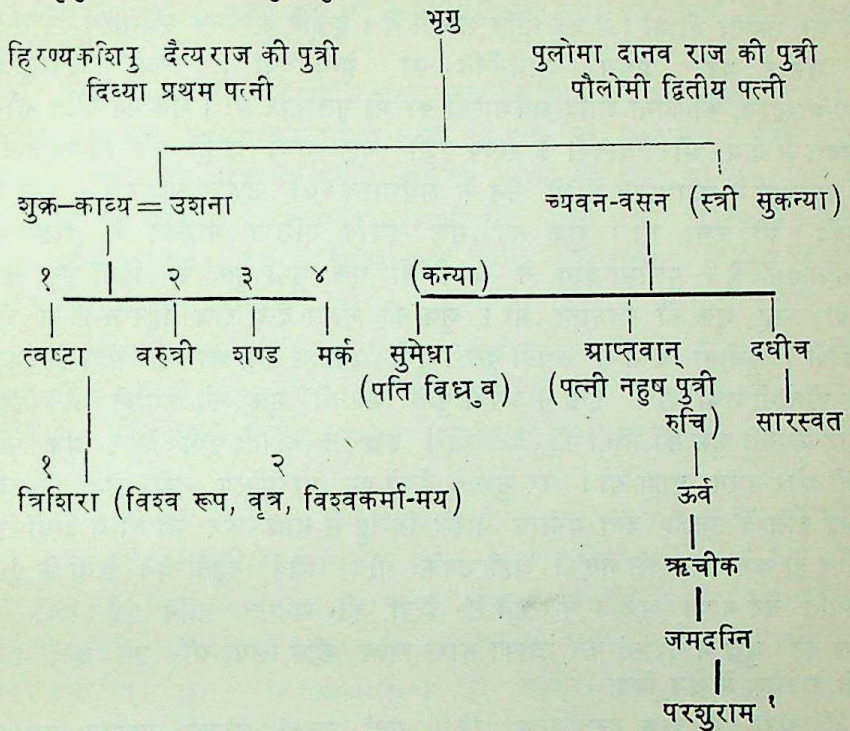

भृगु—पुराणों में भृगु को ब्रह्मा का मानस (माना हुआ) पुत्र कहा है, एशिया माइनर के टेबुललैंड को जो बहुत ऊँचाई पर है—भृगु (BRYGY) कहते हैं। यही भृगु का स्थान था।[२] यदि आप एशिया के मानचित्र पर ध्यान दें तो आप देखेंगे–कि देव-प्रदेश (स्वर्ग लोक) भारत के उत्तर पूर्व में हिमालय में था, और दैत्य-प्रदेश उत्तर पच्छिम में। यह उत्तर पच्छिम का भाग ही इलावर्त कहाता था। आधुनिक दृष्टि से गिलगित के समीप का देश, एशियाई रूस का दक्षिण पश्चिम भाग और ईरान का पूर्वी भाग इलावर्त के अंग थे। इन देशों में दक्ष पुत्री और कश्यप पत्नी दिति और दनु की सन्तानें बस रहीं थीं। तथा देवलोक में अदिति की। इसी इलावर्त के बटवारे के लिए देव-दैत्य दानवों में बारह दारुण देवासुर संग्राम हुए। भृगु की एक पत्नी दैत्यपति हिरण्यकशिपु की पुत्री दिव्या थी, दूसरी पुलोम दानव की पुत्री पौलोमी। दिव्या को विष्णु (सूर्य) ने किसी कारणवश मरवा डाला था। इस पर क्रुद्ध हो भृगु ने विष्णु को लात मारी थी।

---

[१] यह वंशवृक्ष वायु पुराण ६५।९०।९१।६५।७२।९४।६०।२६ के अनुसार है। इसमें प्रमुख पुरुष ही का अनुक्रम है। अप्रसिद्ध व्यक्ति छूट गए हैं।

[२] देखिए पर्शिया का प्राचीन इतिहास।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शुक्र-उशना-काव्य—भृगु पुत्र शुक्र दैत्य दानव याजक थे।[1] इनका नाम काव्य भी था, ऊशना भी था। ये बड़े नीति शास्त्री थे। इन्होंने औशनस अर्थशास्त्र रचा। जो संसार का प्रथम राजनीति का ग्रन्थ था।[2] यही अर्थशास्त्र द्रोण-भारद्वाज, कौणपन्त आदि अर्थशास्त्रों का भी मूलाधार था। शुक्र की नीति और बुद्धिबल से दैत्य और दानवों के राज्य बढ़ते गए तथा उन्हीं की विजय होती गई। व्यास ने महाभारत में भी उन के अर्थशास्त्र को उद्धृत किया है। इन्होंने धनुर्वेद भी रचा था। शुक्र का मूल स्थान एशिया माइनर में गुरुद्वारम् (Gordium) है। पुलोमा दैत्य ने अपनी जो एक पुत्री शुक्र के पिता भृगु को दी थी; वह शुक्र की विमाता थी। शुक्र की माता दैत्य राज हिरण्यकशिपु की पुत्री थी। पुलोमा दैत्य ने अपनी दूसरी पुत्री देवराज इन्द्र को दी थी। जिसका नाम पौलोमी शची था।[3] इन्द्र ने अपनी पुत्री जयन्ती शुक्र को व्याही थी। इस प्रकार जयन्ती शुक्र की मौसी की बेटी थी। इन्द्र ने अपनी पुत्री देकर शुक्र को अपनी ओर करना चाहा था। पर शुक्र ने दैत्यों का पोरोहित्य नहीं छोड़ा।[4] बाद में जब बलि ने उनकी बात अमान्य करके विष्णु से संधि कर ली तो वे दैत्यों से नाराज हो कर अरब चले गए[5]। वहाँ उनके पौत्र 'और्व' रहते थे। दैत्यों के गुरु वृहस्पति बन गए। शुक्र के न रहने से दैत्यों की अत्यन्त हानि हुई। देवों ने बालि को युद्ध में परास्त कर उसका सारा राज्य छीन लिया और उसे बन्दी कर नागों के लोक में भेज दिया।

अरब में शुक्र दस बरस रहे। यहाँ उनका अत्यन्त सम्मान हुआ। यहाँ का प्रसिद्ध मन्दिर 'काबा' वास्तव में—काव्य शुक्र ही का मन्दिर है। 'काबा' शुद्ध 'काव्य' का भ्रष्ट रूप है। यही कारण है कि 'शुक्र' का अर्थ जुम्मा (बड़ा) किया जाता है तथा—शुक्रवार को पवित्र दिन माना जाता है।[6]

---

[1] वृहस्पति देवानां पुरोहित आसीत् उशना काव्योऽसुराषाभू। (जैमिनिय ब्रा० ०१–१२५।तादडय ब्रा० ७।५।२०

[2] इस अर्थशास्त्र का उल्लेख चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में किया है। देखिए कौटिल्य—अ० व्यवहारापयास।

[3] Siwas in Asia Minor Gordim (H. P. Vol. 11, 55.)

[4] बौधायन श्रोत सूत्र १७।४६।

[5] देखिए मत्स्य पुराण में यही प्रसंग।

[6] मुसलमानों के रसूल मुहम्मद ने जब मक्के पर आक्रमण किया था तब वहाँ वृहस्पति (Jupiter), मंगल (Mars), अश्विनी कुमार (Yank or Hors), गरुण (Nasr-Eagle), नृसिंह (YagGuth) की मूर्तियाँ थीं। एक मूर्ति 'बलि' की थी जिसका एक हाथ सोने का था जो दानी होने का प्रतीक था। इसका नाम Holul था; जिसके सम्बन्ध में कहा गया था कि वह प्रथम Syria के Belka के स्थान में थी। यह मूर्ति अब्राहम और इस्माइल की मूर्ति के बराबर रखी थी मुहम्मद नें इन सब मूर्तियों को तोड़ कर फेंक दिया (देखिए—मुहम्मद एण्ड दि ब्लेक स्टोन H. P. Vol. 11)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिकांश देवासुर संग्राम अरब की भूमि में हुए थे। उस काल में अरब व्यापार केन्द्र था। शुक्र ने यहाँ रह कर महिदेवों की स्थापना की, और युद्धों की समाप्ति की। इससे शुक्र की बड़ी प्रतिष्ठा हुई और उसे जुम्मा-आरूबा की उपाधी दी गई।[1]

अंगिरा का वंश—वरुण के दूसरे पुत्र अंगिरा के पुत्र वृहस्पति देवों के याजक बन गए। इस समय कदाचित् वरुण की मृत्यु हो चुकी थी, और उनकी मृत्यु के बाद एक तेजस्वी युवक इन्द्र पद ग्रहण कर देवों का नेता बन गया था। अंगिरस वृहस्पति ने इसे बहुत सहायता की, और इसके नेतृत्व में देवों का बहुत उत्थान हुआ। देवों की शक्ति बढ़ने लगी और देवलोक में भृगु के स्थान पर अंगिरा का वंश प्रधान हो गया।

अग्नि पूजन—यद्यपि भृगु पुत्रों के दोनों वंश प्रथक् हो गए थे, तथा उनके आचारों में भी अन्तर आ, गया था पर भृगु ने जो अग्नि पूजन का प्रारम्भ किया था—वह दोनों वंशों ने अपनाया। प्रसिद्ध है कि मनुष्यों में भृगु ने अग्नि धारण की।[2]

अत्रि–अत्रि चन्द्र वंश के आदि पुरुष हैं जो प्रजापति थे। ये भृगु पुत्र शुक्र के पुत्र थे।[3] इनका अधिकार आत्रेय देश था।[4] जो 'परेणहिमवतम्' अर्थात् हिमालय के उस पार था। यह स्थान अजरबेजान के निकट अपवर्त में अत्रिक (Atrek) नदी के तीर पर 'अत्रिपत्तन' (Atropatene) था।[5] इसी स्थान को ईरानियों का स्वर्ग कहा गया है।[6] (Atropatene) ही आत्रेय भूमि थी। इसी भूमि को तपोभूमि भी कहते थे। यहाँ रात दिन प्रकाश रहता था।[7] ईरान का यह तपूरिया प्रान्त, जिसे पुराणों में तपोभूमि कहा गया है, देमावन्द पर्वत के अञ्चल में हैं, जहाँ रात दिन प्रकाश रहता है।[8] पुराणों का कथन है कि

---

1 Aruba or Juma or Friday Day of Aruba Friday.

२ ऋ० १।१।४।११।५८।६।

३ महा० आदि ५९। ३५। ३६

4 अत्रयोऽथ भरद्वाज प्रस्थलाः सदसेरकाः। एतेदेशा उदीच्यास्तु।
मत्स्य पुराण अ० ११३। ४२, ४३।

५ मत्स्य पुराण अ० ११८। श्लोक ६१, ७६

Atropatene or Azerbazan and the Atrek river on the bank of the Caspian Sea (H. P. Vol. 1. P. 319, 332)

6 Aryanem-Vaejo or the Lost Home or Terrestrial Paradise (H. P. Vol. 1. P. 101)

७ 'तथापि दिवसाकारं प्रकाशं अहर्निशिम्। (मत्स्य पु० अ० ११८। श्लोक ६१, ७६)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह सब कामनाओं की देने वाली भूमि, कामधेनु गौ थी।[1] यहीं सुर तरु 'कल्प वृक्ष' थी।[2] यही स्थान लक्ष्मी का जन्म स्थान था।[3] यहीं अत्रिक नदी है। यहीं अत्रि गोत्र के लोग बसते हैं।

अत्रि का वंश वृक्ष इस प्रकार है—

अत्रि (असुर याजक)
|
चन्द्र (सोम) (जिनके नाम पर चन्द्र वंश चला)[4]
|
(मन्त्रदृष्टा ऋषि) बुध—(पत्नी इला—मनु पुत्री)
(ऋ० १०।९५) |
(मन्त्रदृष्टा ऋषि) पुरूरुवा
(ऋ० १९।९५)

वसु—वसु से यम को आठ पुत्र हुए। वे आठ वसु कहाए। अग्नि को वसुओं की कोटि में माना तो गया है, पर वे देवों से पृथक थे। इसी से इनके परिवार मिस्र, ग्रीस, और असुर प्रदेशों में रहे।[5] अग्नि वंश आठ वसुओं में था, उसका पृथक अग्नि वंश चला जो इतिहास में आस्ट्रिक वंश प्रसिद्ध है।

शिव-शङ्कर-रुद्र—आठ वसुओं में ज्येष्ठ धर थे। धर के पुत्र रुद्र हुए। जो देव-दैत्य पूजित महाबली दुर्धष देव हैं। रुद्र के कुल ग्यारह कुल चले। इन ग्यारह कुलों के प्रवर्तक (१) अज-एकपात, (२) हर-अहिर्बुध्न्य, (३) विरूपाक्ष (४) त्वष्टा, (५) वीरभद्र (६) भैरव, (७) हर-महेश्वर (शिव), (८) त्र्यम्बक, (९) सावित्र (कपाली), (१०) शम्भु और (१२) शर्व (पिनाकी)।[6]

---

[1] **तदा शुभं मनोहारि यत्र कामधरा धरा।**
सुर मुख्योपयोगित्वात् शाखिनां सफलाः फलाः।
(मत्स्य अ० ११७। श्लोक ७१)

[2] The Iranian Paradise—This mysterious mountain rises from the earth above the stars into the sphere of endless light, to the Paradise of Ahura Mazda. "The abode of Song". It is the mother of Mountains (The Demavand) with the summit bathed in everlasting glory, where there is no night, no sickness. The summit is touched with the flame. (H. P. Vol. 1. 117)

[3] A little further west, just within the limits of Iran, lie the rich valleys of the Atrek forms the Russo Persian boundry until it discharges into the Caspian Sea. (H. P. Vol. 1. P. 328, 329)

[4] **राज्ञः सोमस्य पुत्रत्वाद्रारपुत्रो बुध स्मृतः। मत्स्य पु० अ० ३४**

[5] **देखिए पर्शिया का प्राचीन इतिहास** Vol. 1. १४६, १४७।

[6] **मत्स्य पुराण श्रीमद्भागवत, स्वायंभुवमनु प्रकरण।**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रुद्र के चार स्थान प्रमुख हैं। प्रथम मूल स्थान मूञ्जवान पर्वत, हेमकूट (हिन्दुकुश) का प्रत्यन्त पर्वत, जो सफेद कोह (श्वेतगिरि-धवल) से भी उत्तर में है। यहाँ ही सोम होता था। इसी के पूर्व क्रौंचगिरि है जिसे 'काराकुरम' कहते हैं। इसी का विवरण कुमार कार्तिकेय ने किया था। उमावन-शरवन इसी के निकट है। यहाँ से आगे की वायु अति प्रचण्ड हैं, इसी से रुद्र को तूफानों का देवता कहा गया है। दूसरा भद्रवट, कैलाश के पूर्व की ओर लौहित्यगिरि के ऊपर। उसके नीचे ब्रह्मपुत्र नदी बहती है। तीसरा कैलाश, हिमांचल प्रदेश का मानसरोवर के निकट का स्थान।

पर्शिया के एक प्रान्त में 'शंकरा' नामक एक जाति अब भी निवास करती है। पुराण में रुद्र को मरुद्गणों का पूर्वज माना है, तथा रुद्र को वृषभ के समान शक्तिवान् तथा दुर्धर्ष तेज वाला कहा है। ऋग्वेद से ध्वनित होता है कि उसके होठ सुन्दर थे, रंग बादामी था, सिर पर वह बड़े-बड़े बाल रखता था, शरीर उसका सूर्य के समान दैदीप्यमान था, वह प्रचण्ड धनुर्धर था। शूल उसका प्रधान शस्त्र था।

शिव-पूजन—असीरिया के फ्रीजिया देश में 'सेवा' या 'सेर्वाजिय' नामक देवता की उपासना होती है। वहाँ तथा मिस्र में भी 'सेवा' देवता के साथ सर्प का सम्बन्ध जोड़ा गया है। अमेरिका के पेरू देश में 'सिवु' नाम का देवता पूजा जाता है। यह सब शिव की ही पूजा है। पैलस्टाइन देवों का 'पाल' स्थान था जो दैत्यों ने छीन लिया था। उसी के उद्धार के लिए शिव ने त्रिपुर युद्ध किया था। डैड सी (मृत्यु सागर) वह स्थान है; जहाँ पर त्रिपुर के मृत वीरों को जल प्रवाह किया गया था। भूमध्य सागर में यवन सागर है जिसके तट पर वह प्रसिद्ध पुरी त्रिपुरी थी। इसे ही शिव ने ध्वस्त किया था। अब भी इस स्थान पर त्रिपोली नगर और प्रान्त है जिसमें 'सिव' नगर भी है।[1] त्रिपोली मिस्र के पच्छिम उत्तर में प्रमुख नगर है। सब जानते हैं कि त्रिपोली प्रदेश का एक भाग सिरटियन सागर में जलमग्न है। कुछ दिन पूर्व इस जलमग्न स्थान की जाँच पड़ताल की गई थी।

अफ्रीका का प्राचीन नाम शिवदान (Sudan) है। मिस्र का प्राचीन नाम 'शिवदेश' (औसिस आफ शिव) था। यहीं के राजा पीछे महिदेव (प्राइस्ट-किंग्स) कहलाने लगे थे।

रुद्र के दादा यम यद्यपि आदित्य थे, तथा वेदर्षि भी थे परन्तु उन्होंने आर्य संस्कृति स्वीकार नहीं की। न वे आदित्यों में ही सम्मिलित हुए, न देव कहलाए। देव-दैत्य-दानवों से उनके समान भाव वरुण की भाँति रहे। परन्तु आदित्य-देव यम को अपना पूज्य कुटुम्बी समझते मानते थे। यदाकदा देवों में भी गणना करते थे। उनकी सन्तान आठों वसु भी अर्द्ध देव माने गए।

---

[1] देखिए एशिया और अफ्रीका का नक्शा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रुद्र भी देवों से प्रथक् रहे। देवों की भाँति ही दैत्यों से भी उनका सद्भाव रहा। उनके तेज और प्रभाव से सभी प्रभावित थे। बलि पुत्र वाण से उनका मैत्री भाव था। बहुत दिन वे उसकी नगरी-वन में रहे थे। देव लोक जिन्हें असुर कहते थे वे भी रुद्र के दर्बार में अभय पाते थे। वे बड़े धनुर्धारी थे। नागों के रक्षक थे। उन्हें चोरों, डाकुओं और व्रात्यों का त्राता कहा गया है। उनसे देव, दैत्य, दानव सभी भय खाते थे। संकट काल में देव, दानव, दैत्य नाग सभी रुद्र की शरण लेते थे। वे नाद विद्या के भी आगम थे। डमरू उनका वाद्य था। अक्षर समाम्नाय सब से प्रथम उन्हीं ने प्रादुर्भूत किया, सब से प्रथम उन्हीं ने वाणी को उद्घोषित किया। काम विज्ञान के भी वे आचार्य थे। उन्होंने एक कामशास्त्र रचा था। उन्हें कामजयी कहा गया है।

यज्ञ भाग विरत—देव उनसे भय खाते तथा उनका आदर तो करते थे; पर उन्हें यज्ञ भाग नहीं देते थे। देव न यम को न रुद्र को अपनी पंक्ति में बैठाना पसन्द करते थे। कहा जाता है कि दक्ष ने रुद्र को भी एक कन्या दी थी। परन्तु सम्भवतः रुद्र दक्ष के जामाता नहीं दोहित्र थे। क्योंकि रूद्र की दादी वसु यम की पत्नी दक्ष पुत्री थी। जो हो, दक्ष रुद्र को नहीं चाहते थे। रुद्र ने वेद की रचनाएँ रची थीं पर वे स्वयं वैदिक न थे। ग्यारह रुद्र परिवारों की उनकी प्रथक परम्परा थी। उनके समर्थक उन्हें देवाधिदेव कहते उनके आत्मयज्ञ का अनुगमन करते थे। उनके इस आत्म यज्ञ के समर्थक एशिया द्वीप में उन दिनों बहुत थे।

दक्ष यज्ञ—यह विरोध भावना चल ही रही थी कि दक्ष ने यज्ञ किया। यज्ञ में देव, पितर, ऋषी, नाग, वारुण आदि युग पुरुष आए। अत्रि, पुलह, क्रतु, इन्द्र, वशिष्ट भी आए। यज्ञ में वशिष्ट होता, अंगिरा अध्वर्यु, बृहस्पति उद्गाता और नारद ब्रह्मा हुए। आठों वसु, बारहों आदित्य, दोनों अश्विनी कुमार, उनन्चास मरुद्गण भी बुलाए। भारी समारोह हुआ। इसकी जनभूमि में यह यज्ञ समारोह हुआ। उन दिनों यज्ञों में ही देवों के दाय भाग का बटवारा हुआ करता था। यज्ञ भाग पाकर ही देव अपना निर्वाह करते थे। परन्तु इस यज्ञ में प्राचेतस ने रुद्र को नहीं बुलवाया। मुख्य अभिप्रायः यह था कि उन्हें यज्ञ भाग न मिले। देवों में यौथ समाज था। प्रथक सम्पत्ति किसी की न थी। यज्ञ समारोहों में एकत्र सामग्री यज्ञ भाग कहकर बाँटी जाती थी। रुद्र को न बुलाने का अभिप्राय था उन्हें उनके भाग से वंचित करना। पर उनकी पत्नी वहाँ बिना ही बुलाए गई। उसने जब पूछा कि आपने मेरे पति को क्यों यज्ञ भाग से विरत किया, तो दक्ष ने कहा, 'रुद्र वैदिक मर्यादा नहीं मानते, देवों को कुछ नहीं समझते। त्रिशूल और दण्ड धारण करते हैं। आत्म यज्ञ का प्रचार करते हैं, नागों को साथ रखते हैं। उनके गणों में चोर भी हैं, डाकू भी। उनका आचरण अभद्र है। वे कैसे देवों की पंक्ति में बैठ सकते हैं।'

रुद्र की पत्नी यज्ञ में पति के तिरस्कार से खिन्न हो यज्ञ कुण्ड में कूद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर जल मरी। इस पर क्रुद्ध हो रुद्र ने गणों को भेज दक्ष यज्ञ विध्वंस कर दक्ष को मार डाला।

कैलसवास— इसके बाद वे मरुद्गणों के साथ चले गए। मरुत वर्तमान समरकन्द या बिलोचिस्तान के आस पास कहीं रहते थे। उनके क्रोधी स्वभाव के कारण सब देव दैत्य उन्हें संहार का देवता मान बैठे। बाद में उन्होंने हिमाचल की राजकन्या पार्वती से ब्याह किया और हिमालय में शान्त भाव से रहने लगे। देवी पार्वती से उन्हें दो पुत्र हुए। एक गणपति, दूसरे कुमार कार्तिकेय। तभी से कदाचित उन्हे शिव माना गया।

४–सूर्य, विष्णु, विवस्वान्

परिवार—बारह आदित्यों में सूर्य सब से छोटे थे। उनका नाम विवस्वान विष्णु, मित्र, दमित्र आदि भी वेदों और पुराणों में है। भृगुवंशी असुर याजक शुक्र उशना के पुत्र त्वष्ठा ने, जो विश्वकर्मा भी कहाता था—अपनी पुत्री रेणु सूर्य को विवाही थी। रेणु का नाम संज्ञा भी था तथा घुड़सवारी की शौकीन होने से उसे अश्विनी नाम से भी पुकारा जाता था। वह रूपवती भी थी और रूपगर्विता भी। विवस्वान का रङ्ग श्याम था और वह सुन्दर भी न था। इससे वह मानिनी सदैव उसका तिरस्कार करती रहती थी। काल पाकर इस स्त्री से सूर्य को एक पुत्र हुआ—उसका नाम मनु रखा गया। विवस्वान के नाम पर वह वैवस्वतमनु भी प्रसिद्ध हुआ। इसके बाद यम और यमी दो जुड़वाँ सन्तान भी उसे हुईं। अभी यह तीनों बालक ही थे कि किसी बात पर बिगड़ कर रेणु पिता के घर गुस्सा करके चली गई।

सूर्य ने तीनों बच्चों को घर की सुन्दरी और मुँह लगी दासी सवर्णा को सौंप दिया। सवर्णा युवती और सुन्दर थी। शीघ्र ही वह विवस्वान की कृपापात्री हो गई, और फिर प्रेयसी बन स्वामिनी की भाँति रहने लगी। समय पाकर विवस्वान से उसके गर्भ में एक पुत्र और दो कन्याएँ जन्मी। पुत्र का नाम शनैश्चर था, कन्याओं का तपती और विष्टि। विमाता द्वारा पोषित होने के कारण मनु को सावर्णि भी कहा गया।

परन्तु सवर्णा सौत के पुत्रों का मन न रख सकी। वह अपने पुत्रों पर अधिक ममता रखती थी। यम उग्र स्वभाव का बालक था। सवर्णा अन्ततः दासी ही थी। एक बार किसी बात पर क्रुद्ध होकर यम ने सवर्णा को लात मार दी। इस पर सवर्णा ने यम की टाँग तोड़ दी। विवस्वान इस गृह कलह से बहुत खिन्न हुए और क्रुद्ध हो रेणु को लेने उच्चैश्रवा पर सवार हो ससुर-गृह—'वन' असुर भूमि में गए।[१] वहाँ उन्होंने रेणु को मलिनवसना, खिन्न, दीन, कृश और जटाधारिणी पाया। त्वष्टा ने दामाद का सत्कार भी किया। पुत्री की उपेक्षा पर उलाहना भी दिया। अन्ततः सूर्य ने रेणु को प्रसन्न कर उसे शृंगार कराया, और उसे उत्तर कुरु के मनोरम प्रदेश में विहार करने ले गए।

---

१ विष्णु पुराण City of Van in Armenia.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आजकल का कुर्दिस्तान आरमीनिया के नीचे का प्रदेश ही उन दिनों उत्तर कुरु कहाता था।[1] विवस्वान का स्वसुर त्वष्टा ही इस रियासत का स्वामी था। यहाँ रेणु सूर्य के उस तेजस्वी अश्व उच्चेश्रवा को देख बहुत प्रसन्न हुई, और उस पर सवार होकर वन विहार करने लगी। विवस्वान उसे चिढ़ाने के लिए हँस हँस कर 'अश्विनी, अश्विनी' कह कर पुकारने लगे। इस प्रकार यहीं उत्तर कुरु में बिहार करते रेणु ने दो जुड़वाँ बालकों को जन्म दिया, जो आगे चलकर अश्विनी कुमार के नाम से विख्यात हुए। ये बड़े वीर योद्धा तथा चिकित्सक एवं ऋषि थे। सुन्दर भी बहुत थे। इन्होंने करन्ध, वय और वशिष्ठ को अपना मित्र बनाया। सुदास को उनकी स्त्री सुदेवी प्राप्त करने में सहायता दी। अंधे और लँगड़े परवृज को चंगा किया। विस्पला की टूटी टाँग अच्छी कर दी। वद्धमती को सोने का हाथ लगा दिया, ऋज्वाश्व के नकली नेत्र लगा दिए। रंभा, नन्दन, कण्व, अन्तक, मज्यु, सुचन्त, प्रश्निगु अत्रि, श्रेतर्य, कुत्स, न्यई, वसु, दीर्घ श्रवस, औजिस, कक्षिवान्, रसा, तृशोक, मान्धाता, भरद्वाज, अतिथिग्व, दवोदास, कशोजु, तृषदस्यु, वभ्र, उपस्तुत, काली, व्यस्व, पृथिराजर्षि, सकु, मनु, सर्यात, विमद, आधिग्र, सूमर, ऋतस्तूप, कृशानु, पुरुकुत्स, ध्वशान्ति, पुरुशान्ति, अम्प्रश्व, च्यवन आदि गण्यमान्य जनों से मित्रता की। दस्युओं से युद्ध किए। यद्यपि ये दोनों अश्विनी कुमार कहाए थे, परन्तु इनके नाम नासत्य और दस्त्र थे।[2]

यम—विवस्वान के दूसरे पुत्र यम माता पिता दोनों की उपेक्षा से खिन्न हो समर्थ होने पर अपने ताया वरुण देव के पास चले गए। अपने शुभाचरण से ये देवों में धर्मराज कहाए। वरुण ने इन्हें पितृ लोक का अधिपति और लोकपाल बना दिया। ये नरक नामक नगर बसा वहाँ रहने लगे। अपवर्त ईरान का एक प्रदेश था जो कलात नादरी के निकट था। आजकल इसे अविवर्द, अवर्द या दोजख कहते हैं। जब यम वहाँ पहुँचे, तब भी वह प्रलय से उजड़ चुका था। वहाँ के सब आदमी मर चुके थे, इससे वह प्रान्त मृत्यु लोक कहाता था, और इन्हें मृतकों का राजा मान लिया गया।[3]

प्रसिद्ध है कि यमी ने यम से रति दान की याचना की थी[4] परन्तु यम ने अस्वीकार कर दिया था।

---

[1] Uttacruras of the Greak Historian, Modern Kurdistan (टाड राजस्थान)

[2] सूर्य वंश का विवरण ब्रह्म ७, २२६ आदि ब्रह्म ७ पद्म सृष्टि ८। विष्णु ४।२। भागवत ९।१।१३।

[3] The hero Yama was held to be the first to show the way to many, and being the first to arrive in "the vasty of death" Yama becomes transformed into the king of the dead. (H. P. Vol. 107)

[4] देखिए यमयमी सूक्त ऋग्वेद १०।१० और अथर्व १८।१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यम यमी सूक्त—ऋग्वेद का यम यमी सूक्त इस घटना पर प्रकाश डालता है। दैत्य कुल में भाई-बहन, माता-पुत्र में विवाह का प्रचलन था।[1] देव कुल में भी प्रायः वैयक्तिक विवाह का रिवाज न था। सारी जीवन प्रणाली सामूहिक थी। सम्पत्ति भी सामूहिक थी। इसलिए यौन-सम्बन्ध भी यौथ था। यह वास्तव में वेश्या वृत्ति न थी, क्योंकि शरीर का क्रेता और विक्रेता कोई न था। यौन सम्बन्ध में कोई रोक टोक न थी। जहाँ पुरुष के लिए योगनी गमन और मातृ गमन भी दोषपूर्ण नहीं माना जाता था, स्त्री के लिए भी भ्रातृ गमन और पितृ गमन में दोष भावना न थी।[2] उस युग में एक गर्भ से होने वाली सन्तान अपने को भाई बहिन करके जान सकती थी, परन्तु एक औरस से उत्पन्न भाई बहिनों का आपस में किसी प्रकार का यौन सम्बन्ध हो सकता था। क्योंकि यह कोई जान ही न सकता था कि कौन किस औरस से उत्पन्न है। यही कारण था कि सन्तान का परिचय माँ के नाम अथवा कुल से होता था। उस युग में देवों और दैत्यों में कोई भी व्यक्ति किसी व्यक्ति का पिता हो सकता था।

---

[1] असभ्य छपिवेन लोग अपनी माता के साथ विवाह करते थे। अर्ध सभ्य अफ्रीका के गेबून (Gaboon) प्रदेश की रानी के पति की मृत्यु होने पर जब उसके हाथ से राज्य निकल जाने की आशंका हुई तो उसने अपने बड़े लड़के के साथ विवाह करके सिंहासन पर अपना दावा कायम रक्खा।

सुसभ्य प्राचीन मिश्र के फराओ अपनी सगी बहिन के साथ विवाह किया करते थे। सभ्य पेरू के रोब्ना इंका के वंशधर छठे अथवा सातवे इंका ने अपना अभिजात्य बनाए रखने के लिए अपने दूसरे पुत्र के साथ अपनी छोटी लड़की का ब्याह करके उसे सिंहासन पर बैठाया था। लंका की भेदा जाति के लोग अपनी छोटी बहिन के साथ विवाह करना अधिक गौरव की बात समझते थे। उस अवस्था में वे समाज में कुलीन समझे जाते थे।

A Mapuchi widow by the death of her husband, becomes her own mistress, unless he may have left grown up sons by other wife, in which case she becomes their common concubine being regarded as a chattle naturally belonging to the heirs of the estate.

(श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय कृत नारी का मूल्य)

[2] 'उत्तानयोश्चोम्बो इर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्',
(ऋग्वेद १।१६४।३३)

'पिता दुहितुः सेकमृंजन' (ऋ० ३।३१।१)

'प्रजापतिःस्वांदुहितरमभिदध्यौ ... .स्वा दुहितरमस्माकंस्वसारं करोति'

'पापमाहुर्यः स्वसारं नियच्छुनियाछात् यत् पुराच क्रमो। अन्य मिच्छ स्व सुभगेपति मत्। (ऋग्वेद)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहना चाहिए—ग्राम के सब लोग पिता कहे जा सकते थे। यम यद्यपि आदित्य थे, पर उनकी संस्कृति अनार्य थी। वशिष्ठ ने अपनी बहिन अरुति से ब्याह किया।

शनैश्चर—यम के सौतेले भाई सूर्य के दासी पुत्र शनैश्चर थे। उनका दूसरा नाम श्रुतिकर्मा था। उन्हें यूनान का राज्य मिला। यूनान का 'हैली ओब्रे' राज्य वंश शनि के ही वंश में था।

यम का वंश विस्तार—इन्होंने प्राचीन ईरान और यूनान की ऋचाएँ तैयार कीं, और दक्ष प्राचेतस कुल की दस कन्याओं से विवाह किया। इनकी एक पत्नी सांध्या से सांध्य जाति के पूर्वज हुए, जो इतिहास में सीदियन प्रसिद्ध हैं। इन्ही के वशजनीय व पाल के वंशधरों में मिस्र और यूनान में फैल कर मिस्र का प्रथम राजवंश ई० पू० २१८८ में और असुरों का प्रथम राजवंश २०५९ ई० पू० स्थापित किया।[1] आग्नेय वंश को जन्मेजेम ने विजित किया। समस्त असुर प्रदेश में फैली हुई वसु, घोष, साध्य, हंस, मनीषि, द्रविड़, हुन, मंगोल, रमण,धर, हयताल आदि जातियाँ यम के ही वंश की हैं। ये सब अपने कुल देव सूर्य की उपासना करती थीं। सूर्य को ये God of all Nations मानतीं थीं। हुन, धर की सन्तान हैं। कुशान, हयताल (White Huns) व तुर्क (किरात टर्क) भी हुए है। मंगोल–मोंग शब्द से बना है,[2] जिसका अर्थ वीर है। धर के पुत्र रमण थे, साध्य पुत्र हंस है, जिसके वंशज जर्मन हैं। इनका Hanseatic League प्रसिद्ध है। यम वेदर्षि[3] तथा पितरों के अधिपति थे।[4]

सूर्य की राजधानी–सूर्य की चार राजधानियाँ थीं। (१) इन्द्रवन, (२) मुण्डार (३) आदित्य पुर और (४) काश्यप नगर।[5] एलाम और पर्शिया के लोग मित्र और वरण की पूजा करते थे। मित्र सूर्य का नाम था।[6] दमित्र भी सूर्य का नाम था।[7]

---

[1] Scythes has two sons Pal and Napas and the nations were called after them the Palas and Napians. They led their forces as far as the Niles. (टाड राजस्थान ५१)

[2] मंगोल सूर्य उपासक और मूर्तिपूजक थे। (लिटरेचर एण्ड आरचीटेक्चर अन्डर दी मुगल्स)

[3] ऋग्वेद के दशम मण्डल का १४ वाँ सूक्त यम का है।

[4] ये पितर संभवतः ईरान की प्राचीन जाति थी। पितरों का वर्णन बाइबिल में भी है। पद्म पुराण स्मृति खण्ड में याम्य देवता का उल्लेख है। पितरों के सात गण थे। जिनके प्रथक् लोक थे (विष्णु पुराण)

[5] देखिए भविष्य पुराण (सूर्य कथा और कनिघंम Vol, V. See Multan)

[6] ऋग्वेद—१।१।१।१।२।७

[7] Demeter व दमित्र विष्णु का नाम हैं। (Greek Legends)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सूर्य पूजा—Druid निर्मित सूर्य देव की मूर्तियाँ और मित्र का मन्दिर, जिनको योरोप में Mithracs कहते हैं ग्रीस, रोम, जर्मन, यार्क व चेष्ठर तक थे।[1]

अरब में यारब Edom, Erythros व 'आद' नाम सूर्य के है Red Sea का नाम पहिले Edom था। पर्शियनगल्फ का नाम भी Erythrian Sea था[2] अदन ही आदित्यपुर था। यहाँ 'आद' का मन्दिर सोने, चाँदी की ईंटों से बना था, तथा उसकी छत मोतियों से जड़ी थी।[3] 'आद' 'आदम' 'रब' 'रा' सूर्य के नाम हैं।[4] Bawal, Sunday, Rabiah, Rabihah सूर्य के दिन व मास हैं। सेमेटिक और सुमेरियन जातियों में जो राजा शुशिनाक, उरवंशी, कुदुर, नृगटो, सगरटो, द्रोपनी, किश व कासाइट थे, उनका प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष सम्बन्ध सूर्य वंश से था। मितन्नी की बोगजकोई की ईंटों पर खुदे लेखों से प्रकट है कि मितन्नी में आदित्य रहते थे। ई० पू० १५२२ में इन्हें तेहुतिमस्त्र मिस्री ने हटाकर करद राज्य बनाया। असीरिया की राजधानी निनवें ३००० ई० पू० थी। जहाँ बाबुल के पुजारी महिदेव थे। ई० पू० १४०० में मितन्नियों ने इताइत तथा कोसियनों से मिस्त्रियों के विरुद्ध मित्रता की थी। जिससे इताइत की शक्ति बढ़ी। सीरिया में मिस्री शासन को भय उत्पन्न हो गया, और मितन्नी सहयोग से मिस्री अमोराईट्स की भूमि से निकाल दिए गए। मिस्री राज्यकाल में मितन्नी राज-कन्याएँ मिस्री १७ वें राजवंश के राजाओं को ब्याह दी गई थीं। तेहुतिमस चतुर्थ ने मितन्नी राजकुमारी से विवाह किया। उसके उत्तराधिकारी अयेन होतेय तृतीय ने 'थी' नामक विदेशी स्त्री से विवाह किया। उसने गिलुखिया नामक मितन्नी राजकुमारी को भी ग्रहण किया। तेहुतिमास चतुर्थ ने मितन्नी पत्नी के प्रभाव में आकर स्किब्स की पूजा बन्द कर दी थी, और होरेमुखू (दो क्षितिजों पर सूर्य) देवता का पुराना मत चलाया था पर उसके उत्तराधिकारी अयेन होतेय तृतीय ने मितन्नीं राजकुमारी से के प्रभाव में आकर अतेन (सूर्य) का धर्म थीवीज में प्रचलित किया। तथा कर्नक में अपने राज्य के दसवें वर्ष में इस नए धर्म के लिए उत्सव किया। उसके उत्तराधिकारी अयेन होतेय चतुर्थ ने अपने को थीवीज के नए महिदेव से मुक्त कर नई राजधानी बना (सूर्य) अतेन

---

1 Carneus or Sun God and Druidic monuments scattered throughout Europe. **(टाड राजस्थान)**

Mithraea or temples of Mitra have been found all over Germany and so far away as York and Chester.
(H. P. Vol. 1, 416)

२ **देखिए अंग्रेजी कोष।**

३ **देखिए हिस्ट्री आफ अरेबिया।**

४ **प्राचीन अरब A. D. वंशी है।**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महादेवता की उपासना आरम्भ की। अतेन धर्म 'ए' (सूर्य) उपासना का प्राचीन रूप था।[१]

५—देव भूमि-पर्शिया

यह देश मूल नृवंश का मूल स्थान है। अभी इस दृष्टि से पुराणों तथा वेदों के नए सिरे से अध्ययन करने पर इस देश के इतिहास की तथा प्राचीन भूमियों और जातियों की सर्वे करने की आवश्यकता है। हम देख चुके हैं कि यहीं पर कश्यप सागर तट पर मरीचि पुत्र कश्यप और दक्ष पुत्रियों, दिति, अदित दनु आदि पत्नियों में आदिभ दानव, दैत्य, नाग, गरुड़, असुर आदि, और आदित्यों से देव और आर्यों की उत्पत्ति हुई।[२] इस देश में अपवर्त[३], नर्क,[४] यमलोक[५], वैकुण्ठ,[६] सत्य लोक,[७] कल्पतरु,[८] सुरपुर,[९] इन्द्र लोक,[१०] शरवन[११], अत्रि आश्रम[१२], चन्द्र लोक,[१३] तपो भूमि[१४], आदि भारतीय पुराणों में वर्णित प्रसिद्ध स्थान हैं। यही वह तपोभूमि है जहाँ कभी रात नहीं होती।

मनुर्भरतों के छै विजेताओं ने चाक्षुष मन्वन्तर में ईरान को जय किया तथा वहाँ अपना साम्राज्य स्थापित किया।[१६] ग्रीस और तुर्किस्तान को भी मनुर्भरतों ने जय किया। इक्ष्वाकु वंशी, युवनाश्व के पिता आर्द्र के नाम पर आर्द्रपुर नगर और आर्द्र सागर (Adrionople, Adriatic Sea) हैं। उनके पुत्र युवनाशव के नाम पर युवन सागर (Ionion Sea) है। बैबिलोनियन सम्राट नृसिंह, तथा पुरूरवा

---

१ ऋग्वेदिक इण्डिया

२ विष्णु पुराण। मत्स्य। हिस्ट्री आफ पर्शिया Vol. 1, 281

३ हि० आफ पर्शिया—Vol. 1 319

४ ,, ,, ,, ,, 103

५ ,, ,, ,, ,, ,,

६ ,, ,, ,, ,, 101 विष्णु पुराण।

७ ,, ,, ,, ,, 1117 विष्णु पुराण।

८ मत्स्य पु०।

९ टाड राजस्थान।

१० ,, ,,

११ हि० आफ पर्शिया Vol. 1, 266, 267

१२ भविष्य पुराण। H. P. Vol. 1, 319, 321, 306

१३ मत्स्य पुराण 316.

14 H. P. Vol. 1, 284.

१५ मत्स्य। पुराण। अ० ११८। श्लोक ६

१६ देखिए मत्स्य पुराण अ० २४ श्लोक ७२। भागवत पु० अ० १३१। एतरेय ब्राह्मण २।४।१। विष्णु पुराण। हिस्ट्री आफ पर्शिया Vol. 1, 55, 322 326 तथा टाड राजस्थान।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुत्र आयु रहे ।[1] ईरानी जाति ययाति के वंश में हैं, जो दैत्य गुरु शुक्र, और दानवपति वृषपर्व के दामाद थे ।[2] शंकर का जोटा प्रदेश भी यहीं है । शंकर को हम जटाजूट कहते हैं । वह बालों की जटा नहीं–ईरान का जाटा प्रदेश है । Iatah or Zothate यहाँ के शंकर प्रदेश में है ।[3] साध्य-वसु, आदि यम के वंशधरों की शाखा यहीं चली । पर्शिया के वासव और सीथियन, वसु और साध्यों की संतान है ।[4]

ययाति ने इन्द्र पद से च्युत होने पर स्वर्ग के लिए युद्ध किया था, इसे ईरानी इतिहासकार Holy Wars of Khorasan कहते हैं ।[5] ययाति पुत्र अनु का राज्य कश्यप सागर के उस पार था ।[6]

इसी प्रकार उशीनर का राज्य 'उश' प्रदेश में था, जो मध्य भूमि कहाता था ।[7] उशीनर के वंशज अब उजबक (उश वेग) कहाते हैं । शिवि के पुत्रों के चार राज्य भारत और ईरान की सीमाओं पर थे ,जो मध्य राज्य (Middle Kingdom) कहाते थे ।[8] उत्तर मद्र ईरान का मीदिया प्रदेश है । मद्रपति शल्य यहीं के राजा थे । जिन्हें पाश्चात्य सुलेमान (Solomon) कहते हैं, इनकी राजधानी पासर गद्दी (Throne of Soloman) थी ।[9]

इस प्रकार ईरान आदित्यों, चन्द्रवंशियों का, भृगु, अत्रि, वशिष्ठ और वामदेव नारद का तथा यम, रुद्र, इन्द्र, सूर्य, वरुण, अग्नि आदि वैदिक देवताओं का स्थान है । आज ईरान से आदित्यों का बहिष्कार हो गया, पर चन्द्रवंशियों के राज्य रह गए । आज ईरान में जितनी जातियाँ आबाद हैं, वे प्रायः चन्द्रवंश से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित हैं ।

फारस आर्ष का विकृत रूप है । पर्शिया आर्षिया का रूप है । ईरान 'आर्यान' का विकृत रूप है । मैक्समूलर का मत है कि ईरानियों के पूर्वज भारतीय थे ।[10]

---

१ H. P. Vol. II 55.

२ **विष्णु पुराण, भागवत, मत्स्य पुराण ।**

३ **कनिघन** Vol. III. 54.

४ **हिस्ट्री आफ पर्शिया** Vol. I. 103.

५ **हिस्ट्री आफ पर्शिया ।** Vol. 1.

६ **हिस्ट्री आफ पर्शिया ।** Vol. 1. 61, 65.

७ **एतरेय ब्राह्मण । टाड राजस्थान ।**

८ **टाड राजस्थान ।**

९ **हिस्ट्री आफ पर्शिया ।**

10 'It can now proved even by geographical evidence that the Zoroastrian had been settled in India before they emigrated to Persia'.

'The Zoroastrians were a colony from Northern India.' (Science of Languages)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर्शिया के इतिहास में मत्स्य, उरवेशी, यम, नृग, नृसिंह, अत्रि सभी देव विदेशी माने गए हैं। जिनके वंश वृक्ष वे नहीं जानते, पर वे हमारे पुराणों में हैं।

ईरानी सभ्यता का जन्म स्थल 'इलाम' राज्य है। जहाँ संसार की प्राचीनतम राजधानी थी। इस काल में ईरान, बैबिलोनिया, सीरिया, मिस्र और यूनान के शासक सूर्यवंशी थे। जो पीछे देव मान लिए गए। चाक्षुष मन्वन्तर से लेकर असुर सम्राट वाणीपाल के समय ६४५ ई० पू० तक पर्शिया में देवों का शासन रहा, जिनमें अत्यराति, अभिमन्यु, अंगिरा, उर, पुर, नृग, नृसिंह, सूर्य, किशा, अग्नि, वरुण, इन्द्र, प्रमुख थे।

६–देव और उनके दायाद बान्धवों के विग्रह

सुमेरियन और सेमेटिक—पाश्चात्यों का मत है कि मसीह से कोई चार हजार वर्ष पूर्व वर्तमान मेसोपोटामिया की आग्नेय दिशा में सुमेरियन[1] जाति के लोग आकर बसे। इन लोगों ने पहिले युक्रेतिस और तैग्रस नदियों के मुहानों पर अपनी बस्तियाँ बसाईं, जो धीरे-धीरे उत्तर की ओर बढ़ीं। इन बस्तियों वाले आपस में लड़ते रहते थे। कुछ काल बाद सेमेटिक जाति के लोगों ने इन्हें जीत लिया, पर संस्कृति इन्हीं की अपना ली, भाषा अपनी रक्खी।[2] इन्होंने जिस उत्तरीय इलाके को जीता, वह 'अक्काड' या 'अगाद' कहाया। तथा सुमेरियनों का दक्षिणी प्रान्त 'सुमेर' कहाया। दोनों प्रान्तों का सँयुक्त नाम 'बैबिलोनिया' पड़ा।

बैबिलोनियन राज्य—ईसा से कोई १८ सौ वर्ष पूर्व केशी' जाति ने बैबिलोनिया को जीता। परन्तु इन्होंने भी सेमेटिक लोगों की भाँति बैबिलोनियन सभ्यता ग्रहण कर ली। ये 'केशी' एलाम प्रदेश के निवासी थे, और बड़े अश्वारोही थे जो बैबिलोनियनों के लिए नई बात थी।

एलाम सम्पर्क—एलाम प्रान्त बैबिलोनिया की उत्तर सीमा से सटा हुआ था। वहाँ आदित्यों का प्रमुख निवास था। एलाम वासियों के बैबिलोनियनों से मित्र भाव थे। ऋग्वेद में बैबिलोनियन 'उर' 'उम्मा' के निवासियों के प्रति आदर भाव प्रकट किया गया है।[3] एलम के पच्छिम मितन्नु या मितन्नि[4] तथा दक्षिण के 'उरु', 'उमा' बैबिलोनियन रियासतों से एलाम वाले आदित्यों के मित्र सम्बन्ध थे, परन्तु उत्तर

---

[1] देखिए हिस्ट्री आफ सुमेर एण्ड अक्काड। हिस्ट्री आफ बैबिलोन।

[2] ये दोनों जाति आदित्य और दैत्य थीं।

[3] 'चित्रसेना इषुबला अमृधा सतो वीरा उरवो व्रात साहाः' ऋ० ६।७५।९
'ये अश्वमास उरवो वहिष्ठास्तेनाभिर्न इन्द्राभि वक्षिवाजम्' ऋ० ६।२१।१२
'विश्वेभिरूमेभिरागहि' ऋ० ५।५१।१
'प्रथमा स ऊमाः ऋ० १०।६।७

[4] मितन्नु यभितन्नि 'मित्र' का बिगड़ा रूप है। मित्र सूर्य या विष्णु का नाम था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रान्तीय रियासतों के पर्शियनों से उनके सम्बन्ध अच्छे न थे, बल्कि घोर शत्रुता थी।[1] ये लोग दैत्य दानव कुल के थे।

दैत्य दानव कुल—दैत्य दानव कुलों का विस्तार बहुत था। काश्यप सागर तट से लेकर गजनी, हिरात, हरम, कूंज शहर, खुरासान, बुखारा, गजदमन, शंकारा, इक, शाकटारिया, वशपुर, वास्पोरस, कश आदि देशों में दैत्य दानवों ही के राज्य थे। इस प्रकार समूचा एशिया माइनर इन दो महाशक्तियों में बँटा हुआ था। एक तरफ दैत्य-दानवों के राज्य थे, दूसरी ओर आदित्यों के, जो देव कहलाने लगे थे। बल के संगठन में दैत्यों का पासा ऊँचा था, क्योंकि एक तो वे ज्येष्ठ थे, दूसरे, उनके राज्य सम्पन्न थे। उनका संगठन अद्वितीय था। इसी भूमि में नाग और गरुड़ ये दो जातियाँ और भी बसती थीं, जो देवों से प्रभावित थीं। अतः एक ओर दैत्य-दानव थे, दूसरी ओर देव, गरुड़ और नाग।

देवासुर संग्राम—देवों और दैत्यों के तथा उनके मित्रों के राज्य का ज्यों ज्यों विस्तार होता गया, त्यों त्यों ऐसे राजनैतिक और आर्थिक कारण उत्पन्न होते गए, कि इन दायाद बान्धवों का मित्र भाव से मिल जुल कर रहना असम्भव हो गया और उनके बारह देवासुर संग्राम हुए, जिनकी परम्परा ३०० वर्षों तक चली।

हिरण्यकशिपु—हिरण्यकशिपु की राजधानी हिरण्यपुरी उस काल में कश्यप तट पर एक समृद्ध नगरी थी। कश्यप सागर तट की जो भूमि आजकल औक्सस या पारदिया कहाती हैं, उसके ऊपरी भाग में लूट-लट या कवीर प्रदेश है। उस काल में वह नन्दन वन कहाता था। आजकल यह प्रदेश महामरुभूमि है—इसे 'ग्रेट डेजर्ट ऑव साल्ट डेजर्ट' कहते हैं। यहीं हिरण्यकशिपु को सर्व प्रथम स्वर्ण की खान प्राप्त हुई थी। जिसके कारण हिरण्यकशिपु प्रसिद्ध हो गया था। उसी के कारण प्रथम देवासुर संग्राम हुआ। जिसकी परम्परा आगे ३०० वर्षों तक चलती रही। इस बीच चौदह देवासुर संग्राम देव, दैत्य, दानव, आदित्यों में हुए, और ये दायाद बान्धव परम शत्रु हो गए।

बहुत सा स्वर्ण पाकर अपने समर्थ भाई हिरण्याक्ष की सहायता से हिरण्यकशिपु ने चारों ओर अपने राज्य का विस्तार किया, अनेक देवलोकों को विजित किया और सम्पूर्ण उत्तर पश्चिम का फारस और समूचा अफगानिस्तान उसने जीत कर आधीन किया। बैबिलोन और आस-पास के प्रदेश उसके भाई हिरण्याक्ष के आधीन थे। इस समय देवों के नेता विष्णु ही थे, जो देवों का संगठन करके स्वर्ण स्थान तथा दैत्य भूमि को अधिकृत करना चाह रहे थे।

वाराह सम्पर्क—इस समय योरोप के उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश में जो नारवे द्वीप है, उसे उस काल में कोला प्रान्त या केतुमाल द्वीप कहते थे। आजकल भी उसे कोला पेनिन्सुला कहते हैं। यहाँ कोला-वाराह वंशियों का राज्य था। अति प्राचीन काल से यह जाति वहाँ रहती थी। आजकल भी वहाँ के निवासी कोल, कोल्ट, कैल्ट कहाते हैं, और उनके नाम वराह पर होते हैं। प्रलय काल के बाद वराह राज से वरुण

---

[1] सं मा तपन्त्यभितः स पत्नी रिवपर्शवः। ऋ० १।१०५।८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देव को एकार्णव के जल से पृथ्वी को उभारने में बहुत मदद मिली थी। तभी से देवों के इस जाति से मैत्री सम्बन्ध हो गए थे। अब देवों के उकसाने से वराहों ने आक्रमण करके हिरण्याक्ष को मार डाला, तथा बेबिलोन पर सूर्य पुत्र मनु के द्वितीय पुत्र नृग का अधिकार हो गया। वराहों के वंश की एक शाखा नृग वंशियों से मिल गई। बैबिलोनिया के राजा देव और वराह वंशी देव पुत्र कहाने लगे। उत्तर काल में इन्हीं के वंशज ईरान के क्षत्रप थे, जो, देवपुत्र कहाते थे, और वराह की मूर्ति पूजते थे।

नृग-नृसिंह देव—नृग-नृसिंह इक्ष्वाकु के छोटे भाई थे। इन्होंने हिरण्यकशिपु का वध किया, तथा बैबिलोनिया को जय किया। नृसिंह सेना संचालन के शिला चित्र और शिला लेख डी मार्गन मिशन को लुलवी और बैबिलोनिया प्रान्त में मिले हैं।[1] नृसिंह या नृग के वंशधर अभी भी ईरान में हैं। वे 'निगृटो' कहाते हैं। निगृटो जाति के लोग काश्यप सागर के उत्तरी तुर्किस्तान से फारस की खाड़ी तक फैले हुए थे। इतना ही नहीं, वे फारस की खाड़ी से भारतवर्ष तक फैले हुए थे। इन निगृटों के अधिनायक 'नरमसिन' (Naram Sin) थे। फारस के परसा प्रान्त में 'इस्टखर' व नरम सिन' दोनों ही स्थान परस्पर निकट हैं।[2] हिरण्यकशिपु (खरों) दैत्यों के 'इस्टखर' (मूल पुरुष) थे। इस्टखर उनकी दूसरी राजधानी थी। नरम-सिर नगर नृसिंहपुर का विकृत रूप है, यह कश्यप सागर के निकट ही है।

हिरण्यकशिपु वध—हिरण्यकशिपु का वध सुमना पर्वत पर हुआ था। इसका साक्षी पुराण है। यह पर्वत काश्यप सागर के निकट ही है।[3] पर्शिया के प्राचीन इतिहास में नृसिंह के इस अभियान को नरम सिन के नेतृत्व में नृगिटों का विजय-अभियान कहा है। जिसका भित्तिचित्र लुलवी प्रान्त में बगदाद व करमशाह के मध्यवर्ती देश में मिला है। इसमें नृसिंह सूर्य का झण्डा लिए सैन्य संचालन कर रहे हैं।[4] इन चित्रों के नाम हैं—Stele of Naram Sin leading negritos to victory। इनमें वह प्रसिद्ध चित्र भी है जो Famous stele of Naram Sin के नाम से विख्यात है और लुलवी प्रान्त में De Morgan Mission को मिला था।

---

[1] There was a very ancient occupation of the Susian plain by the Negritos, and so far as is known, they were the original inhabitant who probably stretched along the northern shores of the Persian Gulf to India. (H. P. Vol. 1. 54, 55).

[2] **देखिए पर्शिया का प्राचीन नकशा, इस्टखर और नरमसिर।**

[3] **पर्शिया के नकशे में** Samnar (Darale) Near Demavend or Iranian Paradise. **देखिए।**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हिरण्यकशिपु को मार कर नृग-नृसिंह स्वर्ग (Surg) के अधीश्वर इन्द्र बने। इस देश के राजाओं की उपाधि 'इन्द्रदेव' (इन्दावोगश) थी। बाद में वाणासुर ने जो आरमीनिया का प्रतापी राजा था, तथा जिसकी राजधानी 'वन' थी। इन नृगिटों को स्वर्ग से भगा दिया, जिससे वे उत्तरी तुर्किस्तान में जिसका नाम 'गिरगिस' (Girgis) था, शरणापन्न हुए थे। इस प्रान्त को पर्शिया के प्राचीन इतिहास में कारावोगस (अन्धकूप) भी कहा है। यह स्थान उत्तरी तुर्किस्तान में कश्यप सागर के छोटे भाग के निकट है। जिसकी आकृति कुए के समान है। इस स्थान का नाम कारावोगस इसलिए पड़ा—कि कारा वोगस अर्थात् देवों का कारावास (बहिष्कृत स्थान) कालान्तर में कृष्ण ने वाणासुर को परास्त कर नृगिटों को फिर सुरपुर में बसा दिया था।[1] इसी से नृगिटों का विस्तार उत्तरी तुर्किस्तान से फारस की खाड़ी तथा भारत की सीमा तक फिर हो गया था।

वरुण, विष्णु और उनकी संतति—वरुण इस समय ईरान के सबसे बड़े कर्ता धर्ता-विधाता थे। सभी उन्हें अपना ज्येष्ठ मानते थे। आजकल जिसे करमान प्रदेश कहते हैं, वहीं उनकी राजधानी सुषा थी। उधर क्षीर सागर (पर्शिया की खाड़ी) में उनके छोटे भाई सूर्य का आधिपत्य था, तथा अपवर्त में सूर्य पुत्र यम का अधिकार था, एवं यूनान-यवन में उनके दूसरे भतीजे शनैश्वर का राज्य था।

नाग और गरुड़—नागों के राज्य सीरिया, कोचरिस्तान, हसनअद्वाल, पाताल, एबीसीनिया और तुर्किस्तान में थे। तुर्किस्तान उनकी सबसे बड़ी राजधानी थी। गरुड़ों का स्थान गरुड़धाम (गरडेशिया) था, जो तुर्किस्तान के ऊपर है। देवों के नेता विष्णु थे। जिस प्रकार दैत्यों और दानवों ने संगठित होकर अपना बल बढ़ाया था, उसी प्रकार देवों ने नागों और गरुड़ों को अपने में मिला लिया था। नाग और गरुड़ यद्यपि देवों के आधीन थे, पर परस्पर शत्रु थे।

वरुण का साम्यवाद—वरुण समन्वयवादी थे। सब दायाद बान्धवों का मिलकर रहना ही ठीक समझते थे। इस बढ़ती हुई कलह को रोकने के वरुण देव ने प्रयत्न भी

---

[1] यही कथा विकृत रूप में पुराणों में है कि नृग को शाप वश गिरगिट बन कर अन्धकूप में रहना पड़ा था। इसका ऐतिहासिक तत्व हमें ईरानी इतिहास में मिलता है। पुराणों में 'नृग' को महादानी कहा है। उसने दान की हुई गौ को पुनः दान कर दिया था, इसी ये उसे शापवश गिरगिट बन कर अन्धकूप में रहना पड़ा। नृग के दानों के वर्णन ईरानी इतिहास में भी हैं। ईरान या मद्र प्रदेश उन दिनों पारदों के पुरोहित मगों की माफी (मगग) थी। उस काल में सारे शाकद्वीप में महिदेव (Priest-King) ही अधीश्वर थे, जो शुक्र के वंशज थे। इनसे मद्र देश की भूमि छीन कर नृगों के मगों को जो वशिष्ट वंशज थे, दे दी थी। जिससे शुक्र वंशज (शुक्लों) और असुरों ने मिलकर नृगों को सुरपुर से निकाल दिया था, और उत्तरी तुर्किस्तान (गिरगिस) में खदेड़ दिया था। भूमि को भी गौ कहते हैं, अतः झगड़े का मूल कारण स्पष्ट है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किए। एक बार उन्होंने वृहद् यज्ञ का आयोजन किया, जिसमें सब दैत्य, दानव और देवों को आमन्त्रित किया गया। उस समारोह में मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु आदि याजक, दक्ष प्रजापति, बारहों आदित्य, ग्यारहों रुद्र, दोनों अश्विनी कुमार, आठों वसु, मरुद्गण, शेष, वासुकी आदि बड़े बड़े नाग, तार्क्ष्य, अरिष्ठनेमि, गरुड़, वारुणि आदि युग पुरुष आए। अग्नि, चन्द्र, वृहस्पति और पितृजन भी आए। शनैश्वर, यम, धर्मराज विप्रचिति, शिबि, शंकु, केतमान्, राहु, वृत्र आदि महादानव भी आए थे। यहाँ देव दैत्यों में राज्य लक्ष्मी के सम्बन्ध में बहुत विवाद चला। दैत्यों ने कहा—हमारा अपराध नहीं है। देवों ने हम पर अन्याय से आक्रमण किया है और हमारी स्वर्ण लक्ष्मी छीनी है। हमारे छोटे भाई होने पर भी उन्होंने दैत्यों का रक्त बहाया है। ये सदैव हमसे अपमानित होते और मारे जाते रहेंगे। परन्तु आप हमारे सबके पितामह हैं। आपके यज्ञ में हम चुपचाप यज्ञ को देखेंगे। देवों से विग्रह नहीं करेंगे यज्ञ समाप्त होने पर स्वर्ण लक्ष्मी के सम्बन्ध में देवों से हमारा विरोध विग्रह होगा। अभी आप हमें आज्ञा दीजिए कि हम यज्ञ में क्या सेवा करें। अपने कर्त्तव्य का निर्णय करने में हम समर्थ हैं, स्वतन्त्र हैं।

विवाद बहुत हुआ। अन्त में दैत्यों के नेता हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद से देवों की सन्धि हुई। विष्णु ने वचन दिया दिया कि अब दैत्यों का रक्त पृथ्वी पर नहीं गिरेगा। प्रह्लाद ने भी विष्णु को मित्रता का वचन दिया। इस प्रकार देवों और दैत्यों में एक बार सन्धि हुई।[1]

६—इन्द्र का स्वर्ग राज्य

स्वर्ग भूमि—यदि आप ध्यान से पर्शिया के नकशे के पश्चिम की ओर झुकते हुए उत्तर में काश्यप सागर के निकटवर्ती भूमि पर दृष्टि डालेंगे, तो आप देखेंगे कि काश्यप सागर का सम्पूर्ण दक्षिणी तट काकेशस पर्वत शृंखलाओं से अवेष्टित है। है। यही जार्जिया प्रदेश है, और उसी के नीचे आर्मीनिया प्रदेश। आर्मीनिया और जार्जिया के बीच काकेशस पर्वत की उपत्यकाओं में वह महत्वपूर्ण स्थान 'अजरबेजान' है, जिसे प्राचीन इतिहास में 'आर्यवीर्यान' माना गया है। यह काकेशस पार्वत्य प्रान्त प्राचीन काल में 'देमावन्द' कहाता था, जो देव स्थान का विकृत रूप था। पुराणों में इसी भूमि को 'कामधरा धरा' कहा है। पर्शियन इतिहासकार इसे उपजाऊ और फलों से लदी हुई घाटी बताते हैं। पुराणों में लिखा है, यहीं कल्पतरु थे जो यथेच्छ फल देते थे।

इन्द्र—यहीं, कश्यप तटवर्ती किसी ग्राम में किसी कौशिक[2] ग्रामपति के वीर्य

---

[1] विष्णु पुराण। वरुण यज्ञ प्रकरण।

ऋग्वेद में इन्द्र की स्तुति की ऋचाएँ तो बहुत हैं, पर उसका परिचय कहीं नहीं है। यहाँ जो उसका जन्म वृत्त दिया है, वह वैदिक संकेतों पर संकल्पित है।

[2] 'आत न इन्द्र कौशिक'। ऋ० १।१०।११।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से एक कुमारी[1] कन्या को गर्भ रह गया। उसने अपवाद के भय से छिपकर[2] किसी गौशाला में चुपचाप पुत्र प्रसव किया। बालक के जन्म के बाद उसके पिता ने उसे स्वीकार नहीं किया, उसने बालक को मार डालने की चेष्टा की। यही बालक आगे इन्द्र के नाम से विख्यात हुआ।

इन्द्र का पराक्रम—उसने अपने पिता को पैर पकड़ कर मार डाला[3], और स्वयं ग्राम का अधिपति बन गया। बरुण की मृत्यु के बाद यह साहसी युवक आदित्यों का नेता बन गया। उसने अनेक पराक्रम कार्य किए, जिसमें सर्वोपरि वृत्र वध था। इसी से उसका नाम वृत्रहा पड़ा। फिर उसने दासों का नगर नष्ट कर 'पुरन्दर' नाम पाया, तथा दासों को नीचे गिरा दिया।[4] फिर उसने सिन्ध विजय किया तथा कृष्ण से संघर्ष किया।[5] उसने पराक्रमी मरुतों को मित्र बनाकर अपना बल बढ़ाया। उसने ४० वर्ष शम्वर और उसके असुर साथियों से लोहा लिया, तथा उनके सौ किले ध्वंस किए।[6] दस राजाओं के युद्ध में सुदास की सहायता की। अन्त में त्रसदस्यु, पुरुकुत्स आदि की सहायता कर सार्वभौम राज्य स्थापित किया।[7] तुर्वस और यदु की सहायता की।

वृत्र वध—वृत्र का राज्य सप्त सिंधु में था[8], अथवा वह सिन्ध के दासों का नेता था।[9] उसे अहि भी कहा गया है।[10] दास प्रतिष्ठित जाति थी। वह विष्णु का मित्र था।[11]

---

[2] 'सद्यो हे जातो वृषभः कनीनः'। ऋ० ३।४८।१।

[3] 'अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येण न्यृष्टम'। ऋ० ४।१८।५

[3] कस्ते मातरं विधवामचक्रच्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तं, कस्ते देवो अधि माडिकं आसीत् यत्प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्यः। ऋ० ४।१८।१२।

[4] 'विशो दासीरकृष्णोरप्रशस्ताः। ऋ० ४।२८।४।
'दासं वर्ण मधरं गुहा कः'। ऋ० २।१२।४।

[5] देखिए ऋ० ८।९६।१३–१५

[6] 'नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य'। ऋ० २।१९।६।
यः शतं शम्वरस्य पुरो बिभेदाश्मने व पूर्वीः। ऋ० २।१४।६
'यः शम्वरं पर्वतेषुक्षियन्त चत्वारिश्यां शरद्यन्वविन्दत्'। ऋ० २।१२।११
'मिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासायमहिदाशुषे। ऋ० १।१३०।७

[7] ऋग्वेद ४।३०।१७–१८

[8] वृत्रं जघन्वाँ असृजद्विसिन्धून् ऋ० ४।१९।८

[9] विश्वा अपो अजयदास पत्नीः। ऋ० ५।३०।५।

[10] यो हत्वाहि मरिणात् सप्तेसिन्धून्। ऋ० २।१२।३।

[11] अहो धर्मिष्ठता तात् वृत्रस्यामिततेजसः।
यस्यविज्ञानमतुलं विष्णौभक्तिश्च तादृशी। (भीष्मोवाच। महा० शान्ति० अ० २८७)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्द्र ने विष्णु से कहा था 'हे सखे विष्णु, मैं वृत्र को मारूंगा, तू इस मामले में अलग ही रहना।[1] वृत्र को मारने के लिए त्वष्टा ने वज्र बनाया।[2] यह आश्चर्य की बात है, क्योंकि वृत्र त्वष्टा का ही पुत्र था। उसने उसे मारने को वज्र दिया। वृत्र की माता विरोचन दानव की बहिन विरोचिनी थी।[3] वृत्र मन्त्रदृष्टा ऋषि था।[4] त्वष्टा से वज्र पाकर इन्द्र ने उसके पुत्र वृत्र को अपना पुरोहित बना लिया और फिर अवसर पाकर मार डाला।[5]

इन्द्र की राजनीति—यह देवताओं का नेता इन्द्र पर्शियनों को प्रिय न था। अवेस्ता में उसे दैत्य कहा गया है। अवेस्ता में ऐसी अनेक प्रार्थनाएँ हैं कि कुकृत्य करने वाले इन देवों को अहरमज्द की उपासना से भगाना चाहिए। इन्द्र बैबिलोनियन लोगों का मित्र तथा वहाँ की संस्कृति का समर्थक था। उसी ने वैदिक देवताओं की श्रेणी में बैबिलोनियन देवताओं को सम्मिलित किया तथा उनकी ऋचाएँ बनवाईं। बैबिलोनियन देवता अन्शन Anshan का उल्लेख ऋग्वेद में 'अंश' के नाम से हुआ है।[6] बैबिलोनियन 'एतन' Etana देवता को ऋग्वेद में 'एतश' कहा है।[7]

---

[1] अथाब्रवीद् वृत्रमिन्द्रो हनिष्यत्सखेविष्णों वितरंवि क्रमस्व।
ऋ० ४।१८।११।

[2] त्वष्टास्मै वज्रं स्वयं ततक्ष। ऋ० १।३२।२।

[3] वायु पु० ६५।८५

[4] ऋग्वेद २०।८, ९ सूक्त इसी के हैं।

[5] विश्व रूपो वै त्वाष्ट्रः पुरोहितो देवानांमासीत् स्वस्त्रीणोऽसुराणां ...
तस्मादिन्द्रोऽबिभेदीद्वङ् वै राष्ट्रं विपरावर्तयतीति तस्य वज्र मादाय
शीर्षाण्यच्छिनत् ...
तं भूतान्यभ्य क्रोशन्ब्रह्म हन्निति:" (तैतिरीय सं० का० २।५।१)

त्रिशीर्ष की यही कथा महाभारत में भी उद्योगपर्व में आई है। त्रिशीर्ष को मारने पर तक्ष इन्द्र को कहता है—'ऋषि पुत्रमित्रं हत्वा ब्रह्महत्या भवंनते ?' (इस ऋषिपुत्र को मारने से क्या तुझे ब्रह्महत्या का भय नहीं) ? तब इन्द्र कहता है—पश्चाद्धर्म चरिष्यामि पावनार्थं सुदुश्चरम् (महा० उद्यो० अ० ९ श्लोक ३४–३५) (पीछे देखा जायगा) दुष्कर्म का प्रतिषोध धर्म कार्य से कर लिया जायगा।

ऋग्वेद में भी विश्व रूप त्रिशीर्ष का सिर काटने का उल्लेख है—
'त्वाष्ट्रस्य चिद्विश्वरूपस्य गोनामा चक्राणस्त्रीणि शीर्षा परावर्क'
(ऋ० १।८।८–९)

[6] त्वमंशो विदथे देवभाजयुः (ऋ० २।१।४।
(यहाँ सायण ने 'अंश' का अर्थ-एतन्नाम को देवोऽसि किया है) सम्भव है इन्सान शब्द इसी शब्द से बना हो।

[7] 'स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना' (ऋ० ५।८१।३)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा उनके मुख्य देवता इश्तर (Ishtar) और तम्बुज (Tammuz) तथा दमुत्सि (Damuzi) को ऋग्वेद में उषा, दमूनः के रूप में व्यक्त किया गया है। ऋग्वेद में वर्णित उषा देवी का वर्णन इश्तर की दन्त कथाओं से बहुत समानता रखता है।[1] तम्बुज और दमूनः के वर्णन भी हैं।[2]

देवपद ग्रहण––पहिले इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि आदि प्रमुख देवता असुर कहाते थे।[3] परन्तु इन्द्र ने बैबिलोनियनों की देखा-देखी आदित्यों की संज्ञा भी देव रख दी। तथा स्वयं देवेन्द्र बन गया। बैबिलोनिया के अनेक सम्राट् अपने को देव कहते थे। उनके जीवन काल ही में उनकी संज्ञा देवताओं में हो गई थी। वे धूम-धाम से सोमपान करते थे।[4]

---

[1] 'पुनः पुनर्जाय नाना पुराणी।' (ऋ० १।९२।१०)
'उषा याति स्वसरस्य पत्नी, (अ० २।६१।४)
'यांत्वा जजुर्वसभस्यार वेन' (य० ७।७९।४)

[2] 'अपश्चेदेष दिभ्वोदमूनाः प्रसध्री चीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः'
(ऋ० ३।३१।१६)
'नित्यश्चा कन्यात्स्वपतिर्दमूनायस्माउ देवःसविता जजान।'
(ऋ० १०।६१।३)

[3] 'असु' का अर्थ है प्राण। अतः 'असुर' का अर्थ हुआ प्राणवान्। वैदिक साहित्य में 'असुर' इन्द्र-वरुण मित्र अग्नि आदि देवताओं के विशेषण के रूप में आया है। परन्तु 'अनायुधासो असुरो अदेवाः। इससे प्रकट होता है कि देवों के अतिरिक्त भी असुर थे। आगे ब्राह्मणों, आरण्यकों, और उपनिषदों में अनेक स्थानों पर 'देवा-सुराः, प्रयोग होने लगे। असुर देवों के प्रतिस्पर्धी बन गए। पुराणों में तथा बौद्ध साहित्य में 'देव दैत्यों' के झगड़े को 'देवासुर-संगामो,' देवासुर संग्राम नाम दिया गया। इससे स्पष्ट है कि ई० पू० दसवीं शताब्दी में देवों से असुरों को भिन्न समझा जाने लगा था। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि जब असीरियन लोगों ने बैबिलोनियनों पर निरन्तर चढ़ाइयाँ कीं,तो उनके मुख्य देवता असुर होने से एलाम में, और उसके पूर्व सप्त सिन्धु में असुर शब्द के सम्बन्ध में घृणा के भाव उत्पन्न हो गए। और उन्होंने 'देव संज्ञा' अपना ली। वेद में, इन्द्र, मित्र, वरुण, वायु, मरुत्, अश्विनि, विश्वदेवत, बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति, ऋभु-वरुण, तृत, अर्यमन, त्वष्टा, आदि देवताओं की स्तुति है। अग्नि इन्द्र के बाद सबसे प्रमुख देवता हैं। मरुत् प्रथम देवता न थे, पीछे इन्द्र की मित्रता कर देवों में सम्मिलित हुए। इन्द्र वेद का सबसे बड़ा देवता है। विश्वे देवस तेरह हैं। बृहस्पति मन्त्रों का देवता है। पूषन बारह आदित्यों में है, उषस स्त्री देवता हैं। सोम-स्वनय (भव के पुत्र) विष्णु भग धन के देवता हैं।

असुर वंश का वर्णन मार्कण्डेय पुराण में है।

[4] देखिये—Mythus of Babylonia and Assyria
—by D. A. Mackenzie

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्हीं के अनुकरण पर इन्द्र ने देव उपाधि धारण कर सोमपान की प्रथा प्रचलित की। सम्भव है ऋग्वेद की कुछ ऋचाएं भी बैबिलोनिया में बनी हों। क्योंकि हिरण्याक्ष के वराह द्वारा वध किए जाने पर नृसिंह बैबिलोनिया का देव बन गया था, पीछे उसने हिरण्यकशिपु को मार कर दैत्य लोक भी अधिकृत कर लिया था।[१]

---

[१] असुरों के नेता इब्राहीम को उर ने बैबिलोनिया से खदेड़ दिया था तब वे लोग मिश्र में बस गए। उनकी दूसरी शाखा सीरिया में जा बसी जो फोनेशियन के नाम से विख्यात हुई। फोनेशियन भारी नाविक शिल्पी और वणिक थे। सीरिया के असुरों को कृष्ण ने जीतकर उसका नाम स्याम रखा। जो असुर बैबिलोनिया में रह गए थे, वे देवों की प्रजा की भाँति वहाँ रहते थे। बाद में उन्होंने निमरुद् में एक और राज्य स्थापित किया। इतिहास उनकी जाति 'असि' बताता है, जो 'असुर' का लघु रूप है। बसरा के विद्युन् (Beduns) इसी शाखा के असुर हैं। निमरुद (निमरी) असीरिया, कुदरिस्तान पौराणिक उत्तर कुरु है। इसकी राजधानी निनवी थी। ई० पू० २७०० में असुर स्वतन्त्र राजा हो गए थे। ई० पू० १३०० ई० में उन्होंने फिर बैबिलोनिया देवों से छीना। पर फिर हार कर उनकी प्रजा बन गए। ई० पू० ११०० में असीरिया फिर स्वतन्त्र हुआ। ई० पू० ७२२ में असुर नरेश सरगन और उसके उत्तराधिकारियों ने मितानि, हितेतिई, लाम, बैबिलोनिया व मिश्र देशों को जय किया। वाणिपाल असुर ने ई० पू० ६४८ में बैबिलोनिया व ई० पू० ६४५ में सुषा इन्दवोगश (इन्द्र) को जीत कर शाकद्वीप में देवों के राज्य इन्द्रासन का अन्त कर दिया। असीरिया के असुर नरेश वाराधिल और उनके वंश-धरों ने आदित्यों-देवों के आधिपत्य से बैबिलोनिया, एलाम, तथा ईरान को मुक्त कर दिया। और इस प्रकार सदा के लिए देवों का इन्द्रासन और स्वर्ग का राज्य समाप्त हो गया। वरुण पुरी शुषा जो इन्द्रपुरी या स्वर्ग कहाती थी, नाम शेष रह गई। ई० पू० २४०० से ई० पू० ३४५ तक सुषा प्रदेश सुरों का सुर पुर बना रहा।

डिपोरस, प्लाहमी, टालोमी, टाड, कनिघंम, व चीनी इतिहास लेखकों ने शाक द्वीपी (ईरानी) दो जातियों का उल्लेख किया है। एक 'सू' दूसरी 'असि'। पर वे यह निर्णय नहीं कर पाए हैं कि ये 'सू' और असी कौन थे। वास्तव में सू' सुषा के सुर थे, और 'असी' सुरों के विमात्र भाई असीरिया वासी 'असुर' थे। जिनकी पूर्व संज्ञा दैत्य और आदित्य थी। सुरों ने विष्णु को प्रधान माना। परन्तु असुरों ने शिव को। उन्होंने सेब्याजाम (Sabeanism) धर्म ग्रहण किया। कुछ तो इस कारण और कुछ राजनैतिक कारणों से सुर और असुरों में जो परस्पर भाई बन्द थे, ई० पू० १३०० में ही रोटी बेटी व्यवहार बन्द हो गया था।

अरब के निवासी भी शैब (Sabaism) धर्मी थे। Saba या Sawa धर्म का केन्द्र Hadramant प्रान्त में था। शैब्यों के धर्म में मुख्यतः ग्रह पूजा होती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूर्य-शनि आदि सात ग्रहों की पूजा के अरब में सात प्रसिद्ध मन्दिर थे। इस्लाम धर्म एक प्रकार से शैव धर्म है। सब मूर्तियों को काबें से भंग कर मुहम्मद पैगम्बर ने केवल 'काला पत्थर' समारोह के साथ वहाँ स्थापित किया था। यह पत्थर एक शिवलिंग है—जो सोने की जलहरी पर रखा है। इसे मन्नाह या संगे असबद् कहते हैं। मुसलमान हजयात्री इसे चूमते हैं। (देखिए—मोहम्मद एण्ड द ब्लैक स्टोन—हिस्ट्री आफ पर्शिया Vol II)

पैगम्बर मुहम्मद इब्राहीम व हगर के पुत्र इस्माईल के छोटे भाई केदार के वंश में थे। अरब का जो प्रांत आज Katar कहाता है, वह पुराणों में वर्णित केदार हैं। केदार के ऊपर Sheb है। Bida केदार के नीचे है। Sheb के सामने ही फारस की खाड़ी है, जो कभी क्षीर सागर कहाती थी। भारत में पीछे जो बद्रीनाथ और केदारनाथ के मन्दिर हिम शैल पर स्थापित हुए हैं इन्हीं 'केदार' और 'वीदा' के नाम पर, जो प्राचीन काल में अरब के शिव स्थान थे। इनके मन्दिरों के संस्थापक दक्षिण के वहिरागत जनों में थे, भारतीय आर्य न थे। सम्भव है कि उनकी वंश परम्परा अरब के Sabeans से सम्बन्धित रही हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ८

भारत की प्राचीन जातियों की संस्कृति का समन्वय

आग्नेय और आस्ट्रिक

भारत में आगतजन—पुरातत्त्व विद् ऐसा अनुमान करते हैं कि भारत में सब से प्रथम नीग्रो जाति का आगमन हुआ। यह आगमन प्राचीन प्रस्तर युग में हुआ। यह जाति अरब—ईरान के किनारे किनारे चलकर पश्चिम से सम्भवतः अफ्रीका से आई। इसी की एक शाखा आस्ट्रेलिया गई, जहाँ अब भी उसके वंशज हैं। भारत से जाते हुए इस जाति की टुकड़ियाँ इन्डोनेशिया, पोलीनेशिया और मलेनेशिया में गई हैं। मलाया, फिलिपाइन, न्यूगिनी और अंडामन में इसी जाति के वंशधर नीग्रो हैं।

नीग्रो लोगों के बाद आग्नेय, आग्नेयों के बाद द्रविड़, और द्रविड़ों के बाद आर्य भारत में आए। इसके बाद इन जातियों के परस्पर सम्पर्क में आने से देश में सांस्कृतिक समन्वय प्रारम्भ हुआ।

आग्नेय या औष्टिक—पाश्चात्य गवेषक इन्हें आग्नेय या औस्ट्रिक इसलिए कहते हैं, कि इस जाति के लोगों का विस्तार भारत और योरोप के अग्निकोण में हुआ। इस वंश के लोग मडागास्टर और विन्ध्य मेखला से लेकर प्रशान्त महासागर के हेस्टर द्वीप तक फैले हुए थे। उनका कहना था कि इस जाति के लोग भारत में पूरब और पश्चिम की ओर से भी आए। उनका यह भी कहना है कि भारत के कोल और मुण्डा जाति के लोग आसाम, बर्मा और हिन्द-चीन की मौन, खमेर जाति निकोबार द्वीप के निकोबरी, तथा इन्डोनेशिया के मलेनेशिया, और पोलीनेशिया की बहुत सी काली जातियाँ इसी आस्ट्रिक वंश की सन्तान हैं। काश्मीर से लेकर प्रशान्त महासागर के पूर्वी द्वीप समूह तक जो पक्के काले बनवासी लोग हैं, वे आष्ट्रिक जाति के ही वंशज हैं।

श्रेष्ठता के चिन्ह—कुछ लोग इन्हें द्रविड़ों ही की सन्तान बताते हैं।[1] यह जाति कभी प्रतिष्ठित और पूजार्ह थी। इसके कुछ चिन्ह आज भी भारत में पाए जाते हैं। राजस्थान के राजा जब राजतिलक कराते थे, तो एक भील के अंगूठे के रक्त का तिलक लगाते थे। ऐसा ही रिवाज जयपुर में मीना लोगों के लिए था। उड़ीसा के राजा का राजतिलक भी भेरिया जाति के लोग लगाते थे। दक्षिण में तंजोर के तिरुवरुट मन्दिर के शैव-उत्सव के समय जिस

---

१ देखिए श्री रत्न स्वामी की इन्डिया फ्राम द डान।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हाथी पर शिव की मूर्ति रखी जाती है, उसी पर चवर ढुलाने वाले के तौर पर परिया जाति का एक आदमी बैठता है।

भारतीय कोल और मुण्डा भाषाएँ तथा आसाम और बर्मा मौन-खमेर भाषा आष्ट्रिक भाषा का विकृत रूप हैं। आर्यों की भाषा परिवार में आष्ट्रिक भाषा का काफी मिश्रण है। खास कर वन्य पदार्थों के नाम व्युत्पत्ति आष्ट्रिक भाषा से सम्बन्धित हैं। डीम, भुइंया, केजर, सोसिए, मुसहर आदि खानाबदोश जातियाँ आष्ट्रिक भाषा बहुल भाषा बोलती हैं। इसके भी प्रमाण है कि इस जाति की प्राचीन बस्तियाँ सिन्ध में थीं।

सभी पुरातत्त्वविद् यह मानते हैं कि आग्नेयों ने भारत पर काफी प्रभाव छोड़ा। आर्यों के घरेलू रिवाज, होम, पूजा विधि, विवाह परिपाटी, धोती पहनना, साड़ी, माँग में सिन्दूर देना यह आग्नेयों की देन हैं।[1] भारत में आस्ट्रिक उत्तर भारत, पंजाब, मध्य भारत, दक्षिण भारत में फैले हुए थे। कहते हैं 'गंगा' शब्द भी किसी आस्ट्रिक शब्द का विकृत रूप है। ईसा से हजारों वर्ष पूर्व आस्ट्रिक भाषा का प्रसार था।[2] वैदिक भाषा में भी आस्ट्रिक शब्द है। यास्क ने 'काम' का अर्थ नहीं समझा।[3] यह आस्ट्रिक भाषा का शब्द था। पुरानी और नई संस्कृत पर भी उसका प्रभाव है। 'कम्बल' शब्द अथर्व वेद से प्रथम ही संस्कृत में मिल गया।[4] एक शब्द 'लांगलम' ऋग्वेद में मिलता है। लिंग, लांगल लंगल, लांगूल, लाङ्ल सब इसी शब्द के रूपान्तर है। यह पूर्व आस्ट्रो, एसियाटिक भाषाओं का संस्कृत पर प्रभाव प्रकट करता है। 'ताम्बूल' आष्टेय शब्द है। वाण भी आग्नेय है। कर्पास, कर्पट, पट—आग्नेय शब्द हैं। मातंग, मयूर भी ऐसे ही शब्द हैं जो आस्ट्रिक भाषा से सम्बन्ध रखते हैं। खूब गहरा विचार करने सेसु मेरियन से आग्नेय भाषाओं का गहरा सम्पर्क प्रकट होता है।

डा० स्टेन कोनो का मत है कि जो मुंडा भाषाएँ आज केवल छोटा नागपुर, मद्रास के कुछ प्रान्तों में तथा महादेव पहाड़ियों और मध्य प्रान्तों में बोली जाती हैं, वह पहले गंगा की घाटियों और मैदानों तक बोली जाती थीं।[5] पश्चिमी बंगाल की सन्ताली भाषा भी आग्नेय भाषा से सम्बन्धित है। उत्तर में लेपिया भाषा अथवा रोंग भाषा, उत्तर पूर्व की वोडी या कचारी भाषा, गारो, दीमा, सा, भ्रुंग या त्रिपुरा भाषा मईथी, लूशाई,

---

[1] इण्डो आर्यन एण्ड हिन्दी पृ० ३१
[2] ,, ,, ,, ३९
[3] ,, ,, ,, १२३–२५
[4] प्रि आर्यन एण्ड प्रि द्रविडियन पृ० ४–५
[5] ,, ,, ,, ,, ११
[6] ,, ,, ,, ,, ९५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अराकानी सभी भाषाएँ आस्ट्रिक भाषा से प्रभावित हैं।[1] फादर स्मिट के मतानुसार भी मुण्डा, खासी, मोन-ख्मेर तथा अवामी भाषाएँ आग्नेय एशियायी परिवार की भाषाएँ हैं।[2] भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि आस्ट्रिक भाषा परिवार के भाषी उत्तर पश्चिम भारत के भी परे निकल गए तथा फिर लौट कर आ बसे। जब आर्यों का संगठन हुआ तो आर्य संस्कृतियाँ, उनकी विवाह पद्धति, जाति प्रथा धर्म विश्वास तथा समाज की वर्ग व्यवस्था सभी पर गहरा प्रभाव पड़ा।

आग्नेय कौन हैं ? पाश्चात्य पुरातत्वविद् तथा उनके भारतीय शिष्य इन आग्नेयों के मूल परिचय पर मौन हैं। ये आग्नेय कौन हैं। यह वे नहीं जानते हैं। पर हम यह कह सकते हैं कि ये आग्नेय वसु-अग्नि के अग्नि वंशी है, और देवों की परम्परा के हैं। इसी से आर्यों की प्राचीन संस्कृति, रीति-रिवाज और भाषा से इनका गहरा साम्य है। आज इस परिवार के जन असभ्य हैं। परन्तु उस काल में भी असभ्य रहे होंगे, ऐसा प्रतीत नहीं होता। आज भी इस जाति के लोग विशिष्ट अवसरों पर पूजे जाते हैं। यह हम पीछे कह आए हैं। तथा इनकी संस्कृति और भाषा की छाप सभी सभ्य जातियों पर है। इससे भी इनकी उच्च सभ्यता प्रमाणित है।

आग्नेयों का मूल स्थान—ये आग्नेय देव स्थान से आए थे। सम्भव है देवों के पराभव के बाद यह जाति देवलोक से बाहर आने को विवश हो गई हो। देवलोक का स्थान पर्शिया की दक्षिण पूर्वी दिशा में था। इसी से आग्नेयों का विस्तार उत्तर पूर्वी भारत में हुआ। आग्नेयों के मूल पुरुष भृगु, सुमेर सभ्यता के जन्मदाता से प्रभावित थे। इसी से आग्नेयों में सुमेर सभ्यता के सम्पूर्ण चिन्ह पाए जाते हैं।

आग्नेय प्रभाव के अवशेष—भारतीय प्राचीन गुफा कला तथा अन्य औजार बनाने की विधि जिनमें मैसोलिथिक प्रभाव है पूर्वी स्पेन की निर्माण कला से साम्य रखती है। यही हाल छोटे नागपुर के झोपड़ों की कला के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। यह स्पष्ट है कि मैसोलिथिक युग की सभ्यता के प्रसार पर दक्षिण पूर्वी एशिया का काफी प्रभाव है। यद्यपि अब भारत में घुमक्कड़ जातियाँ नहीं रहीं, परन्तु भारत की कोलारी, खरिया, जुआड़, शंवर, तथा गदव भाषाएँ, मलयद्वीप समूह की अनामी, वैरसी तथा मौन-ख्मेर भाषाएँ, मलुस्का द्वीपों के अदिम निवासियों की बोलियाँ, आस्ट्रेलियन कबीला जातियों की बोलियाँ तथा नीकोबार बोलियाँ अपने शब्द-व्याकरण के साम्य के कारण इन जातियों के उस घने सम्बन्ध को प्रकट करती हैं जिनसे कभी प्रशान्त महासागर के द्वीप प्रभावित थे।[3]

---

[1] **ओरिजन एण्ड डेवलपमेंट आफ बंगाल लेंग्वेज पृ० २, ३**

[2] **प्रि आर्यन एण्ड प्रि द्रविडयन—पृ० ४–५**

[3] **प्रि हिस्टारिक इन्डिया, पंचानन मित्र पृ० ४४४–४५**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुण्डा जाति में किम्वदन्ती है कि उनके पूर्वज समुद्र से निकले। खासी ज़ाति में आम कहावत है कि उनके अक्षर महाप्रलय में खो गए।[1] छोटा नागपुर के मुण्डा संताल ईश्वर को मानते हैं, चन्द्रमा को पूजते हैं, जादू में विश्वास रखते हैं। ओझा के घर तुलसी का थाँवला होता है। अविवाहित ही उसका चबूतरा बनाते हैं। विवाहित स्त्रियाँ माँग में सिन्दूर लगाती हैं। स्त्री स्वातन्त्रय है। उनमें अनुश्रुति है कि तीर तरकस से छूट कर लौट आते थे। पुलिन्द, कुलिन्द, संकल, उत्कल के साथ कोसल, तोसल, वंग, कलिंग, तिलंग आदि जोड़ों की एक शृंखला, काश्मीर के पूर्व से दक्षिण तक चली गई है। आग्नेय एशियायी हैं।[2]

परशु, हथौड़ा, धरन, छैनी, तथा अन्य औजार, सिलिंडर, मनुष्य तथा पशुओं की आकृतियाँ, चमकाने के औजार, पत्थर के बर्तन, ये वस्तु उस काल की पुरात्त्व विद्‌ों को मिलीं हैं। ऐसा विश्वास है कि पत्थर का जो परशु मिला है वही वज्र है। चिमटे, कुल्हाड़े सम्पूर्ण भूमध्य सागरवर्ती प्रान्तों में पाए गए हैं। मिस्र, साइप्रस, एजियन समुद्रतीर, फिलिस्तीन, इतावली, हिस्तरलिक, सारडीनिया, स्पेन, पुर्तगाल, कोहकाफ, फ्रान्स, बल्कान रियासतें, स्विटजरलैंड तथा जर्मनी में ये पदार्थ पाए गए हैं। इस जाति में मुर्दा गाड़ने की प्रथा थी। बिहार में कब्रिस्तान मिले हैं। कब्रों पर ढका पत्थर मुंडा भी प्रयोग करते थे। अनेक प्राचीन जातियाँ अब भी मुर्दे गाड़ती हैं। कुछ जातियाँ मुर्दे पर पत्थर रख कर प्रार्थना करती हैं। कोल मुर्दे की भस्म को गाड़ते हैं। मुण्डा आग्नेय परिवार के लोग हैं। आसाम, दक्षिण भारत, उत्तर पश्चिमी सीमा इन जातियों के केन्द्र थे। यहीं मुर्दों पर पत्थर के स्मारक बनाने के चिन्ह मिले हैं। खासी लोग मुर्दों पर शहद लपेट कर उन्हें वर्षा के तीन महीने किसी पेड़ की खोखल में रख देते हैं, फिर मृतक संस्कार करते हैं। अगन्तपुर जिले में कल्याण दुर्ग के तीन मील पूर्व के एक गाँव में बहुत सी इस युग की कब्रें मिली हैं जो डब्बेनुमा है। अधिकतर कब्रों के चारों ओर पत्थरों का एक गोल बना है, कुछ कब्रों में गोल दरार या छेद छोड़ दिया जाता था, कदाचित यह विचार था कि आत्मा इन छिद्रों द्वारा कब्र में आती जाती है। ऐसी कब्रें दक्षिण और पश्चिम भारत में पाई गए हैं। धातुओं के प्रयोग इन्हें ज्ञात थे।

देवी देवताओं की अनेक कथाएँ जो आग्नेयों तथा द्रविड़ परिवार की थीं, आर्य साहित्य में मिल गईं। देवर-देवरानी, जेठ-जिठानी की प्रथा, सिन्दूर का प्रयोग, अनुष्ठानों में नारियल और पान रखने का रिवाज आग्नेयों से आर्यों में आया। आग्नेयों में देवता को बलिदान के पशु का रक्त मस्तक में लगाने की परिवाटी थी। स्त्रियाँ सौभाग्य मंगल कामना से वह पवित्र रक्त माँग में लगाती थीं। वह रिवाज सिन्दूर में पीछे बदल गया। विवाहादि के अवसर पर सिन्दूर एक अनिवार्य वस्तु हो गई। सिन्दूरदान के बिना विवाह सम्पूर्ण ही नहीं हो

---

[1] दि हिस्टारिक इण्डिया, पंचानन मित्र पृ० ४४६, ४७

[2] दि आर्यन एण्ड द द्रविडियन।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकते थे। परन्तु वैदिक साहित्य में तथा स्मृति और सूत्र ग्रन्थों में कहीं भी सिंदूर का विधान नहीं है। यह वास्तव में आग्नेयों की प्रथा है। शङ्ख भी वेद वाह्य है। जो अब पवित्रता और शुभ का प्रतीक माना जाता है।

आर्यों के दैनिक जीवन की बातों में होम और पूजा महत्वपूर्ण बातें थीं। होम-अग्निहोत्र देवों में भी था, दैत्यों में भी। क्योंकि अग्नि पूजन भृगु ने आरम्भ किया था, उनसे वृहस्पति द्वारा वह देवों में भी आया, वहाँ से आर्यों में। परन्तु पूजा, पुष्प, दीप, अक्षत और चन्दन का महत्व वेदों में नहीं है। पूजा का अर्थ 'पूजधातु' पर आधारित है। परन्तु प्राचीन आर्य भाषा परिवार में यह धातु है ही नहीं। कुछ विद्वानों का मत है कि पूजा शब्द द्रविड़ों के 'पू' का स्थान वाची है, इसका अर्थ 'पुष्प' होता है। दूसरा द्रविड़ शब्द 'जे' है, जिसका 'करना' अर्थ में प्रयोग होता है। द्रविड़ अर्थों में 'पूजे' का अर्थ हुआ 'पुष्प-करण या पुष्प-कर्म। विद्वानों का मत है कि आर्यों का यज्ञ 'पशुकर्म' था और द्रविड़ों का 'पुष्पकर्म'। कालान्तर में आर्यों के विधान में पुष्पकर्म सम्मिलित हो गया। यहाँ तक, कि उनका यज्ञकर्म-पशुकर्म छूट गया, पर पूजाकर्म, पुष्पकर्म ही शेष रह गया। यदि पूजा को हम चन्दन लेपन या सिन्दूर लेपन के अर्थ में ग्रहण करते हैं, तो वह आग्नेय रीति है। यह महत्वपूर्ण बात है कि पत्र-पुष्प-फल और तोय से पूजा करने की विधि पहिले पहल गीता में उद्घोषित की गई।

इस प्रकार आर्यों के भण्डार में आर्येतरों की बहुत सी सामग्री संग्रहीत है। देवी पूजन, तन्त्र मन्त्र भी उनमें ही हैं। जिन्हें वैदिक वाम मार्ग कहते रहे। ग्राम-देवता और देवी पूजन को मनु ने गर्हित कहा है, पर अब तो सर्वत्र ही हिन्दू ग्राम देवता और देवी पूजन करते हैं। भूत-प्रेत, जादू-टोना आग्नेयों की देन हैं, जिनके पूजक प्रायः नीच लोग ओझास्याने होते हैं। तुलसी, वड़, पीपल, बेल वृक्ष का पूजन, अस्थियों का जल विसर्जन, पीपल पर घण्टे बाँधना, नदी पूजन, होलिकोत्सव, वसन्तोत्सव तथा इन अवसरों पर मद्य-पान, बलिदान और अश्लीलाचरण ये सब आर्येतर सभ्यताएँ हैं। इन समारोहों में शूद्र-अतिशूद्र लोग ही मुख्य भाग लेते हैं। ध्यान देने से हम देख सकते हैं कि आर्यों की वैदिक सभ्यता केवल कुलीनों तक ही सीमित रही। जन साधारण तो इन सब आर्येतर रीति रिवाजों को अति प्राचीन काल से मानता आया है।

द्रविड़

विद्वानों का मत—सारे संसार के पण्डित पुरातत्त्वविद् इस बात पर एक मत रखते हैं कि द्रविड़ जाति प्राचीन विश्व की अत्यन्त सुसभ्य जाति थी, और भारतीय सभ्यता का केन्द्र भी वही है। यह भी उनका कहना है कि द्रविड़ों से प्रथम ही आग्नेय भारत में आ चुके थे। वे यहाँ स्थिर हो चुके थे और द्रविड़ों पर उनकी सभ्यता व संस्कृति का प्रभाव पड़ा। द्रविड़ों ने इस देश में कृषि का विकास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
किया, वे नौ विद्या में पारङ्गत हुए। नदियों के बाँध बाँधकर उन्होंने सिंचाई की व्यवस्था की। बड़े बड़े मन्दिरों, नगर भवनों को बनाकर नागर सभ्यता का सूत्रपात किया। वे मातृ मूलक सभ्यता के प्रवर्त्तक हुए। शैव-शास्त्र और भक्ति धर्म का उन्होंने प्रसार किया। विद्वानों का यह भी अनुमान है कि द्रविड़ों के पूर्वज पच्छिमी एशिया से आए। वे भाषा शास्त्र के समर्थन से कहते हैं—कि जब द्रविणों के पूर्वज बलूचिस्तान के दर्रों से भारत में प्रवेश करने लगे, तब उनकी एक टोली वहीं छूट गई। ब्रुहुई बोली और ब्रुहुई जाति द्रविड़ों की इस टोली का प्रमाण है। परन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि द्रविड़ों के पूर्वज भूमध्य सागर तट पर रहते थे। वहीं से वे भारत में आए। वे ईसा से लगभग ३५०० वर्ष पूर्व भूमध्य सागर से भारत की ओर चले।

द्रविड़ कौन हैं ?—ये सब बातें तो हुईं। परन्तु द्रविड़ों के ये पूर्वज कौन थे। वास्तव में कहाँ रहते थे। इस सम्बन्ध में प्राच्य शास्त्री मौन हैं, या भिन्न भिन्न अटकल लगाते हैं। द्रविड़ से तामिल जाति का तात्पर्य लिया जाता है। परन्तु उनमें अनेक शाखा उपशाखा और भेद रहे हैं। वे एक जाति तो नहीं कहे जा सकते। निस्सन्देह द्रविड़ों का भारत में अस्तित्व ईसा से ६ सहस्त्राब्दी पूर्व का है।

द्रविड़ और आग्नेयों में समानता—इस बात पर बहुत विद्वान् सहमत हैं, और यह बात वास्तव में सत्य है कि आग्नेयों से द्रविड़ों का संस्कृति सम्पर्क भारत में आने से पूर्व का ही है। कुछ ऐसी बहुत प्राचीन मान्यताएँ हैं, जो द्रविड़ और आग्नेयों में एक समान ही मानी जाती रही हैं। ऐसी मान्यताओं में मृतक उपासना और बलि प्रथा महत्वपूर्ण हैं, जो दोनों जातियों में प्रचलित थीं। इन दोनों मान्यताओं का आधार दोनों संस्कृतियों में यह विश्वास था—कि मरने के बाद मृतात्मा कुछ काल तक पौधों, वृक्षों तथा पशुओं में रहता है। वह आत्मीयों को हानि व लाभ पहुँचा सकता है। आत्मा भोजन चाहता है। इसी से ये दोनों प्राचीन जातियाँ मृतकों को बलि भोजन से सन्तुष्ट करती थीं। आर्यों पर भी उसका प्रभाव पड़ा, और उनमें भी मृतकों के श्राद्ध की परम्परा चल गई, जो अब तक चल रही है।

दक्षिण भारत की तमिल, मलयालम, कन्नड़, तेलगु, कुई, कुवी, कुलुख, ब्राहुई, गौंडी, इरुली, कुरुम्ब, कसब, वगड़, तोड़, कोडग आदि भाषाओं में साम्य है।

भाषा विचार—द्रविड़ संस्कृति का विकास दक्षिण में कावेरी के आसपास हुआ। द्रविड़ परिवार में अनेक जातियाँ थीं और उनकी सभ्यता का स्तर एक न था। जहाँ एक ओर तमिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम बोलने वाली सभ्य जातियाँ थीं, वहाँ गोंड, खोंड, उराँव, ब्राहुई बोलियाँ बोलने वाली जंगली जातियाँ भी थीं। जो सभ्य द्रविड़ों से सर्वथा ही भिन्न थीं।[1] एक महत्वपूर्ण बात यह भी है—कभी द्रविड़

---

[1] प्रिहिस्टोरिक इण्डिया। पंचानन मित्र।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषा-भाषी बिलोचिस्तान से बङ्गाल तक फैले हुए थे।[1] कोलों की भाषा आग्नेय परिवार की भाषा थी। आग्नेय परिवार में मलय पेनिनशुला की भाषा, इन्डोनेशिया तथा पौलीनेशिया की भाषा भी है, कोल और द्रविड़ दोनों ही पर आर्यों का प्रभाव पड़ा। ठीक उसी भाँति जैसे आर्यों पर इन जातियों का। संताल, मुण्डा, हो, कुर्कू, शवर, गदव आदि जातियों पर आर्यों का प्रभाव नहीं पड़ा। तिब्बती भाषा में आग्नेय परिवार की भाषा का प्रभाव है।[2] इस सम्बन्ध में भारत का उत्तर पूर्व कोण महत्वपूर्ण हैं। कामरूप गोहाटी के पहाड़ी प्रदेश में आर्य मुण्डा, तिब्बत, वर्मन तथा मोन-ख्मेर परिवार की भाषायें मिलती हैं।[3] खरियाँ, हुरियाँ भाषा जो फरात के मोड़ पर मितन्नी में बोली जाती थीं, उसका द्रविड़ भाषा से साम्य था।

फिनीशियन—फिनीशियन मूल रूप में अफगानिस्तान या भारत में कहीं रहते थे—जो धीरे धीरे पच्छिम की ओर गए। वे लाल सागर और भूमध्य सागर के निकटस्थ देशों से व्यापार करते थे।[4] वे समुद्री डाकू थे, और मिस्र पैलस्टाइन में दास बेचते थे। वे सुन्दर ग्रीको को पूर्व में दास बनाते थे।[5] काटेज फिनिशियनों का केन्द्र था।[6] आर्यों ने उन्हें पराजित किया था। उनका देवता 'रेशफ' था।[7] फिनीशिया पच्छिमी एशिया में भूमध्य सागर के तट पर है। सीरिया देश फिनीशिया के पूर्वी तट पर है।

पणि चोल—ऋग्वेद में 'पणि' नामक एक जाति का वर्णन है, जो गाठ काटते तथा चोर होते थे।[8] ये पणि दक्षिण में बहुत थे और इन्होंने आगे चलकर दक्षिण में पाण्य राज्य स्थापित कर लिया था। ऐसी ही दूसरी चोर डाकुओं की एक जाति और दक्षिण में बसी, जो चोल कहलाने लगी। ये दोनों जातियाँ पाण्य और चोल अच्छी नाविक थीं—तथा व्यापार, समुद्री डाके और दूसरे साहसी कार्यों के कारण ये सम्पन्न हो गए थे।

---

[1] ओरिजन एण्ड डेवलेपमैन्ट आफ बंगाली लैंग्वेजेज। पृ० २८

[2] प्रि आर्यन एण्ड प्रि द्रविडियन पृ० १००–१

[3] ,, ,, ,, पृ० ११३।

[4] द ऋग्वेदिक हिस्ट्री शोइंग हाउ द फिनीशियन्स हैड देयर अर्लीएस्ट होम इन इंडिया। पृ० ४

[5] हिस्टोरियन्स हिस्ट्री आफ द वर्ल्ड २। पृ० ३३४–४५

[6] ऋग्वेदिक इंडिया पृ० ९५।

[7] ऋग्वेदिक इंडिया। १। पृ० १९२

[8] 'अक्रतन् ग्रथितः मृधुवाचः अश्रद्धान् पणीन्। ऋ० ७। ६। ३। चेम्बर डिकशनरी में लिखा है—Panic-pertaining to or like the ancient Carthaginians, faithless. treacherous, deceitful (L. Punicns-Poene, the Carthaginians).

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ये चोल चाल्डिया निवासी थे और इन पर बैबिलोनियन संस्कृति का गहरा प्रभाव था। बैबिलोनियन वायु देवता को 'मतु' या 'मर्तु' कहते हैं। यह निस्सन्देह वैदिक मरुत का अपभ्रष्ट रूप है।[1] इससे पणि और चोलों का सम्पर्क स्थापित होता है, और यह भी प्रमाणित होता है कि ये फिनिशियन वैदिक पणि ही हैं। वैदिक 'मना' और फिनिशियन 'मनह' शब्द एक ही है।[2] यह एक मन वजन के लिए प्रयुक्त है। इसे लैटिन में मिन, ग्रीक में मिना, बैबिलोनिया में मिन, और अंग्रेजी में माउन्ड कहते हैं।[3] फिनीशिया की भाषा में ऊँट को जिमल कहते हैं। अंग्रेजी में कैमिल, यह वास्तव में संस्कृत (क्रमेलक) का अपभ्रष्ट रूप है। चाल्डियन भाषा के अनेक शब्द ऋग्वेद से मिलते हैं जैसे—

चाल्डियन शब्द	वैदिक शब्द	अर्थ
सिन्सब्बुलि	सिनीबालि	अमावस्या
अब्जु	अप्सु	जल
यहवे	यह्व	एक देवता-महान्
इतु	ऋतु	मौसम
तिआमत	तैमात	देवता
उरुगुल	उरुगुला	देवता

इन शब्दों का साम्य असीरियन और अकेडियन भाषाओं से भी है।

धातु विचार—प्राचीन बाइबिल में बर्तन, कीलें, हथियार और दर्वाजे के तवों का उल्लेख है परन्तु वे काँसे के हैं। चित्र लिपियों में फारस से लोहे के निर्यात का संकेत है। भारतीय लोहे को प्राचीन ग्रीक भी मानते हैं। पोन्तस (पुन्त) देश का लोहे के केन्द्र के रूप में प्राचीन ग्रीस और बाइबिल में भी उल्लिखित है। पुना सिन्धु देश का नाम है। फ्लिंडर्स पेत्री को गेरेज—मेड्डम में एक पुराने कब्रिस्तान में लोहा मिला है जिसे ६ या ७ सहस्त्राब्दी पुराना कहा जाता है। श्री फ्लेन्डर का मत है कि मिस्री और पाणि एक ही हैं। वे पुन्त (सिन्धु) से लाल सागर पार करके आए थे, तथा नील नदी के प्रदेश में बस गए थे। दक्षिणी पैलियोलीथिक लोग धातु का प्रयोग करते थे। राजवास, रुरकेत, छोटा नागपुर, फरसवल-दशपुर (मध्य प्रान्त) मानभूमि, आसाम तक इनके चिन्ह मिले हैं। बिलोचिस्तान, मोहन जोदड़ो और सुदूर यांगशाओ में मिले बर्तनों की चित्र रेखाओं में बहुत साम्य है। दक्षिणी यूनान और एजियन भूभाग में

---

[1] The name of Babilonian storm was Matu or martu which, as we have seen, was the same as the Vedic Marut and mart have been taken by the Pani and Cholas to Babylonia.

(Historical History of the World Vol. I. P. 89.)

[2] आनोभर व्यंजन गामश्वमभ्यज्जनम्। सचा मना हिरण्यपा।

ऋ० ८।७९।२

[3] देखिए डा० भण्डारकर कोमेमोरेशन एस्से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी ऐसी ही समानताएँ हैं। इससे भारत से पूर्वी अफ्रीका तक संस्कृति की एक अखण्ड शृंखला चली आती हुई दीखती है। इन बातों में धातु विचार बहुत सहायक है। दक्षिण भारत में बहुत गहराई पर तिन्नेवेली में स्वर्ण मिला है जिसे चार सहस्त्राब्दी से भी प्राचीन कहा गया है। प्रथम, प्रस्तर युगीन हीरे, अनन्त पुर,वेलारी, कुछपाह, कुर्नूल, कृष्णा और गोदावरी में मिले हैं। उत्तर भारत में ताँबा और लोहा मिलता है। द्रविड़ पूर्व जातियों के प्राचीन निवासों में खानें मिली हैं। सिंह-भूमि, छोटा नागपुर, इन्दौर, नैल्लूर, शान, स्टेट्स, नेपाल, कांगड़ा, सिक्किम और कुमायू में ताँबा मिला है। दक्षिण भारत में ताँबे के बाद ही लोहा मिलता है। बीच में काँसे का युग नहीं दीखता। परन्तु पीतल और काँसे का उपयोग हीन धातुओं की भाँति किया गया है। मोहन-जोदड़ो में लोहा नहीं मिलता। पर खासी और कोल प्राचीन जातियाँ तल फौलाद बनाती थीं, में लोहे की तलवारें मिली हैं नीलगिरि में काँसे के प्याले मिले हैं। प्राचीन मट्टियाँ यह प्रमाणित करती हैं कि ताम्रयुग में ही भारत में लोहा प्रयोग होने लगा था तथा कोल जाति धोंकनी से लोहा पिघलाती थीं। यही मिस्र में भी प्राप्त हुआ है। इससे लोहे का प्रथम उपयोग या तो मिस्र में या भारत में हुआ है। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि दक्षिण में ताम्र-युग के चिन्ह नहीं मिलते। पाषाण युग के बाद एक दम लोहा युग दीख पड़ता है। राँची के जंगलों में एक असुर जाति रहती है। वहाँ की प्राचीन मुण्डा और उराव जाति वालों का कहना है, कि ये असुर लोहा पिघलाना जानते थे। अदिचन्नूर मे काँसे के कुछ आभूषण, कुछ बर्तन तथा मूर्तियाँ मिली हैं। रायगिरि में सोना चाँदी और लोहा मिला है। त्रिशूल मिले हैं, जो स्पष्ट शिव पूजा का प्रतीक है। बनावट उनकी अनगढ़ है। नीलगिरि के प्राप्त पात्र आर्य पूर्व शैली के हैं। इनमें और पश्चिम के माना ओरवेश से मिली वस्तुओं में साम्य है। जिनका निर्माण क्रीट के हेगियात्रापड़ा में हुआ था। भीटा की गहरी खुदाई में जो प्राचीन वस्तुओं के नमूने मिले हैं वे ग्रीस या मिस्र की वस्तुओं से साम्य रखते हैं।

'सूकि आस' शब्द'सूर्य के अर्थ में बोला जाता है।[१] ई० मेयर भी इस शब्द को वैदिक 'सूर्याः' मानते हैं। इन सब आधारों पर यह तो माना जा सका है कि फिनि-शियन और चोल बैकिग सभ्यता, सुमेरियन सभ्यता और द्रविड़ सभ्यता के समान सम्पर्क में रहे हैं।

साम्य संकेत—मातृ-पूजा, देव-दासी प्रथा, सिर के बाल देवता को चढ़ाना, मत्स्यावतार की कथा, नाग पूजन, अग्नि प्रदक्षिणा, पीपल, बड़, नीम का पूजन, चन्द्र

---

[१] More noteworthy is Surias since it is explained as meaning the Sun (**श्री भण्डारकर कोमेमोरेशन एस्से। दि अरलीहिस्ट्री आफ-इन्डो ईरानियनस्** by A. Barziedale keith)।

[१] **प्रिहिस्तारिक इण्डिया, दूसरा संस्करण। पंचानन मिस्र।**

पृ० ३६०–३६४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पूजन, अर्घ्य दान, वृषभ पूजा, स्तम्भ पूजा, स्तूप निर्माण, मातृ सत्ता-व्यवस्था, केश सज्जा ये सब मिली जुली बातें और रीति रस्म हैं, जो आस्ट्रियन, द्रविड़, फिनीशियन और आर्यों में कुछ अवान्तर से चली आती रहीं। मोहन जोदड़ो, सुमेरु, बैबिलोनिया, एलाम, मिस्र, दक्षिण भारत, दक्षिणी योरोप, और क्रीट इन सब में भी एक समानता है, जिससे एक दूसरे के गहरे सम्बन्ध सम्पर्क पाए जाते हैं। दक्षिण भारत की 'मातृ-पूजा', 'अम्मा' मिस्र की 'अम्मोन' क्रीट और मोहन जोदड़ो की 'माता' की मूर्तियाँ समान ही हैं। दक्षिणी द्रविड़ों की 'अय्यायी 'माता की उपासना, केरल की काली, भद्रकाली, जहाँ कभी लड़कियों की बलि चढ़ाई जाती थी, इसी परम्परा में हैं। सेगम साहित्य की नर्तकियाँ तथा उत्तरी अफ्रीका तटवर्ती फिनीशियन बस्ती सिक्का में, सीरिया के हेलियोपोलिस में, तथा आर्मीनिया, लीडिया, कोरिया, और एशिया माइनर में देवदासी प्रथा समान रूप में जारी थी।

अन्य साम्य—अन्य वस्तुओं में कब्र और उनकी बनावट, मूर्तियाँ, कुछ पवित्र चिन्हों में भी साम्य है। जो यह प्रकट करता है कि भारत,मिस्र,मेसोपोटामिया और अफ्रीका तथा फारस में इस युग में एक ही सभ्यता थी, तथा एक ऐसी जाति का विस्तार हुआ था, जिसका मूलस्थान एक था। इसमें अब तनिक भी सन्देह नहीं कि ई० पू० तीन सहस्त्राब्दी में भारत, सुमेर, मिस्र और मध्य एशिया से सांस्कृतिक सम्बंध था।[1]

उत्तर काल में बैबिलोन में तीन जातियाँ थीं। 'अमेलु' कुलीन,–पुजारी और सेना के प्रधान योद्धा। 'मुस्किनू' किसान। 'अरडू' दास।[2] आगे आर्यों ने भी इसी आधार पर वर्ण व्यवस्था कायम की। पोलीनेशिया में मुर्दे को बैठा कर दफन किया जाता है। ऐसा ही रिवाज दक्षिण भारत के जुलाहों, शिल्पी, विश्वकर्मा ब्राह्मणों, कोयम्बटूर के औक्खियमो, तिरवांकूर के पिशरोदियों तथा नीलगिरि के हरुलों में पाया जाता है। आस्ट्रेलिया का चन्द्राकृति नौकदार बूमेरङ्ग मदुरा के माशवर काम में लाते थे। मध्य भारत के भील भी कुछ ऐसे ही टेढ़े शस्त्र का उपयोग करते थे। नील नदी की घाटी में भी उसका प्रयोग होता था।[3] बाइबिल में जेकब से खुदा ने कहा—'मैं वेथ-एल का स्वामी हूँ, जहाँ तू स्तम्भ पूजा करता रहा है।' इसमें स्तम्भ पूजा की बात कही है, द्रविड़ परिवार की समस्त जातियों में ही प्रायः दिव्य वृक्ष स्तम्भ, शृंग, सूर्य आदि प्रतीक की पूजा प्राचीन काल से प्रचलित है, अमेरिका के रेडइन्डियन स्तम्भ के ऊपर बारहसिंघे का सिर बाँध कर बलि देते थे।[4] गरुड़, श्येन, कपि तथा वृक्ष के चिन्ह भी सब देशों में पूजित हैं। जो सूर्य के चिन्ह हैं।[5] भारत में गरुड़ ध्वज, कपि ध्वज, वृषभ ध्वज का प्रचलन रहा है। पक्षी तथा स्तम्भ की उपासना

---

[1] प्रि० हिस्टारिक इण्डिया, पंचानन मित्रे, पृ० ३३७–३९

[2] ए स्टडी इन हिन्दू सोशल पोलिटी पृ० १२०–१२८

[3] ओरीजिन एण्ड स्प्रैड आफ द तमिल्स पृ० ३४

[4] ऋग्वेदिक कल्चर आफ द प्रिहिस्टारिक इंडस। पृ० ९८

[5] " " " " " " " ११५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन मिस्र, फिनीशिया, हिन्दू, असीरियन, बैबिलोनियन ग्रीक और लेटिनों में प्रचलित थी।[१] जितना गहराई से विचार करेंगे तो द्रविड़ों का विस्तार अमेरिका तक पहुँचता है।

मय सभ्यता—अमेरिका के मय बड़े शिल्पी और स्थापत्य कला के पारंगत थे। असम्भव नहीं कि उनकी वंश परम्परा त्वाष्ट्र, विश्वकर्मा के रक्त से सम्बन्धित हो। यहाँ हमें यह महत्वपूर्ण बात भी याद रखनी है कि इन्द्र के पराक्रम से बाली का वध न होने तथा त्वाष्ट्र स्त्रीशेरा के वध से दैत्य लोक में से पाँव उखड़ गए थे। स्वयं शुक्र को भी दस बरस अरब में रहना पड़ा था। ऐसी अवस्था में असम्भव नहीं कि उस जाति के लोग अमेरिका पहुँचे हों और मय सभ्यता की स्थापना की हो। 'मय' विश्वकर्मा, त्वाष्ट्र का दूसरा नाम था। मय पाताल में रहते थे, इनका राजा बलि था।[२] मय सभ्यता पर काफी प्रकाश नव्य अध्ययन के बाद डाला गया है। परन्तु प्राचीन आर्य ग्रंथों में भी उनका यथेष्ठ वर्णन है। मिस्र, बैबिलोनिया, फिनीशियन, सभी में ऐसी बातें मिलती हैं, जिनका परस्पर साम्य है, मय और आर्य विवाहों में साम्य है। कृत्रिका नक्षत्र मान और कलियुग के सम्बन्ध में विचार साम्य हैं। पुराणों में लिखा है कि मय ने असुरों के त्रिपुर बसाए थे। नमुचि ने देवों के मित्रों के लिए भूमि पर प्रासाद बनाए थे। इन्द्र ने उसे मार डाला। इन्द्र ने मय को मारा।[३] मय के बनाये हिरण्यपुर में कालकेय, कालकञ्ज तथा पौलोम रहते थे। यह निवात कवचों के नगर की भाँति ही समुद्र पार था।[४] मयों का स्थापत्य अद्भुत था। चिचिनइत्सा के बड़े स्तम्भों पर निर्मित छतें तथा भवन दर्शनीय हैं। उत्तरी अमेरिका और मिस्र में यह किम्वदन्ती है कि वे कहीं बाहर से आकर बसे थे। मिस्री खोपड़ी की बनावट दक्षिण भारतीय खोपड़ी से साम्य रखती है। मातृ-पूजा की महत्ता द्रविड़ों में अधिक थी। जिसका आधार गर्भ धारणा की शक्ति थी। जिसे ये लोग रहस्य समझते थे। प्राचीन सुमेर में भी महामाई की उपासना होती थी। वे उसे पर्वत सुन्दरी के रूप में पूजते और उर के चन्द्र देवता से हर वर्ष उसका ब्याह रचते थे। इससे पर्वत पुत्री पार्वती और शिव के विवाह की तथा चन्द्रकला मस्तक पर धारण करने की मान्यता का मिलान कीजिए। दक्षिण के शैव मन्दिरों में पार्वती का तिरुक कल्याणं (दिव्य-विवाह) रचा जाता है। प्राचीन सुमेर की उपासना पद्धति का दक्षिण की उपासना पद्धति से बहुत साम्य है।[५] मद्रास जिले के पल्लवरम् में प्राप्त मिट्टी के पक्के बर्तनों में बगदाद में मिले बर्तनों से साम्य है। ये बर्तन कफन का काम देते थे। इससे बैबिलोनिया, असीरिया और द्रविड़ सभ्यता को सम्बन्धित किया गया है।[६]

---

१ ऋग्वैदिक कल्चर आफ द प्रि हिस्टारिक इंडस ११८
२ इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली। ३।१९२७। पृ० ३७–३९।
३ एपिक मायथालौजी पृ० ४९
४ ,, ,, पृ ५०
५ न्यू इण्डिया एन्टिक्वेरी। १९३८–३९ पृ० २५–२६
६ ऋग्वेदिक इण्डिया पृ० २५७

CC-0. Panjab University Chandigarh. Digitized by eGangotri Foundation, Chandigarh

दक्षिण भारत के पुजारियों की भांति बाबुल में भी पटेसी वर्ग का राज्य चलता था। चेल्ड़िया में महा पुरोहित पटेसी कहाते थे।[1] बाबुल और दक्षिण भारत के मन्दिरों में देवदासी प्रथा थी।[2]

सारांश यह, कि द्रविड़ भारत में आग्नेयों से कुछ बाद में तथा आर्यों से प्रथम आए। पर यह अन्तर अधिक नहीं है। यह काल त्रिशिरात्वाष्ट्र के वध के बाद या तारकामय देवासुर संग्राम के बाद हो सकता है। तारकामय संग्राम पाँचवा देवासुर संग्राम था, और वृत्रघ्न दसवां। दोनों में २०० वर्षों से अधिक अन्तर नहीं है। यह काल ई० पू० तीसरी शहस्त्रादी के आसपास ही हैं।

द्रविड़ों का पुराना नाम द्रमिक हैं। तथा तमिल का तामिष [3]।

द्रविड़ वसुपुत्र धर की संतान हैं—द्रविड़ और आग्नेय दोनों ही वसुओं की परंपरा में हैं। दक्ष प्रजापति की पुत्री वसु और सूर्य पुत्र यम से ८ वसु वंश चले। जिन में दूसरे वसु अग्नि थे, जो वैदिक देवता भी मान लिए गए थे। उनकी वंश परंपरा में आग्नेय-अग्निवंशी आस्ट्रियन हैं। और द्रविड़ प्रथम वसु धर की संतति हैं। रुद्र धर के भाई हैं, अतः द्रविड़ों के पूज्य देव हैं। इसी प्रकार आदित्य यम उनके पूर्व पुरुष हैं। परन्तु संस्कृति उनकी मूलतः अनार्य रही। भारत में आर्यों के सम्पर्क में उन्होंने वैदिक वर्णाश्रम धर्म अपनाया, परन्तु उनकी परंपरा में जो दैत्य दानवों और असुरों का सम्पर्क था, वह भी कायम रहा। इसी से द्रविड़ वैदिक तो हैं, पर उनका वेद आर्यों से पृथक है। वह कृष्णयजुर्वेद है।

कृष्णयजुर्वेद—कृष्णयजुर्वेद में पशु वध, मद्य पान, स्त्री समर्पण, शिशु पूजन, गोमेध, नरमेध, ब्राह्मण वध, कुमारी वध आदि का विधान सम्मिलित हो गया, जो असुरों की परिपाटी में था।[4] कहा जाता है कि यह कृष्णयजुर्वेद रावण कृत सभाष्य वेद है। इस कृष्णयजुर्वेद के विरोध में भी बहुत कुछ कहा गया है। महीधर उसे मलिन रचना कहता है।[5] प्राचीन भाष्यकार विद्यारण्य भी ऐसा ही कहते हैं।[6] वेद भाष्यकार द्विवेदांग भी कहते हैं-कि ब्राह्मण मिश्रित मन्त्रों के कारण कृष्ण वेद अशुद्ध है।[7]

कृष्णयजुर्वेद की विशेषता–कृष्णवेद की विशेषता यह है कि इसमें मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग एक साथ मिश्रण हैं इसका अर्थ यह है कि उसमें व्याख्याकार

---

१. ऋग्वेदिक इण्डिया पृष्ठ २३३
२. ऋग्वेदिक इण्डिया पृष्ठ २३४
३ प्रि आर्यन एण्ड प्रि द्रविड़ियन।
४. देखिए कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय ब्राह्मण और उस पर सायणभाष्य।
५. 'तानि यजूंषि बुद्धि मालिन्यात्कृष्मानि जातानि' (महीधर)
६. 'बुद्धि मालिन्य हेतुत्वात् तद्यजुः कृष्णमीर्यते' (विद्यारण्य)
७ शुक्लानि यजूंषि शुद्धानि यद्वा ब्राह्मणेन मिश्रित मन्त्रकानि (द्विवेदांग)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की व्याख्याएं भी मूल प्रामाणिक मान ली गई हैं। दूसरे, द्रविड़ इसी एक वेद को प्रमाण मानते हैं, अन्यों को नहीं। आर्यों में संहिता और ब्राह्मण पृथक् २ हैं। मन्त्र ब्राह्मण सब मिलाकर इस संहिता में १८ हजार यजु पढ़े जाते हैं।[1] परन्तु शुक्ल यजुर्वेद में मन्त्र संख्या केवल १९०० ही हैं। जिनका दृष्टा वाजसेन ऋषि है।[2]

दूसरी विशेषता कृष्ण वेद की यह है जो परंपरा सम्बन्धित है-कि आर्य परंपरा के अनुसार यज्ञ कराने के लिए चार विद्वानों की आवश्यकता होती है-जो एक एक वेद के ज्ञाता होते हैं। ऋग्वेद से होता, यजुर्वेद से अध्वर्यु, सामवेद से उद्गाता और अथर्व वेद से ब्रह्मा।[3] सभी आर्यों के यज्ञों में यह परंपरा काम में लाई जाती रही है। परन्तु कृष्ण परंपरा में जब चारों वेद ही नहीं हैं, तब चारों कार्यकर्ता भी नहीं हैं। चारों कार्यकर्ताओं के स्थान पर एक चरक है। वही आचार्य का काम करता है। आर्य ग्रन्थों में चरक की निन्दा की गई है।[4] तीसरी विशेषता शाखा भेद समझी है। वेद पठन पाठन में जो अनेक विधियां निर्धारित हैं। उन्हीं विधियों को शाखा भेद कहते हैं। शाखा भेद के प्रवर्तक ही गोत्र-प्रवर्तक होते हैं। इस प्रकार जाति विभाजन में वेद का महत्व है। ब्राह्मण अनेक शाखाओं और गोत्रों में विभक्त हैं। परन्तु कृष्ण यजुर्वेद की कोई शाखा ही नहीं है। इसलिए द्रविड़ों में जहां इसका प्रचार है, न शाखा भेद है, न गोत्र विस्तार। शाखा भेद के स्थान पर अनुवाकों की संख्या का भेद रखा गया है। इसके अनुसार ६४ अनुवाक द्रविड़ों के, ८० आन्ध्रों के, ४७ कर्नाटकों के, और ८४ तैलंगादिकों के हैं।[5]

अय्यर-नैय्यर—अय्यर और नय्यर दो दल द्रविड़ों के मदरास में हैं। ये आर्य और आर्येतर हैं। परन्तु हैं हिन्दू। मदरास प्रान्त वाले सम्बोधन में महाशय के स्थान पर 'आर्य्य' शब्द का प्रयोग करते हैं।

अन्य मत—महाभारत में लिखा है कि नंदिनी गौ की कथा के पूर्व ही म्लेच्छ जातियों ने द्रविड़ देश आबाद कर लिया था।[6] कुछ पाश्चात्यों का कथन है कि द्रविड़ उस भू-भाग में पहिले रहते थे-जो अब दक्षिण महासागर में जलमग्न

---

१. अष्टादश सहस्त्राणि मन्त्र ब्राह्मणयो सह।
यजुंषि यत्र पठ्यंते स यजुर्वेद उच्यते।

२. द्वे सहस्रे शतंशून्यं मन्त्रे वाजसनेयके।

३. ऋग्वेदेन होता करोति, यजुर्वेदेनाध्वर्युः, सामवेदेनोद्गाता, अथर्वैर्वा-ब्रह्मा।"

४. दुष्कृताय चरकाचार्य (यजु० ३।१०. ब्राह्मण भाग)

५. देखिये—तैत्तिरीय आरण्यक।

६. नन्दिन्या गोस्तनात्पूर्वं जातैर्म्लेच्छैर्विनिर्मितः।
द्राविड़ाख्यो महादेशः स्ववासायेति निश्चितम्। महा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हो गया है। या उन द्वीप समूहों से, जो एशिया और आस्ट्रेलिया के दक्षिण पूर्व में जुड़े थे-और अब समुद्र में डूब गए हैं।[1]

३—समन्वय

साम का माध्यम वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा—यद्यपि-आग्नेय-द्रविड़ और आर्य जातियाँ एवं भारत और अनार्य जातियां जो अन्यभारत में थीं, पुरातन काल से थीं, कुछ न कुछ संस्कृतिक रूप में एक दूसरे से साम्य रखतीं–तथा व्यवहारों और विश्वासों का आदान प्रदान करती रहती थीं। यद्यपि उनमें भिन्न-भिन्न रक्त और संस्कार मिल गए थे, परन्तु भारत में आकर उनमें जो समन्वय क़ायम रहा–वह अद्वितीय था। आग्नेय और कुछ द्रविड़ जातियां भी यद्यपि पिछड़ कर अशिक्षित रह गईं। परन्तु द्रविड़ और आर्यों ने वैदिक धर्म का आश्रय लेकर अपनी सभ्यता और संस्कृति का साम्य कायम रखा। इस कार्य में निःसंदेह-वेद के बाद संस्कृत भाषा का प्रधान हाथ रहा।

जाति प्रभाव और भारतीय समाज—सबसे बड़ी बात तो यह—कि भारत की अन्य जातियों ने भी आर्यों की जाति प्रथा को अपना लिया। जिसने सांस्कृतिक सभ्यता पर भारी प्रभाव रखा। इससे द्रविड़, आग्नेय, हब्शी, तथा मंगोल परस्पर पारिवारिक सूत्र में बंध गए। इनमें राजनैतिक विग्रह तो हुए पर धर्म, सामाजिक जीवन और जीवन विकास में समन्वय रहा। आर्यों ने केवल अपने संस्कार ही दूसरों पर नहीं लादे, उनके भी रीति रिवाज़ अपना लिए, और इस प्रकार उस अति प्राचीन काल में ही सबका एक मिला जुला भारतीय समाज कायम हो गया। जिसमें आर्येतरों की संस्कृति की ही प्रधानता थी।[2]

आर्यों पर आर्येतर प्रभाव—भारत में आकर आर्यों ने बिल्कुल नई संस्कृति को जन्म दिया। जो अपनी अपरिपक्व अवस्था में ही अनेक अनार्य तत्वों को अपने में आत्म सात कर गई। ये तत्व उसने आग्नेयों से, द्राविड़ों से और इन अन्य जातियों से लिए, जो उसकी अपेक्षा पुरानी परम्परा पर क़ायम थी। भले ही वे सब बातें कितनी ही अवैज्ञानिक थीं, इनमें लिंग पूजन, देवी पूजन, पूजा विधि, भूत-प्रेत की भावना आदि थीं, जिनका संकेत हम कर चुके हैं। आर्य स्वयं प्रकृति पूजक थे, इससे उन पर इन सब बाहरी बातों का प्रभाव सरलता से पड़ गया। यहां तक-कि आर्यों में वैदिक देवताओं की पूजा रुक गई, और अनार्य देवताओं की पूजा अनार्य विधि से ही प्रचलित हो गई।

---

1. Others think that the Dravids came from the south, either from a great country which very long ago stretched far into the Indian ocean to the south of India, but now lies sunk beneath the sea and cannot be seen, or from the islands which stretched away from the south east of Asia to Australia, and were formerly joined to it by land now sunk beneath the sea.

(History of India by E. Marsden, B. A.)

२—देखिए हिन्दू व्यू आफ लाइफ (डा० राधा कृष्णनन)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रीति रिवाज़ों और धर्म विश्वासों की भांति दन्त 'कथाओं का भी बड़ा भारी आदान प्रदान हुआ। द्रविड़-औष्ट्रिक और नीग्रो समाज की, तथा पीछे की जातियों-मंगोल, यूनानी-शक-आभीर आदि जातियों की दन्त कथाएं आर्य साहित्य और समाज में प्रविष्ट हो गईं। बौद्ध जाति की कथाएं तो बहुत कुछ द्रविड़ प्रभावित हैं।

विवाह बन्धन—आर्यों ने एक महत्वपूर्ण नियम बनाया। यद्यपि वह आगे उनके पतन का भी कारण बना, और उसकी रोक थाम भी लड़ाई से की गई, पर उससे एक यह लाभ हुआ कि आर्येतर जातियों का आर्यों से सांस्कृतिक अन्तर बढ़ गया। वह नियम था विवाह सम्बन्धी। उच्च और कुलीन आर्य नीचे और आर्येतर जाति की स्त्री का पत्नी भाव से ग्रहण कर लेते थे, और फिर उसकी संतान को अपना कुल गोत्र तथा उत्तराधिकार देते थे। यह एक ऐसा प्रवाह था, जो आर्यों के रक्त तक में प्रवेश कर गया, और आर्य संस्कृति में अनार्य संस्कृति का बहुत समन्वय हो गया। और आर्य द्रविड़ों के रीति-रस्म, जाति-पांति-कर्म-आचरण साहित्य-संस्कृति-इतिहास पुराण सब एक जैसे हो गए। निःसंदेह इससे आर्यों ही में द्रविड़ प्रभाव अधिक आया। पर यह भी कहा जा सकता है-कि यदि ऐसा न होता और द्रविड़ आर्यों की उद्ग्रीव संस्कृति तथा संस्था से समन्वय न करते, तो वे भी आग्नेयों की भांति असभ्य बर्बर हो जाते। द्रविड़ों की सभ्य संस्कृति वास्तव में आर्यों ही की सभ्य संस्कृति थी। आज द्रविड़ आर्य संस्कृति मिल कर जो हिन्दू संस्कृति बनीं है, यह द्रविड़ प्रधान संस्कृति है।

ऋग्वेद निःसंदेह आर्यों का ग्रन्थ था। द्रविड़ों ने उसे नहीं अपनाया। परन्तु यजुर्वेद को अपने ढंग पर सम्पादित कर वैदिक संस्कृति पर अपने समाज को आधारित किया। फिर तो उन्होंने उपनिषद्, पुराणों, दर्शनों, सूत्र ग्रन्थों, धर्माचारों, वेद-भाष्यों, टीकाओं, भाष्यों, के ही द्वारा जो कार्य किया-उसने उन्हें हिन्दुओं का धार्मिक नेता बना दिया।

संस्कृत का माध्यम—द्रविड़ भाषाएं अवश्य सिमिट कर दक्षिण में ही केन्द्रित हो गई। परन्तु उत्तर भारत के धर्मों ने जो संस्कृत को अपनी सांस्कृतिक साहित्य भाषा बनाया था। उसे द्रविड़ों ने भी स्वीकार कर लिया और इस प्रकार संस्कृत आर्य और द्रविड़ों की मध्यवर्तिनी सांस्कृतिक भाषा बन गई। संस्कृत ने विभिन्न रक्त, विभिन्न संस्कृति और विभिन्न विचारों के लोगों को समन्वय के मार्ग पर ला खड़ा किया।

तीर्थ—तीर्थ स्थानों का भी इस समन्वय कार्य में भारी प्रभाव रहा। प्राचीन काल के ऋषियों के आश्रम-उपनिवेश, संगम स्थान, जनपद, सभी आगे तीर्थ बन गए। जिन्होंने सेतुबन्ध रामेश्वर से बद्रीनाथ और जगन्नाथ तक लोगों को एक सूत्र में पिरो दिया। इन तीर्थों से देश में एकदेशीयता आई। विचारों और जीवन क्रियाओं के आदान प्रदान की नींव पड़ी। विशेष कर राम और कृष्ण कथा के अनेक प्रसङ्ग उत्तर दक्षिण की संस्कृति को एक करने में बड़े सहायक हुए। इसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भौगोलिक एकता का वर्णन वायु पुराण में हैं। नदियों का भी ऐसा ही सार्व भौम प्रभाव है।[२] यही दशा प्राचीन पवित्र पुरियों की भी हैं।[३]

राजनीतिक प्रभाव—यह जो धार्मिक और सामाजिक समन्वय हुआ, इसका प्रभाव भारत की राजनीति पर भी पड़ा। बड़े बड़े राजाओं ने चक्रवर्त्तित्व स्थापित हुआ, कि जिससे एकदेशीयता की वृद्धि हुई। तीर्थ-स्नान और शास्त्र चर्चा के लिए विद्वान उत्तर से दक्षिण सर्वत्र घूमते थे। संस्कृत भारत की मानस भाषा थी, जिसके सामने देश का मस्तिष्क और हृदय एक स्थान पर सिमट कर एकत्रित हो गया।

शिव पूजन और गणेश—शिव पूजन का अधिक प्राचीन सम्बन्ध द्रविड़ों से ही है। क्योंकि शिव वास्तव में उनके पूर्वज और इष्ट हैं। आर्यों ने द्राविड़ों के बाद शिव पूजन किया। यद्यपि यजुर्वेद में रुद्र की स्तुति है। परन्तु एक बात बड़े मार्के की है-कि जहां आर्यों में अकेले शिव का पूजन चला, वहां द्रविड़ों में शिव के सारे परिवार की पूजा होती थी। इससे भी अनुमान होता है कि शिव से उनके पारिवारिक सम्बन्ध थे। शिव पुत्र गणेश और कार्तिकेय की बड़ी बड़ी मूर्तियां दक्षिण के शिव मन्दिर में हैं। उत्तर कालीन हिन्दू तो गणेश पूजन शुभ कर्मों के आरम्भ में ही करते हैं। और गणेश का प्रतीक एक मिट्टी का ढेला रख लेते हैं। कार्तिकेय का एक नाम दक्षिण में सुब्रह्मण्यम् भी है। बौद्धों की महायान शाखा में गणेश को **विघ्नेश** कह कर पूजा जाता था। हिन्दुओं में भी वे विघ्नहरं हो गए। आजकल गणपति का जो मन्त्र गणेश पूजा के समय ब्राह्मण पढ़ते हैं,[४] उसमें 'गणपति' शब्द ने उन्हें भ्रम में डाल दिया है। वास्तव में वह अश्वमेध के अश्व का मन्त्र है।

ग्राम देवता—ग्राम देवता प्रायः सब क्रूर कर्मा होते हैं। उनकी मिट्टी या लकड़ी की मूर्ति होती है, उन्हें पूजा से शान्त किया जाता है। गधे पर सवार होने वाली शीतला (चेचक की देवी) कुत्ते पर चढ़ने वाले भैरव, चूहे पर चढ़ने वाले गणेश जी। तथा हाथी के मुंह वाले गणेश जी आदि को इसलिए पूजा जाने लगा, वे कि किसी काम में बाधक न हों, लोग इन्हें डर कर ही पूजते थे।

गणेश—अमेरिका के रेड इण्डियन एक देवता को पूजते हैं, जिसका धड़ मनुष्य का तथा सिर हाथी का होता था। यह मूर्ति वास्तव में गणेश ही की है। तथा अमेरिका में हाथी नहीं होता, अतः यह जाति वहां उसे अपने साथ बाहर से ले गई

---

१. उत्तरं यत्स मुद्रस्य हिमाद्रेश्चेव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संतति॥ (वायु पुराण)

२. गंगा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदा सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधं कुरु॥

३. अयोध्या मथुरा माया काशी कांची—अवन्तिका।
पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैते मोक्षदायिका॥

४. गणनान्त्वा गणपतिं हवा महे····· यजुर्वेद।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है, जहाँ हाथी होते थे। गणेश के पिता रुद्र भी हाथी की खाल ओढ़ते हैं। अतः यह भावना भी पर्शिया की नहीं है। क्योंकि हाथी पर्शिया में भी नहीं होता। बर्मा व भारत में होता है।

हिन्दु गणेश को आरम्भ का देवता मानते हैं। प्रत्येक शुभ कर्म के आरम्भ में गणेश पूजा होती है। वैदिक वाङमय में 'ओ३म्' आदि का अक्षर है। मंगलाचरण के लिए ओ३म् ही लिखा जाता है। यह ओं३म् ही गणेश की मूर्ति बन गया है। और इस में वैदिक अवैदिक देवताओं का अद्भुत साम्य है।

इस प्रकार अकार में सिर और शरीर, 'ो' का 'ा' सूंड 'ँ', एक दन्त, ओं का '०' मोदक और प्लुत का '३' चिन्ह मूषक वाहन है।

इस प्रकार शुभ स्वस्तिक चिन्ह भी 'ओं' का ही रूप है, जो जर्मन नाजियों का राष्ट्रीय चिन्ह था तथा, प्राचीन अमेरिका, पेरू, मेक्सिको, मिश्र में भी माना जा रहा है।*

गणेश का रंग लाल है। नैपाल में रहने वाले मंगोलों का रूप भी वैसा ही लाल होता है। क्षत्रिय का वर्ण भी लाल कहा गया है। अमरीका के रेड इंडियन्स भी लाल हैं। इस प्रकार इन सभी जातियों से गणेश का समन्वय होता है।

इन्द्र और सूर्य—अनाम की खुदाई में जो शिला लेख मिले हैं, उनसे प्रगट होता है-कि इनके राजाओं की उपाधि सूर्य वंशी इन्द्र थी। जो 'इन्क' के नाम से प्रसिद्ध थी। यहां मिस्र से मिलती जुलती सूर्य पूजा भी प्रचलित थी[1]। वैष्णव धर्म में प्रथम विष्णु ही की पूजा प्रचलित हुई, जो सूर्य पूजन ही था। कुछ लोगों का कहना है कि वैदिक विष्णु ही द्रविड़ों के एक आराध्य देवता है।

वैदिक विष्णु की उपासना नारायण वासुदेव की परंपरा में महाभारत कालीन नारायण या पंचत्तत्र मत, और फिर गुप्तकाल का वासुदेव भागवत मत है।

वालिसद्म पाताल—'अधोभुवन पाताल वलिसद्म रसातलम्। नागलोकोऽथ कुहरं सुषिरं विवरै विलम्।' यह अमर कोष का श्लोक है। इसमें पाताल रसातल

---

* देखिए तिलक का गीता रहस्य। तथा दी सीक्रेट आव दो पैसेफिक।।
'ओंकार रूपी भगवान् यो वेदादौ प्रतिष्ठतः।
यं सदा मुनयोः देवा स्मरन्तीन्द्रादयो हृदि।।
आकार रूपी भगवानुक्तस्तु गणनायकः।
यथा सर्वेषु कर्मेसु पूज्यते सो विनायकः'।। (गणेश पुराण)

1. The piece of terra-cotta here illustrated showing the god of the ancient people of Chimu was discovered near Trujillo.

Mr. T. Hewith Myring. Its antiquity is undoubted dating possibly to 5,000 B. C. (ibid, P. 5817)

State Museum, LUCKNOW.
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बलि सदन-नाम लोक सभी को एक कहा है, यह स्थान दक्षिण अमेरिका में है, जो बिविया कहाता है। यही स्थान मूल अमेरिकनों का मूल स्थान है।[1]

नीच्य और अपाच्य—इन दोनों जातियों का वर्णन एतरेय ब्राह्मण में है।[2] इनका स्थान पच्छिम दिशा में कहा गया है। तत्कालीन भौगोलिक स्थिति पर हम आज विचार नहीं कर सकते, परन्तु भारत के पश्चिम में ही अमेरिका का मध्य भाग है, और वहीं मैक्सिको रियासत में एक 'अपच्य' नाम के मूल निवासी रहते हैं। वे सारी बातें मूल रूप से अमेरिका की प्राचीन जातियों का प्राचीन भारत की जातियों से परंपरा का सम्बन्ध जोड़ती है।

४—आर्यों का भारत-प्रवेश

संग्राम—ग्राम शब्द प्राचीन है। इसका अर्थ है समूह। जब एक एक कुटुम्ब बना कर लोग पृथक् पृथक् समूहों में रहते थे, तब उन समूहों का नाम ग्राम पड़ गया था। समूह का जो प्रधान पुरुष होता था, वही ग्राम का मुखिया होता था, और उसी के नाम पर ग्राम का नाम पुकारा जाता था। जब युद्ध के लिए अनेक ग्राम एक स्थान पर एकत्रित होते थे, तब उसे 'संग्राम' कहते थे। आगे संग्राम शब्द युद्ध के ही अर्थों में व्यवहृत होने लगा।[3]

देवासुर संग्राम—देव-दैत्य-दानव-नाग-गरुड़ आदि दायाद बान्धव जन एक ही स्थान पर काश्यप सागर तट पर रहते थे। तब उनमें विविध भू-सम्पत्ति के मामलों में परस्पर संग्राम होते रहे।[4] ये संग्राम पुराणों में देवासुर संग्राम के नाम से विख्यात हैं। समय समय पर हिरण्यकशिपु से लेकर नहुष के भाई रजि तक या बाणासुर तक बारह देवासुर संग्राम लगभग ३०० वर्षों में हुए। ये जगतविख्यात युद्ध थे। नहुष पुत्र रजि ने इनको समाप्त किया।

पांचवां देवासुर संग्राम-पांचवाँ देवासुर संग्राम 'तारकामय' था[5]। यह संग्राम अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इसमें प्रसिद्ध दैत्य राज प्रह्लाद का पुत्र विरोचन मारा

---

1. Now as we find them on the Eastern slopes of the cordillers from the peninsula of Goujira in the north down to the borders of Chili and in specially large numbers in Eastern Bolivia, the origina home of all these tribes is probably to be sought in this direction. (Harmsworth History of the World, P. 5680)

२. तस्मादेतस्यां प्रतीच्यां दिशिये के च नीच्यानां राजानो ये ऽपाच्यानां स्वाराज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते स्वरालित्ये नानाभिषिक्तानाचक्षते। (एतरेय ब्रा० महा अभिषेक प्रकरण)।

३—ओरिजिन एण्ड डवलपमेंट आफ बंगाली लैंग्वेज पृ० ३०-३१

४—मत्स्य पुराण ४७।४१

५—आसात् त्रैलोक्य विख्यातः संग्रामस्तारकामयः। २ वायु। ४२।१०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया था। उसका वध इन्द्र ने किया था [1]। इस संग्राम के अनेक गम्भीर राजनैतिक प्रभाव हुए। सबसे अधिक यह, कि भारत में आर्यावर्त की स्थापना हुई। इसी घटना के बाद सम्भवतः आग्नेय-द्रविड़, और आर्यों को भारत में आकर बसना पड़ा।

चन्द्र—भृगु के पौत्र और शुक्र के पुत्र अत्रि थे। वे वेदर्षि और बड़े भारी असुर याजक थे। उनके पुत्र चन्द्र थे[2]। असुर याजक कुल के होने से चन्द्र अत्यन्त प्रतिष्ठित पुरुष थे। विद्वान्–और वीरों के नेता थे। चिकित्सक और औषधि वनस्पतियों के गुण दोषों के ज्ञाता थे। वे वनस्पतियों के स्वामी कहाते थे। दक्ष ने इन्हें सत्ताईस कन्याएं दी थीं। वरुण इन से प्यार करते थे। और अग्नि के ये मित्र थे। चन्द्र इन्द्र के अभिन्न मित्र थे। उसने इन्हें देव भूमि में वनस्पतियों का स्वामी नियुक्त किया था, और चन्द्र देवभूमि में इन्द्र के पास रहते थे।

तारकामय—देवों के याजक वृहस्पति थे। उनकी पत्नी का नाम तारा था। वृहस्पति की पत्नी तारा से चन्द्र का गुप्त प्रेम हो गया, और वह अवसर पाकर उसे भगा कर दैत्य भूमि में ले गया। इस बात को लेकर जो झगड़ा आरम्भ हुआ, उसने आगे विराट् रूप धारण कर लिया। वृहस्पति का पक्ष सब देवों और इन्द्र ने लिया, और चन्द्र के साथ सब दैत्य दानव मिल गए। घातक देवासुर संग्राम हुआ, इस युद्ध में देव हारे। परन्तु प्रह्लाद पुत्र विरोचन इस युद्ध में काम आया। यही युद्ध तारकामय संग्राम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जो पांचवां देवासुर संग्राम था। अन्त में जब संधि हुई–तो तारा वृहस्पति को लौटा दी गई। परन्तु उस समय वह गर्भवती थी, और गर्भ चन्द्र का था। तारा को लौटाते समय यह शर्त हुई कि जन्म होने पर बालक उसके पिता चन्द्र को लौटा दिया जाय। इसके बाद तारा ने पुत्र प्रसव किया, और संधि के अनुसार वह चन्द्र को दे दिया गया।

चन्द्र पुत्र बुध—इस बालक का नाम बुध रखा गया। युवा होने पर सूर्य पुत्र वैवस्वत मनु ने इसे अपनी पुत्री इला ब्याह दी, और तपोभूमि का वह प्रदेश-जो आदित्यों के अधिकार में था, दहेज में दे दिया।

इलावर्त—तब से यह प्रदेश 'इलावर्त' कहाया। जिसे पर्शिया के प्राचीन इतिहास में 'एलम' कहते हैं। इला के नाम पर उसका वंश भी दैत्यों की परम्परा से मातृगोत्र पर 'एल' कहकर पुकारा गया। तपोभूमि के अतिरिक्त वह प्रदेश भी, जहां के अधिपतियों का याजक-चन्द्र कुल था। इलावर्त ही के नाम से विख्यात हुआ। इस प्रकार वह सारा असुर प्रदेश जो भारत के उत्तर

१—विरोचनस्तु प्राह्लादिर्नित्यमिन्द्र वधोद्यतः।
इन्द्रेणैवतुविक्रम्य निहितस्तारकामये। मत्स्य० अ० ४७। अ० ४८।
देवासुरास्संयत्ता आसन्·····।
प्रह्लादोहवैकायाधवः। विरोचनंस्वंपुत्रमपन्यधत्त। तैत्ति०। बा०१।५।६।१

२—आज भी ईरानी चन्द्र की पूजा करते हैं। वहां चान्द्र वंश ही है। ईरानी रोज़ा या व्रत को सोम कहते हैं। यह रोज़ा व्रत चान्द्रायण व्रत है। ईरान में सोमा, आरानगर, सोमस नदी और ग्रीस में सोमास द्वीप है। काश्पय सागर तट पर जन्म लेने से चन्द्र को अम्बुधिनाथ कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चिम में था। तथा आधुनिक गिलगिट के समीप तक सारा भू-भाग, तथा एशियाई रूस का दक्षिण-पश्चिम भाग और ईरान का पूर्वी-भाग समूचा इलावर्त देश के अन्तर्गत था।

महाभिनिष्क्रमण—चन्द्र पुत्र बुध असुर याजक ऋषि कुल में होने से सब दैत्य दानवों में सुप्रतिष्ठित था। अब सूर्य पुत्र मनु की पुत्री से विवाह हो जाने पर वह और भी सम्मानित हो गया। देव भूमि और असुर भूमि पर एक प्रकार से उसका पूरा अधिकार हो गया। परन्तु जन्म सम्बन्धी अपवाद और बढ़ते हुए देव दैत्यों के वैर के कारण दोनों ही स्वसुर दामाद बुध और मनु को वहां रहना कठिन हो गया, और उन्होंने देव भूमि त्याग दी, और दुरूह हिमालय को पार करते हुए वे भारत में चले आए।

भारत-प्रवेश—आर्यों का यह भारत प्रवेश सम्भवतः उत्तर पश्चिम की ओर सिन्धु पथ से नहीं हुआ। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि इन प्रदेशों में प्राचीन भारतों तथा द्रविड़ों के दृढ़ राज्य थे। इसके अतिरिक्त यह भूमि देव दैत्य भूमि से पश्चिमोत्तर सीमा पर सम्बन्धित थी, अतः आर्यों का देव लोक से, सीधे मध्य हिमालय, किन्नर-देश-गढ़वाल और कूर्माचल के रास्तों से होकर भारत प्रवेश हुआ। तथा वे कुर्मा-स्वात-क्रुमु (कुर्रम) तथा गोमली (गोमल) से आए और वे गंगा जमुना की घाटी तक आकर रुके।[1]

पाश्चात्यों का मत है कि आर्यों की दो शाखाएं भारत में आईं। डा० हार्नली का मत है-कि ये दोनों शाखाएं मानव (मनु वंशी) और एल (चन्द्र वंशी) थे। वास्तव में ये इन दोनों वंशों के मूल पुरुष—मनु और बुध थे।

५—आर्यावर्त की स्थापना

अयोध्या और प्रतिष्ठान—भारत में आकर मनु ने सरयू तट पर अयोध्या नगरी बसाई, और अपने पिता सूर्य के नाम पर सूर्य वंश की गद्दी स्थापित की। बुध ने गंगा यमुना के संगम पर प्रतिष्ठान पुरी बसा कर उसे अपने पिता के नाम पर चन्द्र वंश की राजधानी बनाई।

पितृसत्ता की स्थापना—संसार के नृवंश में यह नई स्थापना थी-कि पिता के नाम पर नए कुल और नए वंश स्थापित हुए। कुल परम्परा पितृमूलक निश्चित करने पर उन्हें विवाह की मर्यादा भी दृढ़ करनी पड़ी। क्योंकि एक पत्नी अनिवार्य रूप में एक ही पुरुष की स्थायी पत्नी होने ही पर पितृ सत्ता चल सकती थी। कुल परम्परा पितृ मूलक निश्चित होने से विवाह मर्यादा इतनी कठोरता से दृढ़ बद्ध की गई-कि यदि वीर्य किसी अन्य पुरुष का भी अनुदान लिया गया, तो भी संतति का पिता उस स्त्री का विवाहित पति ही माना गया। इस परिपाटी के कारण बहुत वरिष्ट आर्यजनों ने दूसरों की पत्नियों को वीर्यदान दिया, और उनकी संतान वीर्यदाताओं की नहीं-उस स्त्री के विवाहित पति ही के कुल गोत्र को चलाने वाली प्रसिद्ध हुई। इस परिपाटी से आर्य

१—इन्डो आर्यन एन्ड हिन्दी पृ० ४४–४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाति एक संगठित जाति बनती गई। यह स्वाभाविक था-कि उनके राज्य-सम्पत्ति आदि सब वैयक्तिक होते गए और देखते देखते आर्यावर्त में मानवों और एली (सूर्यवंशियों और चन्द्रवंशियों) के महाराज्यों का विस्तार हो गया। आर्यों में धीरे धीरे इन दोनों वंशों की उत्तर भारत में अनेक शाखाएँ फैलीं। जो चन्द्र मण्डल और सूर्य मण्डल के नाम से विख्यात हुई। दोनों मण्डलों का संयुक्त नाम 'आर्यावर्त' पड़ा। जिसे शुभ कामों में संकल्प पढ़ते समय सम्पूर्ण भारत से पृथक् माना जाता है [1]।

वैदिक यज्ञ धर्म—आर्यों ने भारत में आकर वैदिक यज्ञ धर्म अपनाया। तथा वर्ण व्यवस्था और परिवार मर्यादा को प्रचलित किया।

इस प्रकार पितृ सत्ता, वैदिक धर्म, यज्ञ संस्था, वर्ण व्यवस्था, और परिवार प्रथा आर्यों की नई संस्कृति की प्रतीक बनी।

१—देखिये संकल्प सूत्र में : 'जम्बू द्वीपे भरतखंडे आर्यावर्तान्त के देशे.....

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नवां--अध्याय

त्रेता

१--आर्यों के राजवंश

पौराणिक वंशावली—पौरणिक वंशालियाँ बहुत अस्त व्यस्त हैं। पुराणों में कोई स्थिर सम्वत् नहीं है। परन्तु प्राचीन सूर्यवंश और चन्द्रवंश का वर्णन प्रायः सभी पुराणों में है। तथा इन राजवंशों की वंशालियां जानने को हमें पुराणों का आश्रय लेने को छोड़ दूसरा उपाय नहीं है। परन्तु पृथक् पृथक् पुराणों में पीढ़ियों की संख्या और नामों में अन्तर है। बाल्मीकि रामायण की संख्या भी अन्य पुराणों से नहीं मिलती। इसका कारण यह है-कि पुराणों में राज्यों के उत्तराधिकारियों की सूची मात्र हैं। पिता के बाद पुत्रों की वंशालियां नहीं हैं। गड़बड़ी का एक कारण यह भी है-कि अनेक व्यक्तियों के कई नाम हैं, और कहीं कोई नाम गिनाया है कहीं कोई। इसलिए सभी पुराणों तथा बाल्मीकि रामायण का तुलनात्मक ऊहापोह के साथ अध्ययन करने के बाद कहीं ये वंशावलियां स्थिर होती है।

पौराणिक आधार—वंशावलियां विष्णुपुराण में सर्वाधिक पूर्ण हैं। उसके विवरण भी प्रामाणिक हैं। पूर्णता की दृष्टि से विष्णु पुराण के बाद हरिवंश पुराण का नाम है। उसके बाद मत्स्य पुराण है। कुछ अत्यन्त प्राचीन बातों के संकेत मत्स्य और वायु पुराण में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

पार्जीटर और प्रधान—पाश्चात्य पण्डितों में पार्जीटर ने त्रेता के आर्य राजवंशों की खूब गहरी छान बीन की है। यद्यपि उसके वर्णन साधारण हैं, पर प्रत्येक कथन के आधार पदनोटों में दिए हैं। उसकी पुस्तक का नाम 'एन्शिएन्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन' है। दूसरे विद्वान डा० सीतानाथ प्रधान हैं। उन्होंने एक ग्रन्थ इस विषय पर लिखा है—'क्रोनोलाजी आफ एन्शिएन्ट इण्डिया'। उन्होंने पार्जीटर से अधिक परिश्रम से ऊहापोह की हैं। तथा उनके मत से पार्जीटर कृत निर्धारित वंशावलिया अशुद्ध ठहरती हैं। परन्तु उन्होंने द्वापर की राम से युधिष्ठिर तक के काल की वंशावलियों को अधिक पुष्ट किया है। त्रेता युग, वैवस्वत मनु से राम तक की वंशावलियों पर पार्जीटर ने ही अधिक प्रकाश डाला है।

पौराणिक महत्व--पुराणों में भारतीय इतिहास की बहुत अधिक सामग्री है। भारतीय जीवन का आदर्श, संस्कृति, सभ्यता, तथा विद्या वैभव, की बहुत कुछ झांकी पुराणों से हमें प्राप्त होती हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशों मन्वन्तरस्तथा।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम्।

इस कथन के अनुसार पुराणों में पांच विषयों का निरूपण हैं। हमने त्रेता-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालीन वंशालियों के निर्धारण में यद्यपि पार्जीटर की ही गवेषणा पर मुख्य दृष्टि रक्खी है। पर हमने प्रधान को भी दृष्टि में रखा है। फिर भी हमने उनका अन्धानुसरण नहीं किया। पाश्चात्य इतिहासों तथा मूल सन्दर्भों के विवादास्पद स्थलों की ऊहापोह अन्य स्रोतों से करके अपना मत स्थिर किया है।

एक अध्ययन—पौराणिक वंशावलियों का यदि हम अध्ययन करें-तो उसके दो विभाग किए जा सकते हैं। एक महाभारत पूर्व की, दूसरी महाभारत बाद की। महाभारत पूर्व की वंशावलियों का अभिप्राय: हुआ त्रेता-द्वापर की संयुक्त वंशावलियां। इनमें सबसे अधिक गड़बड़ है। महाभारत बाद की अपेक्षाकृत ठीक है। विष्णु पुराण मनु से लेकर बृहद्बल (महाभारत कालीन) तक सूर्यवंश की ९२ पीढ़ी, शिव पुराण ८२ पीढ़ी, भविष्य पुराण ९१ पीढ़ी, और भागवत पुराण ८८ पीढ़ी मानता है। महाभारत में भी मनु से महाभारत काल तक की दो वंशावलियां दी हैं। एक में तीस पीढ़ियां हैं। दूसरे में ४३। इन वंशावलियों में पिता पुत्र के नाम का ठिकाना नहीं है। उत्तराधिकारी का संकेत हैं। इसके अतिरिक्त मान्यताओं में भी अन्तर है। महाभारत में नहुष और ययाति को चन्द्रवंशों में गिनाया गया है, पर बाल्मीकि में इन्हें सूर्यवंशी अम्बरीष का पुत्र कहा गया है।†

हम जानते हैं कि मनु से सूर्य वंश चला, और मनु की पुत्री इला से चन्द्रवंश। सूर्य वंश का मूल पुरुष इक्ष्वाकु और चन्द्र वंश का पुरूरुवा हुआ दोनों वंश साथ साथ चले। पर आगे इनमें बहुत घट बढ़ हो गई। युधिष्ठर चन्द्र वंश की ५० वीं पीढ़ी में हुए। पर उनका समकालीन सूर्य वंशी राजा बृहद्बल सूर्य वंश की ९२ वीं पीढ़ी में हुआ। परशुराम ने सहस्रार्जुन हैहय को मारा, जो चन्द्रवंश की १९ वीं पीढ़ी में था। उसका समकालीन सूर्य वंशी राजा अश्मक सूर्य वंश की ५२ वीं पीढ़ी में था। सुदास सूर्य वंश की ५१ वीं पीढ़ो में था। पर जिन ययाति के पुत्रों से उसका युद्ध हुआ, वे चन्द्रवंश की छठी पीढ़ी में थे।

इसी प्रकार ययाति पुत्र द्रुहयु को मारने वाला सूर्य वंशी सर्वकाम ५० वीं पीढ़ी में है। विश्वामित्र चन्द्र वंश की १५ वीं पीढ़ी में थे, पर उन्होंने जिस कल्माष पाद के द्वारा वशिष्ट पुत्रों को मरवाया, वह सूर्य वंश की ५१ वीं पीढ़ी में थे। जबकि सूर्य वंश और चन्द्र वंश साथ साथ चले। राम सूर्य वंश में मनु से ६३ वीं पीढ़ी में हैं, और युधिष्ठिर चन्द्र वंश की ५० वीं पीढ़ी में। ऐसी दशा में युधिष्ठिर राम से १३ पीढ़ी अर्थात् कोई ३६४ वर्ष पूर्व हुए। तब यह भी मानना पड़ेगा-कि महाभारत संग्राम ३६४ वर्ष बाद राम रावण युद्ध हुआ।

वास्तविक बात यह है कि ये वंशावलियां कहीं कहीं नामावलियां हैं। कहीं कहीं मुख्य मुख्य कोई नाम गिनाए हैं, कहीं दूसरे। बीच में कुछ नाम छोड़ दिए गए

---

†—बाल्मीकि, बाल० सर्ग ७०। श्लो० ३६।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं। परन्तु मुख्य नाम सब ग्रन्थों में एक ही हैं। प्रसिद्ध नामों ही का उल्लेख किया गया है।[1]

पुराणों के अतिरिक्त मुख्य नामावलियां ब्राह्मण ग्रन्थों में भी हैं।[2]

२. मानव सूर्य वंश

वैवस्वत-मनु—विवस्वान सूर्य के पुत्र वैवस्वत मनु सातवें मनु थे।[3] इन से पूर्व के छै मनु स्वायंभुव वंश में थे। इनका नया वंश चला। तथा इनके काल से त्रेता युग आरम्भ हुआ। वैवस्वत मनु आर्य जाति के संस्थापक और व्यवस्थापक हुए। ये मनु प्रथम आर्य राजा, प्रथम कर ग्रहण कर्त्ता, प्रथम दण्ड विधान निर्माता तथा प्रथम नगर निर्माता थे।[4] इन्हीं ने राज व्यवस्था, धर्म व्यवस्था, दण्ड व्यवस्था और समाज व्यवस्था का एक मानव धर्मशास्त्र रचा। जिससे राज्य शासन विधान मूलक बना। समाज व्यवस्था का सारा आधार मनु ने दो बातों पर अवलम्बित किया—

१—आचार व्यवस्था।

२—वर्ण व्यवस्था।

दोनों बातों ने आर्य जाति को एक व्यवस्थित और सुगठित जाति बना दिया। दोनों ही बातें प्रथम संक्षिप्त रूप में थीं, पीछे उनका बहुत विस्तार हुआ।

आर्य जाति की स्थापना—मनु ने जिस आर्य जाति की स्थापना की—उसमें

---

१. अपरे ये च पूर्वे वै भारता इति विश्रुताः।
भरतस्यान्ववाये हि देवकल्पा महौजसः॥
अभूवुर्ब्रह्म कल्पाश्च वहवो राज सत्तमाः।
येषामपरिमेयानि नामध्मेयानि सर्वशः॥
तेषांतु ते यथा मुख्यं कीर्तियिष्यामि भारत।
महाभागन्देन्दिवकल्पान्सत्यार्जवपरायणाः॥
(महा० आदि० ३।३४।४५)

२. अथ कियतैर्वापरेऽन्ये महाधनुर्धरांश्च क्रवर्तिनः
के चित्सुद्युम्नभूरिद्युम्नेन्द्रद्युम्नकुवलयाश्च यौवनाश्ववघ्रश्वाश्वपतिः
शशविन्दु हरिश्चन्द्राः ऽम्बुरीष ननक्तु सर्याति ययात्यनरण्याक्ष सेनादयः,
अथ मरुत्त भरत प्रभृतयो राजानः॥
(मैत्रायण्युपनिषद्—प्रपाठका ४ खण्ड ४)

.....सर्वे हैव महाराज असुरादित्य इव हस्म श्रियां प्रतिष्ठिता स्तास्तपन्ति सर्वाभ्यो दिग्भ्यो वलिमावहन्ते। (ऐतरेय ब्राह्मण ७।३४।)

३. महाभारत आ० ७०,५।७०,८।९०,७। वायु पु० ६७।४३। वाल्मीकि वा० ५।२

४. शतपथ ब्रा० १३।४।३१३। अर्थशास्त्र कौटिल्य। वाल्मीकि वा० का० ५।२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्ण व्यवस्था और वेद प्रामाण्य की विशेषता थी। कुल व्यवस्था पितृ मूलक थी। और वर्ण व्यवस्था वेद प्रामाण्य मूलक। मनु वेदर्षि थे। उन्होंने अपने दो सूक्त अपने पुत्र नाभानेदिष्ट को दिए, जो उसी के नाम से प्रसिद्ध हुए।[1] देवों में वर्ण भेद न था, न वेद में वर्ण सम्बन्धी क्रियाएं थीं। आर्यावर्त में आकर आगे के वेदर्षियों ने वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी ऋचाएं रचीं, और आर्यों में वर्ण व्यवस्था की नई परिपाटी प्रचलित हुई।

पहिला नगर—मनु ने प्रथम नगर अयोध्या बसाया।[2]

नौ मूल मानव कुल—वैवस्वत मनु के नौ पुत्र और एक पुत्री हुई। इन दसों के दस कुल चले। नौ पुत्रों की सूर्यवंश की नौ शाखाएं चलीं। केवल सूर्य वंशी ही अपने को 'मानव' कह सकते हैं, दूसरे नहीं। सबके पृथक पृथक राज्य चले।

वे नौ वंशकर पुत्र ये हैं—(१) इक्ष्वाकु (२) नृग (नभग-नृसिंह) (३) धृष्ठ (४) शर्याति (५) नरिष्यन्त (६) प्राँशु (७) नाभानेदिष्ट (७) करूष (९) पृषध्र।[3]

मनु के इन नौ वंश कर पुत्रों में नरिष्यन्त, धृष्ट, शर्याति, करषु और प्रषधु के पृथक पृथक कुल चले। जिनमें शर्याति अधिक प्रसिद्ध हुआ। इस कुल में अनेक मन्त्र दृष्टा ऋषि हुए। नभग-(नृग-नृसिंह) का कुल दैत्य लोक में चला। नृसिंह ने हिरण्यकशिपु को मार दैत्य लोक तथा बैबिलोन पर राज्य किया।

मानवों का सातवां कुल नाभानेदिष्ट का था। उसका पुत्र भलन्दन वैश्य हो गया। परन्तु वह ऋषि था। नाभानेदिष्ट को राज्य नहीं मिला। उसके पुत्र भलन्दन को धन मिला, उससे उसने वैश्य वृत्ति ग्रहण कर ली। भलन्दन का पुत्र वत्स प्रिभालन्दन वैश्य ऋषि था। पृषध्रु की सन्तान शूद्र हो गई।

मानवों का आठवां कुल प्रांशु का चला। यह कुल पीछे वैशाली का कुल विख्यात हुआ। इसी कुल में मरुत्त चक्रवर्ती राजा हुआ।

मनु का सबसे ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु अयोध्या का राजा हुआ। वही कुल सूर्य वंश का प्रधान कुल और अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ, इस कुल की अनेक शाखाएं चली। इसी कुल में मनु से ३९ वीं पीढ़ी में राम का जन्म हुआ। इस वंश में अनेक विख्यात पुरुष हुए, और इस वंश की अनेक शाखाओं ने अपने पृथक् राज्य स्थापित किए।[4]

यहां इस वंश का कुल देते हैं—

---

१. ये सूक्त ऋग्वेद के ६१।६२ हैं। देखिए—तैत्तिरीय संहिता -३-१९। मै० सं० १।५।८। एतरेय ब्रा० ५।१४

२. वाल्मीकि वाल०५।२

३. पुराणों में इन नामों में अन्तर है। महाभारत, ब्राह्मण, मत्स्य, वायु और विष्णु पुराणों में यह सूची कुछ अन्तर से दी गई है। विष्णु पुराण में नाभाग और दिष्ट दो व्यक्ति माने हैं। पर अन्यत्र सब जगह एक ही नाम नाभोदिष्ट है। विष्णु पुराण के पाठ अधिक विकृत हैं। यह सूची वायु पुराण के अनुसार है।

४. महाभारत आदि०। रामायण बाल्मीकि। वायु और विष्णु पुराण।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३—इक्ष्वाकु वंश

इक्ष्वाकु—मनु के नौ वंशकर पुत्रों में ज्येष्ठ इक्ष्वाकु सूर्य-वंश की मुख्य राजधानी अयोध्या में उत्तर कोशल-वंश का राजा हुआ। इक्ष्वाकु के शकुनि–प्रमुख पचास पुत्र उत्तरापथ में राजवंश चलाने वाले हुए।[१] और वशाति आदि अड़तालीस दक्षिणापथ के शासक हुए।[२]

इक्ष्वाकु का सूर्यवंश—इक्ष्वाकु के बाद उसका पुत्र विकुक्षि उत्तराधिकारी हुआ। इसका नाम शशाद भी है। शशाद का पुत्र पुरंजय हुआ। पुरञ्जय का नाम काकुत्स्थ भी है। पुरञ्जय वीराग्रगण्य राजा था। इसी के नाम पर इक्ष्वाकु वंशी अपने को काकुत्स्थ भी कहते हैं। रामायण में इसका नाम वाण भी है। इसके राज्यकाल में आडीवक देवासुर संग्राम हुआ।[3] इस युद्ध में दैत्यों का नेता सुजंभ था जो विरोचन का सम्भवतः भाई था।[४] सम्भवतः इस युद्ध में दूसरी ओर आयु और नहुष होंगे।

अनरण्य—अनेना या अनरण्य पुरञ्जय का पुत्र था, यह महान् वीर पुरुष था। महाभारत इसे अति प्रसिद्ध पुरातन पुरुष मानता है।[५] रामायण में इसे महातेज लिखा है। मत्स्य पु० में इसे सुयोधन कहा है। अनरण्य का पुत्र पृथु और पृथु का पुत्र विश्वगश्व था। पार्जीठर इसे विष्ट्राश्व भी कहते हैं।[६] मत्स्य विश्वगश्व कहता है।[७] इस राजा के पास भारी हयदल था। इसी से कदाचित् इसका नाम विश्वगश्व पड़ा। इसका वंश-वृक्ष इस प्रकार हुआ।

(१) मनु

इक्ष्वाकु | नृग–नृसिंह | नाभाग | धृष्ण–धृष | शर्याति | प्रांशु | प्रषधु | नाभानेदिष्ठ

सुद्युम्न | करषु | नरिष्यन्त

(२) इक्ष्वाकु — विकुक्षि (शशाद)

(३) विकुक्षि (शशाद) — पुरंजय (काकुत्स्थ)

(४) पुरञ्जय (काकुत्स्थ) — अनेनस (अनरण्य)

(५) अनेनस (अनरण्य) — पृथु

(६) पृथु — (७) विष्ट्राश्व (विश्वगश्व)

---

१. विष्णु पुराण ४। २। १३। ब्रह्माण्ड ३। ६३। ९–११।
२. विष्णु ४।२।१४ ३. ब्रह्माण्ड ३–६३–२६। वायु ९७। ७५।
४. विष्णु ४। २। २२। ५. महा० भा० १। १७२
६. विष्णु पु० में विष्ट्राश्व ही नाम है। वायु ८८। २६ में वृषदश्व हैं। महाभारत वनपर्व में विश्वगश्व कहा है। विश्वगश्वः पृथोः पुत्रः। अ० २०५। ३। ७. मत्स्य १२–२९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४--'एल' चन्द्रवंश

चन्द्रपुत्र बुध—चन्द्रपुत्र बुध देवलोक में ही यथेष्ट प्रसिद्ध हो गए थे। तथा वे प्रौढ़ावस्था में अपने श्वसुर मनु के साथ भारत में आए, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि ईरान में बुध वंशी लोग अभी तक हैं[१]। बुध हस्तिशास्त्र और अर्थशास्त्र के प्रवर्तक थे[२]। अपने दादा दैत्य गुरु शुक्राचार्य से उन्होंने ये विद्याएँ सीखी थीं। उन्होंने गंगा-जमुना के संगम पर, जहां अब प्रयाग है, प्रतिष्ठानपुरी (झुसी) बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया, और अपने पिता चन्द्र के नाम पर पितृकुल चन्द्रवंश की प्रतिष्ठा की।

पुरूरवा—बुध के पुत्र पुरूरवा और भी प्रतापी हुए। उन्हें अपने पिता का प्रतिष्ठान का राज्य तो मिला ही, माता का इलावर्त राज्य भी मिला[३]। इससे उनका महत्त्व असुर-प्रदेश से आर्यावर्त तक व्यापक हो गया। उन्होंने चौदह द्वीप जय किए[४]। वे मन्त्रदृष्टा ऋषि थे[५]। वे महान् तेजस्वी, सत्यवान्, अप्रतिम स्वरूपवान् और दानशील भी थे। उन्होंने अनेक यज्ञाग्नियों का आविष्कार किया। पुरूरवा के दादा चन्द्र ने उन्हें एक दिव्य रथ दिया था, जिसका नाम सोमदत्त था, यह रथ हरिण-केतन था। पुरूरवा के प्रासाद का नाम मणिहर्म्य था। वह स्वर्ण और मणि का बना था।

उसने हिरण्यपुर के केसी असुर से उर की अप्सरा उर्वशी का उद्धार किया था इससे देवराट् इन्द्र ने उर्वशी पुरूरवा को दे दी थी[६]। उर्वशी के साथ पुरूरवा

---

१. बुध के वंशज 'The Budii' ईरान में हैं। सीदियनस भी अपना सम्बन्ध इला से बताते हैं—बुधी 'मीडाज़' को ईरान में ही एक वंश से सम्बन्धित मानते हैं। वास्तव में ईरानी मीडाज़ बुध वंशी हैं।

It is also corrobonrated by Herodotus, who gives the names of the tribes that were welded into a nation as the Busae, the Paretaceni, the Struchates, the Arizanti, the Budii, and the Magi. It is generally believed that the first four of these were Aryans and that the Budii and Magi were Turanians—(तुर्वश वंश) (N.P.Vol. 1, 103).

२. सर्वार्थशास्त्रविद्धीमान् हस्तिशास्त्रप्रवर्तकः। मत्स्य पु० ३४।२।

३. वायु पुराण अ० ९१।५०।

४. मत्स्य पुराण २४।११

५. मत्स्य पुराण ११८।६१।

६. मत्स्य पुराण २४-२२-२५।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

६० वर्ष की आयु तक रहा[1]। वृद्धावस्था में एक बार राजा थोड़े साथियों सहित मृगया-वंश नैमिषारण्य में जा निकला। वहां कुछ ऋषि यज्ञ कर रहे थे, उनके यज्ञ-पात्र स्वर्ण के थे। राजा ने वे पात्र छीन लिए। इस पर ऋषियों ने राजा को मार डाला[2]।

पुरूरवा के वंशधर—पुरूरवा के उर्वशी से ८ पुत्र हुए[3]। इनमें सबसे बड़ा आयु था। पुरूरवा की मृत्यु पर वही प्रतिष्ठान की गद्दी का स्वामी हुआ। आयु का विवाह राहु दानव की पुत्री स्वर्भानु से हुआ। उसका नाम प्रभा था[4]। आयु के नहुष आदि पाँच पुत्र हुए[5]।

नहुष—नहुष सब में प्रसिद्ध हुआ। उसका विवाह पितृकन्या विरजा से हुआ। उन्होंने पृथ्वी के राजाओं को जीत कर चक्रवर्ती पद पाया। यह पृथ्वी के सर्वप्रथम चक्रवर्ती थे। नहुष मन्त्रदृष्टा थे[6]। जब वृत्र को मार कर ब्रह्म हत्या के भय से इन्द्र छिप गया था, तब देवों ने नहुष को देवेन्द्र पद दिया। देवेन्द्र होकर उसने इन्द्राणी शची को बलात् पत्नी बनाना चाहा, इस पर देवों ने क्रुद्ध हो उसे पदच्युत करके देवलोक से निष्काशित कर दिया[7]। इस पर भारी देवासुर संग्राम हुआ, के नाम से बारहवां देवासुर संग्राम कहाया। यह रजि नहुष का छोटा भाई था। इसने यह देवासुर संग्राम जय किया। और सदैव को देवासुर संग्राम समाप्त हो गए[8]। नहुष भारी यज्ञकर्ता था।

ययाति—नहुष के बाद उनके दूसरे पुत्र ययाति गद्दी पर बैठे। ययाति बड़े धर्मात्मा, मन्त्रदृष्टा और समर्थ पुरुष थे[9]। उन्हें रुद्र ने एक भव्य रथ दिया था।

---

१. विष्णु० ४–६–४८। मत्स्य २४–३१। वायु ९१–५–। ९१–१४। हरि वंश २६–२८।

२. वायु २। १४। २३। अर्थशास्त्र १। ६। महाभा० आ० ७०।१८।२०। वाण ने हर्षचरित में भी कथा का उल्लेख किया है। वसुवन्धु और अश्वघोष ने भी इसका समर्थन किया है।

३. वायु पुराण ९०। ४५। तथा ९१। ५१ के अनुसार ६ पुत्र हुए। मत्स्य पुराण २४–३० के अनुसार आठ।

४. वायु ६८।२२। यस्त्वायु नामा स राहोर्दुहितरमुपमेयेमे (विष्णु० ४-८-१)

५. वायु ६९। २४। ब्रह्माण्ड ३। ६। २३। २४।

६. ऋ० ९। १०१। ७–९ का ऋषि नहुष है।

७. महाभारत, उद्योग प० ११–१।

८. ब्रह्माण्ड पुराण ३। ७२। ८६।

९. ब्रह्मचर्येण कृत्स्नेमे वेदः श्रुतिपथं गतः। महा० आदि० ७६। १३। म० आ० ७०–८८ मत्स्य अ० २५–४२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ययाति कई भाई थे, वे सब नहुष कहाए। इन्होंने दीर्घ सत्र किया था[1]।

पत्नी और सन्तान—ययाति की दो पत्नियाँ थीं—एक दानव राज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा, दूसरी दैत्यगुरु शुक्र उशनस की पुत्री देवयानी[2]। ययाति की दोनों पत्नियों से पांच पुत्र हुए। दानवनन्दिनी शर्मिष्ठा से तीन पुत्र—द्रुह्यु, अनु और पुरु। तथा देवयानी से दो—यदु और तुर्वसु। ये पांचों पुत्र वंशकर थे। इनका वंश-वृक्ष इस प्रकार है—

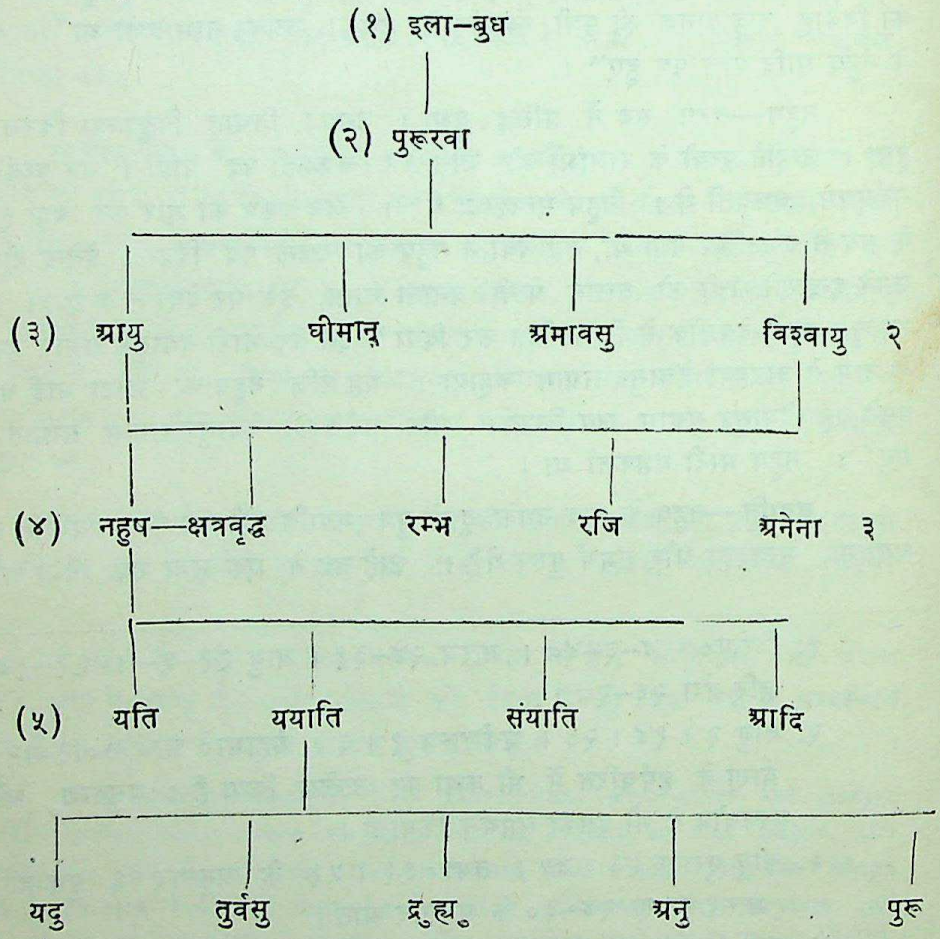

पुरूरवा, नहुष और ययाति तीनों वेदर्षि तो थे ही।[4] इनके सम्बन्ध सांस्कृतिक और राजनैतिक भी देव–दैत्य लोक से बने रहे। पुरूरवा की पत्नी देवलोक की

१. वृहद्देवता ६।२२।
२. महा भा० आदि ९०।८।
३. वायु पु० ९।५१।५२।
४. विष्णु ४।८।३। वायु ९२–२।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अप्सरा थी। तथा नहुष को स्वयं ही देवराट् पद मिला था। ययाति की दोनों पत्नियां दानव राज और दैत्य गुरु की पुत्रियां थीं। इनका राज्य देव–दैत्यलोक में इलावर्त में भी था। इन सब कारणों से ययाति सब देव, दैत्य, दानव, आर्य और याजकों के सब कुलों के पूज्य हो गए। ये रुद्र के मित्र थे, तथा भारी शासक थे।

—:०*०:—

५–भारत में आर्यों के प्रथम सौ वर्ष

आर्यों की पाँच गद्दियां—ई० पू० २६६१ से० २५६१ ई० पू० तक १०० वर्षों में आर्यों के पांच वंशों की पांच गद्दियां स्थापित हुईं। एक चन्द्र-वंश की और चार सूर्य-वंश की।

चन्द्रवंश—१ प्रतिष्ठान (झूसी)

सूर्य वंश—१. अयोध्या (उत्तर कोशल राज्य-वंश–मुख्य सूर्य-वंश)
२ वैशाली
३. मैथिल
४. शर्यात

पुरूरवा से पुरू तक—चन्द्र वंश की मूल गद्दी प्रतिष्ठान से पुरूरवा से पुरू तक बुध सहित कुल छः राजा इन सौ वर्षों में हुए। इन में आयु को छोड़ कर शेष पांच राजा ऐसे अप्रतिम और महान् हुए कि जिनकी समता का कोई राजा फिर आर्यों में हुआ ही नहीं। इनका प्रताप सुरलोक और आर्यावर्त में तथा दैत्य लोक इलावर्त में समान भाव से रहा। यद्यपि इला कुल ने आर्यावर्त में कुल एक ही गद्दी स्थापित की। परन्तु उसका प्रभाव सूर्य वंश से अधिक रहा। इन सौ वर्षों में सूर्य वंश में चन्द्र वंशियों की समता का एक भी प्रतापी राजा इक्ष्वाकु को छोड़ कर नहीं हुआ।

देवेन्द्र नहुष—एल नहुष को देवेन्द्र पद पर बैठाना और फिर उन्हें पदच्युत करना इस युग की महान् घटना थी। जब वृत्र को इन्द्र ने वध किया तो देव-दैत्य दोनों ही बहुत क्रुद्ध हो उठे। वह उनके भय से पलायन करके छिप गया। इससे देव लोक में बड़ी अव्यवस्था फैल गई। अन्त में देवों ने नहुष को एन्द्राभिषेक कराकर इन्द्रासन पर बैठाया। सभी देव–दैत्य ऋषि पितृगण दानव और असुरों ने एक मत हो चक्रवर्ती नहुष को इन्द्र स्वीकार किया। इन्द्र पद पाकर राजर्षि नहुष त्रिभुवन के स्वामी हो गए। वे अप्सराओं और देव कन्याओं के साथ नन्दन वन में विहार करने लगे। उन्होंने कैलाश, हिमवान, मन्दराचल, श्वेत पर्वत, सहद्र, महेन्द्र, मलय आदि पर्वतों, समुद्रों, नदियों में विविध विहार किया, इस प्रकार विलास और ऐश्वर्य के साधन पा नहुष कामभोग में रत रहने और सोम पान करने लगे। अब उन्होंने पौलोमी शची को अपनी पत्नी बनाना चाहा। पौलोमी पुलोमा दानव की पुत्री थी। देव दैत्य दानवों में उन दिनों स्त्री-प्राधान्य था। पुरुष का उन पर पतिभाव न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। शची ने नहुष के प्रस्ताव का विरोध किया। इस पर नहुष ने बहुत हठ किया। देव याजक वृहस्पति ने भी उन्हें बहुत समझाया, पर उन्होंने माना नहीं, उन्होंने बलात् शची को अपने शयनागार में बुलाया। इस पर देव-दैत्य ऋषि सभी उनसे अप्रसन्न हो गए। सबने मिलकर उन्हें इन्द्र पद से च्युत कर दिया। और देव लोक से निष्कसित कर दिया।

नहुष का छोटा भाई रजि बड़ा पराक्रमी था। उसने देवासुर-संग्राम में प्रथम देवों का पक्ष लिया था। संग्राम से प्रथम दैत्यों ने रजि से अपने पक्ष में युद्ध करने की प्रार्थना की थी। पर रजि ने यह शर्त रक्खी कि यदि दैत्य मुझे अपना इन्द्र बनाएं तो मैं उनकी ओर से युद्ध करूं। परन्तु दैत्यों ने स्पष्ट कह दिया कि हमारा इन्द्र प्रल्हाद है। और हम उसी के इन्द्र पद के लिए युद्ध कर रहे हैं। इस पर रजि ने देवों का पक्ष लिया। पीछे वृत्र वध करके इन्द्र के पलायन करने पर देवों ने उसके बड़े भाई को इन्द्र बना दिया। अब नहुष के पदच्युत किए जाने पर क्रुद्ध हो रजि ने ज़बरदस्ती इन्द्रासन पर अधिकार कर लिया और अपने सौ परिजनों को देव-लोक की सारी व्यवस्था दे दी। इन्द्र बहुत भयभीत हुआ और उसके तथा वृहस्पति के षड्यन्त्रों से सब देव ऋषि रजि से बिगड़ गए। परिजनों में भी राग द्वेष हो गया। उनमें फूट पड़ गई। फलस्वरूप बारहवां देवासुर-संग्राम हुआ। इसमें रजि की जय तो हुई पर देवों और दानवों का भाई चारा टूट गया। वे अब दायाद बान्धव न रहकर पृथक स्वतन्त्र जातियों में विभाजित हो गए। नहुष के ज्येष्ठ पुत्र यति ऋषि हो गए, दूसरे ययाति चन्द्रवंश की गद्दी के उत्तराधिकारी हुए।

ययाति और उनके उत्तराधिकारी—ययाति का सैन्य बल असीम था। ये मन्त्रदृष्टा और समर्थ पुरुष थे। इन्होंने पृथ्वी को जीतकर धर्म राज्य स्थापित किया। रजि के युद्ध के बाद यद्यपि देव दैत्य सम्बन्ध टूट गए थे। परन्तु इन्हें दानव राज वृषपर्वा ने अपनी पुत्री दी। और दैत्यगुरु शुक्र ने भी। ये सम्बन्ध साधारण न थे। भारी प्रतिष्ठा के द्योतक थे। प्रथम तो ययाति देवराट् नहुष के पुत्र दूसरे देव दैत्य पूजित चन्द्र के वंशधर, तीसरे दैत्य गुरु और दानव-सम्राट् के जामाता। इन सब कारणों से ययाति दैत्यों और आर्यों के सब कुलों में सुपूजित हो गए। रुद्र ने इन्हें मित्रमान एक दिव्य रथ भेंट दिया था। तथा इन्होंने अपनी सामर्थ्य से नौद्वीप जय किए थे। इनका राज्य भारत से लेकर सुरलोक और इलावर्त पर्यन्त था। ये भी एक प्रकार से देवेन्द्र माने जाते थे।

वृद्धावस्था में इन्होंने विश्वाची अप्सरा से उसके रूप यौवन पर मोहित होकर विवाह किया। उस रूप-गर्विता मुखरा ने इनकी वृद्धावस्था और असमर्थता की खिल्ली उड़ाई। इससे खिन्न होकर इन्होंने अपना राज्य पांच पुत्रों को बांट भृगुतुंग पर जा अन्न जल त्याग प्राण छोड़े।

१—महा-भा० उद्योग पर्व-११-१। वायु-६५-९७-९८। ब्रह्माण्ड ३।६।२३।२४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महाराज ययाति चौदह द्वीपों के स्वामी थे। उन्होंने अपना राज्य इस प्रकार पुत्रों में बांटा—दक्षिण पूर्व के भू भाग का राज्य तुर्वशु को दिया, जहां आज कल रीवां रियासत है। गंगा यमुना के द्वाब का राज्य अनु को दिया, और ईशान में चम्बल, बेतवा और केन के मध्यवर्ती देश यदु को दिए। अन्त में मध्य देश की प्रधान चन्द्र वंश की गद्दी पुरु को दी। इस प्रकार पुरु, द्रुह्यु, अनु, तुर्वशु और यदु के पृथक् पृथक् राज्य स्थापित आगे हुए। मुख्य घराना पुरु के नाम पर पौरव कहाया। पुरु प्रतिष्ठान की राजधानी में गंगा जमुना के मध्यवर्ती देश पर शासन करने लगे।

इक्ष्वाकु से विश्वराश्व—इक्ष्वाकु से विश्वराश्वतक इस कुल में कुल सात राजा इन सौ वर्षों में हुए। जो अयोध्या की मूल गद्दी पर बैठे।

वैशाली का वंश—मनुपुत्र प्राँशु ने वैशाली बसा वहां अपनी नई राजधानी बनाई। इस वंश में इन सौ वर्षों में कोई नामांकित राजा नहीं हुआ। इस कुल में प्राँशु का पुत्र प्रजाति, प्रजाति का खनिनेत्र, खनिनेत्र का क्षुप, क्षुप का पुत्र विंश हुआ। इस प्रकार इस वंश में इन सौ वर्षों में केवल पांच राजा विंश तक हुए।

शर्याति-वंश—मनु के एक पुत्र शर्याति थे। इन्होंने आर्यावर्त से बाहर खम्भात की खाड़ी के पास अपना राज्य स्थापित किया। यह राज्य एक बारगी ही बहुत सम्पन्न हो गया। महाराज शर्याति बड़े तेजस्वी पुरुष और प्रचण्ड योद्धा थे। वे बड़े भारी सम्राट् थे। इनके पुत्र आनर्त के नाम पर इस राज्य का नाम आनर्त प्रसिद्ध हुआ। महाराज शर्याति की कन्या का नाम सुकन्या था। सुकन्या का विवाह भृगु पुत्र च्यवन से हुआ। च्यवन असुर याजक कुल के थे, तथा ऋषि भी थे। उनका वंश सुपूजित था। विवाह के बाद च्यवन शर्याति राज्य के मन्त्री और पुरोहित हो गए। इन्होंने शर्याति को ऐन्द्राभिषेक कराया। शर्याति भी वेदर्षि थे।[1]

च्यवन-सुकन्या का पुत्र आप्तवान् था। उसका विवाह नहुष मानव की पुत्री रुचि से हुआ।[2] च्यवन आनर्त राज्य के पुरोहित और मन्त्री होकर आनर्त राज्य ही में बस गए। च्यवन-सुकन्या को एक पुत्री भी हुई, जिसका नाम सुमेधा था। च्यवन के दूसरे पुत्र का नाम दधीचि था, जो प्रसिद्ध वेदर्षि थे। इन्होंने इन्द्र को बज्र दिया। आप्तवान् के कुल में ऊर्व ऋचीक-जमदग्नि तथा परशुराम हुए।

आर्यों में यह शर्याति पहिला ही राजा था जिसका ऐन्द्राभिषेक हुआ। इक्ष्वाकु के बाद सर्वोपरि राजा शर्याति ही इस काल में हुआ। शर्याति का पुत्र

१—मत्स्य पु० ६९, ९। पद्म ५। २३, १०। विष्णु पुराण ६। १-३४। म० भा० १३, ३१३, ४०

२—वायु ६५। ९०-९१।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आनर्त, आनर्त का रोचमान, रोचमान का देव और देव का पुत्र रैवत हुआ, रैवत का पुत्र ककुमिन हुआ[1]।

निमि की मिथिला शाखा—यह शाखा इक्ष्वाकु के काल में ही पृथक् हुई। परन्तु इसकी प्रारम्भिक तेरह पीढ़ियों का पता नहीं लगता है। चौदहवीं पीढ़ी के पुरुष निमि थे[2]। इसकी पहिली राजधानी जयन्त थी।

इस शताब्दी की महत्त्वपूर्ण बातें—सबसे भारी मार्के की बात इस शताब्दी की यह है कि इस शताब्दी की समाप्ति तक कोई पृथक् ऋषि या पुरोहित हमें नहीं मिला। केवल शर्याति के जामाता च्यवन–भृगु पुत्र ही अकेले शर्यात वंश के पुरोहित और मन्त्री बने। प्रसिद्ध वैदिक ऋषि वशिष्ठ और विश्वामित्र का अभी नामोनिशान भी नहीं था। इस के विपरीत प्रायः सभी चन्द्रवंशी और सूर्यवंशी राजा इस युग में वेदर्षि थे। उन्होंने भिन्न-भिन्न ऋचाएँ रचीं, जिनका विवरण हम यहां देते हैं—

वेदर्षि

सूर्य–विवस्वान—ऋग्वेद १०।१३।
मनु–वैवस्वत—ऋग्वेद ८।२७–३१।
यम—ऋग्वेद १०।१४।
यमी—(वैवस्वती) १०।१०५।
यम–यमी—१०।१०।
नाभानेदिष्ठ (इन्हें मनु ने अपने दो सूक्त दिए) ऋ० १०।६१।६२।
बुध—ऋग्वेद १०।१०१।
पुरूरवा—ऋग्वेद १०।९५।
इक्ष्वाकु
शर्याति—ऋग्वेद १०।९२।
विरूप आङ्गिरस। पृषदश्व आङ्गिरस—ऋग्वेद ८।४३।४४।
वस्तप्रिभालन्दन (वैश्य)—ऋग्वेद ९।६८। तथा १०।४५।४६
नहुष—ऋग्वेद ९।६८।१०।४५।४६।
काव्य–शुक्र उशना—८।८४।९। ४७–४९–७५–७९–८७–८९।
त्रिशिरा–त्वाष्ट्र (दैत्य याजक) ऋग्वेद १०।८।९।
च्यवन—ऋग्वेद १०।१९

---

१. मत्स्य ६९–९। पद्म ५२३। महा भा० २, १३–३३–४०। विष्णु ६१–३४।

२. विदेह कुल के तेरह नामों का पता नहीं लगता है। इन्हें यदि नहीं जोड़ा जाता तो दशरथ और सीरध्वज की समकालीनता की संगति नहीं बैठती।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शची (पौलोमी—१०। १५९।
बृहस्पति आङ्गिरस—१०। ७१

वेदर्षियों की यह सूची अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आप देखेंगे कि अत्रि और चन्द्र दोनों ही वेदर्षि नहीं हैं। उन्होंने कोई ऋचा नहीं बनाई। यद्यपि अत्रि असुर याजक थे। भृगु की भी कोई ऋचा नहीं है। इसलिए भृगु भी ऋषि नहीं हैं, पर असुर याजक हैं। आगे अत्रि के वंश में बुध, पुरूरवा, नहुष वेदर्षि हैं, राजा भी हैं। और उनके प्रभाव से प्रभावित भृगुवंशी त्रिशिरा–त्वाष्ट्र–काव्य उशनश दैत्य-याजक वेदर्षि हैं। जेन्द अवस्ता में उनके मन्त्रों का विकृत रूप है। च्यवन वेदर्षि तथा आर्य पुरोहित भी हैं। देवगुरु बृहस्पति भी वेदर्षि हैं। दैत्य दानव कुल का कोई राजा वेदर्षि नहीं है, परन्तु आदित्यों में सूर्य, मनु, यम, यमी, नाभानेदिष्ट. शर्याति, विरूप, वस्तपि भालन्दन (वैश्य) वेदर्षि हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक परम्परा— जो मनुर्भरतों ने कायम की—वह दैत्यों और दानवों ने नहीं अपनाई, आदित्यों, देवों और आर्यों ने अपनाई। तथा आगे जो वेद का निर्माण हुआ, वह केवल आर्य संस्कृति को ही लेकर आर्यावर्त में हुआ। और उसमें त्रेता युग का, मनु से राम पर्यन्त के महत्त्वपूर्ण इतिहास का संकेत है। सब से बड़ी बात यह, कि याजकों की अभी कोई पृथक् जाति नहीं बनी थी, न ऋषि ही जटाधारी तपस्वी पुरुष थे। वे राजा–वैश्य तथा स्त्रियाँ भी थीं। उनकी कोई पृथक् जाति न थी।

वैदिक धर्म—इन आर्यों ने आगे वैदिक धर्म अपनाया। जिस से वेद की ऋचाओं का निर्माण तीव्रता से हुआ। प्रत्येक सांस्कृतिक और राजनैतिक घटनाओं पर वेद की ऋचाएँ रची जाने लगीं।

सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल एवं आर्यावर्त—सूर्य वंश ने सरयू तट पर अयोध्या में तथा चन्द्र वंश ने गंगा–जमुना के संगम पर प्रतिष्ठान में अपनी-अपनी गद्दियां कायम कीं। दोनों के राज्य सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल के नाम से विख्यात हुए। आगे जब इन दोनों वंशों के राज्य की भिन्न-भिन्न गद्दियां स्थापित हुईं तो वे भी अपने-अपने मण्डल में परिगणित होती गईं। इन सौ वर्षों में सूर्य वंश की चार गद्दी बनीं, जिन में आनर्त को छोड़ शेष सूर्य मण्डल में थीं। ये दोनों मण्डल संयुक्त रूप में आर्यावर्त कहाते थे। आनर्त राज्य आर्यावर्त से बाहर था। हम आगे चल कर बतायेंगे कि आगे चलकर यह राज्य सूर्य वंश और आर्य जाति से ही पृथक् हो गया। चन्द्र वंश की अन्य शाखाएँ भी आर्यावर्त से पृथक् हो गईं।

पितृ मूलक राज्यपद्धति और परिवार प्रथा—आर्यों ने पितृ मूलक परिवार प्रथा स्थापित की। बुध और मनु दोनों ही ने पिता के नाम पर सूर्य और चन्द्र वँश स्थापित किए। यद्यपि सूर्य वंश को मनु के नाम पर मानव और चन्द्र वंश को इला के नाम पर एल भी कहते थे। पर प्रसिद्ध नाम चन्द्र वंश और सूर्य वंश ही हुए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस से प्रथम सर्वत्र ही देव–दैत्य–दानव कुल में मातृ सत्ता थी। परिवार माता के नाम पर बनते थे। जातियां भी माता के नाम पर बनती थीं। अब आर्यों में जो पितृ मूलक कुल स्थापित हुए तो इन में नई परिवार प्रथा भी स्थापित हुई, तथा विवाह मर्यादा भी दृढ़ बद्ध हुई। पुरानी प्रथा ऐसी थी कि वीर्य चाहे जिसका हो, पर सन्तान माता के नाम पर पुकारी जाती थी। पिता का महत्त्व न था। देवों ने कुछ ऐसी परिपाटी चलाई थी कि पिता के नाम पर पुत्र का नाम रखा जाता था। पर यह कभी कदाच ही था। जैसे वशिष्ठ को मैत्रावरुणि कहते हैं। वह सूर्य और वरुण दोनों ही के पुत्र कहे जाते हैं, क्योंकि उनकी माता एक ही काल में दोनों ही भाइयों की सेवा करती थी। अतः उनके औरस का ठीक निर्णय नहीं हो पाया। वे मैत्रावरुणि कहाए। परन्तु फिर भी मातृ गोत्र देवों में था—जैसे ममता के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण अन्धे दीर्घतमा वेदर्षि मामतेय कहाए। यद्यपि ममता के पति जीवित थे, और दीर्घतमा पति से नहीं, पति के भाई की औरत से हुए थे, तथा यह बात प्रकट थी[1]।

तारकामय का परिणाम—परन्तु आर्यों में निश्चित रूप में पितृ प्रधान परिवार प्रथा का सूत्रपात वास्तव में तारकामय देवासुर संग्राम के बाद हुआ। चन्द्र ने बृहस्पति की पत्नी भगा ली थी, उसके लिए यांचवां देवासुर संग्राम हुआ। अतः चन्द्र को वह स्त्री लौटानी पड़ी। परन्तु वह गर्भवती थी, इस बात पर देवों और दैत्यों ने बहुत अधिक विवाद किया कि गर्भस्थ पुत्र का पिता और स्वामी कौन है। अन्त में निर्णय यही हुआ—जिसका वीर्य है—वही चन्द्र उस बालक का पिता और स्वामी है। फलतः स्त्री को लौटाती बार यह तय पाया था कि जन्म होने पर बालक पिता को लौटा दिया जायगा। माता का उस पर कोई अधिकार न रहेगा। ऐसा ही हुआ भी। गर्भस्थ बालक बुध था। उसका पिता चन्द्र है, यह बात तारकामय संग्राम के कारण अत्यधिक प्रसिद्ध हो गई। और इस से एक भावना दृढ़ बद्ध हुई, जिसका परिणाम यह हुआ कि इसी बुध ने अपने वंश को पितृ मूलक चन्द्र के नाम पर प्रसिद्ध किया। मनु ने भी उसका अनुकरण किया। मनु स्वयं भी पिता के नाम पर वैवस्वत कहाया। यद्यपि धोतृ के नाम पर उसका नाम सावर्णि भी था। इस प्रकार ये पितृ प्रधान दो वंश सूर्य और चन्द्र वंश स्थापित हुए। दोनों की संयुक्त आर्य जाति बनीं, तथा वैदिक धर्म उसका आधार रहा।

पुरुष का पतित्व—पितृ मूलक परिवार की स्थापना से आर्यों में पुरुष स्त्री का स्वामी बन गया। स्त्री की स्वतन्त्रता और स्वैर भाव नष्ट हो गए। वे पति से अनुबन्धित हो गईं। यहां तक इस का प्रभाव हुआ कि वीर्य चाहे भी जिस पुरुष का हो, परन्तु वह पुत्र उस पुरुष का पुत्र नहीं—अपितु वह स्त्री जिसकी पत्नी है उसका

---

१. देखिए महाभारत आदि पर्व।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
पुत्र माना जायगा। यह कठोर नियम भी कदाचित चन्द्र के तारकामय संग्राम की प्रतिक्रिया थी कि कोई पुरुष किसी की पत्नी को अधिकृत करके उसकी संतति पर अधिकार न मानने लगे। इस प्रकार आर्य संस्कृति में विवाह संस्था का आधार दृढ़ हुआ। जिसकी चर्चा हम यथास्थान विस्तार से करेंगे।

इक्ष्वाकु कुल का विस्तार—इक्ष्वाकु के अनेक पुत्र हुए। उनमें शकुनी वशाति निमि और विकुक्षि प्रमुख थे। विकुक्षि तो मुख्य अयोध्या की गद्दी के स्वामी हुए। और शकुनी के नेतृत्व में ४५ इक्ष्वाकु राजवंश उत्तरापथ में तथा वशाति के नेतृत्व में ४८ राजवंश दक्षिणापथ में स्थापित हुए।

देवासुर संग्राम—यही युग देवासुर संग्रामों की समाप्ति का युग है। इन संग्रामों में ३०० वर्ष का काल लगा। प्रथम ६ संग्राम २०० वर्षों में हुए, वे सम्भवतः देव दैत्य लोक में हुए। इसके बाद ही आर्यों के वंश की भारत में स्थापना हुई। सम्भवतः छठा आडविक युद्ध भारत में आर्यावर्त की स्थापना के बाद हुआ। और बाद के ६ युद्ध इसी शताब्दी के भीतर ही समाप्त हो गए। अन्तिम युद्धों में एल वंशी आर्यों ने भी क्रियात्मक भाग लिया।

—:*:—

६—पुरु से मान्धाता

(ई० पू० २५६१ से ई० पू० २१४१ तक=४२० वर्ष)

सूर्य वंश की प्रगति—इन चार सौ बीस बरसों में आर्यों की पन्द्रह पीढ़िया व्यतीत हुई। सूर्य वंश की तीन गद्दियां प्रथम शताब्दी में ही स्थापित हो चुकी थीं। अब इस काल में उसकी पचास गद्दियां उत्तरा पथ में और ४८ दक्षिण पथ में स्थापित हुई।[1] जिनमें प्रमुख मनु पुत्र उत्कल का पश्चिम बंगाल और उड़ीसा का राज्य था। मनु के दूसरे एक पुत्र गय ने गया नगर बसाकर एक राज्य स्थापित किया। हरिताश्व ने उत्तर कुरु में एक राज्य स्थापित किया। सुद्युम्न इलावर्त चले गए।[2]

अयोध्या की मुख्य शाखा में अनेक प्रसिद्ध और वीर पुरुष हुए। इस गद्दी पर इक्ष्वाकु से प्रथु तक छै राजा तो प्रथम शताब्दी ही में हो चुके थे। पृथु का पुत्र

१—विष्णु पु० ४। २। १३। ब्रह्मड ३। ६३। ९–११। तथा विशादु ४। २। १४।

२—मत्स्य १२। १८। पद्म ५८। १२३। महा० ७५। ३१। ४२। ३।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विष्टशश्व, उसका पुत्र विश्वगव और उसका पुत्र आर्द था। आर्द का पुत्र युवनाश्व (प्रथम) था। इसके बाद क्रमशः श्रावस्त, वृहदश्व, कुवलयाश्व, धुन्धमार, दृढ़ाश्व, प्रमोद, हर्यश्व, (प्रथम) निकुम्भ, संहृताश्व, अकृशाश्व, प्रसेनजित (प्रथम) युवनाश्व, (द्वितीय) राजा हुए। युवनाश्व का पुत्र मान्धाता हुआ, जो इस वंश का इक्कीसवां राजा था।

सूर्य वंशी राजाओं में घुड़सवार सेना रखने का विशेष प्रचार हुआ[1]। यहां तक कि राजाओं के नाम तक अश्व पर रखे गए। जैसे युवनाश्व, वृहदश्व, दृढ़ाश्व, अकृशाश्व आदि। इस काल में सूर्य वंशी राजाओ ने बहुत युद्ध किए। अनेक देश जीतकर आर्यवर्त की सीमाऐं बढ़ाईं। आर्द के नाम पर अर्दसागर (अड्रियाटिक सी) नाम पड़ा। श्रावस्त ने श्रावस्ती बसाई[2]। जो बौद्ध काल में कौशल की राजधानी बनी। वृहदश्व वान प्रस्थ हो गए[3]। उनके पुत्र कुवलयाश्व ने धुन्धुनामक दैत्य को मारकर धुन्धुमार नाम पाया। कुवलयांश्व वीर और प्रतापी थे। उन्होंने अयोध्या का राज्य बहुत बढ़ाया। दृढ़ाश्व, निकुम्भ और संहृताश्व रण बिशारद योद्धा थे। युवनाश्व (द्वितीय) महा तेजवान और लोक विश्रुत नरपति थे। इनके नाम पर युवन सागर नाम पड़ा। इन्होंने पौरव मतिनार की पुत्री गौरी से विवाह किया[4]। गौरी का नाम वाहुंदा भी था[5]। इन्हीं युवनाश्व और गौरी का पुत्र महाप्रतापी मानवों का प्रथम चक्रवर्ती राजा मान्धाता हुआ।

युवनाश्व और मान्धाता त्रैलोक्य विद्युत पुरुष हुए। ये दोनों ही वेदर्षि थे[6]।

चन्द्र वंशियों के नए राज्य—ययाति ने अपना प्रतिष्ठान का मुख्य राज्य अपने सबसे छोटे पुत्र पुरु को दिया। इस वंश में जन्मेजय (प्रथम) पुरु का पुत्र राजा हुआ। इसने तीन अश्वमेध यज्ञ किए। जो आर्यों के सर्व प्रथम अश्वमेध थे। यह वान प्रस्थ हुआ[7]। इस का पुत्र प्राचिन्वान् था। जिसने अपना राज्य पूर्व दिशा में समुद्र तक बढ़ाया[8]। इसका पुत्र प्रवीटर और उसका मनस्यू हुआ। यह चतुरन्त

१—मत्स्य भ० ३०। वायु ८८। ३३।

२—मत्य पुराण के अनुसार यह नगरी गोड़ देश में थी। वायु पुराण के अनुसार यह राम पुत्र ल० के काल में उत्तर कौशलवी की राजधानी बनी।

३—महाभारत वन० अ० २०५। २०७। ब्रह्माण्ड ३। ६३। ३२–६।। वा० रा० अयो० ६४। ४२।

४—वायु ९९। १३०।

५ वायु ५९। ९९। मत्स्य १४५। १०२।

६—ऋग्वेद १०। १३४ के सूत्र रचे।

७—महाभा० आदि ९०। ११।

८—महाभारत आदि० ९०। १२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह चतुरन्त पृथ्वी का गोप्ता कहाया[1]। मनस्यु का पुत्र सुभ्र[2], सुभ्र का सुन्वन्त, सुन्वन्त का संयाति और संयाति का पुत्र रौद्राश्व हुआ, जिसने घृताची नाम की अप्सरा से विवाह किया[3]। घृताची से इस राजा के दस पुत्र हुए, जिन में बड़ा ऋचेपु था। इसने तक्षक नाग की कन्या ज्वलना से विवाह किया। यह राजर्षि था। इसने राजसूय और अश्वमेघ यज्ञ किया, तथा महाराज और सम्राट् पदवी पाई ऋचेपु का पुत्र मतिनार था, जिसने सरस्वती तट पर द्वादश वार्षिक सत्र किया।

मतिनार का वंश बहुत प्रसिद्ध हुआ। आगे इसी वंश में भरत चक्रवर्ती और कण्व मेधातिथि जैसे वेदर्षि हुए। मतिनार की पुत्री गौरी मान्धाता की माता थी। मतिनार का वंश वृक्ष यहां हम देते हैं :—

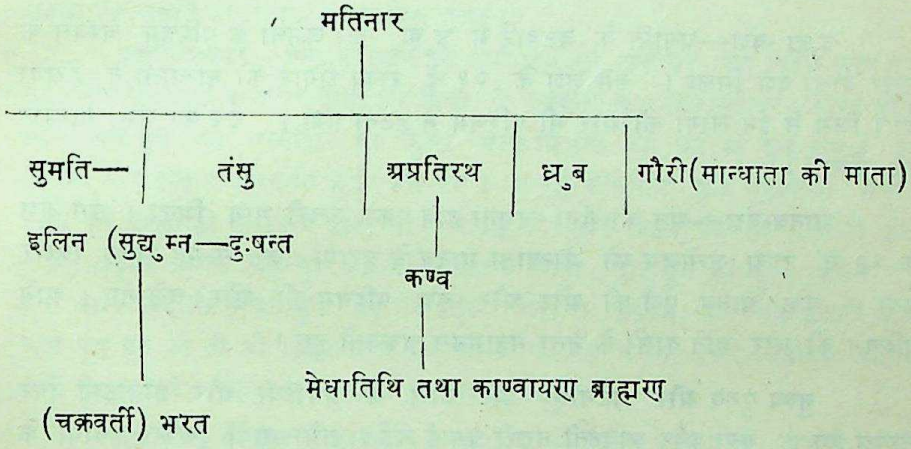

यदु वंश—ययाति के बड़े पुत्र यदु थे। ये शुक्राचार्य के नवासे थे। ययाति ने इन्हें चम्बल वेतवा–केन वाला देश दिया था। इन के दो पुत्र थे—(१) क्रोष्ठु (२) सहस्त्रजित।

क्रोष्ठु से मुख्य यादव वंश चला, दूसरे से हैहय वंश। यदु के राज्य का उत्तरी भाग सहस्त्रजित् को मिला, और दक्षिणी क्रोष्ठु को। यदु लोगों ने यज्ञ त्याग दिए। वैदिक धर्म भी छोड़ दिया और वे दुराचार हो गए। ऐसे संकेत ऋग्वेद में हैं। क्रोष्ठु का पुत्र वृजिनीवान् था, उसका पुत्र स्वाही था, स्वाही का रुशद्गु

---

१. महा० आदि– ८९। ६

२. महारथ महा भा० आ० ८९। ७।

३. वायु पुराण ९९। १२३। मत्स्य ४९। ४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था। उसका पुत्र चित्ररथ और चित्ररथ का शशिविन्दु[1]। शशिविन्दु चक्रवर्ती था।

क्रोष्टु का देश वर्तमान विदर्भ था। यही देश शशिविन्दु का था। परन्तु उस काल में इस देश का कुछ दूसरा ही नाम था। शशिविन्दु के ही वंश में बीसवीं पीढ़ी बाद आगे विदर्भ राजा हुआ। उसी के नाम पर इस देश का नाम भी विदर्भ हुआ। शशिविन्दु ने पौरव राज्य को राज्यच्युत किया[2]।

तुर्वश वंश—यदु के सगे भाई तुर्वश को ययाति के बटवारे में प्रायः रीवां प्रान्त मिला था। फिर यह वंश उत्तरी विहार में प्रतिष्ठित हुआ। इस वंश का २२ वां राजा मरुत्त उत्तर विहार का एक प्रतापी राजा हुआ। यह चक्रवर्ती था जिसे मान्धाता ने जय किया[3]। मरुत्त के पिता करन्धय भी प्रतापी थे।

द्रुह्यु-वंश—ययाति के बटवारे में द्रुह्यु को जमुना के पश्चिम चम्बल के उत्तर वाला देश मिला। इस वंश के २१ वें राजा अंगार को मान्धाता ने हराया था। जिस से इन लोगों को और भी पश्चिम में हटना पड़ा। इन का वंश गान्धार तक फैला[4]।

आनव-वंश—अनु को गंगा-जमुना द्वाव का उत्तरी भाग मिला। इस वंश के १९ वें राजा जन्मेजय को मान्धाता मानव ने हराया, जिस से यह राज्य बिखर गया। कुछ आनव पूर्व की ओर और कुछ पश्चिम की ओर चले गए। आगे पश्चिम की ओर जाने वालों के नेता महामनस चक्रवर्ती हुए।

मुख्य पुरुष और घटनाएं—इस काल में अयोध्या और प्रतिष्ठान नगर सम्पन्न हुए। गया और श्रावस्ती नगरी बसाई गई। तथा आर्यों और अनार्यों के राज्य विस्तार हुए। आर्द्र-युवनाश्व, विस्तथ, कुवलयाश्व, युवनाश्व द्वितीय, मतिनार, तंस, शशिविन्दु, अंगार, जन्मेजय प्रमुख पुरुष हुए। आर्यों तथा आर्य बन्धुओं का राज्य-विस्तार समुद्र पर्यंत फैला।

७—दायभाग और उत्तराधिकार

दायभाग—ज्यों २ आर्यों के राज परिवारों की वृद्धि होती गई। बटवारे का प्रश्न दिन पर दिन उलझन और झंझट का प्रश्न बनता चला गया। आरम्भ में इसी

---

१. मत्स्य ४५। १८। वायु ९५। १९।
२. ब्रह्माण्ड पु० ६८। ९०। २। वायु ९३। ८७। ९०।
३. म० भा० अश्वमेध पर्व। वायु।
४. म० भा० शान्ति पर्व अ० २८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दायभाग के निमित्त बड़े २ बारह देवासुर संग्राम हुए। अब भी प्रायः बटवारे के प्रश्न पर युद्ध उठ खड़े होते थे। आरम्भ में सूर्य और चन्द्र वंशी राजा अपने सब पुत्रों को अपना राज्य टुकड़े २ करके पृथक पृथक बांट देते थे, जिससे उन पुत्रों की पृथक गद्दियां और पृथक वंश बनते गए। उन वंशों में भी इसी प्रकार सम्पत्ति बढ़ती गई, और निरन्तर राज्यों के छोटे २ टुकड़े होते चले गए। बहुतेरे राज्य तो टुकड़े होते २ साधारण जमींदारी ही रह गए। परन्तु परिवार और कुल उनके भी पृथक और स्वतन्त्र होते गए। इस प्रकार दायभाग या खानदानी सम्पत्ति के बटवारे ने आर्यों की राजनीति और समाज नीति में एक महत्वपूर्ण स्थान कर लिया। भाई चारे की एकता के भाव नष्ट हो गए, और इन परिवारों में निरन्तर युद्ध होने लगे। प्रसिद्ध महाभारत संग्राम भी दायभाग निमित्त हुआ।

उत्तराधिकार—पितृ परिवार की प्रथा प्रचलित होने पर एक पिता और एक या अनेक माताओं से उत्पन्न पुत्रों को पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त होता था। बड़े पुत्र को सम्पत्ति का मुख्य भाग मिलता था, शेष को कुछ कम! इन नियमों में लगातार परिवर्तन होते चले गए। परन्तु ये नियम कुछ निश्चित न थे। पिता की इच्छा ही सर्वोपरि होती थी। राजा के दूसरे कार्य भी स्वेच्छाचारी होते थे। बहुधा पिता बड़े पुत्र को वंचित करके किसी छोटे पुत्र को मुख्य अधिकाँर दे देता था। ययाति ने बड़े पुत्र यदु को मुख्य गद्दी से वंचित कर वह गद्दी अपने छोटे पुत्र पुरु को दी थी। दशरथ ने भी कैकेयी को यह वचन देकर विवाहा था कि उसी के पुत्र को अयोध्या का राजा बनाया जायगा।

शशि बिन्दु के कुल में दायभाग—यदु वंश की माथुर शाखा में बीसवीं पीढ़ी पर शशि बिन्दु प्रतापी सम्राट् हुआ। यह प्रथम चक्रवर्ती था। शशि बिन्दु ने अपने कुल में दायभाग की नई मर्यादा बांधी। शशि बिन्दु के पिता चित्ररथ ने एक यज्ञ किया। उसमें उसने अकेले शशिबिन्दु को अन्नादि का अध्यक्ष बनाया। तभी से यह मर्यादा बंधी कि चित्ररथ की सन्तात अर्थात् शशि बिन्दु और उसके वंश में एक ही क्षत्रपति होगा। शेष उसके अनुजीवी होंगे। इसका अभिप्राय यह--कि राजा के सब पुत्रों में राज्य नहीं बांटा जायगा। जैसे मनु ययाति और यदु के पुत्रों में राज्य बांटा गया था। उस प्रकार चित्ररथ की भावी सन्तानों में राज्य का विभाग नहीं होगा। सम्पूर्ण राज्य एक ही का रहेगा।

साम्राज्य का आरम्भ—शशि बिन्दु के कुल की देखादेखी अन्य प्रमुख राजवंशों ने भी यही नीति अपना ली। इससे बड़े २ राज्यवंशों का खण्डित होना रुक गया। तथा सब भाई परिजन जो बंटवारे होने से अपने अपने राज्यों के खण्डों की रक्षा करने में संग्लन रहते थे, अब मिलकर एक ही राज्य को समृद्ध करने लगे, जिससे आर्यों में साम्राज्य का आरम्भ हुआ।

—:०*०:—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

८—राजसूय और अश्वमेध यज्ञ

यज्ञ परिपाटी—आर्य यज्ञ परिपाटी को परंपरा से लेकर भारत में आए थे। वे अग्निहोत्र करते तथा अग्नि में देवताओं की स्तुति करके दूध, अन्न, घृत, जीव और सोमरस की आहुति देते थे। यह अग्निहोत्र अपने कल्याण की कामना से किया जाता था। आगे विशिष्ट अवसरों पर इसी अग्निहोत्र की विधि में अनेक नई विधियाँ और रीतियाँ जोड़ दी गई और उसका नाम यज्ञ पड़ा।

यज्ञ शब्द 'यज्' धातु से बना है। इसका अर्थ है देव पूजन, संगतिकरण और दान। आर्य लोग यज्ञ को श्रेष्टतम कर्म मानते थे[1]। परन्तु ज्यों २ आर्यों के राज्य का विस्तार होता गया, यज्ञों का राजनैतिक रूप बनता गया। अनेक प्रकार के यज्ञों के रूप बन गए, जिनमें राजसूय, वाजपेय, अग्निष्ठोम, अश्वमेध, अग्निहोत्र, अगन्याधान, और चातुर्मास्य प्रमुख हैं[2]। ब्राह्मणों और सूत्र ग्रन्थों में इन यज्ञों के अनेकों प्रकार बहुत विस्तार से वर्णित हैं। ये यज्ञ या तो राजन्य करते थे-या याजक। राजन्यों ने इन्हें राजनीतिक समारोह का रूप दिया।

ऐन्द्राभिषेक—राजाओं को बड़ा बनाने के लिए सबसे पहले ऐन्द्राभिषेक की परिपाटी चली। उन दिनों याजक लोग राज पुरोहित और राज मन्त्री दोनों ही का अधिकार रखते थे। अतः स्वाभाविक था कि यज्ञों का धर्मानुष्ठान राजनैतिक अनुष्ठान हो गया। सबसे प्रथम मनुर्भरतों में चाक्षुषमनु के दूसरे पुत्र अत्यराति जानन्तपति ने उत्तर कुरु जय करके सातदृव्य ऋषि से अपना ऐन्द्राभिषेक कराया। फिर शयाति मानव का च्यवन भार्गव ने ऐन्द्राभिषेक किया। सुदास पैजनन का ऐन्द्राभिषेक वशिष्ट ने किया। मरुत्त, अवीक्षित, शतानीक, शत्राजित, भरत दुर्मुख पांचाल तथा कैव्य पांचाल ने भी ऐन्द्राभिषेक कराया। इस अवसर पर इन राजाओं ने दस दस हजार हाथी और इतनी ही दासियाँ सोने के गहने पहना कर तथा हजारों गायों के यूथ दान में किए[3]।

राजसूय—राजसूय यज्ञ केवल राजन्य ही कर सकता था। यह यज्ञ करने के बाद उसे 'महाराज' की उपाधि मिलती थी। यह यज्ञ माघ शुल्क पूर्णिमा के बाद फाल्गुन शुल्क १ को आरम्भ होता था। इसमें अनेक प्रकार के विधान होते थे। पहिले हजार दक्षिणा और चार दीक्षा वाला सोमयाग होता था। जिसमें पन्द्रह दिन लग जाते थे। फिर फाल्गुन की पूर्णिमा को चातुर्मास्य, याग शुरु होते थे। जो एक

१—'यज्ञो वैश्रेष्ठतम कर्म' शतपथ, १।७।४५।

२—अथर्व, ११-७।

३—महाभारत, द्रोणपर्व, और शांतिपर्व में षोड़स राजकीय उपाख्यान।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वर्ष में पूरे होते थे। फिर 'पंचवातीय' याग होता था, जिसमें अनेक यज्ञ अनुष्ठान होते थे। इसके बाद 'रत्न होम' होता था जो राजसूय का खास अंग था। इसमें राजा, सेनापति आदि राजा के ग्यारह प्रधानों के घर जाकर एक-एक दिन यज्ञ करता था। इसके अनन्तर अनेक छोटे-मोटे याग यज्ञ–विधि विधान होते रहते थे। फिर राजा का अट्ठारह तीर्थजलों से अभिषेक होता था। फिर राजा को शस्त्र धारण कर रथ पर सवार करा कर चारों ओर घुमाया जाता था। और आए हुए राजा कुछ न कुछ सेवा करते थे। कोई घोड़ा जोतता, कोई चँवर डुलाता, कोई रथ का जुआ लगाता था। फिर उसे सिंहासन पर बैठाकर उसके महाराज होने की घोषणा की जाती थी। सिंहासन विशेष प्रकार का बनता था। वहाँ राजा कुछ प्रतिज्ञाएँ करता और कुछ रीतियों का पालन करता था। फिर यज्ञ कराने वाले ऋत्विजों को दक्षिणा दी जाती थी। यज्ञ की समाप्ति एक वर्ष से भी अधिक काल में होती थी। इस बीच राजा न बाल बनवा सकता था न जूता उतार सकता था। सिंहासन पर भी जूता पहन कर बैठता था।

राजा की सेनाएँ उधर दिग्विजय करती रहती थीं। पराजित राजा लोग यज्ञ में भारी-भारी भेंट लेकर आते रहते थे। सेवा करते रहते थे। इस प्रकार राजसूय करने पर राजा 'महाराज' हो जाता था[1]।

अश्वमेध––अश्वमेध बहुत भारी यज्ञ होता था। इसे केवल सम्राट् या चक्रवर्ती ही कर सकता था। इसमें सहस्त्रों की दक्षिणा और सैंकड़ों पशुओं का याग होता था। इस यज्ञ में दो विशेष विधियां होती थीं––घोड़ा छोड़ना और यजमान का यश-गान। घोड़ा वेगवान्, हज़ार गौ के मूल्य वाला, युवा होता था। उसका अगला भाग काला, पीछे का सफेद और ललाट पर कृत्तिका नक्षत्र के गाड़े से छींटे होने चाहिए। जब घोड़े को निहलाते थे, तब तक होम होता था। घोड़े की रखवाली सौ कवचधारी राजपुत्र, सौ राजन्यों के खड्गधारी पुत्र, सौ सूत और ग्रामीणों के पुत्र धनुष बाण लिए और सौ क्षत्ता और संग्रहीताओं के पुत्र लठ लिए हुए तथा सौ बुड्ढे घोड़े साथ होते थे। जिनके साथ से घोड़ा अधिक दूर न चला जाय।

घोड़ा स्वच्छन्द विचरण करता था। उसके पीछे रक्षक दल और उसके पीछे चतुरङ्गिणी सेना चलती थी। रक्षकों को आज्ञा होती थी––हे दिशाओं के रक्षकों, इस घोड़े को संभालो। यदि तुम यज्ञ को पूर्ण करा दोगे तो तुम्हें राजभाग, राष्ट्र मिलेगा। तुम राजा हो जाओगे, तुम अभिषेक के योग्य हो जाओगे। नहीं तो राज्य भाग से रहित राज्य के अनधिकारी राजन्य या वैश्य बन जाओगे। इसलिए प्रमाद न

---

१. शुक्ल यजुर्वेदसंहिता अ० ९। १०। मैत्रायणी संहिता २। ६। ४। ३। शतपथ ब्राह्मण ५। २। काव्यायन श्रौत सूत्र २५। आदि।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करो। स्नान के पानी से इसे बचाओ, घोड़ियों से बचाओ, घोड़े को पानी पिलाओ, चारा खिलाओ। जो कुछ राज्य में पका पकाया होगा, वह तुम्हें मिलेगा। गाँव-गाँव में रथकार के घर में रहना, क्योंकि वही तुम्हारा विश्राम स्थल है।

घोड़ा छोड़ कर यजमान का यश-गान होता था। वर्ष भर तक यजमान का यश गाने के लिए दो वीणा बजाने वाले रखे जाते थे। एक याजक होता था, दूसरा राजन्य। याजक दिन को गाता था और राजन्य रात को। याजक यह गाता था कि इसने यह यज्ञ किया—यह दान दिया और राजन्य गाता था—इसने यह युद्ध किया, वह देश जीता।

तीसरी बात पारिप्लव उपाख्यान की होती थी[1]। वेदी के दक्षिण में अध्वर्यु एक सुनहरी गद्दी पर होता को बैठाता था। उसके दाहिनी ओर सोने की चौकी पर यजमान बैठता था। उसके पुत्र मन्त्री आदि दरबार लगा कर उसके पास बैठते थे। उसके दाहिनी ओर ब्रह्मा और उद्गाता सुनहरी गद्दी पर, और उसके सामने अध्वर्यु सोने के पाटे पर बैठता था[2]। अध्वर्यु होता से कहता था—होतः, सब जीवधारियों का उपाख्यान कर।

अब होता जो उपाख्यान आरम्भ करता था, वह दस दिन चलता था। प्रतिदिन एक जीवधारियों के समूह की व्याख्या की जाती थी। इस प्रकार दस दिन के पीछे फिर वही उपाख्यान आरम्भ से दुहराया जाता था। वर्ष भर तक दस-दस दिन करके ३६ बार (१० × ३६ = ३६०) यह कहानी कही जाती थी, जब तक कि घोड़ा लौट आता था। सारी प्रजा, स्त्री–पुरुष और युवा–वृद्ध ऊँच-नीच वहाँ आ एकत्र होते थे। कोई तूंबी की, कोई तात की, कोई सात और कोई सौ तांत की वीणा लिए होता था[3]।

घोड़ा लौट आने पर यज्ञ की और क्रियाएँ होती थीं और यज्ञ सम्पन्न होने पर 'यह सम्राट् है', 'यह सम्राट् है' ऐसी घोषणा की जाती थी।

—:०*०:—

---

१. परिप्लव = फिर फिर पलट कहानी।

२. यज्ञ कराने के लिए चार विद्वान् होते थे, जो एक-एक वेद के ज्ञाता होते थे।

३. आश्वलायन अ० १०। शांखायन १६। शतपथ ब्रा० १३।४। कात्यायन श्रौतसूत्र २० आदि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

९--राजा, महाराज, सम्राट, चक्रवर्ती और सार्वभौम

राजा--पहिले राज्य का अधिपति राजा कहाता था। राजा का पद सर्वोपरि था। राजा से बड़ा और कोई न था। राजा अपनी प्रजा का स्वामी तथा सर्वेसर्वा होता था। राजा पर किसी का शासन न था। परन्तु अब राजा पर महाराज और महाराज पर सम्राट् बनने लगे। महाराज और सम्राट का पद आसपास के राजाओं को जीतकर उन्हें आधीन करने पर मिलता था। इस काम के लिए राजा और उसके भाई बन्द सेना लेकर दिग्विजय करने निकलते थे। छोटे २ राजाओं को या तो युद्ध करना पड़ता था या बिना ही युद्ध किए वे आधीनता मान लेते थे। ये आधीन राजा अपने राज्य के तो स्वामी ही बने रहते थे, परन्तु उन्हें विजयी राजा को अपना अधिपति और महाराज स्वीकार करना पड़ता था। उसकी आधीनता मानी पड़ती थी। और उसे कुछ कर भी देना पड़ता था।

महाराज—जो राजा महाराजा बनना चाहता था वह पहिले दिग्विजय करने निकलता था। फिर, जो राजा युद्ध में हार जाते या बिना युद्ध किए ही संधि कर लेते थे, वे सब उसके करद राजा कहाते थे। फिर वह राजासूय यज्ञ करता था, जिसमें इन सब करद राजाओं को हाजिर होकर कुछ न कुछ सेवा करनी पड़ती थी, जिससे सब पर उनकी आधीनता प्रकट हो जाती थी। यज्ञ में बहुत धूमधाम होती थी तथा राजा को महाराज घोषित किया जाता था।

सम्राट—सम्राट का पद महाराज से भी ऊंचा होता था। केवल महाराज ही सम्राट बन सकते थे। सम्राट पद के लिए महाराज को अश्वमेध यज्ञ करना पड़ता था। अवश्मेध का घोड़ा रत्नाभरणों से सजाकर खुला छोड़ दिया जाता था। उसका जिधर भी चाहे जा सकता था। उसी के पीछे २ राजा की चतुरंगिणी सेना चलती थी। चतुरंगिणी सेना में हाथी घोड़े रथ और पैदल चार प्रकार की सेना होती थी। वह घोड़ा घूमता फिरता दूसरे राजाओं के राज्य में घुस जाता था। तब, जो जोरावर राजा होते थे वे उसे बांध लेते थे। घोड़े के बांधने पर युद्ध होता था। युद्ध में हारकर वह राजा आधीन हो जाता था। तथा घोड़े को छोड़ देता और बहुत सा धन रत्न जीते हुए राजा को भेंट देता था। जिन राजाओं के राज्य में घोड़ा बांधा नहीं जाता था और राज्य पार कर लिया जाता था, वे आधीन माने जाते थे। इस प्रकार यह घोड़ा सारे राज्यों में घूम जाता था। उसके वापस आने पर अश्वमेध यज्ञ होता था। और हारे हुए सब आधीन राजा उसमें हाजिर होकर महाराज को अपना सम्राट स्वीकार कर लेते थे। यज्ञ में घोषणा हो जाती है कि यह सम्राट् है। सम्राट है।

चक्रवर्ती—जो राजा बारम्बार अश्वमेध यज्ञ करता था, बड़ी २ दिग्विजय करता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था, नए देशों को जीत लेता था। जिसके राज्य की सीमाएं समुद्र को छू लेती थीं। उसे चक्रवर्ती कहा जाता था। चक्रवर्ती का प्रताप सम्राट से भी बहुत अधिक होता था। परन्तु उसकी राज्य सीमा भारतवर्ष में ही सीमित होती हैं।

सार्वभौम--जो चक्रवर्ती समुद्र को भी पार करके भारत से बाहर द्वीपों तथा देशान्तरों को विजय कर लेता था वह सार्वभौम कहाता था। त्रेता युग में ग्यारह चक्रवर्ती और केवल दो-मान्धाता और भरत सार्वभौम राजा हुए।

—:०*०:—

१०--तीन प्रथम चक्रवर्ती

शशिबिन्दु-मान्धाता-मरुत्त

शशिबिन्दु—शशिबिन्दु यदुवंश की बीसवीं पीढ़ी में हुआ। इस काल में छोटे छोटे कई साम्राज्य स्थापित हो चुके थे। परन्तु शशिबिन्दु का ऐसा विशाल साम्राज्य पहिला साम्राज्य था जो भारत के समुद्र तट को छूगया था[1]। शशिबिन्दु की राजधानी विर्दभ थी। शशिबिन्दु से प्रथम यादव वंश एक प्रकार से आर्यावर्त से वहिष्कृत था। पर शशिबिन्दु ने अनेक अश्वमेध यज्ञ किए। उसके पास सोने का बड़ा भारी कोष था। उसने बहुत स्वर्ण बांटा। उसका परिवार विस्तृत था[2]। अनेक पुत्र पुत्रियां थीं। सबसे बड़ी अप्रतिम सुन्दरी विन्दुमती थी। जिसका विवाह सार्वभौम चक्रवर्ती मान्धाता मानव से हुआ। शशिबिन्दु का राज्य काल दीर्घकालीन रहा[3]।

दायभाग की स्थापना—शशिबिन्दु के पिता चित्ररथ का कापेयों ने यज्ञ कराया। तब उसे अकेले ही को अन्नादि का अध्यक्ष बनाया। इस के बाद चित्ररथ की संतानों में शशिबिन्दु अकेला ही छत्रपति हुआ[4]। तथा आगे भी यही मर्यादा बंध गई। तब से इस वंश में राज्य के भाइयों और दायाद बांधवों में बटवारे की प्रथा बन्द हो गई। एक ही ज्येष्ठ राजा छत्रपति होता, शेष अनुजीवी होते थे। यह प्रथा आगे मानवों और दूसरे कुलों ने भी अपनाई। शशिबिन्दु ने पौरव राज्य को अंगीकार किया।

१—शशिबिन्दु रितीख्यातश्चक्रवर्ती वभूव। मत्स्य ४४। १८। चक्रवर्ती महासत्वः। वायु ९५ १९।

२—मत्स्य-४४। १८-२०। वायु ९५। २०।

३—महाभा० द्रोण० ६५। ११।

४—ताण्डय ब्रा० २०। १२। ५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मान्धाता—इक्ष्वाकु वंश में युवनाश्व द्वितीय का पुत्र सार्वभौम चक्रवर्ती मान्धाता हुआ। इसने सप्तद्वीप पृथ्वी जय की[1]। मान्धाता इश्वाकु वंश की २१ वीं पीढ़ी में हुआ। इसकी माता गौरी मतिनार की पुत्री थी। इस राजा के राज्य का बहुत विस्तार हुआ। इसने द्रुह्य वंशी अंगार, आवीक्षित मरुत्त, जन्मेजय आनव, अंङ्ग वृहद्रथ, असित गय, सुधान्वा, नृग, आदि आठ नृपतियों को जय किया[2]। उसने दिग्विजय की[3]। उसने द्रुह्यु वंशी अंगार को कठिन संग्राम में मारा[4]। यह अंगार बड़ा दुर्धर्ष राजा था, तथा गान्धार पति था[5]। इसे महामेध कहा गया है। यह युद्ध १४ मास तक हुआ था। तथा इसमें मान्धाता ने अपने दोनों महान् सम्बन्धी मतिनार (नाना) और शशिविन्दु (स्वसुर) से सहायता ली थी।

मान्धाता सोलह वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठे। ये गौर वर्ण, अच्छे डील डौल वाले और बलवान् थे। इनकी सेना १० लाख थी, जिस से इन्होंने सारा भारत—लंका तथा भूमध्य सागर के द्वीपों को जीत कर सार्वभौम चक्रवर्ती पद पाया[6]। उन्होंने पाताल (अफ्रीका) भी जय किया[7]। वे त्रैलोक्य विजयी प्रसिद्ध

---

१. गो० ब्रा० १।२।१०

२. यश्चाङ्गारं तु नृपतिं मरुत्त मसितं गयम्।
अङ्गं वृहद्रथं चैव मांधाता समरेऽजयत्।
यौवनाश्वो यदाङ्गारं समरे प्रत्ययुध्यत।
विस्फारैर्धनुषो देवा द्यौरभेधीति मेनिरे।
महा० शा० अ० २८।
जनमेजयं सुधन्वानं गयं पूरुं व्रहद्रथम्।
असितं च नृगं चैव मांधाता मानवोऽजयत्। म० व्र० अ० ६२।१०

३. हर्ष चरित उल्लास ७।

४. यौवनाश्वेन समरे कृच्छ्रेण निहतोबली।
युद्धं सुमहदासीत् मासान् परिचतुर्दश।
वायु० ९९।८। हरिवंश ३३–२५।

५. तेन सोमकुलोत्पपन्नो गांधाराधिपतिर्महान्।
गर्जन्निव महामेद्यः प्रमथ्य निहतः शरैः।
म० व० अ० १२७ श्री० ४३।

६. महाभारत III १२६, १०४, ६२। VII ६२, २२११, २।

७. अफ्रीका में 'मान्धाता' स्थान भी है।
'मान्धाता मार्गणत्यसनेन सपुत्रपौत्रोरसातलमगात्।
हर्षचरित–तृतीय उल्लास।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुए[१]। सूर्योदय के प्रदेश से लेकर सूर्यास्त तक का सारा प्रदेश मान्धाता के राज्य के अन्तर्गत था[२]। वह वेदर्षि भी थे[३]। वे प्रबल न्यायाधीश थे। चोर डाकुओं का उन्होंने उन्मूलन किया। इनके राज्यकाल में बारह वर्ष का अकाल पड़ा, जिसका इन्होंने प्रबन्ध किया[४]। इन्होंने कुरुक्षेत्र में अनेक यज्ञ किए।

पौरव राज्य भंग—पुरु की मुख्य चन्द्रवंशी गद्दी पर मतिनार बीसवीं पीढ़ी में महान् प्रतापी राजा हुआ। मतिनार से पूर्व पुरु के बाद इस वंश में कोई महत्त्व-पूर्ण नामांकित राजा नहीं हुआ था। वह वंश युद्धों में हारता ही रहा था, और इसका बल क्षीण होता ही गया। मतिनार विद्वान् और प्रतापी नरपति था। उसने अपनी पुत्री गौरी का विवाह मानव युवनाश्व से करके अपने सम्बन्ध दृढ़ किए। युवनाश्व, गौरी का पुत्र महान् विजेता मान्धाता सार्वभौम हुआ। मतिनार के पिता ऋचेयु दस भाई थे। इन्होंने भी अपना शौर्य प्रकट किया और अश्वमेध यज्ञ किए। इस प्रकार मतिनार के हाथ में एक सुगठित छोटा सा साम्राज्य आया। मतिनार ने बारह वर्ष का दीर्घ सत्र किया। मतिनार की पत्नी का नाम मनस्विनी था। मतिनार ने अनेक युद्ध जय किए, परन्तु मतिनार की वृद्धावस्था कालमें यादव वंश की बीसवीं पीढ़ी में महा प्रतापी शशिबिन्दु चक्रवर्ती हुआ। उसका बड़ा प्रताप बढ़ा। और उसने अपने काल में सबसे बड़ा साम्राज्य संगठित किया। शशिबिन्दु से मतिनार का भी युद्ध हुआ। इस युद्ध में मतिनार की पराजय हुई। और संधि द्वारा मतिनार का पौरव राज्य शशिबिन्दु का करद राज्य हो गया।

शशिविन्दु ने मान्धाता को अपनी पुत्री ब्याही। बाद में शशिबिन्दु की मृत्यु के बाद, मतिनार पुत्र तंसु ने फिर अपने राज्य को शशिविन्दु के दुर्बल उत्तराधिकारी रुक्म के हाथ से उभारना चाहा। मान्धाता तंसु का भाञ्जा था, और रुक्म का बहनोई। उसका प्रताप बहुत बढ़ा चढ़ा था। इस अवसर पर उसने अपने साले का पक्ष लिया, और अपने मामा तंसु को युद्ध में परास्त कर, उसका पौरव राज्य भंग कर दिया। तथा अपने मामा तंसु को राज्यच्युत कर दिया। इस प्रकार बीसवीं पीढ़ी में पुरुओं की प्रसिद्ध गद्दी मान्धाता द्वारा भंग कर दी गई।

---

१. त्रैलोक्य विजयी नृपः। वायु ८८। ६७।
विचारी होवै कावन्धिः।..... 'समान्धातुर्यौवनश्वस्य सार्वभौमस्य राज्ञः सोमं प्रसूर्त माजगाम। गो० ब्रा० १। २। १०।

२. यावत्सूर्य उदयति यावच्च प्रतितिष्ठति। सर्वं तद्यौ व नाश्वस्य मांधातुः क्षेत्र मुच्यते। वायु ८८। ६८। विष्णु ४। २ ६५।

३. ऋग्वेद १०। १३४ के ऋषि थे।

४. महा० वन० १२७। ४२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जनमेजय आनव की पराजय—जिस समय मान्धाता का तेज चारों दिशाओं में तप रहा था, तब आनव वंश की आँग शाखा में उन्नीसवीं पीढ़ी पर राजा जन्मेजय गद्दी पर था। जन्मेजय बड़ा प्रतापी था। ययाति ने अनु को बटवारे में गंगा–जमुना द्वाब का उत्तरी भाग दिया था। यह स्थान वर्तमान बदायूं, मुरादाबाद, देहरादून, सहारनपुर के आस पास का इलाका था। मान्धाता ने जन्मेजय को भी परास्त कर उसका राज्य छीन लिया। जन्मेजय के कुछ उत्तराधिकारी पंजाब में बढ़ गए। कुछ पूर्व की ओर चले गए।

मान्धाता की मृत्यु—वृद्धावस्था में मृगया करते हुए मान्धाता को मथुरा के असुर राजा ने घात पाकर पुराना वैर निकाल मार डाला।

मरुत्त–अवीक्षित—वैशाली की सूर्यवंशी शाखा की बीसवीं पीढ़ी में अवीक्षित पुत्र मरुत्त उत्पन्न हुए। मरुत्त से पूर्व यह वंश साधारण स्थिति में चल रहा था। मरुत्त बड़े प्रतापी और तेजवान् हुए। अपने वंश के वे सर्वोच्च नरपति थे। उन्होंने हिमालय के अंचल में तथा कुरुक्षेत्र में अनेक अश्वमेध यज्ञ किए, तथा अतोल स्वर्ण चांदी याजकों को दी। मरुत्त के यज्ञ में अनेक देवता आए तथा पृथ्वी के अनेक भूपाल उपस्थित हुए। मरुत्त को हिमालय के अंचल में सोने की खान मिल गई थी। उसमें उन्हें जो स्वर्ण मिला, उसमें से उन्होंने बहुत सा यज्ञ में दान दे दिया। फिर भी बहुत स्वर्ण बच रहा जो वहीं गाढ़ दिया गया। पीछे वह धन पौरव युधिष्ठिर को मिला, जिससे उसने यज्ञ किया।

मरुत्त के याजक संवर्त्त थे, जो अंगिरा ऋषि के पुत्र तथा देवगुरु वृहस्पति के भाई थे। मरुत्त ने अपनी एक पुत्री भी संवर्त को यज्ञ में दान दी। मरुत्त ने अपना राज्य पूर्व में समुद्र तक और उत्तर में हिमालय के उसपार तक बढ़ाया। वे अत्यन्त दीर्घजीवी थे। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उन्हें मान्धाता मानव ने युद्ध में हराया। मरुत्त को जीतने से मान्धाता की कीर्ति बहुत बढ़ी[1]।

---

१. वायु पु० ८६, १५, १७। विष्णु IV १–१८। रामायण बाल० ४७–१२। भागवत IX ३, ३३। ब्रह्माण्ड III ६–१–१८। महा भा० अश्वमेधिक पर्व ४–११ और वन पर्व १३१। १६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

११—चक्रवर्ती महामनस-आनव

आनव वंश, उत्तर-पच्छिमी शाखा—सम्राट् ययाति ने अपने पुत्र अनु को बटवारे में गंगा–जमुना द्वाब का उत्तरी भाग दिया था। जब आनव जन्मेजय को मान्धाता मानव ने पराजित किया, तो यह वंश दो शाखाओं में बंट गया। एक शाखा उत्तर-पच्छिम की ओर गई। इस शाखा का नेता महाशाल था, जो जन्मेजय का पुत्र था। महाशाल शक्तिशाली नृपति था। उसकी प्रतिष्ठा इन्द्र के समान थी। परन्तु उसका पुत्र महामनस महा तेजस्वी हुआ। उसने चक्रवर्ती पद धारण किया। महामनस ने पूरे पच्छिमोत्तर पंजाद को अधिकृत किया। उसने और उसके पुत्रों ने आस पास के अनार्य राज्यों को जीत कर सिन्धु, सौवीर, कैकेय, मद्र, वाल्मीक, शिवि और अम्बद राज्यों की स्थापना की। लगभग समूचा ही पंजाब और पच्छिमोत्तर सीमा प्रान्त का प्रदेश, जो सिन्धु, बलूचिस्तान कहाता है, काबुल तक महामनस के उत्तराधिकारियों के अधिकार में आ गया। इसी से महामनस को सप्तद्वीपेश्वर कहा गया है[1]।

महामनस के उत्तराधिकारी—महामनस के दो पुत्र थे—उशीनर और तितिक्षु। दोनों वंशकर थे। उशीनर पंजाब में रहे। तितिक्षु पूर्व की ओर गए।

उशीनर

उशीनर बड़े धर्मात्मा प्रसिद्ध थे। उन्होंने अटक, उपनाम, उत्तर काशी अपनी राजधानी बनाई थी। उनकी पाँच पत्नियाँ थीं। पाँचों राजर्षि वंश की थीं। उनके नाम क्रमशः नृगा, कृमि, नवा, दर्वा, दृशद्वती थे। पाँचों पत्नियों के पाँच पुत्रों के पाँच पृथक् पृथक् राज्य स्थापित हुए, जिनका वंश-वृक्ष इस प्रकार है[2] :—

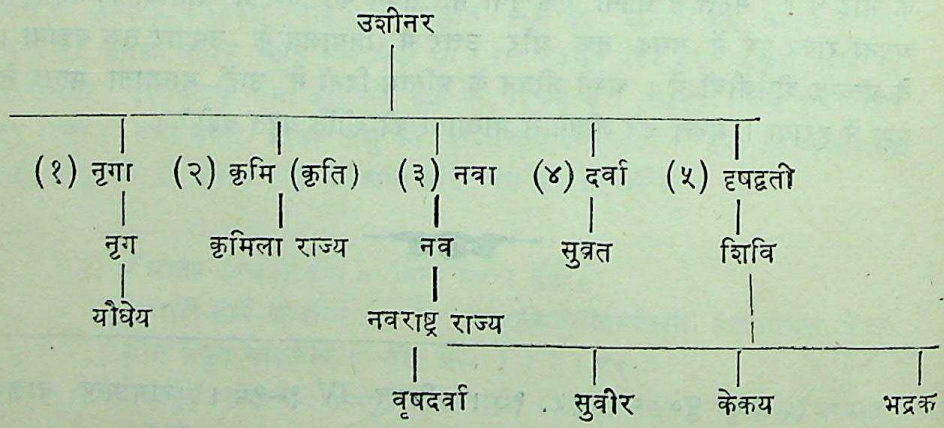

१. सप्तद्वीपेश्वरो जज्ञे चक्रवर्ती महामनाः। मत्स्य ४८।१४। वायु ९९।१७।७।
२. वायु ९९। १९। ब्रह्माण्ड ३–७४–१९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नृग के पुत्र यौधेय शतद्रु तट पर (वर्तमान वहावलपुर सीमा पर) बसे। कृमिलापुरी प्राचीन काल में कहां थी, यह अब अज्ञात है। अम्बष्ट राज्य की स्थापना सुव्रत ने की थी[1]। शिवि धर्मात्मा राजा था, झंग के निकट शोरकोट इसकी राजधानी शिविपुर थी। शिवि–औशीनर से शिवि वंश चला। जिसके चार पुत्रों ने आगे बढ़कर वृषदर्भ, केकय, मद्र, सौवीर राज्यों की स्थापना की। इस प्रकार यह राज्यवंश सम्पूर्ण पंजाब को, जिसमें वर्तमान पाकिस्तान भी है, अधिकृत कर गया था। इसी कैकय वंश की कैकेयी दशरथ की रानी, राम की सौतेली माता थीं।

आनव वंश आंग पूर्वी शाखा—आनवों का मूल राज्य गंगा जमुना के द्वावे में बदायूं मुरादाबाद, देहरादून, सहारनपुर के आस पास का इलाका था। यहां से महामनस और उनके पुत्र पश्चिमोत्तर पंजाब में गए थे। अब महामनस के दूसरे पुत्र तितिक्षु पूर्व की ओर बढ़े। इन्होंने वर्तमान भागलपुर के पास अंग राज्य कायम किया। इनके पोते के पोते बलि प्रसिद्ध राजा हुए। इन्हीं की रानी सुदेष्णा में वृहस्पति के भाई सम्वर्त के भतीजे तथा उतथ्य-ममता के पुत्र प्रसिद्ध वैदिक ऋषि अन्धे दीर्घतमस ने पाँच पुत्र नियोग द्वारा उत्पन्न किए। जिनके राज्य अंग (भागलपुर मुंगेर) वंग (वीर भूमि, मुर्शिदाबाद वर्द्धमान) नदिया कलिंग (उड़ीसा) सुम्ह (बांकुड़ा और मिदनापुर) पौन्ड्र (छोटानागपुर) स्थापित किए। इस प्रकार तितिक्षु के उत्तराधिकारियों ने समूचे पूर्वी बिहार से पूर्वी और पश्चिमी बगाल तथा उड़ीसा में अपने राज्यों का विस्तार किया[2]। बलि पुत्र अंग ने अपने पिता की राजधानी मालिनी में राज्य किया। इन्ही के नाम पर देश अंग कहाया। इन्हीं के वंशधर लोमपाद (४०) राम के पिता दशरथ के मित्र थे।

गांधार राज्य—गन्धार राजा द्रुह्यवंशी थे। ऋग्वेद के अनुसार वे उत्तर पच्छिमी लोग थे। केकय लोग गन्धार और व्यास नदी के बीच में थे[3]। राजधानी राजगृह या गिरिव्रज थी। जो जलालपुर झेलम पर थी। मागध गिरिव्रज से यह भिन्न नगर था। उशीनर केकय और मद्रक लोग आनव थे[4]। आनव मध्य पंजाब में रहते थे[5] मद्र के दो भाग थे। एक उत्तर मद्र, दूसरा दक्षिण मद्र। उत्तर मद्र हिमालय के उस पार था[6]। यह स्थान पर्शिया में था। ईरान का Media प्रदेश ही उत्तर मद्र

---

१. एतरेय ब्रा० ८। २१ VII ११३, १४।
२. रामायण II ६८, १९, २२।
३. बाल्मिकि रा० II ६८, १९, २२। VII ११३, १४।
४. वायु पुराण०
५ ऋग्वेद VIII ७४.
६. एतरेय ब्रा०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था[१]। उत्तर मद्र-मीडिया प्रदेश-काश्यप सागर तट पर अत्रि-स्थान के निकट है। मद्रयति शल्य यहीं के राजा थे, जिन्हें पाँश्चात्य 'सुलेमान' (Solomon) कहते हैं। इन की राजधानी 'पासर गद्दी' (Throne of Soloman) थी[२]। सावित्री के पिता अश्वपति भी मद्र के राजा थे।

ययाति का राज्य पर्शिया (इलावर्त-एलम) में भी उतना ही व्यापक था जितना भारतवर्ष में। उन्हें इन्द्र बनाकर फिर पदच्युत किया गया था[३]। उनकी दोनों पत्नियां भी अनार्यदैत्य कुल की थीं। अतः अनु मातृगोत्र से शुद्ध आर्य न थे[४]। अतः भारत में दवाव पड़ने तथा यहां का राज्य भंग होने पर उशीनर पश्चिमी पंजाब को भी अतिक्रान्त कर आगे पर्शिया तक बढ़ गए। अथवा उनके पुत्र शिवि या शिवि के पुत्र मद्र ने पर्शिया में अपने नए राज्य स्थापित किए। अनुवंशियों का एक राज्य आनव (Anav) नाम से काश्यप सागर के उस पार था[५]। पुराणों के अनुसार अनुवंशियों के राज्य ऐसे स्थान पर थे, जहां जल-मार्ग ही से जाया जा सकता था[६]। ईरान का 'उश' प्रदेश जो मध्य राज्य (Middle Kingdonn) कहाता है। उशीनर के वंशजों का था[७]। शिवि राज्य भी सम्भवतः ईरान का 'शिशतान' है। प्रसिद्ध है कि शिवि ने कपोतों को आश्रय दिया था। कपोत वास्तव में ईरान की एक जाति थी। पार्शिया के उशवक उजवेग संभवतः उशीनर के ही वंशधर है[८]।

---

१. देखिए--कनिंघम का इतिहास, दूसरी जिल्द।
२. हिस्ट्री आफ पर्शिया। देखिए (Paseaagodae) प्रकरण।
३. महाभारत शान्तिपर्व।
४. अनोऽस्तु म्लेच्छ जातयः। श्री मद्भागवत। महाभारत।
५. 'Anav Site in Trans-Caspia, हिस्ट्री आफ पशया। जिल्द १, पृ० ६१, ६५।
६. मत्स्य पुराण।
७. देखिए--ऐतरेय ब्रह्मांड और टाड राजस्थान।
८. हिस्ट्री आफ पार्शिया जि० २ पृष्ठ २१८

कौशीतकि उपनिषद में उशीनरों का साथ मत्स्य कुरु पांचाल वंशों से है। कथासरित्सागार और पाणिनि भी उशीनरों का उल्लेख करते हैं। ऋग्वेद में १० । ५९, ७, १० में उशीनरानी का संकेत है। अनुक्रमणि में उशीनर और शिवि का उल्लेख है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१२—दुःषन्त

मान्धाता का कुल— मान्धाता का कुल दो भागों में विभक्त हो गया। एक भाग राजन्यों (क्षत्रियों) और दूसरा याजकों (ब्राह्मणों) का बना। अभी तक यद्यपि क्षत्रिय और ब्राह्मण दो पृथक जातियाँ नहीं बनीं थीं। पर यज्ञ संस्था की स्थापना के बाद राजा और याचक प्रथक् होते जाते थे। राजा यद्यपि ऋषि कहला सकते थे— पर याजक नहीं। परन्तु याजक भले ही ऋषि नहीं— पुरोहित और यज्ञ कराने वाले होते थे। वे राजा नहीं बन सकते थे। मान्धाता के कुल में भी ये दोनों प्रकार के पुरुष हुए। यहाँ उनका वंश वृक्ष है—

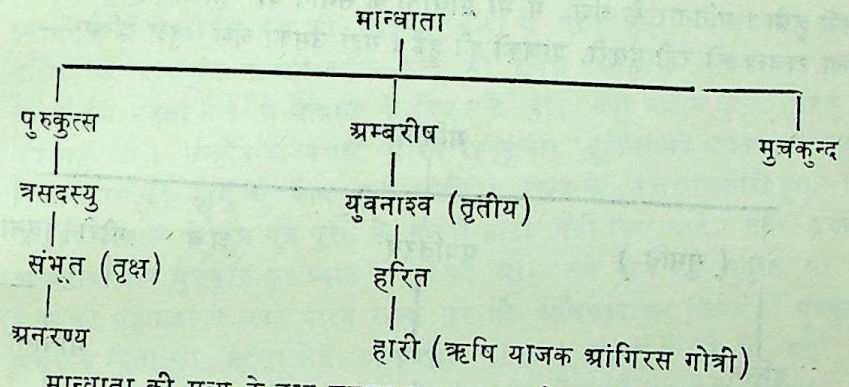

मान्धाता की मृत्यु के बाद उनका पुत्र कुत्स अयोध्या की मुख्य गद्दी का स्वामी हुआ। मान्धाता ने अपने प्रबल पराक्रम से द्रुह्यवंशी अंगार को पराजित किया था। अंगार के पुत्र गंधार ने गांधार राज्य स्थापित कर लिया था। गांधार राज्य अफगानिस्तान और बलूचिस्तान का संयुक्त नाम था। मान्धाता को अपने जीवन के अन्तिम दिनों में गान्धारों ने बहुत कष्ट दिया। इन दुर्दान्त शत्रुओं को दूर देश में दबाना उसके लिए दुरुह हो गया। मान्धाता की मृत्यु के बाद उन्होंने और भी सिर उठाया। कुत्स ने एक बार तो उनका दमन किया। परंतु दूसरी बार पराजित होकर बंदी हो गए। इसी पर इनका नाम 'पुरुकुत्स (अत्यंत बदनाम) नाम प्रसिद्ध हुआ। बंदी होने पर इनके वीर भाई मुचकंद ने इन्हें गंधर्वों से मुक्त करके छुड़ाया। परंतु बंदी होकर लौटने पर राजा ने इन्हें राजा नहीं माना। और इनके शिशु पुत्र त्रसदस्यु को राजा बनाया। जिसका जन्म उसके बाद में हुआ। त्रसदस्यु अभी दुध मुहा बच्चा ही था। उसके चचा अम्बरीष और मुचकुंद उसके संरक्षक और बली बने। परंतु समर्थ होने पर त्रसदस्यु ने बड़े दर्प से गन्धर्वों का दलन किया। तथा पिता के अपमान का बदला लिया। उसने सत्तरवर्ष दृढ़ हाथों से राज्य किया। अपने राज्य काल में उसने उत्तर कौशल राज्य को समृद्ध किया। पुरुकुत्स और त्रसदस्यु का वर्णन ऋग्वेद में है[1]। पुरुकुत्स राज्यच्युत हो नर्मदा तट पर आश्रम बना रहने लगे।

१. शत पथ—ब्रा० XIII ५ ४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कदाचित् उनकी मृत्यु पर उनके स्थान पर उनके भाई मुचकुन्द ने मान्धाता नगरी बसाई। जिसका पीछे हैहय महिष्मन्ता ने माहिष्मती नाम रखा। त्रसदस्यु के बाद उनका पुत्र सम्भूत राजा हुआ। ऋग्वेद में उसे तृक्ष कहा है। सम्भूत का पुत्र अनरण्य राजा हुआ। अम्बरीष ने यमुना तट पर प्रथक राज्य स्थापित किया। अम्बरीष बड़े भारी वीर योद्धा तथा धर्मात्मा प्रसिद्ध हुए। उन्होंने निरन्तर बड़े २ युद्ध किए।

मतिनार का पुरुवंश--हमने बताया था कि पुरुवंश में ८वीं पीढ़ी के बाद बीसवीं पीढ़ी तक कोई नामांकित पुरुष नहीं हुआ। बीसवां पुरुष मतिनार अत्यन्त प्रतापी हुआ। मतिनार के वंश में भी मांधाता के समान दो शाखाऐं हो गई। एक शाखा राजन्य की रही दूसरी, याजकों की हुई। यहां उसका वंश वृक्ष देखिए--

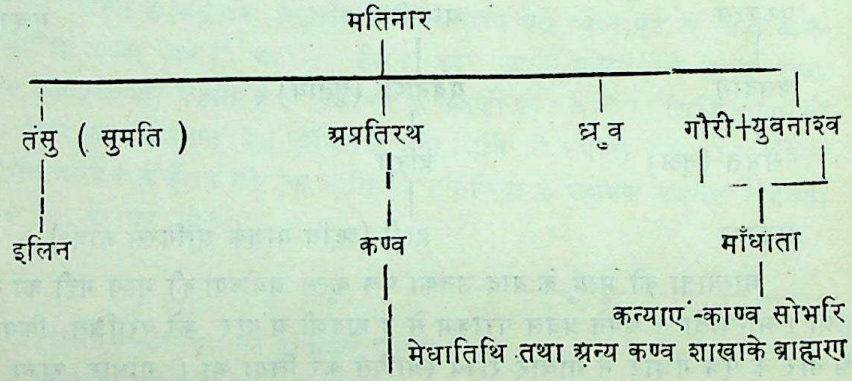

मतिनार के कई पुत्र थे। महाभारत ४ और वायु तथा मत्स्य तीन पुत्र बताता है। मतिनार पुत्रों में तंसु वंश प्रवर्तक क्षत्र था। उसकी स्त्री का नाम कालिन्दी था[1]। तंसु पुत्र इलिन के सम्बंध में बहुत अनिश्चित बातें पुराणों में लिखी हैं। कुछ पुराणों में इलिन को लड़की कहा गया है। महाभारत उसे राज पुत्र कहता है। और उसे सारी पृथ्वी का विजेता कहता है[2]। उसे विजेताओं में श्रेष्ठ बताता है। और उसकी स्त्री का नाम रथंतरी कहता है[3]। वायु पुराण उसे ब्रह्मवादी बताता है[4]। तंसु मतिनार का ज्येष्ठ पुत्र और पुरु वंश की मुख्य गद्दी का उत्तराधिकारी था। महाभारत में तंसु को महावीर्य लिखा गया

---

१. महाभारत

२. महा० आदि० ८९। १३।

३. महा०, आदि० ८९। १४। ९०। २९।

४. वायु ९९। १३२।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। महाभारत के अनुसार तंसु ने कालिंग राज कन्या से 'इलिन' नामक पुत्र उत्पन्न किया। इलिन ने रथन्तरी में पांच पुत्र उत्पन्न किए। जिनमें एक दुष्यन्त था[१]।

ईलिन का ज्येष्ठ पुत्र सुद्युम्न था, दुःषन्त नहीं। सुद्युम्न ही युवराज तथा पौरव राज्य का उत्तराधिकारी था। यदि पौरव राज्य भंग न हो गया होता तो वही पुरु वंश का २३ वीं पीढ़ी का राजा होता। परंतु पौरव राज्य भंग हो गया और सम्भतः मांधाता का यह युद्ध तंसु–प्रातत्पुत्र इलिन और सुद्युम्न से हुआ। जिस में सुद्युम्न मारा गया, और दुःषन्त राज्यभ्रष्ट राजकुमार रह गया।

दुःषन्त को तौर्वश मरुत्त ने गोद लिया—तौर्वश मरुत्त उत्तरी विहार के स्वामी थे। वे तौर्वश वंश की बाईसवीं पीढ़ी में राजा हुए। वे प्रतापी पुरुष थे। दक्षिण के राजकुल पाण्डय–चोल–केरल भी तुर्वश वंशी थे। महाभारत यवनों को भी तौर्वश कहता है। ये मांधाता के निधन के बाद गद्दी नशीन हुए। परंतु उनके पुत्र नहीं था। उन्होंने राज्यभ्रष्ट पौरव राजकुमार दुःषन्त को अपना दत्तक बनाया, और मरुत्त की मृत्यु के बाद दुःषन्त तौर्वश राज्य के उत्तराधिकारी हुए[२]। पीछे उन्होंने मांधाता के पुत्र पुरु कुत्स के गंधर्वो द्वारा बंदी किए जाने, तथा उनके भाई अम्बरीष और मुचकुन्द का ध्यान गंधर्वों की ओर लगे रहने का सुयोग पा तौर्वश सेना की सहायता से अपने पौरव राज्य पर भी अधिकार कर लिया। पुरुकुत्स पुत्र त्रसदस्यु पिता का बदला लेने गांधारों से निरंतर संग्राम में फँसे थे, अतः उन्होंने उत्तरकोशल के निकटवर्ती प्रतापी मरुत्त के उत्तराधिकारी दुःषंत से बिगाड़ ठीक न समझा। दुःषंत निर्विघ्न तौर्वश और पौरव राज्य का संयुक्त महाराजाधिराज बन बैठा। उसने त्रसदस्यु से संधि भी कर ली। दुःषंत का राज्य सरस्वती से लेकर गंगा तक था[३]। वे चतुरंत पृथ्वी के गोप्ता थे[४]। म्लेच्छ राज्य पर्यंत उनका राज्य था[५]।

महाभारत के अनुसार दुःषंत की पत्नी शकुन्तला तथा पुत्र भरत था। परंतु यह सत्य नहीं है। इस सम्बंध में आगे हम लिखेंगे।

---

१. तसु सरस्वती पुत्रं मतिनारादजीजनत्।
ईलिनं जनया मास कालिंग्यां तंसुरात्मजम्।
ईलिनस्तु रथन्तर्यांपंच पुत्रानजीजनत्। (महा० अ० अ० ९२, श्लो० २८, २९।

२. महा० VII ६८। ७४, XII २९।

३. महाभारत०

४. महाभा० आदि० ६२। ३–५ .....

५. म० आ० ६। ४–७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१३—चक्रवर्ती भरत-सौद्युम्न[1]

राज्यच्युत पुरुवंश—मानव मांधाता ने जब पौरव राज्य भंग कर दिया, तब पुरुवंश राज्यच्युत हो गया। तंसु पुत्र इलिन और उसके उत्तराधिकारी सुद्युम्न युद्ध में मारे गए। इलिन के दूसरे पुत्र दुःषंत राज्यभ्रष्ट राजकुमार की भांति रहने लगे। उन्हें तौर्वश मरुत्त ने गोद ले लिया, जो कालांतर में तौर्वश राज्य के स्वामी हुए। पीछे उन्होंने पौरव राज्य पर भी अधिकार कर लिया और महाराजाधिराज बन बैठे।

शकुन्तला—दुःषंत के बड़े भाई सुद्युम्न की पत्नी शकुन्तला थी। शकुन्तला सुद्युम्न के निधन के बाद असहाय विधवा अवस्था में रह गई, और उसने अपने चचिया स्वसुर कण्व का आश्रय लिया। उस समय वह गर्भवती थी। कण्व के आश्रम में उसने पुत्र प्रसव किया, जिसका नाम सर्वदमन रखा गया। कण्व ने उसके सब संस्कार किए। आगे वही बालक चक्रवर्ती भरत के नाम से विख्यात पौरव सम्राट् हुआ[2]।

---

१. शतपथ १३, ५, ४, १२।

२. कविकुलगुरु कालिदास ने अपनी अमर रचना 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में शकुन्तला की ऐसी अमल-धवल-तरल-सुकोमल स्त्री-मूर्ति चित्रित की है; कि जिसकी तुलना पृथ्वी पर और नहीं है। संसार के साहित्य-मनीषियों के मानस नेत्रों में कालिदास के ही माध्यम से शकुन्तला समाई बैठी है। न जाने देश-विदेश के कितने सहृदय जनों ने मुग्ध भाव से उस पर दृष्टिपात किया है। संस्कृतवाङ्मय में कालिदास की यह अमर कृत्ति सुविख्यात है। जिसने शकुन्तला का नाम संसार-भर में प्रसिद्ध कर दिया है।

महाभारत के आदि पर्व में एक शाकुन्तलोपाख्यान है। इसका आरम्भ ६८वें अध्याय से होता है। उसमें शकुन्तला की जो कथा वर्णित है; उसका सारांश यह है कि—मालिनी नदी के समीप चैत्ररथ वन में कश्यप-गोत्री कण्व का आश्रम था। वहीं विश्वामित्र ऋषि के औरस से मेनका अप्सरा में शकुन्तला का जन्म हुआ। मेनका शकुन्तला को जन्म देकर जंगल में छोड़ गई। जिसे कण्व ऋषि उठा लाए, और पुत्रीवत् उसका पालन किया। कलान्तर में जब वह युवती हुई तो एक दिन हस्तिनापुर के महाराज दुष्यन्त शिकार करते हुए आश्रम में आ उपस्थित हुए। पिता कण्व की अनुपस्थिति में शकुन्तला ने उनका अतिथि सत्कार किया। दुष्यन्त शकुन्तला को देख उस पर मोहित हो गए। उसी समय उन्होंने इस शर्त पर शकुन्तला से गांधर्व विवाह कर लिया-कि उससे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिंहासन का उत्तराधिकारी होगा। उसे शीघ्र राजधानी में धूमधाम से बुला लेने की प्रतिज्ञा कर वे हस्तिनापुर लौट आए। उसी क्षणिक सम्मिलन में शकुन्तला गर्भवती भी हो गई थी। जब राजा दुष्यन्त से शकुन्तला का यह मेल हुआ; तब कण्व आश्रम में नहीं थे, फल लेने के लिए वन में गए थे। जब वे आश्रम में आए-तो सब बातें जानकर उन्होंने शकुन्तला के इस दोष को क्षमा कर दिया। समय पाकर शकुन्तला ने पुत्र भरत को जन्म दिया। जो जन्म से ही बलवान और हृष्टपुष्ट था। इसीसे उसे सब लोग सर्वदमन कहते थे-जब वह बालक समर्थ हुआ-तो कण्व ने उसे युवराजपद के योग्य समझ शकुन्तला को दुष्यन्त के पास जाने की सलाह दी। और शिष्यों के साथ उसे दुष्यन्त के पास राजधानी में भिजवा दिया। दुष्यन्त के पास पहुंचकर शकुन्तला ने राजा से कहा-कि यह आपका पुत्र है, इसे युवराजपद दीजिए। परन्तु राजा ने जान-बूझकर शकुन्तला को अजानी कर दिया, और उससे उसका कभी कोई सम्बन्ध हुआ था, यह अस्वीकार कर-उसे वेश्या कहकर उसका तिरस्कार किया। विवाद बहुत हुआ। अन्त में आकाशवाणी होने पर दुष्यन्त ने शकुन्तला के पुत्र को स्वीकार कर लिया। वही उसका उत्तराधिकारी हुआ।*

कालिदास ने इस उपाख्यान को एक प्रस्तावना, दो विष्कंभ, एक प्रवेशक और सात अंकों में इस प्रकार अपने नाटक में अंकित किया है कि—'राजा दुष्यन्त शिकार के लिए निकलते हैं; और कण्व के आश्रम में पहुंचने पर शकुन्तला से उनका परिचय और प्रेम-सम्बन्ध होता है। दुष्यन्त और शकुन्तला का परस्पर-

---

* "कि नु कर्माशुभं पूर्वं कृतवत्यन्य जन्मनि।
यदहं बांधवैस्त्यक्ता बाल्ये संप्रति च त्वया।
कामं त्वया परित्यक्ता गमिष्यामि स्वमाश्रमम्।
इमं तु बालं संत्युक्तं नार्हस्यात्मजमात्मनः।"

× ×

"न पुत्रमभि जानामि त्वयि जातं शकुन्तले।
असत्य वचना नार्यः कस्तेश्रद्धास्यते वचः।
मेनकाप्सरसां श्रेष्ठा महर्षीणां च ते पिता।
तयोरपत्यं कस्मात्त्वं पुंश्चलीव प्रभाषसे।
अश्रद्धेयमिदं वाक्यं कथयन्ती न लज्जसे।

× ×

विशेषतो मत्सकाशे दुष्ट तापसि गम्यताम्।
सुनिकृष्टा च ते योनिः पुंश्चलीव प्रभाषसे।
यदृच्छया कामरागाज्जाता मेनकया ह्यसि।
सर्वमेतत्परोक्षं मे यत्त्वं वदसि तापसि।
नाहं त्वामभिजानामि यथेष्टं गम्यतां त्वया।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गान्धर्व विवाह होता है। सखियाँ मदद देती हैं दुष्यन्त के चले जाने पर चिन्ता मग्न बैठी शकुन्तला को दुर्वासा शाप देते हैं। निवारण का उपाय भी बताते हैं। कण्व मुनि लौटकर सगर्भा जान शकुन्तला को दो तपस्वियों और गौतमी के साथ राजधानी भेज देते हैं। राजसभा में दुष्यन्त शकुन्तला को नहीं पहिचानता, न स्वीकार करता है। शकुन्तला उड़ जाती है। पीछे धीवर से अँगूठी पाकर राजा विरह-विलाप करता है, और इन्द्र के आमन्त्रण पर स्वर्ग जाकर वहां से लौटता हुआ हेमकूट पवत पर कश्यप ऋषि के आश्रम में पुत्र और शकुन्तला से मिलता है।

महाभारत की मूल घटना में कालिदास ने इतना फेरफार किया है—

१ महाभारत में शकुन्तला ने तपोवन में ही पुत्र को जन्म दिया है, किन्तु कालिदास ने शकुन्तला के परित्याय के बाद कश्यप ऋषि के आश्रम में पुत्रजन्म घटित किया है।

२—महाभारत में शकुन्तला का त्याग और ग्रहण एक ही स्थल पर थोड़े समय के अन्तर से हुआ है, पर नाटक में त्याग को दरबार में और ग्रहण कालान्तर में दूसरे स्थान पर हुआ है।

कुछ प्रासंगिक नई वस्तु भाग की सृष्टि भी हुई है—

(१) दुर्वासा शाप और उसके प्रभाव से अँगूठी का खोया जाना।

(२) शकुन्तला की सहेलियाँ।

"स्वयमुत्पाद्य वै पुत्रं सदृशं यो न मन्यते।
तस्य देवाः श्रियं घ्नन्ति न च लोकानुपाश्नुते।
स्वपत्नी प्रभावान्पञ्च लब्धान्क्रीतान्विवर्धितान्।
कृतानन्यासु चौत्पन्नान्पुत्रान्वै मनुरब्रवीत्।
सत्त्वं नृपति शार्दूल पुत्रं न त्यक्तुमर्हसि।
आत्मानं सत्य धर्मौ च पालय पृथिवीपते।
नरेन्द्रसिंह कपटं न वोढुं त्वयि हाऽर्हसि।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते।
अनृते चेत्प्रसङ्गस्ते श्रद्दधासि न चेत्स्वयम्।
आत्मना हंत गच्छामि त्वादृशे नास्ति संगतम्।"

× ×

"भस्त्रा माता पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः।
भरस्त्र पुत्रं दुष्यंत मावमंस्थाः शकुन्तलाम्।
रे तोधाः पुत्र उन्नयाति नरदेव यमक्षयात्।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला।"
(महाभारत, आदिपर्व अ० ६८ से ७२ तक।)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(३) त्यागने के बाद मेनका द्वारा शकुन्तला का अपहरण।

(४) स्वर्ग से इन्द्र के निमन्त्रण पर राजा का स्वर्ग जाना--तथा प्रत्यागमन के समय हेमकूट पर कश्यप आदि के दर्शन करना और वहीं पर पुत्र और शकुन्तला की प्राप्ति।

अब इस सम्बन्ध में विचरणीय विषय ये हैं--

१--क्या शकुन्तला विश्वामित्र ऋषि की औरस पुत्री है ?

२--क्या वह कण्व ऋषि की पोषिता कन्या है ?

३--क्या उसका दुष्यन्त से गान्धर्व-विवाह हुआ ?

४--क्या भरत दुष्यन्त का औरस पुत्र है ?

५--क्या दुर्वासा का शाप देना सम्भव है ?

६--क्या दुष्यन्त हस्तिनापुर का राजा था ?

क्या शकुन्तला विश्वामित्र ऋषि की औरस पुत्री है ?

विश्वामित्र प्रसिद्ध ऋषि हैं ? वेद और पुराण में वे सुव्याख्यात हैं। ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के ऋषि विश्वामित्र ही हैं। प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र विश्वामित्र ही का है। शकुन्तला इन्हीं विश्वामित्र की औरस पुत्री बताई गई है। शकुन्तला के पिता कोई दूसरे विश्वामित्र नहीं हो सकते, यही प्रसिद्ध ऋषि शकुन्तला के पिता हैं, यह बात महाभारत के वक्तव्य से निश्चित रूप में प्रमाणित होती है। इन्हीं ऋषि विश्वामित्र का मेनका अप्सरा से सम्बन्ध रहा था, यह बात प्रसिद्ध है। महाभारत में लिखा है-कि विश्वामित्र के उग्र तप से सन्तप्त हो देवराज इन्द्र ने मेनका अप्सरा से कहा-सूर्य के समान तेजस्वी उग्र तपस्वी विश्वामित्र को तू मेरे हित के लिए अपने रूप-यौवन से मोहित कर भ्रष्ट करदे। मेनका ने कहा-विश्वामित्र महातेजस्वी और तपस्वी है। क्रोधी भी है, महाभाग वसिष्ठ को इसने अपने प्रिय पुत्रों से वियुक्त कर दिया, यह प्रथम क्षत्रिय था; पीछे तप से ब्राह्मण बन गया। इसी के नाम पर नदी का नाम कौशिकी पड़ा। इसने व्याध मातङ्ग को यज्ञ कराया, जिस के भय से आप भी वहां सोम पीने गए। इसी से क्रुद्ध होकर नक्षत्र-सहित अन्य लोक की रचना की, तथ नक्षत्र गणना का गणित आरम्भ किया। त्रिशंकु को जिसने शरण दी, उस उग्रकर्मा से मैं बहुत डरती हूं।[1] इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि यह कोई दूसरे विश्वामित्र होंगे यह शंका निर्मूल है। निश्चित रूप से महाभारत का मत है-कि गाधिपुत्र कुशिक विश्वामित्र ही शकुन्तला के पिता हैं।

परन्तु यह किसी भी दशा में सम्भव नहीं हो सकता। महाभारत का यह

१. महाभारत, आदि प०, अध्याय ७१, श्लोक २१ से ३६ तक देखिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रवचन इतिहास के सर्वथा विरुद्ध है। क्योंकि गाधिपुत्र विश्वामित्र भरत और दुष्यन्त के पूर्ववर्ती अथवा समकालीन नहीं हो सकते। वे तो भरत–दुष्यन्त के ही वश में, भरत के कोई १२ पीढ़ी बाद (कोई ३२७ वर्ष बाद) उत्पन्न हुए। यहाँ आप कौशिक विश्वामित्र की वंशावली पर ध्यान दीजिए।

दुष्यंत-पुत्र भरत को कोई औरस पुत्र नहीं हुआ, इसलिए भरत ने दीर्घतमा-मामतेय के भाई भरद्वाज के क्षेजत्र पुत्र 'वितथ' को अपना उत्तराधिकारी बनाया[१] वितथ का पुत्र भुमन्यु या भुवमन्यु हुआ, जो प्रसिद्ध राजा था। भुमन्यु का पुत्र वृहत्क्षत्र और उसका पुत्र चक्रवर्ती सुहोत्र हुआ, जो सकल पृथ्वीपति कहा गया।[२] सुहोत्र का पुत्र हस्तिन्, जिसने हस्तिनापुर बसाया, जो उसके बाद पौरव वंश की मुख्य गद्दी रही।[३] सुहोत्र के तीसरे पुत्र 'वृहत्' ने कान्यकुब्ज में पौरवों का नया राज्य स्थापित किया। इसी वंश में गाधिपुत्र विश्वरथ का जन्म हुआ। जो बाद में विश्वामित्र के नाम से प्रसिद्ध हुए।

दौष्यन्ति भरत वैवस्वत मनु के बाद पुरुवंश की २३ वीं पीढ़ी में राजा था। २४ वां राजा वितथ हुआ, और २५वां भुमन्यु, २८वां वृहत्क्षत्र, २९वां सुहोत्र।

सुहोत्र के प्रथम पुत्र 'हस्ती' के वंश में मूल पुरुवंश हस्तिनापुर की शाखा चली, और तीसरे पुत्र 'वृहत्' ने कान्यकुब्ज का नया राज्य स्थापित किया। जिसका वंश वृक्ष यहां हम देते हैं—

(२९) सुहोत्र (३०) वृहत् (३१) जन्हु (३२) अजक (३३) वलाकाश्व (३४) वल्लभ (३५) कुशिक (३६) गाधि (३७) विश्वरथ (विश्वामित्र)।[४] कुशिक बड़े प्रतापी और प्रसिद्ध वेदर्षि थे। उनका विवाह पुरुकुत्स की पुत्री पुरुकुत्सी से हुआ। पुरुकुत्सी में कुशिक से गाधि उत्पन्न हुए, जो वेद में 'गाथिन्' प्रसिद्ध हैं। गाधि भी वेदर्षि थे। गाधि के पत्र विश्वविख्यात कौशिक विश्वामित्र ब्रह्मर्षि ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के कर्ता हुए।[५]

इस प्रकार विश्वामित्र पौरवों की ३७ वीं पीढ़ी में हुए। दौष्यन्ति भरत इनके पूर्वज थे, और इनसे बारह पीढ़ी पहले (लगभग ३६३ वर्ष पहले हो गए

---

१. वायुपुराण ९९, १५७।
२. महाभारत, आदि प० ७९, २३।
३. महाभारत, (वही स्थान)।
४. वायु पुराण, ९१, ६३, ६ तथा हरिवंश पुराण २७, १४२६, ३०।
५. महाभारत, शान्ति पर्व।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। विश्वामित्र अपने समकालीन पुरुषों में राम, दशरथ, सुदास, हरिश्चन्द्र, सगर आदि राजाओं के भी समकालीन प्रमाणित हैं, जो वैवस्वत मनु की ३९ वीं पीढ़ी के प्रमाणित पुरुष हैं[1]। इसलिए विश्वामित्र किसी भी हालत में शकुन्तला के पिता नहीं हो सकते।

क्या शकुन्तला कण्व ऋषि की पोषित कन्या है ?

अब हम इस दूसरे प्रश्न पर विचार करते हैं। इस सम्बंध में सबसे प्रथम तो विचारणीय बात यह है—कि कण्व ऋषि दुष्यन्त के सगे कुटुम्बी चचेरे भाई थे। परन्तु वे राजन्य नहीं थे, याजक और ऋषि थे। यहाँ हम कण्व और दुष्यन्त का सम्बंध स्पष्ट करने के लिए उनका वंश वृक्ष देते हैं।

चन्द्रवंश की पौरव शाखा में वैवस्वत मनु के बाद बीसवीं पीढ़ी में 'मतिनार' प्रसिद्ध राजा हुए।

ये वही मतिनार थे जिनकी पत्री गौरी चक्रवर्ती मांधाता की माता थी। इनका आधा वंश ब्राह्मण हो गया था। जिससे इस वंश की भारी प्रतिष्ठा हुई। कण्व और दुष्यंत दोनों ही इन्हीं मतिनार के वंश में थे।

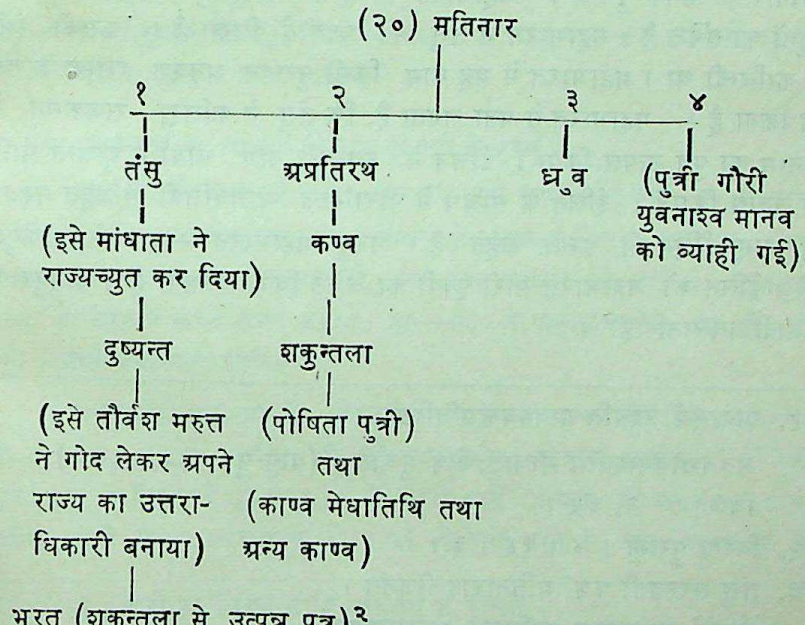

१. देखिए, वायुपुराण, ८८, ७८, ११६। हरिवंश १२, ७१७ से ३, १३; ७५३ तक। विष्णु पुराण पांचवां ३, १३, १, भागवत ५७, ५, ६। महाभारत, xiii १३७, ६२५।

२. वायु पु० ९९, १२९–१३१.। विष्णु पु० ४, १०, ३–७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस वंश-वृक्ष से अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। प्रथम यह कि—तंसु पुत्र दुष्यन्त और अप्रतिरथ पुत्र कण्व रिश्ते में परस्पर चचेरे भाई हैं, तथा दोनों का एक ही खानदान है। दूसरी बात यह है, कि दुष्यंत के पिता तंसु को चक्रवर्ती मान्धाता ने पराजित कर राज्यच्युत कर दिया था। अतः दुष्यन्त राज्य भ्रष्ट राजकुमार था। तीसरी बात यह—कि दुष्यन्त को तौर्वश मरुत्त ने गोद लेकर अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाया था। मान्धाता सप्तद्वीप—पृथ्वीपति सार्वभौम चक्रवर्ती था। उसका राज्य उदयास्त तक था[1]। उसकी पत्नी बिन्दुमती प्रसिद्ध पौरव सम्राट् शशिबिन्दु की कन्या थी, तथा माता मतिनार की पुत्री गौरी थी। शशिबिन्दु से मतिनार का युद्ध हुआ और मतिनार का पौरव राज्य शशिबिन्दु के अधीन करद राज्य हो गया। परंतु शशिबिन्दु के बाद मतिनार पुत्र तंसु ने फिर अपने राज्य को शशिबिन्दु के दुर्बल उत्तराधिकारी के हाथ से उभारना चाहा। इस पर मांधाता ने साले का पक्ष लेकर तंसु (मामा) को राज्यच्युत कर दिया[2]।

तंसु सम्भवतः—मतिनार का ज्येष्ठ पुत्र और पौरव-राज्य का अधिकारी था। परंतु मतिनार के अनेक पुत्र थे। महाभारत में चार और वायु तथा मत्स्य पुराण में तीन पुत्रों का संकेत है। महाभारत में तंसु को महावीर्य लिखा है। उसकी स्त्री का नाम कालिन्दी था। महाभारत में यह नाम किसी पुरातन अनुवंश श्लोक के रूप में उद्धृत किया है। महाभारत से पता लगता है, कि तंसु ने कलिङ्ग राजकन्या में 'ईलिन' नाम का पुत्र उत्पन्न किया। ईलिन ने रथन्तरी नाम भार्या में दुष्यन्त आदि पांच पुत्र उत्पन्न किए[3]। ईलिन के सम्बंध में पौराणिक वंशावलियों में बहुत गड़बड़ है। कुछ पुराण ईलिन को कन्या कहते हैं। परंतु महाभारत स्पष्ट उसे राजपुत्र बताता है। ईलिन को महाभारत सारी पृथ्वी का श्रेष्ठ विजेता कहता है[4], वायुपुराण उसे ब्रह्मवादी बतलाता है[5]।

---

१. यावत्सूर्य उदयति यावच्चन्द्रप्रतिष्ठितः।
सर्वतद्यौवनाश्वस्य मांधातुः क्षेत्र मुच्यते। (वायु पु०, ८८, ६८।)
विष्णु ४ २, ६५।

२. विष्णु पुराण। ४। १९। ३।

३. तंसु सरस्वती पुत्रं मतिनारादजीजनत्।
ईलिनं जनयामास कालिंग्यां तंसुरात्मजम्।
ईलिनस्तु रथन्तर्यां पञ्च पुत्रानजीजनत्।
(महा० आदि० अ० ९२ श्लो० २८-२९।)

४. आदि पर्व, ८९, १४। ९०। २९।

५. वायु, ९९। १३२।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इससे एक बात तो यह स्पष्ट हो जाती है, कि दुष्यंत तंसु का पुत्र नहीं, ईलिन का पुत्र था। यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि मांधाता ने तंसु को पराजित करके राज्यच्युत किया या ईलिन को। परंतु ईलिन को पृथ्वी का विजेता कहा गया है—तो यही अधिक सम्भव है, कि ईलिन ही को मांधाता ने पराजित किया हो।

ईलिन के पांच पुत्रों में एक दुष्यंत था। जब ईलिन का पौरव-राज्य भंग हो गया; तो यह वंश निराश्रित हो गया। इस संदेह की पुष्टि के महत्वपूर्ण आधार हैं—कि ईलिन का ज्येष्ठ पुत्र सुद्युम्न था, तथा वही पौरव-राज्य का अधिकारी होता—यदि पौरव-राज्य भंग न हो गया होता। क्योंकि युवराज पद पर सुद्युम्न का नाम है, दुष्यंत का नहीं।

हमारा अनुमान है कि शकुन्तला सुद्युम्न की स्त्री थी। मांधाता के युद्ध में सुद्युम्न एवं ईलिन का निधन हुआ। उस समय शकुन्तला गर्भवती थी। पौरव राज्य भंग होने तथा निराश्रय होने पर शकुन्तला सगर्भावस्था में अपने ददिया स्वसुर कण्व के यहां आश्रित हुई। वह कण्व की कुटुम्बी पौत्रवधू थी, पोषिता पुत्री नहीं। अपने इस अनुमान की पुष्टि में हम सुदृढ़ प्रमाण आगे पेश करेंगे। कण्व ने शकुन्तला को दुष्यन्त के पास भेजने के समय भी कहा था—कि स्त्रियों का रिश्तेदारों के यहां अधिक ठहरना ठीक नहीं है[1]।

क्या शकुन्तला का गान्धर्व विवाह दुष्यन्त से हुआ ?

सुद्युम्न की बात बीच में छोड़कर हम पहले इसी बात पर विचार करना चाहते हैं—कि क्या शकुन्तला का दुष्यन्त से गान्धर्व विवाह हुआ ? जिस समय दुष्यन्त कण्व के आश्रम में पहुँचता है, तब कण्व आश्रम में नहीं थे। शकुन्तला ने राजा का स्वागत करते समय बताया था—कि वे फल-फूल लेने गए हैं अभी आते होंगे। आप घड़ी-भर ठहरिए[2]।

परंतु इसी घड़ी-भर में, कण्व के लौटने से प्रथम ही दोनों के कौल-करार भी हो गए, गांधर्व विवाह भी हो गया, और सहवास—गर्भाधान भी हो गया, राजा वहां से बिदा भी हो गया। ये सारी बातें प्रत्यक्ष ही असम्भव और असंगत प्रतीत होती हैं। महाभारत में राजा के चले जाने के बाद ऋषि के आने पर

---

१. नारीणां चिरवासोहि बांधवेषु न रोचते।
कीर्ति चारित्र धर्मघ्नस्तस्मान्नयत मा चिर।
(महा० आदि० अ० १४ श्लो०; १२।)

२. गत. पिता मे भगवान् फलान्याहर्तुमाश्रमात्।
मुहूर्तं संप्रतीक्षस्व द्रष्टास्येनमुपागतम्। (महा० आदि० अ० ७१ श्लो० ९।)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सारी बातों का दिव्य ज्ञान होना, आदि का विवरण स्पष्ट ही पीछे से मिलाया प्रतीत होता है। यदि ७३ वें अध्याय के २४ से ३० तक के श्लोकों को ध्यान से पढ़ा जाय, तो स्पष्ट ही वे पीछे से मिलाए हुए दीख पड़ते हैं। इनमें कण्व की गांधर्व विवाह की स्वीकृति और पुत्र के चक्रवर्ती होने की भविष्यवाणी है। परंतु ३१ वां श्लोक है—कि 'शकुन्तला ने मुनि का भार उतार, पैर धो, फलों को उचित स्थान पर रख, कहा—मैंने दुष्यंत को पति वरण किया है, आप उस पर कृपा कीजिए।'

शकुन्तला के प्रति इस प्रकार एकाएक ऐसी प्रीति हो जाना, तुरंत सहवास—गर्भाधान तक हो जाना, और किसी को कानोंकान खबर भी न होना—सर्वथा अनहोनी घटना है। अधिक सम्भव तो यही है कि यहां अकस्मात् दुष्यंत से शकुन्तला का साक्षात् हुआ हो। इस परिचय से लाभ उठाकर वह राजदरबार में राजा से अपने पुत्र को उसका प्रकृत अधिकार दिलाने गई हो। जो भी विचारशील महाभारत में इस प्रसंग को ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे, उन्हें यह स्पष्ट प्रतीत हो जायगा—कि गान्धर्व विवाह व सहवास वाले श्लोक सर्वथा पीछे से जोड़े हुए हैं। उनसे पूर्वापर की संगति तथा घटना का स्वाभाविक रूप ध्वनित ही नहीं होता। अतः शकुन्तला का दुष्यन्त से गान्धर्व विवाह हुआ ही नहीं।

क्या भरत दुष्यन्त का औरस पुत्र है ?

उपर्युक्त सारी घटनाओं और परिस्थितियों को देखते हुए भरत दुष्यन्त का पुत्र नहीं है, इसी की अधिक सम्भावना व्यक्त होती है। परन्तु हम एक अत्यन्त गम्भीर तथ्य की ओर आपका ध्यान आकर्षित करते हैं; जिससे यह स्पष्ट हो जाता है—कि भरत दुष्यन्त का पुत्र नहीं है। एतरेय ब्राह्मण के महाभिषेक प्रकरण में कुछ पुरातन प्रवचन उद्धृत हैं। ऐसी ही कुछ गाथाएँ शतपथ ब्राह्मण के अश्वमेध प्रकरण में भी उद्धृत है। इनमें से एक गाथा में भरत को दौष्यन्ति कहा है, और दूसरी में सौद्युम्नि।[1] शतपथ का लेख पुराणों की अपेक्षा अत्यधिक प्रामाणिक है, और वह स्पष्ट ही इस रहस्य पर प्रकाश डालता है—कि भरत सुद्युम्न का पुत्र है, दुष्यन्त का नहीं। और यह बात मान ली जाती है—तो यह यह बात भी सत्य है—कि शकुन्तला सुद्युम्न की पत्नी थी। जिस का मान्धाता के साथ संग्राम में निधन हुआ। विधवावस्था में असहाय हो; गर्भ लिए हुए कण्व के आश्रम में उसने आश्रय लिया। जहाँ उसे 'सर्वदमन' नाम का पुत्र हुआ, जो आगे चलकर 'भरत' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस सिलसिले में आप उस प्रसंग की बातचीत पर ध्यान दीजिए, जो दरबार में जाने पर शकुन्तला और दुष्यन्त में हुई। इस बातचीत में यह बात स्पष्ट हो

१. शतपथ। १३। ५। ४। १२।

State Museum, LUCKNOW.
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाती है—कि शकुन्तला ने अपने लिए बात नहीं कही थी, अपितु अपने पुत्र भरत को पौरवराज्य देने की बात पर ही जोर दिया था, जिसे दुष्यन्त ने अस्वीकार कर दिया था। यद्यपि इस स्थान की बातचीत से यह भी ध्वनित होता है, कि दुष्यन्त से ही शकुन्तला को गर्भ रहा हो—परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि दुष्यन्त को हद दर्जे का लम्पट-लबार-झूठा और व्यभिचारी मान लिया जाय। जो सम्भव नहीं है। क्योंकि दुष्यन्त एक सदाचार सम्पन्न बड़ा राजा था, और उससे मर्यादा के विपरीत ऐसा दुष्कर्म होने की आशा नहीं की जा सकती।

क्या दुर्वासा का शाप देना सम्भव है ?

यह सर्वथा असम्भव बात है कि दुर्वासा ने शकुन्तला को शाप दिया हो। क्योंकि दुर्वासा शकुन्तला-दुष्यन्त का समकालीन पुरुष नहीं है। किसी पुराण में ब्राह्मण ग्रन्थ में उस काल में दुष्यन्त-भरत के समकालीन दुर्वासा नाम के ऋषि का उल्लेख नहीं आया है। इस के विपरीत दुर्वासा ऋषि युधिष्ठिर काल के पुरुष हैं, जिनसे दुष्यन्त का लगभग तीस पीढ़ी (८०० वर्ष) काल का अन्तर है। प्रायः पुराणों में जब किसी क्रोधी ऋषि की आवश्यकता होती है, तो दुर्वासा को अवतरित किया जाता है। महाभारत में इस प्रसंग में दुर्वासा की कोई चर्चा ही नहीं है। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में भी दुष्यन्त चोरों की तरह चुपचाप भाग जाता है। अंगूठी देने या प्रतिज्ञा करने की कोई बात ही नहीं है। चतुर्थ अंक में सहेलियाँ यह कहती हैं—आज वह राजर्षि तपस्वियों का यज्ञ पूरा कराकर अपने नगर को लौट गया है। रनवास में पहुँचकर जाने यहां के वृत्तांत की सुध रखेगा या नहीं।" इससे यह भी ध्वनित होता है—कि उसने न अंगूठी दी, न प्रतिज्ञा की। छठे अंक में एका-एक धीवर मछली के पेट से अंगूठी ले आता है। यह स्पष्ट ही कवि की क्लिष्ट कल्पना है। इस में उसी प्रकार तथ्य का लेश नहीं है, जिस प्रकार कि दुर्वासा के आगमन और शाप के प्रसंग का।

क्या दुष्यन्त हस्तिनापुर का राजा था ?

दुष्यन्त हस्तिपुर का राजा नहीं था। हस्तिनापुर उस समय तक बसा ही नहीं था। भरत के बाद कोई सातवीं पीढ़ी में भरत के ही वंश में हस्ति नाम का राजा हुआ, उसने हस्तिनापुर नगर बसाया था। यह बात पुरुवंश के वंशवृक्ष से प्रमाणित है ? ऐसी दशा में दुष्यन्त हस्तिनापुर का राजा कैसे हो सकता है।

यह बात पहले कही जा चुकी है, कि दुष्यन्त का पिता ईलिन और भाई राज्य भ्रष्ट हो चुके थे। ऐसी दशा में राजकुमार दुष्यन्त निराश्रय रह गए। इस समय तौर्वश मरुत निस्सन्तान थे। तुर्वश ययाति के पाँच पुत्रों में से एक थे,[1] उन्हें राज्य

१. महाभारत, आदि पर्व। मत्स्य पुराण। वायु पुराण।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के बटवारे के समय ययाति ने दक्षिणी पूर्व--रीवां प्रान्त के आसपास का राज्य दिया था।[1] कालान्तर में यह वंश उत्तरी बिहार तक अपनी राज्य-सीमा विस्तार कर गया। इस वंश की बाईसवीं पीढ़ी में, उत्तरी बिहार में करन्धम पुत्र मरुत राज्याधिकारी था। मरुत्त प्रतापी राजा था। दक्षिण के राजकुल-पाण्ड्य-चौल और केरल भी तुर्वशवंशी थे। मरुत सम्भवतः मान्धाता के निधन के बाद गद्दीनशीन हुए। इन्होंने पौरव राज्यभ्रष्ट राजकुमार दुष्यन्त को गोद ले लिया, तथा अपना उत्तराधिकारी घोषित किया।

मरुत्त की मृत्यु के बाद दुष्यन्त उत्तरी बिहार के स्वामी बन गए। इसी समय मान्धाता की मृत्यु हो जाने पर मान्धाता के दुर्बल उत्तराधिकारी पुत्र पुरुकुत्स को गान्धारों ने पराजित करके कैद कर लिया। इस वंश की इस दुर्बलता से लाभ उठाकर साहसी दुष्यन्त ने तौर्वस सैन्य की सहायता से अपना पौरव-राज्य भी फिर से अधिकृत कर लिया। इस समय तक भी हस्तिनापुर नहीं बसा था, तथा पौरव राजधानी प्रतिष्ठान—गंगा यमुना के संगम पर थी। उत्तरी बिहार की राजधानी सम्भवतः आधुनिक गोरखपुर-चम्पारन और मुज़फ्फरपुर के स्थानों के निकट ही कहीं थी। उससे पौरव-राज्यों की सीमाएँ भी मिलती थीं। अतः थोड़े ही प्रयास से दुष्यन्त प्रतिष्ठान से उत्तरी बिहार तक के समूचे दो राज्यों का भूभाग मिलाकर महाराज-चक्रवर्ती सम्राट् बन गया। इसने बड़े २ युद्ध जय किए, तथा ७४ यज्ञ किए।[2] इस समय तक पुरुकुत्स पुत्र त्रसदस्यु युवा हो गया था, और अपने पिता का बदला लेने को गान्धार नरेश पर, जो द्रुह्यु वंशी थे—चढ़ाई की तैयारी कर रहा था। उसने उत्तर कोशल के निकटवर्ती इस प्रतापी मरुत्त के उत्तराधिकारी से छेड़छाड़ तथा बिगाड़ करना ठीक नहीं समझा। और स्वेच्छा ही से पौरव-राज्य फेर दिया। दुष्यन्त चतुरन्त पृथ्वी का गोप्ता और मलेच्छ राज्य पर्यन्त की सीमाओं तक विजेता प्रसिद्ध हो गया।[3]

इसी समय सम्भवतः शिकार के अवसर वह कण्व के आश्रम में जा पहुंचा तथा शकुन्तला से उसकी भेंट हुई। महाभारत में कण्व का आश्रम मालिनी नदी के तट पर चैत्रवन बताया है। यह स्थान निश्चय ही राजधानी प्रतिष्ठान के निकट होगा। सम्भवतः यह स्थान चित्रकूट है, और नदी मन्दाकिनी। पिता की अनुपस्थिति में शकुन्तला ने राजा की अभ्यर्थना की। इस क्षणिक और अकस्मात् मिलन पर इन दोनों का प्रेम-गान्धर्व विवाह तथा गर्भस्थापना दोनों ही के चरित्र

१. वायु ९३, ८८, ९०। ब्रह्माण्ड iii ६८, ९०, २। कूर्म २२, ९, ११।
२. महाभारत vii ६८, I, ७४, xii २९। हरिवंश। वायु पुराण। ऋग्वेद vi १६, ४। शतपथ xiii ५, ४, ११। ऐतरेय ब्रा० vii २३
३. महाभारत० आदि० ६२, ३-५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और कुल-मर्यादा के विपरीत तथा घटनाक्रम से भी असंगत है। उसे अनुकूल बनाने के लिए कालिदास को कल्पना का बड़ा सहारा लेना पड़ा है। कण्व का तीर्थ-पर्यटन के लिए दीर्घ प्रवास, दुर्वासा आगमन, अंगूठी का खोना तथा पाना। गर्भावस्था में शकुन्तला का दुष्यन्त के दरदार में जाना और मेनका द्वारा ले उड़ना। फिर कश्यप के आश्रम में मिलन होना। ऐसी कल्पनाएं रचना में चमत्कार लाने तथा अलंकार-शास्त्र के प्रतिबन्धों की रक्षा के लिए करनी पड़ीं, जिससे आश्चर्यजनक घात-प्रतिघात का भाव घटनाओं में उत्पन्न हो जाय, जो नाटक का मुख्यगुण माना गया है। क्योंकि घटनाओं का सामञ्जस्य, घटना की सार्थकता, घटना का घात प्रतिघात, गति, कवित्व, चरित्रचित्रण और स्वाभाविकता, ये नाटक के अनिवार्य गुण हैं।

शकुन्तला का पुत्र बड़ा हो चला था। वह पौरव राज्य का प्रकृत उत्तराधिकारी था। इसलिए कण्व ने इस परिचय तथा अवसर से लाभ उठाने की शकुन्तला को सलाह दी होगी। और शकुन्तला अपने पुत्र का यौवराज्य का पौरव-राज्य पर हक मांगने वहाँ गई होगी। मैं तो ऐसा ही समझता हूं!

रही यह बात, कि भरत को सब स्थानों में दौष्यन्त क्यों कहा गया। ब्राह्मणों और पुराणों में सर्वत्र ही उसे दौष्यन्त कहा गया है। सौद्युम्न का संकेत तो केवल शतपथ ही में है। इस पर हमारा कहना यह है कि—प्रथम तो एक शतपथ का वचन सारे पुराणों और महाभारत से भी अधिक प्रामाणिक तथा साधारण है। दूसरे, सुद्युम्न राजा ही नहीं बना, पराजित और राज्य भ्रष्ट हुआ। इतिहास में उसका नामशेष हो गया। इतिहास तो विजयी जनों का समर्थक है। दूसरे, दुष्यन्त ने भरत को पौरव-राज्य का युवराज, उत्तराधिकारी तथा पुत्र मान लिया। इससे दुष्यन्त को एक भारी लाभ भी हुआ—तौर्वश वंश के गोद जाकर वह पौरव-वंश का प्रतिनिधि नहीं रहा था। बहुत सम्भव है, आप्त जनों ने पौरव राज्य पर उसकी स्थिति को स्वीकार न किया हो। उसके औरस पुत्र पौरव वंश के प्रतिनिधि न होकर तुर्वश-वंश के प्रतिनिधि होते। उधर भरत पौरव-वंश का प्रकृत प्रतिनिधि, राजकुमार, युवराज और न्यायतः राज्याधिकारी था। इससे आप्त जनों ने उसका समर्थन किया, जिससे दुष्यन्त को उसे पुत्र तथा पौरव-राज्य का उत्तराधिकारी स्वीकार करना पड़ा।

हाँ, शकुन्तला का फिर क्या हुआ? वह कहां गई, कहाँ रही? इसकी कहीं भी चर्चा नहीं है। दुष्यन्त ने ७४ यज्ञ किए। प्रकट है कि बिना राजमहिषी के यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हो सकते। परन्तु कहीं किसी भी यज्ञ में शकुन्तला की उपस्थिति राजमहिषी के रूप में अथवा किसी भी रूप में कहीं नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भरत चक्रवर्ती सार्वभौम—भरत भारतीय इतिहास में अति प्रसिद्ध है। इसके नाम पर पुरुवंश का नाम 'भारत' प्रसिद्ध हुआ। शाकुन्तल भरत बाल्यकाल ही से चक्रांकित था[१]। वह छः वर्ष की अवस्था में ही बहुत बलवान था। इसीलिए सर्वदमन उसका नाम रखा गया। अपने काल में वह चक्रवर्ती ही नहीं, सार्वभौम प्रसिद्ध हुआ[२]। उसने यमुना, गंगा और सरस्वती के तीर पर अनेक अश्वमेध यज्ञ किए[३]। अनेक दिग्विजय यात्राएँ कीं। वह समितिजय प्रसिद्ध था[४]। उसने शुद्ध जाम्बूनद स्वर्ण के बने हुए सहस्र कमल कण्व को दिए[५]। उसने एक अश्वमेध यज्ञ 'मष्णार' देश में किया, जिसका याजक दीर्घतमा मामतेय था[६]। दूसरा यज्ञ उसने 'साचीगुण' नामक देश में किया[७]। प्रसिद्ध है कि भरत के समान ऐसा कर्म ययाति कुल के पाँचों राजवंशों में से किसी ने नहीं किया[८]। कई यज्ञ उसने कुरुक्षेत्र में किए। एतरेय ब्राह्मण के महाभिषेक प्रकरण में तथा शतपथ ब्रा० के अश्वमेध प्रकरण में भरत सम्बन्धी अनेक गाथाएँ हैं।

भरत की मुख्य तीन पत्नियां थीं। जिन में एक काशीराज सर्वसेन की पुत्री सुनन्दा थी।

एतरेय ब्राह्मण से पता लगता है कि भरत सार्वभौम ने मष्णार देश में सुवर्ण अलकारों से युक्त बड़े २ श्वेत दांत वाले हाथियों के एक सो सात वृन्द दान में दिए। इस महान् हस्ति-दान से भरत को 'महाकर्म' की उपाधि मिली[९]। 'महाकर्म' की व्याख्या करते हुए सायण लिखता है कि—ऐसा महाकर्म भरत राजा के न तो पूर्वजों

---

१. महा० आदि० ६८। ४–७। तथा द्रोण—६८। १–७

२. सार्वभौमः प्रतापवान्। महा० आदि० ६९। ४७

३. मत्स्य ४९। ११।

४. महा० द्रोण ६८। ८।

५. महा० द्रौण प० ६८। ११

६. एतरेय ब्राह्मण ८। २३।

७. शतपथ १३। ५। ४। १२

८. एतरेय ब्रा० ८। २८

९. 'हिरण्येन परिवृतान्कृष्णान्शुक्लदतो मृगान्। मष्णारेभरतोऽददाच्छतं बद्धानि सप्तच' (एतरेय ब्राह्मण अ० ३९।) इस पर सायण भाष्य—'मृगशब्देन गजाः विवक्षिताः ते च गजा हिरण्येन परिवृताः सर्वाभरणयुक्ताः कृष्णः शुक्लाभ्यां दन्ताभ्यां तादृशान् गजान् मष्णार नामके देशे भरतो राजा दत्तवान्। शतमित्यादि तत्संख्योच्यते। बद्धं वृन्द मित्येतौपर्यायौ। बद्धानि सप्ताधिकशतसंख्यांकानि तावतो गजान् दत्तवनित्यर्थः॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने किया और न पीछे वालों ने, और न किसी अन्य मनुष्य जाति ने[१]। यह मष्णार देश अफ्रीका खण्ड में दक्षिणी रोडोशिया प्रान्त में है। उसे 'मष्णा' कहते हैं। पूर्व काल में वहां सोना और हाथी बहुत होते थे। वहां के ध्वंसावशेष इस बात के प्रमाण हैं कि अत्यन्त प्राचीन काल में वहाँ कोई सभ्य जाति रही होगी[२]।

भरत के उत्तराधिकारी—भरत का कोई औरस पुत्र नहीं हुआ। इसलिए आंगिरस गोत्री दीर्घतमा मामतेय के भाई विदथन भारद्वाज का क्षेत्रज पुत्र वितथ उसका उत्तराधिकारी हुआ[3]। वितथ का पुत्र भुमन्यु हुआ।

भुमन्यु बड़ा प्रतापी राजा था। उसका वंशवृक्ष यहां देते हैं—

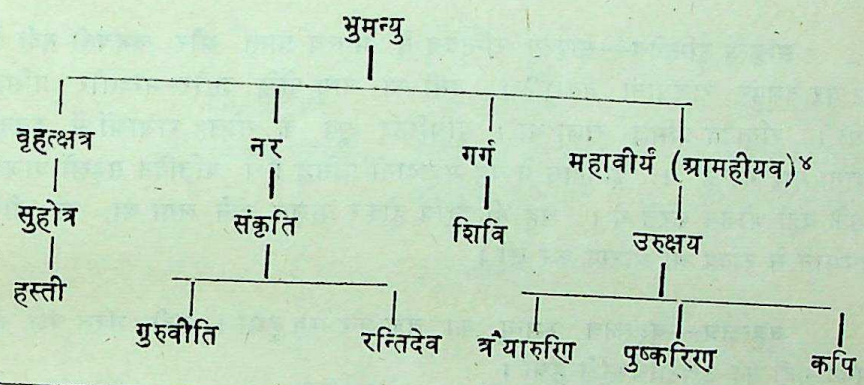

१. महाकर्म भरतस्य न पूर्वे नापरेजनाः। दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोऽदायुः पंचमानवाः।

२. देखिए मैन्युएल आफ जिओग्राफी—

In Southern Rhodesia, Which in Cludes both Matabala land and Mashanaland, Entensive gold fields have been discovered. Manual of Geography.

Remarkable ruins of stone built fortifications and temples, Curiously carved and centaining evidence that the builders worked in gald, are seatted over the platean. They point to the early posesion of the country by a Civilised people.

Elephants once very plentiful throught out the greater portion of Rohdesia, had become so much reduced in numbers by constant hunting and the indiseriminate slaughter of femals and calve as well as males [The Inter Georoply by Seventy Authors p p. 1000 and 1001.]

३. महाभारत

४. मत्स्य—४९। ३६। वायु ९९। १५९। तथा पार्जीटर कृत A. I. H. T. पृ० २५०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नर और गर्ग याजक हो गए। आगे इनके वंशधर क्षत्रोपेत ब्राह्मण कहाए। महावीर्य कुल का उरुक्षय आमहीयव ऋग्वेद १०। ११। का ऋषि है। आगे यह कुल भी याजक हो गया। नर का वंश संकृति के कारण सांकृत्य हो गया। गर्ग से गार्ग्य ब्राह्मणों का वंश चला। कपि का कुल काप्य कहाया। ये तीनों वंश आंगिरस पक्ष में हुए[1]।

इस वंश के ऋषि--भुमन्यु के दोनों पुत्र नर और गर्ग भी ऋषि हुए[2]। वृहत्क्षत्र का भाई सुहोत्र भी ऋषि था[3]। उरुक्षय भी ऋषि था। यह भुमन्यु का वंश आंगिरस गोत्री विदथन भरद्वाज का क्षेत्रज वंश था, इस से इन सब को भरद्वाज कहा गया[4]।

सांकृत्य रन्तिदेव--सांकृत्य रन्तिदेव ने मालव प्रान्त और चमंवती नदी के तट पर दशपुर राजधानी बनाई[5]। इसी का नाम पीछे दसौर-मन्दसौर प्रसिद्ध हुआ। रन्तिदेव प्रसिद्ध राजा था। युधिष्ठिर पूर्व के सोलह राजाओं में इसकी प्रशंसा गाई गई है[6]। इतिहास में यह महादानी प्रसिद्ध हैं। प्रतिदिन सहस्रों याजक इसके यहाँ भोजन करते थे। यह भी ऋषि होकर याजक होने लगा था, पर पीछे समझाने से राज्य श्री धारण कर ली।

वृहत्क्षत्र--वृहत्क्षत्र भुमन्यु का वंश कर पुत्र हुआ। वही भरत वंश का मुख्य गद्दी का उत्तराधिकारी हुआ।

---

१. मत्स्य ४९। ४१। वायु ९९। १६४।
'कपिबोधादाङ्गिरसे' अष्टा० ४। १। १०७।

२. नर ऋ० ६। ३५। ३६ का ऋषि है। तथा गर्ग ६। ४७ का।

३. सुहोत्र ऋ० ६। ३१। ३२ का ऋषि।

४. भरद्वाज को वायुपुराण ९९। १५७ द्विमुख्यायन और द्विपितर भी कहता है। मत्स्य द्विमुष्यायण कहता है। इसका अभिप्राय है दो पिताओं वाला।

५. महा० द्रोण ६७। ५

६. महा० द्रोण० षोडशराज्योपाख्यान।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१४--सुहोत्र चक्रवर्ती

सुहोत्र--सुहोत्र भारत पौरव गद्दी पर २९ वां राजा था। वह वृहत्क्षत्र का पुत्र था और म्लेच्छाटवी तक सारे प्रदेश का राजा था[1]। उसके पास स्वर्ण का अनन्त भण्डार था। उसने कुरुजांल को जय किया, और वहाँ अनेक अश्वमेध यज्ञ किए, तथा बहुत धन याजकों को दिया। सुहोत्र को युधिष्ठिर पूर्व के १६ महाराजाओं में गिना गया है[2]। वह वेदर्षि था[3]। उसके वंशधर भी बड़े प्रतापी तथा राज्य संस्थापक हुए। यहाँ उसका वश वृक्ष देते हैं :--

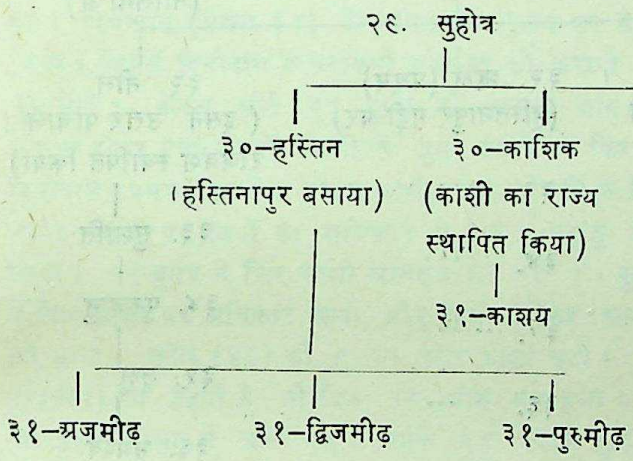

हस्तिनापुर की मूल गद्दी– सुहोत्र का ज्येष्ठ पुत्र हस्तिन था। उसने हस्तिनापुर बसाया, और वहीं अपनी राजधानी ले आया। इसके काल में इस वंश की बहुत उन्नति हुई। आगे हस्तिनापुर ही भारतों की राजधानी रही। प्रतिष्ठान की राजधानी उजड़ गई[4]।

काशिक राज्य

सुहोत्र के दूसरे पुत्र काशिक ने काशी नगरी बसाई और काशिक राज्य की नींव डाली। इनके पौत्र धन्वन्तरि प्रसिद्ध शल्य-चिकित्सक (सर्जन) हुए, जिन्होंने वृद्ध सुश्रुत चिकित्सा-ग्रंथ लिखा। जो अब अप्राप्य है। वर्तमान सुश्रुत उसी का नया संस्करण है।

---

१. महाभारत द्रोणपर्व २६। ५

२. शोडष राजोपाख्यान। शान्ति० म० भा०

३. ऋ० ६। ३१। ३२ का ऋषि।

४. हस्तिनापुर के ध्वंस मेरठ के समीप हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हस्ती का वंश—महाराज हस्ती के ३ पुत्र हुए। (१) अजमीढ़, (२) द्विजमीढ़, (३) पुरुमीढ़। अजमीढ़ हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठे। द्विजमीढ़ और पुरुमीढ़ ने नए राज्य स्थापित किए। अजमीढ़ और पुरुमीढ़ वेदर्षि थे[1]। पुरुमीढ़ याजक हो गया।

अजमीढ़ वंश—अजमीढ़ ने भारी राज्य किया। उसकी तीन पत्नियाँ थीं, नीलिनी, धूमिनी, और केशिनी। वृद्धावस्था में उसके तीन पुत्र हुए[2]। उसके कुल का वंश-वृक्ष इस प्रकार है:—

३१, अजमीढ़

(धूमिनी से) | (नीलिनी से)

३२. वृहत् वसु (इसने दक्षिण पांचाल राज बंश स्थापित किया)	३२. ऋक्ष (प्रथम) (हस्तिनापुर गद्दी पर)	३२. नील (इसने उत्तर पांचाल राजवंश स्थापित किया)
३३. वृहदिषु	३३.	३३. सुशांति
३४. वृहदनु	३४.	३४. पुरुजानु
३५. वृहत्कर्मन	३५.	३५. तृक्षु
३६. जयद्रथ	३६.	३६. भृमश्व
३७. विश्वजित्	३७. विदूरथ	३७. सृंजय

अजमीढ़ की मुख्य गद्दी पर उसका उत्तराधिकारी ऋक्ष (प्रथम) राजा हुआ। जो इस वंश की ३२ वी पीढ़ी में था। ३३, ३४, ३५ और ३६ वीं पीढ़ी के राजाओं के नाम प्राप्त नहीं हैं। ३७ वीं पीढ़ी पर विदूरथ राजा था जो जामदग्न राम के हाथ से मारा गया[3]।

---

१. ऋग्वेद ४।४३।४४ के ऋषि।

२. अजमीढ़ की संतति के विषय में महाभारत और पुराणों में मतभेद है। पुराणों में कण्व को अजमीढ़–केशिनी पुत्र कहा गया है। परन्तु महाभारत में कण्व मतिनार–पुत्र अप्रतिरथ का पुत्र बताया गया हैं। पार्जीटर पुराण मत को मानता है। अजमीढ़ के पश्चात् हस्तिनापुर की शाखा का इतिहास गड़बड़ है। प्रधान ने उस पर बहुत खोज श्रम किया है, पार्जीटर ने सरल मार्ग पकड़ा है। ऋक्ष (प्रथम) अजमीढ़ के बीच की कुछ पीढ़ियाँ छोड़ दी हैं।

३. महाभारत शान्ति० अ० ४८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

धूमिनि रानी से उत्पन्न वृहद्वसु ने दक्षिण पांचाल राज्यवंश की नई गद्दी स्थापित की। इसकी ३७ वीं पीढ़ी का राजा विश्वाजित् था। उसकी राजधानी कम्पिल्य थी। इस वंश में इस बीच कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति नहीं हुआ। तथा यह राज्य साधारण ही रहा।

उत्तर पांचाल राज्य की स्थापना नीलिनि के पुत्र नील ने की थी, जिसका ३७ वीं पीढ़ीं पर सृंजय राजा था। यह राज्य पंजाब में रावी के दोनों तटों पर था। इसे तृत्सु भी कहा गया है। यह वंश आगे प्रसिद्ध हुआ[1]।

काशिक राज्य--इस समय में काशी के काशिक राज्य में कई उलट फेर हुए। दिवोदास (प्रथम ३४) के समय इस राज्य पर हैहय भद्रश्रेण्य ने आक्रमण किया। जिसमें दिवोदास ने पराक्रमी भद्रश्रेण्य को करारी हार दी, तथा उसके कई पुत्र मारे। केवल छोटे पुत्र दुर्मद को बालक जान कर छोड़ दिया। दुर्मद ने सयाना होकर पूर्वी राज्यों को जीतते हुए काशी पर फिर आक्रम किया। जिस में दिवोदास (प्रथम) पराजित होकर काशी छोड़ गोमती के निकट कुछ पश्चिम में जा बसे। काशी पर हैहयों का अधिकार हो गया। परन्तु क्षेमक राक्षस ने उसे छीन लिया। पर दुर्मद ने फिर काशी अधिकृत कर ली[2]। कुछ काल बाद काशी नरेश ने फिर काशी पर अधिकार किया, और हैहयों ने फिर आक्रमण कर हर्यश्व (३५) को मारा। सुदेव (३६) को हराया और काशी लूटी। अनन्तर सौदेव दिवोदास (द्वितीय) का हैहयों से सौ दिन तक घोर युद्ध हुआ। अन्त में सौदेव हार कर भारद्वाज आश्रम में चले गए। इनके पुत्र प्रदर्दन हुए, जिनका पालन-शिक्षण भारद्वाज ने किया। समय पाकर प्रदर्दन ने भारी पराक्रम प्रदर्शित किया। उसने ताल जंघात्मज वीतिहोत्र (वीतिहव्य) को हैहय राजधानी में घुस कर हराया। वीतिहव्य राज्य-भ्रष्ट होकर शौनक भार्गव ऋषि हो गए[3]। प्रतर्दन फिर काशी के राजा हो गए[4]।

---

१. ऋग्वेद। महा०

२. वायु ९२-२३-८। हरिवंश २९, १५४, १-८।

३. म० भा०। वायु। ह० वंश।

४. वीतिहव्य ने अंगिरस शुनहोत्र के पुत्र गृत्समद वेदर्षि को गोद लिया। यही गृत्समद शंवरवध में अतिथिग्व दिवोदास का उल्लेख करते हैं। वीतिहव्य भारद्वाज के साथ रहे। गृत्समद का ऋग्वेद का दूसरा मण्डल है। तथा भरद्वाज का छठा। छठे मण्डल में वीतिहव्य का कथन ऋषि के समान है। वीतिहव्य का नाम वीतिहोत्र भी प्रसिद्ध है। महा०भा० XIII ३०, ५८, ९, ३०, १९८३, ९६ सर्वानुक्रमणी वीतिहोत्र के पिता तालजंघ ने म्लेच्छों से सहायता लेकर अपना राज्य खम्बात की खाड़ी से बनारस तक बढ़ा लिया था। इनके आक्रमणों से घबरा कर सूर्यवंशी राजा वाहु अग्नि और्व के आश्रम में शरणापन्न हुए, तथा काशी नरेश दिवोदास (द्वितीय) भरद्वाज के आश्रम में।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काशी राज्य का वंश-वृक्ष इस प्रकार है :—

३० काशिक
|
३१ दीर्घतमा
|
३२ धन्वन्तरि
|
३३ केतुमान (प्रथम)
|
३४ भीमरथ
|
३५ दिवोदास (प्रथम)
|
३६ हर्यश्व
|
३७ सुदेव
|
३८ दिवोदास (द्वितीय)
|
३९ प्रतर्दन

कान्यकुब्ज पौरव शाखा—सुहोत्र के तीसरे पुत्र वृहत् ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) बसा कर नया राज्य स्थापित किया। इसका वंश-वृक्ष यह है :—

३० वृहत्
|
३१ जन्हु
|
३२ अजक
|
३३ वलाकाश्य
|
३४ वल्लभ
|
३५ कुशिक
|
३६ गाधि
|
३७ विश्वरथ (ये आगे ऋषि विश्वामित्र प्रसिद्ध हुए)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वृहत् के पुत्र जन्हु बड़े प्रतापी हुए। इनका विवाह मांधाता मानव की पुत्री से हुआ[1]। इनके बाद क्रमशः अजक बलकाश्व बल्लभ कुशिक गाधि और विश्वरथ राजा हुए[2]। कुशिक बड़े भारी राजा थे। इनके नाम पर वंश कुशिक कहाया। इनका विवाह मांधाता पुत्र पुरुकुत्स की पुत्री पुरुकुत्सी से हुआ[3]। पुरुकुत्सी में कुशिक से गाधि उत्पन्न हुए। जो वेद में गाथिन् प्रसिद्ध हैं। गाधि भी वेदर्षि थे। गाधि पुत्र विश्वरथ विश्व विख्यात ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के नाम से विख्यात हुए।

द्विमीढ़ और पुरुमीढ़ वंश—द्विमीढ़ ने विदर्भ में अपना नवीन राज्य स्थापित किया। यह राज्य इसने यादवों से लड़कर स्थापित किया था। इस वंश के ३३ से ३९ तक नाम अज्ञात हैं। ३९ वां राजा राम के काल में धृतिमन्त था। पुरुमीढ़ का वंश याजक हो गया। अतः उसके वंश का कहीं उल्लेख नहीं है।

———

१५—आर्यों की सैंतीसवीं पीढ़ी

आर्यों का विस्तार—भारतवर्ष और आर्यावर्त में अब आर्यों की सैंतीसवीं पीढ़ी चल रही थी। यह त्रेता युग का अन्तिम चरण था। इस समय आर्यावर्त की सीमाएँ गंगा जमुना की घाटियों को पार कर सोन महानद के तट को छू रही थीं। दक्षिण में नर्मदा के किनारे तक आर्यों के अनेक समृद्ध राज्य स्थापित हो चुके थे। पूर्व और दक्षिण में समुद्र तट तक आर्य राज्य फैल चुके थे। कहीं २ समुद्रोल्लंघन कर द्वीप द्वीपान्तर तक भी आर्यों के चक्रवर्ती राज्यों के अन्तर्गत आ चुके थे। सरस्वती और दृषद्वती की मध्य भूमि जिसे आजकल सरहिन्द का इलाका कहते हैं– आर्यावर्त की केन्द्र भूमि थी। उसे ब्रह्मावर्त भी कहते थे। असुरों, अनार्यों, भरतों, नागों और दस्युओं के भी अनेक समृद्ध राज्य भारत में थे आर्य उन्हें पीछे धकेलते हुए अपने साम्राज्य का चक्र वर्धमान कर रहे थे।

अनेक चक्रवर्ती राज्यों की भांति अब प्रभावशाली ऋषियों और याजकों के आश्रम स्थापित हो चुके थे। जो एक प्रकार के उपनिवेश थे। सूर्य वंश और चन्द्र वंशियों के अनेक वंशधर इस समय तक याजक ऋषि बन चुके थे। और वे ब्रह्मर्षि कहाते थे। जो ऋषि अभी तक राजा थे राजसत्ता ग्रहण किए हुए थे। वे अब भी राजर्षि पद धारण किए हुए थे। ब्रह्मर्षियों के जो आश्रम या उपनिवेश स्थापित थे, वे पठन पाठन और अध्ययन तथा संस्कृति के केन्द्र बनते जा रहे थे। जिनमें कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध हो गए थे। यहां वेद का निरन्तर निर्माण होता जा रहा था।

---

१. वायु पु० ९१। ५८। ९। हरि, २७। १४२६। ३
३. हरिवंश। २७। १४२६। ३०
३. महाभारत, शान्ति।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिस प्रकार आर्यों के राज्यों की सोलह प्रमुख गद्दियां इस काल में थी। उसी प्रकार याजकों के भी अनेक आश्रम स्थापित हो गए थे। जहां वेद अध्ययन-वेद निर्माण, यज्ञ कर्म आदि होता रहता था। ये याजक राजाओं को यज्ञ कर्म कराते रहते थे। प्राय: ये सभी याजक सूर्य चन्द्र वंशी क्षत्रियों से ही बने थे। इस काल तक याजकों और राजाओं की प्रथक जाति नहीं बनी थीं। और उनके परस्पर रोटी-बेटी व्यवहार बने हुए थे। याजकों को प्राय: आर्य राजा अपनी पुत्री ब्याह देते थे। कुछ याजक आर्यों के वंश से प्रथक भी थे। जिनमें भृगुवंशी प्रमुख थे, जिनका नेता जमदग्नि था। परंतु उसे भी अयोध्या के सूर्य वंशी राजा ने अपनी पुत्री ब्याही थी।

१६--तीन अमित तेज युग पुरुष

इस काल में तीन अमित तेज युग पुरुषों ने जन्म लिया :-

१-सार्वभौम चक्रवर्ती सहस्त्रबाहु अर्जुन। २-जामदग्न्यराम। ३-विश्वामित्र ब्रह्मर्षि।

सार्वभौम सहस्त्रार्जुन--दुर्मद हैहय का पौत्र कृतवीर्य प्रतापी राजा हुआ। उसने अपने बिखरे महिष्मत राज्य को संवारा। परंतु उसका पुत्र सार्वभौम चक्रवर्ती सहस्त्रार्जुन था। अर्जुन ने नर्मदा से हिमालय तक का देश जय किया[1]। तथा यवनों काम्बोजों पारदी और पल्लवों की सहायता से मध्य देश को जय किया[2]। तथा सैकड़ों यज्ञ किए। नागों को महष्मी में ला बसाया। इस काल में नर्मदा निस्सीम नदी थी। उसी के उत्तरी तट पर अर्जुन की नई राजधानी माहिष्मती थी। इस नगरी को महिष्मत ने कर्टोटकनाग से छीन कर सम्पन्न किया था।

नगरी के पास नर्मदा का विस्तार समुद्र के समान था। उसमें सदैव ही सुमेरु-पाताल; क्षीरसागर, त्रिपुरी और सप्तमहासागरों के द्वीप समूहों के पोत लंगर डाले पड़े रहते थे। सहस्त्रार्जुन का नौबल अजेय था। वह लहरों का स्वामी प्रसिद्ध था। उन दिनों माहिष्मती समूचे आर्यावर्त, भरतखण्ड, इलावर्त और दैत्यों राज्यों के व्यापारियों से भरी रहती थी। यानों में आर्यों, अनार्यों, असुरों, व्रात्यों, नागों आदि सभी जातियों के वणिक क्रय विक्रय करते थे। मथुरा से नर्मदा तक समूची

---

१ महाभारत VIII ४४, २०६६, III ६६, ३६११। VIII ३४, १४१३। हरिवंश १६८। ९५०२।

२. वायु ८८। १२२, ४२। ब्रह्माण्ड III ६३-१२०, ४५। VIII २९, ५१।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी का स्वामी उस काल अर्जुन हैहय था। वह अनूप देश का एक छत्र राजा कहाता था। सोपारा से खम्भात तक का सारा प्रदेश अनूप कहाता था। अर्जुन का प्रताप एक सहस्त्र राजाओं के समान था, इसी से वह सहस्त्रार्जुन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस काल में कोई भी अकेला राजा उसे पदाक्रांत नहीं कर सकता था। कार्तवीर्य अर्जुन समूचे मध्यभारत का स्वामी था। उसकी विपुल पोत वाहिनी और अजेय हय दल था। इसने सैंकड़ों यज्ञ किए। तथा पचासी वरस राज्य किया। इस महावली सप्तद्वीपेश्वर चक्रवर्ती को जामदग्न्य राम ने वृद्धावस्था में घात पाकर वध किया[1]।

भृगुओं का धर्म प्रताप--हैहयों का जैसा राज्य प्रताप था, वैसा ही भृगुओं का धर्मप्रताप भी था। अनूप देश इन दोनों प्रतापी प्रतिद्विन्दियों का क्षेत्र था। यहां भृगु वंशी अधिक रहते थे। अनूप देश की सीमा पूर्व में चर्मण्वती, पश्चिम में समुद्र, दक्षिण में नर्मदा और उत्तर में आनर्त तक थी। भृगु वंशी यहां के हैहयों से भी प्राचीन निवासी थे। उनकी बहुत जमीन जायदाद जागीर और धन सम्पत्ति थी। इसी से जब भृगुओं का सहस्त्रार्जुन से विग्रह हुआ तब वह बहुत उग्र रूप धारण कर गया।

यह प्रथम शर्यातों का सूर्य वंशी राज्य था, भृगु पुत्र च्यवन जो शुक्र उसनस के सौतेले भाई थे, मानवों की कन्या से विवाह कर आर्य ऋषि हो गए थे। और सुसराल में राजसी ठाठ से राज पुरोहित और राज मन्त्री बनकर रहते थे। वे कोरे ऋषि न थे, बड़े बांके योद्धा थे। उन्होंने एक बार देवराट् इन्द्र से भी भारी युद्ध किया था। वह काल ही ऐसा था, जब प्रत्येक को शस्त्र ग्रहण करना पड़ता था। कालान्तर में जब पुण्यजन असुरों ने शर्यातों का राज्य छीन लिया, तो उनसे हैहयों ने राज्य छीन लिया। राज्य के स्वामी होने पर हैहयों ने भी च्यवन के वंशज भार्गवों को अपना कुल गुरु माना। हैहयों का भार्गवों के वंश से न केवल घनिष्ट सम्बन्ध ही रहा, अपितु वे हैहयों के ही राज्य में बसे रहे। वे राजपुरोहित और राज सम्बन्धी होने के कारण खूब सम्पन्न और जागीरदार की भांति रहते थे। थे। हैहयों ने भी उन्हें खूब धन दिया था। पीछे हैहयों ने उनसे प्रजा की भांति कर ग्रहण करना चाहा, इस पर भार्गवों ने आपत्ति की। राज्य के दामाद और गुरु होने के नाते वे इस कर से मुक्त होना चाहते थे। इस पर झगड़ा बढ़कर भारी विद्रोह का रूप धारण कर गया। हैहयों ने भार्गवों की गर्भिणी स्त्रियों तक के पेट फाड़ डाले। इस प्रकार उनका वंश निर्मूल करके उनका सब धन हरण कर लिया। उस समय एक गर्भिणी स्त्री किसी तरह बच कर भाग निकली थी; उसने नर्वदा

---

१. क्वःकार्त वीर्यस्यबलाभिमाननः सहस्त्रवाहोर्वलमर्जुनस्य तत्।
चकर्त बाहून्युधि यस्य भार्गवों महान्ति श्रृंगाण्यशनिर्गिरे रिव।
सौदरनन्द ९-१०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तट पर किसी ऋषि के आश्रम में आश्रय लिया। कालान्तर में बालक ने जन्म लिया, जिसका नाम और्व रक्खा गया। सयाना होने पर और्व माता सहित नर्वदा तट छोड़ मध्य भारत में चले आए और वहीं आश्रम बना कर रहने लगे। वहीं उन्होंने ऋचीक नाम पुत्र को जन्म दिया। समर्थ होने पर उन्होंसे ऋचीक को सब शास्त्रों तथा शस्त्रों की विद्या सिखाई, और महिष्मतों ने उनसे कैसा वैर साधा था, यह सब उन्होंने उन्हें बताया। जो अपनी माता से उन्होंने सुना था। ऋचीक हैहयों के प्रति विद्रोह से परिपूर्ण हो उठे। जब वे समर्थ और सब भांति योग्य हो गए तो उनके पिता और्व ने उन्हें महिष्मतों के राज्य से दूर सरस्वती तट पर आश्रम बना कर रहने की सम्मति दी।

ऋचीक—ऋचीक भारी वेदर्षि और बड़े प्रतापी पुरुष हुए। उनका शस्त्र ज्ञान और शास्त्र ज्ञान असाधारण था। सरस्वती तट पर बस जाने के कुछ काल बाद ही उन्होंने एक सहस्त्र श्यामकर्ण घोड़े कान्यकुब्ज पति गाधि को देकर उनकी पुत्री सत्यवती मांग ली। इस प्रकार कान्यकुब्ज पति गाधि की पुत्री से उनका विवाह हो गया। और वे इस सम्बन्ध के कारण सुप्रतिष्ठित भी हो गए। असुर याजक वंशी होने के कारण आर्यावर्त के बाहर भी उनका बहुत प्रभाव था। कालान्तर में सत्यवती से उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम जमदग्नि रक्खा गया। इसी समय गाधि को भी पुत्र प्राप्ति हुई। उसका नाम विश्वरथ रक्खा गया। आगे चल कर यही विश्वरथ महा प्रतापी ऋषि विश्वामित्र प्रसिद्ध हुए।

जमदग्नि और विश्वामित्र

जमदग्नि और विश्वरथ ऋचीक ऋषि के आश्रम में साथ साथ शिक्षा पाने लगे। विश्वरथ के बहनोई ऋचीक जैसे वेदर्षि थे, वैसे ही मन्त्र तन्त्र शस्त्र विद्या के पारंगत थे। उन्होंने जमदग्नि और विश्वरथ दोनों को वेद विद्या और दिव्य शस्त्रास्त्रों का प्रयोक्ता बना दिया। समय पाकर विश्वरथ कान्यकुब्ज के अधीश्वर सम वयस्क होने तथा साथ-साथ रहने से दोनों मामा भाञ्जे विश्वरथ और जमदग्नि परस्पर प्रगाढ़ मित्र हो गए।

जामदग्न्य राम—जमदग्नि का विवाह इक्ष्वाकु वंशी राजा की पुत्री रेणु के साथ हुआ। वेणु की सगी बहिन मृगावती सार्वभौम चक्रवर्ती सहस्त्रार्जुन को ब्याही गई। इस प्रकार जमदग्नि और सहस्त्रार्जुन साढ़ू हो गए। परन्तु सहस्त्रार्जुन भृगुओं का दो पीढ़ी का वैर भूला नहीं। जमदग्नि के साथ रिश्ते के सूत्र में बंधकर भी नहीं। परन्तु जमदग्नि अब उससे दूर आर्यावर्त में सरस्वती तट पर रहते थे। यह विग्रह अब नाम मात्र को ही रह गया था। परन्तु विग्रह का बीज जैसा अर्जुन के मन में था वैसा ही जमदग्नि के मन में भी था। जमदग्नि के रेणु से चार पुत्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उत्पन्न हुए। जिनमें सबसे छोटे राम थे। परशु धारण करने के कारण उनका नाम परशुराम प्रसिद्ध हुआ।

दुर्घट घटना—विग्रह का बीज दोनों ही कुलों में प्रच्छिन्न पनप रहा था, कि एक दुर्घट घटना हो गई। जमदग्नि की स्त्री रेणु मृत्तिकावती के राजा चित्ररथ के साथ भाग गई। इस पर क्रुद्ध होकर जमदग्नि ने अपने पुत्र परशुराम के हाथों उसका वध करा डाला। इस पर सहस्त्रार्जुन की स्त्री मृगावती ने बहुत क्रन्दन किया, और उसके अनुरोध अनुनय से सहस्त्रार्जुन ने एक दिन अकस्मात् जमदग्नि के आश्रम पर छापा मारा। जमदग्नि उस समय वहां उपस्थित नहीं थे, अतः उसने आश्रम को लूट लिया और उसे जला कर खाक कर डाला।

उन दिनों मथुरा तक हैहयों का राज्य विस्तार था। मथुरा महिष्मत राज्य तथा आर्यावर्त की राज्य सीमा थी। सहस्त्रार्जुन इस समय बहुत बूढ़े हो गए थे। तथा बिना ही अपनी सुरक्षा का विचार किए थोड़े सिपाहियों को ले आर्यावर्त में घुस आए थे। जमदग्नि ने अपने क्रोधी पुत्र परशुराम को पुराने वैर का स्मरण करा कर उत्तेजित किया। परशुराम ने अपने सम्बन्धी विश्वरथ का हयदल लेकर सहस्त्रार्जुन को घेर कर मार डाला और हैहयों के रक्त से समन्तकतीर्थ में पाँच रक्त कुण्ड भरे।

विश्वामित्र—कान्यकुब्ज पति विश्वरथ वेदर्षि और याजक होने पर अति प्रसिद्ध हुए। वशिष्ठ से जो उनका वैर छिड़ा सो छिड़ा, वह चिरकाल तक चलता रहा। एक प्रकार से विश्वामित्र ने वशिष्ठ के वंश का निःशेष ही कर डाला, और इनके सब पुत्र–पौत्रों को मरवा डाला। वशिष्ठ और विश्वामित्र के इस वैर का संकेत ऋग्वेद के तीसरे मण्डल में है। ऋग्वेद का तीसरा मण्डल मुख्यतः विश्वामित्र का है। इस मण्डल के पन्द्रह सूक्तों के अन्य ऋषि हैं। परन्तु वे सब भी विश्वामित्र ही के पिता–पुत्र परिजन हैं[1]। इस मण्डल में सब मिला कर ६२ सूक्त हैं। इसमें वेद पाठियों की एक नई परम्परा स्थापित हुई है। देवताओं की संख्या वेद में ३३ कही गई है, परन्तु यहां नवें सूक्त में वह ३३३९ होगई है। इसी से यह बात प्रसिद्ध है कि विश्वामित्र ने नए देवता बनाए थे। विश्वामित्र ने 'एकेश्वरवाद' भी इसी मण्डल (५४–८) में घोषित किया है, जो आर्यों के लिए नई वस्तु है। सब देवताओं को भारतवासी कहा है, (५४–७) अपने को कुशिक कहा है (२६–१) वशिष्ठ के झगड़े का भी उल्लेख है (५३–१४–१५) जमदग्नि की स्तुति और

---

१. ऋषभ (दो सूक्त), उत्कील (दो सूक्त), कठ (दो सूक्त), गाथिन (४ सूक्त), देवश्रवस (दो सूक्त), देवव्रत (१ सूक्त), प्रजापति (४ सूक्त)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वशिष्ठ की निन्दा है (५३–२८) भरतों का बहुत वर्णन है। (५३–११–१८) सुदास को भरतों ही में गिनाया है। वशिष्ठ पुत्र शक्ति से विश्वामित्र की घोर शत्रुता इस मण्डल में व्यक्त है[1]।

———

१७–– हैहय कार्तवीर्य अर्जुन सहस्त्रबाहु चक्रवर्ती

माहिष्मती शाखा— ययाति पुत्र यदु का दूसरा पुत्र सहस्त्रजित् था। सहस्त्रजित् ने दक्षिण मालव में अपना नया राज्य स्थापित किया। उसका पुत्र शतजित् था शतजित् के बाद इस वंश की १६ पीढ़ियों के नाम अज्ञात हैं। २५ वीं पीढ़ी में हैहय राजा हुआ। जो प्रसिद्ध विजेता था। इस के समय में इस वंश की उन्नति हुई और यह वंश यादव के स्थान पर हैहय वंश कहाने लगा।

यादवों का दूसरा वंश—यादवों की दूसरी शाखा सहस्त्रजित् के बड़े भाई क्रोष्टु की माथुर शाखा थी। जिस में २१ वीं पीढ़ी में प्रसिद्ध चक्रवर्ती शशिबिन्दु हुआ। यह राज्य चम्बल और बेतवा का मध्यवर्ती प्रदेश था। शशिबिन्दु के बाद यह वंश फिर निर्बल हो गया। हैहय वंश ने इन का राज्य छीन लिया। शशिबिन्दु के पौत्र परावृत के दो पुत्र विदिशा में गए। जहां उन्हों ने अपने राज्य स्थापित किए। ज्येष्ट पुत्र ज्यामघ ने दक्षिण में जाकर ऋक्ष पर्वत के आंचल में मृत्तिकावती नगरी बसाई और वहां राज्य करने लगे। ज्यामघ के पुत्र विदर्भ ने पड़ौस का राज्य छीन उसे विदर्भ का नाम दिया, तथा वहां अपना नया राज्य स्थापित किया। विदर्भ और कुण्डिनपुर इस राज्य की ही राजधानी थी[2]। विदर्भ इस वंश की २४ वीं पीढ़ी का राजा था। उसके बाद ३२ वीं पीढ़ी तक इस वंश के राजाओं का नाम पता नहीं मिलता। ३३ वीं पीढ़ी में विकृति हुआ। ३५ वीं पीढ़ी में राजा भीमरथ निषध नाथ नल के ससुर और दमयन्ती के पिता थे[3]। विदर्भ को आजकल बरार कहते हैं।

विदर्भ की दूसरी शाखा–– विदर्भ के दो पुत्र थे। क्रथभीम और क्रथ–कौशल। क्रथ भीम विदर्भ की गद्दी पर रहा। क्रथ कौशिक के चिदि–वीर वाहु और

---

१. पुराणों के अनुसार शक्ति को विश्वामित्र ने कल्याण पाद के द्वारा मरवा डाला था।

२. महा० ३१। २७७२। V. १५७, ५३६, ३। हरिवंश ११७, ६५११। ६५८१, ६६०६, १०४, ५८०४, १०६. ५८५५, ११८ ६६६२, ६६९३

३. महा० वन०। एतरेप वा० VII, ३४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुबाहु वंशधर हुए। सुबाहु प्रसिद्ध राजा नल के मौसा थे[1]। नल पैंतीसवीं और सुबाहु ३४ वीं पीढ़ी में है। कालांतर में क्रथ भीम की शाखा मथुरा आई और क्रथ कौशिक वंश विदर्भ में रहा[2]। पूरे विवरण के आधार पर यदुवंश की यह शाखा पहिले अपने पैत्रिक देश में रही, फिर ज्यामघ के काल में मृत्तिका वती में प्रतिष्ठित हुई, पीछे विदर्भ जीत विदर्भ में। कालांतर में एक शाखा वहां रही—दूसरी मथुरा आई। पर मथुरा राज्य का विस्तार द्वापर में हुआ। विदर्भ के निकट ही द्विमीढ़ का पौरव राज्य भी स्थापित हुआ। चिदिने चेदि राज्य की स्थापना की।

हैहय वंश का उत्कर्ष—हैहय ने शशिबिन्दु के उत्तराधिकारी से यादवों का पैत्रिक राज्य छीन लिया। इस से हैहयों का प्रभाव बहुत बढ़ गया। हैहय के प्रपौत्र साहंजय ने साहंजनी पुरी बसाई[3]। और इसके पुत्र महिष्मान ने प्रसिद्ध नगरी माहिष्मती बसाई[4]। इस बीच शर्याती का मानव राज्य जो खम्भात की खाड़ीमें था, वह पुण्यजन अनार्य वंशियों, ने छीन लिया था, इस पर इस वंश ने राजा हैहय की शरण ली। तब हैहय ने पुण्यजनों से शर्यातों के राज्य को छीन कर अपने अधिकार में कर लिया। इस के बाद शर्यात वंश एक प्रकार से समाप्त ही हो गया। उस के उत्तराधिकारी हैहयों के उपजीवी बन गए[5]। शर्यातों का भृगुवंशी याजकों से सम्बन्ध था। उनकी कन्या भृगुवंशी च्यवन को ब्याही थी तथा—च्यवन इस कुल के पुरोहित और मन्त्री भी थे। अतः भृगु वंशियों का कुल सब तरह प्रतिष्ठित था। जब शर्यातों के राज्य पर हैहयों का अधिकार हो गया, तो उन्होंने भी भार्गवों को अपना कुल पुरोहित और मन्त्री बना लिया। हैहयों की जो पांच मुख्य शाखाएँ हुईं। उनमें एक शर्यातों की भी थी[6]। भार्गवों का हैहयों के राज्य में धनमान से पूरा सत्कार होता था।

शर्याती का विलय

भार्गवों का हैहयों से सम्बन्ध

भार्गवों से विग्रह—माहिष्मान् के पुत्र भद्रश्रेण्य ने मथुरा में आगे बढ़ कर पूर्वी

---

१. महाभारत।

२. कृष्ण के स्वशुर भीष्मक इसी वंश के हुए।

३. हरिवंश। १। ३३। ४।

४. पार्जीटर नर्वदा तटवर्ती वर्तमान माधाता को ही माहिष्म कहता है।

५. हरिवंश।

६. वीतिहोत्र, अवन्ति, भोज, शार्यात और तुण्डिकेर ये पांच राज्य हैहयों के थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्यों को दबाया और काशी पर आक्रमण किया। काशी नरेश दिवोदास (प्रथम) को भद्रश्रेण्य ने करारी हार दी। भद्रश्रेण्य पुत्र परिजनों सहित युद्ध भूमि में खेत रहा। केवल उसके एक मात्र पुत्र दुर्मद को दिवोदास ने बालक जानकर छोड़ दिया। परन्तु समर्थ होने पर दुर्मद ने बल संग्रह कर काशी पर आक्रमण किया। इस समय तक दिवोदास वृद्ध हो गया था। वह पराजित हो कर काशी छोड़ कर पच्छिम की ओर भाग गया, और गौमती तट पर अपना नया राज्य बसा कर बैठ गया। काशी को लूट पाट कर दुर्मद चला गया, तब काशी पर क्षेमक अनार्य ने अधिकार कर लिया। पर थोड़े ही दिन बाद दुर्मद फिर लौटा और क्षेमक को मार काशी राज्य को हैहय साम्राज्य में मिला लिया। जिस समय ये निरन्तर युद्ध हो रहे थे। हैहयों का सारा राज्य कोश खाली हो गया। उस समय भार्गवों के पास अपरिमित धन था। एक प्रकार से वह धन हैहयों का ही दिया हुआ था। भद्रश्रेण्य ने इन से धन मांगा, पर उन्होंने धन देने से इन्कार कर दिया। जिस से भद्रश्रेण्य की शक्ति क्षीण हो गई और उसे परास्त हो कर पुत्र पौत्रों सहित प्राणों से हाथ धोने पड़े। जब दुर्मद समर्थ हुआ तो उस ने काशियों से और भार्गवों से पिता का करारा वैर लिया। काशियों के राज्य का जड़मूल से उन्मूलन करके वह भार्गवों पर टूटा और निर्दयता पूर्वक भार्गवों का विध्वंस कर उन्हें निर्वंश कर दिया। यहां तक, कि उसने गर्भवतियों के गर्भ भी चीर डाले, तथा उनका सब धन अहरण कर लिया। उस समय केवल एक स्त्री किसी तरह बच कर भाग निकली। जो गर्भवती थी। कालांतर में उसके पुत्र हुआ। जिस का नाम और्व प्रसिद्ध हुआ[1]।

१८--मुनि वशिष्ठ

वशिष्ठ का वंश—वशिष्ठ का ठीक ठीक वृत्त नहीं मिलता। आर्य वंश में उनका नाम नहीं है। ऋग्वेद में संकेत मिलता है कि वे उर्वशी के पुत्र थे[2]। पुराणों में इन्हें मैत्रा वरुण कहा है। ऐसे विवरण मिलते हैं कि उर्वशी सूर्य और वरुण दोनों ही की सेवा करती थी। यह नहीं कहा जा सकता कि वशिष्ठ दोनों में से किस के औरस से उत्पन्न हुए। इसी से इन्हें मैत्रावरुण नाम दिया गया। भारत में सूर्यवंशियों के पुरोहित और मन्त्री के स्थान पर जो वशिष्ठ उपस्थित हैं वह सम्भवतः इन्हीं वशिष्ठ के वंशधर हैं। इतनी बात तो अवश्य है कि सूर्यवंश से

---

१. देखिए, महाभारत, शान्ति पर्व, ब्रह्मान्ड, वायु, ब्रह्म० हरिवंश, मत्स्य, पद्मलिङ्ग, कूर्म–विष्णु, अग्नि, गरुड और भागवतपुराण में यही प्रकरण।

२. ऋग्वेद मण्डल ७। ३३ ११

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उनका लगाव अवश्य था—सम्भवतः वह ईरानी मग जाति के व्यक्ति थे, और भारत में इलावर्त से आए थे[1]।

मग-मौनी–मुनि-मिहिर वशिष्ठ जाति सम्बन्धी नाम हैं। मगों को मौनी या मुनि कहते हैं[2]। ईरान के मगों को The Mannaii व सूफी भी कहते हैं[3]। 'गोमाता' भी उन्हें कहा गया है[4]। पारदिया के राजाग्रों की उपाधि गोमाता (Gomata) थी[5]। नन्दन वन की प्रजा को नन्दिनी कहा गया है। इन सब बातों से उन सब पौराणिक विवरणों से प्रकाश पड़ता है, जिन में वशिष्ठ को नन्दिनी गौ का स्वामी माना गया है। यद्यपि बहुत सी काल्पनिक पौराणिक गाथाग्रों के मिल जाने से इस सत्य का रूप विकृत हो गया है। परन्तु इतिहास की धुंधली छाया उस पर है।

उत्तर कोशल में वशिष्ठ को हम सर्व प्रथम उत्तर कोशल राज्य की हरिश्चन्द्र वाली शाखा में त्रैयारुण के पुरोहित और मन्त्री के रूप में पाते हैं। वहाँ से वे सम्भवतः उत्तर पांचाल के सुदास वैदिक के कुल पुरोहित और मन्त्री बनते हैं। ये ऋग्वेद के सातवें मण्डल के ऋषि हैं। यह मण्टल इन्होंने निश्चय ही सुदास के यहाँ रहते हुए ही लिखा है। इसमें सुदास की बड़ी महिमा है, तथा प्रसिद्ध दस राजाग्रों के युद्ध का वर्णन है। इस मण्डल से हमें यह भी अनुमान होता है कि वशिष्ठ ने समुद्र यात्राएँ की और युद्धों में प्रत्यक्ष भाग लिया। सुदास से नाराज़ होकर ये पौरव संवर्ण का मन्त्री पद और पौरोहित्य ग्रहण करते हैं। और उसे उत्तेजित कर उससे सुदास को पराजित कराते हैं। पीछे ये दक्षिण कोशल पति कल्माष पाद और फिर उत्तर कोशल की गद्दी पर आ अयोध्या के महाराज दशरथ के मन्त्री और पुरोहित बनते हैं।

---

१. भविष्य पुराण। श्री उमेशचन्द्र विद्यारत्न मग ब्राह्मणों को मंगोलिया निवासी मानते हैं। (देखिये, मानवेर जन्मभूमि पृष्ठ १३) वर्तमान अयोध्या के राजा शाकद्वीपी मग ब्राह्मण हैं। सम्भव है, वे राम के कुल पुरोहित वशिष्ठ के कुल के ही हों। इनका इतिहास कहता है कि लवण सागर के पास क्षीर सागर से घिरे जम्बू द्वीप से सम्बन्धित शाकद्वीप है। उसमें चातुर्वर्ण मग ही रहते हैं। वे सूर्य की पूजा करते थे, तथा इनके १९ कुल वेद पाठी हैं।

२. भविष्य पुराण

३. हिस्ट्री आफ़ पर्शिया जिल्द १—The mego.

४. हिस्ट्री आफ़ पर्शिया जिल्द १ पृ० १६९–१८०, १८९।

५. कनिंघम Vol २, ३०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्रिशंकु के काल में ही इनसे कान्यकुब्ज पति विश्वरथ का विग्रह होता है। विश्वरथ को ये राज्यच्युत करते हैं, और विश्वरथ–ब्रह्मर्षि हो, विश्वामित्र नाम धारण कर इनके प्रबल प्रतिस्पर्धी याजक बनते हैं। बाद में इनके प्रबल झगड़े परस्पर चलते हैं। विश्वामित्र षड्यन्त्रों द्वारा इनके सब पुत्र परिजनों को मरवा डालते हैं। ऋग्वेद का तीसरा मण्डल विश्वामित्र का है। ये दोनों महापुरुष एक दूसरे के घोर प्रतिद्वन्दी और आर्यावर्त में बहुत ऊँची प्रतिष्ठा-भूमि पर स्थिर हुए। कहना चाहिए—वशिष्ठ और विश्वामित्र इस काल के ऐसे अप्रतिम नक्षत्र थे, जिन में सारे आर्यावर्त की राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रतिष्ठा भूमि आधारित थी।

ऋग्वेद ७वां मण्डल—ऋग्वेद का सातवां मण्डल वशिष्ठ का है। इस में २९ सूक्त मैत्रावरुणि वशिष्ठ के और शेष वशिष्ठ के हैं। इन में से एक वशिष्ठ और उनके पुत्र शक्ति का सम्मिलित है। और एक अन्य वशिष्ठ और उनके पुत्र का है। इन सूक्तों में सुदास की प्रशंसा है। तथा उसकी श्रेष्ठता के संकेत हैं। सुदास द्वारा जीते हुए दस राजाओं के युद्ध का वर्णन है। तथा उसके दानों की महिमा है। जमदग्नि की प्रशंसा है। वशिष्ठ ने यद्यपि विश्वामित्र का नाम लेकर उनकी निन्दा नहीं की है, परन्तु उनके द्वेष भाव का संकेत किया है। सुदास के शत्रुओं का भी उल्लेख है।

वशिष्ठ और विश्वामित्र—राजा सत्यव्रत त्रिशंकु के राज्यारोहण से अप्रसन्न हो वशिष्ठ विश्वामित्र के ही विरोध में राज्य पुरोहित का पद त्याग उत्तर पांचाल नरेश सुदास के राज्य में चले गए थे, और उसके मन्त्री और पुरोहित बन गए थे। दस राजाओं के प्रसिद्ध युद्ध में उन्होंने सुदास की भारी सहायता की थी। वास्तव में वशिष्ठ जैसे ऋषि थे—वैसे ही योद्धा तथा राजनीति के भी पण्डित थे। सुदास को जिता कर उन्होंने उसका राज्याभिषेक किया। परन्तु विश्वामित्र ने यहां भी बाधा दी। सुदास ने यज्ञ करने के लिए विश्वामित्र को बुलाया। यज्ञ के मध्य में वशिष्ठ पुत्र शक्ति ने विश्वामित्र को निरुत्तर कर दिया। इस पर उन्होंने शक्ति को जीवित ही जलवा दिया। फिर ऐसा झगड़ा बढ़ा कि सुदास ने वशिष्ठ परिवार के सौ पुरुषों को मरवा डाला[1]। जिस से वशिष्ठ खिन्न होकर दक्षिण कौशल नरेश कल्माष पाद के यहां चले गए। परन्तु विश्वामित्र ने वहां भी युक्ति से वशिष्ठ के सब पुत्र परिजनों को मरवा डाला। अन्त में वशिष्ठ वहाँ से हट कर संवर्त राजा के राज्य में आए। संवर्त सुदास का वैरी था। सुदास ने उसे हराया था। वही वैर उकसा कर वशिष्ठ ने संवर्त को युद्ध के लिए तैयार किया। अन्त में सुदास का

---

१. ऋग्वेद ५३–१४–१५। पुराणों में शक्ति को विश्वामित्र ने कल्माष पाद के द्वारा मरवाने का उल्लेख है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संवर्त से युद्ध हुआ जिसमें सुदास मारा गया। पीछे वे उत्तर कौशल की मुख्य गद्दी पर आ दशरथ के राज पुरोहित और मन्त्री बन गए[1]।

१९—कौशल राजवंश की शाखाऐं

इस समय उत्तर कौशल राजवंश की दो शाखाऐं नई चलीं। एक हरिश्चन्द्र शाखा, दूसरी सगर वंश शाखा। तीसरी एक शाखा दक्षिण कौशल वंश की ओर चली।

हरिश्चन्द्र शाखा—वह वंश सिन्धु द्वीप (३०) के द्वितीय पुत्र अनरण्य से आरम्भ हुआ। यह राज्य कान्यकुब्ज के निकट वर्तमान बरेली, बदायूं, फरुखाबाद के आस पास कहीं था। इस शाखा का त्रैयारुण (३५) राजा वेदर्षि और प्रतापी था[2]। त्रैयारुण का पुत्र महाबल सत्यव्रत था[3]। जिसका युवराज काल ही में त्रिशंकु नाम पड़ गया था। इसका कारण यह था कि उसने तीन गुरुतर अपराध किए थे। प्रथम तो उसने एक सम्भ्रान्त कुल की नव परिणीता बधू से बलात्कार किया, दूसरे चाण्डालों और दस्युओं में रहने लगा। तीसरे कुल गुरु वशिष्ठ की गाय मार कर खा गया। इन तीन अपराधों के कारण उसके पिता ने उसे यौवराज्य पद से च्युत कर उसे चाण्डाल वास दिया[4]। तथा त्रिशंकु का दुर्नाम दिया। पिता से अभिशप्त होकर वह चाण्डाल और चोरों के साथ वन में रहने लगा। त्रैयारुण की मृत्यु के बाद भी वशिष्ठ ने उसे राज्याभिषिक्त नहीं किया। स्वयं ही राजकाज चलाते रहे। राजा रहित राज्य को देख और अभिसन्धिया कान्यकुब्ज पति विश्वरथ ने वशिष्ठ के राज्य पर एक अक्षौहिणी सेना लेकर आक्रमण कर दिया। परन्तु वशिष्ठ ने शवरों और म्लेछों की सात गुनी सेना लेकर भीषण संग्राम में विश्वरथ को परास्त कर दिया। जिससे कान्यकुब्ज का राज्य एक प्रकार से नष्ट हो गया। और युद्ध की पराजय से लज्जित और लांच्छित होकर विश्वरथ अपने राज्य में नहीं लौटे। वन में चले गए। कान्यकुब्ज के भंग राज्य पर उनका पुत्र लौहि वशिष्ठ से सन्धि कर राजा हो गया।

---

१. वाल्मिकि रा०

२. ऋग्वेद ५। २७ और ९ ११०। इसके सूक्त हैं। कात्यायन की ऋग्वेद सर्वानुक्रमणिका और शौनकीप वृहद्देवता में इसे त्रिवृष्ण का पुत्र कहा है। एक्षु वाकुस्त्र्ययारुणों राजात्रैवष्णेरथ मा स्थितः। वृहद्देवता ५। १४। जन पुत्र वृष आथर्वण इसका पुरोहित था।

३. वायु ८८। ८२। ८४।

४. वायु ८८। ८५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस समय त्रिशंकु सत्यव्रत भी वन में चाण्डालों और चोरों के साथ रहता था। उसने अपने दस्यु साथियों के साथ विपद ग्रस्त कान्यकुब्ज नरेश विश्वरथ की बहुत सहायता की। इसी समय १२वर्ष की अनावृष्टि हुई। बहुत लोग भूखों मर गए। वन में सत्यव्रत और उनके दस्यु चाण्डाल साथियों ने आखेट ला लाकर विश्वरथ का पालन किया। उसी समय भूख से व्याकुल होकर एक दिन विश्वरथ को चाण्डाल के घर पर सूखता हुआ कुत्ते का मांस चुराने को विवश होना पड़ा[1]।

इस प्रकार दस वर्ष तक विश्वरथ और सत्यव्रत एक साथ वन में रहे। यहीं मेन का अप्सरा से उनका सम्पर्क हुआ। वह भी दस वर्ष उनके साथ रही। अवसर पाकर विश्वरथ के परामर्श से संगठित हो, चोरों और चाण्डालों का बड़ा भारी दल ले त्रिशंकु ने वशिष्ठ के हाथों से अपने पिता का राज्य छीन लिया। तथा वशिष्ठ को राज्य के अधिकार से च्युत कर दिया। विश्वरथ ने सत्यव्रत को गद्दी पर अभिषिक्त कर दिया[2]। तथा स्वयं उसके मन्त्री की भांति रहने लगे। उन्होंने सत्यव्रत का विवाह भी कैकय वंश की राजकुमारी सत्यारता से कर दिया।

अनावृष्टि की समाप्ति पर विश्वरथ की सम्मति से त्रिशंकु सत्यव्रत ने यज्ञ करना चाहा। तो वशिष्ठ ने इसका घोर विरोध किया। और देवताओं तथा ऋषियों को यज्ञ में आने से रोक दिया। कोई ऋषि यज्ञ कराने को भी तैयार नहीं हुआ। तब क्रुद्ध हो कर विश्वरथ ने अपने को ऋषि याजक घोषित कर दिया! और स्वयं यज्ञ के पुरोहित बन गए। तथा अपना नाम विश्वामित्र रख लिया। परन्तु वशिष्ठ ने उन्हें याजक नहीं माना। उन्होंने घोषणा की—कि विश्वरथ यज्ञ विधि नहीं जानता। वशिष्ठ का प्रताप बहुत था। वे दस हजार वटुकों के कुल गुरु थे। उनके कहने से ऋषि और देवताओं ने यज्ञ में भाग लेना अस्वीकार कर दिया, तब विश्वामित्र ने नए देवता, नई ऋचा, नई यज्ञ विधि प्रचलित करने की धमकी दी। यहां एक बात कहने योग्य यह है—कि विश्वामित्र के बहनोई और गुरु ऋचीक ऋषि भृगुवंशी थे जो दैत्य गुरु थे। उनकी यज्ञ परम्परा और वेद विधि वाम था। वे अथर्वाङ्गिरस कहाते थे।

एक क्षत्र राजा का कुल परंपरा के विपरीत याजक बन जाने की यह घटना आर्य वंश में सर्व प्रथम थी। यद्यपि इससे प्रथम अनेक सूर्य वंशी जन याजक बन चुके थे, पर वे राजा न थे। अतः विश्वामित्र के इस क्रान्तिकारी कार्य से आर्यावर्त में भारी हलचल मच गई। ऋषियों और देवताओं के मिलकर त्रिशंकु सत्यव्रत को उत्तर पांचाल का आर्य राजा स्वीकार कर लिया। उसका यज्ञ भाग भी ग्रहण किया।

---

१. वायु ८८, ७२, ११६। हरिवंश १२, ७१७; से ३, १३, ७५३ तक। विष्णु पांचवां ३, १३, ४ भागवत ५७। ५, ६। महाभारत XIII १३७, ६२५।

१. वायु ८८। ८६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
इस कार्य से विश्वामित्र का तेज प्रताप चमक उठा, और व खुल्लम खुल्ला याजक पुरोहित बन गए। ऋषियों में उनका नाम शीर्ष स्थानीय हो गया। आगे वे बड़े भारी वेदर्षि प्रसिद्ध हुए। ऋग्वेद का तीसरा मण्डल मुख्यतः विश्वामित्र का है।

केकय वंश की सत्यरता रानी से सत्यव्रत त्रिशंकु को हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ सत्यव्रत की मृत्यु पर हरिश्चन्द्र राजा हुए।

सगर वंश—सूर्य वंश की ३७ वीं या ३८वीं पीढ़ी में उत्तर कोशल सूर्यवंश की यह नई गद्दी मध्य प्रदेश के उत्तर में कहीं स्थापित हुई थी। इस वंश के मूल पुरुषः बाहु सम्भवतः मूल उत्तर कौशल वंश में या हरिश्चन्द्र शाखा में ३४ या ३५वीं पीढ़ी में थे। इनके काल में हैहय नरेश ताल जंघ (३६) ने काशी और पौरव राज्यों को ध्वंस किया। उसी समय बाहु का नव राज्य भी गिर गया। और वे अग्नि और्व के आश्रम में शरणापन्न हुए। वहीं पर यादवी रानी से सगर का जन्म हुआ। उसी आश्रम में बाहु की मृत्यु हुई[1]। अग्नि और्व हैहयों के परंपरागत शत्रु थे। उन्होंने सगर का पालन पोषण किया, और उन्हें उत्तम शिक्षा दी। समर्थ होने पर उन्होंने सगर को एक भारी सेना का स्वामी बना दिया।

दक्षिण कौशल का नया राजवंश—मूल सूर्य वंशी राजा अयुतायुस (भंग-स्वर—३५) ने इस राज्य की नींव डाली। ३६ वां राजा ऋतुपर्ण ३७ वां सुदास हुआ। यह गद्दी वर्तमान रामपुर, विलासपुर और सम्भलपुर के आसपास कहीं थीं। उसकी राजधानी रामपुर जिले में श्रीपुर थी[2]। इन्हीं ऋतुपर्ण के पास नैषध राजा नल ने आश्रय लिया था। ऋतुपर्ण का पुत्र सर्वकाम (३८) और उसका पुत्र मित्रस कल्माषपाद (३९) था।

---

१. मत्स्य १२, ४० तथा पद्म V ८, १४४। ब्रह्माण्ड ३। ४३। ८७

पौराणिक वंशावलियों में सगर को राम का पूर्वज, उनसे कोई २३ पीढ़ी ऊपर का कहा गया है। पर यह असम्भव और गलत है। सगर ने वितिहोत्र हैहय के प्रपौत्र सुप्रतीक को परास्त किया था (ब्रह्माण्ड-महाभारत) और काशी राज प्रतर्दन ने वीतिहोत्र को पराजित किया था। प्रतर्दन के पौत्र अलर्क थे। अलर्क को अगस्त की पत्नी लोपामुद्रा ने आशीर्वाद दिया था (हरिवंश) अगस्त ने रावण को जीतने के लिए राम को दण्ड कारण्य में शास्त्रास्म दिये थे। (बाल्मीकि) अतः अलर्क सुप्रतीक और सगर समकालीन हैं। सम्भवतः राम से एक पीढ़ी पूर्व।

२. रामायण में ऋतुपर्ण को भी अयोध्या का राजा बताया गया है। तथा दमयंती के काल्पनिक स्वयं वर में एक ही दिन में उसका दमयंती के पिता की राजधानी विदर्भ पहुंचना लिखा है, जो अयोध्या से कथापि सम्भव न था। श्रीपुर से ही सम्भव था। नल उत्तर पांचाल नरेश (३५) के सम्बन्धी थे। क्योंकि इनकी पुत्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२०—तीन सूर्य वंशी सम-सामयिक चक्रवर्ती

इस काल में तीन सूर्य वंशी चक्रवर्ती प्रसिद्ध राजा एक ही काल में हुए :— (१) हरिश्चन्द्र सार्व भौम (२) सगर चक्रवर्ती (३) दशरथ आजेय ।

हरिश्चन्द्र सार्वभौम—त्रिशंकु पुत्र हरिश्चन्द्र भारतीय इतिहास में अति प्रसिद्ध और विजयी सार्वभौम सम्राट् प्रसिद्ध हुए । इनकी सौ पात्नियां थीं[1] । ये बड़े योद्धा और विजेता थे । इन्होंने दिग्विजय कर के अश्वमेध यज्ञ किया । जिसमें ये महादानी प्रसिद्ध हो गए । इनके यज्ञ में पर्वत नारद उपस्थित थे[2] । हरिश्चन्द्र के प्रसिद्ध राजसूय के बाद आड़ीवक संग्राम हुआ[3] । इनका प्रताप वैनस्वत मनु और मान्धाता के

इन्द्र सेना उत्तर पांचाल नरेश के पुत्र मुद्गल को ब्याही थी । नल विदर्भ के यादव नरेश भीमरथ (३४) के दामाद थे । इसलिए दो समकालीनताओं से इनका काल पुष्ट होता है । वैदिक साहित्य में नल की पुत्री इन्द्रसेना को 'नलायनी' कहा गया है । मुद्गल भी वेदर्षि थे (महाभारत) नल श्रेष्ठ रथ संचालक तथा अश्वपारखी थे । उनकी पुत्री नलायनी ने भी एक बार अद्भुत कौशल से युद्ध में रथ चला कर पति की विजय दिलाई थी (म०भा० ।।।५७, ४६) नल मुद्गल के स्वसुर होने से उनसे एक पीढ़ी ऊंचे हैं । इधर मुद्गल के पुत्र वध्यश्व के पुत्र एवं कन्या दिवोदासं और अहल्या थी । अहल्या शरद्वन्त गौतम को ब्याही थी, जिसे उसने त्याग दिया था । पीछे राम ने अहल्या का उद्धार किया । (पति से स्वीकृत कराया) तिमिध्वज शम्बर के युद्ध में राम के पिता दशरथ ने दिवोदास की सहायता की थी इन्हीं दिवोदास के चचेरे भाई पैजवन के पुत्र प्रसिद्ध वैदिक विजयी सुदास थे । जिन्होंने वेद का विख्यात संग्राम दाश राज्य संग्राम जीता था । ऋतुपर्ण नल के समकालीन होने के कारण दिवोदास से चार पीढ़ी ऊपर है । इस प्रकार कल्माषपाद राम के समकालीन प्रमाणित होते हैं । परन्तु पौराणिक वंशावलि में कल्माषपाद के प्रपौत्र मूलक (४२) को राम से आठ पीढ़ी ऊंचा राम का पूर्व पुरुष माना है जो ठीक नहीं है । कल्माषपाद राम के समकालीन विश्वामित्र और वशिष्ठ के भी समकालीन हैं । रामायण में दशरथ का शम्बर को जीतना लिखा है, इधर वेद में दिवोदास शम्बर को जीतते हैं । वास्तव में शम्बर युद्ध में दोनों ने मिलाकर भाग लिया था । ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तकाल में पौराणिक सम्वाद को व सगर–हरिश्चन्द्र तथा दक्षिण कौशल वंश का पूरा हाल जाने बिना ही उनकी वंशावलियाँ मुख्य सूर्यवंश में मिलादी हैं ।

१. ऐतरेय ब्रा० ७ । १३ । सांख्यायन श्रौ० सू० १५ । १७
तस्यह शतंजाया वभूवुः । एतरेय ब्रा० ७ । १३ ।

२. एतरेय ब्रा० ८ । २१

३. हरि० । तीसरा भविष्य पर्व २–१८ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समान था। इन्हों ने सौभपुर बसाया। अश्वमेध में इन्हों ने विश्वामित्र को अपना पुरोहित बनाना चाहा था। परन्तु वशिष्ठ ने घोर विरोध किया। हरिश्चन्द्र भी वशिष्ठ के प्रभाव में आ गए। अतः नाराज होकर विश्वामित्र इस राज्य से हट कर पुष्कर चले गए। जहां उन्होंने कुछ काल एकांतवास किया। हरिश्चन्द्र ने सप्तद्वीप विजय कर सप्तद्वीपेश्वर सार्व भौम का पद पाया, तथा वशिष्ठ के नेतृत्व में अश्वमेध यज्ञ कर सम्राट् पद धारण किया[1]। हरिश्चन्द्र की पट्ट राज महिषी का नाम सत्यवती था। वह राजर्षि उशीनर की पुत्री थी। उसने इन्हें स्वयम्बर में बरा था[2]। उशीनर राज्य शिविपुर में था इसी से सत्यवती को शैब्या भी कहते थे[3]।

महान घटना--जिस काल हरिश्चन्द्र सार्वभौम का अश्वमेध यज्ञ हो रहा था। आर्यावर्त में एक भारी विग्रह उठ खड़ा हुआ। जमदग्निने अपनी पत्नी का दुराचारिणी होने के अभियोगमें अपने पुत्र परशुराम द्वारा उसका वध करा डाला, इस पर उसका साढू सार्वभौम सम्राट् सहस्त्रार्जुन अपनी पत्नी की प्रेरणा से आर्यावर्त में घुस आया और जमदग्नि के आश्रम को लूट कर उसमें आग लगा दी। इस से क्रुद्ध हो और पुराने बैर को याद कर तरुण जामदग्नि परशुराम ने अपने सम्बन्धी विश्वामित्र के पुत्र कान्यकुब्ज पति लौहि तथा सौर राज्यों की सहायता से कार्तवीर्य चक्रवर्ती सहस्त्रार्जुन को परास्त कर उसका बध कर डाला। जिस से परशुराम का आतंक-आर्यावर्त में और भारतवर्ष में फैल गया[4]। कार्तवीर्य सहस्त्रार्जुन उस समय बहुत वृद्ध हो चुका था। उस की आयु १०० वर्ष के लगभग हो चुकी थी। वह बयासी बरस गद्दी पर बैठ चुका था। उसकी राज्य सीमा मथुरा ही तक थी। वह सम्भवतः जमदग्नि को दण्ड देने क्रुद्ध हो-बिना ही भारी सैन्य ले आर्यावर्त में घुस आया था, तथा जमदग्नि राम के तेज से अज्ञात था। इसी से कान्यकुब्ज का हयदल लेकर राम जामदग्न्य ने अपने मौसा सहस्त्रार्जुन को आर्यावर्त में घेर लिया, और उसे मार कर उसके समूचे हयदल का बध कर डाला।

शुनः शेष का नरमेध--बड़ी आयु तक भी हरिश्चन्द्र को कोई पुत्र नहीं उत्पन्न हुआ। इस समय आर्यावर्त में उत्तराधिकार प्रथा होने से पुत्र का महात्म्य बहुत बढ़ गया था। तब हरिश्चन्द्र ने प्रतिज्ञा की-कि यदि मेरा पुत्र हुआ तो मैं वरुण को उस की बलि दूंगा। कुछ काल बाद पुत्र उत्पन्न हुआ। जिस का नाम रोहिताश्व रक्खा गया। अब प्रतिज्ञा पालन और पुत्र प्रेम के कारण राजा बड़े धर्म संकट में पड़ा।

---

१. महा भारत सभा पर्व० १२। १५
२. महा० वन पर्व० ७७। २८। २९
३. शिवि पुर नगर वर्तमान शेर कोट है जो झंग नगर के निकट है।
४. हरिवंश तीसरा भविष्य पर्व १-१८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह न संकल्प विमुख होना चाहता था, न पुत्र का बध कर यज्ञ कर सकता था। जब राजकुमार रोहिताश्व स्याना हो गया तो वशिष्ठ ने उसे समझा बुझा कर बन में भगा दिया। थोड़े दिनों में वह फिर लौट आया। तब राजा ने बलि की चर्चा चलाई। इस पर वशिष्ठ ने उसे फिर बन में भगा दिया। इस प्रकार सात बार राज कुमार वन से घर आया और हर बार यज्ञ प्रसंग चलने पर वशिष्ठ ने उसे भगा दिया। अब राजकुमार २२ वर्ष का हो चला। इस समय राजा को जलोदर का रोग हो गया। और इसका कारण समझा गया कि संकल्प छेदन से वरुणदेव का कोप हुआ है। अब यह विचार होने लगा कि कोई कुलीन आदमी अपना लड़का बेच दे तो उसी की बलि दी जाय। ढूंढने से सुयवस का पुत्र अजीगर्त भार्गव वेदर्षि ऐसा ही आदमी मिल गया। उसने सौ गाय लेकर अपना मझला लड़का शुनःशेप रोहित के हाथों बेच डाला। यह बालक विश्वामित्र की बहिन के कुल का था। इसलिए उसे बचाने के लिए विश्वामित्र ने अपने कुल के पचास जनों से कहा—कि उसके बदले अपने पुत्र की बलि दे दे। पर कोई राजी नहीं हुआ। तब उन्होंने उन पचासों कुटुम्बियों को दण्डकारण्य में निर्वासित कर दिया[1]। अब शुनःशेप को बचाने स्वयं हरिश्चन्द्र के यज्ञ में गए। अपास्य आंगिरस की प्रधानता में यह यज्ञ हो रहा था। कदाचित् बदनामी से बचने के लिए वशिष्ठ इस यज्ञ में प्रधान नहीं बने। इस लड़के को यज्ञयूप में बांधने को जब कोई राजी न हुआ तो अजीगर्त उसके पिता ने ही और सौ गाय लेकर उसे यूप से बांध दिया। जब उसे यूप से बांध दिया, अभिमन्त्रित कर दिया, मन्त्र पढ़ दिये, चारों ओर यज्ञाग्नि घुमा दी, तब कोई उसे काटने को राजी नहीं हुआ। तब उसके पिता अजीगर्त ने कहा—मुझे और सौ गाएँ दो तो मैं ही इसे काट दूंगा। तब उसे और सौ गाएँ दी गईं। परन्तु इसी समय विश्वामित्र ने आकर यह नरमेध रोक दिया[2]। अजीगर्त ने पुत्र को फिर लेना चाहा। पर शुनःशेप ने विश्वामित्र ही को अपना पिता माना। आगे शुनःशेप भी एक वेदर्षि हुआ[3]।

---

१. ऐतरेय ब्रा० ७।४ १९

२. एतरेय ब्रा० ७।३

३ पुराणों में हरिश्चन्द्र को अयोध्या का राजा कहा गया है, तथा पुराण और पार्जीटर के मत से यह वंश सूर्यवंश के २४ वें राजा सम्भूत के पीछे चलता है। परन्तु पीढ़ियों के हिसाब से हरिश्चन्द्र सूर्य वंश की ३८ वीं पीढ़ी का राजा है। इस समय अयोध्या में दशरथ राज्य कर रहे थे। पुराणों में तथा एतरेय ब्राह्मण में भी यह लिखा है कि हरिश्चन्द्र के शुनःशेप वाले नरमेध में विश्वामित्र और जमदग्नि दोनों उपस्थित हुए थे। विश्वामित्र आगे सुदास और राम के भी समकालीन हैं। विश्वामित्र और जमदग्नि की मित्रता तथा रिश्ता एवं शुनःशेप से उनका सम्बन्ध

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सगर चक्रवर्ती—सगर राज्य की यह नई गद्दी इस पीढ़ी में वाहु (३७) ने मध्य प्रदेश के उत्तर में कहीं स्थापित की थी। इसी समय जामदग्नि राम ने सहस्त्रार्जुन का वध कर डाला। इस पर अर्जुन के पुत्रों ने राम की अनुपस्थिति में फिर जमदग्नि के आश्रम में प्रवेश कर जमदग्नि को मार डाला और आश्रमध्वंस कर दिया। इस पर परशुराम ने हैहयों पर निरन्तर इक्कीस आक्रमण किए, उनके सब पुत्र–पौत्रों को ढूंढ-ढूंढ कर निर्दयता से वध कर समन्तकतीर्थ में उनके रक्त से पाँच कुण्ड भर कर पिता का तर्पण कर वैर साधा। इस लपेट में और भी राजे मारे गए। जामदग्नि राम का आतङ्क सर्वत्र फैल गया। कार्तवीर्य अर्जुन के बचे हुए पुत्र–पौत्र और बन्धु-बान्धव परशुराम के भय से हिमाद्रि के वन गहर में जा छिपे। भारत से हैहय वंश निश्शेष हो गया—यह समझ कर जामदग्नि राम ने अश्वमेध यज्ञ किया। परन्तु उसने हैहयों के साम्राज्य का सम्राट् होना स्वीकार नहीं किया। और शस्त्र त्याग कोकण में जा एकान्तवास किया। पीछे पूर्वी घाट के पास महेन्द्र पर्वत पर जा वहाँ उन्होंने अपना उपनिवेश बना शेष जीवन वहीं व्यतीत किया।

जामदग्नि राम के चले जाने पर हैहय वंशी तालजंघ और उसके पुत्र वीतिहोत्र माहिष्मती में आए। और अपने राज्य और बल का नए सिरे से संगठन किया[1]। और आर्यावर्त पर भीषण आक्रमण किया। इस आक्रमण में तालजंघों के साथ यवन–पारद काम्बोज और पल्हव–किरात ये पाँच गण भी सम्मिलित थे। इस आक्रमण में वृद्ध वाहु का राज्य भी ध्वंस हो गया। वाहु भाग कर अग्नि और्व के आश्रम में शरणापन्न हुए। दुःख और संताप से वाहु की वहीं मृत्यु हो गई। वाहु की पत्नि ने अग्नि प्रवेश करना चाहा, तो अग्निऔर्व ने उसे समझा बुझा कर रोका। फिर और्व के आश्रम में सगर का जन्म हुआ। अग्नि और्व ने सगर के सब जातकर्म संस्कार किए। और बड़े होने पर शस्त्र शास्त्र की उन्हें समुचित शिक्षा दी। इसके बाद

ऋग्वेद के तीसरे मण्डल से भी प्रमाणित है। ऋग्वेद के तीसरे मण्डल में इनके पिता गाथिन् के सूक्त हैं, तथा इनका सुदास का पुरोहित होना भी ऋग्वेद से प्रमाणित है। वहाँ भी कुशिक उनके पितामह हैं। सुदास और राम समकालीन थे, यह प्रमाणित है। ऐसी दशा में यदि पुराणों में वर्णित या पार्जीटर सम्मत मत मान लिया जाय और हरिश्चन्द्र को राम का पूर्वज स्वीकार कर लिया जाय तो विश्वामित्र का जीवन काल सूर्यवंशी २० पीढ़ियों के समान हो जायगा। तथा सूर्य वंश में ये बारह पीढ़ियां जुड़ जाने से राम की सुदास से समकालीनता नष्ट हो जायगी। जो दृढ़ प्रमाणों पर आधारित है। अतः हरिश्चन्द्र राम के पूर्व पुरुष नहीं, उनके पिता दशरथ के समकालीन हैं।

१. ब्रह्माण्ड पुराण ३।४७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सगर जामदग्न्य राम के पास महेन्द्र गिरि पर गए—वहां उन्होंने उनसे आग्नेयास्त्र तथा महा रौद्रास्त्र सीखे। पीछे अग्निऔर्व ने सगर को उनके और अपने वंश के चिरशत्रु हैहयों का नाश करने को उकसाया, तथा उन्हें एक भारी सेना का अधिपति बना दिया।

सगर साहसी, वीर, प्रतिभाशाली और प्रबन्धकर्ता थे। इस समय तक तालजंघ मर चुके थे, और हैहय–वीतिहोत्र को काशी नरेश प्रतर्दन परास्त कर चुके थे। उनके उत्तराधिकारी अनन्त–दुर्जय और सुप्रतीक थे। इनके पास साठ हज़ार प्रचण्ड अश्ववाहिनी थी। इसकी सहायता से इन्होंने अनेक दिग्विजय कीं, अनेक यज्ञ किए[1]।

दिग्विजय और राज्य विस्तार—अपनी प्रचण्ड सैन्य ले, और हैहयों का वैर स्मरण कर पहिले उन्होंने मध्यदेश विजय कर अपने पिता के राज्य का उद्धार किया। फिर वह दक्षिण की ओर बढ़े। हैहयों के साथ उनका विकट संग्राम हुआ। जिसमें उन्होंने अनेक राजाओं सहित हैहयों का वध किया, तथा महिष्मती पुरी को जला कर खाक कर दिया। तथा भागते हुए राजाओं का आग्नेयास्त्र से संहार किया[2]।

हैहयों का विनाश कर सगर उत्तरापथ की ओर बढ़े। उन्होंने क्रमशः यवन–पारद–काम्बोज किरात–पल्हवों के गणों का, जो उनके चिरशत्रु थे और हैहयों के सहायक मित्र थे, आमूल नाश कर दिया। उनके गणराज्य नष्ट कर डाले। इस पर वशिष्ठ ने बीच में पड़ कर काम्बोज आदि से सगर की सन्धि करा दी। सगर ने उन्हें प्राण दान तो दिया, पर उन्हें सस्कार हीन करके दक्षिणारण्य में आर्यावर्त से निष्कासित कर दिया। यवन, जो आर्यावर्त के पच्छिमोत्तर सीमाओं पर रहते थे, समुद्र पार कर योरोप पहुँच गए[3]।

अब वह विदर्भ की ओर बढ़ा, जहां यादवों का राज्य था[4]। वहां के राजा ने उसका सत्कार कर उसे अपनी सुन्दरी कन्या सुकेशिनी व्याह दी। वहां से वह सूरसेनों की मथुरा में आया। ये उसके मामा थे। उनसे वह सत्कृत हुआ। इस प्रकार सब राजाओं को जीत, उन्हें करद बना वह अपनी राजधानी में लौटा। यहां लौट कर उसने एक और विवाह अरिष्टनेमि की पुत्री सुमति से किया। अब उसने

---

१. ब्रह्माण्ड III ४८, ९, १०। महाभारत १७६, ८, ८३१।
२. वायु ८९, १२१, ४३। हरिवंश ६३, ७६० से १४–७८४ तक। विष्णु IV ३, १५, २१। महाभारत
३. देखिए—इण्डिया इन ग्रीस श्री पीकोक कृत।
४. पार्जीटर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अश्वमेध रचा[1]। जिसमें यज्ञ का घोड़ा पूर्व दक्षिण समुद्र की वेला के निकट कहीं लोप हो गया। यहीं इस घोड़े के विवाद को लेकर उसका कपिल ऋषि से विग्रह हो गया। जहां उसके साठ सहस्त्र योद्धा खेत रहे[2]।

सगर ने तीस बरस राज्य किया। उसके चार वंश कर पुत्र हुए—(१) असमंजा या वहिर्केतु, (२) सुकेतु, (३) धर्मरत, (४) शूरपंचवन। असमंजा को अनाचार दोष के कारण सगर ने निर्वासित कर दिया। असमंजा का पुत्र अंशुमान उसका उत्तराधिकारी हुआ। अंशुमान की पत्नी पितृकन्या यशोदा थी। उसका पुत्र दिलीप (प्रथम) हुआ। दिलीप का पुत्र भगीरथ[3]। सगर के यज्ञीय घोड़े की रक्षा अंशुमान ही कर रहा था[4]। उसने बत्तीस वर्ष हिमालय के अंचल से गंगा को मैदान में उतारने का प्रयत्न किया[5]। उसका उत्तराधिकारी दिलीप हुआ। जिसने तीस वर्ष राज्य किया। तथा गंगावतरण की चेष्टा करता रहा। दिलीप का पुत्र प्रसिद्ध भगीरथ हुआ, जो भारतीय इतिहास का अति प्रसिद्ध पुरुष था। भगीरथ ने ही अपने दादा के काम को पूरा किया। तथा पुण्य सलिला गंगा की धारा को मैदान में ला उतारा। और गंगा आर्यावर्त में बहने लगी। भगीरथ के नाम पर गंगा को भागीरथी भी कहते हैं[6]। भगीरथ ने राजसूय और अश्वमेध यज्ञ किए। इसके बाद इस वंश का महत्त्व समाप्त हो गया।

गंगावतरण

दशरथ आजेय—मान्धाता का पौत्र शिशु त्रसदस्यु अयोध्या की गद्दी पर बैठा। उसके चचा अम्बरीष और मुचकुन्द उसके वली हुए। त्रसदस्यु ने ७० वर्ष राज्य किया। गन्धर्वों का बल उसने उन पर बारम्बार चढ़ाई करके चूर्ण कर दिया। त्रसदस्यु को पौरव भी कहा गया है। इसका कारण यह है कि पौरव राज्य भंग करके मान्धाता ने अपने राज्य में मिला लिया था। उसका उत्तराधिकारी त्रसदस्यु उसका भी स्वामी हो गया था। पीछे वह राज्य दुष्यन्त को लौटा दिया गया, और दुष्यन्त ने उसे पौरव भरत को लौटा दिया। इस प्रकार तीन पीढ़ी बाद पौरव राज्य फिर पौरवों के अधिकार में आ गया, और भरत उसकी २३ वीं पीढ़ी का राजा हुआ।

---

१. वायु पुराण २८। १६५
२. वाल्मीकीय वाल० ३८। २७
३. मत्स्य पुराण १५, १८, १९।
४. वाल्मीकीय वाल० ३६। ६
५. वाल्मीकीय वाल० ३९। ४। ५
६. वायु ८८। १६९।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

त्रसदस्यु के चचा अम्बरीष जैसे वीर थे—वैसे ही धर्मात्मा भी थे। उनके प्रबन्ध काल में भूमि तापत्रय विवर्जित रही[1]। आगे अम्बरीष का कुल याजक हो गया। जिसमें विरूप ऋषि हुए। त्रसदस्यु के पीछे श्रुत (२७) तक इस वंश में कोई महत्त्वपूर्ण पुरुष नहीं हुआ। रुरुक शान्ति प्रिय रहे, तथा वृक भयानक। जब तालजंघ ने आर्यावर्त पर अभियान किया तब उसे अयोध्या आने का साहस नहीं हुआ। इसके बाद २८ वीं पीढ़ी में नाभाग बड़े राजा हुए। नाभाग के पुत्र अम्बरीष (द्वितीय) हुए, उनके पुत्र सिन्धुद्वीप (३०) वैदिक ऋषि हुए[2]। इनके बाद दिलीप खटवांग (३४) तक कोई महत्ता न रही। दिलीप का पौत्र रघु महा सेनापति और वंश कर था। रघु की सहायता से दिलीप ने अनेक यज्ञ किए। अश्वमेध भी किया। रघु प्रतापी नरेश थे। उनके पीछे वाले राजे रघुवंशी कहाए। रघु के पुत्र अज का विवाह वैदर्भी इन्दुमती से हुआ। इन्दुमती की अकाल मृत्यु से ७ वर्ष संतप्त रह अज ने प्राण विसर्जन किए। इन्हीं अज–इन्दुमती से दशरथ का जन्म हुआ[3]। दशरथ स्वाध्यायवान्, शुचि और इन्द्र सखा था[4]। दशरथ की तीन पत्नियाँ थीं। कौशल्या राजमहिषी दक्षिण कोशल नरेश भानुमन्त की पुत्री थी। सुमित्रा मगधपति की कन्या थी। और वावाता कैकेयी उत्तरी पश्चिमी आनव नरेश केकय की पुत्री थी। इस प्रकार कौशल्या और सुमित्रा तो दशरथ के आधीनस्थ राजाओं की बेटियाँ थीं परन्तु कैकेयी एक बड़े स्वतन्त्र राजा की पुत्री थी[5]।

दशरथ ने सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, मत्स्य–काशी, दक्षिण कौशल, मगध, अंगवंग, कलिंग और द्रविड़ राज्य जीते। तथा अश्वमेध यज्ञ किया[6]। गिरिव्रज के प्रसिद्ध युद्ध में उत्तर पांचाली दिवोदास की इन्होंने सहायता की थी। वैजयन्ती पुरी के कुलीतर वंशी तिमिध्वज शम्बर असुर को, जो रावण का साढ़ू था, इन्होंने परास्त

---

१. वायु ८८। १७२

२ ऋग्वेद १०। ९ इनके सूक्त हैं।

३. ब्रह्माण्ड। मत्स्य। वायु ७३। ४०–४३। पार्जीटर A. I. H. T. पृष्ठ ९२, ९४।

४. महाभारत–वन पर्व २७५। ६।

५. रघुवंश ९। १७

६. यावदावतर्तते चक्रं तावतो में वसुन्धरा।
प्राच्याश्च सिन्धु सौवीराः सुरसा वर्तयस्तथा।
वंगांग मगधा देशाः समृद्धाः काशि कोशलाः।
पृथिव्या सर्वं राजोऽस्मि सम्राडस्मि महीक्षिताम्।
वाल्मीकि, उत्तरपाठ अयोध्या १३। २१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया था[१]। अंग नरेश लोमपाद इनके मित्र थे। उन्हें इन्होंने अपनी पुत्री शान्ता गोद दी थी। अपने प्रबल पराक्रम के कारण दशरथ का एक नाम राजसिंह भी विख्यात हो गया था[२]।

तिमिध्वज शम्बर बड़ा भारी असुर था। इसकी राजधानी वैजयन्तपुरी दक्षिण में दण्डकारण्य के निकट थी। इस युद्ध के कारण दशरथ को इन्द्रसखा भी कहने लगे थे। सम्भवतः उसी समय दशरथ की मैत्री जटायु गरुड़ से हुई जिसकी रियासत पंचवटी के निकट थी। इस युद्ध में जिन राजर्षियों का उल्लेख है, सम्भवतः उनमें दिवोदास आदि हों। तिमिध्वज राक्षस राज रावण का साढ़ू था। उसकी पत्नी मायावती बड़ी सुन्दर थी। उसे रावण ने हरण करने की चेष्टा की थी, पर शम्बर ने रावण को पकड़ कर बन्दी कर लिया था। पीछे श्वसुर मय के कहने से छोड़ा[३]।

केकयी के पिता केकय राज का ठीक नाम रामायण में नहीं है। पर केकयी के भाई का नाम युधाजित है। उसे अश्वपति भी कहा है। अश्वपति तो केकयों की उपाधि थी। वही भरत को लेने अयोध्या गया था[४]। केकय राज की राजधानी गिरिव्रज या राजगृह थी[५]। कनिंघम के अनुसार वर्तमान जलालपुर ही का नाम गिरिव्रज था। इसका पहिले गिरजक नाम प्रसिद्ध था। दशरथ की सन्तानों में एक पुत्री शान्ता और चार पुत्र हुए—राम कौशल्या से, लक्ष्मण-शत्रुघ्न सुमित्रा से तथा भरत केकयी से। दशरथ की मृत्यु के समय राम की आयु १७ वा १८ वर्ष की थी।

---

१. पुरा देवासुरे युद्धे युद्ध सञ्जः पतिस्तव।
याचितो देवराजे न युद्धं कर्तुमितो गतः।
दिश मास्थाय कैकेयि दक्षिणां दण्डिकां प्रति।
वैजयन्तमिति ख्यातं पुरं यत्र तिमिध्वजः।
सशम्बर इति ख्यातो वहुमायो महासुरः।
ददौ शक्राय संग्रामं देव संघैर्विनिर्जितः।
तस्मिन्नइति संग्रामे राजा शस्त्र परिक्षतः।
विजित्याभ्या गतो देवि त्वयोपचरितः स्वयम्।
व्रण संरोपणं चास्य तत्र देवित्वया कृतम्।
वाल्मीकि अयो० ११।११

२. बालकाण्ड ९।११।

३. देखिए—शिवपुराण ६।१३। और रामायण उत्तर० अ० १२।

४. ३० रा० अयो० ७३।५।

५. ३० रा० अयो० १३।२२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शंवर बध

अनार्यों के राज्य—जिस समय दशरथ आजेय अयोध्या की गद्दी पर आर्यों का प्रमुख राजा उपस्थित था। उस समय आर्यों के व्यापक विस्तार को रोकने के लिए अनेक भीतरी-बाहरी शक्तियां आर्यावर्त के चारों ओर फैली हुई थीं। इस काल भारत में प्रबल प्रतापी हैहय कार्तवीर्य अर्जुन था, जिसे जामदग्नेय राम ने वध किया। जिससे मध्य देश में आर्यों के लिए राह खुल गई। जामदग्नेय राम के बाद यद्यपि एक बार फिर हैहयों ने संगठन किया, पर सगर ने उनका समूल उन्मूलन कर दिया। और मध्य भारत में आर्यों का प्रसार होने लगा।

परन्तु सुदूर दक्षिण में अभी भारी बाधाऐं थीं। वहां अभी भी बड़े २ असुर राज्य थे। जिनके नेता, पिप्रु, सुश्ना, शम्वर, अर्बुद, वभ्र, नमुचि, करंज, परनय, नंगृद, बल, पणि, वृषय, व्यंस, अहि, रोहिन, कुप्व, तुग्र और त्रैतन आदि थे[1]। अनेक अनार्य जातियाँ भी यहां फैली हुई थी। जिनके राज्य आर्यावर्त की सीमाओं को छू जाते थे। इनमें महिष, कपि, नाग मृग, ऋक्ष, व्रात्य, आर्जिक, राक्षस, दैत्य, दानव कीकट, महावृष, बाल्हीक, मूजवन आदि जातियां प्रमुख थी। इनमें से कुछ जातियां यातुधान-दस्यु और सिम्यु भी कहीं जाती थी। मैसूर प्रान्त महिष मण्डल कहाता था। जहां आर्यों की विरोधिनी महषि जाति रहती थी। कपि या बानरों के राज्य किष्किन्धा में थे,[2] यह स्थान दक्षिण में हम्पी-विजयनगर के निकट था। उन दिनों

---

१. ऋग्वेद प्रथम मण्डल

२. हम्पी कन्नड़ भाषा में पम्पा को कहते हैं। यह स्थान तुङ्गभद्रा के दक्षिण तट पर स्थित है। जो बेल्लारी जिले के होस्येट तालुके में पड़ता है। होस्येट यहां से ९ मील है। हम्पी में द्रुपाक्ष शिव का मन्दिर है जिसे पम्पापति के नाम से भी पुकारा जाता है। यही विरूपाक्ष शंकर विजयनगर के राजाओं के इष्टदेव थे और यह विजयनगर का प्राचीन और पवित्रतम मन्दिर था। तालीकोट की लड़ाई में विजयनगर के ध्वंस के साथ और सब मन्दिर तो ध्वंस हो गए लेकिन यह मन्दिर चमत्कारिक रूप में बच गया। इस मन्दिर के आसपास का दृश्य बहुत प्रभावशाली है। एक ओर पर्वत की ऊंची चट्टानें हैं और दूसरी ओर निचले मैदान में वृक्ष और घास की हरियाली है। पास ही तुंगभद्रा नदी बहती है। तुंगभद्रा नदी का ही दूसरा नाम पम्पा है। विरूयाक्ष का यह मन्दिर ऋष्यमूक पर्वत पर है और चक्रतीर्थ से सम्बन्धित है। इस पर्वत की तीन दिशाओं में तुंगभद्रा नदी बहती है। इसी के उत्तरमें सीता सरोवर है और एक छोटी गुफा भी है। जिसके विषय में कहा जाता है कि रावण जब सीता को हर ले जा रहा था तो यहीं पर सीता ने अपने आभूषण सुग्रीव और हनुमान के सामने फेंके थे। विरूयाक्ष के लगभग चार मील उत्तर ओर माल्यवान पर्वत है। यही वह प्रश्रयवंग गिरि है जहाँ राम–लक्ष्मण सुग्रीव की मित्रता के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कपियों की राजधानी किष्किन्धा बहुत सम्पन्न थी। और वहाँ का स्वामी बालि अजेय योद्धा था। नागों में शेष, वासुकी, तक्षक, धृतराष्ट्र आदि प्रमुख राजवंश थे, जो दक्षिण के द्वीप समूहों में तथा समुद्री तट प्रान्तों में राज्य करते थे। सम्भवतः सिन्ध में वासुकि नाग का उन दिनों राज्य था। वहां से वैविलोन तक भारतीय व्यापार होता था। नागों के वैवाहिक सम्बन्ध आर्यों और अनार्यों में समान मान से होते थे। मानव युवनाश्व और हर्यश्व ने अपनी बहिन धर्मवर्णा नाग को ब्याही थी। उसकी पांच कन्याओं का विवाह हर्यश्व के दत्तक पुत्र यदु के साथ हुआ। आस्तीक उन्हीं का पुत्र था।

व्रात्य वहिष्कृत, क्रिया रहित आर्य थे। महावृष, मूंजवन, बाल्हीक, पंजाब, जन स्थान,पच्छिमी पंजाब, पूर्वी अफगानिस्तान तक फैले हुए थे। फरावत रावी तट पर आजिक भारत के उत्तर पच्छिम में रहते थे।

दक्षिणाराण्य में यद्यपि आर्यों के वहिस्कृत जन ही जाते थे, परन्तु वहां कुछ आर्य जन-स्वेच्छा से भी बस गए थे। अगस्त मुनि ने वहां आर्यों का एक प्रबल उपनिवेश कायम किया था। शरभंग ऋषि तथा परशुराम जामदग्नेय भी वहां थे। जन स्थान में बहुत ऋषि आश्रम बनाकर रहते थे। पुलस्त्य के वंशज तो वहां थे ही। इस प्रकार इस काल में आर्यावर्त से सुदूर दक्षिण के घनिष्ठ सम्बन्ध हो चुके थे। ये सभी ऋषि मुनि बहिष्कृत आर्य जनों की भारी सहायता करते थे।

आर्यावर्त की सीमा पर आर्यावर्त के बाहर भरत खण्ड के पश्चिमोत्तर खण्ड में मनुर्भरतों के, तथा पूर्व में अनार्य जनों के बड़े २ जनपद और राज्य थे। इनमें परोदास, पक्थ, मलान, शिव, विशात, कवम, युध्यामधि, अज, सिगरु और चक्षु बड़े राजा थे। दानव वर्चिन की सैन्यशक्ति एक लाख थी। सिम्बुओं के गण भी बड़े प्रबल थे। प्रिव भी एक लाख सेना का स्वामी था। पूर्व में भेद महाबल वान और धनाढ्य अनार्य सम्राट् था।

आर्यावर्त की पच्छिमोत्तर सीमा पर तथा दक्षिण के मध्य भाग में यदुओं,

---

बाद चार मास ठहरे थे। पार्जीटर का मत है कि प्रश्रमणा तो पर्वत की अनेक श्रेणियों का नाम है और माल्यवन एक चोटी का। विजयनगर के खण्डहरों के लगभग तीन मील पर जो अनेगुण्डी नाम का कस्बा है वही प्राचीन किष्किन्धा है। किष्किन्धा से लगभग दो मील दक्षिण पश्चिम पम्पा सरोवर है। इससे कुछ उत्तर पश्चिम में अंजनी पर्वत है जो हनुमान का जन्मस्थान है। किष्किन्धा से ६० मील पर शवरी का जन्मस्थान है। और वहीं पर मातंग ऋषि का आश्रम था। इस प्रकार रामायण के किष्किन्धा काण्ड में वर्णित सभी ऐतिहासिक स्थान हम्पी के आसपास है। पम्पा सरोवर ऋष्यमूक पर्वत, मातंग पर्वत, माल्यवान पर्वत और वह गुफ़ा जिसमें सुग्रीव ने सीता के अलङ्कार पाए थे यहां पर हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुर्वसुओं, अनुयों और द्रुह्यों के राज्य बढ़ते ही जाते थे। इन्होंने अनार्यों से संगठन कर लिए थे।

सिन्ध, पंजाब के बहुत से भागों में अभी भी भरतों के प्राचीन राज्य कायम थे। इस प्रकार आर्यों की बढ़ती हुई साम्राज्य लिप्सा में बराबर बाधा पड़ती थी। जब जब आर्य राजे राजसूय करते और दिग्विजय यात्रा करते, तब २ उन्हें बड़ी २ बाधाओं का सामना करना पड़ता। इस समय तक आर्यों के सोलह सार्वभौम चक्रवर्ती महाराज हो चुके थे। और अब सभी राजे चक्रवर्ती सम्राट होने की चाह रखते थे। इसलिए पड़ौस के बड़े २ राजा उनकी आंखों में शूल होकर चुभ रहे थे।

शंबर रथीतर—इनमें सबसे प्रबल असुर राजा शम्बर था। इसके सौ पत्थर के दुर्ग थे। तथा इसका सम्पूर्ण दक्षिण भारत में आतंक था। इसकी राजधानी वैजयन्त पुरी बड़ी सम्पन्न थी। यह नगरी दण्डकारण्य के निकट ही कहीं थी। उसका मित्र कुवय असुर भी बड़ा विकट था। इसकी राजधानी सीफा नदी के निकट कहीं थी।

दिवोदास पांचाल—इन्हीं दिनों रावी नदी के दोनों किनारों पर उत्तर पांचाल राज्य था, जिसे अजमीढ़ पौरव के दूसरे के पुत्र सुशान्ति ने स्थापित किया था। इस समय इस राज्य का अधिपति दिवोदास था। यह वंश तृत्सु भी कहा गया है, जो श्वेत वस्त्र धारण करता था, सुशान्ति के पौत्र तृक्ष थे, उनके पुत्र भरत और भूमश्व हुए। भरत के पौत्र सृंजय के पुत्र प्रस्तौक च्यवन पिंजवन और सहदेव हुए। पिंजवन प्रचण्ड योद्धा थे। भूम्यश्व के पुत्र मुद्गल और कापिल्य थे। मुद्गल प्रसिद्ध निषध नरेश नल के दामाद थे। राजा थे और वेदर्षि थे। दिवोदास मुद्गल के पुत्र वध्यनश्व के पुत्र थे। इनकी बहिन अहल्या थी, जो शरद्वन्त गौतमात्मज को ब्याही थी। जिन्हें राम ने पवित्र किया।

शम्बर संग्राम—दक्षिण के इस कंटक को दूर करने के लिए देवेन्द्र इन्द्र भी उत्सुक था। उस काल में सिन्ध पर देवेन्द्र का ही अधिकार था। अतः उस ने पांचाल पति दिवोदास को शम्बर पर अभियान करने को उकसाया। दिवोदास की इन्द्र ने पूरी सहायता की। वह भारीदेव सेना लेकर युद्ध क्षेत्र में आया। इन्द्र और दिवोदास की सहायतार्थ दशरथ आजेय ने भी युद्ध में भाग लिया। युद्ध सम्भवतः दीर्घ काल तक चला। शम्बर की सेना में दस हजार रथ और साठ हजार योद्धा थे। इस के अतिरिक्त उसके बंधु बांधव और सेनापतियों में ह्रष्टरोमा-महाकाय-सिंह दंष्ट्र, प्रकम्पन, तन्तु कच्छ, दुरारोह, सुभाय, वज्र पंजर, प्रमथन, विकटात्त आदि पराक्रमी छत्तीस छत्रधारी सरदार उसके झण्डे के नीचे लगे थे। इस असुर सेना का साम्मुख्य पांचालपति दिवोदास और महाकोशल के स्वामी राजसिंह आर्येन्द्र दशरथ आजेय तथा देवराट् इन्द्र की संयुक्त सेना ने किया था। दिवोदास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की सेना में देव–नाग–गन्धर्व–आदित्य सभी जुटे थे। उसकी सेना में अनेक अर्धरथ, पूर्णरथ, द्विरथ और पञ्चरथ योद्धा थे। यह युद्ध कई वर्षों तक चला। अन्ततः इन्द्र ने असुर के सौ किले तोड़ कर उसकी राजधानी वैजयन्त पुरी को ध्वस्त कर दिया, तथा दिवोदास और दशरथ ने शम्बर का सम्मुख समर में बध किया। शम्बर के वध करने पर दक्षिण की बहुत भारी बाधा दूर हो गई। कार्तवीर्य अर्जुन और शम्बर के निधन से आर्यों के लिए सुदूर दक्षिण का आसमुद्र पथ खुल गया[1]।

———

२२—सुदास का दाशराज संग्राम

संग्राम की पृष्ट भूमि—परन्तु इस शंवर संग्राम में जयः प्राप्त करके भी उत्तर-पांचाल राज्य की कामना पूरी नहीं हुई। पांचालों का यह राज्य परुष्णी (रावी) नदी के दोनों तीरों पर था। इस समय तक सम्भवतः दिवोदास वृद्ध हो चले थे। उन्हों ने अपने कुटुम्बी भाई पिजवन के पुत्र सुदास को गोद लिया। सुदास साहसी तरुण था। इन्द्र की सम्पति से दिवोदास ने उसे उत्तराधिकारी मान उत्तर पाँचाल का राजा बना दिया। इन्द्र ही की सम्मत्ति से वशिष्ठ त्रशंकु को छोड़ कर सुदास के पुरोहित और मन्त्री बन गए। वशिष्ठ ने इन्हें सुझाया कि उस के राज्य को चारों ओर से ययाति पुत्रों के राज्य घेरते आ रहे हैं। तथा असुरों और अनार्यों के सम्पर्क से वे सशक्त होते आ रहे हैं। वशिष्ठ और इन्द्र की सम्मत्ति से सुदास युद्ध को सन्नद्ध हो गया।

ययाति ने अपने पुत्रों को जो सीमाएं दी थीं, उन का उल्लंघन कर उन के उत्तराधिकारी बढ़ते आ रहे थे। इन कारणों से दाशराज महा संग्राम की

यह वंश वृक्ष ऋग्वेद के आधार पर है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में इस वंश का वर्णन है। (५३–६–१०) ५१। ५। ६) वैदिक ऋषि भरद्वाज ने छटे मण्डल में अपनी ऋचाओं में दिवोदास, प्रस्त्रोक, पिजवन तथा अभ्यावर्तिन धायमान के दान की प्रशंसा की है। हरिवंश के अनुसार मुद्गल–सृंजय, बृहदिषु–किमिलाश और जवीनर का बसाया पांचाल देश था। इस से अनुमान होता है कि यह राज्य मुद्गल–कांपिल्प–प्रस्त्रोक पिजवन और सहदेव में पांच खण्डों में विभक्त हो गया था।

१. वायु ९२। ६७। म० भा० XIII ३०, १९६३। म० भा० I १३०, ५०७२, V १६५, ५७६८, वायु ९९, २०१५; मत्स्य ५० ८, १२, ह० वंश ३२, १७८४, १। विष्णु IV ११६, ७८। ऐतरेय ब्रा० VIII ४, २१। ऋग्वेद १३. ३३ १९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमिका बंधी। इस युद्ध में एक ओर यदु तुर्वशु–अनु और द्रुह्य के वंशधर थे। इन नाहुषों की सहायताथ मनुर्भरतों के कई राजा और बहुत से अनार्य राजे एकत्र हुए थे। इनके अतिरिक्त नाहुषों के झण्डे के नीचे भार्गव–परोदास–पक्थ भलान, आलन शिव, विशात, कवम, युध्यामधि अज सिगरू और चक्षु आए थे। दानव वर्चिन अपने एक लाख दानवों को लेकर आया था। बहुत से सिम्युजाति के मुखिया भी आए थे। केवल पौरवों ने इस संग्राम में भाग नहीं लिया था। दानव पति वर्चिन ही इस संयुक्त सेना का महा सेना पति था।

सुदास की सहायता को इन्द्र आदि अनेक राजा आए थे। इस तुमुल संग्राम में नाहुषों ने रावी नदी को दो भागों में विभक्त करके उसे पार करने की चेष्टा की थी। पर सुदास ने तत्काल धावा बोल दिया। जिस से दबाव में पड़ कर नाहुषों की बहुत सी सेना नदी में डूब मरी। कवष और द्रुह्य वंशी भी सभी डूब मरे। अनु और द्रुह्यों के छयासठ सेना नायक और ६ हजार वीर सेनानी खेत रहे। राजा वर्चिन के एक लाख पांच सौ सैनिक मारे गए। इस युद्ध में सात दुर्ग सुदास के हाथ लगे। युध्यामधि को उस ने युद्ध स्थल में बध किया। अज–सिगरु और चक्षु ने आधीनता स्वीकार कर ली। गंगु सर्वथा परास्त हो गए। तुर्वश और याह्व का अहंकार चूर्ण हो गया। कुछ नाहुषों ने कर देना स्वीकार कर छुट्टी पाई। तुर्वश–परोदास–भृगु और द्रुह्यों ने आधीनता स्वीकार कर ली। इस युद्ध में इक्कीस जाति के वैकर्ण परास्त हुए। सुदास ने शत्रुओं के सात दुर्ग और जीती हुई सामग्री त्रस्यु को दे दी। प्रिव के पचास हजार मनुष्य मारे गए। इस युद्ध में धनुष बाण, खड़ग, ढाल, कवच, शिला क्षेपक और अग्नास्त्रों का प्रयोग हुआ। बरछे और भाले भी काम में लाए गए। निशित बाण चलाए गए। इस युद्ध को जय करके सुदास ने पूर्व की ओर बढ़ कर भेद से युद्ध किया। भेद के साथ अज–शिग्नु और पक्थों ने यमुना के कछार में सुदास का सामना किया। परन्तु पराजित हुए। भेद का भारी खजाना लूट लिया गया और किले छीन लिए गए। युद्ध की समाप्ति पर विजयोत्सव हुआ। जिस में पराशर, वशिष्ठ और सत्य यात को बहुत धन दिया गया। देववात अभ्यावर्तिन चायमान ने यव्यावती नदी पर वृचीनवों को हराया। तथा सृन्जय को तुर्वशों का देश दिया गया। चाय मान ने बीस घोड़े तथा दासियां भरद्वाज को दीं। यह चायमान मनुर्भरतों में पृथु वंशी थे। दिवोदास ने भी भरद्वाज को धनी बना दिया। सृन्जय के पुत्रों ने भी भरद्वाज को दान मान से सत्कृत किया। इस प्रकार यह उस काल का सब से बड़ा युद्ध समाप्त हुआ। जिस का भारी सांस्कृतिक प्रभाव आर्यावर्त पर पड़ा[1]।

---

१. ऋग्वेद–मं ७ सूक्त १८। १९,३। ३३, ३५। १९, ८। ९६ २ ३।
तथा मं–८। सू० ९१, ९२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वशिष्ठ और विश्वामित्र के विग्रह—वशिष्ठ ने इस युद्ध में सुदास की बहुत सहायता की। सुदास ने भी उन्हें बहुत धन–गौ–दान दिया। बाद में सुदास ने यज्ञ करना चाहा। इस सम्बन्ध में वशिष्ठ से उनका मनोमालिन्य हो गया. तब सुदास ने विश्वामित्र को यज्ञ करने बुला लिया। यहां वशिष्ठ पुत्र शक्ति ने विश्वामित्र से यज्ञ सम्बन्धी प्रश्न करके विश्वामित्र को निरुत्तर कर दिया। तब विश्वामित्र ने सुदास से कह कर शक्ति को जीवित जलवा दिया। इस घटना से संतप्त हो वशिष्ठ सुदास को छोड़ संवर्ण पौरव के यहां चले गए। संवर्ण को सुदास ने पराजित किया था। अब वशिष्ठ ने संवर्ण को उकसा कर सुदास पर चढ़ाई करा दी। इस युद्ध में सुदास मारा गया। इसके बाद वशिष्ठ दक्षिण कोशल नरेश कल्माषपाद के पुरोहित जा बने, वहां भी विश्वामित्र ने किसी राक्षस को राजा का मित्र बना—उसके द्वारा वशिष्ठ के शेष सब पुत्रों को मरवा डाला।

इसके बाद वशिष्ठ दशरथ के यहां चले आए और उनके पुरोहित हो गए। अब इनके वंश में एकमात्र उनका पौत्र पराशर बचा था[1]।

———

रावण–जगदीश्वर

जिन दिनों आर्यों की सैंतीसवीं पीढ़ी समाप्त हो रही थी—एक तेजस्वी और तरुण मेधावी आस्ट्रेलिया महाद्वीप से अपने साहसिक वीर साथियों सहित उत्तर पश्चिमी द्वीप समूहों को जय करता हुआ स्वर्ण लंका की ओर बढ़ा। उसने भारत के समस्त दक्षिणी द्वीप समूहों [अंग द्वीप (सुमात्रा), यवद्वीप (जावा), मलय द्वीप (मलाया), शंख द्वीप (बोर्नियो), कुशद्वीप (अफ्रीका), वराह द्वीप (मैडागास्कर)] पर अधिकार कर लिया और चारों ओर समुद्र में घिरी हुई, बड़ी-बड़ी सोने की खानों से भरी हुई स्वर्ण लंका को अपनी राजधानी के लिए चुना[2]।

इस तेजस्वी तरुण का नाम रावण था। उन दिनों लंका का अधिपति लोकपाल धनेश वैश्रवण कुबेर यक्षराज था[3]। अपने वक्तव्य को आगे बढ़ाने से प्रथम हम यहां रावण और कुबेर का वंश-परिचय देना उचित समझते हैं।

---

१. महा० XIII ३०, १९६३। वायु ९९। २०१–५। मत्स्य० ५०, ८, १२। एतरेय ब्रा० VIII ४, २१। पार्जीटर १९२२ पृ० २३७। ऋग्वेद VII १९, ३। तथा–१३, ३३, १९। वैदिक अनुक्रमणिका १८६, ४९९, म० भा० ९४, ३७२५, ३९।

२. देखिए वायु पुराण और वाल्मीकि रामायण उत्तर कांड, चौथा सर्ग।

३. देखिए वा० रा० उ० का० तीसरा सर्ग।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आस्ट्रेलिया का अत्यन्त प्राचीन नाम 'आन्ध्रालय' है[1]। उन दिनों भारत और आस्ट्रेलिया के बीच इतना अन्तर न था, तथा सीलोन और मैडागास्कर की भूमि भी बहुत विस्तृत थी, तथा भारत को आस्ट्रेलिया से जोड़ती थी, तथा इन समस्त टापुओं में एक ही जाति निवास करती थी। इन द्वीपों को भारत के अनुद्वीप ही माना जाता था, और ये द्वीपपुंज जो एक ही में मिले थे, इनका विशाल भूभाग लंका महाराज्य के ही अन्तर्गत था। कालान्तर में महर्षि पुलस्त्य वहां गए और आस्ट्रेलिया के महिदेव तृणविन्दु के अतिथि बने। उन दिनों राजसत्ता और धर्मसत्ता सभी आर्य–अनार्य जातियों में संयुक्त थी। अधिकांश में ऐसा ही था। तृणविन्दु भी धर्म और राज्य का अधिकारी था। उसने पुलस्त्य को अपनी पुत्री ब्याह दी। इस स्त्री से पुलस्त्य को 'विश्रवा' नामक पुत्र हुआ, जिसे उसके पिता पुलस्त्य ने सब शास्त्रों में पारंगत कर दिया। युवा होने पर विश्रवा को भरद्वाज ने अपनी पुत्री ब्याह दी। उससे 'वैश्रवण' का जन्म हुआ। वैश्रवण बड़ा तेजस्वी, मेधावी और उत्साही तरुण था, उसे धनेश कुबेर का पद देकर लोकपाल बना दिया गया। पुष्पक विमान भी उसे भेंट कर दिया गया। पिता के परामर्श से वह दक्षिण समुद्र के कूल पर त्रिकूट पर्वत पर बसी हुई लंकापुरी को अपनी राजधानी बना कर रहने लगा, तथा परम ऐश्वर्य को भोगने लगा।

इस समय यह नगरी सूनी पड़ी थी। उसके चारों ओर सुदृढ़ दुर्ग था, गहरी खाई थी। अस्त्र-शस्त्र भी वहां भरपूर थे। वैश्रवण कुबेर ने लोकपाल हो कर नगरी को फिर से बसाया, उसे उन्नत किया और देव, गन्धर्व, अप्सरस, यक्ष और असुर तथा दानवों से उसे सम्पन्न किया[2]।

वास्तव में यह नगरी दैत्यों की थी। हेति और प्रहेति नामक दो सम्पन्न दैत्य थे। हेति ने काल दैत्य की बहिन भया से विवाह किया, उसका पुत्र विद्युत्केश हुआ, जिसका विवाह सन्ध्या की पुत्री सालकटंकटा से हुआ। उससे सुकेश नामक पुत्र हुआ। उससे विश्वावसु गंधर्व ने अपनी पुत्री देववती ब्याह दी। इनके माली; सुमाली और

---

१. आधुनिक खोज से पता चलता है कि आस्ट्रेलिया के मूल निवासियों की तथा भारतीय द्रविड़, कोल, भील और संथालों की एक ही मूल भाषा है। उनका रूप-रंग भी वही है, वे अनेक जातियों में विभक्त हैं, वे किसी के हाथ का छुआ नहीं खाते, वे न अपनी जाति को दूसरी जाति में मिश्रित होने देते हैं, उनके पास भारत का प्राचीन अस्त्र अक्षय तूणीर (Boomerang) है; वे पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। (देखिये—अगस्त १९१४ के थियोसाफीस्ट में जिनराजदास एम० ए० के लेख में Northern Tribes of Central Australia by Baldwin Spincer and H G. Gilen का हवाला)

२. वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड सर्ग ३-४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माल्यवान् तीन प्रतापी पुत्र हुए। इन्हीं तीनों भाईयों ने दक्षिण समुद्र तट पर त्रिकूट सुवेल पर्वत पर तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी लंकापुरी बसाई, तथा उसे विविध भांति सम्पन्न किया। इन्हें नर्मदा नाम की गंधर्वी ने अपनी तीन पुत्रियां ब्याह दी थीं, तथा ये तीनों तेजस्वी भाई दैत्यराज बलि के प्रधान सेनापति थे। गंधर्व पुत्रियों से माल्यवान् को ७ पुत्र और एक पुत्री हुई। सुमाली को ११ पुत्र और ४ पुत्रियां हुईं। माली को ४ पुत्र हुए। इन तीनों भाईयों का दैत्यराज परिवार इस प्रकार वृद्धिगत होता गया। धन-संपदा भी खूब बढ़ी। परन्तु इसके बाद ही बलि दैत्य से प्रसिद्ध देवासुर संग्राम हुआ, जिसमें बलि बन्दी हुआ, और ये तीनों दैत्य बन्धु विकट संग्राम में सेना सहित पराजित हुए[1]। इस संग्राम में इनके बहुत से परिजन और योद्धा मारे गए। बड़ा भाई माली रण-भूमि में ही काम आया। सुमाली और माल्यवान् भागकर पाताल लोक में जा छिपे[2]। लंका लौटने का उन्हें साहस न रहा। इससे लंका चिरकाल तक उजाड़ और सूनी पड़ी रही। उसी सूनी लङ्का पर वैश्रवण ने लोकपाल धनेश कुबेर हो कर अधिकार कर लिया[3]।

कुछ समय बाद सुमाली फिर इस प्रदेश में आया। वह वृद्ध हो गया था। उसके साथ उसकी प्राणाधिक प्रिय पुत्री कैकसी भी थी। उसकी अभिलाषा थी कि किसी प्रकार वह अपनी लंका का उद्धार करे। परन्तु अग्नि के समान तेजस्वी कुबेर लोकपाल को देख उसका साहस न हुआ। उसने सोचा कि अब ऐसा क्या काम करूं कि मेरी भलाई हो। उसने दूरदर्शिता से विचार कर पुलस्त्य-पुत्र विश्रवा से पुत्री का ब्याह कर दिया। इस विवाह से उस दैत्य का सम्बन्ध प्रजापति के वंश से हो गया। अब वह पुत्री के पुत्र की प्रतीक्षा धैर्य से करने लगा। विश्रवा के कैकसी से तीन पुत्र और एक पुत्री हुई—पुत्रों में रावण, कुंभकरण और विभीषण, पुत्री सूर्पनखा। विश्रवा ने तीनों पुत्रों को यथावत् शिक्षा दी। अब वे ज्यों ही युवा हुए रावण को उसके नाना सुमाली ने अपनी पैतृक नगरी लंका लेने को उकसाया, वहाँ के स्वर्ण–रत्न, शस्त्रागार एवं वैभव की बहुत–बहुत चर्चा की. और उसके मन में वहां बैठ कर महाराज्य-संगठन की योजना उत्पन्न कर दी। रावण महत्त्वाकाँक्षी, साहसी और मेधावी था। वह अपने भाईयों, मित्रों और तरुणों को लेकर आन्ध्रालय से निकला और एक-एक कर सब द्वीप समूहों को जय करता हुआ लंका के सम्मुख आ धमका[4]। उसका प्रधान सलाहकार उसका नाना सुमाली उसके साथ था। सुमाली

---

१. वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड सर्ग ५

२. वहां अफ्रीका के पूर्वी भाग में अपना राज्य स्थापित किया जो सुमालीलैंड कहाता है।

३. वा० रा० उ० का० सर्ग ८

४. वा० रा० उ० का० सर्ग ९–१०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के दो पुत्र प्रहस्त और अकम्पन तथा माल्यवान् के पुत्र विरूपाक्ष, तथा मारीचि महोदर मंत्रियों की भांति उसके साथ थे । लंका के निकट पहुँच कर सुमाली ने रावण को छाती से लगा कर कहा—पुत्र, बहुत दिन के हमारे मनोरथ अब पूर्ण होंगे । मेरी लंका में तुम्हारा भाई कुबेर रहता है, वह यदि राजी से उसे छोड़ दे, तो ठीक है, नहीं तो हम शस्त्र से उसे मार तुम्हें लंकाधीश्वर बनाएंगे । तुम्हीं डूबते हुए दैत्य वंश के सहारे हो ।

परन्तु रावण नाना की यह बात सुन कर चुप हो गया । वह इस सोच में पड़ा-कि कैसे बड़े भाई से ऐसा प्रस्ताव करें । परन्तु सुमाली के पुत्र और रावण के मामा तथा प्रधान मन्त्री प्रहस्त ने खोद-खोद कर रावण को समझाया—वीर पुरुषों में भाईचारा नहीं होता । प्राचीन काल में दिति और अदिति दोनों सगी बहिनें थीं, तथा दोनों ही प्रजापति कश्यप की पत्नी थीं । पर अदिति से देव और दिति से दैत्य जन्मे । अपने पराक्रम से तथा मातृपक्ष से ज्येष्ठ होने से, सारी पृथ्वी दैत्यों ही के अधिकार में थी, पर विष्णु ने छल-बल से दैत्यों का नाशकर के देवों को आगे बढ़ाया, इस लिए यह कोई नई मर्यादा नहीं है ।

मन्त्री प्रहस्त की यह बात सुन कर रावण ने प्रहस्त को ही अपना दूत बना कर कुबेर के पास भेजा । उसने लोकपाल कुबेर से कहा--मुझे आपके भाई दशग्रीव रावण ने यह निवेदन करने भेजा है कि यह लंका पुरी और लंका साम्राज्य हम दैत्यों का है, इस लिए इसे आप हमें लौटा दें तो ठीक है । यह एक धर्म की बात है । इस में हमारा आप का प्रेम भी बना रहेगा । कुबेर ने कहा--जब पिता की आज्ञा से मैंने लंका में वास किया था, तब यह सूनी थी, इसका कोई स्वामी न था, मैं ने इसे सुसम्पन्न और समृद्ध किया । अब रावण भी यहां आ कर रहे । इसमें मुझे आपत्ति नहीं है । अभी रावण के साथ मेरा बंटवारा नहीं हुआ है, सब धन और राज्य के स्वामी पिता ही हैं । फिर, मैं इसमें पिता की अनुमति लूँगा ।

पर कुबेर ने जब पिता से सलाह की, तो उसने कहा--रावण दैत्यों के बल से समृद्ध है । तेरे लिए यही अच्छा है कि तू लङ्का को छोड़ दे । वह नगरी दैत्य प्रजा से परिपूर्ण है, और रावण ने सारे द्वीप-समूहों पर अधिकार कर लिया है, सो मेरी सम्मति में सुरक्षा इसी में है--कि तू कैलाश पर मन्दाकिनी के तट पर अपनी राजधानी बना । वहां तेरे सजातीय अप्सरा, गन्धर्व, किन्नर, देव आदि जातियां भी हैं ।

कुबेर ने पिता की बात मान लंका खाली करदी, और रावण ने अपने दल-बल सहित लंका अधिकृत कर ली । और "रक्षामः" कह कर अपने को समुद्र का रक्षक घोषित कर दिया । तथा राक्षस जाति का संगठन किया और इस प्रकार वह 'रक्ष'

CC-0. Agamnigam Aagam Research Foundation, Chandigarh

संस्कृति का प्रतिष्ठाता हुआ। राक्षसों ने मिल कर रावण को सम्पूर्ण द्वीप-समूहों का अधिपति स्वीकार कर लिया। अपनी बहिन सूर्पनखा का विवाह उसने दानव विद्युज्जिह्व के साथ कर दिया। तथा दिति के पुत्र मय दैत्य की पुत्री मन्दोदरी से स्वयं विवाह किया। फिर वैरोचन की दोहित्री वज्रज्वाला से कुम्भकर्ण का, और गन्धर्वों के राजा शैलूष की कन्या सामा से विभीषण का विवाह कर लिया। माली के चारों पुत्र विभीषण के मंत्री हो गए। रावण का साम्राज्य सुगठित होता ही गया, और जब उसका महाबली पुत्र मेघनाद युवा हुआ—तो उसने इन्द्र, वरुण, कुबेर और यम इन चारों लोकपालों को जय करने का संकल्प दृढ़ किया[1]।

यहां हम पाठकों की सुविधा के लिए दैत्य-राक्षस परिवार का वंश-वृक्ष दे कर आगे बढ़ेंगे।

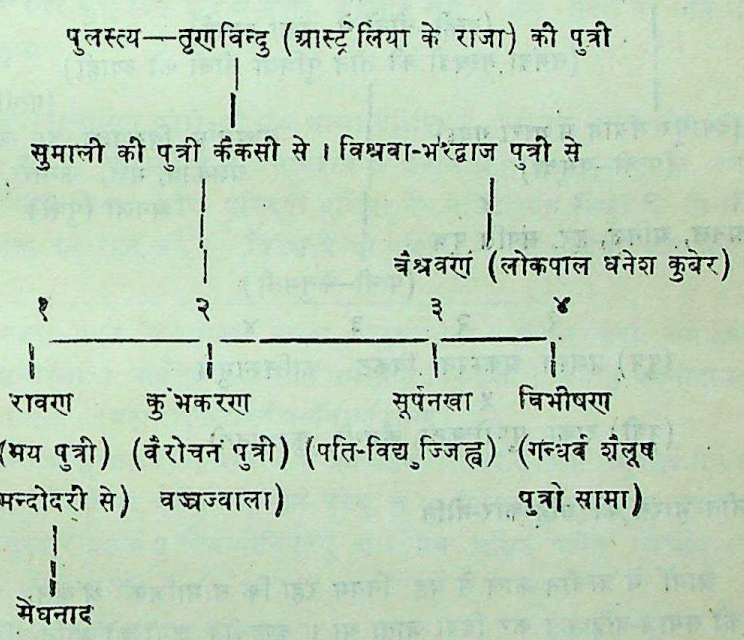

---

१. वाल्मीकि रामायण उत्तर कण्ड सर्ग १३। ये नाम यहां परंपरागत है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हेति (दैत्य)
(काल की बहिन भया से)
|
विद्युत्केश
(संध्या की पुत्री सालकटंकटा से)
|
सुकेश
(ग्रामणी गंधर्वी की पुत्री देववती से)
|

१ — २ — ३

माली — सुमाली — विद्युन्माली

(इन्हीं तीनों ने लंका बसाई)
(नमंदा गन्धर्वी की तीन पुत्रियां तीनों को ब्याहीं)

(देवासुर संग्राम में मारा गया)
(पत्नी—वसुदा)
१ २ ३ ४
अनल, अनिल, हर, संपति पुत्र

(पत्नी—सुन्दरी)
वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघन, यज्ञकोष, मत्त, उन्मत्त, (पुत्र)
अनला (पुत्री)

(पत्नी—केतुमती)
१ २ ३ ४
(पुत्र) प्रशस्त अकम्पन विकट कालिकामुख
५
(पुत्री) राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी, कुम्भानसी

तत्कालीन भारत की बहिष्कार-नीति

आर्यों में प्राचीन काल से यह नियम रहा कि सामाजिक श्रृंखला भंग करने वालों को समाज-बहिष्कृत कर दिया जाता था। दण्डनीय जनों को जाति-बहिष्कार के अतिरिक्त प्रायश्चित्त, जेल और जुर्माने की भी सजा दी जाती थी। प्रायः ये बहिष्कृत जन दक्षिण भारत में भेज दिए जाते थे। धीरे-धीरे इन बहिष्कृत जनों की तथा वहां के मूल निवासियों की मिलकर दक्षिण और वहाँ के द्वीप-पुंजों में दस्यु, दास, महिष, कपि, नाग; पौन्ड्र, औन्ड्र, द्रविड़, काम्बोज, पारद, यक्ष पल्लव चीन, किरात, भल्ल, मल्ल, दरद शक आदि जातियां संगठित हो गईं। प्रारम्भ में केवल व्रात्य ही जाति-च्युत किए जाते थे, पर पीछे यह निष्कासन उग्र हो गया। सगर ने अपने पिता के शत्रु, शक, यवन, काम्बोज, चोल, केरल, आदि को जीत कर उनका समूल नाश करना चाहा था, पीछे वशिष्ठ के कहने से उन्हें वेद-बहिष्कृत कर के दक्षिण के अरण्यों में निकाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिया[1]। नहुष पुत्र ययाति ने नाराज हो कर अपने पुत्र तुर्वस् को सपरिवार जातिभ्रष्ट कर के मांसाहारी म्लेच्छों की दक्षिण दिशा में खदेड़ दिया था[2]।

विश्वामित्र ने शुनःशेप को अपने सौ परिजनों में मुख्य ठहराया। इस पर पचास ने उनकी यह आज्ञा नहीं मानी। उन सब को विश्वामित्र ने क्रुद्ध हो दक्षिण अरण्य में निकाल दिया। उनके वंशज आन्ध्र, पुण्ड्र, शवर, पुलिंद आदि जाति में परिवर्तित हो गए[3]।

इस काल में लोभी वणिक् को 'पणिक' कहते थे, इसका अर्थ 'पणलोभी' है। ऐसे लोभी पणिकों को भी आर्य जनता ने बहिष्कृत कर के दक्षिण अरण्य में निष्कासित कर दिया था[4]। वैदिक भाषा में ठग, धोखेबाज और लालची व्यापारी को 'पणि' कहते हैं[5]। आर्यों द्वारा बहिष्कृत होकर दक्षिणारण्य में इन्होंने अच्छा बाजार (पण्य) बसाया और कुछ दिन बाद ये पाण्य कहलाने लगे। उस प्रदेश का नाम भी पाण्ड प्रसिद्ध हुआ।

ऐसे ही निष्कासित चोरों की एक शाखा दक्षिण में 'चोल' जाति और प्रान्त में परिणत हो गई। पणियों ने तो सागवान के जहाज बना कर दूर-दूर के देशों में व्यापार-विनिमय किया, और पश्चिमी एशिया में मेडिटेरियन समुद्र के किनारे पर बस्तियां बसा कर रहने लगे। विदेश में भी पणियों ने 'फिनीशिया' और चोलों

---

१. शकाः यवन काम्बोजाः पारदा पह्लवास्तथा। कौलि सर्पाः समहिषा दार्वाश्चोला स करेलाः। सर्वेतेक्षत्रियास्तात धर्मस्तेषां निराकृता। वशिष्ठ वचनाद्राजन् सगरेण महात्मना। (महाभारत-हरिवंश–विष्णुपुराण)

२. यत्त्वं मे हृदयाज्जातो वयस्त्वं न प्रयच्छति। तस्मात् प्रजा समुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति। संकीर्णाचार धर्मेषु प्रतिलोम चरेषु च। पिशिताशुशिजात्येषु मूढराजा भविष्यति। गुरुदार प्रसक्तेषु तिर्यग्योनिगतेषु च। पथ धर्मिषु पापेषु म्लेच्छेषु त्वं भविष्यति। (महाभारत)

३. एतरेय ब्राह्मण ७। ४। १८।

४. The panis have been mentioned more than once in the previous chapter. We have shown that they were Aryans, belonging to the trading class ·····. They were a community by themselves. Selfish, narrowminded, intent only on their own business and gain ·····. They did not perform the same sacrifice nor worship the same God, as the cultured Aryans did, which made them incur their displeasure' nay, hatred. (Reg vedic India)

५. अक्रतून् ग्रथिनः मृध्रवाचः अश्रद्धान् पणीन् ऋग्वेद ७। ६। ३ (पाकेटमार गठकटे पणि) चेम्बर्स डिक्शनरी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने 'चाल्डिया' देश बसाए[१]। वेद में 'मना' शब्द वजन के अर्थ में आया है[२]। फिनीशिया में यह शब्द 'मनह', लैटिन में 'मिन', ग्रीक में 'मिना', बैबिलोनिया में 'मिन' और अंग्रेजी में 'माउण्ड' है। जो इसी 'मना' या मन का स्वरूप है। यह शब्द निश्चय ही इन्हीं पणियों के द्वारा विदेशों में गया। ऐसे ही और भी अनेक शब्द हैं। चाल्डिया के तो बहुत से शब्द वैदिक हैं[३]। शब्द साम्य के अतिरिक्त चाल्डिया के 'डैल्यूज-टेबलेट' वैदिक मनु के जल विप्लव की कथा वैसी ही मिलती है जैसी शतपथ ब्राह्मण में है।

पाश्चात्य पण्डितों ने कुछ काल पूर्व भारत के मूल निवासियों की एक जाति बना कर उन्हें 'एबारिजिनीज' कहना प्रारम्भ किया था। अब वह मन्तव्य रद्द कर के उन्हें बाहर से आया हुआ कह कर उनके दो विभाग कर दिए हैं—एक 'कोलारियन' दूसरा 'द्रविडियन'। इन्हें दो पृथक् जाति मानते हुए भी दोनों को स्पष्ट रीति से अभी तक पृथक् प्रमाणित नहीं किया गया है। पाश्चात्य पण्डितों में से सर्वश्री हॉजसन, डाल्टन, क्लाडवेल आदि ने इन जातियों की भाषा, रूप, रंग और शरीर संगठन पर बहुत गवेषणा की है, परन्तु अन्तिम तथ्य यही प्रकट होता है कि कोल, भील और संथालों से लेकर दक्षिण के समस्त द्रविड़ एक ही जाति के लोग हैं, एक ही मूल भाषा की शाखाओं को बोलते हैं। कोल और द्रविड़ों से लेकर लंका, मैडागास्कर, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया तक जितनी 'इथिओपिक' उप-जातियां हैं, सब एक ही संस्कृति और वंश से पृथक् हुई हैं[४]। जो ब्राह्मणों के ससर्ग छूट जाने से, क्रिया लोप होने से, संस्कारहीनता से-भिन्न-भिन्न जातियां बन गईं[५]। उनमें से बहुत सी तो भारत ही के दक्षिण में बस गईं, और बहुत सी अन्य देशों में फैल गईं। जिनके उत्तराधिकारी समस्त एशिया, अफ्रीका, अमेरिका और यूरोप के देशों में मिलते हैं, और जिन पर विश्व के इतिहासवेत्ता गवेषणा कर रहे हैं।

---

१. वैशस्तुव्यवहर्ता विट्वार्तिकः पणिको वणिक्। (राजनिघण्टु)।

२. ऋग्वेद ८।७८।२ 'स चा मनाहिरण्यया'.

३. (संस्कृत)—सिनिवालि। अप्सु। यह्व। ऋतु। परशु। तैमात। उरुगुला। (चाल्डियन) सिनवुव्वुलि। अब्जु। यहवे। इतु। पिलक्कु। तिआमत। उरुगुल। संस्कृत और चाल्डियन में ये सब शब्द एकार्थवाची हैं।

४. देखिए हार्मस्वर्थ की 'हिस्ट्री आफ दि वर्ल्ड' पृ० ३२९

५. शनकैस्तु क्रिया लोपादिमा क्षत्रिय-जातयः। वृषलत्वंपरिगता ब्राह्मणादर्शनेन च। पौन्ड्रकाश्चौन्ड्र द्रविडाः काम्बोजाः यवनाः शकाः। पारदाः पल्हवाश्चीनाः किराता दरक्ष खशाः (मनुस्मृति)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रावण का दुर्धर्ष कार्य—

स्वर्ण लंका में अपना सिंहासन स्थापित करके और सम्पूर्ण दक्षिणवर्ती द्वीप-समूहों को अधिकृत करके रावण का ध्यान भारतवर्ष की ओर गया। लंका भारत के चरणों ही में थी, तथा रावण के रक्त में शुद्ध और बहिष्कृत दोनों ही आर्यों का रक्त था। उसका पिता आर्य विश्रवा था और माता दैत्य राजपुत्री थी। उसका पालन-पोषण आर्य विश्रवा के आश्रम में उसी के तत्त्वावधान में हुआ था, उसकी शिक्षा-दीक्षा भी उसके पिता ने अपने अनुरूप दी थी। वेद का उस समय जो स्वरूप था, उसे उसने अपने पिता से बाल काल ही में अध्ययन कर लिया। तब तक वेद ही आर्यों का एकमात्र साहित्य और धर्म वचन था, जो केवल मौखिक था, लेखबद्ध न था। रावण के मातृ पक्ष में दैत्य संस्कृति थी। दैत्य और असुर देवों तथा आर्यों के भाईबन्द ही थे। परन्तु रहन-सहन और विचार-व्यवहार में दोनों में बहुत अन्तर पड़ गया था। विशेषकर बहिष्कृत जातियाँ आर्यों से द्वेष भी रखती थीं। बहिष्कार का सब से कटु रूप याजकों, पुरोहितों द्वारा संस्कार-क्रिया से उन्हें वञ्चित रखना तथा यज्ञों से बहिष्कृत समझना था। यह एक ऐसी अपमानजनक बात थी जिसने इन जातियों में आर्यों के विरुद्ध दैत्यों तथा असुरों से भी अधिक, जो आर्यों के दायाद बान्धव थे, विद्वेष और विरोध की ज्वाला सुलगा दी। रावण के मन में तीन तत्त्व काम कर रहे थे। उसका पिता शुद्ध आर्य और विद्वान् ऋषि था। उसकी माता शुद्ध दैत्य वंश की थी। उसके बन्धु-बान्धव बहिष्कृत आर्य-वंशी थे। उन्हें क्रिया कर्म से च्युत कर दिया गया था। इस तेजस्वी पुरुष न अपने को समुद्र का रक्षक घोषित करके राक्षस उपाधि धारण की, प्रबल बाहुबल से लंका महाराज्य की स्थापना की, जिसमें जावा, बाली, मैडागास्कर, अफ्रीका आदि सात महाद्वीप भी सम्मिलित थे। इसके बाद उसका ध्यान भारत और भारतीय आर्यों को दलित करने और उन पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की ओर गया।

आर्यावर्त और देव-भूमि—आर्यों का और देवों का सङ्गठन उस काल अत्युत्तम था। उन्होंने लोकपालों, दिग्पालों की स्थापना की थी, जो आर्यों के प्रान्त भाग की रक्षा करते थे। देवों की प्रबल जातियों में तब मरुत, वसु, आदित्य प्रभावशालिनी थीं। चोटी के पुरुषों में इन्द्र, रुद्र, यम, वरुण की वंश परम्पराओं के पुरुष थे। यम, वरुण, इन्द्र और कुबेर चार लोकपाल थे।

रावण ने आर्यों के इस सङ्गठन को जड़-मूल से उखाड़ फेंकने की योजना बनाई। उसने सांस्कृतिक विप्लव का सूत्रपात किया। उसका मेधावी मस्तिष्क और साहसिक शरीर ही यथेष्ट था, तिस पर उसके साथी-सहयोगियों में उसके नाना सुमाली, मंत्रियों और सेनापतियों में प्रवण, प्रहस्त, महोदर, मारीचि, महापार्श्व, महादंष्ट्र, यज्ञकोष, दूषण, खर, त्रिशिरा, दुर्मुख, अतिकाय, देवान्तक, अकम्पन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि महारथी रण और राजनीति के पण्डित भी थे। मय दानव की पुत्री मन्दोदरी से विवाह करके उसने एक प्रबल जाति को सम्बन्धी बना लिया था। फिर कुम्भकरण-से भाई और मेघनाद-से पुत्र! अब रावण की सामरिक शक्ति चरम सीमा को पहुंच गई। उसने रामेश्वर के निकट समुद्र-मग्न पर्वत-शृङ्खला के सहारे दक्षिण भारत से सम्बन्ध स्थापित किया। दक्षिण भारत में इस समय दो दल प्रमुख थे—एक वे जो बहिष्कृत आर्य थे, दूसरे वे जो विदेशों से आ कर भारत समुद्र के उपकूलों पर आ बसे थे। ये दल आर्य और अनार्य के नाम से प्रसिद्ध थे[1]। रावण ने दोनों को अपने साथ लिया।

सब से प्रथम उसने देवों के ४ राजा लोकपाल यम, कुबेर, वरुण और इन्द्र को जय करने का सकल्प किया। उसने राक्षसों तथा दक्षिण के बहिरंग भारतीयों की संयुक्त सेना ले कर सर्वप्रथम अपने भाई कुबेर को दलित किया, उसके बाद यम और वरुण के उत्तराधिकारियों को। इन्द्र को बन्दी बनाकर वह लङ्का में ले आया। मार्ग में जो राज्य, जो सरदार मिला उसीसे उसने युद्ध किया। उसका आतंक सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में छा गया। केवल दो वीरों से उसे मुंह की खानी पड़ी – एक हैहय वंशी कार्तवीर्य अर्जुन से महिष्मती में, दूसरे किष्किन्धा के कपिराज बाली से। इन दोनों से पराजित हो कर उसने मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिया[2]।

इस प्रकार जम्बूद्वीप और भारत के आर्यदल की राजसत्ता और अधिकार को दलित कर उसने धर्म और अध्यात्म पर भी अपनी छाप लगाई। उन दिनों देव असुर सर्वत्र ही 'महिदेवो' का अधिकार था, अर्थात् धर्म और राज्य दोनों का शासक एक ही होता था। रावण ने भी संपूर्ण आर्य अनार्य—अधिकृत और अनधिकृत आर्यों तथा आर्येतरों—सबको मिला कर एक धर्मनीति की प्रतिष्ठा की। और अपने को जगदीश्वर घोषित किया!

वेद का रावण-कृत सम्पादन—

सब से प्रथम उस ने वेद का सम्पादन किया। उस समय वेद ही एक मात्र आर्य साहित्य था—वह भी मौखिक। अपने पिता से उसने वेद पढ़ा था। उस पर विचार किया था। उसी वेद का उसने सम्पादन किया। ऋचाओं पर उसने

---

१. आज भी ये दोनों दल दक्षिण में 'अय्यर' और 'नैयर' के नाम से प्रसिद्ध हैं। मद्रास प्रान्त में अय्या' शब्द महाशय या जनाब के आदरसूचक अर्थों में अब भी प्रयुक्त होता है।

२. वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड सर्ग १८। १९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
टिप्पणियां तैयार कीं। मूल मन्त्रों की व्याख्या की। व्यवहार अध्याय को बीच-बीच में वृद्धिगत किया। इस प्रकार मूल वेद और रावण कृत टिप्पणियां और व्याख्याएं सब मिल कर वेद का एक ऐसा संस्करण हो गया, जो जम्बूद्वीप के सब आर्यों तथा आर्येतरों के लिए मान्य हो गया, कुछ तो वेद के नाम से और कुछ रावण के प्रभाव से। आगे चल कर यही रावण भाष्य टिप्पणी सहित 'कृष्णयजुर्वेद' के नाम से विख्यात हुआ।

कृष्णयजुर्वेद में पशुवध, मद्यपान, स्त्री समर्पण, शिश्नपूजन, गौवध, नरवध, ब्राह्मण-वध, कुमारीवध आदि का विधान सम्मिलित हो गया, जो वास्तव में बहि कृत आर्यों एवं असुरों की परिपाटी थी[1]।

---

१. देखिए कृष्णयजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण और उस पर सायण भाष्य।
वाचे पुरुषमालभेत् (ब्रा०) वाग्देवता वै पुरुषं पूरकं स्थूलशरीरमित्यर्थः (सायण) अर्थात् वाणी के देवता के लिए पुरुष का वध करे।
ब्राह्मणे ब्राह्मणमालभते (ब्रा०) ब्राह्मणजात्यभिमानी देवतास्मै कंचित् ब्रह्मवर्च-सयुक्तं ब्राह्मणजातीयं पुरुषमालभते (सायण) अर्थात् ब्राह्मण अभिमानी देवता के लिए ब्रह्मवर्चसयुक्त ब्राह्मण का वध करे।
"आशायै जामिम् (ब्रा०) आशायै अलभ्यवस्तुविषयतृष्णाभिमानिन्यै विवृत्तरजस्कां भोगायोग्यां स्त्रियमालभते" (सायण) अर्थात् अलभ्य वस्तु भी तृष्णा के अभिमानी देवता के लिए जिस स्त्री का रजोधर्म बन्द हो गया हो उसका वध करे।
"प्रतीक्षायै कुमारीं" प्रतीक्षायै लब्धव्यस्य वस्तुना लाभप्रतीक्षणाभिमानिन्यै कुमारी-मनूढां कन्यामालभते (सायण) अर्थात् लब्ध प्रतीक्षा वाले देवताओं के लिए कुमारी जो अभी युवा नहीं हुई उसका वध करे।
"पशूनवावरुन्धे सप्त ग्राम्याः पशवः सप्तारण्याः सप्तच्छंदांस्युभयस्यावरुध्यै" अर्थात् यज्ञ में गाय घोड़ा आदि सात ग्राम्य पशु वाले हिरण आदि सात जंगली जीव अथवा दोनों प्रकार के सात पशुओं की योजना करे (तैत्तिरीयापस्तंब हिरण्यकेशी कांड ६ प्र० १ अ० ८)
"आदन ऋतस्य त्वा देव हविः पाशनाऽऽरभे (वही) सावित्रेण रशनामादाय यशो-र्दक्षिणा बाह्वौ परिवीयोर्ध्वमुत्कृष्य आदद इति। दक्षिणोऽधः शिरसि पाशेना-क्षणया प्रतिमुच्य धर्षा मानुषा नित्युत्तरतो यूपस्य नियुनक्ति दक्षिणत एकादशिनान् इति। अक्षणया परिहरति वर्ध्यंहि प्रत्यंचं प्रतिमुंचंति व्यावृत्यै (सायणभाष्य) अर्थात् देवस्यत्वा० इस मन्त्र से रस्सी लेकर 'तत्सवितुः' इस मन्त्र से पशु की दाहिनी भुजा बांधकर ऊपर खींचे, पीछे 'आदद० इस मन्त्र से रस्सी को सिर की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

इस प्रकार मांसयज्ञ और प्राणिवध के साथ मद्यपान भी विहित कर दिया गया। 'दो प्रकार की मदिरा को मिला कर पीवे, जिसके पिता पितामहादि सुरा नहीं पीते वे व्रात्य हैं'[1] परन्तु बात यहीं तक समाप्त नहीं हुई। यज्ञ में मांस खाने और मद्य पीने तथा यजमान-पत्नी के साथ अनेक विधि प्राकृत और अप्राकृत संभोगों का वर्णन है। यजुर्वेद का एक मन्त्र है--'गणानांत्वा गणपतिं हवामहे.....' यह मंत्र प्रायः सनातनधर्मी पंडितगण शुभ अवसरों पर मङ्गल रूप उच्चारण करते हैं। इसका तथा इसके साथ के अनेक मन्त्रों का अर्थ अत्यंत अश्लील है। यह अश्वमेध यज्ञ की विधि है[2]।

कृष्णयजुर्वेद ही रावणकृत सभाष्य वेद है--

रावण शिश्न-पूजक था। वह जहां-जहाँ जाता एक स्वर्ण-निर्मित लिंग साथ ले जाता--उसे बालू की वेदी पर स्थापित करके लिंग-पूजन करता था[3]। इस बात के मानने के बहुत कारण हैं कि उस काल में आर्येतर तथा असुर जातियां लिंग-पूजक होती थीं[4]। मोहन-जोदड़ो और हरप्पा में बहुत से लिंग मिले हैं। द्रविड़ों में जो

तरफ ले जाकर दूसरे पैरों को बांध कर पशु को अच्छी तरह जकड़ दे जिससे वह हिले डुले नहीं। फिर--
वज्रो वै स्त्रधितिः शान्त्यै पार्श्वत० (वही)
वपोत्खदनार्थं दक्षिनपार्श्वे छिन्द्यात्। शूलाग्रेण वपां छिन्द्यात्। (सा० भा०)
अर्थात् उस पशु के चर्म को शूल से निकाले और शूल की नोक से चर्बी को दूर करे। जब मांस एकत्र हो जाय तो 'सुकृताच्छमितारः कृण्वन्तूत मेघ श्रृत पाकं पचंतु'। अर्थात् शमिता (मांस को साफ करने वालों से) मांस साफ करा कर पकावे। तथा--
एतद्यज्ञस्य यदिडा सामिप्रश्नाति अर्थात् उस मांस से हवन करके शेष भाग को खाय।

१. अन्नस्य वा एतच्छमलं यत्सुरा। यस्य पिता पितामहादि सुरा न पिबेत् स व्रात्यः। (तैत्तिरीय ब्रा०)

२. अस्मिन्मंत्रे गणपति शब्दादश्वोवाजी ग्रहीतव्य इति तद्यथा महिषी यजमामस्य पत्नी यज्ञशालायां पश्यतां सर्वेषामृत्त्विजामश्व समीपे शेते शयाना सत्याह हे अश्व, गर्भधं गर्धधारकं रेतः अहं आजानि आकृष्य क्षिपामि त्वं च गर्भधं आ आजासि आकृष्य-क्षिपसि। (महीधर)

३ यत्र यत्र प्रयातिस्म रावणो राक्षसेश्वरः।
जम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते।
वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः (वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड)

४, देखिये--रायबहादुर चिंतामणि विनायक वैद्य--महाभारत मीमांसा पृ० ४५२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कृष्णयजुर्वेद अब तक प्रचलित है। उसमें हिंसामय यज्ञ, सुरापान, माँस भक्षण, स्त्री सहवास, नरबलि और शिश्न-पूजन का विधान विहित है। यही रावण द्वारा संपादित वेद है। यही रावण संप्रदाय का मूल ग्रन्थ है[१]। यही वाममार्ग का उद्गम है, यही से वाममार्ग की स्थापना हुई है[२]।

इस कृष्णयजुर्वेद के विरुद्ध बहुत कुछ कहा गया है। महीधर का कहना है कि यह मलिन बुद्धि से रचा गया है[3]। प्राचीन भाष्यकार विद्यारण्य कहते हैं कि बुद्धि की मलिनता से ही वह 'कृष्ण' कहा गया है[४]। भाष्यकार द्विवेदांग का कहना है कि शुक्ल यजुर्वेद ही शुद्ध है, परन्तु ब्राह्मण मिश्रित मन्त्रों के कारण कृष्णवेद अशुद्ध है[५]। यज्ञेश्वर यह कहते हैं कि यज्ञ-कर्म के अनुष्ठान-मार्ग में दुर्ज्ञेयता उत्पन्न होने ही से उसे कृष्णत्व प्राप्त हुआ है[६]।

इसमें संदेह नहीं कि यह वेद की सर्वप्रथम व्याख्या है। इस में मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग का एक साथ मिश्रण कर दिया गया है। आगे चल कर संहिता और ब्राह्मण पृथक-पृथक संपादित किए गए। ऋग्वेद का एतरेय, यजुर्वेद का शतपथ, सामवेद का ताण्डच और छान्दोग्य तथा अथर्व का गोपथ ब्राह्मण है, अभी इस बात पर विचार करना है कि मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को एक कर देने का यह परिणाम

---

१. चक्रदत्त एक प्राचीन वैद्यक ग्रन्थ है। इस में मांस मद्य वलि और देवपूजन का एक जगह ठीक वैसा ही आदेश है जो रावण संप्रदाय में प्रचलित था—
वलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन संपद्यते शुभम्। नद्युभयतट मृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लोदनः शुक्लपुष्पं शुक्ल सप्तध्वजाः सप्त प्रदीपाः सप्तस्वस्तिकाः सप्त वाटिकाः सप्त शष्कुलिकाः सप्त जम्बुडिकाः सप्त मुस्तकाः गन्धं पुष्पं, ताम्बूलं मासं सुराग्रभक्तं च पूर्वस्यां दिशि चतुष्पथे मध्यान्हे बलिर्दातव्यः। ततः अश्वत्थ पत्रं जलकुम्भे निक्षिप्य शान्त्युदकेन स्नापयेत् रसेन सिद्धार्थक मेष श्रृंग निम्ब पत्र शिवं निर्माल्यैबालकं धूपयेत्। ओंनमोरावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुंच मुंच ह्रीं फट् स्वाहा। एवं दिनत्रयं बलिं दत्वा चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्। ततः संपद्यते शुभम्। (बालरोग चिकित्सा, चक्रदत्त)

२. 'मेघनाद उड्डीस' वाममार्ग का प्रसिद्ध तन्त्र ग्रन्थ है, जो रावण पुत्र मेघनाद कृत बताया जाता है।

३. त नियजू षि बुद्धिमालिन्यात्कृष्णानिजातानि (महीधर)

४. बुद्धि मालिन्य हेतुत्वात् तद्यजुः कृष्णमीर्यते (विद्यारण्य)

५. शुक्लानि यजूंषि शुद्धानि यद्वा ब्राह्मणेन मिश्रित मन्त्रकानि० (द्विवेदांग)

६. यज्ञ कर्मानुष्ठान मार्गस्य दुर्ज्ञेयत्वात् कृष्णत्वमिति(भट्ट यज्ञेश्वर-आर्यविद्यासुधाकर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ कि मूल वेद और रावण कृत व्याख्या दोनों मिल कर एक रूप धारण कर गए, और अब यह निर्णय ही नहीं किया जा सकता कि इस तैत्तिरीय शाखा में कौन सा मन्त्र भाग है, और कौन सा ब्राह्मण भाग। इस तैत्तिरीय शाखा के मानने वाले ब्राह्मण. जो वेद के ज्ञाता हैं, भिन्न-भिन्न मत रखते हैं, कोई किसी भाग को ब्राह्मण कहता है, कोई किसी को मन्त्र। मन्त्र-ब्राह्मण मिला कर इस संहिता में १८ हजार यजु पढ़े जाते हैं[१], परन्तु शुक्ल यजुर्वेद की संख्या केवल १६०० मन्त्रों की है, जिन का द्रष्टा वाजसनेय ऋषि है[२]।

कृष्ण यजुर्वेद की परम्परा में एक नवीनता यह है कि जहां आर्य परम्परा के अनुसार यज्ञ कराने के लिए चार विद्वानों की आवश्यकता होती है, जो एक-एक वेद के ज्ञाता होते हैं। (ऋग्वेद से होता, यजुर्वेद से अध्वर्यु, सामवेद से उद्गाता और अथर्ववेद से ब्रह्मा[3]—इसी मर्यादा और परम्परा के अनुसार हरिश्चन्द्र के यज्ञ में विश्वामित्र, जमदग्नि, अगस्त्य, और वशिष्ठ तथा बाद में युधिष्ठिर के यज्ञ में याज्ञवल्क्य वशिष्ठ, ब्रह्मदेव और व्यास ये चारों क्रमशः होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा के पद पर आसीन हुए थे।) परन्तु कृष्णयजुर्वेद की परम्परा में उक्त चारों कार्यकर्ताओं के स्थान पर केवल एक चरक ही आचार्य का काम चला देता है। बृहदारंण्यक उपनिषद में लिखा है कि चरक मद्र देश में घूमते हैं[४]। यजुर्वेद के ब्राह्मण भाग में दुष्ट कर्म करने वाले को चरक कहा है[५]।

वैदिक परिपाटी में शाखा–भेद भी है। वेद के पठन–पाठन की अनेक विधियाँ निर्धारित हैं—उन्हीं विधियों को शाखा-भेद कहते हैं। शाखा-भेद के प्रवर्तक ही गोत्र-प्रवर्तक होते थे। इसी से ब्राह्मण अनेक शाखाओं और गोत्रों में विभक्त हो गए। पर कृष्णयजुर्वेद की कोई शाखा नहीं। इसलिए द्रविड़ों में, जहाँ इसका प्रचार है, न शाखा-भेद है न गोत्र-विस्तार[६]। शाखा-भेद के स्थान पर अनुवाकों की संख्या का

---

१. अष्टादश सहस्राणि मन्त्र ब्राह्मणयोः सह।
यजूंषि यत्र पठ्यन्ते स यजुर्वेद उच्यते।

२. द्वे सहस्रे शतं न्यूनं मन्त्रे वाजसनेयके।

३. ऋग्वेदेन होता करोति यजुर्वेदेनाध्वर्युः सामवेदेनोद्गाता अथर्वर्वा ब्रह्मा।

४. मद्रेषु चरका पयब्रजामः।

५. दुष्कृताय च चरकाचार्यां (यज० ३०।१० ब्राह्मण भाग)

६. द्रविड़ों के गोत्र वहीं हैं जो अन्यों के हैं, तैत्तिरीय शाखा से संबंधित कोई गोत्र नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भेद रखा गया है। इसके अनुसार ६४ अनुवाक द्राविड़ों के, ८० आन्ध्रों के ४७ कर्णाटकों के और ८६ तैलंगादिकों के हैं[1]।

रावण का आर्य अनार्यों का नया संगठन

इस प्रकार रावण ने कृष्णयजुर्वेद के नाम से वेद का नवीन आसुरी संस्करण संपादित करके उसमें अपने साथ के बाहर से आए हुए दैत्यों, असुरों, यक्षों, राक्षसों को दीक्षित किया--फिर भारत के दक्षिणांचल में फैले हुए बाहर से समागत अनार्यों (अय्यर) और आर्य-बहिष्कृत आर्यों (अय्यर) दोनों को संपन्न रूप में दीक्षित किया। चारों लोकपालों तथा वसु, नाग, गन्धर्व, आदित्य आदि देवों की सब जातियों को पराभूत करके उसने उन पर राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रभुत्व स्थापित कर दिया।

विजय-यात्रा में उसके हाथ से युद्ध करता हुआ सूर्पनखा का पति मारा गया। इससे अनुतापित होकर उसने सूर्पनखा को दक्षिण भारत का दण्डकारण्य दे दिया, और अपने भाई खर को वहां का गवर्नर तथा दूषण सेनापति को संरक्षक बना १४ हजार राक्षसों की सेना उन्हें दे दी। इस प्रकार सूर्पनखा ने दण्डकारण्य में राक्षस उपनिवेश स्थापित कर दिया[2]।

इतना ही नहीं, उसने बल पूर्वक वैदिक यज्ञानुष्टानों को आसुरी ढंग पर करने के अनेक उपाय किए—उसने सहस्रों राक्षसों को यह आदेश दिया कि जहां कहीं आर्य ऋषि रावण विरोधी विधि से यज्ञ कर रहे हों, वहां बल पूर्वक बलि-मांस और मद्य की आहुति दो। इतना ही नहीं, उसने राक्षसों द्वारा यज्ञकर्ता ऋषियों ही को मार कर

---

१. अस्या शाखाभेदेन अनुवाकसंख्याभेदो वर्तते।
तत्र द्राविडैरस्याश्चतुःषष्ठि संख्यकानुवाकाः पठ्यन्ते।
आन्ध्रैरस्याशीत्यनुवाकाः। कर्णाटकैश्चतुः सप्तत्यनुवाकाः।
अन्यैरेकोननवत्यनुवाकाः परिपठ्यन्ते (तैत्तिरीय आरण्यक)

२. सा वाष्पपरिरुद्धाक्षीरक्ताक्षी वाक्यमब्रवीत्।
कृतास्मि विधवा राजंस्त्वया बलवता बलात्।
सत्वया निहतो युद्धे स्वयमेव न लज्जसे।
एवमुक्तोदशग्रीवो भगिन्या क्रोशमानया।
अब्रवीत् सान्त्वयित्वा तां सामपूर्वमिदं वचः।
अलं वत्सेरुदित्वा ते न भेतव्यञ्च सर्वशः।
भ्रातुरैश्वर्ययुक्तस्य खरस्यवस- पार्श्वतः।
चतुर्दशानां भ्राता ते सहस्राणां भविष्यति।
आगच्छत खरः शीघ्रं दंडकानकुतोभयः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बलि देना प्रारम्भ कर दिया। नर-भक्षण भी उसका एक व्यापार हो गया। वाल्मीकि लिखते हैं कि ये मनुष्यभक्षी राक्षस दण्डकारण्यवासी मुनियों को खा जाते हैं[१]। मारीच और सुबाहु तो जैसे इसी काम के लिए नियुक्त थे। उनके लिए वाल्मीकि कहते हैं कि वे माँस और रुधिर से यज्ञवेदी को पाट देते थे[२]। इसी को लक्ष्य करके विश्वामित्र ने राम से कहा था कि इन लोगों ने इन दोनों जनपदों का नाश कर दिया है[३]। राम के दण्डकारण्य में पहुंचने पर ऋषियों ने उनसे कहा था कि इसअरण्य में मनुष्य-भक्षी राक्षस रहते हैं; वे तपस्वी और ब्रह्मचारियों को मारकर खा जाते हैं[४]। वहीं राम को विराध राक्षस मिला था। मारे हुए ऋषियों की हड्डियों को दिखा कर ऋषियों ने राम से कहा था--यह राक्षसों द्वारा खाए हुए ऋषियों की हड्डियों के ढेर देखिए। पम्पा से चित्रकूट तक के तमाम अरण्य निवासियों का इन्होंने नाश कर दिया है। इनसे हमारी रक्षा कीजिए। ये आर्यों की कन्याओं को जबर्दस्ती हरण कर ले जाते हैं। कौमार्य नष्ट होने पर वह उन्हें अपना पति मान लेती हैं, इसलिए पैशाच, राक्षस और आसुर विवाह भी हमें धर्म-सम्मत स्वीकार करने पड़े हैं[५]।

स तत्र कारयामास राज्यं निहतकंटकम्। साच सूर्पनखा तत्र व्यवसद्दण्डके वने।
(वाल्मीकि रामायण)

१. भक्ष्यन्ते राक्षसैर्भीमैर्नर मांसोपजीविभिः।
ते भक्ष्यमाणा मनुयो दण्डकारण्यवासिनः। (वाल्मीकि)

२ रक्षांसि पुरुषादीनि नानारूपाणि राघव।
वसन्त्यस्मिन् महारण्ये व्यालाश्च रुधिराशनाः।
उच्छिष्टं वा प्रमत्तं वा तापसं ब्रह्मचारिणम्।
अदत्यस्मिन् महारण्ये तान्निवारय राघव। (वाल्मीकि)

३. वसनं चर्म वैयाघ्रं वसार्द्रं रुधिरोक्षितम्। (वाल्मीकि)

४. एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्यनि।
हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधा वने।
पपानदीनिवासानामनुमन्दाकिनीमपि।
चित्रकूटालयानांच कियते कदनं महत्।
ततस्त्वा शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थितः।
परिपालय नो राम वध्यमानान्निशाचरैः। (वाल्मीकि)

५. हत्वा छित्वा च भित्वाच क्रोशंतीं रुदतीं गृहात्। प्रसह्य कन्याहरणं रक्षसां विधिरुच्यते। गुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहोयत्रोपगच्छति। समाविष्टो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः। ज्ञातिभ्यो दक्षिणां दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः। कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरीधर्म उच्यते।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राम–परमेश्वर

जन्म और वंश— उत्तर कोशल राजवंश की मुख्य शाखा की ३९ वीं पीढ़ी में राम का जन्म हुआ। ये दशरथ आजेय के ज्येष्ठ पुत्र थे। उत्तर कोशल राजवंश मुख्य सूर्य वंश था। इसकी राजधानी अयोध्या थी, जिसकी स्थापना मनु ने तथा पूर्ति इक्ष्वाकु ने की थी। इस वंशावलि को हम ने यथेष्ट ऊहा पोह के बाद भली भांति छान बीन करके रामायण महाभारत तथा पुराणों का एवम् पार्जीटर और सीतानाथ प्रधान की गवेषणाओं पर भली भांति विचार करके पिछले प्रकरणों में लिखा है[1]।

इस वंश के महान पुरुष और राज्य स्थान—ऋग्वेद में सरयू नदी के तट पर पहिली आर्य बस्ती बसने का उल्लेख है[2]। विदेह में पहिले दलदल था, माधव ने उसे देश बनाया, कोशल के उत्तर में हिमालय, पूर्व में सदानीर, दक्षिण में सहनदी, पश्चिम में पांचाल देश। शाक्यों का राज्य कोशल के अन्तर्गत था[3]। अयोध्या श्रावस्ती, और साकेत सूर्य वंशियों की राजधानी थी। श्रावस्ती राप्ती के निकट सहेत–महेत हैं। कोशल राज्य कुरु पांचाल से पीछे और विदेह के पूर्व महत्त्वपूर्ण हुआ[4]। इक्ष्वाकु वंशी, विशाला–वैशाली[5], मिथिला[6] तथा कुसीनारा[7] में राज्य करते थे।

इस वंश के—मनु वैवस्वत, शर्याति, त्रसदस्यु, अम्बरीष और मान्धातृ वेदर्षि थे। इक्ष्वाकु का उल्लेख ऋग्वेद[8] अथर्ववेद में है। मान्धाता, यौवनाश्व का उल्लेख

---

१. ब्रह्म ७, २२६। आदि ब्रह्म ७। पद्म, सृष्टि ८। विष्णु, भाग ४। २। भागवत भाग नवां १, १३, ५, ६। देवी भागवत भाग ७ अ० ८, ९। मार्कण्डेय २०। ऋग्वेद प्रथम ६७। ब्रह्माण्ड, लिंग पुराण–ब्रह्म १३८। स्कन्द पु० में ब्रह्म १०४। वाल्मीकि रामायण। ब्रह्म १५४। एतरेय ब्राह्मण अध्याय ७, ३।

२. ऋग्वेद ४, ३०, १८

३. सुत्तनिपात।

४. शतपथ ब्रा०।

५. रामायण ४७। ११। १२

६. वायु ८९, ३

७. जातक नं० ५३१ II ६–१–१२।

८. ऋग्वेद X ६०। ४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गोपथ ब्राह्मण में है[१]। पुरुकुत्स ऋग्वेद में है[२], त्रसदस्यु पुरुकुत्स के पुत्र हैं[३], त्रयारुण भी इक्ष्वाकु हैं[४]। भागीरथ, भाजेरथ, अम्बरीष, ऋतुपर्ण, दशरथ और राम समर्थ पुरुष हैं[५]।

संक्षेप में सूर्य वंशी नरेशों में मनु–इक्ष्वाकु, पुरंजय, मान्धाता, त्रसदस्यु, (ऋग्वेद में प्रशसित) वृक, नाभाग, अम्बरीष, दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम (मुख्य शाखा) हरिश्चन्द्र, रोहित, सगर, भागीरथ. ऋतुपर्ण, नाभानेदिष्ट, करन्धम, अवीक्षित, मरुत, विशाल, शर्याति और यदु प्रसिद्ध हुए। इनमें मनु, इक्ष्वाकु, मान्धातृ, त्रसदस्यु, दशरथ, राम, हरिश्चन्द्र, सीरध्वज, सगर और भगीरथ अति प्रसिद्ध हुए। उत्तर भारत में इनके नाम का डंका बजा। राम की सत्ता सर्वोपरि हुए। दशरथ ने तिमिध्वज शम्बर को, सुदास ने वर्चिन को और राम ने रावण को जय करके राक्षसों और असुरों के तीन प्रमुख महाराज्यों को नष्ट किया।

इस प्रकार राम के समकालीन राजाओं में—हरिश्चन्द्र, सगर. सुदास, कल्माषपाद सीरध्वज, कुशध्वज, भानुमन्त, धर्मध्वज, ये सूयवंशी तथा सार्वभौम, धृतिमन्त, सोमक, सुदास, दिवोदास (वैदिक) रुचिराश्व. सुधन्वा, वत्स, मधु, दुर्जय, सुप्रतीक, लोमपाद, युधाजित् अन्य राजा थे।

राक्षस-असुर राजाओं में––और दैत्य वंश में परम प्रतापी रावण, मारीचि, सुबाहु थे।

ऋषियों में––वशिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, ऋष्यश्रृङ्ग, मित्रभुकाश्यप, सामकाश्व, देवराट, मधुच्छन्दस, प्रतिदर्श, गृत्समद, अगस्त्य, अलर्क, भरद्वाज[६]।

दशरथ और राम—दशरथ और राम दोनों का सबसे प्रथम उल्लेख हमें ऋग्वेद में मिलता है[७]। परन्तु वे अयोध्या से सम्बन्धित नहीं हैं। इसके बाद राम का पूर्ण परिचय बाल्मीकि रामायण से प्राप्त है। इसके अतिरिक्त, ब्रह्मपुराण,[८] महाभारत[९] विष्णु पुराण और हरिवंश तथा श्रीमद्भागवत में भी है। वाल्मीकि की

---

१. गोपथ I २, १०।
२. ऋग्वेद I ८३, ७ VI २०, १०। शतपथ X II ५, ४५
३. ऋग्वेद IV ३८, १, VII १९, ३।
४. ऋग्वेद V, २०। पञ्चविंश ब्रा० XIII ३, १२
५. ऋग्वेद X ६०२। १००, १७
६. पार्जीटर और डा० प्रधान के मतानुसार। हरिवंश, ब्रह्म पु०।
७. ऋग्वेद, II२७, ४। (दशरथ) ऋ० x९३, १४ (राम)
८. ब्रह्मपुराण १५४।
९. म० भा०, वन पर्व।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राम-कथा विख्यात है। जिसका सारांश यह है—कि दशरथ को वृद्धावस्था तक एक पुत्री शांता के अतिरिक्त कोई सन्तान नहीं हुई। शान्ता को दशरथ के मित्र राजा रोमपाद (अंग नरेश) ने गोद लिया। उसका विवाह ऋष्यशृङ्ग से हुआ। पीछे ऋष्यशृङ्ग से पुत्रेष्ठियज्ञ कराया गया, जिसके फलस्वरूप राम (कौशल्या) लक्ष्मण (सुमित्रा) भरत–शत्रुघ्न (कैकेयी) उत्पन्न हुए। किशोर वय में राम लक्ष्मण को विश्वामित्र अपने सिद्धाश्रम में ले गए, जहां उन्होंने राम लक्ष्मण को शस्त्रास्त्र शिक्षा दी, तथा वहीं इन्होंने ताटिका राक्षसी और सुबाहु को मारा, और मारीचि को परास्त किया। तदन्तर मिथिला जा जनक सीरध्वज के स्वयंवर में धनुष भंग कर सीता को विवाहा, साथ ही सीरध्वज की भतीजियों से तीनों कुमारों के ब्याह हुए। यहीं राम का हैहय वंश विध्वंसकारी परशुराम से साक्षात हुआ। राम सपत्नीक कुछ दिन अयोध्या रहे और कुछ दिन मिथिला रहे। पीछे जब भरत–शत्रुघ्न ननिहाल गए हुए थे, दशरथ ने राम को यौवराज्य अभिषेक करना चाहा, जिस पर विमाता कैकेयी ने मन्थरा दासी के कुपरामर्श से पूर्वदत्त वरों के आधार पर १४ वर्ष के लिए राम बनवास और भरत के लिए राज्य मांग लिया। राम के बनवास जाने पर दशरथ का दुःख से प्राणान्त हो गया[१]। भरत जब राम को लौटाने में असमर्थ हुए तो वे उनके प्रतिनिधि रूप राज्य करने लगे। राम कुछ दिन चित्रकूट रह दण्डकारण्य में चले गए[२]। वहां पञ्चवटी में रहे, तथा जन स्थान में अगस्त्य से मिले[३]। यहीं रावण-भगिनी सूर्पनखा और खरदूषण से उनका विग्रह हुआ, पीछे रावण ने सीता हरण किया। इसी समय मारीचि वध हुआ और फिर सीता की खोज में ऋष्यमूक पर पम्पा सरोवर तट पर सुग्रीव, हनुमान से भेंट कर बाली को मार, सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाया[४]। पीछे हनुमान से सीता की खोज करा समुद्र पर सेतु बांध लंका पर अभियान किया, जहाँ घोर युद्ध में रावण सपरिवार मारा गया।

---

१. वन गमन के छठे दिन दशरथ का प्राणान्त हुआ। तब उनके शरीर को तेल में रख भरत को बुलाने दूत गए। (वाल्मीकि)

२. यह निष्कासित आर्यों का स्थान था, दोषी जन को आर्य दण्डकारण्य में निष्कासित करते थे।

३. राम चित्रकूट में १० मास और पञ्चवटी में १२ वर्ष रहे, यहां मनुष्य-भक्षी राक्षस रहते थे, उन्हें मारा। अगस्त्य ने सर्वप्रथम विन्ध्य और महाकान्तार को पार कर दक्षिण में इल्वल राक्षस को मार उपनिवेश स्थापित किया था। वैदर्भी लोपामुद्रा इनकी पत्नी थी। दोनों वेदर्षि थे। इन्होंने अरब समुद्र के जलदस्युओं को नष्ट कर जल-व्यापार निष्कंटक किया था। (ऋग्वेद) लोपामुद्रा ने राम के मित्र अलर्क को आशीर्वाद दिया था।

४. इन दिनों किष्किन्धा दक्षिणांचल में सर्वश्रेष्ठ नगरी थी। (वाल्मीकि)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा सीता का उद्धार कर और मित्र विभीषण को लङ्का राज्य दे राम अयोध्या लौटे[1]। पन्द्रहवें वर्ष के ठीक प्रथम दिन राम से भरत की नन्दिग्राम में भेंट हुई। पीछे अयोध्या में राज्याभिषेक हुआ। तदनन्तर अपवाद के भय से राम ने सगर्भा सीता को वन में त्याग दिया, जहां ऋषि वाल्मीकि ने उसे आश्रय दिया। वहां लव-कुश दो पुत्र हुए, जिन्हें ऋषि ने संस्कृत किया, तथा रामचरित लिखा।

शत्रुघ्न ने यादव भीम सात्वत के आग्रह से मथुरा के शासक लवणासुर को मार, मथुरा अधिकृत की। पीछे राम ने सीता की स्वर्ण-मूर्ति बना यज्ञ किया। भरत के मामा को गन्धर्वों ने मार डाला था, इससे भरत ने गन्धर्वों को मार कैकय देश अधिकृत किया। समय पाकर और भी अनेक राज्य राम के परिजनों ने जय किए। राम ने कुश को युवराज बनाया[2]। शत्रुघ्न के दो पुत्र हुए, सुबाहु और शत्रुघाती। भरत के पुष्कर और तक्ष। लक्ष्मण के अंगद और चन्द्रसेन। पीछे तक्ष ने तक्षिला में और पुष्कर ने पुष्करावती में, अपने राज्य स्थापित किए[3]। कुश ने विन्ध्य के दक्षिणांचल से कुशस्थली में भी एक राज्य स्थापित किया। लव को उत्तर कोशल राज्य पृथक करके दिया, राजधानी श्रावस्ती हुई। लव ने लवकोट (लाहौर) बसाया। अंगद और चन्द्रसेन (चन्द्रकेतु) चन्द्रावती, और अंगद (मल्लदेश) के राजा हुए[4]। सुबाहु को मथुरा का और शत्रुघाती को विदिशा का राज्य मिला। इस प्रकार राम ने अपने और भाईयों के आठों पुत्रों को राज्य बांटा। राम ने शत्रुघ्न, सुग्रीव, विभीषण, सब मिलाकर ग्यारह राजाओं को अपने बाहुबल से राज्य जीतकर राज्याभिषेक दिया। अंग, बंग, मत्स्य, शृंगवेरपुर, काशी, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिण कोशल, किष्किंधा और लंका राम की मित्र शक्तियां थीं।

रामचरित्र अत्यन्त उदात्त, और दैवी गुणों से परिपूर्ण है। वे लोकोत्तर आदर्श पुत्र, पति, पिता, मित्र और नृपति रहे। उनका शौर्य, रण-पांडित्य और दृढ़-चित्तता असाधारण थी। फिर भी राम अपने जीवन में दुखी रहे। युवराज होते ही वनवासी हुए। वनवास काल में सीता विछोह और रावण-विग्रह की विपत्तियां आईं। अयोध्या लौटने पर सीता को त्यागना पड़ा, पत्नी और पुत्र-सुख से वंचित रहना पड़ा। पीछे घटनावश लक्ष्मण को भी त्यागना पड़ा। जिस से दुखी हो लक्ष्मण को सरयूगर्भ में

---

१. लंका में सीता १० मास रही (वाल्मीकि)

२. पद्म पु० । vi २७१-५४-५५ ।

३. वायु ८८, विष्णु पु० iv४, ४७, पद्म पु० v ३५'२३-४, vi२७१ १० । अग्नि० ११, ८-८ ।

४. वायु ८८, १८७, ८ । ब्रह्माण्ड iii ६३, १८८-९ विष्णु iv ४, ४७ । यह स्थान हिमाचल प्रदेश में था ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जलमग्न हो प्राण घात करना पड़ा। पीछे उनके दुख से दुखी राम, भरत, शत्रुघ्न तीनों को गुप्तारघाट में आत्मघात करना पड़ा।

वाल्मीकि और उनकी रामायण

रामचरित-सम्बन्धी जितने ग्रन्थ संस्कृत और भारतीय वर्तमान भाषाओं में हैं, उतने कृष्ण और बुद्ध को छोड़ और किसी एक व्यक्ति के विषय में नहीं लिखे गए। बौद्ध ग्रन्थों में भी 'राम' का वर्णन बहुत है। तथा एक ग्रन्थ 'दशरथ जातक' तो बहुत ही प्रसिद्ध है। जिसमें राम कथा अधिकांश में ज्यों-की-त्यों लिखी है। जैन ग्रन्थों में भी राम चर्चा बहुत है। एक जैन रामायण भी है। तथा अपभ्रंश में भी जैन विद्वानों ने रामचरित पर बड़े २ काव्य लिखे हैं, जिनमें स्वयंभू कवि कृत रामायण अप्रतिम है। वेद और विविध पुराणों में तो रामचर्चा है ही। परन्तु रामचरित का सबसे अधिक प्रामाणिक सांगोपांग वर्णन वाल्मीकि रामायण में ही है, तथा वाल्मीकि रामायण रामचरित की विश्व-विश्रुत सर्वाधिक प्राचीन, सर्वाधिक प्रामाणिक, सर्वाधिक सांगोपांग; पूर्ण पुस्तक है।

कहा जाता है कि वाल्मीकि राम के जीवन-काल में जीवित थे। उन्हीं के आश्रम में भगवती सीता ने निर्वासन के बारह वर्ष व्यतीत किए, तथा वहीं लव-कुश नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। वाल्मीकि ने राम के जीवन-काल में ही रामायण की रचना की, तथा उसे रामात्मज लव-कुश को कण्ठस्थ कराया। कालान्तर में जब राम ने नैमिषारण्य में, जो वर्तमान सीतापुर से सोलह मील दूर एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है, यज्ञ किया, तब वाल्मीकि ने लवकुश के द्वारा नैमिष में रामायण का गान कराया। इस गान को राम ने सुना। सीता का शरीरान्त भी वाल्मीकि के आश्रम में हुआ[1]।

परन्तु यह बात सर्वथा असम्भव है। निस्सन्देह वाल्मीकि रामायण बुद्ध और पाणिनी से पूर्व का ग्रन्थ है। परन्तु यह ग्रन्थ ई० पू० सातवीं शताब्दी में आज से कोई २६०० वर्ष पूर्व लिखा गया है। इस समय यह ग्रन्थ तीन पाठों में उपलब्ध है। यद्यपि तीनों पाठों में सूर्यवंश की प्राचीन वंशावली का कुछ भाग थोड़ा विकृत हो गया है, फिर भी प्राचीन इतिहास के लिए यह अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है। फ्रान्स के प्रसिद्ध पुरातत्वविद् स्वर्गीय श्री लेवी ने इस ग्रन्थ के महत्व पर प्रकाश डाला है। यह बात भी अब प्रमाणिक हो चुकी है कि बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड मूल रामायण में नहीं थे। इन्हें ई० पू० तीसरी शताब्दी में जोड़ा गया था। मूल ग्रन्थ में पांच काण्ड बारह हजार श्लोकों में थे[2]। रामायण की फलश्रुति छठे काण्ड के अन्त में है।

---

१. देखिए, वाल्मीकि रामायण।

२. महाभारत।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फिर भी सातवां काण्ड काफी प्राचीन है। भास (ई० पू० प्रथम शताब्दी), भदन्त अश्वघोष (प्रथम शताब्दी),[1] कालिदास (पाँचवी शताब्दी), भवभूति (आठवीं शताब्दी) ने इस काण्ड में कहीं घटनाओं कोउद्धृत किया है।[2] निरुक्त व्याख्याकार दुर्ग ने तो वाल्मीकि रामायण से श्लोक भी उद्धृत किए हैं[3] वाल्मीकि रामायण के अनेक उद्धृत श्लोक तथा उनकी छाया महाभारत में है[4]।

वाल्मीकि को राम का समकालीन तो कहा ही गया है, भील या डाकू एवं नीच जाति का भी बताया गया है। आजकल भंगी अपने को वाल्मीकि की सन्तान कहते हैं, अपनी जाति भी वाल्मीकि ही बताते हैं। परन्तु ये सारी ही बातें निराधार हैं। राम के समकालीन किसी वाल्मीकि नाम के ऋषि का कोई अस्तित्व नहीं है। यद्यपि उनका आश्रम अयोध्या के निकट ही कहा गया हैं। पर उसकी चर्चा केवल उत्तर-काण्ड में ही है; इससे पूर्व नहीं, जो प्रक्षिप्त हो सकती हैं। वाल्मीकि ई० पू० सातवीं शताब्दी में बुद्ध से कोई सौ वर्ष पूर्व के पुरुष हैं। उनका जन्म भृगुवंश (च्यवन की परम्परा में) हुआ था[5]। और वह किसी इक्ष्वाकुवंशी राजा के आश्रित थे। यह अश्वघोष का वचन है। जो ईसा की प्रथम शताब्दी में विद्यमान थे। तथा वाल्मीकि उनसे कुछ ही सौ वर्ष पूर्व यह ग्रन्थ लिख चुके थे। तब तक इस ग्रन्थ का वर्तमान रूप नहीं बन पाया था, और रामायण के केवल पाँच काण्ड और १२०० श्लोक ही थे। केवल राम के परिपूर्ण वर्णन का यही सर्व प्राचीन ग्रन्थ है।

सीताराम के यमज पुत्र लव-कुश थे, उन्हें वाल्मीकि ने रामायण का पाठ पढ़ाया, और उन्होंने उसे राम के यज्ञ में गान किया, यह भी कुछ विचित्र-सी बात है। लव-कुश राम-सीता के पुत्र थे, परन्तु हकीकत तो यह है कि प्राचीन काल में, जो गाने-बजाने का, नट का, या कथा सुनाने का पेशा करते थे--उन्हें 'कुशीलव' कहते थे। कुशीलव का अर्थ है--"नृत्य के साथ गाने वाले।" ऐसे नाचने-गाने वाले पुरुषों को

---

१. बुद्धचरित ११। १३। सौदरनन्द ११। ४३, उत्तरकाण्ड सर्ग ६७।

२. उत्तर रामचरित नाटक.

३. "अपिचायं पुरागीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
न हन्तव्यः स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवंगम।"
(रामायण युद्धकाण्ड ८१।२८, और महाभारत द्रोणपर्व अ० १४४।८१)

४. महाभारत के नलोपाख्यान में ऐसे अनेक श्लोक हैं।

५. "वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यं जग्रन्थयन्नच्यवनो महर्षिः" (बुद्धचरित-अश्वघोषकृत, १।८३) तथा वा० रा० उत्तर कां० ९४।२५।२६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कौटिल्य भी 'कुशीलव' कहता है[1]। रामायण काल में नट-नर्तक उत्सवों पर नाच-गाकर कथा-वार्ता सुनाते थे[2]। सम्भव यही प्रतीत होता है कि ऐसे ही किन्हीं 'कुशीलव' (नटों) ने राम के यज्ञ में सीता व्यथा की कथा सुनाई हो। परन्तु वह कथा वाल्मीकि कृत नहीं हो सकती। यदि वह कोई कथा सुनाई थी, तो वह अब नष्ट हो चुकी, तथा राम-कथा का मूलाधार वही कथा होगी, जिसे सम्भवतः वाल्मीकि ने देखा हो, या उसके सम्बन्ध में कुछ सुना हो।

राम एक महान् सांस्कृतिक पुरुष--

राम एक धीर-वीर उदात्त और कर्त्तव्यनिष्ठ पुरुष थे। उन्होंने राज त्याग तथा पिता की आज्ञा मानकर जो यश संचय किया, वह तो असाधारण था ही, परन्तु उनका महत्सांस्कृतिक कार्य रावण वध और राक्षस वंश की समाप्ति थी।

लंका बड़ी दुर्धर्ष और सम्पन्न पुरी थी। उसके चार द्वार थे, जिन पर उपल यन्त्र (पत्थर फेंकने के यन्त्र) लगे थे। किले के चारों ओर जलचर सेवित खाई थी। अगाध यन्त्र द्वारा जल चढ़ाने से शत्रु-सेना डूब सकती थी[3]। ऐसे राक्षस राज रावण को आमूल नष्ट करना आसान न था। राम से प्रथम पांचाल नरेश दिवोदास और दशरथ ने तिमिध्वज शम्बर के सौ किले तोड़ कर उसको मार डाला था[4]। इस के भतीजे सुदास ने अनार्य वर्चिन को मार और भेदादि महासेना-नायकों को समूल नष्ट कर भारत में अनार्य बल तोड़ दिया था। अब राम ने रावण को मार भारत के दक्षिणांचल ही को नहीं, मेडागास्टर से आस्ट्रेलिया तक के समस्त द्वीप समूहों और समुद्र तटों को अनार्य प्रभाव से मुक्त कर दिया।

इस तरह शंबर, वर्चिन और रावण का निधन होने से पम्पा, मलय, महेन्द्र, लंका और अफ्रीका तक आर्य प्रभाव हो गया। अगस्त्य ऋषि प्रथम ही दक्षिण में आर्य उपनिवेश स्थापित कर चुके थे। अब राम के द्वारा यह महत्कर्म हुआ, जिसमें राम का यश दिग्दिगन्त तक फैल गया। वाल्मीकि ने इसी से तो कहा है :—

यावत्स्थास्यतिगिरयः सरितश्चमहीतले।
तावद्रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥[5]

---

१. "एतेन नट नर्तकगायकवाद वाग्जीवन कुशीलव प्लवक सौमिक चरणानां स्त्रीव्यवहारिणां स्त्रियोगूढ़ाजीवश्च व्याख्याताः। (कौटिल्य)

२. नटनर्तक संघानां गायकानां च गायताम्। यतः कर्ण सुखावाचः सुश्रव जनताततः।

३. वाल्मीकि, लङ्का का० १३०।

४. ऋग्वेद, सातवां मण्डल।

५. रामायण के अतिरिक्त महाभारत, ऋग्वेद, ब्राह्मण तथा पुराणों में तो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राम-वर्णन आया ही है, संस्कृत साहित्य में भी माघ, कालिदास, भवभूति, राजशेखर, दामोदर मिश्र आदि ने राम कथा का आश्रय ले लेखनी धन्य की है।

राम मूर्ति पूजन—

यह एक बड़ी ही महत्त्व और आश्चर्य की बात है कि राम की मूर्ति अथवा कोई चिह्न भूमण्डल-भर में पूजित है। विश्व-भर में राम-माहात्म्य कैसे विस्तृत हुआ, यह समझ में नहीं आता है।

सबसे प्रथम भास ने 'प्रतिमा' नाटक में प्रतिमागृह में राम के पूर्वजों की प्रतिमा की स्थापना का उल्लेख किया है[1]। दूसरे किसी ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं पाई गई। भास का काल मसीह पूर्व प्रथम शताब्दी है। भवभूति[2] लिखता है, कि राम अयोध्या को लौटते समय पुष्पक विमान से सीता को अपने घटनास्थल दिखला रहे हैं। दशरथ जातक' की कुछ राम-सम्बन्धी घटनाएँ साँची और बड़ौत की प्राचीन प्रस्तर-कला में अभिव्यक्त की गई हैं।

वराहमिहिर 'वृहत्संहिता' में राम-मूर्ति १२० अंगुल की बनाई जाने का विधान कहता है,[3] प्राचीन श्रावस्ती (सहेत-महेत) के ध्वंसों में भी हनुमान, लक्ष्मण सूर्पनखा संवाद सम्बन्धित मिट्टी की मूर्तियाँ—जो सम्भवतः गुप्तकालीन हैं, मिली हैं। एक मूर्ति में सूर्पनखा पृथ्वी पर घुटने टेके, हाथ जोड़े लक्ष्मण से विवाह-याचना कर रही है[4]। देवगढ़ देवालय में, जो छठी शताब्दी का निर्मित है और गुप्तकालीन है, रामचरित से सम्बन्धित अनेक मूर्तियां प्रदर्शित हैं। इन मूर्तियों में राम बाएँ हाथ में धनुष लिए दाहिने हाथ से अभय मुद्रा प्रकट कर रहे हैं। राम मयंक आसीन हैं, सीता खड़ी हैं। दाहिनी ओर लक्ष्मण सूर्पनखा के केश पकड़ प्रहार कर रहे हैं। अन्य घटनाएँ भी हैं।

मध्यप्रान्त में सीरपुर तथा ग्वालियर से उत्तर-पढ़ावली के भग्न दुर्ग में १० वीं शताब्दी के एक शिव-मन्दिर में पत्थर में राम-सम्बन्धी चित्र खुदे हुए हैं। परखाम' में गुप्तकालीन हनुमान की विराट्काय मूर्ति मिली है[5]। पहाड़पुर (बंगाल) में ९ वीं शताब्दी के कुछ राम-सम्बन्धी चित्र खोदे हुए हैं, जिनमें वानर पत्थर उठा-उठाकर सेतुबन्ध के काम में लगे हैं। तथा बाली-सुग्रीव युद्ध प्रदर्शित है।

---

१. प्रतिमा नाटक (भासकृत)
२. उत्तर रामचरित।
३. वृहत्सहिता, ५७। ३०।
४. यह मूर्ति लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है।
५. यह मूर्ति मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। इसका सिर टूटा हुआ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजशाही जिले के गणेशपुर गांव से पालकालीन मूर्तियां राम–सीता लक्ष्मण और हनुमान की मिली हैं।

दक्षिण एलोरा के ८वीं शताब्दी के गुहा स्थित कैलाश मन्दिर में ४२ पौराणिक घटनाएं पत्थर पर खुदी हैं। एक में रावण के कैलाश उत्थान का दृश्य अंकित है। ऐसा ही एक गुप्तकालीन फलक मथुरा में सुरक्षित है। पट्टू कदल के विरूपाक्ष मन्दिर में; जो ४७० ई० का है, पल्लवकालीन रामचरित-सम्बन्धी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। विजय नगर के विठ्ठल स्वामी के मन्दिर में; तथा जिञ्जी दुर्ग के मन्दिर के द्वार-स्तम्भों पर भी रामचरित-सम्बन्धी दृश्य अंकित हैं। १५वीं १६वीं शताब्दी की रामावतार-सम्बन्धी कांसे की, तथा आधुनिक हाथी दांत की बनी राम-लक्ष्मण सीता की मूर्तियां बहुत हैं। यद्यपि गुप्तकालीन शिला-लेखों में राम के विष्णु-अवतार का कहीं भी आभास नहीं मिलता है, परन्तु कालिदास ने रघुवंश[1] में लिखा है, कि रावण को मारने ही के लिए विष्णु ने राम का अवतार लिया। उसने हरिविष्णु को राम-नाम से सम्बोधित किया है[2]। इसके बाद तो राम को विष्णु अवतार मान ही लिया गया। सर्वत्र ही उनकी पाषाण-प्रतिमाएँ प्राप्त हैं। इन सब मूर्तियों में राम के एक हाथ में बाण और धनुष है। ऐसी ही एक १०वीं शताब्दी की मूर्ति रमा के 'पैगन' स्थित 'नाथलिंग' के मन्दिर के ताख में रखी है। शिला-लेखों में राम का सर्वप्रथम शिला-लेख गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त का एरण में है, जिसमें राम का संकेत है[3]। भारत के अतिरिक्त मध्य एशिया, चीन, बर्मा, स्याम, चम्बा, कम्बोडिया, जावा, थाइलैण्ड में राम-सम्बन्धी मूर्तियां और लेख मिले हैं।

चम्बा के प्राचीन शिलालेखों में दशरथ-पुत्र राम के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए 'रामकीर्ति' का उल्लेख है। कम्बोडिया के ६ठी शताब्दी के एक शिलालेख से प्रकट है, कि वहाँ रात-दिन रामायण, महाभारत, पुराण का पाठ होता था। थाइलैण्ड की राजधानी बैंकाक के राज-मन्दिर की दीवारों पर रामचरित-सम्बन्धी झांकियां अङ्कित हैं।

बर्मा में 'रामावत्ती' की ९वीं शताब्दी में स्थापना राम के नाम पर हुई। 'अमरपुर' बरमा के बिहार में, राम, लक्ष्मण, सीता तथा वानरसेना अङ्कित है। कम्बोडिया के 'हेमश्रंगगिरि' में जगत्प्रसिद्ध मन्दिर पर रामायण-सम्बन्धी चित्र अङ्कित हैं। मध्य जावा के ९वीं शताब्दी के 'प्राम्बानम्' के मन्दिर में ऐसे ही चित्र हैं। प्राम्बानम् में रामायण के २० संदर्भों का भव्य तक्षण है।

---

१. रघु०, १० सर्ग।
२. रघु०, १३।२।
३. "नृपतयः पृथुराघवाद्याः" एरण का शिलालेख।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

योरोप के देशों में भी राम का प्रभाव प्रकट होता है। योरोप की सारी ही जातियाँ किसी-न-किसी अंश में सूर्य वंश, भरत वंश और राम के नाम को सांस्कृतिक रूप में साथ ले गई हैं। खासकर जर्मनी और इङ्गलैण्ड में तो राम से सम्बन्धित बहुत नाम हैं[१]। फ्रान्स के भी कुछ नगर और गांव राम की ध्वनि प्रकट करते हैं[२]। इसी प्रकार स्पेन[३], स्वीडन[४], नार्वे और स्कन्डीनेविया[५], ग्रीस[६] और इटली[७] में भी है।

मानव-शास्त्रियों ने मनुष्य जाति को पांच भागों में विभक्त किया है। रंगों के हिसाब से ये गोरे, पीले, काले, बादामी और लाल हैं। इनमें गोरी जाति प्रधान है, मिश्र, असीरिया, बैबिलोनिया, फिनिशिया, फारस, यूनान, इटली, भारत, हिब्रू जातियां गोरी हैं। गोरी जाति की तीन शाखाएँ हैं—आर्य, सैमेटिक और हैमेटिक। आर्य सर्वप्रधान हैं। आर्यों के अन्तर्गत भारतीयों, जर्मनों, रूसियों, अंग्रेजों और फ्रान्सीसियों की गणना है। इसी से इन सब जातियों में इस आर्य-नेता, विजेता मर्यादा पुरुषोत्तम राम का किसी-न-किसी रूप में सांस्कृतिक मिश्रण है।

होमर और वाल्मीकि—

ग्रीक-कवि होमर ने अपने अमर काव्य 'इलियड' में 'रामायण' से ही प्रेरणा ली है—ऐसा प्रतीत होता है और इसका समर्थन अब अनेक विद्वान् भी करते हैं। अब आप इलियड और रामायण के कथानक की समानता पर विचार कीजिए। इलियड के मुख्यपात्र दो भाई हैं। जिनका आपस में अत्यन्त प्रेम है। रामायण में भी राम और लक्ष्मण ऐसे ही हैं। इलियड में उन दोनों भाइयों को उनका पिता आरगल अपने राज्य से निकाल देता है, इधर राम लक्ष्मण को भी बनवास होता है।

---

१. इङ्गलैण्ड
Ramo Island, Rame, Ramar, Rampisham, Ram Head, Rams gate, Ramsgrave, Ramelton, Ramsden, Ramsbury, Ramsgill.
जर्मनी
Ram Saw, Ramsteen, Ramstadt, Ramsberg Rampitz, Sittard, Rambow, Ramsdorf, Ramillies.

२. Rambonillet, Ramerput.

३. Ramalde, Rambla.

४. Seyo, situo, sita, Ramsty. Rameski.

५. Ramlosa, Ramen, Raamnso, Ramsjo, Rambik, Ramsele, Ramshogda, Rmnas, Ramhall, Ramduia.

६. Sitasova.

७, Ramo, Ramo.

इसी प्रकार के अनगिनत उदाहरण हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इलियड का नायक मेनेलिस हेलेन को उसके पिता द्वारा आयोजित स्वयम्वर में सबको जीतकर अपनाता है उसी प्रकार राम धनुषयज्ञ में सीता को वरण करते हैं। राज्य निकाले के समय ट्राय के बादशाह प्रायाम का पुत्र पैरिस, मेनेलिस की अनुपस्थिति में उसके घर आकर उसकी पत्नी को चुराकर समुद्रपार ट्राय नगर में ले जाता है। उसी प्रकार-जैसे राम के पीछे रावण सीता को चुराकर समुद्रपार लंका में ले जाता हैं। ट्राय के महल जमीन से बहुत ऊपर तक बसे थे, जैसे कि लंका की राजधानी भी त्रिकूट पर साधारण सतह से बहुत ऊपर बसी थी।

स्पार्टा के बादशाह मेनेलिस ने ग्रीक-राजकुमार की सेना लेकर बारह सौ जहाजों से आग्नेय समुद्र पार करके ट्राय को घेरा था, उसी प्रकार, जैसे राम ने सुग्रीव की बानर सेना लेकर हिन्द महासागर पार कर लंका को घेरा था।

ट्राय के युद्ध में असंख्या यूनानी सेना थी, जिसमें घुड़सवार और रथी थे। ऐसी ही राम की सेना अपार थी। उसमें रथ भी थे। ट्राय का घेरा अमेनन के नेतृत्व में हुआ था, जिसे यूनान के राजा ने विश्वकर्मा के बनाए अस्त्र दिए थे, तथा उसे इन्द्र ने अपना रथ-घोड़े-सारथी दिए थे। ऐसे ही लंका में राम ने इन्द्र का रथ, घोड़े तथा सारथी-प्राप्त किए और विश्वामित्र के दिए दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया। ट्राय के सेनापति के बाण भी मेघनाथ के बाणों की भाँति उसके तरकस में लौट आते थे। हनुमान की गजना की भाँति ही एक्मस की गर्जना ट्रायनगर की सेना में आतंक उत्पन्न कर देती हैं। हनुमान् ने जैसे लंका के विशाल फाटक को उखाड़ फेंका था, वैसे ही हैक्टर ने ट्रान का मुख्य लोह फाटक उखाड़ फेंका था। ट्राय के युद्ध में अनेक महारथी भारी-भारी पत्थर उठाकर शत्रुओं पर फेंकते हैं, उसी भाँति, जैसे रामायण में वानर और राक्षस फैंकते हैं। ट्राय के युद्ध में और लंका के युद्ध में समान रूप से देवता आकाश में बैठकर युद्ध देखते हैं। ट्राय का वीर योद्धा मार्स जब प्लास के हाथों मर कर भूमि पर गिरा तो तब सात एकड़ धरती घिर गई। रामायण में भी जब कुम्भकर्ण मर कर भूमि पर गिरा तो उसने बड़े भूभाग को घेर लिया। विभीषण की भांति ट्राय का एन्टेनर पैरिस के दुष्कृत्यों से सहमत न था, यदि वहां एन्टेनर न होता तो मेनेलिस मारा जाता, उसी प्रकार लंका में विभीषण न होता तो हनुमान का बचना कठिन था। विभीषण की ही भांति एन्टेनर ने पैरिस को समझाया था कि वह हेलन को लौटा दे। अन्त में एन्टेनर पैरिस को छोड़कर मेनेलिस से जा मिला। उसी प्रकार जैसे विभीषण राम से जा मिला। जैसे युद्ध के बाद रावण के मरने पर राम को सीता मिलती है, उसी प्रकार पैरिस के मरने पर मेनेलिस को हेलना मिलती है। और राम ने जैसे विभीषण को लंका का राजा बनाया, उसी भांति एन्टेनर ट्राय का राजा बनाया गया।

अब आप विचार लें कि वाल्मीकि और होमर के इन दोनों महान् काव्यों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कितनी समानता है। इतना ही नहीं—कहावतें, मुहावरे, जीवजन्तु और दृष्यों में भी होमर का यह महाकाव्य वाल्मीकि की रामायण से बहुत मिलता जुलता है।

राम का काल

अब इस बात पर विचार होना चाहिए; कि राम का काल क्या है। हमारे विचार से मनु-राम का काल त्रेता युग है। इसलिए राम त्रेता-द्वापर की सन्धि में उपस्थित थे। यह काल बहुत करके मसीह पूर्व सत्रहवीं वा अठाहरवीं शताब्दी है। अर्थात् अब से ३८५० वर्ष पूर्व राम का राज्य-काल है।

वैवस्वत मनु से राम तक सूर्यवंश की ३९ पीढ़ियाँ होती हैं। इनके शाखाओं वाले २६ नाम नहीं जोड़े गए हैं। यहीं काल त्रेता युग का भोग काल है। आधुनिक विद्वानों का भी लगभग यही निर्णय है। तथा वह निर्णय बहुत खोज जांच से किया गया है; यहाँ विस्तार-भय से इसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता।

विजयादशमी

आजकल बहुत काल से आश्विन में विजयादशमी का उत्सव मनाया जाता है, जिसमें भारत-भर में रामलीला के बाद रावण के पुतले धूमधाम से जलाए जाते हैं, और माना जाता हैं कि इस दिन रावण की मृत्यु हुई थी। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह बात सत्य नहीं ठहरती है।

भविष्योत्तर पुराण में यह वर्णन है; कि विजयादशमी के दिन शत्रु का पुतला बनाकर उसके हृदय को बाण से बींधना चाहिए। यह सम्भव कि लोगों ने राम रावण में अपने वैयक्तिक शत्रु-मित्र भावों को आरोपित करके राम-रावण युद्ध का अभिनय नव रात्रियों के नौ दिनों में करके विजयादशमी का सम्बन्ध रावण वध से जोड़ दिया हो। उधर नवदुर्गा की भी वीर पूजा होती है, जो शम्भु-निशम्भु असुर के देवी द्वारा हनन करने की मार्कण्डेयपुराण की कथा से सम्बन्धित है।

राम का जन्म चैत्र में हुआ। सम्भवतः तभी से वर्ष का आरम्भ चैत्र से माना जाने लगा। एक पुरानी परिपाटी यह भी थी, कि चैत्र से सातवें मास में इन्द्र पूजा होती थी[1]। पर्थियन प्राचीन इतिहास में भी ऐसा ही उल्लेख है। उस काल में भारत के अन्तर्गत नौ द्वीप थे, प्रत्येक द्वीप पति को स्वराट् और समस्त भारत के अधीश्वर को सम्राट् कहते थे। वर्ष के हर सातवें मास में स्वराट् एकत्र होकर सम्राट् का अभिवादन करते थे; और शपथ लेते थे[1]। दशहरा वही त्यौहार है। हो सकता है कि रावण को जय करने के बाद राम को त्रिलोकिपति की उपाधि मिली हो, और आश्विन में उनका ऐन्द्राभिषेक हुआ हो।

---

१. भविष्य पुराण अ०, ४६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योरोप अमेरिका और ईरान में भी यह उत्सव मनाया जाता था। मैक्सिको में तो 'राम सीतव' उत्सव मनाने वाली एक जाति अभी भी है। ईरान व योरोप के अनेक स्थानों पर सातवें मास में मित्र की उपासना होती थी[२]।

मित्र सूर्य ही का नाम है। उन्होंने अपने सगे भाई वरुण पर ही अभियान किया था, जो एलम इलावर्त का अधिपति हो गया था और असुरों का "इष्टखर" (इष्टदेव) बन गया था। तथा उसने अपनी पूजा प्रचलित की थी[३]। वरुण का सहायक इन्हीं का भतीजा सूर्यपुत्र यम था, जो नरक (Dead Sea) क्षेत्र का अधिपति था। यम की तिथि दशमी है, और वाहन भैंसा है। इसी कारण सम्भवतः दशहरे पर भैंसा मारा जाता है।

वाल्मीकि रामायण रावण की निधन तिथि का ठीक-ठीक वर्णन नहीं करती। परन्तु हमें ऐसे आधार प्राप्त हैं कि इसका हम कुछ अनुमान लगा सकते हैं।

जिस ससय राम को रावण पर चढ़ाई करने की आवश्यकता हुई, उस समय उनके बनवास का १४वाँ वर्ष चल रहा था। वाल्मीकि ने वर्षा ऋतु में राम विलाप का वर्णन किया है। लंकाकाण्ड से यह भी प्रकट है कि वर्षा के चार मास में कोई सीता को ढूंढने नहीं गया। अनुमान होता है कि आश्विन से प्रथम सीता की खोज नहीं हुई। यह खोज कोई आसान न थी। जब सुग्रीव ने सीता की खोज में बानर दल रवाना किया, तो बड़ी बड़ी नदियों तथा द्वीपों और प्रान्तों के नाम गिनाकर यूथ भेजे थे। देशों की परिगणना करते हुए उन्होंने शक, पुलिन्द, वनभूमि, कलिंग, सुम्म, विदेह, मलय, काशी, कोशल, मगध, दण्डकूल, वंग, अंग, उड़ीसा, चेदी, दशार्ण, ककुर, भोज, पाण्डय, विदर्भ, अष्टिक, माहिष्मती, उण्ड्र, द्रविड़, पुण्ड्र, केरल तथा पर्वतों में यामुन, मलय विन्ध्य, हिमाचल, नदियों में-कौशिक शोष्ठा, यमुना, गंगा, सरयू, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी और समुद्र मध्यस्थ देशों और द्वीपों का नाम लिया था। इन द्वीपों, पर्वतों और नदियों को देखते अनुमान किया जा सकता है कि सुग्रीव ने असाधारण साजसज्जा से तैयारी करके वानरों के यूथ देश-देशान्तरों को भेजे होंगे। वर्षा ऋतु के बाद दशहरा ही एक ऐसा पर्व हो सकता था। सो सम्भव है कि दशहरे के दिन ही यह खोजी दल रवाना हुआ हो। कुछ लोगों का मत है कि विजयादशमी के दिन राम ने विजय की यात्रा की थी।

हनुमान ने कुछ खोजी दल प्रथम ही भेज दिए थे। जिस पर सुग्रीव ने हनुमान से कहा था—'तुमने तीव्रगति वाले दूत भेजे सो ठीक किया। परन्तु अब और भी

---

१. मत्स्य पुराण। अग्नि पुराण। वायु पुराण। (भारत वर्णन)
२. हिस्ट्री आफ पर्शिया, vol. i, 419. (Lt. Cal. Sykes कृत)
३. हिस्ट्री आफ पर्शिया, vol. i. Page iii. (,, ,,)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शीघ्रता से बड़े बड़े दूतों को भेजो। उनमें जो दस दिन में लौट कर न आयेगा, उसे मैं प्राण दण्ड दूंगा।" पीछे उसने एक मास की अवधि देकर सेनापतियों को ही भेजा, जिसमें स्वयं हनुमान भी थे। इस प्रकार दो मास खोज में गए, माघ में सैन्यदल चला। एक मास में समुद्र पार किया। सम्भव: चैत्र या बैसाख में युद्ध हुआ, जो ८४ दिन चला, जिनमें ७७ दिन राक्षस सेनानायक लड़े। ७ दिन तक रात-दिन निरन्तर राम-रावण युद्ध हुआ। अनुमान है कि रावण निधन बैसाख कृष्णा चतुर्दशी या चैत्र कृष्णा अमावस्या को हुआ[1]।

राम का जन्म चैत्र शुक्ला नवमी को हुआ। अठारह वर्ष की अवस्था में विवाह हुआ। विवाह के बाद बारह वर्ष अयोध्या में रहे, तीस वर्ष की अवस्था में वनोवास हुआ। वनोवास काल में दस मास चित्रकूट रहे। तथा बारह वर्ष पंचवटी में निवास किया। लगभग दस मास-काल राम-रावण युद्धाभियान में व्यतीत हुआ। पन्द्रहवें वर्ष के ठीक प्रथम दिन नन्दिग्राम में भरत से मिले। उस समय चौवालीस वर्ष की उनकी आयु थी।

सीता का अग्नि प्रवेश और सीता परित्याग

युद्ध के बाद सीता की अग्नि परीक्षा तथा अयोध्या लौटने पर धोबी के अपवाद से सीता त्याग के दो महत्वपूर्ण अंश रामचरित से सम्बन्धित हैं। जिन दोनों का महाभारत में बिलकुल वर्णन नहीं है।

जब सीता को विभीषण ने लाकर राम के समक्ष खड़ा किया, तो राम ने कहा—"कल्याणी, युद्ध में शत्रु को हराकर मैंने तुम्हें जीत लिया, आत्मसम्मान की भावना से प्रेरित होकर मैंने रावण को मार डाला है। मैंने अपमान का बदला चुकाकर मनुष्य का कर्तव्य पूरा किया, तुम्हारे चरित्र पर लोग संदेह कर रहे हैं, तुम मुझे वैसे ही अप्रिय लग रही हो, जैसे दुखती आंखों में दीपक शिखा। इसलिए तुम जहाँ तुम्हारा जी चाहे चली जाओ। मेरी ओर से तुम्हें अनुज्ञा है। ये इतनी दिशाएँ तुम्हारे लिए खुली हैं, मुझे तुमसे अब कोई सरोकार नहीं।"

तब जानकी ने मुख पर छाए आँसुओं को पोंछकर कहा—"हे वीर, गंवार आदमी जैसे नीच स्त्रियों से बात करते हैं, उसी प्रकार तुम आज मुझसे बात कर रहे हो। तुमने मुझे जैसा समझा है, मैं वैसी नहीं हूँ। रावण ने मेरा शरीर जरूर

---

१. देवदानवयक्षाणां पिशाचोरगरक्षसाम्।
पश्यतांतन्महद् युद्धं सप्तरात्रमवर्तत।
नैवरात्रिनदिवसंमुहूर्तंचापिनरणक्षम्।
रामरावणयोर्युद्धं विराममुपगच्छति।
(वाल्मीकि युद्ध०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छुआ, पर मैं अवश थी। मेरे हाथ में तो केवल मेरा हृदय था, जो अब भी तुम्हारा है। और लंका में मैं कैसे रही, इसके साक्षी तो यह हनुमान हैं। तुम इस बानर से ही मनोभाव प्रकट कर देते, तो मैं क्यों तुम्हारी याद में जीवित रहती, तभी प्राण त्याग देती। फिर तुम्हें इतना भारी यत्न और प्राण संकट का कष्ट ही न उठाना पड़ता। विवाह के समय पकड़े मेरे हाथ को तुमने नहीं पतियाया। मेरी भक्ति और सदाचार को तुमने उठाकर ताक पर रख दिया। साधारण पुरुष की भांति सारी स्त्री जाती ही को तुमने पुरस्कृत कर डाला! अरे लक्ष्मण वीर, मेरे लिए चिता तैयार करो, अब अग्नि प्रवेश को छोड़ मेरी गति नहीं![1]

महाभारत में अग्नि प्रवेश की कुछ भी चर्चा नहीं है। बल्कि ऋषियों, देवताओं और पितरों की गवाही को ही काफी समझ लिया गया है। यद्यपि महाभारत रामायण के बाद की है। अवश्य ही यह कथा पीछे से रामायण में जोड़ी गई है।

शम्बूक वध की कथा भी पीछे से जोड़ी गई है।

विष्णु अवतार और राम

विष्णु नाम ऋग्वेद में सूर्य का आया है। यह सूर्य मरीचि अदिति पुत्र थे, इनके बहुत युद्ध असुरों से हुए। पीछे इन्हें देवता माना जाने लगा। ऋग्वेद में इन्द्र के बाद विष्णु ही का अधिक मान है। एतरेय ब्राह्मण, शतपथ तथा तैत्तिरीय अरण्यक में विष्णु देवमण्डल में गण्यमान्यपुरुष हैं। महाभारत विष्णु को परमात्मा-नारायण कहता है, यद्यपि विष्णु के मन्दिर कम हैं। शेषशायी विष्णु भुवनेश्वर, जगन्नाथपुरी तथा खजुराहों में हैं। वाल्मीकि रामायण में राम विष्णु के अवतार नहीं हैं, परन्तु उसके नवीन संस्करणों में अवतारवाद की चर्चा है। महाभारत के नारायणीय खण्ड में दस अवतार माने हैं। उनमें राम भी एक हैं। वायु, बाराह, अग्नि और भागवत पुराण में भी दस अवतार हैं। हरिवंश में छै हैं। राम, कृष्ण सर्वत्र विष्णु अवतार माने गए हैं। पर पूजा कृष्ण की अधिक और प्राचीन है। पातंजल महाभाष्य में राम नाम नहीं है। भवभूति राम को अवतार मानता है। माधवाचार्य ने सन् १२६४ में नरहरितीर्थ को सीताराम की मूर्ति लाने को जगन्नाथपुरी भेजा था, तथा बद्रीनाथ से वे स्वयं राम की मूर्ति लाए थे।

जहां वासुदेव कृष्ण का अवतार की भाँति पूजने का उल्लेख ई० पू० छठी शताब्दी में प्राचीनतम[2] मिलता है, वहाँ राम का नहीं मिलता। गुप्त महाराज

१. वाल्मीकि।
२. पाणिनि। महाभाष्य।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चन्द्रगुप्त पांचवीं शताब्दी में विष्णु ध्वज स्थापन करते हैं। चौथी-पाँचवीं शताब्दी वाला आडवार तामिल संत-संघ विष्णु महिमा गाता है। छठी शताब्दी में वराहमिहिर विष्णु का पूजन लिखता है। महाभारत के व्यूह-पूजन में अलंकारिक वर्णन राम-परिवार का है। १०१३ ई० में जैन-ग्रन्थ 'धर्म परीक्षा' में राम को अवतार माना है। गीता में ११वें अध्याय में जो विराट् रूप कहा गया है, वह विष्णु ही का है।

ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी में वाल्मीकि रामायण, जय तथा मनुस्मृति तीन ग्रन्थ बने। 'जय' बढ़ते-बढ़ते 'भारत' फिर 'महाभारत' हो गया। रामायण में भी बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड पीछे से जोड़े गए। मनुस्मृति में भी वृद्धि हुई। पीछे पुराण बने। विष्णु पुराण पहली दूसरी शताब्दी के लगभग बना।

चौदहवीं शताब्दी के मध्य में भारत में स्वामी रामानुज ने भक्ति-मार्ग प्रचलन करके विष्णु पूजा आरम्भ की। इन्हीं की शिष्य परम्परा में पन्द्रहवीं शताब्दी से रामानन्द ने राम नाम का महात्म्य स्थापित किया। इनकी शिष्य परम्परा में कबीर और तुलसी हुए। तुलसी ने राम के धर्म का सांगोपांग वर्णन किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छठा अध्याय

साहित्य और सभ्यता

१--ऋक्

ऋचा—समय-समय पर ऋषियों ने जो छन्द रचे, उन्हें ऋक् कहा गया, समष्ठी में वे ऋचा कहाईं। आगे ऋचाओं के इस संग्रह को ऋग्वेद नाम दिया गया।

ऋग्वेद का तत्कालीन रूप--ऋग्वेद का वर्तमान रूप महाभारत काल से कुछ पूर्व वेद व्यास ने किया, द्वापर युग के अन्त में। त्रेता युग में ये ऋचाएं बिखरी हुई थीं। तथा वर्तमान ऋग्वेद का सम्पूर्ण साहित्य भी उस युग में निर्मित नहीं हुआ था। सभवतः इस युग में वेद शब्द भी नहीं बना था। समय-समय पर जो महत्त्व पूर्ण घटनाएं होती थीं—उनका वर्णन गेय शैली में कुछ राजा और याजक करते थे। इसके अतिरिक्त कुछ ऋचाएं ऐसी भी तैयार की जाती थीं, जिनमें देवताओं की स्तुति थी। ये ऋचाएं यज्ञों में काम आती थीं।

वैदिक देवता—ऋग्वेद में जिन देवताओं का उल्लेख है, वे आर्य आदित्य भी हैं, और आर्येतर भी। यह बात अब सुप्रमाणित है कि वेदों के निर्माण से पूर्व भारत में एक सुसंस्कृत समाज था। तथा भारत में जब आर्यों का प्रवेश हुआ तब एशिया माइनर और भूमध्य सागरीय प्रदेशों में उच्च कोटि की सभ्यता का प्रसार था। भारत में वेदों के निर्माण से पूर्व जो सुसंस्कृत समाज था--उसकी संस्कृति मिस्र और इराक के पुराने धर्मों के समान थी। उसकी सभ्यता तत्कालीन एशिया माइनर और भूमध्य सागरीय प्रदेशों की संस्कृतियों से भी बहुत साम्य रखती थी। मिस्र-क्रीट-सुमेर, असीरिया, वैविलोकिया-और खल्डिया की संस्कृति में और मानव वंश में बहुत समानता है। नील-युफ्राटिस-तैग्रिस (दजला-फरात) और सिन्धु नदियों के तीर पर बढ़ी हुई प्राचीन संस्कृति का उत्तराधिकार हिन्दु संस्कृति को मिला हैं।

वैविलोनियन संस्कृति का वेदों पर प्रभाव--वैविलोनियन संस्कृति का भी भारी प्रभाव वैदिक संस्कृति पर पड़ा। ऋग्वेद की अनेक ऋचा वैविलोनियन भाषाओं से मिलती है। जिन ऋचाओं का अर्थ सायण आदि भाष्यकार न कर सके-उन पर वैविलोनियन ऋचाओं से काफी प्रकाश पड़ता है[1]।

---

१. यथा 'सृण्येव जर्फरी तुर्फरीतू, ऋग्वेद १०।१०६।६।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में इन्द्र के घोड़ों का विशेषण 'केशी' कहा गया है। सायण ने उसका अर्थ--अयालवाले' किया है। पर यह ठीक नहीं है। केशी लोगों का प्रदेश बैबिलोनिया के निकट था। 'केशी' अश्व का अर्थ है, केशी देश का घोड़ा। इसी देश के एक सरदार ने उर्वशी का हरण किया था, जिसे मार कर पुरु रुवस ने उर्वशी का उद्धार किया था। ऐसा भी संकेत ऋग्वेद की एक ऋचा में है कि केशी लोग रथ हांकने में भी चतुर होते थे[1]। 'शूष' और शुष्म ऋग्वेद में आए हैं[2]। यह शूष सुषा नगरी के निवासी थे--जो संसार की प्राचीनतम ज्ञात नगरी थीं। इसी प्रकार मितज्ञु का उल्लेख ऋग्वेद में चार स्थानों पर आया है। सायण ने इस शब्द का अर्थ किया है--मित जानुक, अर्थात् छोटी जानु वाला। पर यह शब्द वास्तव में एलम के रहने वाले मितन्नि लोगों के लिए है। ये लोग आर्यों के मित्र थे। सम्भवतः आदित्यों ही के वंशज हों। उनके राजा 'आर्यन्' कहाते थे। बोघक कोइ (Boghag-Koi) में मिले, एक मितन्नि राजा के लेख से ज्ञात हुआ है कि ये लोग आर्यों की भांति मित्र वरुण-इन्द्र, और नासत्य देवताओं की पूजा करते थे[3]। इसके अतिरिक्त बैबिलोनिया के नगर 'उर', 'उम्मा' के नाम भी ऋग्वेद में है[4]। ऋचाओं के भाव ऐसे हैं जिनसे इन लोगों के प्रति आदर भाव पाया जाता है। ऋग्वेद की इन ऋचाओं में जहाँ 'उरु-ऊमा-मितन्नि आदि लोगों से मित्र भाव ध्वनित होता है--वहाँ उत्तर के पर्शियनों से शत्रु भाव प्रकट होता है[5]।

पण्डित तिलक ने एक लेख में इस सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाला है। उसमें उन्होंने अथर्व की एक ऋचा के 'तैमात' शब्द का 'तिअमात' (Tiamat) शब्द से सम्बन्ध बताया है। यह तिअमात एक बैबिलोनियन राक्षसी थी, जिस का पाताल पर आधिपत्य था[6]। उस का पति 'अप्सु' था, ऋग्वेद में यह नाम मिलता है[7]। ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में 'यह्व' देवता का नाम आया है—[8]। इस देवता से

---

१. अवावचीत्सारथिरस्य केशी। ऋ० १०।१०२।६।

२. प्र मन्महे शवसानाय सूषमाङ्गूषं। ऋ० १।६२।१।

३. यह लेख ई० पू० १५०० का है।

४. चित्र सेना इषुबला अमृधाः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः। ऋ० ६।७५।९। ये अश्रमास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभिवक्षिवाजम्। ऋ० ६।२१।१२। 'विश्वेभिरूमेंभिरागहि। ऋ० ५।५१।१ 'प्रथमासऊमाः ऋ १०।६।७।

५. सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः। ऋ० १।१०५।८।

६. असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च" अथर्व० ५।१३।६।

७. 'अप्सुजित्' 'अप्सुक्षित'। ऋ० ८।१३।२। और ९।१०६।३।

८. त्वं देवानामसि यह्व होता। ऋ० १०।११०।३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाइविल में उल्लिखित 'जेहोवा' से अधिक साम्य है। एक देवता सुमेरियन 'एअ' या 'य' (Ea)है उसका सम्बन्ध ऋग्वेद में अग्नि के साथ आया है[1]। इसी प्रकार 'उर्वशी' का नाम वेद में आया है--जिस का अर्थ है उर नगर की निवासिनी स्त्री[2]। वैविलोनियन देवता अंशन' (Anshan) का उल्लेख ऋग्वेद में 'अंश' नाम से हुआ है[3]। इसी प्रकार वैविलोनियन 'एतन' (Etana) का सम्बन्ध ऋग्वेद के 'एतश' से है[4]। वैविलोनिया के प्रसिद्ध देवता इश्तर (Ishtar), तम्मूज् (Tammuz), दमुत्सि (Damutsi) का संकेत हमें 'उष' और 'दमूनः' से मिलता है[5]। ऋग्वेद में जो 'उषा' का वर्णन है[6] उसका इश्तर की दन्त कथाओं से निकट का सम्बन्ध प्रकट होता है। जो छः महीने पाताल जाती है और फिर पृथ्वी पर लौट आती है[7]। तम्बूज् या दमूनः के वर्णन ऋग्वेद में विरल ही है[8]। कुछ ऋचाओं में इन्द्र को 'मेष' कहा है[9]। सायण ने मेष का अर्थ किया है 'शत्रुभिः स्पर्द्धमान'। पर यह सुमेरियन 'मेष' (Mes) देवता का उल्लेख है। इस से यह स्पष्ट होता है कि ऋग्वेद की प्रारम्भिक ऋचाओं पर वैविलोनियन संस्कृति का काफी प्रभाव है।

वोग़ज़कोई की सन्धि--वोग़ज कोई की सन्धि का उल्लेख पीछे हुआ है। यह सन्धि ई० पू० १५०० की है। इस में इन्-द-र (इन्द्र) अ-रुन या उ-रु-व्-न (वरुण) मि-इति-र (मित्र) न-स-अत्-ति-इआ (नासत्य) का वर्णन है। मितन्नि के शासक इन देवताओं की पूजा करते थे, जो सभी प्राचीन वैदिक देवता हैं। उन मितन्निओं के नाम भी आर्यों जैसे थे—अर्ततम्-अर्तमन्य-सौस्सतर-सुतर्ण, सुवन्धु, दुसरत्त, सुवर्दत्, यसदत्। वोग़ज कोई की सन्धि में स्वाधीन राज वंशों का उल्लेख है।

---

१. ऋ० ६। १५। ५।

२. ऋ० १०। ९५।

३ त्वमंशो विदथे देव भाजयुः। ऋ० २। १। ४।

४. सएतशो रजांसिदेवः सविता महित्वना' ऋ० ५। ८१। ३।

५. देखिए Myths of Babylonia P. १३।

६. उषा याति स्वसरस्य पत्नी। ऋ० ३। ६१। ४। 'यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेन'। ऋग्वेद ७। ७१। ४।

७. तिलक और स्वामी दयानन्द ने उषा के इस वर्णन के आधार पर आर्यों का मूल स्थान उत्तर ध्रुव माना है। यदि 'उषा' वैविलोनियन देवी है तो यह मान्यता खत्म हो जाती है।

८. अपश्चिदेषविभ्वोदमूना प्र सध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः ऋ० ३।३१।१६। 'नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिर्दमूना यस्माउ देवः सविता जजान। ऋ० १०।३१।४।

९. अभित्य मेषं पुरुहूत मृग्मियमिन्द्रं। ऋ० १। ५१। १।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिन में दास प्रथा थी। जब सूर्य शुव्विलुलियुमा, प्रतापी राजा हट्टी के शासक तेशुव अर्ततम के प्रिय; हट्टी के राजा से सन्धि की। फिर तुषरथ, मितन्नि के राजा ने; अपने को हट्टी के राजा के सामने सिर उठाया—तब हट्टी के राजा—मैंने—अपने को तुषरथ मितन्नि के राजा के विरुद्ध उठाया, और फरात की इस ओर की भूमि को मैंने लूटा—और निब्लानी पर्वत को अपने राज्य में मिलाया। ··· मैंने फरात पार की, और इशुवा की सब धरती को उजाड़ दिया। दूसरी बार भी मैंने उसे हराया। ····· इन्हें मैंने जीता और हट्टी में मिलाया। ··· ··· मत्तिउआज़ा मितन्नि का राजा हो, हट्टी की राजकुमारी उसे ब्याहे। और हे मत्ति उआजा, तुझे केवल दस स्त्रियाँ रखने का अधिकार होगा। पर उनमें से कोई मेरी कन्या के अतिरिक्त पत्नी नहीं होगी। मत्तिउआज़ा और मेरी बेटी के पुत्र, उनके पुत्र, उनके भी पुत्र मितन्नी के आगे राजा होंगे, हट्टी के हिताइत और मितन्नि मित्र हुए। ··· ··· संधि की नकल अरिन्न (आर्यन) के (देवता) शमश और कप्प के कुरिन्नी के देवता तेथुप के आगे रखी गई।"

इस संधि-पत्र में इन प्राचीन अभारतीय जातियों से उन वैदिक देवताओं का सम्पर्क ध्वनित होता है जो ऋग्वेद में है। बोगज़कोई के शिलालेख बेबिलोनियन भाषा में हैं। पार्जीटर का मत है कि बोगज़कोई की संधि मध्य हिमालय के एलों से सम्बन्धित है।

वेद और अवेस्ता—जेन्दावस्ता में अहुरमज़्द ने कहा है, कि मैंने दैत्य नदी के किनारे सर्वप्रथम श्रेष्ठतम देश 'आर्यनं बीजो' बसाया। आरस नदी का प्राचीन नाम दैत्य नदी था। जो सैसनीक काल में अरजीज कहाती थी। यह नदी अररात पर्वत से निकल कर कैस्पियन समुद्र में गिरती थी[1]।

ऋग्वेद की कुछ ऋचा अवेस्ता में भी है। इन से पता लगता है कि इन ऋचाओं का निर्माण आर्यों के भारत में आने से प्रथम हुआ। ऋग्वेद के देव और अवेस्ता का अहुरमज़्द परस्पर शत्रु-भाव रखते हैं। ऋग्वेद पार्शवों का अमित्र है[2]। अवेस्ता देवों को दुराचारी कहता है[3]। कुछ ऋचा बन जाने के बहुत काल बाद लिपिबद्ध हुईं और इनमें मुखाग्र होने के कारण बहुत अन्तर पड़ गया, इसी से ऋचाओं को श्रुति भी कहा गया।

प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र के ऋषि विश्वामित्र हैं। ऋग्वेद और अवेस्ता की मध्यवर्ती इस मन्त्र की भाषा इस प्रकार रही है—

---

१. ए स्टडी इन हिन्द सोशल पोलिटी। पृ० ६०
२. ऋ० १।१०५।८।
३. ऋग्वेदिक इण्डिया १ पृ० १७१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्तमान रूप	प्राचीन रूप
तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य	तत् सवितज़ वरैनियम् भर्गज़ दैवस्य
धीमहिधियो योनः प्रचोदयात् ।	धीमधि धियज़ नस प्रकौदयात् ।

ऋग्वेद और अवेस्ता के अनेक छन्द मिलते हैं[१]। देवों की पर्शवों से शत्रुता थी[२]। अवेस्ता में देवों को ध्वंसक और अहुरमज़्द का शत्रु बताया गया है[३]।

ऋग्वेद में ट–ठ–ड–ढ हैं। परन्तु अवेस्ता में ये शब्द नहीं हैं। इन शब्दों का प्रयोग भारत आने पर हुआ। परन्तु कुछ प्राचीन ऋचा भारत आने से पूर्व ही बनीं। ऋग्वेद में २५ नदियों का उल्लेख है, वे सब सिन्धु तक की ही हैं[४]।

मिस्री देव और ऋग्वेदिक देव—ऋग्वेद कुल ३३ देवता मानता है—१२ आदित्य, ८ वसु, ११ रुद्र और २ अश्विनी कुमार। देवों के मित्र यक्ष और मरुत हैं। गन्धर्व भी देवों के मित्र हैं। देवों का स्थान स्वर्ग, मेरु, कैलाश, मैनाक हैं।

मिस्र के देवों की चर्चा करते हुए हैरोडेटस कहता है—बारह देव आठ देवों से प्रकट हुए। इन बारहों में हरकुलीस एक हैं। हरकुलीस देवों की दूसरी श्रेणी में हैं। दूसरी श्रेणी में बारह देव हैं। वेक्कस देवों की तीसरी श्रेणी में हैं[५]।

ऋग्वेद अदिति के आठ पुत्र लिखता है[६]। जिसका समर्थन ब्राह्मण ग्रन्थों में है[७]। परन्तु अदिति के बारह पुत्र आदित्य अन्यत्र महाभारत पुराण आदि में कहे गए हैं, वे हैं—धाता, आर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा और विष्णु। परन्तु ऐसी भी ध्वनि मिलती है, कि पहिले आठ प्रमुख देव माने जाते थे, पीछे बारह माने गए[८]। इन्हीं आठ और बारह देवों का

---

१. ओरिजिन एण्ड डेवलपमैन्ट आफ़ बंगाली लेग्वेजेज, पृ० ३५
२. ऋ० १।१०५।८।
३. ऋग्वेदिक इण्डिया पृ० १७१।
४. ऋग्वेदिक कल्चर आफ द प्रिहिस्टारिक इंडस, पृ० २०
५. The twelve gods were, they Produced from. the Eight; and of these twelve, Hercules is one. The account which. I receved of these Hercules makes him one of the twelve gods.
(हैरोडोटस भाग १। पृ० १३६। पृ० १३५।
६. 'अष्टौ पुत्रासो अदितेः' ऋ० १०।७२।८।
७. अदितिः पुत्रकामा ····· धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान ···· तैत्तिरीय ब्रा० १।१।९।३५।
८. अष्टानां देव मुख्यानां इन्द्रादीनां महात्मनाम्। वायु पुराण ३४।९२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संकेत हमें मिस्र के इतिहास में प्राप्त है। हेरोडोटस ई० पू० ४०० में हुआ था। वह मिस्री देवों की तीन श्रेणी बताता है, और कहता है—कि हरकुलीस दूसरी श्रेणी में हैं तथा वेक्कस तीसरी में। इन तीन श्रेणियों के सम्बन्ध में वह कुछ खुलासा नहीं करता, परन्तु वास्तव में वह कश्यप की तीन स्त्रियों—दिति, अदिति दनु की संतानों को तीन जातियों का संकेत करता है—दैत्य, आदित्य, दानव। इस प्रकार उसके कथन का अभिप्राय है—कि हरिकुलिस आदित्य हैं और वेक्कस दानव। दिति बड़ी थी, अदिति उससे छोटी, तथा दनु उससे छोटी, इससे दैत्य प्रथम श्रेणी में गिने गए। इन्हें पूर्वदेव भी कहा गया है[1]। दनु पुत्र दानवासुर (Diony sius) विप्रचित्ति था, उसी का नाम वह वेक्कस कहता है। तथा विष्णु को हरकुलिस।

यहूदी देव और वैदिक देव—बाइबिल में लिखा है—उस काल में पृथ्वी पर दीर्घकाय पुरुष रहते थे। उसके बाद भी जब देवता का पुत्र मनुष्य की कन्या से मिला[2]।

यहां मनुष्य की कन्या से अभिप्राय मनु-पुत्री इला से है, और देव से चन्द्र की ओर संकेत है। यही ध्वनि शतपथ में भी है[3]।

यूनानी देव और वैदिक देव—यूनानी लोगों ने देवों का इतिवृत्त मिस्र से लिया है। हेरोडोटस कहता है—यूनानी लोग हरकुलीस को देवों में कनिष्ट मानते हैं[4]। इसका संकेत विष्णु ही में है। वायु पुराण में इसे "आदित्यानां पुनर्विष्णु"[5]. "ततस्वष्टाततो विष्णु जघन्योरजघन्यजः"। महाभारत में कहा है—'जघन्यजस्तु सर्वेषां आदित्यानां गुणाधिकः'[6]। देवों का राजा होने के कारण उसे सुरकुलेश या हरकुलेश कहा गया था[7]।

ग्रीकों का जलदेवता 'त्रितन' है। अवेस्ता में उसे 'थ्रेतन' कहा है। ईरानी उसकी पूजा करते हैं। इटली और जर्मनी में भी त्रेतन की कथा है। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार सायण कहता है, कि त्रित अग्नि का पुत्र था। उसने असुरों से युद्ध किया था। वह कुए में गिर गया था।

---

१. अमरसिंह कृत नाम लिङ्गानुशासन। १। ११८

२. जेनेसिस अ० ६–४

३. द्वय्या वैदेवा मनुष्य देवाः।
तद्योयो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तद भवत्। तथर्षीणाँ तथा मनुष्याणाम्।
शतपथ १४। ४।२। २१

४. The Gueeks regard Hercules, Baccuus and Parass the Yongest of the gods.

५. वायु ७०। ५। ६६। ६७

६. महा० आदि पर्व।

७. सुर का 'स' 'ह' में विकृत होकर सुरकुलीस का हरकुलीस (हरक्युलीज) हो गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

याजक वैदिक ऋषि--उस काल वैदिक याजकों के प्रथक् कबीले थे, जिनमें अथर्वण, अंगिरस, भृगु, जामदग्नि, अत्रि, वशिष्ठ, भरद्वाज गौतम, काश्यप, अगस्त, काण्व, आङ्गिरा प्रमुख थे। अंगिरा गोत्र के लोग आंगिरस कहाते थे, हारीत, मौद्गलायन तथा विष्णु-गार्ग्य, विशिष्ठ याजक थे। आंगिरस में वामदेव और भरद्वाज प्रसिद्ध ऋषि थे[1]। अथर्वण-भृगु-नाभाग-आदि नाम पूर्वजों की भांति आए हैं[2]। आंगिरसों ने अग्नि पूजा का आरम्भ किया[3]। इन्द्र को आंगिरसों में कहा गया है[4]। अंगिरा प्रथम इन्द्र की स्तुति करते हैं, पीछे उनका सम्मान बढ़ता है। और देवों के गुरु बनते हैं। अथर्व में अथर्वाङ्गिरस का उल्लेख है। अंगिरा से भरद्वाजगण और गौतम गण हुए[5]। अगस्त का महत्त्व भी बहुत है-यह उत्तर कालीन ऋषि था—इस ने इन्द्र और मरुतों से मित्रता कराई थी। इन्द्र अगस्त के आश्रम में दण्डकारण्य में आते थे। उन्हीं की शिफारिश से इन्द्र ने रावण युद्ध में राम के लिए रथ और शस्त्र भेज कर सहायता की थी। ऋग्वेद में अगस्त और लोपामुद्रा का कथनोपकथन है। दोनों ही वैदिक ऋषि हैं। अथर्व में अगस्त को मायावी कहा है[6]। उसने १०० बैलों की बलि दी[7]।

२--विशिष्ठ नामोल्लेख

पञ्चजना:—ऋग्वेद में 'पञ्चजनाः' शब्द आया है[8]। उन्हें अदिति' कहा गया है। यास्क उन्हें देवों मनुष्यों की जातियां बताता है[9]। एतरेय ब्राह्मण भी उन्हें देवों और मनुष्यों की जातियों में विभाजित करता है[10]। उपमन्यु पुत्र औपमन्यव कहता हैं--कि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र और निषाद पञ्चजन हैं। ईरानी प्राचीन जन निम्नलिखित पञ्चजन मानते थे-- १-एर्य (आर्य) २-तुर्य (तूरानी) ३-सरिम्यज

---

१. ऋग्वेदिक कल्चर आफदप्रिहिस्टरिक इन्डस १ पृ० १२६।
२. ऋग्वेद १०। १४।
३. ऋग्वेद १०। ६७। २। १।
४. ऋग्वेद १। १००। ४, १। १३०। ३।
५. जर्नल आफ द विहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी।
६. वैदिक इन्डेक्स पृ० ६-७
७. " " २ पृष्ट १४६।
८. 'विश्वे देवाः अदितिः पञ्चजना अदितिः' ऋ० १। ८९। १०
'पञ्चजनाः ममहोत्र जषध्वम्'
९. निघन्टु २। ३। निरुक्त- २। ३।
१०. सर्वेषां वा एतत् पञ्चजनानामुख्यं-देव मनुष्याणां गन्धर्वाप्सरसां सर्पाणां पितृणां च। एतरेय ब्रा० १३। ७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(सरमा के वंशज) ४–साइनि (चीनी) ५–दाहि (दधि लोग)[1]। वृद्देवता पञ्च-जनाः का और ही अर्थ करता है[2]। तल्वकार कहता है कि देव और असुरों से पूर्व पञ्चजन थे[3]।

निस्संदेह यह बात निर्विवाद हैं कि यह पञ्चजनाः शब्द बहुत प्राचीन है, और महाभारत का अभिप्राय चार वर्णों और पांचवां निषाद वाला ठीक नहीं है। यूनानी विद्वान् हैसिआड़ अपनी कविता में मनुष्यों की पांच जातियां बताता है। यह तथ्य उसने प्राचीन परम्परा से ग्रहण किया है।

अप्सरा––ऋग्वेद में 'अप्सरा' शब्द अनेक स्थानों में आया है––जिन के नाम उर्वशी आदि हैं। ये देव जाति की स्त्रियां थीं। मैत्रायणी संहिता में इन्हें देवी कहा गया है[4]। कदाचित् तभी से भारतीय स्त्रियों के नाम के आगे देवी शब्द लग गया। शतपथ सौम वैष्णव की प्रजा को अप्सरा कहता है[5]। अङ्गिरस वेद उनका वेद है। मै० सं० और शतपथ में १० अप्सराओं के नाम आए हैं। उर्वशी का विवाह ययाति से हुआ। मेनका १० वर्ष विश्वामित्र की सेवा में रही।

अथर्वाङ्गिरस—अथर्ववेद की गणना वेदों में यद्यपि बहुत उत्तर काल में हुई है, परन्तु अथर्व की कुछ ऋचाऐं ऋक् के समान ही प्राचीन है। ऐसा प्रतीत होता है कि देवभूमि और दैत्य भूमि में जो ऋचाऐं बनना आरम्भ हुईं, उनके दो प्रथम सम्प्रदाय आरम्भ ही मे रहे। यह भी संभव प्रतीत होता है कि सबसे प्राचीन ऋचा अथर्व ही की हो। अथर्व सम्प्रदाय के प्रवर्तक अङ्गिरा हैं। जिन्हें अथर्वाङ्गिरस भी कहते हैं। अंगिरा की परंपरा में—बृहत्कीर्त, बृहत्ज्योति, बृहत्ब्रह्म, बृहत्मना, बृहत्मन्त्र, बृहद्भास और बृहस्पति हैं। बृहस्पति आंगिरस देव याजक थे। इन्होंने एक आत्म-निष्ठ धर्म चलाया जो भौतिक वादी था, आगे जो चार्वाक् के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

---

१. ईरानियन फर्वीदिन यपूत १३। १४४। यहाँ जो 'साइनि और दाहि' जातियों का उल्लेख है—साइनिया सरमेतिअन सरमा के वंशधर थे; जो काश्यप सागर के उत्तर में रहते थे। यूनानी लेखक स्ट्रैबो लिखता है––Sarma apparently represents the tribe of 'Sarmarians' who are Scythians. and who lived on the North of the CaPian Sea. दाहि या दधि लोगों के सम्बन्ध में यूनानी लेखक कहते हैं कि दाही Dahea नाम की जाति ईरान में दहि नदी के किनारे रहती थी।

२. वृहद्देवता ७। ६७--७२

३ ये देवाः असुरेभ्यः पूर्वे पञ्चजना आसन्। जैमिनीय उप० १।४१।१७

४. मैत्रायणी संहिता १।६।१२।

५. शतपथ १३।४।३।८

CC-0. Agamnigam Foundation. Digitized by Preservation Foundation, Chandigarh

अथर्वाङ्गिरस की ऋचाओं में स्पष्ट ही दैत्यों की वह भावना है, जो ऋग्वेद की भावना से सर्वथा प्रथक् है। भार्गव उशना–काव्य–आथर्वण, मन्त्रों का रचयिता हैं। जन्द अवेस्ता में भी इसके मन्त्र कुछ विकृत रूप में हैं। अथर्वा के छन्द ऋचा के स्थान पर मंत्र कहाते हैं। वशिष्ठ की भी कुछ रचनाऐं अथर्वा में है। प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ कहता है—अथर्वणा वशिष्ठेन कृता रचिता पदानां पंक्तिरानुपूर्वी यस्य स वेदः चतुर्थ वेद इत्यर्थः। अथर्वण मन्त्रो ··· ·· वशिष्ठ कृत इत्यागमः। पुराणों में ३३ अगिरा गिनाए गए हैं। मत्स्य कहता हैं—भृगोः प्रजा यदर्थवा अङ्गिराथर्वणः स्मृतः। पण्डित तिलक ने एक लेख लिखा था—कालडिया देश और भारत[1]। इस लेख में वे कहते हैं कि अथर्वा में काल्डिया के भूतों का उल्लेख है[2]। उन्होंने अथर्वा के ५। १३ से कुछ मन्त्र लिखे हैं, जिनमें तैमातसत्य, आलिगी, विलिगी, उरूगलाया ताम्रवम् आदि पद हैं। पण्डित तिलक का मत है कि तैमात शब्द काल्डिया का है। उरूगूला अक्काद भाषा का, आलिगी और विलगी असीरिया की भाषा के शब्द हैं[3]।

काल्डिया की राजधानी वावुल या ववेरू थी। इसका शुद्ध रूप 'वभ्रू' है। आथर्वण शाखा के प्रयोक्ता भृगु–उशना–अंगिरा इसी प्रदेश में थे, उसी शाखा में एक ऋषि वभ्रू था[4]। सम्भवतः यह नगर उसी वभ्रू के नाम पर वाभ्रव अथवा वावुल हुआ। 'वावेरु जातक' के सम्बन्ध में अध्यापक हेरास का कथन है कि वह प्राक् वेद कालीन कथा है[5]।

अध्यापक टेलिटश का मन्तव्य है कि बाईबिल का यहोवा शब्द कालडिया के

---

१. यह लेख रामकृष्ण गोपाल भण्डार कर स्मारक ग्रन्थ में सं० १९१७ में छपा था।

२. It we therefore discover. any names of Chaldean Spirits or Demons in the Atharva, It could only mean that the magic of the Chaldeans was borrowed, partially at least, by the Vedic people prior to the Second millennium before Christ, [P. 33]

३. "The Serpent Taimata is, I am sure, no other than the Primeval watery dragon Tiamat generally represented as a female but Sometimes even as a male monster snake in the Chaldean cosmogonic legends..... As regards Vrugula the word appears as Vrugala of vrugala in the Accadian language ... is generally used to denote the great neither world"

I have not been able to trace Aligi and Viligl but they evidently appear to be Accadian words, for there is an Assyrian god called Bil and Bil–gi [P. 34, 35.]

४. देखिए भगवद्दत का वैदिक वाङ्मय का इतिहास भा० १। पृ० २२१

५. दि ओरिजिन आफदि राउन्ड प्रोटो हन्डियन सीलस डिस्कवर्ड इन सुमेर B. B. X. C. T. रुन्युआल १९३८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह्वे शब्द का रूपान्तर है। वहीं से यह शब्द ऋग्वेद में आया है। तिलक यह मानते हैं[१]।

सुमेर सभ्यता का वैदिक साम्य—सुमेर में कुछ मृत्तिका मुद्राएं मिली हैं, जिन पर आर्य राजाओं के नाम अङ्कित हैं। जिनका उल्लेख ऋग्वेद में है। अथवा जो बड़े भारी विजेता थे। यथा—

Issaku (इक्ष्वाकु), Shar-iteash (शर्यात), Shur-sin (शूरसेन), Sha-ar-gun (सहस्त्रार्जुन), Shar-par (सगर), Purash-sin (परशु सेन), Mau (मनु)।

सम्भव है इन राजाओं का सुमेर–मध्य एशिया तक सम्पर्क हो। ईरान का प्रसिद्ध शाह दारा का नाम भी संस्कृत नाम दारुवह का भ्रष्टरूप है। जर्मन पण्डित वाडेलफर का अनुमान है कि सुमेर की भाषा और लिपि आर्य भाषा की जन्मदात्री थी[२]।

इस काल का वैदिक रूप—जब आर्यों की ३७वीं पीढ़ी व्यतीत हो रही थी, तब तक वेदों का वर्तमान स्वरूप नहीं बना था। ऋक् और अथर्वण दोनों ही का निर्माण हो रहा था। ऋक् मन्त्रों की दो महान् निर्माता वशिष्ठ और विश्वामित्र निरन्तर रचनाएँ कर रहे थे। वे तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं का भी उल्लेख करते जाते थे, और यज्ञ अनुष्ठान-सम्बन्धी विवेचन भी। इनके अतिरिक्त अनेक सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजा, तथा इन्हीं के वंशज याजक गण तथा अनेक अनार्य जन भी ऋक् निर्माण कर रहे थे।

पुराणों में १९ भृगु और ३३ अंगिरा वंशज ऋषि गिने गए हैं[3]। आथर्वण ऋषियों में नौ प्रमुख हैं—(१) काव्य उशना, (२) सारस्वत, (३) शरद्वान् (४) वाजश्रवा, (५) वशिष्ठ, (६) शक्ति, (७) पराशर, (८) द्वैपायन, (९) ऋक्ष। आथर्वणों का इतिहास पुराण से विशेष सम्बन्ध है[४]। वायु पुराण में जो व्यासों की परम्परा दी गई है, उनमें ये आथर्वण ऋषि भी गिन लिए गए हैं[५]। ऋग्वेद आर्यों में और अथर्व दैत्यों में प्रचलित होता गया। आरम्भ में ये रचनाएँ देवलोक में भी हो रही थीं—आर्यावर्त में भी और भरतखण्ड में भी। अब इस युग में, जब आर्यों की ३७वीं पीढ़ी चल रही थी, आर्यों ने केवल ऋक् अपना लिया था, अथर्व छोड़ दिया था। ऋक् की अधिकांश रचनाएँ भारत ही में हुईं।

---

१. पूर्वोक्त लेख।

२. A Sumer Aryan Dictionary, L. A. waddell, Londan 1927 Introduction P. X.

३. मत्स्य० ५१। १०।

४. अथर्ववेदेतिहास पुराणानिध्यापन·····कण्व धर्म सूत्र।

५. वायु० २३। ११४–२२६।

३--त्रेता-एक विश्लेषण दृष्टि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

काल निर्णय--मनु वैवस्वत से राम पर्यन्त का काल त्रेता काल है। मनु वैवस्वत से राम पर्यन्त कुल ३९ पीढ़ियां होती हैं। इन पीढ़ियों का विवेचन हमने पुराणों तथा पार्जीटर एवं सीतानाथ प्रधान के कथनों पर ऊहापोह करके यहां दिया है। अन्य आधारों का भी सहारा लिया है। यद्यपि इन आधारों में कहीं २ दृढ़ता नहीं है। फिर भी जहां तक सम्भव हो सका है, हमने सुप्रमाणित वश दिए हैं। आर्यों के दो ही वंश प्रमुख हैं--सूर्य वंश और चन्द्र वंश। दोनों ही वैवस्वत से चलते हैं। पहिला उनके पुत्र इक्ष्वाकु से और दूसरा उनकी पुत्री इला से। इन दोनों ही वंशों की शाखाएँ चली हैं, जिनका संकेत हम राम के चक्र में दे चुके हैं। अब इस सन्दर्भ को और स्पष्ट करने को हम यह सारिणी देते हैं :--

वंश	शाखा	राम के समकालीन	मनु से नीचे पीढ़ी	विवरण
सूर्य	अयोध्या	रामचन्द्र	३९	सब पीढ़ियां मिलती हैं।
,,	मिथिला	भानुमन्त जनक	३९	आरंभ की १२ पीढ़ियों के नाम अज्ञात। ये भानुमन्त जनक राम के साले, इनके पिता सीरध्वज और चचा कुशध्वज थे।
,,	हरिश्चन्द्र शाखा	हरिश्चन्द्र-रोहिताश्व	३९	सब पीढ़ियां मिलती हैं।
,,	सगर शाखा	सगर	३९	,, ,,
,,	दक्षिण कोशल	सुदास-या मित्रसह कल्माषपाद	३९	,, ,,
,,	मैथिल संकाश्य शाखा	धर्मध्वज	३९	आरम्भ के नाम अज्ञात।
चन्द्र	हस्तिनापुर (मुख्य पौरव)	कुरु-या सार्वभौम	३९	सब पीढ़ियां मिलती हैं।
पौरव	उत्तर पांचाल	सुदास	३९	,, ,,
,,	दक्षिण पांचाल	रुचिराश्व	३९	,, ,,
,,	मागध	सुहोत्र	४०	,, ,,
,,	काशी	अलर्क	४०	,, ,,
,,	कान्यकुब्ज	विश्वामित्र के पौत्र का पौत्र	३९	विश्वामित्र भी जीवित थे।
चन्द्र (यादव)	माथुर	सत्वत	४२	सब पीढ़ियां मिलती हैं।
,,	हैहय	वीतिहव्य का पौत्र	३९	१५ पीढ़ियों के नाम अज्ञात।
चन्द्र (आनव)	अंग	चतुरंग	४१	१४ ,, ,,
,,	उत्तर पच्छिम	केकय के दौहित्र भरत	३९	२० ,, ,, केकयी राम की सौतेली तथा भरत की सगी माता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैवस्वत मनु से राम तक यह दूसरा ३९ पीढ़ियों का है, जिसे हम त्रेता मानते हैं। स्वायंभुव मनु से प्रथम समय को हमने सतयुग काल कहा है। हमारे ये युग पौराणिक विचारों से सम्बद्ध नहीं हैं। जो जो घटनाएँ पुराणों में जिन-जिन युगों में लिखी है उनके अनुसार हमारे ये युग नहीं चलते। परन्तु हमारी यह काल-गणना शुद्ध ऐतिहासिक आधारों पर स्थित है।

हमारी गणना के अनुसार मनु वैवस्वत का काल ई० पू० २६६१ और राम का काल ई० पू० १५६९ ठहरता है। अर्थात् राम का काल अब से ३५२५ वर्ष स्थिर होता है। यह निर्णय हमने इस प्रकार किया है।

सम सामयिक—वैवस्व मनु की पुत्री इला चन्द्र-पुत्र बुध को ब्याही गई। इन्हीं इला और मनु से सूर्यवंश और चन्द्रवंश चले[1]। ययाति के भाई यति (६) याजक हुए। उनका विवाह सूर्यवंशी काकुत्स्थ (४) की पुत्री गो से हुआ[2]। पौरव मतिनार (२०) की पुत्री गौरी इक्ष्वाकु (२१) मान्धाता की माता थी[3]। यादव शशिविन्दु (२०) की पुत्री विन्दुमती चित्ररथी मान्धाता को ब्याही[4]। इनका द्रुहयु वंशी अंगार (२१) से युद्ध हुआ[5]। कान्यकुब्ज के जन्हु (३०) ने मान्धाता की पोती से विवाह किया। अतः जन्हु त्रसदस्यु (३० सूर्यवंशी) के बहनोई थे। त्रसदस्यु मान्धाता के पौत्र थे। ऋचीक ने गाधि की पुत्री सत्यवती से विवाह किया, जिससे परशुराम के पिता जमदग्नि का जन्म हुआ। जमदग्नि विश्वामित्र के भाञ्जे तथा समवयस्क सहपाठी थे। जमदग्नि का विवाह सूर्यवंशी प्रसेनजित की कन्या रेणुका से हुआ। इसकी दूसरी बहिन मृगावती का विवाह हैहय सहस्त्रार्जुन से हुआ[6]। विश्वामित्र कान्यकुब्जपति (३५) हैहय अर्जुन, सुदास (३९ उत्तरपांचाल) तृशंकु (सूर्यवंश ३६), हरिश्चन्द्र (३७) मित्रसह कल्माषपाद (दक्षिण कोशल ३९) राम (सूर्य० ३९) के समकालीन थे। वशिष्ठ भी इनके समकालीन थे। हरिश्चन्द्र के यज्ञ में विश्वामित्र, जमदग्नि, शुनःशेप और वशिष्ठ चारों उपस्थित थे[7]। यही शुनःशेप विश्वामित्र के दत्तक पुत्र वैदिक ऋषि थे। वशिष्ठ और विश्वामित्र की

---

१. महाभारत।
२. हरिवंश ३, १६०१, वायु ९३, १४।
३. ब्रह्माण्ड ६३, ६६, ८। वायु ८८, ६४, ७। ब्रह्म० ७, ९०। हरिवंश १२, ७०, ११। शिव० ६०। ७४।
४. वायु ८८, ७७। ब्रह्माण्ड ६३, ७०।
५. हरिवंश ३२, १८३७। म०भा० १२६, १०४६५।
६. हरि०। महा।
७. एतरेय ब्राह्मण।

State Museum, LUCKNOW.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऋचाएं ऋग्वेद के सातवें मण्डल में और वशिष्ठ की तीसरे में हैं। दोनों ने सुदास को अपना समकालीन कहा है[1]। भद्रश्रेण्य हैहय (३०) ने काशीपति दिवोदास प्रथम (३४) को हराया। तालजन्घ हैहय (३६) ने बाहु–सूर्य वंशी (३८) को हराया। काशी के प्रतर्दन (३८) ने वीतिहोत्र हैहय (३८) को हराया, तथा बाहु पुत्र सगर ने वीतिहोत्र के वंशजों को नष्ट किया। सगर ने विदर्भ के किसी वैदर्भ राजा की कन्या से विवाह किया, उसका नाम केशिनी था। हैहयों ने काशी राज्य का पतन किया। पीछे राम जामदग्न्य द्वारा सहस्त्रार्जुन का वध हुआ। बाद में अर्जुन के पौत्र तालजंघ ने म्लेच्छों की सहायता से पौरव (३४ से ३७ तक) किसी का तथा सूर्यवंशी बाहु का और कान्यकुब्ज (३७–२७) का राज्य नष्ट किया। पीछे प्रतर्दन और सगर द्वारा हैहय और म्लेच्छ दोनों नष्ट किए गए। पौरव राज्य भी फिर स्थापित हुआ। कान्यकुब्ज फिर न पनपा। तालजघ से सगर भी एक बार हारे[2]। पीछे विजय कर उन्हों ने अश्वमेध यज्ञ किया।

उत्तरी विहार के तुर्वश वंशी मरुत्त (२२) ने राज्य च्युत पौरव राजकुमार दुष्यन्त को गोद लिया[3]। मरुत्त भारी सम्राट् थे। दुष्यन्त ने तुर्वश राज्य या पौरव राज भी हस्तगत किया। पीछे पौरव राज्य भरत को दे दिया।

ऋषि अङ्गिरस के तीन पुत्र थे––उचथ्य (उतथ्य) बृहस्पति और सम्वर्त। मरुत्त ने सम्वर्त को ऋत्विज बनाकर यज्ञ किया, और उन्हें अपनी पुत्री ममता ब्याह दी। उचथ्य के ममता से अन्धे दीर्घतमस हुए। उसी ममता में बृहस्पति द्वारा विदथिन भरद्वाज हुए। दीर्घतमस ने आनव बलि (२४) की रानी से नियुक्त हो कर पाँच पुत्र उत्पन्न किए, जिन्हों ने अंग–वंग–कलिंग–सुम्ह, आदि पांच राज्य स्थापित किए,[4]। पीछे वे नेत्रवान् होकर गौतम कहाए[5]। तब इन्होंने भरत (२४) का एन्द्राभिषेक किया[6]। इन्हीं के कहने से भरत ने इनके भाई विदथन-भरद्वाज को गोद लिया, जिनका वर्णन ऋग्वेद में है।

दशरथ, (३८) मैथिल-सीरध्वज (३८) आंग-लोमपाद (४०) ऋष्य शृंग प्रमति; उत्तर पच्छिमी आनव केकय (३७) उत्तर पाञ्चाल दिवोदास

---

१. महाभारत। ऋग्वेद।
२. महाभारत शाँति०।
३. महाभारत।
४. महाभारत।
५. वायु ९९। ९२। मत्स्य ४८, ८३ बृहद्देवता IV १५।
६. एतरेय ब्राह्मण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(३८) वैदिक तिमिध्वज शम्बर समकालीन थे[१]। दक्षिण कोशल में ऋतुपर्ण (३६) नल (३५ उत्तर पाञ्चाल भृम्यश्व के समधी तथा (३४) यादव भीमरथ के दामाद) के मित्र थे। इनके प्रपौत्र मित्र सहकल्माषयाद राम के समकालीन थे। काशीमयति अलर्क (४०) को अगस्त्य की पत्नी लोमामुद्रा ने आशीर्वाद दिया[२]। अगस्त्य ने राम को रावण वध में सहायता दी[३]। उत्तर पाञ्चाल नरेश सुदास (३९) ने पौरव (३९) संवर्ण को राज्यच्युत किया। बाद में संवर्ण ने सुदास को मारा[४]।

इक्ष्वाकु के भाई ने खम्भात की खाड़ी में आनर्त राज्य स्थापित किया। उसने अपनी कन्या सुकन्या च्यवन को विवाही[५]। आनर्तों के पतन पर च्यवन के वंशधर हैहयों के कुलगुरु हुए। च्यवन ने इन्द्र से युद्ध किया[६]। पीछे भार्गवों का हैहयों से विग्रह हुआ। फिर और्व के पुत्र ऋचीक ने गाधि कान्यकुब्ज पति की पुत्री से विवाह किया। जिस से जमदग्नि हुए। जमदग्नि के पुत्र परशुराम थे। विश्वामित्र और जमदग्नि–मामा भांजे थे। दोनों सहपाठी मित्र थे। हरिश्चन्द्र के शुनः शेष यज्ञ से दोनों ने शुनः शेष को बचाया। शुनः शेष भांजे के स्थान पर विश्वामित्र का पुत्र बना। बाद में परशुराम ने सहस्रार्जुन को मारा। तथा वशिष्ठ की तपोभूमि जलाई वशिष्ठ हरिश्चन्द्र–पांचाल सुदास–पौरव संवर्ण, दक्षिणकौशल के कल्माषपाद तथा दशरथ और राम के पुरोहित रहे। ऋग्वेद का तीसरा मण्डल इन्हीं का है। इनका पुत्र शक्ति और शक्ति का––पराशर था। तीनों वेदर्षि थे। तीनों ने मिल कर ऋचा बनाई। विश्वामित्र से वशिष्ठ का विग्रह हुआ। सुदास के यज्ञ में वशिष्ठ पुत्र शक्ति ने विश्वामित्र को निरुत्तर किया. तब जमदग्नि ने उनकी सहायता की। पीछे शक्ति को विश्वामित्र ने मरवा डाला[७]। पीछे वशिष्ठ के सौ पुत्र परिजनों का वध कराया[८]। वशिष्ठ और विश्वामित्र के उकसाने से ही दस राजाओं का महा संग्राम हुआ। जिसमें एक ओर सुदास तृत्सु आदि थे। दूसरी ओर भरत–द्रुहयु–आदि तथा भेद आदि अनाय। सुदास के पक्ष का नेतृत्त्व वशिष्ठ ने किया, तथा दूसरे का विश्वामित्र ने। यह युद्ध रावी तट पर हुआ। इसमें सुदास और उसके मित्र विजयी

---

१. वाल्मीकि। ऋग्वेद।
२. वायु ९२, ६७।
३. रामायण वाल्मीकि।
४. रामायण वाल्मीकि।
५. महाभारत।
६. महाभारत०। ऋग्वेद।
७. अनुक्रमणि।
८. बृहद्देवता।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हुए[1]। इस युद्ध में विश्वामित्र घायल हुए, तथा जमदग्नि के चार पुत्र उनके साथ मारे गए।

वैशाली के मरुत (२२) का पुत्र दम था। उसका आठवां वंशधर तृण बिंदु आंध्रालय (आस्ट्रेलिया) का राजा था। उसने अपनी पुत्री पुलस्त्य को विवाही। जिसका पुत्र विश्रवा हुआ। विश्रवा का पुत्र वैश्रवण कुबेर दिग्पति हुआ। जिसने यक्ष संस्कृति की स्थापना की[2]। कुबेर के पुत्र नलकूवर हुए[3]। पीछे दैत्य सुमाली की कन्या मालिनी से विश्रवा को रावण–कुम्भकरण, विभीषण पुत्र तथा सुर्पनखा कन्या हुई। रावण ने कुबेर से लंका छीन, वहां रक्ष संस्कृति की स्थापना की। और राक्षस जाति बनाई। उसने दिग्विजय कर जगदीश्वर की उपाधि पाई। उस ने प्रथम वेद का सम्पादन किया। उसे सम्मुख समर में राम ने वध किया[4]। पौलस्त्यों की अनेक शाखाएं चलीं। उसने अगस्त के पुत्र को भी गोद लिया।

निषध-विदर्भ, दक्षिण-कोशल, चेदि और दशार्ण मिली हुई रियासतें थीं[5]। निषध राज वीरसेन के पुत्र नल वैदर्भ भीमरथ (३४) के दामाद थे। भीमरथ और चेदि के सुबाहु दोनों दशार्ण के राजा सुद्युम्न के दामाद थे[6]। दमयन्ती भी नल की रानी थी। उत्तर पाञ्चाल नरेश भृम्यश्व (३५) के पुत्र वेदर्षि तथा मुद्गल को नलायती इन्द्र सेना ब्याही थी[7]।

सामाजिक स्वरूप—त्रेता में जाति भेद नहीं बना। नवर्णों का विजाभन हुआ। कुछ लोग राजन्य थे, जो राज्य व्यवस्था तथा युद्ध करते थे, कुछ याजक, जो अध्यापन यजन कराते थे। दोनों में समान रोटी बेटी सम्बन्ध थे, तथा दोनों ही परस्पर वंश परंपरा से एक थे[8]। योद्धाओं के पास पत्थर के धनुष थे[9]। लोग लकड़ी और पत्थर

---

१. ऋग्वेद।

२. वायु ७०। २९, ५६। ब्रह्माण्ड III ८, ३४, ६८। महा०, लिंग ६३, ५५, ६६। कूर्म I ९, ७, १५। पद्म २६९, १५, १९। भागवत IX२, ३२, रामायण VII २, ५, ९ III २२।

३. शतपथ XIII ४, ३, १०।

४. वाल्मीकि।

५. सीतानाथ प्रधान।

६. महा० वन०।

७. ऋग्वेद। तथा महा०

८. ऋग्वेदिक कल्चर आफ दप्रिहिस्टारिक इन्डस १ पृ० १८ भूमिका।

९. ऋग्वेद ९। ११२। २।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के पात्रों में पानी पीते थे[१]। स्त्री पुरुष दोनों ही उष्णीष (एक प्रकार की पगड़ी) पहिनते थे[२]। सोम को ऊन के छन्ने से छाना जाता था, उसे मेषी, अव्य, अव्यय कहते थे। सोम पात्र को कद्रू कहते थे, भेड़ को अख्ता किया जाता था। असुर विद्या माया कहाती थी। नृत्यवाघ को अधाति कहते थे। ढोल को आडम्बर तथा विश्राम स्थल को आवस्थ कहते थे। जुआ खेलते थे। मुर्दे और जीवित के बीच पत्थर रखा जाता था। जो लड़की क्वारी ही पिता के घर बूढ़ी हो जाती थी, उसे अभाजुर कहा जाता था। अभा का अर्थ घर था। अपोगू वेश्या को कहते थे[३]। समाज पितृ सत्तात्मक होने से स्त्री के अधिकार बदलते जा रहे थे। भारत में अनेक अनार्य जातियां रहती थीं, जिनमें निषाद, श्विक्न, वरशिख, वश मारगार, कैवर्त, केर्वत, पौजिष्ट, दाश, मैनाल, कीकट, नैचाशाख, पुण्ड्र, निषाध, किरात, चाण्डाल, पर्णक, शिम्यु, आन्ध्र, शवर, पुलिंद, मूतिव्, नाम उल्लेखनीय है[४]। इनमें से कुछ कालान्तर में आर्यों में मिल गईं। सोम, आर्जीक, अस्त्यावन्त, शर्षणावन्त, सुषोमा, पंचजना आदि प्रान्तों में पिया जाता था। सुपर्ण या गन्धर्व सोम लाते थे। गन्धर्व को निम्न कोटि का माना जाता था। सुपर्ण भी ऐसी ही जाति थी[५]। आर्य खास २ समारोहों में सोम पान करते थे। यज्ञ के बाद सोम पान की विशेष रीति काम में लाई जाती थी। सोम पर्वत पर होता था, वहाँ सब कोई नहीं जा सकता था। आर्य लोग द्रव्य देकर सोम खरीदते थे। सोम पान सामाजिक प्रतिष्ठा का भी प्रतीक था। इस संबंध में कभी २ झगड़े भी हो जाते थे।

इस समय अगस्त ने दक्षिणारण्य में अपना प्रबल उपनिवेश स्थापित कर लिया था। वे अनार्यों के प्रभाव को हर सम्भव उपायों से कम करते रहते थे। उन्होंने समुद्री डाकुओं का दलन किया था। ऋषियों की दो परंपराएँ प्रकट हो रहीं थी— गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, ऋग्वेद ऋषि थे। कुत्स, रेभ, अगस्त्य, कुशिक, गाथिन्, ऋग्वेद भी थे, और आथर्वण भी। अंगिरा, अगस्त, जमदग्नि, अत्रि कश्यप, वशिष्ठ गविष्ठिर, विश्वामित्र, कुत्स कक्षीवान्, कण्व, मेधा तिथि, त्रिशोक, उशना-काव्य, मुद्गल आथर्वण थे। कुछ असुर ऋषि भी थे[६]।

अप्सरा देव कन्याएँ होती थी। उनसे आर्यों के विवाह सम्बन्ध होते थे। जो कभी २ अस्थायी होते थे। अर्थात् अप्सराएँ पितृ सत्ता नहीं मानती थीं। इस सम्बंध में बहुधा विवाद हो जाता था।

---

१. ऋ० ९, ६५, ६। १०, ७५, ३। १०, १०१, १०।
२. वैदिक इन्डेकस १ पृ० १०४।
३. वैदिक इन्डेकस ,, ,,
४. वैदिक इन्डैक्स।
५. ,, ,,
६. वैदिक इन्डेक्स।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सारे देश में एक सी राज्य व्यवस्था नहीं थी। कहीं गण राज्य थे। कहीं वैराज्य, कहीं स्वराज्य, कहीं राज्य, कहीं साम्राज्य। उनकी सामाजिक व्यवस्था भी भिन्न होती थी।

४--अन्य बातें

राज्यों की ५ श्रेणियां—उन दिनों राज्यों की ५ श्रेणियाँ थीं। एक साम्राज्य, दूसरा भौज्य, तीसरा स्वराज्य, चौथा वैराज्य और पांचवाँ राज्य।

चार प्रकार की रानियाँ--राजाओं की चार प्रकार की रानियां होतीथीं। एक महिषि, दूसरी परिवृक्ता, तीसरी वाग्वत्ता और चौथी पालगरी। प्रधान महारानी महिषि कहलाती थी, राजा जिससे प्रेम नहीं करता था वह परिवृक्ता कहलाती थी। मुख्य प्रेमिका वावात्ता और मन्त्री की कन्या पालगरी कहलाती थी।

एन्द्राभिषेक—बड़े २ सम्राटों का एन्द्राभिषेक होता था। शर्यात्, सुदास, मरुत्त और भरत के ऐन्द्राभिषेक हुए थे।

ऋषियों के युद्ध—सगर ने शक-यवन-काम्बोज, पल्लवों को जीता। वशिष्ठ ने उन्हें बचाकर प्रजा के रूप में बसा दिया। वशिष्ठ ने सबरों और म्लेच्छों की सेना इकट्ठी करके विश्वामित्र के साथ युद्ध किया, और उन्हें जीता। दस राजाओं के युद्ध में भी इन्होंने नेतृत्व किया। मांधाता, मरुत्त और जन्मेजय, गय, शशिबिन्दु, और राम ने बड़े २ अश्वमेध यज्ञ किए।

१६ श्रेष्ठ पुरुष--इस काल में १६ भारतीय सर्व श्रेष्ठ गिने गए थे--
(१) मरुत्त (२) सुहोत्र (३) अंग (४) शिवि औशीनर (५) दाशरथी राम (६) भगीरथ (७) दिलीप (८) मान्धाता (९) ययाति (१०) अम्बरीष (११) शशिबिन्दु (१२) गय (१३) रन्तिदेव (१४) भरत (१५) पृथु (१६) और परशुराम।

५--समाज व्यवसाय

खेती, चराई और व्यापार--खेती आर्यों का मुख्य व्यवसाय हो गया था।

कृषि—ऋग्वेद में बहुत स्थलों पर कृषि की चर्चा है। खेतों को जोतना और बोना, गायों और घोड़ों को पालना और उनकी रक्षा करना, गायों का दूध दुहना, और उनसे घी निकालना, पीने और सींचने की व्यवस्था, बैलों से काम लेना। वर्षा के पानी से फसलों को सींचना, समय पर बीज बोना, खेत जोतना और काटना। गहरे और कभी न सूखने वाले कुएँ बनाना आदि खेती और उसके सम्बन्धित कार्यों का विस्तृत वर्णन है। घटीचक्र के द्वारा कुएं से पानी निकालना और नालियों के द्वारा खेतों को सींचना और पशु पक्षियों से खेतों की रक्षा करने के विवरण भी ऋग्वेद में हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन दिनों कदाचित् रास्ते निरापद न थे। लुटेरों और डाकुओं का भय बना था, उनसे सुरक्षित रहने और अपने धन सम्पत्ति की रक्षा करने के सूक्त भी ऋग्वेद में हैं। कुछ सूक्तों में आभीर नाम की जाति का भी वर्णन है, जो पशुओं को चराते और उनकी सार सम्हाल रखते थे। माल को गाड़ियों में भरकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर बेचना, लाभ पर बेचना, उधार लेना, देना और ब्याज खाना उस समय प्रचलित था। खरीदने और बेचने के लिए सोने का सिक्का जारी था। सिक्के के लिए एक शब्द 'निष्क' काम में लाया गया है, जो एक प्रकार का गहना भी होता था। उस काल में आर्य लोग नाव और जहाजों में चढ़कर समुद्रों की यात्राएँ करते और वाणिज्य व्यापार करते थे।

भोजन वस्त्र और व्यवसाय—जौ और गेहूँ उस काल की खास पैदावार थी, और यही आर्यों का भोजन था। कदाचित चावल उस काल में नहीं पैदा किया गया था। ऋग्वेद में पकी हुई रोटियां और पुए खाये जाने का उल्लेख है। पक्ती, पुरोडास, अपृ और करम्भ आदि नाम भिन्न २ प्रकार की रोटियों ही के हैं। माँसाहार का भी उल्लेख मिलता है। सोमरस जो पिया जाता था नशे की चीज थी। यह सोमरस किसी वनस्पति को कूटकर और उसे छानकर पिया जाता था। उसमें दूध भी मिलाया जाता था। सम्भव है कि ये वस्तु भांग या भांग जैसी कोई मादक वस्तु हो।

आगे चलकर सोम का महात्मय बढ़ा चढ़ा कर पुराणों में वर्णन किया गया। त्रेता काल में अनेक शिल्पों का उदय हो चुका था, जिनमें वस्त्रों का उत्पादन प्रमुख था। ताना बाना बुनने में निपुण थीं। बढ़ई का काम भी अच्छी तरह होता था। छकड़े स्त्रियां और रथ बनाए जाते थे। लोहे, सोने और दूसरी धातुओं का व्यवसाय और शिल्प काफी उन्नत हो गए थे। लुहारों और सुनारों का काम भी खूब होता था। लोहे के, लड़ाई के हथियार, सिर के सुनहरे मुकट, किरीट कंधों और भुजाओं के लिए कवच, तलवार, ढाल, धनुषबाण बनाने का वर्णन अनेक स्थानों पर है। सेनाओं में हजारों कवचधारी योद्धा होते थे, जिनके चमकते हुए बाणों और तलवारों का का बहुत उल्लेख है। वे रथों में चढकर दुन्दुभी बजाते हुए युद्ध अभियान करते थे। धनियों और सेनापतियों के घोड़े सुनहरे साज से सजाए जाते थे। राजा लोग रत्न जटित चमकीले आभूषण पहनते थे। गले का गहना, सुनहरे कवच रुक्म, तथा हाथ का गहना नूपुर और छाती के कवचों और सिर के सोने के मुकुटों का वर्णन है। हरवे हथियार और गहनों के अतिरिक्त अनेक धातुओं के बर्तनों का भी संकेत है। पत्थर के बड़े २ किले, सडकें और लोहे के नगरों का भी वर्णन है। पत्थर के बने हुए सैकड़ों नगरों का वर्णन है। उस काल में पत्थरों को काट छाट कर हजारों खम्भों के सुन्दर भवन बनाना वे लोग जानते थे। घर बनाने की विद्या ने काफी उन्नति कर ली थी। यद्यपि पत्थरों के काटने के संकेत बहुत ही कम हैं। वे घोड़ों पर चढ़कर युद्ध करते थे, और घोड़ों की पूजा देवता के रूप में की जाती। आगे चलकर वह अश्वमेध

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यज्ञ में बदल गई। पालतु जानवरों में गाय, बकरे, भेड़, भेड़, भैंस और कुत्ता आदि का उल्लेख मिलता है। कुत्तों को बोझा ढोने के काम में लाया जाता था।

युद्ध—आर्य सिन्ध और उसकी सहायक नदियों के किनारे २ उसकी उपजाऊ भूमि को अधीन करके पंजाब को अधिकृत करते जाते थे। वहाँ के पुराने निवासी उनसे युद्ध करते थे। परन्तु वे आर्यों की सभ्य सेना और उत्तम हथियारों के कारण वे पराजित होते जाते थे। परन्तु आर्यों की बस्ती के निकट ही किलों और वनों में छिपकर रहते थे, और अवसर पाकर आर्य राज्यों पर आक्रमण करते, ग्रामों को लूटते, उनके पशुओं को चुरा ले जाते, और कभी २ बड़े २ दल बांधकर युद्ध भी करते थे। धीरे २ पंजाब पर से इन आदिवासियों का अधिकार हटाता गया और पंजाब पूरा गंगा की घाटी तक आर्यों के हाथों में आ गया। ऋग्वेद में आदिवासियों के आर्यों से युद्ध के अनेक वर्णन मिलते हैं। जिनमें इन्हें दस्यु या अनार्य कहा गया है। इन अनार्य दस्युओं की बस्ती शिफा, अंजसी कुलिषी और वीर पत्नी नाम की नदियों के किनारे थी। ये नदियां कहां थीं यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु कुछ ऐसे अनार्य योद्धाओं का भी वर्णन है, जो पानी में गुप्त किलों में रहते थे। आर्य लोग इन्हें निर्दयापूर्वक मारते जलाते और इनका सिर काट लेते थे। ऐसा मालूम होता है कि इन अनार्यों के पास घोड़े नहीं थे। कुछ ऐसे भी युद्ध हुए कि जिनमें हजारों अनार्यों को मारा गया। फिर भी वे लोग निरन्तर आर्यों से युद्ध करते रहते थे। आर्य निरन्तर विजय प्राप्त करके अपनी कृषि और राज्य की सीमाओं को बढ़ाते जाते थे। नई बस्तियां बसाते, और वैदिक सभ्यता का प्रचार करते थे। धीरे २ आर्यों की नई बस्तियां बढ़ती गईं. सभ्यता का क्षेत्र फैलता गया, जंगलों और मरुस्थलों में खेती होने लगी। बहुत से गांव और नगर बस गए। अनार्य लोग कुछ भागकर पहाड़ियों और दुर्गों में जा बसे और कुछ ने आर्यों के आधीन होकर उनकी प्रभुता और सभ्यता को स्वीकार कर लिया। अन्त में वह भारी युद्ध हुआ, जिसे दस राजाओं का युद्ध कहा जाता है, इस युद्ध में अनार्य शक्ति का एक प्रकार से खात्मा हो गया। अनार्यों के १ लाख मनुष्य मारे गए, और उनके सौ किले नष्ट किए गए। इस युद्ध में योद्धा कवच पहनकर धनुष बाण और तलवार से लड़ते थे। धनुष की प्रत्यंचा जब खींची जाती थीं, तो वह तीर चलाने वाले के कान तक पहुंचती थी। हर एक वीर अपनी पीठ पर तीरों से भरा हुआ तरकश रखता था। आर्य लोग घोड़ों पर और रथों पर भी लड़ते थे। रथों को वीर और चतुर सारथी हांकते थे। इन घोड़ों को युद्ध क्षेत्र की शिक्षा दी जाती थी। वे हटते नहीं थे, शत्रुओं को पैरों से कुचलते थे। तीर में पर लगे रहते थे, और उसकी नोक हिरन के सींग की बनी होती थी। धनुष की डोरी तांत की बनी होती थी, और योद्धा अपनी कलाई पर रक्षा के लिए चमड़े का बन्धन बांधते थे। कुछ तीर लोहे के नोक वाले और ज़हर से बुझे हुए भी होते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्यारोहण--राजा का राज्य सिंहासन धूमधाम से होता था। योद्धा लोग केवल कवच और शिरस्त्राण ही नहीं काम में लेते थे, वे कंधों के लिए भी एक शस्त्र ढाल के जैसा रखते थे। वे धनुष वाण के शस्त्र, भाले, फरसे और तीखे धार की तलवारों को ही काम में लेते थे। वे दुन्दुभी बजाते हुए झंडियां लेकर युद्धाभियान करते थे। राजा और मन्त्री हाथियों पर भी सवार होते थे।

ऋषि लोग केवल धर्मगुरु और पुरोहित ही न होते थे. वे राजमन्त्री भी होते थे। राज्य संचालन की भाँति युद्ध में सैन्य संचालन भी वे करते थे, और युद्ध भी करते थे। आर्यों का प्रत्येक हृष्ट पुष्ट मनुष्य योद्धा होता और अपने घर, खेतों और पशुओं की अपनी बलिष्ठ भुजाओं से रक्षा करता था।

इस प्रकार ये साहसिक आर्य जो कट्टर और साहसिक रणप्रिय थे, और जिन्होंने निरन्तर युद्ध से भूमि पर अपनी स्थिति, स्वाधीनता और जातीय जीवन को कायम रखा। सिन्धु से सरस्वती तक वैदिक सभ्यता का प्रसार करते चले गए। गंगा से विन्ध्याचल के उस पार दण्डकारण्य तक भी आर्य संस्कार इस काल में पहुँच चुके थे।

सामाजिक जीवन—सरस्वती समस्त प्राचीन नदियों में पवित्र थी और देवी की तरह पूजी जाती थी। वह कुरुक्षेत्र थानेश्वर के निकट बहती थी। यह हम पहले बता चुके हैं कि व्यापारिक लोग समुद्र यात्रा भी करते थे। ऋषियों की कोई पृथक जाति नहीं थी। न वे केवल तपस्या ही में अपना जीवन व्यतीत करते थे। वे सांसारिक और व्यावहारिक होते थे, खेती करते थे, और युद्ध में लड़ते भी थे। प्रायः प्रत्येक कुटुम्ब का मुखिया कोई ऋषि ही होता था। स्त्रियाँ भी यज्ञों में सम्मिलित होती थीं। बहुत बड़े-बड़े ऋषि जैसे—वशिष्ठ, विश्वामित्र और नामदेव वेदों के सूक्त बनाते और बड़े-बड़े यज्ञों में पुरोहित का भी काम करते थे। राजा के मन्त्री भी होते थे, परन्तु उनकी कोई पृथक् जाति नहीं थी। वे सर्वसाधारण से मिले हुए मनुष्य थे। उनसे वे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करते थे। उनके सम्पत्ति के भागी बनते थे. और उनके युद्धों में लड़ते थे।

एक ऋषि ऐसे पुत्र के लिए आराधना करता है जो युद्ध में शत्रु को जीते। दूसरा धन, सम्पत्ति की। तीसरा धन और स्वर्ण की। वह घोड़ों–गउओं के लिए अन्न और उत्तम सन्तति के लिए आराधना करता है, और चौथा ऋषि अपने पशुओं को ही धन मानता है।

जाति–भेद—अभी तक जाति-भेद नहीं था। जिस प्रकार ऋषियों की कोई पृथक जाति न थी, उसी प्रकार अन्य आर्यों में भी जाति-भेद न था। ऋग्वेद में वर्ण शब्द आर्यों और अनार्यों के लिए आया है। ब्राह्मण शब्द पुरोहित के लिए। क्षत्र शब्द बलवान के लिए। विश सर्वसाधारण के लिए आया है। एक ऋषि कहता है, कि मैं सूक्त रचता हूँ, मेरा पिता वैद्य है और मेरी माता अनाज पीसती है। हम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सब जुदे जुदे काम धन के लिए करते हैं। इस प्रकार प्राचीन वैदिक सभ्यता में जाति भेद न था। प्रत्येक कुटुम्ब का पिता अपना पुरोहित था। मूर्ति पूजा नहीं होती थी, परन्तु प्रत्येक कुटुम्बी अग्निहोत्र करता था। स्त्रियाँ यज्ञों में सहायक होती थीं। वे सोम रस तैयार करती थीं। कुछ स्त्रियाँ ऋषि भी थीं और सूक्त रचती थीं। वे न पर्दा करती थीं और न अशिक्षिता थीं। पत्नियाँ चतुर गृहणी होती थीं, और घर के सब कामों की देख भाल करती थीं। कन्याएँ अपना विवाह स्वेच्छा से करती थीं। विवाह की रीति वेद मन्त्रों की प्रतिज्ञाओं के द्वारा होती थीं, जिनमें दोनों वर-वधू एक दूसरे के मित्र और सहायक और जीवन-साथी होते थे। "तुझे सन्तान हो, और तुझे आशीर्वाद मिले, अपने घर का काम-काज सावधानी से कर। पति के साथ मिलकर बुढ़ापे तक उसके साथ रह। जैसे दो बर्तनों का जल एक में मिल जाता है और फिर अलग नहीं होता उसी प्रकार तुम दोनों मिल जाओ। अपने पुत्र पौत्रों के साथ आनन्द भोगो, और दास, दासियों और पशुओं का हित करो। सास, ससुर, ननद और देवर पर शासन कर"। इसी प्रकार की प्रतिज्ञाएँ विवाह के समय दी जाती थीं।

बहु विवाह-उत्तराधिकार—इस युग में राजा और धनी लोग एक साथ कई-कई स्त्रियों से विवाह कर लेते थे। आगे चल कर यह प्रथा बहुत विस्तार पा गई।

उत्तराधिकार के भी कुछ विशेष नियम बन गए थे। पिता की सम्पत्ति का अधिकार ज्येष्ठ पुत्र को होता था। जिसे पुत्र नहीं होता था वह पुत्री के पुत्र को उत्तराधिकारी बनाता था। पुत्री को पिता की सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं था। पुत्र ही पिता की सम्पत्ति और धर्म का अधिकारी होता था। पुत्र न होने पर सम्पत्ति पुत्री के पुत्र को मिलती थी। नियोग की तथा गोद लेने की प्रथा प्रचलित हो गई थी, परन्तु उसको पसन्द नहीं किया जाता था।

मृत्यु के बाद—मृत्यु के बाद यह प्रार्थना की जाती थी कि मृतात्मा परलोक में अपने पूर्वजों से मिले। ऋग्वेद में यम नरक का नहीं, स्वर्ग का देवता है। मुर्दे जलाए जाते थे, और उसके ऊपर मिट्टी का ढूहा उठाया जाता था।

विधवा स्त्री को पुनर्विवाह करने का अधिकार था।

तत्कालीन वैदिक धर्म—वैदिक धर्म वास्तव में प्रकृति की पूजा का धर्म था। वह आकाश जो विशाल और प्रकाशमान है, वह ऊषा जो विकसित प्रभात का स्वरूप है, और जो गृहणी की भांति मनुष्य को नींद से जगाकर काम पर लगाती है। वह प्रकाशमान सूर्य, जो पृथ्वी को सजीव करता है, वह वायु जो संसार में व्याप्त है। यही वेद के देवता हैं। इन्द्र, वरुण, मित्र का वर्णन वेद में सर्वाधिक है। सूर्य और सवित्र ये सूर्य के नाम हैं। आर्यों का प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र 'दिव्य' सवित्र देव की पूजा का मन्त्र है। अग्नि, रुद्र और यम जो पुराणों में अनेक रूप धारण कर गए, वेद के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवता हैं। सोम को भी देवता ही माना गया है। अश्विन्, बृहस्पति, विष्णु रुद्र इन सब वैदिक देवताओं का रूप पुराणों में बदल दिया गया है। ऊषा जो प्रभात का नाम है, और सरस्वती, जो एक नदी थी, पुराणों में देवियाँ बन गई हैं। ऊषा का वर्णन ऋग्वेद में काव्य-मयी भाषा में किया गया है। महत्व पूर्ण बात यह है कि ऋग्वेद के सूक्तों में कोई दुष्ट प्रकृति 'का देवता नहीं है। न इन देवताओं के किसी मन्दिर का ही उल्लेख हैं, जहाँ उनकी पूजा होती हो। प्रत्येक गृहस्थ का प्रधान गृहपति ही घर की होमग्नि को प्रगट करता था, और अपने घराने के सुख और आनन्द के लिए धन, धान्य और शत्रुओं से सम्पन्न होने के लिए, रोग और शत्रुओं पर जय पाने के लिए, देवताओं से घर में ही प्रार्थना करता था। पुरोहितों की प्रथक जाति न थी। न वे लोग वनों में जाकर तपस्या करते थे, जो वेदों के सूक्त निर्माण करते थे, वे ऋषि कहाते थे। वे सांसारिक मनुष्य थे। जिन के पास अन्न पशु, दास-दासी हल बैल, खेत प्रचुर मात्रा में रहते थे। और समय पड़ने पर वे शस्त्र बांध कर युद्ध में अनार्यों से लड़ते भी थे। इस प्रकार प्रत्येक गृहस्थ अपने परिवार का पुरोहित; योद्धा और कृषक था। फिर भी कुछ ऐसे ऋषि थे, जो धार्मिक विधानों को करने, सूक्तों को बनाने में विशेष ख्याति प्राप्त कर चुके थे, और राजा महाराजा लोग उनको पुरोहित बनाकर यज्ञ आदि धर्म कृत्य करते थे। आगे चल कर पुरोहितों के ये घराने पेशेवर पुरोहित बन गए। इन्हीं पुरोहित घरानों के द्वारा आगे वेदों की रक्षा रही।

आर्यों में इस काल मुर्दे की अर्द्ध दाह की प्रथा थी। उसे गाय के चमड़े में लपेट कर जलाते थे[1]। 'वृ' सेना के एक गुल्म को कहते थे[2]। शामूल ऊनी वस्त्र था। कुछ लोग 'महाकुल' के कहाते थे। गायकों को वृषगण कहते थे। रथों की दौड़ के मैदान को 'सदय' कहते थे। सभा भवन में जुआ और अन्य कार्य होते थे। वहाँ स्त्रियां नहीं जाती थीं[3]। उत्सव को समन कहते थे। वहां कुमारी और युवतियों का अभिसार होता था। रथ की दौड़ को पृत कहते थे। नर्तकी की पोशाक को पेशस् कहते थे। हरे भरे स्थान को प्रपा कहते थे। किले जीतने को अग्नि वाण फैंके जाते थे। वेश्याएं पुश्चली और महानग्नी कहाती थीं[4]। आर्यों के समुदाय ग्राम कहाते थे—जब अनेक ग्राम युद्ध के लिए एकत्र होते थे, तब ही उसे संग्राम कहते थे।

---

१. ऋग्वेद १० १६, ७। बुद्ध का भी अर्द्ध दाह हुआ था।
२. असुर इन्द्रिया पृ० ६०
३. वैदिक इन्द्रेवस—२ पृ० ४२६
४. वैदिन इद्र वस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सातवां अध्याय

द्वापर—राम-युधिष्ठिर काल

(—ई० पू० १५६९ से ई० पू० ११७७ तक=३९२ वर्ष)

१—द्वापर की काल गणना

द्वापर की काल गणना—पुराणों में द्वापर काल २००० वर्षों का माना है। परन्तु इसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस काल को हम वंशावलियों के आधार पर ही ठीक २ अनुमान कर सकते हैं। इस युग की —राम से युधिष्ठिर तक के काल की—वंशावलियों पर डा० सीतानाथ प्रधान ने बहुत भारी परिश्रम किया है। तथा इस काल की वंशावलियों को दृढ़ किया है। अब इन वंशावलियों में से दो शाखाएँ इस युग में प्रधान रहीं। एक सूर्यवंशी शाखा, जिसकी मूलशाखा में राम से वृहद्बल तक—जो महाभारत संग्राम में लड़ कर मारा गया. केवल १४ पीढ़ियां होती हैं। तथा चन्द्रवंश की कुरुशाखा में कुरु से, जो राम के समकालीन था, महाभिष शन्तनु तक—जो महाभारत संग्राम के प्रमुख भीष्म के पिता थे—ग्यारह पीढ़ियां आती हैं। हम वृहद्बल तक १४ पीढ़ियों को प्रत्येक का काल २८ वर्ष मान कर (यही काल प्रमुख ऐतिहासिकों ने माना है) गणना करते हैं, तो १४ × २८ = ३९२ वर्ष होते हैं। वृहद्बल से प्रसेनजित २३वीं पीढ़ी में हैं। यह निश्चित तथ्य है कि वह ई० पू० ५३३ में कौशल की गद्दी पर था। तो इस हिसाब से भी २३ × २८ = ६४४ + ५३३ = ११७७ ई० पू०। भारत-संग्राम काल अथवा युधिष्ठिर काल निर्णीत होता है। अब राम का काल जो भारत-संग्राम से ३९२ वर्ष पूर्व है, ३९२ वर्ष राम-वृहद्बल १५६९ ई०पू० निर्णीत होता है, यही द्वापर का आरम्भ काल है। और अन्त भारत संग्राम काल ई० पू० ११७७ है। अतः ई०पू० १५६९ से ई० पू० ११७७ तक ३९२ वर्ष का काल द्वापर का भोग काल है[1]।

---

१ राम से वृहद्बल तक कुल सूर्य-चन्द्र वंशियों के तेरह वंश चले। जिनकी १८५ पीढ़ियाँ मिल जुल कर हुईं। समष्ठी में १४ पुश्तों का पर्ता बैठा। ये सब पुत्रों के अनुसार हैं। जहां भाइयों को उत्तराधिकार मिला है, वहां पीढी जोड़ से निकाल दी गई हैं। कई वंश जो त्रेता वाले चक्र में हैं, अब द्वापर में वे नहीं रहे। उनके वंश-वृक्ष बन्द हो गए।

इस काल गणना के सम्बन्ध में भी पार्जीटर,, राय चौधरी तथा प्रधान का थोड़ा मतभेद है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पार्जीटर का तर्क—चन्द्रगुप्त मौर्य ई० पू० ३२२ में गद्दी पर बैठे। उनसे पूर्व महापद्मनन्द और उसके पुत्रों ने ८० वर्ष राज्य किया। अतः महापद्म नन्द ई० पू० ४०२ में गद्दी पर बैठा। उसने सारे तत्कालीन क्षत्रिय राजाओं को परास्त किया। इस काम में यदि उसे २० वर्ष भी लगे, तो उसका समय ई० पू० ३८२ होता है। प्राचीन राजाओं में पुराणों से प्रमाणित अधिसीम कृष्ण पौरव (५९) एक्ष्वाकु दिवाकर (५८), ब्रार्हद्रथ (६०) तथा प्रसेनजित समकालीन हैं। अतः महाभारत संग्राम के बाद, अधिसीम कृष्ण के समय तक ४ एक्ष्वाकु, ५ पौरव और ६ मागध राजे पड़ते हैं। इस काल को १०० वर्षों का मान लिया गया तो अधिसीम कृष्ण के बाद महापद्म द्वारा राजाओं के विनाश काल तक जो राजा हुए उनमें २४ एक्ष्वाकु २७ पांचाल, २४ काशी, २८ हैहय, ३२ कलिंग, २५ अरभक, २६ कौरव–पौरव, २८ मैथिल, २३ सूरसेन और २० वीतिहोत्र। इस प्रकार दस राज्यों में कुल २५७ राजा हुए। प्रतिराज पर्ते २६ राजा। प्रतिराजा का समय १८ वर्ष मानने से ३८२ ई० पू० से ४६८ वर्ष मिलते हैं। इस हिसाब से ३८२ + ४६८ + १०० = ९५० ई० पू० महाभारत संग्राम काल आता है।

डा० राय चौधरी का मन्तव्य—पुराणों का कथन है कि परीक्षित का जन्म महापद्म नन्द से १०५० वर्ष पूर्व हुआ। उधर कौशीतकि सांख्यायन आरण्यक अध्याय १५ में लिखा है कि साँख्यायन उद्दालक आरुणि से दो पीढ़ी नीचे थे। तथा शतपथ ब्राह्मण १३।५, ४, १ में इन्द्रोत देवाप या देवाप शौनक जन्मेजय के समकालीन थे। इनके शिष्य थे धृतिइन्द्रोत और उनके शिष्य पुलश प्राचीन थे। जिनके शिष्य पौलुशि सत्ययज्ञ थे। छान्दोग्य में इन्हें बुडिल आश्वतरश्वि तथा उपर्युक्त उद्दालक आरुणि का समकालीन माना है। अतः उद्दालक आरुणि के समकालीन, पौलुषि के जन्मेजय समकालीन शौनक प्रपितामह गुरु थे। सांख्यायन आरुणि से केवल दो पीढ़ी नीचे होने से छै पीढ़ियां होती हैं। कौशीतकि सांख्यायन आरण्यक में गौतम बुद्ध के समकालीन पौष्कर सादि तथा लौहित्य हैं, जो सांख्यायन से दो–तीन पीढ़ी नीचे हैं। अतः बुद्ध से जन्मेजय तक केवल आठ–दस पीढ़ियों का ही अन्तर रहता है। इस प्रकार भारत संग्राम काल ई० पू० ७५७ ही ठहरता है।

श्री सीतानाथ प्रधान का मत—प्रधान ने चन्द्रगुप्त मौर्य से बिम्बसार तक का वास्तविक काल ई० पू० ३२५ से ई० पू० ५२७ तक माना है। यह कुल २०२ वर्ष होते हैं। और इस बीच दस राजा हुए। मागध सोमाधि (५४) से रिपुंजय (७५) तक २१ पीढ़ियों का भोग-काल २८ वर्ष के हिसाब से ५८८ वर्ष माना है। रिपुंजय ५६३ ई० पू० में गद्दी पर बैठे, तथा ई० पू० ५१३ में मारे गए। अतः सोमाधि का समय ५८८ + ५६३ = ११५१ ई० पू० आता है। यही भारत संग्राम काल है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरा तर्क—पौरव परीक्षित (५५) से उदयन (७७) तक २२ पीढ़ियाँ हुईं। जिनका समय २२ × २८ = ६१६ वर्ष हुआ। उदयन ई०पू० ५२० में राजा हुए। तथा परीक्षित से ३६ वर्ष पूर्व महाभारत संग्राम हुआ। इस प्रकार ५२० + ६१६ + ३६ = ११७२ ई० पू० संग्राम काल प्रमाणित हुआ।

तीसरा तर्क—ऐक्ष्वाकु उरक्षय (५५) से प्रसेनाजित् (७६) तक २२ पीढ़ियां होती हैं। जिन का भोगकाल ६१६ वर्ष है। प्रसेनाजित ई० पू० ५३३ में गद्दी पर थे। इस प्रकार ५३३ + ६१६ = ११४९ ई० पू० महाभारत संग्राम काल प्रमाणित हुआ।

डाक्टर सीता नाथ के दोनों तक हमारे मनोनीत काल के लगभग निकट ही है। केवल २५। ३० वर्ष का अन्तर है। श्री चौधरी का मत अनिर्णीत है। उन्होंने यह मत गुरु शिष्य परम्परा पर आधारित किया है, परन्तु गुरु शिष्य परम्परा पर व्यासों ने ठीक गणना नहीं की है। उदाहरण के लिए—राम के समकालीन गौतम पुत्र शरद्वन्त और अहल्या के पुत्र शतानन्द के पुत्र सत्यधृति हरिवंश के अनुसार है। उन्हीं के पुत्र कृपाचार्य शन्तनु के समकालीन बताए गए हैं। यद्यपि अहल्या से कृप तक १०। १२ पीढ़ियां पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त यह जन्मेजय-शन्तनु के पूर्वज हैं।

श्री पार्जीटर ने प्रति पीढ़ी का हिसाब १८ वर्ष गिना है। यदि वह २८ वर्ष गिना जाय तो २६ पीढ़ियों के काल में—२६० वर्ष और बढ़ जाते हैं। और उनका निर्णीत काल १२१० हो जाता है, जिसमें हमारे निर्णीत काल से केवल ३३ वर्ष का अन्तर रहता है। यह थोड़ा अन्त भी इस लिए हुआ है, कि पुराणों में केवल मागध–पौरव और एक्ष्वाकु वंश तो दिए हैं, परन्तु शेष सात वंशों की पुश्त संख्या मात्र दी है। इन तीनों के भी विषय में पीढ़ियों के विवरण का प्रधान से कुछ मत भेद है। पण्डित तिलक का ज्योतिष पर आधारित मत भी लगभग यही है।

अन्य मत—इस सम्बन्ध में अन्य आधुनिक विद्वानों के भी मत हैं, श्री जायसवाल भारत संग्राम काल ई० पू० १४२४ मानते हैं। तथा डा० राधाकुमुद मुकर्जी भी लगभग यही मानते हैं। वृद्ध गर्ग, वराह मिहिर, अलवरूनी और कल्हण महाभारत संग्राम काल ई० पू० २४०० से ३००० तक मानते हैं। यह गणना ज्योतिष के आधार पर की गई है। कुछ ताम्र पट्ट भी ऐसे मिले हैं, जिनमें लगभग इतनी काल गणना लिखी है। पर वे ऐतिहासिक आधारों पर प्रमाणित नहीं है।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२--द्वापर के राजवंश

राम और उनका वंश-- ३० वर्ष की अवस्था में राम ने पिता की आज्ञा से वन गमन किया, और १४ वर्ष वहां रह कर रावण को मार ४४ वर्ष की आयु में अयोध्या आकर सिंहासन ग्रहण किया। राम के पिता दशरथ का राज्य बहुत बड़ा था। वंग-प्रंग, मगध, काशी, कोशल, द्रविड़, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, और दक्षिणापथ उनके साम्राज्य के अन्तर्गत थे। राम और उनके भाइयों ने अब और भी राज्य-वृद्धि की।

राम के राज्यारोहण के बाद ही भरत ने मथुरा के असुर राजा लवणासुर को मार शत्रुघ्न को वहां का राजा बनाया। इसके बाद भरत और उसके पुत्र तक्ष और पुष्कल ने युधाजित अश्वपति की सहायता से सम्पूर्ण गन्धर्व देश विजय किया[२]। तथा भरत ने अपने दोनों पुत्रों के नाम पर एक एक नगर तक्षशिला और पुष्कलावती बसाए। तथा—वहीं भरत के दोनों पुत्रों की राजधानियां रहीं। आगे भारतीय इतिहास में ये नगर बहुत प्रसिद्ध हुए।

राम पुत्र कुश् कौशल में स्थापित हुए। उनकी राजधानी कुशावती बसाई गई। जो विन्ध्य पर्वत पर थी[३]। लव की राजधानी श्रावस्ती रही। पीछे कुश अयोध्या में लौट आए।

शत्रुघ्न पुत्र सुवाहु मथुरा का राजा बना। तथा दूसरा पुत्र शत्रुघाती विदिशा का। लक्ष्मण के अंगद और चन्द्रकेतु दो पुत्र हुए। उनके भी प्रथक् राज्य स्थापित हुए। इस प्रकार राम कुल के कुल आठ राज्य स्थापित हुए। राज्या-रोहण के बाद राम ने बीस बरस राज्य किया, और अनेक अश्वमेध यज्ञ किए। इस कुल में भारत-संग्राम पर्यंत १४ पीढ़ियां हुईं। भारत संग्राम में इस कुल का राजा बृहद्बल युद्धस्थल में अभिमन्यु द्वारा मारा गया[४]।

कुरु वंश—संवरण पुत्र कुरु राम का समसामयिक पौरव राजा था। यह वंश-कर प्रसिद्ध हुआ। इसीके नाम पर पौरवों का कुरु वंश चला। कुरु का पिता संवरण पांचाल सुदास से हारकर राज्य भ्रष्ट हो गया था। यह संग्राम बहुत भीषण हुआ था, पैजवन सुदास ने दस अक्षोहिणी सेना लेकर संवरण पर आक्रमण किया था[५]। युद्ध

---

१. वाल्मीकि राम० उत्तर पाठ।

२. पेशावर में डेरागाजी तक का प्रदेश

३. रघुवंश

४. महाभारत।

५. अभ्यघ्नन् भारतांश्चैव सपत्नानां वलानि च।
चालयन् वसुधां चैव बलेन चतुरंगिणा।
अभ्ययांतं च पांचाल्यो विजित्य तरसा महीम्।
अक्षौहिणीभिर्दशभिः स एतं समरेऽजयत्। महा० आदि प० अ० ८९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में हार कर संवरण सिन्धु नद की ओर भागा। वहाँ पर्वत के समीप वह किसी निकुंज में रहने लगा[1]। उसके साथ उसका पुत्र कुरु तथा मंत्रीगण और अन्य परिवार के लोग भी थे। बारह वर्ष वह वहां रहा[2]। बाद में सुदास से नाराज होकर वशिष्ठ ने उसे सहायता दी, और वह वशिष्ठ की सहायता से सैन्य संग्रह कर संग्राम करने आया। सुदास कुछ पूर्व ही दस राजाओं के भारी युद्ध में क्षतिग्रस्त हो चुका था। वह सवरण का सामना न कर सका। और युद्ध में पराजित हो कर मारा गया। इस प्रकार वशिष्ठ की कृपा से उसने अपना वह राज्य फिर पाया। परन्तु राज्य का वह वैभव वह स्थापित न कर पाया। वनवास का अधिकांश उसने तक्षशिला से परे पर्वतों में रह व्यतीत किए थे। वहीं उसने तपती नाम की स्त्री से विवाह किया। तपती और संवरण का पुत्र कुरु था।

कुरु ने पौरवों की प्राचीन राजधानी प्रतिष्ठान त्याग दी। पिता के पलायन काल में वह सम्भवतः कुरु जांगल में जा छिपा था। उसी कुरु जाँगल में उसने कुरुक्षेत्र बसा उसे अपनी राजधानी बनाया[3]। उसने जंगल साफ किए, और भूमि को सम किया[4]। यह तपस्वी–प्रतापी और धैर्यवान राजा था। इस वंश में भारत संग्राम तक ग्यारह पीढ़ियां हुई[5]।

इस काल के समकालीन राजा —

उत्तर पांचाल		काशी	कौशल	पौरव	श्विक्न ऋषिगण
मुद्गल	सृंजय	दिवोदास	दशरथ	ऋक्ष	
वध्र्यश्व	पिंजवन	प्रतर्दन	राम	संवरण	
दिवोदास	सुदास				अलीकपु, स्थविर
	सहदेव	क्षत्र	कुश		जातूकर्ण्य, वशिष्ठ
					भरद्वाज, विश्वामित्र,
					प्रतीदर्श, पर्वत, नारद

द्वापर में जिन तेरह वंशों की शाखाएं चलीं, उनका एक चक्र हम यहाँ देते हैं :—

१. महा० आदि० ८९। ३४+३६।
२. महा० आदि० चैत्ररथ पर्व का तापत्योपाख्यान।
३. यः प्रयागं यदाक्रम्य कुरुक्षेत्रमकल्पयत्। (मत्स्य पुराण ५०। २०
यः प्रयागं यदाक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकारह। वायु। ९९। २१५।
४. मत्स्य पु० ९०। २०।
५. महा० आदि० ८९। ४४–५१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वापर का चक्र

शाखाओं के नाम	किस से आरम्भ		किस तक		कितनी पीढ़ि०	विवरण
	नाम	नं०	नाम	नं०		
श्रावस्ती का लव (सूर्य) वंश	लव	४०	वृहद्बल	५३	१४	ये दोनों राम के पुत्र हैं। वंश पूर्ण मिलते हैं।
अयोध्या का कुश (सूर्य) वंश	कुश	४०	श्रुतायुस	५४	१५	
विदेह	शत्रद्युम्न	४०	बहुलाश्व	५३	१५	सब पुश्तें मिलती हैं।
विदेह दूसरी शाखा	शत्रद्युम्न	४०	उपगुप्त	५५	१६	उपगुप्त पर राज्य समाप्त, पूर्ण वंश प्राप्त है।
युधिष्ठिर पौरव	जयत्सेन	४०	अर्जुन	५३	१४	पूर्ण प्राप्त। वंश युधिष्ठिर का न चल कर अर्जुन का चला।
द्विमीढ़ विदर्भ	धृतिमंत	४०	नृपंजय	५५	१६	पूर्ण प्राप्त। नृपजय के पुत्र बहुरथ पर समाप्त।
उत्तर पांचाल	सोमक	३९	धृष्टकेतु	५२	१४	७ पुश्तें अज्ञात, शेष ज्ञात।
दक्षिण-पांचाल	पृथुषेण	४०	जनमेजय का पौत्र	५३	१४+२	महाभारत युद्ध से दो पुश्त पूर्व जनमेजय पर समाप्त।
मागध	च्यवन	४१	सोमाधि	५४	१४	पूर्ण प्राप्त।
चेदि	सुहोत्र	४०	शिशुपाल	५२	१३	९ पुश्तें अज्ञात हैं। इन्हीं पर वंश समाप्त है। पूर्ण प्राप्त है।
काशी	सन्नति	४१	भद्रसेन	५५	१५	न० ५४ कंस के भागिनेय थे।
मथुरा यादव	भीम	४३	श्री कृष्ण	५५	१३	पूर्ण वंश प्राप्त।
आंग-आनव	पृथुलाश्व	४२	कर्ण	५२	११	पूर्ण वंश प्राप्त। शायद दो तीन पुश्तें छूट रही हों।
१३ वंश	१३	१३	१३	१३	१८	३१ वंशों में से २ अधूरे मिलते हैं और शेष पूर्ण।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३--राम वंश

वंश वृक्ष :--

३९ राम

- ४० कुश
  - ४१ अतिथि
  - ४२ निषध
  - ४३ नल
  - ४४ नभस
  - ४५ पुण्डरीक
  - ४६ क्षेमधृत्वन
  - ४७ देवानीक
  - ४८ अहीवगु
    - १
      - ४९ परिपात्र
      - ५० वल
      - ५१ उक्थ
      - ५२ वज्रनाम
      - ५३ शंखन
      - ५४ व्युषिताश्व
    - २
      - ४९ सहस्त्राश्व
      - ५० चन्द्रावलोक
      - ५१ तारापीड़
      - ५२ चन्द्रगिरि
      - ५३ भानुश्चन्द्र
      - ५४ श्रुतायुस
- ४० लव
  - ४१ पुष्य
  - ४२ ध्रुवसन्धि
  - ४३ सुदर्शन
  - ४४ अग्निवर्ण
  - ४५ शीघ्रग
  - ४६ मरु-मनु
  - ४७ असुश्रुत
  - ४८ सुसन्धि
  - ४९ अमर्ष
  - ५० विश्रुतवन्त
  - ५१ विश्ववाहु
  - ५२ प्रसेनजित्
  - ५३ तक्षक
  - ५४ वृहद्वल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवरण--

लक्ष्मण और शत्रुघ्न के लड़कों के राज्य शीघ्र छूट गए। भरत के पुत्रों का प्रभाव दीर्घ काल तक रहा। उनके वंशधर शताब्दियों तक पुष्करावती और तक्षशिला पर राज्य करते रहे। परन्तु उनके वंशधर मध्य देश छोड़ कर अपने ही प्रान्त के क्षत्रियों में मिल गए। इसी से पुराणों में इन वंशों के नाम नहीं आए।

कुश--राम के बड़े पुत्र कुश को दक्षिण कोशल तथा अयोध्या के प्रान्त मिले। अवध प्रान्त के दो भाग करके राम ने श्रावस्ती लव को दी तथा अयोध्या कुश को। बड़े होने के कारण दक्षिण कोशल भी उन्हीं को मिला। यह विन्ध्य में था, जो पूर्वोक्त दक्षिण कोशल से पृथक् था। क्योंकि वह राज्य महाभारत के पीछे तक चलता रहा। कुश पहिले कुशावती में रहे। अयोध्या उजाड़ हो चली। बाद में वे अयोध्या ही में आ बसे[१]। कुश का एक विवाह किसी तक्षक नाग की पुत्री कुमुदवती से हुआ[२]। दुर्जय नाम किसी असुर से युद्ध करते हुए कुश मारे गए[३]। इनके पुत्र अतिथि ने पिता के घातक दुर्जय को मारा। इनके वंशधर पारिपात्र (४९) के छोटे भाई सहस्त्राश्व ने पृथक् राज्य स्थापित किया। बल मुख्य गद्दी पर रहे। सहस्त्राश्व (४९) का राज्य ६ पीढ़ी चला। अन्तिम राजा श्रुतायुस (५४) महाभारत संग्राम में मारा गया[४]।

लव--लव श्रावस्ती के राजा हुए। इनका वंश दीर्घ काल तक चला। लव के पौत्र ध्रुवसन्धि थे। इनका विवाह कलिंग राजकन्या मनोरमा तथा उज्जैन पति युधाजित की पुत्री लीलावती से हुआ। मनोरमा से सुदर्शन पुत्र हुआ, और लीलावती के गर्भ से शत्रुजित। ध्रुवसन्धि का शत्रुजित पर अधिक प्रेम था। राजा के मरने पर मन्त्रियों ने सुदर्शन को राजतिलक देना चाहा। इस पर कलिंग राज और उज्जैन पति अपने २ दोहतों का पक्ष लेकर लड़ने को तैयार हो गए। शृङ्गवेरपुर में भारी युद्ध हुआ। कलिंग राजा मारा गया और मनोरमा रानी बालक सुदर्शन को लेकर वन में चली गई, और प्रयाग में भारद्वाज के आश्रम में आश्रित हुई। युधाजित ने शत्रुजित को राजा बना दिया।

युधाजित ने भारद्वाज से सुदर्शन को बहुत मांगा, पर उन्होंने नहीं दिया। कुछ काल बाद काशी नरेश सुवाहु की पुत्री शशिकला का स्वयंवर हुआ। इस समय तक सुदर्शन भारद्वाज की शिक्षा से विद्वान हो गया था। उसके गुणों को

---

१. रघुवंश १६। २५।
२. रघुवंश १६। ८५।
३. रघुवंश १७। ५।
४. श्री प्रधान। महाभारत। मत्स्य पुराण १२। ५५।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुन कर शशिकला उस पर मोहित हो गई। और उसने पत्र भेज कर उसे स्वयंवर में बुला भेजा। सुदर्शन काशी पहुंचा। वहां युधाजित्, शत्रुजित्, कारुख पति, भद्रशर,सिंहराज, माहिष्मतिपति, पांचालराज, कामरूप, कर्णाटक, विदर्भ, केरल, चोल, आदि राजा एकत्रित थे। युधाजित् ने सुदर्शन को देख आपत्ति उठाई कि स्वयंवर राजाओं के लिए है, इसलिए सुदर्शन इसमें सम्मिलित नहीं हो सकता। इस पर केरल के राजा ने कहा--कि वह राजा ध्रुवसिन्धु का बड़ा पुत्र होने के कारण माननीय व्यक्ति है। और भी राजा उसके पक्ष में हो गए, और राजकुमारी ने उसे ही जयमाल पहिना दी। इस पर युधाजित् युद्ध करने को तैयार हो गए। घनघोर युद्ध हुआ और युधाजित् और शत्रुजित् दोनों मारे गए[1]। सुदर्शन अयोध्या का राजा हुआ। महाभारत काल में इसी के वंश में वृहद्बल हुआ, जो चक्रव्यूह में अभिमन्यु से मारा गया[2]।

अन्य वंश--

सगर वंश भगीरथ के बाद समाप्त हो गया।

दक्षिण कोशल राजवंश के राम के समकालीन राजा कल्माषपाद थे। पीछे इनके राज्य के दो खण्ड हो गए--प्रथम में अश्मक-उरकाम और मूलक हुए, तथा दूसरे में सर्वकर्मन-अनरण्य, निघ्न और अनमित्र। बौद्ध साहित्य में इस वंश का नाम अस्तक कहा गया हैं। भारत संग्राम में अश्मक पुत्र ने युद्ध किया था।

विदेह राजा जनक सीरध्वज राम के श्वसुर थे। उनके भाई कुशध्वज सांकाश्य नरेश बनाए गए। इनके वंश में धर्मध्वज, कृतध्वज और केशिध्वज के समय तक राज्य चला। कृतध्वज के भाई मितध्वज थे। जिनके पुत्र खांडिल्य का राज्य उन्हीं के किसी वंश वाले ने केशिध्वज से छीन लिया। पीछे उनसे ज्ञान सीख कर फेर दिया[3]। मुख्य वंश में सीरध्वज (३८) के पुत्र भानुमन्त राम के साले थे। शकुनि पुत्र स्वागत के भाई ऋतुजित (४५) ने दूसरा राज्य स्थापित किया। इस वंश में ५५ पीढ़ी तक राज्य चला। धृति (५२) और वहुलाश्व (५३) के समय कृष्ण इनके राज्य में गए थे[4]। तब यह राज्य साधारण स्थिति में था। इसके आगे इस वंश का वर्णन नहीं है। परन्तु महाभारत के ढाई सौ वर्ष बाद उसने आध्यात्मिक महत्ता प्राप्त की। वैशाली वंश त्रेता में ही भंग हो चुका था। लव वंश का प्राधान्य अन्त तक रहा। फिर भी द्वापर में सूर्य वंश दबा ही रहा। कोई तेजस्वी नामांकित राजा सूर्य वंश में नहीं हुआ। द्वापर में चन्द्र वंश उन्नत रहा।

---

१. देवी भागवत। III १४। २५।
२. महा० द्रोणपर्व ४७। २२।
३. विष्णु पुराण VI, ६।
४. भागवत दसवां कांड।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४--कुरु से शन्तनु

कुरु ने वत्स राज्य जीता। इन्हीं के नाम पर कुरु वंश चला।

कुरु वंश--कुरु की पत्नी का नाम वाहिनी था[1]। उसके आगे के वंश के सम्बन्ध में महाभारत और पुराणों में बहुत अन्तर है। वायु और मत्स्य पुराण में उसके चार पुत्र लिखे हैं[2]। विष्णु तीन ही पुत्र बताता है[3]। महाभारत में पांच पुत्रों का उल्लेख है। यहां हम महाभारत के आदि पर्व की वंशावलि देते हैं।

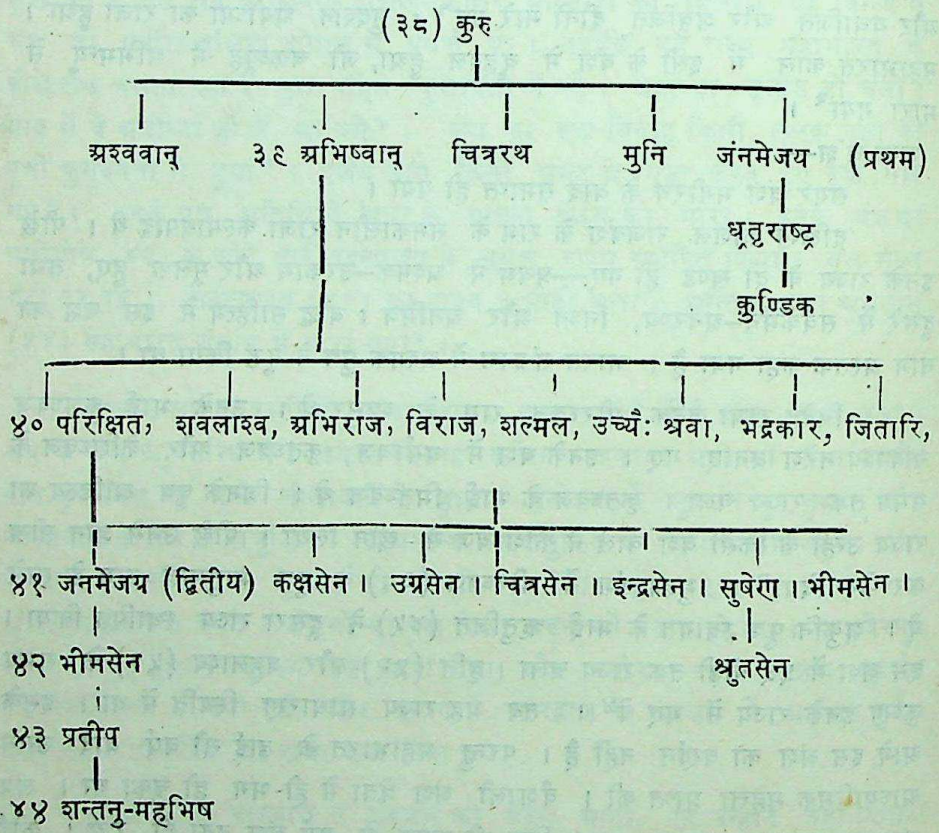

परीक्षित प्रथम--परीक्षित (प्रथम) को मत्स्य पुराण महा तेज लिखता है[4]।

---

१. महा० आदि० ४५। १६।
२ वायु ९९। २१७. २१८। मत्स्य ५०। २३।
३. विष्णु ४। १९। ६८।
४. मत्स्य ५०। २३।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वायु में इसे महाराज कहा है[१]। परीक्षित के भाई उच्चैःश्रवा का उल्लेख जेमिनी ब्राह्मण और आरण्यक में हैं[२]। परन्तु उसे कुवय या कुपय का पुत्र लिखा है। महाभारत में उसके पिता का नाम अभिष्वान् लिखा है। सम्भव है कुपय उसका दूसरा नाम हो। केशी की माता दर्भपत्नी उच्चैःश्रवा कौरव की भगिनी थी। कौशितकि ब्राह्मण में केशी दार्भ्य को शिखण्डी याज्ञसेन का समकालीन कहा है[3], जो महाभारत संग्राम में लड़ा था। केशी का मामा उच्चैःश्रवा इस अवस्था में महाभारत संग्राम से निकट होना चाहिए। अतः यह संदिग्ध हैं।

जनमेजय द्वितीय—परीक्षित प्रथम का पुत्र जनमेजय द्वितीय प्रसिद्ध पुरुष है। एतरेय ब्राह्मण के कई प्रकरणों में महाराज जनमेजय और तुरः कावषेय का उल्लेख आया है। तुरः कावषेय प्रसिद्ध याज्ञिक था[४]। शतपथ उसे प्रजापति का शिष्य लिखता है[५]। तुरः कावषेय के समान दन्तावल ध्रोम भी जन्मेजय परिक्षित का समकालीन था[६]। जन्मेजय का दूसरा प्रधान याज्ञिक इन्द्रोत दैवाय शौनक था[७]। जन्मेजय ने आसन्दीवान् ग्राम में भारी यज्ञ किया था[८]। इन्द्रोत दैवाप शौनक और तुरः कावषेय दोनों ही उस यज्ञ में उपस्थित थे। वायु पुराण जन्मेजय को कुरु पुत्र और परीक्षित पुत्र कहता है[९]। इस समय जन्मेजय के पास एक प्राचीन रथ था, जो इन्द्र ने इससे लेकर चौद्यवसु को दे दिया था[१०]। चैद्य वसु भारत संग्राम से कई पीढ़ी प्रथम हुआ। जन्मेजय द्वितीय की पुरातन कथा को भीष्म ने युधिष्ठिर को सुनाया था[११]।

---

१. वायु ९९। २१८

२. अथैषोऽन्तर्वसुः खण्डिकश्च हौद्धारिः केशी चदाभ्यः पञ्चालेषुपस्पृधाते। ... सहकेशी उच्चैश्रवसंकैप्वयेयं जगाम कौरव्यं राजानं मातुर्भ्रातरम्।

जैमिनी० ब्रा० २। २७९।

उच्चैः श्रवाह कौपयेयः कौरव्यौ राजास। तस्यह केशी दार्म्यैः पाञ्चलो राजा स्वस्त्रीय आस। जै० अ० ०। २९। १।

३. कैषीतकि ब्रा० ७। ४।

४. एतरेय ब्रा० ४। २७। ७। ३४। ८। २१।

५ शतपथ ब्राह्मण ९। ५। २। १५।

६. शतपथ ,, १०। ६। ५। ९।

७. जै० ब्रा० पूर्वार्ध २। ५

८. शतपथ ब्रा० १३। ५। ४। १।

९. आसन्दीवान् ग्राम का उल्लेख पाणिनी के ८। २। ११ सूत्रमें है। उस पर काशिकाकार कहता है—आसन्दीवान् ग्रामः। आसन्दी वदहिस्थलम्। राय चौधरी आसन्दीवान् को जन्मेजय की राजधानी कहता है (P. H. A. I.)

१०. वायु ९९। २२०

११. वायु ९३। ३८–२७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जन्मेजय द्वितीय के भाई कक्षसेन का उल्लेख जैमिनि आरण्यक[1], ताण्डडेल ब्राह्मण[2] और ऐतरेय ब्राह्मण[3] में है। उन वचनों से ज्ञात होता है कि ब्रह्मदत्त चैकितानेय, अभिप्रतारिण काक्षसेन कौरव, पुरोहित शौनक, और शौनक कापेय समकालीन थे। गिरिक्षित औचामन्यव और काक्षसेन में संवाद हुआ था। ऐतरेय ब्राह्मण[4] तथा शां० श्रौ० सू०[5] से भी कुछ इन नामों का पता चलता है। छांदोग्य भी काक्षसेन अभिप्रतारिण का उल्लेख करता हैं[6]।

इन सब उदाहरणों से निम्नलिखित वंश परंपरा तथा समय सम्बन्ध सूचित होता है :—

जनमेजय	कक्षसेन	इन्द्रोत दैवाप शौनक	
|	|	इति ऐन्द्रोत	ब्रह्मदत्त चैकितानेय
भीमसेन	अभिप्रतारिण		
|	|		
प्रतीप	वृद्धद्युम्न	शुचिवृक्ष गौपालायन	
|	|		
शन्तनु	रथगृत्सु		

परन्तु कक्षसेन के पुत्र अभिप्रतारिण का नाम महाभारत में नहीं है। ऐसा अनुमान होता है कि जनमेजय अपनी राजधानी हस्तिनापुर ले गए थे, और काक्षसेन कुरु क्षेत्र की गद्दी पर रह गए थे। यह भी सम्भवना है कि कुरु वंशियों ने और भी कुछ नए छोटे २ राज्य स्थापित कर लिए थे।

कौशल के राजा ब्रह्मदत्त—प्रासेनजित् ने ब्रह्मदत्त चैकितानेय को वरा[7]। प्रसेनजित् कौसल्य वृहद्बल से, दो पीढ़ी ही ऊपर है। तथा उसके बाद तक्षक का नाम है। प्रसेनजित् के पुत्र ब्रह्मदत्त का नाम नहीं है। प्रसेनजित् का नाम भी केवल भागवत में[8] मिला है। यहाँ जैमिनीय ब्राह्मण से उसका समर्थन होता है। अब या तो तक्षक से प्रथम ब्रह्मदत्त नाम जोड़ना चाहिए। या फिर ब्रह्मदत्त कहीं दूसरे राज्य

---

१. महा० शान्ति० अ० १४९—१५१।
२. जै० आ० १।५९।१।
३. १०।५।७
४. ऐतरेय ब्रा० १५।४८।
५. एतरेय १५।४८
६. शां० श्रौ० सू० १५। १६
७. छान्दोग्य ४।३।५
८. जै० ब्र० १।३३७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का स्वामी हुआ। परन्तु काक्षसेन अभिप्रतारिण ४२ वीं पीढ़ीं में है। तथा ब्रह्मदत्त चैकितानेय काक्षसेन अभिप्रतारिण का समकालीन है। परन्तु प्रसेनजितू ५२वीं पीढ़ी में आता है। इस प्रकार समय का अन्तर पड़ता है।

जनमेजय के अन्य भाइयों उग्रसेन, श्रुतसेन, और भीमसेन का उल्लेख, वैदिक साहित्य में मिलता है[1]। हरिवंश में श्रुतसेन, उग्रसेन, और भीमसेन को जनमेजय का दायाद लिखा है[2]। कदाचित् यह भ्रम हो।

प्रतीप——प्रतीप-प्रतिप-पर्यशव, एक ही पुरुष के नाम हैं। वृद्धद्युम्न उनके समकालीन हैं। ऐसा प्रतीत होता है, कि प्रतीप को निरन्तर घन घोर युद्धों में फसा रहना पड़ा। और अन्ततः उन्हें पराजित होकर कुरुक्षेत्र को छोड़ना पड़ा[3]। तभी से कुरुक्षेत्र उजड़ गया, और कौरवों की राजधानी केवल हस्तिनापुर ही रही. इससे यह तो स्पष्ट होता है, कि कक्षसेन का पुत्र अभिप्रतारिण था। और अभिप्रतारिण का पुत्र वृद्धद्युम्न था। जनमेजय का पौत्र प्रतीप और कक्षसेन का पौत्र वृद्धद्युम्न दोनों समकालीन हैं। दोनों ही को कुरुक्षेत्र छोड़ना पड़ा था।

प्रतीप को बड़ी आयु तक संतान नहीं हुई। उनकी स्त्री शैव्या सुन्था या सुनन्दा थी, शैव्य जनपद शेर कोट के पास था। जो झग के समीप है, सुनन्दा के पिता का नाम वृषादर्व था। वृद्धावस्था में वे विरक्त भाव से बहुत दिन गंगा तट पर रहे——तभी उन्हें तीन पुत्र हुए—देवापि-शांतनु और वह्लिक[4]। देवापि वाल्यकाल में ही वनस्थ हो गया, वन्हिक अपने मामा के घर चला गया। शन्तनु के पुत्र होने पर उसके पिता ने उसे राज्य दिया और वानप्रस्थ ग्रहण किया[5]।

---

१. शतपथ ब्राह्मण १३। ५। ४। ३। शां०। श्रौ० १६। ९। २—७

२. हरिवंश १। ३८। १०१

३. तेनो ह त्रिष्ठोमेन वृद्धद्युम्न अभिप्रतारिण ईजे।१०। तमु ह ब्राह्मणोऽनुव्याजहार। न क्षत्रस्यधृति नायष्ट इयमेव प्रति समरं कुरवः कुरुक्षेत्रात् च्योष्यन्त इति।११। तदु किल तथैवास यथैवैनं प्रोवाच।१२। शांख्यायन श्रौत सूत्र० १५। १६

४. प्रतीपस्तुखलु शैव्यामुपयेमे सुनन्दां नाम। तस्यां त्रीन. पुजानुत्पादयामास। देवापि शन्तनुं वह्लिकं नाम। महा० आदि० अ० ६२। ऋ० ४७

५. ऋग्वेद में देवापि को अरिष्टषेण का पुत्र कहा गया है। महाभारत में उनकी कोई चर्चा नहीं है। अरिष्टषेण का भी कहीं उल्लेख नहीं है। देवापि को कुष्ट रोग हो गया था। इसी से वे राज्याधिकार से ज्येष्ठ होने पर भी वंचित रह गए। वे इस से दुःखित हुए, और रोने तक लगे। परन्तु प्रजा के विरोध के कारण उन्हें राज्य से हटना पड़ा। (महाभारत १४९, ६) प्रधान का कथन है कि देवापि पुत्र तो प्रतीप के ही थे——पर अरिष्टषेण के शिष्य हो कर याजक हो गए। गुरुपद के कारण देवापि के पिता का नाम वेद में अरिष्टषेण लिखा है। यास्क के निरुक्त २। १०। में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह पाठ है-- 'देवापिश्चार्ष्टिषेणः शन्तनुश्च कौरव्यौ भ्रातरौ बभूवतुः। स शन्तनुः कनीचानभिषेचयां चक्रे देवापिस्तपः प्रतिपेदे। ततः शन्तनो राज्ये द्वादशे वर्षाणि देवो न ववर्ष। तमूचु ब्राह्मणाः। यहां आर्ष्टिषेण का अर्थ यास्क ने अर्ष्टिषेण का पुत्र कहा है। निरुक्त भाष्यकार स्कन्द स्वामी इस पद की व्याख्या में लिखता है, कि देवापि ने च्यवन के पास ब्रह्मचर्य वास किया। इसी च्यवन का दूसरा नाम ऋष्टि-षेण या अरिष्टषेण था। (स च किल च्यवन नामापरनाम्नि ऋष्टिषेणो ब्रह्म चर्य मुवास। २। १०। वायु पुराण तथा हरिवंश भी इस वक्तव्य का समर्थन करते हैं:--

च्यवनोऽस्यहि पुत्रस्तु इष्ट कश्च महात्मनः'। (वायु ९९। २३७।

'च्यवनस्य कृतः पुत्रः दृष्टश्चा सीन्महात्मनः। हरि० १। ३२। १०९

दुर्गाचार्य और स्कन्द दोनों ही निरुक्त टीकाकार कहते हैं, कि देवापि ब्राह्मण हो गया। स्कन्द देवापि तथा शन्तनु को भीमसेन पुत्रौ' लिखता है। परन्तु पौत्रौ' पाठ होना चाहिए।

प्रातिपीय वाह्लिक—शतपथ ब्राह्मण प्रतीप के पुत्र वह्लिक को कौरव कुल का राजा लिखता है---तदु ह वह्लिकः प्रातिपीयः सुश्राव। कौरव्यो राजा ..... ।

माध्यदिन शतपथ ब्रा० १२।९।३।३।

महाभारत में इसे विद्वान् लिखा है[1]। महाभारत और पुराणों में विद्वान् शब्द प्रायः मंत्रद्रष्टा के लिए आता है। वह महारथ योद्धा था[2]। शतपथ उसे यज्ञ विधि का पण्डित कहता है[3]। वह्लिक का पुत्र सोमदत्त कौरव्य था। उसका पुत्र भूरिश्रवा था, भूरिश्रवा के ध्वज, पर यूप चिन्ह रहता था[4]। इससे प्रकट है कि उसे यज्ञ प्रिय था। उसे यज्ञशील कहा भी गया है।

युधिष्ठिर के काल में वह जीवित था। युधिष्ठिर पूछता है----हे सूत् क्या विचित्रवीर्य के पुत्र महात्मा धृतराष्ट्र पुत्रों सहित प्रसन्न तो हैं, और प्रतीप के पुत्र विद्वान् महाराज वह्लिक प्रसन्न तो हैं। (महा० सभापर्व। ५६। २।) यह वह्लिक महाभारत संग्राम में युद्ध करता हुआ भीम के द्वारा मारा गया। (द्रोण० १५५। ११-१५) इस युद्ध में वह्लिक उसका पुत्र सोमदत्त. उसका पुत्र भूरि, भूरिश्रवा, शल, तथा भूरिश्रवा के और कई पुत्र भारत संग्राम में साथ ही लड़े। वास्तव में यह चार पीढ़ी का प्रश्न उठता है। और कौरव-पाण्डवों के वह्लिक पड़दादा होते हैं।

---

१. महाराजो वाह्लिकः प्रातिपीयः कचिद्विद्वान् कुशली सूत्रपुत्र (उद्योग प० २३। ९

२. वाह्लिकश्च महारथः।

३. शतपथ १६। ९। ३। ३

४. द्रोण पर्व १०२। ५५।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

५ — शन्तनु-महाभिष

शन्तनु—शन्तनु महाभिष का २० वर्ष की आयु में राज्याभिषेक हुआ। और उसने लगभग ५० वर्ष राज्य किया। वह अपने समय का राज राजेश्वर कहाया।[1] इस राजा को आयुर्वेद का भारी ज्ञान था। इससे इसे महाभिष कहा गया है।[2] महाभारत में शन्तनु के गुणों का बहुत वर्णन है।[3] अपनी आयु के २८ वे वर्ष वह गृहस्थ जीवन से विरक्त हुआ।[4] इसका कारण यह था कि इस राजा को मृगया का बहुत व्यसन था। एक बार गंगा तीर पर विचरण करते हुए उसे वन में गंगा

गंगा का विवाह

इस प्रकार महाभारत संग्राम में लड़ने वाले भीष्म से भी बड़ी आयु के ये भीष्म के चचा या ताया होते हैं।

शतपथ उन्हें राजा लिखता है। महाभारत के अनुसार वह मामा के घर चले गए थे। मामा उनका शिविराज था। सम्भव है कि वह मामा के शिविराज्य पर अभिषिक्त हो गए हों। क्योंकि युधिष्ठिर के राजसूय में जब वह आए थे, तब उन्हें महाराज कहकर सम्बोधन किया गया था। युधिष्ठिर के राजसूय में उन्हें महाराज कहा गया है।

हकीकत तो यह है कि इस काल का इतिहास अत्यन्त अन्धकार पूर्ण है। राज्यों और राजाओं की ठीक २ गणना और मर्यादा का पता नहीं लगता है। जिन तेरह राज्यों का चक्र हमने दिया है—उनमें से भी दो अपूर्ण हैं। वास्तव में दस राजाओं का जो युद्ध रावी के तट पर हुआ था, उसने भारत के आर्य और अनार्य दोनों ही राजवंशों की कमर तोड़ दी थी। पीछे शम्बर वध और रावण वध से अनार्य राज्यों का वेग बहुत घट गया, पर आर्यों और भरतों का संघर्ष क़ायम रहा। ऐसा प्रतीत होता है। संवरण की मृत्यु के बाद कुरु ने पुरु वंश को सम्हाला, पर उसकी एक दो पीढी बाद ही उसकी नई राजधानी कुरुक्षेत्र उसके वंशधरों से छिन गई, और हस्तिनापुर में नई राजधानी स्थापित करनी पड़ी। इसके अतिरिक्त राज्य बँट भी गए। इसी से उनके वर्णन ठीक २ प्राप्त नहीं हैं।

केवल यही बात नहीं, आगे के वंश और भी अन्धकार में हैं। जिनकी चर्चा हम यथा स्थान करेंगे।

१. महा० आदि पर्व ९३।४६
२. महा० आदि पर्व ९२।२३
३. महा० आदि पर्व ९४।१-१७
४. आदि पर्व। ९४।१८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाम की एक सुन्दरी से सम्पर्क हुआ। १० वर्ष वह स्त्री राजा के साथ रही। फिर किसी कारण वश वह वहां से चली गई। जाते समय अपने नव जात शिशु को भी लेती गई। उसके जाने तथा पत्नी और पुत्र के वियोग से दुखी होने से राजा खिन्न होकर विरक्त की भाँति रहने लगा।

देवव्रत की प्राप्ति—अपनी आयु के अड़तालीस वें वर्ष में राजा ने यमुना तट पर विचरते हुए पुत्र देवव्रत को पाया। उस समय देवव्रत की आयु लगभग १८ वर्ष की थी। इस समय तक देवव्रत धनुर्वेद अर्थवेद का पण्डित हो चुका था।[१] शन्तनु ने राजधानी हस्तिनापुर में लाकर देवव्रत को युवराज पद पर अभिषिक्त किया। इसके बाद और चार बरस बीत गए, अब शन्तनु की आयु ५२ वर्ष की हो चुकी थी।

काली से शन्तनु का व्याह—इसी समय यमुना तीर पर उसने दास कन्या काली को देखा और मोहित हो गया।[२] कन्या का पिता केवल इस शर्त पर उसका विवाह करने को राजी हुआ कि उसी की पुत्री का पुत्र कुरु राज्य का उत्तराधिकारी हो। जब देवव्रत ने यह बात सुनी तो उसने आजन्म ब्रह्मचारी रहने का संकल्प लिया। इस प्रकार शन्तनु का विवाह काली से हो गया। राज महल में आकर काली सत्यवती के नाम से प्रसिद्ध हुई। और अपनी कठिन प्रतिज्ञा और त्याग के कारण देवव्रत भीष्म के नाम से विख्यात हुए। सत्यवती के विवाह के समय शन्तनु की अवस्था ५३ वर्ष की थी। और भीष्म की २३ वर्ष की।

भीष्म प्रतिज्ञा

चित्रवीर्य और विचित्रवीर्य—सत्यवती से शन्तनु के २ पुत्र हुए। चित्रवीर्य और विचित्रवीर्य। इस समय शन्तनु की आयु ७२ वर्ष के लगभग थी। वह वृद्ध हो चला था। इस समय उसके राज्य में दुष्काल हुआ[3]। इसी समय उसकी मृत्यु हो गई। शन्तनु विद्वान् प्रसिद्ध था[४]। सम्भव है वह मन्त्रदृष्टा हो, परन्तु उसके मन्त्र कौन से थे यह ज्ञात नहीं।

शन्तनु के वंश में आगे कौरव-पाण्डव प्रसिद्ध पुरुष हुए जिन्होंने महाभारत संग्राम किया। शन्तनु का वंश वृक्ष हम अगले पृष्ठ में देते हैं :—

---

१. आदि प० ९४।३२३६

२. आदि प० ९४।४१-४२

३. निरुक्त २।१०।

४. वायु ९९।२३७। मत्स्य ५०।४२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

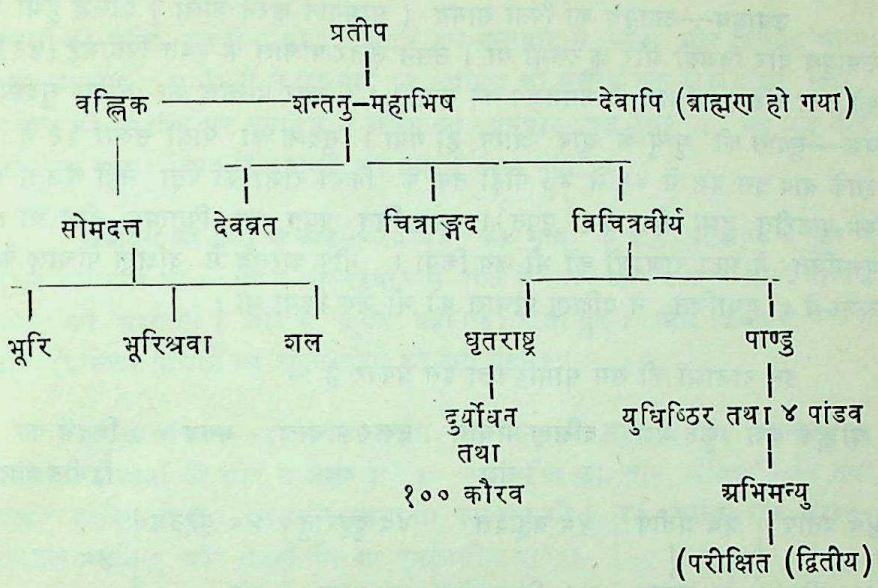

६--उग्रायुध और दुर्मुख

द्विमीढ़ वंश--हस्तिन् का दूसरा पुत्र द्विमीढ़ था, जिसकी पीढ़ी ३१वीं थी। द्विमीढ़ का पुत्र यवीनर (३१) हुआ। इसके बाद ३९ तक इस पीढ़ी के नाम अज्ञात हैं। ४०वीं पीढ़ी में—अर्थात् द्वापर के आरम्भ ही में इस वंश के राजा धृतिमन्त का नाम आता है। उसका वंश इस प्रकार चला :--

४० धृतिमन्त
४१ सत्यधृति
४२ दृढ़नेमि
४३ सुधर्मा
४४ सार्वभौम
४५ महन्तपौर
४६ रुक्मरथ

४६ रुक्मरथ
४७ सुपार्श्व
४८ सुमति
४८ सन्ततिमन्त
४९ सनाति
५० कृत
५१ उग्रायुध

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उग्रायुध——उग्रायुध का पिता सामग (सामगान करने वाला) प्रसिद्ध हुआ। उग्रायुध वीर विजयी और क्रूरकर्मा था। उसने उत्तर पांचाल के पृषत पितामह (४९) को तथा दक्षिण पांचाल के जनमेजय को मारा[1]। उत्तर पांचाल का वैदिक सुदास वंश——सुदास की मृत्यु के बाद क्षीण हो गया। सुदास की पीढ़ी संख्या ३९ है। इसके बाद इस वंश में ४१ से ४७ पीढ़ी तक के किसी राजा का पता नहीं चलता। ४८ दुष्टरीतु हुआ और ४९ पृषत्। कदाचित् पृषत् का पितामह नील था। युधाजित् ने अन्य राजाओं को भी जय किया। नीप वास्तव में दक्षिण पांचाल के राजा थे। युधाजित् ने दक्षिण पांचाल को भी जय किया था।

इन राजाओं की सम सामयिकता इस प्रकार है :-

वह्लिक वंश	कुरु वंश	दक्षिण पांचाल वंश	उत्तर पांचाल वंश	मगध	विदर्भ का द्विमीढ़ वंश
४८ प्रतीप	४८ प्रतीप	४८ ब्रह्मदत्त	४८ दुष्टरीतु	४८ वृहद्रथ	४८ कृत
४९ वह्लिक	४९ शन्तनु	४९ विष्वकसेन	४९ पृषत्	४९ —	४९ उग्रायुध
५० सोमदत्त	५० भीष्म	५० उदकसेन	५० द्रुपद	५० जरासन्ध	
५१ भूरिश्रव	५१ पाण्डु	५१ भल्लाट	५१ —	५१ —	
५२ श्रवा	५२ युधिष्ठिर	५२ जनमेजय	५२ धृष्टद्युम्न	५२ सहदेव	

युधाजित् ने उत्तर और दक्षिण पांचाल को जीत कर अपने अधिकार में किया। तथा चक्रवर्ती पद धारण किया।

काली की मांग पर युद्ध——जब शान्तनु की मृत्यु हो गई, तो अभी उनकी उत्तर क्रिया भी सम्पन्न नहीं हुई थी कि उग्रायुध ने भीष्म (देवव्रत) के पास दूत भेज कर कहलाया कि, वह (भीष्म) अपनी माता काली (सत्यवती) को उसकी सेवा में भेज दे। ऐसा न करने पर तुम्हारे देश पर आक्रमण होगा। इस समय

---

१. वभूव येन विक्रम्य पृषतस्य पितामहः।
नीलो नाम महावाहुः पञ्चालाधिपतिर्हतः। वायु ९९। १९२
वभूव येन विक्रम्य पृथुकस्य पिताहतः।
नीलो नाम महाराजः पांचालाधिपतिर्वशी। मत्स्य ४९। ७७। ७८।
वभूव येन विक्रम्य पृषतस्य पितामहः।
नीपो नाम महातेजाः पञ्चालाधिपतिर्हतः। हरिवंश १। २०। ४५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कुलों की शक्ति अच्छी न थी। अतः इस समाचार से मन्त्री और देवव्रत भीष्म बहुत घबराए। आमात्यों से परामर्श कर उग्रायुध को अशौच तक रोक रखा गया। अशौच की समाप्ति पर उग्रायुध से भीष्म का घनघोर युद्ध हुआ[1]। यह युद्ध तीन दिन तक रहा। अन्त में उग्रायुध इस युद्ध में मारा गया[2]।

उग्रायुध की मृत्यु के बाद--उग्रायुध की मृत्यु के बाद पांचालों के कुल में पृषत बच गया था। भीष्म की सहमति से पृषत ने उत्तर और दक्षिण दोनों पांचाल राज्यों को सम्हाला। बाद में द्रुपद वहाँ के राजा हुए। पीछे द्रोण से परास्त होने पर उत्तर पांचाल का राज्य द्रोण को देना पड़ा।

दुर्मुख पांचाल--दुर्मुख का वर्णन महाभारत में नहीं है, पर उसका पुत्र जनमेजय पाण्डवों की ओर से लड़ा था[3]। पर दुर्मुख का नाम वैदिक[4]-जैन तथा बौद्ध[5] साहित्य में है। उसकी राजधानी कांपिल्य थी। वह कलिंग राज करण्डु-गांधार नग्नजित् और वैदेहनिमि का समकालीन था[6]।

७--कौरव-पाण्डव संघर्ष

चित्रवीर्य--चित्रवीर्य का नाम चित्रांगद भी था। वह बड़ा पराक्रमी और वीर था। शन्तनु की मृत्यु के बाद वही राजा बना। परन्तु कुछ दिन बाद ही चित्रांगद गन्धर्व के साथ द्वन्द युद्ध में कुरुक्षेत्र में मारा गया। तब भीष्म ने सत्यवती की सलाह से विचित्रवीर्य को राजा बनाया।

विचित्रवीर्य--विचित्रवीर्य ने १२ वर्ष राज्य किया। १७ वर्ष की अवस्था में उसका राज्याभिषेक हुआ[7]। भीष्म राज्य के कार्यवाहक हुए। भीष्म ने काशीराज

---

१. हरिवंश १। २०। ३०।
२. महा० शान्तिपर्व २६। १०।
३. द्रोण पर्व अ० १५९। ३८-३९।
४. एतरेय ब्रा० ८। २३।
५. कुम्भकार जातक के आधार पर राय चौधरी का मन्तव्य।
६. जैन उत्तराध्याय सूत्र। तथा जैन विविधतीर्थ-कल्प।
७. अम्बा और अम्बालिका के साथ भीष्म ने काशीराज की सबसे बड़ी कन्या अम्बा को भी हरण किया था। पर जब उसने कहा--कि मैंने शाल्व को वरण किया है। तो भीष्म ने उसे पुरोहितों के साथ शाल्व के पास भेज दिया। पर शाल्व ने अपहृत कन्या को ग्रहण न किया, तब वह अपने नाना होत्र वाहन के पास गई। होत्र-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की दो कन्याओं अम्बिका–अम्बालिका का हरण करके दोनों से उसका ब्याह कर दिया। कदाचित् माता के हीन कुल होने के कारण किसी राजा ने उसे पुत्री न दी होगी। तब भीष्म ने शौर्य से कन्याओं का हरण किया। विवाह के ७ वर्ष पश्चात् क्षय से उसकी मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय वह केवल तीस बरस का था। इस प्रकार उसने केवल बारह वर्ष ही राज्य किया। यह विलासी युवक था। इसी से इसे क्षय-रोग ग्रसित होकर अल्पायु में मृत्यु का शिकार बनना पड़ा।

भीष्म का राज्याधिकार—विचित्रवीर्य के मरने के बाद कौरव राज्य सिंहासन सूना हो गया। प्रतिज्ञा के कारण भीष्म राजा नहीं हुए। न उन्होंने विवाह किया। सत्यवती ने भीष्म से विचित्रवीर्य की रानियों में नियुत हो कर पुत्र उत्पन्न करने को कहा, यह भी कहा––कि इससे कुटुम्ब का रक्त शुद्ध रहेगा। पर भीष्म ने स्वीकार न किया। तब भीष्म और सत्यवती की सम्मति से कृष्ण द्वैपायन व्यास ने विचित्र-वीर्य की दोनों पत्नियों में नियोग विधि से संतान उत्पन्न की। अम्बिका से धृतराष्ट्र अम्बालिका से पाण्डु, और दासी से विदुर का जन्म हुआ। इस बीच बीस वर्ष भीष्म ने प्रबन्धक की हैसियत से राज्य प्रबन्ध किया।

पाण्डु का राज्य––धृतराष्ट्र ज्येष्ठ होने से राज्य के अधिकारी थे। परन्तु वे जन्मांध थे। इस लिए पाण्डु को राजा बनाया गया। पांडु की दो पत्नियां थीं[1]। मद्र-पति शल्य की बहिन माद्री, दूसरी कुन्तिभोज की कन्या कुन्ती। कुन्ती ने पाण्डु को स्वयम्बर में वरा था। परन्तु माद्री को धन देकर एक प्रकार से खरीदा गया था। मद्रों में धन लेकर ही कन्या देने का रिवाज था। सो भीष्म ने एक गाड़ी भर कर रत्न देकर माद्री को लिया था।

धृतराष्ट्र का विवाह गांधार पति सुवल की पुत्री गांधारी से हुआ। पति धृत-राष्ट्र जन्मांध हैं, इसी से गांधारी ने विवाह काल ही से आँखों पर पट्टी बांध ली थी।

वाहन उम समय वनवास कर रहे थे––वहीं भृगुवंशी परशुराम (द्वितीय) भी उस समय उपस्थित थे। अम्बा ने उससे कहा कि वे उसका विवाह भीष्म से करा दें। इस पर वीति होत्र और परशुराम उसे ले कर भीष्म के पास आए। और कहा––तुमने बिना दी हुई कन्या को हरण करके छोड़ कैसे दिया? अब तुम उससे विवाह करो। पर भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा की बात कह कर अस्वीकार कर दिया। परशुराम भीष्म के शस्त्र गुरू भी थे। इस पर उन्हों ने क्रुद्ध हो भीष्म से युद्ध छेड़ दिया, जो २१ दिन होता रहा। पीछे ऋषियों के बीच बिचाव से यह संघर्ष मिटा।

१. महा० आ० ९५। १२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो जन्म भर बंधी रही। इस प्रकार इच्छा पूर्वक अंधी रहने के कारण गांधारी महा-पतिव्रता प्रसिद्ध हुई है[1]।

---

१. जैन ग्रन्थ शत्रुञ्जय माहात्म्य के लेखानुसार गांधारी आठ बहिनें थीं। आठों का विवाह धृतराष्ट्र के साथ हुआ था। श्री भगवदत्त शास्त्री का कथन है कि महाभारत के पूना संस्करण में चार श्लोक क्षेपक कह कर पढ़े गए हैं। उन में भी गांधारी दस बहिनों का विवाह धृतराष्ट्र से होना वर्णित है।

शतपथ ब्राह्मण (८।१।४।१०) और एतरेय ब्राह्मण में गांधार देश का राजा नग्नजित् कहा गया है। नग्नजित् का पुत्र स्वर्णजित् था। महाभारत संग्राम काल में नग्नजित् ही गांधार का राजा था, यह बात महाभारत से भी प्रमाणित है, और भेल संहिता में भी यह बात लिखी है (नग्नजित् प्रमुखांश्चैव गणान् जित्वा महा-रथान्—'आरण्यकपर्व-२५५।२१) तथा--गांधार भूमौ राजर्षिनग्नजित् स्वर्ण भार्गदः। (भेल संहिता) इन वर्णनों से यह भी प्रतीत होता है, कि गांधार विस्तृत देश था। और उसके आधीन अनेक छोटे-छोटे गण राज्य थे। नग्नजित् सब का अधिपति था। महाभारत आदि पर्व में नग्नजित् का पुत्र सुवल और सुवल का पुत्र शकुनी बताया है। (आदि० ९३।९४) तथा उस की बहिन को दुर्योधन की माता बताया है। दोनों भाई बहिनों को अर्थशास्त्र का पण्डित कहा है। परन्तु महाभारत की इस स्थापना का किसी पुराण या वैदिक ग्रन्थ में समर्थन नहीं है। शतपथ ब्राह्मण में नग्नजित् का पुत्र स्वर्णजित् लिखा है--अथह स्माह स्वर्णजिन्नग्निजितः (८।१।४) आयुर्वेद की भेल-संहिता में नग्नजित् को राजर्षि कहा गया है (गांधार भूमौ राजर्षिर्नग्नजित् स्वर्ण मार्गदः। भेल संहिता) आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ वाग्भट के अष्टांग हृदय में भी नग्नजित् का मत उधृत किया गया है (उत्तर स्थान अ० ४०) अष्टांग संग्रह का टीकाकार हनु नग्नजित् का उपनाम दारुवाह कहता है। कश्यप सहिता में दारुवाह को राजर्षि कहा गया है। जो नग्नजित् के प्रति ही संकेत है। चरक संहिता-सूत्र स्थान, अध्याय१२ तथा २४, और कश्यप संहिता सूत्र-स्थान अध्याय २७ को मिला कर पढ़ने से निष्कर्ष निकलता है, कि नग्नजित् और वैदेह-निमि-जनक (सिद्धि स्थान अ० ६) समकालीन हैं। नग्नजित् और निमि जनक के समकालीन होने के और भी प्रमाण आयुर्वेद में मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि नग्नजित्, दारुवाह ने कोई चिकित्सा ग्रन्थ लिखा था----जो नष्ट हो गया। उसके कुछ श्लोक चरक की चक्र-पाणि टीका (चिकित्सा स्थान, ३—७५) और अष्टांग हृदय की सर्वांग सुन्दरी टीका में, (शरीर स्थान, ३-६२) में मिलते हैं। मत्स्य पुराण (२५२।२—४) में नग्नजित् को वास्तु शास्त्र का उप-देशक भी बताया है। महाभारत ही के अनुसार नग्नजित् गांधार को कर्ण ने जय किया था, (द्रोण० अ० ४। श्लोक ५) इस प्रकार गांधारपति नग्नजित् के बहुत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बीस वर्ष की आयु में पाण्डु कौरवों का राजा बना। उसने दशार्ण मगध, विदेह, काशी, सुम्ह तथा पुण्ड्र देशों को जीता। कुरु राष्ट्र के जो-जो भाग सीमान्त के राजाओं ने ले लिए थे, वे पांडु ने फिर जीत लिए[४]। मगध की राजधानी राजगृह पर आक्रमण कर उसने दार्व को मारा। उसने पांच वर्ष राज्य किया। पाण्डु के यद्यपि दो विवाह हुए थे। दोनों पत्नियां सुन्दरी और युवती थीं। परन्तु पाण्डु सन्तान्नोत्पाद के अयोग्य थे। इस से खिन्न-ग्लानि मन हो कर वे राज्य से विरक्त हो दक्षिण-हिमालय के वनों में चले गए। तथा वहीं रहने लगे। उन्हों ने राजसी अलंकारों और वस्त्रों का भी त्याग कर दिया। सेवक भी विदा कर दिए।

धृतराष्ट्र—इस से राजाहीन कुरु राज्य की व्यवस्था बिगड़ने लगी। तब धृतराष्ट्र ही को भीष्म ने राजा बना दिया। पर उनका राज्याभिषेक नहीं हुआ। धृतराष्ट्र ने चालीस बरस राज्य किया। कुछ काल बाद बन में पाण्डु की मृत्यु हो

समर्थन यत्र तत्र प्राप्त है। पर गांधार पति सुवल और शकुनि का कहीं भी समर्थन नहीं है। केवल महाभरत ही उसका प्रमाण है।

महाभारत का कथन है, कि सुवल की पुत्री गांधारी धृतराष्ट्र की पत्नि और दुर्योधन की माता थी। परन्तु नग्नजित् की कन्या सत्या थी, कृष्ण ने इसी नाग्नजिती सत्या से एक विवाह किया था। (रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या-नाग्नजिती तथा। मत्स्य ४७। १३) आहृता रुक्मिणी कन्या सत्या नग्नजित स्तदा। (वायु ९६। २३३) इन कथनों से यह भी स्पष्ट होता है, कि कृष्ण ने रुक्मिणी की भांति नाग्नजिती सत्या को भी हरण किया था। कृष्ण की एक और पत्नी भी गांधारी थी, (गांधारी लक्ष्मणा तथा (मत्स्य ४७। १३) महाभारत में भी इस का समर्थन प्राप्त है। (एष चैवशतं हत्वा रथेन क्षत्र पुंगवान्। गांधारीमवद्वत्कृष्णो महिषीं यादवर्षभः। महा० सभा० ६१। १३) महाभारत (सभा पर्व ५७। २६) में इसका नाम केशिनी लिखा है। गांधारां को वलात् हरण करने के लिए कृष्ण का गांधारों से युद्ध हुआ था। अयं गांधाराँ स्तरसा सम्प्रमथ्य जित्वा पुत्रान् नग्नजितः समग्रान् (महा० उद्योग० ४८।७५) इसी युद्ध में सम्भवतः काश्मीर का दामोदर राजा मारा गया था, (देखिए नील मत-पुराण) महाभारत का यह कथन यद्यपि मान भी लिया जाय, कि नग्नजित् का पुत्र सुवल और पौत्री धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी थी। तथा पुत्री कृष्ण पत्नी थी। तो यहाँ आयु का साम्य नहीं बैठता। क्यों कि धृतराष्ट्र की दूसरी पीढ़ी में कृष्ण है। फिर कैसे वे धृतराष्ट्र की ऊपर की पीढ़ी वाले नग्नजित् की कन्या ब्याह सकते थे। अतः महा-भारत की इस स्थापना कि नग्नजित् का पुत्र सुवल था, और उसकी पुत्री गांधारी धृतराष्ट्र पत्नी थी, कहीं भी समार्थन नहीं है। अकेला महाभारत ही उसका प्रमाण है।

४. आदि पर्व १०५। २१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गई। उस समय नियुक्ति द्वारा कुन्ती के तीन और माद्री के दो पुत्र हो चुके थे। पांडु की मृत्यु के बाद हिमाचल वासी ऋषि और तपसी, कुन्ती और पाण्डु पुत्रों को हस्तिनापुर छोड़ गए। उस समय युधिष्ठिर की आयु १६ वर्ष की, तथा भीम की पंद्रह और अर्जुन की चौदह बरस की थी। नकुल, सहदेव, तेरह-तेरह बरस के थे[1]। इस समय धृतराष्ट्र को राज्य करते १८ वर्ष बीत चुके थे।

धृतराष्ट्र को भी गान्धारी से १०० पुत्र हुए[2]। जिनमें दुर्योधन ज्येष्ठ थे। दुर्योधन युधिष्ठिर से कुछ छोटा था। तेरह वर्ष दुर्योधन और उसके भाइयों ने तथा युधिष्ठिर और उनके भाइयों ने गुरु द्रोण से हस्तिनापुर में सहवास करके शिक्षा पाई। दुर्योधन बन्धु कौरव और युधिष्ठिर बन्धु पाण्डव के नाम से प्रसिद्ध हुए। सहवास काल ही में कौरव–पाण्डव संघर्ष आरम्भ हो गया। दोनों ही पक्ष अपने को हस्तिनापुर के कुरु राज्य का अधिकारी मानते थे। पाण्डवों की उत्पत्ति पिता के औरस से न होने के कारण उनके प्रति लोगों की हीन भावना थी। पर पाण्डव तेजस्वी–वीर और प्रतापी थे। उनका यश बढ़ता ही गया, फिर भी राजधानी में उनके समर्थक केवल एक विदुर दासी पुत्र थे। अन्त में यह विद्वेष बढ़ता ही गया, और दुर्योधन और उसके साथी पाण्डवों के साथ भांति २ के संघर्ष करने लगे। तेरह वर्ष कौरव–पाण्डवों ने द्रोण के पास सहशिक्षा पाई। ६ मास वारणावत के जतु गृह की घटना में और ६ मास पांचाल भ्रमण में लगे। उस समय युधिष्ठिर की आयु २८ वर्ष के लगभग होगी, तब द्रौपदी स्वयंबर हुआ। एक वर्ष पाण्डव द्रुपद गृह में रहे। फिर वे हस्तिनापुर लौट कर ५ वर्ष धृतराष्ट्र के अन्तेवासी रहे। इस प्रकार बीस बरस और बीत गए।

---

१. महा० पूना संस्करण, आदि प्रक्षेप० पृ० ९१३।

२. महाभारत में लिखा है कि व्यास ने गांधारी को वरदान दिया—कि तुझे सौ पुत्र होंगे। गांधारी गर्भवती हुई. पर दो वर्ष तक प्रसव नहीं हुआ। इसी बीच सूचना मिली कि कुन्ती को पुत्र हुआ है—तब उसने पेट पीट लिया। इस पर उसके पेट से एक गोला निकल पड़ा। यह सुन कर व्यास वहाँ आए, और सौ घड़े पानी से भरवा कर सुरक्षित स्थान पर रखवा दिए। तथा उस गोले को ठण्डे पानी से धुलवाया गया। धुलते समय उसके उंगली के पोर के बराबर एक सौ टुकड़े हो गए। वे टुकड़े उन घी के घड़ों में रखवा कर व्यास जी चले गए। उनमें से प्रथम दुर्योधन निकला ··· फिर और पुत्र। इस प्रकार पूरे १०० पुत्र निकले—तब एक महीने बाद एक कन्या निकली। (आदि० अ० ११५) यह पूरा विवरण सर्वथा अविश्वासनीय है। तथा असंभव है। इसकी अपेक्षा तो जैन शत्रुञ्जय माहात्म्य के अनुसार गांधारी आठ बहिनों का तथा पूना के क्षेपक के अनुसार १० बहिनों का विवाह, और उनसे १०० पुत्रों का जन्म कहीं अधिक युक्ति युक्त है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुर्योधन—इस प्रकार चालीस वरस धृतराष्ट्र ने राज्य किया। अब दुर्योधन ३२ वर्ष का हो गया था। धृतराष्ट्र ने उसे हस्तिनापुर का राजा बना दिया। और पांडवों को इन्द्रप्रस्थ देकर युधिष्ठिर को वहीं का राजा बना दिया। दोनों राज्य अब साथ साथ चलने लगे।

युधिष्ठिर—युधिष्ठिर २२ वर्ष इन्द्रप्रस्थ में रहा। इसके बाद १२ वर्ष अर्जुन निर्वासित रहा। ग्यारहवें वर्ष के अन्त में उसने सुभद्रा को हरण किया। और खांडव-प्रस्थ में रहने लगा[1]। वहीं अभिमन्यु का जन्म हुआ। इसके बाद ही खाण्डव दाह हुआ। जिसमें केवल छः व्यक्ति बचे। एक तक्षक-पुत्र अश्वसेन, दूसरा शिल्पकार मय दानव और चार मन्दपाल ऋषि से शूद्रा में उत्पन्न, पुत्र, जो आगे वेदर्षि हुए[2]।

मय ने इन्द्रप्रस्थ में आकर १४ मास में युधिष्ठिर का सभा भवन बनाया। तब युधिष्ठिर ने कृष्ण की सम्मति से राजसूय किया। इस के बाद जुए में हार कर पांडवों को तेरह वरस का वनोवास तथा एक वर्ष अज्ञात वास का मिला, इस समय युधिष्ठिर की आयु ५८ या ५९ वर्ष की थी। १४ वर्ष वे बन में रहे, फिर भारत संग्राम हुआ। इस प्रकार भारत संग्राम के समय प्रमुख पुरुषों की आयु अनुमानतः निम्नलिखित थीः—

भीष्म	१३१ वर्ष	युधिष्ठिर	७३ वर्ष
दुर्योधन	७२ वर्ष	अर्जुन	७२ वर्ष

इस अनुमान में थोड़ा ही अन्तर हो सकता है। शंतनु के राज्यारोहण के १६४ वर्ष बाद महाभारत संग्राम हुआ। ऐसा अनुमान है। इस बीच भिन्न-भिन्न जनों ने निम्नलिखित प्रमाण राज्य किया :—

शन्तनु	५०	वर्ष
विचित्रवीर्य	१२	वर्ष
भीष्म-प्रबन्ध	२०	वर्ष
पाण्डु	५	वर्ष
धृतराष्ट्र	४०	वर्ष
दुर्योधन	३७	वर्ष
योग	१६४	वर्ष[3]

---

१. आदि पर्व २१३। १३।
२. आदि पर्व २१९। ४०
३. भगवद्दत्त शास्त्री।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आठवां अध्याय

महाभारत संग्राम और तत्कालीन भारत

१--संग्राम और उसका परिणाम

भारत-संग्राम—इस संग्राम में १८ अक्षौहिणी सेना का नाश हुआ। एक अक्षौहिणी सेना में हाथी, घोड़े, रथ आदि के अतिरिक्त प्रायः एक लाख चौसठ हज़ार योद्धा होते हैं। इस युद्ध में ग्यारह अक्षौहिणी सेना कौरवों की ओर से, तथा सात अक्षौहिणी सेना पाण्डवों की ओर से लड़ी थी। पाण्डवों की ओर से मत्स्य, चेदि, कारुष, काशी, दक्षिण पांचाल, पच्छिमी मगध, तथा यादव गुजरात सुराष्ट्र थे। कौरवों की ओर से पंजाब के सभी राज्य तथा उत्तरी पूर्वी एवं दक्षिणी शक्तियाँ थीं। इनमें प्राग्ज्योतिष, चीन, किरात, काम्बोज, यवन, शक, मद्र, केकय, सिन्धु सौवीर भोज, दक्षिणपथ, आन्ध्र, माहिष्मती और अवन्ती भी थे। यह युद्ध अगहन या पौष मास में हुआ था। कुल १८ दिन युद्ध हुआ। इन १८ दिनों में कौरव सैन्य का नेतृत्व— भीष्म ने १० दिन, द्रोण ने ५ दिन, कर्ण ने २ दिन और शल्य ने आधे दिन किया।

कौरवों में प्रमुख पुरुषों में कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा केवल तीन बचे। पाण्डवों में पांच पाण्डव, कृष्ण और सात्यकि। कौरव वंश का केवल एक व्यक्ति—धृतराष्ट्र का वेश्या पुत्र युयुत्स बचा। युद्ध में भीष्म ने सबसे अधिक पराक्रम प्रकट किया। द्रोण ने सबसे अधिक प्रमुख पुरुषों का वध किया। कर्ण और अश्वत्थामा का पराक्रम भी प्रमुख रहा। पाण्डवों में अर्जुन का शौर्य सर्वोपरि रहा। कृष्ण की कूटनीति ने उन्हें विजय दिलाई। अन्तिम दिन अश्वत्थामा ने पाण्डवों के पुत्रों का सोते समय वध किया। युद्ध की समाप्ति पर अश्वत्थामा ने धृतराष्ट्र को प्रणाम कर अज्ञात दूर देश को प्रस्थान किया। कृतवर्मा द्वारिका चले गए। कृपाचार्य हस्तिनापुर में जा अपने घर रहने लगे। भीष्म घायल अवस्था में शर शैया पर कई मास जीवित पड़े रहे, उत्तरायण काल आने पर उन्होंने प्राण त्यागा। महाराज युधिष्ठिर पूरे राज्य के स्वामी हुए। इसके बाद उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया। बारह वर्ष धृतराष्ट्र और गान्धारी हस्तिनापुर में पाण्डवों के साथ रह कुन्ती और बिदुर सहित वन को चले गए। वहाँ वन में आग लगने से जल मरे। युधिष्ठिर ने ३६ वर्ष हस्तिनापुर में और राज्य किया। इस वर्ष यादवों में ऐसी घरू अशान्ति उमड़ी कि पाँच लाख यादव मदमत्त हो प्रभास में आपस ही में कट मरे। बलराम समुद्र मार्ग से कहीं चले गए। और कृष्ण एक व्याधा के बाण से आहत हो गत प्राण हुए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृष्ण का महत्त्व तथा कृष्ण के बाद—भारत संग्राम में सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण व्यक्तित्त्व कृष्ण का रहा। कृष्ण के अवसान के बाद द्वारिका समुद्र में डूब गई। अर्जुन वहाँ से कृष्ण के परिवार की स्त्रियों को लेकर हस्तिनापुर आ रहे थे, उन्हें आभीरों ने मार्ग में लूट लिया। और सब धन तथा स्त्रियों को छीन ले गए। शोक मूर्छित वृद्ध अर्जुन गाण्डीव भी न चढ़ा सके। उस समय अर्जुन की अवस्था १०० वर्ष से भी अधिक हो चुकी थी। भग्न-मन खण्डित अर्जुन बचे खुचे मनुष्यों को ले हस्तिनापुर पहुंचे। और वहाँ गाण्डीव अग्नि में दाह कर दिया। उन्होंने कृष्ण प्रपौत्र व्रज को इन्द्रप्रस्थ का राज्य दिया, तथा सात्यकि के पुत्र को सरस्वती तट का प्रदेश दिया। हार्दिक्य पुत्र को मातृकावत का राज्य दिया। इस प्रकार ये तीन नवीन यादव राज महाभारत के अन्त में स्थापित हुए। अक्रूर की स्त्रियों ने तथा सत्यभामा ने वन गमन किया। रुक्मिणी और अन्य कृष्ण पत्नियों ने चितारोहण किया।

महा प्रस्थान—जब आत्मग्लानि और खिन्नता के तथा अपवाद और अवसाद से भरे वातावरण में पाण्डवों का रहना असम्भव हो गया, तो व्यास के परामर्श से पाण्डवों ने द्रौपदी सहित महाप्रस्थान किया। बब्रूवाहन को छोड़ कर पाण्डवों के बारहों पुत्र संग्राम में मर चुके थे। पाँचों भाइयों में केवल अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित एकमात्र संतान बची थी, जो संग्राम के कुछ काल बाद उत्पन्न हुआ था।

पाण्डवों ने परीक्षित को राज्याभिषेक देकर युयुत्स को उसका मन्त्री बनाया। तथा कृपाचार्य को कुल-गुरु। रानी सुभद्रा उसकी अभिभावक बनी। उसे पाण्डवों ने समझाया—कि तुम अपने पौत्र को नीति से पालन करना। तथा व्रज से इसकी मित्रता सदा बनी रहे इसका यत्न रखना।

कुटुम्ब का ऐसा प्रबन्ध कर, पाण्डवों ने द्रौपदी सहित सब राजसी वस्त्र और राजचिह्न त्याग दिए। वल्कल धारण किए। और अग्नि अपने ऊपर से उतार कर पानी में डाली। तथा पूर्व दिशा को प्रस्थान किया। प्रजा हाहाकार में डूब गई। उन्हें इस प्रकार जाते देख नाग पुत्री उलूपी गंगा में डूब मरी, बब्रुवाहन की माता मणिपुर चली गई। शेष राज-महिलाएँ परीक्षित को ले हस्तिनापुर में बैठीं।

———

२—सांस्कृतिक त्रिकूट

त्रिकूट—इस काल कृष्ण, व्यास और पाण्डवों का एक सांस्कृतिक त्रिकूट स्थापित हुआ था। जिसका आर्यों की उत्तरकालीन समाज व्यवस्था और संस्कृति पर भारी प्रभाव पड़ा। ये तीनों ही व्यक्ति समाज में लांच्छित थे। कृष्ण सब राजाओं के सिर पर पैर रखकर चले थे, पर स्वयं कुलीन छत्रधारी आर्य राजा न थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इससे तत्कालीन सम्पूर्ण कुलीन राजकुल इनका विरोधी था। पाण्डव क्षेत्रज पुत्र होने के कारण कुलीन राजवंशियों में तिरस्कृत थे। व्यास भी अविवाहिता शूद्रा माता से उत्पन्न होने के कारण ऋषि मण्डल में अवज्ञा से देखे जाते थे। परन्तु इन तीनों का व्यक्तित्व असाधारण था। और तीनों के उद्देश्य और दृष्टिकोण समान थे। जब तीनों व्यक्ति एक हुए तो कृष्ण की कूट नीति, पाण्डवों की रणनीति और व्यास की धर्मनीति इन तीनों ने मिलकर धर्म और राज्य दोनों ही में युग परिवर्तन कर दिया। तथा धर्मनीति और राजनीति में सर्वथा नवीन आदर्श स्थापित कर दिए।

गत १५ सौ वर्ष—त्रेता और द्वापर के लगभग १५०० वर्षों में आर्यों ने निरन्तर युद्ध किए, विजय की नगर बसाए और आर्य सभ्यता का उत्कृष्ट विकास किया। अधिकार और राज सत्ता के कारण उनमें एक प्रकार की अहम्मन्यता उत्पन्न हो गई थी। और विजित जातियों से उनके दास के समान व्यवहार होते थे। बहुत सी अनार्य जातियां–जिनके पूर्वजों ने आर्यों से कठिन लोहा लिया था—अब आर्यों की आधीन प्रजा बन गईं थी। आर्य राजा ही नहीं—आर्य जाति का प्रत्येक पुरुष उन्हें हीन–नीच समझता था। और उनके सामाजिक स्तर को ऊंचा होने ही नही देता था। इसके लिए कड़े से कड़े नियम बनते ही जाते थे।

याजक और राजा का वर्ग—यज्ञ विधि, जो आर्यों ने अपनाली थी और अब वह आर्यों का ऐसा सांस्कृतिक संकेत बन गया था कि नित्य जीवन की छोटी से छोटी घटनाओं से लेकर साम्राज्यों का निर्माण भी यज्ञों के ही द्वारा होता था। यज्ञों के इस महत्व और विकास ने आर्यों को दो श्रेणियों में बांट दिया। एक वे, जो यज्ञ करने वाले थे–दूसरे वे, जो यज्ञ कराने वाले थे। त्रेता में ये लोग एक ही वंश के होने पर दोनों भिन्न २ कार्य अपनी रुचि के अनुसार करते थे। आर्यों के मूलवंश तो दो ही थे सूर्य वंश और चन्द्र वंश। दोनों ही वंशों की अनेक शाखाऐं भारत में इन दिनों फैलती चली गई थीं। परन्तु हर पीढ़ी में इन दोनों राजवंशों में नई २ शाखाऐं फैलती जाती थी। हर एक तपस्वी पुरुष एक नया राज्य स्थापित करने की चेष्टा करता था। पर प्रत्येक व्यक्ति के लिए नया राज्य स्थापित करना स्वप्न था। अतः जो लोग नया राज्य न बना सकते थे वे अपने उपनिवेश स्थापित कर लेते थे। ये उपनिवेश भी एक प्रकार की जमीदारियां ही थीं। वहां जो लोग रहते थे–वे कुलीन सूर्य चन्द्र वंशी ही होते थे, जिन्हें राजवर्गी होने का भी अभिमान था, और आर्य होने का भी। अतः उनमें जो विद्वान् होते थे–वेदों की ऋचा रचने लगते, और ऋषि का पद धारण कर लेते थे। वे आर्यों––राजाओं के कुमारों को अध्यापन भी कराते थे। यद्यपि वे राजा न होते थे, पर विद्वान् आर्य तथा राजवंशी होने के कारण वे राजाओं में आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। धीरे २ जब यज्ञ प्रथा बढ़ी तो राजा उन्हें याजक की भांति बुलाने तथा सत्कार करने लगे। और जब यज्ञ के द्वारा ही

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राजा को महाराज की तथा महाराज को सम्राट् की पदवी मिलने लगी और यज्ञ के सारे अधिकार ही याजकों के हाथ में आ गए तब याजकों की प्रतिष्ठा भी राजाओं के समान हो गई। राजा एक प्रकार से उनके आधीन हो गए।

याजकों की श्रेष्ठता—परन्तु बात यहीं तक न रही। विद्वान् और श्रेष्ठ होने के कारण वे राजगुरु—राज पुरोहित और राज मन्त्री बनते चले गए। इसने याजकों की सत्ता को कहीं २ राजाओं से भी आगे बढ़ा दिया।

श्रेणी विभाजन—अभी तक भी, यानी त्रेता के अन्त तक भी इन याजकों तथा राजाओं की कोई प्रथक् जाति नहीं बनी थी। दो श्रेणियां अवश्य बन गई थीं। द्वापर में ये श्रेणियां जाति का रूप धारण करती गईं। द्वापर के आरम्भ में ही यह दो प्रमुख श्रेणियां बन गई थीं। इन दोनों से प्रथक् जो साधारण जन थे—वे विश कहाते थे। ये विश वणिज व्यापार-शिल्प और पशु पालन तथा कृषि कार्य करते थे। ज्यों ज्यों नगर बढ़ते गए, धन सम्पत्ति का विकास होता गया—वाणिज्य विनिमय का विस्तार भी होता गया। क्षत्रिय राजा लोग जहां दिग्विजय की बड़ी २ यात्राऐं करते थे, वहां ये व्यापारी व्यापार यात्राऐं करते थे—समुद्रपार के देशों से जैसा सम्बन्ध राजाओं का था—वैसा ही इन विशों का भी था। फलतः विश जनों की भी दो श्रेणियां हो गईं। जो सम्पन्न थे--वे केवल वाणिज्य—व्यापार करने लगे! उनसे हीन जन पशु पालन और कृषि कर्म करने लगे। आरम्भ में विश जन ही दासों और कम्मकरों से शुल्क देकर या उन्हें क्रीत करके यह कार्य कराते थे, पीछे उन्हें शूद्रों में संगठित कर लिया गया। इस प्रकार आर्यों की चार श्रेणियां बन गई-जो प्रथक् होती ही गईं। परन्तु द्वापर के आरम्भिक काल तक भी ये श्रेणियां जाति नहीं बन पाई थी। परस्पर इनमें बिना विचार के रोटी बेटी सम्बन्ध स्थापित थे। पर आगे यह संभव न रहा। और जाति मर्यादा बांधने की अनिवार्य आवश्यकता आ पड़ी।

त्रेता के अन्त में—त्रेता के अन्त तक आर्य मात्र में रोटी बेटी का अबाध सम्बन्ध था। कहीं किसी प्रकार की रोक थाम न थी। यहां तक कि अनार्यों से भी ऐसे सम्बन्ध थे। द्वापर के आरम्भ ही में ये अनार्य जातियां शत्रु न रहकर प्रजा बन गई थीं। अतः इस काल में अनार्य सम्पर्क बहुत बढ गया। और आर्यों के अन्तःपुर में अनार्य स्त्रियों की भरमार हो गई। ये स्त्रियां युद्ध जय के बाद भी हरण की जाती थीं मोल भी खरीदी जाती थीं। विनिमय में भी ली जाती थीं। उनकी सन्तानों के उत्तराधिकार और दाय भाग में झगड़ बढ़ते गए। स्वभावतः ही आर्य स्त्रियों की संतान अपने सुरक्षित स्थान चाहने लगे। परन्तु इस समय तक अनार्य स्त्रियों की संतति तथा हीन स्त्रियों से उत्पन्न संतति बहुत थी—वे अब तक पिता के कुल गोत्र और सम्पति की अधिकारिणी होती ही रही थी। पर अब उसमें बाधा आने लगी। और कुलीनता का प्रश्न बढ़ते २ तीव्रतम होता गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महःभारत संग्राम का मूलाधार जाति व्यवस्था--

महाभारत संग्राम ऐसे ही संघर्ष का परिणाम था। उसका आधार जाति-व्यवस्था था। कुलीन और अकुलीनों के बीच अधिकार की लड़ाई थी। एक ओर व्यास पाण्डव और कृष्ण थे, जो जन्मतः अकुलीन थे। कुलीन उन्हें हीन समझते थे। दूसरी ओर कौरव थे जो कुलीनों के समर्थक थे। इस प्रकार महाभारत संग्राम कुलीनों और अकुलीनों का संग्राम था। यदि आप उस सूची पर ध्यान दें जो उन राजाओं की है, जो दोनों दलों की ओर लड़े थे, तो सहज ही में आपको पता लग जायगा कि कौरवों की ओर सभी कुलीन वर्गी राजा थे। तथा पाण्डवों की ओर हीन वर्ग तथा जातीय भावना से दबे हुए राजा लोग थे। उस काल में कुलीन आर्यों तथा इतर जनों की सामाजिक अवस्था कैसी विषम थी इसका कुछ आभास हमें युधिष्ठिर और महासर्प की बातचीत से मिल सकता है।[1] अब आप इस सूची को देखिए—कि महाभारत संग्राम में कौन किस ओर से लड़ा।

भारत-संग्राम में कौन २ सम्मिलित हुआ—

भारत संग्राम में दुर्योधन की ओर से ग्यारह अक्षौहिणी और युधिष्ठिर की ओर से सात अक्षौहिणी सेना लड़ी थी। दुर्योधन दल में पहिला राजा शल्य था जो मद्रों का स्वामी था। यह सम्भवतः मेडिया का राजा था। दूसरा भगदत्त चीन–किरातों का राजा था, तीसरा भूरिश्रवा पंजाब का, चौथा कृतवर्मा भोजों का राजा था। इसका राज्य काठियावाड़ के समीप था। जयद्रथ सिन्धु देश का, सुदक्षिण अफगानिस्तान का, तथा नील महिष्मती नर्मदा के महीश्वर का राजा था। आठवें–नवें अवन्ती के दो राजा, दसवां पंजाब का केकय और ग्यारहवां गांधार का शकुनि, शिवि और कौसल राज वृहद्रथ थे। इस प्रकार ये राजे ग्यारह अक्षौहिणी के अधिपति थे।

पाण्डवों की ओर से सात्यकि युयुधान द्वारिका का यादव था। दूसरे चेदिका धृष्टकेतु था, तीसरा मगध का जयत्सेन था। चौथा समुद्र तहवासी पाण्य राजा था। पाँचवां द्रुपद पांचाल था। अलीगढ़, बरेली के आस पास पांचाल क्षेत्र था। छठा मत्स्यों का राजा विराट था, जो धौलपुर जयपुर के भागों का स्वामी था। सातवे अन्यान्य राजा लोग काशी का धृष्टकेतु, चेकितान युधामन्यु और उत्तमौजा आदि थे।

सूची का महत्त्व—इस सूची से इस बात पर प्रकाश पहुँचता है, कि एक ओर मध्यदेश के शुद्ध ऋषि थे, दूसरी ओर आर्यावर्त के बहिर्प्रान्तों आर्य के। थे

---

१. मुख वाहू रुपजानां या लोके जातयो वहिः। म्लेच्छ वाच आर्य वाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृतः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुर्योधन की सेना में पश्चिम में गांधार, काम्बोज अफगानिस्तान से लेकर कुरुक्षेत्र के सभी राजे, सिन्ध–काठियावाड़ और अवन्ति तक के राजे तथा पूर्व में अयाध्या, अग, प्राग्ज्योतिष पर्यन्त राजा थे। इधर पाण्डवों के दल में दिल्ली मथुरा, पांचाल, चेदि, मगध और काशी आदि क यमुना और गंगा के मध्यवर्ती देश के राजा थे। दोनों दलों के रहन सहन, भाषा, विचार सस्कृति सभी में बहुत अन्तर था।

युधिष्ठिर का राज्य—युधिष्ठिर ने ३६ वर्ष हस्तिनापुर में राज्य किया। इसके राज्यकाल में वे सब राजघराने जो कुलीनों के कारण नहीं पनप रहे थे विकसित हुए। तथा विन्ध्य मेखला के उस पार दक्षिणपथ में आर्य सभ्यता का तेज़ी से प्रसार हुआ, तथा अनेक नए राज्यों की महाकान्तार वन में स्थापना हुई, तथा वह भू-भाग भली भांति आबाद हो गया। अर्जुन ने खाण्डव प्रस्थ को जला कर उस दुर्जय वनस्थली को बस्ती तथा खेती के योग्य बना दिया।

दुर्योधन का जामाता कृष्ण पुत्र शाम्ब था। उसने मुलतान में सूर्य का प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया, तथा शाकद्वीपी ब्राह्मणों को वहां ला बसाया। दुर्योधन के बचे हुए कुटुम्बी जन सौराष्ट्र में जा बसे। उनकी जाति काठी प्रसिद्ध हुई, इसीसे वह प्रदेश काठियावाड़ कहाया। यह वश अभी भी काठियावाड़ में है और वे लोग अपने को धृतराष्ट्र के वशधर कहते हैं।

नई राज-मर्यादा—महाभारत के बाद राजवंशों में एक नई राज मर्यादा यह बनी कि एक राजा ने दूसरे का राज्य छीनना त्याग दिया। कुछ राजाओं ने दूसरों को पराजित करके सम्राट् बनने की चेष्टा अवश्य की। इस नई मर्यादा से यह दोष उत्पन्न हुआ कि भारत में बहुत से छोटे २ राज्य बन गए। सामर्थ्य रहते हुए भी अनेक राजाओं ने सार्वभौम राज्य नहीं स्थापित किए, जिससे देश का बल नहीं बढा। और महापुरुषों के सार्वभौम प्रभाव उनके शरीरों के साथ ही नष्ट हो गए। और उनके उत्तराधिकारियों को न मिले। इसी से जरासन्ध, कृष्ण, युधिष्ठिर के उत्तराधिकारी नाम मात्र के राजा रह गए। और महाभारत संग्राम के बाद मौर्य साम्राज्य के उदय होने तक का दीर्घ काल एक अन्ध राजनैतिक युग रहा। आगे चल कर मौर्यों ने इस मर्यादा को भंग किया और अपना महा साम्राज्य स्थापित किया।

———

३–धर्म क्रांति

धर्म लक्षण—हिन्दू धर्म के तीन बड़े व्याख्याकार हैं। एक जैमिनी, दूसरे कणाद. तीसरे वेद व्यास। जैमिनी ने पूर्व मीमांसा में, कणाद ने वैशोषिक में और व्यास ने महाभारत में अपने अपने ढंग पर धर्म की व्याख्या की है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैमिनी मत—जैमिनी कहता है कि--उपदेश से अथवा आज्ञा से अथवा विधि से ज्ञात होने वाली श्रेयस्कर क्रिया ही धर्म है। उपदेश-आज्ञा-विधि को वह प्रेरणा कहता है। यह प्रेरणा दो प्रकार की होती है--शब्दी भावना और आर्थी भावना। शाब्दी भावना अलौकिक वाणी है। यह वाणी वेद है—वह अनादि और शाश्वत है। वह ईश्वर की आज्ञापक शक्ति है। आर्थी भावना वह है जिसमें कर्त्तव्य से प्रेरित होकर धर्म भाव का उदय हो। जैमिनी की यह धर्म व्याख्या सारे संसार के धर्मों पर लागू होती है। ज़रदुस्त, मेजिस, कनफ्यूशस्, ईसा अथवा मुहम्मद के धर्म सम्बंधी उपदेश भी ऐसे ही हैं। इन्हें दैवी उपदेश (Divine Inspiration) कहते हैं। इसी को जैमिनी 'चोदना' कहता है[1]। इस भावना का अभिप्राय यह है-कि श्रेयस्कर आचरण कौन सा है ? यह निर्णय करना मानव बुद्धि का काम नहीं हैं। केवल अलौकिक दिव्य शक्ति ही का है। वेद अलौकिक दिव्य ग्रंथ है।

कणाद का मत—कणाद का कथन है, जिस के योग से अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति हो वही धर्म है[2]। अभ्युदय-एहिलौकिक और निश्रेयस पारलौकिक। अर्थात् मोक्ष। कणाद के मत से आचरण नहीं, आचरण कर्ता की आत्मा पर जो अदृष्ट शुभ संस्कार पड़ता है, वही धर्म है। इस मत में अदृष्ट की मुख्यता हैं। कणाद का मत है, कि धर्मक्षेत्र में मानव बुद्धि सफल नहीं हैं। परन्तु कणाद जैमिनी की अपेक्षा कुछ बुद्धि वादी अवश्य है।

व्यास की धर्म मीमांसा--व्यास की धर्म मीमांसा इन से निराली है। व्यास शब्द प्रामाण्य नहीं मानता। वह कहता है--कोई कहते हैं, श्रुति में धर्म कहा है, कोई कहते हैं नहीं कहा है, पर हमारा कहना है कि श्रुति में सभी कुछ नहीं कहा गया है। व्यास ने जो शांति पर्व में धर्म मीमांसा की है, सर्वथा बुद्धि वादी है[3]। स्पष्ट ही उस पर नए विचारों का प्रभाव है। वह वैदिक पशु याग की निंदा करता है। एकेश्वर भक्ति और वर्ण व्यवस्था की अस्थिरता प्रमाणित करता है। वह राज्य संस्था और वर्ण व्यवस्था की बुद्धि वादी उपपत्ति बताता है। तथा सामाजिक दुरवस्था और वर्ण व्यवस्था का सम्बँध राज्य व्यवस्था से जोड़ता है। वह श्रृद्धा मूलक-धार्मिक आचारों की अपेक्षा नैतिक तत्त्वों की श्रेष्ठता पर बल देता है। और नैतिक तत्त्वों ही को सब धर्मों का आधार बताता है[4]। वह कहता है---सब मनुष्यों को परमार्थ साधन का समान अधिकार है, और सर्व-भूत हित ही सब से बड़ा धर्म है[5]। वह जोर

---

१. चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः। पूर्व मीमांसा।
२. यतो अभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः। वैशेषिक १।१।२।
३. महा० शान्ति० आ० १४१--१४२-२४२।
४. महा० शांति० २५९ अनुशासन १६२न-१२३
५. महा० शांति० २६२, ३५-।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देकर कहता है कि धर्म निर्णय में केवल वैदिक शब्द ही प्रामाण्य नहीं है, सब के हिताहितों का विचार करने वाली मानव बुद्धि ही प्रामाण्य है।

निसंदेह यही उदार विचार थे। जिन्हों ने कहर पथी प्राचीन आर्यों और नवीन विचार धारा वालों में विषम सामाजिक और राजनैतिक स्थिति उत्पन्न कर दी थी, जिस कारण कुरुक्षेत्र में दोनों प्रकार के विचारकों का रक्त कहा। उदार विचार वालों की विजय हुई। और सम्भवतः उन्हीं की प्रतिक्रिया स्वरूप आगे बौद्ध और जैन, धर्म जैसे विश्व धर्मों का मानवतावादी उदय हुआ। और स्मृतियों के रूप में धर्म शास्त्र रचे गए--जो वास्तव में समाज के कानून थे।

व्यास कहता है--(लोक यात्रार्थमेवेह धर्मस्य नियमः कृतः) अर्थात् इस जगत का लोक व्यवहार ठीक ठीक चले, इसी लिए धर्म के नियम बनाए गए हैं। निस्संदेह व्यास पर अर्थ शास्त्रज्ञ वृहस्पति और उशना (शुक्र) के विचारों की छाप है। शांति पर्व में जो व्यास के कर्म सम्बन्धी विचार हैं, उन से प्रकट होता है कि उस समय धर्म मीमांसा--समाज धारणा शास्त्र बनाने के मार्ग पर अग्रसर हो रही थी, और भारतीय विवेचक दृष्टि (Critical) का उदय हो रहा था। यद्यपि महाभारत में—खास कर शान्ति और अनुशासन पर्वों में पुनर्जन्म, परलोक, कर्म फल, देवता, ईश्वर, दिव्य दृष्टि, पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक का भी वर्णन है। इस में बहुत सा पीछे का मिलाया हुआ है, कुछ सामान्य लोगों को सत्पथ में लाने के लिए है, परन्तु इस में संदेह नहीं–कि व्यास धर्म तत्त्व को महाभारत में पूर्ण तौर पर बुद्धिवादी और वस्तुनिष्ठ सारणी पर खड़ी करता है।

४--वर्ण व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था—व्यास की इस धर्म व्याख्या का सब से बड़ा प्रभाव तत्कालीन वर्ण व्यवस्था के रुढि वाद पर पड़ा। उन्हों ने वर्ण व्यवस्था को धर्म और स्थायी नहीं माना, उसे शुद्ध राजनीतिक व्यवस्था कहा। यह वर्ण व्यवस्था प्रणाली आर्यों की एक सर्वथा निराली प्रणाली थी। न तो तत्कालीन प्राचीन वैदिक युग में, और न उसके बाद ही संसार की किसी अन्य जाति में यह व्यवस्था स्थापित हुई थी। महाभारत काल में आर्यों के चार वर्णों के अतिरिक्त कुछ संकर जातियां भी उत्पन्न हो गई थीं। और उन्हें नीच समझा जाता था। द्रौपदी के स्वयम्बर में जब लक्ष्य वेध के लिए कर्ण ने धनुष उठाया तो द्रौपदी ने स्पष्ट कह दिया, कि मैं सूत से ब्याह न करूंगी। इस से यह भी पता लगता है कि तब गुणों की अपेक्षा जन्म ही की श्रेष्ठता प्रधान थी।

व्यास की धर्म व्यवस्था का प्रभाव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह स्वाभाविक बात है कि निम्न जातियों में गिने जाने वाले योग्य व्यक्ति अब कुलीन आर्यों की श्रेष्ठता को क्रोध और तिरस्कार से देखने लगे थे।

आरम्भ में आर्यों में वर्ण भेद होने पर भी रोटी बेटी होती थी। यह ऋग्वेद से प्रमाणित है। ब्राह्मणों और क्षत्रियों की लड़कियां परस्पर ब्याही जाती थीं। कई चन्द्रवंशी क्षत्रिय का पेशा छोड़ कर ब्राह्मण हो गए थे। पर दिन-दिन यह प्रतिबन्ध कड़ा होता जाता था। मेगस्थनीज के काल में तो ये बन्धन अटूट हो गए थे। वह कहता है कि कोई जाति अपनी जाति के रोजगार के अतिरिक्त न दूसरा रोजगार धंधा कर सकती है न अपनी जाति के बाहर किसी जाति में विवाह कर सकती है। यह आश्चर्य की बात थी, सबका एक धर्म था, एक देश था, एक समाज था, एक से ही नैसर्गिक अधिकार थे, फिर भी वे एक दूसरे से प्रथक् रहते जाते थे।

कालान्तर में जब केवल तीन ही वर्ण विकसित हुए, तब बेटी व्यवहार में थोड़ी सी मनाही थीं। ब्राह्मण तीनों वर्णों से बेटी ब्याह सकता था। क्षत्रिय ब्राह्मण के सिवा दो वर्णों की बेटी ब्याह सकता था। वैश्य केवल अपने ही वर्ण में ब्याह कर सकता था। पीछे जब शूद्र भी आर्य वर्णी हो गए, तो समाज में शूद्र की लड़की लेने न लेने के प्रश्न को लेकर अत्यन्त गम्भीर विवाद उठ खड़ा हुआ। वैश्यों को खेती और पशु पालन करना पड़ता था उनका इस कारण शूद्रों से घनिष्ट सम्बन्ध हुआ तथा वैश्य को केवल अपने ही वर्ण की लड़की ब्याहने की बात थी, सो उसने आगे कदम बढ़ाया और वे शूद्रों की बेटी ब्याहने लगे। बाद में ब्राह्मण और क्षत्रियों ने शूद्रों की बेटियां ब्याहीं।

वर्ण संकरत्व--अभी तक यह नियम चला आता था--कि स्त्री चाहे जिस वर्ण की हो, पर संतान को पिता का वर्ण-कुल-गोत्र मिलता था[1]। अब, जब शूद्रों की बेटियां ब्याहने पर उनकी संतान को पिता के घर बराबरी का दर्जा मिलने लगा तो झगड़े उठ खड़े हुए। और प्रथम यह निर्णय हुआ कि ब्राह्मणी तथा क्षत्रिया ही से उत्पन्न ब्राह्मण की संतान ब्राह्मण-मानी जाय। पीछे यह नियम भी रद्द कर दिया, और यह तय हो गया, कि ब्राह्मणी ही की संतान ब्राह्मण से होने पर ब्राह्मण हो सकेगी। अब सम्पत्ति का प्रश्न भी उठा। कि क्या शूद्रा स्त्री में उत्पन्न ब्राह्मण की संतान को पिता की सम्पत्ति में हिस्सा मिल सकता है? और महाभारत काल में यह निर्णय हो गया कि उसे $\frac{1}{10}$ दे दिया जाय। परन्तु महाभारत के बाद ही यह नियम भी रद्द कर दिया गया। और तय हुआ कि उसे कुछ भी हिस्सा न दिया जाय। ऐसी स्थिति

---

१. त्रिषुवर्णेषु जातोहि ब्राह्मणाद् ब्राह्मणो भवेत्। स्मृताश्च वर्णाश्चत्वारः पञ्चमो नाधि गम्यते। महा० अनु० अ० ४४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में यह स्वाभाविक था, कि ब्राह्मण से शूद्रा स्त्री में उत्पन्न पुत्र की एक नई जाति बना दी जाय। इस प्रश्न को लेकर बीज और क्षेत्र के विवाद पर मनुस्मृति में बहुत विवाद चला है। अन्त में, ब्राह्मण से उत्पन्न शूद्रा की संतान न ब्राह्मण मानी गई, न शूद्र। उसे एक स्वतन्त्र जाति बना कर उसका दर्जा, और काम भिन्न रख दिये गये। महाभारत कार उसकी जाति 'पारशव' रखता है। क्षत्रिय शूद्रा की संतान इसी प्रकार 'उग्र'। परन्तु वैश्य और शूद्रा की संतान अभी भी वैश्य ही समझी जा रही थी। वैश्यों में शूद्रों का बहुत मिश्रण हो गया था। इस से वैश्य के प्रति हीन भाव हो गया। और यह नियम बनाया गया, कि यदि वैश्य की लड़की ब्राह्मण ब्याह ले तो वह 'अम्बष्ठ' समझा जायगा। इस प्रकार भिन्न वर्णों की बेटी ब्याहने के सम्बन्ध विचार और बन्धन होने लगे। ऊंची जाति की स्त्री और नीच जाति के पुरुष पर तो प्रथम ही से बन्धन थे। फिर भी ऐसे ब्याह होते ही थे और उनकी संतानों की नित नई जातियां बनती जाती थीं। जो तत्कालीन समाज व्यवस्था, और राजनीति में भी झंझट का कारण होती जा रही थी। अतः ब्राह्मण काल से ही वर्ण संकरत्त्व की निन्दा होने लगी। भगवद्गीता में तो संकर बच्चा पैदा करना नर्कगामी होना और कुलघात करना बताया है[२]। वहां तो राजा को सावधान किया गया कि वह देखे कि राज्य में वर्ण संकर संतान तो नहीं उत्पन्न हो रही है।

संकर विद्रोह--वर्ण संकर की आशंका से चारों वर्ण अपने ही वर्ण में बेटी ब्याह करने लगे। किन्तु इस समय तक संकर जातियां भारत में बहुत बढ़ चुकी थीं, वे सहज ही में ब्राह्मण की श्रेष्ठता पर संदेह करने लगीं। इस संदेह का उत्तम उदाहरण वन पर्व में सर्प रूपी नहुष और युधिष्ठिर के सम्वाद में है। यह सम्वाद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नहुष ने बलपूर्वक ब्राह्मणों से कर उगाहना चाहा था--जिस से उसे राज्य भ्रष्ट होकर, सर्प होकर रहना पड़ा था। युधिष्ठिर से उसने यही प्रश्न पूछा--कि ब्राह्मण कौन हैं। इस पर युधिष्ठिर ने यह नहीं कहा--कि जो ब्राह्मण स्त्री पुरुष से उत्पन्न हो-वही ब्राह्मण है। उसने कहा---जिस में क्षमा-शान्ति-दया-दान-सत्य-तप और धर्म हो-वही ब्राह्मण है। नहुष ने फिर पूछा--कि ये गुण तो शूद्र में भी हो सकते है, तब युधिष्ठिर ने स्पष्ट कहा---यदि ब्राह्मण में ये गुण नहीं हैं तथा शूद्र में हैं, तो वह ब्राह्मण ब्राह्मण है, न वह शूद्र शूद्र है। नहुष ने फिर पूछा--कि यदि तुम वृत्ति और आचरण पर ही फैसला करते हो, तो फिर वर्ण जाति का ढकोसला ही व्यर्थ है, इस पर युधिष्ठिर ने महत्त्वपूर्ण उत्तर दिया। उसने कहा-- 'हे सर्प, मुख्य जाति तो आज-कल मनुष्य है। क्यों कि सब वर्णों के संकर हो जाने से भिन्न-भिन्न जातियों की परीक्षा नहीं हो सकती। सब वर्णों के लोग सभी जाति की स्त्रियों में संतान उत्पन्न करते हैं। वाणी और जन्म. मरण सभी का एक सा है। सो यदि वृत्त अच्छा नहीं. तो वर्ण व्यर्थ है।

---

२. संकरोनरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च। गीता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युधिष्ठर के इस उत्तर में वर्णों को अस्वीकार नहीं किया गया है। अपितु पहिले वर्ण से वृत्त परखा जाता था, अब उसने वृत्त से वर्ण परखने की बात कही है, महाभारत में ब्राह्मण की सत्ता का अत्यन्त सम्मान किया गया है। पर उसके गुण. लक्षण बदल दिए हैं। वह जन्म प्रधान जाति नहीं रह गई, कर्म प्रधान हो गई है। गीता में भी ब्राह्मण के लक्षण मनु आदि के लक्षणों से भिन्न हैं। मनु तो यज्ञ करना कराना, दान लेना देना वेद पढ़ना पढ़ाना ब्राह्मण का कर्म बताते हैं, पर गीता—शम–दम–त्याग, शील और तप को ब्राह्मण का लक्षण कहता है। तथा चाहे भी जिस जाति में उत्पन्न उपर्युक्त गुण वाले को वह ब्राह्मण ही कहता है। तथापि महाभारत काल में कर्म के साथ २ जन्म की भी महत्ता थी। और यही महाभारत सग्राम का मुख्य कारण बना।

वर्णों का बन्धन—वर्णों के केवल विवाह बधन ही कड़े नही किए गए. उनके कारोबार पर भी रोक लगा दी गई थी। नियम यह था कि विपत्काल में उच्च वर्ण का पुरुष नीच वर्ण का पेशा कर सकता है, पर नीच वर्ण उच्च वर्ण का पेशा नहीं कर सकता। शूद्रों के लिए यह नियम और कड़ा था। उसके लिए वेद पढ़ना भी निषिद्ध था। वैदिक संस्कारों का भी उसे अधिकार न था। इस से स्पष्ट हो जाता है कि आर्यों का वश जुदा था, उनकी नीति और सभ्यता जुदा थी, उनके अधिकार जुदे थे। शूद्रों को उन्होंने समाज व्यवस्था में ले लिया, पर यह काम उन्होंने शुश्रूषा कराने के लिए, काम में सहायता सहयोग लेने के लिए किया था।

वर्ण संकरत्त्व की समाप्ति और वर्णसंकर जातियों का उत्कर्ष तथा जाति उपजातियों का प्रादुर्भाव—

महाभारत के बाद वर्णसंकरों की उत्पत्ति बंद हो गई। और प्रत्येक वर्ण का पुरुष केवल अपने ही वर्णों में ब्याह करे—यह प्रतिबन्ध अत्यन्त सख्त हो गया। सवर्णी स्त्री से उत्पन्न संतान ही उस वर्ण की समझी जायगी, यह निश्चय हो गया।

इस जात्याभिमान की जो प्रतिक्रिया वर्ण संकरों पर हुई वह बड़ी अद्भुत थी। उन्होंने अत्यन्त निकट से कुलीन आर्यों के जात्याभिमान को देखा था। उनके जात्याभिमान का अभिमान सहा था। उन्हें आर्यों ने उत्पन्न किया और अपनी जाति तथा दाय भाग से वंचित कर दिया था। उन्हें अपने से हीन समझा था। और समाज में वे योग्य होने पर भी अकुलीन थे। अतः ज्यों ही इन नई बनी जातियों का आर्यों से विवाह सम्बन्ध टूटा, उनमें अपना जात्याभिमान उत्पन्न हो गया। प्रत्येक जाति वाले को यह अभिमान हो गया कि हम किसी न किसी जाति से तो श्रेष्ठ हैं हीं। इस मनोवृत्ति की दशा में जहाँ कहीं सम्पत्ति या शक्ति का सहारा मिला, उन्होंने अन्यों से महत्त्व प्राप्त कर लिया तथा उक्त जात्याभिमान बढ़ कर अन्य नई २ जातियां उत्पन्न होने लगीं। जातियों में भी भीतरी उपजातियाँ उत्पन्न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होने लगीं। उपजातियों के भी उसी छोटी-सी सीमा में रोटी–बेटी के सम्बन्ध होने लगे। देश-भेद का भी जाति-भेद पर प्रभाव पड़ा। भिन्न २ क्षेत्रों के आचार विचार, रहन सहन, खान पान से एक जाति दूसरे को पराया समझने लगी। जिस से जाति प्रधान बहुत सख्त होते चले गए। इन्हीं जातियों की भांति आगे आर्यों के वर्णों में भी अनेक अवान्तर भेद होते गए। ब्राह्मणों की, क्षत्रियों की, वैश्यों की अनेक श्रेणियाँ, जातियाँ बनीं, जिनके रोटी बेटी सम्बन्ध एक दूसरे के साथ होने बन्द होते चले गए। अतः वर्णधर्मी आर्यों में भी जाति बन्धन बन गए। मसीह की आठवीं शताब्दी तक ये बन्धन बन चुके थे। तथा वर्ण व्यवस्था का अमोघ और प्रचण्ड रूप बन चुका था।

गोत्रोत्पत्ति—गोत्र परंपरा वंश परंपरा ही था। यह सम्भवतः महाभारत काल से भी प्राचीन थी। सप्तर्षि और अगस्त ये आठ गोत्र प्रवर्तक माने गए हैं। पर महाभारत में चार ही गिनाए हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आर्यों के दोनों प्रधान कुलों—चन्द्रवंश और सूर्यवंश का एक भी पुरुष गोत्र प्रवर्तक नहीं है। आगे चल कर गोत्रों का प्रचलन और उपयोग विवाह में रक्त सम्बन्ध बचाने के विचार से हुआ। विवाह सम्बन्धी बातचीत में गोत्रों का बचाव महत्त्वपूर्ण हो गया। इस से भी वर्ण संकरत्त्व को रोक लगी, और शुद्ध कुलों में परस्पर विवाह हों ऐसी प्रवृत्ति चली।

आश्रम–व्यवस्था—

महाभारत में आश्रम व्यवस्था की भी विशद व्याख्या है। महाभारत और उपनिषदों में भी हमें ऐसे संकेत मिलते हैं कि केवल ब्राह्मण विद्यार्थी ही गुरु के घर रह कर विद्या पढ़ते थे। महाभारत में यह कहीं स्पष्ट नहीं लिखा है कि अन्य वर्णों के छात्र भी उस काल में गुरु के घर रह कर पढ़ते थे। पाण्डव और कौरवों ने घर पर ही द्रोणाचार्य को रख कर विद्याध्ययन किया था। कदाचित् महाभारत काल में क्षत्रियों और वैश्यों में ब्रह्मचर्य की महत्ता घर कर गई थी। शूद्रों को वेद विद्या नहीं पढ़ाई जाती थी।

गृहस्थी को गृहाग्नि रखनी पड़ती थी। कृष्ण जब समझौता करने गए तब विदुर के घर—सभा में जाने से पहिले सवेरे नहा धोकर जप-जाप्य कर अग्निहोत्र करके गए थे। पाण्डव वनवास में भी गृहाग्नि रखते थे। महाप्रस्थान के समय पाण्डवों ने गृहाग्नि को जल में विसर्जन किया था। गृहाग्नि न रखने वाले ब्राह्मण से शूद्र के समान व्यवहार किया जाता था।

वानप्रस्थ का अधिकार तीनों वर्णों को था। शूद्र को वानप्रस्थ की मनाही नहीं थी, पर वह और वैश्य राजा की आज्ञा से वानप्रस्थ और सन्यासी हो सकते थे। सन्यासी होने का अधिकार ब्राह्मण ही को था। पर राजा से आज्ञा लेकर शूद्र तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैश्य भी सन्यासी हो सकता था। क्षत्रियों के लिए भैक्ष्यचर्या मुक्त कर दी गई थी। वे भिक्षा नहीं मांगते थे। परन्तु ऐसी भी प्रवृत्ति थी कि क्षत्रिय वानप्रस्थ और सन्यासी हों ही नहीं। महाभारत में लिखा है—कि राजधर्म अर्थात् प्रजा का पालन सब धर्मों में श्रेष्ठ है, यह धर्म पालनकर्ता राजा को सब आश्रमों का फल मिल जाता है[1]। कुछ पाखण्डी भी सन्यासी थे। पर भिक्षा मांगने का अधिकार केवल सन्यासी को ही था। स्त्रियाँ भी सन्यासिनी होती थीं। ऐसी ही एक सन्यासिनी क्षत्रिय कन्या कुमारी सुलभा का ज़िक्र शान्ति पर्व में है।

जातियों के पेशे का बन्धन—आर्य वर्णों और संकरों को भी अपनी-अपनी जाति के पेशे करने की सख्त पाबन्दी थी। ब्राह्मण आपत्काल में सिपहगिरी, खेती, दूकानदारी, गोपालन भी कर सकते थे। कोई ब्राह्मणेतर अध्यापन का या पुरोहिताई का काम नहीं कर सकता था। यह काम तो ब्राह्मण ही कर सकता था। क्षत्रियों को यद्यपि वेद पढ़ने का अधिकार था—पर महाभारत काल में बहुत कम क्षत्रिय वेद पढ़ते थे। एक दो स्थान पर तो वेदपाठी होने के कारण युधिष्ठिर की निन्दा की गई है। क्षत्रियों की 'युद्धे चाप्य पलायनम्' की वृत्ति प्रशंसित थी। क्षत्रिय आपत्काल में भी भीख नहीं मांग सकता था। ऐसी अवस्था में वह वैश्य का काम कर सकता था। राज्य करने का अधिकार क्षत्रियों ही को था। पहिले पहल इस एकाधिकार को चन्द्रगुप्त या नव नन्दों ने क्षत्रियों से छीना। इसी से कहा है—'नन्दान्तं क्षत्रियकुलम्' चन्द्रगुप्त के बाद तो अनेक शूद्र और ब्राह्मण भी राजा हुए। फिर शक, यवन और इसके बाद आन्ध्र। पर महाभारत के काल तक राजा होने का एकाधिकार क्षत्रिय ही को था। वह एकाधिकार जो एक बार गया सो क्षत्रिय कुल में भारत में नहीं आया। राज्य करने की प्रवृत्ति क्षत्रियों में ऐसी थी कि युधिष्ठिर ने केवल एक ही गाँव का राज्य माँगा था। वैश्य का पेशा कृषि–वाणिज्य और गो-रक्षा था, गीता में और शान्तिपर्व में यही लिखा है। महाभारत काल में वैश्य केवल वाणिज्य ही करते थे। कृषि पशु पालन शूद्रों में चला गया था। वैश्यों में शूद्र भाव बहुत मिल गया था। शूद्रों का काम तीनों वर्णों की सेवा, कृषि और पशु पालन था, वे धन संचय न कर सकते थे। शांतिपर्व में लिखा है कि राजा की आज्ञा से ही शूद्र धन संचय कर सकता है। कुछ शूद्र यज्ञिय व्रत न करके अमन्त्रक यज्ञ करते थे। पर उसे महाभारत काल में भी वषटकार, स्वाहाकार और वेद मन्त्र पाठ का अधिकार न था। संक्षेप में महाभारत काल में शूद्रों की उन्नति तो हुई ही थी, वे केवल दास न रह कर कृषक और पशु पालक भी हो गए थे, पर वेद पढ़ने का अधिकार उन्हें न

---

१. महाश्रयं बहु कल्याण रूपं क्षात्रं धर्मं नेतरं प्राहुरार्याः। सर्वेधर्मा राजधर्म प्रधानाः सर्वेवर्णाः पाल्यमाना भवन्ति। महा०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। यद्यपि वेद काल की अपेक्षा अब उनका पेशा बहुत उत्तम हो गया था।

संकर जातियों के व्यवसाय भी नियत थे। ब्राह्मणी स्त्री में क्षत्रिय पति द्वारा उत्पन्न सूत कहाता था। सूतों का पेशा राजा की स्तुति करना था। आगे पुराण वाचन भी उनका पेशा हो गया, और वे राजाओं के इतिहास–वंशावलियां भी रखने लगे। आजकल के भाट कदाचित् सूत वंशी ही हैं। सूतों को वेद पढ़ने का भी अधिकार था। और उसे ब्राह्मण के लगभग मान प्राप्त था। अब भी भाट अपने को ब्रह्म भट कहते हैं। सूत सारथी का काम भी करते थे। फिर भी सूत के प्रति हीन भावना थी। इसी से द्रौपदी ने कर्ण से व्याह करने से इन्कार कर दिया था। ब्राह्मण स्त्री और वैश्य पति से उत्पन्न वैदेह कहाता था, उसका काम राजा के अन्तः पुर में स्त्रियों की रक्षा करना था। क्षत्रिय स्त्री में वैश्य पुरुष से उत्पन्न सन्तान मागध कहाती थी, उसका काम भी राजा की स्तुति करना था। संकर जातियों में ये तीन उच्च जातियां मानी जाती थीं।

वैश्य स्त्री से शूद्र पुरुष द्वारा उत्पन्न संतान 'आयोगव' कहाती थी, उसका काम बढ़ई का काम करना था, क्षत्रिय स्त्री और शूद्र पुरुष की सन्तान निषाद मानी गई। मछली मारना इनका पेशा हुआ, आगे यही कहार-धींवर हुए। बहेलिए भी इन्हीं जाति के लोग हैं। ब्राह्मण स्त्री में शूद्र पुरुष से उत्पन्न सन्तान चांडाल होता था। वह जल्लाद का काम करता था।

संकरों में और भी भेद उनके सजातीय सम्बन्धों से हो गए थे। जिनकी पद्रह प्रकार की जातियां थीं। जिनमें से अनेकों की हीनावस्था थी, और वे अस्पर्श्य माने जाते थे, तथा उन्हें नागरिकता के अधिकार भी न थे। इसी से वर्ण संकरत्त्व की महाभारत में और गीता में निंदा है।

वर्ण व्यवस्था का चलन मध्य प्रदेश में अधिक था। कर्ण पर्व में कहा गया है––कि मत्स्य-चेदि, कुरु, नैमिषारण्य, पांचाल देशों में लोग धर्म पालन करते हैं, पर मद्र और पंचनन्द देश के लोग धर्म का लोप कर देते हैं। महाभारत के कथन से इतना स्पष्ट होता है, कि कुरुओं में वर्ण व्यवस्था का स्वरूप कड़ा था, पर पंजाब में इतना कड़ा न था। इस काल में कारस्कर, महिषक, कलिंग, केरल और कर्कोटक जातियों को दुर्धभी कहा गया है।

———

५—विवाह संस्था

विवाह की नई मर्यादा––वर्ण व्यवस्था के समान आर्यों की विवाह संस्था भी एक महत्व पूर्ण वस्तु थी। अत्यन्त प्राचीन काल में कदाचित् विवाह के बन्धन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कड़े न थे। श्वेत केतु ने यह नियम बनाया, कि एक स्त्री एक ही पति की पत्नी रहे। उसने पति पर भी प्रतिबन्ध लगाया था--पर वह चला नहीं। नियोग की प्रथा भी पुरानी थी। महाभारत काल में उसे अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। और स्त्रियों में पातिव्रत धर्म का महत्त्व बहुत बढ़ गया था। दीर्घतमा ऋषि ने स्त्रियों के पुनर्विवाह को भी निन्द्य करार दिया था। महाभारत काल में स्त्रियां पुनर्विवाह करना हीन कार्य समझती थीं। एक स्त्री के अब अनेक पति न हो सकते थे। पर एक पति की अनेक स्त्रियां हो सकती थीं। महाभारत काल में बहुपत्नित्व की प्रथा भी कम हो रही थी। अत्यन्त प्राचीन काल से आर्यों में यह मर्यादा रही थी कि विवाह काल तक कन्या अनुपभुक्ता रहे। परन्तु पति-पत्नि का समागम विवाह के ही दिन या विवाह से तीसरे दिन होता था। इस का अभिप्राय यह है कि विवाह काल में कन्याएं वयस्का होती थीं। महाभारत से भी प्राचीन काल से भिन्न-भिन्न लोगों में भिन्न २ विवाह मर्यादाऐं थीं। भारत काल में विवाह के पांच भेद प्रचलित थे। १– ब्राह्म, २–क्षात्र, ३–गान्धर्व, ४–असुर, ५–राक्षस। इनमें ब्राह्म विधि श्रेष्ठ मानी जाती थी। क्षत्रियों में राक्षस विवाह या क्षात्र विवाह प्रचलित थे। इसमें रोती, कलपती कन्या को बलात् हरण किया जाता था। या शूरता दिखा कर कन्या को जय किया जाता था। प्रेम के वरण को गांधर्व विवाह कहते थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय महाभारत काल में अपने से नीचे वर्ण की लड़की ले लेते थे।

पती पत्नी सम्बन्ध--महाभारत काल में स्त्रियों का गृहस्थी में काफी आदर था, उन्हें समाज में स्वतन्त्रता भी थी। आज-कल तो कन्या दान के साथ दहेज भी दिया जाता है। इससे स्त्रियों की दशा-हीन हो गई है। पर उन दिनों या तो वे पति को वरण करती थीं, या उन की शुल्क में बड़ी-बड़ी रक़में दी जाती थीं। भीष्म ने पांडु के लिए माद्री को जब मांगा था--तो शुल्क में एक छकड़ा भर स्वर्ण और रत्न दिए थे। इसी से आज की अपेक्षा स्त्रियों का नव समाज में अधिक मान था। स्वयम्बर में कुमारियां निर्भयता से वर का वरण करती थीं।

वे शिक्षिता और पण्डिता होती थीं। द्यूत सभा में द्रौपदी ने धर्म नीति के प्रश्नों से भीष्म को भी निरुत्तर कर दिया था। व्यास ने द्रौपदी को ब्रह्मवादिनी और पन्डिता कहा है। उसने राजनीति तथा धर्मनीति पर अपने पतियों से अच्छे खासे वाद विवाद किए हैं। द्रौपदी ने अपने तेज का प्रभाव विराट के घर दिखाया था—जब वह दासी की भांति वहां रहती थी। उसने अपने दुर्दिनों में यथेष्ठ धैर्य, सहिष्णुता और कर्मठता का परिचय दिया था। वह बड़प्पन, स्वातन्त्र्य, और स्त्री-तत्त्व के सभी विषयों में अग्रणी थी।

पतिव्रत धर्म--ऐसा प्रतीत होता है कि पति व्रतधर्म का माहात्म्य उस काल में बहुत हो गया था। द्रौपदी के मुख से वन पर्व में उत्तम पत्नी का आचरण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार वर्णन कराया गया है—वह सत्यभामा से कहती है—अहंकार और क्रोध को त्याग कर स्त्री वह काम कभी न करे, जो पति को अप्रिय हो। पति का मन रखने के लिए स्त्री निरभिमान होकर उसकी सुश्रुषा करे। बुरे शब्द कहना, बुरी तरह खड़े होना, बुरी रीति से देखना या बैठना या चाहे जहां चली जाना, इन बातों से मैं बहुत बचती हूं। मैं अपने पतियों के मन की बात जांचने की चेष्टा नहीं करती। मैं भूलकर भी कभी दूसरे पुरुष को नहीं देखती। भले ही वह देवता हो, गन्धर्व हो, तरुण हो, या मालदार हो, मैं पति के पहिले न भोजन करती हूं, न सोती हूं। ··· पति से बढ़ कर अच्छी होने का मैं प्रयत्न नहीं करती, न मैं सास की निन्दा करती हूं—सदैव निरालस्य रह काम में लगी रहती हूं। नौकर चाकरों के कामों पर भी मेरी नजर रहती है। यही मेरा वशीकरण मन्त्र है।

यह वर्णन एक गृहस्थ स्त्री की पति भक्ति और कर्तव्य परायणता तथा उस काल की सुग्रहिणी का है। परन्तु व्यास ने द्रौपदी का जो चरित्र दिखाया है—वह इससे अधिक उदात्त और श्रेष्ठ है। वह अपने पति की सेवा करने वाली आज्ञाकारिणी ही नहीं है सुख दुःख की संगिनी, मित्र और कठिनाइयों में उनका हाथ बटाने वाली है। वह विचारशीला भी है। महाभारत काल में जहां स्त्रियों में पतिव्रत भाव की वृद्धि हो रही थी-वहाँ पुरुषों का स्त्रियों पर एकाधिकार खूब था, इसका उदाहरण हमें उस समय दीख पड़ता है—जब युधिष्ठिर ने द्रौपदी को जुए में दाव पर लगा दिया, और सभा में उसे बुलाकर नंगी किया जाने लगा। उस समय द्रौपदी ने भीष्म से, जो सब कौरवों में श्रेष्ठ थे—पूछा—कि मेरे पति ने अपने आपको प्रथम दाव पर लगाया और हार गए, इसके बाद मुझे दाव पर रखा और हार गए, ऐसी अवस्था में उन्हें मुझे दाव पर रखने का अधिकार था या नहीं। इस प्रश्न का भीष्म ने जो उत्तर दिया—वह विचारणीय है। उन्होंने कहा—यह कठिन धर्म संकट का प्रश्न है, मैं ठीक २ उत्तर नहीं दे सकता। जिस पर अपनी सत्ता नहीं चल सकती, वह द्रव्य दाव पर नहीं लगाया जा सकता। पर पति चाहे भी जिस स्थिति में हो, पत्नी पर से उसकी सत्ता उठ नहीं सकती[1]।

इस उत्तर से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियों का वह स्थान जो प्राचीन वैदिक काल में था, अब नष्ट हो चुका था। और स्त्री पर पुरुष का असाध्य अधिकार हो चुका था। यहां तक—कि पति उसे स्वयं दास होने पर भी जुए में दाव पर लगा सकता था।

सती—सती होने की विरल घटना महाभारत में है। पाण्डु पत्नी माद्री पाण्डु

---

१. न धर्म सौक्ष्म्यात्सुभगे विवक्तुं शक्नोमिते प्रश्नमिमं विवेक्तुम्।
अस्वाम्यशक्तः पणितुं परस्वं स्त्रियञ्चभर्तुर्वशतां समीक्ष्य।
महा० स० अ० ६७

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के साथ सती हुई, तथा इन्द्रप्रस्थ में कृष्ण की कितनी ही स्त्रियों के सती हो जाने का वर्णन महाभारत में है। परन्तु महाभारत संग्राम के बाद दुर्योधन की तथा अन्य कौरवों की पत्नियों के सती होने की कोई चर्चा नहीं है। अन्य किसी भी प्रमुख स्त्री के सती होने का उल्लेख नहीं है। इसलिए यह तो ठीक है कि सती की प्रथा भारत में प्राचीन काल से है, पर महाभारत काल में थी या नहीं यह ठीक २ नहीं कहा जा सकता।

पर्दा——शल्यपर्व में युद्ध का अन्त होने पर दुर्योधन के परिवार की स्त्रियां जब हस्तिनापुर की ओर भागीं, उनका वर्णन करते हुए उन्हें 'असूर्यपंश्या' कहा गया है। अर्थात् जिन्हें सूर्य भी नहीं देख सकता था। इसी प्रकार स्त्री पर्व में तथा अन्यत्र भी यह संकेत मिलता है कि प्रतिष्ठित स्त्रियां पर्दा करती थीं। परन्तु ऐसे भी उदाहरण हैं कि स्त्रियाँ खुले मुंह रहती थीं। सुभद्रारैवतक पर्वत पर यादव स्त्रियों के साथ खुले तौर पर उत्सव में फिर रही थी। वनबास काल में द्रौपदी को द्वार पर खड़े देख जयद्रथ ने उसे हरण करना चाहा था। इससे पता लगता है कि पर्दा एक मर्यादा की सीमा में था। जैसा कि आजकल भद्र महिलाओं का है। सम्भवतः भारत में पर्दे का प्रचलन पार्थियन बादशाहों के अनुकरण पर नन्द प्रमुख राजाओं ने ई० पू० ४०० के लगभग आरम्भ किया था। नन्दों का अवरोध बहुत बड़ा होता था। कथा सरित्सागर में लिखा है कि एक राहगीर ने अन्तःपुर की ओर नजर उठाकर देख लिया था, इसी अपराध पर उसे प्राणदण्ड दिया गया था। इससे यह तो प्रमाणित है ही, कि ई० पू० ३०० में भारत के राज परिवार की स्त्रियां परदे में रहती थीं।

अन्य विवाह बन्धन——आजकल विवाह में गोत्र-प्रवर और सपिण्ड देखकर विवाह होते हैं। प्राचीन काल में तो ऐसा न था। पर महाभारत काल में गोत्र और प्रवर बचाकर विवाह होता था। विवाह एक ही जाति में तो होता था, पर एक गोत्र और समान प्रवर में नहीं। प्रवर तीन या पांच थे।

स्मृति के अनुसार माता की पाँच पीढ़ी में विवाह वर्ज्य है, पर उस काल के चन्द्र वंशी इस नियम को नहीं मानते थे। वे मामा की बेटी से ब्याह करते थे। कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न का विवाह उसके मामा रुक्मी की बेटी से हुआ था। तथा प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का विवाह भी उसकी ममेरी बहिन से हुआ था। तथा सुभद्रा अर्जुन का विवाह भी ऐसा ही था। भीम को शिशुपाल की बहिन ब्याही थी, शिशुपाल की मां और भीम की मां सगी बहिन थीं। प्राचीन काल में दक्षिण में ब्राह्मणों और क्षत्रियों में ऐसे विवाह होते थे। दक्षिण में अब भी स्वसुर को मामा कहने की चाल है। इससे कहा जा सकता है कि दक्षिण के क्षत्रिय चन्द्र वंशी हैं। विवाह पहिले बड़े भाई का होता था, पर लड़कियों के लिए यह बन्धन न था।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

६--सामाजिक जीवन

भोजन-मांस--महाभारत काल में मांस और अन्न का मिश्रित भोजन ब्राह्मण क्षत्रिय और जन साधारण करते थे। सभा पर्व के चौथे अध्याय में लिखा है–कि सभा भवन के प्रवेश उत्सव में १० हजार ब्राह्मणों को भोजन कराया गया था। उस समय उत्तम कन्द-मूल, फल वराह और हिरन के मांस, घी शहद, तिल मिश्रित पदार्थ और भांति २ के मांसों से उन्हें संतुष्ट किया गया था। कर्ण पर्व (अ० ४१) में एक सम्पन्न याज्ञिक वैश्य का वर्णन है, जिसके पुत्र कौओं को मांस-भात-दही और दूध की बलि देते थे। इससे पता चलता है कि श्रद्धायुक्त वैश्य भी मांसाहार करते थे। यज्ञों में गवालम्बन अब भी होता था। परन्तु इस काल में गो वध निन्दनीय हो हो गया था। द्रोर्ण पर्व में अर्जुन ने जो कसमें खाई हैं, उसमें गो वध को भी पातक कहा है।[1] परन्तु कदाचित् पंजाब में अभी भी गोवध होता था। कर्ण पर्व में शल्य और कर्ण में जो निन्दा सवाद है उसमें कर्ण कहता है कि पंजाब के वातिहक देश में राज महलों के आगे गो मांस की दुकानें हैं। और वहां वाले गो माँस, लहसन, मांस मिली पिट्ठी के बड़े तथा भात खरीद कर खाते हैं।[2] कृष्ण गोप-यादव थे—अतः गो पालन उनका व्यवसाय था। उन्होंने भी गो वध बन्द करने में यथेष्ट सहायता की होगी। संभवतः पाण्डवों के राज्य में तो भारत मेवालम्भन बन्द ही हो गया था। महत्व पूर्ण बात यह है—कि ईरानी लोग भी गो पूजक थे। संभव है चन्द्र वंश में वहीं से गो पूजन के भाव आए हों। इसका आभास महाभारत में वर्णित प्राचीन एक घटना में मिलता है, जिसका सम्बन्ध नहुष और सप्तर्षियों के सम्वाद से है। जिसमें वह गौ को पूज्यनीय कहता है।[3]

क्षत्रिय शिकार करते और पशुओं का मांस खाते थे। वनवास काल में पाण्डवों का गुजर शिकार पर ही होता था। महाभारत ही में लिखा है कि जब पाण्डव द्वैत वन में थे--तब उस वन के हरिणों का बहुत संहार हुआ था। तब युधिष्ठिर ने द्वैत वन छोड़ दिया था। क्षत्रिय अधिकतर बाराहों और मृगों का शिकार करके उनका मांस खाते--तथा उन्हें मेध्य पशु कहते थे। ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिए भिन्न २ कुछ मांस अभक्ष्य थे। गृहस्थ ब्राह्मण त्यौहार आदि पर औटाया हुआ दूध, खीर, खिचड़ी, मांस, बड़ा आदि खाते थे। एक स्थान पर भीष्म ने अहिंसा पर बल दिया तो युधिष्ठर ने पूछा--आप अहिंसा को श्रेष्ठ बताते हैं, पर श्राद्ध में पितर मांसाशन करते हैं. तब हिंसा के बिना मांस कैसे मिलेगा ? इस पर भीष्म

१—महाद्रोण पर्व अ० ७३।

२—महा० कर्ण पर्व अ० ४४

३—महा० उ० अ०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ने कहा—जिसे आयु, बुद्धि, विवेक, बल और स्मृति की इच्छा है, उसे हिंसावर्ज्य करनी चाहिए। एक नियम था कि वर्षा ऋतु और कार्तिक मास में मांस भक्षण न करने का पुण्य माना जाता था। ब्राह्मण के लिए मछली खाने का निषेध था। पर सरस्वती तट के ब्राह्मण मछली खा सकते थे।

मद्य—मद्यपान का क्षत्रियों को बड़ा व्यसन था। द्वारिका में मद्यपान करने में यादवों ने हद कर दी थी। वृष्णि और यादव मद्य पान कर मत्त हो आपस में लड़ मरे। कृष्ण और अर्जुन के मद्य पान का महाभारत में ही तीन स्थानों पर वर्णन है। बलराम तो पूरे पियक्कड़ थे। युधिष्ठर के अश्वमेध यज्ञ को 'सुरामैरेप सागरः' कहा है। इसका अर्थ है कि यज्ञ में मद्य की खूब रेल पेल होती थी।[1] बड़े २ योद्धा युद्ध यात्रा पर जाते समय मद्यपान करते थे। ब्राह्मणों के लिए मद्यपान का निषेध था। परन्तु विशेष अवसरों पर पी सकते थे, जैसे सौत्रामणि यज्ञ में।

अन्न—इस काल में मुख्य अन्न चावल, गेहूं, ज्वार और सत्तू था। धनी भात में माँस मिला कर पकाते थे। इसे 'पिशितौदन' कहते थे। धृतराष्ट्र ने एक बार दुर्योधन से पूछा था—तू अच्छे वस्त्र पहनता है तथा मांस-भात खाता है फिर दुबला क्यों होता जाता है।[2] उद्योग पर्व में लिखा है। अमीर लोग ऐसा भोजन करते हैं। जिनमें मांस अधिक होता है। मध्यम दर्जे के लोग घी, दूध अधिक खाते हैं। पर गरीब आदमी ऐसा भोजन करते हैं जिसमें तेल अधिक रहता है। फिर भी चावल का आहार गरीब अमीर सभी में प्रधान था। इसका कारण कदाचित यह था, कि आर्यो की—बस्ती हिमालय की तराई में थी, फिर पंजाब से मिथिला तक हो गई। इस देश की भूमि में मुख्य पैदावार चावल ही की थी। ज्यों ज्यों वे दक्षिण की ओर बढ़े—ज्वार, जौ, गेहूं उनके आहार में बढ़ते गए। महाभारत में सत्तू की प्रशंसा अनेक स्थानों पर है।

दूध बहुधा गाय का ही पिया जाता था। भैंस का कहीं भी नाम नहीं मिलता। कदाचित् भैंस निन्द्य मानी जाती थी। ब्राह्मण के लिए घोड़ी, भेड़, ऊंटनी आदि का दूध पीना निषिद्ध था। बासी भोजन, पुराना आटा, गन्ना, शाक, सत्तू आदि देर तक रखे हुए खाने की मनाही थी। लसहन, प्याज उच्च वर्णी नहीं खाते थे। भोजन तैयार किया जाता था। भोजन करने के कुछ नियम थे। भोजन नियत स्थान में—चौके में मौन होकर किया जाता था। धृतराष्ट्र राजा को पहिले ही की भाँति युधिष्ठिर के राज्य में भी आटालिक, सूपकार और रागखाण्डविक पक्वान्न बनाकर परोसते थे। सूपकार साक, भाजी कढी भात, दाल आदि बनाते होंगे। खण्डरागाविक मिष्ठान बनाते होंगे। आटालिक मांस पकाते होंगे। पुए और मोदक बांटे जाते थे। लोग

---

१. उद्योग० अ० ९८।

२. आच्छादयति प्रावरान् अश्नासि पिशितौदनम्,। महा० सभापर्व।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजा का, शूद्र का, विधवास्त्री का, वेश्या का, व्याज खाने वाले का अन्न नहीं खाते थे। यज्ञ कर्म बेचने वाले ब्राह्मण का, चमार-धोबी, वैद्य–अधिकारी का भोजन नहीं करते थे। रंगरेज का, बड़े भाई से पहिले व्याह करने वाले का, जुए के अड्डे वाले का, अन्न लोग नहीं खाते थे। बांएँ हाथ से लिया हुआ, वासी, जूठा, विशेष व्यक्ति के लिए रक्खा हुआ, अन्न त्याज्य था। दूध घी खिचड़ी मांस–बड़े २ खास त्यौहारों पर खाए जाते थे। अतिथियों को भोजन देकर गृहस्थ भोजन करता था। मृतक सूतक होने पर दस दिन तक उसके यहां भोजन नहीं किया जाता था। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के यहाँ भोजन करते थे। पर शूद्र के यहां नहीं सखरे निखरे का भेद तब न था। जूठा भोजन त्याज्य था।

वस्त्र भूषण और शरीर विन्यास—वस्त्राभूषणों का महाभारत में बहुत कम उल्लेख है। एक धोती और एक चादर ही पुरुषों की पोशाक थी। अमीर गरीब यहीं वस्त्र पहिनते थे। अमीरों के वस्त्र महीन और बढ़िया होते थे। ऊपर की चादर को उत्तरीय कहते थे। वह योंही कन्धे पर पड़ा रहता था, कमर से ऊपर का अंग ढ़कना कुछ आवश्यक न था। धनवानों की महीन धोती को प्रावार कहते थे। कपड़े काट कर सीने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। न दर्जी के पेशे का उल्लेख है। संस्कृत में दर्जी को 'तुन्नवाय' कहा गया है। पर महाभारत में यह नाम भी नहीं है। रामायण में अवश्य है। संभवतः कपड़ा काटकर सीने की कला का विकास यूनानियों तथा पर्शिया से महाभारत के बाद आया हो। महाभारत कालीन पुरुष दो वस्त्र पहनते थे, एक अन्तरीय दूसरा उत्तरीय। सिर पर उष्णीष[1]। वृद्ध पुरुष सफेद पाग बांधते थे। युवक रंगीन। राजा मुकुट पहनते थे।

स्त्रियां साड़ी लपेट कर सिर से दुपट्टा ओढ़ लेती थी। उसे उत्तरीय कहते थे। स्त्रियां जब बाहर जाती थीं–तो उत्तरीय से माथा ढाँप लेती थीं। द्रौपदी को जब सभा में लाया गया–तब उसके पास उत्तरीय न था। उसने बारंबार कहा था–मैं एक वस्त्रा हूँ—मुझे सभा में मत ले चलो। उस समय स्त्रियां चोली भी नहीं पहनती थी। सौभाग्यवती स्त्रियां मांग में केसर कुंकुम भरती थीं। और वेणी बांधती थीं। माथे पर कुंकुम लगाने का कोई वर्णन नहीं है।

महाभारत काल में कपास की खेती ज्ञात हो गई थी। तथा सूती ऊनी–रेशमी वस्त्र बुने जाते थे। स्त्रियां 'पीत कौशेय' पहना पसन्द करती थीं, कृष्ण भी पीताम्बर धारण करते थे। पीला रंग आम था। सुभद्रा को जब इन्द्रप्रस्थ लाया गया–तो उसे लाल वस्त्र पहिनाया गया था। उन वस्त्रों में वह गोप कन्या सी लग रही थी। संभवतः गोपों की पोशाक कुछ भिन्न हो। सूती कपड़े महीन होते थे,

---

१. उष्णीषाणि नियच्छन्तः पुण्डरीक निभैः करैः।
अन्तरीयोत्तरीयाणि भूषणाति च सर्वशः। (महा० ३० अ० १५३–२०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वल्कल और अजिन वृक्षों की छालों तथा मृग चर्म से बने वस्त्रों को वैखनस योगी और अरण्य-वासी स्त्री पुरुष पहिनते थे। मुनि पत्नियां कुश चीर भी पहनती थीं, वल्कल पहिनने और अजिन ओढ़ने या लपटने के काम आता था। क्षौम, कौशेय, आनिक गृहस्थों के वस्त्र थे। कुशचीर, वल्कल तथा चर्म मुनियों के। क्षोम महीन सूती वस्त्र को कहते थे।

पुरुष प्रायः डाढ़ी मूँछ रखते थे। ऋषि सिर पर भी जटा रखते थे। महाभारत में नाइयों का उल्लेख है। काम्बोज के लोग सिर मुडाकर डाढ़ी रखते थे। स्त्रियाँ चोटी बांध कर सिर के बाल लटकाए रहती थीं। भिन्न २ पेशे वालों की पोशाकों में भी अन्तर रहता था।

अलंकारों का शौक स्त्री–पुरुष दोनों को था। सामान्य स्त्री–पुरुष सोने चांदी के गहने पहनते थे। धनी लोग रत्नों के जड़ाऊ गहने पहनते थे। राजा रत्न जटित मुकुट पहनते थे। तथा कानों में हीरे मोतियों के कुण्डल पहिनते थे। स्त्रियाँ माथे पर पट्ट पहनती थीं। काञ्ची, रशना और नूपुर स्त्रियों के अधो अंग के आभूषण थे। कुण्डल और केचूर कानों में पहने जाते थे।

आसन—बैठने के आसन, पीठ, चौकियां होती थीं, जिन पर हाथीदांत का काम होता था। रानियां मंचक या पर्यंक पर बैठती थीं। ये पलग जैसे होते होंगे। इन आसनों पर गद्दे, चांदनी, तकिए रहते थे। कृष्ण जब कौरवों की सभा में गए थे—तब उन्हें जिस आसन पर बैठाया था उसका वर्णन है—जम्बूनदमयं पर्यंकं सुपरिष्कृतम्। विविधास्तरणास्तीर्ण मभ्युपाविशदच्यूतः।

रीति-रस्म—कुछ वेश स्त्रियाँ होती थीं। ये वेश्याएँ तो न थीं, पर बड़े लोगों की उपपत्नियाँ जैसी थी। समाज में इनका मान था। अज्ञातवास से प्रकट होने पर संधि-चर्चा के लिए आए हुए संजय के हाथ जो हस्तिनापुर के लोगों को सन्देश भेजे थे, उस समय कहा था—अलंकार पहिने, अच्छे वस्त्रों से सज्जिता, और नाना वास लगाए, सुख में पड़ी हुई मर्यादाशील, सब प्रकार के भोगों को भोगने वाली वेश स्त्रियों से मेरी ओर से कुशल पूछना—कि जिनका रूप और भाषण सुन्दर होता है। राजदरबारों में ये वेशस्त्रियाँ नृत्य गान करतीं, पान गोष्ठियों में लोगों का मनोरंजन करती थीं। इनकी स्थिति कदाचित् जापानी गीशा स्त्रियों जैसी थी। राजा जहां जाता था, वेशस्त्रियां सोने की पालकी में बैठी रानियों से कुछ हट कर चलती थीं।

आर्य क्षत्रियों को जुए का शौक भी मद्य पीने के समान था। द्यूत में एक धर्म मर्यादा भी मानी जाती थी। द्यूत के आमन्त्रण को अस्वीकार करना क्षत्रिय अपना अपमान समझते थे। ऋग्वेद में भी द्यूत का वर्णन है, वहाँ द्यूतकार का एक सूक्त है। इस से प्रतीत होता है—आर्यों का यह पुराना दुर्व्यसन था। नारद ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक बार युधिष्ठिर को मद्य और द्यूत दोनों से बचने को सावधान किया था। कृष्ण ने भी उन्हें समझाया था। युधिष्ठिर द्यूत विद्या में निपुण थे भी नहीं। हाँ बलराम पक्के जुआरी थे। ब्राह्मण भी द्यूत से अछूते न थे। विराट राजा के ब्राह्मण द्यूतकार होकर ही युधिष्ठिर अज्ञातवास में रहे थे।

द्यूत और मद्य को छोड़ कर महाभारत कालीन आर्यों का आचरण शुद्ध था। वे सत्य प्रिय, दृढव्रती, न्यायी और शुद्धाचारी थे। शुद्धाचार का उन दिनों खास ख्याल रखा जाता था। प्रातः स्नान उनका नित्यकर्म था। हाथ पैर धो कर भोजन पर बैठने की इनकी रीति थी। भोजन से बचा अन्न फिर किसी को न परोसा जाता था। रसोई के बर्तन मांज धो कर सदा साफ रखे जाते थे। मिट्टी के बर्तन एक बार काम आकर फैंक दिए जाते थे। स्नान के बाद कोई किसी को न छूता था। पेशाब पाखाना जाने पर लोग न्हाते तथा न्हाकर धोया कपड़ा पहिनते थे। वे बड़ों को अभ्युत्थान देकर उनका आदर करते थे। आर्यों का कुल पितृ प्रधान था, इस से इस काल के लोग भी बड़े पितृ भक्त होते थे। भीष्म ने पिता के लिए, असाधारण त्याग किया था। बड़े भाई का मान भी पिता की भांति होता था। जब युधिष्ठिर ने भाइयों को दाव पर लगा दिया, तब तेजस्वी पाण्डव चुप बैठे रहे। भीम ने क्रोध भी किया—पर अर्जुन ने बड़े भाई की मर्यादा बता कर उन्हें शान्त कर दिया।

धर्म और उद्योग शीलता पर महाभारत में बहुत जोर दिया गया है, 'धर्मे मति र्भवतुवः सततोत्थितानाम्' में सदैव उद्योग करते हुए धर्म पर श्रद्धा रखूं यह सकेत है—अनुशासन पर्व में जब भीष्म से पूछा गया—कि उद्योग प्रथम है या दैव। तो भीष्म ने उद्योग ही को प्रबल बताया है। वे कहते हैं—देवता भी अपने कर्म से उच्च स्थिति को पहुँचे हैं, जो पुरुष यह नहीं जानता, कि देना किस प्रकार चाहिए, अथवा उद्योग किस तरह करना चाहिए और जो समय पर पराक्रम करना या तपश्चर्या की रीति नहीं जानता, उसे कभी भी सम्पत्ति नहीं मिल सकती। वे कहते हैं— अनिर्वेद श्रियो-मूलं लाभ य च शुभस्य च'। अर्थात् महत्त्वाकांक्षा ही सम्पत्ति की जड़ है। उद्योग पर्व के ग्यारहवें अध्याय में रुक्मिणी ने भाग्यदेवी से पूछा—'तुम कहाँ रहती हो? तो उसने उत्तर दिया— मैं कर्त्तव्य दक्ष, नित उद्योगी, क्रोध न करने वाले देवताओं की आराधना में तत्पर, उपकार को मानने वाले, इन्द्रिय निग्रही और सदा कुछ न कुछ करने वाले पुरुष में वास करती हूं जो निरुद्योगी हैं. तथा देवताओं पर जिन की श्रद्धा नहीं हैं। जो वर्ण संकर और कृतघ्न हैं, मैं उनसे रुष्ट रहती हूं।

शील का महत्त्व बहुत था। क्षत्रिय के लिए मरने का स्थल बन या युद्ध क्षेत्र उत्तम माना गया था। ब्राह्मण के लिए कुछ वेदाध्ययन ही यथेष्ट न था, उसे शीलवान् भी होना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युद्ध में मरे हुए योद्धाओं का शव संस्कार केवल विशेष जातियों का होता था, वह भी अनिवार्य न था। दुर्योधन-कर्ण-द्रोण आदि के शवों की चटपट कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। युद्ध समाप्त होने पर गांधारी ने जो रणस्थली का वर्णन किया है—उसमें कहा है—बड़े बड़े राजाओं की लोथों को गीदड़ और गिद्ध खींच खींच कर खा रहे हैं। शांति पर्व में लिखा है—युद्ध में मरे व्यक्ति के लिए न विलाप करना चाहिए, न उसे पिण्डदान देना चाहिए, न उसके लिए स्नान करना चाहिए न सूतक ही मनाना चाहिए[1]। इस विचित्र श्लोक से पता लगता है कि युद्ध में मरे हुओं की कोई भी उत्तर क्रिया नहीं की जाती थी। फिर भी युद्ध की समाप्ति पर युधिष्ठिर ने गंगा पर जाकर तिलांजलि दी थी। तथा प्रसिद्ध योद्धाओं की लोथें खोजकर जलाई गई थीं।

धनवानों की प्रिय सवारी हाथी की थी। आदि पर्व में पुरोचन से गधों के रथ में बैठकर वारणावत जाने को कहा गया है। इससे पता लगता है, कि उस काल में गधों को रथ में जोता जाता था। सामान की गाड़ियां बैल खींचते थे। चारण और बंजारे बैलों को लादते थे। राजा रईस अपने गाय-बैलों को दाग कर चिन्ह करा देते थे, और वन में चराने छोड़ देते थे।

राज पुत्रियां गाना बजाना सीखती थीं। वीणा का-मृदंग का चलन था। बाग बगीचों का भी बहुत शौक था।

केरल, पाण्डय और आंध्र लोगों के सम्बन्ध में कर्ण पर्व में कहा है, सिर में फूलों की माला लपेटे, दांतों को लाल रंग रंगे हुए, तरह तरह की रंगीन धोतियां पहिने, शरीर में सुगन्धि चूर्ण लगाए वे निकलते हैं। छोटे बड़ों को नमस्कार करते थे, पर बड़े छोटों को केवल हाथ से छूते थे। राजा को सूत आदि धरती में माथा टेक कर प्रणाम करते थे। गुरु के चरण छू कर ब्रह्मवादी प्रणाम करता था। देवताओं-ऋषियों को साष्टांग दण्डवत की जाती थी। घर साफ सुथरे रक्खे जाते थे।

———

७--राजा और राज्य व्यवस्था

छोटे राज्य और पराजितों पर नीति—उस काल में भारत में अनेक छोटे २ राज्य थे। सभा पर्व में कहा है—घर २ राजा हैं, पर उनकी पदवी सम्राट् नहीं हैं।

---

१. अशच्यो हि हतः शूरः स्वर्ग लोके महीयते। नह्यन्नं नोदकं तस्य न स्नानं नास्य शौचकम्। महा० शांति०अ० २८ श्लो० ४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पराजित राजा को नष्ट नहीं किया जाता था। उसे ही राजा बना दिया जाता था। इसलिए वे छोटे राज्य लड़ाई, झगड़ा होने पर भी चिर काल तक बने रहते थे। शान्ति पर्व में व्यास ने युधिष्ठिर से कहा है—जित् भूपतियों के राष्ट्र और नगर में जाकर उनके बन्धु पुत्र और पौत्रों को उनके राज्य में अभिषिक्त करो। फिर वे चाहे बाल्यावस्था में हों या गर्भावस्था। में जिनके पुत्र न हों उनकी कन्याओं को अभिषिक्त करो। ऐसा करने से वैभव की इच्छा से स्त्रियाँ शोक का त्याग करेंगी। कोसल, विदेह, शूरसेन-कुरु, पांचाल, मत्स्य, मद्र, केकय, गान्धार, वृष्णि, भोज, मालव. क्षुद्रक, सिन्धु, सौवीर, काम्बोज, त्रिगर्त, आनर्त आदि राज्यों के नाम ब्राह्मणों में भी हैं, महाभारत में भी हैं। सैकड़ों वर्षों के परिवर्तन से भी ये राज्य वैसे ही कायम रहे। इन राज्यों के नाम प्रांत या देश के नाम पर नहीं, वहां के बसने वाले लोगों के नाम पर थे। अथवा किसी विशेष राजा के नाम पर से। बाद में देश पर राज्यों का संगठन हुआ। परन्तु प्राचीन काल में लोगों के नाम पर राज्य थे केवल एक 'काशी' नाम नगर का भी था, और वहां के रहने वालों की जाति का भी था।

इन राज्यों में राज्य व्यवस्था प्रायः राज निबद्ध रहती थी। पूरी सत्ता राजा के हाथ में रहती थी। पर सर्व साधारण प्रायः स्वतन्त्र थे। विशेष कर ब्राह्मण तो सभी राज नियमों से मुक्त थे। खास २ अवसरों पर राजा सब प्रजा वर्ग से सलाह लेते थे। युद्ध के समय हस्तिनापुर में ऐसी ही एक सभा बैठाई गई थी। युद्ध के बाद सब ब्राह्मणों और राजा लोगों की अनुमति ही से युधिष्ठर को अभिषिक्त किया गया था। इस काल में कुछ लोगों के गण भी थे। पर्वत वासी सातगणों को अर्जुन ने जीत लिया था। गणपति, एक खास पदवी मानी जाती थी। महाभारत में जो उत्सव संघात. गोपाल, नारायण, संतप्रक्त आदि नामों से गण राज्य थे, जो पंजाब के प्रान्त भागों में चारों ओर के पहाड़ों में थे। ये लोग प्रायः एक ही जाति और वेश के हुआ करते थे। ये गण धनवान और शूर भी होते थे। तथा प्रजासत्तात्मक राज्य प्रणाली पर चलते थे।[1]

साम्राज्य कल्पना—महाभारत काल में संग्राम से प्रथम जरासन्ध ही समस्त भारत का सम्राट् था। जब युधिष्ठिर ने राजसूय का विचार किया, तब कृष्ण ने कहा था—'परशुराम से पराजित हीन वीर्य क्षत्रियों ने यह नियम बनाया है—कि जो राजा सब क्षत्रियों को जीतेगा, वही सार्वभौम माना जायगा। उस समय जरासन्ध राजा सबसे बलवान् है। भारत के सब राजा—चाहे एल हो या ऐक्ष्वाकु, सब उसे

भेद मूले विनाशोहिगणानांमुपलक्षये। मंत्र संवरणं दुःखं वहुनामिति मे मतिः। जात्या च सदृशा सर्वे कुलेन सदृशास्तत्रथा। भेदाच्चैव प्रदानाच्चभिद्यते रिपु-भिर्गणाः। द्रव्य वंतश्च शूराश्च शस्त्रज्ञाः शास्त्र पारगा। नगणाः कृत्स्तशो मन्त्रं श्रोतुमर्हन्ति भारत। शान्ति० अ० १०७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर देते हैं। और अपने को जरासन्ध से अङ्कित कहते हैं। एल और एश्वाकुओं के इस समय सौ राजकुल हैं, उनमें से भोजराज कुल प्रबल हैं। उनमें से भी जरासन्ध ने सब राजाओं को पादाक्रान्त किया, और सब क्षत्रियों ने जरासन्ध का आधिपत्य मान लिया तथा उसे सार्वभौम मान लिया है। उसी के भय से हमें मथुरा छोड़ कर द्वारिका जाना पड़ा। साम्राज्य कल्पना प्रथम ही से चली आती थी। और उसके लिए राजसूय और अश्वमेध यज्ञ करने पड़ते थे। राजसूय यज्ञ करके महाराज की तथा अश्वमेध यज्ञ करके सम्राट् की उपाधि मिलती थी। दोनों ही यज्ञों में दिग्विजय यात्रा की जाती थी। कुछ लोग स्वेच्छा से आधीन होते थे, कुछ लड़ कर। फिर वे सब राजा लोग आकर यज्ञ में सेवा कार्य करते थे। तब यज्ञ कर्ता को सम्राट् की या महाराज की उपाधि मिल जाती थी।

राजा को सर्वोपरि माना जाता था। उसकी इच्छा ईश्वर की इच्छा के समान बलवान थी। राजद्रोह भारी अपराध था। राजा की देह देवता के समान पवित्र मानी जाती थी।

राज-धर्म—महाभारत में जो राजनीति और धर्मनीति कथित है—वह बहुत अंश में प्राचीन वार्हस्पति अर्थशास्त्र और उशनस अर्थशास्त्र के आधार पर हैं। यह अधिक सम्भव है कि उस काल में ये दोनों नीति ग्रन्थ प्राप्त थे। महाभारत में शान्ति पर्व में जो राजधर्म वर्णित है, वह बहुत उदात्त है। उस से पता लगता है कि राजा एकतन्त्री स्वतन्त्र होने पर भी वह राजधर्म से बंधा था। राजाओं के ऊपर ब्राह्मणों का अंकुश राजधर्म पर भी था। इस से वे एकाएक राजधर्म का उल्लंघन नहीं कर सकते थे।

शान्ति पर्व के ५९वें अध्याय में दण्ड नीति का वर्णन है। उसमें बताया गया है–कि धर्म या नीति की रक्षा कैसे की जाय। अर्थ प्राप्ति की रीति सिखाने वाला शास्त्र वार्ता कहाता था। और मोक्ष के वर्णन वाले शास्त्र को आन्वीक्षिकी कहते थे। इन विभागों के अनन्तर राजा के मंत्रिवर्ग, जासूस, युवराज आदि छै अंगों का वर्णन है। फिर शत्रु के साथ साम–दाम–दण्ड भेद और उपेक्षा की नीति का वर्णन है। इसमें सब प्रकार के गुप्त विचार, शत्रुओं के भेद करने के मंत्र, निकृष्ट, मध्यम और उत्तम संधि, दूसरे राज्यों पर चढ़ाई करने, धर्म विजय और आसुर विजय आदि बातों का वर्णन है। आमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, बल और कोष इन पांच वर्गों के लक्षण बताए हैं। सेना में रथ, गज, अश्व, पादाति, विष्टि, नौका, गुप्त दूत और उपदेशक ये आठ अङ्ग बताए हैं। जारण, मारण के उपाय, शत्रु, मित्र और उदासीन के वर्णन हैं। भूमि का वर्णन, आत्म-संरक्षण, मनुष्य, गज, रथ और अश्व की दृढ़ता तथा पुष्टता के अनेक उत्तम नाना प्रकार के व्यूह आदि बताए हैं। युद्ध के नियम, युद्ध की गति, प्रसार और विविध कूट विधियों का उल्लेख है। मित्र राष्ट्रों को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्नत करना, प्रजा पर न्यायाचरण करना, बलहीनों की रक्षा करना, और बलवानों को संतुष्ट रखना। चोरों का विनाश करना आदि बातों की विषद व्याख्या कही गई है। राजाओं और सेनापतियों के गुण-दोष बताये हैं। राजा के लिए—मृगया, वात, मद्य—स्त्री का त्याग बताया है। राजा के पोशाक और आभूषणों का वर्णन करने के साथ राजा के शरीर को दृढ़ करने के बहत्तर प्रकार बताए गए हैं। शान्ति पर्व के राजधर्म भाग में, सभापर्व के कच्चिमदध्याय में तथा अन्य स्थानों में राजधर्म सम्बन्धी जो बातें कही गई हैं, उनके चार विभाग किए जा सकते हैं—(१)राज-दरबार (२) राज्य-व्यवस्था, (३) न्याय पर राज्य सम्बंध।

राज दरबार—राजधानी से लगा दुर्ग अवश्य होता था। दुर्ग ६ प्रकार के होते थे—(१) निर्जन रेतीले मैदान से घिरा दुर्ग। (२) पहाड़ी दुर्ग। (३) भू दुर्ग। (४) मिट्टी का दुर्ग। (५) नट दुर्ग। (६) अरण्य दुर्ग। दुर्ग के चारों ओर खाई रहती थी। उस पर उठने वाले पुल रहते थे। दुर्गों में अनाज, शस्त्र और जल का भरपूर भण्डार रहता था। किलों में जो युद्ध यन्त्र रहते थे। वे बड़े भारी चक्कों पर ऊँचे किए हुए पत्थर फेंकने के यन्त्र होते थे।

आठ मंत्री होते थे। उन्हें प्रकृति भी कहते थे। सभापर्व में सात प्रकृतियाँ बताई हैं। इनके अतिरिक्त १८ अधिकारी होते थे। राजा को क्रोध प्रमाद आदि १४ दोषों से दूर रहने का उपदेश दिया गया था। अधिकारी अपने २ कार्य सावधानी से करते थे। राज सेवकों से कहा गया है कि अग्नि के समान राज-सेवा करे। दरबारी कायदों की विस्तृत विधि बताई गई है। राजा को कहा गया है कि आय के छोटे से साधन की भी उपेक्षा न करे। दरबार में राजा के अङ्ग रक्षक लाल पोशाक में सशस्त्र रहते थे।

राजा का अन्तःपुर के अनेक कक्षा थीं। चौथी कक्षा में स्त्रियाँ रहती थीं। वह बहुत प्रशस्त होता था। वहां बाग बगीचे भी होते थे। राजा की पटरानी एक होती थी। शेष रानियां और अन्य स्त्रियां रहती थीं। राजा को प्राँतपति वलि के साथ सुन्दर कन्याएँ भी भेजते थे, जो सुशिक्षिता होती थीं। इससे अन्तःपुर में अनेक स्त्रियों की भीड़ लग जाती थी। उन पर कड़ा अनुशासन रहता था। अन्तःपुर में पहरे पर वर्षनर रहते थे। ये कदाचित् खोजे होते थे। कभी २ अन्तःपुर की स्त्रियां राजा से विश्वासघात भी करती थीं। उनसे विष देने का भय रहता था। इसलिए राजा को अन्तःपुर का सावधानी से प्रबंध करना पड़ता था।

द्रोणपर्व के ८२वें अध्याय में युधिष्ठिर की दिनचर्या का यह मनोरञ्जक वर्णन है—

उषा के उदय के साथ ही गायन करने वाले मागध हथेलियों से ताल देते हुए गीत गाने लगा, भाट और सूत्त युधिष्ठिर की स्तुति करने लगे, नर्तक नाचने लगे। गायक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुस्वर से कुरुवंश का कीर्ति गान करने लगे। मृदक, झांझ, पणव, आनक, शंख, प्रचण्ड ध्वनि करने वाले दुन्दु भी बजने लगे। युधिष्ठिर ने जगकर नित्य कर्म के लिए स्नान गृह में प्रवेश किया। वहां स्नान किए हुए और स्वच्छ वस्त्र पहिने हुए १०८ तरुण सेवक जल से परिपूर्ण स्वर्ण कुभ लिए खड़े थे। तब युधिष्ठिर अलल्व वस्त्र धारण कर चौकी पर बैठे बलवान और सुशिक्षित अब मर्दकों ने सुगन्धिता वनस्पितियों से तैयार किया हुआ उबटन रगड़ २ कर शरीर में लगाया, फिर सुगन्धित जल से उसे हलाया। माथे के बाल सुखाने के लिए युधिष्ठिर ने राज हंस के समान सफेद वस्त्र सिर से लपेट लिया। फिर शरीर पर चन्दन का लेपकर धोती पहन, पूर्व की ओर बैठ सन्ध्या की। फिर प्रदीप्त अग्नि गृह में जा समिधा और आज्ञाहुति का हवन किया। फिर बाहर आ वेदवेत्ता ब्राह्मणों का दर्शन किया। तथा मधुपर्क से उनकी पूजा की। उन्हें एक एक निष्क सोना तथा दुधार गाएं जिनके सींगों में सोना और खुरों में चांदी लगी थी दिया। फिर पवित्र पदार्थों को स्पर्श करके बैठने के भवन में सर्वतो भद्र नामक स्वर्ण के आसन पर आ बैठा। तब सेवकों ने रत्ना भरण धारण कराए। चवर ढुलने लगे जिनकी डंडी सोने की थी। बन्दीजन वन्दना गाने लगे। इतने में रथ आया और कवच कुण्डल पहिने तथा खड्ग हाथ में लिए एक तरुण द्वारपाल अन्दर आया उसने पृथ्वी पर घुटने टेककर राजा को प्रणाम किया, और सूमंत्र ही श्री कृष्ण भेंट करने आ रहे हैं।

इस वर्णन से उस काल के राजाओं की प्रातःचर्या तथा ठाट बाट का बुध दिग्दर्शन होता है।

राज्य व्यवस्था—महाभारत काल में बड़े २ राज्य नहीं थे। छोटे २ राज्य थे। मथुरा इन्द्रप्रस्थ दिल्ली और हस्तिनापुर के तीन राज्य ही सौ सवा सौ मील के फेरे में थे। एक राज्य बहुधा एक जिले के बराबर होता था। इससे राज्य में विभाग नहीं था। भीष्म पर्व में जो भूवर्णन के प्रकरण में दक्षिण में पचास राज्य बताए गए हैं। आज तो दक्षिण में इतने जिले भी नहीं हैं। राज्यों को देश याजन कहते थे। महाभारत के बाद बड़े राज्यों की स्थापना हुई। ग्राम अवश्य उन दिनों महत्व पूर्ण थे। राज्य व्यवस्था के लिए हर गांव में एक मुखिया रहता था। वह ग्रामाधिपति कहता था। उससे बड़ा १० गांव का, बीस गांव का, १०० गांव का और हजार गांव का मुखिया होता था। छोटे मुखिया बड़ों के आधीन होते तथा अपनी २ सूचनाएँ बड़े मुखिया को देते रहते थे। तनख्वाह में उसे कुछ परती जमीन मुफ्त दी जाती थी जिसका एक नियत कर वह अपने से बड़े मुखिया को देता था। ऐसा ही छोटों की आय भाग से मुखिया जी का काम चलता था। १०० गोबे के मुखिया को एक समूचा गांव मिला हुआ रहता था। हजार गांवों के अधिकारी को एक नगर की आय दी जाती थी, सम्पूर्ण राज्य का अधिकारी मन्त्री राजा के पास रहता था। वह स्वयं राज्य में घूमकर तथा जासूसों के द्वारा सब बातों की जानकारी रखता था। यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवरण भीष्म पर्व में है। बड़े नगरों के स्वतन्त्र अधिपति होते थे। मध्यम श्रेणी के राज्यों में हजार से पन्द्रह सौ तक गांव होते थे, जो राज्याधिकारी प्रजा को सताते थे। मन्त्री उन पर कड़ी दृष्टि रखता था।

जमीन और व्यापार का कर ही राज्य की मुख्य आय थी। यह आय सोने या अनाज के रूप में ली जाती थी। राजा प्रजा से आय का छटा अंश लेता था। कारीगरों से बेगार ली जाती थी। संकट काल में राष्ट्र ऋण लिया जाता था, शान्ति पर्व में लिखा है–कि राजा ऋण के लिए प्रजा से किस भांति प्रार्थना करे—वह कहे–इस आपत्ति के प्रसंग में दारुण भय उपस्थित हुआ है, अतः मैं तुम्हारी ही रक्षा के लिए तुम से धन मांगता हूं। भय का नाश होने पर वह धन––मैं तुम्हें लौटा दूंगा।' वह ऋण शत्रु से दण्ड लेकर लौटाया जाता था। उन दिनों सड़कों के न होने से गोमी (बंजारे) एक देश से दूसरे में बैलों के हजारों झुण्ड रख कर उन पर गोंने लाद कर अनाज और दूसरी पदार्थ ले जाने का काम करते थे। उनसे रियायत के साथ कर लिया जाता था। उनके विषय में कहा जाता था––प्रभावयंति राष्ट्रं च व्यवसायं च कृषि तथा'। नमक, हाथी, खानें, शुल्क आदि भी आमदनी के मद थे। इन पर मन्त्री नियत रहते थे। जो इनकी पूरी देख रेख रखते थे। जंगलों, पर्वतों, नदियों और तीर्थों पर किसी का एकाधिकार न था। वन में स्वेच्छा से लोग रहते तथा मुफ्त ही में लकड़ी, कोयला, पत्थर ले आ सकते थे, किसानों से पैदावार का छटा भाग अन्न के रूप में लेने के कारण जमीन की पैमाइश नहीं की जाती थी। परन्तु प्रत्येक गांव की जमीन की हद अवश्य थी। जमीन पर किसानों का स्वामित्व था, और वे उसे बेच खरीद सकते थे[1]। गाय बैलों की वृद्धि करने को पशु परीक्षक थे। राजा गायों के बड़े बड़े झुण्ड रखता था––एक झुण्ड में १०० पशु रहते थे। ऐसे आठ लाख झुण्ड युधिष्ठिर के थे। सहदेव पशु परीक्षक बन कर ही विराट् राजा की नौकरी में रहा था––विराट पर्व में वह कहता है––मैं युधिष्ठिर के पशुओं के झुण्डों पर नौकर था. मैं जहां रहूं–वहाँ से आस पास के दस योजन तक बता सकता हूं, कि गौओं के पहिले क्या हुआ था, और आगे क्या होगा? गौओं की वृद्धि कैसे होती है, तथा कैसे वे निरोग रह सकती हैं। दुर्योधन का घोषका अर्थात् गौओं के रहने का स्थान द्वैतवन था। वह उन्हें देखने वहीं जाता, तथा गौओं, बछड़ों को चिन्हित करता था। अपढ़ और वैदिक क्रियाहीन ब्राह्मण से भी कर लिया जाता था, मद्य पर कर नहीं था, क्यों कि मद्य केवल क्षत्रिय ही पीते थे।

राजा के खर्च की सब से बड़ी मद सेना थी। शत्रु के अतिरिक्त चोरों के लिए भी सेनाऐं आवश्यक थीं। सीमान्त की रक्षा सेना करती थी। सिंचाई, तकावी

१. तस्मात्क्रीत्वामहीं दद्यात् स्वल्पामपि विचक्षणः। महा० अनु० अ० ६६। श्लोक ३४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि की भी यही व्यवस्था थी। राजा इन मदों में खर्च करता था। व्याज की दर एक रु० सैंकड़ा नियत थी। गाँव के पाँच अधिकारी होते थे। १-प्रशास्ता(सरपंच) २-समाहर्ता (वसूल करने वाला), ३-सम्विधाता (पटवारी), ४-शाक्षी, ५-लेखक। राज्य में--ग्राम-नगर और पुर थे। पुर राजधानी को कहते थे। प्रांत का अर्थ सीमा था। आय-व्यय के जमा खर्च का महकमा था। राजा तीन विषयों से स्वयं सीधा सम्बन्ध रखता था— १-जासूस, २-खजाना और ३-न्याय। निष्क सोने का सिक्का था, जो मूल्यवान था। निष्क गले में गहने की भांति पहना भी जाता था। सोने के छोटे २ टुकड़े भी सिक्कों की भांति काम में लाए जाते थे। सोना तिब्बत से आता था। न्याय स्वयं राजा करता था। राज्य छोटे छोटे होते थे-इस से यह सम्भव हो सकता था। न्याय सभा में राजा के साथ--चार वेदज्ञ ब्राह्मण, आठ शस्त्रज्ञ क्षत्रिय, इक्कीस धनी वैश्य और तीन विनम्र शूद्र रहते थे। राजा उनसे जूरी की भांति सहायता लेता था। इस जूरी में वैश्यों की संख्या अधिक होती थी--क्यों कि अधिक झगड़े लेन देन के ही होते थे। न्याय चटपट हो जाता था। हारने वाले वादी प्रतिवादी को दण्ड भरना पड़ता था। दण्ड के चार भेद थे--जुर्माना, कैद, प्रहार और वध। वध में अंग भंग भी सम्मिलित था। गवाह शपथ पर गवाही देते थे। वे बहुत कम झूठ बोलते थे। एक न्याय आभात्य भी होता था।

पर राज्य सम्बन्ध—पर राज्य सम्बन्धी बातें अत्यन्त महत्त्व पूर्ण हैं। राज्य छोटे छोटे होते थे। वे प्रायः सभी भाई बन्दों ही के थे। फिर भी उनमें निरन्तर युद्ध होते रहते थे। जिनमें एक दूसरे को जीतने की आकांक्षा रहती थी। यद्यपि जीतने पर उन्हें छीना नहीं जाता था। परन्तु राज्यों की यह स्पर्धा ही उनकी उन्नति का कारण हुई। एक दूसरे को पराजित करने की प्रवल आकांक्षा ने उनमें युद्ध कौशल का विकास किया। इतना ही नहीं--उनमें मानवीय अधिकारों की विवेचना भी उत्पन्न हो गई। तथा इस पर भी विचार होने लगा, कि राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्ध और शत्रु मित्र व्यवहार क्या होने चाहिऐं ? महाभारत काल में ये सब तत्त्व ठीक-ठीक विकसित हो चुके थे। और इन विषयों पर महत्व पूर्ण निर्णय हो चुके थे-कि शत्रु को कैसे जीता जाय। अपनी स्वतन्त्रता कैसे स्थिर रक्खी जाय। मित्र राष्ट्र-माण्डलिक, आदि राज्यों की कैसी व्यवस्था की जाय। उन से किस प्रकार के सम्वंध स्थापित किए जांय। ये सब राज्य चाहे छोटे २ ही थे, परस्पर लड़ते भिड़ते भी रहते थे। पर उनमें यह तीव्र भावना थी, कि उनकी स्वतन्त्रता कायम ही रहनी चाहिए। स्वतन्त्र और एक मत के चाहे कितने ही कम लोग क्यों न हों, पर उनकी स्वतन्त्रता कायम रहनी चाहिए। उनकी स्वतन्त्रता का अभिमान सदा जाग्रत रहता था। इसी से पराजित लोगों को अपदस्थ नहीं किया जाता था। इसी से ये छोटे-छोटे राज्य सैंकड़ों वर्षों से कायम थे। महाभारत के राज्य धर्म में कहा गया है कि राजा को हाथ पर हाथ धरे न बैठे रहना चाहिए। उसे किसी न किसी राजा पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवश्य चढ़ाई करना चाहिए । इस नीति से उनका जातीय शौर्य सदा जाग्रत रहता था । युद्ध में खूब धर्म नीति वर्ती जाती थी । महाभारत के नीतिशास्त्र में शत्रु को पराजित करने के लिए--साम, दाम, दण्ड, भेद, मन्त्र-औषध, और इन्द्रजाल थे । गत उपाय कहे गए हैं ।

पर राष्ट्रीय नीति में भेद नीति को सब से भारी महत्व दिया जाता था । इस से प्रत्येक राजा का यह मद बना ही रहता था, कि इसके राज्याधिकारी न जाने कब शत्रु से मिल कर धोखा दे दें । राजनीति के दो भेद बताए हैं----एक सरल एक नीति, दूसरी कुटिल राजनीति । भीष्म कहते हैं—कि कल्याण चाहने वाला शत्रु से दब जाय , हाथ जोड़ ले, शपथ कर ले, पर समय आने पर कन्धे पर रक्खे हुए घड़े की भांति उसे पत्थर पर पटक दे । चाहे क्षण भर ही के लिए न हो । नहीं—अवसर आने पर आग की तरह भभक उठे ।

८--सैन्य व्यवस्था

आठ अंग—उस काल में सेना के आठ अंग होते थे—हाथी, घोड़े रथ, पैदल, विष्टि (ट्रान्सपोर्ट) , नौका, चर (जासूस), और देशिक (स्काउटस्) सेना को वेतन नकद और अन्न के रूप में दिया जाता था । पैदल सिपाही साधारणतया ढाल, तलवार, रखते थे, कोई कोई भाला, परशु, भिण्डिपाल, तोमर, ऋषि और शुल्क रखते थे । गदा पापातिकों के पास नहीं होती थी । यह हथियार चलाने में बहुत शक्ति दरकार होती थी—तथा यह द्वन्द्व युद्ध में ही काम आता था । खड्ग एक छोटी तलवार होती थी । हाथियों के युद्ध में भी गदा काम देती थी । घुड़सवार तलवार और भाले रखते थे । भाला कुछ अधिक लम्बा रहता था । कवच सब के पास नहीं रहता था, वह बहुत भारी होता था । हलका कवच कीमती होता था । रथी और हाथी पर योद्धा कवच पहन कर ही बैठते थे । सारथी भी कवच पहिनते थे । ऐसे योद्धा बड़े बड़े क्षत्रिय होते थे । भिन्न भिन्न देश के लोग भिन्न २ युद्ध की विशेषताएं रखते थे । गांधार सिंधु सौवीर के लोग उत्तम घुड़सवार थे । वे तीक्ष्ण भालों से लड़ते थे । उशीनर सब प्रकार के युद्धों में कुशल थे । प्राच्य हाथियों के युद्ध में प्रवीण थे । मथुरा के लोग बाहु-युद्ध में, तथा दक्षिण के लोग तलवार के धनी होते थे ।

हाथी की प्रचण्ड शक्ति और महावत के संकेत की आज्ञाकारिता के कारण उन दिनों युद्ध में हाथी का बहुत महत्व था । उन्हें सूण्ड के छोर तक लोहे का बख्तर पहना दिया जाता था । हाथी पर से योधा धनुष बाण या बर्छे का प्रयोग करता था ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Chandigarh

रथी—रथी को अजेय योद्धा माना जाता था। बड़े २ सेनापति और अजेय योद्धा रथी-महारथी कहाते थे। रथी प्रायः बाणों से युद्ध करते थे। रथ की सहायता से धनुवीर की शक्ति दस गुनी बढ़ जाती थी। धनुष आदमी के सिर तक ऊंचे होते थे। और बाण तीन हाथ लम्बे होते थे। बाणों का लोहा तेज धार वाला और वजनी होता था। ऐसे धनुष को खींचने के लिए भुजा में बहुत बल की आवश्यकता होती थी, ये बाण लोहे की मोटी पट्टियों को भी छेद सकते थे। ऐसे भारी बाणों को निरन्तर फैंकने के लिए केवल बल ही आवश्यक ही था। उन्हें ठीक निशाने पर मारने के लिए अभ्यास की भी जरूरत थी। अर्जुन रात को भी धनुष चलाने का अभ्यास करता था। अभ्यास में दो बातों का ध्यान रखा जाता था—निशाना ठीक लगे और बाण जल्दी २ चलें। लगातार बाण चलाने से अर्जुन के हाथों में गड्ढे पड़ गए थे। उन्हें उसने वृहनला के वेष में ब्राहनों से छिपा लिया था। एक २ रथी धनुर्धर बहुत बाण फैंकता था। भीष्म के रथ के साथ दस छकड़े बाणों के भरे जाते थे। रथी को अपनी फौजों की तथा सारथी की भी रक्षा करनी पड़ती थी। और भागते हुए ठीक २ निशाना भी लगाना पड़ता था। अश्वत्थामा बाणों से भरी सात गाड़ियां साथ रखता था। एक बार तो उसने तीन घन्टे में आठ गाड़ियां खाली कर डाली थीं। जिनमें प्रत्येक में आठ-आठ बैल जुते थे।

रथी अन्य अस्त्रों का भी उपयोग करते थे। अस्त्रों में अग्यस्त्र, वाग्शस्त्र, वैष्णशस्त्र आदि थे। जो अभिमन्मित्त कर चलाए जाते थे। ये अस्त्र धनुष द्वारा ही फैंके जाते थे। कदाचित मन्त्र का अर्थ कोई गुप्त नीति हो। अस्त्रों के उपयोग में चार उपचार थे—मन्त्र, उपचार, प्रयोग, संहार। यह संकेत उद्योग पर्व में है। भारी अस्त्र उन सिपाहियों पर नहीं चलाए जाते थे, जो साधारण योद्धा होते थे।

रथ—रथ में चार घोड़े जुतते थे, पर एक रथी और एक ही सारथी होता था। रथी के रथ के दोनों ओर दो रथ और चलते थे, जो रथी के पहियों की रक्षा करते थे। इन्हें चक्र रक्षक कहते थे। रथ चलाने के लिए सूखी धरती, समतल मैदान तथा ऐसा दिन. जिस दिन वर्षा न हो, उपयुक्त होता था। रथ और घोड़े खूब सजाए जाते थे। उन पर चांदी, सोना मढ़ा जाता तथा ध्वजा फहराई जाती थी, प्रत्येक वीर की ध्वजा का रङ्ग प्रथक होता था, जिससे दूर से ही पहचाना जा सके, कौन वीर कहां लड़ रहा है। द्रोण पर्व के २३ वें अध्याय में भिन्न २ रथों और ध्वजाओं का वर्णन है। भीम के रथ में काले घोड़े थे। उनका साज सोने का था। नकुल के घोड़े काम्बोज देश के थे। उनका माथा, कन्धा, छाती और पिछला भाग विशाल, गर्दन लम्बी, और वृषण सकरा था। द्रोण की ध्वजा पर कमण्डल का चिन्ह था। भीम की पर सिंह का। कर्ण की ध्वजा पर हाथी का चिन्ह था। नकुल का परशण का, युधिष्ठिर की ध्वजा पर चन्द्रमा का। रथों में मृदंग लगे रहते

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थे, जो रथों के चलने पर स्वयं ही बजते थे। रथी शरीर पर जिरह-बख्तर, हाथों में गोधंगुलित्राण पहनते थे। सारथी भी कवच पहनता था। रथों में दो ही पहिए होते थे। पर घटोत्कच के रथ में आठ चक्के थे। उसका रथ चार सौ हाथ का था। उसमें घूंघरू लगे थे। उसकी ध्वजा लाल रंग की थी। वह रीछ के चमड़े से मढा था। उसमें अनेक शस्त्रास्त्र भरे थे। उसमें सौ बलवान घोड़े जुते थे। ध्वजा पर गृद्ध का चित्र था। उसका धनुष बारह हाथ लम्बा था। क्षत्रियों का प्रायः द्वन्द युद्ध होता था, तब अन्य सैनिक युद्ध बन्द करके तमाशा देखते थे। कर्णार्जुन का द्वन्द युद्ध अद्वितीय था। द्वन्द युद्ध में रथ मण्डलाकार घूमते थे। ऐसी अवस्था में सारथी के चातुर्य और स्फूर्ति ही रथी की रक्षा करती थी। अर्जुन के सारथी कृष्ण अश्व विद्या के परम निपुण थे। उनके मुकाबिले के लिए कर्ण ने शल्य को सारथी बनाया था। जो स्वयं महारथी तथा एक महाराज्य के स्वामी थे।

बाण—बाण छोटे बड़े विभिन्न आकार प्रकार के होते थे। उनके सिरों पर अनेक आकृतियों के लोह फलक लगे रहते थे। कुछ बाण विषदग्ध होते थे। पर वे धर्म युद्ध में प्रशस्त नहीं माने जाते थे। महाभारत बाणों की दस गतियाँ लिखता है। कुछ बाण वृत्ताकार भी चलाए जाते थे। धर्म युद्ध का नियम था-कि रथी-रथी पर, हाथी-हाथी पर, पैदल-पैदल पर आक्रमण करता था। यह भी नियम था-कि दोनों योद्धाओं के शस्त्र भी एक से हो। भयभीत, भागते हुए, शरणागत, वगत शस्त्र पर प्रहार नहीं होता था। घायल शत्रु का भी उपचार होता था। शांति पर्व के ९५ वें अध्याय में धर्म युद्ध का विषद वर्णन है। युद्ध से किसानों की फसलों तथा जनपद को हानि न पहुंचे-इस बात का ध्यान रखा जाता था।

कूट युद्ध—परन्तु कभी कभी कूट युद्ध भी करने पड़ते थे। शाँति पर्व के ६९ वें अध्याय में कूट युद्ध का वर्णन है। उसमें मार्गों, जलाशयों को नष्ट करना, नगरों को-खेतों को उजाड़ देना, आक्रमण के गुप्त स्थल बनाना आदि के वर्णन है। युद्ध काल में रात को ही भोजन बनता था। प्रातः केवल हवन होता था। दिन में आग जलाने वाले को दण्ड मिलता था। आग लगाने वाले, विष देने वाले, चोरों, डाकुओं को परराष्ट्र में भेजा जाता था। वे जलों में विष मिलाते, गांव और खेतों में आग लगाते, लूट मार करते, सेना में विद्रोह फैलाते थे।

एक प्रसंग विमान द्वारा भी चढ़ाई करने का है। शाल्व राजा ने विमान द्वारा द्वारिका पर चढ़ाई की थी। तथा विमान से द्वारिका पर पत्थरों और बाणों की वर्षा की थी। वन पर्व में इस युद्ध का अद्भुत वर्णन है। इस युद्ध में अग्नि उत्पादक पदार्थों से भरे हुए गोले नगर पर फैंके गए थे। ये गोले शृंगाटकयन्त्र द्वारा फैंके गए थे। यह यन्त्र कैसा था-कह नहीं सकते। इस विमान का नाम सौभ नगर था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अक्षौहिणी—आधुनिक युद्ध पद्धति में डिविजनों का जैसे विभाजन है, उसी प्रकार उस काल में अक्षौहिणी होती थी। एक हाथी, एक रथ–तीन घोड़े, पांच पैदल मिलाकर एक पत्ति होती थी। तीन पत्तियों का एक सेना मुख, ३ मुखों का एक गुल्म, ३ गुल्मों का एक गण, ३ गणों की एक वाहिनी, ३ वाहिनी की एक पूतना, ३ पूतना का एक चमू, ३ चमू की एक अनीकिनी, और दस अनीकिनी की एक अक्षौहिणी होती थी। सब मिला कर एक अक्षौहिणी में २१८७० रथ, उतने ही हाथी, ६५६१८ घुड़सवार और १०९३५० पैदल होते थे।

व्यूह—युद्ध के लिए सेना किस प्रकार व्यूह बद्ध की जाती थी—इसका वर्णन शान्तिपर्व के ९९वे अध्याय में है। बहुधा सामने हाथी खड़े किए जाते थे। मध्य भाग में रथ, और पीछे घुड़सवार। सवारों के मध्य में पैदल। ये व्यूह पक्षियों की आकृति में होते थे, और कोसों तक इनका फैलाव होता था। व्यूह रचना आरम्भ ही में प्रातःकाल हो जाती थी। ये व्यूह कभी आक्रमण के महत्त्व को देख कर रचे जाते थे, तथा कभी अपने बचाव के लिए। द्रोण ने जयद्रथ की रक्षा के लिए चक्रव्यूह रचा था, जिसमें बड़े २ योद्धाओं का प्रवेश भी कठिन था। इसमें अकेला अभिमन्यु ही प्रविष्ट हो सका था, परन्तु वह जीवित वापस नहीं लौट पाया था। जब युद्ध घमासान हो जाता था तो सम्भवतः व्यूह टूट जाते थे, और संकुल युद्ध होने लगता था। हाथी से हाथी, रथी से रथी, सवार से सवार और पैदल से पैदल भिड़ जाते थे। संकुल युद्धों के वर्णन महाभारत में बहुत हैं। अन्तिम दिन खास तौर पर शल्य ने आज्ञा दी थी—कि द्वन्द युद्ध कोई न करे, सब कोई संकुल युद्ध करो। अनन्तर भिन्न २ पार्श्वों का, मध्यों का, और पिछवाड़ों का युद्ध हुआ। शल्य मध्यान्ह में बारह बजे गिरा। पर युद्ध बन्द नहीं हुआ। शकुनि ने घुडसवारों के साथ पाण्डवों पर पीछे से आक्रमण किया। तब युधिष्ठिर ने सहदेव की घुड़सवार सेना को छोड़ा। दोनों घुड़सवार सेनाओं का भारी घमासान हुआ, अन्त में अपरान्ह होते २ कौरव दल भागने लगा। दुर्योधन युद्ध भूमि को छोड़ कर छिप गया।

सेना के साथ जो आवश्यक सामग्री रहती थी, उसका वर्णन उद्योग पर्व में है। सामान की गाड़ियाँ, कालारियों और वेश्याओं के वाहन, हाथी, घोड़े, स्त्रियाँ द्रव्यकोष, धान्यकोष आदि सामान लादे हाथी आगे २ चलते थे। सेना के साथ वेश्याएँ रहती थीं। उस काल में लड़ते समय एक दूसरे की निन्दा करने की बात अद्भुत-सी है! पर योद्धा एक दूसरे को अपना नाम सुनाते थे। तेज़ सवार युद्ध समाचार और सेनापतियों की आज्ञा सेना नायकों को पहुँचाते थे। शल्य के नायकत्व में अन्तिम दिन कौरवों के पास ३ करोड़ पैदल और ३ लाख सवार थे। कौरवों की ओर दो करोड़ पैदल और १० हजार सवार। संग्राम में ६६ करोड़ १ लाख १० हजार मनुष्य हताहत हुए थे। निस्सन्देह यह संख्या १८ अक्षौहिणी से अधिक है।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

९--तत्कालीन भारत का भौगोलिक रूप

पर्वत—भीष्मपर्व अध्याय ९ में हिमालय के अतिरिक्त नौ पर्वत और गिने गए हैं। बड़ी २ पर्वत श्रेणियों को पर्वत मान लिया गया था। महेन्द्र पर्वत पूर्व की ओर है, उससे महानदी निकलती है, पूर्वी घाट इसी से संलग्न है। दूसरा मलय पर्वत पूर्वी एवं पश्चिमी घाट को जोड़ता है। नीलगिरि बड़ा शृङ्ग है, तीसरा सह्याद्रि महाराष्ट्र में है। चौथा श्रुतिमान कदाचित् गिरनार शिखर काठियावाड़ का संकेत है। पांचवाँ ऋक्षवान् कदाचित् अरावली है। इसे हिमालय पुत्र अर्बुद भी कहा गया है। छटा विन्ध्याचल है। सातवां पारियात्र कदाचित् सुलेमान पर्वत है। महाभारत काल में इन पर्वतों के अन्तर्गत आर्यों की बस्तियाँ थीं।

जन देश—महाभारत देश में तीन प्रकार के जन बताता है—आर्य, म्लेच्छ, और मिश्रित। कुल १५६ देश बताए हैं, जिनमें ५० दक्षिण में थे। २६ देश म्लेच्छों के थे। इस वर्णन से पता चलता है कि दक्षिण की ओर भरत खण्ड की सीमा बहुत आगे तक—गोदावरी के आगे तक बढ़ गई थी। दक्षिण के देशों की जो सूची दी गई है, वह महत्त्वपूर्ण है। साधारणतया यदि गोदावरी मुख से पश्चिम और बम्बई तक एक रेखा खींची जाय तो उसके अन्तर्गत दक्षिण के देश आ जाते हैं।

पूर्व की ओर कुरु पाँचालों की राजधानी हस्तिनापुर थी। इनके पूर्व पांचाल थे, जिनकी राजधानी अहिच्छत्रपुर थी, जो वर्तमान रामपुर या बरेली के निकट था। द्रुपद के राज्य में गंगा किनारे पर माकेयी और कांपिल्य दो नगर थे। इसके पूर्व कोसल राज्य था, जो उत्तर–दक्षिण दो भागों में विभक्त था। इसके पूर्व मिथिल राज्य था. फिर कासी राज्य था, जो सम्पन्न था। उसके बाद मगध राज्य था, जिसकी राजधानी राजगृह थी। वहां का राजा जरासन्ध था। यहीं आर्य राज्यों की सीमा समाप्त होती है। इसके आगे अंग–वंग, कलिंग थे, जहां जाने से आर्य को प्रायश्चित्त करना पड़ता था। ये देश चम्पारन, मुर्शिदाबाद और कटक होंगे। पौन्ड्र और सह्य देश नहीं गिने गए हैं, ताम्रलिप्तक और औंड्र हैं। ताम्रलिप्तक कदाचित् कलकत्ते के निकट था, औंड्र उड़ीसा का नाम था। उसके पास ही उत्कल देश था। प्राग्ज्योतिष आसाम का नाम था। पर यह भरतखण्ड के अन्तर्गत न था। माणिमन देश मणिपुर था। जब अंग–वग कलिंग के आगे अर्जुन जाने लगा तब साथ के ब्राह्मण लौट आए थे। अर्जुन ने वहां की राजकुमारी चित्राङ्गदा से व्याह किया था, जिसका पुत्र बभ्रुवाहन था।

कुरुक्षेत्र से दक्षिण की ओर चलने पर सूरसेन देश था, जिसकी राजधानी मथुरा थी। उसके पश्चिम मत्स्य और दशार्ण तथा यक्कृल्लोम देश थे। इसके बाद कुन्तीभोजों का देश चर्मण्ववती नदी के तीर पर था। फिर निषध (बरार) और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अवन्ती था। अवन्ती मालवा का नाम था। विदर्भ के पूर्व ओर प्राक्कोसल देश था। इसके बाद रूप वाहित, अश्मक, पाण्ठ राष्ट्र, गोप राष्ट्र, और महाराष्ट्र थे। कदाचित इन्हीं तीनों राष्ट्रों को मिलकर महाराष्ट्र बना हो। आनर्त और सुराष्ट्र कदाचित् गुजरात–काठियावाड़ का नाम था। शूर्पाटक अपरान्त देश की राजधानी थी। वह बंबई के निकट थाना स्थान के निकट था। यहीं परशुराम ने अन्तिम समय व्यतीत किया था।

महाभारत में शूर्पारक को परशुराम भूमि कहा गया है। दक्षिण के चोल, द्रविड़, पाण्डय, केरल और महिषक प्रसिद्ध थे। पच्छिमी और सिन्धु सौवीर और कच्छ थे। कच्छ के उत्तर गांधार था। गांधार के उत्तर काश्मीर था। मरु, शौरिषिक, महत्थ दशार्ण, शिवि, त्रिगर्त, अम्बष्ट, मालव, पंच कर्मट, और वाट धान देश थे। शाकल में मद्रों का राज्य था। महाभारत काल में शाकल प्रसिद्ध नगर था, आगे चलकर इस नगर को बड़े २ विदेशी विजेताओं ने राजधानी बनाया। तक्षशिला के उस ओर वाल्मिकों और क्षुद्रकों के गण थे। उत्तर में कुविन्द, आनर्त, तालकूट, शाकल, दार्व कोकनद, काम्बोज, दरद देश थे। उसके आगे किंपुरुष, गुह्यक आदि थे। फिर कुरु पांचाल और हरिवर्ष देश था। तिब्बत से कदाचित् उस काल में परिचय न था। क्यों कि शान्ति पर्व अ० २० में लिखा है कि हिमालय के उस ओर का देश किसी ने नहीं देखा है। अर्जुन के हरिवर्ष जाने का उल्लेख है। वह कदाचित तिब्बत ही हो।

महाभारत कालीन महा जानपद—

महाभारत युद्ध से पूर्व भारत में १०१ प्रसिद्ध क्षत्रिय राजवंश थे[1]। जिनमें मागध जरासन्ध ने भारत संग्राम से प्रथम अकेले ही ८६ राज्यों को परास्त करके आधीन कर लिया था। केवल १४ ही राज्य स्वतन्त्र बचे थे।

इन १०१ राज्य वंशों के इतने ही जनपद—और महाजन पद महाभारत उत्तर काल में थे। जिनके विवरण इस प्रकार हैं।

१—उदीच्य महा जन पद—इस का आरम्भ प्रथूदक तीर्थ से था। इस महा जन पद में गान्धार, दरद, काम्बोज, तुषार, वाह्लीक, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्र–मद्रक केकय, शिवि, वसाती, उरसा, काश्मीर, त्रिगर्त और प्रस्थल, क्षुद्रक, मालव, अम्वष्ट, यौधेय, सुवास्तु, दार्व अभिसार, शक, कुणिन्द, ये तेईस जन पद थे[2]।

२—मध्य देश महा जानपद—मध्य देश में कुरु–भरत, पांचाल, साल्व, मद्र

---

१. महाभारत सभापर्व अ० १४।

२. कर्नाल जिले का पहुआ स्थान ही प्राचीन पृथूदक है। यह थानेश्वर से १४ मील पच्छिम की ओर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जांगल, शूरसेन, भद्रकार, वोध, परच्चर चेदि, वत्स, मत्स्य, कुशल्य, कुत्तल, काशी, अपर काशी, कोसल, कुलिङ्ग–मगध, उत्कल और दशार्ण ये २० जनपद थे।

प्राच्य महा जनपद—अंग, वंग, सुम्ह, प्राज्योतिष, पुण्ड्र, विदेह, ताम्रलिप्तिक, मल्ल, मगध गोर्नद, ये १० प्रमुख जनपद थे।

विन्ध्य पृष्टवर्ती जनपद–मालव, करूष, दशार्ण, भोज, तोसल कोसल त्रैपुर, बैदिश, तुहुण्ड, तुण्डिकेर, निषध, वीतिहोत्र (अवन्ति) ये १२ जनपद थे।

दक्षिण के जनपद—पाण्डय, केरल, चोल, वनवासी, महाराष्ट्र, माहिषिक, कलिङ्ग, आभीर, वैदर्भ, दण्डक, अश्मक, और आन्ध्र ये बारह जनपद थे।

अपरान्त जनपद—अपरान्त का अर्थ है सीमान्त प्रदेश। यह पश्चिमी सीमा के जनपद है। इनमें शूर्प कार (सूर्पारक) कारस्कर, नासिक, भरुकच्छ, माहेय, सारस्वत काच्छीय, सुराष्ट्र, आनर्त और अर्बुद ये १० जनपद थे।

इन १०१ जनपद के १०१ राजवंश के सब राजे भारत महा संग्राम में आए थे, और इनमें से एक भी जीवित कुरु क्षेत्र से नहीं लौटा था।

नदी और तीर्थ–महाभारत में अनेक नदियों और तीर्थों के भी नाम है। अनेक नदी आज भी हैं। अनेक नहीं है। वनोवास काल में पाण्डव पहिले काम्यक वन में रहे। फिर भगीरथी के तीर पर से कुरु क्षेत्र गए। वहां से पच्छिम और ऋषि प्रिय काम्यक वन उन्होंने देखा। यह वन मरु देश में होगा। वहां से द्वैतवन गए। जो हिमालय की तराई में होगा, उसमें पशु-पक्षी मृग और हाथी बहुत थे। वहां सरस्वती नदी बहती थी। वहां से लौटकर वे नैमिषारण्य में आए। यह तीर्थ अयोध्या के पच्छिम में था। वहां गौतमी में स्नान कर बाहुदा नदी पर गए। वहाँ से वे प्रयाग और वहां से गया गए, जहां फल्गु नदी है। वहां अक्षय वट है जो श्राद्ध के लिए श्रेष्ठ है। वहां से वे मणिमती नामक दुर्जया नगरी में रहे। फिर कौशकी नदी में स्नान कर नन्दा और उपर नन्दा नदी को पार कर हेमकूट पर गए। वहां से समुद्र तट तक पहुँचे जहाँ गंगा समुद्र में गिरती है। इस वर्णन में वे काशी का उल्लेख नहीं करते–कलिंजर पर्वत पर हिरण्यबिन्दु तीर्थ धौम्य ने बताया है। इसके बाद भार्गव राम का महेन्द्रपर्वत है, वहां से नदी मणिकर्णिका सरोवर में आई हैं। संभव है यही मणिकर्णिका काशी तीर्थ है। परन्तु इन तीर्थ गणना में वाराणसी नाम नहीं है। आगे वे कलिंग में गए, जहां वैतरणी नदी है।

द्रविड़ देश में अगस्त तीर्थ और नारी तीर्थ था। पूर्व और दक्षिण के तीर्थों में वाराणसी–पुरी और रामेश्वर का उल्लेख नहीं है। कदाचित् उस काल में ये तीर्थ न थे। पच्छिम में गोकर्ण महाबलेश्वर तीर्थ, गोदावरी, वेणी नदी, भीमरथी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नदी और यपोष्णी नदी का उल्लेख है। कावेरी नदी और पुष्करी तीर्थ का भी उल्लेख हैं। उज्जामिती के महा काल का वर्णन है। पुष्कर तीर्थ का महत्त्व बहुत था। द्वारिका भी तीर्थ रूप से वर्णन है।

१०—भाषा और साहित्य

जन भाषा—महाभारत काल में श्रेष्ठ आर्य संस्कृत बोलते थे। परन्तु वह संस्कृत आजकल की संस्कृत से कुछ भिन्न होती है। म्लेच्छ जातियाँ भी सस्कृत बोलतीं थी, पर वे शब्दों का अशुद्ध उच्चारण करती थीं[1]। स्त्रियों की भाषा में भी कुछ देहातीपन था। सस्कृत भाषा में अनेक म्लेच्छ भाषा के शब्दों का प्रयोग होता था। सुरंग शब्द यवन भाषा का था। परन्तु महाभारत की भाषा में ऐसे विदेशी शब्द कम ही हैं। चाण्डाल और स्वपच भी संस्कृत बोलते थे। प्राकृत भाषाएँ कदाचित् कुछ विदेशी बोलते थे। म्लेच्छ भाषाऐं आर्य भी जानते थे। वारणावत जाते हुए पाण्डवों को विदुर ने म्लेच्छ भाषा ही में सावधान किया था। उस काल में ऋग्वेद की दस हजार ऋचाएं गिनाई गई थी[2]। कुछ ब्राह्मण भी तैयार हो गए थे। वेदों के तीन भाग प्रसिद्ध हो चुके थे। अनुशासन पर्व में ताण्ड्य ब्राह्मण का उल्लेख है। शुक्ल यजुर्वेद और शतपथ का उल्लेख शान्ति पर्व अ० ३१८ में है। सभा पर्व में उपनिषदों का भी उल्लेख है[3]। शान्ति पर्व में ३४२वें अध्याय में ऋग्वेद की २१०००, सामवेद की १००० हजार, यजुर्वेद की ५६८३७ = १०१ शाखाऐं होने का वर्णन है। परन्तु आजकल इतनी शाखाऐं उपलब्ध नहीं है। प्रतीत होता है। वेद का विभाजन और सम्पादन होते ही एक ही शताब्दी में भिन्न २ ब्राह्मण परिवारों ने वेद की नई अपनी २ शाखा बनाली थी। वेद के षडङ्ग प्रसिद्ध हो चुके थे। विद्यार्थी वेद का षडङ्ग अध्ययन करते थे। लोग व्याकरण पढ़ते थे। पर वह पाणिनीय न था। पाणिनी ने तुलनात्मक व्याकरण की नीव डाली थीं। इसी से प्राचीन वैयाकरण समाप्त हो गए। महाभारत में किसी व्याकरण ग्रन्थ या ग्रन्थकार का नाम नहीं आया है 'भाष्य' नाम अवश्य आया है। पर कदाचित् वह पतञ्जलि का महाभाष्य नहीं है। क्योंकि वहां भाष्य शब्द का व्याकरण से विरोध है[4]। शाकल्य और

साहित्य

---

१. नार्याम्लेछन्ति भाषाभिः (आदि०)

२. दशेदं ऋक्सहस्त्राणि ··· ··· (शान्ति अ० १४६)

३. वेदोपनिषदांवेत्ता ऋषि···· ··· (सभा० अ० ४)

४. ये च भाष्यविदः केचित् ये च व्याकरणे रताः। अनु० अ० ८०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सावर्णि सूत्रकारों का नामोल्लेख है, पर इन्होंने किस भाषा विषय के सूत्र बनाए थे। नहीं कहा जा सकता। पर शाकल्य का पणिनि सूत्रों में उल्लेख आता है। सम्भव है शाकल्य प्राचीन व्याकरण है। आजकल मगध का ग्रन्थ वेदाङ्ग ज्योतिष प्रसिद्ध है, वैदिक लोग इसे ही पढते थे। पर महाभारत में उसका उल्लेख नहीं है। निरुक्त और उसके शब्द कोष का महाभारत में उल्लेख है। परन्तु छन्द शास्त्र के कर्ता पिङ्गल-का नाम नहीं हैं। आज 'शिक्षा' पाणिनि की प्रसिद्ध है, पर महाभारत में ब्राभव्य कुल जालक को शिक्षा प्रणेता कहा है। उसने 'शिक्षा' और 'क्रम' विषयों पर ग्रंथ लिखे-कल्प का उल्लेख महाभारत में नहीं है। सूत्र का उल्लेख है। सम्भवतः ये सूत्र भिन्न-भिन्न विषयों पर होते थे। यह तो हुई वैदिक साहित्य की बात। पुराण इतिहास के सम्बन्ध में सूतों का काम प्रमुख कहा गया है। महाभारत में कहीं कहीं 'इतिहास' शब्द आता है, द्रोण के सम्बन्ध में लिखा है—कि वे चारों वेद सांगोपांग तथा आख्यान के पण्डित थे। इस से पता चलता है, कि महाभारत से पूर्व आख्यान ग्रंथ थे। ये इतिहास के थे। वायु पुराण का उल्लेख महाभारत में है, और वेदों के साथ 'भारत' उल्लेख होता था। ऐसा प्रतीत होता है—कोई 'भारत' नाम का आख्यान ग्रंथ अत्यन्त प्राचीन था। कुछ पुराण और भी रहे होंगे। जो वर्तमान पुराणों से भिन्न होंगे। महाभारत में पुराण, गाथा, आख्यान, उपाख्यान और इतिहास भिन्न २ शब्द आते हैं। इतिहास का अर्थ है—इति–ह–आस।

गौतम का न्याय—महाभारत में गौतम के न्यायदर्शन का उल्लेख नहीं है—परन्तु सभा पर्व में एक श्लोक में एक्य-संयोग्य-नानात्व शब्द हैं। जो गौतम के न्याय के पारभाषिक शब्द हैं। कदाचित् प्राचीन न्याय ग्रंथ कोई रहे होंगे[1]। कदाचित् कोई वक्तृत्व शास्त्र महाभारत कालमें रहा होगा। जिसका आभास जनक सुलभा संवाद में मिलता है, इस संवाद के आरम्भ में सुलभा ने वाक्य कैसा होना चाहिए, उसके गुण दोष क्या क्या हैं, आदि का वर्णन किया है।

मानव धर्म शास्त्र—मानव धर्म शास्त्र का सभा और शांति पर्व में एक स्थान पर उल्लेख है। स्वयं महाभारत को धर्मशास्त्र तथा कामशास्त्र कहा गया है। नीति शास्त्र का भी उल्लेख है। अर्थशास्त्र को वार्ताशास्त्र भी कहा गया है। अनेक स्थलों पर वृहस्पति और उशनस के नीति धर्मों का उल्लेख किया गया है। तथा शांति पर्व के ५८ वें अध्याय में राज धर्मशास्त्र के प्रणेता मनु–भरद्वाज- और गौरशिरस् बताए गए हैं। भुवन शास्त्र का भी उल्लेख है। धनुर्वेद, गांधर्व वेद, तथा चिकित्सा शास्त्र का उल्लेख है। चिकित्सा शास्त्र के प्रवर्तक कृष्णात्रेय के मंत्र आज उपलब्ध नहां हैं-पर महाभारत में उनका संकेत है। महास्मृति और अनुस्मृति का उल्लेख है[2]। ये०।

---

१. न्याय तन्त्राण्यनेकानि—शांति अ० २१०।

२. महास्मृतिं पप्रेद्यस्तुतथै वानुस्मृतिं शुभांम्। शांति०अ० २०० श्लोक ३०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गणित और अंक शास्त्रों का भी संकेत है। एक नीति शास्त्र कर्ता शम्बर था। हस्थि शास्त्र अश्व शास्त्र, मल्ल शास्त्र भी थे। संक्षेप में–अध्ययन के विषय थे—वेद, धर्म-शास्त्र, तत्त्व ज्ञान, राजनीति, व्याकरण, गायन, भाषा शास्त्र, निरुक्त, युद्ध, कृषि, चिकित्सा, गणित, और शिल्प। तत्व ज्ञान, व्याकरण और राजनीति उन्नतशास्त्र थे। काव्य और ललित वाग्मय का निर्माण नहीं हुआ था।

धर्म विश्वास—भारत काल में आर्यों का वैदिक धर्म था। इस धर्म के तीन रूप थे—स्तुति, उपासना और यज्ञ। ऋग्वेद के सम्बन्ध में लोगों की पूज्य बुद्धि तथा यजु और साम के सम्बंध में धर्म बुद्धि उत्पन्न हो गई थी। इस काल में ही वेद अपौरु षेय माने जाने लगे थे। तीनों वर्ण वेद पढ़ते थे। पर वैश्य अब पठन पाठन छोड़ने लगे थे। पर क्षत्रिय इस कार्य में ब्राह्मणों से पीछे न थे। महाभारत संग्राम के बाद क्षत्रिय पठन पाठन में पिछड़ते गए। कर्ण ने युधिष्ठिर को उपहास करते हुए कहा था—तुम वेद पाठ करने और यज्ञ करने में ही प्रवीण हो, इस लिए वीरों का सामुख्य करने और युद्ध करने के लिए आगे मत बढ़ो। तीनों वर्ण वैदिक अन्हिक-सन्ध्या और अग्निहोत्र करते तथा गृहाग्नि रखते थे। कर्ण नित्य सूर्य पूजन करता था। नित्य यज्ञ के अतिरिक्त नैमित्तक यज्ञ धूम धाम से होते थे। मूर्ति पूजा का कहीं भी उल्लेख नहीं है। प्रतिमाओं का जहां कभी भी वर्णन है, वह बाद का है। तेतीस देवता माने जाते थे। भारतीय उत्तर काव्य में इन देवताओं में शिव और विष्णु जोड़ दिए गए थे। जिनके दो पंथ बन रहे थे—एक पाञ्चरात्र दूसरा पाशुपत। विष्णु की महत्ता बढ़ रही थी। शिवलिंग का वर्णन उत्तर काल में है। कदाचित् यह आर्यों-अनार्यों के मेल से हुआ। दत्तात्रेय, स्कंद और दुर्गा पूजा का संकेत उत्तर कालीन है। पितरों के श्राद्ध तर्पण होते थे। श्राद्ध में ब्राह्मण मांसान्न भोजन करते थे। आलोक दान और बलिदान की प्रथा भी थी। आज कल ये प्रथाएं बन्द हैं। पहाड़, जंगल, चौराहों पर दीप जलाना, और यज्ञ देवताओं को पशु वलि देना प्रचलित था, जो सर्व साधारण में था। देवताओं को दूध दही की, यक्षों को मांस मद्य की, भूतों को गुड़ और तिल की वलि देनी पड़ती थी। कदाचित् वलि वैश्व यज्ञ उसी का उत्तर रूप है। उन दिनों घर २ वलि की आहूतियां दी जाती थीं।

दान—वस्त्र-स्वर्ण–गाय, अन्न, दान देने की परिपाटी थी। गोदान का बहुत माहात्म्य था। तिल का दान भी अच्छा माना जाता था। भूमिदान, कन्यादान का भी पुण्य था। उन दिनों क्रात्विज ब्राह्मणों को यज्ञ दक्षिणा में राजा लोग अपनी कन्या दे डालते थे। उपवास का प्रचलन था। खास २ दिनों में उपवास किया जाता था। उपवास को श्रेष्ठतम कहा जाता था। भिन्न २ तिथियों में भिन्न उपवास और पूजन होते थे। योग–ध्यान, जप और अहिंसा को उत्तम समझा जाता था। यद्यपि उन दिनों यज्ञों में पशु-वध होता था, पर यज्ञ की हिंसा को हिंसा न माना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाता था। यज्ञ में पशु-वध का विरोध होने लगा था। अतिथि पूजन का बड़ा महात्म्य था। सत्य, सरलता, शान्ति, निर्भत्सना, इन्द्रिय निग्रह सर्व साधारण के उत्तम धर्म कहे गए हैं। नीति का आचरण अच्छा माना जाता था। मोक्ष की इच्छा सब करते थे। तथा आचार को धर्म का उत्तम लक्षण माना जाता था। स्वर्ग-नर्क की कल्पनाएँ थीं। अन्य लोकों की कल्पना की भी मान्यता थी। ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, वरुणलोक माने जाते थे। रसातल आदि पाताल लोक माने जाते थे। यमलोक का भी वर्णन है। स्वर्ग से ऊपर ब्रह्मलोक माना जाता था। दुष्कर्म के लिए प्रायश्चित्त की परिपाटी थी। ऋतुकाल में स्त्री गमन न करना भी घातक माना जाता था। प्रायश्चित्तों के अनेक प्रकार थे। गृहस्थ सोलह संस्कार करते थे। बड़े लोगों के प्रेत संस्कार धूम धाम से होते थे। भीष्म के अन्त्येष्ठि का वर्णन ऐसा ही है—युधिष्ठिर और विदुर ने गांगेय को चिता पर रखा, रेशमी वस्त्रों तथा पुष्प मालाओं से ढक दिया। फिर युयुत्स ने ऊपर छत्र लगाया। अर्जुन और भीम ने चौर ढला, नकुल सहदेव ने मोरछल लिया। कौरव स्त्रियों ने ताड़ के पंखे से हवा की। फिर यथा विधि पितृमेध हुआ, अग्नि में हवन हुआ। साम गायकों ने साम गान किया। फिर चन्दन, अगर, घृत संग्रह किया, युधिष्ठिर ने आग लगा दी। तब सब कौरवों ने प्रदक्षिणा की। इसके बाद गंगा पर जाकर सब ने उन्हें तिलाञ्जलि दी। सन्यासियों की प्रेत विधि नहीं होती थी। विदुर की देह न जलाई गई—न गाड़ी गई। मुर्दा वहीं पड़ा रहा, तथा जंगली पशुओं का भक्ष्य बना।

अन्य मान्यताएँ

११—आर्य और आर्येतर जातियां

आर्य और आर्येतर सम्बन्ध—

भारत संग्राम काल में आर्य भी थे और आर्येतर जातियां थीं। ऋग्वेद काल से इस समय तक, जबकि तीन युग बीत चुके थे, आर्यों में और आर्येतर जनों में और उनके परस्पर के सम्बन्धों में भी बहुत अंतर पड़ गया था। ऋग्वेद में आर्य शब्द एक वर्ण के अर्थ में आया है। एक ऋचा में भारत की तीन जातियों का उल्लेख किया गया है—आर्य, दास और अदेव[1]। वेद भाष्यकार सायण ने आर्य का अर्थ त्रैवर्णिकन्यानि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य किया है। परन्तु आरम्भ में—सूर्य वंश (मानव) और चन्द्रवंश (एल) ये ही दो वंश आर्य कहाते थे। वैदिक काल में आर्यों और दासों में विरोध भाव रहा, जो ब्राह्मण काल तक रहा। दोनों में परस्पर युद्ध

---

१. यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुता देव इंद्र युधये चिकेतनि। ऋ० म० १०। सू० ३८। ऋ० ३

CC-0. Agamnigam Foundation. Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होते रहे। पराजित और बंदी दासों को आर्य मार डालते थे—पीछे उन्हें कृषि और सेवा कार्य में लिया जाने लगा। अतः उनका शूद्रों में अन्तर्भाव हो गया। इस समय तक ब्राह्मणों की और राजन्यों की पृथक् जाति बन चुकी थी। शेष आर्य कृषि और पशु पालन करते थे—वे विश कहाते थे। बहुत काल तक आर्यों ने शूद्रों को अपने संगठन में ग्रहण नहीं किया—पीछे उनकी स्त्रियों को ग्रहण कर तथा उन स्त्रियों की संतानों को अपने वर्ण में गिन कर शूद्रों को भी आर्यों के अन्तर्गत गिन लिया। इस प्रकार आर्यों में चातुर्वर्ण का संगठन और विभाजन हुआ।

अर्जुन की दिग्विजय—अर्जुन ने जब अश्वमेध के अवसर पर दिग्विजय किया था, तब अनेक राजाओं ने उसका विरोध किया था। उसमें म्लेच्छ भी थे और आर्य भी थे[1]। भीष्म पर्व में उन भारतीय राजाओं की सूची है, जो युद्ध में लड़े थे। उनमें भी म्लेच्छ राजाओं का उल्लेख है। इस काल में भी आर्यावर्त केवल हिमालय और विन्ध्याचल पर्वत के मध्यवर्ती देश को कहते थे। एक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि आर्य शब्द से केवल जाति भेद ही नहीं दिखाया जाता था, भाषा भेद भी प्रकट किया जाता था।

महाभारत में लिखा है—'नार्या म्लेच्छन्ति भाषाभिः'। इसका अर्थ है—भाषा बोलने में आर्य लोग म्लेच्छों की भाँति गलतियाँ नहीं करते। महाभारत में आर्य शब्द जातिवाचक है और वह म्लेच्छों के विरुद्ध काम में लाया गया है। मनुस्मृति में भी यह जातिभेद ऐसा ही माना गया है। इसका अभिप्राय यह है—कि भारत में जो लोग चातुर्वर्ण के बाहर थे—वे आर्य नहीं थे। भीष्म पर्व के वर्णन से अनुमान होता है कि भारत में उत्तर में पंजाब से लेकर अंग-वंग तक और दक्षिण में अपरान्त देश तक आर्य फैले हुए थे। म्लेच्छों और वेदवाह्य लोगों में अंग-वंग, कलिंग और आन्ध्र देश की भी गणना की गई है। यवन, काम्बोज, चीन, हूण और पारसीक आदि तथा दरद, काश्मीर, खशीर और पल्हव आदि दूसरे म्लेच्छ उत्तर की ओर बताए गए हैं। इस वर्णन से यह भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि हिमालय और विन्ध्य के बीच का देश ही आर्यावर्त समझा जाता था। उसके बाहर भी आर्य थे, वे संस्कृत भाषा बोलते थे—पर वेद-वर्ण-वाह्य होने से म्लेच्छ समझे जाते थे। मनुस्मृति में उनकी गणना दस्युओं में की गई है।

---

१. म्लेच्छाश्चान्ये वहुविधाः पूर्वं ये निकृतारणे। आर्याश्च पृथ्वीपालाः प्रहृष्टा नरवाहनाः। समायुः पाण्डु पुत्रेण वहवो युद्ध दुर्मदाः।
(महा० अश्व० अ० ७३)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नवां अध्याय

वेद और उसका साहित्य

१--वेद का निर्माण और रक्षण

निर्माण काल—सतयुग–त्रेता–द्वापर इन तीन युगों में निरन्तर वैदिक ऋचाएँ और मन्त्र समय २ पर मेधावी ऋषियों द्वारा बनते रहे। जो मौखिक रूप में पढ़े सुने जाते थे। इन ऋचाओं और मन्त्रों के निर्माता ऋषि याजक भी थे—राजा भी थे, शूद्र भी थे और स्त्रियाँ भी थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ ही से वैदिक ऋषियों की दो धाराएँ चलती थीं—एक ऋक् दूसरी मन्त्र। मन्त्र अथर्व शाखा के थे। अथर्व के ऋषि अंगिरा और अंगिरस गोत्री थे। सब से प्राचीन सूक्तकारों में अथर्वण, अंगिरस, भृगु, जामदग्नि अत्रि, वशिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, कश्यप, अगस्त्य, काण्व और अंगिरा थे जो सम्भवतः आर्यों और देवों के प्रमुख कुटुम्बों के मुखिया थे। अंगिरा गोत्र के केवलांङ्गिरस, हारीत, मौद्गलायन, वामदेव तथा भारद्वाज थे। नाभाग, अथर्वण, भृगु और भी प्राचीन प्रतीत होते हैं। अंगिरसों ने अग्निपूजन का आरम्भ किया था[1]। सप्तर्षियों में अथर्व में अथर्वाङ्गिरस तथा भृगु अंगिरस का उल्लेख है। अंगिरस से ही भारद्वाज गण तथा गौतम गण हुए।

सतयुग में चाक्षुष मनु काल में प्रथम ऋचाएँ बनीं। इसके बाद देवलोक में आदित्यों और भृगुओं ने ऋचाएँ तथा मन्त्रों का निरन्तर निर्माण किया। भारत में आने पर आर्यों ने भी उसमें वृद्धि की—इस प्रकार वेदों का निर्माण चाक्षुष मनु से युधिष्ठिर काल तक—ई० पू० २४९३ से ११०० ई० पू० तक लगभग १४०० वर्षों तक निरन्तर होता रहा। वेदोदय चाक्षुष मन्वन्तर में प्रजापतियों द्वारा हुआ था, इसी से ब्राह्मणों में वेद को प्राजापत्य श्रुति कहा गया है। तथा ब्राह्मण ग्रन्थ वेद का आरम्भ प्रजापतियों ही से मानते हैं। इसी से ऋषियों को उन श्रुतियों का मन्त्रद्रष्टा माना गया है। और उनका नाम श्रुतियों के साथ सुरक्षित रखा गया है। इनके नाम पुराणों और ब्राह्मण ग्रन्थों में हैं। इन दोनों श्रोतों से ऋषियों की गणना में कोई भूल नहीं हुई है। वैदिक सूक्तों के साथ ही उन ऋषियों के नाम भी कण्ठ रखे गए, जो उन सूक्तों के उद्घोषक थे। इस से सूक्तों के साथ ही ऋषियों के नाम भी अभंग रहे। इन वैदिक ऋषियों में पृथुवैन्य, विवस्वान्–मनु–पुरुरूवा, मान्धाता आदि प्राचीनतम है, तथा अन्तिम नर–ऋषि जरितर–द्रोण और नारायण है, जो युधिष्ठिर के समकालीन हैं। और जो खाण्डव दाह से बचाए गए थे।

---

१. ऋ० १०।६७।२।१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस तरह वेद काल पृथुवैन्य से—प्रतयुग के मध्य काल में चाक्षुक्ष मन्वन्तर में प्रारम्भ होकर महाभारत संग्राम से कुछ। वर्ष पूर्व तक का निर्णय होता है। पृथुवैन्य का काल २४९३ ई० पूर्व ठहरता है—तथा भारत संग्राम काल ११७७ ई० पूर्व। इसका अर्थ यह हुआ, कि वेद इस काल में निरन्तर १२९३ वर्षों तक बनते रहे[1]।

---

१. वेदों के काल निर्णय के सम्बंध में भिन्न २ विद्वानों के भिन्न २ मत हैं। प्राचीन भारतीय वेदों को अपौरुषेय–ईश्वर की वाणी मानते हैं। उनके मत से चारों वेद सृष्टि के आदि काल से विद्यमान् हैं। अवांतर प्रलयों के पश्चात् ऋषियों द्वारा उनका पुनः पुनः आविर्भाव हो जाता है। उनका कहना है कि प्रलय के बाद ब्रह्मा आदि ऋषि चारों बेटों को मनु, अत्रि, भृगु, वशिष्ठ आदि ऋषियों को पढ़ा देते हैं। निरुक्तकार यास्क तथा स्वामी दयानन्द का भी ऐसा ही मत है।

पाश्चात्य पण्डितों का मत है कि वेदों का निर्माण ऋषियों द्वारा ही हुआ है, समय के सम्बंध में उनके मत भिन्न २ हैं। वे इस प्रकार हैं :—

मैकडानल्ड	ई० पू० १५०० से ई० पू० ५०० तक	[वर्तमान रूप ई० पू० ५ वीं ६ ठी शताब्दी में बना।]
मैक्समूलर	,, ,, १५०० से ,, ,, १२०० ,,	[इन्होंने पहिले १२०० से ८०० ई०पू० तक माना था उनका पहिला कथन इस प्रकार था– छन्दस १२००–१००० ई०पू० मंत्र १०००– ८०० ई०पू० ब्राह्मण ८००– ६०० ई०पू० सूत्र ६००– २०० ई०पू०
रमेश चंद्रदत्त	,, ,, २००० से ,, ,, १४०० तक	
हवर्ट एच गोवेन	ई० पू० १४००	
ह्विटनी वेनफ्रे	,, ,, १८३० से ई० पू० ८६०	[२००० ई०पू० से १५०० ई० पू० तक भी मानते हैं।
इन्साइक्लो पीडिया ब्रिटेनिका	ई० पू २००० से ई० पू० १५०० तक	
जैकोवी	ई० पू० ४०००	
राथ	,, ,, १०००	
एफ़ मूलर	ई० पू० २००० से ई० पू० १५००	
हाग	,, ,, २५०० से ,, १४००	
विल्सन	,, ,, ३५००	
पण्डित तिलक	,, ,, ४००० से ,, ,, २५००	

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेदों का सम्पादन—वेद का सर्व प्रथम सम्पादन रावण ने त्रेता के अन्त में किया था। वेद का सबसे बड़ा शब्द 'यज्ञ' है। रावण ने यज्ञ दीक्षा में पशुवध–गोवध नरवध–लिंग पूजन आदि। दैत्य दानवों की प्रथाओं का समावेश किया। यज्ञों में पशुवध रावण से बहुत प्रथम ही मनु पुत्र नरिष्यन्त––नाभाग–इक्ष्वाकु आदि के काल ही से आरम्भ हो गया था। और यज्ञ में अधिकाधिक पशु मारे जाने लगे थे। अतः एक बार यज्ञ करने के लिए मनु पुत्र प्रध्नु को बहुत कष्ट हुआ था (चरक संहित

श्रीकीथ का कहना है जे० हर्टेल के अनुसार जूराष्ठर का समय ई० पू० ५५९ से ५२२ ई० पू० है। कुछ लोग यह समय ई० पू० ६६० ई० पू० ५८३ भी मानते हैं। इर्टल इप्सन का यह कथन नहीं मानते कि ईरानी तथा भारतीय आर्य ई० पू० २००० तक साथ २ रहे। पीक यह समय १७६० निर्धारित करते हैं। परन्तु ये सभी मत अनिश्चित और असिद्ध है। वैदिक ऋषियों में सबसे प्राचीन ध्रुव, पृथु-वैन्य, चाक्षुषमनु-वेन-मनु, विवस्वान्, पुरुरुवस, ययाति आदि हैं। तथा सब से अतिम खाण्डव दाह से बचे हुए जारितर द्रोण आदि चार ऋषि तथा युधिष्ठिर के समकालीन नारायण हैं। इस प्रकार वेद काल पृथुवैन्य–चाक्षुष मनु के काल से महाभारत संग्राम काल ई० पू० ११७७ तक ही ठीक बैठता है। ऋग्वेद के अधिक ऋषि समकालीन हैं। जो त्रेता की समाप्ति काल में थे—यह समय ई० पू० १५६९ ठहरता है।

बोगजकोई का संधि पत्र ई० पू० चौदहवीं शताब्दी का है। जिसमें इन्द्र–मित्र वरुण और नासत्य को नमस्कार किया गया है। यह समय लगभग राम काल है। यह स्पष्ट है कि इस काल से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व से ही वेद निर्माण हो रहा था अतः इस समय तक वैदिक देवताओं की प्रसिद्धि हो जाना स्वाभाविक है–और मेसा-पोटेमिया के ये राजा जिनका वह संधिपत्र है––वैदिक देवताओं को आर्यों की भांति पूजते थे। अथच वे आदित्यों के ही किसी वंश के थे। जिसके कि आर्य वंशधर हैं। यह सन्धिपत्र इन्ही के हिताहत और मितन्नी लोगों के बीच था। हिताहतों को मिस्त्री खेट—खत्री कहते हैं—'खत्री' 'क्षत्रिय' का विकृत रूप है।

विद्वानों का मत है कि अथर्व वेद भी अति प्राचीन है, परन्तु उसमें बहुत बाद तक की रचनाओं का समावेश है। तथा प्रथक पद्धति के कारण बहुत बाद तक उसकी गणना वेदों में नहीं हुई। यजुर्वेद ऋग्वेद संपादन के बाद यज्ञ विधि के लिए पीछे से संपादित किया गया। सामवेद में तो केवल ७२ मन्त्र ही नए हैं। शेष १५०० के लगभग ऋग्वेद से आए हैं। यजुर्वेद का कुछ अंश बुद्ध के पूर्व तक बढ़ता रहा। उपनिषदों तथा गौतम बुद्ध के समय चारों वेद प्रस्तुत थे। जनमेजय को पुराण सुनाने वाले वैशम्पायन के शिष्य और भांजे याज्ञवल्क्य के समय ही में यजुर्वेद पूर्ण होकर उसकी तैत्तिरीय और शुक्ल शाखाएँ सम्पादिक हुई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिकित्सा स्थान १९।६।) रावण के रक्त में आर्यों व्रात्यों–तथा दैत्यों का मिश्रण था। सभी संकर जातियों की भांति रावण भी चैतन्य और उदग्रीव तरुण था। यह स्वाभाविक था कि रावण के मन में आर्य–देव–दैत्य–सभी दायाद बांधनों को एक संस्कृति में ले आने की इच्छा उत्पन्न हो। उसका नाना सुमाली दैत्य महा तेजस्वी और महारण नीति विशारद वृद्ध नरपति था। देव दैत्य संग्राम में वह अपना सर्वस्व स्वाहा कर चुका था। उसके सान्निध्य में रावण के मन में बड़ी बड़ी महत्त्वाकांक्षाओं के बीज अकुरित हो चुके थे। उसके तरुण और राज्यभ्रष्ट मामा भी सब एक से बढ़कर एक थे। देव दैत्य आर्य के संघर्षों का सबसे कटु फल उन्होंने भोगा था। फिर सबसे ऊपर उसके सौतेले भाई कुबेर का प्रताप था। इन सब कारणों से उसका मन महत्वाकांक्षा से भर गया। अपनी विद्या और बुद्धि तथा बाहुबल पर उसे गर्व था–भरोसा था। उसने असाध्य साधन की ठान ली। उसका सबसे जबर्दस्त काम था–समूची नृजाति में सांस्कृतिक एकता स्थापित करना। उसने–उस समय तक उपलब्ध सब वैदिक ऋचाओं को एकत्र किया। उनमें कुछ अपनी ओर से मिलाया। और उसे ऐसा रूप दिया कि वेद देव–दानव दैत्य–आर्य–व्रात्य सभी के लिए सांस्कृतिक मध्य बिन्दु बन जाय। तब तक देव–दैत्यों में कदाचित उशना काव्य का नीति ग्रन्थ तथा वृहस्पति का नीति ग्रन्थ ही प्रचलित था। वे दोनों कुल गुरु देव दैत्य पूजित थे। रावण ने अकेले ही दोनों की श्रेष्ठ मर्यादाएँ स्वयं ग्रहण करना चाहीं। और उसने उसके लिए किसी नए शास्त्र का नहीं वेद ही का आश्रय लिया[1]।

रावण का महत्कर्म

रावण से प्रथम ही कुछ लोग उस समय वेद मत को भिन्न २ संस्कृतियों में ढाल रहे थे। अंगिरस सम्प्रदाय अथर्वा के मंत्र बना रहे थे। उस काल में वेद ही काव्य था। जो भी कोई सुभाषित चाहे भी जिस विषय पर बोलता––वही काव्य वेद काव्य बन जाता था। और उसका कवि ऋषि। वामदेव नारद ने उसमें वाम विधि स्थापित की थी। जिस का अभिप्राय था— खाओ, पिओ, मौज करो। इन्द्र से उस की गहरी दोस्ती थी। इन्द्र ने उसे प्रश्न दिया था। और उसने इन्द्र के लिए स्तुति मूलक ऋचाएँ बनाई थीं। वह ऋग्वेद ४। १८ सूक्त के अन्त में कहता है— 'खाने को कुछ न मिलने पर मैंने कुत्ते की अन्तड़ियां पकाईं। देवों में मुझे रक्षण

---

१. रावण कृत वेद अब उपलब्ध नहीं है। रावण के नाम से जो एक भाष्य का कुछ अंश मिलता है, वह असल में रावण कृत नहीं है। पर द्रविड़ में जो कृष्णवेद प्रचलित है, वही रावण कृत वेद का विकृत रूप है। कृष्ण वेद का प्रथक् भाष्य नहीं है। परन्तु उसमें रावण कृत वे स्थापनाएँ हैं जिनका हमने उल्लेख किया है, 'बलि' और 'लिग पूजा' ये दोनों उनमें मुख्य है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने वाला कोई न मिला। पत्नी ने मेरी विडम्बना की। ऐसी दशा में इन्द्र ने मुझे मधु दिया[1]। अब आप देखिए कि इस मधु दान की कथा भी इस दरिद्र और भुक्कड़ ऋषि ने वेद की ऋचा में कह दीं। अंगिरा पुत्र बृहस्पति का भी यही मत था। उस ने चार्वाक् मत का दर्शन बनाया था। सब देव इसी मत के थे। उनके राजा इन्द्र देवों की सभा में अप्सराओं का नृत्य कराते, सोम और मधुपर्क पीकर मस्त रहते तथा मौज मजा करते थे। रावण के भाई कुबेर ने भी यही मत अपनाया था— इसी से वह यक्ष कहाता था। उसकी जाति ही यक्ष बन गई थी। परन्तु वशिष्ठ ने त्रेता के अन्त में जो नई वेद विधि अपनाई। वह आर्यों में वद्ध मूल हुई। उसने देवों से आर्यों का मूलतः सांस्कृतिक विच्छेद कर दिया। दैत्य भी इस से वंचित हो गए।

दैत्य दानव वैदिक धर्म—परन्तु दैत्य दानव भी उस काल में वैदिक धर्म मानते और वैदिक देवताओं का पूजन आर्यों की भांति करते थे। इन्द्र, मित्र, वरुण, मरुत. सूर्य आदि वैदिक देवों की ही वे उपासना करते थे। मेसोपोटामिया—जहां आर्यों के मूल पुरुष चिर काल तक रहे—वैदिक धर्म ही माना जाता और वैदिक देवता पूजे जाते रहे थे। इसी से वेद और अवेस्ता के छन्दों में साम्य है। जन्द–वास्तव में 'छन्द' का ही विकृत रूप है, और 'अवेस्ता' 'अथर्व' का विकृत रूप।

वोगजकोई का सन्धि पत्र—वोगज कोई का संधि पत्र इस प्रश्न पर निर्भ्रान्त ऐतिहासिक प्रकाश डालता है। यह संधि हट्टी के हिताहत और मितन्नी लोगों की परस्पर संधि का पत्र है। ये लोग मेसापोटामिया के राजा थे। यह सधि ई० पू० १४ वीं शताब्दी की है। ठीक यही काल राम और रावण का भी है। इस सन्धि-पत्र में वैदिक देवता इंद्र वरुण, मित्र, नासत्य का वर्णन है। मितन्नि के अधिपति उनकी उपासना करते थे, वे ई० पू० १५०० में उत्तर पच्छिम मेसापोटामिया के राजा थे। इन मितन्नियों के नाम भी आर्य थे—जैसे—अर्ततम 'अर्तमन्य' सौस्सतर, सुतर्ण, सुवन्धु, दुस्सरत्त, सुवर्दत्, यसदत्। वे सूरियास (सूर्य) प्ररुत, भग(वग़-पोग़-वुगास) की उपासना करते थे। इन्होंने ई० पू० १८०० में वैविलोन को जय किया था।

उनके नाम भी आर्यों के समान थे। मेद–या मद जाति, जिसका प्राचीन वैविलोनियन और हिताइत लेखों में उल्लेख है, आर्य भाषा बोलते थे। शतपथ ब्राह्मण देवों और मनुष्यों को एक समान ही पृथ्वी का निवासी बताता है[1]। देव सूर्य के मनुष्य सोम तथा असुर अग्नि की उपासना करते थे[2]। देव इसी पृथ्वी के निवासी

---

१. अवर्त्याशुन आंत्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितरं।
अदश्यं जायाममहीपयमानामधा मेश्येनो मध्वाजभार। ऋ० ४। १८।

२. शतपथ २। ३। ४। ४

३. शतपथ ७। ४। २। ४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे[१]। मनुष्य ही प्राचीन काल में देव कहाते थे[२]। देवों का भोजन नीवार (चावल) था[३]। वे सोम पीते थे, मनुष्य सुरा[४]। ऋभू और मरुत् पहिले मनुष्य थे–पीछे देव हो गए[५]। मिस्र का फराऊन जो मुकुट पहनता था उस पर सूर्य का चिन्ह होता था। अरब में सूर्य पूजा होती थी। प्रसिद्ध अदन का बंदरगाह आदित्य नगर था, जहां आदित्य (सूर्य) का मंदिर था, जिसमें सोने चांदी की ईंट थीं। तथा छत पर जवाहरात जड़े थे।

इन सब बातों से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि त्रेतायुग की समाप्ति तक देव–दैत्य–दानव–असुर और आर्य वैदिक धर्मी ही थे। रावण के निधन से उसमें अन्तर पड़ गया। रावण अपने भुजबल से तथा प्रतिभा से भी वेद का नया संस्करण करके सारे नृवंश का महिदेव इन्द्र और जगदीश्वर बन गया।

अपान्तरतमा—सम्भवतः इसी समय में आर्यों में अपान्तरतमा ने वेदों की कुछ शाखाओं का सम्पादन किया। इस समय आर्यों में वेद यज्ञ के प्रतीत बन चुके थे। अपान्तरतमा के प्रवचन के द्वारा यज्ञाग्नि अनेक अग्नियों में विभक्त हो गया। यज्ञ की क्रियाएँ भी बहुत प्रकार की हो गईं। इसी का संकेत उपनिषद में 'तानि त्रेतायां बहुधा संततानि' कहकर किया गया है। यज्ञ क्रियाओं में भेद होने के कारण ही वेद का विस्तार होने लगा। मूल मन्त्रों में शाखागत पाठान्तरों का आरम्भ इसी युग से हुआ।

अपान्तरतया के काल के बाद समय २ पर इन शाखाओं का प्रवचन होता रहा था।

कृष्ण द्वैपायन व्यास—अन्तिम प्रवचन कृष्ण द्वैपायन व्यास ने किया। व्यास ने वेदों के चरण और उनकी अवांतर सहिता का नए सिरे से प्रवचन और सम्पादन किया। और अपने एक एक शिष्य को एक २ वेद दिया। जो उनके वंश में राज्य की भांति परम्परा के लिए धरोहर बन गई। वेदों का विभाजन करके व्यास ने ऋग्वेद पैल को, यजुर्वेद वैशम्पायन को सामवेद जैमिनी को, और अथर्वाङ्गिरस सुमना को दिया। इसके बाद वेद की ऋचाओं का निर्माण बंद हो गया। और वेद की व्याख्याएँ होने लगीं। ये व्यास शिष्य परम्परागत वेद भाष्यकार बनते रहे। संभवतः वेदों का यह विभाजन कृष्ण द्वैपायन ने महाभारत के बाद जनमेजय के संरक्षण में अपने शिष्य जैमिनी सुमन्त पैल और वैशम्पायन की सहायता से किया। उन्होंने अथर्व को वेद नहीं माना। उसे अथर्वाङ्गिरस ही कहा। वेद केवल तीन ही माने गए।

---

१. अथर्व ११–५–१९। तथा ४-११-६।
२. शतपथ ११। १। २। १२।
३. तैत्तिरीय १। ३। ६। ८
४. तैत्तिरीय १। ३। ३। ३३।
५. ऋग्वेद १। ११०। २। ३। बथा ऋग्वेद १०। ७७। २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथर्वण ऋषि ने भी सम्भवतः वेद का सम्पादन किया था। और ऋक् तथा अथर्व को प्रथक् किया था। अन्तिम सम्पादन व्यास ने जनमेजय के काल में किया[1]।

वेदों का महत्व--आर्य जाति के आरम्भिक सांस्कृतिक जीवन को इतिहास का सूत्र वेदों ही से प्राप्त होता है। परन्तु वेदों की भाषा इतनी प्राचीन और गूढ़ है कि उसका असल अर्थ जानना सुगम नहीं है। भारतीय और अभारतीय विद्वानों ने जो वेदों के अर्थ किए हैं, उनमें बहुत कुछ खींच तान की गई है। वेदों का सर्वाधिक प्रामाणिक, भारतीय, भाष्य, सायण कृत है। यद्यपि विदेशी विद्वानों ने भी वेदों के अनेक भाष्य किए हैं।

वेदों की रक्षा--वेदों की रक्षा बड़े अद्भुत ढंग से की गई है। आरम्भ में वेद लिखे नहीं गए। वे केवल कण्ठ याद रखे और पढ़े जाते थे। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है--कि लगभग पाँच हजार वर्षों से वेद जैसे के तैसे चले आ रहे हैं। उनमें एक शब्द को तो कौन कहे---एक मात्रा का भी परिवर्तन नहीं हुआ है। वेदों की रक्षा का प्रधान साधन उसे अनेक विधि से पढना था। वेद पाठ अनेक थे।

पद पाठ---वेद रक्षा के लिए जो विधि सबसे प्रथम काम में लाई गई, वह 'पद-पाठ' थी। इसके द्वारा वेद की प्रत्येक ऋचा का प्रत्येक शब्द अलग-अलग लिखा जाकर रक्षित किया गया।

क्रम पाठ--दूसरी रीति क्रम पाठ की थी, इसमें शब्द के प्रथम और अतिम अक्षर को छोड़कर प्रत्येक अक्षर को दो बार दुहराया गया। जैसे 'अब दल' लिखना हुआ तो—अब-बद-दल, इस प्रकार लिखा गया।

जटार पाठ--इतना ही नहीं, एक रीति जटा पाठ की भी निकाली गई। इस रीति में 'अब दल' इस प्रकार पाठ किया गया--अब, बअ, अब, बद, दब, बद, दल, लद, दल।

घन पाठ—इस पर घन पाठ भी किया गया। इसमें अब, बअ, अबद, दबअ, अबद, बद. बदल इत्यादि रूप बने।

उदात्त अनुदात्त स्वर--वेद पाठ के कुछ नियम भी बनाए गए। उनमें उदात्त, अनुदात्त और स्वारित इस प्रकार तीन उच्चारण भेद किए। इस प्रकार वेद के पाठ और उच्चारण को शुद्ध रखने का बड़ा भारी प्रयत्न किया गया।

ऋषि और ब्राह्मण—जो लोग वेदों के सूक्त रचते थे, वे ऋषि कहाते थे।

---

१. विष्णु पुराण में २८ व्यास लिखे हैं। जिनमें पराशर और द्रोण पुत्र अश्वत्थामा के नाम भी गिनाए हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु अब ये व्याख्याकार ब्राह्मण कहाए। इन्होंने जो व्याख्या वेद के मन्त्रों की रची वे ग्रन्थ भी ब्राह्मण कहाए। इन ब्राह्मणों की परम्परा में वेदों की शाखाएँ फूटती ही चली गईं। इसी समय वैदिक साहित्य की रचना भी हुई।

वैदिक साहित्य—वैदिक साहित्य में ब्राह्मण प्रमुख हैं। ये बहुत थे, पर अब ७० ही रह गए हैं। प्रसिद्ध वेद का व्याख्याता सायण जो १४वीं शताब्दी में हुआ। उसके काल तक एक और ब्राह्मण उपलब्ध या परिचित था, जो अब नहीं है, अप्राप्य हैं।

उपवेद, वेदाङ्ग उपाङ्ग—चार वेदों के अतिरिक्त चार उपवेद, छै वेदाङ्ग, और कई उपांग हैं। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गंधर्व वेद, और अथर्ववेद का अर्थशास्त्र।

६ वेदांगों में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द हैं उपाँगों में पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र हैं।

अन्तिम परिगणन—सम्भवतः ई० पू० छठी शताब्दी में वेद का अन्तिम बार पाठ स्थिर किया गया। और वेदों की शाखाएँ गिनी गईं। पुराणों के अनुसार ऋग्वेद की १६, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की एक हज़ार और अथर्व की ९ शाखाएँ वर्णित हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण—ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ऋग्वेद, अथर्ववेद और शतपथ ब्राह्मण महत्त्वपूर्ण हैं।

२—ऋग्वेद

ऋग्वेद का गौरव—ऋग्वेद आर्यों का सब से पुराना ग्रन्थ है। इसमें आर्य लोगों की प्राचीनतम सभ्यता का वह चित्रण है, कि जिस से सब आर्य जातियों के धर्म और प्राचीन घटनाओं की बहुत सी बातें ज्ञात हो जाती हैं। इस ग्रन्थ से मनुष्य जाति के दार्शनिक भावों और धर्म-सम्बन्धी विचारों व विश्वासों के उत्पन्न होने के कारणों पर प्रकाश पड़ता है। ऋग्वेद को पढ़ने से हम जान जाते हैं कि मनुष्य का मन उन वस्तुओं के प्रति पूजा करने की भावनाओं से कैसे भर जाता है। जो सृष्टि में उत्तम, बलवान और आश्चर्यजनक हों। ऋग्वेद इस बात पर प्रकाश डालता है कि मनुष्य का मन सृष्टि से हटकर सृष्टि के देवता की ओर कैसे गया।

ऋग्वेद में १०२८ सूक्त हैं, जिनमें १०००० से ज़्यादा ऋचाएँ हैं। ये सूक्त १० मण्डलों में विभक्त हैं। ये सूक्त सैंकड़ों वर्षों में निर्माण हुए हैं। उत्तर काल में ऋग्वेद की हर ऋचा, हर शब्द, और हरएक अक्षर की गिनती कर ली गई थी। इस गिनती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के हिसाब से ऋचाओं की संख्या १०४०२ से लेकर १०६२२ तक, शब्दों की संख्या १ लाख ५३ हज़ार ८२६ और अक्षरों की चार लाख ३२ हज़ार है। ऋग्वेद प्राचीन वैदिक सभ्यता पर पूरा प्रभाव डालता है।

वे शताब्दियों तक इन सूक्तों को मौखिक परम्परा से सीखते रहे। शताब्दियों तक ऋग्वेद की अमूल्यनिधि इसी प्रकार सुरक्षित रही।

वैदिक ऋषि—इन वैदिक ऋषियों में सबसे प्रधान विश्वामित्र और वशिष्ठ हैं। वेद का प्रबल विजयी राजा सुदास वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों ही को पुरोहित और मंत्री मानता था। विश्वामित्र और वशिष्ठ दोनों ही ने सुदास के लिए यज्ञ किए। ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के सूक्तों को बनाने वाले विश्वामित्र थे, और सातवां मण्डल वशिष्ठ का बनाया हुआ है। इन दोनों ऋषि-कुलों में कुछ कारणों से द्वेष भाव उत्पन्न हो गया था। ऋग्वेद के कुछ सूक्तों में एक दूसरे की निन्दा की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह द्वेष बहुत काल तक चला, और इसके मूल में राजनैतिक कारण थे। उत्तर काल में इन दोनों बड़े ऋषियों के सम्बन्ध में अनेक कथा कहानियां पुराणों में वर्णन की गई हैं।

अंगिरा, वामदेव, भरद्वाज, गृत्समद, कण्व और अत्रि भी वैदिक ऋषि हैं। अंगिरा ऋग्वेद के नौवें मण्डल का रचयिता है। और वामदेव व भरद्वाज चौथे और छठे मण्डल के। गृत्समद दूसरे मण्डल का रचयिता है। प्रसिद्ध है कि गृत्समद के पुत्र सौनिक ने चार वर्णों का विभाजन किया। कण्व ऋग्वेद के आठवें और अत्रि पांचवे मण्डल के ऋषि हैं। मत्स्य पुराण में ९१ वैदिक ऋषियों का वर्णन किया गया है, जो सूक्तों के रचयिता थे। आगे चल कर इन्हीं के वंशज, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि में विभक्त हो गए। संक्षेप में वैदिक सूक्त इन वर्णों के संयुक्त पूर्व पुरुषों ने बनाए थे।

वैदिक ऐतिहासिक घटनाएँ—यह वेद आर्यों का धर्म ग्रन्थ तो है ही, परन्तु उसका ऐतिहासिक मूल्य भी बहुत है। संसार का सबसे पहला पद्य ऋग्वेद में, और सब से पुराना गद्य यजुर्वेद में है। ऋग्वेद के दूसरे से सातवें मण्डल तक ऋषियों के एक-एक घरानों का प्राधान्य है। परन्तु दसवें मण्डल में अनेक बड़े-बड़े प्राचीन ऋषि हैं। तीसरे और सातवें मण्डल में राजा सुदास का वर्णन है। इस स्थल के पढ़ने से पता लगता है कि सुदास का ययाति के वंशधरों से युद्ध हुआ। आर्यों की दो प्रधान शाखाएँ थीं—एक सूर्यपुत्र, वैवस्वत मनु की शाखा जो सूर्यवंशी अथवा मानव कहाते थे, दूसरे वैवस्वत मनु के जामाता चन्द्रपुत्र बुध की शाखा जो चन्द्रवंश अथवा ऐल के नाम से प्रसिद्ध हुई। चन्द्रवंश में ययाति, प्रसिद्ध राजा हुए, जिनके पाँच पुत्र यदु, तुर्वश, अनु, द्रुह्यु और पुरु के नामों पर पाँच पृथक् वंश स्थापित हुए, जिनमें पुरु वंश चन्द्र वंश का प्रतिनिधि रहा। इसी वंश में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भरत हुए, और आगे चलकर महाभारत के प्रसिद्ध पात्र कौरव पाण्डव भी इसी वंश में हुए। सूर्यवंश में प्रसिद्ध राजा राम हुए।

इन सब प्रधान आर्यवंशों के अतिरिक्त गांधार, मूजवन्त, मत्स्य, तृत्सु, भरत, भृगु कुशीनर, चेदि, त्रिवि, पांचाल, कुरु, सृंजय, कट, तारावत आदि वंश भी थे। इनमें से कुछ वंश पुरुवंशी थे। प्रसिद्ध विजेता सुदास पौरव था। यादवों का वंश बहुत बड़ा था, जिसकी दो शाखाएँ थीं। जिनमें एक हैहय वंश था। उस काल में राजा का पद पैत्रिक होता था। और वह समिति के द्वारा प्रजा पर राज्य करता था। युद्ध का एक यह नियम भी था कि पराजित देश को तत्काल अभयदान दिया जाता था। धनुष–वाण, ढाल–तलवार के अतिरिक्त शिला प्रक्षेपक, शरीर त्राण, अग्निअस्त्र, आदि से युद्ध होता था। व्यभिचार, घूंस और आत्मघात अपराध माना जाता था। अनार्य जातियों में भ्रतृ, दनु, पिप्र, सुष्प, सम्बर, वृगद, बलि, नमुचि, मृगय, अर्बुद आदि राजा थे। नतृ के ९९ किले इन्द्र ने तोड़े। शम्बर और वृंगद के १००–१०० किलों का विध्वंस किया। पिप्र के ५०००० योद्धा मारे गए। बलि के ९९ पहाड़ी किले थे, जो सब जीत लिए गए।

सुदास के पिता दिवोदास बड़े भारी विजयी राजा थे। इन्होंने तुर्वशों, द्रुह्यों और शम्बर को तथा गंगु लोगों को पराजित किया था। उनका पुत्र सुदास वैदिक विजेताओं में सबसे बड़ा है। नहुष वंश, यदु–तुर्वश, अनु और द्रुह्य के लोगों ने भारतों से मिल कर तथा बहुत से अनार्य राजाओं की सेना लेकर सुदास से युद्ध किया। नाहुषों की सहायता के लिए भार्गव, परोदास, पक्थ, भलान, अलिन, शिव, विशात्, कवम्, युध्यामधि, अज, सिगरु और चक्षु तथा २१ जाति के वैकर्ण लोग भी सम्मिलित हुए। कितने ही सिम्यु लोग भी उनकी सहायता को आए। रावी नदी के किनारे पर महाविकराल युद्ध हुआ, जिसमें सुदास ने सम्मिलित शत्रुओं को पूर्ण पराजित किया। इस युद्ध में अनु और द्रुह्य वंशियों के ६००० योद्धा खेत रहे। आनवों का सारा सामान लूट लिया गया। युध्यामधि महाराजाधिराज तथा राजा वर्चिन के १०,००० सैनिक युद्ध में खेत रहे। सात किले सुदास के हाथ लगे। अज, सिगरु और चक्षु ने सुदास की आधीनता स्वीकार करली। इसके बाद सुदास ने यमुना नदी के किनारे तक बढ़ कर महावली भेद को पराजित कर उसका देश छीन लिया, और भेद सुदास की प्रजा बन गया।

सूर्य वंश और चन्द्र वंश––ऋग्वेद में चन्द्र वंश और सूर्य वंश का कोई उल्लेख नहीं है। निश्चय ही ये वंश आगे चलकर प्रतिष्ठित हुए। परन्तु इन दोनों कुलों के मूल वंशधरों का नाम बहुत स्थान पर आया है। सूर्य वंश की अपेक्षा चन्द्र वंश के मूल पुरुषों की अधिक प्रधानता हैं। पुरूरवा नहुष, आयु और ययाति के नाम ऋग्वेद में हैं। ययाति के पांचों पुत्रों के नाम और उनके नाम के ही पांच कुलों का भी उल्लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। एक महत्व पूर्ण बात यह है कि ये चन्द्र वंशी क्षत्रिय अग्नि के उपासक थे। तथा इन्द्रादि देवताओं का पूजन करते थे। अग्नि की उपासना ही होमाग्नि अग्निहोत्र तथा यज्ञों के रूप में आगे परिवर्तित हो गई। सूर्यवंशी भी उनकी देखा देखी अग्नि पूजन करने लगे। और यज्ञ आर्यों के सांस्कृतिक प्रतीक बन गए। ऋग्वेद की एक ऋचा का अर्थ है—'हे इन्द्र' और अग्नि, यदि तुम यदुओं में तुर्वशों में, इसी तरह द्रह्युओं में, अनुओं में और पुरुओं में हो तो यहां आओ और सोमपान करो[1]। महाभारत और पुराणों से प्रकट है कि ययाति के पांच पुत्र दो पत्नियों से थे—यदु और तुर्वसु सगे भाई थे, द्रुह्यु—अनु और पुरु दूसरी स्त्री से थे।

भरतों और यदुतुर्वशों का युद्ध—ऋग्वेद में उल्लेख है कि इन्द्र ने दिवोदास के लिए यदु तुर्वशों को मारा। सरयू तट पर भरतों से यदु—तुर्वशों की लड़ाइवां हुईं।

दाशराज्ञ संग्राम—ऋग्वेद में इस बड़े युद्ध का विस्तृत वर्णन है। यदु युद्ध रुरूष्णी नदी के किनारे हुआ था। आजकल इस नदी का नाम रावी है। एक ओर भरत और सुदास तथा उसके पुरोहित वशिष्ठ और तृत्सु थे। दूसरी ओर यदू तुर्वशु द्रुह्य अनु और पुरु तथा उनके सहायक मित्र अन्य पांच राजा थे। इस युद्ध को इन्द्र की सहायता से भरतों ने जय किया था। इसके संग्राम का हमने अन्यत्र वर्णन किया है। यह संग्राम पंजाब में प्रथम ही से बसे हुए भरतों से बाद के नए राज्यों के संस्थापकों यदु आदि आर्य वहिष्कृत राजाओं ने अनार्य राजाओं की सहायता से किया था। यहां एक यह बात जानने योग्य है कि यताति की दोनों हीं पत्नियां अनार्य वंश की थीं। तथा यताति ने अपने छोटे पुत्र पुरु की अपने चन्द्रवंश की प्रधान गद्दी का अधिकारीबना —शेष चार पुत्रों को सीमांत राज्य देकर आर्य जाति से ही वहिष्कृत कर दिया था। तथा आर्यावर्त क्षेत्र में उनका विस्तार नहीं हो सकता था—इसी से उन्होंने अन्य अनार्य राजाओं से मिल कर पंजाब के प्राचीन भरतों के राज्य को विध्वंस कर अपने राज्यों के विस्तार की चेष्टा की थी। जो सफल नहीं हुई। मार्के की बात यह है कि इस युद्ध में 'पुरु' सम्मिलित नहीं हुआ था।

पुरूरुवा की संतति—ऋग्वेद में पुरूरुवा की संतति का सबसे अधिक विस्तार है। यद्यपि वह इतिहास के रूप में नहीं है घटनाओं के रूप में है। वास्तव में चन्द्र वंश का मूल पुरूरुवा ही है। चन्द्र और बुध को हम छोड़ देते हैं। पुरूरवा की माता इला थी। इला मनु की पुत्री थी। उसे विवाह में इलावर्ष देश दिया गया था। हिमालय के उत्तर ओर का देश ही इलावर्ष था। यह स्थान दक्षिण पूर्वी ईरान का प्रान्त था। ऋग्वेद में पुरूरवा और उर्वशी का यथेष्ट वर्णन हैं। पुरूरवा के बाद

---

१. यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्यष्वनुषु पूरुषुस्थः। अतः परिवृषणा वाहि यातमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य। ऋ० १। २०८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आयु और नहुष का वर्णन है। इनकी भी ऋग्वेद में बहुत महिमा है। इसके बाद ययाति राजा है। जो बहुत बड़ा राजा हुआ है। सात द्वीपों पर उसका राज्य था। ऋग्वेद में इसे अपने वंश का मुखिया माना गया है। तथा इसके बाद दनु का नाम आया है। इसने असुर याजक शुक्र-काव्य की कन्या देवयानी और असुर राज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से ब्याह किया था। यह कथा ऋग्वेद में नही है, महाभारत में हैं इन्हीं स्त्रियों से उसे वे पांचों पुत्र हुए, जिनका ऋग्वेद में बहुत उल्लेख है। द्रुह्य ने असुर याजक भृगु को ही अपना पुरोहित बनाया था। तुर्वसु की संतति यवन हुई और अनु का वंश म्लेच्छ हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि ऋग्वेद काल में इन ययाति के वंश धरों ने पहिले पूर्व की ओर गंगा की घाटी तथा अयोध्या को लक्ष्य कर चढ़ाई की थी। परन्तु यहां आर्यावर्त का संगठन दृढ़ हो जाने से उन्हें सफलता नहीं मिली। फिर उन्होंने पंजाब में पच्छिम की ओर रुख किया, जहां प्राचीन भरतों के राज्य थे। परन्तु दाश राज्य संग्राम में पराजित होकर सरस्वती के किनारे से गंगा जमुना के किनारे २ दक्षिण की तरफ फैल गए।

पुरु को उसके पिता ने चन्द्र वंश की मुख्य गद्दी देकर अपना उत्तराधिकारी बनाया और उसे आशीर्वाद दिया—अपौरवातु महान कदाचित् भविष्यति अर्थात् पौरवों से रहित पृथ्वी का कोई भाग न रहेगा। पुरु के राज्य विस्तार पहिले सरस्वती के दोनों किनारों पर हुआ। आगे पौरवों का बहुत विस्तार हुआ। इस वंश के अनेक राजाओं का वर्णन ऋग्वेद में है। कण्व ऋषि इसी वंश के पुरुष हैं। तथा इस वंश के पुरोहित भी हैं। इसी कुल में भरत हुआ। पर उसका नाम ऋग्वेद में नहीं है। इसी कुल में कुरु हुआ, जिसने कुरु क्षेत्र की स्थापना की। सरस्वती और यमुना के बीच के भारी मैदान को कुरुक्षेत्र कहते थे। पौरवों के विकास काल में कुरुक्षेत्र सभ्यता, संस्कृति का केन्द्र रहा। यहां की भाषा रीति रस्म–व्यवहार आदर्श माने जाते थे। ब्राह्मण ग्रन्थों में हमें यह संकेत मिलते हैं। यद्यपि कुरु और भरत का नाम ऋग्वेद में नहीं है; पर इस वंश का व्यक्ति देवापि जो शन्तनु का भाई था ऋग्वेद के अन्त के एक सूक्त का कर्ता है।

यदुओं का वर्णन ऋग्वेद में सदा तुर्वशों के साथ आया है। उसमें कण्वों का भी उल्लेख है। संभव है यदुओं और तुर्वशों की सीमाएं मिलती रहीं हों। ऋग्वेद का आठवां मण्डल काण्व ऋषियों का है। जो स्वयं चन्द्रवंशी होने के कारण यदुओं-तुर्वशों के हितैषी हैं। ब्राह्मणों में भरत के पुरोहित भी कण्व ही कहे गए हैं। आंङ्गरिस भी यदु–तुर्वशों से सम्बन्धित है। ऋग्वेद के पहले मण्डल में आंङ्गिरस के अनेक सूक्तों में इस बात का आभास मिलता है। यह स्पष्ट है कि ऋग्वेद काल में यदुओं का काफी विस्तार हो गया था। इनकी बस्तियां यमुना किनारे पर थीं। परन्तु ऋग्वेद काल में कदाचित यादवों के राज्य नहीं हुए थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गण थे। और उनके प्रमुख गण प्रमुख कहाते थे। शूरसेन और वसुदेव यादवों के गण प्रमुख थे। ययाति ने आरम्भ ही में अपने पुत्र यदु से कह दिया था कि तेरी प्रजा अराजक रहेगी।[1] इसी से यादव गोपालन करते थे। तथा गोप नाम से प्रसिद्ध थे। ऋग्वेद के आठवें मण्डल में कण्व सूक्तों में ऐसे उल्लेख हैं कि हमने यदु तुर्वशों से गाए लीं। आगे चलकर तुर्वश पांचालों में मिल गए। पांचालों का प्रमुख पुरष सृंजय सहदेव, सोमक ऋग्देव में वर्णित है।

हरिवंश में द्रुह्यों का वंश गांधार कहा गया है। पर अनु के प्रचेता और सुचेता आदि पुत्र पौत्र हुए। आगे फिर उसके वंश का पता नहीं लगता। परन्तु महाभारत के आदि पर्व में, एक श्लोक मिलता है जिसका अभिप्राय यह है कि यदु के यादव, तुर्वसु के यवन. द्रुह्य के भोज और अनु के म्लेच्छ वंशज हुए।[2] संभव है महाभारत काल तक इन वंशों में यह परिवर्तन हो गया हो। परन्तु हरिवंश के कथन की अपेक्षा महाभारत का यह कथन ठीक प्रतीत होता है कि द्रुह्य से भोजनों की उत्पत्ति हुई। सभापर्व में भी कृष्ण के मुंह से यही कहलाया गया है। संभवतः यही द्रुह्य वंशी भोज मध्यदेश में भारत संग्राम काल में मगध और शूरसेन देशों में प्रबल थे। और इन्हीं के कुल में जरासंध आदि हुए। यह भी संभव है कि अनु और आयोन (ion) एक ही हों। उनसे यवनों की उत्पत्ति हुई हो। और तुर्वसु से तुर्क अथवा तूर (ईरान की तूराना) आदि जातियां उत्पन्न हुई हों।

ऋग्वेद में तो तुर्वसुओं का सृंयजों से मिल जाने ही का उल्लेख है। तथा अनु की अग्नि प्रसिद थी ऐसा संकेत है। उसके यहां इन्द्र और अग्नि देव नित्य आते थे। इससे यह अनुमान होता है—कि महाभारत काल तक ये जातियां इस प्रकार परिवर्तित हो गईं थीं। यहां ययाति ने अपने पुत्रों को जो शाप दिया था—उस पर ध्यान देना चाहिए—यदु की संतति को अराज भाक् (राज काज न करने योग्य) तुर्वसु को संतति को उच्छेद का शाप दिया गया था। अनु को कहा गया था कि तेरी संतान अग्नि की उपासना छोड़ नास्तिक हो जायगी।

ऋग्वेद में यद्यपि चन्द्रवंश और सूर्य वंश का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। पर महाभारत में कृष्ण ने सभा पर्व में कहा है–कि इस समय भारत में एल और ऐक्ष्वाकु वंश के सौ कुल हैं। उनमें भोज वंशियों का विस्तार सबसे अधिक है। ऋग्वेद तो आर्यों की एक जाति मानता है। तथा भारत में उनके अतिरिक्त दो अन्य जातियों का

१—तस्मादराज भाक् तात प्रजातव भविष्यति।

२—यदोस्तुयादवाः जातास्तुर्वशोर्यवना स्मृताः।
द्रुह्योः सुतास्तु वै भोजाअनोस्तु म्लेच्छ जातयः। महा० आदि०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उल्लेख करता है एक दास, दूसरी अदेव ।

ऋग्वेद और महाभारत के इन प्रवचनों से हम कुछ अंश तक पाश्चात्यों की उस मान्यता का निराकरण पाते हैं, कि भारत में आर्यों की दो शाखाऐं आईं । ये शाखाएँ—प्राचीन भरत कुल और उनके उत्तर वर्ती—एल और एक्ष्वाकु वंशी ही होंगी । जिनमें भारत संग्राम काल में एल वंश प्रबल था । यह वंश ही चन्द्रवंश था और वह गंगा, यमुना–और सरस्वती के किनारे पर आबाद था । भारत संग्राम चंद्र-वंशियों में ही आपसी झगड़े के कारण हुआ ।

भारत——ऋग्वेद में 'भरताः' नाम बारम्बार आया है । यह नाम विशेष कर तीसरे और सातवें मंडलों में त्रित्सु और सुदास के नाम के साथ आया है । सातवें मण्डल में जो वशिष्ठ के सूक्त हैं, उनसे प्रकट होता है, कि वशिष्ठ भरतों के कुल गुरु रहे थे, तथा भरतों के ही कुल में त्रित्सु थे । इसी प्रकार विश्वामित्र के सूक्तों में भी भरतों का बहुत उल्लेख है । ये सूक्त ऋग्वेद के तीसरे मण्डल में हैं । भरतों के राजा सुदास से वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों ही का सम्बन्ध था । एक सूक्त में विश्वा-मित्र 'भारत–जन' का प्रयोग करता है । छटे मण्डल में भरद्वाज के सूक्त हैं, वे भी उन में भी भरतों का, भारतों का उल्लेख है ।

ब्राह्मण ग्रन्थों में 'भारत' का अर्थ क्षत्रिय–योद्धा या पुरोहित के अर्थ में किया गया है । निरुक्तकार भारती शब्द का अर्थ सूर्य वंश से सम्बन्धित कहता है । परन्तु महाभारत में कौरव–पाण्डव दोनों ही को भारत कहा गया है, सो महाभारत के भारत और ऋग्वेद के भारत भिन्न २ हैं । महाभारत में ही इस बात को स्पष्ट कर दिया गया है[२] । इस श्लोक में यह स्पष्ट है कि पुराने भारत प्रसिद्ध हैं—वे अपरे अर्थात् और हैं ।

ग्रन्थ विभाग—ऋग्वेद के दस मण्डल हैं, प्रथम और दसवें मण्डल सब से बड़े हैं । प्रत्येक मण्डल में अनेक सूक्त और प्रत्येक सूक्त में अनेक ऋचाऐं हैं । छोटे सूक्तों में चार ही छै ऋचाऐं हैं । पर एक मण्डल के एक सूक्त में ५२ ऋचाएँ तक हैं । अधिकतर सूक्तों में प्रायः १२ से १५ तक ऋचाएँ रहती हैं ।

प्रथम मण्डल——प्रथम मण्डल में १९१ सूक्त हैं । सूक्त छन्दों में लिखे गए हैं ।

---

१. योनोदास आर्यो वा पुरुष्टुता देव इन्द्र युधये चिके तति । ऋ० मं० १० सू० ३८ ऋ० ३ । सायण ने आर्य शब्द का अर्थ त्रैवर्णिक किया है–अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ।

२. भारताद्भारती कीर्ति येनेदं भारत् कुलम् । अप ये च पूर्वे वै भारता इति विश्रुताः । महा० १३१ आ अ० ७४ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम मण्डल में गायत्री, अनुष्टुप, त्रिष्टुप, जगती, बृहती, सतौबृहती, द्विपदी, विराज, और अत्यष्टि छन्द प्रमुख है। कई अप्रमुख छन्द भी है। इन १९१ सूक्तों में २५ ऋषि हैं, जिनमें दो केवल एक सूक्त के, और पांच केवल एक अन्य सूक्त के हों। इस प्रकार प्रथम मण्डल के प्रधानतया १८ ऋषि हैं। ये ऋषि समकालीन नहीं है। भिन्न भिन्न काल के ऋषियों द्वारा रचे गए मन्त्रों को प्रथम मण्डल में एकत्र किया गया है।

मण्डल के १९१ सूक्तों में प्रथक् २ देवताओं के विषय में अनेक मंत्र है। अब देवता सोम पान के लिए निमन्त्रित किए जाते हैं, और सोम से बल प्राप्त करते हैं। उनसे कहा जाता है कि घोड़े की भांति दौड़ कर आओ और बैल की भांति बहुत सा सोमपान करो। बैल की उपमाएँ अधिक हैं। इन्द्र और विष्णु तक की उपमाएँ बैल से दी गई हैं। कहीं कहीं भैंसे और घोड़े से भी उपमा दी गई है। मेघों की उपमाएँ भैंस से दी हुई हैं। मेघों को बहुत स्थानों पर गाय कहा गया है। इस मण्डल में वर्णित प्रमुख देवताओं का विवरण इस प्रकार है :--

वैदिक देवता--इन्द्र-वेद का सबसे बड़ा देवता है। देवताओं का राजा और विष्णु का मित्र है। इन्हें कुशिक भी कहा गया है। इस की कुतियां का नाम सरमा है। त्वष्टा ने दधीचि की हड्डियों से उनका वज्र बनाया था। जिस से उसने वृत्र को मारा। इसके अतिरिक्त इन्द्र ने सुश्व, नमुचि करंज, परनय, और वृंगद को मारा। वृंगद के सौ दुर्ग नष्ट किए। दासों के भी दुर्ग मर्दित किए। सुश्रवरु, तूर्यवान्, यतस, नर्य, तुर्वश, यदु, तुर्वीत, पूरुकुत्स, पुरू, और सुदास की रक्षा की। उन्हें युद्ध जीतने में मदद की, कक्षीवान् ऋषि की वृचया स्त्री थी।

अग्नि--इन्द्र के बाद सब से प्रसिद्ध देवता है। यह होतार, वसीठी, और देवताओं में यज्ञ लाने वाला है। यह दो माताओं का पुत्र है। भृगु वंश से इसका सम्बन्ध है, तथा मनु का पुरोहित है। होत्रा-भारती-वहतृ और धिषणा -इसकी स्त्रियां हैं। धिष्ण वाग्देवी है। स्वाहा नाम से अग्नि में यज्ञ होता है।

वायु--यह नाम दो मन्त्रों में है।

मरुत--भग के साथ उत्पन्न हुए। कन्धे पर बरछा और हाथ में तलवार। प्रथम देवता न थे। पीछे इन्द्र की सहायता युद्ध में करके यज्ञ भाग पाने लगा।

आश्विन--दो हैं। इन्होंने करकन्धु-वय-और वशिष्ठ को प्रसन्न किया। तथा सुदास को उनकी स्त्री सुदेवी लादी। बांझ गाय से दूध निकाला, अन्धे तथा लंगड़े परावृत्र को चंगा किया, विस्पला की टूटी टांग जोड़ दी। वद्धमती को हिरण्य हस्त पुत्र और ऋज्राश्व को नेत्र दिए। विश्वक को विश्नायुल पुत्र एवं घोषा को पति दिया। इन्होंने वृद्ध च्यवन को युवा बनाया। तथा अन्यों की सहायता की--ये चिकित्सक थे। योद्धा भी थे। दस्युओं को हराया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्व देवस्—१३ हैं।

वृहस्पति—ब्रह्मणस्पाति–मन्त्रों के देवता हैं।

ऋभु—तीन हैं, ये अङ्गिरस सुधन्वा के पुत्र थे। इन्द्र की सहायता करने से देव बन गए। इन्हों ने अश्व और अश्विन् का रथ बनाया।

वरुण—मित्र वरुण और मित्र का वर्णन साथ २ आता है।

पूषन—बारह आदित्यों में एक है।

रुद्र—बलवान् उदार, औषधि और मन्त्रों के स्वामी, मरुतों के पूर्वज, तथा प्रचण्ड पुरुष हैं।

उषस्—आकाश की पुत्री ज्योतिपूर्ण।

सूर्य—मित्र वरुण तथा अग्नि की आँख। विष्णु।

सोम—(चन्द्रमा) परम बुद्धिमान्, धन दाता, औषधियों के स्वामी।

सोम—(रस) पत्थर में पीस तथा ऊनी छन्ने में छान कर और मठ्ठे में मिला कर पिया जाता था।

विष्णु—द्यु स के पुत्र। तीन पगों में पृथ्वी और आकाश में विचरण करने वाले। इसी प्रकार रति, सविता, भग, मातरिश्वा, तृत, ऋतु, अर्यमन आदि देवताओं का उल्लेख है।

इस मंडल के ऋषि—विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्दस, मधुच्छन्दस के पुत्र जेता, कण्व पुत्र मेधातिथि, अजीगर्त पुत्र शुनः शेप, अंगिरस पुत्र हिरण्पस्तूप, अङ्गिरस घोर पुत्र कण्व, कण्व पुत्र प्रकण्व, अंगिरस पुत्र सम्य, गौतम पुत्र नोधस, वशिष्ठ के पुत्र शक्ति, शक्ति के पुत्र पराशर, रहूगण के पुत्र गौतम, अंगिरस पुत्र कुत्स, भगीरथ पुत्र कश्यप, राजा गिरि के पाँच पुत्र वर्षा गिरि आदि, कुत्स (दूसरे) कक्षीवान् उशिज के पुत्र यजुवंशी, दिवोदास वंशी परुच्छेप उचत्थ-ममता पुत्र दीर्घतमस, मान पुत्र अगस्त, लोपामुद्रा–अगस्त पत्नी। इस मण्डल के ऋषि हैं।

लोपामुद्रा अगस्त पत्नी थी, पाँच वर्षागिरों के नाम थे—रिजिराश्व, अम्बरीष, सुराधास, सहदेव और भयमान। मधुच्छन्दस और जेता विश्वामित्र के पुत्र पौत्र हैं। शुनः शेप अजीगर्त के पुत्र थे। हिरण्य स्तूप, कण्व, प्रस्कण्व, सव्य और कुरु अंगिरस वंशी थे। दीर्घतमस अन्धे थे। इस प्रकार इस मण्डल के भिन्न २ ऋषि हैं।

अन्य नाम—मनु, नहुष, इला, ययाति, पुरूरुवस, न वग्वधराना, (आर्यों के लिए युद्ध करने वाले) दिवोदास, कसोजु, रस, तृसोक, मान्धाता, उग्रदेव, यदु, तुर्वश, अनु, पुरु, द्रुह्य, भृगु, नववास्त्व, वृहद्रथ, तुर्वाति, अतिथिग्व, सर्यात, सुश्रव, तुर्वयान, नरय, पुरुवंशी, भरद्वाज, पुरुमीढ़, सतवनि, यतस, पुरुकुत्स, रेभा, वन्दन, दधीच, ऋजि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वन अत्रक, भ्रुज्यु, करकन्ध के पुत्र, वर्य, सुचन्ति, पृशिगु, परावृज, वशिष्ठ, वम्र, श्रुतर्य्य विस्फला, वसु, कलि प्रथि, सयु, सुदेवी, (सुदास की पत्नि) अध्रिगु, सुभर, रितस्तुप, कुत्स, दवाति, ध्वसान्ति, पुरुशान्ति, अफास्व, च्यवन, हिरण्यहस्त, सेलाराज्य जन्हु, ऋवत्क, सर, कृष्ण पुत्र विष्वक्, विश्नायु, उद्योपा, नृश पुत्र कण्व, स्वान, स्वनय, कण्व मरार सार, अमावस, भाव, पुरु मीढ़, दीर्घतमस, तृण स्कन्द आदि नाम विनतियों में प्रसंग बंश आ गए हैं। इन पुरुषों के सम्बन्ध में कोई कथा नहीं है। एकाध घटना मात्र का उल्लेख है, वास्तव में यह मण्डल प्रार्थनाओं का ही संग्रह है।

आर्यों के शत्रुओं में वृत्र, दनु, पिप्रु, सुश्ना, शम्बर, अर्बुद, वम्र, नमुचि, करंज, परनय, नगृद, बल, पणि, वृषय, व्यंस–अहि, रौहिनि, कुप्व, तुग्र, त्रैतन और कूपवाच नाम आए हैं।

इस मण्डल में जितने मन्त्र हैं, सबमें प्रार्थनाएँ ही हैं कोई कथा प्रसंग नहीं है। कहीं कहीं कुछ व्यक्तियों के प्रसंग आ गए हैं। इस मण्डल में थोड़े ही विषयों का बड़ा वर्णन है। जो प्रायः नीरस है कुछ वर्णन सरस भी है जैसे उषा का वर्णन। पुनरुक्तियां हैं। भिन्न २ ऋषियों ने एक ही बात को दोहराया है।

रचना क्रम—रचना क्रम की दृष्टि से यह मण्डल सबसे प्राचीन नहीं है। इस मण्डल के पहिले ही मन्त्र में प्राचीन मन्त्रकारों का कथन है, जिससे उन मन्त्रों का इस मन्त्र से प्रथम होना सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त वशिष्ठ और विश्वामित्र के पुत्र पौत्र इस मण्डल के ऋषि हैं—परन्तु विश्वामित्र और वशिष्ठ स्वयं अगले मण्डलों के ऋषि हैं।

सामाजिक रीतियों का संकेत—इस मण्डल में प्रसंग वंश तत्कालीन सामाजिक संकेत भी आए हैं। परन्तु मण्डल के मन्त्र एक काल के नहीं हैं। अतः ये रीतियां एक ही काल की हैं, यह नहीं कहा जा सकता। फिर भी उनसे त्रेता के अन्त काल और द्वापर के सम्पूर्ण जीवन पर प्रकाश पड़ता है, क्योंकि इस मण्डल के अधिकांश ऋषि इसी काल के हैं। कुछ संकेत यहां देते हैं :—

१ आर्य राज्यों की पांच मुख्य शाखाएँ थी, यदु, तुर्वश अनु, द्रुह्यु और पुरु (ये पांचों ययाति पुत्र थे)

२ आर्यों के अनार्यों से युद्ध होते थे, ये लोग दास, दस्यु, सिम्यु थे। धूम्रवर्ण इनके नेता बड़े प्रभाव शाली थे, उनमें से कइयों के सौ सौ किले थे। सुश्न, पिप्र, वृत्र, कुवष और शम्बर के दुर्ग इन्द्र ने तोड़े, कुयव के मरने पर उसकी दो स्त्रियों ने विलाप किया।

३ बुरे दामाद खूब धन देते थे—तब उनका ब्याह हो गया[1]।

४ सौपतवारों तक के जहाज होते थे, अग्नि से जंगल जलाकर साफ किए जाते

---

१. सूक्त १०९।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तथा बस्तियां बसाई जाती थीं। आर्य सभा करके कोई बात निर्णय करते थे। घुड़ दौड़ होती थी, युद्ध रथों पर होते थे। ऋत्विजों को भी पराजित शत्रुओं की लूट के माल में हिस्सा मिलता था—क्योंकि उनकी प्रार्थनाओं से देवता प्रसन्न होकर युद्ध जय कराते थे। अश्वमेध यज्ञ होते थे।

५ सात नदियों के नाम इस मण्डल में हैं—सतलज, व्याम, रावी, चनाव, झेलम, सिन्धु, सरस्वती। ये सब पंजाब की नदियाँ हैं। सिन्धु, सरस्वती के नाम अधिक हैं। गंगा, यमुना, गोदावरी, कृष्णा—नर्मदा आदि का नाम इस मण्डल में नहीं आया है[१]।

६ सौ वर्ष तक जीने की प्रार्थना की गई है[२]।

७ चारों वर्णों के नाम इस मण्डल में नहीं हैं। असुर शब्द देवताओं के लिए आया है। ब्रह्म और ईश्वर का नाम भी नहीं है। केवल देवताओं ही की स्तुति है।

कुछ ऐतिहासिक संकेत—इस मण्डल में कुछ ऐतिहासिक संकेत हैं- इन्द्र कौशिक है उसका नाम राम भी है[३]। शुनः शेप का बंधन और वरुण की प्रार्थना[४]। पुरूरवस[५]। वृत्र को मार कर इन्द्र डर कर भाग गया[६]। सुदास और तुर्वश के कथन[७]। ऋजिश्वन ने पिप्रु के दुर्ग नष्ट किए। अतिथिग्व दिवोदास ने शम्बर को जीता। अर्बुद भी जीता[८]। शर्यात[९]। १० हजार वृत्र के आदमी मारे गए। नमुचि मारा गया, अतिथिग्व ने करंज और पर्णद को मारा, ऋजिश्वन ने वंगृदेव के १०० दुर्ग नष्ट किए। सुश्रवस ने बीस राजाओं तथा उनके ६० हजार आदमियों को हराया। तूर्वयाण ने कुत्स अतिथिग्व तथा आयु को हराया[१०]। इन्द्र ने नर्य, तुर्वश, यदु और तुर्विति की मदद की[११]।

---

१. डा० राय चौधरी का मत है कि सप्तसिन्धवः नाम में गंगा यमुना भी सम्मिलित है।

२. सूक्त ८९।

३. सूक्त १०।२। तथा ५१।१।

४. २४।१२–१३।

५. ३१।४

६. ३२।१४। इन्द्र का केवल यही अपमान सूचक वर्णन है।

७. ४७।६–७।

८. ५१।५–६

९. ५२।१२

१०. ५३।६–१०

११. ५।४–६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भार्गवों ने अग्नि की स्थापना की[१]। पुरु के पुत्र अग्नि के अनुगामी है[२]। पुरुकुत्स ने ७ दुर्ग तोड़े। सुदास विजयी हुए। पुरु का लाभ हुआ[३]। पुरुकुत्स, मान्धाता, शम्बर, अतिथिग्व, दिवोदास, त्रसदस्यु और भारद्वाज के कथन[४]। शर्याति मनु के पुत्र, सुदेवी पिजवन सुदास की स्त्री[५]। च्यवन बूढ़े से जवान हुए, स्त्रियों से विवाह किया[६]। जन्ह तथ्या कृष्ण पुत्र विष्वक का कथन[७]। अन्धे मामतेय को अग्नि ने विपत्ति से बचाया[८]। दीर्घतमस औचथ्य मामतेय को बांधकर दासों ने नदी में बहा दिया। उन्होंने त्रैतन से युद्ध किया[९]। अगस्त्य मान पुत्र मान्धर्य थे। वे वीर योद्धा भी थे[१०]।

३--ऋग्वेद-अन्य मण्डल

दूसरा मण्डल—इसमें कुल मिला कर ४३ सूक्त हैं, जिनके ऋषि गृत्समद, सोमाहुत और कूर्म हैं। कूर्म गृत्समद के पुत्र थे। इनके केवल ३ सूक्त हैं। सोमाहुत के ४ हैं। शेष सब सूक्त गृत्समद के हैं। इस मण्डल में त्रिष्टुप छन्द हैं। गृत्समद के नाम पर यह मण्डल गार्त्समद कहाता है। इसमें अग्नि की प्रधानता है। गृत्समद हैहय वंश के राजा वीतिहोत्र (३७) के दत्तक पुत्र थे।

इस मण्डल की प्रमुख घटनाएँ निम्नलिखित हैं—

इन्द्र ने और्मवाम, अर्बुद, नार्मल और बल को मारा। शम्बर को पहाड़ से निकाल कर उसका वध किया। रोहिन को मारा। इन्द्र ने दभीक, उरन, शुषुमा-वैस, क्रवी, अश्न, अहि, वृकहार और सन्धिकों के स्वामी को भी मारा। उर्जयन्ती एक राक्षसी थी। जातूष्ठिर आर्यों का एक सहायक था। दिवोदास के लिए इन्द्र ने शम्बर के ९९ दुर्ग तोड़े। तथा दस्युओं के लोहकुलों को नष्ट किया। चुम्रुरि और धुनि को मारा। बल के पहाड़ी किले तोड़े। वर्चिन को पुत्रों सहित मारा।

---

१. ५८। ६
२. ५९। ६
३. ४३। ७ और १७४। १२
४. ११२। ७-१३-१४
५. ११२। १७-१९
६. ११६। ५। १०
७. ११९। १९। २३
८. १४७। ३
९. १५८।
१०. १६६। १५। और १८०। ८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
पणि का खजाना कन्दराओं में छिपा था, उसे भी लूट लिया। यह मण्डल विजयों का वर्णन करता है। गृत्समद को शुनहोत्र वंश में उत्पन्न कहा गया है[1]।

तीसरा मण्डल—यह मण्डल मुख्यतया विश्वामित्र का है। उनके अतिरिक्त दो सूक्त ऋषभ के, दो सूक्त उत्कील के, दो सूक्त कठ के, चार सूक्त गाथिन, एक सूक्त देव श्रवस और देवव्रात तथा ४ सूक्त प्रजापति के, कुल १५ सूक्त और हैं। ये लोग भी विश्वामित्र के पिता-पुत्र-पौत्र परिजन हैं। कुल मिला कर ६२ सूक्त इस मण्डल में हैं। अग्नि और इन्द्र के वर्णन अधिक हैं। जगती-गायत्री तथा त्रिष्टुप छन्द अधिक हैं। इस मण्डल में उपमाएँ अधिक हैं। वेद पाठियों का एक देवता कहा गया है। देवता ३३ कहे जाते हैं। पर यहाँ नवें सूक्त में वे ३३३९ हो गए हैं। प्रसिद्ध है कि विश्वामित्र ने कुछ नए देवता बनाए थे। विश्वामित्र एकेश्वरवाद की ओर भी चले हैं[2]। ये देवता भारतवासी ही बनाए गए हैं[3]। सरस्वती और दृषद्वती के वर्णन अधिक हैं। वे अग्नि को इला का पुत्र कहते हैं। शतद्रु (सतलज) और विपाश (व्यास) नदी के वर्णन हैं।

वशिष्ठ-विश्वामित्र के झगड़ों का भी यहां उल्लेख है[4]। प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र विश्वामित्र ने इसी मण्डल में कहा। सुदास का तथा भरतों का वर्णन है[5]। शर्यात का नाम भी है। कहा गया है कि इन मन्त्रों के गान से भरतों का वंश प्रसन्न रहेगा। भोज सुदास के परिजन थे। कीकट अवध और दक्षिण विहार के निवासी अपूजक थे।[6] प्रमदगंड उनका राजा था। कुनार दैत्य वृत्र की माता दनु के साथ रहता था। भारत पंजाब की नदियों के पार गए। सुदास ने पूर्व-पच्छिम और उत्तर जीता। शक्ति विश्वामित्र के घोर शत्रु थे।

चतुर्थ मण्डल—इसमें ५८ सूक्त हैं। प्रधान ऋषि गौतम पुत्र वामदेव हैं। इनके अतिरिक्त त्रसदस्यु ने एक, पुरुमील्ह और अजमीढ़ ने २ सूक्त बनाए हैं। देवताओं में इन्द्र और अग्नि की प्रधानता है। छन्द विशेषतया गायत्री, त्रिष्टुप और जगती हैं। रुद्र घातक कहे गए हैं—इन्द्र ने पिप्रु और मृगयी के ५० हजार सेना को तथा अर्णा और चित्ररथ को सरजू तट पर मारा। ये दोनों आर्य राजा थे। तथा सरयू पार रहते थे। अग्नि ने अंधे मामतेय का दुःख दूर किया। अहि को मार कर इन्द्र ने नदियां खोल दीं। सहदेव सोमक-कुत्स-परुष्णी (रावी) और कवच के

---

१. ४१। १४-१७।
२. ५४। ८
३. ५४। १७
४. ५३। १४-१५ तथा ५३-२१।
५. ५३। ११-१२।
६. ५३। १४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्णन हैं। त्रसदस्यु और पुरु के वर्णन हैं। सीता की पूजा लिखी है। पुरुकुत्स कैद में था, तब उसका पुत्र त्रसदस्यु उत्पन्न हुआ। वह भारी राजा था—शत्रुविजयी अर्द्ध देव कहाता था[1]। सृंजय देववात के पुत्र थे। सहदेव पुत्र सोमक ने वामदेव को दो घोड़े दिए। विदथिन के पुत्र अजिस्वन ने मृगय और पिप्र को जीता। दिवोदास अतिथिग्व ने शम्बर के ९९ दुर्ग तोड़े। शम्बर कुलीतर का पुत्र था। वर्चिन के एक लाख पांचसौ वीर मारे गए। तुर्वश और यदु डूबने से बचाए गए। दिवोदास ने पत्थर के सौ किले तोड़े, और ३० हजार दासों को मारा। यह कार्य दभीति ऋषि की मदद से किया गया।

पञ्चम मण्डल—इसमें ८७ सूक्त हैं तथा इसके ऋषि अनेक हैं। वे अत्रिवंशी हैं। जिनके कुछ नाम—बुध और गविष्ठिर (१), गय (२), सुतंभर (४), पुरु (२), वब्रि (१) त्र्यरुण. त्रसदस्यु, अत्रि (१), सम्वरण (२) अत्रिभौम (८) स्यावास्व (६३), अर्चनानस(२) रातहव्य (२) वाहवृक्त(२) पौर (२), सत्पश्रवस(२),यवयामरुत (१)।

इस मण्डल में अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेवस–मरुत, मित्रावरुण और अश्विन के वर्णन हैं। अग्नि ने शुनःशेष को बचाया। पृथ्वी घूमती है[2]। पुरुमीढ़ ऋषि थे। सुचद्रथ के पुत्र सुनीथ थे। मनु ने विससिप्र को जीता। पारावत परुषणी के तट पर रहते थे। काबुल नदी का नाम कुभा था। सरजू अवध में थी। इस मण्डल में त्रिष्टुप–गायत्री, अनुष्टुप–जगती और अतिजगती छन्द हैं। त्रसदस्यु–नाहुष, भारत, त्रिर्य्यारुण, त्रिविषम राजाओं का नाम है। पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु ने संवरण ऋषि को दस घोड़े दिए। स्वर्भानु राहु था, उसने सूर्य को अंधकार से भेद दिया। मनु ने विशिशिप को जीता। च्यवन बूढ़े से जवान हुए।

छठा मण्डल—इसमें ७५ सूक्त हैं। प्रमुख ऋषि भरद्वाज हैं। भरद्वाज के(४३) वीतिहव्य (१६) सुहोत्र (२) शुनहोत्र (२) नर (२) शम्य (४) गर्ग (१) रिजिश्विन (४) पाभु(१)। अधिकतर छन्द त्रिष्टुप, अनुष्टुप, जगती, और गायत्री हैं। अग्नि-इन्द्र, विश्वेदेवस, पूषन उषस, और मरुत के वर्णन हैं। गो के प्रति आदर प्रकट किया गया है। अश्न एक असुर था—अथर्वण ने अग्नि को बाहर निकाला, और उसके पुत्र दाधीचि ने आग जलाई। चुमुरी, धुनि, शम्बर, पिप्र और शुश्न के दुर्ग इन्द्र ने नष्ट किए। कुत्स, आयु और अतिथिग्व को इन्द्र ने हराया, तथा नमि की रक्षा की। वेतसु. दलौनी और तुग्र हराए जाकर देवताओं के पास लाए गए। इन्द्र ने पुरुकुत्स की सहायता की। और प्रथीनस को कन्या दी। देवबाढ के पुत्र अभ्यावर्तिन चायमान को इन्द्र ने जिताया। वार्षिक को हराया और वृचनों को मारा। अभ्यावर्तिन चायमान

---

१. ४२। १८–९।

२. ८४–२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथु के वंशज थे। इन्द्र यदु को दूर ले आए। इस मण्डल में गंगा तट का वर्णन है। राजत्रक्षी दत्तु–द्रुह्य और पुरु के नाम है। शम्बर के किले पहाड़ पर थे। नहुष वंशियों को पराक्रमी कहा है। सरस्वती तथा पंजाब की नदियों के नाम भी आए हैं। इस मण्डल में कई ऐतिहासिक सूचनाएं प्राप्त होती है। वीतहव्य और भरद्वाज समकालीन प्रमाणित होते हैं।[१] वीत हव्यहैह्य वंश में (३७) थे। पीछे वे ऋषि होकर सम्भवतः भरद्वाज के साथ रहने लगे थे। दिवोदास ने भरद्वाज को दान दिया था। भारतों की खोज की गई।[२] प्रतदेन का कथन है।[३] शम्बर को मारकर देवताओं ने दिवोदास की सहायता की। देववात अभ्यावर्तिन चाय मान ने यव्यावती नदी पर वृचीनवों को हराया तथा सृजय को तुर्वश देश दिया। चाय मान ने २० घोड़े तथा दासियां भरद्वाज को दीं। चायमान पृथु वंशी थे।[४] दिवोदास ने भरद्वाज को धनी बनाया। इन्द्र ने शम्बर के १०० किले तोड़े। प्रस्तोकं ने दान दिया। दिवोदास अतिथि बन शम्बर के धन से भरद्वाज को दान दिया। अशाथ ने पायु को दिया। सृंजय के पुत्रों ने भरद्वाज का मान किया। भरद्वाज के पुत्र वेदर्षि थे।[५] वध्रश्व दिवोदास के पिता थे।[६]

इस मण्डल से दिवोदास, प्रस्तोक, अभ्यावर्तिन, चायमान, भरद्वाज समकालीन प्रमाणित होते हैं। यह मण्डल एक और गम्भीर सत्य पर प्रकाश डालता है, जो अन्धकाराव्रत है। यहाँ भरद्वाज भरतों को अपना आश्रय दाता मानते हैं। आप को ज्ञात रहे कि यह भरद्वाज भरत के (दौषःन्ति) के वंश में थे। अतः भारत शब्द से ये मनुर्भरत वंशियों की प्रशंसा करते हैं। जिनके राज्य इस काल में भारत में फैले थे।

सातवां–मण्डल—इसमें १०४ सूक्त हैं। इनमें २९ के ऋषि में मैत्रावरुषि वशिष्ठ हैं—शेष के वशिष्ठ। इनमें एक के ऋषि वशिष्ठ और शक्ति दोनों हैं। एक अन्य के वशिष्ठ और उनके पुत्र। देवताओं में अग्नि, इन्द्र विश्वेदेवस मित्र, सूर्य। आश्विन, उअषस, सरस्वती और विष्णु भी प्रधानता है, सुदास की महिमा बहुत गाई गई है। छन्दों में त्रिष्टुप–वृहती, जगती तथा गायत्री अधिक है। मुख्य घटनाएं निम्न-लिखित हैं—

जरूथ को अग्नि ने जलाया, तथा नहुष वंशियों को हरा कर उन्हें सुदास को

१—१५-३।
२—१७। ८ १४
३—२२, १०
४—२७। ५–
५—५०। १५
६—६३। ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर देने पर बाध्य किया। सुदास ने नदी पार कर सिम्यु लोगों को हराया। विजय के लिए उत्सुक तुर्वश, परोदास, भृगु लोग और द्रुह्य लोगों ने सुदास की आज्ञा मानी। पक्थ, भलान, अलिन, शिव और विशातों ने तृत्सुवों के नेता सुदास का सामना किया। पर वे भागे। सुदास ने २१ जातियों के वैकर्णों को परास्त किया। सुदास के शत्रुओं ने नदी से एक नहर निकाल कर उसे पार करना चाहा। पर वे नदी में डूब गए। इनमें काम और द्रुह्यु वंशी भी थे। भृगु, द्रुह्यु, तुर्वश आदि ने परुष्णी नदी को पार कर इस नदी के दो टुकड़े कर सुदास पर धावा किया। पर वे स्वयं डूब गए। सुदास की सहायता को अनेक आर्य आए। उसने शत्रुओं के ७ क़िले जीते। और अनु के पुत्रों का सामान लूट कर त्रस्यु को दिया। अनु और द्रुह्यु वंशियों के ६००० योद्धा तथा ६६ वीर सेनानी मारे गए। पुरु वंशी नहीं हारे। शत्रु का सब सामान लूट लिया। यमुना के किनारे सुदास ने भेद का सब खजाना लूट लिया। तथा उसे प्रजा बना दिया। युध्यामधि को सुदास ने अपने हाथ से मारा। इस प्रकार प्रसिद्ध दस राजाओं का युद्ध हुआ। राजा वर्चिन के एक लाख आदमी मारे गए। अज-सिगरु और चक्षु ने सुदास को कर दिया। पराशर-वशिष्ठ और सत्यमान को सुदास ने बहुत सा धन दिया। सुदास के पिता दिवोदास थे। पराशर-वशिष्ठ और सत्ययात सुदास के नौकर थे। आर्य राजा परिद्युम्न सुदास के समकालीन थे। सिमदा एक राक्षसी थी। दीर्घ क्रावसा घुड़दौड़ के घोड़े थे। शाल्मली से रूई निकाली जाती थी। आर्यों की पांच शाखाएँ थीं। जो राजा सुदास से हारे वे पूजन नहीं करते थे। वशिष्ठ ने समुद्र पर जहाज की यात्रा भी की थी। पुरु वंशी सरस्वती के दोनों किनारों पर रहते थे। जमदग्नि की प्रशंसा की गई है। जमदग्नि विश्वामित्र के सहायक थे। वशिष्ठ भी उन से प्रसन्न रहे। आर्य लोग सरस्वती के पूर्व की ओर बढ़ चुके थे, वे आपस में भी लड़ते थे। पुरूरुवस की राजधानी प्रयाग के निकट प्रतिष्ठानपुर थी। वशिष्ठ ने जरूथ को मारा। वशिष्ठ को देववाती के संतान ने २०० गाएँ दीं। तथा सुदास ने दो रथ दिए। सुदास तृत्सु पति थे। वशिष्ठ उर्वशी के वरुण-मित्र द्वारा उत्पन्न पुत्र थे। तृत्सु सफेद वस्त्र पहनते थे। पौरवों के दृढ़ राज्य सरस्वती के दोनों किनारों पर थे।

आठवां मण्डल—इसमें ९२ सूक्त हैं। और बालखिल्यों के ११ सूक्त इन ९२ के पीछे लगा दिए गए हैं। इस प्रकार कुल १०३ सूक्त हैं। इनके ऋषि अनेक हैं। जिनमें प्रमुख—मेधातिथि, आसंग, शाश्वती, मनु, प्रियमेध, देवातिथि, ब्रह्मातिथि, वत्स, शशकर्ण, प्रगाथ पर्वत, उशना-कान्ध, नारद, सोभरि, विश्वमना, मनुवैवस्वत, कश्यप, नीपातिथि, वसुरोचिष, श्यावाश्व, नाभाक, विरूप, त्रिशोक, त्रित, भर्ग, कार्त, पुरुमीलह, हर्यत, कुसीदी, उशना, कृष्ण, विष्वक्, नोधा, अपान्ता, रेभ, इन्द्र, जमदग्नि, प्रस्कण्व, आयु, मातरिश्वा; कृश और सुपर्ण।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस मण्डल में मुख्य छन्द वृहती, गायत्री–अनुष्टुप, उषणिक् ; महापंक्ति और जगती हैं। देवताओं में यहाँ इन्द्र–अश्विन, अग्नि, वरुण, आदित्य और मरुत प्रधान हैं। गाय का भी वर्णन है। गाय को निर्दोष कहा है। आसंग, विभिन्दु–पाकस्थामा, कुरुङ्ग, कथु, तिरिन्दिर, त्रसदस्यु, चित्र, पृथुश्रवा और श्रुतवर्ण की उदारता के वर्णन हैं।

इन्द्र ने शुश्न का चलता हुआ किला नष्ट किया। राजा परमज्या, निन्दिताश्व, प्रपथी, आसंग पुत्र स्वनद्रथ और यदु पुत्र उदार थे। आसंग भ्रभोग के पुत्र थे। सरस्वती उनकी पत्नी थी। ये नपुंसक हो गए, पीछे ठीक हो गए। यदु पुत्र ने यति को सुनहले सामान सहित दो घोड़े दिए। राजा विभिन्दु ने यज्ञ किया। पनि एक ऋषिकुल था, जिसका भृगुवंशी राजाओं से सम्बन्ध था। सम्भवतः जिन भार्गवों का सातवें मण्डल में सुदास से युद्ध हुआ, वे इसी राजकुल के थे। इन्द्र ने पुरु पुत्र तथा रुशभ, श्यावक, स्वर्णर और कृष राजाओं की सहायता की। तथा मृगय और अर्बुद को हराया। इन्द्र अनुवंशियों तुर्वश और रूम के मित्र थे। तुर्वश और यदु की तारीफ है। पञ्च और कण्व शत्रु हैं। तुग्र पुत्र भुज्य को अश्विनी कुमारों ने बचाया। चेद पुत्र कसु ने ऋषि को १०० भैंसें और १० हजार गाएँ दीं। चेदि लोग बड़े उदार थे। नहुष वंशियों के घोड़े अच्छे थे। सरयातीवान् कुरुक्षेत्र में एक झील थी। पर्श और तिरिन्दर के नाम आए हैं। कुकुर यादवों के समान थे। उन्होंने भैंसे दान दिए। यश और दशवुर्ज को त्रसदस्यु ने सहायता दी। अथर्वण ऋषि थे। कक्षीवान् और दीर्घतमा ऋषि थे। वेन पुत्र पृथु था। प्रदाकु सामयज्ञ करने वाला था। क्रवि पंजाब का योद्धा था। शायद यह पाँचाल था। पक्थ अध्रिक, बभ्रु और चित्र राजा थे।

इस मण्डल में ३३ देवताओं के नाम हैं। मान्धाता राजा और ऋषी थे। दास वलवूथ एक दानी और आर्य पृथुश्रवा के साथी थे। राजपुत्रों को 'क्षत्री' कहते थे[1]। श्रुतवर्ण ने रावी तट पर युद्ध किया। कृदम और उनके पुत्र विश्वक् ऋषि थे। अत्रि वंशी–अपाला ऋषि थी। पृथ्वी पर दस देश थे। पुरुकुत्स पुत्र त्रसदस्यु ने सौभरि को ५० दासियाँ दीं। त्रसदस्यु विजयी तथा दानी था।

नवम्–मण्डल—इसमें ११४ सूक्त हैं, जिनके प्रमुख ऋषि—मधुच्छन्दस, मेधातिथि, शुनःशेप, हिरण्यस्तूप, असित, कुत्स देवल, विन्दु, गौतम, रहूगण, अचश्म, अवत्सार, काश्यप, भृगु, भरद्वाज, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि, रेणु, ऋषभ, हरिमन्त, कक्षीवान्, वसु, प्रजापति, वेन, उशना, कण्व, प्रस्कण्व, उपमन्यु, व्याघ्रपाद, वशिष्ठ–शक्ति, पराशर, अम्बरीष, ऋजिश्वन, ययाति, नहुष, मनु, नारद,

---

१. ५६। १।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिखण्डी, अग्नि, चाक्षुष मनु, प्रतर्दन और शिशु। इस मण्डल की सब रचनाएँ सोम पव मान ही के विषय की है। ६७ सूक्त तक गायत्री छन्द हैं। पीछे जगती, त्रिष्टुप और उष्णिक्।

इस मण्डल की मुख्य घटनाएँ---ध्वस्त्र और पुरुषान्ति दानी राजा था। सोम पवमान ने दिवोदास के कारण यदु-तुर्वश और शम्बर को मारा। इस मण्डल में जमदग्नि ऋषि तथा व्यास्व ऋषि का नाम बहुत आया है। उत्तर पच्छिम में बसने वाली एक आर्जीक नामी अनार्य जाति का वर्णन भी है। सिंह-धनुष और सप्तर्षि का वर्णन है। अथर्वण ने सर्व प्रथम अग्नि पाई, उसे सोम पिलाया गया।

दशम मण्डल--इस में १९१ सूक्त हैं। प्रमुख ऋषियों में त्रित-त्रिशरा, सिंधु-द्वीप, यम, यमी, बृहदुकथ, हविर्धान, विवस्वान्, शंख, दमन, देवश्रवा, च्यवन, विमद, वसुकृत, वसक्र, कवष, ऊस, लुषा, घोषा, कृष्ण, इन्द्र, वैकुण्ठ। गौपायन, गय; अपास्य, सुमित्र, वृहस्पति, अदिति, गौरिवीनि, जरत्कारु, विश्वकर्मा, मन्यु, सूर्या, इन्द्र, इन्द्राणी वृषाकपि, पायु, रेणु, नारायण, अरुण, शार्यात, तान्व, अर्बुद, पुरूरवा, उर्वशी, देवापि, वभ्र, बुध, मुद्गल, अप्रतिरथ, अष्टक, दक्षिणा, दिव्य, सरमा, परिण, जुहू, जमदग्नि, राम, भित्तु, लव, हिरण्य गर्भ, वरुण, सोम, वाक्, कुशिक, प्रजापति, परमेष्ठि, सुकीर्ति, शकपूत, सुदा, मान्धातार, गोधा, कुमार, सप्तमुनि (जूति-वात, जूति, विप्रजूति, वृषणक, एतश, करिक्रत, अधश्रृंग) सप्तर्षि—अंग, विश्वावसु, अग्नि, पावक, तापस, जरितर, द्रोण, सारिस्रक, स्तंवमित्र, अत्रि, सुपर्ण, पौलोमी, पूरण, प्रचेतरु, कपोत, ऋषभ, विश्वामित्र-जमदग्नि। अनिल, शवर, वसुमनस, जय, प्रजावान्, त्वष्टा, विष्णु, सत्यधृति, उल, अधमर्षण और सम्ववन।

इन वेदर्षियों में राम उनके पुत्र लव -और बहनोई ऋष्यश्रृंग के नाम भी आए हैं। परन्तु राम के नाम में यह संदेह है कि वह दाशरथि राम हैं या जामदग्न्य राम। वेदर्षि जरितर-द्रोण-सारीस्रक और स्तम्बमित्र शाङ्गी शूद्र से उत्पन्न मन्दपाल ब्राह्मण के वे पुत्र हैं जो अर्जुन के खाण्डवदाह से बचे थे। पुरुष सूक्त के ऋषि नारायण ने नारद को वासुदेव का केश्वर भाव बताया है[1]। इस मंडल के ऋषियों में अनेक प्रसिद्ध राजा या महापुरुष हैं--जैसे विवस्वान, गय, केतु, ऋषभ, चाक्षुष, मनु ध्रुव, शिवि आदि। कई देवता भी इस मंडल के ऋषि हैं। जैसे—इन्द्र-अग्नि, इन्द्राणी, यम-यमी आदि। ध्रुव भी वेदर्षि है। कई स्त्रियां भी यहां वेदर्षि हैं। प्रचीन तम ऋषि वेद, ध्रुव और पृथु तथा चाक्षुष हैं।

---

१. नारद ने व्यास से यह तत्व कहा—व्यास ने युधिष्ठिर से कहा। महाभारत शांति पर्व।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवताओं में अग्नि, इन्द्र, यम, पितर, जल, गय, विश्वदेवस, वृहस्पति, विश्व, कर्मा, सूर्य आदि प्रमुख हैं। देवताओं के अतिरिक्त इस मंडल में अन्य विषयों पर भी सूक्त हैं। जैसे जल, पितृ, मृत्यु, गाय, जुआ, खेती, जीवात्मा, सुबन्धुका पुनर्जीवन, हाथ, सावण्य की उदारता, ज्ञान, नदी, दबाने का पत्थर, उर्वशी, पुरूरुवा, विवाह का अशीर्वाद, वत्रेषकि, गदा, सरमा, पनिस, वेन, वायु, रात्रि, केशी, सपत्नी, वा धन, अरण्य, श्रृद्धा, दुर्भाग्य निराकरण, पौलोमी, क्षयरोग निराकरण, गर्भपात, से बचाव, अदिति, गर्भ को आशीर्वाद आदि। इन बातों से प्रकट है कि इस मंडल में सांसारिक बातें अधिक हैं। इस से तत्कालीन सभ्यता प्रकट होती है।

छन्दों में त्रिष्ठुपद, गायत्री, जगती, अनुष्ठुप, आस्तार, पंवित, प्रस्तार पंवित, उष्णिक, महा पंक्ति, वृहती और द्विपदी विराट् हैं।

इस मण्डल में अनेक घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है। यम यमी जुड़वां भाई बहिन हैं। बहिन भाई से विवाह का प्रस्ताव करतीं हैं। पर भाई अस्वीकार करता है[1]। मृत्यु के बाद मनुष्य यम के यहाँ जाता है। यज्ञ न करने वाले दस्युओं का वर्णन है। सिंह का भी वर्णन हैं। दुहश्शासु ने त्रसदस्यू के पौत्र कुरुश्रवन को पराजित किया था। साघ ने दिवोदास की सहायता की। श्रुतवर्ण ने मृगय और सारच को हराया। ३३३९ देवता हैं। उशीनर मध्य देश में रहते हैं। इक्ष्वाकु राजा और मनु बड़े दानी थे। यदु और तुर्वश ने दो दास दान किए। ययाति नहुष के पुत्र थे। गंगा जमुना का वर्णन है। बैल मघानक्षत्र में मारे जाते थे- और अर्जुनी में बच्चा पैदा करते थे। विराट् पुरुष के मुख वाहु जन्घा और पैर से ब्राह्मण–क्षत्रिय-वैश्य और की उत्पत्ति कही है।

पुरुष सूक्त नारायण ऋषि का है। जो महाभारत कालीन है। दुस्सीम प्राथि-वान्, वेन राम, और तात्वापार्श्य यज्ञ करता है। पुररूवा की स्त्री उर्वशी थी। उसके वर्णन है। पुरूरुवा इला के पुत्र थे। स्वर्ग का वर्णन है। शान्तनु को उनके भाई देवापि ने यज्ञ कराया। जल शक्ति दाता–पुत्रो त्पादक, बलदायक, स्वास्थ्यकर और यातक निराकरण कारक है। वह सब दवाओं में श्रेष्ठ है। पितर यम लोक में रहते हैं। उनका स्थान प्रकाशवान् और जल से परिपूर्ण है। वे यम के साथ प्रसन्न हैं[2]। अन्य विषयों का भी वर्णन है।

उशीनर, इक्ष्वाकु, सुबन्ध, अगस्त के भांजे, का वर्णन है। ६१ वां सूक्त नाभानेदिष्ट का है, ६२ वें में सावर्णा मनु के यज्ञों की तारीफ है। ६२ गय का सूक्त

---

१. कुछ लोग इसे अलंकारिक वर्णन कहते हैं। परन्तु प्राचीन काल में भाई बहिनों से विवाह की प्रथा कुछ जातियों में थी।

२. पितृ एक जाति थी। वाइविल में भी पितरों का वर्णन है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। विवस्वान् के वंशधर तेजस्वी–वर्चस्वी राज्यवर्धन हैं। नाहुष भी ऐसे ही हैं। मनु ने सात पुरोहितों द्वारा सर्व प्रथम यज्ञ किया। गय प्रति के पुत्र थे। वध्रश्व सरस्वती और अग्नि के पूजक थे। सिन्ध, गंगा, जमुना, शतद्रु, परुष्णी, सरस्वती, असिक्नी वितस्ता, कुभा और गौमती नदियों के नाम हैं। ८१ सूक्त में एकेश्वर कहा गया है। ८२ में ईश्वर सब का पिता है। उसी ने सृष्टि रची है। एक ही विश्वकर्मन् कर्ता है। वह देवता और असुरों से पहले का तथा अज है। ९० पुरुष सूक्त हैं-यही सूक्त यजुर्वेद में भी हैं। १०२ मुद्गल का सूक्त है। इन्द्र सेना मुग्दलानी ने रथ हांक कर पति को विजय दिलाई थी; हिरण्य गर्भ सब से प्रथम थे।

ऋग्वेद की एतिहासिक घटनाओं का पूर्वा पर सम्बन्ध--

निस्संदेह ऋग्वेद में महत्त्व पूर्ण इतिहास के संकेत हैं। परन्तु उन सबका पूर्वा पर सम्बन्ध केवल वेदों के सहारे स्थिर नहीं किया जा सकता—क्यों कि वेदों का वर्तमान संपादन तिथि अनुक्रम से नहीं हुआ है। विषयों और ऋषियों का ध्यान कर के बिखरे हुए सूक्त एकत्र किए गए हैं। एक ही स्थान पर अति प्राचीन सूक्त भी हैं—और नवीन तम भी—इस लिए वैदिक एतिहासिक घटनाओं का पूर्वापर सम्बन्ध क्रम ब्राह्मणों, इतिहासों, पुराणों आदि की सहायता से हो सकता है। संहिता के सहारे से तो ज्ञान मात्र प्राप्त हो सकता है।

दूसरी बात महत्वपूर्ण यह है कि ऋग्वेद में बहुत से महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के नाम अपरिचित हैं पुराणों और ब्राह्मणों में जो आर्य राजाओं के नाम आए हैं। उनमें परिचित प्रसिद्ध पुरुष वेद में बहुत कम हैं। इसी से हमारा अनुमान है—कि वेद वास्तव में केवल आर्यों ही का ग्रन्थ नहीं है। उसमें अनार्य जातियों का भी वर्णन है। आर्य पुरुषों के वर्णन प्रसंग वश आए हैं। वे भी बहुत कम। खास कर आर्यों के प्रमुख पुरुषों के तो नाम तक संदिग्ध हैं। जैसे कृष्ण और राम। पुराणों में तथा अन्यत्र वे नाम नहीं मिलते हैं, जो वेदों में हैं-तथा उन प्रमुख घटनाओं, युद्धों का भी कहीं उल्लेख नहीं मिलता--जिनका वेदों में बारम्बर जिक्र है। इसके अतिरिक्त वेद में राम रावण के प्रसिद्ध युद्ध का जिक्र तथा रावण का नाम है ही नहीं। राम का नाम संदिग्ध है।

———

३--ऋग्वेद की विवाह परिपाटी

वैदिक काल में, जब कि मनुष्य जीवन सरल और स्वाभाविक था, जीवन के सम्बन्ध उनकी आवश्यकताओं के अनुसार किए जाते थे। उसके लिए कठोर और अनिवार्य रूढ़ियाँ और विधान नहीं काम में लाए जाते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महत्वपूर्ण बात यह थी--कि यह सर्वथा आवश्यक नहीं था कि लडकियों का अवश्य ही विवाह किया जाय। ऋग्वेद में हम उन कुमारियों का वर्णन पाते हैं, जो आजन्म कुमारी रहीं और जिन्हों ने पिता की सम्पत्ति का एक अंश अपने लिए प्राप्त किया[1]। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ ऐसी कुमारियों का भी उल्लेख है, कि जिन के चरित्र की रक्षा करने वाले भाई नहीं थे[2]।

जो कन्याएँ अपना विवाह किया चाहती थीं —उन्हें अपना पति स्वयं चुनने का अधिकार प्राप्त था। यद्यपि वे कभी-कभी धोखा खा जाती थीं। और कभी २ उन्हें सुखी जीवन प्राप्त नहीं होता था--वे पुरुषों के प्रलोभनों में फंस जाती थीं—परन्तु बहुधा उन्हें अपने उपयुक्त पति प्राप्त होते थे[3]। कभी कभी पिता भी रूपवती और गुणवती कन्या को वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके योग्य वर को देता था[4]। ये गृहिणी सदैव चतुर, परिश्रमी और घर गृहस्थी की देखभाल में तत्पर होती थीं। वे प्रातः काल जग कर अपने कार्यों में लग जातीं थीं, और घर के सब लोगों को जगा कर उनके अपने अपने कार्यों में प्रेरणा करती थीं[5]।

विवाह के समय की वे प्रतिज्ञाएँ जो वर वधू से आज तक भी विवाह के समय कराई जाती हैं—अपना गम्भीर अर्थ और यथार्थता रखती हैं। उन्हें देखने से पता लगता है, कि सरल सादा जीवन होने पर भी उस काल के आर्यों ने विवाह के महत्व और उसकी आवश्यकताओं को यथार्थ में जान लिया था। अब आप ध्यान से उन ऋचाओं पर दृष्टि डालें, जो इस सम्बन्ध में ऋग्वेद में वर्णित हैं।

हे विश्वावसु इस स्थान से उठो, क्यों कि इस कन्या का विवाह हो गया। हम आप का स्तवन और नमन करते हैं—अब तुम किसी दूसरी कुमारी के पास जाओ, जो अपने पिता के घर हो, और जो विवाह योग्य हो चुकी है, वह अब तुम्हारा ही भाग है। (२१)

हे विश्वावसु अब तुम उठो, हम तुम्हें नमन करते हैं। अब तुम किसी दूसरी कुमारी के पास जाओ, जिसके अंग प्रोढ़ हो चुके हैं। और उसे एक पति की पत्नी बनाओ।

इन ऋचाओं से स्पष्ट होता है कि उस काल में बाल विवाह की परिपाटी नहीं थी। बारात जाने का एक वर्णन कितना मोहक है।

---

१. म० २। सू० १७। श्लोक ७
२. ऋ० २। २९०। १
३. म० १०। सू० २७। ऋ० १२
४. म० ९। सू० ४६ ऋ० २। म० १०। सू० ३९। ऋ० १४
५. म० १। सू ३२४। ऋ० ४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिस मार्ग से हम विवाह के लिए कुमारी को प्राप्त करने जाते हैं, उस मार्ग को सरल और विघ्न रहित कीजिए। हे अर्यमन और भग, हमें सकुशल ले जाइए, पति पत्नी भली भांति मिलें। (२३)

अब कोमल भावना पूर्ण उद्गार देखिए—

"हे कुमारी, उज्ज्वल सूर्य ने तुझे कौमार्य के बन्धन में बांधा है, हम तुझे उससे उन्मुक्त करते हैं, और तुझे तेरे पति से मिला कर वहां ले जाते हैं, जो सत्य और पुण्य का धाम है। (२४)

हम इस कुमारी को यहां से "पितागृह" से मुक्त करते हैं। परन्तु वहां "सुसराल" से नहीं। हमने इसका सम्बन्ध भली भांति किया है, हे इन्द्र, वह भाग्य-शालिनी–और योग्य पुत्रों की माता बने। (२४)

पूषण यहां से तेरा हाथ पकड़ कर तुझे ले चले, तेरे रथ में दो घोड़े जुते हों अपने घर जाकर गृह पत्नी बन, और वहां की प्रत्येक वस्तु पर अपना प्रभुत्व कर। (२५)

तुझे आशीर्वाद है, तू पुत्रवती हो, गृहकार्यों में तू सावधान रहे, अपने पति के साथ एक तन एक प्राण हो वृद्धावस्था तक इस घर में प्रभुत्व कर। (२७)

तू पहिले सोम की थी, फिर गन्धर्व की हुई, इसके बाद अग्नि की, अब चौथी बार यह मनुष्य तेरा पति हुआ है। (४०)

सोम ने तुझे गन्धर्व को दिया और गन्धर्व ने अग्नि को, अग्नि ने तुझे धन और संतति के लिए मुझे दिया है। (४१)

वर और वधू अब तुम दोनों साथ २ रहो, जुदा मत हो, अनेक विधि भोजनों का आनन्द लो, अपने ही घर में रह कर पुत्र पौत्री का आनन्द भोग करो। (४२)

हे प्रजापति, हमें सन्तति दो, हे आर्यमन्, हम वृद्धावस्था तक एक साथ रहें, अरी दुलहिन, तू इस पति घर में इस शुभ मुहुर्त में प्रवेश कर, और हमारे दास दासियों तथा पशुओं का कल्याण कर। (४३)

इन्द्र देव, इस स्त्री को सौभाग्यवती और पुत्रवती बनाएं, उसके दस पुत्र हों, जिससे घर में पति के साथ ग्यारह पुरुष हो जायं। (४५)

अरी दुलहिन तू सास स्वसुर को वश में कर, और ननद और देवर पर रानी की भाँति शासन कर। (४६)

सब देवता हमारे हृदयों को ("पति पत्नी") एक करें, मातरिश्वा और धातृ वाग्देवी हमें एक करें। (४७। १०। ८५)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऋग्वेद के इन उद्धरणों से तत्कालीन वैवाहिक जीवन की एक सुखद कल्पना की जा सकती है।

हे तपस्वी ब्रह्मचारी, तुझ सुन्दर को मैंने मन से वर लिया।

(ऋ० १० । १८३ । १)

हे वधू, तू अपने सुन्दर शरीर का ऋतुकालीन संयोग चाह, मैं तुझे मन से चाहता हूँ। मुझ से विवाह करके सन्तान उत्पन्न कर। (ऋ० १० । १८३ । २०)

विवाह की कामना करने वाली कितनी ही स्त्रियां मीठी २ बातों को करने वाले पुरुषों की बहक से आकर उनके आधीन हो जाती हैं, परंतु कुलवती भद्रा स्त्री सभा के बीच में ही पति को चुनती हैं। (। १० । २१ । १२]

बिन दुही गाय की तरह कुमारी युवतियां जो कुमारावस्था त्याग चुकी हैं, वे नवीन ज्ञान से पूर्ण होकर गर्भ धारण करती हैं। (३ । ५५ । १६)

ऋग्वेद के अन्तिम सूत्रों में कुछ ऐसे मन्त्र पाए जाते हैं--जिनसे पता चलता है कि बड़े २ आदमी-जैसे, धनपति या राजा लोग अनेक स्त्रियों से विवाह करते थे। और सौतों में कलह हो जाती थी। ("म० १० । सू० १४५" "म० १० सू० १५९") में ऐसा ही उल्लेख मिलता है। मालूम होता है कि वैदिक काल के अन्तिम दिनों में जब धीरे २ साम्पतिक अवस्था और साम्राज्य भावना बढ़ चली थी—बहु विवाह जारी हो गए थे।

एक समय में दो पत्नियों की निन्दा है--

जैसे रथ का घोड़ा दो धुरों के बीच में दबा हुआ हिनहिनाता चलता है; वैसे ही दो स्त्रियों वाले पति की दशा होती है।

ज्वारी लोग अपनी पत्नियों को जुए में हार जाते थे, ऋग्वेद में इसका मनोहर वर्णन मिलता है।

यह मेरी स्त्री मुझे कष्ट नहीं देती थी—न कभी क्रोध करती थी—तथा अपने परिजनों के साथ मुझ से प्रेम करती थी—जुए के कारण मुझे वह भी गवांनी पड़ी।

(ऋ० १० । ३४ । २)

जिसके ज्ञान और धन का नाश जुआ करता है उसकी स्त्री का दूसरे ही उपभोग करते हैं। घर वाले करते हैं, हम इसे नहीं जानते इसे बांधकर ले जाओ।

"(१० । ३४ । ४)"

जब ज्वारी दूसरों की युवती पत्नियों को महल, अटारियों को, और ऐश्वर्य को देखता है, तब उसे बड़ा सन्ताप होता है, जो ज्वारी प्रातः काल घोड़ों की जोड़ी पर सवार था वही, आग ताप कर रात काटता है। "(१० । ३४ । ११)"

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४—साम-यजु-और अथर्व

साम वेद—यह वेद गिनती में तीसरा तथा महिमा की दृष्टि से दूसरा स्थान रखता है। सामवेद में कुल १५४९ मन्त्र हैं। जिनमें केवल ७२ नवीन हैं शेष सब ऋग्वेद के हैं। इस वेद के दो भाग हैं। प्रथम में ६ काण्ड और दूसरे में ९ काण्ड हैं। एक एक काण्ड में कई कई कण्डिकाऐं हैं। जिन्हें सूक्त भी कहा जा सकता है। कुल मिलाकर ४५९ कण्डिकाऐं हैं। पाठ में ऋग्वेद से थोड़ा बहुत अंतर है। कुछ विद्वानों का मत है कि सामवेद का पाठ ऋग्वेद की अपेक्षा शुद्ध और प्राचीन है। यह भी कहा जाता है कि जो ऋचाऐं सामवेद में नवीन हैं, अर्थात् अधिक हैं—वे भी कभी प्राचीन ऋग्वेद में भी थी। जिन्हें व्यास ने निकाल दिया। कुछ विद्वानों का मत है कि व्यास ने कुछ और भी ऋचाओं को ऋग्वेद से निकाल दिया था—जो अब नष्ट हो गई।

सामवेद में अधिकतर सोम-पव मान का वर्णन है। इसके अतिरिक्त अग्नि, इन्द्र, उषा, अश्विन् आदि के भी वर्णन हैं। कुछ ऋचाऐं वैवस्वत मनु की भी हैं। इन्द्र को राम कहा गया है। वय्य के पुत्र सत्यश्रव ऋषि का नाम आया है। नकुल की एक ऋचा है जो ऋग्वेद में नहीं है। कुछ ऋचाएँ नहुष-ययाति मनु-अम्बरीष तथा ऋत्विजा की भी हैं, कुछ आप्सव मनु की हैं। पृथ्वी के चारों ओर बहने वाली रसा' नामक नदी का उल्लेख है। सोम पवमान ने दिवोदास के लिए शम्बर, यदु तुर्वश को हराया। श्यावक, ऋजिस्वा ओर अम्वरीष इन्द्र के कृपा पात्र कहे गए हैं। क्रवि एक असुर था। ईश्वर का वर्णन विश्व कर्मा-स्कम्भ प्रजापति और पुरुष नाम से आया है। कहीं २ अग्नि इन्द्र और सूर्य से भी ईश्वर का भाव प्रकट किया गया है। पवीरु ससमो के राजा थे। सुनीथ सुचद्रथ के पुत्र थे। मनुष्य जीवन १०० वर्षों का है। पर कहीं कहीं ११६ या १२० वर्षों का कहा गया है।

यजुर्वेद—यजुर्वेद का शब्दार्थ है—'यज्ञ सम्बन्धी ज्ञान'। कुल मिलाकर इसके ४० अध्याय हैं। जिनमें २००० छन्द हैं। कुछ गद्य भी हैं। इसका अधिकाँश भाग ऋग्वेद से तथा कुछ अथर्व से लिया गया है। यज्ञ आर्यों तथा अनार्यों की भी प्राचीन परिपाटी थी, कहा जाता है कि वलि दैत्य के यज्ञ में वामन ऋषि ने विशेष विधि वर्णित की थी। तभी से यज्ञ विधि पर विचार होने लगे, इसी से यजुर्वेद का आरम्भ हुआ। सम्भवतः व्यास के विभाजन के पूर्व भी यजुर्वेद प्रथक् किसी रूप में था।

प्रथम तथा दूसरे अध्यायों में नवीन चन्द्र तथा पूर्ण चन्द्र सम्बन्धी यज्ञों के वर्णन हैं। तीसरे में अग्नि होत्र का कथन है। ४ से ८ तक सोम यज्ञ का विधान है। ९ और १० में वाजपेय और राज सूय यज्ञों का कथन है। ११ से १८ अध्याय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक वेदी बनाने की विधि वर्णित है। १९ से २१ तक सौत्रामणि यज्ञ करने तथा शतरुद्रीय का विधान वर्णित है। २२ से २५ तक अश्वमेध का कथन है। २६ से २९वें अध्याय तक चान्द्र यज्ञों का विधान है, तथा ३०–३१ में नरमेध की विधि है[1]। ३२ से ३४ तक सर्वमेध का वर्णन है। ३५ में पितृयज्ञ और ३६ में दीर्घ-जीवी होने की विधियां हैं। ३७ से ३९ तक प्रवर्ग विधान है। ४० वां अध्याय एक उपनिषद् है, जिसमें ब्रह्म वर्णित है।

इस वेद के दो स्वरूप हैं—एक शुक्ल यजुर्वेद दूसरा कृष्ण यजुर्वेद। शुक्ल यजुर्वेद के अध्याय १६ और ३० में अनेक व्यवसायों के नाम दिए गए हैं। चोर, सवार, नर्तक, पदाती, काननि, रथवाहक, रथकार, बढ़ई, कुम्हार, सुनार, कृषक; नाई; धनुष बनाने वाले, बौने, कुबड़े, अंधे, गूंगे, वैद्य, ज्योतिषी, हाथीवान्; लकड़हारे, घोड़ा और पशुओं के पालने वाले, नौकर, रसोइये, द्वारपाल, चित्रकार, नक्काश, धोबी, रंगरेज, चमार, मछुए, शिकारी, चिड़ीमार, कवि, वादक, कामी आदि पेशेवर नाम हैं। जिस से तत्कालीन सामाजिक विकास पर प्रकाश पड़ता है।

यजुर्वेद में जाति और वर्ण व्यवस्था के भेद वर्णन बहुत स्पष्ट हैं। मिश्रित जातियों का भी वर्णन है। तथा दस्तकारी–विज्ञान–व्यापार के भी बढ़े चढ़े कथन हैं। इससे यह वेद अपेक्षाकृत नवीन प्रतीत होता है। श्री ग्रिथिफ का यही विचार है। यजुर्वेद में जो ऋचाएँ ऋग्वेद की हैं—उनके ऋषियों के नाम तो ज्ञात हैं पर जो अथर्व से ली गई हैं उनके ऋषियों के नाम अज्ञात हैं। केवल अन्तिम ५ अध्याय दधीचि कृत हैं। शेष ३५ अध्यायों के रचयिता प्रजापति–परमेष्ठी–नारायण पुरुष स्वयंभू ब्रह्मा, बृहस्पति, इन्द्र, वरुण, अश्विनी, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, मधुच्छन्दस, मेधातिथि, सूर्य और याज्ञवल्क्य कहे गए हैं। कदाचित् यजुर्वेद की महिमा बढ़ाने के लिए उसकी कुछ ऋचाओं को देवताओं की कहीं बताया गया है। एक दो स्थानों पर मन्त्रों का प्रभाव ऋग्वेद से भी बढ़ा चढ़ा प्रकट किया गया है। ऋग्वेद में तो देवताओं की विनय प्रार्थनाएँ ही हैं कि वे हमें प्राण मुक्त करें—पर यजुर्वेद में तो कहा गया है कि वह उनके पाठ से पाप मुक्त हो गया। तथा—सब दुरात्माएँ मन्त्र द्वारा जला दिए गए।

ऋक् और साम के नाम आए हैं। तथा आयु और पुरूरवा के वर्णन हैं। ऋग्वेद की अपेक्षा इस वेद में विष्णु का वर्णन अधिक है। रुद्र की महिमा भी अधिक है। वे शिव–शङ्कर महादेव तथा ईश्वर तक हो गए हैं। सन्द और मर्क शुक्र के पुत्र हैं। मर्क राक्षसों के पुरोहित थे। सन्द हराए गए और मर्क भगाए गए

---

१. शतपथ कहता है कि नरमेध में पुरुष के पुतले की बलि दी जाय। यह कदाचित् प्राचीन परिपाटी का संशोधन है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थे। जन्म का महत्त्व बढ़ गया था। कहा गया है—आज मुझे ऐसा ब्राह्मण मिले जो स्वयं ऋषि हो और ऋषियों की संतान हो। पवित्र बाप-दादों से उत्पन्न हो। सिन्धु नदी, भारतीय क्षत्रिय, जहाज का कथन है। पुरु को एक राक्षस कहा है जिसे भरत ने हराया। पुरोहितों की जाति बनी। तथा शूद्र और आर्य एवम् तार्क्ष्य और अरिष्ठनेमि उत्पन्न हुए। ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य और शूद्रों को ज्योति प्रदान हो। बिना हाथों वाले कुनार नामक एक दैत्य का वर्णन है, जो दानवों के साथ रहता था। भेड़िये और चीतों का कथन है। अम्बा–अम्बालिका और अम्बिका नाम हैं[1]। मागध नाम है। उस समय तक मगध राज बन चुका था। ईश्वर का वर्णन अधिक स्पष्ट है। आर्य और दास दोनों ईश्वर के हैं—इस कथन से स्पष्ट है कि अब दोनों जातियां मिल जुल कर रहने लगी थीं।

अथर्व–वेद—अथर्व के कुछ मन्त्र सम्भवतः ऋग्वेद से भी प्राचीन हैं। इस वेद का निर्माण ऋग्वेद से भी प्रथम आरम्भ होकर पीछे तक होता रहा है। इसे अथर्वाङ्गिरस और भृग्वांगिरस भी कहा गया है। अथर्वण पहले ऋषि थे, जिन्होंने लकड़ियाँ रगड़ कर आग पैदा की। अंगिरा और भृगु भी प्राचीन ऋषि हैं। इन तीनों ऋषियों और इनके वंशधरों का वर्णन ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर आया है। इन्हीं तीन ऋषियों के वंशधरों ने आगे तक इस वेद का निर्माण जारी रखा। ऋग्वेद में एक विशेषता यह है कि वह अन्य किसी वेद की सहायता लेकर नहीं चला। स्वतन्त्र और प्राचीन ऐतिहासिक दृष्टि से वह महत्त्वपूर्ण है यही बात अथर्व के सम्बन्ध में भी है। ऋक् और अथर्व में एक भारी अन्तर यह है कि ऋक् में जाति भेद या ब्राह्मण की श्रेष्ठता नहीं है। पर अथर्व में है। ऋग्वेद में प्राकृतिक वर्णन अधिक है। अथर्व में जादू टोना और भूत–प्रेतों के मन्त्र हैं। संक्षेप में अथर्व किसी कदर रहस्य पूर्ण है। आयुर्वेद–चिकित्सा और औषधिशास्त्र का भी प्रारम्भिक रूप अथर्व ही में देखने को मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि अथर्व के मन्त्र ऋग्वेद के साथ ही प्राचीन काल में नीचे दर्जे के लोगों में या अनार्यों में प्रचलित थे। ऋग्वेद भी अंगिरस वंशियों को मायावी कहता है। प्राचीन आर्यों के जीवन और विश्वासों का विकास कैसे हुआ—इसकी झलक हमें अथर्व ही में मिलती है। इस दृष्टि से अथर्व ऋग्वेद से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। वैदिक साहित्य में वास्तव में तीन ग्रन्थ ही सर्वोपरि हैं—ऋग्वेद–अथर्व और शतपथ ब्राह्मण।

अथर्व में २० काण्ड ७६० सूक्त और ६०१५ छन्द हैं। इसमें १८०० ऋचाएं ऋग्वेद से ली गई हैं। अथर्व वेद के ऋषियों के नाम पृथक् नहीं दिए गए हैं। प्रत्येक मण्डल में कई अनुवाक् हैं, प्रत्येक अनुवाक् में कई सूक्त हैं, प्रत्येक सूक्त

---

१. महाभारतकालीन थीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में कई ऋचाएँ हैं। स्त्रियों के वर्णन इसमें कम है। झाड़ने फूंकने के मन्त्र अधिक हैं। अथर्व में जुए के भी सूक्त हैं। विश्वकर्मा को जगत का रचयिता कहा गया है। गाय और बैल के मांस खाने का कथन है[1]। लड़की की अपेक्षा लड़का पैदा होना अच्छा माना गया है। कुटुम्ब में मिल जुल कर रहने और सब मे निर्वाह करने के सूक्त हैं। भेड़िया–बाघ आदि दुष्ट जीवों के सूक्त हैं। स्वर्ग का वर्णन प्रचुर है। एक पूरा सूक्त ही स्वर्ग के सम्बन्ध में है। तेरहवां महीना लौंद का इन्द्र ने पैदा किया था। वभ्रु एक राजा था। अरात का भी वर्णन है। सूमों की निन्दा और उदार लोगों की प्रशसा है। ब्राह्मण का महत्त्व और शूद्र की हीनता प्रकट की गई है। शूद्र अपनी गुरुता से आर्य का अपमान न करे। यदि १० अब्राह्मण किसी स्त्री को चाहते हों, और एक ब्राह्मण उसे चाहे तो वह उसी की होगी। ब्राह्मण का निरादर करने या लूटने से नाश होगा। मूंजवन, महावृष और वाल्हीक जातियां उत्तर–पच्छिम में रहती थीं। कहा है कि हे ज्वर, तू मूंजवन, वाल्हीक महावृष और आँगों और मागधों में जा। हे ज्वर, तू लम्बर, शूद्र वालिका के पास जा। गाय और ब्राह्मण की प्रशंसा है। प्रजापति–स्कम्भ, पुरुष और विश्वकर्मा के नामों से ईश्वर का वर्णन है। चीते को शक्ति का प्रतिरूप समझा गया है। विराज के वर्णन में ईश्वरांश का कथन है। अंगिरा वशी जादूगर थे। किमिदिन; अलिन्स और वत्सप राक्षस थे। किलिम्ब गर्भ में बच्चे को बचाए और उसे लड़की न होने दे। नेवला दवा जानने वाला होता है। असुर राक्षस है। प्रह्लाद पुत्र विरोचन था। असुर मायावी थे। द्विमूर्छा और आर्तव राक्षस थे। चित्ररथ और वसुरुचि गन्धर्व थे। वेन पुत्र पृथु थे। उनकी सब देवता सहायता करते हैं। गाय की पूजा खुर और पूंछ की होनी चाहिए। गाय यज्ञ से निकली है। गाय क्षत्रिय की माता है, तथा विष्णु, पृथ्वी और ब्रह्मा गाय हैं। जो ब्राह्मण गाय देता है वह पुण्य करता है। कृत्या से जादूगरों के मारने की प्रार्थना की गई है। सप्तर्षि दुनिया के स्वामी हैं। ऋषि संतानों की प्रशंसा की गई है। अर्धक को रुद्र ने मारा। ब्रह्मचारी काला मृग-चर्म ओढ़े। सविता ने अपनी पुत्री सूर्या यति को दान दी। स्त्री से कहा गया है तू अपनी सुसराल में जा, सब से मिलकर प्रेम से रह, अपने लड़कों से प्रसन्न रह, सब पर आज्ञा कर, पति से पृथक् न हो, खुश होकर रह, पति से प्रेम कर, पति के परिवार को वश में रख। सब वस्तुओं की स्वामिनी हो।

हे स्त्री, मैंने तुझे अपने घर की स्वामिनी बनाया है। सब पर दया कर; और सब से मृदु व्यवहार रख। सास स्वसुर से मृदु व्यवहार रख। गाय बैलों की सुरक्षा रख, घर की सब चीजों को सम्हाल, ढंग से रख। सब जीवधारियों को प्रसन्न

---

१. काण्ड ३ सूक्त २२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रख। प्रातः काल पति के साथ एक ही पलङ्ग पर जाग। वीर पुत्र उत्पन्न कर। इन वचनों से स्त्रियों के अधिकारों पर प्रकाश पड़ता है।

व्रात्यों को स्तोत्र द्वारा आर्य बनाया गया। १०० पतवारों के जहाज होते थे। एक स्थान पर हज़ार वर्ष जीने की कामना की गई है[1]। समय सात लगाम वाला घोड़ा है, सफेद किरण में सात रंग हैं। इन्द्र ने बीस राजाओं को हराया। तथा सुश्रव और तूर्व्व यान को बचाया। दधीच की हड्डी के वज्र से सरपानी झील के निकट ७ द्रुह्यों को मारा। उशना इन्द्र के मित्र थे। रुम, रूशम और श्यापक के नाम हैं। रूशमें का राजा कौरम और ऋणञ्जय था। परीक्षित कौरव्यों में श्रेष्ठ था। रज राक्षस था। दधि क्रवन घोड़ा विजय करता है। कृष्ण दस हजार साथियों के साथ अंशुमती तट पर छिपा था। वही वृहस्पति, इन्द्र और मरुत ने उसका साम्मुख्य किया। सूर्य, इन्द्र, अग्नि आदि में ईश्वर भाव कथित हैं। सौभरि ऋषि का कथन है--रोग, शान्ति, मृत्यु, विष, सर्प विष निवारण के बहुत मन्त्र हैं। मगध और अङ्ग आर्य सभ्यता के किनारे पर थे।

५--वेदों पर एक व्यापक दृष्टि

डा० कीथ का कथन—डा० कीथ का कथन है कि ऋग्वेद दूसरे से सातवें मण्डलों तक पहिले बना, पीछे प्रथम मण्डल का दूसरा भाग बना, फिर प्रथम भाग। इसके बाद आठवाँ मण्डल। इसके बाद आठों मण्डलों से सोम पवमान सम्बन्धी ऋचाएँ निकाल कर नवां मण्डल बनाया गया। इसके बाद दसवाँ मण्डल बना। वाल ख्याखिल्य मुख संहिता का भाग नहीं है। दान स्तुति भी पीछे से जोड़ी गई।

सामवेद के सम्बन्ध में कीथ का कहना है—कि वह बहुत कुछ ऋग्वेद पर आश्रित है। पर ऐतिहासिक दृष्टि से वह सार हीन है। यजुर्वेद का गद्य प्राचीनतम वैदिक गद्य है। कदाचित् पंशविंश ब्राह्मण का गद्य इस से भी प्राचीन है। यह सामवेद का ब्राह्मण है। ऋग्वेद के ब्राह्मण उत्तर कालीन हैं। गोपथ ब्राह्मण, कौशिक और वितान सूत्रों के पीछे का है।

आर्यों का अफगानिस्तान पर अधिकार था। वे कुभा (काबुलनदी) सुवस्तु (स्वात) क्रन्मु (कुरेग) गोमती (गुमल) परुष्णी (रावी) के किनारे बसे। ऋग्वेद में विन्ध्य, नर्मदा-चीता और चावल का कथन नहीं है। सिंह और हाथी के कथन है, पीछे के काल में आर्य सोम के स्थान से दूर हट चुके थे, सुदास तृत्सु थे। उनके युद्ध

---

१. कान्ड १७। सू० १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में पाँच अप्रसिद्ध वंश सम्मिलित थे । अलिन (उत्तर पूर्वी काफिरस्तान) पक्थ (अफगान–फगथून) कलान (बोलन दर्रा) शिव–विशाति[1] । शेष पाँच अनु, द्रुह्यु, तुर्वश, यदु और पुरु हैं । युद्ध जय करने पर सुदास पलट कर भेद का सामना करता है । भेद के साथ—अज, सिग्नु और पक्थ लोग भी थे । दिवोदास, अतिथिग्व, तौर्वश, यादव और पौरवों से लड़े । शम्बर, पणि, पाण्पत और वृसदों से भी लड़े । कुछ युद्ध यमुना तट पर हुए । कुरु कृवि तथा भारत सृंजय परस्पर मिले थे ।

मैक्डानल्ड का मत—मैक्डानल्ड कहते हैं, "कि दूसरे से सातवें मन्डल तक की रचना पहिले हुई । शेष चारों मंडल धीरे-धीरे बने । नवां मंडल सब के बाद बना । इस के बाद दसवां ।

विवेचना—दूसरे से सातवें मण्डल तक ऋषियों में एक एक घराने का प्राधान्य है । इस से ये मण्डल तो अल्प काल ही में बने हैं । पर दसवें मण्डल में तो अनेक प्राचीन ऋषि हैं, तीसरे और सातवें मण्डल में सुदास का वर्णन है, जो पुरु के वंश-धरों में '४० वीं' पीढ़ी पर था, चाक्षुष मनु तो वैवस्वत से भी पहिले के हैं । सुदास का ययाति के वंशधरों से युद्ध हुआ । दसम मण्डल में ययाति के सूक्त हैं । इस से पाश्चात्यों का यह पूर्वा पर सम्बन्ध का मत ठीक नहीं हैं ।

दसवें मण्डल की कुछ ऋचाएं तो अवश्य ही तीसरे और सातवें मण्डलों से पुरानी हैं । आठवें–नवें और दसवें मण्डलों की वर्तमान स्थिति वेद व्यास कृत है, अतः इन में अनेक नई पुरानी रचनाएँ मिली हुई हैं । इस लिए—पहिले, आठवें, नवें और दसवें मण्डलों का पूर्वापर क्रम स्थिर नहीं हो सकता ।

दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे और सातवें मण्डलों की स्थिति बिल्कुल जुदा है । इन मण्डलों में ऋषियों में से बहुतों ने बहुत से सूक्त बनाए हैं । इस से अनुमान होता है—कि दूसरे से सातवें तक के रचना काल में ऋषि ऋचाओं के निर्माण में अधिक तत्पर हो गए थे । इस प्रकार पहिले, आठवें, नवें और दसवें मण्डलों में तो सम्पादक द्वारा नए पुराने सूक्तों का विषयानुक्रम से संग्रह है—और शेष छै मण्डल मुख्य मुख्य ऋषियों के घरानों के हैं । सब से अधिक ऋग्वेद की ऋचाएं राम काल में बनी हैं । जो त्रेता का अन्त है । दशम मण्डल के अधिकांश भाग द्वापर के अन्त तक बनते रहे हैं ।

सब से पहिला पद्य और गद्य—

संसार का सब से पहिला पद्य ऋग्वेद में है, और संसार का सबसे पहिला गद्य यजुर्वेद में । उसके बाद का गद्य ब्राह्मण ग्रन्थों में । ऋग्वेद की सब से पुरानी प्रति शाकल शाखा भी मिलती है, जिसमें सब मिला कर १०२८ सूक्त हैं ।

---

१. इनके वर्णन महाभारत में भी हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऋग्वेद में ३३ देवता हैं, विश्वामित्र ने यह संख्या ३३३९ कर दी थी। पीछे पुराणों में वह बढ़ कर तेतीस करोड़ हो गई। वेद में प्रतिमा पूजन नहीं है। प्राचीन काल में वरुण की महत्ता थी, पीछे इन्द्र की हुई। सरस्वती पहिले पवित्र नदी मानी जाती थी। बाद में गंगा मानी जाने लगी। सरस्वती वाग्देवी हो गई। पौराणिक काल में वह ब्रह्मा की पत्नी हो गई। सोम पहिले एक मादक रस था, पीछे वह चन्द्रमा में अभिप्रेत हो गया।

व्यवहारिक बातें—आर्यों के जलयान समुद्र पर चलते थे। सोने के सिक्के को निष्क कहते थे। सुरापान और जुआ खेलने का शौक था—सिंह, महिष, हंस, शुक्र, मयूर, काक, सर्प के उल्लेख ऋग्वेद में है। आर्य यमुना तट पर रहते थे ऐसा ऋग्वेद में आया है। अश्वत्थ की महिमा है। बड़ वृक्ष ऋग्वेद में नहीं हैं, अथर्व में केवल दो स्थानों पर है। गाय आर्यों की मुख्य सम्पत्ति थी। अवस्ता में भी उसकी महिमा है। धीरे २ गौ की महिमा बढ़ी। परन्तु विवाह आदि काल में उसका बध होता था, बैलों का अधिक। यजुर्वेद में गौ, हिंसक को प्राण दण्ड विधान है, पर यज्ञों में वह वलि दी जाती थी। अथर्व में उस की पूजा होती थी। घरों में लकड़ी अधिक लगती थी। राजा का पद उत्तराधिकार से मिलता था। राजा को कर प्रजा स्वेच्छा से देती थीं। राजा समितियों द्वारा निर्णय करते थे। पहिले कोई भी ऋषि यज्ञ का पुरोहित हो जाता था—पीछे वह जाति बन गई। यजुर्वेद जन्म को महत्व देने लगा। अथर्व में ब्राह्मण की महत्ता अधिक बढ़ गई। नहरें भी थी। पराजित देश को तत्काल अभयदान मिलता था। धनुष, बाण, तलवार, ढाल शरीरत्राण, शिला-प्रक्षेपक अस्त्रों से युद्ध होता था, बिना भाई की कन्या का नाम पुरुष के समान रखा जाता था। घोड़ों से भी हल जोता जाता था। स्त्रियाँ कभी कभी सती होती थीं। लोग धनवान् थे। मृत की भी भस्म गाड़ दी जाती थी।

जन्दावस्ता और छन्द वेद—केवल संहिता ही वेद हैं, संहिता नाम 'ज्यों के त्यों' मन्त्रों का है। पाणिनि कहते हैं, कि पदों के अन्त का अन्य पदों के आदि के साथ संधि नियम से बांधने का नाम संहिता है[1]। ऋक् प्रातिशाख्य का कहना है—कि पदों की प्रकृति के वास्तविक रूप का नाम संहिता है[2]। प्राचीन काल में मन्त्रों के पद अलग न थे, संयुक्त ही थे पर जब वेदार्थ पर मत भेद हुआ, और 'न तस्य' को 'नतस्य' समझा जाने लगा। तो पदों का विच्छेद पाठ जारी हुआ[3]। इस प्रकार एक

---

१. परः सन्निकर्षः संहिता (अष्टा० १।४।१०९।
२. पद प्रकृतिः संहिता (ऋ० प्राति शाख्य)
३. जटा माला शिला लेखा ध्वजो दन्डो रथो धनः।
अष्टौं विकृतयः प्रोक्ता क्रमपूर्वा मनीषिभिः।
(व्याडिकृत विकृत वल्ली १।५)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक की दो दो संहिताएँ हो गईं। यहीं से शाखाओं का आरम्भ हुआ, ब्राह्मण काल पीछे आया। शाखाओं के कारण ही गोत्रों का प्रचार हुआ। इस प्रकार बाहरी प्रभाव से वेदों को बचाने के लिए बड़े बड़े उपाय किए गए। सबसे अधिक बाहरी प्रभाव अथर्व वेद के संगठन पर हुआ। उसका संगठन भी बाद में हुआ। जन्दावस्ता पारसियों की धर्म पुस्तिका तो उसी के अति निकट है। वैदिक साहित्य में अन्य नामों में एक नाम छन्द' भी अथर्व ही का है[१]। जन्द शब्द इसी छन्द का अपभ्रंश है। अवस्ता वेद का अपभ्रंश है।

जन्दवस्ता' का अभिप्राय है 'छन्दवेद'।[२] अरबी के प्रसिद्ध विद्वान और कुरान के महापण्डित श्री सेल ने अपनी कुरान की भूमिका में लिखा है कि--मुहम्मद ने अपने विश्वास यहूदियों से लिए हैं, यहूदियों ने पारसियों से।[3] परन्तु पारसियों के विश्वासों के सम्बन्ध में मार्टिन हांग का कथन है कि--'पारसियों के पुराने साहित्य गाथा में महात्मा जरदुस्त एक पुराने ईश्वरीय ज्ञान को स्वीकार करते हैं, अथर्व की प्रशंसा करते हैं और उस अंगिरा की प्रशंसा करते हैं जिसका वेदों में वर्णन है।[४] जिस गाथा में अंगिरा का वर्णन है वह यह है--

स्पन्तेभ अतथ्वा मज्दा में गही अहरा।
ह्यत मा वोहु पइरि जसत् मनंगहा।
दक्षत् उष्यातुष्मा मइतिश वहिश्ता।
नाहत् ना पोउरूश् द्रेग्वतो ख्यात् चिक्नुषो
अत् तो वीस्वेंग अंग्रेग अषाउना आदरे (गाथा य० १८।२२)

---

१ ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषामहे। अथर्व० (१८।४।२४)
तस्मात्यज्ञात सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत (ऋग-यजु साम-अथर्व पुरुष सूक्त)

१—I still hold that the name of Zend was originally a corruption of the Sanskrit word छन्द, Chhanda, which is the name given to the language of the Veda by Panini and others. (Chips from a German Workshop. Vol. I, P. 88)

३—Mohammed borrowed from the Jews who learnt the names and offices of those beings from they themselves confess. (Talmud Hieros and Roshbashan. Sale's Coran P. 50)

४—In the Gatha (which are the oldest parts of the Zendavesta) we find Zarthushra alluding to old revelation and praising the Wisdom of Sooshyants, Atharvas, Fire-Priests. He exhorts his party to respect and revere the Angra. (Yas. XVIII, 12) I. C. the Angiras of the Vedic Hymns— Hung, Essays P. 294)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थात् "हे अहुरमज्द, मैंने तुझे आबादी करने वाला जाना; जब तेरा संदेश लाने वाला अंगिरा मेरे पास आया, तो उसने प्रकट किया कि संतोष सबसे उत्तम वस्तु है। एक पूर्ण पुरुष कभी भी पापी को राजी नहीं रख सकता क्योंकि वह सत्य ही का पक्ष करता है।"

इस गाथा में अंगिरा के लिए 'अंग्रेग' शब्द आया है। जो अंगिरा अथर्व ही का वाचक है।[1] इस प्रकार जरदस्तु ने अथर्व ही के द्वारा संदेश प्राप्त किया। और उसका धर्म अथर्वानुमोदित है।

६--ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषद्

ब्राह्मण—ब्राह्मण प्रथम वेदाङ्ग हैं। अब ये ७० की संख्या में मिलते हैं। कहा जाता है—अनेक लुप्त हो गए हैं। कृष्ण यजुर्वेद में मूल के आगे उसकी व्याख्या भी दी गई हैं। जो गूढ़ अर्थों को प्रकट करने के लिए है। ये व्याख्याएँ भिन्न २ धर्माचार्यों की है। ऋग्वेद के दो ब्राह्मण है। ये ब्राह्मण एक दूसरे से अनेक बातों में मिलते हैं, एतरेय के अन्तिम दो अध्याय कौशीतकी में नहीं है। कृष्ण यजुर्वेद को तैत्तिरीय और शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण है। सामवेद के ताण्डय व पंच विंश ब्राह्मण, सदविंश ब्राह्मण और छान्दोग्य है। अथर्व का ब्राह्मण गोपथ है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में गंगा की घाटी में रहने वालों पुरु-विदेह-पांचाल और कौशलों का अच्छा वर्णन है। ब्राह्मणों से ब्राह्मणों को जो पुरोहितों की नई जाति बन गई थी महत्व प्रकट होता हैं। उपनिषदों के उदय तक लोग ब्राह्मण ग्रन्थों की अपौरुषेय मानते रहे। ब्राह्मण विस्तृत प्राचीन गद्य में लिखे गए हैं। ब्राह्मणों में यज्ञाडम्बरों, आचारों और यज्ञ विधियों का वर्णन हैं। यज्ञों से सम्बन्धित छोटी से छोटी बात भी विस्तार से बताई गई है। ब्राह्मणों में पंजाब जैसे भूल सा गया है।

शतपथ बहुत बड़ा ग्रन्थ है। इसके रचयिता याज्ञवल्क्य हैं। परन्तु यह ग्रन्थ एक सम्प्रदाय की परम्परा से बना प्रतीत होता हैं। जो भिन्न २ समय में बना। यजुर्वेद के प्रथम के १८ अध्याय प्राचीन कहे जाते हैं। और इस ब्राह्मण के ९ काण्ड जिनमें १८ अध्यायों की व्याख्या है सबसे पुराने हैं। शेष ५ कांण्ड प्रथम ९ काण्डों के पीछे के समय के हैं।

अथर्व का गोपथ ब्राह्मण आधुनिक प्रतीत होता है। इसमें विविध विषयों का वर्णन है।

१--अथर्वाङ्गिरसो मुखक (अथर्व)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आरण्यक—आरण्यक ब्राह्मणों के बाद बने हैं। वे ब्राह्मणों के अन्तिम भाग हैं। समय के कथनानुसार वे इसलिए आरण्यक कहाते हैं कि वे अरण्य में पढ़े जाते थे। पर ब्राह्मणों का उपयोग गृहस्थ यज्ञों में करते थे।

ऋग्वेद के कौशीत कि आरण्यक और एतरेय आरण्यक हैं जिनमें से एतरेय आरण्यक महिदास एतरेय ने बनाया था। कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय आरण्यक है, शतपथ का अन्तिम अध्याय भी उसका आरण्यक कहा जाता है। सामवेद और अथर्व वेद के आरण्यक नहीं हैं।

आरण्यकों का महत्व इसलिए है कि उनमें उपनिषदों के तात्त्विक विचार हैं।

उपनिषद्—प्रसिद्ध और प्राचीन उपनिषद् ये हैं—

ऋग्वेद के एतरेय और कौशीतकि उपनिषद्, जो इन्हीं नामों के आरण्यकों में हैं—

सामवेद के छान्दोग्य तल्वकार या केन उपनिषद्। शुक्ल यजुर्वेद के वाजसनेयि (ईश) और बृहदारण्यक उपनिषद्। कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय कठ और श्वेताश्वतर उपनिषद्। अथर्व वेद के मुण्डुक प्रश्न और माण्डूक्य उपनिषद् है।

ये बारह प्राचीन उपनिषद् हैं। शंकर ने इन्हीं का प्रमाण माना है, बाद में सैकड़ों उपनिषद् बनते गए। जिनकी संख्या २०० से भी अधिक है। उत्तरकालीन उपनिषद् जो प्रायः अथर्व वेद के उपनिषद् कहाते हैं। पौराणिक काल तक बनते रहे हैं। तथा उनमें ब्रह्म ज्ञान की बातें नहीं—सम्प्रदाय की बातें हैं। यहां तक कि एक उपनिषद् अल्ला-उपनिषद् भी बन गया।

उपनिषदों के साथ आर्य काल की समाप्ति होती है।

ब्राह्मणों में एतिहासिक संकेत—ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक एतिहासिक संकेत हैं, परन्तु उनका पूर्ण विवरण पुराणों के साथ अध्ययन करने से मिलता है। व्यास ने कहा है—कि जो कोई साङ्गोपाङ्ग वेदों को तो पढ़े, परन्तु पुराणों का अध्ययन न करे-वह विद्वान नहीं हो सकता[1]। इसी प्रकार केवल पुराणों के आधार पर बिना ब्राह्मण ग्रन्थों की सहायता के कोई मत स्थिर नहीं हो सकता। आज तक भारतीय या अभारतीय इतिहास लेखकों ने—पुराणों के आधार पर इतिहास विवेचन किया है—उनमें से किसी ने भी ब्राह्मण वाक्यों से उसकी जांच नहीं की। अतः उनके ऐतिहासिक आधारों में सत्यता की कमी रह गई।

---

१. यो विद्याच्चतुरोवेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
पुराणं चेन्न संविद्यान्न स स्याद् सुविचक्षणः। (व्यास)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्राह्मणों का ऐतिहासिक मूल्य—ब्राह्मण ग्रन्थ भारतीय इतिहास के मूल स्रोत हैं। कृष्ण यजुर्वेद की काठक-मैत्रायणीय, कपिष्ठल और तैत्तिरीय शाखाएं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकाश प्राचीन इतिहास पर डालती हैं। इन संहिताओं में प्राचीन देवासुर संग्रामों के छोटे-बड़े वर्णन हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी ऐतिहासिक देवासुर संग्राम वर्णित हैं। कालक्रम की दृष्टि से ब्राह्मणों को इस प्रकार रखा जा सकता है।

(१) ताण्ड्य ब्रा०—अति प्राचीन हैं।

(२) दिवाकीर्त्या ब्रा०—प्राचीन हैं।

(३) ऐतरेय—इस में नग्नजित् गांधार का वर्णन है।

(४) शांखायन और कौशीतकि—ऋग्वेद का ब्राह्मण

(५) कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय और काठ्ठक ब्राह्मण। सामवेदीय जैमिनि और ताण्ड्य ब्राह्मण।

(६) शुक्ल यजुर्वेद का वाजसनेयि ब्राह्मण। इसके अवान्तर माध्यन्दिन शतपथ और काण्व शतपथ और कात्यायन शतपथ हैं।

(७) गोपथ ब्राह्मण।

प्रथम पांच संख्या वाले ब्राह्मण एक ही काल में लगभग बने हैं। इनके प्रवक्ता व्यास हैं। ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचन ५० वर्ष बाद हुआ है। याज्ञसनेय ब्राह्मण इसके कुछ बाद का है। गोपथ सब के बाद का।

अरण्यक और उपनिषद्—इन ग्रन्थों में भी इतिहास की प्रचुर सामग्री रहा।

ऋषि तथा ऋषि कल्पों का अवैदिक साहित्य—वैदिक ऋषियों तथा वैदिक वाङ्मय के निर्माताओं ने लौकिक रचनाएं भी की हैं जिनका विवरण यहां देते हैं—

(१) उशनस-काव्य-शुक्राचार्य, आथर्वण ऋषि तथा जन्दावस्ता का ऋषि। दैत्य गुरु।	अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, धर्मशास्त्र आदि।
(२) अंगिरस वृहस्पति-देवगुरु, ऋषि।	व्याकरण, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र।
(३) वार्हस्पत्य भरद्वाज ऋषि।	व्याकरण-आयुर्वेद।
(४) जातुकर्ण्य, ब्राह्मण-कल्पसूत्र वेद।	आयुर्वेद संहिता।
(५) कृष्ण द्वैपायन व्यास-वेदसंहिताओं तथा ब्राह्मणों के प्रवचन कहे।	महाभारत, पुराण संहिता, धर्मशास्त्र।
(६) सुमन्तु आथर्वण संहिता का प्रवक्ता	धर्म सूत्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(७) तित्तिरि–कृष्ण यजुर्वेदीय संहिता ब्राह्मण आदि ।	अनुक्रमणि और श्लोकों का कर्ता
(८) चरक वैशम्पायन वेद–ब्राह्मण	आयुर्वेद । महाभारत का संस्कर्ता ।
(९) जैमिनि–सामसंहिता ब्राह्मण और कल्प प्रवक्ता ।	मीमांसा सूत्र ।
(१०) शौनक–छन्द प्रवक्ता ।	बृहद्देवता प्रतिशाख्य कर्ता ।
(११) बौधायन–कल्प सूत्रों का कर्ता ।	वेदन्ता–वृत्ति[1] ।

———

७––वेदाङ्ग

उपवेद—

वेदों और ब्राह्मणों के अतिरिक्त ४ उपवेद, ६ वेदांग और अनेक उपांग भी हैं । ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्व वेद और अथर्व का अर्थशास्त्र ।

आयुर्वेद के आदि आचार्य—ब्रह्मा (वरुण), रुद्र, विवस्वान्, दक्ष, अश्विनी-कुमार, यम, इन्द्र, धन्वन्तरि, च्यवन, आत्रेय, अग्निवेश, भेल, जातुकर्ण, पराशर, क्षीरपाणि, हारीत, भरद्वाज और सुश्रुत थे ।

धनुर्वेद के आचार्य विश्वामित्र हैं । उसमें ४ प्रकार के आयुध लिखे हैं—मुक्त–अमुक्त–मुक्तामुक्त और मन्त्रयुक्त ।

गान्धर्व वेद के अन्तर्गत नाट्यशास्त्र है । इसके आचार्य नारद हैं । नृत्य के आचार्य महेश्वर हैं । नाटचशास्त्र भरत मुनि ने लिखा ।

अर्थशास्त्र की शाखाऐं नीतिशास्त्र, शालिहोत्र, शिल्पशास्त्र, सूपशास्त्र आदि ६४ कलाऐं हैं । नीतिशास्त्र के रचयिता शुक्र–विदुर–कामन्दक और चाणक्य हैं ।

वेदाङ्ग—

वेदांग छै हैं—(१) शिक्षा, (२) व्याकरण, (३) निरुक्त, (४) कल्प, (५) ज्योतिष, (६) छन्द ।

(१) **शिक्षा**—शिक्षा से उच्चारण की रीति जानी जाती है ।

(२) **व्याकरण**—व्याकरण से शब्दों और वाक्यों के सम्यक् प्रयोग की विधि का ज्ञान होता है । पाणिनि शिक्षा और व्याकरण के सब से श्रेष्ठ आचार्य

---

१. भगवद्दत्त शास्त्री ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। कात्यायन और पतञ्जलि भी वैयाकरण थे। कहते हैं आरम्भ में इन्द्र–चन्द्र महेश और ब्रह्मा ने मिल कर अक्षर और व्याकरण के नियम बनाए।

(३) **निरुक्त**—निरुक्त में वेदों में प्रयुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति एवम् अर्थ का ज्ञान होता है। यास्क इसके आचार्य हैं।

(४) **कल्प**—कल्प से वेद-कर्मों के क्रम का ज्ञान होता है। कल्प की तीन शाखाएं हैं—श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र और धर्म सूत्र। श्रौत सूत्र के आचार्य लात्यायन, द्रव्यायन आदि हैं। आश्वलायन, गोभिल, पारस्कर आदि गृह सूत्र के आचार्य हैं। बौधायन, आपस्तम्ब–कात्यायन आदि धर्म सूत्र के।

(५) **ज्योतिष**—ज्योतिष से समय ज्ञान होता है। तिथि आदि जानने की विधि निर्दिष्ट है। सूर्य–चन्द्र आदि ग्रहों की गतियाँ गणित द्वारा बताई गई हैं। पाराशरी संहिता ज्योतिष का प्रथम ग्रन्थ है। ब्रह्मा, मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, वशिष्ठ, कश्यप, भर्ग, नारद, वृहस्पति, विवस्वान्, सोम, भृगु, मनु, च्यवन आदि ज्योतिर्विद थे।

(६) **छन्द**—छंद के आचार्य शेषनाग हैं। छंद दो प्रकार के हैं—लौकिक और अलौकिक। वेद में अलौकिक छन्द हैं। दोनों का वर्णन पिङ्गल नाग ने 'छंदोनिवृत्ति ग्रंथ में किया हैं। इसी से छंद को पिङ्गल शास्त्र कहते हैं।

उपाङ्ग—

उपाङ्ग अनेक हैं—पुराण–न्याय–मीमांसा और धर्मशास्त्र उपांग कहाते हैं।

पुराण १८ हैं। और उपपुराण भी १८ हैं।

न्याय के आचार्य गौतम और वैषेशिक के कणाद हैं। पुराणों में कणाद को उलूक और गौतम को अक्षपाद लिखा गया है। गौतम के न्याय पर वात्स्यायन का न्याय है। और वैषेशिक पर प्रशस्तपाद का। मीमांसा का अर्थ है निर्णय। पूर्व मीमांसा जैमिनी की और उत्तर मीमांसा बादरायण की है। शबर स्वामी पूर्व मीमांसा के काव्यकार हैं। कुमारिल भट्ट और प्रभाकर पूर्व मीमांसा के अनुयायी हैं। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, विज्ञान भिक्षु, निम्बकाचार्य उत्तर मीमांसा के भाष्यकार हैं।

धर्मशास्त्र के सांख्य और योग उपभेद हैं। कपिल सांख्य के और पतञ्जलि योग के प्रणेता हैं।

वेदान्त—वेदांत इस युग की समाप्ति पर सबसे भारी सांस्कृतिक घटना है। वेदव्यास ने सब श्रुतियों को लिपिबद्ध किया, सम्पादन किया और उनका तीन भागों में विभाजन कर दिया। ऋग्वेद-स्तुति प्रार्थना के लिए, यजुर्वेद यजन याजन के लिए और सामवेद गायन तथा पाठ शुद्धि के लिए। तीन वेद इस युग में त्रयीविद्या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के नाम से भी विख्यात हुए। व्यास से प्रथम अथर्वाङ्गिरस ने भी कुछ ऐसा ही प्रयास किया था। व्यास ने उसे सम्पूर्ण किया। इसके बाद प्रत्येक वेद एक-एक शिष्य को बांट दिया। जो उस शिष्य की आनुवंशिक सम्पत्ति की भांति स्थिर रहा, और इन्हीं शिष्यों के वंशधरों ने इस वेद सम्पत्ति की रक्षा आज तक ऐसे यत्न से की—कि आर्यों के राज्य छिन गए, युग बदल गए, वंश नष्ट हो गए परन्तु वेद की एक मात्रा में भी उसके बाद अन्तर नहीं आया। इसके बाद बादरायण व्यास ने वेदान्त रचना की। इसी के साथ वेद काल समाप्त हुआ। वैदिक ऋषियों की समाप्ति हुई, और पुराण युग का आरम्भ हुआ। धार्मिक और सामाजिक संस्कृति का यह अभूतपूर्व क्रान्तिकर परिवर्तन था।

९—वैदिक संस्कृति और सभ्यता

प्राक्वेदकालीन भारतीय संस्कृति—

वेदों के निर्माण से पूर्व भारत में एक सुसंस्कृत समाज था। उसकी संस्कृति मिस्र और इराक के पुरातन-धर्मों के समान थी। भारत की प्राचीन प्राक् वेदकालीन संस्कृति एशिया माइनर और भूमध्य सागरीय प्रदेशों की संस्कृतियों से अधिक समानता रखती है। मिस्र, क्रीट, सुमेर, असीरिया, बैबिलोनिया और खाल्डिया की संस्कृति में और मानव वंश में बहुत समानता है। इन देशों में भी प्राचीन काल में शिव-विष्णु और काली पूजा होती थी। नाग पूजा, पितृ पूजा, लिङ्ग पूजा तथा ग्रह पूजा भी प्रचलित थी। देवदासी पद्धति, मूर्त्ति पूजन, मुहूर्त फल, ज्योतिष, पुजारी आदि भूमध्यसागरीय संस्कृति के अंग हैं। नील, युफ्राटिस-तैग्रिस (दजला-फरात) और सिन्धु नदियों के तीर पर बढ़ी हुई प्राचीन संस्कृति का उत्तराधिकार हमारी हिन्दू संस्कृति को मिला है।

वैदिक संस्कृति पर बैबिलोनियन संस्कृति का प्रभाव—

अब इस बात में सन्देह करने की कोई गुंजाइश नहीं रह गई, कि प्राचीन वैदिक संस्कृति पर बैबिलोनियन संस्कृति का भारी प्रभाव है। ऋग्वेद की अनेक ऋचाएँ बैबिलोनियन भाषाओं से मिलती हैं। जिन ऋचाओं का अर्थ सायण आदि भाष्यकार नहीं लगा सके, उन पर बैबिलोनियन ऋचाओं से काफी प्रकाश पड़ता है[1]।

---

१. यथा 'सृण्येव जर्फरी तुर्फरीतू', ऋग्वेद १०।१०६।६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आर्यों की अग्निपूजा, वेदों के अग्निसूत्र और इन्द्र के स्थापित तथा परीक्षित और जनमेजय के पशुयज्ञ—

प्राचीन आर्य अग्नि पूजक थे। वेद के अग्नि सूक्तों में बैबिलोनियन देव 'य' 'दमुत्सि' आदि का मिश्रण मिलता है।

मोहनजोदड़ो और हरप्पा के नगरावशेषों में मन्दिर समझी जाने वाली इमारतों के ध्वंस मिले हैं। परन्तु इनमें कोई देवमूर्ति नहीं है। एक स्थान पर लिंग के आकार का स्तम्भ अवश्य मिला है। पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि दास लोग लिंग पूजन करते थे। पर उनका एक पूजन-स्थान तो होता ही था। इन्द्र ने मण्डप बना कर यज्ञ प्रथा जारी की थी। शतपथ में एक स्थान पर कहा गया है कि "यज्ञ विष्णु था, और वह वामन बौना था। धीरे-धीरे वह बढ़ता चला गया।[1]" पुराणों में वामन अवतार बलि बन्धन की कथा का आधार यहीं से प्रतीत होता है, परन्तु इसका यह स्पष्ट अर्थ ध्वनित है कि यज्ञ संस्था साधारण अग्निहोत्र से बढ़ कर कैसे पुरुषमेध तक बढ़ गई।

पुरुषमेध के रूप में नर बलि तक इन यज्ञों में होती थी। धीरे-धीरे सब संस्कारों और गृह्य कृत्यों में यज्ञ प्रविष्ठ हो गया। इसने पुरोहितों का महत्त्व भी बढ़ाया। जब दासों और आर्यों का युद्ध हुआ, तो बलिदान वाले यज्ञों का विरोधी देवकी-पुत्र कृष्ण उठ खड़ा हुआ। उसने इन्द्र का विरोध तो किया, परन्तु यज्ञों के भड़कीले प्रदर्शनों के सम्मुख उसकी गोपूजन संस्कृति टिक न सकी। अन्ततः परीक्षित राजा के समय में यज्ञ परिपाटी खूब विकसित होकर यमुना तट तक आ पहुँची, जिसका वर्णन हम अथर्व वेद में इस प्रकार पाते हैं :—

"सारे मर्त्य लोक में श्रेष्ठ सार्वभौम वैश्वानर परीक्षित की स्तुति सुनो। पति पत्नी से कहता है—इस कौरव ने राजा होकर अंधकार को बांध कर लोगों के घर सुरक्षित किए। पत्नी पूंछती है—तुम्हारे लिए दही लाऊँ या मक्खन? परीक्षित के राज्य में पका हुआ बहुत सा जौ का दलिया यों ही मार्ग में पड़ा रहता है। (इस प्रकार) परीक्षित के राज्य में सुख की वृद्धि हो रही है।"[2]

इन मन्त्रों से हम देख सकते हैं कि परीक्षित के यज्ञों से लोग प्रसन्न थे। ऐसी स्थिति में घोर आँगिरस की श्रीकृष्ण को बताई सीधी सादी यज्ञ विधि भला क्या काम कर सकती थी? इन यज्ञों के स्वरूप का एक वर्णन 'सुत्त निपात' के ब्राह्मण धम्मिक सुत्त में मिलता है :—

---

१. यज्ञमेवविष्णु पुरस्कृत्येयुः। ...वामनोह विष्णुरास। ... तेनेमां सर्वां पृथिवी समविन्दन्त, (शतपथ, ब्रा० १।२।३।३–७)

२. अथर्व० कांड २० सू० १२७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

" ..... इन ब्राह्मणों ने लोभवश ओक्काक राजा को गोमेध करने के लिए प्रवृत्त किया। ओक्काश राजा ने भेड़ जैसी सीधी गायों को सींग पकड़ कर वध किया। जब गायों पर शस्त्र चलाया गया तो देव-पितर, इन्द्र-असुर और राक्षस सब ने कहा--"अच्छा हुआ! इससे. प्रथम इच्छा, भूख और वृद्धावस्था ये तीन रोग थे--अब पशु यज्ञ के कारण वे अट्ठानवें हो गए।"[1]

यह 'ओक्काक' कौन था, यह कहना अशक्य है। पर यह प्रकट है कि गंगा यमुना के प्रदेश में परीक्षित और जनमेजय ही ने यज्ञों की धूम मचाई, जिनमें पशु वध किया गया। इन्हीं से ब्रह्मावर्त की आर्य संस्कृति में हिंसक यज्ञों का प्रचलन हुआ। इससे ब्रह्मावर्त की कोई अवनति हुई, यह तो नहीं कहा जा सकता परन्तु इतना अवश्य हुआ कि ब्राह्मणों का समाज पर श्रेष्ठत्व स्थापित हो गया। यज्ञ क्रिया और पौरोहित्य उनके हाथ में आ गया। "जिस राजा के यहां पुरोहित नहीं होता--उसका अन्न देवता नहीं खाते। पुरोहित प्राप्त करके राजा स्वर्ग को ले जाने वाली अग्नि को प्राप्त करता है। इससे उसका क्षात्रबल, तेज और राष्ट्र बढ़ता है। पुरोहित की वाणी पाद, चर्म, हृदय और गुप्तेन्द्रिय स्थानों पर पाँच क्रोधाग्नि होती हैं, जो अभ्यर्थना, पाद्य, वस्त्रालङ्कार और धन दान तथा महलों में ऐश से उन्हें रखने से शान्त रहती है।"

यज्ञों के विस्तार के लिए ही ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई। परन्तु जब ब्राह्मणों की रचना हो रही थी, तभी कुछ ऐसे सम्प्रदाय भी भारत में उत्पन्न हो रहे थे—जो यज्ञ कर्म से श्रद्धा रहित थे।[2] उपनिषद् तो यज्ञ की निन्दा करते ही हैं, कुछ श्रुतियाँ भी ऐसी हैं जो इनके आडम्बरमय कर्मकाण्ड की धर्षणा करती हैं।[3] सांख्य के निर्माता कपिल ने तीव्र उक्तियों से कर्मकाण्ड का विरोध करके ज्ञान ही को मुक्ति का उपाय बताया है। गीता भी वेदों की निन्दा करती है।[4] श्रीमद्भागवत में भी हिंसावर्जित कर्मविधि को सात्विकी कहा है।[5] वास्तव में देखा जाय तो

---

१. भारतीय संस्कृति, लक्ष्मण शास्त्री।

२. 'प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञ रूपा अष्टादशोक्तमवर येषुकर्म।
एतच्छ्रेयं योयेऽभिनन्दन्ति मूढाः जरामृत्युं पुनरेनापियान्ति।'
(मुण्डकोपनिषद् १,२००।)

३. न तंविदाथ य इमा जजान अन्यद् युष्माकमन्तरंबभूव।
नीहारेण प्रावृता जलप्या असुतृप उक्थ शासञ्चरन्ति। (ऋ० १०, ८२, ७)

४. देखिए गीता प्रकरण।

५. द्रव्य यज्ञैर्भक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि विभ्यति।
एष मा करुणो हन्यादतज्ञो ह्य सुतृषध्रुवम्। (श्रीमद्भागवत)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यज्ञों का, और उसकी पद्धतियों का ऋग्वेद में बहुत ही कम तथा अस्पष्ट उल्लेख है। यज्ञों का ज़ोर तो यजुर्वेदकाल में हुआ, जो निस्संदेह भारत संग्राम के बाद का काल है। यजुर्वेद में यज्ञ विधि का पूरा वर्णन है। शुक्ल यजुर्वेद का तो प्रथक्करण ही यज्ञ के लिए हुआ। सच तो यों है—कि किसी हद तक ऋग्वेद देवताओं की—तथा यजुर्वेद आर्यों की सभ्यता का द्योतक है।

यजुर्वेद के काल में आर्यों के बड़े-बड़े राज्य फैल रहे थे। नगर व्यवस्था सुगठित हो चुकी थी। वर्णों का संगठन हो गया था, और ब्राह्मण और क्षत्रिय ये दो वर्ण बड़ी तेजी से संगठित हो रहे थे। ऋग्वेद के सूक्त और यजुर्वेद तथा उसके शतपथ आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों को गम्भीरता पूर्वक मनन करने से पता लगता है, कि यजुर्वेद के काल में आर्यों का मुख्य धर्म—अग्निहोत्र, जो प्रातः सायंकाल के साधारण नित्य कृत्य से लेकर बड़े-बड़े वैधानिक राजसूय यज्ञों और अश्वमेध यज्ञों तक—जो कई-कई वर्षों में समाप्त होते थे—बन गया था। यज्ञों के नियम, छोटी-छोटी बातों का गुरुत्व उद्देश्य और तुच्छ रीतियों के नियम, ये ही अब लोगों के धार्मिक हृदयों में भरे थे। ये ही थोथे विचार अब राजाओं और राजगुरुओं के विचार के विषय थे और इन्हीं का ब्राह्मणों की अनथक गाथाओं में उल्लेख है।

यजुर्वेद, जो यज्ञों का मूलस्तम्भ है, उसका नवीन संस्करण जनक के दर्बारी विद्वान् याज्ञवल्क्य वाजसनेय ने 'शुक्ल यजुर्वेद—वाजसनेयी' के नाम से किया। तथा शतपथ ब्राह्मण रच कर मन्त्रों को व्याख्या से प्रथक् किया। सम्भवतः यह कार्य याज्ञवल्क्य के जीवन काल में पूरा नहीं हुआ, उनके बाद अनेक विद्वानों ने बहुत दिन में पूर्ण किया। उसका एक सम्प्रदाय बन गया। इस प्रकार वैदिक यज्ञों का आरम्भ उस काल का है, जब सुदास के युद्धों के बाद कुरु पांचालों के प्रबल राज्य दिल्ली और कन्नौज तक फैल चुके थे, और काशी-कोशल और विदेहों के राज्य भी विस्तार पा चुके थे।

ये यज्ञ राजाओं को किस तरह उपाधि दान देते थे—इस का वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण के एक वाक्य से देते हैं :—

"तब पूर्व दिशा में विदेहों ने सारे संसार का राज्य पाने के लिए ३१ दिन तक इन्हीं तीनों ऋक् यजु की ऋचाओं और गम्भीर शब्दों से उस इन्द्र का प्रतिष्ठापन किया। इसी लिए पूर्वी जातियों के सब राजाओं को देवताओं के इस आदर्श के अनुसार सारे संसार के महाराजा की भांति राजतिलक दिया जाता है और वे इसके बाद सम्राट् कहलाते हैं।"

कभी-कभी राजाओं से और इन पुरोहितों से कर्म-काण्ड के विषय पर भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवाद होता था, जिस का एक मनोरंजक उदाहरण शतपथ ब्राह्मण में है[1]—

"विदेह के जनक की भेंट कुछ ऐसे ब्राह्मणों से हुई, जो अभी आए थे। ये श्वेतकेतु आरुणेय, सोमशुष्क सत्ययज्ञि और याज्ञवल्क्य थे। उसने उनसे पूछा :—

तुम लोग अग्निहोत्र जानते हो ?

तीनों ब्राह्मणों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दिया। पर किसी का उत्तर ठीक न था। याज्ञवल्क्य का उत्तर यथार्थ बात के बहुत निकट था, परन्तु वह भी पूर्णतया ठीक नहीं था। जनक ने उनसे कहा—'तुम लोग कुछ नहीं जानते।' और वह रथ पर चढ़ कर चला गया।

ब्राह्मणों ने कहा—'इस राजन्य ने हमारा अपमान किया है।' याज्ञवल्क्य रथ पर चढ़ कर राजा के पीछे गया, और उससे शंका निवारण की। तब से जनक ब्राह्मण कहा जाने लगा।"

वास्तव में इन निरर्थक अग्निहोत्रों का वर्णन ऐसा विस्तृत हो गया था, और क्रियाऐं इस तरह बढ गई थीं, कि याज्ञवल्क्य जैसे ब्राह्मण को भी याद न रहीं—शायद इसी गड़बड़ी को मिटाने के लिए उसे शुक्ल यजुर्वेद का सम्प्रदाय बनाना पड़ा, और अपना स्वतन्त्र ब्राह्मण शतपथ बनाने में तमाम जीवन नष्ट करना पड़ा।

इन पुरोहितों को दक्षिणा का लालच बढ़ रहा था, और वे धन' सोना, चांदी जवाहरात, घोड़ा, गाड़ी, गाय, खच्चर, दास, दासी, खेत, घर और हाथियों को ठाट से रखते थे[2]। यज्ञ में सोना दान करना उचित समझा जाता था। चांदी के दान देने का बहुत ही निषेध था। ब्राह्मण-ग्रन्थों में इसका भी अनोखा कारण बताया जाता हैं—

"जब देवताओं ने अग्नि को सौंपा हुआ धन उससे फिर मांगा—तो अग्नि रोई और उसके जो आंसू बहे—वे चाँदी हो गए। इसी कारण यदि चांदी दक्षिणा में दी जाय, तो उस घर में रोना मचेगा।"

बड़े-बड़े यज्ञ प्रायः वसन्त ऋतु में (चैत्र-वैसाख के महीनों में) होते थे। ऐतरेय ब्राह्मण के चौथे भाग को पढ़ने से इस विषय का अधिक स्पष्टीकरण हो जाता है।

---

१. शतपथ—११ प्र० ४, ५; ११, ६, २१।

१. देखिए—छान्दोग्य उपनिषद—५, १३, १७, १९; ७; २४।
शतपथ ब्रा० ३, २, ४८। तैत्तिरीय उ० १, ५, १२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यज्ञों में पशुवध—

ऐतरेय ब्राह्मण[1] में लिखा है—कि किसी राजा या प्रतिष्ठित अतिथि का सत्कार किया जाय तो बैल या गाय मारी जानी चाहिए। आधुनिक संस्कृत में अतिथि का एक नाम 'गौघ्न' 'गाय का मारने वाला' भी है। कृष्ण यजुर्वेद के ब्राह्मण में यह ब्योरेवार लिखा है—कि छोटे-छोटे यज्ञों में विशेष देवताओं को प्रसन्न रखने के लिए किस प्रकार का पशु मारना चाहिए। गोपथ ब्राह्मण में बताया गया है कि उस पशु का भिन्न-भिन्न भाग किसे मिलना चाहिए। पुरोहित लोग जीभ, गला, कन्धा, नितंब, टाँग इत्यादि पाते थे। यजमान पीठ का भाग लेता था। और उसकी स्त्री को पेड़ू के भाग से संतोष करना पड़ता था[2]।

शतपथ ब्राह्मण में इस विषय पर एक मनोहर विवाद है कि पुरोहित को बैल का मांस खाना चाहिए या गाय का ? अन्त में परिणाम निकाला गया है—कि दोनों ही मांस न खाने चाहिएँ। फिर भी याज्ञवल्क्य कहते हैं कि "यदि नर्म हो तो हम उसे खा सकते हैं[3]।"

शतपथ ब्राह्मण में पशु का यज्ञ में बलिदान देने के विषय में एक अद्भुत वाक्य है :—

"पहले देवताओं ने मनुष्य को बलि दिया। जब वह बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया, और उसने घोड़े में प्रवेश किया। तब उन्होंने घोड़े को बलि दिया। जब घोड़ा बलि दिया गया, तो यज्ञ का तत्तव उसमें से निकल गया और उसने बैल में प्रवेश किया। तब उन्होंने बैल को बलि दिया। यज्ञ का तत्व उस

---

१. एतरेय १, १५।

२. अथातः सवनीयस्यपशोर्विभागं व्याख्यास्यामः, उद्धृत्यावदानानि "हनुसजिह्वे प्रस्तोतुः, कण्ठः सकुदः प्रतिहर्तुः। श्येन पक्ष उदगातुर्दक्षिणं पार्श्वं साँसमध्वर्योः, सव्यमुपगात्रीणां सव्योंसः, प्रतिप्रस्थातुर्दक्षिणाश्रोणिरथ्यास्त्री ब्रह्मणोऽवसक्थ्यें ब्रह्मच्छासितः उरुः, पोतुः सव्याश्रोणि होतुरपरसकथं मैत्रावरुणस्योरुरच्छावाकस्य, दक्षिणादोर्नेष्टः सव्यान्सदस्य सदञ्चानूकं च गृहपतेर्जघ्नी पत्न्यास्तासां ब्राह्मणेन प्रतिग्राहयति वनिष्ठुर्हृदयं वृक्कौ चाङ्गुल्यानि दक्षिणोबाहुराग्नींधस्य सव्य आत्रेयस्य दक्षिणौ पादौ गृहपतेर्व्रतप्रदस्यसव्यौपादौ हत्न्या व्रत प्रदायाः·····।"

(गोपथ ३।१८)

३. "··सवेत्वैवानडुहश्चनाश्नीयाद्धेनवगडुहौ वा इदꣳसर्वं बिभ्रितस्ते देवा अब्रुवन् धेनवनडुहो वा इदꣳसर्वं बिभ्रितोहन्त यदन्येषां वयसां वीर्यंतद्धेनवनडुह्योर्दधामेति ··तदुहोवाच याज्ञवल्क्योश्नाम्येवाहꣳमांसलंचेद्भवतीति।

(शत० ३।१।२।२१)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में से निकल गया, और उसने भेड़ में प्रवेश किया। जब भेड़ को बलि दी गई तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल कर बकरे में प्रविष्ट हो गया। जब उन्होंने बकरे को बलि दिया। जब बकरा बलि दिया गया, तो यज्ञ तत्व उसमें से भी निकल गया और तब उसने पृथ्वी में प्रवेश किया। तब उन्होंने पृथ्वी को खोदा और उसे चावलों और जौ के रूप में पाया।..... जो मनुष्य इस कथा को जानता है, उसे (चावल आदि) का द्रव्य देने से उतना ही फल होता है, जितना कि इन पशुओं के बलि करने से[1]।"

पूर्व मीमांसा में लिखा है—कि बड़े-बड़े यज्ञों में कार्यकर्त्ता लोगों की पूरी संख्या १७ होती है। १ यजमान १६ पुरोहित। परन्तु छोटे अवसरों पर केवल चार ही ब्राह्मण होते हैं।

बलिदान की संख्या यज्ञ के अनुसार होती थी। अश्वमेध में सब प्रकार के बलि अर्थात् पालतू और जंगली जानवर, थलचर, जलचर, उड़ने वाले, तैरने वाले, रेंगने वाले जानवरों को मिलाकर ३०९ से कम न होने चाहिएं।

ऐसा प्रतीत होता है:- कि ज्यों-ज्यों हिंसा बढ़ी, त्यों-त्यों यज्ञ की हिंसा का विरोध और उसके प्रति घृणा का प्रदर्शन भी होने लगा था। महाभारत में लिखा है—

"वेद में जो लिखा है—कि 'अज' से यज्ञ करें, सो अज का अर्थ बीज है—बकरा नहीं[2]।"

"गाय अवध्य हैं, इन्हें नहीं मारना चाहिए[3]।"

"हिंसा धर्म नहीं है[4]।"

"वह कोई धर्म ही नहीं, जहाँ पशु मारे जाएँ[5]।"

चार्वाक् सम्प्रदाय वालों ने—जिनका प्रादुर्भाव उन्हीं दिनों हुआ था, जब कि खूब पशु-हिंसा चल रही थी—उपहास से लिखा था :—

---

१. शतपथ ब्रा० १, २, ३, ७, ८।

२. अजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः।
अज संज्ञानि बीजानि छागन्नो हन्तु मर्हथ। (महा० अनुशा०)

३. अघ्न्या इति गवां नाम, कस्तुतांहन्तुमर्हति।

४. न हिंसा धर्म उच्यते।

५. नैषधर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"पशु के मारने से यदि स्वर्ग मिलता है तो यजमान अपने पिता को ही मार कर हवन क्यों नहीं कर डालता[1] ?"

मत्स्यपुराण में यज्ञ के विषय में मनोरञ्जक वर्णन पाया जाता है:--

"ऋषि पूछने लगे कि स्वायंभुव मनु के समय वेदोक्त मन्त्रों से यज्ञ प्रचार किस ढंग से आरम्भ हुआ ?

"यह सुन कर सूत जी बोले--वैदिक मन्त्रों का विनियोग यज्ञ कर्म में करके विश्व-भुक् इद्र ने यज्ञ का प्रचार किया। देवताओं का संगठन किया--सब यज्ञ के साधन इक्ट्ठे किए, और अश्वमेध का आरम्भ हुआ। इसमें महर्षि भी आए थे। इस यज्ञ में अनेक ऋत्विज अनेक प्रकार के हवि अग्नि को अर्पण करने लगे। जब सुस्वर सामगान होने लगा--और पशुओं का आलम्भन होने लगा, यज्ञ का सेवन करने वाले देवगण जब आहूत हुए--उस समय दीन पशुगणों को अवलोकन करके महर्षि-गण उठे, और इन्द्र से पूछने लगे--कि तुम्हारी यज्ञ-विधि क्या है ?

"यह तो बड़ा अधर्म है कि धर्म के नाम से अधर्म हो रहा है। यह पशु-हनन विधि तो अनुचित है। तूने धर्म का नाश करने के लिए ही पशु मार कर यह अधर्म करना शुरू किया है। यह धर्म नहीं है--अधर्म है। तुझे यज्ञ करना है तो यज्ञीय धान्य के बीजों से ही यज्ञ कर।" इस प्रकार ऋषियों ने कहा, परन्तु इन्द्र ने नहीं माना।

"तब इन्द्र और ऋषियों में बड़ा विवाद छिड़ गया। यज्ञ जंगम वस्तुओं से हो या स्थावरों से ? यही विवाद था। जब ऋषि थक गए, तब वे दुखी होकर सम्राट् वसु के पास गए।

"ऋषि बोले--हे उत्तानपाद के वंशधर ! तूने कैसी यज्ञ-विधि देखी है, सो कह !"

"राजा वसु बोले--द्विजों को मेध्य पशुओं से तथा फलमूलों ही से यज्ञ करना उचित है। यज्ञ का स्वभाव ही हिंसा है। यह मैंने देखा है।"

"राजा का यह भाषण सुनकर ऋषियों ने उसे श्राप दिया--'तेरा अधःपात हो।" इस से उसका अधःपतन हुआ[2]।

यही कथा कुछ अन्तर से वायुपुराण में भी है। इस से पता लगता है कि कुछ विद्वान् लोग इन पशु-वधों से अत्यन्त घृणा करने लगे थे।

---

१. पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्ठानं गमिष्यति, स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते।

२. मत्स्य पुराण अ० १४३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाभारत शान्तिपर्व में भी एक ऐसी ही कथा है—"इन्द्र ने भूमि पर आकर यज्ञ किया। जब पशु की आवश्यकता हुई, तब बृहस्पति ने कहा—'पशु के लिए आटा लाओ' यह सुनकर मांस के लालची (पशु-गृद्धाः) देवता बारम्बार बृहस्पति से कहने लगे, कि बकरे के मांस से हवन करो।"

"ऋषि बोले—यज्ञों में बीजों से (धान्यों से) यज्ञ करना चाहिए। 'अज' बीज का नाम है। बकरा मारना सज्जनों का काम नहीं। यह श्रेष्ठ कृतयुग है। इसमें पशु कैसे मारा जायगा?"

"तब सबने सम्राट् उपरिचुर वसु को मध्यस्थ कर कहा—'हे महाराज! यज्ञ बकरे के मांस का करना चाहिए, या कि वनस्पतियों का? कृपा करके आप फैसला कीजिए। राजा बोला—पहले यह बताओ, किसका क्या मत है?

"ऋषि बोले—धान्य हवन हमारा पक्ष है, और पशु-हनन देवों का।"

"वसु ने कहा—तब बकरे के मांस से ही हवन करना चाहिए। इस पर ऋषियों ने उसे श्राप दिया और उसका अधःपतन हुआ।

"अब वसु ने यज्ञ ठाना। उसमें बृहस्पति उपाध्याय था। प्रजापति के पुत्र सदस्य थे। एकत्, द्वित्, त्रित्, धनुष, रैम्य, अर्णवसु, परावसु, मेधातिथि, ताण्डय, शान्ति, देशशिरा, कपिल, आद्यकठ, तैत्तिरी, कण्व, देवहोत्र ये सोलह ऋत्विज थे। इस यज्ञ में पशुवध नहीं किया गया। यह यज्ञ अहिंसक और शुद्ध था। इससे फिर उसका अभ्युदय और उन्नति हुई।"[1]

महाभारत में इस बात पर भी प्रकाश डाला है कि यज्ञों में पशुहिंसा वैदिक काल से बहुत पीछे चली थी।

"यह कृतयुग है, इस यज्ञ में पशु अहिंस्य है। क्योंकि इसमें चारों कलाओं से पूर्ण धर्म है। इसके बाद त्रेतायुग होगा, उसमें त्रयीविद्या होगी, और यज्ञ-पशु प्रोक्षित होकर मारे जाएंगे।"[2]

श्रीमद्भागवत् में यज्ञ के विषय में लिखा है—"हे राजन्! तेरे यज्ञ में जो सहस्रों पशु तेरी निर्दयता से मारे गए, वे तेरी क्रूरता का स्मरण करते हुए क्रोधित होकर तीक्ष्ण हथियारों से तुझे काटने को बैठे हैं।"

"इस दयाहीन ने यज्ञ में जो पशु मारे थे, वे ही क्रुद्ध होकर उसका वह अयोग्य कर्म स्मरण करते हुए उसको, कुल्हाड़ों से छिन्न-भिन्न करने लगे।[3]"

---

१. महा० शान्ति० अ० ३३६।
२. महा० " अ० ३४०।
३. श्रीमद्भागवत ४, २५, ७, ८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सप्तसिंधु देश के यज्ञों में कदाचित् गोवध होता था। परन्तु गंगा-जमुना की ओर गोवध का बहुत विरोध था।[1] कृष्ण ही बड़े भारी गोरक्षक तथा गोवध विरोधी थे; सभवतः देवेन्द्र से झगड़े का एक बड़ा कारण यह भी था कि वह देवेन्द्र की रुचि के विपरीत यज्ञ में गोवध पसन्द नहीं करते थे।[2] यदि कृष्ण इन्द्र के अनुकूल रह कर गोवध कर यज्ञ करते, तो कदाचित वह भी ऋग्वेद के प्रसिद्ध देवता हो जाते। महा भारत में भी पशुवध का विरोध है।[3] यज्ञ में दो वेदियां बनाई जाती थीं। एक पूर्ववेदी दूसरी उत्तरवेदी। उत्तरवेदी पूर्ववेदी से दूर रहती थी, वहीं पशुवध होता था, तथा वहीं यूप गाड़ा जाता था।[4] इस सम्बन्ध में तैतिरीय सहिता में महत्वपूर्ण संकेत है—ऋग्वेद दूध की, यजुर्वेद घृत की, समावेद सोम की और अथर्व मधु की आहुतियों की विधि बताता है। परन्तु ब्राह्मण-इतिहास-पुराण-कल्प गाथा नराशांसी मेद (चर्बी) की आहुति कहते हैं।[5]

बुद्ध की आवाज—बुद्ध ने पशुवध के विरोध में बड़ी ऊंची आवाज उठाई थी। उसने कहा—'पहिले ब्राह्मण अन्न बल-कान्ति और सुख देनेवाली मान कर गाय का वध नहीं करते थे, परन्तु आज घड़ों दूध देने वाली, बकरी के समान सीधी गाय को गो वध में मारते हैं।[6]

एतद् वा उस्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्नीयात्
(अथर्व ९।६।९)

१. पशून् पाहि गां मा हिंसी, अजां मा हिंसीः, अविं माहिंसीः, इमंमाहिंसी-द्विपदं पशुं, माहिंसीरेकशफं पशुं-माहिंस्यात् सर्वाभूतानि। (यजुर्वेद)

२. इसी देवकी पुत्र कृष्ण को घोर आंगिरस ने यज्ञ की नई विधि बताई थी, जिसकी दक्षिणा थी, तप, ज्ञान, आर्जन, अहिंसा और सत्य।
(छा० उ० अ० ३,१७,४,६)

३. "नतत्र पशुघातोऽभूत् स राजैरस्थितो भवत् (म० शा० ३३६।१०)

४. देखिए श्री० डा० मार्टिनहाग कृत ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य।

५. यदृचोऽध्यगीषत ताः पय आहुतयो देवानामभवत्। यद्यजूꣳषि घृतायुतयो यत्सामानि सोमाहुतयो यदथर्वांगिरसो मध्वाहुंतयो-यद्ब्राह्मणानि इतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीर्मेदाहुतयो देवानाभवन्
(तैत्तिरीय प्र० २ अ० ९ मं० २)

६. अन्नदा बलदा चेता वण्णदा सुखदा तथा, एतमत्थवसंञ्ञत्वा नास्सुगावो हनिंसुते। नपादा न विसाणेन नास्मु हिंसन्ति केनचि। गावो एलक समाना सोरता कुम्भ दूहना। ताविसाणेगहेत्वान राजा सत्थेन घातयि।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस बात के यथेष्ठ प्रमाण हैं, कि ब्रह्मावर्त में सर्व प्रथम परीक्षित और उसके पुत्र जनमेजय ने यज्ञ की धूम मचाई। इसी से इन दोनों राजाओं का अथर्ववेद में महत्त्व है।[1] ऐसा प्रतीत होता है. कि बुद्धकाल में यज्ञों का बहुत जोर था। पर जनता को यज्ञों से घृणा थी। राजा और धनी ब्राह्मण कृषि के उपयोगी पशु किसानों से जर्बदस्ती छीन लाते थे, और यज्ञ यूपों में बांध उनका वध कर डालते थे। ऐसा संकेत हमें 'कोशल संयुक्त सुत्त' में मिलता है—

"बुद्ध तब श्रावस्ती में रहते थे। उस समय कौशल राजा पसेनदि का महायज्ञ आरम्भ हुआ। पांच सौ बैल, पांच सौ बछड़े, पांच सौ बधिया, पाँच सौ बकरे और पांच सौ भेड़े यज्ञ में वध करने के लिए यूपस्तम्भों से बंधे थे। राजा के दास-दूत और कर्मचारी दण्डभय से रोते हुए यज्ञ के सब काम कर रहे थे। इसकी सूचना भिक्षुओं ने भगवान् को दी।"

"तब भगवान् ने कहा—अश्वमेध, नरमेध, सम्यक् पाश् वाजपेय और निरर्गल यज्ञ बहुत खर्चीले हैं, पर महत्फलदायक नहीं। जिस यज्ञ में भेड़, बकरे, गाय, बैल आदि विविध प्राणी मारे जाते हों; उसमें संत ऋषि नहीं जाते। पर जिसमें प्राणियों की हिंसा नहीं होती उसमें संत महर्षि जाते हैं।"[2]

इस उदाहरण से यज्ञ विरोधी भावना प्रकट होती है। और भी एक उदाहरण है—

"कूटदन्त ब्राह्मण ने एक बड़ा यज्ञ करना आरम्भ किया। गाय, बैल, आदि सैकड़ों प्राणी वध के लिए खम्भे से बंधे थे। बुद्ध की कीर्ति सुन वह बुद्ध के पास आया। उसकी बिनती पर बुद्ध उसको प्राचीन काल में महाविजित राजा ने निरामिष

---

१. राज्ञो विश्वजनीनस्ययोदेवो मर्त्यां अति।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः। ७
पारच्छिन्नः क्षोममरोत्तम आसनमाचरन्।
कुलायन्कृण्वन्कौरव्यः पतिर्वदति जायया। ८
कतस्ते आहराणि दधि मंथाँ परिश्रुतम्।
जायाः पति विप्रच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः। ९
अभीवस्वः प्रजिहीते यवः पक्वः पथो विलम्।
जनः सभद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः। १०
(अथर्व० का० २० सू० । १२७)

२. कोशल संयुत्त सुत्त, नग्ग १। सुत्त ९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यज्ञ किस प्रकार किया—यह बात बताई। सुनकर ब्राह्मण बुद्ध का उपासक बन गया और बलिदान के पशुओं को छोड़ दिया।[1]

वैदिक आर्यों का श्रौत-स्मार्त धर्म तथा वैदिक संस्कृति का व्यापक विस्तार—

वैदिक आर्यों ने प्रथम पंचसिंधु प्रदेश (सिन्ध पंजाब) में प्रवेश किया—धीरे-धीरे शेष भारतीय अवैदिक प्रजा पर भी उनका प्रभाव फैल गया। इस प्रभाव का विस्तार दो रूपों में हुआ, राजसत्ता के बल पर और ब्राह्मण पुरोहितों के द्वारा। इस संस्कृति की मूलभूत वस्तु थी—निसर्ग शक्तियों में भूतपूर्व जनों के कल्पित चेतन देवों की यज्ञ द्वारा आराधना या उपासना। ऐहिक जीवन की आवश्यकताओं और भौतिक साधनों की उपलब्धि ही इन यज्ञों का ध्रुव ध्येय था। राजा राजसूय करके महाराज, और महाराज अश्वमेध करके सम्राट् बन जाता था। पुरोहित ब्राह्मण अनगिनत धन, दास-दासी आदि दान दक्षिणा में पाकर तथा राजाओं से संस्कृत और पूजित होकर खूब सम्पन्न और अधिकार पूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। इन पुरोहितों को प्रसन्न करने, राजाओं के निकट पहुँचने तथा विविध भौतिक अभिलाषाओं के लिए जन साधारण भी यज्ञ करते थे। काम्येष्ठि यज्ञ से और अथर्व वेद के प्रयोग से तो ऐसा प्रतीत होता है कि यातु (जादू) भी यज्ञों का एक अङ्ग था।

वेद में सूर्य, सविता, पूषन्, मित्र, भग, वरुण, विश्वकर्मन्, अदिति, त्वष्ठा, उषस्, अश्वी, इन्द्र, ब्रह्मणस्पति, मरुत्, रुद्र, पर्जन्य, अग्नि, सोम यम, पितर आदि जिन देवों का सूक्तों में ऋषियों ने वर्णन किया है, उन सूक्तों में उन्हें सर्व-शक्तिमान् और सर्वज्ञ बनाने की चेष्टा की है। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक देवता परमेश्वर बनने लगा और उनकी मूल भिन्न शक्तिमत्ता लुप्त हो गई। यजुर्वेद के यज्ञों में अवश्य देवों की पृथक् शक्तिमता वर्णित की गई है। अथर्ववेद में तो ये देवता जादू के माध्यम हैं, विशेषकर भृगु-अंगिरस और अथर्वन तो बड़े भारी जादूगर प्रतीत होते हैं। ऋग्वेद के वशिष्ठ भी जादू में दखल रखते हैं। वैदिक देवता, जो अति प्राचीन आर्य पुरुष ही थे, वेदों में भौतिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली भौतिक शक्तियों में कल्पित किए गए हैं। अग्नि और सूर्य शुद्ध भौतिक चमत्कृति-जनक चेतन शक्ति की भांति कल्पित किए गए। मित्र और वरुण ये क्रमशः दिन और रात के स्थान पर आरोपित हुए। सवितृ वर्षा ऋतु के पृथक् सूर्य के रूप में परिचित हुआ। पूषण धान्य और वनस्पतियों का पोषण करने वाले वसन्तकालीन सूर्य में आरोपित हुआ। उषस् प्रभात की देवी और इन्द्र लड़ाकू, विजयी, अधिक मात्रा में सोम पीने वाला, समूचे बैल को भूनकर खाने वाला आकाश का देव हुआ। मरुत् मारने वाला इन्द्र का सहचर हुआ। ऋग्वेद के बुध सूक्त इन्द्र

---

१. दीघनिकाय का कूटदन्त सुत्त।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के रचे हुए हैं। ऋषि जब सूक्त रचने लगे तो इन्द्र ने उनमें प्रविष्ट होकर सूक्त रचे। रुद्र पहले तूफान का देवता था, तथा अदिति अखण्ड आकाश का। यद्यपि सभी देवताओं के भौतिक अधिष्ठान की संगति पूरी तौर पर नहीं बैठाई जा सकी, किन्तु भौतिक जीवन की भौतिक आकांक्षाएँ पूरी करने के लिए साधन प्राप्त करने की रीति यही हो सकती थी—कि इन देव पुरुषों में भौतिक शक्ति को आरोपित किया जाय। पहिले अग्नि और सूर्य पर ही बहुत सी भौतिक आवश्यकताएँ अवलम्बित थीं, इसलिए वैदिक ऋषि और गृहस्थों में अग्निहोत्र का प्रचलन हुआ। पीछे पशुपालकों में दश पूर्णमासेष्ठि विधि में गोपालन को प्रधान अंग बनाया गया, और इस विधि का फल स्वर्ग प्राप्ति बताया गया। वैदिक मन्त्रों की प्रार्थनाओं में अन्न, पशु, धन, शरीरबल, पत्नी, दास, पुत्र, शत्रु नाश, रोग-निवारण तथा तेज वर्चसा आदि भौतिक इच्छाओं की ही मांग है। स्वर्ग ब्राह्मण ग्रन्थों में पीछे प्रविष्ट किया गया। यद्यपि वैदिक कर्मकाण्ड में मरणोत्तर पारलौकिक गति का विचार है अवश्य—परन्तु उसका ठीक-ठीक विवरण वहां नहीं मिलता। देवयानगति, पितृयानगति; अंधतमस, देवलोक, पितृलोक आदि का उल्लेख वेद में है, परन्तु उनकी चर्चा उत्तर वैदिक साहित्य में—विशेषकर उपनिषद् में ही है। यह एक बड़ी ही चमत्कारिक बात है कि वेद में इन वस्तुओं की कल्पना मरणोत्तर नहीं है, यहाँ तक, कि यम, जो नरक के अधिपति देव कहे जाते हैं; वास्तव में सूर्य-पुत्र और वैवस्वत मनु के भाई थे। यह ऋचाओं के कर्ता भी हैं। ये अपवर्त, जो वर्तमान ईरान का एक भाग है, के राजा थे। इस प्रदेश को ही मृत्युलोक या दोजख कहते थे।[1] आप उपनिषद् में इसी यम और नचिकेता का वार्तालाप देख सकते हैं। नचिकेता मृत्यु के भेद को जानना चाहता था—परन्तु यम उसे बताना नहीं चाहता था। सम्भव है कि यह कोई राजनीतिक या कूटनीतिक विषय हो—परन्तु यम और मृत्यु का जिन अर्थों में हमें ज्ञान है, उसने इस वार्तालाप को कुछ और ही रंग दे दिया है। यद्यपि उस रंग में उपनिषद् की उस बातचीत का कुछ भी अभिप्राय व्यक्त नहीं होता।

ऋग्वेद काल में ब्रह्मचर्य और गृहस्थ दो ही आश्रम विकसित थे। चार आश्रमों का उल्लेख उपनिषदों में प्रथम बार आया है। गौतम धर्म सूत्र[2] में तो यह स्पष्ट लिखा है कि वेद केवल एक गृहस्थाश्रम ही को मान्यता देता है। अथर्ववेद और ब्राह्मणों में ब्रह्मचर्याश्रम का, विशेषतः उपनयन का विधान विस्तार से है, परन्तु

---

१. The hero Yama was held to be the first to show the way to many, and being the first to arrive in the varty halls of deths, Yama become trans formed in to the king of the dead.

(History of Parsia Voc.) 107

२. गौतम धर्म सूत्र ८।८।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

छान्दोग्य उपनिषद् में चार आश्रमों का उल्लेख है। सच पूछा जाय तो वैदिक आर्यों ने वानप्रस्थ और सन्यास को अवैदिक संस्कृति से बहुत पीछे लिया है।

संस्कारों की कल्पना भी उत्तर साहित्य में है। गौतम धर्म सूत्र में,[1] जो सब स्मृतियों से प्राचीन है, यज्ञ को भी संस्कारों में गिना गया है। वह चालीस संस्कार बताता है। अग्न्याधान, दस पूर्णमासेष्ठि, सोमयाग, पशु-बध आदि को संस्कारों में गिना है। गर्भाधान आदि सोलह संस्कारों का सम्बन्ध अथर्ववेद में है। अथर्ववेद के कौशिक सूत्र एवं गृह्य सूत्रों में यह संस्कार विधि वर्णन की गई है। बहुत करके स्वामी दयानन्द ने वहीं से संस्कार विधि को ग्रहण किया है। परन्तु प्राचीन गृह्य सूत्रों में 'सोलह संस्कार' ऐसा वर्गीकरण कहीं नहीं है।

वर्ण विभाजन और ब्राह्मण-क्षत्रियों का गठबन्धन—

यज्ञों ही से वर्णों के विभाजन का प्रारम्भ हुआ। ब्राह्मण अपनी स्थिति को जानते थे—"ब्राह्मण राज्य नहीं कर सकता।"[2] "ब्राह्मण क्षत्रिय की सहायता बिना कुछ नहीं कर सकता—क्योंकि उसकी शक्ति केवल मुख में है।"[3] "क्षत्रियों की भुजाओं में बल है, इससे उससे मिल कर चलना अच्छा है।"[4] इसीलिए ब्राह्मण उसकी प्रशंसा में कहता है—"राजा साक्षात् प्रजापति है, इसीसे वह बहुतों पर राज्य करता है।"[5] "ऐन्द्राभिषेक से वह इन्द्र हो जाता है।" अभिषेक के बाद गर्जना होती थी—"इसे साम्राज्य मिला, स्वराज्य मिला, वैराज्य मिला, यह स्वयं परमेष्ठ हुआ, सारे संसार का स्वामी; पुरन्दर और धर्मरक्षक हुआ।"[6]

इस प्रकार ब्राह्मणों और क्षत्रियों का गठबन्धन होने पर वैश्यों और शूद्रों की स्थिति बहुत गिर गई। पुरुष सूक्त में वैश्य की उत्पत्ति जंघा से बताई है, परन्तु ताण्ड्य ब्राह्मण में उसकी उत्पत्ति जन नेन्द्रिय से कही गई है। "उसके पास बहुत पशु हैं, इसलिए वह ब्राह्मणों और क्षत्रियों का भक्ष्य है। ·· ··· उसे कितना भी खाया जाय, वह नहीं घटेगा।"[7] इतना ही नहीं—"वैश्य गधा है, सदा दबा

---

१. गौतम धर्म सूत्र ८। १४। २४।

२. "न वै ब्राह्मणो राज्यायालम्", शतपथ ब्रा० ५।१।१।१२

३. "ब्राह्मणो मुखतो हि वीर्यं करोति मुखतो हि सृष्टः", ताण्ड्य ब्राह्मण ६।१।६

४. बाहुवीर्यो राजन्यो बाहुभ्यो हि सृष्टः, ताण्ड्य ब्रा० ६।१।७

५. "एष वै प्रजापतेः प्रत्यक्षतमां यद्राजन्यतस्मादेकः सन्बहूनामीष्ठे यद्वेवचतुरतरः प्रजापतिश्चतुरतरो राजन्यः।" शत० ब्रा० ५।१।५।१४

६. ऐतरेय ब्रा० ३८।१

७. ऐतरेय ब्रा० ३८।१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ ... ...[1]" ',शूद्र के पास कोई देवता नहीं, इस लिए वह अन्य जातियों की चरण सेवा करे।" "उसे सदा इधर-उधर दौड़ाओ और चाहे जब निकाल बाहर करो। इच्छा हो तो पीट दो, चाहो तो मार भी डालो।[2]" "उसे किसी को दान देने या बेचने में हानि नहीं।" "वह चलता-फिरता श्मशान है. इससे उसके इतने निकट वेद न पढ़े, कि वह सुन सके।[3]" "यदि वह जान बूझ कर श्रुति सुन भी ले, तो लाह या सीसा गलाकर उसके कान में डाल दो।[4]"

दसवें मण्डल में चार वर्णों का उल्लेख ऋग्वेद का उत्तर कालीन है। 'ब्रह्म' और 'क्षत्र' शब्द अवश्य प्राचीन हैं, पर वे वर्ण के वर्तमान अर्थों में नहीं। 'आर्य वर्ण' और 'दास वर्ण' भी आए हैं। इससे यह प्रकट होता है, कि आर्यों की भांति दासों का वर्ण भी महत्वपूर्ण था। प्रकट है कि विजित होने पर दासों को किस प्रकार आधीन होना पड़ा। वैदिकेतर भारतीय प्रजा को आधीन करने में यज्ञ की धर्म संस्था ने बहुत मदद दी। "प्रजापति ने यज्ञार्थ ही धन निर्माण किया है[5]।" ऐसी कल्पना रूढ़ हो उठी। खास खास अवसरों पर वैश्यों और शूद्रों का धन अपहरण करना धर्मानुमोदित ठहराया गया। शूद्र प्रजा को चाहे जो दण्ड देने तथा उसे समाज से निकाल बाहर करने का किसी भी वैदिक आर्य को अधिकार था[6]।

स्मृतियों के कायदे कानून के अनुसार वैदिक आर्य ब्याज, मुनाफा या लगान शूद्रों या कनिष्ठों से उच्च वर्णों की अपेक्षा बहुत अधिक लेते थे। शूद्रों के हाथ में कृषि, पशु पालन और सेवा ये कार्य थे। शिल्प और कृषि अच्छे धन्धे थे, परन्तु उनका अधिकांश भाग ले लिया जाता था। शूद्रों से वार्षिक साठ टका ब्याज लेने का हक उच्चवर्गियों को था।

श्रौत-स्मार्त धर्म के अनुयायियों ने खूब कस कर वैदिकेतर जनों को दासता में रक्खा, और इसमें वैदिक संस्कृति की पवित्रता की सहायता ली। वैदिक धर्माचरण करने का उन्होंने दूसरों को अधिकार ही नहीं दिया, खास कर पुरोहित का धन्धा तो दूसरा कर ही न पाता था। विश्वामित्र को पुरोहित का कार्य करने के कारण बड़े-बड़े लांछन और कष्टों का सामना करना पड़ा। 'व्रात्यस्तोम' विधि सामवेद के

---

१. शतपथ ब्रा० ११। २। ३। १६
२. ऐत० ब्रा० ३५। ३
३. आ० श्रौ०
४. कात्या० श्रौ० तथा आप० श्रौ०
५. कात्यायन स्मृति।
६. यथा कामोत्थाप्यः। यथा कामवध्यः। ऐतरेय ब्रा० ३५। ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताण्डच ब्राह्मण में है, तथा कात्यायन के श्रौत सूत्र में भी है। इसका उद्देश्य अवैदिकों को वैदिक बनाने का था। परन्तु इसका उपयोग बहुत कम होता था। धर्म सूत्रों और स्मृतियों में शूद्र को वेद पढ़ने पर प्राण-दण्ड तक देने का विधान है। वैदिक यज्ञ और स्मार्त धर्म आर्य जन को पवित्रता तथा स्वामित्व देता था, और यह पवित्रता उसे ब्राह्मण द्वारा प्राप्त होती थी। इस लिए आर्यों में ब्राह्मण पुरोहितों का स्थान उत्तरोत्तर ऊंचा होता गया। लोग समझते हैं और गीता आदि ग्रन्थों में कहा भी है, कि ब्राह्मण वह है—जो त्यागी, धर्मात्मा. ज्ञानी, शीलवान् और जितेन्द्रिय हो, परन्तु स्मृति के कायदे के अनुसार यह बात नहीं है। मनु ब्राह्मण के कर्म दान लेना देना, वेद पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना ही बताते हैं। स्मृतियों के मत से ब्राह्मण यदि अन्य वर्ण की स्त्रियों से व्यभिचार करे, तो उसके लिए बहुत हल्का दण्ड है। वह सब वर्णों की स्त्रियों से विवाह कर सकता है, शूद्र स्त्रियों को रखैल या दासी की भांति रख सकता है[1]। इसके विपरीत शूद्र या अन्य वर्ण वाला ब्राह्मण स्त्री से व्यभिचार करे, या विवाह कर ले, तो उसे अत्यन्त कष्ट देकर उसके प्राण लेने का विधान है। ब्राह्मण को किसी भी अपराध में प्राण दण्ड नहीं मिल सकता। इस प्रकार समाज में वैदिक जनों को अवैदिक जनों की अपेक्षा अधिक जन्मसिद्ध सुविधाऐं मिलती गईं। श्रौत और स्मार्त कायदे कानूनों के अनुसार ब्राह्मण को भोग, ऐश्वर्य सम्पत्ति, सत्ता और सम्मान सम्बन्धी सर्वोपरि अधिकार प्राप्त हो गए। ब्राह्मण के लिए त्याग, तप, संयम आदि को कोई महत्त्व नहीं दिया गया। महत्व दिया गया केवल पुरोहिताई के स्थान को। न्यायदान का काम प्रथम ब्राह्मण को मिलता था- ब्राह्मण के न मिलने पर क्षत्रिय को, शूद्र को किसी हालत में नहीं। ब्राह्मण के लिए ब्याज और लगान सबसे कम है। पुरोहित के सारे कर माफ हैं। उसे अपने से नीचे के व्यवसाय करने की आज्ञा है, पर ब्राह्मण का व्यवसाय कोई नहीं कर सकता। स्मृति धर्म के अनुसार प्राणान्त आपत्ति में भी उच्च वर्ण के काम शूद्र नहीं करे।

स्मृतियों का धर्मशास्त्र वर्णों के जन्मसिद्ध अधिकारों को सामान्य सामाजिक नियम के रूप में स्वीकार करने के लिए बना। वेदों का विषय यज्ञीय कर्मकाण्ड है, और उपनिषदों का ब्रह्मविद्या का व्याख्यान। परन्तु वर्णाश्रम धर्म का विस्तृत प्रतिपादन सूत्र ग्रन्थों और स्मृतियों में है। यह श्रौत और स्मार्त धर्मशास्त्र वैदिक आर्यों के समाज और धार्मिक रीति रिवाज तथा कायदे कानून का शास्त्र है। वैदिक काल में जो कायदे कानून तथा रीति रस्म रूढ़ होते गए, उन्हीं को ग्रन्थ रूप से सूत्रों और स्मृतियों में संग्रह किया गया है। स्मृति का अर्थ है—वैदिक आर्यों के रीति-रिवाज और सामाजिक तथा धार्मिक नियमों की स्मरणपूर्वक की गई नोंध, याददाश्त और सूचनाएं। इसी से मनु आदि जोर देकर यह कहते हैं—कि स्मार्त धर्म वेदमूलक है।

---

१. वशिष्ठ धर्म सूत्र १८। १६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेदोत्तर काल में जो नई बातें समाज में प्रविष्ट हुई है, उनका सामवेद भी इन स्मृतियों में है। इन स्मार्त ग्रन्थों में गौतम, आपस्तम्ब, वशिष्ठ, शंख लिखित, मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, वृहस्पति आदि सब एक सी ही समाज संस्था का प्रतिपादन करते हैं। जिस में मूलतः ब्राह्मणों की श्रेष्ठता और शूद्रों की हीनता का महत्त्व प्रदर्शित है।

वेदोत्तर काल ही में क्षत्रियों में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के विपरीत आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। यह आन्दोलन दो रूपों में खड़ा हुआ। एक तो यह–कि कुछ क्षत्रिय ब्राह्मणत्व के अधिकार मांगने लगे। विश्वामित्र और वशिष्ठ के झगड़ों का मुद्दा यही था, और भी कई कुल विश्वामित्र की भांति ब्राह्मण हो गए[1]। दूसरा आंदोलन क्षत्रियों की अपेक्षा ब्राह्मणों के अधिक अधिकारों के विपरीत था। एल, पुरूरवा, नहुष, वेन, हैंहय, सहस्रार्जुन, वैतहव्य, सृञ्जय आदि राजा और राजवंश ब्राह्मणों के श्रेष्ठत्व के विरुद्ध लड़े। वेन ने यज्ञ और ब्राह्मणों की दक्षिणा का विरोध किया। ब्राह्मणों के कर माफ थे, यह रियायत हैहय और वैतहव्य राजाओं ने रद्द कर दी[2]। उन्होंने ब्राह्मणों की गौओं की जबरदस्ती कुर्की करा ली। परशुराम ने ब्राह्मणों के अधिकार के लिए संगठित युद्ध किया। अन्त में ब्राह्मण कुल, राज कुल, राज संस्था और पुरोहित महत्त्व आदि झगड़ों का निबटारा करने के लिए महाभारत संग्राम में ही हुआ। उसमें क्षत्रिय वर्ग नष्ट हो गया। और ब्राह्मणो का स्थान समाज में फिर दृढ़ वद्ध हुआ। परन्तु इसी बीच क्षत्रियों ने एक और दृढ़ कदम बढ़ाया। और उपनिषदों के रूप में ब्रह्मतत्त्व स्थापित कर, उस ब्रह्मज्ञान से ब्राह्मणों को वंचित करने की भरपूर चेष्टा की। इस ब्रह्म वाद ने कर्म काण्ड और यज्ञ संस्था को दुबल कर दिया। उसमें जीर्ण होने के लक्षण व्यक्त होने लगे। यज्ञ धर्म का निर्वाह कठिन हो गया। और वैराग्य, गम्भीर विचार, सदाचार, सत्य, अहिंसा और परिग्रह के आधार पर अवैदिक धर्म के संगठन होने लगे[3]।

---

१. हरिवंश पुराण

२. अथर्व वेद

३- हेमचन्दराय चौधरी का मत है-कि गुणाख्य सांख्यायन बुद्ध का समकालीन था। और उद्दाल आरुणि उसके गुरु का गुरु था—जो विदेह जनक का समकालीन था। शतपथ ब्रा० और वृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णित गुरु परम्परा के आधार पर वह सांजीनि पुत्र उद्दालक से पांच पीढ़ी बाद का ऋषि है। इस आधार पर शतपथ और वृहदारण्यक उपनिषद् की रचना बुद्ध के बाद की प्रमाणित होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दसवां अध्याय

महाभारत और उसके प्रमुख पुरुष

१—महाभारत

महाभारत महान् ग्रन्थ—भारत संग्राम की कथा एकमात्र महाभारत महाकाव्य में है। वेदव्यास द्वारा संकलित यह महाकाव्य बहुत विशाल ग्रन्थ है। जिस प्रकार प्राचीन आर्यों की धार्मिक अनुश्रुति और परम्परा वेदों–ब्राह्मणों और उपनिषदों में संग्रहीत हैं। वैसे ही आर्यों की ऐतिहासिक गाथाएँ, आख्यान और अनुश्रुति पुराणों और महाभारत तथा रामायण में हैं। महाभारत महाकाव्य इन सब में प्रमुख और महत्त्वपूर्ण हैं। यह ग्रन्थ कोरा काव्य ही नहीं है ऐतिहासिक गाथाओं का भण्डार है। इस समय जो महाभारत ग्रन्थ उपलब्ध होता है उसकी श्लोक सख्या १ लाख है। इसी से उसे 'शत साहस्त्री' भी कहते हैं। परन्तु आरम्भ में यह ग्रन्थ इतना विशाल नहीं था, उसमें शताब्दियों तक नए-नए आख्यानों का समावेश होता रहा है। आरम्भ में वेदव्यास ने अपने पुत्र शुकदेव को यह काव्य पढ़ाया, शुकदेव ने वैशम्पायन के सामने इस कथा का प्रवचन किया था। इस ग्रन्थ का नाम जय था।[1] सम्भवतः यह व्यास प्रणीत नहीं। व्यास ने जैसे बिखरी हुई श्रुतियों को अनुक्रम से जोड़ कर चार वेदों की संहिता का रूप दिया। सम्भवतः उसी भांति उसने विविध विजेताओं, वीर पुरुषों, और अन्य नेताओं के वीर कृत्यों व आख्यानों को, जो तत्कालीन सूत मागध लोग गाते रहते थे, सङ्कलित कर दिया हो। इससे यह सम्भव है कि व्यास जय काव्य के रचयिता नहीं–सङ्कलनकर्ता ही थे। उन्होंने जैसे वैदिक श्रुति का सङ्कलन किया, वैसे ही प्राचीन आख्यानों और राजकुल सम्बन्धी अनुश्रुतियों का भी सङ्कलन किया हो। यद्यपि महाभारत का वर्तमान वृहत्स्वरूप पीछे से समय-समय पर बढ़ाया हुआ है। परन्तु फिर भी वह ईसा की प्रथम शताब्दी से भी पहिले का है। पर उसकी कुछ गाथाएँ अत्यन्त प्राचीन हैं, जो वैदिक काल से भी प्राचीन जीवन के कुछ रेखाचित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करती हैं।

महाभारत प्रवचन—व्यास ने अपने पुत्र शुक को सर्वप्रथम यह काव्य पढ़ाया, शुकदेव ने वैशम्पायन के सम्मुख इस कथा का प्रवचन किया था। वैशम्पायन ने अर्जुन के पौत्र जनमेजय के सम्मुख इसका प्रवचन किया। उस समय इसकी श्लोक संख्या २४ हज़ार थी। इसे 'चतुर्विंशति–साहस्त्री भारत संहिता' भी कहा

---

१. जयोनामेतिहासोऽयम्। आदि०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गया है।[1] इसके बाद भृगुवंशी शौनक के सम्मुख इसका तृतीय पारायण हुआ। उस समय इसमें बहुत से आख्यान जोड़ दिए गए, साथ ही शिव–विष्णु–सूर्य–देवी, आदि के भक्ति प्रसङ्ग भी सम्मिलित कर दिए गए। अनेक आध्यात्मिक विषय तथा राजनीति के सदर्भ भी जोड़ दिए गए, जिससे वह बढ़ कर 'शत साहस्त्री–संहिता' के रूप में परिवर्तित हो गया। उसका यह रूप ईसा पूर्व की प्रथम शताब्दी ही में बन गया था।

भारतीय ज्ञान-कोष—महाभारत के १८ पर्व हैं। उसका मुख्य विषय कौरव पाण्डवों का संग्राम है, जो कुरुक्षेत्र में हुआ। इस युद्ध में भारत तथा भारत से बाहर के भी अनेक राजा अपनी सेनाओं के साथ सम्मिलित हुए थे। परन्तु इस ग्रन्थ में इतना ही नहीं, प्रसंगवश इसमें भारत की प्राचीन जनश्रुति, ऐतिहासिक तथ्य, तत्त्वज्ञान, धर्मशास्त्र, राजधर्म और मुक्तिशास्त्र का भी विषद वर्णन है। इन सब बातों के कारण इस ग्रन्थ को भारतीय ज्ञान और भारतीय संस्कृति का विश्वकोष कह सकते हैं।

महाभारत के कर्ता—महाभारत के तीन कर्ता हैं। १–व्यास, २–वैशम्पायन, ३–सौति। व्यास के मूल ग्रन्थ का नाम 'जय' था। उन्होंने तीन वर्ष में यह काव्य रचा था। इस ग्रन्थ की श्लोक संख्या के सम्बन्ध में मत भेद हैं। कुछ पाश्चात्यों का मत है कि इसकी श्लोक संख्या ८८०० थी, वैशम्पायन ने उसमें वृद्धि की। तब इसकी श्लोक संख्या २४ हज़ार हो गई। और इसका नाम 'चतुर्विंशति साहस्त्री संहिता' या महाभारत नाम हो गया। इसके बाद उसमें निरन्तर वृद्धि होती गई। पीछे सौति ने जब उसका सम्पादन किया–तब सब उपाख्यान आदि जोड़ कर, उसकी एक लाख श्लोक संख्या हो गई। तथा च सौति के ग्रन्थ को लगभग स्थायी रूप प्राप्त हो गया। वर्तमान में महाभारत की जो प्रति उपलब्ध हैं उसमें सौति की बताई संख्या से १००० श्लोक कम हैं। कुछ पर्वों में श्लोक कम हैं, कुछ में अधिक। जहां श्लोक अधिक हैं, वहाँ यही सम्भव है कि पीछे से कुछ श्लोक और बढ़ा दिए गए हैं। ऐसे बढ़ाए हुए श्लोक वनपर्व और द्रोणपर्व में ही पाए जाते हैं।

आज कल महाभारत के जो १८ पर्व हैं, यह पर्व विभाग सौति ने ही किया है। वैशम्पायन के महाभारत में छोटे २ सौ पर्व थे। सौति की अनुक्रमणिका में

---

१. चतुर्विंशति साहस्त्री चक्रे भारत संहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद्भारतं प्रोच्यत बुधः।
ततोऽध्यर्द्धशतं भूयः संक्षेपं कृतवानृषि।
अनुक्रमणिकाध्याय वृत्तान्तानां सपर्वणाम्।
इदं द्वैपायनः पूर्वं पुत्रमध्यापयत् शुकम्।
ततोऽन्येभ्योऽनुरूपेभ्यः शिष्येभ्यः प्रददौ विभुः। आदि प० १०१–१०३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह बात प्रकट कर दी गई है। सूत्र पुत्र लोमहर्षण ने नैमिषारण्य में १८ पर्वों ही का प्रवचन किया था।

ग्रन्थकर्ताओं का काल—व्यास भारत युद्ध कालीन पुरुष थे। उन्होंने अपनी आंखों से संग्राम देखा था। महाभारत के कुछ वर्णन ऐसे हैं जिन्हें प्रत्यक्ष दर्शी ही कह सकता है। वैशम्पायन व्यास के या तो शिष्य थे, या शिष्य परम्परा में थे। क्योंकि वे पाण्डवों के प्रपौत्र जन्मेजय के समकालीन थे। संग्राम के बाद ३६ वर्ष युधिष्ठिर ने राज्य किया। इसके बाद उनका पौत्र परीक्षित राजा हुआ। उसने २४ वर्ष राज्य किया। तब जन्मेजय राजा हुआ। इस प्रकार संग्राम से जन्मेजय के राज्योदय तक ६० वर्ष का काल व्यतीत हो गया था। यदि वैशंपायन प्रत्यक्ष ही व्यास का शिष्य था, तो वह इस समय अत्यन्त वृद्ध हो गया था। और 'जय' काव्य को 'भारत' का रूप धारण करने में लगभग ६० वर्ष का काल लग गया होगा।

सौति—सौति कौन था। इस सम्बन्ध में मत भेद है। कुछ लोग लोम हर्षण के पुत्र अग्रश्रवा को सौति कहते हैं। क्योंकि वह सूत पुत्र था। वह यद्यपि यह कहता है कि मैंने सर्प सूत्र में वैशाम्पायन के मुख से भारत सुना। पर यह लाक्षणिक ही कथन है। वास्तव में सौति वैशम्पायन का समकालीन नहीं है। वह उससे बहुत बाद का ई० पू० १५० का, अशोक कालीन पुरुष है। बौद्ध सम्राट् अशोक के काल में सौति ने महाभारत का वर्तमान ग्रन्थ सम्पादित किया था।

भारत संग्राम के बाद १५०० वर्षों की सांस्कृति का इतिहास—यह एक अत्यत्त महत्वपूर्ण बात है कि व्यास से सौति के काल तक की सांस्कृतिक स्थिति का वर्णन महाभारत में है। यद्यपि यह कहना कठिन हो गया है कि महाभारत में वर्णित सारी बातें संग्राम कालीन हैं, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि महाभारत भारत संग्राम के बाद कोई १५०० वर्षों की संस्कृति का जाग्रत साक्षी है।

भाषा—सम्पूर्ण महाभारत की भाषा ऐसी है, जो प्राचीन भाषा और वर्तमान संस्कृत से भिन्न है। उसमें बोल चाल के शब्दों और परिभाषाओं की भरमार है। निस्संदेह महाभारत के कुछ भागों की भाषा बहुत प्राचीन और जोरदार है। भगवद्गीता ही की भाषा की प्रौढ़ता को देख लीजिए।

सौति का महान् प्रयास—सौति कथा वाचक थे। उन्हें प्राचीन पौराणिक आख्यान जो कुछ भी ज्ञात हो सके, उन सबका महाभारत में समाहार कर दिया। इस मेल मिलाप में कहीं २ असम्बद्धता उत्पन्न हो गई हैं, जो स्वाभाविक था। कहीं पूर्वा पर विरोध हो गया है। खूब ध्यान से महाभारत पढ़ने से—तथा भाषा और विषय की परम्परा तथा कथा के प्रवाह पर ध्यान देने से पता लग जाता है, कि कौन २ भाग सौति के जोड़े हुए हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

श्रद्धावाद और बुद्धिवाद—ई० पू० छठी शताब्दी में जैन और बौद्ध धर्मों का उदय हुआ। विशेष कर बौद्ध धर्म अधिक उन्नत हुआ। जिसे सम्राट् अशोक का राजाश्रय प्राप्त हुआ। इन दोनों धर्मों ने खुल्लम खुल्ला वैदिक धर्म की प्रामाणिकता अस्वीकार कर दी। और धर्म श्रद्धावाद से हटकर बुद्धिवाद पर आ अटका। लोग कहने लगे--जो बुद्धि से ठीक जचे वही धर्म है। ब्राह्मणों की श्रृद्धा कम करने, तथा अपने धर्म को महत्त्वा सिद्ध करने को, तथा अपने धर्म को प्राचीनता प्रामाणित करने को इन नए धर्मों के उपदेष्ठा सुप्रसिद्ध पुरुषों को अपनी ओर खींच रहे थे। तथा जिन प्राचीन व्यक्तियों के प्रति आदर भाव था उनसे सम्बन्ध जोड़ रहे थे। जैनों ने वेदों में वर्णित ऋषभ को अपना प्रथम तीर्थंकर कहना आरम्भ कर दिया था। बौद्ध कह रहे थे कि दशरथ पुत्र राम बुद्ध के पूर्व जन्म का अवतार है। वैदिक यज्ञों में पशु वध होता था, ये धर्म अहिंसा धर्म की स्थापना कर रहे थे। इनकी बातें दलितों को, सर्व साधारण को, संकर जातियों को, जो ब्राह्मणों की कुलीनता से चिढ़े हुए थे, प्रिय लग रही थीं। वहां उन्हें समानता के अधिकार मिल रहे थे। अंध विश्वास के स्थान पर आचार पर बल डाला जा रहा था। तीर्थों और देवताओं की निन्दा की जा रही थी। चातुर्वण्य की व्यवस्था का भी उल्लंघन हो रहा था। जिसे संकर और नीच जाति के लोग चाव से देख रहे थे। आत्मा और ईश्वर की ओर से लोग उदासीन हो गए, महावीर और बुद्ध के डेढ़ सौ वर्ष बाद ही सम्पन्न में ये परिवर्तन होने लगे थे। इस पर अशोक ने बौद्ध धर्म को राजाश्रयदे सम्पन्न कर दिया। जहां एक तरफ अशोक बौद्ध धर्म को राजाश्रय दे रहा था, वहां आर्य धर्म अपने स्थान से डिग गया था। उसमें पांचरात्र पाशुपत् शाक्त मत जौर पकड़ रहे थे। कोई गणपति को, पूजता था कोई स्कन्द को। इनमें संगठन तो दूर-तीव्र विरोध था। वेद सर्व साधारण के लिए दुर्बोध हो रहे थे, और यज्ञ संस्था कमजोर होती जा रही थी। प्राचीन समय के बड़े २ अवतारी पुरुषों के वर्णन इधर उधर बिखरे पड़े थे। या छोटे २ आख्यानों में लुप्त हो रहे थे। उस समय एक ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता थी—जो समाज को नीति और धर्म की शिक्षा देकर प्राचीन आर्यत्त्व के गौरव की स्थापना कर सके। प्राचीन ऋषियों और चक्रवर्ती राजाओं की वंशावलिया भाटों और सूतों की जीर्ण शीर्ण पोथियों में बिखरी पड़ी थीं। धीरे २ लोग अपने पराक्रमी पूर्वजों को भूलते जा रहे थे। ऐसी अवस्था में आर्य धर्म बौद्ध और जैन जैसे उदीयमान सर्वजन प्रिय विश्व धर्मों का कैसे सामना कर सकता था। इस समय तक भी न दर्शनों का, न स्मृतियों का, न सूत्र ग्रन्थों का जन्म हुआ था। इसी समय सौति ने महाभारत को वृहत् रूप दिया। इस में उसने आर्यों के धर्म के अन्तः विरोध का निराकरण किया। सब मतों को एकत्र कर उनमें मेल का बीज बोया। सब कथाओं–उपदेशों, उदाहरणों, गाथाओं, आदर्शों को एकत्र कर आर्य धर्म के उदात्त रूप को मूर्त किया। जिससे आर्य वर्ण धर्मी जनों में स्फूति उत्पन्न हुई। और उनमें नई शक्ति का जन्म हुआ। आर्य धर्म का सामञ्जस करके उसका उत्कर्ष बताना सौति का उद्देश्य था। इसी के लिए आनुषंगिक रीति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर तत्व ज्ञान–इतिहास, राजनीति, धर्म नीति आदि विषयों का उसमें समावेश किया। इसका परिणाम यह हुआ कि महाभारत सब सम्प्रदायों–धर्मों, मतान्तरों का एक मात्र मान्य ग्रन्थ हो गया। वह प्राचीन काल के वैदिकों और उत्तर काल के वैदिकों का एक सा पूज्य ग्रन्थ बन गया। और लोग उसे पंचम वेद कहने लगे।

महाभारत का महत्व—महाभारत की वर्णन शैली बड़ी प्रभावशालिनी है। उसमें कवित्व बहुत है। हजारों ही कूट श्लोक हैं। आख्यान बड़े मनोहर हैं। और तत्व ज्ञान बड़ा गम्भीर है। इसके साथ ही भूगोल इतिहास-राजनीति और धर्मानुशासन का विचित्र संयोग है। सब वर्णन मर्यादा के अनुसार हैं। इतना विशाल काम होने पर भी यह ग्रन्थ उत्कृष्ठ महा काव्य की गरिमाधारण करता है। महाकाव्य के सब गुणों से संयुक्त यह ग्रन्थ पृथ्वी के सब ग्रन्थों में अद्वितीय है। भाषा उसकी प्रौढ़ और गम्भीर है। सरलता और प्रौढ़ता का उसमें अद्भुत मेल है। पुराणों की भाषा अशुद्ध है। उसमें प्रौढ़ता का चिन्ह भी नहीं है। पर महाभारत में यह बात नहीं है। महाभारत के कुछ प्रधान भागों में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, उससे ज्ञात होता है कि संस्कृत जब हजारों लोगों की बोल चाल की भाषा थी--तब शुद्ध और सरल शैली पर प्रौढ़ रचना कैसी होनी चाहिए थी।

धर्म काव्य—साधारण तया काव्य का दृष्टिकोण रसोत्कर्ष और मनोरंजन ही रहा है, पर महाभारत ऐसा काव्य नहीं है, उसका दृष्टिकोण धर्म ही है। प्रत्येक लौकिक कार्यों में भी धर्म ही का बन्धन प्रकट किया गया है। धर्म ही इस महा काव्य का प्राण है। महाभारत का उद्देश्य है-मनुष्य को धर्माचरण करना चाहिए. तथा ईश्वर सम्बन्धी और मनुष्य सम्बंधी अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। धर्माचरण से ही उसके सब उद्देश्य सिद्ध होते हैं। धर्माचरण से भ्रष्ट होने पर उसके सब उद्देश्य नष्ट हो जाते हैं। चाहें भी जैसा संकट आ पड़े, मनुष्य को धर्म का आश्रय नहीं छोड़ना चाहिए। 'धर्मो रक्षति रक्षितः' यहीं महाभारत का मूल मन्त्र है। 'यतो धर्म स्ततो जयः' यह महाभारत की जय ध्वनि है।

महाभारत आर्यों का एक मात्र राष्ट्रीय ग्रन्थ—महाभारत की रचना वास्तव में सौति का बड़ा भारी राष्ट्रीय कार्य है। उसने असहाय और ध्वस्त आर्य संस्कारों को उस समय बद्धमूल किया, जब उसका सर्वतो भावेन विध्वंस हो रहा था। आश्व लायन ने यद्यपि वैशम्पायन को भरताचार्य कहा है, पर वास्तव में भरताचार्य सौति ही है। उसी के भगीरथ प्रयत्न तथा मेधा शक्ति से महाभारत में हजारों वर्ष से प्रचलित गाथाओं–प्रवचनों, दन्त कथाओं, धर्म सिद्धान्तों, नीति वचनों, प्रथाओं, रीतिओं और सामाजिक व्यवस्थाओं का—जो सैकड़ों वर्ष तक अरक्षित रहकर बिखर गई थीं, एक जगह संग्रह हुआ। जिससे महाभारत धर्म–नीति–तत्वज्ञान–और इतिहास का एक अप्रतिम शक्ति शाली ग्रन्थ बन गया। आज के हिन्दू धर्म की रक्षा करने का श्रेय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
State Museum LUCKNOW.

इसी ग्रंथ को है। प्राचीन आर्य संस्कृति और नए हिन्दू धर्म को एक सूत्र में बांधने वाला यही ग्रंथ रहा है। महाभारत संग्राम काल से लेकर, जब कि वैदिक आर्यों के प्राचीन धर्म समाप्त हो गए थे, अशोक काल तक, जब कि महाभारत संग्राम के फल स्वरूप आर्यों के सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक जीवन का नया ही रूप नए नए परिवर्तनों के कारण बनता जा रहा था। उनका इस एक ही ग्रन्थ में ऐसा संग्रह है, कि जिसकी समता दूसरा ग्रन्थ कर ही नहीं सकता है। सौति ने इसके सम्बन्ध में ठीक ही कहा है--'यद्हदिस्ति तत्सर्वत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित'।

महाभारत का महत्त्व—ऐतिहासिक दृष्टि से महाभारत का महत्त्व अद्वितीय है। महाभारत को छोड़ कर एक भी ऐसा भारतीय ग्रन्थ नहीं, जिस में ब्राह्मण काल से लेकर युनानियों की चढ़ाई तक की भारतीय संस्कृति की जानकारी प्राप्त हो सके। ब्राह्मण ग्रन्थों, पुराणों, तथा सूत्रों में इधर-उधर की बिखरी हुई जानकारी है। परन्तु महाभारत में वर्णन विस्तृत है। उसे पढ़ कर हम आर्यों के तीनों युगों की बहुत सी सामाजिक स्थिति और रहन सहन की बातें जान सकते हैं। साथ ही–साहित्य, विचार-धारा. राजनीति और धर्म क्रान्ति का परिचय प्राप्त कर सकते हैं। आर्यों के आचार विचार पर जैसी व्यापक दृष्टि महाभारत में डाली गई है—वैसी दूसरे किसी ग्रन्थ में नहीं है।

क्या महाभारत इतिहास है—'धर्मार्थ काम मोक्षाणां–समुपदेश समन्वितम्। 'पूर्व वृत्त कथा युक्तमितिहासं प्रचक्षते' इस श्लोक की कसौटी पर हम महाभारत को इतिहास कह सकते हैं। यद्यपि महाभारत में कुछ बातें ऐसी हैं, जिन्हें हम असम्भव, असत्य और अनैतिहासिक कह सकते हैं—परन्तु ऐसी झूठी सच्ची बातें तो सभी पुरानी जातियों के पुराने इतिहासों में मिल गई हैं। रोमन इतिहास वेत्ता, लीवी, यूनानी, हीरोडोटस और मुसलमान ऐतिहासिक फरिश्ता भी इस अपवाद से नहीं बचे। फिर भी यह स्पष्ट है, कि हम बिना लीवी, हीरेडोटस और फरिश्ता की सहायता के रोम, यूनान और इस्लाम राज्य के इतिहास वृत्त नहीं जान सकते। फिर असत्य और असम्भव बातें तो मेगस्थनीज, केसिअस के इतिवृत्तों में भी कम नहीं है। जो जगन्मान्य ऐतिहासिक हैं।

महाभारत में जो इतनी अधिक 'कल्पनाएँ मिल गई हैं। उसका कारण है। दो कारणों से इतिहास ग्रंथों में अनैसर्गिक या असत्य घटनाऐं मिल जाती हैं। प्रथम तो यह—कि लेखक दन्त कथाओं को सत्य मान कर उनके भरोसे से ग्रंथ लिखते हैं। दूसरे ग्रन्थ के प्रसिद्ध हो जाने पर पीछे के लेखक अपनी-अपनी रचनाऐं उसमें मिलाते चले जाते हैं। अन्य देशों के इतिहासों में भी ये दोष उत्पन्न हुए हैं। परन्तु महाभारत में जो इतनी अधिक मिलावट हुई, उसका कारण यह था—कि उन देशों में जब इतिहास लिखे गए, तब लेखन कला प्रचलित हो चुकी थी। भारत में बहुत धर्म और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इतिहास तत्त्व केवल मौखिक दन्त कथाओं पर आधारित होते थे। इसके अतिरिक्त किसी भी देश में किसी भी ग्रन्थ का इतना आदर नहीं हुआ। जितना भारत में महाभारत का हुआ। इस लिए लोगों को महाभारत में अपनी कथाऐं मिला देने का प्रलोभन सब से अधिक हुआ। इसी से महाभारत में कल्पित कथाओं का वाहुल्य हो गया।

पाश्चात्य पण्डित महाभारत को काव्य ही कहते हैं। इतिहास नहीं। इसका अर्थ है कि वे उसकी कहानी को काल्पनिक मानते हैं। और उसे एतिहासिक महत्त्व नहीं देते। इसमें संदेह नहीं—कि महाभारत में काव्योत्कर्ष मी उच्च कोटि का है, फिर भारतीय साहित्य तो काव्यमय है ही। महाभारत का वर्तमान स्वरूप भी नया नहीं है।

२—कृष्ण द्वैपायन व्यास

वैदिक साक्ष्य—शतपथ ब्राह्मण तथा बृहदारण्यक के अनुसार पराशर के पुत्र ने जातूकर्ण्य से विद्या सीखी[१]। तैत्तिरीयारण्यक में भी पाराशर व्यास का उल्लेख है[२]। जातूकर्ण्य कृष्ण द्वैपायन व्यास का चचा था[३]। साम विधान ब्राह्मण के कथनानुसार व्यास का विष्वकसेन और नारद से गुरु परम्परा का सम्बन्ध बताया गया है। गोपथ ब्राह्मण[४], वौधायन गृहसूत्र[५], अग्निवेश्य गृह्य सूत्र में भी कृष्ण द्वैपायन व्यास की चर्चा है। आश्वलायन, कौशीतकी, और शौनक के गृह्य–सूत्रों में पाराशर्य व्यास के चार प्रधान शिष्य और भारत तथा महाभारत का उल्लेख है[६]।

महाभारत के अनुसार वेद व्यास पराशर–सत्यवती के पुत्र थे। यह पराशर वशिष्ठ वंशी शक्ति के पुत्र नहीं हैं। न भृगु वंशी पराशर है। कोई दूसरे ही हैं। जिन के सम्बन्ध में इतिहास सर्वथा चुप है। सम्भव है यह कोई हीन कुल गोत्री याजक हो। इसने सत्यवती से कुमारी अवस्था ही में·—जब वह अपने पिता के साथ कैवर्त का कार्य करती थी—व्यास को उत्पन्न किया था। इसी से व्यास याजक समाज में

---

१. पाराशर्यो जातूकर्ण्यात्। शत० १४।५।५।२१

२. सहोवाच व्यासः पाराशर्यः तैति० १।९।३५

३. भगवद्दत्त शास्त्री। वैदिक वाङ्मय का इतिहास भा० १ पृष्ठ ६५–६६

४. १।२९।

५. ३।९।५

६. श्राद्धकल्प।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाते थे। क्यों कि उस समय तक अभिजात्यभिमान बढ़ गया था। कौरवों के राज परिवार से उनका सम्पर्क सत्यवती के ही कारण हुआ। सत्यवती ने उन्हें अपना पुत्र कह कर ही अपनी पुत्र वधुओं में नियुक्त किया था। राज कुल में नियुक्त होने से उनकी मर्यादा प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई थी।

वंश वृक्ष—प्रधान ने व्यास की परम्परा पर कुछ प्रकाश डाला है। वह इस प्रकार है:—

पराशर (तीसरे)
|
व्यास (कृष्ण द्वैपायन)
|
शुक
|
जैमिनि
|
सुमन्तु
|
सुत्त्वन (कवन्ध भाई. उनके पुत्र पश्य और वेददर्श। वेददर्श के पुत्र मौग्द और प्रश्नोपनिषद् के पिप्पलाद)
|
सुकर्मन
|
पौष्यंजि (हिरण्यनाभ भाई)
|
लौंगच्छि (कुथुमि, कुसीदिन, लौगलि भाई)
|
पराशर (चतुर्थ) (भावित्ति भाई)
|
कौथुभ
|
पाचीन योग्य (पतंजलि (प्रथम) आसुरायण भाई)
|
सुकर्मन
|
हिरण्यनाभ-याज्ञवल्क्य (प्रोतिकौसुर, विन्दि, अश्वल भाई)
|
आसुरि (त्रैवनि, औपजन्धिन भाई)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवरण—हिरण्यनाभ कौशल नरेश थे। यह सम्भवतः शिष्य परम्परा है। वैशम्पायन और उपमन्यु जनमेजय (५६) और पिप्पलाद के समकालीन थे। उपमन्यु के पुत्र प्राचीनशाल थे। तथा याज्ञयवल्क्य वैशम्पायन के भान्जे तथा शिष्य थे। सत्यकाम जावाल जनमेजय के पौत्र अश्वमेधदत्त के समकालीन थे। उपरोक्त पतंजलि के समकालीन यास्क थे। जिनके भाई पचशिख थे। यह वंश वृत्त बड़े जोड़ तोड़ से बन पाया है, फिर भी इसका निश्चित प्रमाण नहीं है। इस में एक महत्त्वपूर्ण कठिनाई यह उपस्थित होती है—कि यास्क–निरुक्ताचार्य के पुत्र जातूकर्ण्य हैं। तथा शतपथ ब्राह्मण व्यास को जातूकर्ण्य का शिष्य कहता है।[1]

जो भी हो, व्यास का भारतीय संस्कृति पर भारी प्रभाव है। एक ओर उसने अपने काल तक के बिखरे हुए सम्पूर्ण प्राप्त प्राचीन और अर्वाचीन संदर्भों को जोड़ कर महाभारत इतिहास ग्रन्थ का निर्माण किया। दूसरी ओर उसने उस काल तक बनी हुई वैदिक ऋचाओं को एकत्र कर सम्पादित किया। उन्हें चार वेदों में विभक्त किया; और अपने चार शिष्यों को परम्परा के लिए एक-एक वेद बांट दिया। इसके बाद वेद की ऋचाओं का बनना बन्द हो गया। वेद का एक-एक अक्षर गिन लिया गया। और अब उन पर ब्राह्मण ग्रन्थों का निर्माण आरम्भ हुआ। तथा याजकों की अब पृथक् जाति बन गई। और ऋषि पद समाप्त हो गया। अब याजकगण ब्राह्मण कहलाने लगे—क्योंकि ब्राह्मण ही उनके यजन ग्रन्थ थे।

'व्यास' नाम की उपपत्ति—वास्तव में 'व्यास' नाम नहीं उपाधि है। वेदों का विभाग करने से उन्हें 'व्यास' की उपाधि मिली थी। उनका जन्म द्वीप में हुआ—इसलिए वे कृष्ण द्वैपायन व्यास कहाए। भविष्य में जो कोई पौराणिक वृत्तान्त पढ़कर एक संग्रह तैयार कर ले—वही व्यास कहाने लगा। कदाचित् इसी से १८ पुराणों के भिन्न २ काल में भिन्न २ संग्रहकर्ता व्यास नाम से प्रसिद्ध हुए। और लोगों ने इसका यही अभिप्राय समझ लिया—कि कृष्ण द्वैपायन व्यास ही पुराणों के रचयिता व्यास हैं। पर यह ठीक नहीं है। वेदों के विभागकर्ता व्यास, महाभारत के रचयिता व्यास, अठारह पुराणों के रचयिता व्यास, वेदांत सूत्रकार व्यास, पातंजल दर्शन के टीकाकार व्यास—ये सब एक नहीं हैं, पृथक् २ हैं।

यह सम्भव है कि व्यास ने वेदों की ऋचाओं की भांति पौराणिक आख्यानों का भी संग्रह किया हो। विष्णु–भागवत, अग्नि पुराण आदि में ऐसे श्लोक हैं। पर उससे भी यही ध्वनित होता है कि व्यास ने एक ही पुराण का संग्रह किया था, जिसमें पूर्वाख्यान थे—वह अब उपलब्ध नहीं है। और सम्भवतः उत्तरकालीन व्यासों ने उन उपाख्यानों को महाभारत ही में जहां तहां से बटोर कर एकत्रित कर दिया है। आगे वे अठारह पुराणों के रूप में विकसित हुए।

---

१. शतपथ ब्रा० १४।५।५।२१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३—कृष्ण

कृष्ण-चरित—अंधक के राज्याभिषिक्त कुल में उग्रसेन भोजों के मुखिया थे। कंस उनका पुत्र था। कंस ने अपने पिता को कैद करके राज्याधिकार ग्रहण किया। और अपने चचा देवक की पुत्री देवकी का विवाह अपने मंत्री वसुदेव के साथ कर दिया। वसुदेव की रोहिणी आदि सात स्त्रियां और थीं, आठवीं देवकी थी। विवाहोपरान्त कंस प्रेम पूर्वक अपनी बहिन का रथ स्वयं हाँक कर उसे वसुदेव के यहां ले जा रहा था, कि कोई ऐसी बात हो गई कि वह उसी समय तलवार लेकर उसका सिर काटने को उद्यत हो गया। परन्तु पीछे उसने वृद्धों के समझाने बुझाने से देवकी और वसुदेव को कैद कर लिया। कैद ही में कृष्ण का जन्म हुआ, जिसे वसुदेव ने किसी तरह मथुरा से १४ मील के अन्तर पर गोकुल में अपने मित्र नन्दगोप के यहाँ भेज दिया। अपनी दूसरी सगर्भा पत्नी रोहिणी को वह प्रथम ही वहाँ भेज चुका था। जिसके गर्भ से नन्द के घर संकर्षण नामक पुत्र का जन्म हुआ था। वही संकर्षण बलराम या दाऊ के नाम से प्रसिद्ध हुए।[1]

---

१. पुराणों में वर्णित है कि कंस को आकाश वाणी हुई कि इसका आठवाँ पुत्र तेरा प्राण हन्ता होगा। यह सुनकर जब वह देवकी का वध करने लगा तो वसुदेव ने कहा—कि मैं इस पत्नी के सब बच्चे तुझे देता रहूंगा। इस पर कंस ने देवकी–वसुदेव को कैद कर लिया। जहां उनकी सात संतानें उत्पन्न हुईं—और कंस ने उन्हें मार डाला। आठवां कृष्ण बचाया गया। यह पौराणिक वर्णन असंगत-सा प्रतीत होता है। क्योंकि सात सन्तानों की उत्पत्ति का समय यदि ३ वर्ष के अन्तर से भी मान लिया जाय तो २१ वर्ष होते है। इसका अर्थ यह हुआ कि वसुदेव–देवकी २३–२४ वर्ष जेल में बंदी रहे तब कृष्ण का जन्म हुआ। बंदी केवल देवकी और वसुदेव ही को किया गया था, अन्य पत्नियों को नहीं। तथा कंस के भय से रोहिणी को सगर्भावस्था में प्रथम ही नन्द के घर भेज दिया था, जिनके पुत्र संकर्षण बल्देव थे। बल्देव कृष्ण से आयु में कुछ ही बड़े थे। तथा दोनों बालभाव से नन्द के यहां साथ २ रहे। यदि कृष्ण को देवकी का आठवां पुत्र माना जाता है, तो कृष्ण-जन्म तक बल्देव की आयु २५ वर्ष के लगभग हो जानी चाहिए। फिर आकाश वाणी स्पष्ट देवकी पुत्र के सम्बंध में थी, तब रोहिणी को सगर्भावस्था में मथुरा से भगा देने तथा उसके पुत्र को छिपाने की क्या आवश्यकता थी। हमारा अनुमान है कि देवकी–वसुदेव को कैद करने के कारण तत्काल अकस्मात् ही उत्पन्न हो गए थे। और जिस समय वसुदेव–देवकी को बंदी किया गया, उसी समय सुरक्षा के विचार से सगर्भा रोहिणी को नन्द के घर भेज दिया गया। इस प्रकार कृष्ण से बल्देव दो ही एक वर्ष बड़े हो सकते हैं। यही बात प्रमाणित भी है। अतः कृष्ण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहा जाता है कि कृष्ण का बदला यशोदा की नवजात कन्या से इस गोपनीय रीति से हुआ था कि यशोदा को भी इसका पता न लगा। बौद्ध ग्रन्थ घट जातक में लिखा है—कि यह बदला चोरी से नहीं, प्रेम से हुआ था। कंस ने उस कन्या को मार डाला। फिर यह पता लगने पर, कि देवकी का पुत्र नन्द के घर छिपा है, उसने उसे मार डालने के अनेक निष्फल यत्न किए। अंत में बारह वर्ष की अवस्था ही में मथुरा जाकर कृष्ण–बलराम ने कंस का वध करके माता पिता तथा राजा उग्रसेन का बंदीखाने से उद्धार कर उग्रसेन को मथुरा के संघ का राजा बनाया। दूसरे सङ्घ के मुखिया कृष्ण रहे। और दोनों भाइयों ने मथुरा का प्रबंध भी व्यवस्थित किया।

कंस जरासंध का दामाद था। जरासंध ने उसे अपनी दो कन्याऐं ब्याही थीं। जरासंध बड़ा प्रतापी राजा था। उन दिनों मगध जनपद प्रसिद्ध था। राजधानी गिरिव्रज थी। जरासंध व्रहद्रथ (द्वितीय) का पुत्र था। व्रहद्रथ शक्तिशाली राजा था। वह तीन अक्षौहिणी सेना का अधिपति था। उसका विवाह काशिराज की दो यमज कन्याओं से हुआ था। उन्हीं में से एक का पुत्र जरासंध था, जो पिता से भी अधिक प्रतापवान् था। जरासंध को अभिषिक्त कर व्रहद्रथ वन चला गया था।[1] जरासंध ने मगध का ऐश्वर्य बहुत बढ़ाया। महाभारत संग्राम काल में भारत के १०१ प्रमुख क्षत्रिय राजे थे—जिनमें से ८६ को अकेले जरासंध ने पराजित किया था। भारत में उन दिनों जरासंध का आतङ्क छाया हुआ था। शिशुपाल–कंस,कारूष और दन्तवक्त्र आदि जरासंध के मित्र थे। और बासठ राजा उसका प्राधान्य मानते थे।[2]

कंस की मृत्यु तथा अपनी पुत्रियों का वैधव्य सुन क्रुद्ध होकर जरासंध ने प्रचण्ड सैन्य लेकर मथुरा पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में उसके साथ अनेक राजा भी ससैन्य सम्मिलित थे। इससे प्रतीत होता है कि मथुरा का राजा भी साधारण न था। यह युद्ध कई दिन हुआ। संकर्षण ने गदा युद्ध में जरासन्ध को पराजित

देवकी के आठवें पुत्र नहीं, पहिले ही पुत्र हैं। और वसुदेव–देवकी को बंदी करने का कारण आकाश वाणी नहीं, कोई राजनीतिक षड़यंत्र का प्रकटीकरण था। वसुदेव के पिता शूर भी भोजों के गणसंघ के नेता थे, तथा वसुदेव इसके मंत्री थे। सम्भव है कि वसुदेव–देवकी ने कंस के बंदी पिता उग्रसेन के पक्ष में कोई षड़यंत्र किया हो, जिस पर कुपित होकर उग्रकर्मा कंस ने, जिसने पिता को कैद कर लिया था—अपनी बहिन और बहिनोई तथा प्रधान मंत्री को भी कैद कर लिया हो।

१. महाभारत, सभापर्व, १७, १३। १९, १८, १९। १७, १७। तथा मैत्रायणी उपनिषद्।

२. महाभारत सभापर्व।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया। एक अल्पायु किशोर से द्वन्द में पराजित हो, खिन्न मन वह मगध लौट गया। परन्तु दूसरे वर्ष उसने फिर चढ़ाई की। परन्तु कृष्ण-बलराम ने उसे इस बार भी पराजित कर खदेड़ दिया। इस प्रकार जरासंध ने सत्रह आक्रमण किए, जिस से मथुरा का बल भग हो गया। १८ वीं बार जरासंध ने २० अक्षोहिणी सेना लेकर मथुरा को घेरा। तब कृष्ण ने युद्ध करने में अपनी असमर्थता देख—पिता वसुदेव और दूसरे साथियों से सलाह कर यह निर्णय किया--कि जरासंध का बैर मुझ से और बलराम से है, आप लोगों से नहीं। इस लिए उसके देखते हम यहां से चले जायं, तो वह यादवों को बिना सताए हमारे पीछे दौड़ेगा। फिर हम उससे निबट लेंगे। यह सलाह कर कृष्ण बलराम ने एक मुहूर्त भर युद्ध कर दक्षिण की ओर पलायन कर दिया। जैसा कि कृष्ण ने अनुमान किया था--जरासंध उनके पीछे सेना सहित चल दिया। कृष्ण बलदेव अनेक देशों को पार करते हुए भागते भागते सह्याद्रि पर पहुंचे। वहां वेणु नदी के तट पर भीष्म के गुरु परशुराम से मिल उन्होंने परामर्श किया। सब बात सुनकर उन्होंने कहा—आज कल इस करवीर पुर का शृगाल राजा बड़ा क्रूर है। तुम्हारा यहां ठहरना निरापद नहीं। मैं तुम्हारे साथ चलता हूं। हमें वेणु पार कर यज्ञगिरि पर एक रात बस दूसरे दिन खद्योत नगर से उधर कौंचपुर जाना चाहिए। वहाँ का राजा महाकपि हमारी सहायता करेगा। फिर हमें गिरिगोमन्त चलना होगा। वहाँ जरासन्ध नहीं पहुँचेगा।

गिरिगोमन्त वर्तमान 'गोआ' का नाम था। परशुराम उन्हें वहां छोड़ आए। परन्तु जरासन्ध ने गिरिगोमन्त को आ घेरा। और पहाड़ तथा वन में आग लगा दी। वहां से कृष्ण बलदेव किसी भाँति निकल भागे। जरासन्ध चेदि के राजा शिशुपाल को उनके पीछे लगा—मगध लौट गया। चेदिपति शिशुपाल कृष्ण बलदेव की बुआ का लड़का था[1]। उसने कृष्ण से मिलकर कहा--कि तुम यदि अपनी और मेरी सेना लेकर मेरे लिए शृगाल से करवीरपुर जीत दो—तो मैं तुम्हारा अनुगामी बन जाऊँगा। कृष्ण बलदेव ने इस पर करवीर पुर घेर लिया, और युद्ध में शृगाल को मार डाला। तब राजा की पटरानी अपने बालक शक्र देव को आगे कर कृष्ण के पास आई—और उसने अश्रुनयन हो कृष्ण से कहा—तुमने बिना बैर जिस राजा को मारा है, उसी का यह पुत्र हाथ जोड़ कर आपके सम्मुख खड़ा है। अब आप जो आज्ञा दें यह उसी

---

१. वसुदेव के पिता शूर की पाँच पुत्रियां थीं। उनका वंश वृक्ष यहां देते हैं--

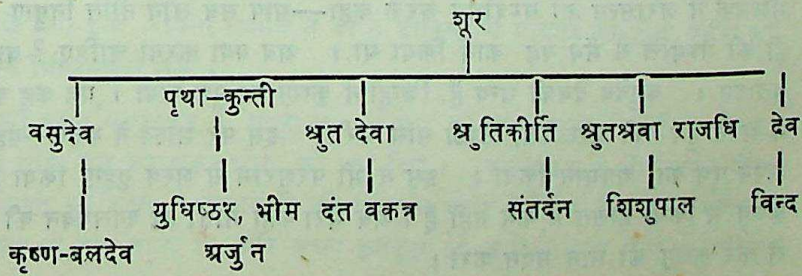

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का पालन करे। इस पर कृष्ण लज्जित और अनुतप्त हुए और उसी बालक का अभिषेक कर उसे करवीर पुर का राजा बना दिया। इससे शिशुपाल क्रुद्ध हो चेदि लौट गया। और कृष्ण बलदेव फिर मथुरा लौट आए। शिशुपाल अपना बैर भूला नहीं। बसुदेव ने अश्वमेध किया तो शिशुपाल ने अश्व हरण कर लिया। इसी समय एक नई बात उठ खड़ी हुई। कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की पुत्री रुकमणी कृष्ण से विवाह करनी चाहती थी, उसके पिता की भी यही इच्छा थी, पर उसका भाई रुक्मी उसका स्वयम्वर करना चाहता था। स्वयंवर की तैयारी सुन शिशुपाल भी गया और कृष्ण भी गए। कृष्ण भारी सैन्य लेकर गए थे। और वे राजा कैशिक के यहां ठहर गए। और कैशिक ने उनका आतिथ्य किया। कृष्ण के आने से स्वयंवर में निमन्त्रित सब राजा भीष्मक के साथ चित्रित हो सलाह करने लगे। कृष्ण अभिषिक्त राजा नहीं है, यह प्रश्न उठाया गया। पर जरासन्ध ने उनके शौर्य का वखान कर संधि की सलाह दी। सुनीथ राजा ने इसका समर्थन किया। दंत वक्र ने कृष्ण का पक्ष लिया। उसने कहा—कृष्ण को मित्रवत् स्वयंवर में बुलाऊँगा। कुमारी जिसे चाहेगी—वरेगी। परन्तु शाल्व राजा अड़ गया, और उस ने युद्ध की सलाह दी।

इधर यह परामर्श हो रहे थे, उधर क्रथ कौशिक ने दूत भेज कर कहलाया—कृष्ण से निष्कारण वैर बढ़ाने से कुछ लाभ नहीं है। इस लिए जरासन्ध, शाल्व, रुक्म, और सुनीथ ये चार भूपाल अशून्यहित कुण्डिन पुर रहें, और शेष सब राजे यहाँ पधार कर कृष्ण का अभिषेकोत्सव देखें। दूत का यह संदेश पा जरासंध से सहमति ले, सब राजे वहाँ पहुँचे कैशिक के यहां कृष्ण का अभिषेकोत्सव हुआ। सब राजाओं ने वस्त्राभूषण रत्न हटाक से पूजन किया। उस समय कृष्ण ने भीष्मक से कहा—मेरा विचार स्वयँवर में विघ्न डालने का नहीं है, आप जिसे चाहें उसे ही अपनी कन्या सुख पूर्वक दे सकते हैं। परन्तु भीष्मक कृष्ण के प्रभाव से चिंतित वहां से लौटे और सब राजाओं की सभा कर कहा—स्वयम्वर में मुझे विघ्न का भय है—इस लिए अभी स्वयम्वर स्थगित किया जाता है। सब राजा मलिन मन अपने अपने धाम को लौट गए। केवल जरासन्ध, दंतवक्र, सुनीथ, महाकर्म, क्रथकैशिक, श्रीशंत, वेणुदार और काश्मीर नरेश मंत्र करने को रह गए। इन सब राजाओं की सभा में भीष्मक ने जरासन्ध को सम्बोधन करके कहा—आप सब लोग नीति निपुण हैं, आप ही की सम्मत्ति से मैंने यह कार्य किया था। अब क्या करना चाहिए? वह—आप बताइए। वसुदेव देवकी धन्य हैं, जिन्हों ने कृष्ण सा पुत्र पाया। यह कह कर राजा ने अपने पुत्र की ओर देख, ठण्ठी सांस भरी। इस पर शाल्व ने कहा—यह आप ने अपने पुत्र का अपमान किया। इस ने भी परशुराम से शस्त्र गृहण किया है, और कृष्ण से किसी हालत में कम नहीं है। अब मेरा कहा मानो तो कालयवन की सहायता ले कर कृष्ण का मान मर्दन करो।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जरासन्ध ने भी इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा--पराश्रय ग्रहण करने से मैं युद्ध को श्रेष्ठ समझता हूं। ये राजा शाल्व बड़े विहिता विहित विचारी है। और बड़े ज्ञानी हैं। इनके पास आकाश चारी सौभ विमान है। इस लिए इन्हीं को दूत बना कर कालयवन के पास भेजिए। शाल्व जरासन्ध की आज्ञा मान कर कालयवन के पास गए, कालयवन ने सुना-तो अर्घपाद्य ले मन्त्रियों सहित अगवानी को आया। शाल्व ने कहा--राजन्! हमें जरासन्ध आदि राजाओं ने दूत बना कर भेजा है--दूत राजा के लिए अर्घ्यर्ह नहीं है। यह सुन कालयवन ने कहा--इस अवसर पर आप और भी अधिक पूज्य हैं। क्यों कि आप की पूजा से सब की पूजा हो जाती है। यह कह कर कालयवन शाल्व का विधिवत् सत्कार कर सभा में ले गया--वहां सिंहासन पर साथ बैठा कर कहा कहिए, जिस जरासंध की कृपा से हम सब राजे भय रहित रहते हैं। उसने क्या आज्ञा दी है? तब शाल्व ने सब हाल कह--कृष्ण की बढ़ती हुई शक्ति का हाल कहा-और यह भी कहा--कि आप ही कृष्ण को जीतने योग्य हैं। इस लिए हमारे साथ चल कर कृष्ण को मार कर सब राजाओं को भय रहित कीजिए। कालयवन यह सुन कर बोला--हे भूपालमणे, मैं आज पृथ्वी पर धन्य हुआ; और मेरे पिता का शिक्षण भी सफल हो गया। क्यों कि सम्राट् जरासन्ध समेत सारे नृपमंडल ने मुझे जगद्विजयी रामकृष्ण को जीतने योग्य समझ यह महत्कार्य मुझे सोंपा है। सब नृपतियों के आशीर्वाद से मैं अवश्य जय प्राप्त करूंगा। इस कार्य में मेरा शरीर पात भी हो तो श्रेष्ठ है। इतना कह--बहुत सा धन ब्राह्मणों को दान कर वह चतुरङ्गिणी सेना ले मथुरा की ओर चला।

उधर अभिषेक से निवृत्त हो कृष्ण जब मथुरा पहुँचे, तो राजा उग्रसेन ने इन्हें भूपाल स्वीकार कर अर्घ्य देना चाहा। परन्तु कृष्ण ने उन्हें निवारण करके कहा-आपके लिए हम जैसे हैं. वैसे ही रहेंगे। फिर कंस की माता ने कंस का सारा कोष उन्हें समर्पित कर दिया। पर उन्होंने वह भी आदर पूर्वक लौटा दिया। इतने ही मैं कालयवन की चढ़ाई की सूचना इन्हें मिली। इस अवस्था में युद्ध करना और मथुरा में रहना निरापद न समझ कर उन्होंने रैवतगिरि पर एकलव्य की रची हुई द्वारिका पुरी में रहना स्थिर किया। उग्रसेन ने कहा--आप की सहायता के बिना हम भी यहाँ नहीं रह सकते। तब सब बातों पर विचार कर उन्होंने सब यदुवंशियों सहित मथुरा त्याग दी, और द्वारिका की ओर प्रस्थान कर दिया। द्वारिका के अधिपति के लिए इन्हें रोकना सम्भव न था। द्वारिका में यादवों का ठीक प्रबंध कर कृष्ण अकेले फिर मथुरा लौटे।

इसी समय कालयवन ने मथुरा को आ घेरा। कृष्ण पूर्व नियोजित योजना के अनुसार थोड़ा युद्ध कर एक ओर को चल दिए। कालयवन ने भी उनका पीछा किया। भागते हुए कृष्ण ने कालयवन को मुचुकुन्द राजा से भिड़ा दिया। मुचुकुन्द ने कालयवन को मार डाला। और कृष्ण कृतकृत्य हो-द्वारिका चले आए। द्वारिका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आकर उन्होंने पुरी का निर्माण किया। उग्रसेन को ही वहाँ का राजा बनाया। उसके पुत्र अनाधृष्ट को सेनापति बनाया। उद्धव, कंक, विकद्रु, गय, स्वफलक, विष्टथु, चित्रफ, पृथु और सात्यिकि को विविध विभागों का मन्त्री बनाया। इस प्रकार कृष्ण ने ९ मन्त्रियों के राज्य की प्रणाली चलाई। सात्यकि युद्ध सचिव बनाए गए, सांदीपन ऋषि कुल पुरोहित और दारुक कृष्ण के सारथी बने। रैवत ने अपनी पुत्री रेवती का ब्याह बलराम से कर दिया।

जरासन्ध के पूर्व पुरुष बृहद्रथ के पिता उपरिचर वसु के वंश में दमघोष राजा था, जिस का राज्य चेदि में था[1]। यह मागध वंश में नहीं था। कृष्ण की बुआ श्रुतिश्रवा इसे ब्याही थी। इन्हीं दोनों का पुत्र शिशुपाल था। इस प्रकार शिशुपाल पितृ वंश से जरासन्ध से संबधित था, और मातृवंश से कृष्ण से। अपितु कृष्ण का आत्मीय-फुफेरा भाई था। वह प्रथम जरासन्ध के सम्पर्क में था—और कृष्ण के संपर्क में आना चाहता था। कि शृगाल के युद्ध में उसके विपरीत आचरण करने से वह कृष्ण से नाराज हो गया। अब भीष्मक ने—जब रुक्मिणी का स्वयम्वर न कर सका तो रुक्मी की हठ से रुक्मिणी का ब्याह शिशुपाल से तय कर दिया। तब रुक्मिणी ने ब्राह्मण के हाथ पत्र भेज कर कृष्ण को बुला भेजा। कृष्ण बलराम के साथ एक भारी सेना साथ ले कुण्डनी पुर पहुँचे, और जब रुक्मिणी गौरी पूजन करके लौटी—तो उसे हरण कर द्वारिका का रास्ता पकड़ा। बलराम सेना सहित राह रोक खड़े हो गए, उनसे रुक्मी ने प्रचण्ड युद्ध किया। फिर युद्ध करना व्यर्थ समझ, और यह प्रतिज्ञा कर, वह कृष्ण के पीछे चला—कि यदि कृष्ण को मार रुक्मिणी वापस न लाऊं, तो लौट कर नगर का मुंह न देखूं। वह प्रचण्ड कोदण्ड उठा रथारोही, कृष्ण के पीछे वेग से चला। राजा अंशुमान्, वेणुदार, श्रुतर्वा, उसके साथ चले। नर्वदा तट पर कृष्ण से विकट युद्ध हुआ। अंशुमान् और श्रुतर्वा मूर्छित हुए. वेणुदार का दक्षिण बाहु छेद हुआ। अन्त में बहुत देर तक युद्ध करके रुक्मी भी मूर्छित हुआ। कृष्ण उसे वहीं छोड़ द्वारिकावती को चल दिए। रुक्मी ने फिर कुण्डिनपुर में प्रवेश नहीं किया। दक्षिण में भोजकर नाम का नया नगर बसा कर वहीं रहने लगा।

रुक्मिणी से कृष्ण ने दस पुत्र उत्पन्न किए—प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, सुषेण, चारुगुप्त, चारु, चारुबाहु, चारुविंद, भद्रचारु और चारुक। इनके अतिरिक्त एक कन्या भी—चारुवती। कृष्ण ने और भी सात विवाह किए। कालिन्दी (सूर्य की पुत्री), मित्रविन्दा (अवन्तिराज की कन्या), सत्या (गांधारपति नग्नजित् की पुत्री),

---

१. चेदी जनपद वर्तमान बुंदेलखण्ड का प्राचीन नाम था। चेदी की राजधानी शुक्तिमती थी। चेदीमण्डल की राजधानी महिष्मती थी। महा० वन पर्व २८–५०। अनर्घराघव ७–११५।

CC-0. Agamnigam Foundation. Chandigarh

जाम्बवती (जम्बवान की पुत्री), भद्रा–रोहिणी (केकयराज की पुत्री), सुशीला (मद्रराज कन्या), सत्यभामा (सत्राजित् की पुत्री), लक्ष्मणा (शैब्यराज की पुत्री)। सभी रानियों के पुत्र हुए। पुत्रों में प्रद्युम्न, साम्ब, सर, सारण और गद प्रसिद्ध हुए। साम्ब ने मुलतान में सूर्य मन्दिर बनवाया, तथा शाकद्वीपी ब्राह्मणों को वहां बसाया। इसी वंश में आर्यभट्ट और वराहमिहिर हुए। पौत्रों में अनिरुद्ध और वज्र प्रसिद्ध हुए। समय पर रुक्मी की कन्या सुभागी का ब्याह कृष्ण–पुत्र प्रद्युम्न से हुआ।[1] इनका पुत्र अनिरुद्ध कुमार था। अनिरुद्ध का विवाह रुक्मी की पौत्री से रुक्मिणी ने आग्रह पूर्वक किया। इस विवाह में जुआ खेलते हुए बलराम से रुक्मी का विग्रह हो गया। खेल में बलराम हार गए, तो रुक्मी ने मज़ाक़ उपहास किया, बाद में बलराम जीते तो रुक्मी और इसके साथी राजाओं ने बेईमानी कर अपनी ही जीत बताई। जिस से क्रुद्ध हो बलराम ने मुहरों से भरी थैली उठा कर रुक्मी की छाती में जोर से दे मारी। जिससे रुक्मी खून वमन करता हुआ उसी समय मर गया। बलराम की हार पर कलिङ्गपति हँसा था। बलराम ने उसके मुंह पर लात मार कर उसके दांत तोड़ दिए। और जनवासे में आ सब हाल कृष्ण से कह द्वारिका को पलायन कर गए। कृष्ण ने प्राग्ज्योतिष के नरक का वध उसकी राजधानी में जाकर किया, और उसके पुत्र भगदत्त को राजा बनाया। फिर काशी के राजा पौंड्रक को मारा। जब द्वारिका पर उन्होंने अधिकार किया था—वह उजड़ी हुई थी, उसे उन्होंने सब भांति सम्पन्न किया। कृष्ण के समय में यादवों के संघ में पांच गण थे—अंधक, वृष्णि, यादव, कुकुर और भोज। वे आन्तरिक व्यवस्था में स्वतन्त्र थे, परन्तु बाहर के लिए एक थे। भोजों के नेता कुकुर थे, इनसे बलदेव अनुकूल रहते थे। कृष्ण के प्रतिद्वन्दी वभ्रु थे। कृष्ण और उग्रसेन संघ के नेता थे। मुशल युद्ध के बाद भी वभ्रु जीवित बच गए थे। कृष्ण को सदा इस बात का खेद रहा कि उन्हें अच्छे साथी नहीं मिले—महाभारत में वे कहते हैं—"बलदेव अपने बल में मस्त हैं, गद सुकुमार हैं, प्रद्युम्न बनाव–शृङ्गार में मस्त रहते हैं। आहुक और अक्रूर अधिकार प्राप्त करते जाते हैं। मुझे अच्छा साथी नहीं मिलता है—"[2]। अन्त में एक व्याधा के बाण से कृष्ण का प्राणान्त हुआ।[3]

कृष्ण कौन हैं—कृष्ण कौन हैं, उनका कुल-वंश-जाति-देश-राज्य आदि का आज तक ठीक-ठीक पता नहीं लग पाया है। साथ ही कंस के मथुरा राज्य का भी कोई ऐतिहासिक आधार प्राप्त नहीं है। कनिंघम ने जो मथुरा की खुदाई कराई थी—उसमें मथुरा का 'कंस का टीला' नाम का विख्यात ढूह एक बौद्ध विहार स्तूप प्रमाणित हुआ है।

---

१. मामा की लड़की से ब्याह हुआ।

२. शान्तिपर्व, राजधर्म २१वां अध्याय।

३. हरिवंश पु०। महाभारत। वायु पु०, मत्स्य पु०, और श्रीमद्भागवत के आधार पर यह कृष्ण चरित कथित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुराणों में मथुरा, इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर के तीन चक्रवर्ती राज्य वर्णित हैं। विचारने योग्य बात है कि इन्द्रप्रस्थ से हस्तिनापुर ६० मील और मथुरा ८० मील है। मथुरा से गोकुल और वृन्दावन ४–५ मील है। ऐसी दशा में इन तीन प्रदेशों में तीन चक्रवर्ती महाराज्य कैसे? और वे चक्रवर्ती भी कैसे? 'आसमुद्र क्षितीशं। भागवत के एक वर्णन पर आप विचार कीजिए। कंस प्रेरित अक्रूर कृष्ण को गोकुल से मथुरा ले जाने को वायुवेगी (?) रथ पर चढ़ कर मथुरा से चले, तो प्रातःकाल से चलकर संध्याकाल में गोकुल पहुंचे। इसका अभिप्राय यह, कि उन्होंने यह ४–५ मील का सफर दिन भर में वायुवेगी (?) रथ पर पूरा किया। एक बात यह भी विचारणीय है कि कृष्ण जब सर्वथा अरक्षित रहकर गौकुल में गाएं चराते थे, तब कंस जैसे सामर्थ्यवान् नृपति के लिए उन्हें अपने भौमासुर, वृकासुर आदि योद्धाओं से पकड़वा मंगाना क्या मुश्किल था? फिर यह भी एक चमत्कारिक बात है कि कृष्ण एक बार मथुरा आकर फिर गोकुल गए ही नहीं। इससे अधिक चमत्कारिक यह, कि कृष्ण–बलदेव दोनों बालकों ने कंस और उसके योद्धाओं को तथा हाथी को इस प्रकार आसानी से मार मूर डाला, जैसे कि वे कागज के या मिट्टी के खिलौने थे। महाभारत से प्रतीत होता है कि शिशुपाल, दुःशासन आदि १०–१० सहस्र जनपद के अधीश्वर थे। ऐसी हालत में मथुरा, इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर के महाराज्यों की स्थापना स्पष्ट कोरी कल्पना प्रतीत होती है। इस बात का भी कोई ऐतिहासिक आधार प्राप्त नहीं है, कि कृष्ण पाण्डवों के समसामयिक थे। महाभारत ही में एकमात्र यह उल्लेख है। फिर, महाभारत में कंस और कौरवों का कोई सम्बन्ध नहीं दिखाया गया है।

पौराणिक राजवंश और कृष्ण—पुराणों में जो कंस और कृष्ण का वंशवृत्त प्राप्त है, उसके आधार पर यदुवंश की माथुर शाखा में—वैवस्वत मनु की पुत्री इला और पुरुवंश की सन्तानों में ५२वीं पीढ़ी में 'आहुक' नाम के एक राजा हुए हैं। उनके समसामयिक एक राजा देवमीढस कहीं थे, जो पूर्वोक्त वंशवृत्त के ४६वें राजा वृष्णि से भिन्न किसी अन्य वृष्णि वंश के थे। इन्हीं के वंश में चौथी पीढ़ी में कृष्ण का नाम है।[1]

शूरसेन जनपद—मथुरा के चारों ओर का इलाका उन दिनों शूरसेन जनपद कहाता था। शूरसेनों के जनपद में पाँच स्थल[2] और बारह वन[3] थे। तथा

१—वायु पु० ९। ६-३। हरि० ३८, २०००१, मत्स्य ४४–४९। पद्मपथ १३७३३।

२—१. अक्कथलं, २. वीरथलं, ३. पउमत्थलं, ४. कुरुत्थलं, ५. महत्थलं।

३—१. लोहजंघवणं, २. भद्दुवणं, ३. विल्लवणं, ४. तालवणं, ५. कुमुअवणं, ६. विंदावणं, ७. भंडीरवणं, ८. खंइरवणं, ९. कामिअवणं, १०. कोलवणं, ११. बहुलावणं, १२. महावणं (विविध तीर्थ कल्प)। देखिए—भारतवर्ष का इतिहास—भगवतदत्त शास्त्री।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मथुरा के अतिरिक्त एक और पुर Kleisobara था।[1] वृन्दावन और महावन अब भी हैं। तथा वृन्दावन का उल्लेख महाभारत में भी है।[2] शूरसेन जनपद में भोज-वंशी यादवों का राज्य था, जिनका वंश-वृक्ष नीचे देखिए—

(मातृकावत के भोज)—४२ सत्वत् (यदुवंश, माथुरशाखा का एलवंश में ४२वीं पीढी का पुरुष)

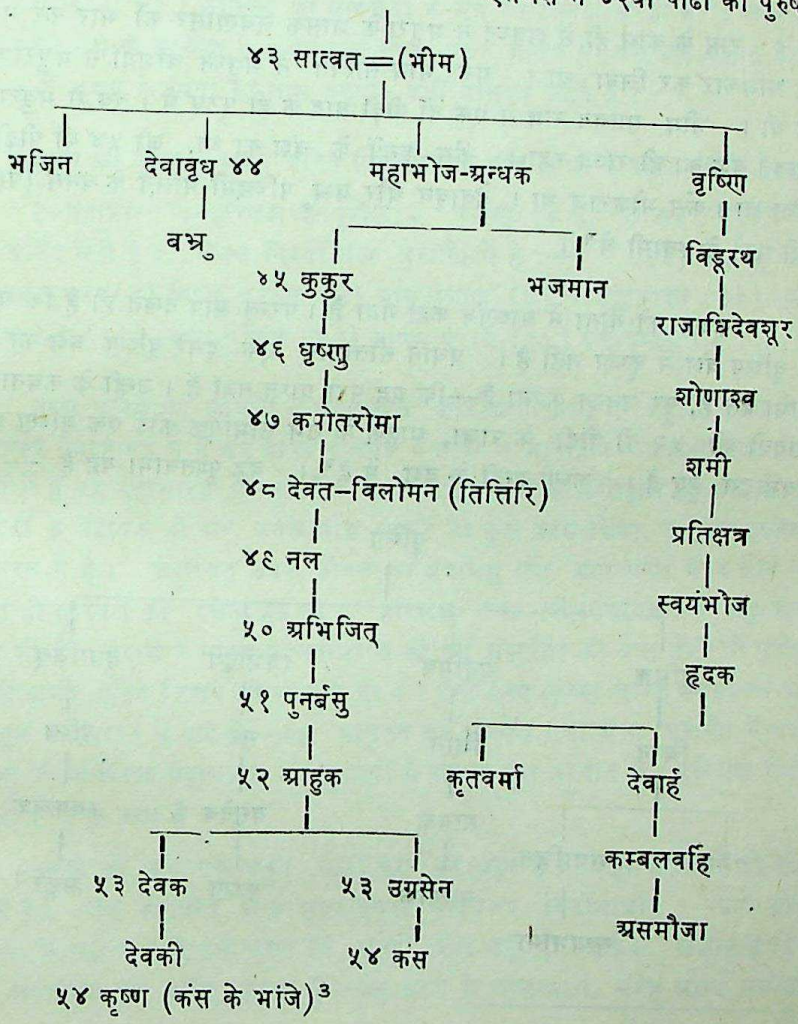

१—टालमीका भारत पृ० १८।

२—महा० सभा० ५२।३६।

३—हरिवंश ५५, ३१०२, ४, ११३; ६२६३, ६२८०,। म० भा० VII ११; ३८८, ९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उग्रसेन के जीवन काल ही में कंस अपने पिता का पदच्युत कर स्वयं मथुरा का राजा बन बैठा था। वसुदेव उसका मन्त्री था। उसे कंस ने अपनी चचेरी बहिन (देवक की पुत्री) देवकी ब्याह दी थी। ब्याह के बाद किसी कारण से कस ने वसुदेव देवकी को बन्दी कर लिया था। बन्दी अवस्था ही में कृष्ण का जन्म हुआ।

राम के काल ही में शत्रुघ्न ने मथुरा के शासक लवणासुर को मार कर मथुरा पर अधिकार कर लिया था। अब भीम सात्वत ने शत्रुघ्न वंशियों से मथुरा छीन ली थी। भीम सात्वत राम से एक दो पीढ़ी बाद के ही पुरुष थे। तब से मथुरा पर सात्वत वंश का ही राज्य रहा। कंस इन्हीं के वंश का था, जो ५४ वीं पीढ़ी का राजा था। कंस भोजराज था। देवावृध और वभ्रु पच्छिमी मालव के वनस (पर्णाश नदी पर) के स्वामी थे[१]।

कृष्ण को गीता में वार्ष्णेय कहा गया है। परन्तु आप देखते ही हैं कि यादवों के वृष्णि वंश में कृष्ण नहीं है। प्रधान सीतानाथ एक दूसरे वृष्णि वंश का पुश्त-नामा देते हैं, पर उनका कहना है—कि यह पूरा प्राप्त नहीं है। उन्हीं के कथनानुसार यादवों की ५२ वीं पीढ़ी के राजा, आहुक के सम सामयिक कोई एक वृष्णि वंशीय देवमीढ़स हुए हैं। कृष्ण उन्हीं के वंश में हैं[२]। वह पुश्तनामा यह है :—

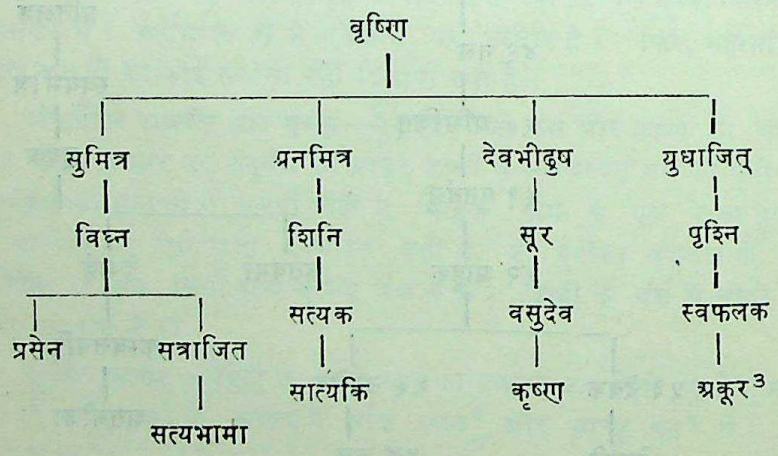

१— महाभारत सभा पर्व २३। ३

२—देखिए पार्जीटर कृत—रन्शिएन्ट इन्डियन हिस्टीरिक्लट्रेडीशन।

३—पार्जीटर अक्रूर को यादव वृष्णि (४६) के वंश में बताते है। पर प्रधान ने अधिक खोज की है, और वे उन को दूसरे वृष्णि वंश में बताते हैं। देखिए डा० सीतानाथ प्रधान कृत क्रोनोलॉजी आफ एन्शिएन्ट इन्डिया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विवरण--अक्रूर का राज्य गुजरात में था, तथा इस वंश के अक्रूर, सात्यकि, कृष्ण के साथी–और सत्यभामा उनकी पत्नी है। ऐसा प्रतीत होता है---कि यादवों का एक गणसंघ था, और मथुरा के भोजवंशी राजा संघ के अधिपति थे। उग्रसेन को कैद करके कंस संघपति बना था। कृष्ण ने कंस को मारकर फिर उग्रसेन को संघपति बनाया था। महाभारत में वृष्णि अन्धक को व्रात्य कहा है[1]। पाणिनी अंधक--वृष्णि का उल्लेख करता है[2]। कौटिल्य भी वार्ष्णेयों के संघ का उल्लेख करता है[3]। वसुदेव और उग्रसेन संघ के मुखिया थे। पतंजलि तथा घटक जातक में कंस वध कथित है। पुराण कहीं कृष्ण के पिता का नाम वसुदेव--कहीं वासुदेव कहते हैं।

कृष्ण की खोज---कृष्ण चरित निम्नलिखित तीन ग्रन्थों में पाया जाता है:–

१--महाभारत २--हरिवंश ३--पुराण। पुराण १८ हैं, पर सब पुराणों में कृष्ण चरित नहीं है। केवल निम्नलिखि पुराणों में है :— (१) ब्रह्म पुराण (२) पद्म पुराण (३) विष्णु पुराण (४) वायु पुराण (५) श्रीमद्भागवत (१०) ब्रह्म वैवर्त पुराण (१३) स्कन्द पुराण (१४) वामन पुराण (१५) कूर्म पुराण।

कृष्ण चरित के सम्बन्ध में महाभारत और अन्य ग्रन्थों में बहुत मतभेद है। जो वृतान्त महाभारत में हैं वह हरिवंश तथा पुराणों में नहीं है। जो हरिवंश और पुराणों में है वह महाभारत में नहीं है। महाभारत पांडवों का इतिहास है, अतः कृष्ण ने पांडवों के सहायक हो कर, उनके साथ रहकर जो कुछ काम किया, उसीका उल्लेख महाभारत में है। कदाचित् उनके जीवन का अवशिष्ठ अंश महाभारत में न होने के कारण ही हरिवंश की रचना हुई हो। हरिवंश तथा श्रीमद्भागवत में यह बात लिखी भी है। 'व्यास ने नारद से महाभारत की इस अपूर्णता की बात कही तो नारद ने उन्हें कृष्ण चरित लिखने की सम्मति दी। इसी लिए कृष्ण चरित सम्बन्धी जो बातें हम महाभारत में पाते हैं---वह भागवत या हरिवंश तथा अन्य पुराणों में नहीं हैं। इस के अतिरिक्त महाभारत सब पुराणों से अपेक्षा कृत प्राचीन हैं। हरिवंश आदि तो इस के पूरक ग्रन्थ हैं।

कृष्ण की खोज एक बहुत भारी सत्य की खोज है। इस खोज में दो बातें बाधक हैं। एक भारतीय अन्ध श्रद्धा दूसरी पाश्चात्य विरोधाभास। इन दोनों बाधाओं के कारण आज तक कृष्ण की सच्ची खोज नहीं हो पाई। श्रद्धावान् हिन्दू कृष्ण को ईश्वर की भाँति पूजता है—वह कृष्ण के सम्बन्ध में संदेह अधर्म समझता

---

१. द्रो० पर्व १४१। १५।

२. अष्टाध्यायी–IV १, ११४। VI २, २४।

३. अर्थ शास्त्र।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। उधर पाश्चात्य जन भारतीय श्रेष्ठता को उभरने देने के सभी प्रयत्नों पर परदा डालते रहे हैं। परन्तु हमें दोनों ही दलों से पृथक् हो कर शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि कोण से कृष्ण सम्बन्धी गवेषणा करनी उचित है।

पुराणों का साक्ष्य—महाभारत और पुराणों में कृष्ण के सम्बन्ध में अनेक असम्भव और अस्वाभिक बातें भी दे दी गईं हैं। वास्तव में वे सब पीछे से जोड़ी हुई है। और मूल कृष्ण चरित्र से उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यह बात बुद्धि-वाद से परे है—कि कृष्ण ने प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर चमत्कारिक कार्य किए। यह बात कृष्ण में ईश्वर तत्त्व के समावेश होने के कारण हुई। इस के अति-रिक्त उस काल में धर्म ग्रन्थों के सत्यासत्य की खोज जांच की चाल प्रचलित न थी। परम्परा से जो बात चली आती थी, उसी पर सब श्रद्धा पूर्वक विश्वास कर लेते थे।

कृष्ण का ईश्वरत्त्व—विष्णु पुराण में लिखा है---कि जगत्पति होने पर भी कृष्ण ने जो शत्रु पर अनेक रूप शस्त्रों का प्रयोग किया यह मनुष्य धर्म के कारण उन की लीला है। नहीं तो, जो मन से ही जगत की सृष्टि, उत्पत्ति, और संहार करता है---वह शत्रुओं के विनाश के लिए उद्यम क्यों करेगा? वह तो मनुष्य धर्म का अनुसरण करता है। इसी से वह बलवान् के साथ सन्धि और बलहीन के साथ युद्ध करता है, साम, दाम और भेद से दण्ड देता है, और कभी पलायन भी करता है, मनुष्य धर्म को अनुकरण करने वाला वह जगत्पति अपनी इच्छा से यह लीलाएं करता था[1]।

इस सम्बन्ध में हमें तीन सिद्धांतों पर चलना चाहिए:---

१—पुराण या महाभारत का जो भाग प्रक्षिप्त प्रमाणित हो, उसे अमान्य कर दिया जाय।

---

१. मनुष्य धर्म शीलस्य लीला सा जगतः पतेः।
अस्त्राण्यनेकरूपाणि यदरातिषु मुञ्चति।
मनसैव जगत् सृष्टि संहारञ्च करोति यः।
तस्यारिपक्षक्षपणे कोऽयमुद्यम विस्तरः।
तथापि यो मनुष्याणां धर्मस्तमनुवर्तते।
कुर्व्वन् बलवता सन्धि हीनैर्युद्धं करोत्यसौ।
साम चाप प्रदानञ्च तथा भेदं प्रदर्शयन्।
करोति दन्ड पातञ्च काचिदेव पलायनम्।
मनुष्य देहिनां चेष्टा मित्येव मनुवर्ततेः।
लीला जगत् पतेस्तस्य छन्दतः सं प्रवर्तते।

विष्णु० खण्ड ५ अ० २२ श्लो० १४-१८।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२—जो असम्भव और अस्वाविक हो उसे असत्य समझा जाय।

३—जो न प्रक्षिप्त हो न अस्वाभाविक, पर दूसरे प्रमाणों से असत्य प्रमाणित हो—उसे त्याग दिया जाय।

पुराणों ही की पहिले खोजबीन कीजिए। इस पुस्तक में पुराणों के प्रसंग में इस बात की अच्छी तरह ऊहा पोह कर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि—पुराण एक काल में एक व्यक्ति के लिखे हुए नहीं हैं। न वे प्रत्येक भिन्न भिन्न व्यक्ति के लिखे हुए हैं। वास्तव में एक भी पुराण आदि से अन्त तक एक ही व्यक्ति का एक ही समय पर लिखा हुआ नहीं है। विविध व्यक्तियों द्वारा—विविध काल में, विविध काल की घटनाओं का संग्रह मात्र हैं। उनमें बहुत अंश किन्हीं प्राचीन प्रचलित तथ्यों का है। पुराण का अर्थ ही पुरातन है। पुराण—पुरानी घटनाओं का संग्रह। प्राचीन काल में भी कोई पुराण होंगे। जिनका वर्तमान पुराणों में मसाला ले लिया गया है। क्यों कि शतपथ ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण, आश्वलायन सूत्र, अथर्व संहिता, वृहदारण्यक, छांदोग्य, उपनिषद्, महाभारत, रामायण, मानव धर्मशास्त्र सभी में पुराणों का उल्लेख है। पर उल्लेख 'पुराण' मात्र ही का है। आज कल के १८ पुराणों में से किसी का नामोल्लेख कहीं भी नहीं है।

पुराणों में जहां भी कृष्ण चर्चा है, वह या तो पूरक है या ईश्वर तत्त्व की भावना से परिपूर्ण है। उनकी अलौकिकता की मुख्यता सर्वत्र रही है। इसी से उनकी इच्छा से अलौकिक कार्यों का होना लिखा गया है। यदि कृष्ण को ईश्वर का अवतार मान भी लिया जाय तो वे कोई अनैसर्गिक कार्य क्यों करें, यह समझ में नहीं आता। यदि ईश्वर मनुष्य शरीर धारण करके अमानुष काम करे तो फिर उसका मनुष्य शरीर धारण करने का क्या प्रयोजन है? यदि ईश्वर सर्वेश्वर है, जिसकी इच्छा मात्र से सब जीवों की सृष्टि और संहार होता है, वह तो मनुष्य शरीर धारण किए बिना ही संहार कर सकता है। जब दैवी शक्ति से ही काम लेना है तब मनुष्य देह धारण करने का क्या उद्देश्य है। जो अपनी इच्छा से करोड़ों विश्व बनाता—बिगाड़ता है, उसका कंस—शिशुपाल आदि के वध के लिए जन्म ग्रहण करने, बालक होकर माता का स्तन पान करने, अक्षराभ्यास करने; जीवन के सुख—दुःखों के भोग करने की भला कैसे आवश्यकता हो सकती है। इस प्रकार स्वयं शस्त्र धारण करना, कभी आहत होना, कभी पराजित होकर पलायन करना। और कूट-नीति से शत्रु का दलन करना—कभी भी विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता।

महाभारत का साक्ष्य—महाभारत में ऐतिहासिक तत्त्व हैं। किन्तु उसमें पाण्डव—कृष्ण के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है—उसमें कितना तत्त्व ऐतिहासिक है और कितना प्रक्षेप है, यह बात विचारणीय है। वर्तमान महाभारत में प्रक्षेप इतना अधिक है कि उसमें से मूल महाभारत को पृथक् करना कठिन है। कृष्ण के सम्बन्ध

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में तो हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं—कि महाभारत में कृष्ण की जो कुछ कथाएँ हैं, उनका ही कुछ ऐतिहासिक मूल हो सकता है। जो बातें कृष्ण के सम्बन्ध में महाभारत में नहीं हैं, अन्यत्र है, उनका ऐतिहासिक मूल्य लगभग नहीं है। अब आप इस प्रक्षेप के सम्बन्ध में विचार कीजिए।

महाभारत में प्रक्षेप—आदि पर्व के द्वितीय अध्याय का नाम पर्व संग्रहाध्याय है। महाभारत में जिन जिन विषयों का वर्णन है, उनका इस अध्याय में वर्णन है। इस संग्रहाध्याय में छोटे से छोटे विषय का भी उल्लेख है। इसलिए, यदि किसी बड़े भारी विषय का उल्लेख इसमें न हो तो उसे अवश्य ही प्रक्षेप समझना चाहिए। अब आप देखिए—कि अश्वमेधिक पर्व में अनु गीता और ब्राह्मण गीता के पर्वाध्याय हैं। इस विषय में पूरे छत्तीस अध्याय हैं। ये कोई छोटे-मोटे विषय नहीं हैं, पर पर्व संग्रहाध्याय में इन दोनों का कुछ भी उल्लेख नहीं है। इसलिए अनुगीता और ब्राह्मण गीता प्रक्षेप भाग हैं।

इस अनुक्रमणिकाध्याय में महाभारत के १ लाख श्लोक लिखे हैं। किस पर्व में कितने श्लोक है, यह भी लिखा है—पर उस हिसाब से योग १ लाख श्लोकों का नहीं होता। ८४८३६ श्लोक होते हैं।[1] उन्हें पूरा एक लाख करने के लिए पर्वाध्याय संग्रहकार ने लिखा है—१८ पर्वों के अतिरिक्त हरिवंश और भविष्यपर्व भी है। हरिवंश में बारह हज़ार श्लोक हैं। वहां हरिवंश की केवल इतनी ही चर्चा है। ये १२ हज़ार मिलाकर ९६८३६ श्लोक होते हैं।

श्लोक संख्या—अब आप वर्तमान महाभारत की श्लोक संख्या और पर्व-संग्रहाध्याय की संख्या का अन्त देखिए—

पर्व संग्रहाध्याय में वर्णित संख्या		प्रचलित वर्तमान महाभारत की श्लोकसंख्या
आदि पर्व	८८८४	८४७९
सभा पर्व	२५११	२७०९
वन पर्व	१७४७८	११६६४
विराट पर्व	२०५०	२३७६
उद्योग पर्व	६३९८	७६५६
भीष्म पर्व	५८८४	३८५६

१. "अष्टादशैव मुक्तानि पर्व्वाण्येतान्यशेषतः।
खिलेषु हरिवंशश्च भविष्यश्च प्रकीर्तितम्।
दश श्लोक सहस्त्राणि विंशश्लोक शतानि च।
खिलेषु हरिवंशे च संख्यातानि महर्षिणा।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्रोण पर्व	८९०९	९६४९
कर्ण पर्व	४९६४	५०४६
शल्य पर्व	३३२०	३६७१
सौप्तिक पर्व	८७०	८११
स्त्री पर्व	७७५	८२७
शान्ति पर्व	१४७३२	१३९४३
अनुशासन	७७९६	८०००
आश्वमेधिक	३३२०	२९००
आश्रमवास्तिक	१५०६	११०५
मौसल पर्व	३२०	२९२
महाप्रस्थानिक	३२०	१०९
स्वर्गारोहण	२०९	३१२
खिल हरिवंश	०	१६३७४
जोड़	८४८३६	१०७३९०

अब आप स्पष्ट देख सकते हैं कि महाभारत में पर्वसंग्रह के काल में भी १ लाख श्लोक पूरे नहीं थे। पर्वसंग्रह के बाद हरिवंश सहित लगभग ११ हज़ार श्लोक बढ़ाए गए हैं। जो सब प्रक्षेप हैं।

अनुक्रमणिका—अब आप अनुक्रमणिकाध्याय पर भी ज़रा विचार कीजिए। उसके १०२ संख्यक श्लोक में लिखा है कि व्यास ने डेढ़ सौ श्लोकों की अनुक्रमणिका बनाई।[1] परन्तु इस समय वर्तमान महाभारत के अनुक्रमणिकाध्याय में २७२ श्लोक हैं। स्पष्ट ही इस अनुक्रमणिका में ११२ श्लोक पर्वसंग्रहाध्याय लिखे जाने के बाद बढ़ाए गए हैं।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है, कि पर्वसंग्रहाध्याय महाभारत रचना के बहुत बाद बना है। महाभारत के लेखानुसार वैशम्पायन ने जनमेजय को महाभारत सुनाया और उग्रश्रवा ने नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों को सुनाया। पर्वसंग्रहकार इस संग्रह को उग्रश्रवा की ही उक्ति बताता है। वैशम्पायन की नहीं। इसलिए यह वैशम्पायन रचित महाभारत का अंश भी नहीं है। अनुक्रमणिका में लिखा है कि कोई तो आरम्भ ही से, कोई आस्तिक पर्व से, कोई उपरिचर उपाख्यान से

---

१. ततोऽध्यर्द्धशतं भूयः संक्षेपं कृतवानृषिः।
अनुक्रमणिकाध्यायं वृत्तान्तानां स पर्वणाम्।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाभारत का आरम्भ बताता है। इसलिए जब उग्रश्रवा–नैमिषारण्य में ऋषियों को महाभारत सुना रहे थे, उस काल में भी आरम्भ के ६२ अध्याय प्रक्षिप्त समझे जाते थे। वास्तव में पर्व संग्रहाध्याय भी प्रक्षेपों की भरमार रोकने के लिए ही अनुक्रमणिका के बाद जोड़ा गया था। और उससे प्रथम बहुत सा प्रक्षिप्त अंश महाभारत में मिल चुका था।

अनुक्रमणिकाध्याय ही में उपाख्यान को छोड़ कर मूल काव्य की संख्या २४ हजार श्लोक बताई गई है। अनुक्रमणिका में ही यह भी लिखा है कि यह संहिता ६० लाख की वेदव्यास ने रची थी—जिसका कुछ अंश देवलोक में, कुछ पितृलोक में और कुछ गन्धर्व लोक में पढ़ा जाता है। शेष एक लाख मनुष्य लोक में पढ़ा जाता है—स्पष्ट ही यह श्लोक प्रक्षिप्त है। साठ लाख भी और एक लाख भी दोनों ही बातें निराधार हैं। १ लाख को प्रमाणित करने को साठ लाख भी कह दिया गया।

सत्यासत्य का निर्णय प्रमाणों के आधार पर होता है। विषय के अनुसार ही प्रमाणों का गुरुत्व होता है। हमारे जीवन का प्रवाह–निर्वाह साधारण प्रमाणों पर आधारित होता है। मामले–मुकदमों का निर्णय उनसे कुछ गुरुतर प्रमाणों से निर्णीत होते हैं। वैज्ञानिक आधार उनसे भी अधिक गुरुतर प्रमाणों पर अवलम्बित है। इतिहास-तत्त्व का सत्यासत्य निर्णय भी गम्भीर प्रमाणों बिना नहीं होता। ये प्रमाण तथ्य पर आधारित होते हैं। यथा—

१—पर्व संग्रहाध्याय में जिस विषय की चर्चा नहीं हो, वह प्रक्षिप्त है।

२—अनुक्रमणिका में १५० श्लोकों में भारत की सब बातों का सार संग्रह किया है। अनुक्रमणिकाध्याय में ९३ श्लोक से २५१ तक सार संग्रह हैं। इसमें १५० की जगह १५९ श्लोक हैं। नौ श्लोक पीछे से मिलाए हुए हैं। फिर भी इन १५९ श्लोकों में जिस की चर्चा नहीं, वह प्रक्षिप्त है।

३—जो परस्पर विरोधी है उनमें एक प्रक्षिप्त है। यदि कोई घटना दुबारा तिबारा भिन्न रीति पर लिखी गई है— उनमें एक ही सत्य है। शेष प्रक्षिप्त है।

४—मूल संहिता ग्रन्थ की आत्मा है। उसके न रहने से महाभारत का अस्तित्त्व ही नहीं रह सकता, इस अंश की रचना प्रणाली भी एक जैसी ही है। वही शुद्ध सत्य भाग है।

५—जो अप्रासंगिक है, और उक्त दोषों से भी दूषित है, वह प्रक्षिप्त है।

महाभारत के तीन कर्ता हैं— व्यास, वैशम्पायन और सोति। तीनों की रचनाओं की तीन प्रथक् तह गम्भीर विवेचना से देखने पर प्रकट होती हैं। जो भाग मूल भारत का व्यास कृत है, उसमें पाण्डवों का जीवन वृत्त और उसके साथ कृष्ण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कथा मात्र है। यह संक्षिप्त है और यही चौबीस हजार श्लोकों की मूल भारत सहिता है।

इसके बाद वैशम्पायन के और सौति के पूरक अंश है। इस रचना की पद्धति प्रथम से भिन्न है। मूल व्यास का भारत निर्विकार, उदार और व्यापक समाज रचना पर प्रकाश डालता है। परन्तु वैशम्पायन में पारमार्थिक दार्शनिक तत्त्व प्रकट होता है। यह निस्सन्देह युग प्रभाव के कारण हुआ है। उस अंश में जो कवित्व है, उसमें रचना चातुर्य का बाहुल्य है। वह अपेक्षा कृत अनुदार है। व्यापक समाज रचना पर जगह जगह प्रतिबन्ध है, इसी से इस अंश में ठौर-ठौर पर क्षेपक मिल गए हैं। यदि व्यास के मूल अंश को निकाल दिया जाता है तो महाभारत का कोई आस्ति ही नहीं रहता। पर दूसरा अंश निकाल देने पर महाभारत की कोई हानि नहीं होती। पांडवों का अखन्ड जीवन वृत्त रह जाता है।

तीन तह—कृष्ण के सम्बन्ध में खास तौर पर पहिली और दूसरी रचनाओं में अन्तर हो गया है। पहली में कृष्ण कहीं भी विष्णु या परमेश्वर के अवतार नहीं माने गए हैं। उन्हों ने स्वयं भी कहीं अपने को संकेत से भी ईश्वर नहीं कहा है। न कहीं दैवी शक्ति से काम लिया है। परन्तु वैशम्पायन और सौति के इस खण्ड में वह डंके की चोट ईश्वर कहे गए हैं--कृष्ण स्वयं भी अपने को ईश्वर मानते और कहते हैं। उन्हें ईश्वर सिद्ध करने के प्रयत्न भी कम नहीं किए गए। श्री मद्भगवद्गीता में यही ईश्वर तत्व पूर्ण विकास को पहुंच जाता है।

इसके बाद तीसरी तह है--जो शताब्दियों तक बनती रही है। प्रत्येक मनस्वी व्यक्ति ने अपने मन्तव्य उसमें ठूंस दिए हैं। और उसे पञ्चम वेद बना दिया गया है।

पञ्चम वेद किस लिए बनाया गया है—यह भी आप जान लीजिए। हम ने प्रथम ही कहा है—कि महाभारत संग्राम जातिभेद का संग्राम था। ऊंच नीच का संघर्ष था--कुलीनों और अकुलीनों की लड़ाई थी। यह लड़ाई अधिकारों पर आधारित थी। संग्राम में कुलीनों का पराजय हुआ अवश्य—परन्तु कुलीनता निश्शेष नहीं हुई। बल्के विजयी होकर अकुलीन भी ऊँच नीच के भेद भाव अछूते न रहे। समाज में संकीर्णता के भाव बढ़ते ही गए, और उन भावों के प्रतिनिधि विचार महाभारत में प्रविष्ट होते गए।

सबसे बड़ी बात—स्त्री और शूद्रों के सम्बन्ध में थी। जिन के प्रति तिरस्कार निरन्तर बढ़ते जाते थे—उन्हें वेद विद्या से कदाचित् इसी समय वंचित कर दिया गया था[1]। तब उन लोगों ने, जो स्त्री शूद्रों और दलितों का प्रति निधित्व कर रहे

---

१. स्त्री शूद्र द्विज वन्धूनां त्रयी नश्रुति गोचरा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। महाभारत को इतिहास ग्रन्थ न रहने दिया। धर्म नीति और समाज का भी, दर्शन का भी, और अपने अपने काल की धार्मिक आस्था का भी प्रतिनिधि ग्रन्थ बना दिया। इन सभी बातों का इस में समावेश कर, इसे पञ्चम वेद घोषित कर दिया। शान्ति पर्व और अनुशासन पर्व का अधिकांश भीष्मपर्व के अन्तर्गत गीता, वन पर्व का मार्कण्डेय समस्या का पर्वाध्याय, उद्योग पर्व के प्रजागर का पर्वाध्याय, इसी काल में रचे गए। यह सब पचमेल साहित्य तीसरी तह का साहित्य है। आदि पर्व का शकुन्तलोपाख्यान के पूर्व का अंश, और वन पर्व का तीर्थयात्रा पर्वाध्याय जैसे निराधार निरर्थक अंश भी इसी काल के मिलाए हुए हैं।

इसलिए भारतकालीन ऐतिहासिक आधार केवल उन्हीं तथ्यों पर निर्भर करता है—जो व्यास कृत मूल भारत के अन्तर्गत आते हैं। व्यास महाभारतकालीन व्यक्ति हैं, इसलिए उनकी रचना समसामयिक आख्यान कही जा सकती है।

हरिवंश का साक्ष्य—हरिवंश में ही लिखा है कि महाभारत कहे जाने के बाद उग्रश्रवा ने शौनकादि ऋषियों की प्रार्थना पर हरिवंश कहा। इसी से वह महाभारत से बहुत बाद की रचना है। अब यह देखना है कि कितने बाद की। महाभारत के केवल पर्व संग्रहाध्याय के अन्तिम श्लोक में हरिवंश का उल्लेख है। महाभारत के अठारहों पर्वों के सब विषयों का संक्षिप्त वर्णन पर्व संग्रहाध्याय में है। पर हरिवंश के सब विषयों का नहीं है। हकीकत यह है कि पर्व संग्रहाध्याय बनने के समय हरिवंश की कोई चर्चा ही नहीं थी। यह श्लोक तो एक लाख श्लोक संख्या पूर्ति करने के लिए अन्त में जोड़ दिया गया है। हरिवंश पुराण में तीन पर्व हैं। (१) हरिवंश पर्व, (२) विष्णु पर्व, (३) भविष्य पर्व। परन्तु महाभारत के उन श्लोकों में केवल हरिवंश पर्व और भविष्य पर्व के नाम हैं, विष्णु पर्व का उल्लेख नहीं है। कहा गया है कि हरिवंश पर्व और भविष्य पर्व में बारह हजार श्लोक हैं। पर इस समय तीनों पर्वों में सोलह हज़ार से अधिक श्लोक मिलते हैं। इससे यह प्रकट होता है कि महाभारत में इन श्लोकों का समावेश करने के बाद हरिवंश में विष्णुपर्व मिलाया गया है। हरिवंश की रचना प्रणाली तथा उसके अन्य तत्त्व ही उसे बहुत आधुनिक प्रमाणित करते हैं। मूल महाभारत के गवर्गारोहण पर्व में यद्यपि हरिवंश श्रवण का फल लिखा हुआ है, जो नवीन ही है।

श्री विलसन भी यह मत रखते हैं कि हरिवंश पीछे की रचना है. और विष्णु पर्व और भी पीछे की।[१] अब देखना यह है कि हरिवंश का वास्तविक

---

१ Horace Hay man wilsons' Essays Analy tical critical, Philosphical on Subjects connected with Sanskrit Literature, Vol. 1 Dr Reinhold Rost's Edition.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काल कौनसा है। सुवन्धु (७वीं शताब्दी) ने वासवदत्ता में हरिवंश के पुष्कर प्रादुर्भाव का वर्णन किया है। इससे यह तो कहा जा सकता है कि वह ईसा की सातवीं शताब्दी से प्राचीन हैं। परन्तु महाभारत और विष्णु पुराण के बाद का तथा भागवत और ब्रह्मवैवर्त से प्रथम का है।

वैदिक साक्ष्य—वैदिक साहित्य में कृष्ण का नाम हमें तीन रूपों में मिलता है—(१) मातृगोत्र से, (२) पितृगोत्र से, (३) शुद्ध नाम। इस से कुछ उलझनें अवश्य आती हैं किन्तु अभिप्राय प्रकट अवश्य हो जाता है।

छान्दोग्य उपनिषद्—छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है कि आंगिरस वंश के घोर ने देवकी पुत्र कृष्ण से कहा—कि अन्तकाल में यही तीनों बातें तुम करना—(१) तुम अक्षत हो, (२) तुम अच्युत हो, (३) तुम प्राण संशित हो।[1] यह घोर आंगिरस कौन हैं—इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु घोर पुत्र कण्व ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ३६ सूक्त से ४३ सूक्त तक के ऋषि हैं, जो आंगिरस गोत्री हैं। यह कण्व शकुन्तला के आश्रयदाता कण्व से पृथक् हैं। इस से यह बात तो प्रमाणित हुई कि कृष्ण—जो वैदिक ऋषि कण्व आंगिरस घोर के शिष्य और समसामयिक हैं—वह वेद त्रिभाग कर्ता व्यास कृष्ण द्वैपायन के या तो पूर्ववर्ती हैं, या सम सामयिक। परन्तु अधिक सम्भावना पूर्ववर्ती ही होने की है।

छान्दोग्य की भांति महाभारत में भी कृष्ण को मातृगोत्र से उच्चारित करके 'देवकी पुत्र' कहा गया है।[2]

कौशीतकि ब्राह्मण—कौशीतकि ब्राह्मण में कृष्ण को स्वयं ही आंगिरस गोत्री कहा गया है। 'अङ्गिरा गोत्री कृष्ण ने यह तृतीय सवन देखा...'।[3] यह आङ्गिरस कृष्ण कौन हैं, क्या घोर आंगिरस के शिष्य होने से देवकी पुत्र कृष्ण को भी आंगिरस गोत्री कहा गया, या कृष्ण वास्तव में आंगिरस गोत्री हैं।

साम विधान ब्राह्मण—साम विधान ब्राह्मण में एक गुरु परम्परा दी हुई

---

१. तद्धैतद्घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकी पुत्रायोक्त्वोवाच। अपिपास एव स बभूव। सोऽन्ते वेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येत अक्षितमसि, अच्युतमसि प्राणसंशितमसीति। छा० ३०३। १७। ६।

२. 'कृष्णाद्वा देवकी पुत्रात्' ··· ··· आदि० १९१। २९।
'कृष्णो हि देवकी पुत्रो' ··· ··· उद्योग १२३। १६।
'कृष्णो वा देवकी पुत्रो' ··· ··· भीष्म० ११६। ३६।

३. कृष्णो हैतदाङ्गिरसो ब्राह्मणाच्छंसीयायै तृतीय सवनं ददर्श। तस्मात् कार्ष्णोऽहरहः पर्यासो भवति। कौषीतकि ब्रा० ३०। ८।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है—इसमें नारद, विष्वक्सेन, व्यास, पाराशर्य और जैमिनी को अनुक्रम से शिष्य कहा गया है।[1] विष्वक्सेन कृष्ण का नाम है, यह महाभारत में भी लिखा है।[2]

पाणिनि—पाणिनि कृष्ण को वासुदेव कहता है।[3] पूज्यनीय भी कहता है।

ऋग्वेद—ऋग्वेद में 'विष्वक्' को कृष्ण का पुत्र कहा है। वह आश्विनों का मित्र था।[4]

कृष्ण ऋषि हैं—ऋग्वेद के आठवें और दसवें मण्डल के कुछ सूक्तों के ऋषि कृष्ण हैं।[5] यह कृष्ण कौन हैं? क्या वह देवकी पुत्र कृष्ण नहीं हैं? क्या वह अङ्गिरस कृष्ण नहीं हैं? क्या देवकी पुत्र कृष्ण और अङ्गिरस कृष्ण एक ही व्यक्ति नहीं हैं। कौषीतकि ब्राह्मण जो कृष्ण को अंगिरस कहता है, इसका समर्थन हमें विष्णु पुराण के एक पुरातन श्लोक से मिलता है। जिसमें रथीतर राजा को आङ्गिरस गोत्री कहा गया है।[6] इस से यह तो प्रमाणित हुआ कि क्षत्रियों का भी आङ्गिरस गोत्र होता था। परन्तु रथीतर सूर्यवंशी राजा है। उधर हरिवंश के विष्णु पर्व में यादवों की मथुरा वाली शाखा को इक्ष्वाकु वंशीय कहा गया है।[7]

ऋग्वेद में कृष्ण से सम्बन्धित हमें तीन ऋचाएँ मिलती हैं, वे ये हैं :—

अव द्रप्सो अंशुमती मतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमपस्तेहितीर्नृमणा अघन्तं।
द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्त मुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ।
अव द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थे, ऽधार यत्तन्वं तित्विषाणः।
विशो अदेवीरभ्या चरन्ती र्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे।
(ऋ० ८।९६।१३–१५)

इन ऋचाओं का सारांश यह है कि—शीघ्रगामी कृष्ण ने १० हजार सेना के साथ अंशुमती नदी के समीप छावनी डाली। (चारों ओर महा कोलाहल से पूर्ण),

---

१. भगवद्दत्त शास्त्री।
२. शक्तोऽहं धनुषैकेन निहन्तुं सर्व पाण्डवान्। यद्येषां न भवेद्गोप्ता विष्वकसेनो महाबलः। भीष्म पर्व ११४।३१।
३. 'वासुदेवार्ज्जुनाभ्यांवुन'।
४. वैदिक इन्डेक्स पृ० ३०९।
५. ऋग्वेद अष्टम मण्डल ८५।८६।८७ और दशम मण्डल ४२।४३।४४ वें सूक्त का ऋषि कृष्ण है।
६. ऐतेक्षत्र प्रसूता वै पुनश्चाङ्गिरसः स्मृताः।
रथीतराणां प्रवराः क्षात्रोपेता द्विजातयः। विष्णु० ४२।२।
७. एवं इक्ष्वाकुवंशाद्धि यदुवंशो विनिः सृतः। ९५।५३९। हरिवंश।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऋग्वेद में एक कथा और है, जिसमें इस बात का उल्लेख है, कि अंशुमती तट पर कृष्ण को युद्ध में न जीत सकने के कारण इन्द्र ने कृष्ण के देश की कुछ स्त्रियों के गर्भ विदीर्ण कर डाले थे।[1]

इन्द्र और कृष्ण का विग्रह—उस काल में पंजाब और सिन्ध का संयुक्त नाम 'सप्त सिन्धु' था।[2] तथा उस पर वृत्र का अधिकार था। यह वृत्र असुर याजक भृगु के वंश का था, तथा दासों का नेता था; जिनके गणों का सप्त सिन्धु पर अधिकार था।[3] इन्द्र ने जो देवराट् था, तथा जिसकी राजधानी देवलोक (एलम) थी, पंच सिन्ध पर चढ़ाई की थी। उन दिनों पर्शिया का पूर्वी और उत्तरी भाग एलम या इलावर्त कहाता था। इन्द्र ने यह अभियान सम्भवतः फारस की खाड़ी के किनारे-किनारे आकर किया था। तथा वह वर्तमान करांची के आस-पास सिन्ध में प्रविष्ट हुआ था। इसका स्पष्ट संकेत जातक अट्ठकथा के इक्कीसवें जातक में एक गाथा में है। उसका अभिप्राय यह है—कि देवों और असुरों केदो अयोध्य नगर थे, उनके बीच में इन्द्र ने उरंग, करोटि, पयस्सहारी और मदनयुत चार महन्त रखे।[4] ये दो अयोध्य नगर कौन-से थे, तथा उनके बीच में रक्षक ये विभिन्न जाति के चार दिग्पाल कौन थे? इस रहस्य का रूप तो तब स्पष्ट होगा, जब मोहनजोदड़ो और हरप्पा के अभिलेख पढ़े जा सकेंगे। इस गाथा का इन्हीं नगरों से सम्बन्ध है, इस सन्देह के बहुत से कारण हैं। कदाचित् इन्द्र ने कलात् की राह सिन्ध में प्रवेश किया और सिन्ध विजय कर वह कच्छ की ओर बढ़ा, जहाँ दृशद्वती के बीहड़ों में कृष्ण ने उसका अवरोध किया, और इन्द्र को परास्त होकर पीछे लौटना पड़ा।

भागवत का वर्णन साक्ष्य—ऋग्वेद के इस सन्दर्भ का समर्थन होता है श्रीमद्भागवत् से। आप इस प्रसङ्ग की भागवत के दशम स्कन्ध के २४वें और २५वें अध्यायों में वर्णित इस कथा से तुलना कीजिए—गोपालों ने यज्ञ से इन्द्र को सन्तुष्ट करना चाहा, पर कृष्ण को यह बात पसन्द नहीं आई। वह उन्हें लेकर गोवर्धन पर्वत पर चले गए। इन्द्र को यह सहन नहीं हुआ, और उसने क्रुद्ध होकर मूसलाधार वर्षा की, तब कृष्ण ने गोवर्धन उठाकर गोकुल को आश्रय दिया।

दोनों वर्णनों का अभिप्राय यह निकला कि इन्द्र ने पराक्रमी कृष्ण पर

१—'यः कृष्ण गर्भा निरहन्' ऋ० १।१०१।१।

२—ऋ० १।३२।१२। ऋ० १।३५।८। ऋ० २।११।१२।

३—२।१२।३। ऋ० ५।३०।५। ऋ० १।३२।११।

४—अन्तरा द्विन्नं अयुज्झ पुरानं पञ्च विधा ठपिता अभिरक्ता।
उरगकरोटि पयस्स य हारी मदनयुता चतुरो महन्ता॥ जातक अट्ठ कथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आक्रमण किया। इन्द्र के पास अश्वारोही सेना थी। पर कृष्ण के पास गाय, बैल और द्रुतगामी सेना थी। फिर कृष्ण ने ऐसा व्यूह युद्ध किया कि इन्द्र की कुछ न चली, और उसे सधि करके लौटना पड़ा।

इस बात के यथेष्ट प्रमाण हैं, कि इन्द्र ने सप्तसिंधु (सिन्ध) अधिकृत करके ही कृष्ण पर यह आक्रमण किया था। उसने एलाम (पर्शिया) से आकर और दासों से विग्रह करके सिंध में अपना राज्य स्थापित किया था। परन्तु कृष्ण ने इन्द्र की दाल नहीं गलने दी। और जंगली प्रदेशों का आश्रय लेकर उसने अपने अनुयाइयों की रक्षा की। ऐसी अवस्था में अवैदिक भारतीयों में उसकी पूजा प्रचलित हो गई। सर भण्डारकर का कहना है कि गोपाल कृष्ण पीछे बने। पर कृष्ण वैदिक काल ही में गोरक्षक थे। इन्द्र आदि देवगणों की पशु-यज्ञ-प्रथा उन्हें पसन्द न थी। इसीसे उन्होंने इन्द्र का विरोध किया था। यदि कृष्ण ने इन्द्र की आधीनता स्वीकार करली होती, तो इन्द्र से झगड़ा ही न होता, तथा दिवोदास की भाँति वह भी ऋग्वेद के एक प्रसिद्ध व्यक्ति हो गए होते।

इस प्रकार यदि ऋग्वेद को प्रमाण माना जाय, तो कृष्ण वैदिक कालीन महाभारत के वैदिकेतर जनता के प्रतापी नेता प्रतीत होते हैं।[1]

---

१. **अभारतीय बातें**—भारत से बाहर भी कृष्ण से सम्बन्धित बहुत-सी बातें हैं। कृष्ण की पूजा ग्रीस, रोम व मिश्र में अपोलो (Appolo) कर्ण (Carna) या कान्ह नामों से होती है। हेरोडेटस के सीथियन देव 'हरक्यूलस' और 'जेबेलाइज' (Gebeleizes) 'बलदेव' और गोपाल ही प्रतीत होते हैं। जेबेलाइज गोपाल का तथा 'हरक्यूलीज' हरकुलेश का अपभ्रंश प्रतीत होता है। आप देख चुके हैं कि कृष्ण का इन्द्र से विग्रह हुआ था। यह भी आप देख चुके हैं कि इन्द्र सिंध को विजय करने से प्रथम एलम के देवों का नेता था। तथा एलम ईरान का एक प्रदेश था। ईरान का प्राचीन नाम शाकद्वीप है। उसे वरुण का देश भी कहा गया है। ईलाम का वह प्रदेश—जहाँ देवों का नेता इन्द्र रहता था, 'अमर देश' कहाता था।[1] तथा देवों को भी अमर कहा गया है। ईरान के इस प्रदेश के निवासी आज अमर (Amardians) कहाते हैं। यही इन्द्र की प्रसिद्ध नगरी अमरा वती भी थी। ईरान ही का एक इलाका—Media—Atropatene—Media, Magog या Media Ragheana कहाता है। ये तीनों नाम पुराणों में वर्णित, अत्रिपत्तिन, मद्र, मग व मद्र राज्यों के भ्रष्ट रूप हैं। इन प्रदेशों के निवासी 'गोमाता' कहाते थे।[2] अब हमें इस बात की कल्पना करने का एक आधार मिलता है, कि कृष्ण के इन्द्र से

१—त्रिगर्ता मण्डाश्चैव किराता अमरैः सह। —मत्स्य पु०

२—Gaumate Magian—History of Persia vol. I. 160

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विग्रह होने के फलस्वरूप इन्हीं 'गोमाता' लोगों की रक्षा कृष्ण ने इन्द्र से की थी। क्योंकि वैदिक साहित्य में वर्णित इन्द्र का चरित्र एक धूर्त दुराचारी पुरुष के समान प्रतीत होता है।[१]

अच्छा अब और बातें भी सुनिए—कृष्ण की कुछ उपाधियाँ हैं। कृष्ण को मुरारि, जगदाधार, मधुसूदन, केशव, गोविन्द, गोपाल, कुंजबिहारी तथा वनमाली कहा गया है। अब इन नामों ही को विदेशी इतिहास की कसौटी पर कसिए।

भागवत दशम स्कन्ध में नरकासुर और मुर के असुर को जीत कर इन्द्र की सहायता करने की कथा है। इन्द्र से कृष्ण की संधि हो ही गई थी। इससे उसकी सहायता कृष्ण ने की हो, यह हो सकता है। अब देखना यह है कि ये 'नरकासुर' और 'मुरसुर' कहाँ के निवासी थे, कहाँ के राजा थे? इन्द्र के नगर का नाम सुरपुर भी है। यह सुरपुर कहाँ है? पुराण तो इस सम्बन्ध में चुप हैं। परन्तु आप यदि पर्शिया के नक्शे पर दृष्टि डालें—तो देखेंगे 'परसा खान' पर 'किरमान' इलाके में 'Suru' नामक एक नगर है।[२]

इन्द्रदेव (Indabugash) एलाम (Elam) का राजा था।[३] उसके आस पास का इलाका कर्मभूमि (Kirman) है। वहीं परसा प्रान्त अमर देश से मिला हुआ है। वही, कलातनादरी के निकट पुराण वर्णित 'अपवर्त' Bavard या (Abivard) दोजख देश है। जिसे पुराणों में नर्क कहा है। अब आप यह आसानी से समझ सकते हैं कि सुरपुर (Suru) अमर देश (Amardians) का इलाका और नर्क Abivard पास-पास हैं। मुरु प्रदेश भी वहीं एक बड़ा इलाका है। जिसे अब 'मर्गियाना' या 'मर्वदश्त' कहते हैं। इसी इलाके को छूता हुआ प्रदेश असुरों (खरों) का इष्टखर (Istkhr) है। इन इलाकों की सीमाएँ परस्पर मिली हुई हैं। यह स्वाभाविक था कि मुरु के असुरों तथा नर्कासुर एवं इष्टखर के असुरों से इन्द्र का सीमा प्रदेशों से सम्बन्धित विग्रह रहता हो। कृष्ण ने इन्द्र से सन्धि करने के बाद इन्द्र की सहायता कर इन्द्र के इन पड़ौसी असुरों का संहार किया हो, और 'मुरारि' उपाधि पाई हो।[४]

ईरान में असुरों का एक राज्य असीरिया भी था। इस देश को 'मधु'

१—देखिए मेरा लेख—वैदिक संस्कृति पर मेरा दृग स्पर्श, साहित्य सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग।

२—Suru near Ram Harmuz in Kirman Province' H. P. Vol. 11,62.

३—हिस्ट्री आफ पर्शिया Vol. I. 95, 96.

४—श्रीमद्भागवत, १० स्कन्ध।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी कहते थे।[1] इसे विजय करके कृष्ण ने 'मधुसूदन' नाम पाया हो। इसी असुर वंश की एक शाखा सीरिया के असुर (Essur) नगर में राज्य करती थी। सीरिया ही को 'श्याम' (Shiam) भी कहा है। कृष्ण ने सम्भवतः इस प्रदेश को जय करके 'श्याम' की उपाधि पाई हो।

समरकन्द के निकट एक देश 'केश' है।[2] यह देश विजय करके कृष्ण 'केशव' कहाए हों।

भागवत (१०वां स्कन्ध) में लिखा है, कि सत्यभामा के लिए कृष्ण इन्द्र को जीतकर कल्पवृक्ष नन्दन-वन से लाए थे। तथा नन्दन-वन को अर्जुन ने दाहा था, यह महाभारत में संकेत है। इस घटना पर विचार कीजिए। इन्द्र का यह 'नन्दनवन' ईरान का 'पारदिया' या 'मीदिया' इलाका था। इन इलाकों के निवासी 'नन्दिनी गो' कहाते थे, तथा पारदीय नरेशों की उपाधि 'गोपाल' थी, और वे गदाधर (club bearers) कहलाते थे। सम्भव है कि ये गोपाल इंद्र के सामंत हों। इन्हें विजय करके सम्भवतः कृष्ण ने 'गोपाल', 'गदाधर' और 'गोविंद' की उपाधि पाई थी। कृष्ण को 'कुंजबिहारी' और 'रसिक विहारी' भी कहते हैं। 'कुंज' खुरासान का प्राचीन नाम है।[3] इसी को कुंज रसिक भी कहते हैं। इन प्रदेशों को विजय करने या यहाँ निवास करने से सम्भवतः कृष्ण की उपाधि 'कुंजबिहारी' या 'रसिक बिहारी' पड़ी हो।

कृष्ण का एक नाम 'वनमाली' भी है। वन (Van) ईरान का महा प्राचीन नगर है। प्राचीन महाराजा अत्यराति भी यहां राज्य कर चुके हैं। बलि (Assur of Boal) के पुत्र वाणासुर की राजधानी यही थी। यहीं अनिरुद्ध-उषा के विवाह सम्बन्धी युद्ध में कृष्ण व बलराम ने वाणासुर को पराजित किया था। तभी सम्भवतः उन्होंने 'वनमाली' उपाधि पाई हो।[4]

भगवत (अ० ६४) में एक कथा है। इक्ष्वाकु वंशी नृसिंह १४वें अवतार थे। इन्होंने दैत्यराज हिरण्यकशिपु को मारा। नृसिंह के बड़े भाई नृग को इन्द्र-पद प्राप्त था। ये बड़े गोदानी थे। अज्ञान से दान में दी हुई 'गौ पुनः ब्राह्मण को दे देने से ये गिरगिट बनाकर द्वारिका के पास अन्ध कूप में डाल दिए गए। जहां से कृष्ण ने उनका वाणासुर-युद्ध के अवसर पर उद्धार किया।

१—The Assyrians ware typified by Bee—टाड राजस्थान ३२।

२—Kesh, the modern Shahri-i-Sebz to the south of Samarkand, the Ancient Markands, H. P. Vol. I. II, 97.

३—Kunj Reshk in Khorassan (टाड राजस्थान जैसलमेर) V. A. Smith.

४—बनवारी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अब दानी 'नृग' के 'गोदान' पर पहले विचार करना चाहिए, तथा नृग और गिरगिट के रूपक पर भी।

उत्तरी तुर्किस्तान का नाम 'गिरगस है'[२]। गिरगिस गोत्री पठान अपना निकास यहां से मानते हैं। वे अपना मूल पुरुष गिरगिस (Ghirghis) बताते हैं, और उसे 'Kais' का तीसरा पुत्र कहते हैं। 'Kais' नाम सूर्य ही का है। पौराणिक मत से भी 'नृग' सूर्य के पौत्र और इक्ष्वाकु के भाई थे। पठान गिरगिस के पुत्र का नाम 'दानी' (Dani) बताते हैं। अब यदि आप पर्शिया के प्राचीन इतिहास के पन्ने पलटकर देखें, तो प्रतीत होगा कि एलम के निकट सुर प्रदेश में नृगवंशी (Negrito) बहुत काल से रहते थे, जो फारस की खाड़ी से भारत की सीमा के भीतर तक फैले हुए थे[१]। ईरान का इतिहास ही यह भी बताता है कि इन नृगवंशियों के मूल पुरुष नृसिंह (Naram sin) थे। परसा प्रांत में इष्टखर (Istkher) के निकट ही 'नरम-शिर (Naram-shir) स्थान है। निस्सन्देह हिरण्यकशिपु खरों के मूल पुरुष तथा 'इष्टखर' के राजा थे। इनके पुत्र प्रहलाद विष्णु के मित्र (भक्त) थे। प्रहलाद की माला अब भी इस्तखारा का काम देती है। इस्तखारी जाति उसी इष्टखर वंश की है, और (Naram shir) नृसिंहपुर का अपभ्रंश है। हिरण्यकशिपु के वंशधर काश्पपी (Caspii) आज पर्शिया के काश्यप-प्रदेश (Caspian Provice) में रहते हैं। पौराणिक आधार पर नृसिंह ने हिरण्यकशिपु का वध शाक द्वीप में 'सुमना' पर्वत पर किया था। यह 'सुमना' पर्वत काश्यप सागर तट पर ही है[3]। नृग व नृसिंह के सैन्य-संचालन के चित्र बैबिलोनिया व लुलुवी प्रदेशों में बहुतायत से मिलते हैं। इन चित्रों का परिचय Stele of Naram Sin leading Negritos to victory:[४] के नाम से दिया गया है। इन चित्रों में सबसे प्रख्यात चित्र बगदाद व करमन शाह के मध्यस्थ प्रदेश लूलुवी प्रान्त में मिला है। इसमें नृसिंह सूर्य का झण्डा लिए हुए सैन्य-संचालन कर रहे हैं। इसके

१—बनवारी।

२—The Ghirghist Pathans are descendants of Ghurghsts, the third son of Kais. The word Ghirghis means Northern Turkistan, whece they originally came.—Tribes and Castel of U. P. Vol. III. 163 [The Pathans.]

[There was a very ancient occupation of the Susian Plain by the negritos, and so for as is known, they were the riginal inhabitants. Khey stretched from the Persian Gulf to India. (H. P. vol..1. 54. 55.)

३—Samnan near Demavand or Iranian Paradise. (H. P. Vol. II. P. 84.)

४ - Jamshid or Yama. H. P.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतिरिक्त परसा प्रदेश में यमराज का सिंहासन (Thicnof Jamshide) है, उसमें सिंह व गिरगिट के चित्र अंकित हैं।

यह ईरानी राजा 'यमशिद' हमारे पुराणों का नरकपति 'यम' है। जो अपर्वत (नर्क का स्वामी था। यह प्रकट है कि यम और वैवस्वत मनु सगे भाई है, और सूर्य पुत्र है। मत्स्य पुराण में लिखा है कि यम उस देश के स्वामी हैं, जहाँ कृकवा पक्षी होता है[1]। यह कृकवा ईरानी पक्षी है।

पर्शिया के इतिहास से विदित है कि यमशिद को सीरिया के राजा जोहाक ने ईश्वरत्व का दावा करने पर मार डाला था, इसके बाद ही नृग व नृसिंह ने हिरण्यकशिपु को मार नृग को देवलोक (Suru) का राजा बनाया होगा, और उसने अपनी उपाधि इन्द्रदेव (Inda Bugash) घोषित कर दी होगी। यह भी सम्भव है कि यह घटना तब हुई हो, जब इन्द्र सिंध-विजय में फंसा था। पीछे एलाम लौटकर इन्द्र ने नृग को सुरपुर से निकाल बाहर किया होगा, तथा आरमेनिया के राजा वाणासुर ने नृगवंशियों (Negritos) को गिरगिट देश में निष्कासित कर दिया होगा। यह गिरगिट प्रदेश उत्तरी तुर्किस्तान में है, इसे ही गिरगिस भी कहा गया है। गिरगिस में ही 'अन्धकूप' वह प्रदेश है, जो काश्यप सागर के छोटे भाग के निकट 'काराबोगस' के नाम से प्रसिद्ध है। इसका आकार कुए के समान है। 'काराबोगस' का अर्थ है—बोगस अर्थात् देवों का कारावास। सम्भव है उस काल में देव उस स्थान को कालापानी की भांति प्रयोग करते हों। कृष्ण ने अनिरुद्ध विवाह में वाणासुर को परास्त कर यहां से नृगवंशियों का उद्धार किया होगा। जिसका रूपक ऊपर पुराणों में हम देखते हैं।

अब नृग के गोदान पर भी विचार कर लिया जाय। ईरान का मद्र देश पारद नरेशों के पुरोहित मग्गों की माफी में था। कभी सारे शाकद्वीप के अधीश्वर महिदेव (Priest kings) थे[2]। ये महिदेव शुक्ल ब्राह्मण थे, जो ईरान के अधिश्वर, महिदेव या गवर्नर कहाते थे। इनसे छीनकर नृगवंशियों ने मद्रदेश मग्गों को माफी में दे दिया हो। ये शुक्ल शुकाचार्य के वंशज और असुर याजक थे। अतः इन शुक्लों व असुरों ने नृगवंशियों को ईलाम (Suru) से निकाल बाहर किया हो, और उत्तरी तुर्किस्तान के गिरगिस इलाके में फेंक दिया हो। सम्भवत कम्बोज इसी गिरगिस इलाके का नाम है, और कृष्ण ने नरक और मुरु दैत्य राजाओं को जीतकर नृगवंशियों को इलाम-सुसियाना का अधिपति बनाया हो। जहां आज तक उनके वंशधर रहते हैं[3]। इन सारे ही

१—कृकवा कूर्म्मयोदत्ता यः कृमीन भक्षयिष्यति

२—The Magi formed the Megastanes or the house of Lords of the Parthian court.—H. P.

३ There is a very ancient occupation of the Susian Plain by the Negritos—(H. P. Vol. I. 54.)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रमाणों से हम कम से कम इस निष्कर्ष पर तो पहुँचते ही हैं, कि कृष्ण का सम्बन्ध जितना फारस तुर्किस्तान–कन्धहार से है, उतना भारत से नहीं। और कृष्ण ऋग्वेद-कालीन इन्द्र के समसामयिक पुरुष हैं, महाभारत काल के पुरुष नही हैं।

अब मिश्र के इतिहास की भी छानबीन होनी चाहिए। हम देखते हैं कि मिश्र के 'Kan' और इन्द्रद्वीप (भारत) के कान्ह में बहुत समता है। डिओडोरस और टाड कान को अपोलो का पर्याय मानते हैं[1]। मिश्र के Phyrricdance और भारतीय रास मण्डल में बड़ी समानता है। ग्रीक तो कृष्ण को Apollo कहते ही हैं। वे उसे वंशी-वादक (Protector of nine Musicss) भी मानते हैं। यदि आप ग्रीस के Phythic Apollo से काली मर्दन की घटना का मिलान करें तो बहुत समता पाएँगे। टाड का तो यह भी मत है कि ब्रिटेनी के Carnac में (Druid) निर्मित जो (Cartic Apllo) की मूर्ति है वह कृष्ण ही की है। (Druid) की बनाई ऐसी ही कृष्ण की मूर्तियाँ सारे योरुप में थीं।

प्रसिद्ध है कि कृष्ण गुर्जर प्रदेश में द्वारिका में आकर रहे। उनकी दो ही लीला–भूमि है—गाकुल बाल–काल की, और द्वारिका यौवन-काल की। आप पहले इस गुर्जर शब्द पर गौर कीजिए। अभी आपने देखा है कि 'गुर्जर' नाम गदा का है। ईरानी भाषा में इसे गोपाल' कहते हैं। ईरान में जो पारदिया प्रदेश है। वहां के पारद नरेश गदाधारी (club bearers) कहाते थे। दूसरे शब्दों में वे 'गोपाल' भी उपनाम धारण करते थे। पारीदिया प्रदेश का नाम भी 'गुर्जर' (Gurjan था। जिसकी राजधानी 'टाक–देश' (Takka Desa)[2] थी। वहीं एक नगर Cajarm भी था। अतः गोपाल पारद नरेश थे। महाभारत से प्रकट है कि मद्र नरेश शल्य वाल्हीक वंशी थे। पाश्चात्य इतिहास में इन्हीं को सुलेमान (Soloman) कहा है। इनकी राजधानी पासर गद्दी थी। वही मद्र ईरानी 'मिदिय' है। वाल्हीक मद्र टाक सब एक ही स्थान पर पारदिया प्रान्त में थे। इसी गुर्जर देश में कुशान प्रान्त है। वहाँ के कुशानों की परम्परा संभवतः कृष्ण वंश से है, अथवा कुशान कृष्ण–वंशी ही हैं। वृषदर्भ, जिसका विकृत नाम 'दर्भविसार' है, इसके मध्यकालीन नरेश भारद्वाज गोत्री राजा शालिवान के वंशज थे। निःसंदेह यह वंश ईरान के पारद नरेशों से संबन्धित था। आरमीनया के राजा वलर्पक, जिनका राज्य–काल १५० से १२८ ई० पू० है, पारद नरेश Arsaces के भाई थे। जिनके काल में कुशान व दमित्र दो भारतीय राजा

---

१ Apollo of Nile—Kan, the Egyption title of Apollo or The-Sun-God.

२—ज० कनिंघम। प्रथम जिल्द।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आरमीनिया गए। जिन्हें इतिहास में Demetrios, king of Bactria के नाम से पुकारा गया है. और जिन्हें King of the Indians भी कहा गया है, तथा जिन्होंने आरमीनिया में अष्टषट देमाट्रियस व कुशान आदि नगरों को बसाया था, और फरात नदी के किनारे पर 'दमित्र' और किशान (विष्णु और कृष्ण) के मन्दिर बनवाए थे। इन्हीं के वंशजों में ५ हजार मनुष्यों को सैन्टग्रिएटरी ने जबर्दस्ती ईसाई बनाया था, तथा जहां Kishana की मूर्ति थी, वहाँ cross खड़ा किया था। ४८३ हिन्दु सिर मुंडाकर कश्यपसागर के तटों पर खदेड़ दिए गए। 'विशप' नगर इन्हीं लोगों ने बसाया, तथा १२८ ई० पू० से २८३ ई० सन् तक आरमीनिया पर शासन इन्हीं कुशान तथा Demetrios वंशी लोगों ने किया। चन्द्रगुप्त मौर्य के श्वसुर सिल्यूकस किसी Demetrios राजा के भी श्वसुर थे। निस्संदेह वे कृष्ण के वंशधर थे, जब भारत में इनका प्रत्यागमन हुआ, तो इनका कुशान नाम पड़ा। इनकी उपाधि राव थी, और गोत्र भारद्वाज तथा दूसरा उपनाम था 'देवपुत्र'[१]।

४--पाण्डव

पाण्डव कथा—एक ही वाक्य में हम यह कहना चाहते हैं, कि महाभारत-वास्तव में पाण्डवों की विजय गाथा है। महाभारत में ऐसे स्थल बहुत हैं जहां दुर्योधन के कार्यों को अधर्म पूर्ण बताया गया है तथा पाँडवों के द्वारा धर्म का पालन बताया गया है। पाण्डवों की विजय धर्म की विजय बताई गई है। यतोधर्मस्ततो जयः।

परन्तु यहां हम ज़रा गहराई तक देखना चाहते हैं। हमारे सम्मुख निम्न तथ्य हैं :—

१—धृतराष्ट्र ज्येष्ठ पुत्र थे और पाण्डु छोटे। अतः तत्कालीन प्रचलित प्रथा के अनुसार राजा होने का अधिकार धृतराष्ट्र का था। परन्तु वे अन्धे थे। इस लिए राजा पाण्डु को बनाया गया। पाण्डु यद्यपि अभिषिक्त राजा बनाए—पर वे धृतराष्ट्र ही को राजा मानते—पूजते और अपने को उनके आधीन समझते रहे। वह केवल विनय शिष्टाचार ही न था--मर्यादा की बात भी थी। बाद में पाण्डु केवल ५ वर्ष राजा रह राज्य त्याग वन में चले गए और उनके बाद धृतराष्ट्र ने ४० वर्ष राज्य किया। इस प्रकार वास्तव में धृतराष्ट्र ही कुरु कुल के राजा थे। ऐसी कोई धर्म मर्यादा न थी कि अन्धे आदमी को राजा न बनाया जाय। पाण्डु को तो धृतराष्ट्र की स्वीकृति से धृतराष्ट्र का स्थानापन्न ही राजा बनाया गया था। जो अति अल्पकाल ही में अधिकार त्याग चुके थे। अतः राजा धृतराष्ट्र ही थे।

१—देखिए—एसियाटिक सोसाइटी के १९०४ के जनरल, पृष्ठ ३११ और Zenola Syrion के लेख।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२--धृतराष्ट्र का ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन आयु में ज्येष्ठ था, राजा का सबसे बड़ा पुत्र था, और पिता के औरस से उत्पन्न हुआ था। अतः धृतराष्ट्र के राज्य का वही प्रकृत उत्तराधिकारी था। वही कुरु कुल का अभिषिक्त राजा भी हुआ।

३--पाण्डव पदच्युत राजा के छोटे भाई की पत्नियों के पुत्र थे। वे पिता के औरस पुत्र भी न थे। उनकी उत्पत्ति संदिग्ध थी, और उनके पिता का कुछ पता न था। इस प्रकार की संतान भारत के किसी एक क्षेत्र में स्वीकृत थी। पर अधिकांश में ऐसी संतति को प्रतिष्ठा की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। स्वयं धृतराष्ट्र और पाण्डु भी ऐसी ही संतति थे—परन्तु उनका कोई प्रतिद्वन्दी–औरस अधिकारी न था। आपद्धर्म की स्थिति में उन्हें राज्याधिकारी मान लिया गया था। पर पांडवों का प्रतिद्वन्दी दुर्योधन था। जो कुरुवंश के राज्य का ज्येष्ठ पुत्र, औरस पुत्र, और कानूनन कुरु कुल की गद्दी का सच्चा वारिस था। और वह अभिषिक्त राजा भी था।

४ - पाण्डवों को राज्य में हिस्सा मांगने का कोई अधिकार न था। क्यों कि शशिबिन्दु काल ही में चन्द्र वंशियों ने ही यह मर्यादा कायम करली थी कि राज्यों का बटवारा न होगा। ज्येष्ठ को सम्पूर्ण राज्य मिलेगा--शेष गुजारा पाएंगे। इस प्रकार उत्तराधिकार और दाय भाग का प्रचलन हो चुका था। फिर, पांडव तो पिता के औरस से भी उत्पन्न न थे। उनका राज्य में हिस्सा मांगना सर्वथा नियम विरुद्ध था। इसी से भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण आदि प्रसिद्ध धर्मात्मा जन दुर्योधन की ओर ही रहे। द्रोण तो अपना पांचाल राज्य भी छोड़ हस्तिनापुर में डटे रहे। अश्वत्थामा ने मृत्यु शैया पर पड़े दुर्योधन से कहा था—कि मुझे पिता के वध से इतना दुःख नहीं हुआ, जितना आपकी इस दशा से। यदि दुर्योधन अन्यायी या दुराचारी होता, तो अश्वत्थामा जैसा पुरुष उसके प्रति इतनी भक्ति प्रकट न करता। वास्तव में पूरा कौरव कुल ही दुर्योधन की ओर था। शन्तनु के भाई वाह्लिक, उनके पुत्र पौत्र सभी दुर्योधन के पक्ष में लड़े। नकुल के मामा शल्य ने भी दुर्योधन का पक्ष लिया। अन्य सब तटस्थ राजे भी दुर्योधन के साथी रहे। भगदत्त, विन्द, अनुविन्द, नील ऐसे ही पुरुष थे। मृत्यु शैया पर पड़े दुर्योधन ने बड़े मार्मिक शब्दों में कृष्ण की भर्त्सना करते हुए अपने पक्ष की धार्मिकता और सत्यता प्रमाणित की थी। इस पर देवों और अप्सराओं ने उस पर पुष्प वर्षा की थी। उस समय तो पांडवों सहित कृष्ण का भी मुंह लटका गया था, और कृष्ण को कहना पड़ा था, कि यदि पांडव अधर्म न करते, तो लोकपालों के समान कौरव सदा अजेय थे। पराभव पांडवों का ही होता[1]।

५—इतना होने पर भी धृतराष्ट्र ने पांडवों को इन्द्रप्रस्थ का राज्य दे दिया। और नियम के विरुद्ध एक ही वंश के दो राज्य स्थापित हो गए। क्यों कि पांडव

---

१. गदा पर्व।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कौरव दो वंश थे ही नहीं। परन्तु दूसरा राज्य स्थापित करने तथा पीछे युद्ध संघष चलने से उनका वंश कुरु कुल से प्रथक् हो गया। राज्य पाकर पाँडवों ने कृष्ण की सम्मति से एक अनर्थ कार्य यह किया – कि राज सूय यज्ञ ठान लिया। एक स्वतन्त्र दूसरे राजा की हैसियत से दुर्योधन, युधिष्ठिर के राज सूय को नहीं रोक सकता था। निमन्त्रित होकर राजसूय में न आनारा मोल लेना था। अतः दुर्योधन ने आना स्वीकार कर लिया। राजसूय यज्ञ में जो राजा आते थे, वे सम्मान्य अतिथि न होते थे—अपितु उन्हें यज्ञ कर्ता राजा की आधीनता राजी से या बल से स्वीकार करनी पड़ती थी—और राज सूय में आने वाले सब राजाओं को सेवक की भांति काम करना पड़ता था। दुर्योधन को भी खर्च खाते का काम सौंपा गया था।

राज सूय में यज्ञ करने वाले को यज्ञ में आए सब राजा अपना महाराज स्वीकार करते थे। महाराज होने की घोषणा होती थी। जिसका विरोध करने पर तत्काल वध होता था। जैसे कि शिशुपाल का वध हुआ। युधिष्ठिर की महाराज घोषणा दुर्योधन को भी सुननी तथा स्वीकार करनी पड़ी। कदाचित् वह तब भी युद्ध की स्थिति में न था। परन्तु इतना ही नहीं—उसका इन्द्रप्रस्थ में अपमान भी काफी किया गया—जो सर्वथा अनुचित और अभद्र था।

६—इस प्रकार दुर्योधन खीझ और क्रोध में भर कर हस्तिनापुर लौटा। अब हस्तिनापुर की गद्दी स्पष्ट ही खतरे में थी। क्योंकि महाराज युधिष्ठिर ही कुरुकुल के महाराज घोषित हो चुके थे। अब तो युद्ध ही अनिवार्य था—और युद्ध ही हस्तिनापुर की महत्ता की रक्षा कर सकता था। पर दुर्योधन ने युद्ध के रक्तपात और हजारों प्राणियों का वध बचा लिया। उसने युधिष्ठिर को जुआ खेलने का निमन्त्रण दिया।

७—जुआ खेलने और जुए में अपनी स्त्री तक को दाव पर लगा देने का दुर्व्यसन वैदिक काल से ही आर्यों में था। ऋग्वेद में ज्वारियों की दुर्दशा के बड़े मार्मिक चित्र है। युधिष्ठिर को भी जुआ खेलने का चस्का था—पर थे वे अनाड़ी। जुऐ का निमन्त्रण अस्वीकार करना भी समाज में हास्यस्पद माना जाता था। अतः युक्ति और छल से दुर्योधन ने युधिष्ठिर को जुए में हरा कर बिना ही रक्तपात के राज्य च्युत कर दिया। इस प्रसंग में दुर्योधन का छल कपट ही निन्दनीय है। उद्देश्य तो कूट नीति की दृष्टि से प्रशंसनीय ही है। बिना ही रक्तपात के एक राज्य को जीत लेना चमत्कारिक था, परन्तु दुर्योधन की अपेक्षा युधिष्ठिर का भाईयों और पत्नी को दाव पर लगा देना अधिक जघन्य अधिक निन्दनीय था।

८ - अग्नि पुराण में लिखा है कि पाण्डव शक थे[1]। बाद में आर्य माने गए।

---

१. मिश्रबन्धु।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पांडु जब हिमालय प्रदेश में थे तभी पांडवों का जन्म हुआ था। सो वे पहाड़ियों के पुत्र थे। उस काल इन्द्र एक पहाड़ी राजा था। अर्जुन से उसकी भेंट पहाड़ी पर ही हुई थी। एक स्त्री से कई भाईयों के विवाह की परिपाटी हिमाचल प्रदेश में अब भी है। द्रौपदी का विवाह ऐसा ही था। इन सब कारणों से इस युद्ध में न्याय पक्ष दुर्योधन ही का था--तथा उस काल सर्व साधारण की सम्मति दुर्योधन की धार्मिकता के अनुकूल थी[1]। पान्डवों के विजयी होने से धीरे धीरे उनकी महिमा बढ़ गई, और दुर्योधन का पक्ष धर्मही न कहा जाने लगा। युद्ध में पांडवों के जीत जाने के फलस्वरूप कौरव वंश में फूट पड़ गई। इसी से इस वंश और राज्य का पतन हो गया। पांडवों की आधीनता में रहना पसंद न कर धृतराष्ट्र के अवशिष्ठ वंशधर पच्छिमी प्रदेशों को चले गए। कौरव पांडव विच्छेद से कुरु वंश बलहीन हो गया, इससे इन के द्वारा पराजित जरासन्ध वंश समय पाकर बढ़ गया, जिसके फल स्वरूप मगध की चिरकाल तक भारत में महत्ता कायम रही।

९--महाभारत संग्राम में भी पांडवों ने महा अनीति से काम लिया--भीष्म, द्रोण, कर्ण, जयद्रथ और दुर्योधन आदि महारथियों का अन्याय पूर्वक वध किया गया।

इस प्रकार पान्डवों के पक्ष में धर्म की बात में कोई सार नहीं हैं। मूल कारण यही था--कि जात्याभिमान के कारण ही यह संग्राम हुआ, और इसमें कुलीनों का पराजय हुआ।

एतिहासिकता पर विचार—अब पांडवों की एतिहासिक सत्यता पर विचार करना चाहिए। पान्डवों की ऐतिहासिक सत्यता के सम्बन्ध में संदेह के अनेक कारण उपस्थित है। ब्राह्मण ग्रन्थों में पांडवों के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है। उपलब्ध वैदिक ग्रन्थ, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, कल्प सूत्र आदि भारत युद्ध काल से सौ वर्ष पूर्व से कृष्ण द्वैपायन व्यास तथा उनके शिष्य--सुमन्त, जैमिनी, वैशम्पायन और पैल हारा तथा प्रशिष्य, वाष्कल, शाखायन और शौनक आदि द्वारा रचे गए। जो महाभारत संग्राम के २५०वर्ष बाद तक बनते गए। वैदिक ग्रन्थों के समीपवर्ती यास्क का निरुक्त और शौनक का वृहद्देवता, भी उन्हीं दिनों की रचना है। महाभारत की रचना भी व्यास- वैशम्पायन और सौति द्वारा युद्ध के १५० वर्ष पश्चात् तक होती चली गई। इसलिए समान कतृत्व और समान काल के होने के कारण वैदिक ग्रन्थों में पांडव जैसे महान् योद्धाओं, महाभारत जैसे महान् संग्राम तथा कृष्ण से उनकी मैत्री के विवरण अवश्य ही आने चाहिए थे। यदि यह कहा जाय कि ये वैदिक ग्रन्थ इतिहास नहीं--धर्म ग्रन्थ है। तो भी इनमें बड़े बड़े यज्ञ कर्ताओं और उनके पुरोहितों का वर्णन है—युधिष्ठिर जैसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञ कर्ता का उल्लेख क्यों नहीं है ?

---

१. मिश्रबन्धु।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह आश्चर्य और शंका उस समय और बढ़ जाती है, जब हम देखते है कि महाभारत कालीन गौण पुरुषों का जैसे—धृतराष्ट्र वैचित्र्य[१], प्रातिपीय वह्लिक[२], नग्नजित-गांधार[३], व्यास पाराशर्य[४], देवकी पुत्र कृष्ण[५], वैशम्पायन-चरक[६], सौवल शकुनि[७], सुरथ याज्ञसन[८], शिखण्डी[९], अक्रूर[१०] आदि के वर्णन संकेत तो हैं—परन्तु पांडुवों की कहीं चर्चा भी नहीं है। अष्टाध्यायी में पाँचों पांडवों के नाम तथा कुन्ती—द्रोण अश्वत्थामा के नामों का संकेत अवश्य मिलता है[११]। पर वह स्पष्ट नहीं है। पाणिनी का काल ई०पू० ५ वीं शताब्दी निर्णीत है। 'वासुदेवार्जुनाभ्यांवुन, सूत्र से—वासुदेवक और अर्जुनक, शब्द बनते हैं। इससे यह पता लगता है—कि पाणिनी काल में इनकी पूजा होने लगी थी, और इनके सम्प्रदाय बन गए थे।

पाण्डव और कृष्ण—अब प्रश्न यह रह जाता है कि क्या कृष्ण ने पाण्डवों की मदद महाभारत संग्राम में की ? और वे अर्जुन के मित्र तथा पाण्डवों के सम्बंधी थे ?

---

१. काठक संहिता १० । ६ ।

२. शतपथ ब्रा० १२ । ९ । ३ । ३

३. शतपथ ब्रा० ८ । १ । ४ । १०

४. तैत्तिरीयारण्यक १ । ९ । ३ । ५ । गोपथ ब्राह्मण १ । २९ ।

५. तैत्तिरीयारण्यक १ । ७ । ५ । आश्वलायन गृहसूत्र ३ । ३ । ५ । कौषितकि गृह्य सूत्र ३ । ५ । ३ । वौधायन गृह सूत्र ३ । ९ । ५ ।

६. छान्दोग्य उपनिषद् ३ । १७ । ६ । ऋग्वेद ।

७. एतरेय ब्रा० ६ । २४ ।

८. वौधायन श्रौत सूत्र १८ । १९ ।

९. कौशीतकि ब्रा० ७ । ४ । शतपथ ब्रा० १३ । ५ । ४ । १९ । जै० ब्रा० २ । १०० ।

१०. निरूक्त ।

११. पाणिनी का सूत्र है—गवि युधिभ्यां स्थिरः ८ । ३ । ९५ । गवि-युधि के परेस्थिर के 'स' की जगह 'ष' होता है। गविष्ठिर । युधिष्ठिर । फिर वहुचइञ्च प्राच्यभरतेषु २ । ४ । ६६ । भरत गोत्र का उदाहरण 'युधिष्ठराः' है। (सिद्धांत कौमुदीका उदाहरण) स्त्रियामवन्ति कुंति कुरुभ्यश्च ४ । १ । १७६ इस में कुंति का नाम है। वासुदेवार्जुनाभ्यांवुन, ४ । ३ । ९८ । इसमें वासुदेव (कृष्ण और अर्जुन का नाम है। सूत्र ६ । ३ । ७५ में नकुल का तथा ४ । १ । १०३ में द्रोणायन (अश्वत्थामा) का उल्लेख है। एक सूत्र है—महान् व्रीह्यपराह्णगृष्टींत्वा सजावाल भारत-भारत हैं लिहिल रौरव प्रवृद्धेषु । ६ । २ । २८ । इसमें महाभारत शब्द की सिद्धि का संकेत है। क्यों कि महाभारत ग्रंथ के अतिरिक्त और वस्तु का नाम महाभारत नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुराणों से प्रकट है कि कृष्ण की बुआ कुन्ती पाण्डवों की माता थी। परन्तु यहाँ हमें कुछ महत्त्वपूर्ण बातों पर विचार करना है। प्रथम तो यह कि, कृष्ण पाण्डवों का सम्बन्ध वर्णन केवल महाभारत में ही है। पाण्डवों का महत्त्व, पाण्डवों की विशेषताएँ एकमात्र महाभारत में ही है, अन्यत्र कहीं नहीं। ऐतिहासिक आधार सर्व प्रथम हम जन्मेजय और परीक्षित का पाते हैं, जिन्हें पाण्डवों का पुत्र पौत्र कहा गया है। वायु पुराण के अनुसार परीक्षित का जन्म महापद्म नंद से १०५० वर्ष पूर्व हुआ। महाभारत के समय वे गर्भ में थे। महाभारत उनका राजत्वकाल ६० वर्ष बताता है। महाभारत ही से यह भी प्रमाणित है, कि वे गद्दी पाने के समय ३६ वर्ष के थे, तथा ९६ वर्ष पर्यन्त मृगयासक्त रहे। यही उनका मृत्यु समय भी है। राय चौधरी का मत है--कि कौरवकुल में परीक्षित केवल एक ही हुए हैं। परीक्षित का नाम अथर्ववेद, ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, और महाभारत में है। मद्र की राजकुमारी मद्रावती से इनका विवाह हुआ था। इनके काल में इनका राज्य तीन खण्डों में विभक्त था—कुरुजांगल, कुरु और कुरुक्षेत्र। तैत्तिरीय आरण्यक इन्हें पुरु भारतवंशी कहता है। कृष्ण के मथुरा से द्वारिका चले जाने पर जरासंध ने मथुरा को अधिकृत कर लिया था। जब जरासंध की मृत्यु हो गई, तो मथुरा पर नागों ने अधिकार कर लिया। भारत-संग्राम में पंजाब के राज्य सब नष्ट-भ्रष्ट हो चुके थे। अतः तक्षशिला और मथुरा पर नागों ने अधिकार कर लिया, तथा परीक्षित तक्षक नाग द्वारा मार डाले गए। महाभारत में तक्षक नाग के श्राप-वश काटने से परीक्षित की मृत्यु हुई कही जाती है। परन्तु अभिप्राय तक्षक सरदार से है।

प्रसिद्ध है कि जनमेजय परीक्षित के पुत्र बहुत भारी सम्राट् थे। वे प्रबल यज्ञकर्ता प्रसिद्ध हैं। इन्होंने नागों को हराकर तक्षशिला और मथुरा के राज्य नागों से छीन लिए थे। तथा मथुरा पर कृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ का अधिकार हो गया था। वज्रनाभ और जनमेजय मित्र राज्य थे। पिता के वध से क्रुद्ध जनमेजय ने नाग-यज्ञ में खोज-खोज कर नागों का वध किया था। नागों के बड़े-बड़े सेनानायकों, वासुकी, कुलज, नीलरक्त, कोणप, पिच्छल, शल, चक्रपाल, हलीमक, कालवेग, प्रकालग्न, सुशरण, हिरण्यवाहु तक्षक और कालदन्तक तथा तक्षक-पुत्र शिशुरोम, महाहनु, महानाग, पुच्छाण्डक, माण्डलक, उच्छिम, छरम, भंग, शिली, सलकर शुक प्रवेयन आदि नागों को जनमेजय ने महाकुण्ड में जीवित जलाया था। जनमेजय ने नागवंश का नामशेष कर दिया था। अंत में नागराज वासुकी के भागिनेय आस्तीक के अनुनय-विनय पर उसने शेष नागों को प्राणदान दिया था। ब्रह्माण्ड पुराण और वायु पुराण के अनुसार मथुरा में सात नाग राजाओं ने राज्य किया। परीक्षित काल में काश्मीर पर भी नागों का राज्य था।

ब्राह्मण ग्रंथ जनमेजय की प्रशंसा से भरे पड़े हैं। वे महाविजयी राजा कहे गए हैं। महाभारत उन्हें तक्षशिला का विजेता कहता है, पंचविंश ब्राह्मण उनके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्पसत्र का वर्णन करता है। ऐतरेय ब्राह्मण उन्हें सार्वभौम बताता है।

परन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जहाँ जनमेजय और परीक्षित का ब्राह्मण-ग्रंथों में इतनी धूम-धाम का वर्णन है, वहाँ पाण्डवों का कहीं भी नामोनिशान नहीं है। भारत-संग्राम के महाविजयी पाण्डवों का नाम ब्राह्मणों में क्यों नहीं आया? पार्जीटर के कथनानुसार भारतीय युद्ध ९५० ई० पू० में हुआ और युद्ध के पश्चात् ३६ वर्ष पाण्डवों ने राज्य करके महाप्रस्थान किया। इसके बाद ही परीक्षित राजा हुए। टूटे-फूटे जो वर्णन हैं, वे बड़े विचित्र हैं। इसी से कुछ विद्वान् कहते हैं कि पाण्डव कभी हुए ही नहीं। महाभारत संग्राम कुरु-सृंजयों का संग्राम है। इन दोनों वंशों के वैमनस्य का वर्णन शतपथ ब्राह्मण में है।[१] पतञ्जलि नकुल सहदेव को कौरव कहते हैं।[२] ब्राह्मण जातक में इन्द्रप्रस्थ को कौरव्य कहा गया है। आश्वलायन गृह-सूत्र में वैशम्पायन महाभारत के आचार्य हैं।[3] उनका उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यक और पाणिनि अष्टाध्यायी में भी है।

परन्तु शन्तनु की संतति कौरव–पाँडवों का आधार एक मात्र महाभारत है। शन्तनु के सम्बन्ध में फिर भी यास्कीय निरुक्त में, वायु पुराण में, तथा मत्स्य में संकेत मिलते हैं। परन्तु उससे आगे किसी कौरव व पांडव के नहीं। यदि महाभारत को प्रमाण न माना जाय, तो पाडवों का अस्तित्व प्रतीत ही नहीं होता। अतः पाँडवों की कृष्ण से मित्रता और फुफेरे भाई का रिश्ता एवं समसामयिकता में घोर सन्देह है।

मित्रता की बात से रिश्ते की बात और दृढ़ है। कहा जाता है कि कुन्ती पाण्डवों की माता, कृष्ण की बुआ—उनके पिता वसुदेव की बहिन तथा शूर की पुत्री थी। परन्तु महाभारत ही में मालव के निकट एक कुन्तिभोज नाम जनपद का उल्लेख है।[४] यह कुन्तिभोज जनपद चर्मण्वती नदी (चम्बल) के समीप था। यह जनपद महाराज कुन्त ने बसाया था, और उसका सम्बंध कौशिक-क्रथ से था।[५] महाभारत में कुन्तिभोज, कुन्ति और अपर कुन्ति पृथक् जनपद गिनाए हैं।[६] इस काल कुन्तिभोज का राजा पुरुजित एक प्रसिद्ध पुरुष था। पुरुजित के पिता वसुदेव कुन्तिभोज की कन्या कुन्ती थी। जो पुरुजित की बहन थी। इसी से महाभारत में

१—शतपथ ब्रा०, वैदिक अनुक्रमणिका, II, २०६३।

२—महाभाष्य—VI १, ४।

५—महाभाष्य, III ४

४—महाभारत, सभा पर्व ३२।६।७।

५—मत्स्य पुराण ४४।३८।

६—भीष्म पर्व ९।४०।४३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुरुजित् को ही अर्जुन का मामा कहा गया है।[1] दूसरा कुन्तिभोज शतानक था, जो पांडव-पक्ष से लड़ा था। वह भी पांडवों का मामा कहा गया है।[2] अब वायु और मत्स्य पुराण—कुन्तिभोज और शूर की कड़ी को मिलाने की एक बात यह कहते हैं—कि कुन्ति, कन्या तो वसुदेव के पिता शूर की पुत्री थी, पर पुरुजित् के पिता वसुदेव ने उसे गोद ले लिया था।[3] हमें तो यह क्लिष्ट कल्पना प्रतीत होती है। परन्तु इसमें संदेह नहीं, कि इससे कृष्ण की पांडवों से रिश्तेदारी भी संदेहास्पद हो जाती है।

यह तो रही पांडवों की माता कुन्ती और कृष्ण की रिश्तेदारी की बात। अब कौरवों की माता गांधारी पर भी तनिक ध्यान दीजिए। महाभारत के अनुसार महाभारत काल में गांधार का राजा सुबल था। उसकी पुत्री गांधारी धृतराष्ट्र को ब्याही थी, गांधारी का भाई शकुनि दुर्योधन का मामा उसका सहायक था। इन सब नामों और रिश्तों का आधार भी एक मात्र महाभारत ही है। अन्यत्र हमें दूसरे आधार मिलते हैं। महाभारत संग्राम काल में गांधार का राजा नग्नजित् था। यह भारी राजा था। उसके नीचे कई गण थे। वह आयुर्वेद का भारी पंडित था। अष्टांग-हृदय में उसका मत उल्लिखित है। महाभारत नग्नजित् का पुत्र सुबल को बताता है।[4] पर शतपथ ब्राह्मण में उसका पुत्र स्वर्जित बताया गया है।[5] नग्नजित् की कन्या सत्या कृष्ण को ब्याही थी।[6] यह विवाह युद्ध के द्वारा बलात् हुआ था।[7]

५—श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत का ही एक अङ्ग है। जो आज हिन्दुओं का वैसा ही प्रतिष्ठित धर्मग्रन्थ है जैसा कभी आर्यों का धर्मग्रन्थ वेद था। जब कुरु पाण्डवों की सेनाएँ युद्ध के लिए एकत्र सन्नद्ध खड़ी थीं, तब पाण्डव सेनापति अर्जुन के मन में खिन्न भाव उत्पन्न हुआ था—कि क्यों मैं राज्य के लिए बन्धु-बांधवों का

१—द्रोण पर्व २३।४७।

२—कर्ण पर्व ३।२२।

३—मत्स्य ४६।७, ८। वायु ९६।१५०, १५१।

४—भेल संहिता पृ० ३०।

५—'अथहस्माह स्वर्जिन्नाग्नजितः। नग्नजिद्वा गांधारः' ८ १।४।१०।

६—देखिए—महा० उद्योग पर्व ४८।७५ तथा नीलमतपुराण, लाहौर संस्करण।

'एषचैव शतं हत्वा रथेन क्षत्र पुंगवानु।
गांधारीमवहत्कृष्णो महिषीं यादवर्षभः।' (महा० सभा० ६१।१३)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हनन करूं। तब कृष्ण ने उसे कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का जो उपदेश दिया, वही गीता के रूप में एकत्रित है। कहा जाता है, कि तत्त्व ज्ञान और धर्म की दृष्टि से गीता संसार की सब से उत्कृष्ट और महत्त्वपूर्ण धर्म-पोथी है। उसी ने किंकर्त्तव्य-विमूढ़ अर्जुन को कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर किया था। जिस प्रकार समस्त प्राचीन संस्कृत साहित्य में महाभारत सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार महाभारत में गीता सर्वश्रेय प्रवचन है। उस में सब प्राच्य और अर्वाचीन तत्त्वज्ञानों का समावेश किया गया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है, कि आज के हिन्दु धर्म की स्थापना गीता ही पर अवलम्बित है।

गीता का काल—गीता की भाषा बहुत सरल, ज़ोरदार और शिष्ठ है। पाणिनि व्याकरण की दृष्टि से कुछ व्याकरण की गलतियाँ अवश्य हैं। यह मानने के यथेष्ट कारण हैं कि गीता महाभारत में सौति के बाद प्रविष्ट हुई। गीता पर बौद्ध धर्म के दार्शनिक स्वरूप का प्रत्यक्ष प्रभाव देख पड़ता है। साधारण दृष्टि से देखा जाय तो गीताकार का उद्देश्य कोई विशिष्ट तत्त्वज्ञान बताना न था। अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त करना था। फिर भी इसमें अनेक तत्त्व दृष्टियों का मिश्रण किया गया है। दूसरे अध्याय में कहा गया है कि आत्मा न जन्मता है न मरता है। यह न जन्मा था न जन्म लेगा। यह अज–नित्य–शाश्वत और पुरातन है। शरीर का नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता। अब यदि तुम यह भी मानते हो कि यह आत्मा सदा जन्म लेता और सदा मरता है, तो भी इसके लिए शोक करना वृथा है। कारण, जिसका जन्म हुआ, उसकी मृत्यु निश्चित है। और जो मर गया, उसका जन्म निश्चित है। अतः इस अनिवार्य बात के लिए शोक करना तुम्हें उचित नहीं। प्राणी जन्म से पूर्व अव्यक्त रहते हैं, अनन्तर व्यक्त होते हैं, मरने पर फिर अव्यक्त होते हैं। अतः उनके लिए शोक क्यों किया जाय। अभिप्राय यह कि आत्मा चाहे अविनाशी हो चाहे विनाशी, युद्ध करना उचित है। इसके आगे कहा गया है—स्वधर्म की दृष्टि से भी तुम्हें हिचकना न चाहिए। क्योंकि क्षत्रिय के लिए युद्ध से बढ़कर कुछ श्रेय नहीं है। हे पार्थ, भाग्यवश स्वर्ग का द्वार खुला है, ऐसा युद्ध भाग्यवान् क्षत्रियों ही को प्राप्त होता है। यदि यह धर्मयुद्ध तुम न करोगे तो स्वधर्म और कीर्ति गँवाओगे और पाप के भागी बनोगे। सब लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे। पुरुष के लिए अपकीर्ति मरण से बढ़कर है।

तत्त्वज्ञान और व्यवहार—विचारने की बात यह है कि यहाँ तत्त्व ज्ञान ज्ञान नहीं है वह व्यवहार की बात है। इस से यह भी प्रकट है कि जैसे सम्भव हो अर्जुन को युद्ध के लिए प्रवृत्त करना ही उस तत्त्व ज्ञान का है।

परन्तु इसी स्थान पर, इसी अध्याय में जो ब्राह्मी स्थिति बताई गई है; उसका इस अध्याय के विषय से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। भगवान् कहते हैं—कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हे पार्थ, जब कोई अपने मन की कामवासना छोड़ देता है, और स्वयं अपने ही में सन्तुष्ट रहता है—वही स्थित प्रज्ञ है। जिसका मन दुःखों में उद्विग्न नहीं होता, सुखों में जिसे आसक्ति नहीं होती, जिसके काम–भय–क्रोध नष्ट हो जाते हैं—वही स्थितप्रज्ञ कहाता है। जो पुरुष विषयों का चिंतन करता है, उसके मन में आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्ति से कामवासना उत्पन्न होती है, कामवासना से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से सम्मोह, सम्मोह से स्मृति-विभ्रम, स्मृतिविभ्रम से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से वह सर्वथा नष्ट हो जाता है। इस से सब कामवासनाओं को छोड़ कर जो निस्पृह रहता है, जिसमें ममता और अहङ्कार नहीं रह जाता, उसे ही शान्ति मिलती है। यही ब्राह्मी स्थिति है। जिसे अन्तकाल में यह स्थिति प्राप्त हो जाती है, वह ब्रह्म निर्वाण पाता है।

इस सारे विवरण पर विचार करने, तथा ब्राह्मी स्थिति और स्थितप्रज्ञ की व्याख्या पूरी पढ़ जाने; तथा 'ब्रह्म निर्वाण मृच्छति' वाक्य पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह सारा ही दर्शन बौद्ध दर्शन है। इस प्रसंग में स्मृति–विभ्रम, निराहार आदि शब्द बौद्ध परिभाषा ही के हैं। यह वास्तव में बौद्ध तत्त्व ज्ञान है और इसका युद्ध प्रसंग से कोई सरोकार ही नहीं है।

ब्रह्मसूत्र और गीता—गीता के तेरहवें अध्याय के चौथे श्लोक में है—ब्रह्म-सूत्रपदैश्चैवहेतुमद्भिर्विनिश्चितैः। इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि ब्रह्मसूत्र के बाद इस श्लोक की रचना हुई है। ब्रह्मसूत्र को यदि पढ़ा जाय तो हम देखते हैं उसके दूसरे अध्याय के दूसरे पाद के कुछ सूत्र स्पष्ट ही बौद्ध विज्ञानवाद की आलोचना मूलक हैं।[1] सभी जानते हैं कि वसुवन्धु बौद्ध विज्ञानवाद का आचार्य था। जो गुप्त राजा वालादित्य का समकालीन था। इस से यह अनुमान कुछ विद्वान् लगाते हैं कि गीता गुप्तकाल में सम्भवतः बालादित्य के ही काल में ई० सं० ४६७ में लिखी गई थी।[2] जैसे गीता में ब्रह्मसूत्रों की चर्चा है, उसी भांति ब्रह्मसूत्रों में भी अनेक सूत्र गीता के श्लोकों के आधार पर हैं।[3]

महाभारत के आदिकर्ता व्यास हैं। वे वेद व्यास कहाते हैं। पर वेदान्त के कर्ता वादरायण व्यास हैं। निस्संदेह ये दूसरे ही व्यक्ति हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण विचारणीय बात है कि वेदान्त के पूर्व गीता है और गीता के पूर्व वेदान्त है।

१—नाभावउपलब्धेः २८। वैधर्म्याच्यवन स्वप्नादिवत् २९। न भावोऽनुपलब्धेः ३०। क्षणिकत्त्वात्त्व ३१।

२—अरली हिस्ट्री आफ इण्डिया विन्सेन्टस्मिथ प्रणीत।

३ –स्मृतेश्च १।२।६। गीता के—'ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति' के आधार पर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतः यह अनुमान होता है 'दोनों ग्रन्थों का एक ही काल में संभवतः एक हीव्यक्ति द्वारा प्रणयन हुआ हो। वह भी वसुवन्धु के काल के बाद।

गुप्तकालीन वातावरण—वासुदेव गुप्तों का कुलदेव था। वह नए हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा कर रहा था। पर वालदित्य बौद्ध धर्म से प्रभावित था। अतः प्राचीन वैदिक धर्म के तत्त्व ज्ञान के साथ ब्राह्मी स्थिति बौद्ध दर्शन से ली गई है। पर कर्मयोग द्वारा बौद्ध तत्त्वों का विपर्यास किया गया है। बुद्ध का कर्मयोग यह है—कि ऐसा काम मत करो, जिससे किसी की हानि हो; ऐसा काम करो जिससे सब का कल्याण हो। साथ ही चित्तशुद्धि रक्खो। सत्कर्म का अभिमान न करो। इस का विपर्यास गीता में यह है—कि बापदादों का धन्धा स्वधर्म समझ कर करो, और इस बात का विचार न करो कि उसका क्या परिणाम होगा ?

बौद्ध दर्शन में चार लोक संग्रह बताए हैं—दान, प्रियवचन, अर्थचर्या, और समभाव का व्यवहार। बौद्ध मत से ये चार संग्रह इस लोक में समाज रूपी रथ के धुरे हैं। पर भगवद्गीता में इसका इस प्रकार विपर्यास किया गया है मैं यदि कर्म न करूं तो ये सब लोग नष्ट हो जाएंगे। मैं संकर करने वाला होऊंगा, तथा प्रजा का नाश होगा। कर्मों में आसक्त अज्ञानी जैसे कर्म करते हैं, उसी प्रकार लोक संग्रह की इच्छा रखने वाला ज्ञानी पुरुष आसक्ति छोड़ अपने कर्म करे। कर्मों में आसक्त अज्ञजनों का बुद्धि भेद न करे। विज्ञजन स्वयं योगमुक्त हो, दूसरों से सब कर्म कराए[1]। यहाँ लोक संग्रह से ऐसे व्यवहार का अर्थ है जिसमें वर्ण संकर न हों। इसी लिए स्वयं तत्त्व को जानते हुए भी अज्ञजनों का बुद्धि भेदन करते हुए उन्हें प्रचलित व्यवहार के अनुसार काम करने को प्रोत्साहित करना चाहिए।

महत्त्वपूर्ण बात—यह एक मार्के की बात है—कि न तो किसी बौद्ध आचार्य ने, न आर्य विद्वान् ने गीता का शंकर से पूर्व नामोल्लेख किया। प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक दिग्नाथ और शान्ति रक्षित तक ने गीता पर दृष्टि नहीं दी। शंकराचार्य से केवल ५० वर्षपूर्व शान्ति रक्षित के तत्त्व संग्रह में गीता का नाम तक नहीं है। इस का स्पष्ट यह अर्थ है—कि उस समय तक गीता की इतनी प्रसिद्धि हुई ही न थी। तथा विद्वान् उसे महत्त्व न देते थे। आठवीं शताब्दी में शंकराचार्य ने पहिले पहिल इसकी टीका रच कर इसे महत्त्व दिया

बौद्ध जैन धर्म प्रसार – गीता पर जैसे बौद्ध दर्शनों का प्रभाव पड़ा है, उसी भांति उपनिषदों का भी। उपनिषद् ब्राह्मणों के प्रान्त भाग हैं। तथा वे वैदिक यज्ञविधि के विरोधी और आत्मा, तथा पुनर्जन्म के घोषक है। वे वेदों तथा उनके

---

१. गीता अ० ३ श्लोक २४–२६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साहित्य को अपरा विद्या कहते हैं। और जिससे वह अक्षर प्राप्त होता है उसे पराविद्या कहते हैं। पराविद्या उपनिषदों में ही है। छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है—जैसे मछली को जल में मत्स्य घाती देख लेता है, उसी तरह मृत्यु ने देवों को वेदों में स्थित देखा। वे देव मृत्यु के इस आश्रय को जान वेदों से ऊपर स्वर को प्राप्त हुए[1]। इस वक्तव्य का यह अभिप्राय है—कि वेद वादियों को आवागमन (मृत्यु जन्म) से छुटकारा नहीं मिल सकता, परन्तु वेदों से आगे स्वर का आश्रय पाने वाला मृत्यु से छुट जाता है, यहां भी परा और अपरा विद्या का संकेत है।

गीता पर इन बातों का प्रभाव है, और वह इन्हीं भावों को दूसरे अध्याय के ४१ से ४७ वें मन्त्रों में वेद विरोधी रूप में प्रकट करती है। इन श्लोकों का अभिप्राय यह है—कि बहुशाखा वाले अनन्त वेदों से बुद्धि चंचल हो जाती है। वेद-वादरत जो इस वेदवाणी के द्वारा कहते हैं--कि वेदों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है–वे अज्ञानी हैं, वे काम–भोग और स्वर्ग मानने वाले हैं। और कर्म में अनेक प्रकार की विधि करने वाले तथा भोग और ऐश्वर्यों में प्रीति रखते हैं। ऐसे लोग समाधि को प्राप्त नहीं हो सकते। हे अर्जुन! वेद त्रिगुणात्मक है। इस लिए तू निर्द्वन्द, शुद्ध चित्त, योगक्षेम, त्यागी, आत्मनिष्ट, अर्थात् निस्त्रैगुण्य ही है। वेद तो बड़े तडाग की अपेक्षा एक छोटे कुए के समान है, वेद से तेरी गति मन्द हो गई है। अतः जब जब निश्चल बुद्धि होगी, तभी योग प्राप्त होगा। इस प्रकार गीता ने बौद्धों और जैनों तथा अवैदिकों के मुकाबिले एक नए हिन्दू धर्म का बीज बोया। जो अवैदिक होते हुए भी आर्य संस्कृति मूलक था। आगे शंकर सम्प्रदाय ने उसे किस प्रकार का रूप दिया, यह हमने यथा स्थान कहा है।

———

१. छा० १।४।३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीसरा—खण्ड

अध्याय १

पुराण युग

११७७ ई० पू० से १००० ई० तक २१७७ वर्ष

१—पंचाङ्गी युग

पुराण युग को हम पांच अंगों में विभक्त करेंगे :—

१—आर्षकाल २—दार्शनिक काल

३—बुद्धकाल ४—बौद्धकाल

५—साहित्य काल

आर्षकाल—आर्षकाल ११७७ ई० पू० से लेकर ९८१ ई० पूर्व तक १९६ वर्ष का है। इस काल में भारत में तीन मुख्य राजवंश रहे :—

१—कौरव, २—कोसल, ३—मागध।

इसी काल में अनेक ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक तथा उपनिषदों का निर्माण हुआ। तथा वैधानिक कर्मकाण्डों का विस्तार हुआ। इस युग में बड़े २ यज्ञ रचे गए। विदेह जनक और कौरव जनमेजय महान् याज्ञिक हुए। इसी काल में जनमेजय ने तक्षशिला में नागसत्र किया।

दार्शनिक काल—दार्शनिक काल ९८१ ई० पू० से ५५७ ई० पू० तक ४२४ वर्ष का है। इस युग में आर्यों ने शेष भारत विजय किया। विस्तार बढ़ाया। यास्क पणिनि, सूत्रकार और अन्य दार्शनिक इसी युग में हुए। शुल्वसूत्र भी इसी युग में रचे गए।

बुद्धकाल—यह काल ५५७ ई० पू० से ३२० ई० पू० तक २३७ वर्ष का है। इस युग में बुद्ध, महावीर, बिम्बसार, अजात शत्रु और नौनन्दों का व्यक्तित्व महत्व पूर्ण है। मुख्य घटनाएं वैशाली संग्राम और बौद्ध संघ की स्थापना है। तथा प्रथम और द्वितीय बौद्ध संघों की बैठक है।

बौद्ध काल—३२० ई० पू० से ५०० ई०तक ८२० वर्ष बौद्ध काल है। चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार, अशोक, तथा तृतीय बौद्ध संघ। मौर्यों का अन्त, शुङ्ग और काण्व वंश तथा आन्ध्र वंशों का उदय, गुप्तराज्यों का विकास, ग्रीक आक्रमण, कनिष्क, सौराष्ट्र के शाह, काम्बोज आक्रमण और हूण आक्रमण इस युग की विशेषताएं हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

साहित्य काल—५०० से १००० ई० तक ५०० वर्षों का काल साहित्य काल है। इस काल के विशेष व्यक्ति, भास, विक्रम, कालिदास, भारवि, आर्य भट्ट, बराह-मिहिर, ब्रह्म गुप्त, द्वितीय शिला दित्य, दण्डी, वाण हर्ष भवभूति और शंकराचार्य है। उत्तर भारत का २०० वर्षीय अन्धकार युग भी इसी काल के अन्तर्गत है।

२—भारत के संग्राम के बाद

११७७ ई० पू० से लेकर ९८१ ई० पू० तक १९६ वर्ष

भारत संग्राम के बाद १९६ वर्ष—युधिष्ठिर के बाद सातवां राजा अधिसीम कृष्ण था। इस राजा का काल युधिष्ठिर के राज्य काल से लगभग १९६ वर्ष बाद है। युधिष्ठिर ने ३६ वर्ष हस्तिनापुर में राज्य किया। राज्यारोहण के बाद २ वर्ष बाद ही उसने अश्वमेध यज्ञ किया। उसके राज्यारोहण के १५हवें वर्ष महाराज धृतराष्ट्र और गान्धारी ने वनगमन किया। उनके वनगमन की बात कुरुजाङ्गल राज्य में घोषणा कर दी गई थी। बहुत सी प्रजा हत भाग्य अन्धे वृद्ध राजा को दीर्घ जीवन का कुफल भोगते देखने को आई। उसके समक्ष धृतराष्ट्र ने अत्यन्त धार्मिक भाषण किया, जिसका उत्तर तत्कालीन अर्थ शास्त्र विशारद वहवृच शाम्वव्य ने वैसी ही भाषा में दिया[२]।

धृतराष्ट्र दम्पति के वनगमन के बाद २१ वर्ष युधिष्ठिर गद्दी पर रहे। इसी समय वासुदेव कृष्ण का निधन और यादवों का विनाश हुआ। इससे खिन्न होकर पांडवों ने महाप्रस्थान किया।

इस समय पाण्डवों के कुल में अर्जुन पौत्र परीक्षित और कृष्ण के वंश में कृष्ण पौत्र अश्व सेन औरज्र थे। परीक्षित को हस्तिनापुर का और वज्र को इन्द्रप्रस्थ का तथा अश्व सेन को मथुरा का राज्य देकर पाण्डवों ने महर्षि व्यास के परामर्श से द्रौपदी सहित हिमालय की ओर महाप्रस्थान किया।

जन्मेजय तृतीय और उसका नागसत्र—परीक्षित ने २४ वर्ष राज्य किया, और उसके बाद उसका पुत्र जन्मेजय (तृतीय) १५ वर्ष की अल्पायु में राजा बना। इसने कुरुक्षेत्र में दीर्घ सत्र किया, तक्षशिला को आक्रान्त कर वहीं नागसत्र किया। इसी नाग सत्र में वैशम्पायन ने सर्व प्रथम भारत बांचा। नाग सत्र में नागों का महासंहार हुआ। नागों ने उसके पिता का हनन किया था, उसी से क्रुद्ध होकर जनमेजय ने नाग संहार किया था। अन्त में आस्तीक के कहने सुनने से उसने नाग संहार रोका। यह

१— महा० आश्वमेधिक पर्व।

२—आश्रम वासिक पर्व महाभा०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सत्र चण्ड भार्गव ने कराया था, और इसमें व्यास, शुक, जैमिनी, वोधिपिङ्गल और शार्ङ्गरव आदि ऋषि मुनि उपस्थित थे।

भार्गव शौनक का दीर्घ सत्र—इसके बाद जब भार्गव शौनक १२ वर्ष का दीर्घ सत्र नैमिषारण्य में कर रहा था। वहां लोमाहर्षण के पुत्र सौति उग्रश्रवा ने भारत का द्वितीय वाचन किया[1]। तृतीय वाचन जनमेजय से लगभग २ सौ वर्ष बाद हुआ।

जनमेजय को त्रिखर्वी कहा गया है। अर्थात् उसकी आय तीन खर्व थी। इस काल में यजुर्वेद की दो शाखाएं हो चुकी थीं। राजा ने कृष्ण यजुर्वेदीय ब्राह्मणों को हटाकर प्रथम वाजसनेय ब्राह्मणों से यज्ञ कराया[2]। इससे कृष्ण यजुर्वेदीय वैशम्पायन उससे रुष्ट हो गए, अन्त में राजा को क्षय हो गया और वह दुखी होकर वन चला गया। वहीं उसकी मृत्यु हुई।

परीक्षित द्वितीय—परीक्षित का जन्म महाभारत युद्ध के कुछ मास बाद ही हुआ। कृपाचार्य अभी जीवित थे, उन्हीं ने परीक्षित को धनुर्वेद सिखाया[3]। इसका विवाह माद्रवती से हुआ। इन का पुत्र जनमेजय तृतीय था, परीक्षित के राज्य काल में विष्णु पुराण निर्मित हुआ[4]। वह ६० वर्ष की आयु में तक्षक नाग द्वारा मारा गया।

इसके बाद चौथा राजा उसका पुत्र शतानीक हुआ। शतानीक ने याज्ञवल्क्य और शौनक से शिक्षा पाई, उसका पुत्र सहस्मानीक और उसका अश्वमेधदत्त, उसका पुत्र अधिसीम कृष्ण हुआ।

अधिसीम कृष्ण कालीन दीर्घ सत्र और पुराण संकलन—इस राजा के काल में नैमिषारण्यक के ऋषियों ने कुरुक्षेत्र में दषद्वती के तट पर दीर्घ सत्र किया। यह प्राचीन परम्परा का अंतिम सत्र था। इस समय कृष्ण द्वैपायन व्यास का स्वर्गवास हुए २०० वर्ष बीत चुके थे, बृहदेवता और ऋक् प्रतिशाख्य निर्माता विद्वान् शौनक इस सत्र में उपस्थित था। इस सत्र में वृद्ध सूत लोमहर्षण ने कुरुक्षेत्र पहुँचकर ऋषियों को वंश सुनाएं। वहीं वंश कथाऐं जोड़कर पुराण रूप में संकलित हुए। यह संकलन अधिसीम कृष्ण के ही राज्य काल में हुआ, दीर्घ सत्र के पांचवें वर्ष में मत्स्य पुराण का वाचन हुआ। अन्य मूल पुराण संहिताऐं भी बनी। वेद काल का अब अन्त हो चुका था। मंत्रदृष्टा ऋषि अब नहीं होते थे। अर्थात वेदों की नई ऋचाएं नहीं बनाई जाती

१—महा० आदि०

२—कौटिलीय अर्थशास्त्र

३—महाभारत आदि० ४५। ११

४—विष्णु पुरा० ४। २१। २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी। उनका संगठित रूप पहिले ही बन गया था। इसी से ऋषि पद समाप्त हो गया था। वैदिक परम्परा को ब्राह्मण कण्ठस्थ करने लगे थे, तथा महाभारत और पुराणों को कथावाचक मुख्य समारोह पर सुनाते थे।

अन्ध युग—भारत काल तक भारतीय सांस्कृतिक इतिहास की सामग्री ऋषियों द्वारा सुरक्षित रही। इन ऋषियों का जन साधारण में मान था। महाभारत और पुराणों को कथा वाचकों ने जीवित रक्खा। वैदिक परम्परा को ब्राह्मणों ने कण्ठ रक्खा। परन्तु इसके बाद के राज समासद् विद्वानों ने अपने २ आश्रयदाताओं की कीर्ति का करना आरम्भ किया, परन्तु वे रचनाएँ भारत की सार्वभौम सम्पत्ति न हो सकी। भारत युद्ध के परिणाम स्वरूप प्राचीन संस्कृति छिन्न भिन्न हो गई। अब केवल पुराणों ही का ऐसा साहित्य रह गया जिनमें भारतोत्तर कालीन राजवंशों का इतिहास लिखा गया था। यद्यपि पुराण सामग्री अस्त व्यस्त और अत्युक्ति पूर्ण एवं अलंकारिक थी, फिर भी वह कम प्रामाणिक नहीं थी, परन्तु उनमें से अनेक क्षत्र, पार्शव, शूद्र और कुलीन राजाओं के नाम और उनकी वशावली नष्ट हो गई[1]। केवल मगध कोशल और हस्तिनापुर के वंशों के विवरण ही रह गए। इनमें भी मगध के राजाओं का तो राज्य काल है, शेष दो वंशों का वह भी नहीं।

परन्तु युधिष्ठिर से लेकर अधिसीम कृष्ण तक का १९६ वर्षों का इतिहास काल एक विशिष्ट काल है। इसी काल में भारत का सांस्कृतिक रूप परिवर्तन हुआ। दूसरे शब्दों में वैदिक सभ्यता के स्थान पर पौराणिक सभ्यता की प्रतिष्ठा हुई और आर्ष काल की समाप्ति हुई।

मगध राज्य—अधिसीम कृष्ण के काल में मगध पर सेनजित् का राज्य था। सेनजित् ने कुल ५० वर्ष राज्य किया[2]।

कौसल राज्य—कौसल पर इस समय दिवाकर राजा राज्य कर रहा था। शौनक ने इसी के राज्य में दीर्घ सत्र किया था। भारत युद्ध के बाद यह इस कुल का सम्भवतः ५वां या ८वाँ राजा था।

इस प्रकार महाभारत के १९६ वर्षों के बाद आर्षकाल की समाप्ति और पुराण युग की संधिकाल में पौरव अधिसीम कृष्ण हस्तिनापुर में, मागध सेनजित् मगध में और दिवाकर कोसल में राज्य कर रहे थे[3]।

३—भारत युद्ध कालीन साहित्य

हम पीछे बता आए हैं कि वेद और वैदिक साहित्य को वर्तमान रूप का

१—वायु पु० मत्स्य पु०।

२—मत्स्य पुराण।

३—मत्य पु० वायु पुराण।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्माण भारत युद्ध काल में हुआ। इसी काल में भारत संहिता रची गई, जिसे पीछे महाभारत का रूप दिया गया। इसी काल में व्यास ने एक पुराण संहिता भी बनाई[1]। धर्म सूत्रों के अतिरिक्त अनेक स्मृतियां तथा याज्ञवल्क्य स्मृति का मुख्य भाग इसी काल में लिखा गया।

तीन अर्थशास्त्र—इसी काल में अनेक नए अर्थशास्त्र लिखे गए। जिनमें एक भीष्म का कौणपदन्त अर्थशास्त्र था[2]। दूसरा भारद्वाज अर्थशास्त्र द्रोण ने रचा। तीसरा वात व्याधि अर्थशास्त्र उद्धव ने रचा। उद्धव वृष्णि अन्धकों के सात महामात्यों में एक था[3]। इस प्रकार भीष्म द्रोण और उद्धव के ये तीनों अर्थशास्त्र बहुत प्रसिद्ध हुए। जिनकी कौटिल्य चाणक्य ने भूरि २ प्रशंसा की है।

आयुर्वेद संहिता—इसी समय जातुकर्ण ने आयुर्वेद संहिता लिखी।

पुराण संहिता—व्यास ने पुराण संहिता लिखी।

दार्शनिक सूत्रकार—अक्षपाद कणाद, उलूक, वत्स, जैमिनी आदि मुनि इसी काल में कृष्ण द्वैपायन व्यास के अनुयायी थे। इनके कई दार्शनिक सूत्रों की रचना भी इसी काल में हुई[4]। इसके बाद बादरायण ने ब्रह्म सूत्र रचा।

४--दो महान् व्यक्ति

इस काल में हम दो महान् व्यक्तियों को पाते हैं। जिनकी भारतीय संस्कृति पर गहरी छाप है। इनमें :—

१—सम्राट् जनमेजय–त्रिखर्वी–अमित्रघात।

२—जनक विदेह।

जनमेजय का वर्णन हम कर चुके हैं। जरासन्ध के मर जाने और श्री कृष्ण के यादवों सहित द्वारिका चले जाने पर नागों ने मथुरा पर अधिकार कर लिया था। उधर तक्षशिला में नागों का प्रबल राजा था ही। इन्हों ने अवसर पा परीक्षित को भी मार डाला। अब हस्तिनापुर तक पच्छिम में नागों का अधिपत्य हो गया था। जनमेजय ने मथुरा नागों से छीन कर कृष्ण पौत्र बज्र को दी, और फिर तक्षशिला पर अभियान कर नागों को परास्त किया। पराजित नाग पर्वतों में जा छिपे। जनमेजय ने चण्डभार्गव के अनुशासन में महा नाग सत्र किया। एक महाकुण्ड में महाचिता

१—वायु पु० ६०। १२—१६

२—कौटिल्य अर्थशास्त्र

३—महा० सभा० १४। ६३। ६४।

४—वायु पुराण २३। २१६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रज्वलित की गई। और उसमें नागों को पकड़ पकड़ कर जीवित जला दिया गया। नाग वंश के बड़े बड़े सरदार इस महाकुण्ड में आहुति के समान जीवित फूंक दिए गए। इस महानरमेध ने जनमेजय का महा आतंक जमा दिया, और वे अमित्रघात कहाए, मथुरा में नागों ने सात पीढ़ी राज्य किया[१]।

यह सम्राट् अनेक यज्ञों का कर्ता था। शतपथ, ऐतरेय तथा गोपथ ब्राह्मण का कुछ अंश उनके काल में निर्मित हुआ। सांख्यायन श्रौत सूत्र का निर्माण भी उन्हीं के समय में हुआ[२]।

नाग सत्र में अनेक जन पदों के राजा आए थे[१]। वहीं सर्व प्रथम महाभारत कथा सबको सुनाई गई। यह कथा व्यास की आज्ञा से वैशम्पायन में सुनाई थी[२]। नाग सत्र में ऋत्विज इस प्रकार थे :—

होता—चण्डभार्गव सामगउद्गाता—जैमिनी
अध्वर्यु—वोधिपिंगल ब्रह्मा—शर्ङ्गरव

व्यास और उनके पुत्र शुक इस सत्र में उपस्थित थे[3]। चण्ड भार्गव वेदों का श्रेष्ठज्ञाता था। उस तेजस्वी सम्राट् की आय तीन खर्व वार्षिक थी। १ खर्व अश्मक मुख्यों से, १ खर्व अंगदेश से, १ खर्व मध्य देश से[४]।

अश्वमेध यज्ञ में इस राजा से कृष्ण यजुर्वेदीय वैशम्पायन से झगड़ा हो गया था। उसने पहली बार वाजसनेय ब्राह्मण को पुरोहित बनाया और यज्ञ कराया[५]। अन्तकाल में इस महान् सम्राट् को क्षय हो गया था। अतः राज्य त्याग वह बन चला गया। जहां उसकी मृत्यु हो गई।

यद्यपि वेदकाल समाप्त हो गया था, परन्तु वैदिक साहित्य निर्माण हो रहा था। वैदिक यज्ञ विशेष आडम्बर से हो रहे थे। और अब उनकी राजनैतिक आवश्यकता बढ़ गई थी।

जनक विदेह—जिस प्रकार चन्द्र वंश की कुरु शाखा में इस युग के आरम्भ में जनमेजय–यज्ञ अनुष्ठान करके, और वहाँ पुराण वाचन करके, वेद कालीन और पुराण कालीन संस्कृति का सामंजस्य कर रहा था। उसी प्रकार इस काल के अंतिम

---

१. वायु पु०। ब्राह्मण पु०। पंच विश ब्राह्मण।
२. शां० (९।७)
१. आदि पर्व ५४।९
२. आदि पर्व अ० ५४
३ आदि पर्व ४८।५–७
४. वायु पु० ९९।२५५
५. कौटिलीय अर्थशास्त्र अध्याय ६ वायु पुराण।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

छोर पर इसी सम्राट् से कोई १५० वर्ष बाद सूर्य वंश की मिथिला शाखा का जनक विदेह यज्ञानुष्ठानों में उपनिषदों के ब्रह्मवाद को प्रौढ़ कर रहा था।

महायाज्ञिक याज्ञवल्क्य उसका सभा पण्डित था। इस नवीन युग ने प्राचीन ऋषियों को याज्ञवल्क्य गृहपति के रूप में परिणित कर दिया था। जिसकी दो पत्नियाँ थीं।

विदेह जनक जहाँ एक ओर बड़े बड़े यज्ञ करता था—यज्ञ विधियों की जटिल बारीकियों को समझता था। उसी प्रकार वह ब्रह्म विद्या का भी अधिष्ठाता प्रसिद्ध था। ब्रह्म विद्या पर वह अपनी सभा में पण्डितों को आमन्त्रित कर बड़े-बड़े शास्त्रार्थ कराता था।

जनक सम्राट् था।[1] उसकी सभा में याज्ञवल्क्य के सिवा, उशस्ति चाक्रायण, पौलुशि सत्य यज्ञ, धृति ऐन्द्रोत, बुडिल आश्वतराश्वि, उद्दालक आरुणि आदि ब्राह्मण उपस्थित रहते थे।[2]

ऋषि और ब्राह्मण—अब प्राचीन वैदिक ऋषि ब्राह्मण बन गए थे। वेद का उपयोग अब यज्ञ विधानों में होता था। और ब्राह्मण ग्रन्थों के माध्यम से उन्हें समझा जाता था। ब्राह्मण ग्रन्थों की रचनाएँ तेजी से हो रही थीं। और जो लोग ब्राह्मणों के माध्यम से अब वेदों का यज्ञ में उपयोग करते थे, ब्राह्मण कहलाने लगे थे। यहां हम जनमेजय और जनक के यज्ञों और परिषदों में भाग लेने वाले ब्राह्मणों की एक सूची देते हैं—

यज्ञवचस राजस्तम्बायन		
कुश्रि	बृहदारण्यक	
शांडिल्य		
वात्स्य	उद्दालक आरुणि	जनक वाले
	याज्ञवल्क्य	
वाम काक्षायण		
माहित्थि		
कौत्स	आसुरि	
काण्डव्य	आसुरायण	
माण्डूकायनि	प्राश्री पुत्र आसुरि वासिन	
सांजीवि पुत्र	सांजीवी पुत्र[3]	

१—शतपथ ५, १।१।१३ बृहदारण्यक।
२—बृहदारण्यक V (८–८) तथा III (७।१)
शतपथ ब्रा० XI ६, २,१,३।
३—शतपथ (दशम अध्याय)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जनक के समकालीन ९ राज्य—गंधार, केकय, मद्र, उशीनर, मत्स्य, कुरु, पांचाल, काशी और कोशल ये नौ राज्य जनक कालीन थे।

गाँधार की राजधानी तक्षशिला में सम्भवतः इसी काल में विश्वविद्यालय स्थापित हो चुका था। उद्दालक आरुणी, श्वेतकेतु, यहीं के छात्र थे।[१]

केकय का राजा अश्वपति ब्रह्मज्ञानी था। आरुणि, औपवेशि, गौतम, सत्ययज्ञ, पौलुशि, महाशाल जाबाल, बुड़िल आश्वतराश्वि, प्राचीन शाल औपमन्यव आदि ब्राह्मण उसके सम्मुख समित्पाणि होकर शिष्य की भांति ब्रह्म विद्या सीखने गए थे।[२]

उद्दालक आरुणि के गुरु काण्य पातंजल मद्रवासी थे।[३] गार्ग्यवालाकि बशीनर के।[४] मनुसंहिता मत्स्य देश को ब्रह्मर्षि देश कहती है, प्रौत कौशाम्बेय यहीं के थे।[५]

पांचालपति प्रवाहण ब्रह्म विद्या के उद्गाता थे। वे आरुणि और श्वेतकेतु को छान्दोग्य उपनिषद् में ब्रह्मज्ञान देते हैं। काशीराज पौरव थे, वहां के राजा अजातशत्रु और धृतराष्ट्र का कथन शतपथ ब्राह्मण और उपनिषदों में है। अजातशत्रु उद्दालक का समकालीन है।[६] कुरुपांचालों के बाद कौशल राज्य की महत्ता है।

याज्ञवल्क्य—जनक की राज सभा का प्रबल ब्राह्मण याज्ञवल्क्य वाजसनेयी ने यजुर्वेद को दुहराकर उसका पाठ ठीक किया। मन्त्रों को व्याख्याओं से पृथक् किया, यजुर्वेद का एक नया संस्करण शुक्लयजुर्वेद के नाम से किया। तथा उसकी व्याख्या में शतपथ ब्राह्मण का निर्माण किया, जो महत्कार्य था।

५—जनक और प्रवाहण का नया उपनिषद् धर्म

ऐसा प्रतीत होता है कि जब इस प्रकार ब्राह्मण लोग बड़ी-बड़ी क्रिया-विधियों का आविष्कार करके यज्ञविधियों को पेचीली बना रहे थे। तब जनक विदेह और पांचाल प्रवाहण जैसे विद्वान राजा इन क्रिया संस्कारों से अधिक पुष्ट विचार आत्मा और ब्रह्म के विषय में खोज रहे थे। अन्त में ब्राह्मणों ने हार मानी और इन

१—छान्दोग्य VI (१४) उद्यालक जातक (४८७)
श्वेतकेतु जातक (३७७)
२—छान्दोग्य ५, ११, ४
३—बृहदारण्य ३, (७।१)
४—कौशीतकि।
५—शतपथ ब्राह्मण।
६—उपनिषद्।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षत्रियों के पास नई ब्रह्म विद्या सीखने को गए। इन्हीं विचारों के कारण जनक का सत्कार बहुत बढ़ गया था।

"विदेह जनक की भेंट कुछ ऐसे ब्राह्मणों से हुई जो अभी आए थे—ये श्वेतकेतु आरुणेय, सोमसुष्म, सत्ययज्ञि और याज्ञवल्क्य थे। उसने उनसे पूछा—

'आप कैसे यज्ञ करते हैं ?'

तीनों ब्राह्मणों ने उत्तर दिया। पर वह ठीक न था। जनक ने कहा—तुम नहीं जानते, और वह रथ पर चढ़ कर चला गया।

ब्राह्मणों ने कहा, इस राजन्य ने हमें हरा दिया। याज्ञवल्क्य रथ पर चढ़ कर राजा के पीछे गया, और शंका निवारण की। तब से जनक ब्राह्मण हो गया।[1]

श्वेतकेतु आरुणेय पांचालों की परिषद में गया और प्रवाहण जैवलि ने उससे कुछ प्रश्न पूछे—पर वह उत्तर न दे सका—तब वह उदास हो अपने पिता गौतम के पास आया और उससे यह बात कही। गौतम ने कहा—इन प्रश्नों का उत्तर तो मुझे भी ज्ञात नहीं है। फिर गौतम शिष्य की भांति प्रवाहण क्षत्रिय के पास गया—तब प्रवाहण ने कहा—हे गौतम, यह विद्या तुम से पहिले किसी ब्राह्मण ने नहीं प्राप्त की। यह केवल क्षत्रियों ही की है। और तब उसने गौतम को ज्ञान दिया। इस प्रकार के अनेक उदाहरण उपनिषदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में हैं।

उपनिषदों का धर्मपथ —

जब आर्यों में बुद्धिवाद का उदय हुआ, और ब्राह्मणों में वर्णित यज्ञ के विधानों की निरर्थकता वह समझने लगे, तो वह आत्मा और परमात्मा के विषय में भी सोचने लगे। सर्वगत आत्मा, पुनर्जन्म, मुक्ति और सृष्टि की उत्पत्ति इन चार बातों का उपनिषदों में विवेचन किया गया है। ये ही वह चार बातें थीं जो बुद्धिवादियों के मन में उत्पन्न हुईं, और उन्होंने यज्ञों और यज्ञकर्ता ब्राह्मणों से एक प्रकार का विद्रोह करके उपनिषदों की ज्ञान संस्था स्थापित की।

सर्वगत आत्मा का सिद्धान्त उपनिषदों के दर्शनशास्त्र की जड़ है। ईश्वर सर्वआत्मा है। संसार की सब वस्तुएँ उसी से उत्पन्न हुई हैं, और अन्त में उसी में मिल जाएँगी। जगत में जो कुछ है वह सब ब्रह्म है। जगत की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश ब्रह्म के रूप में ही है। वह सर्वज्ञ जिसका शरीर आत्मा है, रूप ज्योति है, विचार सत्य है, जो आकाश की भांति व्यापक और अदृश्य है, जिससे सब कर्म और इच्छाओं की पूर्ति होती है, वही सबों में व्याप्त है, वही आत्मा है। वह छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी वस्तु में है। वही ब्रह्म है। ये विचार हैं जो उपनिषदों में

१—शतपथ ब्रा० ११।६।२१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व्यक्त किए गए हैं। यही शिक्षा है जो उपनिषदों में रूपकों, कहानियों और उदाहरणों द्वारा व्यक्त की गई है। इसी के कारण उपनिषद् सब ज्ञानों में श्रेष्ठ मान लिए गए हैं।

उपनिषदों का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त पुनर्जन्म का है। जिनके कर्म क्षय हो जाते हैं, उन्हें मुक्ति मिलती है। और जिनकी मुक्ति नहीं होती, उनका फिर जन्म होता है। मुक्ति का सिद्धान्त छान्दोग्य में और पुनर्जन्म का वृहदारण्यक में अच्छी तरह समझाया गया है। जिस प्रकार सुनार सोने के टुकड़े को लेकर उसका नया सुन्दर रूप बना देता है उसी प्रकार आत्मा इस शरीर को छोड़कर और सब अज्ञान को दूर करके एक नया और सुन्दर रूप धारण करता है। परन्तु जो इच्छारहित है, वह आत्मा ब्रह्म में लीन हो जाती है। वह जो शान्त, दबा हुआ, सन्तुष्ट, सहनशील और एकाग्रचित होकर आत्मा को देखता है, वह सब पापों को जीत लेता है, और ब्रह्मलोक में प्रवेश करता है। यही मुक्ति का वह सिद्धान्त है जिसे मृत्यु ने नचिकेता को बताया था।

उपनिषदों का आध्यात्मतत्त्व प्रत्यक्ष से परे हैं और अनुभव से अगोचर है।

नचिकेता के पिता ने उसे यम वैवस्वत के पास भेजा। उसने उसके निवास में जाकर पूंछा

"जब मनुष्य मर जाता है तो शंका होती है। कोई कहता है वह है, कोई कहता है वह नहीं है, यह मैं तेरे मुख से जानना चाहता हूँ"।

यम उसे जीवन और मृत्यु के भेद नही बताना चाहता था[1]। उसने कहा-गाय, हाथी, घोड़े, स्वर्ण, मांग। दास दासी मांग। पृथ्वी का राज्य मांग। सुन्दर कुमारियाँ माँग। पर यह रहस्य मत पूंछ।

नचिकेता ने कहा—तू ये सम्पदा अपने पास रख और मुझे वही भेद बता। तब यम ने जीवन और मृत्यु के रहस्य--आत्मा के अमरत्त्व के सिद्धान्त उसे समझाऐ[2]।

जर्मन दार्शनिक शोपनहार :--

उपनिषद् पढ़कर प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शोपनहार ने लिखा है 'प्रत्येक पद से गहरे नवीन और उच्च विचार प्रकट होते हैं। सबमें उत्कृष्ट पवित्र और सच्चे भाव वर्तमान है। ...अनरूप आत्माओं के नवीन विचार चारों ओर है, समस्त संसार में मूल पदार्थों को छोड़कर किसी अन्य विद्या का अध्ययन ऐसा लाभकारी, और हृदय को उच्च बनाने वाला नहीं है जैसा कि उपनिषदों का। इसने मेरे जीवन को शांति दी है। और यह मृत्यु के समय भी मुझे शांति देगा"।

१—छान्दोग्य उ० सप्तम पाठ।

२—वृहदारण्यक उप०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

६--आर्ष कालीन सभ्यता

आर्ष कालीन सभ्यता—आर्ष कालीन सभ्यता में वैदिक सभ्यता से बहुत अन्तर पड़ गया था। सैंकड़ों वर्ष की सभ्यता और उन्नति का समाज पर प्रभाव पड़ा था। उससे इस काल के आर्यों की सामाजिक चाल व्यवहार और रहन सहन बहुत बदल गए थे। वे अधिक सभ्य शिष्ट और व्यवस्थित हो गए थे। उन्हों ने अपने घर के सामाजिक काम के विस्तृत नियम बना लिए थे। और उनके जीवन के सब काम नियम के अनुसार होते थे। राजा की सभा में सब जाति के विद्वानों और बुद्धिमानों का आदर सत्कार होता था। विद्वान् अधिकारी लोग न्याय करते थे। बड़े बड़े महलों और सुन्दर हवेलियों से भरपूर सम्पन्न नगर बन गए थे। जिनमें व्यवस्थित न्यायालय और नगर रक्षक स्थापित हो चुके थे। खेती की बहुत उन्नति हो चुकी थी, और राज्यधिकारी लोग कर उगाहने और किसानों के हित की व्यवस्था करते थे।

कुरु पांचालों की परिषदें—वैदेहों, काशियों, कुरु पांचालों की राज सभाएं विद्या का मुख्य केन्द्र थीं। इन सभाओं में यज्ञ करने वाले और विविध विद्याओं की उन्नति करने वाले विद्वान् रक्खे जाते थे। विशेष अवसरों पर दूर दूर के विद्वान् ऋषि मुनि बुलाए जाते थे, और वे आत्मा, ईश्वर, देवता, पितृ और जीवों के विषय में बड़े बड़े शास्त्रार्थ करते थे।

राज सभाओं के अतिरिक्त विद्वान् आचार्यों ने परिषदें स्थापित की हुई थीं, जिनमें २१ तक आचार्य बटुकों को दर्शन, वेदान्त और स्मृतियों की शिक्षा देते थे। किसी गांव के ३ या ४ योग्य विद्वान् भी जो वेदपाठी होते थे, और होमाग्नि रखते थे, परिषद् बना सकते थे। इनके अतिरिक्त अकेला विद्वान् भी अपना गुरुकुल स्थापित कर सकता था। इन परिषदों और गुरु कुलों में देश के भिन्न भिन्न भागों से विद्यार्थी लोग इकट्ठे हो जाते थे। जो बारह वर्ष या उससे भी अधिक समय तक गुरु की सेवा करते और ज्ञान अर्जन करते थे।

वानप्रस्थ—बहुत से विद्वान् संसार का माया मोह तज कर बनमें वानप्रस्थ हो कर रहते थे। उनके पास भी बहुत से बटुक क्षात्र ज्ञानार्जन करने के लिए पहुँच जाते थे। इस प्रकार इस काल में सरल भाव से हजारों वर्ष तक विद्या और ज्ञान की उन्नति होती रही। संसार की और दूसरी प्राचीन जाति में वैसी ज्ञान पिपासा उस काल में नहीं थी।

गृहस्थ धर्म—परिषदों और गुरुकुल से विद्याऐं सीखकर ये तरुण छात्र विवाह करके गृहस्थ होते थे। उस काल में आजकी भांति गृहस्थ नहीं होते थे। गृहस्थों को गृहस्थ का आचार और धर्म पालन करना पड़ता था। उसका पहला धर्म था, होम-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अग्नि की घर में स्थापना, और नित्य होम करना। अतिथि–सत्कार भी गृहस्थ का एक प्रधान कर्त्तव्य था। गृहस्थधर्म में इन नियमों का पालन होता था, सत्य बोलना, कर्त्तव्य से न टलना, वेद पढ़ना, देवता, पितर, गुरु और माता–पिता की पूजा करना, उस काल में समाज की सुख और समृद्धि से परिपूर्ण दशा चल रही थी। यज्ञ में पुरोहित कहता है कि 'हमारे राज्य में ब्राह्मण लोग धर्म से रहें। योद्धा बलवान और शस्त्र चलाने में चतुर हों। गौवें बहुत सा दूध दें। बैल बोझा ढोएं और घोड़े तेज़ हों। हमारी स्त्रियाँ घरों की रक्षा करें और युवक सभ्य हों। समय पर वृष्टि हो। समय पर धान्य पके। हमारे मनोरथ सिद्ध हों, और हम सुखी रहें।'

नागरिक—धनवानों के पास सोना, चांदी, जवाहरात, गाड़ी घोड़ा, गाय, खच्चर, दास, घर, खेत और हाथी भी होते थे। यज्ञों में स्वर्ण का दान उत्तम समझा जाता था। चांदी, जस्त, टीन और लोहे का प्रयोग होता था। यज्ञों में हज़ारों दासियाँ दान में दी जाती थीं। भोजन में अन्न, पशुओं का मांस, चावल, तिल, जौ, उड़द, गेहूं, मसूर का उपयोग होता था। आटे में दही, शहद और घी मिलाकर कई तरह की रोटियाँ बनाई जाती थीं। दूध से भी अनेक पकवान बनते थे।

नगर—नगर दीवारों से घिरे रहते थे। उनमें सुन्दर भवन होते थे और गलियां होती थीं। राजा का महल नगर के बीच में होता था, जहाँ हमेशा चहल पहल रहती थी। राजभक्ति से बढ़कर और कोई बात नहीं मानी जाती थी। सोना, चांदी, जवाहर, गाड़ी घोड़ा, खच्चर, दास और खेत गृहस्थों और नगर निवासियों की सम्पत्ति थे। सब प्रतिष्ठित घरानों में पवित्राग्नि रहती थी। वे अतिथियों का सत्कार करते और देश के कानून के अनुसार रहते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य एक साथ ही शिक्षा पढ़ते और विवाह के बाद गृहस्थों की भांति रहने लगते थे। पुरोहित और योद्धा भी समाज का एक अंग थे। जनसाधारण के साथ उनका रोटी–बेटी का व्यवहार था।

कारीगर सभ्य समाज की विविध आवश्यकताओं को पूरा करते थे। और वे पुश्तदर–पुश्त अपना पुश्तैनी रोज़गार करते चले जाते थे। परन्तु इस समय तक उनमें जाति–भेद उत्पन्न नहीं हुआ था। गांव का प्रबन्ध और निपटारा पंचायत द्वारा होता था। स्त्रियां पर्दा नहीं करती थीं। वे पैतृक सम्पत्ति पातीं और सम्पत्ति की मालिक होती थीं। वे यज्ञ और धर्म कार्यों में समान भाग लेतीं और बड़े-बड़े अवसरों पर बड़ी सभाओं में जातीं तथा ज्ञान-चर्चा शास्त्रार्थ, राजनीति और शासन में भाग लेती थीं। कुछ स्त्रियां ब्रह्मवादिनी थीं, जिनमें याज्ञवल्क से शास्त्रार्थ करने वाली गार्गी, याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी ऐसी ही स्त्रियां थीं। स्त्रियां एहिलौकिक और पारलौकिक सभी कार्यों में पुरुषों की जीवन-संगिनी थीं। विधवा विवाह प्रचलित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था। यद्यपि वर्ण भेद स्थापित हो चुका था, परन्तु विवाह में वर्ण भेद का विचार नहीं किया जाता था।

वर्ण व्यवस्था—इस काल में आर्य जाति में जो सबसे बड़ा भारी परिवर्तन हुआ, वह वर्ण व्यवस्था की स्थापना थी। प्राचीन आर्य लोग एक ही वर्ण के थे और वे हज़ारों वर्ष तक बाहरी लोगों से अलग ही रहे। इसका एक परिणाम यह हुआ कि उनके सामाजिक नियम कठोर होते गए। अब ये पांच शताब्दियों तक शान्ति पूर्वक गंगा और जमुना की उपजाऊ और रमणीक घाटियों में रहकर बड़े-बड़े सभ्य राज्य स्थापित कर चुके थे। दर्शन विज्ञान और शिल्प की उन्नति उन्होंने की थी। उनका समाज और धर्म उन्नत अवस्था में था। ऐसी परिपाटी हो गई थी कि परम्परा से पुत्र पिता का ही काम करता था। अब धार्मिक नीतियों में बहुत से आडम्बरों का प्रवेश हो गया था, और राजा लोग अनगिनत विधानों से बड़े-बड़े यज्ञ करने लगे थे, इसलिए जहां राजाओं की और योद्धाओं की पृथक् जाति बनी वहां ब्राह्मण और पुरोहितों की भी पृथक् जाति बन गई; जो आगे चलकर क्षत्रिय, ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन दोनों वर्णों के अतिरिक्त जो साधारण लोग बचे वे कृषि, पशु पालन और वाणिज्य करने लगे और विश कहलाए। आगे चलकर इनकी भी दो श्रेणियां हो गईं, और उनमें से जो श्रेष्ठ और सम्पन्न थे, उन्होंने वाणिज्य-व्यापार का विस्तार किया, और जो पिछड़े हुए लोग थे वे पशु-पालन, कृषि और सेवा में लगे रहे। यही आगे चल कर वैश्य और शूद्र इन दो वर्णों में विभाजित हो गए। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों का सृजन हुआ।

इस काल का भारत—यह एक अद्भुत बात है कि इस काल तक आर्य अन्य बाहरी लोगों से नहीं मिले। वेद काल के अन्त में पुरोहितों की एक व्यवसायिक कुल-परम्परा हो गई। और राजा लोग एक से बढ़कर एक आडम्बर से यज्ञ करते गए। इन यज्ञों के कारण ब्राह्मणों का बहुत सत्कार बढ़ा। और वह सामान्य जनों से पृथक् एक श्रेष्ठ जाति बन गई। उनकी संतान पैत्रिक विधि सीखने और करने में जीवन व्यीतत करने लगी, और अपने को पवित्र कर्म करने के पात्र समझने लगी। इनमें जाति के अभिमान की मात्रा बढी, और अपनी ही जाति में विवाह सम्बन्ध करने की परिपाटी जारी हुई। वे दूसरी जाति की लड़की ले सकते थे, पर देते नहीं थे। आगे यह मर्यादा अलंघ्य हो गई। यही जाति भेद का मूल कारण हुई। यही बात क्षत्रियों के सम्बन्ध में भी हुई। क्षत्रिय सर्वसाधारण से श्रेष्ठ, उनके रक्षक और आश्रयदाता समझे जाने लगे। कोशल और विदेह कुलों के ठाठ बाट भी बड़े भड़कीले थे। ऐसी अवस्था में उनकी कन्याओं का विवाह भी सर्व साधारण में असम्भव हो गया। इस प्रकार ब्राह्मण और क्षत्रिय जब औरों से पृथक् हो गए और ऐसी स्थिति हो गई कि दीनातिदीन ब्राह्मण कन्या भी महा ऐश्वर्यवान्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैश्य को नहीं दी जा सकती थी। यही जाति-भेद की उत्पत्ति का कारण था।

यज्ञोपवीत—इसी काल में ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य यज्ञोपवीत पहनने लगे।[1] परन्तु यज्ञोपवीत यज्ञ करते समय ही पहना जाता था।

गृहस्थ आदर्श—विवाह के बाद गृहस्थ धर्म का पालन करना होता था। जिनमें अग्निहोत्र मुख्य था। सुखी समाज का आदर्श यह था—

"हमारे राज्य में ब्राह्मण धर्म से रहें, हमारे योद्धा बलवान और शस्त्र चलाने में निपुण हों, हमारी गाएँ दुधारु हों. बैल बहुत सा बोझा ढोएँ, घोड़े तेज़ हों, स्त्रियां घर की रक्षा करें, राजा जयी हों, युवा सभ्य हों, पर्जन्य समय पर वृष्टि करें, हमारे खेतों में खूब धान्य हो, हमारे मनोरथ सिद्ध हों और हम सुखी हों।"[2]

शासन व्यवस्था—इस काल की शासन व्यवस्था और समाज संगठन का एक अपूर्व उदाहरण यह है—

केकय देश के राजा अश्वपति ने एक यज्ञ किया, उसमें ऋषिशाल, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जन कुण्डिल आदि-आदि ब्राह्मण ऋत्विग् होकर आए। उद्दालक आरुणि उस काल उधर होकर कहीं जा रहे थे। राजा ने सुना, तो वह उनके पास गया। और बोला—

"न मेरे राज्य में चोर है, न कायर है, न मद्यप है, न कोई ऐसा है जो नित्य अग्निहोत्र न करता हो, न कोई मूर्ख है, न व्यभिचारी न व्यभिचारिणी है, फिर आप क्यों नहीं मेरे राज्य में वास करते हैं? आप भी इस यज्ञ में ऋत्विग् बनिए। मैं जितना अन्य ब्राह्मणों को स्वर्ण दूंगा, उतना ही आपको भी दूंगा। कृपा कर मेरे नगर में आइए।"[3]

राज्याभिषेक के समय पुरोहित कहता है—

"यदि तुम शासक हुआ चाहते हो तो आज से समर्थों और असमर्थों पर बराबर न्याय करो। प्रजा पर निरन्तर हित करने का दृढ़ विचार रक्खो, और सब आपत्तियों से देश की रक्षा करो।"[4]

राजाओं की दानशीलता का एक उदाहरण है—

अत्रि के पुत्र ने १० हजार हाथी और १० हजार दासियों को दान किया था, जो गले में स्वर्णाभूषणों से भली भांति सज्जित थीं।[5]

१—शतपथ २।४।२। कोशीतकि उपनिषद् २।७।

२—शुक्ल यजुर्वेद २२। २३

३—शतपथ ब्रा० १०।६।१।१ और छान्दोग्य ३० (५। २)

४—शुक्ल यजुर्वेद।

५—ऐतरेय ब्रा० ८। २२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नियम कायदे—उपनिषद् और ब्राह्मणों को देखने से यह प्रमाणित होता है—

सामाजिक और व्यक्तिगत सूक्ष्म नियम बन गए थे। राजाओं की सभा विद्या-केन्द्र थी, उनमें सब जाति और सब देश के विद्वान् बुलाए जाते थे और उनका सत्कार होता था। विद्वान् अधिकारी न्याय करते थे। और जीवन के सब काम नियम से किए जाते थे। नगर मजबूत शहरपनाहों से और घर मजबूत दीवारों से घिरे रहते थे। प्रत्येक नगर में न्यायाधीश, नगर रक्षक और दण्डाधिकारी रहते थे। खेती की निरन्तर उन्नति होती थी। राज्याधिकारी का काम कर उगाहने और किसानों के हित देखने का था। गृहस्थ धर्म इस प्रकार थे—

'सत्य बोलो, अपना कर्तव्य करो, वेदों का पढ़ना मत छोड़ो, हितकारी बातों की उपेक्षा मत करो, पढ़ाई में आलस्य मत करो, देवता और पितरों के कामों को मत भूलो, माता–पिता और गुरु को देव तुल्य जानो और मानो, निष्कलङ्क काम करो, पूर्वजों के उत्तम ही कामों का अनुसरण करो, निकृष्टों का नहीं।"[1]

नगर-व्यवस्था—अयोध्या, मिथिला, काम्पिल्य, हस्तिनापुर प्रख्यात नगर थे—

बड़े-बड़े नगर चारों ओर परिखाओं से वेष्ठित होते थे। उनके बीचों बीच में राज प्रासाद और गगन भेदी वास-भवन थे। कलशों से इन भवनों की शोभा और भी बढ़ी चढ़ी थी। सड़कें चौड़ी और साफ होती थीं। पुष्प वाटिकाएँ और उपवन उपकण्ठों को सुशोभित करते थे। राज दर्बार सामन्तों और विद्वानों से भरे रहते थे। जहां सरदार, सिपाही, ब्राह्मण और पुरोहित आते जाते ही रहते थे। सोना, चांदी, जवाहरात, गाड़ी घोड़ा, खच्चर, दास और अन्न उस समय के नागरिक की सम्पत्ति थी। सब यज्ञ करते थे। अतिथि सत्कार का बहुत महत्त्व था। देश का कानून मान्य था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के बालक एक ही धर्म की शिक्षा पाते थे। पुरोहित और योद्धा सर्वसाधारण के अग्र थे। कारीगर पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने काम में लगे रहते थे। कृषक अपने पशु और खेती की सामग्री लिए गांवों में रहते थे। उनके झगड़ों का निपटारा ग्राम पंचायत करती थी।

स्त्रियां पर्दा नहीं करती थीं। समाज में वे प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखी जाती थीं। योद्धा उनका सम्मान करते थे। वे पैत्रिक सम्पत्ति की मालिक होती थीं। यज्ञ और धर्म कार्य उनके बिना नहीं हो सकते थे। वे बड़ी-बड़ी सभाओं में जाती थीं, और उस समय के गहन विषयों पर शास्त्रार्थ करती थीं। राजनीति और शासन में उनका समान अधिकार था।

१—छान्दोग्य उपनिषद् ५।१३।१७।१९।१०।२४।
शतपथ ब्रा० ३।२।२९। तैत्तिरीय ३०१।१२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उस काल की राजनैतिक योग्यता इस वाक्य से प्रकट होती है। इस वाक्य में कानून की व्याख्या की गई है—

कानून—"कानून क्षत्र का क्षत्र (बल) है। इसलिए कानून से बढ़कर कोई चीज नहीं है। राजा की सहायता की भांति कानून की सहायता से दुर्बल मनुष्य भी सबल मनुष्य पर शासन करता है। इस प्रकार कानून वही बात कहता है जो सत्य है। जब कोई मनुष्य सत्य बात कहता है तो लोग कहते हैं कि वह कानून कहता है, और यदि वह कानून कहता है तो लोग कहते हैं कि वह वही कहता है जो कि सत्य है। इस प्रकार सत्य और कानून दोनों एक हैं।"[१]

तत्कालीन विद्या सम्बन्धी योग्यता का उदाहरण यहां देते हैं—

नारद ने सनत्कुमार के पास जाकर कहा—मैं विद्या पढ़ना चाहता हूँ। सनत्कुमार ने पूछा—अब तक क्या पढ़े हो? तब नारद ने कहा—"ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, वेदों का वेद, व्याकरण, पित्र्य (पारलौकिक रहस्य), राशि (गणित शास्त्र), दैव (शुभ लक्षणों का शास्त्र), निधि (समय का शास्त्र), वाक्यों वाक् (तर्क शास्त्र), एकायन (नीति विद्या), देव विद्या (शब्दों की उत्पत्ति, ब्रह्म विद्या (ईश्वर ज्ञान), भूत विद्या (प्राणि शास्त्र), क्षत्र विद्या (शस्त्र चलाना), नक्षत्र विद्या (ज्योतिष शास्त्र), सर्प विद्या, देवञ्जन विद्या; यह सब मैं जानता हूं।"

ज्योतिष—वर्ष बारह चान्द्र मासों में बंटा था। और चान्द्र काल को सौर्य काल से मिलाने को तेरहवां मास जोड़ा जाता था।[२] वर्ष की छः ऋतुओं के नाम मधु, माधव, सुक्त, सुचि, नभ और नभस्य थे। उनका सम्बन्ध भिन्न-भिन्न देवताओं से था।[3] चन्द्रमा की गति मालूम हो गई थी। नक्षत्र के हिसाब से चन्द्रमा की स्थिति का ज्ञान था।[४] नक्षत्रों और राशि चक्रों का अन्तिम रूप भी निश्चिन्त हो गया था, तथा ज्योतिष शास्त्र जुदा शास्त्र माना जाता था। ज्योतिषी नक्षत्रदर्श और गणक कहाते थे।[५] कृष्ण यजुर्वेद में २८ नक्षत्रों के नाम हैं, इसके पीछे के नाम अथर्व संहिता और तैत्तिरीय ब्राह्मण में हैं। सत्र और यज्ञ नक्षत्र गणत्र से होते थे। इसी काल में चान्द्र राशिचक्र को स्थिर करके बड़ी २ घटनाओं की तिथि नियत करने के लिए अयनान्त जानकर वर्ष को महीनों में बांटा गया। और प्रत्येक

१—वृहदारण्यक उप० १।४।१५।
२—ऋग्वेद १।२५।८।
३—ऋग्वेद (२।३६)
४—ऋग्वेद १०।८५।१३।
५—तैत्तिरीय ब्रा० ४।५ और शुक्ल यजुर्वेद ३०।१०।२०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महीने का नाम उस नक्षत्र के हिसाब से रक्खा जिस नक्षत्र में उस मास का पूर्ण चन्द्र होता था।

ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् का समाजवाद—

ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों में गंगा की घाटी में रहने वाले कुरु, पांचालों और कौशलों तथा विदेहों के धार्मिक और सामाजिक जीवन का वर्णन मिलता है।

इन ब्राह्मण ग्रन्थों में सबसे महत्त्वपूर्ण एवं विचारणीय बात जो हमें देखनी है—वह यह है कि यह काल पुरोहितों का अर्थात् धर्माधर्मों के प्रभुत्व का है। यह भी कहा जा सकता है कि जनसाधारण उस युग में उनकी आज्ञाकारिता में संशय नहीं कर सकते थे। इन ग्रन्थों को भी आर्य ईश्वर कृत अर्थात् अपौरुषेय मानते थे। इस युग में निस्सन्देह आर्यों ने बहुत उन्नति कर ली थी—वर्तमान दिल्ली के आस-पास के प्रदेशों में कुरुओं का, वर्तमान कन्नौज के आसपास विदेहों का, अवध में कौसलों का और बनारस के आसपास कासियों का राज्य स्थापित हो चुका था। इन में बड़े बड़े यज्ञ करने वाले राजा थे, जिनमें जनक–जनमेजय, परीक्षित आदि प्रतापी और ब्रह्मज्ञ ,राजा थे—इन्हीं दिनों वर्ण व्यवस्था की नई रीति चलाई गई थी—जिसकी सभ्यता का वर्णन हमें इन ग्रन्थों में मिलता है। पंजाब को जैसे लोग भूल गए थे। और दक्षिणापथ सम्भवतः अभी आर्यों से अपरिचित या अल्प परिचित था।

वास्तव में ये लोग अब वे योद्धा नहीं थे जिन्होंने सिन्ध नद और उसके आसपास के अनार्यों और दासों से जमीन छीन ली थी। अब ये महा साम्राज्यों के स्वामी थे। कला कौशल और राजनीति की मर्यादा बढ़ाकर इन लोगों ने एक अपनी सभ्यता कायम कर ली थी। इनकी सभाओं में बड़े बड़े पण्डित अज्ञेय बौद्धिक विषयों पर बड़े बड़े गहन और मार्मिक विवाद करते तथा समय-समय पर बड़े बड़े आडम्बर युक्त यज्ञ करते थे। इनकी सेनाएँ चतुरंगिणी और शिक्षित सेना-पतियों से युक्त होती थीं, कर उगाहने और न्याय करने की भी ठीक व्यवस्था थी। धनुष चलाना, रथ पर बैठ कर युद्ध करना ये लोग जान गए थे। इनकी राज सम्पदा, स्थाई राजमहल, मन्त्री, राजसभा, हाथी, घोड़ा, पैदल, रथ आदि खूब सम्पन्न थे। पुरोहितों की एक पृथक् जाति बन गई थी और राजाओं की अलग। नगर और ग्राम बस गए थे। होमाग्नि उनके घर में स्थापित रहती थीं—वेद की वे प्रतिष्ठा करते. एवं परम्परा से उन्हें याद करते थे—समाज में स्त्रियों का बहुत कुछ स्वतन्त्र स्थान था। वे पर्दा नहीं करती थीं—ये कुरु और पांचाल राजनैतिक कारणों से प्रतिद्वन्दी हो गए थे—और परस्पर युद्ध करते थे। ये लोग जमीन साफ करते और उसे खेती के योग्य बनाते हुए पूर्व की ओर गण्डक नदी तक बढ़ आए थे—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिसके पूर्वी और पच्छिमी तटों पर उन्होंने विदेह और कौशल दो महाराज्यों की स्थापना की थी। आगे चलकर विदेहों का राज्य समस्त उत्तर भारत में विस्तार पा गया था—यजुर्वेद का नवीन संकलन करने वाला, तथा शतपथ ब्राह्मण का निर्माता एवं दिग्गज ब्रह्मदर्शी एवं यज्ञकर्ता ब्राह्मण याज्ञवल्क्य जनक विदेह की सभा का महा विद्वान् था। जो स्वयं भी महा सम्पत्तिशाली था। उपनिषद् के ज्ञाता जनक महा ब्रह्मज्ञानी थे—और उनकी राज सभा ब्रह्मज्ञानी जनों का केन्द्र थी। वे यद्यपि कर्मकाण्ड ब्राह्मणों से कराते थे—परन्तु उन्होंने अपने विचार अधिक पुष्ट कर लिए थे और ब्रह्मज्ञ कहाते थे—जिससे कि क्षत्रियों के सामने ब्राह्मणों ने हार मानी थी। सामाजिक जीवन में ब्राह्मण और क्षत्रिय समान थे। परन्तु उनकी स्पर्द्धा चली ही जाती थी—ब्राह्मण और क्षत्रिय अपने ही वर्ण में विवाह करने लगे थे—परन्तु वे कृपा पूर्वक अन्य वर्ण की कन्या भी ले लेते थे। राजसत्ता, संगठन और ब्रह्मज्ञानी होने के कारण सम्मान और ऐश्वर्य में क्षत्रिय बहुत बढ़ गए थे—ऐसी दशा में उनकी कन्या सर्व साधारण मांगने की धृष्टता नहीं कर सकते थे। परन्तु ब्राह्मण धन और सम्मान में उनके बराबर थे, उनके साथ उनके अबाध रोटी-बेटी के सम्बन्ध होते थे। बाद में जब क्षत्रियों पर उन्होंने प्रधानता प्राप्त की, तब उन्होंने क्षत्रियों को कन्याएँ देना बन्द कर दिया।

इसमें सन्देह नहीं कि इस काल का यह वर्ण भेद व्यवसाय प्रधान था। वायु पुराण में लिखा है—"आदि या कृत युग में जाति भेद नहीं था—और इसके उपरान्त ब्रह्मा ने मनुष्यों के कार्य के अनुसार उनमें भेद किया। उनमें से जो शासन करने योग्य तथा वीर योद्धा थे, तथा औरों की रक्षा में समर्थ थे, वे क्षत्रिय बने। वेदपाठी और कर्मकाण्डी लोग ब्राह्मण। तथा किसान और व्यापारी वैश्य तथा छोटे लोग शूद्र बन गए। खास २ अवस्थाओं में वैश्यों से भी ब्राह्मण और क्षत्रिय विवाह कर लेते थे।"

यद्यपि इस प्रकार ये वर्ण विभाग इस काल में हो गए थे—परन्तु फिर भी वे सब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपने को एक आर्य जाति में एकत्र समझते थे। वे जुदा २ एक ही पैत्रिक व्यवसाय करते थे—पर ग्राम को एक ही जाति का समझते थे। धर्म की शिक्षा पाते थे—एक ही गुरुकुल में पढ़ते थे, उनकी एक ही कहावतें और एक ही साहित्य था। वे सब एक साथ मिलकर खाते पीते और बेटी व्यवहार करते थे। और अपने को पराजित आदिवासियों से भिन्न आर्य कहने में अपना गौरव समझते थे। जाति भेद भी कुछ ऐसा कड़ा न था—ऐतरेय ब्राह्मण '६०-२९' में एक गाथा है कि जब कोई क्षत्रिय किसी यज्ञ में किसी ब्राह्मण का भाग खा लेता है तो उसकी संतान ब्राह्मणों के गुण वाली हो जाती है। जो दान लेने में तत्पर, सोम की प्यासी, और भोजन की भूखी होती है तथा इच्छानुसार सब जगह घूमा करती है। जब वह वैश्य का भाग खा लेता है तो वह वैश्य के गुण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वाली बन जाती है—जो राजा को कर देती है, जो दूसरी या तीसरी पीढ़ी में वैश्य बन जाती है–जब वह शूद्र का भाग खा लेती है तो उसकी सन्तान में शूद्र के गुण हो जाते है –उन्हें तीनों जातियों की सेवा करनी पड़ती है, वे मालिकों की इच्छानुसार पीट कर निकाल दिए जाते हैं, और दूसरी या तीसरी पीढ़ी में शूद्र हो जाते हैं। पाठक अनुमान लगा सकते हैं—कि इस भावना ने चार वर्णों में विभाजित आर्यों को परस्पर एक दूसरे का अन्न खाने से रोकने में कितनी सहायता दी होगी।

परन्तु वैदिक काल की अपेक्षा इस काल की आर्य जाति में सिर्फ एक यहीं अन्तर नहीं पड़ा कि उनमें अनेक वर्ण हो गए - प्रत्युत सैकड़ों वर्ष की सभ्यता और उन्नति से समाज को अधिक विकसित और समृद्ध बना दिया। उन्होंने अपने घर के तथा सामाजिक कार्यों के सूक्ष्म नियम बना लिए, राज सभाओं में सब श्रेणी के विद्वान् आकर पुरस्कृत होते तथा जीवन के सब कार्य नियमानुसार करने के विधान बनाते थे। नागरिकता बढ़ गई थी–स्थापत्यकला उन्नत हो चली थी–बड़े २ नगर और महलों का निर्माण हो चुका था। राज्याधिकारी गण खेती तथा खेती करने वाली श्रेणी की उन्नति करने तथा कर उगाहने में बहुत व्यवस्था से काम लेने लगे थे। राज समाजों के विद्वद्गण यज्ञ तथा विद्या विचार सम्बन्धी ग्रन्थों का सकलन एवं निर्माण करते थे—आज जो ब्राह्मण ग्रन्थ हमें देखने को मिलते हैं–वे इन्हीं विद्वानों ने इसी युग में निर्माण किए थे। समय २ पर यहां बड़े २ गम्भीर विषयों पर शास्त्रर्थ भी होते थे। इन राज समाजों के अलावा विद्वानों की परिषद होती थी। जिनके विषय में पराशर कहते हैं कि ३। ४ वेदज्ञ और होमाग्नि रखने वाले ब्राह्मण परिषद् बना लेते थे। जहां युवक विद्याध्ययन करते थे। युवाश्वेत विद्याध्ययन के लिए पांचालों की परिषद् में गया था[1]। "बृहदारण्यक ड० ६। २"

इन परिषदों के अलावा कोई २ एक आचार्य भी अपना गुरुकुल स्थापित करते थे। जहां देश विदेश के विद्यार्थी विद्योपार्जन करत थे। ये विद्यार्थी बारह या अधिक वर्षों तक गुरु सेवा करके विद्याध्ययन करते—पीछे गुरु दक्षिणा देकर घर लौट जाते थे। इसके बाद ही उन्हें विवाह का अधिकार होता था। वे घर आकर विवाह करते और गृहस्थ होकर रहते थे। गृहस्थों के धर्म भी बहुत से थे। शुभ नक्षत्र में होमाग्नि को जला देना, प्रतिदिन होम करना, अतिथि सत्कार करना आदि उन गृहस्थों के मुख्य कर्म थे।

"उपनिषदों में गृहस्थों के लिए ये आदेश लिखे हैं" :—

१—"सच बोलो, अपना कर्तव्य करो, वेदों का पढ़ना मत भूलो, गुरु को दक्षिणा दो। सत्य से मत टलो, कर्तव्य पर दृढ़ रहो, हितकारी बातों की उपेक्षा मत करो, बड़ाई में आलस्य मत करो, वेद पढ़ने में प्रमाद मत करो। धनी जनों के यहां

१—बृहदारण्यक उ० ६। २

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

धन, सोना, चांदी, जवाहर, गाड़ी, घोड़ा, गाय, खच्चर, दास–दासी, उपजाऊ खेत और हाथी होता था। "छांदो, उ० ५। १३। १७। १९। १०। २४" "शत० ब्रा० ३। २। २८। तैत्तिरीय ३ : १। १२।"

'देवताओं और पितरों की पूजा करो, गुरु, माता—पिता को देवता के समान मानो, निष्कलकार्यों के करने में मन न लगाओ, जो २ काम अच्छे लोगों ने किए हैं वही करो'।

ऐसे ही सदाचार सम्बन्धी अनेक नियम भी हमें देखने को मिलते हैं। स्त्रियों को पर्दे में रहना नहीं होता था, वे पैत्रिक सम्पत्ति में हिस्सा पाती थी। तथा सम्पति की अधिकारिणी होती थीं। यज्ञों और धर्म कार्यों में वे सम्मिलित होती थीं। बड़े २ अवसरों पर बड़ी २ सभाओं में वे जाती एवं सार्वजनिक जगहों में भी जाती थीं, विद्या और शास्त्र की वे ज्ञाता तथा यज्ञोपवीत की अधिकारिणी होती थीं। यहां हम याज्ञवल्क्य और उनकी स्त्री की बातचीत का एक उदाहरण देते हैं—जो बृहदारण्यक उपनिषद् में है।

१—"याज्ञवल्क्य ने वानप्रस्थ आश्रम में जाने का विचार किया, तब उसने कहा—मैत्रयी, मैं अब सचमुच इस घर से जा रहा हूँ। इसलिए मैं तुझ में और कात्यायनी में सब बातें ठीक २ कर दूँ।"

२—"मैत्रैयी ने कहा—स्वामिन्, यदि यह धन से भरी हुई सब पृथ्वी ही मेरी होती तो कहिए, कि क्या मैं अमर हो जाती ?"

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—नहीं; तेरा जीवन धनी पुरुषों की भांति होता, पर धन से अमर हो जाने की कोई आशा नहीं है।

३–"तब मैत्रैयी ने कहा–मैं उस वस्तु को लेकर क्या करूँ–कि जिससे मैं अमर नहीं हो सकती–मेरे स्वामी, आप अमर होने के विषय में जो कुछ जानते हो सो मुझ से कहिए।"

४—याज्ञवल्क्य ने कहा—"तू मुझे सत्य ही प्रिय है, क्योंकि तू प्रिय वाक्य बोलती है, आ, यहाँ बैठ, मैं तुझे इस बात को बताऊंगा—जो कुछ मैं कहता हूँ उसे सुन।"

और तब उसने उसे वह ज्ञान दिया, जो कि बारम्बार उपनिषदों में वर्णित है। मैत्रैयी ने उसी ज्ञान को संसार की सब सम्पत्तियों से श्रेष्ठ समझा। हम स्पष्ट देखते हैं कि इस युग में स्त्री अपने पति की जीवन संगिनी, बुद्धि विषयक साथी और धार्मिक कृत्यों में अभिन्न थी। इसी के अनुसार इसकी प्रतिष्ठा भी थी। हम यह कह सकते हैं हैं कि इस युग में या आगे जितना मान आर्य अपनी स्त्रियों का करते थे, उतना ग्रीस और रोम में सबसे सभ्य काल में भी नहीं था।

बाल विवाह की चर्चा हमें इस युग में नहीं मिलती, अलबत्ता बहुपत्नित्व की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथा अवश्य थी। जो कि अन्य प्राचीन जातियों में भी थी। परन्तु ऐसा बहुधा राजा महाराजा तथा बड़े २ धनी पुरुष ही कर पाते थे। हां अनेक पति रखने का निषेध था, एक पुरुष के कई पत्नियाँ होती हैं, पर एक स्त्री के एक साथ ही अनेक पति नहीं होते[1]।

ऐतरेय ब्राह्मण से हमें यह भी पता लगता है कि २ या ४ पीढ़ी तक आत्मीय सम्बन्धियों में विवाह करने की मनाही है, "भोगने वाले" पति "और भोगने वाली" पत्नी दोनों एक ही मनुष्य से उत्पन्न होते हैं, क्योंकि सम्बन्धी यह कहते हुए प्रसन्नता पूर्वक एकत्र होते हैं कि तीसरी या चौथी पीढ़ी में हम लोग फिर सम्मिलित होंगे :

विवाहिता पत्नी व्यभिचारिणी तो नहीं है, इसकी भी एक कठिन जांच का वाक्य हमें मिलता है।

"अब प्रतिप्रस्थातृ वहां जाता है जहाँ यजमान पत्नी है–उससे पूछता है कि वह किससे संसर्ग रखती है ? यदि वह किसी दूसरे पुरुष के संसर्ग को कबूल करती है तो वरुण की अपराधिनी होती है। इसी से वह उससे पूछता है; क्योंकि पाप कह देने से कम हो जाता है। क्योंकि वह सत्य हो जाता है, इसी से वह उससे पूछता है। यदि वह संसर्ग नहीं कबूलती है, तो उससे उसके सम्बन्धियों का अनिष्ट होना सम्भव है[2]।

१—"ऐतरेय ब्रा० ३। २३"
२—शतपथ ब्राह्मण २। ५। २। २०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरा अध्याय

दार्शनिक काल

ई० पू० ६८१ से ई० पू० ५५७ तक—४२४ वर्ष

यह वह युग था जब कि आर्यों ने विन्ध्याचल का उल्लंघन कर दक्षिणपथ को आक्रान्त किया था। और मध्य भारत में घुसकर गोदावरी और कृष्णा के किनारों पर बड़े बड़े राज्य कायम किए थे, जो शीघ्र समुद्र तट तक फैल गए। पूर्व में इस समय मगध का महान् साम्राज्य स्थापित हो चुका था, और बंगाल, उड़ीसा तक फैल चुका था। पच्छिम में सौराष्ट्र का राज्य अरब समुद्र तक विस्तृत हो चुका था। इस विस्तार से आर्य अधिक साहसी, सम्पन्न और मेधावी हो गए थे। विजित जातियों ने शताब्दियों के आर्य संस्कारों से प्रभावित होकर आर्य धर्म ग्रहण कर लिया था, और उनके आर्यों से रोटी-बेटी के सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे। अब उनमें न आर्यों के प्रति विरोध की भावना रह गई थी, न आर्यों में उनके प्रति। इसी से आर्यों की विचारधारा अब संकुचित न रह गई थी। उन्होंने अब अपने साहित्य को संक्षिप्त और प्रयोगिक रूप में, जिसमें गवेषणा तथा विज्ञान, और ज्ञान का बाहुल्य था—तथा बौद्धिक विकास की पराकाष्ठा थी—रूप दिया। संक्षेपतः सूत्र रूप में साहित्य बना।

साहित्य का सांस्कृतिक परिवर्तन—इस काल में जो सब से महत्त्वपूर्ण और विचित्र सांस्कृतिक परिवर्तन हुए, उन में साहित्य रचना की नई परिपाटी सब से महत्त्वपूर्ण थी। वेद जटिल थे, और ब्राह्मणों का विस्तार बहुत था। उपनिषदों की व्याख्या गहन और रहस्यपूर्ण थी। धार्मिक क्रिया कलाप बहुत जटिल और विस्तृत हो गए थे। बड़े २ ऋषि भी उन्हें भूल जाते थे। इस से इस काल के आचार्यों ने संक्षेप से सूत्र रूप में साहित्य रचना का आरम्भ किया। ये सूत्र बालकों को १०-१२ वर्ष की आयु में ही रटा दिए जाते थे। और २५ वर्ष की आयु तक वह उनका मनन करता था। इन सूत्रों में शब्द संकेत की प्रमुखता थी। ग्रन्थकार एक हद से हट कर दूसरी हद पर आ डटे थे। वे एक मात्रा भी कम कर पाते थे तो पुत्र जन्म के समान उत्सव मनाते थे।

सूत्र ग्रन्थ—इन सूत्र ग्रन्थों में षड़ दर्शन तो थे ही; जो धर्म मीमांसा के रूप में थे। उनके अतिरिक्त गृह सूत्र थे, जिनमें घरेलू जीवन के आदर्शों का वर्णन था। इनमें श्राद्ध, व्रत, हवन और संस्कारों की मुख्यता थी। कल्प सूत्र और शुल्व सूत्र यज्ञ सम्बन्धी थे। शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त और ज्योतिष इन छै वेदान्तों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की भी रचना इन सूत्रों ही द्वारा हुई, जिनमें पाणिनि की अष्टाध्यायी और यास्क का निरुक्त भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। वेदानुक्रमणिका भी सूत्र रूप में थी।

यह एक संक्रान्ति काल था, जब कि नवीन साहित्य बन रहा था। जिसकी परिपाटी ही नहीं, विषय भी नवीन थे। जहां एक ओर गुरु-शिष्य परम्परा से एक ही वेद की अनेक शाखाएँ प्रचलित हो रही थीं, दूसरी ओर नए विषय नई भाषा में लिखे जा रहे थे। यास्क, शाकटायन, औदव्रजि और पाणिनि ऐसे ही आचार्य थे जो साहित्य में नया स्फोट उत्पन्न कर रहे थे। इसी से ये उपज्ञाता आचार्य कहाते थे।[1]

इन सूत्रों की पद्धति निर्माण करने से शिक्षण पद्धति में बड़ा विकास हुआ; क्योंकि उस काल में भी विद्यार्थियों को सब कुछ कण्ठ ही करना पड़ता था--इस लिए उन्हें अल्प समय में अधिक ज्ञान हो सकता था। वे आधे समय में ही इन सूत्र ग्रन्थों को जैसा का तैसा कण्ठ कर सकते थे। अब एक खास बात यह थी कि इन्हें वेदों और ब्राह्मणों की भांति अपौरुषेय नहीं माना जाता था।

यूनानियों का भारत प्रवेश--लेकिन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण घटना जो इस काल में हुई, यूनानी लोगों का भारत पर आक्रमण करना है। उन्होंने भारत में आकर उसका अध्ययन भी किया और उसका इतिहास भी लिखा। भारत का सबसे पहला यूनानी विद्यार्थी पिथागोरस है। जो कि मसीह से पूर्व छठी शताब्दी में उत्पन्न हुआ था--उसने पुनर्जन्म और मुक्ति के सिद्धान्त यहीं से सीखे और सुल्ब सूत्रों से रेखागणित का अंकन सीखा। संख्याओं के गुण और पांच तत्वों का सिद्धान्त उसने सांख्य और न्याय दर्शन से सीखा। हैरोडोटस जो कि यूनान का प्रसिद्ध इतिहासज्ञ है—और जो मसीह की पांचवी शताब्दी प्रथम में हुआ--यद्यपि भारतवर्ष में नहीं आया--पर उसने भारत जीवन पर बहुमूल्य वर्णन लिखे हैं। यद्यपि उनमें कुछ भ्रान्त भी हैं, परन्तु मैगस्थनीज-जो मसीह की चौथी शताब्दि में भारत में आया, और पाटलीपुत्र के विख्यात सम्राट् चन्द्रगुप्त के दर्बार में रहा--भारत के तत्कालीन जीवन के बहुत सच्चे चित्र खींच सका। यद्यपि उसका मूल ग्रन्थ नहीं मिलता, और यत्रतत्र केवल उद्धरण ही मिलते हैं--फिर भी--उनका मूल्य बहुत है। ये तीन विदेशी वास्तव में भारत के दार्शनिक काल की तीन शताब्दियों के प्रामाणिक साक्षी है--जो मसीह से पूर्व छठी, पांचवीं और चौथी शताब्दियों में थे।

आर्यों का चौमुखा विस्तार-इस युग में आर्यों ने एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक और एक शताब्दी से दूसरी शताब्दी तक निरन्तर विजय करके भारत में चौमुखी

१--पाणिनिना उपज्ञातं पाणिनीयं व्याकरणम्, उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिरव्यासायाम् २।४।२१। काशिका।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विस्तार किया—ये केवल दिल्ली से आगे बढ़कर उत्तरी बिहार तक गंगा यमुना की सारी घाटी ही में नहीं बस गए–प्रत्युत, मसीह के लगभग १००० वर्ष पहिले दक्षिणी बिहार, मालवा, दक्षिण और गुजरात तक जा घुसे। आर्य आगे बढ़ते गए और आदिम-वासियों को विजय करते गए—विजित लोग आर्यों के धर्म और सभ्यता को अंगीकार करते गए। उन्होंने नदियों को पार किया–जंगल साफ किए और ऊसरों को उपजाऊ बनाया। जहाँ एकाध आचार्य ने जाकर आश्रम स्थापित किए, वहां धीरे २ ग्राम जनपद् बस गए, और काठ की नौकाओं पर, वाहनों पर वहां सभ्य जीवन की वस्तुओं को पहुंचाने लगे। जगह २ हरे भरे राज्य और कोसों तक फैले हुए खेत दीख पड़ने लगे। विजित आदिमवासी भी आर्यों से मिलकर एक हो गए। फलतः सभ्यता का विस्तार होता गया और मसीह से पूर्व चौथी शताब्दी प्रारम्भ होते न होते समस्त भारतवर्ष पर आर्यों का विस्तार हो गया। और बहुत से आदिम वासियों ने आर्य धर्म स्वीकार कर लिया। इनमें दक्षिण के आन्ध्र लोग, गुजरात के सौराष्ट्र; दक्षिणी भारत के चोल, चेरा, पाण्य, पूर्वी भारत के मगध अंग बंग कालिगों ने आर्यों की भाषा और सभ्यता को ग्रहण कर लिया। बौद्धायन के अध्ययन से हमें इन सब बातों का भली भाँति पता लगता है[1]।

मैगस्थनीज के समय में लंका पर भी भारतीयों का अधिकार हो चुका था। उसे मगध के एक बहिष्कृत राजकुमार ने पांचवीं शताब्दी में जय किया था, यूनानियों ने उसे तप्रोवती लिखा है, जो पाली भाषा के तम्बपन्नी तथा संस्कृत के ताम्रपर्णी का अपभ्रंश है।

धर्म सूत्र—इस काल में गौतम–बौद्धायन, वशिष्ठ और आपस्तम्ब ने धर्म सूत्र रचे। ये धर्म सूत्र वास्तव में आर्यों के कानून ग्रन्थ थे। और इनमें आर्यों के सामाजिक विषयों का उल्लेख था।

इन धर्म व्यवस्थापकों में बौद्धायन और आपस्तम्ब दक्षिण देश के निवासी थे। और उन्होंने द्रविड़ जातियों के आर्य धर्म में दीक्षित होने पर कुछ ऐसी नई बातें कहीं हैं। जो अन्य धर्म व्यवस्थापकों ने नहीं कहीं।

ई सीमा बताता है वह कहता है आर्यों का देश उस देश के पूर्व में है जहां सरस्वती नदी लोप होती है। यह विन्ध्य के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में है, उसके इस वर्णन से यह प्रकट होता है कि वह पंजाब को आर्यावर्त के अन्तर्गत नहीं मानता। वह यह भी कहता है कि कुछ लोग गंगा यमुना के मध्यवर्ती देश को ही आर्यावर्त कहते हैं। अवन्ती (मालवा) अंग (पूर्वी बिहार) मगध (दक्षिणी बिहार) सौराष्ट्र (गुजरात) दक्षिण, उपावृत, सिन्ध और सौवीर (पच्छिमी पंजाब) के

१—बौद्धायन १।१।२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निवासियों को वह शुद्ध आर्य नहीं मानता। वह कहता है जिसने आरत्तों (पंजाबियों) कारक्षरों (दक्षिण भारतीयों) पुण्ड्रों (उत्तरी बगालियों) सौवीरों (पच्छिमी पंजाबियों) वगों (पूर्वी बंगाल वासियों) कलिङ्गों (उडीसा वालों) से भेंट की हैं उन्हें पुरस्तोम वा सर्व पृष्ठ यज्ञ करके शुद्ध होना चाहिए।

इसके वर्णन से यह अभिप्राय: प्रकट होता है कि वह आर्यों की तीन श्रेणिएँ बनाता है।

१—जो सरस्वती के पूर्वी छोर से लेकर बिहार तक और हिमालय से विन्ध्य-चल तक रहते थे। पंजाब को, जो आर्यों का मूल स्थान था वह आर्यावर्त में सम्मिलित नहीं करता। ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि उत्तर वैदिक युग में भी पंजाब एक प्रकार से भूला ही हुआ था। ऐसा प्रतीत होता हैं कि दशराजाओं के युद्ध के बाद पंजाब की दशा हीन होने लगी थी। इसके बाद महाभारत संग्राम होने के पीछे पंजाब सर्वथा पिछड़ गया था।

२—दूसरी श्रेणी में वह पच्छिमी पंजाब, सिन्ध, गुजरात, मालवा, दक्षिणी तथा पूर्वी बिहार को मिश्रित आर्य बताता है। विचारणीय बात यह है कि इन देशों में आर्यों का प्रसार उत्तर वैदिक काल में ही हुआ था।

३—तीसरी श्रेणी में वह पूर्वी और उत्तरी बंगाल, और दक्षिणी भारत को सम्मिलित करता है। और इन देशों की यात्रा करने पर प्रायक्षित का विधान करता है।

आपस्तम्ब बौधायन से कुछ वाद हुआ है। पर है वह भी दक्षिण का निवासी वह आन्ध्र है। इस देश में कृष्णा और गोदावरी के बीच का सब देश सम्मिलित है। आज भी नासिक पूना, अहमदाबाद, कोल्हापुर, सूरत, सोलापुर और दक्षिण के दूसरे देश के ब्राह्मण उसके अनुयायी आपस्तम्बीय है।

गौतम उत्तर प्रदेश का निवासी है। और वशिष्ठ पंजाब का। गौतम ने असवर्ण विवाह से उत्पन्न संतान को दायभाग से वंचित कर दिया है। तथा छै प्रकार के विवाहों को मान्य किया हैं। वह एक ही प्रवर गोत्र के विवाह का भी निषेध करता है। गौतम की भांति वशिष्ठ और शौनक भी असवर्ण स्त्री की सन्तानों की प्रथक् जातियाँ निर्णय करता है। वशिष्ठ क्षेत्रज पुत्र को दूसरा स्थान देता है—पर बौधायन तीसरा देता है। आपस्तम्ब क्षेत्र पुत्र को स्वीकार ही नहीं करता।

स्त्रियों का पराभव—इस काल में स्त्रियों का पराभव हुआ। और वे बौद्धिक विकास में पिछड़ गईं। वे न तो पुरुषों के समान विद्याध्ययन कर सकीं, और व जटिल धर्म कृत्यों और शास्त्रीय विधानों में आगे रह सकीं। धर्म कृत्यों में उनका स्थान ब्राह्मण पुरोहित लेने लगे। बहुपत्नित्त्व ने उन्हें और भी हीनावस्था में ला डाला। इस काल के धर्म कानून के अनुसार विवाह के बाद स्त्री पर पति का पूरा अधिकार हो गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और वह सर्वतो भावेन पति बन गया। जीवन सहचर सखा या सहधर्मी न रहा। अथर्वाङ्गिरस ने विवाह की ये मर्यादाएँ स्थापित कीं :—

१—कोई कन्या अवस्था प्राप्त होने पर कुमारी न रहे।

२—कोई कन्या स्वयं पति न चुने।

३—वह एक पति के साथ अनुबन्धित न रहे।

४—वह सपत्नियों में ईर्षा रहित रहे।

५—वह गृह कृत्यों में सुगृहिणी बने।

६—वर को कन्या उसके गृह जन दें।

७—पुरुष पति हो। और स्त्री उसके आधीन हो। वह दत्ता है।

८—कार्य कृत्यों में उसका स्थान ब्राह्मण ग्रहण करे।

९—दायभाग उसे नहीं, उसके पुत्र को मिले।

इस प्रकार स्त्री का अधिकार उसके पति और पुत्र को दे दिया गया, और वे बौद्धिक विकास और सामाजिक जीवन में पिछड़ गईं।

१—जाति विभाजन

जाति विभाजन और विवाह मर्यादा—तत्कालीन आर्य आचार्यों को इस युग में जाति विभाजन का कठिन कार्य करना पड़ा। अब तक ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये चार वर्ण बन चुके थे। परन्तु अब अनेक अनार्य जातियों के मिश्रण से अनेक जातियों की शाखाएँ फैल गई थी—अनुलोम और प्रतिलोम वर्ण संकरों की भी अनेक जातियां थी। इसका अभिप्राय यह है कि असवर्ण विवाह परिपाटी खूब जोरों पर थी—उसके लिए तथा अनार्य स्त्रियों से भी सम्बन्ध करने के लिए भरपूर उत्तेजन मिलता था, परन्तु ऐसे विवाहों की सन्तान को दायभाग से अंशतः वंचित समझा जाता था—तथा उन्हें शुद्ध वर्णों तथा गोत्र की परम्परा से भी वंचित कर दिया जाता था। मार्के की बात यह है कि इन सूत्रग्रन्थों ही में पहिले पहिल विवाहों की उन भिन्न और नवीन रीतियों का वर्णन हमें मिलता है जो आगे चलकर परिवर्तन के साथ स्मृतियों में लिखे गए।

वशिष्ट केवल ६ प्रकार विवाहों का वर्णन करता है :—

१—ब्राह्म, जिसमें पिता जल का अर्घ देकर अपनी कन्या को बटुक वर के अर्पण करता है।

२—देव—जिसमें पिता कन्या को वस्त्राभूषण से सुसज्जित करके यज्ञदान में स्थानापन्न पुरोहित को देता है।

३—आर्ष—जिसमें पिता एक गाय या बैल के बदले कन्या किसी को देता है।

४—गान्धर्व—जिसमें कन्या और कुमार स्वयं परस्पर वरण करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५–क्षात्र–जिसमें पति कुमारी के सम्बन्धियों को मार काट कर बलपूर्वक उसे हरण करता है।

६--मानुष्य–जिसमें पति कन्या को उसके पिता से मोल लेता है।

आपस्तम्ब भी इन्हीं विवाहों को मानता है–पर वह क्षात्र विवाह को राक्षस विवाह और मानुष्य को आसुर विवाह कहता है। वह सिर्फ प्रथम के तीन ही विवाहों को उत्तम मानता है। किन्तु गौतम और बौधायन विवाह की आठ रीतियों को मानते हैं। ये दोनों सूत्रकार वशिष्ट से प्राचीन है। इन आठ विवाहों में पूर्वोक्त छै के अलावा प्राजापत्य और पिशाच विवाह को और सम्मिलित करते हैं। प्राजापत्य में पिता कन्या को यह कहकर किसी युवक को दे देता है कि तुम दोनों मिलकर नियमों का पालन करो। पर पैशाच विवाह में वर मूर्छित एवं रोती कल्पती स्त्री को बल पूर्वक हरण करता है।

मार्के की बात यह है कि इस युग में स्वकुल में विवाह का कड़ा निषेध था। वशिष्ट कहते हैं कि एक गोत्र एवं एक ही प्रकार के स्त्री पुरुष विवाह नहीं कर सकते, वह माता की चार पीढ़ियों और पिता की छै पीढ़ियों में विवाह कहने की आज्ञा नहीं देता[1]। आपस्तम्ब माता पिता की ६ पीढ़ियों में एवं सगोत्र में विवाह निषेध करता है[2]। परन्तु वे मामा या चाची की लड़की से विवाह करने की आज्ञा देते हैं[3]।

वशिष्ठ बाल विवाह की आज्ञा नहीं देते। वे कहते हैं युवावस्था को प्राप्त कुमारी तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करे। इसके उपरान्त वह अपने बराबर जाति के किसी वर से विवाह कर ले।

इस काल की विवाह रीतियाँ भिन्न २ देशों में भिन्न २ प्रकार की होती थीं, परन्तु इनमें मूलतः एक ही प्रकार था। वर कन्या के पिता के पास संदेश भेजता था। तथा वेद मन्त्र पाठ करता था, यदि विवाह पक्का हो जाता था तो दोनों ओर के लोग एक भरा हुआ कलश छूते थे, जिसमें पुष्प–लाजा–यवधान्य और स्वर्ण रखा जाता था। तब फिर वेद मन्त्रों का उच्चारण होता था। वर होम करता था। नियत तिथि पर कन्या पक्ष के लोग वर को सुगन्धित जल से स्नान कराकर, नया रंगा हुआ वस्त्र पहिना कर अग्नि के समीप बैठाते थे, वहां कुल पुरोहित यज्ञ करके वर से शुभ रीति कराता था, फिर सधवाएँ वर का कन्या गृह में स्वागत करती थीं[4]। फिर दुलहा दुलहिन का हाथ पकड़कर उससे ३ बार अग्नि की प्रदक्षिणा कराता था। और कुछ ऋचा पाठ करता था जिसमें परस्पर गृहस्थ जीवन की प्रतिज्ञाएँ होती थीं। प्रत्येक परिक्रमा में वह उसका पैर एक पत्थर पर रखवाता, तब दुलहिन का भाई या रक्षक

१—८। १। और २
२—२। ५। ११। १५ और १६
३—१। १। २। ४
४--सांख्यायन।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके हाथ में लाजा देता था, जिसे वे अग्नि में हवन कर देते थे। फिर वह वधू को सात कदम आगे बढ़ाता था। और कुछ वचन कहता था। इस प्रकार अग्नि की प्रदक्षिणा, पत्थर पर पैर रखना, लाजा हवन और ७ कदम चलना विवाह की मुख्य भूमिका थी। उस रात्रि दुलहिन पुत्रवती सधवा ब्राह्मणी के घर रहती थी। फिर ध्रुव तारा, अरुंधती तारा, और सप्तर्षि तारों को देख कर पति के दीर्घजीवन और स्वयं पुत्रवती होने की याचना करके मौन भंग करती थी।[1] सांखायन का कहना है कि वर वधू को सूर्यास्त तक मौन बैठना चाहिए। जब ध्रुव तारा दीखे तब उसे दिखा कर वर कहे--कि तू मेरे साथ सुख से रह। वधू कहे--कि मैं उसे देखती हूं—मुझे सन्तान उत्पन्न हो। फिर तीन रात्रि तक वे सम्भोग न करें।

२--राज तन्त्र

इस युग में दो प्रकार के शासन होते थे—एक राजतन्त्र दूसरा जानपद।

राज्य और उनका संचालन—जहां राजा अधिपति होता था वह राज्य कहाता था। राज्य अनेक प्रकार के थे--भौज्य, साम्राज्य स्वराज्य, वैराज्य। एक जनपद की भूमि पृथिवी कहाती थी--वहां का राजा पार्थिव कहाता था। समस्त देश को सर्वभूमि और वहां के अधिपति को सार्वभौम कहते थे। सर्वभूमि को महा पृथ्वी भी कहते थे। अनेक जनपदों का स्वामी सम्राट् कहाता था। सार्वभौम राजा सर्व पृथ्वी जय करके अश्वमेध यज्ञ करता था।[2]

राज्यों का संचालन मन्त्री परिषद् के द्वारा होता था। मन्त्री परिषद् की सहायता से राज्य करने वाले राजा परिषद्वलो राजा कहाते थे।[3] मुख्य मन्त्री आर्य-ब्राह्मण कहाता था। आर्य कुमार शब्द युवराज के लिए आता था। आर्य ब्राह्मण को राज-ब्राह्मण भी कहते थे—यह एक मार्के की बात है--कि मुख्य मन्त्री के लिए 'ब्राह्मण' शब्द प्रयोग में लाया जाता था। जो पदवी वाचक था, जातिवाचक नहीं।[4] मुख्य मन्त्री जाति से ब्राह्मण हो या नहीं, पर वह आर्य ब्राह्मण कहाता था। मन्त्री के महनीय पद के लिए आर्य ब्राह्मण शब्द का प्रचलन प्राचीन था। उस काल में महामन्त्री का महत्त्व और पद भी राजा ही के समान होता था। वत्सराज उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण. बिम्बसार के वर्षकार, चन्द्रगुप्त के आर्य चाणक्य, अशोक के राधागुप्त, चण्ड प्रद्योत के भरत-रोहक, अवन्तिराज अंशुमान के घोटमुख, कौशलपति परन्तप के कणिक भारद्वाज, पांचालपति ब्रह्मदत्त के

१--आश्वलायन।

२--आपस्तम्ब ३०।१।१।

३—रजः कृष्यासुति परिषदोवलच ५।२।११२ पाणिनि।

४—ब्राह्मण क्षत्रेण च श्नीः परिगृहीता भवति (कौटिल्य) अथवा यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह। (मनु ९, ३२२)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वामुख्य ऐसे ही प्रतापी मुख्य मन्त्री थे—जिनकी धाक राजा से भी अधिक थी। तथा शासन चक्र उन्हीं के समर्थ हाथों से चलता था। अति गुप्त मन्त्र केवल राजा और प्रधान मन्त्री ही करते थे, और मन्त्री सम्मिलित नहीं होते थे। उन्हें अषडक्षीण कहते थे[1]। इससे भी अति गुह्य मंत्र अकेला राजा ही विचारता था[2]। मन्त्री परिषद के अतिरिक्त राज सभा होती थी।

राजा का निज परिच्छद—

मुख्य मन्त्री के बाद पुरोहित का पद था। उसके बाद सेनापति का। इसके बाद युवराज का। पट्ट राज महिषी का राजा के साथ ही अभिषेक किया जाता था। महिषी के अतिरिक्त अन्य रानियां प्रजावती कहाती थीं। राज महिषी को ४८००० पण और कुमार माता (प्रथम पुत्र की माता) को १२ हजार पण वार्षिक भत्ता मिलता था[3]। राजा के अन्तःपुर में रहने वाली स्त्रियां असूर्यपश्या कहाती थीं। टीकाकार इनका अर्थ राज द्वारा करता है। राजा का पुत्र राजकुमार या राजपुत्र कहाता था। बालक राजा को भी राज कुमार कहते थे। युवराज को आर्य कुमार कहते थे। उन्हें उपराजा भी कहते थे। राजकुल से सम्बन्धित बहुत से अधिकारी होते थे, राजा के अङ्ग रक्षक आत्मरक्षितक कहाते थे। दण्डधर को प्रत्येनस कहा गया है। राजा का शरीर रक्षक दायित्व पूर्ण व्यक्ति ही हो सकता था। बहुधा वह राजकुमार होता था। राजद्वार का सर्वोच्च अधिकारी दौवारिक कहाता था। दौवारिक का वार्षिक वेतन २४ हजार पण होता था[4]। यह वेतन राजमहिषी से आधा और अन्य रानियों से दूना होता था। राजा की दिनचर्या नियत रहती थी। इसकी व्यवस्था स्वागतिक अधिकारी करता था। उसके आधीन भिन्न भिन्न कर्म कराने वाले भिन्न भिन्न कर्मचारी होते थे। शयनागार का प्रबन्धक सौख्य शाक्तिक कहाता था। राजा के सुखोपभोग साधन जुटाने वाला परिचारक। ये कई प्रकार के स्त्री पुरुष होते थे, जैसे—परिषेचक स्नापक; उत्सादक, उद्वर्तक, प्रलेपिका, अनुलेपिका आदि। कल्प सूत्र में राजा की प्रसाधन विधिका सविस्तार वर्णन है। व्यायाम शाला में जो मल्लयुद्ध का अभ्यास कराता था–वह राजयुध्वा कहाता था।

शासन—शासन चक्र चलाने को अधिकारी तन्त्र का संगठन होता था। सरकारी कर्मचारी आमुक्त कहाते थे। विशेष काम पर नियुक्तजन नियुक्त कहाते थे। प्रभावशाली अधिकारी अध्यक्ष कहाता था। छोटे अधिकारी पाल कहाते थे। जैसे नदीपाल, द्रव्यपाल, वनपाल आदि। राजकीय कर उगाहने वाले काट कर कहाते थे।

१—अषड क्षीणो मन्त्रः। योद्वाभ्यांमेव क्रियते न बहुभिः। काशिकः।

२—गुह्यमेको मंत्रयेतेति भारद्वाजः। अर्थ० १। १५।

३ अर्थशास्त्र ५। ६

४—अर्थशास्त्र-दौवारिकः सन्निधातारः चतुर्विंशति साहस्त्राः। ५।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजशासन में दूत का स्थान महत्त्वपूर्ण था। दूत को प्रतिष्कष कहते थे। समाचार ले जाने वाला धावन कहाता था। भिन्न २ दूरियों तक जाने वाले धावनों के नाम भी भिन्न २ थे। सौ योजन तक धावन संदेश ले जाते थे। मौखिक संदेश वाहक वाचिक कहाते थे। लिखित संदेश ले जाने वाले को शासनहर कहते थे। राजा को विनयशील रहना प्रशंसनीय माना जाता था। राज्य की आय के श्रोत आय स्थान कहाते थे। वे अनेक थे। चुंगी से, आबकारी से, खेती से कर की आय होती थी। जंगलात से भी आय होती थी। कई गांवों के बीच थाना होता था, उसे गुल्म कहते थे। पूर्वी प्रदेशों में विशेष कर लगता था, जिसे कार कहते थे। प्रत्येक चूल्हे पर एक शाण कर लगता था। एक कार्षापण प्रत्येक व्यक्ति को कर देना पड़ता था।

न्याय— परम्परा प्राप्त आचार को न्याय कहते थे[1]। न्यायालय दो प्रकार के होते थे—धर्मस्थ (दीवानी) कण्टक शोधन (फौजदारी) प्रधान जज धर्मपति कहाता था। मध्यस्थ को स्थेय कहते थे। साक्षी साक्षाद्दर्शी ही माने जाते थे। पीछे सुनी बात भी साक्ष्य मानी गई। साक्षी को शपथ पूर्वक वक्तव्य देना पड़ता था। जमानती को प्रतिभू कहते थे। दाय ग्रहण करने वाला दामाद कहाता था।

अपराधों को साहसिक्य कहते थे। चोर अनेक प्रकार के होते थे—संधिछेदक, गामघात, पन्थघात, पेसनक; आटवीचर आदि। गाली गलौंज को कुत्सा निन्दा कहते थे। जुर्माने को दण्ड कहते थे। अपराधी को मूसल से मारने को मुसल्य कहते थे। महापातकों में बालवध, भ्रूणहत्या, ब्रह्महत्या आदि की गणना थी।

सेना—सेना के चार अंग होते थे—हस्त्यारोह, अश्वारोह, रथी, पादाति। सिपाही को सैनिक, घुड़सवार दलके अधिपति को अश्वपति तथा सेनाध्यक्ष को सेनापति कहते थे। तलवार, भाले और धनुषवाण हथियार थे। फरसे से भी युद्ध होता था। लाठी से भी युद्ध होता था। लठैत स्त्रियों की भी सेना होती थी। सांडनी सवारों की सेना को उष्ट्रसादि कहते थे। ऊंट और खच्चरों की पलटन उष्ठ्रवाम कहाती थी, कवचधारी सेना कावचिक कहाती थी। संप्रयुक्त रथ में चार घोड़े जुतते थे, और उसके साथ छः सैनिक रहते थे। २ सारथी, २ ढाल वाले, २ धनुर्धारी जो रथ के दोनों ओर वाण छोड़ते चलते थे। शक्ति, परश्वध, कासू (वर्छा) सासूतरी (वर्छी) हेति, और असि भी शस्त्र थे। धनुष का परिमाण ५ हाथ होता था। धनुष का एक सिरा पैर से साध कर एक हाथ से उसकी मूठ पकड़ दूसरे हाथ से लम्बे और भारी वाण फैंके जाते थे। जो कवच को फोड़ कर पार हो जाते थे। वाणों में लोहे के फल लगे होते थे। जिसकी लम्बाई ५ अंगुल होती थी, जब यह अंग में छिद जाता था। तो बड़ी पीड़ा होती थी। सैनिक नकली लड़ाईयां खेल आदि भी करते थे।

---

१. ३। ३। ३७ पाणिनी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३--धर्माचार

व्रत—व्रत उपवासों को इस युग में सब से मुख्य धर्माचार माना जाता था। चान्द्रायण आदि व्रत होते थे। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए गृहस्थ नाना प्रकार की वलि देते थे। वैदिक स्थाली पाक रूप हवि और लौकिक वलि इन दोनों को मिला कर गृहस्थी लोगों में देवताओं के उत्सव के लिए विशिष्ठ अवसरों पर पूरी पकवान, पूए आदि बनाने को कढ़ाही चढ़ाने की प्रथा प्रचलित हो चुकी थी। बाद में यह स्मार्त कर्म का लोकाचार बन गया।

श्राद्ध—पितरों को देवता माना गया है। वास्तव में पितर देवलोक में रहने वाली जाति थी। कालान्तर में परलोक गत सम्बन्धी को पितर कहने लगे। आश्विन कृष्ण को पितृपक्ष कहते थे। पितरों को जो हवि दी जाती थी उसे पित्र्य हवि कहते थे। श्राद्ध में भोजन करने वाला ब्राह्मण श्राद्धी कहाता था।

अन्य धर्म विश्वास—मूंडन की प्रथा धार्मिक कृत्यों में थी। ज्योतिष के फलाफल पर विश्वास था। वशीकरण मन्त्र पढ़े जाते थे[1]। खास खास दिन पवित्र माने जाते थे। उन्हें पुण्याह कहते थे। भ्रूणहत्या, ब्रह्महत्या महापातक कहाते थे, जीवन में संयम को श्रेष्ठ समझा जाता था। पूजा, श्रद्धा, तप, त्याग, विवेक, धर्म, शम, दम, ये जीवन के प्रकृष्ट गुण समझे जाते थे। परम्परा प्राप्त आचार धर्म समझा जाता था। धर्माचरण की प्रशंसा होती थी।

तप से स्वर्ग सिद्धि होती है। तथा दान दक्षिणा से स्वर्ग में सुख मिलता है। यह सर्व साधारण की धारणा थी। जो भोजन देगा वह स्वर्ग जायगा[2]।

४--जनपद

राजनैतिक क्षेत्र में जनपद इस युग की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण करता है। वैदिक संहिताओं में तो जनपदों का नाम है ही नहीं। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी एकाधस्थल पर है। इस दार्शनिक काल को राजनैतिक दृष्टिकोण से जनपद काल यदि कहा जाय, तो अनुचित नहीं। क्योंकि जनपदों का उदय इसी काल में हुआ, और सारे देश में जनपदों का विस्तार हो गया। ये जनपद राजनैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन में एक इकाई के रूप में खड़े हुए। राजतन्त्र से ये सर्वथा भिन्न थे। जनपदों में शांति सुव्यवस्था और धर्म नीति की स्थापना राज तन्त्र से कहीं अधिक विकसित और गम्भीर आधारों पर हुई। जनपदों में अराजकता का तो कोई प्रश्न था ही नहीं।

---

१. पर हृदयं येन वध्यते वशीक्रियते स वशीकरण मन्त्रो हृद्य इत्युच्यते। भाष्य।

२. यो भक्तं स स्वर्गं गच्छति।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जनपद के लोगों का उस भूमि के साथ प्रगाढ़ मातृ भाव उदय हो गया[1]। प्रत्येक जनपद की भूमि वहां के निवासियों की सच्ची माता बन गई। भाषा, धर्म, अर्थ, व्यवस्था और संस्कृति सभी दृष्टियों से जनपद स्थानीय जीवन की दृढ़ इकाई हो गया। ये जनपद ऐसे गम्भीर आधारों पर थे--कि उनमें से बहुतों के राजनैतिक आधार सहस्त्रों वर्षों के बीत जाने पर भी अपने क्षेत्र में पहचाने जा सकते हैं।

सात प्रकार के जनपद—ये जनपद मध्य एशिया के काम्बोज जनपद से लेकर सुदूर दक्षिण तक, और पच्छिम में सिन्धु-सौवीर-कच्छ से लेकर पूर्व में अंग बंग कलिङ्ग तक फैलते चले गए। पुराणों में इन जनपदों की सूची १७५ तक पहुंच गई है[2]। पुराणों केभुवन कोषों में सात विभागों के जनपदों का उल्लेख किया है। (१)मध्य (२) प्राच्य (३) उदीच्य (४) दक्षिणापथ (५) अपरान्त (६) विन्ध्यपृष्ठ और (७) पर्वत। मध्य देश के काशी, कोसल, प्रत्यग्रन्थ, अजाद आदि जनपद थे। विन्ध्य पृष्ठ में अवन्ती का महत्व था। दक्षिण पथ के जनपदों में अश्मक उल्लेखनीय था, जिसकी राजधानी प्रतिष्ठान गोदावरी तट पर थी। पर्वत जनपद में कुल्लू, कांगड़ा गढ़वाल, कुमायु तक का इलाका था जिसमें त्रिगर्त, युगन्धार, गद्विका, कालकूट, भरद्वाज आदि जनपद थे। पहाड़ी जनपद के उत्तरी पच्छिम भाग में सिन्धुनद से वाल्हीक-कपिश काम्बोज तक फैला हुआ प्रदेश था। इसके अन्तर्गत, अभिसार,उरशा, दार्व, दरद, चित्रक गन्धार, कपिश, वाल्हीक, मुंजायन, कम्बोज, लम्वाक, हारहूर आदि अनेक छोटे बड़े जनपद थे।

दो प्रकार—जनपद दो प्रकार के होते थे—एक राज और दूसरे गणाधीन। अधिकांश जनपदों की सत्ता क्षत्रियों के हाथ में थी। एक राज जनपद में क्षत्रिय का नाम तथा निवासियों का नाम भी जनपद ही के नाम पर होता था। पांचाल जनपद का राजा भी पांचाल कहाता था, तथा प्रजा भी पांचाल कहाती थी। जनपदों में और लोग भी रहते थे, पर राज सत्ता क्षत्रियों के हाथ में रहती थी।

जन किसे कहते थे—जन अपने आपको किसी एक पूर्वज से उत्पन्न मानता था। आगे जातियां भी इसी सिद्धान्त पर बनीं। जनपदीय जीवन की विशेषता यह थी कि अपने जनपद और उसके स्वामी के प्रति सबमें भक्ति भावना रहती थी। जनपद का प्रत्येक नागरिक जब तक उस जनपद में वहां के क्षत्रियों के प्रति भक्ति रखता था—तभी तक वह वहां का नागरिक रह सकता था, इसी से पृथ्वी पुत्र की प्रेरणा जनपदीय जीवन में उदय हुई। इसी कारण राष्ट्र और प्रजा को धारण करने वाले नियम धर्म

१—माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।

२—वायु पुराण अ० ४५। मत्यस्य अ० ११४। ब्रह्माण्ड अ० ४६। वामन अ० १३ मार्कण्डेय अ० ५७ गरुड़ अ० ५५। तथा दिनेश चन्द्र सरकार कृत पुराण गत जनपद सूचियों का मूल पाठ, इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली वर्ष २१ (१९४५)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहलाने लगे थे[1]। और मानव धर्म शास्त्र और अन्य शास्त्र जो वास्तव में जीवन के नियम नियामक थे-धर्म शास्त्र कहलाए।

शासन स्वातन्त्र्य—प्रत्येक जनपद अपनी शासन विधि निर्णय करने में स्वतन्त्र था। कुछ जनपद एकाधीन थे, कुछ राजाधीन, कुछ गणाधीन थे। अथवा श्रेणी या पूग के रूप में संगठित थे। प्रत्येक जनपद में उन का सामान्य धर्म विश्वास चलता रहता था। ये धर्म विश्वास प्रथक् २ थे।

शिक्षा का नया विकास वैदिक युग के बाद जनपदों में ही भारतीय संस्कृति का नया विकास हुआ। जनपदों में शिल्प शिक्षा और आर्थिक जीवन का सर्वाधिक विकास हुआ[2]। प्राचीन शिक्षा क्रम का विकास वैदिक चरणों द्वारा हुआ था। इस युग में नई शिक्षा का प्रादुर्भाव हुआ। जिसमें शिल्प और ज्ञान की शिक्षा वैदिक सहित्य की सीमा से बाहर होती थी। इससे इस युग में भारतीय साहित्य में विविध शास्त्रों और दर्शनों की मूल प्रतिष्ठा हुई।

कुलों का संगठन—कुलों के संगठन के आधार पर गण या संघ में प्रतिनिधित्व होता था। एक कुल का एक प्रतिनिधि शासन में भाग लेने का अधिकारी होता था। जो राजा कहाता था[3]। लिच्छवि गण में ७७७७ कुल थे, और उनके उतने ही 'राजा' थे। चेत जनपद में साठ हजार क्षत्रिय गिने जाते थे—उन सबकी उपाधि राजा थी[4]। पर गण सभा में उनके प्रतिनिधि जाते थे।

एक राज जनपद—काम्बोज, गान्धार, मद्र, साल्वेय, साल्व, कलकूट, कुरु, प्रत्यग्रन्थ, कोसल, अजाद-कुन्ति, अवन्ति, अश्मक काशी, मगध, कलिंग, सूरमस, सौवीर, अम्बष्ट ये एक राज जनपद थे।

गणाधीन संघ—संघ राज्य इस काल में एक राज जनपदों से अधिक थे। एक राज जनपब में जहां प्रभु सत्ता एक व्यक्ति में केन्द्रित रहती थी। वहां गणाधीन संघ में वह सम्पूर्ण गण में निष्ठित रहती थी। साधारण तया देश के उदीच्य भू भाग में संघाधीन राज्य अधिक थे। प्राज्य भू भाग में एक राज जनपद थे। मगध में जरा सन्ध ने इन जनपदों को नष्ट करके जनपद के सभी राजाओं को कैद कर लिया और साम्राज्य की स्थापना की थी। कृष्ण संघ राज्य के प्रतिनिधि थे। उन्होंने जरासंघ को मारकर उन राजाओं को स्वतन्त्र भी किया। पर पीछे मगध में शिशुनाग और नन्दवंशी राजाओं ने साम्राज्य भावना ही को आश्रय दिया। अन्त में मौर्य शासन में

१—नमोधर्माय महते धर्मो धारयति प्रजाः। महा० उद्योग० १३७। ९

२—यथा जानपदीषु विद्यातः पुरुषो वेदितृषु च भूयो विद्यः प्रशस्यो भवति। निरुक्त।

३—गृहे गृहे हि राजा नः। सभापर्व १४। २

४—जातक ६। ५११।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक राज जनपद और गणाधीन संघ इन दोनों को समाप्त कर महान् साम्राज्य स्थापित हो गया।

कौटिल्य का मत—कौटिल्य–जिसने मौर्य साम्राज्य की स्थापना की, साम्राज्य वादी पुरुष था। वह संघों का विरोधी था। वह अपने अर्थशास्त्र में कहता है कि संघ शासन से राष्ट्र की दृढ़ता में बाधा पड़ती है। अतः उनका अन्तर्भाव साम्राज्य में हो ही जाना चाहिए[१]।

पारमेष्ठय शासन—संघ का आधार कुल थे। पारमेष्ठय शासन में प्रत्येक कुल में राजा होते हैं, और वे अपने अपने कुल की प्रिय वृद्धि का प्रयत्न करने शासन सभा में जाते थे। प्रत्येक कुल में उस कुल का वृद्ध मूर्धाभिषिक्त होता था। यह मूर्धाभिषेक महत्व पूर्ण प्रथा थी। कुल वृद्ध पिता के बाद उसके पुत्र का मूर्धाभिषेक होता था[२]। मूर्धाभिषिक्त पुरुष वंश्य कहाता था। महाभारत सभापर्व में साम्राज्य शासन और गण संघ शासन के भेद बताए गए हैं[३]। वहां संघ पद्धति के लिए पारमेष्ठय शब्द का प्रयोग किया गया है। सम्राट् सबके हक को हड़प कर एकाधिकार स्थापित करते हैं[४]।

कुल संस्था और गोत्रोत्पत्ति—पारमेष्ठय पद्धति कुलों के आधार पर थी। इससे कुल संस्थाओं का जन्म हुआ। कुल संस्था में ही गोत्रापत्य और युवापत्य का विकास हुआ। कुल का प्रतिनिधि कुल वृद्ध होता था - कुल वृद्ध के नाम पर गोत्र स्थापित होने लगे[५]। ऐसी प्रथा चल गई-कि एक परिवार में जो कुल वृद्ध होता था वही गोत्र कहाता था। अन्य व्यक्ति युवा कहाते थे। जैसे गोत्रकृत गर्ग। उसका पुत्र गार्गि, उसका पौत्र गार्ग्य, प्रपौत्र गार्ग्यायण कहाता था। गार्ग्य के जीवन काल में गार्ग्ययण उस कुल का प्रतिनिधि नहीं हो सकता था। परिवारों की भांति राजनैतिक क्षेत्रों में भी गोत्र और युवा संज्ञक नाम का महत्व था। इस क्रम से गण राजकुलों में प्रभुसत्ता की परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रही[६]।

१—मौर्य साम्राज्य के भंग होने पर मगध में ई० पू० २०० से दूसरी शताब्दी तक फिर जनपदों का उदय हुआ था। परन्तु चौथी शताब्दी में गुप्त साम्राज्य के उदय होने पर वह सदा के लिए समाप्त हो गया।

२ आजकल भी पिता के मरने पर पुत्र को पगड़ी बंधाई जाती है। जिसमें सब बिरादरी आती है। ये संघ ही आजकल की बिरादरी के रूप में परिणत हो गए हैं। तथा पच्छिमोत्तर सीमा पर जो कबीलों की जातियां है–वह भी उसी संघ की प्रतीक है।

३—शान्ति पर्व १०८। ३०।

४—सम्राट् शद्वोहिकृत्स्न भाक्।

५—वृद्ध शब्दः पूर्वाचार्य संज्ञा गोत्रस्थ। काशिका।

६—वासुदेव शरण अग्रवाल।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रेणी--श्रेणी दो प्रकार की थीं। एक तो शिल्पियों की उद्योग संस्थाएं। दूसरी संघों के राजनैतिक संगठन। उस काल में अठारह श्रेणियां परिगणित थीं। कुछ राजनैतिक थीं, कुछ शिल्प सम्बन्धी, कुछ परिगणित। ये श्रेणियां परम्परा से चलती थीं।

५--इस काल का साहित्य

साहित्य के पांच भाग—पाणिनि ने इस काल के और इससे कुछ पूर्व के साहित्य को पांच भागों में विभक्त किया है—(१) दृष्ट, (२) प्रोक्त, (३) उपज्ञात, (४) कृत, (५) व्याख्यात।

दृष्ट—जो ऋषियों द्वारा प्रत्यक्ष हुआ। सामवेद के गान सूक्तों का इस प्रसंग में खास तौर पर उल्लेख है।

प्रोक्त—जिसके निर्माण में वैदिक चरणों के संस्थापक ऋषियों ने भाग लिया। इसके अन्तर्गत छन्द ग्रन्थ अर्थात् वेदों की पृथक् २ शाखाएँ थीं। जैसे तैत्तिरीय शाखा, कठशाखा, कालपों की शाखा। अथवा प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थ।[1] प्रोक्त ग्रन्थ का सम्बन्ध चरणों के अन्तर्गत उनके पढ़ने-पढ़ाने वालों से था। यह सम्बन्ध मूल शाखा ग्रन्थ से आरम्भ होता था। और तद्विषयक साहित्य भी उसके अन्तर्गत समझा जाता था। जैसे तैत्तिरीय ब्राह्मण नाम अपने चरण के नाम पर पड़ा। कालान्तर में तैत्तिरीय आरण्यक और उपनिषद् भी बने, जो तैत्तिरीय ब्राह्मण ही के अन्तर्गत थे। इससे वे भी ब्राह्मणों के अभंग अंग मान लिए गए।[2]

तीसरे प्रकार के प्रोक्त ग्रन्थ कल्प या श्रौत सूत्र थे। जो वेदाङ्ग थे। चरण ग्रन्थों में जो तद्विषयकता का नियम प्रचलित हुआ—वही नियम काश्यप और कौशिक द्वारा प्रोक्त कल्प ग्रन्थों में भी मान्य रहा। पाणिनि का कल्पवक्ता काश्यप और कौशिक को भी ऋषि कहता है।[3] काश्यप और कौशिकों ने भी चरण स्थापित किए थे। जो इनके नाम से प्रसिद्ध थे, तथा ये वहां किसी ब्राह्मण या मूल शाखा का प्रवचन नहीं करते थे—कल्प सूत्रों ही का प्रवचन करते थे। पाणिनि ने प्रोक्त साहित्य के अन्तर्गत और भी दो प्रकार के सूत्र ग्रन्थों का उल्लेख किया है, जिनके नाम 'भिक्षु सूत्र' और 'नट सूत्र' हैं। ये दो भी सम्भवतः चरणों ही से सम्बन्धित थे।

उपज्ञात—उपज्ञात की कोटि में ऐसे साहित्य की गणना होती थी जिसका किसी आचार्य ने प्रथम बार आविर्भाव किया हो। इस प्रकार के उद्योग को आद्य आचिख्याला कहते थे। आर्षिशल, शाकरायन, पाणिनि और काश कृतन जैसे

१—पुराण प्रोक्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु ४।३।१०५ पाणिनि
२—छन्दो ब्राह्मणानि च तद् विषयाणि ४।२।६५ पाणिनि
३—काश्यप कौशिकाभ्यामृषिभ्यांणिनिः ४।३।१०३ पाणिनि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आचार्यों की रचनाएँ इसी कोटि की थीं। ऐसी रचनाएं आचार्य और उसकी परम्परा के शिष्यों के नाम से चलती थीं। जैसी पाणिनीय शास्त्र के पढ़ने वाले भी 'पाणिनीय' कहाते थे। और पाणिनि प्रोक्त शास्त्र भी पाणिनीय कहाता था।

कृत—इस श्रेणी में वह साहित्य था जो अपने विषय या ग्रन्थ कर्ता के नाम के आधार पर होता था। जैसे नाटक–काव्य–उपाख्यान–सौभद्र (सुभद्रा उपाख्यान), यायात (ययाति का उपाख्यान), वार रुच (वर रुचि का उपाख्यान या कृति)।

कृत और उपज्ञात में यह अन्तर था कि कृत तो उस रचना को कहते थे, जिसे लेखक ने रचा। पर उपज्ञात उसे कहते थे जो किसी प्रचलित विषय पर नई उद्भावना का प्रकटीकरण करे।

व्याख्यात—लौकिक और धार्मिक विषयों के फुटकर ग्रन्थों को व्याख्यात की श्रेणी में रक्खा गया था। ये मौलिक रचनाएं नहीं होती थीं। साधारणतया वैदिक अध्यायों और मन्त्रों के अर्थ समझने के लिए, या उनके भिन्न २ पाठों को सरलीकरण करने के लिए, या दर्शन, विज्ञान, ज्योतिष, अंग विद्या, क्षत्र विद्या आदि स्फुट विद्याओं को स्पष्टता से समझने के लिए लिखे जाते थे।

वैदिक साहित्य—इस काल में वैदिक साहित्य बहुत जटिल और विशाल बन गया था। एक ओर उससे ऊब कर सूत्रों का निर्माण हो रहा था। दूसरी ओर वैदिक चरणों में नया २ वैदिक साहित्य बनता और बढ़ता जा रहा था। ई० पू० पांचवीं छठी शताब्दी में ऋग्वेद मैत्रायणि संहिता, काठक संहिता, तैत्तिरीय संहिता, अथर्व और सामवेद, ऋग्वेद का शाकल्य पद पाठ, अथर्व की पैप्पिलाद शाखा का अध्ययन होता था। अथर्व वेद के छात्र 'आथर्वणिक' कहाते थे। वे अपने आम्नाय एवं धर्म सूत्र का अध्ययन करते थे।[1] शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता का प्रचलन था। चरणों में—छन्द, मन्त्र, ऋच्, यजुष, ब्राह्मण और निगम का पाठ होता था।

शाकल, शौनक, वाष्कल, शिलालिन्, वह्वच, पैल, ऋग्वेदिक चरण थे। इनकी भी अनेक शाखाएँ थीं।

कृष्ण यजुर्वेद के—तित्तिरि, वरतन्तु, खण्डक, उख, कठ, कलापी चरण थे। ये सब वैशम्पायन की गुरु परम्परा में थे।

कृष्ण यजुर्वेद का एक चरक चरण भी था। चरक घूमते रहते थे। कदाचित् चरकों की परम्परा रावण कृत अनार्य कृष्ण वेद की थी। वैशम्पायन कृष्ण

१—तत्रापि सम्बन्ध मात्रं कर्तव्यं आथर्वणि कान्तमिदमिति। न चेदानीं मन्यदाथर्वणिकान्तं स्वं भवितुमर्हति अन्यदतो धर्मादाम्नायाद्वा। भाष्य—४।३।१३१।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यजुर्वेद की सब शाखाओं के प्रमुख आचार्य थे।[१] शतपथ ब्राह्मण में कृष्ण वेद की चरक शाखा के अनुयायी को चरकाध्वर्यु कहा गया है।

शुक्ल यजुर्वेद के चरण वाजसनेयिनः कहाते थे। सामवेद संहिता के दो भाग थे—आर्चिक और गेय। गेय सम्भवतः छोटे विद्यार्थी—माणावक लोग सीखते थे।[२] कालान्तर में छान्दोग्य चरण सामवेद का मुख्य चरण हो गया। कौशल के राजा हिरण्य नाभ के शिष्य पौरव राजकुमार कृत सामवेद के प्रसिद्ध विद्वान् थे।[3] कृत ने अपने अन्तःवासियों द्वारा सामवेद की २४ संहिताओं का प्रचार प्राच्यदेश में किया था।

मौद और पैप्पलाद अथर्ववेद के दो चरण थे। एक उपचरण जाजल भी था, जिसकी स्थापना जाजलि ब्राह्मण ने की थी।

ब्राह्मण साहित्य--ब्राह्मण साहित्य भी वैदिक से कम न था। ऐसे अनेक वैदिक चरण थे--जो किसी शाखा ग्रन्थ का विकास न कर विशिष्ट ब्राह्मण ग्रन्थों ही का विकास करते थे। तीस अध्याय वाले ब्राह्मण त्रैंश और चालीस अध्यायों वाले चात्वरिंश कहाते थे।[४] भल्लविन और शाट्यायन ब्राह्मण पुराण प्रोक्त कहाते थे, जो अब लुप्त हैं। तवलकार जैमिनी के अन्तेवासी थे। उनका ब्राह्मण तवलकार प्रसिद्ध था। हारिद्र, शैलाल माष-शराविन् के भी ब्राह्मण चरण थे। याज्ञवल्क्य ब्राह्मण का अधिक महत्त्व था। याज्ञवल्क्य प्रोक्त ब्राह्मण याज्ञवल्कानि कहाते थे। इन्हें अभी--तुल्यकाल[५] ही माना जाता था। इसी से इस की चरण स्थापना नहीं हुई थी।

आजकल शतपथ ब्राह्मण १०० अध्यायों में उपलब्ध हैं। पर इस काल में शतपथ के कई काण्ड पृथक् २ ब्राह्मण ग्रन्थों के रूप में थे। पीछे वह मिलकर एक महाग्रन्थ हो गया। महाभारत में याज्ञवल्क्य को शतपथ के रहस्य (काण्ड १०७ संग्रह (काण्ड ११) और परिशेष (काण्ड १२-१४) का कर्ता कहा गया है।[६] कात्यायन शतपथ के अन्तिम पांच काण्ड या ४० अध्यायों को पहिले के अध्यायों के समान ही प्राचीन कहते हैं।

कुछ ब्राह्मण अनु ब्राह्मण भी कहाते थे।[७]

१—स्मर्यते च वैशम्पायनः सर्वशाखाध्यायी। मीमांसा भाष्य—शवर स्वामी १।१।३०

२—गेयाति माणवकेन सामाति ६।४।६८ काशिका।

३—विष्णु पुराण ४।१९।५०-५२।

४--कौषीतकि ब्राह्मण में ३० और ऐतरेय में ४० अध्याय हैं। कदाचित् इन्हीं का यह नाम प्रसिद्ध था--कीथ।

५--नवीन।

६--महाभारत शान्ति पर्व ३१८।१५।

७—वेवर, इतिहास पाद टिप्पणी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपनिषद--वृहदारण्यक उपनिषद इस काल में भी प्राचीन माना जाता था। उन्हें रहस्य विद्या के ग्रन्थ माना जाता था।

सूत्र चरण—विस्तृत ब्राह्मण ग्रंथों को संक्षिप्त करके छोटे छोटे सूत्र ग्रंथों का निर्माण हुआ। ये ग्रंथ चारण्य व्यूह में तैयार हुए। चारण्य व्यूह में ऋग्वेद के १२ अथर्व के ९ चरण थे। प्रत्येक सूत्र चरण के सूत्र प्रथक् थे। उनके अनुयायी भारत भर में फैल कर उसीं चरण के सूत्र छात्रों को पढ़ाते थे। इस से धीरे धीरे सम्पूर्ण भारत में इन सूत्र ग्रंथों का बहुत भारी संग्रह हो गया। जिनमें अब बहुत ही कम उपलब्ध है।

श्रौत सूत्र—ब्राह्मण ग्रंथों में जो बढ़ा चढ़ा विस्तृत वर्णन यज्ञ सम्बंधी था। वही श्रौत सूत्रों में संक्षिप्त करके लिखा गया। ऋग्वेद के दो श्रौत सूत्र आश्वलायन और साङ्खायन, सामवेद के तीन–भासक, लात्यायन और द्राह्यायन। कृष्ण यजुर्वेद के चार—बौद्धायन, भारद्वाज, आपस्तम्व, हिरण्य केशिन, और शुक्ल यजुर्वेद के सम्पूर्ण प्राप्त है।

आश्वलायन सौनक का शिष्य था। इन गुरु शिष्यों ने मिलकर ऐतरेय आरण्यक के दो अन्तिम भाग लिखे। सौनिक आर्ष काल का एक महत्व पूर्ण व्यक्ति है। यह कदाचित् गृतसमिद के वंश में था। शौनक वंश अपने काल का प्रसिद्ध याज्ञिक था। सांखायन श्रौत सूत्र पश्चिमी भारत का तथा आश्वलायन पूर्वी भारत का है।

सामवेद के मासक श्रौत सूत्रों में भिन्न २ विधानों के गीत हैं, तथा लात्यायन में भिन्न २ आचार्यों के मत हैं। ये दोनों ही सूत्र ग्रन्थ सामवेद के ताण्य या पंचाविंश ब्राह्मणों से सम्बन्धित है। ब्राह्मण में लात्यायन से थोड़ा अन्तर है। कृष्ण यजुर्वेद के सूत्र अनुक्रम से बौधायन, भारद्वाज, आपस्तम्ब और हिरण्य केशिन हैं। बौधायन और आपस्तम्ब के समयों में सैंकड़ों वर्षों का अन्तर है। आपस्तम्ब सम्भवतः दक्षिण में कृष्णा नदी के तट पर उत्पन्न हुआ था। वहीं उसने अमरावती में अपना चरण स्थापित किया था। सम्भवतः इसका काल ई० पू० तीसरी या चौथी शताब्दी है। उसने छंदों वेदाङ्गों के अतिरिक्त पूर्व मीमांसा और वेदांत का भी उल्लेख किया है।

शुक्ल यजुर्वेद का श्रौत सूत्र कात्यायन कृत है। यह भी प्रसिद्ध सौनक की शिष्य परम्परा में है, तथा पाणिनि का समकालीन व सहाध्यायी है। कात्यायन सूत्र में शतपथ का पूरा अनुकरण है। इसके प्रथम के १८ अध्याय इस ब्राह्मण के प्रथम के ९ अध्यायों से मिलते हैं। लात्यायन की भाँति कात्यायन भी मध्य देशीय ब्रह्म बन्धुओं का उल्लेख करता है – जो बौद्ध थे।

धर्म सूत्र—धर्म सूत्रों का महत्व इस लिए विशेष है– कि उनसे तत्कालीन लोक व्यवहार पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। धर्म सूत्र वास्तव में नागरिक जीवन के नियम हैं। इन्ही धर्म सूत्रों के आधार पर उत्तर काल में स्मृतियों का निर्माण हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहुत से धर्म सूत्र अब उपलक्ष्य नहीं है। मनु का धर्म सूत्र अब सम्पूर्ण अनुपलब्ध है, उसी पर से वर्तमान मनुस्मृति बनाई गई है। इसके बाद वशिष्ठ और गौतम के धर्म सूत्र हैं। जिनमें मनु के धर्म सूत्रों का उल्लेख है। वशिष्ठ धर्मसूत्र ऋग्वेद से तथा गौतम धर्म सूत्र सामवेद से सम्बन्धित है। इसके बाद बौधायन और आपस्तम्ब धर्मसूत्र हैं जो कृष्ण यजुर्वेद से सम्बंधित हैं।

गौतम धर्म सूत्र सर्वाधिक प्राचीन हैं। बौधायन ने गौतम का पूरा एक अध्याय उद्धृत किया है. और वशिष्ठ ने वही अध्याय बौधायन से उद्धृत किया है। इस से वशिष्ठ बौधायन का उत्तर कालीन है। आपस्तम्ब भी बौधायन का उत्तरकालीन है।

गृह सूत्र—गृह सूत्रों में सामाजिक जीवन के नियम उल्लखित है। पति-पत्नि, पुत्र-पिता, परिजनों के पारस्पारिक व्यवहार तथा घरेलू नियमों पर इन सूत्रों में प्रकाश डाला गया है।

गृह विधानों में यज्ञ, गृहाग्नि की रक्षा, पितृ यज्ञ, समय समय पर होने वाले यज्ञ श्राद्ध, श्रावण, आग्राहायणी, चैत्री, आश्व युजी—जो कभी पर्व दिन थे, और अब त्यौहार बन गए हैं। उनका इन गृह्यसूत्रों में पूरा वर्णन है। उन सामाजिक विधानों का भी वर्णन है, जो सोलह संस्कारों के नाम से प्रसिद्ध हैं, जिस में विवाह, पुत्र जन्म, विद्यारम्भ, अन्न प्राशन आदि के अवसरों पर धर्मानुष्ठान करने की विधियाँ हैं।

ऋग्वेद के सांख्यायन और आश्वलायन गृह्यसूत्र हैं, और शुक्ल यजुर्वेद के पारस्कर गृहसूत्र। श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र और गृहसूत्र को मिला कर कल्पसूत्र कहते हैं।

कल्प सूत्र—कल्प सूत्रों के भी चरण थे। इनमें कल्प सूत्रों का अध्ययन होता था। कल्पसूत्रों का मुख्य विषय यज्ञीय कर्म कांड था। इसे व्याख्यात साहित्य भी कहते थे। यज्ञों के विविध भागों तथा विधियों की व्याख्या कल्पसूत्रों में है: वाजपेय, अग्निष्टोम, यज्ञ, अथवा, पाकयज्ञ, नवयज्ञ, हविर्यज्ञ इन पर व्याख्याऐं इन दिनों भी रची जा रहीं थीं। अलग अलग देवताओं के लिए पुरोडाश बनाना इस समय के कर्म कांड का एक अंग था। इस सम्बंध की पुस्तकें पुरोडाशक कहाती थी। ऋत्विज लोगों को इन्हें सीखना पड़ता था। कुछ ग्रंथ पौरश्चरणिक कहाते थे; कुछ प्राथमिक। अध्वर या सोम यज्ञों पर व्याख्यान ग्रन्थ आध्वरिक कहाते थे।

सुल्व सूत्र पारायण-साहित्य—सुल्व सूत्रों में रेखागणित की उन रीतियों का वर्णन है जिससे यज्ञ वेदी बनाई जाती है। वैदिक पारायण का व्याख्यान करने वाले ग्रंथ पारायण साहित्य के अन्तर्गत थे। जो पद पाठ आदि की शिक्षा देते थे।

ज्योतिष—ज्योतिष सम्बंधी विषय-जैसे—उत्पात, सवत्सर, मूहूर्त, निमित्त का अध्ययन होता था। इनके अध्येयता, औत्पातिक, सांवत्सरिक, मौहूर्तिक और नैमित्तिक कहे जाते थे। शरीर लक्षणों पर से शुभ अशुभ शकुन और भविष्य कथनों पर विश्वास था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दार्शनिक साहित्य—दार्शनिक साहित्य की गम्भीर और प्रधान चर्चा थी। किसी सिद्धांत या मत को मति या दृष्टि कहते थे। कुछ आस्तिक दर्शन थे--कुछ नास्तिक, कुछ दैष्टिक। लोकामत दर्शन नास्तिक था। परन्तु वर्तमान, षड़ दर्शनों का स्वरूप संगठित नहीं हुआ था। वह बनता जा रहा था। न्याय के अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रचलन था। मीमांसा के छात्र मीमांसक कहाते थे।

अन्य साहित्य—विविध साहित्य में भिक्षु सूत्र, नट सूत्र थे। भिक्षु सूत्र में सम्भवतः यतियों के नियम थे। ऐसा एक ग्रन्थ कर्मन्द कृत था। पाराशर्य कृत भिक्षु सूत्र का सम्भवतः वर्तमान वेदान्त सूत्रों में विकास हुआ। कुछ विद्वान् कहते हैं कि भिक्षु सूत्रों में सांख्य मत का आरम्भिक रूप वर्णित था। इन भिक्षु सूत्रों की रचना वैदिक चरणों में हुई थी। ऋग्वेद की वाष्कल शाखा के अन्तर्गत पाराशर्य चरण की स्थति थी।

नट सूत्रों से नाद में नाटय शास्त्र विकसित हुआ। इस विषय का अध्ययन ऋग्वेद के चरण के अन्तर्गत होता था। शिलालि चरण के अन्तर्गत एक ब्राह्मण ग्रन्थ का विकास हुआ था। जिसे शैलालि ब्राह्मण कहा गया है[1]। पीछे इस विषय को हीन माना गया[2]।

आख्यान काव्य—इस युग में श्लोक और गाथाओं का भी यथेष्ठ प्रसार हो गया था। साहित्य भी निर्माण हो चुका था। भार्गव राम और ययाति के आख्यान पढ़े जाते थे। इसी समय में प्राकृत पहिलेपहल साहित्यिक रूप में प्रकट हुई।

ब्राह्मण सूत्र रचना में संलग्न रहते थे। राज यश गान सूत्रों के हाथ चला गया था। महर्षि व्यास ने वेदों को बाँटते समय पुराणों को लोमहर्षण सूत को दिया था। सूत लोग संस्कृत में प्रवीण न होने से प्राकृत ही की ओर झुकते थे। जन साधारण भी यही भाषा व्यवहार करती थी। राजा अपने पूर्व पुरुषों का इति वृत्त और वंशावालियों पर पूरा ध्यान देते थे। इसी से इतिहास बना। और कहना होगा—राजाओं, सूतों, स्त्रियों तथा शूद्रों के प्रोत्साहन से पहिले पहल इतिहास का प्रादुर्भाव हुआ। संस्कृत पुराण प्राकृत पुराणों से बने।

भाषा के तीन रूप—प्राचीन वैदिक भाषा आसुरी कहाती थी। जिसमें ऋग्वेद और सामवेद का गान हुआ। यजुर्वेद और अथर्वा वेद की भाषा उन्नत थी। ब्राह्मणों आरण्यकों, उपनिषदों की भाषा उत्तरोत्तर उन्नत होती दीख पड़ती है। अब व्याकरण दृढ़ होने से उसका नाम संस्कृत पड़ा। इस प्रकार वैदिक काल की भाषा आसुरी और सूत्रकाल की संस्कृत हुई।

१—आपस्तम्ब श्रौत सूत्र ६।४।७।

२ पतञ्जलि इसे अध्ययन के विषय से वहिर्भूत मानते हैं। वे इस विषय के सिखाने वाले नटों को गुरु नहीं मानते। १।४।२९ भाषा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

काव्यों का संकेत पाणिनि ने किया है।[1] जिनमें सम्भवतः कृष्ण, यम; नचिकेता और इन्द्र-वृत्र की कथाएँ थीं। इस समय तक सम्भवतः मूल भारत ग्रन्थ चतुर्विंशति साहस्त्री संहिता, शतसाहस्त्री संहिता से पृथक् अस्तित्व में था। दोनों संहिता पृथक् २ थीं। आश्वलायन गृह सूत्र के समय तक मूल भारत काव्य महाभारत से पृथक् था।[2]

वृत्ति—शिल्प और रोजगार सम्बन्धी साहित्य वृत्ति कहाता था। ऐसा साहित्य भी था।

व्याकरण—व्याकरण शास्त्र का इस काल तक अत्यन्त व्यापक विस्तार हो चुका था। यद्यपि पाणिनी ने अपने श्रेष्ठ व्याकरण से पूर्व के सभी वैयाकरणों को भुला दिया—परन्तु इस समय तक पाणिनी से प्रथम, शाकटायन, शाकल्य, अपिशलि, गार्ग्य, गालव, भारद्वाज, काश्यप, सौनक, स्फोटायन और चाक्रवर्मण नामक वैयाकरणी आचार्य हो चुके थे। शाकटायन का मत था कि सर्व नाम या संज्ञाएं धातुओं से बनती हैं। शाकल्य ने ऋग्वेद का पद पाठ ठीक किया। अपिशल ने गुरु-लघु सम्बन्धी नियमों पर ऊहा पोहे की थी। ऋक् और यजु प्रातिशाख्य में गर्ग का नाम आया है। गालव शौनक का शिष्य था। उसने एक शिक्षा की रचना की और उसी क्रम पाठ को ठीक किया। भारद्वाज एन्द्र व्याकरण की परम्परा में थे। कश्यप का उल्लेख तैत्तिरीय प्रतिशाख्य और महाभारत में है।[3] कहते हैं काश्यप का कोई निरुक्त ग्रन्थ था। पाणिनी ने प्राची (पूर्वी भारत के) और उदीची (उत्तर पश्चिमी) आचार्यों का मत अपने व्याकरण में उद्धृत किया है। आज इन आचार्यों का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, केवल दो चार छुट पुट सूत्र हैं। परन्तु पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि ने उन आचार्यों की महिमा का बखान किया है।

६—शिक्षा पद्धति

शिक्षा पद्धति—इस काल में साहित्य और शिक्षा के क्षेत्रों में बहुत विकास हुआ था। साहित्य के विभिन्न रूप, ग्रन्थ रचना प्रकार; शिक्षा संस्थाएं, आचार्य और अन्तेवासी छात्र, शिक्षण प्रणाली ये सब बातें ऐसी व्यवस्थित और पद्धति

१—४३। ८८।

२—अथऋषयः शतर्चिनो माध्यमाः गृत्समदोविश्वामित्रो वामदेवोऽत्रिर्भारद्वाजो वशिष्ठः प्रगाथाः पावमन्यः क्षुद्रसूक्ता महासूक्ता इति। प्राचीना वीति, सुमन्त, जैमिनी, वैशम्पायन, पैल, सूत्र भाष्य, भारत महाभारत, धर्माचार्याः।
(आश्वलायन गृहसूत्र ३, ४।)

३—शान्ति पर्व ३३०।२४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूलक थी। इस काल की शिक्षा और ग्रन्थ रचना प्रणाली ने एक नवीन बौद्धिक विकास का युग उपस्थित किया था, जिसका प्रभाव जन जीवन के विकास पर भी पड़ा।

विद्यार्थी ब्रह्मचारी होता था, उसकी शिक्षा में ज्ञान सचय के साथ आन्तरिक जीवन निर्माण पर बहुत बल दिया जाता था। गुरु और शिष्य दोनों ही का विद्या का अभंग सम्बन्ध था। वे शिष्य आचार्यों के अन्तेवासी के रूप में उनके साथ रहते, और उनके जीवन से प्रभावित रहते थे।

ब्रह्मचारी चरण—एक संस्था 'ब्रह्मचारी-चरण' होती थी। जहां विद्यार्थी अन्य ब्रह्मचारियों के साथ रह कर विद्याध्ययन करते थे। इन चरणों का शिक्षा प्रसार में बड़ा हाथ था। इस समय विद्यार्थी 'वर्णी' कहाते थे। इसका अर्थ था कि वे ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य, तीन वर्णों के होते थे।[1] ब्राह्मणों में और वेदों में यह नाम अज्ञात था। साधारणतया विद्यार्थी छात्र कहाते थे। छात्र का अर्थ था—'छत्र शीलमस्य' छत्र के समान गुरु के जीवन पर छाया हुआ।

दण्ड माणव—छात्र दो प्रकार के होते थे—एक दण्ड माणव दूसरे अन्तेवासी। दण्ड माणव को केवल माणव भी कहते थे। ये छात्र अपर-प्राइमरी के छात्र जैसे होते थे। उनका यज्ञोपवीत नहीं होता था।[2] दण्ड धारण करने के कारण वे दण्ड माणव कहाते थे, यह दण्ड पलाश का होता था। उसे अषाढ़ कहते थे। अभी वे वेद नहीं पढ़ते थे। माणवों का वर्ग माणव्य कहाता था।

अन्तेवासी—जब वेद पढ़ने का समय नजदीक आता था—तब छात्र का उपनयन संस्कार होता था। इस संस्कार को आचार्यकरण कहते थे। अब वह गुरु का अन्तेवासी होता था।[3]

उपनयन होने के बाद छात्र और गुरु दोनों में एक अटूट सम्बन्ध हो जाता था।[4] गुरु की सेवा करके छात्र विद्याध्ययन करता था। छन्द का अध्ययन करने वाला छात्र शुश्रूषु होता था। क्योंकि वेद छन्द लिखे नहीं होते थे। वह श्रुति को कान से सुन कर याद करता था। पिता से पढ़ने वाले छात्र पितुरन्तेवासी कहाते थे। आचार्य पुत्र का महत्त्व होता था। वह 'राजपुत्र' ही की भांति विशेष सम्मान का भाजन होता था।

१—वर्णाद् ब्रह्मचारिणि ५।१।१३४ पाणिनि।

२—अनृचो माणवे वह्वचश्चरणाख्यायामिति। म० भा० ५।४।१५४।

३—आचार्यकरणमाचार्य क्रिया। माणवकमीदृशेन विधिनाऽऽत्मसमीपं प्रापयति यथा उपनेता स्वमाचार्यः संपद्यते। माणवकमुपनयत। आत्मानमाचार्यं कुर्वन्माणवकमात्म समीपं प्रपयतीत्यर्थः। काशिका।

४—आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः। अथर्व ११।५।३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुरु—गुरु चार प्रकार के होते थे। (१) आचार्य (२) प्रवक्ता (३) श्रोत्रिय (४) अध्यापक। आचार्य सर्वोच्च होता था। प्रवक्ता प्रोक्त साहित्य, शाखा ग्रन्थ; ब्राह्मण, श्रौतसूत्र आदि पढ़ता था। वेद और वेदांगों का अर्थ सहित अध्यापन कराना इनका काम था[1]। श्रोत्रिय छन्द या वेद का कण्ठस्थ पारायण कराता था[2]। वे संहित, पद, क्रम, दण्ड, जटा, घन, आदि पाठों के अनुसार शाखा ग्रंथ और उनके ब्राह्मण आदि को स्वय कण्ठ रखते तथा विद्यार्थी को कराते थे। बड़े बड़े चरणों में भिन्न २ पाठ कंठस्थ कराने के लिए भिन्न २ अध्यापक होते थे।

वैज्ञानिक या लौकिक साहित्य का पाठ कराने वाले को अध्यापक कहते थे। ये लोग माणवक कक्षाओं को भी पढ़ाते थे।

दूषित छात्र—जो छात्र ठीक २ अध्ययन नहीं करते थे। उनके दूषित नाम रक्खे जाते थे, जो निन्दा वाचक होते थे। जो पूरे समय तक गुरुकुल में वास न करे, बार बार गुरु को बदलता रहे—उसे तीर्थकाक कहते थे[3]। जो समय से प्रथम ही स्नातक होने से प्रथम गुरुकुल को छोड़ देते थे-वे खट्कारूढ कहाते थे। आलसी,लालची पेटू विद्यार्थियों के भी निन्दा सूचक नाम होते थे।

छात्रों के नाम—छात्रों के तीन नाम भिन्न २ आधारों पर होते थे—(१) अध्ययन के विषय पर (२) जिस चरण में पढ़ते हो उसके अनुसार। (३) गुरु के नाम के अनुसार।

चरण—उन दिनों सैकड़ों वेद की शाखाएं और उनके ब्राह्मण थे। जिन के पृथक्-पृथक् चरण थे। शाखा के प्रवचन कर्ता आचार्य नए ब्राह्मण व्याख्या ग्रंथों की रचना करते रहते थे। यही क्रम शिष्य परम्परा में चालू होता था। पर नाम चरण का ही रहता था। जैसे आचार्य तित्तिरि का तैत्तिरीय चरण था। उसमें तैत्तिरीय शाखा, तैत्तिरीय ब्राह्मण, तैत्तिरीय आरण्यक, तैत्तिरीय उपनिषद्, तैत्तिरीय प्रतिशाखा आदि समस्त साहित्य तैत्तिरीय चरण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वैदिक सब चरणों की यही परम्परा रही। चरण एक प्रकार के वैदिक विद्यापीठ थे। पाणिनीय अष्टाध्यायी को सभी चरणों की परिषदों ने अपनाया था[4]।

इसके बाद वैदिक चरणों में कल्प साहित्य का समावेश हुआ, जिसमें श्रौत सूत्र भी थे। कुछ चरणों में धर्म सूत्रों का निर्माण हुआ। इन सब का नाम इसी प्रकार चरण के नाम से रक्खा गया। कुछ चरण प्रसिद्ध थे—कुछ छोटे और अप्रसिद्ध।

---

१. पाणिनी २। १। ६५

२. श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते ५। २। ८४ पाणिनि।

३. ये गुरुकुलानि गत्वा न चिरंतिष्टति स उच्यते तीर्थ काकः इति (भाष्य)

४. भाष्य २। १। ५८। ६।३। १४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रमुख चरणों में छंद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, प्रतिशारण्या। श्रौत सूत्र आदि का विकास हो गया था। छोटे चरणों जो एकाध सूत्र ग्रंथ ही बना पाते थे, वे सूत्र चरण कहाते थे।

स्वतन्त्र छात्र—कुछ छात्र ऐसे भी थे--जो चरणों से बाहर ही रह कर उन ग्रंथों को पढते थे। जिनकी रचना चरणों की परिधि से बाहर हुई थी। ऐसा साहित्य इस समय पूरे जोरों पर तैयार हो रहा था। क्यों कि इस काल में शाकटायन, आपिशलि; स्फोटायन, भारद्वाज जैसे महान् आचार्य उत्पन्न हो रहे थे। व्याकरण और भाषा शास्त्र में युगांतर कारी नई रचनाऐं होती जाती थीं। ऐसे आचार्यों के अन्तेवासी छात्र गुरु के नाम पर प्रसिद्ध होते थे। जैसे पाणिनी के पाणिनीय, आपिशल के अपिशल, शाकटायन के शाकटायनीय आदि।

स्त्री शिक्षा—चरणों में भी तथा बाहर भी स्त्रियां भी पुरुषों की भांति शिक्षा पाती थीं[२]। छात्रों के नाम के नियम छात्राओं पर भी लागू होते थे--कठ चरण में पढ़ने वाले छात्र 'काठः' कहाते थे, छात्राऐं 'कठी' कहाती थीं। इसी प्रकार ऋग्वेद के वह्वृची चरण की छात्राऐं वह्वृची कहाती थीं, पाणिनीय शास्त्र को पढ़ने वाली पाणिनीया कहाती थीं। मींमासा जैसे टेढ़े विषय को भी स्त्रियां पढ़ती थीं[२]। छात्राओं के लिए पृथक् छात्रिशालाऐं भी थीं[३]। जो स्त्री आचार्य के समान पढ़ाती थीं वह आचार्यानी कहाती थीं। छात्राओं का उपनयन भी होता था। कहीं कहीं इन स्त्री आचार्याओं से पुरुष छात्र भी पढ़ते थे। औदमेध्या आचार्या से पढ़ने वाले छात्र अपनी आचार्या के नाम पर औदमेध कहाते थे[४]।

अध्याय—अध्ययन के दिन अध्याय कहाते थे। छुट्टी के दिनों को अनध्याय कहते थे। देश काल के अनुसार अध्याय अनाध्याय होते थे।

कक्षाएं और पाठ्य-क्रम—एक ही चरण में पढ़ने वाले ब्रह्मचारी-सब्रह्मचारी कहाते थे। एक गुरु के पास पढ़ने वाले सतीर्थ कहाते थे। भिन्न २ विषयों की भिन्न २ कक्षाऐं होती थीं। पतंजलि के काल में पढ़ने में ढील आ गई थी। पुरानी प्रथाऐं भी बदल गईं थीं। इस काल में वेद कण्ठ करने वाले क्षात्रों की संख्या बढ़ गई थी। छात्र व्याकरण आदि न पढ़ कर आरम्भ ही से वेद पढ़ने लगते थे। ऐसे छोटी छोटी

---

१. जातेरस्त्री विषयपादयोपधात् ४। १। ६२। पाणिनी

२. एवमपि काश कृत्स्निना प्रोक्ता मीमांसा काश कृत्स्नी, काश कृत्स्नी मधीते, काश कृत्स्ना ब्राह्मणी। ४। १। १४। भाष्य।

३. ६। २। ८६ पाणिनि।

४. ४१। ७८। वा० १ भाष्य।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आयु के छात्र जब अशुद्ध पाठ पढ़ते थे—तो अध्यापक उनके चांटे रसीद करते थे[1]। आरम्भ में छात्र समित्पाणि हो कर गुरु के पास जाता था। समित्पाणि होना ब्रह्मचर्य का औपचारिक नियम था।

चरणों की व्यवस्था—अध्ययन की समाप्ति को समापन कहते थे। चरणों की व्यवस्था प्रबंध संघ के आदर्श पर होती थी।

परिषद—परिषदें तीन प्रकार की थीं :—(१) शिक्षा सम्बन्धी (२) समाज में गोष्ठी सम्बन्धी। (३) राज शासन सम्बन्धी।

शिक्षा सम्बन्धी परिषद चरण के अन्तर्गत एक प्रकार की विद्वत्सभा होती थी। जो उच्चारण और व्याकरण सम्बन्धी नियमों का निश्चय करती थी। परिषदके सदस्य पारिषद्य कहाते थे। सामाजिक परिषद एक प्रकार की गोष्टी होती थी, तीसरी परिषद राजा की राज्य शासन में सहायता देती थी।

चरणों का विस्तार—चरण किसी स्थान में सीमा बद्ध न थे। जहां जहां आचार्य के अन्तेवासी और उनके शिष्य फैलते जाते थे, वे उसी चरण के नाम से प्रसिद्ध होते थे। पर वे चाहे भी जहां हों उन सबका एक सामूहिक नाम था। कठ चरण के आचार्य और छात्र जहां भी हों काठक कहाते थे।

गोत्र और चरण—इसी काल में चरण और गोत्र जातियों का स्वरूप धारण करते जाते थे। आज श्रोत्रीय, उपाध्याय, त्रिवेदी, द्विवेदी आदि की उपाधियाँ जाति वाचक या गोत्र वाचक हो गई हैं। ये उस काल में वास्तव में चरण संज्ञक थी।

७—पाणिनि और उसका भाषा संस्कार

पाणिनि व्याकरण—पाणिनि इस युग की महान् विभूति है। इसका काल ई० पू० पाँचवीं शताब्दी का मध्य भाग है। पाणिनि का व्याकरण भारतीय शब्द विद्या का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। जो इस समय उपलब्ध है। इससे पूर्ववर्ती ग्रन्थों में केवल यास्क का निरुक्त ही है, किन्तु उसका क्षेत्र वैदिक अर्थों को विवृत्त करना है। पाणिनि ने अपने समय की सभ्य—शिष्ठ बोलचाल की भाषा की भली भांति जाँच पड़ताल करके सामाग्री जुटाई है, तत्कालीन जीवन का कोई अंग ऐसा नहीं बचा, जिस पर अष्टाध्यायी में दृष्टि न फेंकी गई हो। भौगोलिक जनपदों और स्थानों, वैदिक शाखाओं और चरणों तथा गोत्रों और वंशों के नामों से सम्बन्धित शब्द, जो रात दिन काम में आते थे। उनकी रूप सिद्धि तथा अर्थों का पाणिनि ने विचार किया है। पाणिनीय अष्टाध्यायी को देखकर इसमें संदेह नहीं रहता कि उस काल संस्कृत बोल चाल की भाषा थी। पाणिनि की शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने धातुओं से

---

१. एवंहि दृष्यते लोके च उदात्ते कर्तव्ये अनुदात्तं करोति खन्डिकोपाध्याय स्तस्मै चपेष्टां ददात्यन्यत्त्वं करोषीति, १।१।१। वा० भाष्य।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्वाचन की पद्धति को स्वीकार किया है। पाणिनि प्रथक शाकटायन ने भी यही किया था। परन्तु उसने व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न सभी शब्दों को धातु प्रत्ययों से सिद्ध करने का यत्न किया। पाणिनि ने मध्यम पथ ग्रहण किया, उन्होंने लोक प्रचलित शब्दों को धातु प्रत्यय के झंझट से हटाकर उन्हें संज्ञा प्रमाण कहा[1]। लोक में ऐसे भी शब्द थे जहां व्याकरण की कोई बात ही नहीं चलती, उन्हें उसने यथोपदिष्ठ मान लिया[2]। प्रामाणिकता और शुद्धि की दृष्टि से पाणिनीय अष्टाध्यायी अद्वितीय है। उसमें इस ढाई हजार वर्षों के दीर्घ काल में बहुत कम फेरफार हुआ है।

यास्क और पाणिनि—यास्क के काल ही में वैदिक युग समाप्त हो चुका था। नए नए ग्रन्थ, विचारणीय विषय, और शब्द जन्म ले रहे थे। दिग्गज पण्डितों का जमाव हो रहा था। गद्य और पद्य की एक नई प्रभावशाली भाषा शैली, काम्बोज से कच्छ–काठियाबाढ़, दक्षिण में अश्मक, और पूर्व में कलिंग तक फैल चुकी थी। ठीक ऐसे समय में पाणिनि ने लेखनी उठाई। और ऐसे परिपूर्ण व्याकरण शास्त्र की रचना अपने समर्थ हाथों से की—कि तत्कालीन संस्कृत भाषा की बहुत सी जटिल समस्याओं का समाधान हो गया। और पाणिनीय शास्त्र महान् विख्यात हो उठा।

अष्टाध्यायी—अष्टाध्यायी में ३९९५ सूत्र हैं। वे अत्यन्त संक्षिप्त सूत्र शैली में लिखे गए हैं। इसी से पाणिनि सूत्रकार प्रसिद्ध हो गए। कशिका कार कहता है कि पाणिनि का व्याकरण जब लोक में फैला, तब उसका प्रमाण मानते हुए–इति पाणिनि, इति पाणिनि की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। पतंजलि पाणिनि को प्रमाण भूत आचार्य कहता है[3]।

पाणिनि ने शब्द और अर्थ के सम्बन्धों और रूपों को परखा, और अपनी अष्टाध्यायी में उन्हें स्थान दिया। उनसे प्रथम शब्दों और अर्थों के पारस्परिक संबन्धों की छानबीन नहीं की गई थी। अष्टाध्यायी का चौथा और पाँचवां अध्याय अर्थ विशिषों को कहने वाली वृत्तियों का अटूट भंडार है। गण पाठ उनकी अपनी सूझ थी। हिटनी और वर्नेल ने भी यह स्वीकार किया है कि पाणिनि से पूर्व गण पाठ की प्रथा न थी। गण पाठक अष्टाध्यायी का महत्वपूर्ण और आवश्यक अंग है। वहाँ पाणिनि की मौलिक देन है। उसका उद्देश्य यह है कि उन परस्पर भिन्न अनेक शब्दों को—जो किसी एक बात में मिलते हैं, व्याकरण के किसी एक नियम के अन्तर्गत लाया जाय।

साहित्य विस्तार—पाणिनि काल में चार वेद, छै अंग और उपाङ्ग, उपनिषद्

१—१ २।५३।

२—६।३।१०९।

३—प्रमाण भूत आचार्यो दर्भ पवित्र पाणिः शुचावकाशे प्राङ्मुख उपाविश्य महता यत्नेन सूत्रं प्रणयतिस्म। भाष्य।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

९ अथर्व की इस समय तक विकसित हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त वाको वाक्य भिन्न २ वैदिक शाखाएँ, १०० यजुर्वेद की; १००० सामवेद की, २१ ऋग्वेद की, इतिहास, पुराण, वैद्यक आदि का साहित्य लिखा जा चुका था। उस पर पाणिनि ने व्यापक दृष्टि डाली।

पाणिनि से पूर्व के व्याकरणाचार्य—पाणिनि से प्रथम अनेक विद्वान् भाषा संस्कार करने का प्रयत्न करते रहे थे। उनके व्याकरण चरणों में पढ़ाए जाते थे। सबसे प्राचीन व्याकरण ऐन्द्र व्याकरण था। तैत्तिरीय संहिता में ऐसी अनुश्रुति मिलती हैं। इन्द्र ने देव गुरु वृहस्पति के साथ मिलकर व्याकरण सम्बन्धी नियम स्थिर किए थे। सामवेद के ऋक् तन्त्र नामक प्राति शाख्य में लिखा है, कि ब्रह्मा ने वृहस्पति को, वृहस्पति ने इन्द्र को--इन्द्र ने भारद्वाज को व्याकरण की शिक्षा दी, और भारद्वाज ने वह व्याकरण ऋषियों को सिखाया[1]। पाणिनी ने भारद्वाज का उल्लेख किया है। पतञ्जलि ने भी भारद्वाजीय वार्तिकों की चर्चा की है। ऋक् प्रातिशाख्य में भी भारद्वाज मत उल्लिखित है। कथा सरित्सागर और वृहत्कथा मंजरी के अनुसार ऐन्द्र व्याकरण के स्थान में पाणिनि व्याकरण प्रचलित हुआ।

चीनी यात्री ह्वानच्वांग ने भी इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा है। उपलब्ध प्रतिशाख्य, निरुक्त और अष्टाध्यायी में लगभग ६५ ऐसे आचार्यों के नाम आए हैं-जिनके द्वारा उस समय व्याकरण शिक्षा और निरुक्त का विस्तार हुआ[2]। इन सभी का शीर्ष स्थानीय पाणिनि व्याकरण था।

तत्कालीन पठन-पाठन की परिपाटी—उस काल में पठन पाठन की ऐसी परिपाटी प्रचलित थी--कि उपनयन संस्कार के बाद विद्यार्थी पहिले व्याकरण पढ़ते थे, और फिर वे वैदिक शब्दों का बोध करते थे। बाद में छात्र उच्चारण ही से वेद पाठ करने लगे। और वेद से वैदिक शब्दों तथा लोकभाषा से लौकिक शब्दों का बोध पाने लगे। ऐसे लोग व्याकरण पढ़ना ही व्यर्थ समझने लगे थे। इसी से पाणिनि का यह व्याकरण रचा गया। उसका उद्देश्य अशुद्ध प्रयोगों को हटा कर शुद्ध व्याकरण के नियम निश्चित करना था। यही पाणिनि का भाषा संस्कार था। जिसका परिणाम यह हुआ कि संस्कृत का वह उत्कृष्ट रूप बन गया कि आज ढाई हजार वर्षों से वह अविकृत रूप में चली आती रही है। इसी से अष्टाध्यायी को शब्दानुशासन-शास्त्र कहा गया है। पाणिनि ने मुक्त भाव से अपने पूर्व के आचार्यों से अपने ग्रन्थ में सहायता ली हैं।

१--इदमक्षरं छंदसां वर्णशः समनुक्रांतम्। यथाचार्या ऊचुब्रह्मावृहस्पतये प्रोवाच, वृहस्पति रिन्द्रायेन्द्रो भारद्वाजाय, भारद्वाज ऋषिभ्यः, ऋषयो ब्राह्मणेभ्यस्तं खल्विमं मक्षर समाम्नाययमित्याचक्षते। ऋक् तन्त्र। १। ४।

२--देखिए मैक्समूलर कृतं संस्कृत साहित्य का इतिहास।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाणिनिका जन्म स्थान—पाणिनि पठान थे। उनका जन्म-स्थान शलातुर था। काबुल और सिन्धु के संगम पर एक स्थान 'ओहिन्द' है। इसे प्राचीन काल में उद्भाण्डपुर कहते थे। यहां से ४ मील उत्तर-पश्चिम में लहुर गांव है, यहां बहुत से पुराने टीले हैं। जिनकी खुदाई हुई है, वहां से कुछ मूर्तियां मिली हैं।[1] इस समय रेल जहां अटक के पुल से सिन्धु पार जाती है, वहां जहांगीरा स्टेशन पर उतर कर १२ मील चलने पर लहुर पहुँच सकते हैं। यही लहुर गांव पाणिनि का जन्म स्थान 'शलातुर' है। चीनी यात्री ह्वेनसांग सातवीं शताब्दी के आरम्भ में मध्य एशिया के स्थल मार्ग से आते हुए शलातुर में ठहरा था। वह कहता है कि शलातुर के लोग पाणिनि शास्त्र को पढ़ते हैं। और उसके उदात्त गुणों की प्रशंसा करते हैं। वह उसकी एक मूर्ति का भी उल्लेख करता है, जो उस काल में विद्यमान थी।[2] सिन्धु के पूर्वी किनारे पर शकर-दर्रा (शक्र द्वार) नामक गांव है। वहां से एक खरोष्ट्री लेख प्राप्त हुआ है। उसमें इस घाट को शलातुर के नाम पर शल-नो-क्रम (शलानौक्रम) कहा गया है।

जीवन वृत्त—कथा सरित्सागर (११वीं शताब्दी) और बृहत्कथा ग्यारहवीं शताब्दी) में पाणिनि के जीवन वृत्त की कथा है। लिखा है कि पाणिनि आचार्य वर्ष के मन्द बुद्धि शिष्य थे। पढ़ने-लिखने में पिछड़ जाने से पाणिनि खिन्न होकर तप करने हिमालय पर गए—वहां शिव को प्रसन्न कर व्याकरण प्राप्त किया। बौद्ध ग्रन्थ मंजुश्री-मूलकल्प में पाणिनि को नन्द राजा का मित्र लिखा है। राज शेखर ने काव्य मीमांसा (नौवीं शती) में इस अनुश्रुति को इस परम्परा में लिखा है—कि पाटलिपुत्र में शास्त्रकार परीक्षा होती थी। उस परीक्षा में वर्ष-उपवर्ष, पाणिनि, पिंगल, और व्याडि ने उत्तीर्ण होकर यश प्राप्त किया। उपवर्ष मीमांसा और वेदान्त सूत्रों के भाष्यकार थे। वर्ष उनके भाई तथा पाणिनि के गुरु थे। पिंगल छन्दोविचित के कर्ता थे। इन्हें षड़-गुरु-शिष्य ने वेदार्थ दीपिका टीका में पाणिनि का छोटा भाई कहा है। व्याडि पाणिनि के सम्बन्धी थे। उन्होंने व्याकरण शास्त्र पर एक संग्रह लिखा था; जो पतंजलि ने देखा था, तथा प्रशंसा की थी।

ह्वेन्त्सांग कहता है—जन्म ही से उनकी सब विषयों में जानकारी चढ़ी-बढ़ी थी। समय की मन्दता और अव्यवस्था को देखकर उन्होंने साहित्य और बोल चाल की भाषा में अनिश्चित और अशुद्ध प्रयोगों एवं नियमों में सुधार करना चाहा। उनकी इच्छा थी कि नियम निश्चित करें और अशुद्ध प्रयोगों को ठीक करें। उन्होंने देश पर्यटन किया। उस समय ईश्वर देव से उनकी भेंट हुई। उन्होंने पाणिनि की योजना पसन्द की और सहायता का वचन दिया। पाणिनि ने उनसे उपदेश ग्रहण

---

१. कनिंघम, पुरातत्त्व रिपोर्ट २।९५ प्राचीन भारतीय भूगोल।
२. सियुकि १।११६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर एकान्त स्थल में जा ग्रन्थ रचा। ... ... समाप्त होने पर नन्द राजा के पास भेजा—उसने आज्ञा दी कि सम्पूर्ण राज्य में इसका प्रचार किया जाय। उसने यह भी घोषणा की कि जो कोई इसे समग्र कण्ठ करेगा, उसे एक सहस्त्र स्वर्ण मुद्रा पुरस्कार मिलेगा। तभी से आचार्यों ने इसे स्वीकार किया। और अविकल रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षित करते रहे। यही कारण है कि इस नगर के विद्वान् ब्राह्मण व्याकरण शास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं, और उनकी प्रतिभा भी अच्छी है।[1]

यह अधिक सम्भव है कि पाणिनि ने तक्षशिला विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई हो। तक्षशिला के विद्यार्थी—स्नातक होने के बाद ज्ञानवृद्धि के लिए चारिका पर (देशभ्रमण) निकलते थे। और देश के कला कौशल—शिल्प और रीति रिवाजों पर अनुभव प्राप्त करते थे। इसी प्रकार पाणिनि को देशाटन करते हुए ईश्वर देव से साक्षात्कार हुआ। जिनसे प्रेरणा लेकर वे एकान्त में चले गए, और अपने मन और बुद्धि की सारी शक्ति इस कार्य में लगा दी। पाणिनि ने अपना ग्रन्थ समाप्त कर उसे पाटलिपुत्र सम्राट् के पास भेजा। जिसने उसे बहुत सम्मान दिया।[2] पाटलिपुत्र में उन दिनों शास्त्रकार परीक्षा हुआ करती थीं।[3] सम्भव है वे ग्रन्थ लेकर स्वयं वहां गए हों, तभी सम्राट् से उनकी मित्रता हो गई हो। उस काल पाटलिपुत्र विद्या केन्द्र प्रसिद्ध था।

बौधायन श्रौत सूत्र के महा प्रवर कांड के अनुसार पाणिनि वत्स भृगुओं के अन्तर्गत एवं अवांतर गोत्र का नाम था। कैयट के मत से 'पाणिन' के युवा अपत्य की संज्ञा 'पाणिनि' होगी। गांव के नाम पर पाणिनि शालातुरीय भी कहाते थे पतंजलि ने पाणनि को एक कारिका में 'दाक्षी पुत्र' कहा है। दक्षों का सम्बन्ध पच्छिमोत्तर भारत या उदीच्य देश से था। काशिका से संकेत मिलता है कि दक्षों का एक संघ राज्य था, जिसकी अपनी ही बस्ती और अपने ही राज्य-चिन्ह थे। दाक्षिकूल और दाक्षिकूर्ष दो गांवों का उल्लेख काशिका में है।

१—सियुकि ११४--११५।

२—वासुदेव शरण अग्रवाल।

३—संवत्सर के आरम्भ में सम्राट् एक महती विद्वत्सभा करके सब विद्वानों और दार्शनिकों को बुलाते थे। जिस विद्वान् ने किसी नए विषय पर शास्त्र रचना की हो, या कृषि और पशुओं के सुधार के लिए कोई उपाय निकाला हो, या किसी नवीन विषय पर ग्रन्थ लिखा हो। या जनता के लिए हितकारी कोई नई खोज की हो, तो वह विद्वान् अपनी कृति या खोज को सब के सामने रखता है। सम्राट् इस सभा के संरक्षक हैं। (स्ट्रावो, १५।१। मैक् किंडिल मैगस्थनीज उद्धरण ३३। दियोदोर का लेख)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कात्यायन और उनकी वार्तिक—पाणिनि व्याकरण पर जो विवेचन ग्रन्थ हैं उनमें काशिका–पदमंजरी, महाभाष्य, तथा उसके व्याख्यान भर्तृहरि–कैयट–नागश आदि के ग्रन्थ हैं।

कात्यायन–पाणिनि के समकालीन उनके प्रतिस्पर्द्धी आचार्य थे। उन्होंने अपनी वार्तिकों की रचना में पाणिनि जैसा ही व्यापक प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न पाणिनि के देश दर्शन के लिए नहीं, उनके शब्द-शास्त्र के महत्त्व को प्रकट करने के लिए हैं। कात्यायन पाणिनि के सब से बढ़कर मार्मिक पारखी और व्याख्याकार हैं। वे सबसे भारी वैयाकरण थे। पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिक रच कर उन्होंने सूत्रों की पृष्ठभूमि का परिचय दिया है। विचारों की समीक्षा भी की है। मतान्तरों पर शास्त्रार्थ भी किया है। और दूसरों के द्वारा उठाई हुई सभी टीकाओं का परिमार्जन किया हैं। उनके वार्तिकों की संख्या ४२६३ है। जो उनके अथक परिश्रम और ज्ञान गरिमा की परिचायक है।

पतञ्जलि और उनका महाभाष्य—पतंजलि का महाभाष्य पाणिनि शास्त्र से सम्बन्धित सबसे बड़ा शास्त्र है। दृष्टिकोण पतंजलि और कात्यायन दोनों का एक है। कात्यायन के वार्तिक पातंजल महाभाष्य की कुंजी है। पतंजलि के भाष्य में दो प्रकार की शैलियां हैं। जहां तक वार्तिकों का सम्बन्ध है, उन्होंने एक-एक शब्द को समझाने की चेष्टा की है। इस शैली को वह चूर्णिका शैली कहते हैं। जहां सिद्धान्तों की ऊहा पोह विवेचना की है, वहां गम्भीर और ओजस्वी ढंग से इसमें नागावलोकन किया है। पहिली शैली को चूर्णक और दूसरी को तंडक कहते हैं। भाषा की इन दोनों शैलियों के मध्य सूत्र कात्यायन के वार्तिक हैं। भाष्य वास्तव में कात्यायन के वार्तिकों पर ही आश्रित है। उन्होंने पाणिनि को प्रमाण भूत आचार्य माना है।

७—यास्क का निरुक्त

निरुक्त जिसके आधार पर वेदार्थ होता है—का आधार ब्राह्मण है।

वेदार्थ के विस्तृत निदर्शन पर मिलने वाला सबसे प्राचीन ग्रन्थ निरुक्त ही है, यह ऋग्वेदीय लोगों के पठितव्य दश ग्रन्थों में से एक है। दाक्षिणात्य ऋग्वेदाध्यायी इस समय भी इसका पाठ करते हैं। इस निरुक्त से पूर्व भी अनेक निरुक्त थे, किन्तु अब वे सभी लुप्त प्राय हो गए हैं।[1] निरुक्त का मूल निघण्टु है। निघण्टु प्राचीन वैदिक कोषों का नमूना है। निरुक्त ७।१३ में यास्क ने स्वय उन प्राचीन निघंटुओं का स्वरूप कथन किया है :—

१—जी० ओपार्ट के सूची पत्र ५१० पर दक्षिण में किसी घर में उपमन्यु कृत निरुक्य का अस्तित्व बतलाया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"अथोताभिधानैः संयुज्य हविश्वोदयति—इन्द्राय वृत्रघ्ने, इन्द्राय वृत्रतुरे; इन्द्रायां होपुचे इति, तानप्येके समाम्नन्ति, भूमानितु समाम्नायात्, यत्तु सविज्ञान भूतं स्यात् प्राधान्य स्तुति तत् समाप्ने"।

अर्थात् —"कई एक आचार्य ऐसा समाम्नाय करते हैं, जो प्रधान स्तुति वाला" 'अग्नि आदि' देवता का नाम हैं, उसका मैं समाम्नाय करता हूं।"

कौत्सव्य प्रणीत निरुक्त—निघंटु भी—जो अथर्वण परिशिष्टों में से एक है, पुराने निघन्टु ग्रंथों का ही नमूना मात्र है[1]।

यास्कीय निघटु और इस अथर्वण निघंटु के देखने से निश्चय हो जाता है कि प्राचीन निघंटु—ग्रन्थों का आधार प्रधानतया ब्राह्मण ही थे, निघंटु पठित अर्थों और ब्राह्मणांतर्गत अर्थों की निम्नलिखित तुलनात्मक सूची से यह बात बहुत ही स्पष्ट हो जायगी :—

पता	निघण्टु		ब्राह्मण	पता				
१ १४	अत्यः	अश्व	अत्योऽसि अश्व	है०	३	८	९	१
३ १७	अध्वरः	यज्ञ	अध्वरो वै यज्ञः	श०	१	४	१	३८
१ १२	अन्नम्	उदक	अन्नं वाऽ आपः	श०	१३	८	१	९
१ १०	अभ्रम्	मेघ	अभ्राद् वृष्टिः	श०	५	३	५	१७
२ ७	अर्कः	अन्न	अन्नमर्कः	श०	१	१	१	४
३ ४	अस्तम्	गृह	गृहा वा स्तम्	श०	२	५	२	२९
१ १४	अर्वा	अश्व	'अश्व त्व' अर्वाऽसि	ता०	१	७	१	
२ ११	अदितिः	गौ	अदितिर्हि गौः	श०	२	३	४	३४
१ १	,,	पृथ्वी	इयं वै पृथिव्यादितिः	श०	१	१	४	५
१ ११	अदितिः	वाक्	वाग्वा अदितिः	श०	६	५	२	२०
१ १०	अद्रिः	मेघ	गिरिर्वा अद्रिः	श०	७	५	२	१८
१ ५	अभीशवः	रश्मि	अभीशवो वै रश्मयः	श०	५	४	३	१४
१ ११	अनुष्टुप्	वाक्	वाग्वा अनुष्टुप	श०	१	३	२	१६
१ ३	अमृतम्	हिरण्य	अमृतं वै हिरण्यम्	श०	९	४	४	५
२ ७	आयुः	अन्न	अन्नमु वा आयुः	श०	९	२	३	६
२ ७	इषम्	अन्न	अन्नं वा इषम्	कौ०	२८	५		
१ १	इडा	पृथ्वी	इयं 'पृथ्वी' वा इडा	कौ०	९	२		
२ ७	इडा	अन्न	अन्नं वा इला	ऐ०	८	२५		
२ ११	इडा	गौ	गौर्वा इडा	श०	३	३	१	४
३ ३०	उर्वी	पृथ्वी	यथेयं पृथिव्युर्वी	श०	२	१	४	२८

१—इसका देवनागरी संस्करण आर्ष ग्रंथावली लाहौर में छप चुका हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२	७	अर्क्	अन्न	अन्नं वा अर्गुदुम्बरः	श०	३	२	१	३३
१	११	ऋक्	वाक्	वागेवर्चः	श०	५	६	७	१
३	१०	ऋतम्	सत्य	सत्यं वा ऋतम्	श०	७	३	१	२३
२	९	ओजः	बल	ओजः सहः	कौ०	३	५		
३	६	कम्	सुख	सुख वै कम्	गौ० उ०	६	३		
१	७	क्षपा	रात्रि	रात्रयः क्षपाः	ऐ०	१	३३		
१	१	क्षामा	पृथ्वी	इमे वै द्यावापृथ्वी द्यावाक्षामा	श०	६	७	२	३
३	३	गभीरः	महान्	गभीरमिमं महांतमिमं	श०	३	९	४	५
१	११	गीः	वाक्	वाग्वै गीः	श०	७	२	२	५
१	२	चन्द्रम्	हिरण्य	चन्द्र हिरण्यम्	तै०	१	७	६	३
२	३	जन्तवः	मनुष्य	मनुष्यावै जन्तवः	श०	७	३	१	३२
३	४	दुर्याः	गृह	गृहावै दुर्याः	श०	१	१	२	२२
१	११	धिषणा	वाक्	वाग्वै धिषणा	श०	६	५	४	५
१	११	धेनुः	वाक्	वाग्वै धेनुः	ता०	१८	९	२१	
२	७	नमः	अन्न	अन्नं नमः	श०	६	३	१	१७
२	३	नरः	मनुष्य	मनुष्या वै नरः	श०	७	५	२	३९
१	१	निर्ऋतिः	पृथ्वी	इयं'पृथ्वी'वै निर्ऋतिः	श०	५	२	३	३
२	१०	नृम्णम्	धन	नृम्णानि...धनानि	श०	१४	२	२	३०
१	१२	पयः	उदक	आपोहि पयः	कौ०	५	४		
२	७	पयः	अन्न	पय एवान्नम्	श०	२	५	१	६
१	१२	पवित्रम्	उदक	पवित्रं वा आपः	श०	१	१	१	१
२	७	पितुः	अन्न	अन्नं वै पितुः	श०	१	९	२	२०
३	१	पुरु	बहु	पुरुदस्यः वहुदानः	श०	४	५	२	१२
१	१	पूषा	पृथ्वी	इयं वै पृथ्वी पूषा	श०	२	५	४	७
२	१७	पृतना	संग्राम	युधौ वै पृतना	श०	५	२	४	१६
१	३	पृथ्वी	अन्तरिक्ष	इयं'पृथ्वी'अंतरिक्षम्	ऐ०	३	३१		
२	२	प्रजा	अपत्य	प्रजा वै लोकम्	श०	७	५	२	३९
				प्रजा वै सूनुः	श०	७	१	१	२७
३	१७	प्रजापतिः	यज	यजः प्रजापतिः	श०	११	६	३	९
३	२७	प्रत्नम्	पुराण	प्रत्न...सनातन	श०	६	४	४	१७
२	२०	परशुः	वज्र	वज्रो वै परशुः	श०	३	६	४	१०
३	१७	मखः	यज्ञ	यजो वै मखः	तै०	३	२	८	३
३	६	मयः	सुख	यद्वै शिव तन्मयः	तै०	१	२	५	५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१	५	मरीचियाः	रश्मिः	ये रश्मयस्ते देवा मरीचियाः	श०	४	१	१	२५
१	१	मही	पृथ्वी	इयं'पृथ्वी'एव महीजै०ड०		३	४	७	
२	७	रसः	अन्न	रसेनान्नेन	श०	७	२	२	१०
१	५२	रसः	उदक	रसो वा आपः	श०	३	३	३	१८
१	१२	रेतः	उदक	आपो हि रेतः	ता०	८	७	६	
३	३०	रोदसी	धावापृथ्वी	धावापृथ्वी वै रोदसी ऐ०		२	४१		
२	७	वाजः	अन्न	अन्नं वै वाजः	श०	५	१	४	३
२	६	वाजः	बल	वीर्यं वै वाजः	श०	३	३	४	७
१	१४	वाजी	अश्व	वाजिनो ह्यश्वाः	श०	५	१	४	१५
३	१७	विष्णुः	यज्ञ	विष्णुर्वै यज्ञः	ऐ०	१	१५		
२	६	शवः	बल	बल वै शवः	श०	७	३	१	२६
१	१२	सत्यम्	उदक	आपो हिवै सत्यम्	श०	७	४	१	६
१	१४	सप्तिः	अश्व	'अश्वं त्वां' सप्तिरसि	ता०	१	७	१	
१	११	सरस्वती	वाक्	वाग्वै सरस्वती	श०	२	५	४	६
१ज्ञ	१२	सर्वम्	उदक	आप एव सर्वम्	गो०पू०	५	१५		
२	६	सहः	बल	बलं वै सहः	श०	६	६	२	१४
१	६	हरितः	दिशा	दिशो वै हरितः	श०	२	५	१	५

इत्यादि इस छोटी सी सूची से पता चल जाता है कि निघण्टु के अर्थ ब्राह्मणों से कितने मिलते हैं। यदि सब के सब ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध होते तो निघण्टु के सभी शब्द उनमें मिल सकते थे—निरुक्त भी ब्राह्मणों के ही आधार पर लिखा गया है, क्यों कि उसमें यास्क स्वयं 'इति ब्राह्मणम् इतिह विज्ञायते'' कह कर अपने अर्थ की पुष्टि ब्राह्मण वाक्यों से करता है—इस लिए यह निश्चयात्म रूप से कहा जा सकता है कि यास्कीय निरुक्त और निघण्टु का मूल प्रधानतया ब्राह्मण ग्रंथ ही हैं।

८—ज्ञान का नया आदर्श—दर्शन

ज्ञान मन्थन—दार्शनिक काल को हम ज्ञान मन्थन काल कह सकते हैं। व्याकरण निरुक्त आदि शास्त्रों का जन्म हुआ। शाकटायन, यास्क, पाणिनि, औदुम्बरजि, औदुम्बायण, वार्ष्यायणि, शाकल्य, वैशम्पायन, याज्ञवल्क्य जैसे दिग्गज आचार्यों ने इस काल में जन्म लेकर ज्ञान मन्थन किया। महाभारत का अधिकांश इसी युग में बना।

दर्शन—परन्तु सबसे महत्व पूर्ण कार्य दर्शनों का प्रादुर्भाव है। तत्त्व ज्ञान के आचार्यों ने जगत, जीव, ईश्वर, मनुष्य, जीवन और उसके कर्तव्य, नीति-धर्म और धर्म-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीति सामाजिक और मानसिक समस्याओं पर गम्भीर चिन्तन किए। इसी से दर्शनों का उदय हुआ। उस काल में अनेक मतवाद थे—कालवाद, आत्मवाद, स्वभाववाद, नियतिवाद, यदृच्छा वाद, भूत वाद, योनिवाद और आत्म वाद। इन वादों का दार्शनिक सग्रह महाभारत के शान्ति पर्व में हैं।

'ज्ञ'—जो लोग तत्त्व दर्शन के आन्दोलन में भाग लेते थे वे 'ज्ञ' कहाते थे। तत्त्व ज्ञान के देवता को भी 'ज्ञ' कहते थे।

मति—दार्शनिक तत्त्व चिन्तक जो दृष्टिकोण बनाते थे—उसे मति या दृष्टि कहते थे। इस काल में प्रथम विद्वान काल ही को सृष्टि का कारण मानते थे। इसके बाद स्वभाव को सृष्टि का कारण मानने लगे। यही शाश्वत वाद भी था। ये अहेतु वादी दार्शनिक थे। भूतवादी लोग लोकायत दर्शन के अनुयायी थे। जो पृथ्वी, जल, तेज, वायु इन चार भूतों से जगत की उत्पत्ति मानते थे। ये नास्तिक आचार्य थे। पुरुष या ईश्वर को मानने वाले आस्तिक आचार्य थे। पुरुष सूक्त में इसी मत का विवेचन है[१]। साँख्य के अज और अजा की कल्पना अनेक धाराओं में बिखरती जा रही थी। जिसका पर्यवसान वेदान्त दर्शन में हुआ। वेदान्त के पुरुष वाद में अनेक आस्तिक मतियो का समन्वय हो गया था।

लोकायत—लोकायत सम्प्रदाय भूत वाद और उच्छेद वाद को मानता था। इनके दर्शन का लोक में सबसे अधिक प्रचार था[२]। इस दर्शन के आचार्य चार्वी कहाते थे[३]। सम्भवतः बाद में वही चार्वाक दशन बना।

षड दर्शन—सांख्य-योग, न्याय, वैशेषिक और पूर्व मीमांसा उत्तर मीमांसा इन छै दर्शनों का जो वर्तमान स्वरूप है—वह तो पीछे बना है। परन्तु इस काल में आरम्भ ही से ये सम्प्रदाय विकसित हो रहे थे। योग के शब्द यम, नियम, सयम न्याय के विग्रह अनुयोग, वैशेषिक का शब्द परिमंडल तथा आत्म प्रतीति, आत्मभान, आत्मलीन शब्दों में आत्मा के प्रयोग शुद्ध दार्शनिक धरातल पर उन्हीं अर्थों में प्रयुक्त हो रहे थे जिन अर्थों में वे आज भी इन दर्शनों में हैं। न्याय सूत्रों में दुःख को प्रतिकूल वेदनीय और सुख को अनुकूल वेदनीय कहा है, पाणिनि इसे स्वीकार करता हुआ दुःख को प्रतिलोम्य और सुख को आनुलोम्य कहता है। उसका 'स्वतन्त्रः कर्ता (१।४।५४) सूत्र भी दार्शनिक आधारों पर है।

निश्श्रेयस शब्द मुक्ति के लिए नया शब्द था। भारतीय षड् दर्शन का बीज ऋग्वेद के अन्तिम मण्डल और अथर्व वेद में देख पड़ता है। वहां पर सृष्टि के विकास, आरम्भ और उस नित्य नियम का वर्णन किया गया है जिससे उसकी

१—वेदाह मेतं पुरुष महान्तमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात्। तमेव विदित्वाति मृत्यु मेति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय। पुरुष सूक्त।

२—वरं सांशयिकान्निष्कादसांशयिकार्षापणः इति लोकायतिकाः।

३—वदते चार्वी लोकायते—काशिका। (वात्स्यायन काम सूत्र १।२।३)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्पत्ति और रक्षा होती है। यजुर्वेद में भी रूपक द्वारा सृष्टि उत्पादन का रहस्य वर्णन किया गया है, जिस प्रकार ब्राह्मणों ने वेदों से यज्ञाडम्बर और उपनिषदों ने आत्म तत्व निरूपण किया है उसी प्रकार षडदर्शनों ने वेदों से प्रकट जगत और सूक्ष्म चैतन्य शक्तियों का सम्बन्ध तथा प्रकट जगत का आभ्यन्तर एवं मूल कारण वैज्ञानिक दृष्टि से खोज निकालने की चेष्टा की है। यह कहा जा सकता है कि उपरोक्त तीनों सम्प्रदायों ने वेद को तीन भिन्न २ दृष्टि कोण से देखा, समझा और समझाने की चेष्टा की हैं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा एकाएक नहीं हो गया है। युग धर्म या सामाजिक जीवन के विकास का इन तीनों महा साहित्य के निर्माण में पूर्ण हाथ है। जब वन्य जीवन नष्ट होने लगे, नागरिकता बढ़ने लगी, महाराज्यों का निर्माण हुआ, प्रजा में प्रौढ़ता आई—तब एक विशेष उद्देश्य के कारण—प्राचीन होम पद्धति ने महान् आडम्बरमय यज्ञों का रूप धारण किया। और वे सभी वेद प्रतिपादित है यह ब्राह्मणों द्वारा समर्थन किया गया। इसके बाद यज्ञों की अन्ध परम्परा, उसके द्वारा एक मूढ़दल को अत्यन्त सम्पन्न और अधिकार प्रबल होते देख तथा जनता में ज्ञानतत्व की वृद्धि की आवश्यकता देख मन न शील व्यक्तियों ने सूक्ष्म जीवन तत्वों को विचारा, आत्मा का निदर्शन किया, और वह वेद प्रतिपादित है—यह उपनिषद् से प्रमाणित किया। इसके बाद वह स्वाभाविक था, कि जहां महान् यज्ञों में करोड़ों की सम्पदा खर्च करने वाले साम्राज्य बन गए थे। और नागरिक जीवन पूर्ण सम्पन्न हो गया था। साथ ही उपनिषद् का आध्यात्मवाद बहुत सुन्दर एवं सम्पन्न हो गया था। तब बाह्य जगत, जगत का सूक्ष्म और अविनाशी कारण मूल तथा उससे उपनिषद् के अविनाशी चैतन्य तत्व का सम्बन्ध वर्णन किया जाय इसीलिए दर्शनों का निर्माण हुआ। और उन्हें भी परम्परा के ढंग पर वेद मूलक घोषित किया गया। इन तीनों महान् आर्य साहित्य में एक अत्यन्त महत्व पूर्ण बात यह है कि जहाँ पर उनके विषय परस्पर भिन्न हैं वहां भाषा कथन शैली भी इतनी भिन्न है कि पृथ्वी के किसी साहित्य में इतनी भिन्नता नहीं पाई जाती।

दर्शनों में कपिल के सांख्य की बड़ी महिमा है। और वही सबसे प्राचीन आदि दर्शन प्रसिद्ध है। उस संक्षिप्त ग्रन्थ में कपिल ने एक बहुत बड़े रहस्य को अपने ढंग पर पृथ्वी भर में सर्व प्रथम प्रकट किया है। तथा उन सब बातों का केवल बुद्धि से उत्तर देने का सबसे पहिला उद्योग किया है, जो जगत की उत्पत्ति, मानव स्वभाव और संबंध तथा, भविष्य वाद के सम्बन्ध में विचारशील मनुष्य के हृदयों में उत्पन्न होती हैं।

पतञ्जलि का योग दर्शन सांख्य का पूरक दर्शन है। मन की एकाग्रता इस का प्रधान विषय है। उसका उद्देश्य मुक्ति है। गौतम का न्याय हिन्दुओं का तर्कशास्त्र है, तर्क की सूक्ष्मता और वाद की वैज्ञानिक सत्यता जैसी न्याय दर्शन में है, वह न यूनानियों में हैं न अरब में न योरोपियन दार्शनिकों में। कणाद का वैशेषिक परमाणु

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वाद का ग्रन्थ है। यह दर्शन कदाचित् द्रव्य और शक्ति संयोग और पृथक्त्व की संसार की सब पहिली व्याख्या हो।

पूर्व मीमांसा और वेदान्त—ये दोनों दर्शन शास्त्र सम्भवतः उत्तर काल के उस वातावरण में बने, जब कि सांख्य दर्शन और बौद्ध धर्म के प्रसार न लाखों मनुष्यों को उपनिषदों के सर्वात्मा होने के सिद्धान्तों और वैदिक क्रिया कलापों का विरोधी बना दिया था। पूर्व मीमाँसाकार जैमिनि ने वेद विहित यज्ञों के विधि विधानों को फिर से प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की। पीछे सातवीं शताब्दी में कुमारिल भट्ट ने इस दर्शन परवार्तिक लिखी और उसके प्रचार पर बल लगाया।

वेदान्त में सर्वव्यापक ईश्वर का उल्लेख है। जैसे मीमांसा ब्राह्मणों पर आधारित है, वैसे ही वेदांत उपनिषदों पर आधारित है।

९—सांख्य दर्शन

सांख्य-दर्शन—सांख्य दर्शन ६ अध्याय और ५२६ सूत्रों का ग्रन्थ है। प्रथम अध्याय में हेय, हेय-हेतु, हान, हान-हेतु और उसका विवेचन है। दूसरे अध्याय में प्रकृति के सूक्ष्म कार्य, तीसरे अध्याय में प्रकृति के स्थूल कार्य, लिंग-शरीर, स्थूल शरीर, अपर वैराग्य, पर वैराग्य और उसका निरूपण है। चौथे अध्याय में शास्त्र-प्रसिद्ध आख्यायिका देकर विवेक से ज्ञान कैसे प्राप्त होता है, इसका कथन है। पांचवें अध्याय में वह विषय है, जो भगवद्गीता में वर्णित है। इसी अध्याय में विरोधी पक्ष का खंडन और सांख्य-मत का श्रेष्ठत्व प्रतिपादन किया गया है। छठे अध्याय में शास्त्र के मुख्य विषयों की व्याख्या करके अपने सिद्धान्त को प्रस्थापित करने के उत्तमोत्तम सूत्र हैं। और अन्त में उपसंहार है।

सांख्य-शास्त्र का विषय—कपिल ने सांख्य में २४ तत्त्वों का निरूपण किया है। इन्हीं २४ तत्त्वों से जगत् बना है, एक और २५ वां तत्त्व आत्मा है। ये २४ तत्त्व इस प्रकार हैं—

१—मूल प्रकृति, २—महत्, ३—अहंकार, ४—रूप तन्मात्रा (तेज के परमाणु)· ५—रसतन्मात्रा (जल के परमाणू), ६—गंध-तन्मात्रा (पृथ्वी के परमाणु), ७—स्पर्श-तन्मात्रा (वायु के परमाणु), ८—शब्द-तन्मात्रा (आकाश के परमाणु), ये कुल आठ हुए। तेज, जल, पृथ्वी, वायु, तथा आकाश, ये पांच महाभूत। ५ ज्ञानेन्द्रिय ५ कर्मेन्द्रिय, १ मन, कुल ११ हुए। इस प्रकार ८+५+११=२४ हुए। पच्चीसवां तत्त्व आत्मा है।

तत्त्व-शब्द का अर्थ मूल अर्थात् उत्पत्ति स्थान है। विज्ञान की भाषा में तत्त्व को मूल और बौद्ध-शास्त्र में धातु कहा है। तत्त्वों के ज्ञान को तत्त्वज्ञान कहते हैं। और तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति बिना मुक्ति नहीं। अर्थात् जगत् और आत्मा इनका वास्तविक रूप जाने बिना जन्म-मरण से मुक्ति नहीं होती।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकृति का लक्षण—सांख्य में लिखा है—"सत्त्वरजस्तमसांसाम्यावस्था प्रकृतिः"

अर्थात्—सत्त्व, रज, तम की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। यह अव्यक्त है, अर्थात् प्रत्यक्ष नहीं है। यह प्रकृति जब व्यक्त अर्थात् प्रत्यक्ष होने लगती है, तब इसका प्रथम रूप महत्तत्व, दूसरा अहङ्कार, तीसरा परमाणु, चौथा जगत् होता है। वैकारिक सर्ग में जो कुछ है उसका मूल स्थूल-भूत है, और स्थूल-भूत का मूल सूक्ष्म भूत है। सूक्ष्म भूत का मूल अहतत्त्व है। अहतत्त्व का महत्तत्व और महत्तत्व का मूल वही प्रकृति है।

इस प्रकार जगत् की अव्यक्त अवस्था प्रकृति और प्रकृति की व्यक्तावस्था जगत् है।

एक-एक तत्त्व को जानने के लिए मनुष्य-शरीर में एक-एक स्वतन्त्र इन्द्रिय है। तत्त्वों के संयोग से इन्द्रियों में जो विशेष-विशेष स्पंदन उत्पन्न होते हैं, वे ही क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध कहाते हैं। इन पाँचों तत्त्वों के उपादान-परमाणु को परिभाषा में 'तन्मात्रा' नाम दिया गया है। पृथ्वी के परमाणु को गंध-तन्मात्रा, जल के परमाणु को रस-तन्मात्रा, तेज के परमाणु को रूप-तन्मात्रा, वायु के परमाणु को स्पर्श-तन्मात्रा और आकाश के परमाणु को शब्द-तन्मात्रा कहा है। इनमें प्रकृति से लेकर महत्तत्व, अहङ्कार पर्यन्त तत्व महा दुर्विज्ञेय हैं, जो केवल योग-गम्य हैं। यही साँख्य का गम्भीर विषय है।[1]

१—क्या सांख्य दर्शन कपिल प्रणीत है—अब एक महत्वपूर्ण बात की तरफ हम आपका ध्यान आकर्षित करते हैं। इस बात पर बहुत कुछ सन्देह है—कि वर्तमान 'सांख्य-सूत्र-दर्शन' कपिल-कृत या अति प्राचीन ग्रन्थ है। इस सन्देह के पुष्ट कारण हैं। यह बात तो स्पष्ट है कि इस दर्शन को उन्नीसवीं शताब्दी में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्ष-ग्रन्थों को गिन कर उसका महत्व बढ़ाया है। परन्तु नीचे लिखे कारणों पर विचार करने से वह आर्ष प्रतीत नहीं होता।

१. १५वीं शताब्दी से पूर्व उसका कुछ पता नहीं चलता। न किसी भाष्य-कार ने उसकी चर्चा की है। न उसका भाष्य ही किया है। इसके विपरीत आचार्यों ने सांख्य-कारिका पर भाष्य किए हैं, जो ईश्वरकृष्ण की बनाई हुई है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। जैनाचार्यों और शङ्कराचार्य ने सांख्य-कारिकाओं को ही सम्मुख रखकर उनका खंडन किया है। यदि उनके सम्मुख यह दर्शन होता, तो सम्भव न था कि इस प्रधान और मूल पुस्तक के होते कारिका पर आक्रमण किया जाता। केवल गौड़पाद स्वामी ने २२ सूत्रों के एक सांख्य का जिक्र किया है। पर अपना ग्रन्थ उस सिद्धान्त पर स्वतन्त्र लिखा है। हर हालत में गौड़पाद स्वामी ने भी इस दर्शन को नहीं देखा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२. यह बात सभी विद्वान् मानते हैं, कि सांख्य-दर्शन सर्व प्राचीन दर्शन है। परन्तु वर्तमान सांख्य-दर्शन में इसके विपरीत प्रमाण मिलते हैं। देखिए –

(क) अनेक सूत्रों में वेदान्त-सूत्रों का निर्देश किया गया है।

(ख) अध्याय १ सू० २५ और अ० ५ सू० ८५ में 'वैशेषिक' का उल्लेख है।

(ग) अध्याय ५ सू० २७ और ८६ में 'न्याय' का उल्लेख है।

(घ) अ० १ सू० ९० में 'योग' का उल्लेख है।

(ङ) अ० ५ सू० ३२ में, और अ० ६ सू० ६८ में पंचशिखाचार्य का नाम दिया हुआ है, जो बहुत आधुनिक सांख्य मतवाले हैं।

(च) अ० ६ सू० ६९ में सनन्दनाचार्य का वर्णन है।

(छ) अ० १ सू० २१ में पाटलिपुत्र (पटना) और 'श्रुघ्न' (आगरे) का नाम है। उपर्युक्त प्रमाण, और खासकर १५वीं शताब्दी तक किसी भी आचार्य के द्वारा उसका नाम न लिया जाना, यह प्रमाणित करता है—कि यह दर्शन प्राचीन नहीं। १५वीं शताब्दि में अनिरुद्ध ने उस पर भाष्य किया है। परन्तु अनिरुद्ध का यह समय प्रामाणिक समय प्रतीत नहीं होता। वह विज्ञान-भिक्षु का समकालीन या बाद का आचार्य प्रतीत होता है; क्योंकि विज्ञान-भिक्षु यह बात कहता है, कि उसने सांख्य-सूत्रों को छिन्न-भिन्न पाया था। वह लिखता है—

कालार्थभक्षितं सांख्यशास्त्रं ज्ञानसुधाकरम्।
कलावशिष्टं भूयोऽपि पूरयिष्ये वचोऽमृतैः॥

अर्थात्—ज्ञान-रूपी अमृत का खजाना, यह सांख्य-शास्त्र काल ने खा लिया था, उसका थोड़ा अंश (कला-मात्र) मिलता है। उसे मैं अपने वचनामृत से पूर्ण करता हूँ।

यह बहुत कुछ सम्भव हो सकता है कि विज्ञान-भिक्षु ने ही ईश्वरकृष्ण की कारिकाओं को, उनमें ईश्वरवाद बढ़ाकर इन सूत्रों को रचा हो। कुछ नए-पुराने सूत्र मिलाकर सम्पूर्ण वर्तमान सांख्य-दर्शन तैयार कर दिया हो। पीछे उसी पर अनिरुद्ध ने भाष्य किया हो।

असल सांख्य दर्शन—तब कपिल के असली सूत्र क्या थे, यह प्रबल विचार उत्पन्न होता है। अत्यन्त प्राचीन बाईस सूत्र मिलते हैं। ये वही बाईस सूत्र हैं जिनका उल्लेख गौड़पाद स्वामी ने किया है। ये गिनती में ठीक बाईस हैं। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात इन सूत्रों में यह है कि इनमें गिनती बहुत हैं। संख्या की अधिकता के कारण ही क्या इस दर्शन का नाम 'सांख्य' नहीं पड़ गया होगा? वे बाईस सूत्र ये हैं—

अथ कपिलसांख्यसूत्राण्यारभ्यन्ते

अथातस्तत्त्वे समासः ॥१॥ कथयामि अष्टौ प्रकृतयः ॥२॥ षोडशस्तु विकारः ॥३॥ पुरुषः ॥४॥ त्रैगुण्यम् ॥५॥ सचरप्रतिसंचरः ॥६॥ अध्यात्म-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उपनिषदों में सांख्य तत्त्व—सांख्य के सिद्धान्तों का उपनिषदों में कई स्थानों पर उल्लेख है। तैत्तिरीय और अथर्वण उपनिषद्, निरुक्ति के चौदहवें अध्याय, और भगवद्गीता में सांख्यवाद का पर्याप्त वर्णन आता है। शतपथ ब्राह्मण में कपिल, आसुरी और पंचशिखा का नाम कई स्थानों पर आता है। जिससे इन लोगों का उस ब्राह्मण-काल से पूर्व होना स्वयं ही सिद्ध है। बृहदारण्यक उपनिषद् के याज्ञवल्क्य-कांड (तृतीय अध्याय के सातवें ब्राह्मण) में काप्य पतंचल का यह उल्लेख मिलता है—कि कपि-वंश वाले किसी पतंचल को किसी कबंध अथर्वण नाम के गंधर्व ने उपदेश दिया था। इस उपदेश का सार याज्ञवल्क्य ने यह दिया है—

वायु वह सूत्र है, जिसके द्वारा यह लोक, परलोक और सब प्राणी बंधे हुए हैं, पुरुष के सब अंग भी इस वायु के द्वारा बंधे हुए हैं, उसी वायु के निकल जाने पर पुरुष ढीला हो जाता और मर जाता है।'

'आत्मा ऐसा अन्तर्यामी है, कि पृथ्वी, जल, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, द्यौः, आदित्य, दिशा, चन्द्रमा, आकाश, अंधकार, तेज, सब प्राणी, वाणी, नेत्र, श्रोत्र, मन, त्वचा, विज्ञान और वीर्य में बैठा हुआ भी उन-उन वस्तुओं के देखने में नहीं आता। सभी वस्तुएँ उसका शरीर हैं, और उसके कारण ये सभी वस्तुएँ नियम में रहती हैं। इस प्रकार वह आत्मा अन्तर्यामी अमृत है····· देखा हुआ न होने पर भी देखने वाला, सुना हुआ न होने पर भी सुनने वाला; मनन किया हुआ न होने पर भी मनन करने वाला, और जाना हुआ न होने पर भी जानने वाला है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई देखने वाला, सुनने वाला, मनन करने वाला और जानने वाला नहीं है। इस प्रकार वह आत्मा अन्तर्यामी और अनन्त है। उस आत्मा के अतिरिक्त असत्य सब कुछ दुःख-रूप है।'

ऊपर दिए हुए सिद्धान्त अक्षरशः सांख्य सिद्धान्तों और कपिल के उपदेश से मिलते हैं। अतः बृहदारण्यक का उपर्युक्त अंश सांख्य का सबसे प्राचीन साहित्य है। सम्भव है पतंचल और कबन्ध आथर्वण दोनों ही कोई सांख्य-शास्त्र के आचार्य हों। यह प्रतीत होता है, कि कपिल के पन्थ पर चलने के कारण पतंचल का गोत्र कपिल के नाम पर कहा जाता हो, और बोलने वालों, अथवा लिखने वालों की अशुद्धि के कारण उसका गोत्र कपिल के स्थान में केवल कपि (लकार निकाल कर) ही रह गया हो। जिससे उसको कपिल के स्थान में काप्य ही कहा गया हो।

मधिभूत-मधिदैवंच ॥७॥ पचाभिवुद्धयः ॥८॥ पंच कर्मयोनयः ॥९॥ पंच वायवः ॥१०॥ पंच कर्मात्मानः ॥११॥ पंच पर्वा अविद्याः ॥१२॥ अष्टाविंशतिधा अशक्तिः ॥१३॥ नवधा तुष्टिः ॥१४॥ अष्टधा सिद्धिः ॥१५॥ दश मूलिकार्था ॥१६॥ अनुग्रहः सर्गः ॥१७॥ चतुर्दशविधो भूतसर्गः ॥१८॥ त्रिविधो बंध ॥१९॥ त्रिविधो मोक्षः ॥२०॥ त्रितियांप्रमाणलक्षणम् ॥२१॥ एतत्सम्यग् ज्ञात्वा कृतकृत्यः स्यान्न पुनस्त्रिविधेन दुःखेनानुभूयते ॥२२॥ इति कपिलसांख्यसूत्राणि समाप्तानि।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बृहदारण्यक के अतिरिक्त अन्य उपनिषदों में भी सांख्य के सिद्धान्तों का वर्णन आता है।

कठ-उपनिषद् तीसरी वल्ली के १०वें तथा ११वें मन्त्र में कहा गया है—

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः। १०।
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः;
पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः। ११।

इन्द्रियों से उनके विषय उत्कृष्ट हैं, विषयों से मन दूर है, मन से बुद्धि दूर है, बुद्धि से महत्तत्त्व-रूप आत्मा दूर है, महत्तत्त्व से अव्यक्त दूर है, और अव्यक्त से पुरुष दूर है, और वही सबसे उत्कृष्ट अवस्था है।

पाँचवीं वल्ली के सातवें मन्त्र में कहा है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।

एक प्रकार के लोग कहते हैं कि इस देही जीवात्मा को एक जन्म के पश्चात् शरीर धारण करने के लिए दूसरी योनि में जाना पड़ता है। किन्तु दूसरे कहते हैं—कि यह अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार कूटस्थ नित्य हो जाता है।

श्वेताश्वतर; उपनिषद् के चौथे अध्याय के पाँचवें मन्त्र में तो सारा सांख्य-शास्त्र ही कूट-कूटकर भर दिया गया है—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमाना सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।

यह कभी उत्पन्न न होने वाली एक प्रकृति (अपने त्रिगुण के कारण से) रक्त, शुक्ल और कृष्ण वर्ण (क्रम से रज, सत्त्व और तम गुण रूप) वाली है। बहुत-सी प्रजाओं की सृष्टि करना इसका स्वरूप है। कभी उत्पन्न न होने वाला पुरुष इसको सेवन करता हुआ (मोह अथवा अज्ञान से) सोता रहता है, और इसके भोग-भोग चुकने पर इसको छोड़ देता है।

इसी के पाँचवें अध्याय के मन्त्र ७ और ८ में प्रकृति-रूप शरीर का वर्णन किया गया है—

गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता कृतस्य तस्यैव न चोपभोक्ता;
स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः संचरति स्वकर्मैः।७।
अंगुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहंकारसमन्वितो यः;
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रोऽप्यपरोऽपि दृष्टः।८।

इसमें सूक्ष्म-शरीर को ही प्रकृति-शरीर कहा है। क्योंकि वह सब प्रकृति के ही विकारों से बनता है। उपर्युक्त श्लोकों में कहा है कि वह प्रकृति-शरीर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गुणों से युक्त रहता हुआ, पहले कर्म के फल को, और फिर उस किए हुए को भोगा करता है। वह विश्वरूप, त्रिगुण-रूप, ठीक मार्ग वाला प्राणों का स्वामी अपने कर्मों से ही संचार करता है।

वह अंगुष्ठ-मात्र है, सूर्य के समान रूप वाला है जो संकल्प और अहंकार से युक्त है। बुद्धि और आत्मा के गुणों से आरे के अग्र भाग के समान सूक्ष्म होने पर भी आत्मा से स्थूल है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् के पाँचवें अध्याय के दूसरे मन्त्र में कपिल मुनि को जन्म से ही ऋषि बतलाया है।

इसी के छठे अध्याय के तेरहवें मन्त्र में साँख्य और योग, दोनों दर्शनों का नाम भी आया है।

उपनिषदों के इन अवतरणों से इस बात का पता चलता है—कि सांख्य-दर्शन के सिद्धान्त उपनिषदों से सर्वथा अनुकूल हैं।

एक प्राचीन सांख्य सम्प्रदाय—सांख्य-दर्शन के सिद्धान्तों का चरक द्वारा किया हुआ वर्णन दार्शनिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। चरक के अनुसार संसार में ये धातुएँ हैं—पृथ्वी आदि पाँच तत्त्व, और चेतन, जिसको पुरुष भी कहते हैं। एक दूसरी अपेक्षा की दृष्टि से २४ तत्त्व कहे जा सकते हैं दश इन्द्रियाँ (पांच ज्ञान-इन्द्रियाँ, पाँच कर्म-इन्द्रियां), मन, पांच इन्द्रियों के विषय, और आठ प्रकार की प्रकृति (प्रकृति, महत्, अहङ्कार और पंचभूत)।[1] मन इन्द्रियों के द्वारा कार्य करता है। व्यवसायात्मिका बुद्धि के उत्पन्न होने के पूर्व मन के दो कार्य होते हैं, एक ऊह, दूसरा विचार। पांचों इन्द्रियां अपने-अपने तत्त्व से उत्पन्न होती हैं। चरक ने तन्मात्राओं का नाम भी नहीं लिया।[2] प्रकृति के साथ इन तत्त्वों के अतिरिक्त इन्द्रियार्थों का भी वर्णन है, जो कि प्रकृति से ही प्रकट होते हैं। महत् और अहङ्कार सब रजस् के द्वारा एकत्रित होकर पुरुष को बनाते हैं जब तत्त्व का विकास अधिक-से-अधिक होता है तो यह सृष्टि समाप्त हो जाती है। सब कर्म, कर्म-फल अनुभव, सुख, दुःख, मोह, जीवन और मरण का इसी सृष्टि से सम्बन्ध है। किन्तु एक पुरुष भी है, क्योंकि यदि वह न होता, तो जन्म, मरण, बन्धन अथवा

१—इस सूची में पुरुष का नाम नहीं है। चरक के टीकाकार चक्रपाणि का कहना है कि प्रकृति और पुरुष, दोनों के अव्यक्त होने के कारण दोनों को एक करके ही गिना गया है।

२—किन्तु उसने स्थूल भूतों से भिन्न एक प्रकार के सूक्ष्म भूतों का उल्लेख किया है; कि वह प्रकृति का भाग होता है, जिसमें आठ तत्त्व समझे जाते है, प्रकृतिश्चाष्ट-धातुकी। और वे आठ धातुएं अव्यक्त, महत्, अहङ्कार और पांच दूसरे तत्त्व हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुक्ति ही न होती। यदि आत्मा को कारण न माना जाता, तो अनुभव के सभी कार्य बिना कारण होते। यदि एक स्थिर आत्मा को न माना जाता, तो दूसरे के कर्म का दूसरा ही उत्तरदायी हो जाता। यह पुरुष परमात्मा भी कहलाता है। यह अनादि और अकारण हैं। आत्मा अपने ही अन्दर चेतना रहित है। चेतना उसमें केवल इन्द्रियों और मन के संयोग से उत्पन्न होती है। पुरुष की यह सृष्टि और दूसरे तत्त्वों की उत्पत्ति मोह, इच्छा और कार्य के द्वारा होती है। सभी रचनात्मक कार्य कारण-समूह से होते हैं। किसी एक कारण से नहीं होते, किन्तु विनाश स्वाभाविक और बिना कारण होता है। नित्य वस्तु का कुछ भी कारण नहीं हुआ करता। चरक ने प्रकृति के अव्यक्त भाग और पुरुष को मिलाकर एक ही पदार्थ माना है। प्रकृति के विकार-क्षेत्र और उसका अव्यक्त भाग क्षेत्रज कहलाता है। यह अव्यक्त और चेतन एक ही वस्तु है। इस अप्रकट प्रकृति या चेतन से बुद्धि, बुद्धि से अहङ्कार, तथा अहङ्कार से पाँच तत्त्व और इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। इन सब के उत्पन्न होने पर हम कहते हैं कि सृष्टि हो गई। प्रलय के समय सब प्रकट हुई वस्तुएं फिर प्रकृति में ही लय हो जाती हैं, और दूसरी सृष्टि में सब-की-सब अव्यक्त पुरुष से फिर प्रकट हो जाती हैं। जो लोग इन दोनों से छूट जाते हैं, वह संसार-चक्र से भी छूट जाते हैं। मन ही आत्मा के साथ मिलकर सब कुछ कार्य करता है। आत्मा अपनी इच्छा के अनुसार ही सब प्रकार के जन्म लेता है। यह अपनी इच्छा के अनुसार ही कर्म करता है, और उनका फल भोगता है। यद्यपि सभी आत्मा व्यापक हैं किन्तु वह फल का अनुभव उसी स्थान पर करते हैं, जहां उनका शरीर है। सुख और दुःख राशि को होते हैं, आत्मा को नहीं। सुख और दुःख के भोग से तृष्णा उत्पन्न होती है, और तृष्णा से फिर सुख और दुःख होते हैं, सुख और दुःख के पूर्णतया बंद हो जाने को मोक्ष कहते हैं। यह आत्मा के मन, इन्द्रियों और इन्द्रियों के साथ एक होने से प्राप्त होती है। यदि मन आत्मा में निश्चल रूप से स्थित हो जाय, तो उस अवस्था को योग कहते हैं। जिसमें न सुख है और न दुःख ही। सत्य ज्ञान के होने पर आत्मा के किसी विशेष अस्तित्व के चिन्ह नहीं रहते, उस समय आत्मा को नहीं पाया जा सकता, और यह अवस्था ब्रह्म की अवस्था होती है। यह अवस्था नित्य है। सांख्य और योग का उद्देश्य इसी अवस्था की प्राप्ति है। जब रज और तम नष्ट हो जाते हैं, संचित कर्मों का भोग समाप्त हो चुकता है। नए कर्म तथा नया जन्म नहीं होता, तो उस समय मोक्षावस्था होती है। सत्य की प्राप्ति करके उसको बार-बार स्मरण करना चाहिए, इसी के द्वारा शरीर और आत्मा पृथक्-पृथक् हो जाएंगे, इस अवस्था को मोक्ष, निर्वृति या निःशेष कहते हैं।

चरक के द्वारा दिए हुए सांख्य तत्त्व के वर्णन को इस प्रकार संक्षेप में रक्खा जा सकता है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१—अव्यक्त दशा का नाम पुरुष है।

२—इस अव्यक्त के विकास से उत्पन्न हुई वस्तुओं से प्राणी बनते हैं।

३—तन्मात्राओं का उल्लेख नहीं किया गया।

४—रज और तम मस्तिष्क की बुरी दशा और सत्त्व अच्छी दशा है।

५—निर्गुण पूर्ण अस्तित्व का नाम मोक्ष है, और उसको ब्रह्मावस्था भी कहते हैं।

६—इन्द्रियाँ भौतिक हैं।

साँख्य का यह वर्णन पंचशिखाचार्य (जो कपिल के शिष्य आसुरी का शिष्य था) के उस वर्णन से पूरा-पूरा मिलता है, जो महाभारत के १२वें पर्व के २१९वें अध्याय में दिया गया है। यद्यपि पंचशिखा का वर्णन चरक के समान स्पष्ट नहीं है किन्तु उसके थोड़े-से वर्णन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि उसके सिद्धान्त चरक से पूर्णतया मिलते-जुलते हैं।

षड्दर्शनसमुच्चय के टीकाकार गुणरत्न (चौदहवीं सदी) ने सांख्य के दो अन्य सम्प्रदायों का वर्णन किया है—एक मौलिक्य (आरम्भिक), दूसरा उत्तर (बाद का)। मौलिक्यों के विषय में कहा गया है, कि वह प्रत्येक आत्मा के लिए पृथक्-पृथक् प्रधान मानते हैं।

महाभारत १२वें पर्व ३१८वें अध्याय में सांख्य के तीन सम्प्रदायों का वर्णन है। एक चौबीस पदार्थों के मानने वाले (इनका वर्णन हो चुका है), दूसरे पच्चीस पदार्थों के मानने वाले (ईश्वरकृष्ण का सांख्य), और तीसरे छब्बीस पदार्थों के मानने वाले। यह अन्तिम सम्प्रदाय पुरुष के अतिरिक्त एक परमात्मा को भी मानता है, और यही छब्बीसवां पदार्थ है। हमारे वर्णन किए हुए सम्प्रदाय का वर्णन इसी पर्व के २०३ और २०४ अध्यायों में भी आया है।

कपिल-मतवादी आसुरी के विषय में हमको कुछ भी विदित नहीं। किन्तु यह प्रतीत होता है कि आसुरी के भी वही सिद्धान्त थे, जिनका ऊपर वर्णन किया गया है। गुणरत्न के मौलिक्यों के वर्णन के अतिरिक्त ईश्वर कृष्ण के सांख्य का चरक में वर्णन न होने से भी यह सिद्ध होता है कि या तो इसका उस समय अस्तित्व ही नहीं था, अथवा यह कुछ महत्त्वशाली नहीं गिना जाता था।

ईश्वरकृष्ण और उनकी सांख्य-कारिका—ईसा की प्रथम शताब्दी में—ईश्वर कृष्ण ईस्वी १०० के लगभग हुए हैं। वह सांख्य-कारिकाओं के रचयिता हैं। ईश्वरकृष्ण के सांख्य का वर्णन पतंजलि के योग-सूत्रों और महाभारत में पहले पहल आता है। किन्तु योग-सूत्र १—१९ में चरक के सांख्य का भी उल्लेख पाया जाता है।

सांख्य-कारिका, अहिर्बुध्न्यसंहिता तथा दूसरे ग्रन्थों में पंचशिखाचार्य के ग्रन्थ षष्टि-तंत्रशास्त्र का भी वर्णन आता है। अहिर्बुध्न्यसंहिता में लिखा है—कि इसके

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो भाग थे। प्रथम भाग में बत्तीस और द्वितीय में अट्ठाईस अध्याय थे। सांख्य-कारिका ७२ पर वाचस्पति मिश्र की टीका सांख्य–तत्त्वकौमुदी में राजवार्तिक का एक अवतरण दिया है, जिससे प्रकट होता है; कि उस ग्रन्थ के षष्टितंत्र कहलाने का कारण यह था—कि उसमें प्रकृति के अस्तित्व, उसका एकत्व, पुरुष से उसकी भिन्नता, पुरुष के लिए उसकी उपयोगिता, पुरुषों का गुणन, पुरुषों का सम्बन्ध और पार्थक्य, पदार्थों का विकास, पुरुषों का अकर्तृत्व और पांच विपर्यय, नौ तुष्टि, इन्द्रियों के अट्ठाईस प्रकार के दोष और अष्ट सिद्धियों का वर्णन था।

किन्तु अहिर्बुध्न्यसंहिता में षष्टितन्त्र का विषय इससे बिलकुल भिन्न बतलाया गया है। उससे यह भी पता चलता है, कि षष्टितन्त्र का सांख्य वैष्णव-पंचरात्र के समान आस्तिक ढंग का था। अहिर्बुध्न्यसंहिता में कहा गया है, कि कपिल का सांख्य वैष्णव था। सांख्य-सूत्रों के भाष्यकार विज्ञान-भिक्षु ने अपने विज्ञानामृत भाष्य में कई स्थलों पर कहा है, कि सांख्य-मत पहले आस्तिक था। षष्टितन्त्र के इन दो वर्णनों से प्रकट है—कि मूल षष्टितन्त्र में बहुत-से परिवर्तन कर दिए गए हैं। ईश्वरकृष्ण मूल षष्टितन्त्र को देखने की गवाही देता है। किन्तु वाचस्पति मिश्र की सांख्य–तत्त्वकौमुदी से पता चलता है कि उसके समय में षष्टि-तन्त्र नष्ट हो चुका था। गुणरत्न षष्टितन्त्र का उल्लेख न करके षष्टि-तन्त्रोद्धार का उल्लेख करता है, जो कि स्पष्टतः षष्टि-तन्त्र का परिवर्तित रूप प्रतीत होता है।

यह प्रतीत होता है कि कपिल के सांख्य का अनुयायी आसुरी ही था। सांख्य-कारिका ७० से पता चलता है कि आसुरी के शिष्य पंचशिखाचार्य ने प्राचीन सांख्य में अनेक परिवर्तन किए। यह प्रतीत होता है कि उपनिषदों का सांख्य कपिल के सिद्धान्तों के अनुसार है, और चरक का साँख्य पंचशिखा के सिद्धान्तों के अनुसार। क्योंकि उपनिषदों के सांख्य में कुछ अधिक नास्तिकता है। आगे चलकर ईश्वरकृष्ण ने तो सांख्य को निरीश्वरवादी ही बना दिया है।

सांख्य-कारिका – ईश्वरकृष्ण की यह छोटी-सी महत्त्वपूर्ण प्रसिद्ध पुस्तक 'सांख्यकारिका' के नाम से प्रसिद्ध है। जिसमें केवल ७० आर्या छन्द हैं। कहा जाता है कि यह पंचशिखाचार्य के षष्टितन्त्र के आधार पर बनी है। शंकर और कई टीकाकारों ने एक दर्शन पर भाष्य न करके इसी पर टीकाएँ और भाष्य किए हैं। गौड़पाद और वाचस्पति के भाष्य भी इसी पर हैं। इसका लेटिन-अनुवाद श्री लेसन ने, जर्मन-अनुवाद श्री विडिशमैन और श्री लौरिसन ने, फ्रेंच अनुवाद श्री पटिअर तथा सेंट श्री हिलेयर ने तथा अंग्रेजी अनुवाद श्री कोलब्रुक ने तथा श्री विलसन ने किया है। एक नया अंगरेजी-अनुवाद श्री डेविड ने भी किया है, जिस पर उन्होंने महत्वपूर्ण टिप्पणियां दी हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सांख्य का उद्देश्य—

१—सांख्य का उद्देश्य दैहिक, भौतिक और दैविक क्लेशों से मनुष्य को छुड़ा कर मुक्ति दिलाना है।

२—वेद-विधान निरर्थक है। अन्तिम मुक्ति ज्ञान से होती है।

३—प्रकृति पुरुष अनादि हैं। सत्त्व रज तम की साम्यावस्था प्रकृति है; गुणों की विषमता से सृष्टि तथा समता से प्रलय होती है। विषमता होने से प्रकृति से महत्तत्व (ज्ञान), महत्तत्व से अहङ्कार (चेतना), अहङ्कार से पंचतन्मात्रा, मन, पंचज्ञानेन्द्रियां, पंचकर्मेन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार पुरुष-सहित ये पच्चीस पदार्थ हैं।

४—पुरुष से किसी की उत्पत्ति नहीं होती। पर वह मोक्ष होने तक शरीर के साथ रहता है। आत्मा परमेश्वर का अंश नहीं। वह भिन्न है और प्रकृति के बन्धनों से मुक्त होने तक पृथक् रहती है। यह दृष्टा, अकर्ता और भोक्ता, नित्य कूटस्थ है।

इन सिद्धान्तों से हम देखते हैं कि एक तो ईश्वरकृष्ण प्राचीन उपनिषदों के इस सिद्धान्त का विरोध करता है कि आत्मा–परमात्मा एक है। दूसरे, वर्तमान वेदान्तियों के इस सिद्धान्त के भी विपरीत है, जो यह कहते हैं कि आत्मा भौतिक पदार्थों में मिला रहता है। ईश्वरकृष्ण कहता है कि आत्मा को छोड़ कर शेष सब कुछ प्रकृति से उत्पन्न हैं, और इसलिए भौतिक हैं। केवल तत्व, इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियां ही नहीं, प्रत्युत् चेतना, मन और बुद्धि भी भौतिक पदार्थों के मूल हैं।

ईश्वरकृष्ण के मानसिक दर्शन-शास्त्र को स्पष्ट समझने के लिए इन्द्रियज्ञान, इन्द्रियां, मन, चेतना, बुद्धि, तथा तत्वों और आत्मा के भेदों को अच्छी तरह समझने की आवश्यकता है।

पांचों ज्ञानेन्द्रियां केवल देखती हैं। अर्थात् 'ज्ञान' को ग्रहण करती हैं। पांचों कर्मेन्द्रियां अपना कार्य करती हैं। मन केवल ज्ञानेन्द्रिय है। वह केवल ज्ञान को क्रमानुसार चेतना के निकट लाता है, चेतना उस ज्ञान को 'मेरा' बोध करती है, और बुद्धि उसमें भेद-प्रभेद समझती है, तथा विचारों को बनाती है। इस प्रकार यह देखा जायगा कि इन्द्रिय-ज्ञान, मन-चेतना और बुद्धि में जो भेद किए गए हैं, वे वास्तव में 'मन' के कार्यों के भेद हैं। योरुप के दर्शन-शास्त्र की भाषा में इसे यों कहेंगे—कि मनस इन्द्रियों के ज्ञान को ग्रहण करता है और उसे 'अनुभव' बनाता है। चेतना इन्हें 'मेरा' ऐसा विचारता है, और बुद्धि उनको ध्यान में लाती है।

भाष्यकार वाचस्पति इस मानसिक क्रिया को इस प्रकार वर्णन करते हैं—"जैसे गांव का मुखिया उस गांव के लोगों से कर उगाह कर उसको जिले के हाकिम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के पास ले जाता है, और जैसे जिले का हाकिम उस धन को राजमन्त्री के पास भेज देता है, और राजमन्त्री उसे राजा के काम के लिए लेता है, उसी प्रकार मनस' इन्द्रियों के द्वारा विचार ग्रहण करता है। उन विचारों को चेतना के हवाले करता है, और चेतना उन्हें बुद्धि को देती है, जो कि उस राजा 'आत्मा' के काम के लिए लेती है"।

हम यह बता देना चाहते हैं, कि इसी सिद्धान्त को योरुप के दर्शनकार भी स्वीकार कर चुके हैं। मारल अपनी 'एलीमैंट्स ऑफ साइकलोजी नामक पुस्तक में कहते हैं कि--"वास्तव में इन्द्रिय-ज्ञान शुद्ध निष्कर्म अवस्था नहीं है--वरन् उसमें मन भी थोड़ा कुछ काम करता है"।

कपिल-सिद्धान्तों का अज्ञेय मीमांस पर इतना सूक्ष्म विवेचन उस अत्यन्त प्राचीन काल में आश्चर्यजनक है। मनस, अहंकार और बुद्धि को भौतिक समझना, तत्वों की उत्पत्ति अहंकार से होने का सिद्धान्त समझना योरुप ने अब सर्वश्री वर्कले और ह्यूम के मुख से सुना है।

पच-महाभूत, पृथ्वी-जल-तेज-आकाश और वायु तथा पंच सूक्ष्म भूत रूप-रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द का वर्णन करने पर ईश्वरकृष्ण कहते हैं--कि सूक्ष्म भूत तन्त्र है। इस गम्भीर बात का क्या अर्थ है? वह निःसन्देह उस सूक्ष्म सिद्धान्त को स्पष्ट करता है--कि जैसे सुनने का काम केवल कान तथा शब्द उत्पत्ति स्थल के बीच परस्पर संभाषण का कोई तारतम्य होने ही से नहीं होता, अपितु इस कार्य के होने से उस तत्व में कुछ परिवर्तन भी होता है।

ईश्वरकृष्ण केवल तीन प्रमाण मानते हैं। अनुभव, अनुमान और साक्षी। न्याय चार प्रमाण मानता है—उसने अनुभव के अनुमान और उपमान दो भाग कर दिए हैं। वेदान्त में एक और प्रमाण बढ़ा दिया गया है, अर्थात् 'अर्थापत्ति'। जो कि अनुमान का एक भेद है। जैसे "रामचन्द्र दिन में नहीं खाता, फिर भी वह पुष्ट है—अतः रात को खाता है।"

ईश्वर कृष्ण उपर्युक्त तीनों प्रमाणों को छोड़कर और किसी बात को स्वीकार नही करते। परन्तु अनुमान, अनुभव और साक्षी से ईश्वर जो—जगत् निर्माण करता है, सिद्ध नहीं होता, इसलिए वे ईश्वर को नहीं माते।

परन्तु वे कार्य के कारण को अवश्य मानते हैं। पर वे कारण और प्रयोजन को एक बात कहते हैं।

स्वभाव के तीनों गुण सत्व, रज, तम सभी दर्शनकारों ने स्वीकार किए हैं। ये एक आनुमानिक वर्णन है, जिससे जीवन की सब अवस्थाओं के भेद का कारण विदित होता है।

ईश्वरकृष्ण समस्त जगत् को प्रकृति से उत्पन्न मानते हैं। इसमें उन्होंने पांच कारण दिए हैं:--

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१—विशेष वस्तुओं का स्वभाव परिमित होता है, उनका हेतु भी अवश्य होना चाहिए।

२— भिन्न-भिन्न वस्तुओं के साधारण गुण होते हैं, और वे एक ही मूल जाति के भिन्न-भिन्न भाग होते हैं।

३— सब वस्तुएँ निरन्तर उन्नति की अवस्था में होती हैं, और उनमें प्रसार की क्रिया-शक्ति होती है। जो कि अवश्य एक ही आदिकरण से उत्पन्न हुई होगी।

४—यह वर्तमान संसार फल है, और इसका कोई आदिकरण अवश्य होना चाहिए।

५—समस्त सृष्टि में एक प्रकार का एकत्व है, जिससे कि उसका किसी एक वस्तु से उत्पन्न होना सिद्ध होता है।

इन पांचों कारणों के आधार पर ईश्वरकृष्ण का कहना है—कि सभी स्थूल अस्तित्व प्रकृति से ही उत्पन्न हैं।

परन्तु 'पुरुष' एक भिन्न वस्तु है, और वह प्रकृति से उत्पन्न नहीं है। उसके कारण भी उसने दिए हैं, जो वर्तमान वेदांतियों से भिन्न है। सभी वस्तुएँ क्रम से बनाई गई हैं। परन्तु आत्मा उनसे पृथक है। ईश्वरकृष्ण यह कहते हैं—कि आत्मा वह वस्तु है जिसके लिए ये सब वस्तुएं बनी हैं। गौडपाद स्वामी उदाहरण देकर कहते हैं—कि बिछौना गद्दा, तकिया आदि स्वयं उन पर नहीं सोता-सोने वाला और कोई है, और वही पुरुष है। ईश्वरकृष्ण प्लेटों के इस सिद्धान्त को स्वीकार करता है कि उत्तम जीवन प्राप्त करने की अभिलाषा से प्रकट होता है कि उन्हें प्राप्त करने की संभावना भी है। ईश्वरकृष्ण भिन्न-भिन्न शरीर में भिन्न-भिन्न आत्मा मानते हैं, और उनका यह मत वेद और उपनिषदों से गहरा मतभेद कर देता है।

ईश्वरकृष्ण का पुनर्जन्म का सिद्धान्त उपनिषदों का है, परन्तु उसमें कुछ परिवर्तन उन्होंने किया है। वे कहते हैं कि आत्मा कूटस्थ है। मन, बुद्धि और अंहकार भौतिक है। इनका निर्मित सूक्ष्म-शरीर आत्मा के साथ रहता है। और प्राणियों के व्यक्तित्व से सम्बन्ध रहता है। शरीर छूटने पर भी वह आत्मा के साथ पाप-पुण्य के अनुसार उच्च और नीच लोकों में जाता है, जिनमें आठ उच्च और पांच नीच हैं। पर जब आत्मा लिंग-शरीर से पृथक् हो जाता है तब वह मुक्त हो जाता है। वह मुक्ति सदा को होती है। तथा ज्ञान प्राप्ति से होती है। पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने पर भी आत्मा कुछ दिन शरीर में रहता है। अन्त में वह भौतिक पदार्थों से पृथक् हो जाता है। उस समय प्रकृति का कार्य समाप्त हो जाता है। वह अपना कार्य बन्द कर देती है। और सदा के लिए पृथक् हो जाती है।

जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक शोपेनहार और वान हार्टमेन के सिद्धान्त इसी से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिलते-जुलते हैं। पर वे आत्मा की सफाई में कहते हैं—भौतिक तत्वों का पूर्ण विकास ही उस दृश्य को प्राप्त होता है।

यह बात हम कह चुके हैं, कि ईश्वरकृष्ण की यह सांख्य कारिका ही वर्तमान काल में सांख्य-शास्त्र के या सांख्य–सिद्धान्तों के नाम से विख्यात होती रही है। इसी के आधार पर कपिल के दार्शनिक सिद्धान्तों को नास्तिक कहा गया है। पर यदि प्रचलित सांख्य दर्शन–शास्त्र पर विचार किया जाय, तो हमें सांख्य के ईश्वरवादी होने में जरा भी सन्देह नहीं रहता। मध्य-काल में कर्मकांड ने कितना जोर पकड़ा था, यह आप जानते हैं। सांख्य उसका पूर्ण विरोधी था, अतः उन्होंने उसे खूब कटु–भाषा में निरीश्वरवादी, नास्तिक, और पाखंडी आदि नाम दिए हैं।

सांख्य–शास्त्र के 'ईश्वरासिद्धेः' सूत्र को उसके नास्तिक-वाद में प्रमाण दिया जाता है। परन्तु पांचवें अध्याय में स्पष्ट प्रकृति-पुरुष के अतिरिक्त ईश्वर की उत्पत्ति स्वीकार की गई है। ईश्वर को आप्तकाय कहा गया है, जो कि सांख्य–दर्शन के आस्तिक होने का पूरा प्रमाण है। महाभारत में भीष्म पितामह ने स्वयं कहा है—कि सब ज्ञानों का 'भण्डार' सांख्य है। शान्ति पर्व में सांख्य–सिद्धान्तों का बड़ा सुन्दर वर्णन है। गीता में 'सिद्धानां कपिलो मुनिः' कहा गया है। अन्य स्थलों में भी कपिल की बड़ी प्रतिष्ठा है। महाभारत में जो कपिल-संवाद है, वहां तथा और अनेक दूसरे स्थानों पर भी सांख्य–मार्ग-की प्रशंसा की गई है। तथा भागवत में उनका अपनी माता को ज्ञानोपदेश लिखा है। ये सारी बातें कपिल और उनके सिद्धान्तों को ईश्वरवादी प्रमाणित करती हैं।

रामायण में शिव पार्वती से कहते हैं—कि सांख्य आस्तिक शास्त्र है। उसमें जो एकात्मा का भेद है, उसमें सांख्य ही प्रमाण है। सांख्य का द्वैतवाद उत्तम है।

पीछे कहा गया है कि उपरिचरवसु, पृथु, तथा श्री रामचन्द्र ने अपने-अपने यज्ञों में कपिल को निमन्त्रण किया था। यदि वे ईश्वरवादी नहीं थे, तो आर्य-संस्कृति में उनका इतना आदर न होता।

'ईश्वरासिद्धेः' सूत्र पर प्रसिद्ध विज्ञानभिक्षु का कथन है—कि सबसे अधिक यही सूत्र उनका ईश्वर–वादित्व सिद्ध करता है। यदि वे अनीश्वरवादी होते, तो 'ईश्वरासिद्धेः' सूत्र के स्थान पर 'ईश्वराभावात्' ऐसा कहते। इस सूत्र का तो केवल यही अर्थ है—कि ईश्वर को छोड़कर सब तत्व सिद्ध किए जा सकते हैं, और ईश्वर तर्क से या विवेचन से सिद्ध होने योग्य नहीं, वह 'आप्तकाय' है। विज्ञानभिक्षु का कथन है—कि यह दर्शन श्रुति के अनुकूल आपत्ति व युक्ति–वाद-पूर्ण है।

११—योग

योग का महत्त्व—कपिल के दर्शन में अज्ञेय मीमांसा है—इसलिए मनुष्यों को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उस पर विश्वास करने में एक अभाव का अनुभव होता है। इस अभाव की पूर्ति पातन्जल योग में हो गई है। योग दर्शन और उसके विषय की प्रतिष्ठा भारत में बहुत प्राचीन है। योगियों की अनन्त शक्ति और अद्भुत क्षमता की कथाऐं भारत में बहुत प्रचलित हैं—भारतवासी विश्वास करते हैं कि योग से मनुष्य अजर अमर हो जाता है, बिना किसी यन्त्र की सहायता से वह आकाश में उड़ सकता है। वर्षों बिना खाए पिए समाधिस्थ रह सकता है, शरीर को अति लघु और अतिदीर्घकाय बना सकता है। वह बिना ही किसी यन्त्र की सहायता से पृथ्वी और लोकान्तर के प्रत्येक हाल जान सकता है। यद्यपि किसी भी प्राचीन प्रामाणिक संस्कृत ग्रन्थों में इन विभूतियों का जिक्र नहीं है-पुराणों में, कथा सरित्सागर और नाटकों में जहां तहां चमत्कार की कुछ बातें अवश्य मिलती है—परन्तु जैसा कि दन्त कथाओं में वर्णन है वैसी सिद्धियाँ किसी शास्त्र में नहीं देख पड़ती, न प्राचीन वैदिक या ब्राह्मण काल के ऋषियों पर उनका प्रभाव ही है।

परिचय—पतन्जलि का काल पाणिनि के बाद का है। यह प्रमाणित हो चुका है—उन्होंने पाणिनि के प्रसिद्ध व्याकरण अष्टाध्याई पर महाभाष्य लिखा है। यह ग्रन्थ ईसा से पूर्व चौथी शताब्दियों में लिखा गया सिद्ध हो गया है, जबकि कात्यायन ने पाणिनि व्याकरण पर वार्तिक लिखे थे। उसी वार्तिक को लेकर ही महाभाष्य लिखा गया था। उसमें वे अपने को गोर्नदीय कहते हैं—यह देश पहले भारतवर्ष के पूर्वीय भाग में था। डाक्टर गोल्ड स्टूकर योग दर्शन का काल मसीह से पूर्व दूसरी शताब्दी अनुमान करते हैं। इस दर्शन का अंग्रेजी अनुवाद डा० राजेन्द्र लाल मित्र ने किया है, और उसकी भूमिका में उन्होंने स्पष्ट लिखा है, कि यह दर्शन सांख्य के सामने कुछ भी नहीं है। इस अंग्रेजी भाष्यकार हिन्दु की सम्मत्ति से जब हम सहस्त्रावधि हिन्दुओं के योग विषयक विचित्र विचारों का मिलान करते हैं तो आश्चर्य होता है।

योग के विषय—योगदर्शन में १९४ सूत्र हैं। और वह चार अध्यायों में विभक्त हैं। प्रथम समाधिपाद, दूसरा साधनपाद, तीसरा विभूति पाद और चौथा कैवल्यपाद है। प्रथम पाद में ५१, दूसरे में ५५, तीसरे में भी ५५ और चौथे में ३३ इस प्रकार कुल १९४ सूत्र हैं।

पुस्तक का विषय वही मुक्ति है जो सांख्य का विषय है। परन्तु सांख्य में तो यह बतलाया गया है—कि मुक्ति वास्तव में क्या है—कैसी है ? उसकी वस्तुस्थिति क्या है—और स्थूल शरीर से उसका तथा उसे प्राप्त करने वाली आत्मा का सम्बन्ध क्या है ? परन्तु योग में यह बतलाया गया है कि वह कैसे प्राप्त की जा सकती है ?

समाधिपाद—प्रथम अध्याय जो समाधिपाद है—उस में ध्यान के स्वरूप को बताया गया है। योग शब्द की व्युत्पत्ति 'युज" धातु से की गई है. जिसका अर्थ जुड़ना या जोड़ना है। निरन्तर अभ्यास से और शान्ति से चित्त की वृत्तियों को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निरोध करके संप्रज्ञात और असंप्रज्ञान योग की प्राप्ति हो सकती है। संप्रज्ञात से असंप्रज्ञात योग बढ़कर है। उसमें विचार, अहंकार और चेतना नहीं रहती, समाधि लग जाती है।

ईश्वर की जितनी भक्ति होगी--मन की यह इच्छित अवस्था बहुत शीघ्र प्राप्त होगी। ईश्वर के ध्यान का मार्ग यह है कि आत्मा यदि क्लेश. कर्म, विपाक और भावनाओं से रहित हो-तो उसमें सर्वज्ञता का गुण प्राप्त हो जाता है। वह 'ओ३म्' शब्द से ध्वनित किया जाता है। योग साधन के लिए मन की एकाग्रता प्रधान है, रोग, संशय, और चित्त की चंचलता ये सब उस की बाधाएं हैं। सुख से विरक्ति करने और प्राणायाम के अभ्यास से ये बाधाएं दूर होती हैं। प्रथम पाद का सारांश यह है:—

मन की वृत्तियों को रोकना योग कहाता है। इससे योगी को अपने वास्तविक रूप में स्थिति हो जाती है। यदि चित्त की वृत्तियों का निरोध नहीं किया तो योगी उन वृत्तियों के अनुरूप ही अपने को देखने लगेगा। ये वृत्तियां ५ हैं और उसके क्लिष्ट और अक्लिष्ट नामक दो भेद हैं। क्लिष्ट वे-जो बहुत प्रकार के कर्मों की ओर ले जाती हैं। अक्लिष्ट वे-जो त्रिगुण "सत्व, रज, तम" का विरोध करती हैं। अर्थात् उन्हें समभाव पर नहीं होने देतीं। वे पाँचों वृत्ति ये हैं--प्रमाण वृत्ति, विपर्याय वृत्ति, विकल्प वृत्ति, निद्रा वृत्ति; और स्मृति वृत्ति।

प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ये प्रमाण वृत्ति हैं। प्रत्यक्ष वह जो इन्द्रियों से ज्ञात हो, जैसे नेत्र द्वारा देख कर कहे कि यह गुलाब का पुष्प है। अनुमान वह जो पीछे कहीं देखी वस्तु का स्मर्ण कर करे। उसके चिन्हों से अनुमान करें। जैसे धुआं देखकर अग्नि का। आगम वह जो किसी आप्त "प्रामाणिक" बात पर विश्वास किया जाय; जैसे वेद वाक्य।

उल्टे ज्ञान को प्राप्त करने वाली विपर्यय वृत्ति है। जिसे अविद्या कहते हैं। जैसे अन्धेरे में रस्सी देखकर सर्प का ज्ञान होना। वास्तविकता न होने पर भी केवल बोलने के ढंग से अर्थ समझने में जा भेद पड़े, वह विकल्प है, जैसे "आत्मा की चेतना" इस वाक्य में ऐसा प्रतीत होता है मानो आत्मा और चेतना दो हैं--पर वास्तव में दोनों एक ही हैं।

अभाव की प्रतीति पर निर्भर करने वाली वृत्ति निद्रा वृत्ति है। नींद में मनुष्य समझता है कि मानो मैं कुछ नहीं कर रहा—पर मन कुछ न कुछ करता ही है। उसे कुछ न करने का केवल भ्रम है।

प्रथम अनुभव की हुई किसी बात को न भूलना स्मृति वृत्ति है, इस प्रकार इन ५ प्रकार की चित्त वृत्तियों को रोकना योग है। ये वृत्तियाँ दो प्रकार से रोकी जा सकती हैं। एक अभ्यास से,दूसरे वैराग्य से। स्थिति में यत्न करना अभ्यास कहाता है। वह बहुत समय तक लगातार भली भाँति करने से दृढ़ हो जाता है। देखे और सुने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुए विषयों से अभिलाषा रहित होना और मन को उन पर न चलने देना वैराग्य कहाता है ।

इससे "अभ्यास और वैराग्य से" आत्मा के गुणों के प्रति "जो प्रवृत्ति की ओर लाते हैं" अभिलाषा नहीं रहती । फिर—वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता के रूप को यथा क्रम प्राप्त होने से संप्रज्ञात "समाधि" हो जाती है !

किसी स्थूल पदार्थ में मन लगाना वितर्क, सूक्ष्म 'इन्द्रियां' तीत विषय पर ध्यान देना 'विचार' आनन्दित होना, 'आनन्द' और मैं देह से भिन्न आत्मा हूं, यह भावना 'अस्मिता' कहाती है ।

यह हुआ संप्रज्ञात योग अर्थात् समाधि लगाने की विधि । अब असंप्रज्ञात योग की बात सुनिए ।

चित्त की वृत्तियां नष्ट हो गईं, इसकी बारबार प्रतीति या ज्ञान का अभ्यास करने से जो संस्कार मात्र रह जाय, तब वह असंप्रज्ञात योग हुआ । इस योग के दो भेद हैं:— १—भवप्रत्यय २—उपाय प्रत्यय ।

जिन्हें केवल यह ज्ञान रहे कि कभी जन्म हुआ था—परन्तु सर्वथा विदेह हो गए हो—जैसे शरीर है ही नहीं । और जो प्रकृति में लय हो गए हो, वैभव प्रत्यय कहाते हैं ।

श्रद्धा 'आत्म विश्वास' वीर्य "शक्ति" स्मृति "मैं क्या हूं, जगत क्या है आदि" समाधि "प्राणवरोध" और प्रज्ञापूर्वक 'आत्मदर्शन" जिसे प्राप्त हुआ वह उपाय प्रत्यय हुआ । इस असंप्रज्ञात योग के और ३ भेद हैं । १—मृदूपाय; २—मध्योपाय, ३—अधिमा-योपाय ।

इसमें भी मृदूपायायोग के तीन भेद हैं—१—मृदूसवेग, २—मध्यसवेग और तीव्र-संवेग । इनमें तीव्रसवेग वालों को योग शीघ्र प्राप्त होता है । अथवा ईश्वर की खास भक्ति होने से शीघ्र सिद्धि होती है ।

क्लेश, कर्म, कर्मफल, और कर्मफल की वासनाओं से रहित विशिष्ट पुरुष ईश्वर है ।

वह सर्वाधिक सर्वज्ञ है । वह पूर्व पुरुषों का भी गुरु है; क्योंकि काल से नहीं कटता । उसका नाम 'ओ३म्' या 'प्रणव' है । उसका जप और उसका अनुभव करना चाहिए । उससे प्रत्यक्ष चेतन का ज्ञान और विघ्नों का अभाव हो जाता है ।

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति; दर्शन, अलब्ध, भूमिकत्व, और अनवस्थितपन ये ९ चित्त के विक्षेप करने वाले विघ्न हैं ।

दुःख, दौर्मनस्य, (इच्छा पूरी न होने से उत्पन्न क्षोभ) अङ्ग में जड़त्व (आसन और मन के अस्थिर होने से देह न सधना) श्वास, प्रश्वास ये पाँच उन विघ्नों के सहायक हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनको नाश करने के लिए एक तत्व "ईश्वर स्मरण" का अभ्यास करे। मैत्री, करुणा, प्रसन्नता, उपेक्षा, सुख–दुःख, पुण्यापुण्य आदि विषयों की भावना से चित्त प्रसन्न होता है।

अथवा प्राण वायु के बार-बार पीने और निकालने से चित्त स्थिर होता है।

अथवा किसी तीव्र विषय पर पहुँच कर मन की स्थिति स्थिर होती है।

या शोक रहित उज्ज्वल प्रवृत्ति मन को स्थिर करती है।

अथवा राग "वासना" रहित चित्त स्थिर हो जाता है।

अथवा स्वप्न ज्ञान और निद्रा ज्ञान के आलम्बन से चित्त स्थिर हो जाता है।

अथवा इच्छित वस्तु के ध्यान से मन एकाग्र हो जाता है।

परमाणु और महत्तत्व तक मन वश हो जाता है। तब यह मन गृहीता, ग्राह्य, और ग्रहण में स्थिर होकर स्फटिक मणि के तुल्य निर्मल और पारदर्शी हो जाता है। इसी अवस्था को समापत्ति कहते हैं।

इस समापत्ति के ४ भेद हैं– १–सवितर्का समापत्ति। २–निर्वत्तिका समापत्ति। ३–सविचारा समापत्ति और ४–निर्विचारा समापत्ति।

शब्द अर्थ और ज्ञान के विकल्प से संकीर्ण सवितर्का समापत्ति होती है। शुद्ध स्मृति होने पर, रूप रहित सी–केवल ग्राह्य विषय को भासित करने वाली निर्वित्तिका समापत्ति है। इसी प्रकार सूक्ष्म विषयों पर स्थिर सविचारा और निर्विचारा है। सूक्ष्म विषय वे हैं जो अलिंग हैं।

ये ही चार प्रकार की समापत्ति सबीज समाधि हैं। इनमें अन्तिम निर्विचारा के नैर्मत्य में आध्यात्म (बुद्धिसत्व) प्रसन्न हो जाता है। उसमें बुद्धि ऋतंभरा–अर्थात् यथार्थ को समझने वाली हो जाती है। उससे उत्पन्न संस्कार अन्य संस्कारों को छिन्न भिन्न कर देता है।

अन्त में उस ऋतंभरा प्रज्ञा को भी निरोध कर देने से निर्बीज समाधि अर्थात् असंप्रज्ञात योग हो जाता है। साधना पाद प्रथम पाद का यह विषय उच्च कोटि के योगियों के लिए है। अब उससे साधारण कोटि के योगियों के लिए दूसरे पाद में विधान है। इसी से इसे साधना पाद कहा गया है। जहाँ प्रथम पाद में ध्यान योग की चर्चा थी—वहाँ इस पाद में क्रिया योग का ज़िक्र है।

तप–स्वाध्याय और ईश्वर-भक्ति ही क्रिया योग है। इससे समाधि भावना होती है और क्लेश कम होते हैं। अविज्ञा, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये ५ क्लेश हैं। प्रसुप्त (सोते हुए), तनु (क्षुद्र रूप में), विच्छिन्न (जहाँ–तहाँ) और उदार रूप (खूब प्रकट) ये चार प्रकार के उपरोक्त ४ क्लेशों की भूमि अविद्या है। अविद्या उसे कहते हैं जिससे पवित्र वस्तु अपवित्र दीखे दुःख में सुख दीखे, अनात्मा में आत्मा दीखे। देखने वाले और दीखने की शक्ति को एक मानना "अस्मिता"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। सुखों की अभिलाषा को राग कहते हैं। दुःख के अनुभव को द्वेष कहते हैं।

इन क्लेशों के नाश का उपाय यह है—

उन्हें प्रारम्भ ही में जब उनका सूक्ष्म बीज हो—नष्ट कर दे। उनका ध्यान ही न करे। इस जन्म और पूर्व जन्म के कर्म-फलों के मूल ये क्लेश ही हैं। उस मूल ही से उसके फलस्वरूप जाति आयु और भोग उत्पन्न होते हैं। वे पुण्य और पाप के हेतु होने के कारण सुख और दुःख देते हैं। आने वाले दुःख को रोकना चाहिए। द्रष्टा (जीवात्मा) और दृश्य (प्रकृति) का संयोग ही दुःख का कारण है। दृश्य का आत्मा द्रष्टा के ही लिए है। इस संयोग का हेतु अविद्या है। अविद्या के अभाव मे सयोग का अभाव हो जाता है। तब केवल्य अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है।

निरन्तर विवेक ख्याति से उस अविद्या को नष्ट करे। उस विवेक ख्याति के सात स्थान हैं, योग के अंगों द्वारा अशुद्धि नष्ट होने पर ज्ञान प्रकाशित होकर विवेक ख्याति प्राप्त होती है। १–यम, २–नियम, ३–आसन, ४–प्राणायाम, ५–प्रत्याहार, ६–धारणा, ७–ध्यान, ८–समाधि—ये योग के ८ अङ्ग हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह—५ यम हैं, और ये देश–काल–जाति–समय से अकाट्य सार्वभौम महाव्रत हैं। पवित्रता, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरध्यान, ये ५ नियम हैं। अहिंसा यम की प्रतिष्ठापूर्ण सिद्धि होने पर योगी के निकट प्रत्येक प्राणी का वैर छूट जाता है। उसके सम्मुख कोई हिंसा नहीं कर सकता। सत्य यम की प्रतिष्ठा होने पर क्रिया और फल का योगी आश्रय हो जाता है। अर्थात् वह जो कहता है वही तत्क्षण हो जाता है।

अस्तेय की प्रतिष्ठा होने पर सब रत्नों की प्राप्ति हो जाती है।

ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा होने पर महान् बली हो जाता है।

अपरिग्रह में स्थिर होने से उसे जन्म-जन्मान्तर का ज्ञान हो जाता है।

शौच से अपना अङ्ग पवित्र और संसर्ग रहित होता ह। सत्व शुद्धि मन की भलाई, एकाग्रता, इन्द्रियों की जय, आत्मदर्शन भी शौच से प्राप्त होते हैं।

सन्तोष से उत्तम सुख मिलता है।

तप से शरीर, इन्द्रिय की शुद्धि तथा अशुद्धि क्षय से होती है।

स्वाध्याय से इष्टदेवता का साक्षात्कार होता है।

ईश्वर-प्रणिधान से समाधिसिद्धि होती है।

यह हुई यम नियम की व्याख्या। अब योग के तीसरे अङ्ग आसन की बात सुनिए।

स्थिर और सुखदाई ढंग से बैठे। अनेक पशु–पक्षी आदि के बैठने के ढंग देख कर आसन सीखे, जिससे शरीर को हानि न हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तब श्वास प्रश्वास की गति को रोक कर प्राणायाम करे। यह प्राणायाम ४ प्रकार का है—१–बाह्य, २ अभ्यन्तर, ३—स्तम्भ वृत्ति ४—बाह्याभ्यन्तरवि-षयाक्षेपी।

प्राणायाम से प्रकाशित सत्व का आवरण नष्ट होता है। और धारणाओं में मन की योग्यता हो जाती है। जब इन्द्रियों का अपने विषयों से समागम न हो और वे चित्त के स्वरूप के अनुसार ही हो जाय, तो वह प्रत्याहार हुआ। प्रत्याहार से इन्द्रियां अत्यन्त आधीन हो जाती हैं।

इस प्रकार योग के ५ अंगों का जिक्र इस पाद में समाप्त किया गया है। और इन्द्रियों को निर्विषय बनाने की रीति वर्णन की गई है। शेष ३ अंग धारणा ध्यान और समाधि का वर्णन – जो कि अन्तरंग साधन है, तीसरे पाद में है, जिसका नाम विभूतिपाद है।

विभूति पाद—यह विभूति पाद बड़ा अद्भुत है। धारणा ध्यान और समाधि वास्तव में योग का मुख्य अंग है, इनके सिद्ध होने से योगी स्वयं सिद्ध हो जाता है, वह भूत भविष्य का ज्ञाता हो जाता है, वह अदृश्य हो सकता है। वह नक्षत्र और ब्रह्मांड के किसी भी लोक से बातचीत कर सकता है। आत्मा से बात कर सकता है वायु और जल में चल सकता है।

किसी खास स्थल पर चित्त की वृत्ति को बांधना धारणा कहाती है। ये खास स्थल–नाभिचक्र, हृदय कमल, मूर्धा भ्रूमध्य, नेत्रकोण, नासिकाग्र आदि अपने देश के अवयव या चन्द्र सूर्य—नक्षत्र आदि भी हो सकते हैं।

उस धारणा में एक सा ज्ञान बना रहना, ध्यान, कहाता है। जो प्रबल अभ्यास से होता है।

उसी ध्यान में जब अर्थमात्र का प्रकाश हो और अपना स्वरूप शून्य सा दीखने लगे—तब वह समाधि हुई।

इस प्रकार ध्यान में—ध्याता, ध्यान, और ध्येय ये तीन प्रथक् प्रतीत होते हैं। और समाधि में केवल ध्येय ही प्रकाशित रहता है। ध्याता और ध्यान रहते तो हैं परन्तु शून्य से प्रतीत होते हैं।

तीनों का एकत्र होना संयम कहाता है। संयम सिद्ध होने से प्रज्ञा निर्मल हो जाती है—और योगी की पार दृष्टि हो जाती है। योगी को उचित है कि जब उसे संयम सिद्ध हो जाए तब वह उसका विनियोग इस्तेमाल प्रथम सवितर्का समापत्ति में फिर उसके सिद्ध होने पर निर्वत्तका समापत्ति में इसके बाद सविचारा और निर्विचारा समापत्तियों में करे। ये तीनों अन्तरंग साधन हैं। पूर्वोक्त यमादि वहिरग हैं। फिर भी यह संयम, निर्बीज समाधि का बहिरंग है। अब उसे निरोध परिणाम, समाधि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिणाम, और एकाग्रता परिणाम, नामक तीन परिणामों का अभ्यास करना पड़ता है।

चित्त की चंचल वृत्तियों को रोकने पर रोकने के अभ्यास का संस्कार उन वृत्तियों पर निरोध क्षण मे जो पड़े, वह निरोध परिणाम हुआ। इससे चित्त का प्रवाह शान्त रहता है। चंचल वृत्ति रुक जाती है। पर फिर भी अनेक बड़े २ विषयों पर तो दौड़ती ही है। उनको भी नष्ट करके जब एकाग्र वृत्ति कर ली गई—अर्थात् उसे एक स्थल पर स्थिर कर लिया गया, तब वह हुआ, समाधि परिणाम। पर उसका संबन्ध समाधि क्षण के चित्त से ही है।

एकाग्र वृत्ति हो गई। परन्तु ध्याता और ध्यान शून्य प्रतीत होने लगे। ध्येय में एक रस ज्ञान बना रहे—तब वह हुआ एकाग्रता परिणाम।

इन तीनों परिणामों के संयम से, अर्थात इनके एकत्र होने से भूत भविष्य का सम्पूर्ण ज्ञान हो जाता है। वह एक स्थान पर बैठा २ ब्रह्माण्ड नक्षत्र आदि की घटनाओं को जान सकता है। वह त्रिकाल दर्शी हो जाता है। यह पहली सिद्ध हुई।

अब दूसरी सिद्धि सुनिए—शब्द, अर्थ और प्रत्यय (ज्ञान इन तीनों में प्रत्येक को एक समझने से सकरत्व होता है—परन्तु उन तीनों को प्रथक् २ संयम करने से समस्त प्राणियों की बोली समझी जा सकती है। उदाहरण—अश्व, एक शब्द है इसका अर्थ है एक पशु, जिस की एक विशेष आकृति है, उसका ज्ञान वही पशु है। इसी प्रकार अश्व कहने से शब्द अर्थ और ज्ञान तीनों एकत्र कर लिए गए। अतः सकर (गड्डमगड्ड) हो गया। पर योगी ऐसा न करे। वह शब्द को प्रथक् और ज्ञान को प्रथक् देखे। फिर उन का सयम करे, इससे उपरोक्त सिद्धि प्राप्त होगी (अश्व, सस्कृत शब्द है,) अश्प, फारसी शब्द है। हार्स अग्रेजी शब्द है। अब तीनों शब्द प्रथक् है—परन्तु अर्थ वही है और उससे उत्पन्न ज्ञान भी वही है। परन्तु ज्ञाता को उपरोक्त तीनों भाषाओं के भिन्न २ शब्दों का मूल संकेत जानना है—तभी तीन भिन्न भाषा के तीन शब्दों का सपात एक ही जंतु पर पड़ता है, यह ज्ञान होगा। इससे यह तो अवश्य निश्चय हुआ कि घोड़े के लिए अश्व ही शब्द नहीं। प्रत्युत वह एक संकेत है—जो कल्पित है और जो एक खास प्रदेश के व्यक्तियों न रख लिया है, अन्यों ने अन्य सकेत रख लिए हैं पर वे सकेत यद्यपि उसी एक जंतु के लिए हैं—पर उस संकेत शब्द में वह अर्थ नहीं और ज्ञान में वह पशु नहीं। इसलिए योगी शब्द-- अर्थ और ज्ञान का समाधिस्थ हो विभाग करता है—और तब वह प्राणी मात्र के संकेत शब्दों, उनके अर्थों और ज्ञान को जान लेता है।

अब तीसरी सिद्धि—पूर्व जन्म ज्ञान है। संस्कारों के साक्षात करने से पूर्व जाति का ज्ञान होता है। जैसे व्यायाम करने वाले व्यक्ति के शरीर को देखकर यह जन्म ज्ञान हो जाता है कि उसने व्यायाम किया है। यह ज्ञान शरीर संस्कार से हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसी प्रकार योगी अन्तःकरण के सूक्ष्म संस्कारों को साक्षात् करके पूर्व जन्म की बात जान लेता है।[1]

चौथी सिद्धि पराये मन की बात जान लेना है। प्रत्यय के अनुभव से परचित्त ज्ञान होता है। जिसके मन की बात जाननी हो योगी उसकी बुद्धि वृत्ति में धारणा–ध्यान समाधि का संयम करके साक्षात् करता है। तब उसे पराये चित्त का ज्ञान हो जाता है।

पांचवी सिद्धि अन्तर्धान हो जाने की है। योगी अपने शरीर, शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, अन्तर्धान कर सकता है। यह इस प्रकार कि—देह के रूप में संयम करने से उसकी ग्राह्य शक्ति स्तम्भित कर दी जाती है—इससे उसका शरीर चक्षु का विषय नहीं रहता। फिर कोई उसे नहीं देख सकता। इसी प्रकार योगी अपने शब्द, रस, गन्ध सभी में संयम कर सकता है। और जब जिसका संयम करता है, उसे अन्य नहीं अनुभव कर पाते।

छठी सिद्धि मृत्युज्ञान है। कर्म दो प्रकार के हैं—सौपक्रम और निरुपक्रम। इन दोनों कर्मों को सयम करने से अरिष्ट "मृत्युज्ञान" हो जाता है।

सातवीं विभूति महाशक्ति प्राप्ति है। मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा, ये चार भावनाएँ हैं। इनमें संयम करने से योगी को अक्षय बल प्राप्त हो जाता है। फिर वह जिस भी पशु के बल में संयम करता है उसी पशु का बल उसे प्राप्त हो जाता है।

आठवीं विभूति, सूक्ष्म–व्यवहित और विप्रकृष्ट ज्ञान है। वह प्रवृत्ति के आलोक को रखने से प्राप्त होती है।

नवीं विभूति भुवनों का ज्ञान है—जो सूर्य के सयम करने से हो जाता है।

१—व्यास भाष्य में पूर्व जन्म सम्बन्धी एक कथा का उल्लेख है। भगवान् जैगीषव्य के संस्कारों के साक्षात् करने से पिछले १० महाकल्पों के जन्मों की परम्परा देखने पर ज्ञान उदय हुआ। फिर देहधारी भगवान् आवट्य ने उनसे कहा—दश महाकल्पों में अलुप्त बुद्धि सत्व वाले, नरक और तिर्यक गर्भ से उत्पन्न दुःख का प्रकार देखते हुए, देवों और मनुष्यों में बारम्बार जन्म पाते हुए आपने सुख और दुःख में अधिक क्या अनुभव किया? तब भगवान् आवट्य से जैगीषव्य बोले—मैंने जो कुछ अनुभव किया वह सब दुःख है। तब भगवान् आवटय ने कहा—"आयुष्मान् को यह प्रकृति वंशत्व प्राप्त है, क्या यह भी आपने दुःख ही समझा। जैगीषव्य ने कहा—विषयों से तो यह बहुत बड़ा सुख है। पर मुक्ति की अपेक्षा तो दुःख ही है, क्योंकि यह बुद्धि सत्व का धर्म त्रिगुणात्मक है, और इसका प्रत्यय दुःखमूलक ही है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दसवीं विभूति ताराओं के व्यूह क्रम का ज्ञान है। जो चन्द्रमा में संयम करने से हो जाता है।

ग्यारहवीं विभूति उनकी गति का ज्ञान है, जो ध्रुव से संयम करने से होती है।

बारहवीं विभूति शरीर रचना ज्ञान है, जो नाभिचक्र में संयम करने से प्राप्त होती है।

तेरहवीं विभूति भूख प्यास का नाश है, जो कण्ठ कूपी नामक नाड़ी में संयम करने से होती है।

चौदहवीं विभूति स्थैर्य है, अर्थात् जैसे का तैसा बहुत दिन तक पड़ा रहना। यह कूर्मनाड़ी में संयम करने से होती है।

पन्द्रहवीं विभूति प्रतिभा में संयम करने से सब ज्ञान हो जाता है।

सोलहवीं विभूति चित्त का साक्षात्कार हृदय में संयम करने से होती है।

सत्रहवीं विभूति ब्रह्मज्ञान है।

आत्मा और बुद्धि सत्व अत्यन्त भिन्न हैं। पर दोनों में जो समानता है वह प्रत्यय भोग कहाता है। इस भोग के परार्थ होने से, स्वार्थ संयम करने से "ब्रह्म ज्ञान" प्राप्त होता है। इसके बाद—प्रातिम, श्रावण, वेदना, आदर्श, आस्वाद, और वार्ता ये ६ सिद्धियाँ स्वयं प्राप्त हो जाती हैं। इस अवस्था से योगी बिना ज्ञानेन्द्रियों के ही उनके विषयों को अनुभव कर लेता है।

यहाँ तक तो संयम द्वारा सिद्ध होने वाली सिद्धियों का वर्णन हुआ। अब क्रिया द्वारा सिद्ध होने वाली विभूतियाँ नीचे लिखी जाती हैं:—

१—चित्त के बन्धन का कारण शिथिल हो जाने से और प्रचार संवेदना से अन्य शरीर में योगी प्रवेश कर सकता है।

१—उदान वायु को वश में करने से योगी झाड़-कांटे आदि में नहीं फँसता तथा स्वेच्छा से शरीर त्याग कर दे सकता है।

३—समान वायु को वश में करने से अग्नि के समान तेजस्वी हो जाता है।

४—शरीर और आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से रुई के गाले के समान आकाश में उड़ सकता है।

५—बाहर अकल्पित वृत्ति महाविदेहा कहाती है। उससे प्रकाश के आवरण क्षय हो जाते हैं—और तब योगी सूक्ष्म शरीर से चाहे जहाँ विचरने लगता है।

६—स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय और अर्थवत्व में संयम करने से महाभूत आधीन हो जाते हैं।

७—देह की सम्पदा और उसके स्वभाव में आघात न होने से अणिमा (देह को भुनगे-सा छोटा बना लेना), लघिमा (बहुत हल्का बना लेना), महिमा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(बहुत बड़ा कर देना), प्राप्ति (सब कुछ वहीं बैठे २ मंगा लेना , कायसम्पत् (शरीर को सुन्दर, युवा, स्त्री, कठोर जैसा चाहे बना लेना) प्राप्त हो जाती हैं।

ये ग्राह्य पदार्थों की सिद्धियाँ हुईं अब ग्रहण की सिद्धियाँ सुनिए।

इन्द्रिय और मन को वश में करने पर सत्व और आत्मा को सर्व भावों का अधिष्ठाता होने पर सर्वज्ञता हो जाती है। और उसमें भी वैराग्य होने पर कैवल्य "मुक्ति" प्राप्त होती है। यही योग की परम सिद्धि है।

योग के विघ्न दो हैं--संग (विषयों में आसक्ति) और स्मय (गर्व)। सिद्धियाँ ज्यों ज्यों प्राप्त हों, त्यों त्यों भोग करने की क्षमता भी बढ़ती है, और अपनी योग्यता पर गर्व भी होता है--इन दोनों से बचे और आगे बढ़ता जाय। फिर उसे विवेकज ज्ञान होता है--जिससे वह सब बातों की असलियत समझ लेता है। फिर उसे भिन्नता का ज्ञान होता है। तब वह प्रत्येक वस्तु के भेद को समझ लेता है। अन्त सत्व और पुरुष का साम्य होने पर "कवल्य" मुक्ति की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार यह विचित्र विभूतिपाद– जो योग का तृतीय अध्याय है, समाप्त होता है।

कैवल्यपाद—विभूतिपाद में कैवल्य, मुक्ति की प्राप्ति के उपाय बता दिए हैं। अब कैवल्यपाद में उसका वर्णन करते हैं—

जन्म, औषधि, मन्त्र, तपस, और समाधि इन ५ कारणों से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। योगी एक चित्त से अनेक चित्त उसी प्रकार बना लेता है, जैसे एक गेहूं से अनेक उग आते हैं। पर ये सब चित्त आशय रहित होते हैं। इसलिए योगी के कर्म निष्काम होते हैं। उनसे जो विपाक होता है वह वासना रहित होता है। स्मृति और संस्कार के तारतम्य से उन वासनाओं को तटस्थ योगी देख अवश्य पाता है। वे वासनाएँ अनादि होती हैं। जो हेतु फल आश्रय और आलम्बन से संगृहीत होती हैं। इसलिए हेतु आदि के अभाव होने पर वासनाओं का भी अभाव होता है। पर वासनाओं का अत्यन्ताभाव नहीं होता। वे महदादि धर्मों में अतीत रहती हैं। ये महदादि व्यक्त सूक्ष्म और गुणात्मक हैं। अपरिणामी जीवात्मा चित्ताकार होकर उस प्रधान चित्त को पहचानता है। वह चित्त अनेक वासनाओं से युक्त होने पर भी परार्थ है। इसलिए गम्भीर विवेक से वह वासनाओं से विरक्त हो मुक्ति में लग जाता है। इस प्रकार यह पाद समाप्त होता है।

१२--न्याय

तर्क-शास्त्र—न्याय दर्शन हिन्दुओं का तर्क-शास्त्र है। अब तक उसका भारत में बड़ा मान है। इस विषय में इस दर्शन के साहित्य में तर्क की जो तीव्रता और सूक्ष्म विवेचना और विवाद में जो कठोरता और वैज्ञानिक सत्यता है—वह न तो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्राचीन यूनानियों में और न मध्यकाल के अरब वासियों में और न यूरोप के विद्वानों में कमी देखी गई। पुराने जमाने की तरह बंगाल का नव द्वीप अब भी समस्त उत्तर भारत और राजपूताने का न्याय दर्शन का केन्द्र बना है। जब कि बड़ी २ यूनिवर्सिटियां खड़ी हो गई हैं —इन चटसालों में पढ़ने वाले सात्विक विद्यार्थी छीज गए हैं—पर फिर भी वह प्राचीन शैली जिसका वर्णन धर्म सूत्रों में है—आज दिन भी सर्वथा मर नहीं गई है।

न्याय दर्शन के आद्याचार्य गौतम मुनि हैं। जिन्हें भारत का अरस्तू कहा जा सकता है। दुःख है कि गौतम का काल ज्ञात नहीं होता। गौतम और अहल्या की पौराणिक कथा एक गौतम मुनि की बात पर प्रकाश डालती है परन्तु न्याय के निर्माता गौतम कोई इससे ही है। जो श्री रामचन्द्र के काल में हुए हैं।

न्यायदर्शन में ५ अध्याय हैं। प्रत्येक में दो "आह्नि", 'दैनिक पाठ' हैं। इन पाठों के भी विभाग हैं। प्रत्येक विभाग में कुछ सूत्र हैं—समस्त न्याय दर्शन में ५३८ सूत्र हैं। प्रथम अध्याय में प्रमाण आदि १६ पदार्थ और उनके लक्षण, दूसरे में प्रमाणों की परीक्षा तीसरे में प्रमेय की परीक्षा, चौथे में प्रवृत्ति आदि की परीक्षा और ५वें में जाति और निग्रह स्थानों का वर्णन किया गया है।

इस दर्शन में ३ बात मुख्य हैं, प्रथम उद्देश्य, द्वितीय लक्षण, तृतीय परीक्षा। वस्तु के नाम मात्र के कथन को उद्देश्य कहते हैं—जैसे पृथ्वी आदि। वस्तु के असाधारण गुण को लक्षण करते हैं जैसे गन्धवती पृथ्वी। और यहीं उस पदार्थ का लक्षण हो सकता है या नही इसे परीक्षा कहते हैं।

सोलह पदार्थ—न्याय के प्रथम सूत्र में जो १६ पदार्थ गिनाए गए हैं—वे ये हैं :—

१—प्रमाण; २—प्रमेय, ३—संशय(शंका), ४—प्रयोजन (हेतु ५—दृष्टान्त (उदाहरण),६—सिद्धान्त (निरूपर्ण),७—अवयव (तर्क या अवयव घटित वाक्य। ८—तर्क (खण्डन) ९—निर्णय, १०—वाद, ११—जल्पना, १२—वितण्डा (आपत्ति) १३ - हेत्वाभास (मिथ्या हेतु), १४—छल, १५—जाति, १६—निग्रह स्थान (विवाद)। प्रमाण और प्रमेय दो बातें प्रधान हैं—शेष १४ इनके अन्तर्गत हैं। प्रमाण ४ प्रकार के हैं - अनुभव, अनुमान, सादृश्य और साक्षी। कारण वह है जो किसी कार्य के प्रथम अवश्य होता है। और वह कार्य उसके बिना हो ही नहीं सकता। कार्य वह है जो अवश्य ही कारण से होता है और उस कारण के बिना नहीं हो सकता। कारण और कार्य का दो प्रकार का सम्बन्ध है। १ -संयोग, २—समवाय। इसलिए कार्य तीन प्रकार के हो सकते हैं—१—समवाय (तात्कालिक और स्पष्ट),२—असमवाय (माध्यमिक और अव्यक्त) और ३—निमित्त (कारिणक)।

जिन वस्तुओंको प्रमाणित करना है—अर्थात् जिनका ज्ञान प्राप्त करना योग्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है, वे ये हैं —(१) आत्मा, (२) देह, (३) इन्द्रिय ज्ञान,(४) इन्द्रिय उद्देश्य, (५ बुद्धि, (६) मन, (७) उत्पत्ति, (८) अपराध, (९) पुनर्जन्म, (१०) प्रतिफल, (११) दुःख और (१२) मुक्ति।

आत्मा—आत्मा प्रत्येक शरीर में भिन्न २ है, वह देह और इन्द्रियों से प्रथक है और ज्ञान का स्थान है। प्रत्येक आत्मा नित्य, अनन्त है, तथा कर्मानुसार जन्म लेता है। परमात्मा एक है, वह नित्य ज्ञान वाला और सब 'वस्तुओं का निर्माता है; यह देह भौतिक है, पाँचों वाह्यन्द्रियां भी भौतिक हैं, और मन ज्ञानन्द्रिय है। बुद्धि के दो कार्य हैं–स्मरण रखना और विचारना। विचार यदि स्पष्ट प्रमाणों के द्वारा हो तो सत्य होता है, और यदि प्रमाणों द्वारा न हो तो मिथ्या होता है। इसी प्रकार स्मरण भी सत्य व मिथ्या हो सकता है। इन्द्रिय ज्ञानों के कारण गन्धरस-रूप, स्पर्श और नाद हैं। उत्पत्ति का कार्य, पाप पुण्य का और यश अपयश का कारण है। कार्य का उद्देश्य केवल सुख प्राप्ति और दुख निवृत्ति है।

पुनर्जन्म—आत्मा का दूसरे शरीर में जाना पुनर्जन्म है। दुःख की उत्पत्ति पाप से होती है, पाप २१ हैं–जो दुख के मूल हैं। ज्ञान से मुक्ति होती है, काम से नहीं।

न्याय में दो शब्द अधिक हैं (१) व्याप्ति (२) उपाधि। व्याप्ति का अर्थ नित्य संयोग और उपाधि का इससे विपर्यय है।

यह न्याय दर्शन का सिद्धान्तवाद है, जिसे विस्तार मय और शुष्क विषय होने के कारण यहीं समाप्त करते हैं।

१३--वैशैषिक

परमाण वाद दर्शन कणाद ऋषि प्रणीत कहा है। यह तात्विक सिद्धान्त वैशैषिक वाद न्याय की पूर्ति में है। इसका मुख्य सिद्धान्त यह है कि सब भौतिक पदार्थ परमाणु समूह से बने हैं। परमाणु अनन्त हैं, और उनके समूहों का नाश उनके पृथक् हो जाने से होता है।

प्रथम दो परमाणु का संयोग होता है, इसके बाद तीन द्विगुण परमाणु का संयोग होता है—इस प्रकार सूर्य के प्रकाश में जो अणु दीख पड़ते हैं–वे ६ परमाणुओं से बने हैं। ये दो परमाणु मिलकर द्वयणु तीन मिलकर त्रिसतेणु और ४ मिलकर चतुरणुक होते हैं। इसी प्रकार बड़े होते २ पृथ्वी आदि बनी है। जल के परमाणुओं से जल, अग्नि के परमाणुओं से अग्नि और वायु के परमाणुओं से वायु बनी है।

पदार्थों के सात वर्ग—कणाद पदार्थों के सात वर्ग मानते हैं—(१) द्रव्य, (२) गुण, (३) क्रिया, (४) समाज, (५) विशेषता, (६) संयोग, (७) अनस्तित्व।

द्रव्य नौ हैं पृथ्वी–जल, तेज–आकाश–वायु–काल–आत्मा और दिशा। गुण १७ हैं रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिणाम, व्यक्तित्व, **संयोग**, वियोग,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्वता, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न। क्रिया ५ हैं—ऊपर जाना, नीचे आना, सिकुड़ना, फैलना और चलना। समान्य गण जाति के विचार का आदि कारण हैं। विमेषता—आत्मा—मन—काल—दिग्, आकाश और प्रमाण ये समान्य से पृथक् हैं। संयोग—वह अस्तित्व जो तब तक रहे जब तक दो वस्तुएँ संलग्न हैं। अनस्तित्व सर्वगत अथवा इतरेतर होता है।

इस प्रकार यह दर्शन केवल मात्र दर्शन या विचार साध्य ग्रन्थ नहीं, प्रत्युत विज्ञान ग्रन्थ है—जो शायद पृथ्वी पर प्रथम प्रयत्न था, जो बल, संयोग और वियोग के विषय की जाँच के लिए किया गया था।

१४—पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा अर्थात् वेदान्त

धर्म विप्लव की साक्षी—जैमिनी की पूर्व मीमांसा और वादरायण व्यास की उत्तर मीमांसा की चर्चा खास तौर पर ध्यान देने योग्य हैं। ये दोनों दर्शन एक धर्म विप्लव की साक्षी प्रतीत होते हैं। पूर्व मीमांसा में उन वैदिक यज्ञ विधानों पर जोर दिया है जिन्हें दार्शनिक विद्वानों ने निरर्थक समझ कर ज्ञान प्रचार किया था। और उत्तर मीमांसा में एक सर्वात्मा का वह सिद्धान्त जो कपिल के सांख्य और न्याय के प्रचार के बाद प्रतिशरीर भिन्न की प्रबलता में छिप गया था—प्रचार किया गया है—परन्तु उपनिषद् तत्त्व के आधार पर सर्वगत आत्मा का एक निराला ही रूप वेदान्त के प्रचार से बन गया और वर्तमान हिन्दु जनता में बड़ा आदर पा गया।

विज्ञानवाद को नष्ट करने का प्रयत्न—जैमिनी व्यास के शिष्य थे, यह प्रसिद्ध है। परन्तु वेदान्त रचयिता व्यास कौन से हैं हम अभी यह निर्णय नहीं कर सके। पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये दोनों दर्शन बौद्ध काल में बने हैं—और दोनों का उद्देश्य दर्शनों के विज्ञानवाद को नष्ट करके प्राचीन धर्म की स्थापना है। पूर्व मीमांसा ब्राह्मण ग्रन्थों के उद्धार के लिए और उत्तर मीमांसा उपनिषदों में वर्णित सर्वगत आत्मा की व्याख्या करने के लिए बनाया गया है। पूर्व मीमांसा पर कुमारिल भट्ट प्रबल भाष्यकार हुए जो बौद्धों के कट्टर शत्रु थे। ये ईसा की ७वीं शताब्दि में हुए हैं—वेदों के विधानों को एक बार फिर स्थापित करने में इस विद्वान् ने जीवन समाप्त किया। जिस प्रकार पूर्वमीमांसा पर कुमारिल भट्ट ने, वार्तिक लिखा, उसी प्रकार शंकराचार्य ने उत्तर मीमांसा "वेदान्त सूत्रों" पर अपना शरीर भाष्य किया। इन दोनों महान् आचार्यों के भाष्यों का और उनमें प्रतिपादित मतों का विस्तृत उल्लेख तो हमने अन्यत्र किया है। यहाँ हम यह कहकर आगे चलते हैं कि यही दो विद्वान् थे, जिन्होंने एक बार फिर मसीह की सातवीं शताब्दि में एक बार प्राचीन ब्राह्मणों के प्राधान्य और उपनिषदों की पद्धति को उभारने में अपना जीवन समाप्त किया। ये दोनों विद्वान् लगभग समकालीन हुए हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कुमारिल भट्ट को तुषाग्नि में भस्म होकर प्रायश्चित करते हुए शंकर ने अपनी आँखों से देखा था। ये दोनों व्यक्ति पौराणिक काल से सम्बन्ध रखते हैं। यह न भूल जाना चाहिए।

पूर्व मीमांसा--पूर्व मीमांसा जैमिनि की है। यह हम कह चुके हैं। इसमें १२ पाठ और ६० अध्याय हैं। इन पर सबर स्वामी भट्ट की प्राचीन वार्तिक है--कुमारिल भट्ट की वार्तिक उनके बाद की है। पहले पाठ में व्यक्त धर्म के प्रमाण का वर्णन है। २।३।४ में धर्म के भेद, उपभेद, उपधर्म और धर्मों के पालन करने के उद्देश्यों का वर्णन है। धर्म करने का क्रम पाँचवें पाठ में है, और उनके आवश्यक गुणों का छठे पाठ में। यह इस दर्शन का पूर्वार्ध हुआ।

सातवें और आठवे पाठों में अव्यक्त आज्ञाओं का वर्णन है। नवें पाठ में अनुमान साध्य परिवर्तनों पर विवाद किया गया है। और दसवें अध्याय में अपासन, ११वें में गुण और १२वें में समपदस्थ फल पर विचार किया गया है। यही पूर्व मीमांसा का संक्षिप्त वर्णन है।

प्रथम अध्याय में बताया है कि वेद नित्य और पवित्र हैं—एवं उनकी उत्पत्ति ईश्वर से हुई है। वेद संहिता और ब्राह्मण दोनों ही वेद हैं। मन्त्र के ३ भाग हैं। जो छन्द हैं--वह ऋक् जो गाये जाते हैं वे साम, और शेष यजुस्। मन्त्र में प्रार्थना या जप है। ब्राह्मणों में धार्मिक आचारों की आज्ञा है–उपनिषद् भी ब्राह्मण हैं।

वेद श्रुति हैं, इनके उपरान्त स्मृति हैं जो ऋषिकृत हैं। उनमें वेद प्रमाण है, स्मृति में धर्मशास्त्र "धर्मसूत्र" भी सम्मिलित हैं। जिनमें धार्मिक और सामाजिक नियम हैं। कल्पसूत्र वेदों के अंश नहीं हैं। वे वेदज्ञों के बनाये हैं--उनमें जो विषय वेद सम्मत हैं--उन्हें छोड़ कर कुछ मान्य नहीं।

यही पूर्व मीमांसा का मत है—इसमें एक विचित्रता यह है कि ब्राह्मणों को नित्य अंग और कल्पसूत्रों को मनुष्यकृत तथा अप्रामाणिक माना गया है।

मीमांसा में याग पर खूब जोर दिया गया है। उसकी तीन रीतियों का उसमें उल्लेख है--(१) पवित्र अग्नि की स्थापना करना, (२) हवन करना, और (३) सोम तैयार करना। यज्ञ सम्बन्ध में बहुत से वाद विवादों का वर्णन है। एक नमूना सुनिए--

कुछ यज्ञों में ऐसे विधान हैं--कि यजमान अपना सर्वस्व यज्ञकर्ता ब्राह्मण को दे दे। इस बात पर प्रश्न उठाया गया है कि राजा की सम्पत्ति में भूमि–चराहगाह, सड़क, झील, और तालाब आदि भी हैं--परन्तु इन वस्तुओं को राजा दान नहीं कर सकता--क्योंकि वह उसकी सम्पत्ति नहीं--प्रजा की है--राजा को प्रबन्ध और शासन का अधिकार प्राप्त है। वह केवल उस घर या खेत को दे सकता है जो उसने मोल लिया हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसी प्रकार बलिदान करने का प्रश्न है। मालूम होता है कि इस दर्शनकार ने उन आपत्तियों को देखा था, जो यज्ञ की कुरीतियों से आई थी, और उसने ब्राह्मणों के अधिकार सीमित करने की चेष्टा की थी, जिससे व्यवस्था बनी रहे। भला यह भी कोई बात थी कि राजा गरीब प्रजा और छोटे रईसों को बल पूर्वक लूट लेकर अनन्त सम्पत्ति इकट्ठी करें, और वह इन ब्राह्मणों को सिर्फ इसलिए दे दे कि उससे स्वर्ग प्राप्ति होगी। तब कहिए राज्य व्यवस्था कैसे चल सकती थी। मीमांसा कार को यज्ञ की पुनः स्थापना करने के लिए संशोधन करने की आवश्यकता थी—और वह उसने किया।

यज्ञ में बलि पशु और यज्ञ कर्ताओं के सम्बन्ध में यह मीमांसाकार खूब विस्तार बांधता है। यज्ञ में १७ आदमी होने चाहिए—१–यजमान और १६ पुरोहित। छोटे यज्ञों में चार ही काफी हैं। अश्वमेध में अनेक प्रकार के पालूत जानवर और जंगली जानवर–थलचर जलचर, पक्षियों, तैरने वालों, रेंगने वालों को मिलाकर ६०९ से कम न होने चाहिएं।

प्रकट में मीमांसाकार कर्तव्य, पर बड़ा जोर देते हैं परन्तु कर्तव्य उनकी राय में है, वैदिक यज्ञ विधान मात्र है। वे न तो कर्तव्य करने के पात्रों में ख्याल करते हैं, और न उपनिषद के आत्मवाद का वर्णन करते है। इसलिए शंकराचार्य ने यह कहा है कि इस दर्शन से ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती।

कुमारिल भट्ट—कुमारिल भट्ट का प्रादुर्भाव वास्तव में बोद्धों के विरोध के लिए था। बौद्ध की मृत्यु से २०० वर्ष बाद तक बौद्ध धर्म प्राणीमात्र के कल्याण का धर्म रहा। परन्तु तीसरी शताब्दी शुरू होते ही उसकी नीति बदली और नागार्जुन और बसुबन्धु ने "लंकावतार" और "माध्यमिक सूत्र" की रचना करके गौतम के न्याय सूत्रों का खण्डन किया। वात्स्यायन मुनि ने इन्हीं आक्षेपों का उत्तर अपने प्रसिद्ध न्याय भाष्य में दिया है। इस भाष्य का दिंगनाथ, बौद्ध विद्वान ने फिर खण्डन किया। उसके प्रतिवाद में मैथिल ब्राह्मण उद्योतकराचार्य ने ६३३ ईस्वी में उक्त भाष्य पर "न्याय वार्तिक टीका" बड़ी जबर्दस्त भाषा में लिखी। इस प्रकार बौद्धों से धार्मिक लागडाट इन विद्वानों की चलती ही रही।

शबर मुनि का भाष्य—शबर मुनि ने मीमांसा सूत्रों पर जो 'शाबर भाष्य" किया है; इसमें भी बौद्धों का बड़ी बारीकी से खण्डन किया है। यह वह समय था जब बिना बौद्ध धर्म ग्रहण किए राज्य में रहना कठिन था. और सभी राजा बौद्ध हो गए थे। उसी समय कुमारिल भट्ट का जन्म हुआ। उन्होंने भी मीमांसा सूत्रों के शाबर भाष्य पर जो मीमांसा श्लोक वार्तिक लिखी है—वह उनके अगाध पाण्डित्य की द्योतक है। कुमारिल ने प्रथम पाद के वार्तिक श्लोकों में तथा शेष गद्य पद्य में लिखे हैं। पाद के वार्तिक श्लोक वार्तिक और शेष दो के तन्त्र वार्तिक कहाते हैं। बाकी ग्यारह अध्यायों के वर्णन बहुत संक्षिप्त हैं। इसी वार्तिक पर मोहित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होकर शंकराचार्य ने अपने शारीर भाष्य पर भी वार्तिक लिख देने की उनसे उनके अन्तिम काल में प्रार्थना की थी[1]।

मीमांसा के सम्बन्ध में कुमारिल का मत भाट्ट मत के नाम से प्रख्यात है। कुमारिल से प्रथम बौद्धों से जो शास्त्रार्थ होते थे, वे न्याय दर्शन के आधार पर केवल तर्कगम्य होते थे। परन्तु कुमारिल ने उस प्रवाह को पलटने के लिए ही मीमांसा को प्राबल्य दिया। और कुमारिल के शास्त्रार्थों में कर्म काण्ड सम्बन्धी चर्चायें बढ़ने लगीं। फलतः उनका सामना करने के लिए बौद्धों को ब्राह्मण, और श्रौत सूत्रों का अध्ययन करना पड़ा।

विसेन्टस्मिथ ने कुमारिल का जन्म स्थान बिहार बताया। कोई आसाम और उत्तर बंगाल बताते हैं। इनका जन्म काल ७वी मसीह शताब्दी हैं। इनके दो प्रधान शिष्य थे–एक मण्डन मिश्र–दूसरे प्रभाकर, मण्डन मिश्र तो शंकर स्वामी से शास्त्रार्थ में हारकर मीमांसक से वेदान्ती बन गए। और फिर उन्होंने कुमारिल भट्ट के विरोध में अनेक ग्रन्थ लिखे। परन्तु प्रभाकर को एक घटना वंश कुमारिल ने स्वयं गुरु कह दिया था। वे एक बार शावर भाष्य पढ़ा रहे थे। एक पंक्ति लगती नहीं थी। प्रभाकर ने पंक्ति लगाकर और लिखकर पुस्तक में रख दी–उसे पढ़कर सरल हृदय भट्ट ने कहा–आज से तुम हमारे गुरु हुए। तब से प्रभाकर गुरु नाम से ही प्रसिद्ध हो गए। उनका मत गुरु मत कहाता है––और भाट्ट मत से कम गौरव नहीं रखता। उन्होंने भाट्ट मत के विरुद्ध शावर भाष्य पर "वृहती", "निबन्ध विवरण" आदि टीकाओं में अपने मतभेद का वर्णन किया है। इनके शिष्यों ने "ऋतुविमला" और "दीपशिखा" प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे हैं। जिनके नाम शारिकनाथ और भवनाथ हैं। अन्त में ये बौद्ध गुरु को धोखा देकर विद्या पढ़ने के पाप के प्रायश्चित स्वरूप तुषाग्नि में त्रिवेणी तट पर भस्म हुए––यह बात शंकर दिग्विजय में लिखी है। जिसकी प्रमाणिकता में सन्देह है।

अपनी मीमांसा की वार्तिक के प्रारम्भ में भट्ट कहते हैं–कि मैंने अनेक शास्त्रों दर्शनों और धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया। परन्तु मुझे शान्ति की प्राप्ति इसी मीमांसा दर्शन से हुई[2]।

वर्ष की वृत्ति—यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि मीमांसा दर्शन पर भगवान उप वर्ष की एक वृत्ति थी, जो अब नहीं मिलती हैं। इस वृत्ति का उल्लेख भट्ट ने अत्यन्त प्रतिष्ठा से किया है[3]। शंकराचार्य ने भी उसका उल्लेख किया है[4]। ये

१—भाष्यस्य वार्तिमथैष कुमारिल भट्टेन कारयितुमादरवान् मुनीन्द्रः। ... ... शंकर दिग्विजय ७। ६१।

२—मीमांसा शास्त्र तेजोभिर्विषेणोज्ज्वलीकृते।
वैदार्थज्ञानरत्ने मे तृष्णाअतीवविजृम्यते। ९ श्लोक वार्तिक

३—अतएव भगवतोपवर्षेणा प्रथमे तन्त्रे .... । इत्यादि

४—वृत्तिकारस्तु अन्यथेमं ग्रन्थं वर्णयांचकार तथा भगवानुपवर्षः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भगवान् उप वर्ष महा मुनि पाणिनि के गुरु वर्षोपाध्याय के छोटे भाई थे[1]।

भाट्ट मत—कुमारिल भट्ट अपनी टीका में स्पष्ट कहते हैं कि मेरा उद्देश्य पुरुषों की धर्म स्वतन्त्रता नष्ट कर देना है[2]।

कुमारिल की युक्ति है—कि यदि दान, यज्ञ, पूजन, धर्म है तो धर्म से कोई फल नहीं प्राप्त हो सकता। मान लीजिए, आप ने किसी दुखी व्यक्ति की रक्षा की, या स्वर्ग आदि फल देने वाले यज्ञ यागादि कर्म किए। पर जब वे कर्म आप कर चुके–तो उनके भविष्य स्थायित्व में कोई प्रमाण नहीं। वे उतनी ही देर तक हैं–जब तक आप उन्हें कर रहे थे। उनके समाप्त हो जाने, नष्ट हो जाने पर उनसे अजमान्तर में कौन कहे—एक घन्टे—एक क्षण, के बाद भी उनसे फल की आशा ऐसी है—जैसे माँ बाप के मर जाने पर उनसे पुत्रोत्पत्ति की आशा। क्या कहीं कारण के नष्ट हो जाने पर भी कार्य हुआ है ? अतः धर्म वही शक्ति है जो याग से उत्पन्न होती है। जिसे मीमांसा के शब्दों में 'अपूर्व' कहा है। देखने में आता है कि अंगार के बुझ जाने पर भी उसकी गर्मी पानी को गर्म किए रखती है। बीज के नष्ट हो जाने पर भी उसकी बनी शक्ति अंकुर, डंठल, फूल, फल तक कायम रहती है। अभिप्राय यह है कि याग आदि क्रियाओं के समाप्त हो जाने पर भी उनसे उत्पन्न "अपूर्व" "धर्म" मनुष्य की आत्मा में विद्यमान रहता है। वह आत्मा के विस्तार के साथ स्वयं भी विश्वमात्र में फैला हुआ बिना किसी फलप्रद ईश्वर की सहायता के स्वर्ग आदि फलों का निर्माण करता और देता रहता है[3]।

अतः धर्म वह शक्ति है जो कर्मों के समाप्त हो जाने पर भी हजारों वर्ष तक, जब तक फल नहीं दे लेती स्थाई रहती है। यज्ञ यागादि कर्म उसके बन्धन हैं। लोक में साधनों को ही प्रत्यक्ष होने से धर्म करने की रीति चल पड़ी है—वास्तव में उन्हें धर्म कहना अयुक्त है।

इस वर्णन से यज्ञादि के प्रभाव को जो अतीन्द्रिय शक्ति उत्पन्न हो गई है—वह कैसी अद्भुत है। आश्वलायन सूत्रों में सूत्रवध का बहुत वर्णन है। कुमारिल ने उसपर दूसरे ढंग से प्रकाश डाला है। कुमारिल ने यौगिक शब्दों पर

---

१. इन्डियन एटिक्वेरी भाग ७।४ से प्रतीत होता है कि उपवर्ष महाराज नन्द के समकालीन थे। अतः वही मीमांसा पर प्रथम भाष्यकार हैं–शाबर भाष्य उसके पीछे का है। उसी पर कुमारिल की वार्तिक है—इस वार्तिक पर "शालदीपिका" और 'न्यायरत्न माला" आदि ग्रन्थों के निर्माता अपार्थसारथि मित्र की न्यायरत्नाकार नामक उत्कृष्ट टीका है।

२. "यत्नतः प्रतिषेधानः पुरुषाणां स्वतन्त्रता २९०।"

३. तस्मात्फले प्रवृत्तस्य यागादेः शक्तिमात्रकम्।
उत्पत्तौवाअपिपश्चादैरपूर्वं न ततः पृथक्॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जोर दिया है। उनका कहना है कि प्रत्येक कर्म के साध्य और साधन दो भाग होते हैं। साध्य अंश में हिंसा निन्दित है। जैसे "श्येन यज्ञ"। क्योंकि इसका उद्देश्य शत्रु वध है। परन्तु साधन अंश में हिंसा हिंसा नहीं कही जा सकती। परन्तु यदि साधन हित है—तो वह हिंसा पाप नहीं। जैसे अत्याचारी को प्राणदण्ड लोकहित के लिए दिया जाता है, अतः वह पाप नहीं।[1]

इस प्रकार भाट्ट मत में धर्म ऐसी चीज है जिसे उसके उत्पादक कारणों से जानना अशक्य है, क्योंकि वह कमज शक्ति "धर्म" अतीन्द्रिय है।[2]

विधि वाक्य ही धर्म में प्रमाण है। जिस ढंग से जो काम करना बताया है वह उसी तरह करना धर्म है। भाट्ट मत का यह बड़ा दुर्भेद्य किला है, कि वेद स्वतः प्रमाण है। इसमें दर्शन और मुक्तिवाद सभी दब जाता है।[3]

वेद के नित्यत्व की मीमांसा वे इस प्रकार करते हैं—कि शब्द नित्य और निरवयव है। तथा वे अखण्ड रूप से सर्वत्र व्याप्त हैं। किन्तु अभिव्यंजक ध्वनि की पहुँच न होने से कर्णेन्द्रिय को ग्रहण करने में बाधा होती है। यही शब्द नित्यत्व में अकाट्य प्रमाण है।

अब जब शब्द निरवयव सिद्ध हो गया, तब यह प्रश्न उठा कि तब उसका क्रम और अर्थ संगति कैसी? उसका पद विन्यास ही क्यों? इस पर कुमारिल कहते हैं। क्रम एक धर्म है जो शब्दों में रहता है—वह स्वतन्त्र कुछ वस्तु नहीं। शब्द में वास्तव में क्रम नहीं, पर परम्परा से होने के कारण पदक्रम भी नित्य है।[4]

---

१. साधनत्वेन विहितं न चाविहितमुच्यते।
साध्यत्वेन विधानन्तु नैवेष्टं लोक वेदयोः २०९

* * *

तस्मात् फलाशे या हिन्सा वैदिकी सा निषिध्यते। २३१ "श्लो० चौ०"

२. चोदनैव प्रमाणं चेत्येतद्धर्म अधारितम। ४ "श्लो० चौ०"

३. स्वतः सर्वं प्रमाणानां प्रामाण्यमिति गण्यताम्।
नहि स्वतो असतो शक्तिः कर्तुमन्ये न शक्यते। ४७।

* * *

अतोअत्र पुंनिमित्तत्वदुपपन्ना मृषार्थता।
नतु स्यात्ततवभावत्वं वेदे वक्तुरभावतः १६९ श्लो० चौ०

४. क्रमः क्रमवतामंगमितिकिं युक्ति साध्यता।
धर्ममात्रमसोतेषां न वस्त्वन्तर मिष्यते। २८६।

* * *

न च क्रमस्य कार्यत्वं पूर्व सिद्ध परिगृहात्।
वक्ता नहिक्रमं कांचित् स्वातन्त्र्येण प्रपद्यते। श्लो० श० नित्य०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वाक्य रचना के लिए किसी व्यक्ति की आवश्यकता है या नहीं—इस पर कुमारिल कहते हैं—वाक्य और वाक्यार्थ एक चीज है।

वाक्य से वाचक शक्ति पृथक् नहीं है। अतः अर्थ के साथ शब्द, शब्द के साथ वाक्य भी नित्य है।

वेदान्त—वेदान्त या उत्तर मीमांसा बादरायण व्यास का बनाया कहा जाता है। उसमें कपिल के सिद्धान्तों और पातंजल योग का उल्लेख है। उसमें कणाद के परमाणुवाद का भी उल्लेख है, और गौतम के न्याय का भी। उसमें जैमिनि, जैन, बौद्ध और पाशुपतों के धर्मों का भी उल्लेख है। वह अवश्य ही ईसा के लगभग बना हुआ है और छहों दर्शनों में सब से पिछला है।

वेदान्त ने न्याय के अवयव घटित वाक्यों को लिया है। परन्तु अरस्तू की की तरह उसके पांच भागों को घटाकर केवल ३ भाग रहने दिए हैं। यह या तो उस पर यूनानी दर्शन की छाप पड़ी है, या यूनानी दर्शनों पर उसकी—परन्तु कौकल ब्रुक साहेब के मत में पहली बात सत्य है।

वेदान्त का विषय—वेदान्त सूत्रों में चार पाठ हैं, और प्रत्येक पाठ में चार अध्याय हैं। इसका प्रारम्भ ठीक मीमांसा के ढंग पर हुआ है। परन्तु मीमांसा में जहां धर्मों या कर्तव्यों का उल्लेख है वहां इसमें ब्रह्म या ईश्वर का वर्णन है। इसके उपरान्त सांख्य के इस सिद्धान्त का खण्डन किया गया है कि सृष्टि का मुख्य कारण प्रकृति है, और इसके उपरान्त उसने सचेतन ज्ञान मय जीव को आदि कारण कहा है। वही सृष्टि का भौतिक तथा उत्पादक कारण है।

दूसरे पाठ में भी कपिल के सांख्य–पातन्जल योग और कणाद के परमाणुवाद का खण्डन किया गया है। वेदान्त के मत में सृष्टिकर्ता ब्रह्म ही सृष्टि का कारण और फल है। कारण और फल का भेद और भिन्न-भिन्न फलों के होने से इन सब के एक्य का खण्डन नहीं होता। समुद्र एक है और वह अपने जल से पृथक् नहीं। फिर भी लहरें फेन, छींटें, बूंद इससे भिन्न हैं। २।१।५

जैसे दूध का रूपान्तर दही और पानी का बर्फ है। वैसे ही ब्रह्म के भिन्न रूप हैं। २।१।८

इसके उपरान्त सांख्य, वैशेषिक, बौद्ध, जैन, पाशुपति और पांचरात्र धर्मों के सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है।

आत्मा कार्यकर्ता है वह निष्कर्म नहीं, पर उसकी कर्मशीलता बाह्य है। जैसे कोई कारीगर औज़ार हाथ में लेकर परिश्रम करता है, फिर थक कर विश्राम लेता है, और आराम पाता है, वैसे ही आत्मा भी इन्द्रियों द्वारा दुःख सुख ग्रहण करता है। (२।३।१५) यह आत्मा उसी प्रकार परमात्मा का अंश है जिस प्रकार चिनगारी अग्नि का। (१।३।१७) जिस प्रकार सूर्य का प्रतिबिम्ब पानी में पड़ कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानी के साथ हिलता हुआ प्रतीत होता है--परन्तु वास्तव में उससे सर्य का कुछ भी सम्बन्ध नहीं और उसी सूर्य का प्रतिबिम्ब दूसरे जलों में पड़ता है उसी प्रकार जीवात्मा भिन्न २ शरीर में सुख दुःख पाता है और उसका परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

तीसरे पाठ में आत्मा के पुनर्जन्म होने तथा ज्ञान और मुक्ति प्राप्त करने और परमात्मा के गुणों का वर्णन है। आत्मा एक सूक्ष्म शरीर से घिरा रह कर एक रूप से दूसरे रूप में पुनर्जन्म लेता है। एक शरीर से अलग होकर वह अपने कार्यों का फल भोगता है। और एक नए शरीर में प्रवेश करके अपने पूर्व कर्मों के अनुसार फल पाता है। पापी नर्कों में कष्ट पाते हैं।

परमात्मा अगम्य है। और उसमें निवृति नहीं होती। जैसे साफ बिल्लौर किसी रंगीन फूल से रंगदार दिखाई देता है, पर वास्तव में स्वच्छ होता है—वह परमात्मा पवित्र इन्द्रिय; बुद्धि और विचार है।

वेदान्त का यह ब्रह्म--वर्णन उपनिषद् से साम्य रहता है।

इस पाठ के अन्तिम भाग में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का उल्लेख है। जो सब पापों को नष्ट करता है। और कर्म बन्धनों से छूट कर मुक्त हो जाता है। "४। १ १४"

वेदान्त दो और छोटी युक्तियों का भी वर्णन करता हैं। एक वह जिस में जीव ब्रह्म के निकट हो जाता है—पर उसमें लीन नहीं हो सकता। दूसरे जीवन मुक्ति–जिसे प्राप्त कर योगी अलौकिक कार्य कर सकता हैं। जैसा कि योग के विभूति पाद में वर्णित है।

इस प्रकार वेदान्त का ब्रह्म सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान् है। वह सृष्टि के अस्तित्व नित्यता और प्रलय का कारण है, वह इच्छा मात्र से सृष्टि की रचना करता और संहार भी करता है। शंकराचार्य–जो कुमारिल की मृत्यु समय उपस्थित थे–और जिन का ऊपर उल्लेख हो चुका है--वास्तव में ब्रह्म सूत्रों के एक मात्र प्रचारक थे। उन्होंने मीमांसा वर्णित कर्मकाण्ड से अधिक ईश्वर तत्व की विवेचना को प्राधान्य दिया–जैसा कि है। (७) वे कर्म जो फल की आकांक्षा से किए जाय आवागमन के चक्कर में मनुष्य को डाल देते हैं। (८) पाप के कारण मनुष्य पशु पक्षी औप जड़ योनियों में जाता है।

ये सारी शिक्षाऐं तो प्राचीन आचार्यों के लगभग हैं–परन्तु उनका एक सिद्धांत सबसे निराला है कि जगत मिथ्या है—इसकी यस्तुतः कोई सत्ता नहीं। एक परमात्मा ही सत रूप है शेष सब भ्रान्ति है। कर्म कर्ता, कर्म फलदाता तथा कर्म फल, उपास्य और उपासक ये सब अलग २ हैं। पर परमार्थ में न कोई बद्ध है न मुक्त न प्रलय, न उत्पत्ति, न साध्य न साधक, न मुमुक्षु न मुक्ति। वस्तुतः चैतनतत्व है और कोई वस्तु नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१५--दार्शनिक साहित्य

दर्शनों पर, मूल सूत्र दर्शनों के सिवा अन्य ग्रन्थ भी हैं जिन की प्रतिष्ठा मूल के समान है। पाठकों को जानने के लिए उनकी एक सूची यहां देते हैं—

सांख्य दर्शन

(१) कपिल सांख्य सूत्र।
(२) सांख्य सिद्धान्त–चरकान्तर्गत।
(३) सांख्य कारिकाएँ।
(४) सांख्य कारिकाएँ–गौड़पाद भाष्य।
(५) सांख्य तत्व कौमुदी–वाचस्पति मिश्र कृत।
६) सांख्य सूत्र।
(७) सांख्य सूत्र भाष्य।
(८) सांख्य सूत्र-विज्ञान भिक्षु कृत भाष्य, काशी।
(९) सांख्य सार ,,
(१०) सांख्य तत्वसमास।
(११) सांख्य तत्त्व विवेचन–सीमानन्द कृत।
(१२) सांख्य तत्त्व यथार्थ्य दीपिका--भावगणेश कृत।

योग दर्शन

(१) योग दर्शन ई० पू० १४७ सदी
(२) व्यास भाष्य चौथी शताब्दी
(३) व्यास भाष्य-वाचस्पति टीका सहित (तत्व वैशारदी)।
(४) विज्ञान भिक्षु भाष्य (योग वार्तिक)।
(५) भोज (दसवीं सदी) वृत्ति।
(६) नागेश (सातवीं सदी) वृत्ति अथवा छाया व्याख्या।

न्याय दर्शन

(१) न्याय सूत्र–अक्षपाद कृत।
(२) वात्स्यायन भाष्य।
(३) [इस पर] न्याय वार्तिक--उद्योत कर कृत।
(४) [इस पर] न्याय वार्तिक तात्पर्य टीका–वाचस्पति मिश्र कृत।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(५) [इस पर] तात्पर्य टीका परिशुद्धि–उदयन कृत ।
(६) [इस पर] न्याय निबन्ध प्रकाश–वर्धमान कृत ।
(७) [इस पर] वर्धमानेन्दु—पद्मनाभ कृत ।
(८) [इस पर] न्याय तात्पर्य मण्डन -मिश्र कृत ।
(९) सूत्रों पर विश्वनाथ वृत्ति ।
(१०) सूत्रों पर न्याय सूत्र विवरण राधा मोहन कृत ।
(११) जयन्त कृत न्याय मंजरी ।
(१२) कुसुमांजलि उदयन कृत ।
(१३) ,, पर प्रकाश नामक वर्धमान कृत टीका ।
(१४) ,, मकरंद नामक रुचिदत्त कृत टीका ।
(१५) आत्म तत्व विवेक–उदयन कृत ।
(१६) तत्व चिन्तामणि–गंगेश उपाध्याय कृत ।

वैशेषिक दर्शन

(१) वैशेषिक सूत्र
(२) ,, पर शंकर मिश्र कृत उपस्कार ।
(३) प्रशस्त पद भाष्य
(४) इस पर टीका ,, व्योमकेशाचार्य कृत व्योमवती ।
(५) ,, श्रीधराचार्य कृत न्यायकंदली ।
(६) ,, उदयन कृत किरणवती ।
(७) ,, श्रीवत्साचार्य कृत लीलावती ।
(८) ,, जगदीश भट्टाचार्य कृत भाष्य ।
(९) ,, शंकर मिश्र कृत कणाद रहस्य ।

मीमांसा

(१) मीमांसा सूत्र
(२) ,, पर भर्तृमित्र } अनुपलब्ध
(३) ,, भवदास
(४) मीमांसा सूत्र हरि } अनुपलब्ध
(५) ,, उपवर्ष
(६) ,, शावर भाष्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(७) शावर भाष्य पर वार्तिककार कृत टीका।

(८) ,, पर प्रभाकर कृत वृहती।

(९) ,, पर शीलकण्ठ मिश्रकृत ऋजुविमला।

(१०) शावर भाष्य पर कुमारिल का स्वतन्त्र व्याख्यान, श्लोक वार्तिक, तन्त्र वार्तिक और टुप टीका।

वेदान्त

(१) वेदान्त सूत्र (२) शांकर भाष्य

(३) रामानुज भाष्य (४) श्रीकण्ठ शैव भाष्य

(५) माधव भाष्य (६) बल्लभ भाष्य

(७) निम्बार्क भाष्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीसरा अध्याय

बुद्ध काल

ई० पू० ५५७ से ई० पू० ३२० तक—२३७ वर्ष

१—आर्ष काल की समाप्ति से गौतम बुद्ध तक

आर्ष काल की समाप्ति से गौतम बुद्ध के जन्म तक ४२४ वर्ष होते हैं। यही दार्शनिक काल है। अधिसीम कृष्ण के पुत्र निचक्षु के राज्य काल में हस्तिनापुर गंगा में बह गया। तब निचक्षु ने कौशाम्बी अपनी राजधानी बनाई। इसकी २६वीं पीढ़ी में शतानीक द्वितीय हुआ, जो गौतम बुद्ध का समकालीन था। इसी का पुत्र प्रसिद्ध राजा उदयन था।

कौशलपति दिवाकर अयोध्या में राज्य कर रहा था। परन्तु राम के बाद ही कौशल राज्य दो भागों में बंट चुका था। एक की राजधानी अयोध्या थी, दूसरे की श्रावस्ती। इस वंश का २२वाँ राजा प्रसेनजित् बुद्ध का समकालीन था। उसने बुद्ध से उपदेश लिया था।

मगध राज सेनजित् की १६वीं पीढ़ी में रिपुञ्जय राजा हुआ। यह वंश वार्हद्रथ प्रसिद्ध था। रिपुञ्जय के काल में इस वंश का अन्त हुआ। उस राजा के मन्त्री पुलिक ने राजा को मार कर अपने पुत्र प्रद्योत को मगध की गद्दी पर बैठाया। इस वंश के पाँच राजाओं ने १३८ वर्ष मगध पर राज्य किया। इसके बाद ३६० वर्ष शैशुनाभ वंश का मगध पर राज्य रहा। बुद्ध के काल में इसी वंश का राजा विम्बसार राज्य करता था। उसने अंग जय किया। वह प्रतापी राजा था।

एक ऐतिहासिक घटना—जिस समय वृहद्रथ वंश का अन्त हुआ, ठीक उसी काल में हैहय वंश के वीतिहोत्र कुल और अवन्ति कुल का भी अन्त हुआ।[१] यह बुद्ध जन्म से ३०० वर्ष पहिले की घटना है।

अवन्ति राजवंश—प्रबल प्रतापी सहस्त्रवाहु अर्जुन के वंश में दीर्घ काल तक अवन्ति और वीतिहोत्र राज्य रहे। बुद्ध जन्म से ३०० वर्ष पूर्व मगध के वृहद्रथ वंश की समाप्ति के साथ ही इस पुरातन वश का भी अन्त हुआ। बुद्ध के जन्म-काल में अवन्ति का राजा महासेन था। यह क्रोधी राजा था, इसलिए चण्ड महासेन के नाम से विख्यात हुआ।

१—वायु ९९। ३०९। मत्स्य २७२। १।

२—कादम्बरी पूर्वार्ध, अर्थशास्त्र। कथा सरित्सागर।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वत्सराज उदयन–नाद समुद्र—उदयन संस्कृत साहित्य का सुविख्यात पुरुष है। इसका कीर्ति-गान भास, बाण, कालीदास, गुणाढ्य, और विष्णु गुप्त कौटिल्य ने किया है।

उदयन का राज्याभिषेक किशोरावस्था ही में हुआ। उसके राज्य सम्हालते ही जब कि वत्स मन्त्री मण्डल स्वर्गगत महाराज शतानीक की और्ध्वदैहिक क्रिया में संलग्न और शोक संतप्त थे—पाञ्चाल आरुणि ने वत्स पर आक्रमण किया और वत्स का कुछ प्रदेश हड़प लिया।

उदयन का मन्त्री मण्डल बहुत उत्कृष्ट था। उसका महामात्य यौगन्धरायण राजनीति का धुरन्धर विद्वान् था। हर्षरक्षित, वर्षरक्षित, और ऋषभ नामक मन्त्री भी थे। प्रसिद्ध रुमण्वान् सेनापति था। प्रसिद्ध कात्यायन भी उदयन का सेनापति था।

राजा को हाथी पकड़ने का बड़ा शौक था। वह वीणा बजाने में अद्वितीय था। उसकी वीणा का नाम घोषवती था। एक बार जब वह जमुना कूल पर नागवन में सेनापति कात्यायन के साथ हाथी पकड़ने गया था, उसे उज्जयनी के चण्ड महासेन के आमात्य भरत रोहक और शालङ्कायन ने बन्दी कर लिया, और अवन्ती ले आए। वहाँ उसे राजकन्या वासवदत्ता का वीणा–शिक्षक बनाया गया। उदयन और वासवदत्ता में प्रेम हो गया और अवसर पाकर वह उसे ले भागा। कौशाम्बी जाकर उसने उससे विवाह कर लिया। इसके कुछ काल बाद ही उसने मगध राजकन्या पद्मावती से विवाह किया। इसके बाद मगध और अवन्ती राज्यों से सम्बन्ध स्थापित हो गया।

२—बौद्ध धर्म का उदय

नया दृष्टिकोण– ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में एक बड़े सुधार का सूत्रपात हुआ। जिसका दृष्टिकोण सर्वथा नया था। इस काल के आर्यों का प्राचीन वैदिक धर्म, जिसे आर्य लोग तीन सहस्त्रादियों से मानते चले आए थे—बहुत विकृत हो चला था। अब वह विधानों का धर्म हो गया था। ऋग्वेद के देवता–इन्द्र–उषस् अब केवल नाम के देवता रह गए थे। प्राचीन आर्य जो अपने देवताओं को श्रद्धा से सोमरस–दुग्ध, अन्न, मांस चढ़ाते थे उनके अब निरर्थक और कठिन विधान बन गए थे। ऋषियों के स्थान में अब ब्राह्मणों की एक कट्टर और शक्तिशाली जाति बन गई थी, और वह राजाओं, महाजनों और सर्वसाधारण से बड़े-बड़े आडम्बर पूर्ण यज्ञों, धार्मिक विधानों और पूजा पाठ के कृत्यों के कराने का एकाधिकार रखते थे। सर्वसाधारण के मन में यह विश्वास जमाया जाता था कि इन धार्मिक विधानों को करने और ब्राह्मणों को दक्षिणा देने से पुण्य होता है, तथा उससे स्वर्ग प्राप्ति होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्रान्ति का आरम्भ—सब से प्रथम ई० पू० ग्यारहवीं शताब्दी में ही कुछ विचारशील क्षत्रियों ने इन निरर्थक विधानों पर अविश्वास करके आत्मा की अमरता की खोज आरम्भ कर दी थी। उपनिषद् के विचारकों ने ये नए विचार उपस्थित किए थे कि सब जीवित–अजीवित वस्तुएँ एक ही सर्वकामी ईश्वर से उत्पन्न हुई हैं। उन्होंने मृत्यु और पुनर्जन्म के सम्बन्ध में भी विचार किया था। उपनिषदों के ये विचार ही आगे हिन्दु दर्शन-शास्त्रों के मुख्य सिद्धान्त हो गए। परन्तु इन गूढ़ विचारों और उनसे भी गूढ़ दार्शनिक विचारों से सर्वसाधारण को कोई लाभ नहीं हुआ। कुछ उच्च कोटि के विचारक ही उन्हें समझ सकते थे। आर्य गृहस्थों का समाज तो उन्हीं विधानों को करता था, जिन्हें वह समझता नहीं था। जो ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखे थे, तथा जिनके दार्शनिक रूप सूत्र ग्रन्थों में थे। उनके जीवन और गृहस्थ धर्म के आदेश भी सब सूत्रों में लिखे थे। उस काल की सारी विद्या ही सूत्रों में लिखी गई। लोग उन्हें समझते नहीं थे। उन पर आचरण करते थे। उन पर आचरण करना धर्म और पुण्य का काम समझते थे। सामाजिक सदाचार और विवेक का समाज से लोप हो गया था। और जातीय भेद-भाव बहुत बढ़ गए थे। ब्राह्मणों और क्षत्रियों की शक्तियाँ अपार थीं। शूद्रों के लिए कठोर नियम बन गए थे। ब्राह्मण लालची और स्वार्थी बन गए थे। शूद्रों के लिए न शिक्षा का कोई नियम था, न धार्मिक शिक्षा और आचार की कोई शिक्षा थी। सामाजिक सत्कार तो उनका कोई था ही नहीं। वे लोग समाज में सर्वथा नीच और घृणा के पात्र समझे जाते थे। वे अपनी स्थिति में असन्तुष्ट थे, और परिवर्तन चाहते थे। समाज विकसित हो रहा था, लोग भिन्न-भिन्न व्यवसाय करने लगे थे, तथा भू सम्पत्ति के स्वामी बन गए थे। ज्यों-ज्यों उनकी यह सामाजिक दशा उन्नत होती जाती थी, उनके असन्तोष बढ़ते जाते थे। पर धर्म ग्रन्थों में जो कानून के भी ग्रन्थ थे, उनके बन्धन वैसे ही सख्त और अन्याय पूर्ण थे। इस समय एक ऐसे सुधारक की आवश्यकता थी, जो उत्साही–खोजी–साहसी और जन-जीवन से पूरी सहानुभूति रखने वाला हो। उसका एक नया दृष्टिकोण हो, जो विश्व को समानता और विचार-स्वातन्त्र्य का सन्देश दे, मनुष्य की दासता का अन्त करे। ऐसा ही एक महापुरुष शाक्य वंश में उत्पन्न हुआ। वह गौतम बुद्ध था।

शाक्य वंश और गौतम का जन्म—शाक्यों का गण संघ कौशल राज्य के अन्तर्गत था। शाक्यों की संख्या ४० लाख थी। शुद्धोदन उनके नेता और महाराज प्रमुख थे। उनकी राजधानी कपिलवस्तु नगरी थी। यह गणराज्य नैपाल की तराई में पूरब से पच्छिम लगभग पचास मील तक और उत्तर से दक्षिण तीस–चालीस मील तक फैला हुआ था। महाराज शुद्धोदन की ४५ वर्ष की आयु में रानी मायादेवी के गर्भ से सिद्धार्थ गौतम का जन्म लुम्बनी वन में माघ पूर्णिमा के दिन ५६३ ई० पू० में हुआ। यह शुद्धोदन का इकलौता पुत्र था। १८ वर्ष की आयु में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काली गण राज्य के प्रमुख की पुत्री यशोधरा से हुआ। विवाह से दस वर्ष बाद पुत्र उत्पन्न होने पर गौतम ने गृह त्याग किया उसने ६ वर्ष कठिन तप किया। जिस का उस काल में बहुत प्रचलन था। परन्तु इस से उसे कुछ भी शान्ति न मिली। अन्त में गया में एक वट वृक्ष के नीचे बैठ कर उसने अपने धर्म के नवीन सिद्धान्त स्थिर किए। और उनका प्रचार आरम्भ किया। वह निरन्तर २५ वर्ष तक गंगा की घाटियों में घूमता रहा। और मनुष्य को परोपकार और पवित्र जीवन के उपदेश देता रहा।

उसकी धर्म भावना—उसने तत्कालीन विद्या और धर्म को अच्छी तरह समझ लिया था। उसकी आत्मा धार्मिक और सस्कृत थी। उसने मनुष्यों के बीच के अधार्मिक भेद भाव को नहीं स्वीकार किया। नीच और दुःखी मनुष्यों के प्रति उस का हृदय दया और सहानुभूति से परिपूर्ण रहा। उसे न तो विधानों और आडम्बरों से लदा हुआ तत्कालीन हिन्दुओं का गृहस्थ धर्म ही रुचा न सन्यासियों की संसार से उदासीन भावना, न तपस्या। उसकी दृष्टि में पवित्र जीवन का सौन्दर्य, दयायुक्त जीवन और पवित्र आचार ही था। सारे संसार के साथ उसकी सहानुभूति थी। वह दीन और नीच लोगों को भलाई करने. क्षोभ और बुराई को दूर करने, सबको प्रेम करने, और शान्ति-पूर्वक अपने दुःखों को दूर करने का मार्ग दिखाता रहा।

उसकी दृष्टि में ब्राह्मण और शूद्र समान थे। और पवित्र जीवन के द्वारा निर्वाण प्राप्त कर सकते थे। उसने सब छोटे-बड़ों को अपने इस धर्म में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया। और कुछ ही शताब्दियों में उसका बौद्ध धर्म लगभग समूचे एशिया का मुख्य धर्म बन गया। जो संसार का सब से पहला विश्व-धर्म था।

सबसे पहला विवश्व-धर्म—गौतम बुद्ध ने संसार में सबसे पहिला विश्व-धर्म स्थापित किया, जो मनुष्य मात्र के लिए था। उसने लोगों को पवित्र जीवन का मध्यम मार्ग बताया। सब प्रकार के ढोंग और अन्ध विश्वासों को छोड़कर बुद्धि-विवेक, दया और प्रेम के आधार पर सरल और पवित्र जीवन व्यतीत करने का उस ने उपदेश दिया। वह पण्डितों की भाषा छोड़ कर सर्वसाधारण की भाषा में उपदेश देता था। इस लिए शिक्षित, धनी और गरीब सब के लिए उसकी वाणी तीर्थ बन गई।

जीवन—पहले उसके पाँच शिष्य बने फिर वे साठ हो गए। इन शिष्यों का संघ बना कर उसने उन्हें घूम फिर कर लोगों को सच्चे धर्म का आदेश दिया। वह स्वयं ही प्रचार करता रहा। भिक्षु संघ के अनुशासन के उसने कड़े नियम बनाए। बड़े बड़े विद्वान राजा और करोड़ पति सेठ साहूकार उसके शिष्य बने। राजगृह का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्राट बिम्बसार और कोशल का प्रसेनजित उसके शिष्य बने। तीन बड़े काश्यप, सारिपुत्त और मोग्गलायन जैसे महापडितों ने उसके चरणों में शीश झुकाया। श्रावस्ती, कपिलवस्तु वैशाली और साकेत के श्रीमन्तों ने कोटि कोटि स्वर्ण खर्च कर उसके लिए बिहार बनवाए। अन्त में गण्डक नदी के पार मल्लों के कुशीनार नगर में धर्म चर्चा करते हुए ईसा पूर्व ४७७ में ८० वर्ष की आयु में शाल बन में उसने देह त्यागा।

कुशीनारा के मल्लों ने उसका दाह संस्कार किया। और उसकी अस्थि भस्म साठ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों को बांट दी गई। कुछ ही शताब्दियों में चीन, श्याम, तिब्बत, मंगोलिया, जापान, कोरिया, बर्मा, सिंघल और मध्य एशिया भर में बुद्ध धर्म का साम्राज्य स्थापित हो गया। साँची और सारनाथ के स्तूप बने। एजेन्टा और बाघ की गुफाओं को चित्रित किया गया। लुंबिनी, गया, समपत्तन, और कुशीनगर प्रसिद्ध तीर्थ बन गए।

गौतम की मृत्यु के बाद—गौतम की मृत्यु के बाद भी उसके उपदेश और उस का पवित्र स्मरण स्थिर रहा। और गौतम की शिक्षाओं और सिद्धान्तों का एक नवीन धर्म का रूप हो गया। जिसका भारत ही नहीं—समस्त विश्व पर भारी प्रभाव पड़ा।

३--बौद्ध साहित्य

लुप्त ग्रन्थों का उद्धार—अब से सौ वर्ष पूर्व सभ्य संसार में बुद्ध और बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में बहुत कम लोग बहुत कम जानते थे। बौद्ध ग्रन्थों के विषय में तो किसी को कुछ पता ही न था। डा० मार्शमेन ने १८२४ ई० में कहा था कि बुद्ध की पूजा से सम्भवतः मिस्र के एपिस से कुछ सम्बन्ध है। इसके बाद श्री हडसन, जो सन् १८३३ से १८४३ तक नैपाल के अंग्रेजी रेज़ीडेन्ट रहे--उन्होंने पहिले पहिल कुछ हस्त लिखित ग्रन्थों का पता लगाया और उन्हें एकत्रित किया। उन्होंने बंगाल की एसियाटिक सोसाइटी को ८५ बस्ते, लण्डन की रायल एसियाटिक सोसाइटी को ८५ बस्ते। इन्डिया आफिस लाइब्रेरी को ३० बस्ते, आक्सबोर्ड के बोडालियन पुस्तकालय को ७ बस्ते और पैरिस की सोसाइटी एसियाटिक और श्री बर्नफ को १७४ बस्ते भेजे। साथ ही उन्हों ने इन बस्तों और उनके साहित्य का एक विवरण भी लिखा। श्री बर्नफ ने इन बस्तों पर अधिक परिश्रम किया। उनका अध्ययन करने के बाद उन्होंने एक ग्रन्थ स० १८४४ में प्रकाशित किया। जिसका नाम--इन्ट्रोडक्शन टू दी हिस्ट्री आफ इन्डियन बुधिज्म था। इस पुस्तक में पहिले पहिल बुद्ध धर्म का वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप में वर्णन दिया गया था। श्री बर्नफ के इस ग्रन्थ ने सारे योरोप का ध्यान बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित किया। और योरोप के विविध देशों के विद्वान इस की खोज में लग गए। इसी समय तिब्बत में हंगेरियन पण्डित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलेक्जेन्डर सोमा कारोसी ने बहुत सी सामग्री का पता लगाया। जिस का उल्लेख एशियाटिक रिसर्चेज के बीसवें भाग में दर्ज है। इसके बाद तिब्बत से जानकारी प्राप्त करने के लिए बहुत विद्वानों ने प्रयास किया। इसके बाद रेवरेन्ड सैम्युएलबील ने चीन से बौद्ध ग्रन्थों का एक संग्रह प्राप्त किया। यह संग्रह 'दी सीक्रेट टीचिंग्स-आफ दी-श्री ट्रेजर्स' के नाम से लंडन से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में वे दो हजार से अधिक ग्रन्थ थे जो समय समय पर शताब्दियों तक भारत से चीन जाते रहे थे। और उन पुस्तकों पर चीन के बौद्ध सन्तों ने टिप्पणियां भी की थीं। ई० पू० २४२ में सम्राट अशोक के काल में बौद्ध धर्म और धर्म पुस्तकें लङ्का पहुँची थीं। जो आज तक अपनी प्राचीन पाली भाषा में—प्राय: उसी रूप में—जैसी कि वे अब से दो हजार वर्ष पूर्व थी, विद्यमान थी। इन पुस्तकों का मनन सर्व श्री टर्नर—फासवाल, ओडेन वर्ग, चिल्डसे, स्पेन्स, हार्डी राइज़, डेविस; मेक्स मूलर, वेवर आदि पाश्चात्य पण्डितों ने किया। जिस से वह अमूल्य साहित्य भण्डार प्रकाश में आगया। वर्मा से भी श्री विगेण्डैण्ट ने अनेक पुस्तकें प्राप्त कीं, तथा बुद्ध का एक जीवन चरित लिखा। जो स० १८६८ में छपा। यह एक चमत्कारिक और आश्चर्य जनक बात है—कि भारत के आस—पास के सब देशों में बौद्ध धर्म के अमूल्य ग्रन्थ मिले। परन्तु भारत में—जहां यह धर्म लगभग डेढ़ हजार वर्षों तक जीवित रहा, कोई साहित्य, कोई ग्रन्थ, कोई स्मारक, कोई मठ नहीं मिला। भारत से इस प्रकार बौद्ध संस्कृति का लोप हुआ।

बौद्ध साहित्य का महत्त्व—इस साहित्य की उपलब्धि और मनन से सम्य संसार के सामने यह प्रकट हो गया कि इस धर्म ने भारत में, और भारत से बाहर, भिन्न भिन्न कालों में जीवन—सभ्यता और संस्कृति की भिन्न २ अवस्थाओं ने क्या क्या उन्नति की। यद्यपि भारत से बाहर के देशों चीन, तिब्बत, वर्मा और अन्य देशों में बौद्ध धर्म की जो उन्नति हुई—इस से भारत के इतिहास का कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु इसका एक अति महत्त्व—पूर्ण प्रभाव यह है कि बौद्ध धर्म के माध्यम से एशिया की सांस्कृतिक एकता स्थापित हो गई। और एक प्रकार से भारत एशिया के बौद्ध प्रभावित देशों का गुरू तथा तीर्थ बन गया।

उत्तरी बौद्ध साहित्य और दक्षिणी बौद्ध साहित्य—नैपाल, तिब्बत, चीन, और जापान में जिस बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ, वह उत्तरी बौद्ध धर्म था। कनिष्क ने इसका प्रचार किया था। परन्तु लंका, वर्मा में दक्षिणी बौद्ध धर्म प्रसरित हुआ जो अशोक द्वारा प्रसरित हुआ। उत्तरी बौद्ध धर्म ईसा की कुछ शताब्दियों बाद प्रसरित हुआ था। ललित विस्तर उत्तरी बौद्ध सम्प्रदाय का प्रसिद्ध काव्य है, जिसमें अलंकारिक ढंग पर बुद्ध चरित्र वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ सम्भवत: ईसा की तीसरी व चौथी शताब्दी में लिखा गया था। जब बुद्ध की मृत्यु को लगभग ८, ९ शताब्दियां बीत चुकी थीं। इस समय तक संसार के बौद्धों की संख्या ५० करोड़ तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहुँच चुकी थीं, जो संसार की सारी आबादी की आधी से भी अधिक थी। चीन में बौद्ध धर्म का प्रसार ईसा की प्रथम शताब्दी में हुआ, पर राजधर्म चौथी शताब्दी के बाद हुआ। ३७२ ई० में चीन से बौद्ध धर्म कोरिया में गया, वहां से जापान में कोनान फारमूसा, मंगोलिया में चौथी पाँचवीं शताब्दी में धर्म पहुँचा। काबुल, समरकन्द ताशकन्द, बल्ख बुखारा तथा अन्य स्थानों में फैला। जापान में बौद्ध धर्म का प्रचार ईसा की पांचवीं शताब्दी में और तिब्बत में सातवीं शताब्दी में हुआ। तिब्बत में जिस धर्म का प्रवेश हुआ, वह बज्रयान था जो प्राचीन बौद्ध धर्म का वह एक विकृत रूप था। नैपाल में बौद्ध धर्म पहिले ही फैल गया था पर छटी शताब्दी में वह राजधर्म बन गया। ई० स० ६३२ में तिब्बत के बौद्ध राजा ने भारत से धर्म ग्रन्थ मंगवाए। दक्षिण बौद्धों की पुस्तकें ही त्रिपिटक के नाम से विख्यात हैं। ये पिटक जो लंका में प्राप्त हुए थे, वास्तव में वही नियम हैं। जो पाटली पुत्र की सभा में ईसा के लगभग २४२ वर्ष पहिले निश्चित हुए थे।

बौद्धों की तीन सभाऐं—ई० पू० ४७७ में बुद्ध की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु के पीछे मगध की राजधानी राजगृह में ५०० भिक्षुओं की एक सभा हुई। जिसमें सबने मिलकर पवित्र निमयों को स्मरण रखने को गाया। इसके बाद मगध सम्राट् अजात शत्रु ने उन्हें लिपि वद्ध किया। यही लिपिवद्ध साहित्य त्रिपिटक कहाता है।

दूसरी सभा इसके सौ वर्ष बाद वैशाली में ई० पू० ३७७ में हुई। इसका उद्देश्य उन दस प्रश्नों पर विवाद और निर्णय करना था, जिन पर मत भेद हो गया था। इसके १३५ वर्ष बाद मगध सम्राट अशोक ने ई० पू० २४२ में तीसरी सभा बुलाई। यह सभा पाटलीपुत्र में बुलाई गई थी और इसमें पिटकों का अन्तिम बार संशोधन किया गया था।

अशोक का धर्म ग्रन्थ और पिटक साहित्य—अशोक बड़ा उत्साही-धर्मात्मा और शक्तिशाली बौद्ध था। उसने विदेशों में सीरिया, मेसीडन और मिश्र तक धर्म प्रचारक भेजे थे। उसने ई० पू० २४२ में अपने पुत्र महेन्द्र को लंका के राजा तिस्स के पास भेजा उसके साथ और भी भिक्षु थे। उनके साथ वे त्रिपिटक भी गए जो पाटलीपुत्र की सभा में गाए गए थे। लंका के राजा तिस्स ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। इस प्रकार ई० पू० तीसरी शताब्दी में लंका ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया था। इसके १५० वर्ष बाद ये पिटक नियमानुसार वहां लिपिवद्ध किए गए। इससे यह प्रकट है कि लंका के पाली पिटक मगध के सबसे प्रामाणिक बौद्ध धर्म ग्रन्थ है। ये पिटक ई० पू० २४२ से अधिक पहिले के हैं। पाटलीपुत्र की सभा में वे सब ग्रन्थ निकाल दिए गए थे जो प्रामाणिक नहीं थे। विनयपिटक के मुख्य भाग तो वैशाली की सभा के पहिले अर्थात् ई० पू० ३७७ से भी बहुत पहिले के हैं। क्योंकि उनमें दश प्रश्नों के विवाद का कोई उल्लेख नहीं है। इस प्रकार इन पिटकों के साहित्य से हमें गौतम बुद्ध के जीवन काल से लेकर उसके पीछे की दो तीन शताब्दियों का गंगा की घाटी के हिन्दुओं के जीवन संस्कृति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और राज्य व्यवस्थाओं का सही वृत्तान्त विदित होता है। साथ ही उनसे बुद्ध के जीवन कार्य और उसकी शिक्षाओं का सर्वाधिक प्रामाणिक विवरण हमें प्राप्त होता है।

४—त्रिपिटक

प्राचीन वैदिक साहित्य में तीन संहिता प्रसिद्ध थी। उसी प्रकार बौद्ध धर्म साहित्य में तीन पिटक प्रसिद्ध हुए। ये त्रिपिटक कहाए। पिटक का अर्थ पिटारा या बस्ता है। उस काल में लिखित साहित्य पिटारों में रखा जाता था, इसी से इस साहित्य का नाम त्रिपिटक पड़ा। त्रिपिटक बौद्ध धर्म का सबसे प्राचीन साहित्य है। ये त्रिपिटक निम्नलिखित हैं:—

१—विनय-पिटक
२—सुत्त पिटक
३—अभिधम्म पिटक

इन तीनों पिटकों के अन्तर्गत अनेक छोटे २ ग्रन्थ हैं।

विनय-पिटक—इसमें भिक्षुओं के आचार सम्बन्धी नियम लिखे हैं। विनय पिटक के तीन खण्ड हैं—(१) सुत्त विभंग, (२) खन्धक, (३) परिवार। सुत्त विभंग के दो भाग हैं—भिक्खु विभंग और भिक्खुनी विभंग। इनमें भिक्षु और भिक्षुणियों द्वारा पालने योग्य नियमों का पूरा २ विवरण है। २२७ ऐसे अपराध गिनाए गए हैं, जिनके करने से भिक्षु--भिक्षुणी का पतन हो जाता है। प्रत्येक पूर्णिमा के दिन इन अपराधों का पाठ भिक्खुओं के संघ के सम्मुख किया जाता था। यदि कोई भिक्षु या भिक्षुणी कोई अपराध करती थी—तो उसे उसका प्रायःश्चित करना पड़ता था। सुत्त विभंग में इन प्रायश्चितों, अपराधों और भिक्षुओं के पालनीय नियमों का वर्णन है।

खन्धक में भी दो ग्रन्थ हैं—महावग्ग और चुल्लवग्ग। इसमें भिक्षु संघ में सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक बात का वर्णन है। किस समय कौन व्रत रखे जाय। चतुर्मास कैसे व्यतीत किया जाय। भिक्षु भोजन और वस्त्रों के सम्बन्ध में किन २ नियमों का पालन करें, शयन कैसे करें। संघ में किसी प्रश्न को कैसे पेश करें आदि सब बातों का सूक्ष्म वर्णन है। वर्णन शैली कथात्मक है। बुद्ध ने अपने जीवन काल में भिक्षुओं के लिए ये नियम और धर्म बनाए थे। इन अंशों का एतिहासिक मूल्य बहुत हैं क्यों इनमें एक और बुद्ध की तात्कालिक चर्चा का भी पता लगता है। और उस काल के राजनैतिक और सामाजिक वातावरण पर भी प्रकाश पड़ता है। (परिवार) में विनय पिटक का संक्षिप्त सार प्रश्नोत्तर के रूप में बताया गया है।

सुत्त पिटक—सुत्त पिटक के अन्तर्गत ५ निकाय हैं—(१) दीर्घ निकाय, (२) मज्झिम निकाय, (३) अंगुत्तर निकाय, (४) संयुक्त निकाय, (५) खुद्दक निकाय। दीर्घ निकाय के तीन भाग हैं और उनमें कुल मिला कर ३४ सुत्त है, जिनमें अधिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रसिद्ध यहाँ परि निव्वाण सुत्त है। दीर्घ निकाय के हर सुत्त में बुद्ध का संवाद संग्रहीत है। इन संवादों में सभी विषयों पर विचार किया गया है। यज्ञ–जाति–वर्ण पुनर्जन्म निर्वाण आदि महत्वपूर्ण विषयों पर बुद्ध के विचार व्यक्त किए गए हैं।

मज्झिम निकाय में १२५ सुत्त हैं। ये सुत्त दीर्घ निकाय से छोटे हैं। उनके प्रतिपाद्य उपरोक्त ही है। अंगुत्तर निकाय में २३०० सुत्त है, जो ११ खण्डों में विभक्त हैं। संयुक्त निकाय में ५६ सुत्त है, जिन्हें ५ वग्गों में विभाजित किया गया है। एक विषय के सुत्त एक वग्ग में रखे गए हैं। खुद्दक निकाय में छोटी छोटी ५ पुस्तकें हैं। जो अपने विषय में पूर्ण हैं। ये सुत्त आकार के छोटे हैं। इनमें धम्मपद और सुत्त निकाय अधिक प्रसिद्ध हैं। जातक का महत्व ऐतिहासिक हैं। इसमें ५५० के लगभग कथाऐं हैं। जो बुद्ध के पूर्व जन्म की कहीं गई हैं।

अभिधम्म पिटक–इसमें बौद्ध धर्म का दार्शनिक विवेचन तथा अध्यात्म चिन्तन है। इनमें सात ग्रन्थ हैं:––१–धर्म संगति, २–विभंग, ३–धातु कथा, ४–पुग्गल पञ्जति, ५–कथा वत्थु, ६–यमक' ७–पटठान। सुत्त पिटक में जो नियम प्रतिपादित किए गए है––वही विषय यहाँ कुछ अधिक दार्शनिक गम्भीरता से वर्णित हुए हैं। अभिधम्म पिटक के सात ग्रन्थों में महत्वपूर्ण कथा वत्थु है। इसमें आत्मा––निर्वाण और अर्हत पद की विषय व्याख्या की गई है।

त्रिपिटक संगठन––त्रिपिटक ग्रन्थों का यह संगठन, सम्पादन और लिपिबद्ध किया जाना प्रथम बार बुद्ध की मृत्यु के बाद राजगृह की सभा में अजात शत्रु के काल में हुआ, इसके बाद लंका में उनके कुछ भाग तो बुद्ध से सैकड़ों वर्ष बाद जोड़े गए हैं। कथा वत्थु अशोक के काल में उनके गुरु मोग्गलि पुत्र तिष्य ने लिखा था। परन्तु त्रिपटक का अधिकांश अंग बुद्ध की मृत्यु के बाद एक शताब्दी के प्रथम ही कलम बन्द हो चुका था। सारा त्रिपिटक साहित्य पाली भाषा में है। और उसकी शैली ऐसी है कि मुख्य २ बातें बुद्ध के ही मुंह से कहाई है।

५––बुद्ध की शिक्षाएँ

बुद्ध के विचार––बौद्ध धर्म का सार आत्मोन्नति और आत्मनिरोध है। इस धर्म में सिद्धान्त और विश्वास अप्रधान अंग हैं। जिस क्षण बोधि वृक्ष के नीचे बैठे बुद्ध के हृदय में बुद्धतत्त्व उदय हुआ तब जो मुख्य विचार उसके हृदय में उठे वह क्षोभ और कामनाओं से रहित पवित्र जीवन निर्वाह करने से मनुष्यों के दुःख को दूर करने के सम्बन्ध में थे। अपने जीवन के दीर्घ जीवन में उसने इन्हीं विचारों की शिक्षा मनुष्यों को दी।

चार सत्य––उसने चार सत्य और आठ मार्गों का उपदेश दिया। वे ये ही दो सिद्धान्त बौद्ध धर्म के सार हैं। उसने कहा––

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"हे भिक्षुओ, यह दुःख का उत्तम सत्य है। जन्म दुःख है, नाश दुःख है, शोक दुःख है, मृत्यु दुःख है। जिन वस्तुओं से हम घृणा करते हैं, उनकी उपस्थिति दुःख है, जिनकी हम कामना करते हैं उनका न मिलना दुःख है। सारांश, जीवन की कामनाओं में लिप्त रहना दुःख है।

"हे भिक्षुओ, दुःख के कारण का उत्तम सत्य यह है—लालसा पुनर्जन्म का कारण है। लालसा के पूर्ण निरोध से दुःख नष्ट होता है। यह निरोध किसी कामना की अनुपस्थिति से, लालसा को छोड़ देने से, लालसा के बिना काम करने से, उससे मुक्ति पाने से और कामना का नाश करने से होता है।"

आठ मार्ग—पवित्र आठ मार्ग ये हैं—

१—सत्य विश्वास	२—सत्य कामना
३—सत्य वाक्य	४—सत्य व्यवहार
५—जीव निर्वाह के सत्य उपाय	६—सत्य उद्योग
७—सत्य विचार	८—सत्यध्यान[1]

यह बुद्ध की शिक्षा का सारांश है। इसका अभिप्राय यह है कि जीवन और उसके सुखों की लालसा दुःख का कारण है। उस लालसा के मर जाने से दुःख का अन्त हो जाता है, और पवित्र जीवन से लालसा मर जाती है। इन आठ विधियों से पवित्र जीवन प्राप्त होता है।

विचारधारा—गौतम मन की पाप रहित शान्त अवस्था को निर्वाण कहता है। गौतम आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानता। परन्तु वह हिन्दुओं के पुनर्जन्म के सिद्धान्त को इस रूप में स्वीकार करता है कि मनुष्य के कर्म का नाश नहीं होता, मनुष्य के मरने पर मृत मनुष्य के वर्गों के अनुसार एक नए मनुष्य की उत्पत्ति होती है। सब बौद्ध ग्रन्थकार मृत्यु के बाद जन्म लेने का उदाहरण एक दिए की लौ से देते हैं—जैसे एक दीपक की लौ से दूसरा दीपक जलाया जाता है। बुद्ध अपने आत्म-निग्रह की पवित्रता को मृत्यु के बाद मिलने वाली सुख लालसा के द्वारा नष्ट नहीं करता। वह कहता है, मृत्यु के उपरान्त ज्ञान नहीं रहेगा, पर पुण्य रहेगा और उससे प्राणियों के दुःख दूर होंगे।[2]

गौतम हिन्दु देवताओं को भी मानता है, परन्तु पवित्र जीवन को उनसे ऊपर स्थान देता है। वह जाति वर्ण नहीं मानता, वह गुणों का सत्कार करता है। उसने कहा—

"हे भिक्षुओ, जिस प्रकार बड़ी-बड़ी नदियाँ समुद्र में गिर कर अपना नाम

१—महावग्ग १।६।

२—वासेत्थु सुत्त।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्याग देती हैं, उसी भांति भिक्षु हो जाने पर उनमें वर्ण भेद नहीं रहता। धार्मिक जीवन से सब ऊँच-नीच समान हो जाते हैं।"

इस महागुरु के उपदेश से लाखों मनुष्यों ने ऊँच-नीच का भेद भाव छोड़ दिया और तीन शताब्दियों में ही उसका धर्म भारत का प्रधान धर्म हो गया।

बुद्ध की धार्मिक आज्ञाएँ—

"गृहस्थ को किसी जीव को नहीं मारना-मरवाना चाहिए, दूसरे मारें तो उसकी सराहना नही करना चाहिए। सजीवों के मारने का उसे विरोध करना चाहिए।"

"उन्हें कहीं से भी कोई ऐसी वस्तु न लेनी चाहिए जो उनकी नहीं है। या उनको नहीं दी गई हो। ऐसी वस्तु उन्हें दूसरों को भी न लेने देनी चाहिए। न ऐसा करने वालों की प्रशंसा करनी चाहिए। उन्हें सब प्रकार चोरी का त्याग करना चाहिए।"

"उन्हें जलते हुए अंगारे की भांति व्यभिचार का त्याग करना चाहिए।"

"उन्हें झूठ नहीं बोलना चाहिए, न दूसरों से बुलवाना चाहिए। जो झूठ बोलें उनकी सराहना भी न करनी चाहिए।"

"उन्हें कोई नशे की वस्तु न सेवन करनी चाहिए, न किसी को नशा पिलाना चाहिए। पीने वालों की सराहना भी नहीं करनी चाहिए।"[1]

तीन नियम इन पाँच आज्ञाओं के अतिरिक्त और हैं, जो ये हैं—

(१) रात्रि को भोजन नहीं करना। (२) गन्ध मद्य नहीं सेवन करना। (३) भूमि पर सोना चाहिए।

ये आठ शील हैं, जो गृहस्थों के पालन करने योग्य हैं।

वह मनुष्यों से कहता है—

"घृणा कभी घृणा से बंद नहीं होती। घृणा प्रीति से बंद होती है, यही इसका स्वभाव है।"

"क्रोध को प्रीति से जीतना चाहिए; बुराई को भलाई से विजय करना चाहिए। लालच को उदारता से, और झूठ को सत्य से जीतना चाहिए।"

ये महान् शिक्षाएँ हैं जो मनुष्य को ऊचे से ऊंचे स्तर पर पहुँचाती हैं।

६—बुद्ध के मूल सिद्धान्त

बुद्ध के मूल सिद्धान्त चार हैं—तीन नकारात्मक और एक स्वीकारात्मक।

१—सुत्तनिपात् धम्म सुत्त।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तीन नकारात्मक सिद्धान्त—

१–ईश्वर नहीं है।

२–आत्मा नित्य नहीं है।

३–कोई ग्रन्थ अपौरुषेय या स्वतः प्रमाण नहीं है।

एक स्वीकारात्मक सिद्धान्त—

१–जीवन प्रवाह इसी शरीर तक परिमित नहीं है।

ईश्वर नहीं है—यदि ईश्वर है तो मनुष्य अपना मालिक नहीं हो सकता। ईश्वर यदि जगत का उपादान कारण है, जैसे घड़े की मिट्टी—तो संसार में भला बुरा जो हो रहा है वह सब ईश्वर में ही है—यदि यह माना जाय तो ईश्वर दयालु नहीं क्रूर है। क्योंकि संसार में दुःख ही अधिक हैं। फिर वह निराकार कैसे है। यदि निमित्त कारण है, जैसे—कुम्हार घड़े को बनाता है तो उसका उपादान क्या है? यदि बिना उपादान जगत को बनाता है तो अभाव से भाव की उत्पत्ति माननी होगी। तथा कार्य–कारण का विरोध होगा। यदि कहो—कि जगत का कारण होना चाहिए, तो ईश्वर का भी होना चाहिए। इस के अतिरिक्त कर्ता धर्ता ईश्वर है, तो मनुष्य काहे को सुख दुःख भोग करता है। वह तो अच्छे–बुरे काम का जवाबदेह हो ही नहीं सकता। ईश्वर के न मानने से ही मनुष्य को स्वाधीनता पूर्वक शुद्धि और मुक्ति के प्रयत्न करने का अधिकार मिलता है। इसलिए ईश्वर नहीं है।

आत्मा नित्य नहीं है—शरीर से भिन्न कोई आत्मा नहीं है। वह स्कन्धों के योग से उत्पन्न एक शक्ति है, जो क्षण-क्षण में उत्पन्न होती और विनाश को प्राप्त होती है। इसलिए हम अन् आत्म हैं।

कोई ग्रन्थ अपौरुषेय और स्वतः प्रमाण नहीं है—परिशुद्ध और मुक्त बनने के लिए कर्म करने में मनुष्य का स्वतन्त्र होना जरूरी है। कर्म करने की स्वतन्त्रता के लिए बुद्धि का स्वतन्त्र होना आवश्यक है। बुद्धि स्वातन्त्रय के लिए किसी ग्रन्थ की परतकता न होना चाहिए। किसी ग्रन्थ की प्रामाणिकता उसे बुद्धि की कसौटी पर कसने पर निर्भर है, न कि बुद्धि की प्रामाणिकता ग्रन्थ पर।

जीवन का शाश्वत प्रवाह—शरीर और मन का समुदाय जीवित शरीर है। वह कोई ईकाई नहीं है, असंख्य परिवर्तन शील अणुओं का सँगठन है। पुराने अणु नष्ट होते और नए बनते रहते हैं। यह जीवन प्रवाह इस शरीर से पूर्व से आ रहा है और पीछे भी रहेगा। फिर भी यह अनादि और अनन्त नहीं है। इसका आरम्भ तृष्णा से है। और तृष्णा के क्षय से इसका क्षय होता है।

इस प्रकार अनित्य, अनात्म और प्रतीत्य–समुत्पाद ही बुद्ध का दर्शन सिद्धान्त है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्वाण—निर्वाण का अर्थ है बुझना। दीपक की आग जलते-जलते बुझ जाती है। तब उसकी परिसमाप्ति हो जाती है। जीवन प्रवाह का अत्यन्त विच्छेद ही निर्वाण है।

७--बुद्ध के दार्शनिक विचार

बुद्ध और आर्यों के दार्शनिक मूलाधार— बुद्ध का दर्शन क्षणिकवादी है। किसी वस्तु को वे एक क्षण से अधिक ठहरने वाली नहीं मानते। इसके साथ ही उन का अनित्यवाद भी है। इसका अभिप्रायः यह है कि—दूसरा ही उत्पन्न होता है, दूसरा ही नष्ट होता है, एक का सर्वथा नाश और दूसरे का सर्वथा नया उत्पाद न होता है। प्रतीत्य-समुत्पाद का अर्थ है—एक के विनाश के बाद दूसरे की उत्पत्ति। इसी प्रतीत्य-समुत्पाद को लेकर आगे चल कर नागार्जुन ने अपने 'शून्य वाद' का सिद्धान्त स्थापित किया है। बुद्ध का यह प्रतीत्य-समुत्पाद उपनिषदों के नित्य ध्रुव अविनाशी आत्मवाद के सर्वथा विपरीत है। बुद्ध आत्मवाद को महा अविद्या कहता है।

आत्मा—बुद्ध ने जन्म से प्रथम ही आर्यों के उपनिषदों का 'आत्मा' का सिद्धांत सर्वोपरि दार्शनिक विषय था, जिसकी चर्चा विद्वान् करते थे। बुद्ध ने आत्मा सम्बन्धी विचारों को दो भागों में विभक्त किया है। एक वह—जिस में आत्मा को इन्द्रिय गोचर माना है, दूसरा जो इन्द्रियों से अगोचर है। बुद्ध इन्हें-रूपी और अरूपी की संज्ञा देता है। दोनों विचार वालों में कुछ आत्मा को सान्त मानते हैं, कुछ अनन्त। दोनों विचार वाले नित्यवादी और अनित्यवादी हैं। इनका विवरण निम्न सारणी में है :—

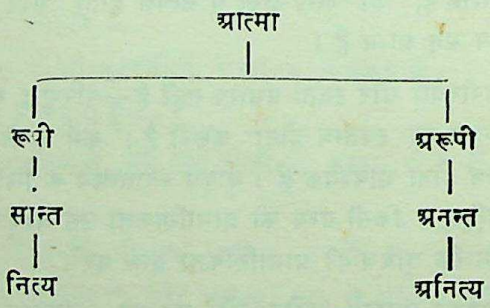

आत्मवाद के लिए बुद्ध ने एक नया शब्द सत्काय दृष्टि' प्रयुक्त किया है। इसका अर्थ है—शरीर से भिन्न अजर अमर-तत्त्व। बुद्ध आत्मा सम्बन्धी इस धारणा को सत् ज्ञान प्राप्ति की सबसे बड़ी बाधा मानते हैं। वे अविद्या और तृष्णा से मनुष्य की सारी प्रवृतियों की व्याख्या करते हैं।

उपनिषद् के आत्मा का विरोध--उपनिषद् में इतने परिश्रम से जो आत्मा का महान् सिद्धान्त स्थापित किया गया है; उसकी अवज्ञा करते हुए बुद्ध कहता है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'जो यह मेरा आत्मा अनुभव कर्ता, अनुभव का विषय है, और अपने भले बुरे कर्मों को अनुभव करता है, वह आत्मा, नित्य, ध्रुव, शाश्वत, और अपरिवर्तन-शील है। अनन्त तक ऐसा ही रहेगा', यह भिक्षुओं वाला धर्म (मूर्खों का विश्वास) है।

बुद्ध अनात्मा शब्द को अभावात्मक अर्थों में नहीं कहता। उपनिषद् में जो आत्मा को नित्य, ध्रुव, वस्तु सत्य माना है। उसी के जोड़-तोड़ में वह अपनी अनात्मा को एक अस्तित्त्व रूप में कहता है :--

उपनिषद्-आत्मा = नित्य, ध्रुव = वस्तु सत्।

बुद्ध-अन् आत्मा = अनित्य-अध्रुव = वस्तु सत्।

प्रतीत्त्व समुत्पाद का सिद्धान्त बुद्ध का सब से महान् दार्शनिक सिद्धान्त है। उस काल में भाषा में ऐसे शब्द नहीं थे--जो बुद्ध के इस सिद्धान्त की व्याख्या में सहायक होते। बुद्ध ने अनेक नए शब्द गढ़े, और अनेक पुराने शब्दों को नए अर्थों में प्रयुक्त किया। 'धर्म' शब्द को उन्होंने 'घटना' के अर्थ में प्रयुक्त किया। (ये धर्मा-हेतु-प्रभवाः)

बुद्ध जड़वादी नहीं है--यद्यपि बुद्ध का दर्शन आत्मवाद का विरोध है, पर वह जड़वाद नहीं है। वह कहते हैं--वही जीव है, वही शरीर है। दोनों एक हैं।

अतीश्वर वाद--बुद्ध ईश्वर या ब्रह्म की सत्ता भी नहीं मानते। उपनिषद् विश्व का एक कर्ता मानते हैं। वह आत्मा है। बुद्ध का प्रतीत्य-समुत्पाद सिद्धान्त ऐसा है कि ईश्वर की सत्ता तभी स्वीकार्य हो सकती है, जब वह प्रतीत्य समुत्पन्न हो। परन्तु प्रतीत्य -समुत्पन्न होने पर वह ईश्वर ही नहीं रहता है। बुद्ध कहते हैं--कि ये ब्राह्मण अन्धे के पीछे चलने वाले अन्धों की भांति बिना जाने देखे ईश्वर-ब्रह्म आदि पर विश्वास रखते हैं।

स्वतन्त्र विचार--विचारों की स्वतन्त्रता दे कर बुद्ध ने तत्कालीन जनता को दिमागी गुलामी से मुक्त किया। उसने प्रत्यक्ष और अनुमान केवल दो ही प्रमाण स्वीकार किए। और लोगों से कहा--कि तुम श्रुत, तर्क, आकार और भव्यता पर विचार मत करो। खुद ही जानो--कि निर्दोष, हितकारी और सुखदाई धर्म क्या है ?

बुद्ध के दर्शन का तत्कालीन समाज पर प्रभाव--दर्शन विचार परम्परा की वस्तु है। परन्तु विचारों ही का मनुष्य के जीवन पर भारी प्रभाव पड़ता है। उस काल का वैदिक धर्म श्रीमन्तों-ब्राह्मणों और राजाओं के लिए लाभकारी और शूद्रों, दासों, कर्मकरों आदि के लिए कठोर था। उपनिषद् ने पढ़ते हुए संदेह को दबाने, और सामाजिक ऊँच-नीच भाव को पूर्व जन्म का कारण बताकर मनुष्यों की बुद्धि को कुण्ठित करने का यत्न किया था। बुद्ध के दार्शनिक विचारों ने जनता को अन्धविश्वास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और मूढ़ कर्म से मुक्त किया। उसने जगत–समाज, जनता, सब को क्षण-क्षण पर परिवर्तनशील बताया। और परिवर्तन के अनुसार ही अपने व्यवहारों को बनाने का उपदेश दिया। उसने अपने बड़े से बड़े दार्शनिक विचार को भी लाभदायक रूप में प्रकट किया। उसने कर्म के सिद्धान्त को दृढ़ किया। इस प्रकार उनका दर्शन सामाजिक विद्रोह न था—सामाजिक स्थिति स्थापक था। वह जातियों और देशों की सीमाएं तोड़ कर मनुष्यों में सामंजस्य स्थापित करता था—इसी से जहां दलित जनों ने उसका अभिनन्दन किया, वहाँ राजा–महाराजा और श्रीमन्त भी उसके वशवर्ती हुए।

बुद्ध का असमंजस—क्षत्रिय लोग शासक थे। उन्हें युद्ध भी करने पड़ते थे और व्यवस्था भी करनी पड़ती थी। अतः जगत व्यवहार का सच्चा ज्ञान उन्हें हो गया था। शोषितों और दलितों की प्रवृत्ति से उन्हें टक्करें लेनी पड़ती थीं। इसीलिए उन्होंने कर्म के फन्दे को और कसा। और ब्रह्मवाद तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्तों की उपनिषदों में स्थापना की। ब्राह्मणों ने आसानी से उपनिषद् का यह कर्म स्वीकार नहीं किया। क्षत्रियों ने भी उनसे इसे गोपनीय रक्खा। वैदिक ब्राह्मणों में जो क्रोध और प्रतिक्रिया उपनिषदों के कारण उत्पन्न हुई, उसका एक उदाहरण जैमिनी का पूर्व मीमांसा दर्शन है। जिसमें उसने ललकार कर वेद को अपौरुषेय और कर्मफल को अटल कहा है। परन्तु उपनिषदों ने वैदिक कर्मकाण्ड को काफी धक्का पहुँचाया।

बुद्ध ने अपने दार्शनिक विचारों में इन सब बातों की भली भांति ऊहा पोह की। और प्रतीत्य–समुत्पाद के सिद्धान्त से विचारों में नई क्रान्ति कर दी। फिर भी उसने पुनर्जन्म को बिलकुल ही अस्वीकार नहीं किया। परलोक को भी दूसरे अर्थों में माना। उसने समाज की आर्थिक विषमता भी दूर करने की चेष्टा नहीं की। इस से एक प्रकार से बुद्ध दर्शन भी शासक वर्ग का समर्थक बना रहा। इस द्वैध प्रवृत्ति के कारण थे। तत्कालीन भौतिक परिस्थिति का उन पर प्रभाव था। इसी ने उन्हें असमंजस में डाला। सब से प्रथम वृद्ध को देख कर, फिर मुर्दे को देख कर, उसके बाद एक बीमार को देख कर उसके मन में करुणापूर्ण प्रवृत्तियों का उदय हुआ, पर पीछे मनुष्य की दासता और दरिद्रता के सामूहिक दुःख देखे। पर उसने इसके लिए कुछ भी नहीं किया। उन दिनों कर्ज देने वाले मनुष्य के शरीर तक को खरीद लेते थे। इसलिए कर्जदारों से बचने के लिए बहुत ऋणी लोग भिक्षु हो गए। इस से स्पष्ट ही महाजनों की नाराजी का खतरा था, बुद्ध ने नियम बनाया कि कर्जदार को भिक्षु नहीं बनना चाहिए। इसी भांति जब दास लोग भिक्षु बनने गए—तो उसने कहा—दासों को भिक्षु नहीं बनना चाहिए। जब सैनिक गण भिक्षु बनने गए तो राजा बिम्बसार के उलाहने पर उसने कहा– सैनिक भिक्षु नहीं बनने चाहिएँ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार बुद्ध ने दुःखवाद को अन्त करने का जो प्रयास किया, सो दुःख हेतुओं को वह जन-जीवन से न हटा सका। उसका दर्शन एक आध्यात्मिक वस्तु ही रह गया। पुनर्जन्म और परलोक के सम्बन्ध में भी लोग सन्देह में रह गए। बुद्ध के प्रतीत्यवाद और क्षणिकवाद के कारण लोगों ने यह तो माना कि दुःख क्षणिक है, नाशवान् है, हेतुप्रभ है। पर दुःख दूर करने के उपाय निश्चित रूप से बुद्ध उन्हें न बता सका। यह विषय आगे आने वाली पीढ़ी की अपनी बुद्धि से स्वयं सोचने के लिए उन्हीं पर छोड़ दिया गया।

८—तीर्थंकर—महावीर

जैन धर्म के प्रतिष्ठाता—इसी काल में जैन धर्म के प्रतिष्ठाता तीर्थंकर महावीर का जन्म हुआ। महावीर का जन्म भी मगध में लगभग उसी काल में हुआ, जब बुद्ध का हुआ। इन्हीं दोनों महापुरुषों ने श्रमण संस्कृति की प्रतिष्ठा की। बौद्ध धर्म और जैन धर्म जहां अनेक दार्शनिक विचारों और धार्मिक मान्यताओं के सम्बन्ध में भिन्नता रखते हैं—वहाँ सांस्कृतिक रूप में यहाँ दोनों समान हैं कि दोनों ने ही श्रमण संस्कृति की स्थापना की।

श्रमण संस्कृति—श्रमण संस्कृति की विशेषता यह थी कि उसमें प्राकृतिक आधिदैविक देवों या नित्यमुक्त ईश्वर को पूज्य का स्थान नहीं दिया गया। उसमें तो एक सामान्य पुरुष ही अपना चरम विकास करके मनुष्य और देव दोनों का पूज्य बन जाता है।[1] इसीलिए जैन धर्म में इन्द्र आदि देवों का स्थान पूजक का है, पूज्यों का नहीं। ब्राह्मण संस्कृति में आगे चल कर राम और कृष्ण की पूजा होने लगी। ब्राह्मण संस्कृति में उन्हें मनुष्य नहीं रहने दिया—उन्हें मुक्त ईश्वर में आरोपित करके उन्हें ईश्वर का अवतार कहा। परन्तु श्रमण संस्कृति में महावीर और बुद्ध पूर्ण पुरुष या केवल मनुष्य ही रहे। उन्हें नित्य बुद्ध या नित्यमुक्त ईश्वर नहीं कहा गया।

अवतारवाद का विरोध—गीता में अवतारवाद के समर्थन में यह कहा गया है कि जब-जब धर्म के प्रति ग्लानि होती है, तब-तब भगवान् अवतार धारण करते हैं धर्म के उत्थापन के लिए।[2] श्रमण संस्कृति में इस सिद्धान्त का विरोध था। उनका कहना था - संसार में सुधार के लिए सदैव ही धर्मोद्धार की आवश्यकता है। प्रत्येक युग में महापुरुषों को अपनी समकालीन परिस्थिति की बुराइयों से लड़ना

१—धम्मो मंगलमक्किट्ठं अहिंसा संजमोतवो।
देवावितं नभं संति जस्स धम्मे सयामणो। दश वैकालिक १।१

२—यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्। गीता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पड़ता है। उनका मत था कि त्याग और तप के मार्ग पर चल कर जो आत्म-विकास की पराकाष्ठा को पहुँचता है, वही पूर्ण बन जाता है। महावीर और बुद्ध के अतिरिक्त उनके समकालीन अनेक पूर्ण पुरुष थे। परन्तु इन दो महापुरुषों को अधिक सम्मान प्राप्त हुआ। इन दोनों न अपनी पूर्णता पर सन्तोष नहीं किया, जन-कल्याण के लिए भी जीवन विसर्जित किया।

धर्म-क्रान्ति—जिन दिनों इन दोनों महापुरुषों ने जन्म लिया—उन दिनों धार्मिक अनुष्ठान सर्वथा ब्राह्मणों के हाथ में थे। मनुष्यों और देवों का सीधा सम्बन्ध नहीं हो सकता था। प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में ब्राह्मण की मध्यस्थता अनिवार्य थी। इसलिए उन्होंने ये धार्मिक अनुष्ठान अत्यन्त जटिल और विपुल सामानों से सम्पन्न होने वाले बना दिए थे। जिस से उन्हें अत्यन्त अर्थ प्राप्ति होती थी। सर्वतोभावेन उनकी आजीविका का एक मात्र यही साधन था। सर्व-साधारण लोक परलोक में उनके आधीन थे। अतः उनमें अत्यन्त जात्याभिमान भर गया था। ब्राह्मण के अतिरिक्त दूसरा कोई धर्मानुष्ठान न करा सकता था। इन सब कारणों से मनुष्य जाति की समानता और एकता के स्थान में ऊंच-नीच की भावना बहुत भर गई थी। और केवल नीच जातियों ही को नहीं, सब जाति की स्त्रियों को भी अत्यन्त हीन बना दिया गया था। और उन्हें सब प्रकार के धार्मिक लाभों से वंचित कर दिया गया था। स्त्रियाँ तो अपने पति की सेवा ही में—पति को परमेश्वर मानने ही में अपना सम्पूर्ण धर्म निबाह समझने लगी थीं। इन सब सांस्कृतिक वैषम्य ने राज्यों में भी अस्वाभाविक संघर्ष उत्पन्न कर दिए थे। जिससे जनपदों की जड़ें हिलने लगी थीं, तथा साम्राज्य संगठन होने के वातावरण उत्पन्न हो रहे थे। धार्मिक अनुष्ठानों का एक मात्र उद्देश्य यही था कि इस संसार का जितना सुख है उतना या उससे अधिक मृत्यु के बाद मिले। यज्ञ धार्मिक साधनों में मुख्य था, जिन में वेद मन्त्रों के पाठ के साथ भयकर पशु-वध होते थे।

बुद्ध और महावीर से प्रथम ही इस परिस्थिति का सामना आरम्भ हो गया। आरण्यकों और उपनिषदों के तत्त्व-ज्ञान में विचारकों ने विचारधारा का प्रवाह दूसरी ओर फेर दिया था। तथा दर्शनों के द्वारा वे धर्म मीमांसा भी करने लगे थे और तत्त्व की मीमांसा भी। इस से उनका बौद्धिक विकास बहुत बढ़ गया था। इसी समय बुद्ध और महावीर की धर्म-क्रान्ति सफल हुई।

चरित्र—महावीर का जन्म क्षत्रिय कुण्डपुर (वर्तमान बसाड़) में पटना से कुछ ही मील की दूरी पर हुआ था। उनके पिता का नाम सिद्धार्थ और माता का नाम त्रिशला था। उनके पिता ज्ञातृ वंश के क्षत्रिय थे, और वे काफी प्रभाव शाली थे। त्रिशला वैशाली के राजा चेटक की बहिन थी। महावीर का जन्म नाम वर्धमान था। उत्कट साधना से उनका नाम महावीर प्रसिद्ध हो गया। महावीर के माता पिता पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। अतः बचपन ही से उनके संस्कार साँसारिक वैभवों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनित्यता और निःसारता की ओर झुक गए थे। उन्होंने ३० वर्ष गृह वास किया। उनका विवाह भी हुआ। तीस वर्ष की अवस्था में अपना सर्वस्व दीन हीन जनों को बांट अकिंचन हो गृह त्याग दिया।

तपस्या—पार्श्वनाथ ने तत्कालीन तपस्वियों का विरोध कर—अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिगह को आत्म शोधन का सरल मार्ग बताया था। वर्धमान ने भी इसी मार्ग को अपनाया। और उत्कट साधना से कैवल्य प्राप्त किया। उन्होंने संयम पर बहुत जोर दिया। किसी प्राणी को न सताना—तथा सर्व सत्त्वों से मैत्री रखना और जीवन की बाधाओं को बिना दूसरे किसी सहायता के समभाव से सहन करना अपना ध्येय बनाया। अपने शरीर व्यवहार को; इतना कम किया जाय कि दूसरे किसी को कष्ट न हो। केवल अनिवार्य ही प्रवृत्ति को स्वीकार किया जाय। यही संयम है, और यही निवृत्ति मार्ग है[1]।

गृह त्याग के बाद उन्होंने वस्त्र ग्रहण नहीं किया। शीत–ताप–डाँस–मच्छर वर्षा के सभी ताप सहन किए। कहीं घर में न रहे। इस प्रकार साढ़े बारह वर्ष कठोर अनुष्ठान कर अपने कषायों पर विजय पा ४२ वर्ष की आयु में उन्होंने वीतरागता पाई और केवली हुए। तथा लोगों को हित का उपदेश दे तीर्थंकर बन गए।

जैनागम–महावीर द्वारा दिए गए उपदेशों का जो संकलन गणधर कहाने वाले पण्डितों ने किया—वहीं संकलन जैनागम के नाम से प्रसिद्ध है। तीर्थंकर होने के बाद भी उन्होंने अपना अनियत वास कायम रखा। उनके शिष्य भारत में चारों ओर पाद-बिहार करके अहिंसा के सन्देश देते रहे। उनके उपदेश का सार था–शान्ति, वैराग्य, उपशम, निर्वाण, शौच, ऋजुता, निरभिमानता, अपरिग्रह और अहिंसा का उपयोग द्रव्य-काल क्षेत्र और भाव की अपेक्षा से है। यही महावीर का कल्याणकारी धर्म था।

जैन संघ—वीरंगक, वीरयश, संजय, एणैयक, सेय, शिव, उदयन और शंख इन आठ सम सामायिक राजाओं ने जैन धर्म स्वीकार किया, ऐसा जैन ग्रन्थों में लिखा है। अभय कुमार मेघकुमार आदि राजपुत्रों ने भी घर बार छोड़कर व्रतों को अगीकार किया। स्कधंक आदि तापसों ने, तथा अनेक स्त्रियों ने भी महावीर का धर्म अपनाया। अनेक सदग्रहस्थ संट्ठिभी उनके उपासक बने। शूद्रों और चाण्डालों को भी संघ में समान अधिकार दिया गया। जैन संघ–राढ़देश, मगध, विदेह काशी, कौशल, सूरसेन, वत्स, अवन्ती आदि देशों में फैल गया। तीर्थंकर होने के बाद ३० वर्ष पर्यन्त वे अपने धर्म का प्रचार करते रहे। और ७२ वर्ष की आयु में शरीर त्यागा। दीपावलि के दिन उनका निर्वाण हुआ। इसी से जैन धर्मी दीपावली का उत्सव मनाते हैं।

१—जप चरे जपं चिट्ठे जपं मासे जपं सए।
जयं भूंजतो मासं तो पाव–कम्मं न बंधई। दश वैकालिक ५।८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्म वाद—महावीर ने मनुष्य के भाग्य को ईश्वर और देवताओं के हाथ से निकालकर खुद मनुष्य के हाथ में रक्खा। सब जीवों से मैत्री भाव रखना तथा किसी को न सताना उनका परम धर्म था। मनुष्य को राग, द्वेष, माया, मोह से मुक्त करना ही उनके धर्म का मूल रूप था। जीव हिंसा का त्याग, चोरी, झूठ, असंयम, स्त्री, मान और माया का त्याग करने वाले को महायाजी कहा[1]। अपने पाप कर्मों को जला देना ही यज्ञ है। काम विरक्ति का सुख ही स्थायी है[2]। सब काम विषरूप हैं। इच्छा अनन्त आकाश के समान है। जिसकी पूर्ति होना शक्य नहीं। लोभी की तृष्णा का अन्त नहीं। अतः अकिंचनता में ही सुख है। इन्हीं सब आधारों पर उन्होंने यज्ञ, यागों तथा धार्मिक अनुष्ठानों के स्थान पर ध्यान, स्वाध्याय, अनशन, रस, परित्याग विनय, सेवा आदि तपस्याओं को महत्त्व दिया। वैभव न्याय सम्पन्न होना चाहिए। भारी दान की अपेक्षा अकिंचन पुरुष का संयम अधिक श्रेयस्कर है। उन्होंने कहा-शूद्र भी अच्छे कर्म करने से द्विज हो सकता है। क्षत्रिय का धर्म शान्ति स्थापना बताया। अपने आपको जीतो। जब तक अपनी आत्मा अविजित है तब तक सब युद्धों की जड़ बनी है। क्रोध को क्षमा से जीतना चाहिए। मान को नम्रता से, माया को ऋजुक से, लोभ को निर्मोह से जीतना चाहिए। यही आत्म विजय है[3]।

९—जैन धर्म साहित्य और धर्म शिक्षा

जैन धर्म के धार्मिक साहित्य को हम छै भागों में विभक्त कर सकते हैं।

(१) **द्वादश अङ्ग**—पहिला अङ्ग आयारंग सुत्त है। इसे आचाराग सुत्त भी कहते हैं। इस में उन नियमों का वर्णन है जिन्हें जैन साधु-पालन करते हैं। दूसरा अङ्ग सूत्र कृदंग है। इस में जैनेतर सम्प्रदायों की समीक्षा की गई है। तीसरा स्थानांग है, इस में जैन धर्म के सिद्धान्तों का वर्णन है। चौथा समवायांग है, इसमें भी जैन सिद्धान्तों का वर्णन है। पाँचवाँ भगवती सूत्र है, यह जैन धर्म का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें जैन सिद्धान्तों के अतिरिक्त स्वर्ग तक का विशद

१—छज्जीकाए असामारभंता, मोसं अदत्तं च असेवमाणा।
पारिग्गहं दत्विओ माण मायं, एयं परिन्वायं, चरति दन्ताः।
सुरु बुडो पञ्चहि संवरेहिं, इदं जीविषं अणवकं समाणो।
वोसट्ठकाओ सुइ चत्त देहो, महा जयं जयइ जन्नसिट्ठम्।

२—जह किं पोग फलाण परिणामोन सुन्दरो। उत्तर० १२, ४१; ४२
एवं भुताण भोगाणं परिणामो न सुन्दरो। उत्त० १५। १७

३—वरंमे अप्पा दन्तो संजमेयेण तवेण य।
माहं परेहि दम्मन्तो वन्धणेहि वहेहिय।
उवसमेण हणे कोहं माणं मद्दवया जिणे।
मायमज्जव भावेण लोभं संतोस ओ जिणे। दश वैकल्प सूक्त ८। ३९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें महावीर कालीन अनेक गाथाएँ भी हैं। छठा ज्ञान कर्म कथा है, इसमें उपदेशात्मक कथाएँ हैं। सातवाँ उवासंगद साओ है, इसमें दस समुद्र व्यापारियों का वर्णन है, जिन्होंने जैन धर्म स्वीकार कर मोक्ष पाया। आठवाँ अन्तकृद्दशा है, इसमें तपस्वी साधुओं का वर्णन है। नवाँ अनुत्त-रोपपातिक दशा है, इसमें भी तपस्वी साधुओं का वर्णन है। दसवाँ प्रश्न व्याकरण है, इसमें जैन धर्म के दस निषेध और दस विधान हैं। ग्यारहवाँ विपाक श्रुतम् है, जिसमें अच्छे-बुरे कर्मों के फल वर्णन हैं। बारहवाँ वृत्तिपाद है, जो अनुपलब्ध है।

(२) **द्वादश उपाङ्ग**—प्रत्येक अग का एक-एक उपाङ्ग है।

(३) **दस प्रकीर्ण**—इनमें जैन धर्म सम्बन्धी विविध विषय वर्णित हैं।

(४) **षट्छेद सूत्र**—इस में साधु-साधुनियों के लिए सोदाहरण उप-देश हैं।

(५) **चार मूल सूत्र**—उत्तराध्ययन सूत्र, दश वैकालिक सूत्र, आवणक सूत्र और ओकनिर्यूति सूत्र।

(६) **विविध**—इसके अन्तर्गत अनेक छोटे-बड़े ग्रन्थ हैं, जिनमें महत्त्वपूर्ण नन्दि सूत्र और अनुयोगद्वार हैं।

ये सब जैन ग्रन्थ प्राकृत आर्ष या अर्धमागधी भाषा में लिखे गए हैं। इन पर अनेक भारी २ टीकाएँ हैं। सब से पुरानी टीकाएँ निर्युक्ति कहाती हैं, जो भद्रवाहु श्रुतकेवली के काल की हैं। भद्र स्वामी प्रसिद्ध टीकाकार हुआ है। शान्तिसूरि, देवेन्द्रगणी, और 'अभयदेव' भी प्रसिद्ध जैन टीकाकार हैं।

जैन धर्म सिद्धान्त—इस समय जो जैन धर्म साहित्य उपलब्ध है—उसका वर्तमान रूप महावीर स्वामी के कई शताब्दियों बाद वल्लभी की महासभा में निर्णीत हुआ था। इस काल में महावीर की वास्तविक शिक्षाओं में बहुत परिवर्तन हो गया था। उन में निरन्तर विकसित होते हुए दार्शनिक विचारों का भी समावेश होता रहा। वर्तमान जैन धर्म ग्रन्थों के आधार पर मुख्य सिद्धान्त ये हैं—

मानवीय जीवन का उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है। मोक्ष प्राप्ति के लिए साधारण गृहस्थों के कर्तव्य अलग हैं और साधुओं के अलग। जिन नियमों का पालन एक मुनि कर सकता है, उनका पालन एक श्रावक गृहस्थ नहीं कर सकता। इसलिए इन दोनों के लिए मुक्ति के भिन्न-भिन्न नियम हैं।

पांच अणुव्रत—गृहस्थ श्रवण के लिए पांच अणुव्रत हैं। गृहस्थ समस्त पापों का त्याग नहीं कर सकते। संसार के बन्धनों में बंधे रहते हैं, इसलिए उन्हें अणुव्रत पालन करने का आदेश है। वे ये हैं—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह, परिमाण।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन–वचन–कर्म से किसी भी प्राणी को न सताना अहिंसा है। श्रावक के लिए स्थूल अहिंसा का आदेश है। स्थूल अहिंसा का अर्थ है, निरपराध प्राणियों की हिंसा न की जाय। द्वेष–मोह–स्नेह की प्रवृत्तियों को दबा कर सत्य बोलना। दूसरों की गिरी–पड़ी–रखी हुई वस्तु को स्वयं ग्रहण न कर उसके स्वामी को दे देना अचौर्य। मन वचन कर्म से पर-स्त्री त्याग ब्रह्मचर्य। केवल उतना ही संचय करना जितना आवश्यक है, यह परिग्रह परिमाण। इस प्रकार ये पाँच अणुव्रत हुए।

तीन गुणव्रत—इन अणुव्रतों का पालन नित्य करना चाहिए। इनके अतिरिक्त समय-समय पर कठोर व्रत भी पालन करना चाहिए। यही गुणव्रत है। ये तीन हैं—

(१) दिग्विरति—यह कि मैं इस दिशा में कभी न जाऊँगा।

(२) अनर्थ दण्ड-विरति—जिन कामों से मनुष्य का सम्बन्ध न हो वह न करे

(३) उपभोग-परिभोगपरिणाम—वह खान-पान भोग में यह व्रत लें—कि मैं इतने से अधिक न खाऊंगा, न भोग करूंगा।

ये तीन व्रत इन्द्रियों के संयम के लिए हैं।

चार शिक्षाव्रत—इन तीन गुणव्रतों के अतिरिक्त चार शिक्षाव्रत हैं—

(१) **देशविरति**—एक निश्चित देश या क्षेत्र ही में आना–जाना व्यवहार करना।

(२) **सामयिक व्रत**—सब सांसारिक कृत्यों से विरत होकर शुद्ध आत्मरूप में लीन होना।

(३) **पोषधोपवास व्रत**—प्रत्येक अष्टमी या चतुर्दशी को सब सांसारिक कार्यों का त्याग–उपवास करना।

(४) **अतिथि संविभाग**—अतिथि तथा मुनियों का सादर स्वागत करना।

इन अणुव्रतों, शिक्षाव्रतों और गुणव्रतों से गृहस्थ श्रावक अपनी आत्मा को शुद्ध कर सकता है। तथा जीवन को धार्मिक बना सकता है। ऐसे गृहस्थ को मोक्ष सम्भव हो सकती है। तथा मुनि बनने की तैयारी कर सकता है।

पांच महाव्रत—ये जैन मुनियों के लिए हैं।

(१) **अहिंसा महाव्रत**—किसी भी प्रकार के प्राणी की जान पूछ कर या बिना जाने हिंसा करना पाप है। अहिंसा व्रत का ठीक-ठीक पालन करने के लिए उसको ये व्रत धारण करने चाहिएँ—(क) ईर्यो समिति—चलते हुए इस बात का ध्यान रखे कि कहीं हिंसा न हो जाय। (ख) भाषा समिति—कठोर वाणी से भी किसी का जी न दुखी करे। (ग) एषणा समिति—भोजन में किसी प्राणी की हिंसा तो नहीं है। (घ) आदान–क्षेपणा समिति—अपने उपभोग की वस्तुओं में कीड़े तो नहीं पड़ गए हैं, यह देखना। (ङ) व्युत्सर्ग समिति—मल मूत्र त्याग करने के समय यह देखना कि वहाँ कोई जीव-जन्तु तो नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२) असत्य त्याग महाव्रत—सत्य और प्रिय भाषण करना। कटु सत्य भी नहीं बोलना। इसमें भी पांच भावनाऐं हैं—(क) अनुविम भाषी—विचार पूर्वक बोलना। (ख) कोहं परिजानाति—क्रोध या अहङ्कार में न बोलना। (ग) लोभं परिजानाति—लोभ में नहीं बोलना। (घ) भयं परिजानाति—भय से नहीं बोलना। (ञ) हासे परिजानाति—हँसी में भी असत्य नहीं बोलना।

(३) असोप महाव्रत—दूसरे की वस्तु को न ग्रहण करना, न ग्रहण करने की इच्छा करना। बिना गृहस्थ की आज्ञा के घर में भिक्षा के लिए न जाना। भिक्षान्न को बिना गुरु को दिखाए ग्रहण न करना। बिना अनुमति घर में न ठहरना। बिना अनुमति किसी गृहस्थ की वस्तु काम में न लेना।

(४) ब्रह्मचर्य महाव्रत—विपरीत लिङ्ग व्यक्ति से सम्पर्क न रखना। स्त्री से वार्तालाप न करना, उसे न देखना, स्त्री सुख का ध्यान भी न करना। उत्तेजक पदार्थ न सेवन करना। जिस घर में स्त्री हो वहां न रहना। इसी प्रकार साधुनियों को पुरुषों के प्रति।

(५) अपरिग्रह महाव्रत—किसी वस्तु-व्यक्ति-रस के साथ अपना सम्बन्ध न रखना। तथा निर्लेप जीवन व्यतीत करना। रूप-रस-गन्ध स्पर्श से विरत रहना।

इन पांच महाव्रतों के पालन से मनुष्य सिद्ध अथवा केवली हो जाता है। साधुओं के लिए आदर्श जीवन वह है—कि आत्मा के सब बन्धनों को काट कर निर्लेप रहना। जीवन के आनन्दों पर विजय पाना। मन-वचन-कर्म से सम भाव रखना। स्थावर जंगम किसी को मन-वचन-कर्म से हानि न पहुँचाना। सन्तोष संयम और तप का जीवन व्यतीत करना।

दिगम्बर-श्वेताम्बर—जैन ग्रन्थों और कथाओं के आधार पर महावीर की मृत्यु के दो शताब्दी बाद मगध में अकाल पड़ा। उस समय मगध में चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्य था। तत्कालीन जैन साधु भद्रबाहु अपने कुछ साथियों के साथ अकाल के कारण मगध को छोड़ कर कर्नाटक को चला गया। उसकी अनुपस्थिति में मगध के जैनों ने अपने धर्म-ग्रन्थों का निर्णय किया, जिसमें ग्यारह अंग और चौदह पव्व हैं। इन चौदह पव्वों को कभी २ बारहवां अग भी कहा गया है। अकाल दूर होने पर जो जैन चले गए थे—वे मगध में लौट आए। परन्तु इतने समय में उनकी रहन-सहन में बहुत अन्तर आ गया था। मगध के लोग श्वेत वस्त्र पहनने लगे थे। परन्तु कर्नाटक वाले अभी तक प्राचीन परम्परा में नंगे रहते थे। इस प्रकार वे दोनों दिगम्बर और श्वेताम्बर कहलाने लगे। श्वेताम्बरों ने जो धर्म-ग्रन्थ निश्चित किए उन्हें दिगम्बरों ने नहीं माना। इस प्रकार दिगम्बरों में कोई अंग नहीं माने जाते। ये दोनों सम्प्रदाय ई० सं० ७९ या ८२ में पृथक् हुए।

ई० पू० चौथी शताब्दी में पाटलीपुत्र के जैन सिद्धान्तों को शास्त्रीय रूप

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देने के लिए एक संगति जुड़ी थी, पर उन्हें अन्तिम रूप वल्लभी में ४४५ ई० में मिला। इनके पूर्व वर्णित धर्म ग्रन्थ कुल ४८ है। तथा उन्हें श्वेताम्बर सम्प्रदाय ही मान्य करता है।

१०—बौद्ध और जैन धर्म का साम्य-वैषम्य

आर्यों का वैदिक धर्म—बुद्ध और महावीर के जन्म काल में वैदिक ब्राह्मण यह प्रतिपादन करते थे कि यज्ञ भागों से ही मोक्ष मिलता है। यज्ञ करके मांसाहार और सोमपान ही उनका प्रधान मार्ग था। इस मार्ग से ऊबकर कुछ परिव्राजक जंगलों में रहते थे। वे समझते थे कि शरीर पीड़ा ही से सब सिद्धियाँ मिल जाऐंगी। उस काल में इन विचारों को मानने वाले छै बड़े २ पंथ थे। उनमें के सकम्बली एक देहात्म वादी अवश्य था। जो यद्यपि यज्ञ संस्था का तो विरोधी था। पर शरीर को पुष्ट करने के लिए अन्डा-माँस सेवन करने में कोई दोष नहीं मानता था। महावीर और मक्खली गोसाल आदि का पन्थ कठोर तपस्वी का था।

बुद्ध का मध्यम मार्ग—बुद्ध ने इनके बीच धर्म का मध्यम मार्ग निकाला। उसने कहा—वैदिकों की यज्ञ संस्था-ग्रामीण और हीन है-वह त्याज्य है महावीर आदि की संस्था दुःख कारक और अनर्थ वह है। अतः वह भी त्याज्य है। इसलिए-उसने कहा—आचरण में मध्यम मार्ग जिस प्रकार दो अन्तों के बीच से जाता है, उसी प्रकार तत्त्व ज्ञान में चार आर्य सत्यों का तत्व ज्ञान होना अन्तों के बीच से जाने वाला है। एक ओर देह को आत्मा समझकर उसकी पुष्टि करना ही श्रेष्ट तत्व ज्ञान माना जाता है। और दूसरी ओर आत्मा अमर है, इससे देह दण्ड आदि से आत्मा को मुक्त करना तत्व ज्ञान माना जाता था। बुद्ध ने इन दोनों के बीच मध्यम मार्ग निकाला। वह मार्ग त्याग—पवित्र जीवन और दूसरों से समता का व्यवहार सिखाता था।

पार्श्वनाथ और बुद्ध के सिद्धान्त—पार्श्वनाथ के चातुर्याम और बुद्ध के अष्टाङ्गिक मार्ग में भी थोड़ा अन्तर है। यद्यपि दोनों का ध्येय अहिंसा द्वारा मानव मात्र से तादात्म्य प्राप्त करना ही है। बुद्ध के आठ नियम विधायक तथा तपश्चर्या से अलिप्त है। सम्यक केवल अहिंसा का अन्तर्भाव ही नहीं होता, उसमें अस्तेय और अव्यभिचार का समावेश भी है। सम्यक कर्म में केवल हिंसा न करने का ही नहीं, हिंसा से जनता को मुक्त करने का प्रयत्न भी, चोरी न करने का ही नहीं, दूसरों को चोरी से निवृत्ति करने का भी, केवल व्याभिचार से निवृत्त होने का ही नहीं, दूसरों को उससे निवृत्त करने का भी समावेश है। उसमें पार्श्व के अहिंसा और अस्तेय दोनों कामों का समावेश हैं।

पार्श्व का चौथायाम अपरिग्रह था। उस का समावेश सम्यक् आजीव में किया गया है। पार्श्वनार्थ और उसके पंथ वाले अपने पास पहिले एक या तीन वस्त्र पहनते थे, बाद में अपरिग्रह का यह अर्थ लगाया—कि अपने पास कोई वस्त्र न रखे। इसी से तीर्थ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कर महावीर स्वामी तथा उनके अनुयायी जैन साधु नंगे रहते थे। पर बुद्ध को यह पसन्द न था। उसने सम्यक् आजीव में भिक्षुओं को तीन चीवर और एक भिक्षा पात्र रखने का आदेश किया और गृहस्थों को सादगी से रहने का आदेश दिया।

सम्यक् दृष्टि में उन्होंने कहा—संसार किसने बनाया, इसका अन्त क्या होगा। आत्मा एक है या अनेक। इन बातों पर सिर खपाने से कोई लाभ नहीं, मानवी तृष्णा ही दुःख का मूल है, और उस तृष्णा का क्षय ही मोक्ष है। तथा अष्टाङ्गिक मार्ग मोक्ष का उपाय है। इस तत्व ज्ञान की स्वीकृति ही सम्यक् दृष्टि है।

पार्श्व के अनुयायी चार व्रतों का पालन करते हुए शेष समय देह दण्ड में व्यतीत करते थे। बुद्ध ने कहा—यह ठीक नहीं। शरीर और वाणी के संयमन से बचा हुआ समय सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक व्यायाम, सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधि के अभ्यास में लगाना चाहिए। इसी से उन्होंने देह दण्डन का निषेध कर अष्टाङ्गिक मार्ग का प्रचार किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौथा अध्याय

विदेशी सम्पर्क और उसका परिणाम

१--बुद्ध के तत्काल बाद का भारत

देश के तीन मुख्य भाग—इस काल में भारत तीन बड़े भागों में बंटा हुआ था। इनमें बीच का भाग 'मज्जिम देश' कहाता था। जातकों में इसका उल्लेख है। मनुस्मृति इसे मध्यम देश कहती है[1]। हिमालय और विन्ध्याचल के बीच तथा सरस्वती नदी के पूर्व और प्रयाग के पश्चिम में जो देश है उसे मध्य देश कहते हैं। इस मध्य देश का उत्तर भाग उत्तरापथ और दक्षिण का भाग दक्षिणापथ कहलाता था।

सोलह राज्य-महाषोडश जनपद--उत्तर भारत में सोलह राज्य थे। १-कासी, २-कोसल, ३-अंग, ४-मगध, ५-वज्जी, ६-मल्ल, ७-चेतिय, ८-वत्स, ९-कुरु, १०-पाँचाल, ११-मत्स्य, १२-शूरसेन, १३-अस्मक, १४-अवन्ति, १५-गन्धार, १६-काम्बोज[2]। ये सब सोलह महाजनपद कहाते थे। ये देशों के नाम नहीं, जातियों के थे। जैन-ग्रन्थों[3] में भी लगभग यही सूची है। काशी का विस्तार दो सहस्त्र वर्ग मील था, यह 'कासीरट्ठ' (काशीराष्ट्र) कहाता था। कोसल की श्रावस्ती वर्तमान गोंडा और बहराइच जिला की सीमा पर 'सहेथ-महेथ' ग्राम के स्थान पर थी। कासी और साकेत पर भी कोसलों का अधिकार था और शाक्य संघ इन्हें अपना अधीश्वर मानता था। हिरण्यनाभ कौसल, सेतव्य नरेश और ययाति इन्हें अधिपति मानते थे। यह महाराज्य दक्षिण में गंगा और पूर्व में गन्डक नदी को स्पर्श करता था। बुद्ध से कुछ पहिले कोसल राजधानी साकेत हो गई थी।

अंग राज्य मगध के पूर्व में उससे सम्बद्ध था। चन्दन नदी दोनों राज्यों की सीमा थी। इसकी राजधानी चम्पा थी। जिसका स्थान भागलपुर के निकट कहा जाता है। यहां से जहाज स्वर्ण भूमि तक जाते थे[4]। अंगवैरोचन वहाँ के प्रतापी राजा थे, उनके पुत्र दधिवाहन की कन्या महावीर की सर्वप्रथम स्त्री-शिष्या थी[5]।

मगध में वर्तमान पटना और गया दोनों जिले थे। गिरिव्रज या राजगृह राजधानी थी। वहां का प्रथम राजा प्रमगन्ड कीकट था[6]। निरुक्तकार यास्क उसे अनार्य

१—मनु० अ० २, श्लोक २१

२—अंगुत्तरनिकाय

३—भगवती सूत्र

४—जातक (५४५)

५—ऐतरेय ब्रा० (VIII) महागोविन्द सुत्तं

६—ऋग्वेद ३। ५३। ४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कहता है[1]। अभिधानचिन्तामणि में कीटक मागधों का कहा है। प्रथम मागध बुरे थे। शोरवापण आरण्यक में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी है। महाभारत में मगधपति वृहद्रथ आए थे। उस काल इसमें ८० हजार गाँव लगते थे, यह महाराज्य बुद्ध काल में गंगा चम्पा, सोन नदियों क बीच में था। इसकी परिधि २३०० मील थी[2]।

वज्जीगण–तन्त्र और वैशाली इस गणराज्य का विस्तार २३०० वर्ग मील बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर था। मल्ल-संघ के दो भाग थे; जिनकी राजधानियाँ कुशीनारा या कुशावती और पावा थीं। चीनी यात्री हयूनसांग के कथनानुसार यह पहाड़ी राज्य शाक्य के पूर्व और वज्जी के उत्तर में था, परन्तु कुछ लोग उसे वज्जी के पूर्व और शाक्य के दक्षिण में बताते हैं। कुशीनारा कसिया के निकट था, पावा वर्तमान पड़रोना है। भागनगर, उलूपिया और उरुवेल-कण्य भी मल्लों के नगर थे। पीछे मगध ने मल्लों को भी जीत लिया था।

चेतिय-राज्य के दो उपनिवेश थे[3]—एक नैपाल में, दूसरा कौशाम्बी के पूर्व। पुराना चेदि बुन्देलखण्ड तथा निकट के देश में था, जो नर्बदा तट तक फैला था। राजधानी सुक्तिमती थी[4]। कासी और चेतिय के मार्ग में डाकू बहुत थे[5]।

वत्स की राजधानी कौशाम्बी थी। जो आज कोसम कहाती है, और प्रयाग के निकट ३० मील दूर दक्षिण की ओर यमुना नदी के किनारे पर वर्तमान कोसम ग्राम के पास थी, रामायण[6] और महाभारत[7] के आधार पर चेदि राज्य ने कौशाम्बी बसाई। भर्ग राज्य वत्स का करद था[8]।

जातकों में (इन्दपट्ठ) इन्द्रप्रस्थ पर युधिष्ठिर के वंशजों का राज्य इस काल में बताया है, तथा धनञ्जय, श्रुतसोम और कौरव्य राजाओं के नाम बताए हैं। राष्ट्र-पाल कौरव राजा था। कुरु देश के इशुकार नगर में इशुकार राजा रहता था[9]। कौटिल्य अपने काल में कुरु देश में संघ राज्य बताता है। उसका फैलाव २००० मील था।

---

१. निरुक्त ६।२३
२. रिज डेविड्
३. जातकों में चेतियरट्ठ (चेतिय राष्ट्र) लिखा है।
४. चेतिय जातक
५. जातक ४८
६. रामायण ३२-३-६
७. महाभारत ६२-३१
८. जातक ३५३
९. उत्तराध्याय सूत्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पाँचाल का राजा चूलनि ब्रह्मदत्त का कथन बौद्ध तथा हिन्दू ग्रथों में मिलता है[1]। कौटिल्य यहाँ भी गण राज्य बताता है। क्रच्चान बौद्ध शूरसेनों के राजा अवन्तिपुत्त का वर्णन करता है। काव्य मीमाँसा में शूरसेनों के राजा का नाम कुविद लिखा है, मेगस्थनीज भी शूरसेनों का उल्लेख करता है। इनका राज्य मथुरा में था। इसके दो विभाग थे—उत्तर पांचाल तथा दक्षिण पांचाल। उत्तर पांचाल की राजधानी कांपिल्ल (कपिल) थी, दक्षिण पांचाल की कन्नौज। प्राचीन कांपिल्य नगर गगा किनारे वर्तमान बदायूं और फर्रुखाबाद के बीच में था।

अस्सक या अश्मक को बौद्ध ग्रन्थ गोदावरी के निकट बताते है[2]। पाणिनि उन्हे दक्षिण प्रांत में कहता है[3]। यह जाति उत्तर-पश्चिम में भी थी, जिसे ग्रीक इतिहासकारों ने 'असिकनोई' कहा है। महाभारत में भी अश्मक पुत्र का उल्लेख है[4]। उनकी राजधानी पोतन या पातलि थी। महाभारत में 'पौदन्य' नाम दिया है, मूलक इससे दक्षिण में था। अश्मकों ने मूलक और कलिंग को विजय किया था[5]। ब्रह्मदत्त—अस्सकराज, सत्तभु—कलिंगराज, वैस्सभु—अवन्तिराज, भरत—सौवीरराज, रेणु—विदेह राज, धत्तरथ—काशिराज समकालीन हैं[6]। कलिंग को अस्सकराज अरुण ने जय किया था[7]।

अवन्ति के मन्त्री ने वीति होत्र राजा को मार कर अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बनाया था, जो अपने क्रोधी स्वभाव के कारण 'चण्ड प्रद्योत' कहाया। अवन्ति-राज्य के दो विभाग थे, इसका उत्तरी भाग 'अवन्ति' कहलाया, और उसकी राजधानी उज्जैन थी, तथा उसका दक्षिणी भाग अवन्ति दक्षिणापथ कहाता था, उसकी राजधानी माहिस्सती (माहिष्मती) थी। पीछे यह राज्य मगध में मिल गया था। मसीह पूर्व छठी शताब्दी में गांधार-पति 'पुक्कसाति' थे, जिन्होंने बिम्बसार मागध को पठौनी भेजी थी, और युद्ध में प्रद्योत को हराया था। गाँधार में पूर्वी अफगानिस्तान और उत्तरी पश्चिमी पंजाब था। राजधानी (तक्कसिला) तक्षशिला थी[8]। यह नगरी आजकल के पश्चिमी पाकिस्तान रावलपिण्डी जिले के सराय-काला नामक स्टेशन के पास थी।

---

१. जातक (५४६) उत्तराध्याय सूत्र, स्वप्नवासवदत्ता, रामायण।
२. सुत्तनिपात ९७७।
३. IV (१, ३७३)
४. महाभारत—द्रोणपर्व
५. वायुपुराण ८८; १७७—८
६. महागोविन्द सुतत्त
७. चुल्ल-कलिंग जातक
८. कुम्भकार जातक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

काम्बोज प्रान्त उत्तरापथ में गन्धार के निकट था। राजपूर राजधानी थी। ह्यूनसांग राजपूर को पुंच के दक्षिण या दक्षिणपूर्व में बताता है। इसकी पश्चिमी सीमा काफिरस्तान से मिली थी। यास्क काम्बोजों को भारतीय आर्यों से पृथक् कहता है, जातक उनमें जंगली रीति-रिवाज बताते हैं। ह्यूनसांग भी यही कहता है। नन्दिनगर उनका समृद्ध नगर था। चन्द्रवर्मन और सुदक्षिण काम्बोज राजा महाभारत में आए थे। तब वहां राजशक्ति थी—पर कौटिल्य वहां संघ-शक्ति बताता है राजधानी द्वारिका।[1]

बुद्ध काल में ये सोलहों राज्य वर्तमान न थे। कुछ लुप्त हो चुके थे; पर अंगुत्तर और विनय में नामावलि सोलह राज्यों की है। दक्षिणी राज्यों का उल्लेख इनमें नहीं है। बौद्ध ग्रन्थों में पैठण या पतित्यान का नाम है जो आन्ध्रों की राजधानी थी, दक्षिणापथ का नाम बौद्ध साहित्य में तथा महाभारत में है।

निकाय ग्रन्थों में कलिङ्ग के वन का उल्लेख है। दूर देश की समुद्र यात्राओं और जहाज चलने का भी वर्णन है। कलिङ्ग की राजधानी दन्तिपुर थी। बाल्मीकि ठेठ दक्षिण में चोल और पाण्ड्य राज्यों का संकेत करते हैं। इस समय उत्तर भारत में ९ मुख्य प्रजातन्त्र थे—१-शाक्यों का, २-भग्गों का, ३-बुलियों का, ४-कालामों का, ५-कोलियों का, ६-मल्लों का; ७-मौर्यों का, ८-विदेहों का और ९-लिच्छवियों का। इनमें सब से अधिक प्रमुख शाक्यों, विदेहों और लिच्छवियों का था। ये सब गणराज्य आजकल के गोरखपुर, बस्ती और मुजफ्फरपुर जिलों के उत्तर में लगभग सम्पूर्ण बिहार में फैले हुए थे।

गणराज्य—प्राचीन भारत के ये ९ गणराज्य एक प्रकार से प्रजातन्त्र राज्य संघ थे। ई० पू० सातवीं शताब्दी में पाणिनि ने संघ या गण ये दोनों शब्द प्रयोग किये हैं। पाणिनि का एक सूत्र है - 'संघोद्घौ गणप्रशंसयोः' इसका यह अर्थ है कि सं पूर्वक हन् धातु से 'संघ' तभी बनता है, जब उसका अर्थ गण या विशेष प्रकार का समूह हो। साधारण अर्थों में तो 'सं' पूर्वक 'हन्' धातु से 'संघात' शब्द बनता है।

ये गण संघ समुदाय के अधीन होते थे।[2] पाणिनि का एक सूत्र है—"जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्" इसका अर्थ यह है कि अपत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय उसी शब्द के साथ लगता है जो 'देश' तथा 'क्षत्रिय' दोनों का वाचक हो। इस सूत्र पर कात्यायन ने जो वार्तिक लिखा है, उसमें वह कहता है—"क्षत्रियादेकराजात् संघप्रतिषेधार्थम्" इसका यह अभिप्राय है 'अञ्' प्रत्यय अपत्य अर्थ में उसी शब्द में लगना चाहिए जो देश और क्षत्रिय दोनों अर्थों का बोधक हो, तथा उस देश में

---

१. अवदान शतक ८८

२. भरिदत्त जातक ५४३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक ही राजा का राज्य हो। परन्तु जिस देश में संघ शासन हो उस देश के वाची शब्द में अपत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय नहीं लग सकता।

इस उद्धरण से गणराज्यों के सम्बन्ध में यह स्पष्ट हो जाता है कि वह एक मनुष्य का नहीं, समुदाय-विशेष का राज्य था। संघ-राज्य-प्रणाली के सम्बन्ध में किसी कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी कुछ स्पष्ट उल्लेख नहीं है; परन्तु यह तो प्रकट है कि संघ के सब कार्य गणसंघ की बैठक में प्रस्ताव बहुमत, गणपूरक, ज्ञप्ति, कर्मवाचा, छन्द आदि के द्वारा होते थे।

मल्लों की तीन शाखाएँ थीं—पहली कुशीनारा में, दूसरी पावा में; और तीसरी काशी में। सबसे अधिक महत्त्व शाक्यों, विदेहों, और लिच्छवियों का था। विदेह और लिच्छवि मिल कर 'वज्जी' कहलाते थे। ये प्रजातन्त्र परस्पर साधारण बातों पर लड़ते रहते थे। एक बार शाक्यों और कोलियों में एक खेत की सिंचाई के झगड़े को लेकर घनघोर युद्ध हो गया था।[1] लिच्छवियों की मंगल-पुष्करिणी में स्नान करने के कारण कोसल के प्रधान सेनापति से लिच्छवियों का भारी युद्ध हो गया था।[2] राजा लोग इन प्रजातन्त्रीय नेताओं की लड़कियों से विवाह करने के सदा इच्छुक रहते थे। सम्भवतः ये विवाह राजनैतिक होते थे। कोसल के राजा पसेन्दि (प्रसेनजित्)' ने शाक्यों से एक लड़की मांगी थी, शिशुनाग-वंशी बिम्बसार ने भी एक लिच्छवि कन्या से विवाह किया था।[3]

बुद्ध को जन्म देने के कारण शाक्यों के प्रजातन्त्र का सारे संसार की सभ्यता पर प्रभाव पड़ा। शाक्यों की संख्या १० लाख थी। शुद्धोदन उनके नेता थे। उसकी राजधानी कपिलवस्तु थी, यह गण-राज्य नैपाल की तराई में पूरब से पच्छिम लगभग पचास मील तक और उत्तर से दक्षिण तीस–चालीस मील तक फैला हुआ था। गौतम श्रमण ने यहां स्वतन्त्र विचारों की शिक्षा पाई थी। यहां का मनोनीत सभापति राजा कहाता था।

लिच्छवियों के गणराज्य का विस्तृत वर्णन 'एक-पण्ण-जातक' तथा 'चुल्ल कलिंग-जातक' में है। यहां के सभासद 'गणराजानः' कहाते थे।

बम्बसार—मगध-सम्राट बिम्बसार शिशुनागवंश का पांचवां राजा था। इस वंश का यही प्रथम राजा है जिसका ऐतिहासिक वृत्त प्राप्त है। गया के पास प्राचीन 'गिरिव्रज' उसकी राजधानी थी। पीछे उसने नवीन राजधानी 'राजगृह' की नींव रखी। इसने अंग को जीता, जो भागलपुर और मुंगेर का इलाका था। मगध राज्यकी उन्नति और विस्तार का सूत्रपात इसी विजय से हुआ। इस प्रकार

---

१. कुणाल जातक।
२. भद्दसाल जातक।
३. भद्दसाल जातक।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मगध-साम्राज्य का संस्थापक ही बिम्बसार को कहा जाना चाहिए। इसने कोशल और वैशाली के दोनों समर्थ पड़ोसी राज्यों की एक-एक राजकुमारी से विवाह करके अपनी राज्य-शक्ति दृढ़ की। बिम्बसार का राज्यकाल ई० पू० ५२८ से ई० पू० ५०० तक माना जाता है।

प्रमुख नगर—इस काल के मुख्य नगरों में अयोध्या–साकेत सरयू तट पर थी, जो सूर्य वंशियों की राजधानी रही थी, पर इस समय इसकी प्रधानता नष्ट हो चुकी थी। काशी-वाराणसी वर्तमान स्थान पर ही थी, चम्पा भागलपुर से चौबीस मील पूर्व थी, पीछे भारतीय उपनिवेशियों ने कोचीन-चाइना में इसी नाम की एक पुरी बसाई थी। काश्मीर में भी चम्पा नगरी थी। कम्पिला उत्तरी पांचाल की राजधानी थी। कौशाम्बी को कौरवों ने हस्तिनापुर के गंगा में डूब जाने पर बसाया था। यह यमुना-तट पर काशी से २३० मील के अन्तर पर थी। पीछे यह वत्सों की राजधानी हुई। यमुना-तट पर मथुरा अब भी अपने स्थान पर थी। उस काल यहां के राजा 'अवन्तिवर्मन' या 'अवन्तिपुत्र' थे। मथुरा का पुराना नाम 'मधुपुरी' था, पीछे मधुवंशियों से इसे शत्रुघ्न ने छीना, फिर इनके वशजों से छीन कर यादव भीमरथ ने इसे अपनी राजधानी बनाया। बुद्धकाल में यह अवनत हो गई थी, बुद्ध यहां आए थे। इसी नाम का दक्षिण में भी एक नगर बसाया गया था। मिथिला विदेह नरेश की राजधानी तिरहुत में थी। मगध राजधानी राजगृह बसाया था। इस नाम के दो नगर थे—एक गिरिव्रज, दूसरा राजगृह। गिरिव्रज पुरानी बस्ती थी। रोरुक सौवीर सूरत की राजधानी थी, जहां व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र था, पीछे इसका नाम रोरुआ हो गया था। सागल भारत के उत्तर-पश्चिम में था, जो मद्र देश की राजधानी थी। श्रावस्ती कोशल की राजधानी साकेत से ४५ मील दूर थी जो भारत के ६ बड़े नगरों में एक थी। श्रावस्ती–सावत्थी सूर्यवंशी राजा श्रावस्त ने बसाई थी। यह साकेत से ४५ मील उत्तर, राजगृह से ३३७ मील उत्तर-पश्चिम, सांकाश्य से २२५ मील, अचिरवती नदी के किनारे पर बसी थी।

उज्जयिनी अपने प्राचीन स्थान पर अब भी बसी है। इनके अतिरिक्त २० प्रमुख नगरों में ये भी थे—आलवी, इन्दपत्त, संसुभारगिर, कपिलवत्थु, पाटलिग्राम, जेत्तुतर, संकस्स, कुसीनारा और उक्कत्थ।[1]

तक्षशिला, कन्नौज, काशी, उज्जयिनी, मिथिला, मगध, धन्यकंटक, राजगृह, वैशाली, कपिलवस्तु, श्रावस्ती, कौशाम्बी, जेतवन और नालन्द में विश्वविद्यालय थे।

प्रामाणिक ग्रन्थ—प्रामाणिक ग्रन्थ जिनसे इस काल की राजव्यवस्था तथा राज–वंशों का पता चलता है—जातक, त्रिपिटक, जैन सूत्र ग्रन्थ, और पुराण हैं। पुराणों में वायु, मत्स्य, विष्णु, ब्रह्मांड और भागवत में बौद्धकालीन राजाओं की क्रम-

१—राय चौधरी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बद्ध सूची है। यह स्पष्ट है कि सिकन्दर के समय तक भारतवर्ष योरोप की दृष्टि से छिपा था। सिकन्दर के आक्रमण से ही योरोप के साथ भारतवर्ष का सम्बन्ध हुआ। सिकन्दर के साथ कई इतिहास-लेखक भी थे, जिन्होंने तत्कालीन भारत का वर्णन किया है। चीनी यात्रियों के यात्रा-विवरण भी इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण हैं। सिकन्दर की मृत्यु के लगभग बीस बरस बाद सीरिया और मिश्र के राजाओं ने मौर्य सम्राट् के पास अपने राजदूत भेजे थे, इन्होंने जो कुछ भारत का वर्णन किया है उसका कुछ भाग अनेक यूनानी और रोमन लेखकों ने अपने विवरणों में उद्धृत किया है। इन राजदूतों में सीरिया के राजा सेल्यूकेस के राजदूत मेगस्थनीज का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह कई वर्ष तक चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में रहा था। दूसरा व्यक्ति 'ऐरियन' है जो ईस्वी दूसरी शताब्दी में यूनानी रोमन अफसर था। ई० पू० चौथी शताब्दी का इतिहास जानने के लिए एरियन के ग्रन्थ बड़े महत्व के हैं।

तत्कालिक समाज व्यवस्था--इस काल में नगर कम और गाँव अधिक थे। गांव सम्पन्न थे; और उन पर वहाँ के मुखियाओं का शासन था, ब्राह्मण व्यापार, धनुर्विद्या, मृगया कपड़ा बुनने और रथकार का काम करने लग गए थे। खेती और पशु पालन भी करते थे। क्षत्रिय भी व्यापार करते तथा सैनिक नौकरी करते थे। वे कुम्हार माली, पाचक और टोकरी बनाने का काम भी करते थे। मुर्दे जलाकर उनकी राख पर स्तूप बनाए जाते थे। भिन्न २ नौकर पेशे और कारीगर थे, मुद्राव्यवहार था। हुण्डी का चलन भी था। सूद का लेन-देन था, पर जमींदार न थे, किसान पर्याप्त भूमि जोत बो सकते थे। सिक्के ताम्बे और सोने के थे।

व्यापार--बड़े २ व्यापार मार्ग थे जिन पर सार्थवाह चला करते थे। रिज डेविड ने इन पर अच्छा प्रकाश डाला है। श्रावस्ती से पतित्थान तक मार्ग महिष्मती, उज्जैन, गोनर्द, विदिशा, कौशाम्बी और साकेत होकर था। श्रावस्ती से राजगृह का रास्ता सीधा न था वरन् पहाड़ की तराई में होकर था। राह में सेतव्य, कपिल वस्तु कुशीनारा, पावा, हस्तिग्राम, भण्डग्राम, वैशाली; पाटलिपुत्र और नालन्द पड़ते थे। पूर्व से पच्छिम का रास्ता नदियों द्वारा था। गंगा में सहजाति और यमुना में कौशाम्बी पर्यन्त नावें चलती थीं। व्यापारी सार्थवाह विदेह से गान्धार को, मगध से सौवीर को, भरुकच्छ से वर्मा को, दक्षिण से वेविलोन को जाते आते थे। लंका का नाम इस काल के वर्णन में नहीं है, ताम्रपर्णी द्वीप का कथन है।

इसी काल में वैदिक आर्य-सभ्यता का अन्त हुआ। धर्म और राजनीति दोनों पर संकर जातियों का प्रभुत्व हुआ।

जाति मर्यादा इस काल में क्षत्रियों का दर्जा ब्राह्मणों से ऊपर था। क्षत्रियों की मर्यादा बहुत बढ़ गई थी[1]। क्षत्रियों और ब्राह्मणों में छठीं सातवीं ई० पूर्व

१ - रिज डेविड—बुद्धिष्ट इण्डिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शताब्दी में काफी द्वेष और स्पर्द्धा फैल गई थी। ब्राह्मणों के तिरस्कार का कोई भी अवसर क्षत्रिय चूकते न थे। तथा बौद्ध, जैन, श्रमण निरन्तर ब्राह्मण-विरोधी हलचलें करते रहते थे। बौद्ध जैन ग्रन्थों में ब्राह्मणों का उल्लेख अत्यन्त अपमान जनक शब्दों में किया गया है। जैन ग्रन्थों में कहा है कि अर्हन्त ब्राह्मणों तथा नीच जाति में जन्म नहीं लेते[1]। अछूतों का बड़ा अपमान होता था, चित-संभूतजातक, मातंगजातक और सतधम्म जातकों से यह प्रकट होता है। इस काल में खानपान का परहेज न था[2]। गोत्र बचाकर स्ववर्ण में विवाह विहित हो गया था। सब वर्णों के लोग इन जातियों के काम करने लगे थे। समाज बाह्याडम्बर में फंसा था, यज्ञ सबसे बड़ा आडम्बर था।

धर्म भावना—लोग कठिन तप और व्रत करते थे, और बड़ी २ योग्यताएं धैर्य से सहन करते थे। बहुत से भिक्षु-साधु, वैखानस, परिव्राजक विचरते रहते थे। सर्वत्र उनका समादर होता था। अतिथि सेवा का बड़ा महात्म्य था। स्त्री—पुरुष दोनों ही परिव्राजक होते थे। लगभग ७८ प्रकार के दार्शनिक मत थे, जिनमें ६ प्रधान थे, जो वर्तमान षड् दर्शन के नाम से प्रसिद्ध हैं। सांख्य और वेदान्त परस्पर प्रतिस्पर्द्धी थे, इन्हीं की अधिक चर्चा की थी। बहुत चाव से लोग इन शुष्क विवादों में फँसे रहते थे। इस काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बालक ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन करते थे। ब्रह्मचारी सुखोपभोगों से बचकर विनयी, नम्र एवं इन्द्रियदमन करके रहते थे, परन्तु सेट्ठिपुत्र बहुधा कठिन नियम नहीं पालते थे। विद्यार्थियों के दो नित्य कार्य थे। पढ़ना और गुरुसेवा। शिक्षा प्रायः मौखिक होती थी। स्नातक होकर जब वह गृहस्थ होता था तब उस पर गृहपति के अनेक दायित्व लद जाते थे। इनमें अतिथि-सत्कार और यज्ञ प्रमुख थे[3]। पीछे उसे भिक्षुक और वैखानस बनना होता था[4]। आगे यही चार आश्रम विख्यात हुए। वशिष्ठ ने चारों आश्रम भोगना आवश्यक नहीं समझा। वह बिना गृहस्थाश्रमी हुए भी सन्यासी होने की बात कहता है[5]। बौधायन का भी यही मत है[6]। जाति केवल गृहस्थी की मानी जाती थी, भिक्षुक या वैखानस की नहीं[7]। गृहस्थों के ४० धर्म थे[8]। जिनसे तत्कालीन गृहस्थ जीवन पर यथेष्ट प्रकाश

---

१ जैनकल्प सूत्र

२—भद्दसालजातक, कुम्मासपिण्डजातक और उद्दालजातक।

३—आपस्तम्ब २, ३, ७, १

४—आपस्तम्ब २। ९, २१, २

५—वशिष्ठ धर्म (७। ३)

६ बौधायन २. १०, १७, २

७—वशिष्ठ ८, १५

८—गौतम ८, १४, २०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पड़ता है। इनमें गृहस्थी की रीतियां, गृहस्थ कर्म और श्रौत कर्म सम्मिलित हैं। इन श्रौत कर्मों का विस्तृत विवरण यजुर्वेद में है। उन्हीं का संक्षिप्त रूप श्रौत सूत्रों में दिया गया है।

३--मगध साम्राज्य

चार महाराज्य--सोलह प्रमुख राज्य जनपदों में चार प्रमुख महाराज्य थे। कोसल-अवन्ति-वत्स और मगध। इनमें कोसल प्राचीन सूर्यवंशी और वत्स प्राचीन चन्द्रवंशी था। इनकी राजधानी क्रमशः श्रावस्ती-उज्जयिनी-कोशाम्बी और राजगृह थी।

मगध साम्राज्य--इस समय यद्यपि अनेक प्राचीन राज्य नष्ट हो चुके थे, परन्तु मगध का प्राचीन राज्य बचा हुआ था। जैसे महाभारत काल में वह सब भारतीय राज्यों का मिश्रण था, वैसे ही अब भी वह अधिक प्रभावशाली था। कहना चाहिए--बुद्ध की मृत्यु के बाद इन दो ही शताब्दियों में वह बड़ा ही शक्तिशाली बन गया था। और उसके सम्राट् लगभग सारे ही भारत पर शासन कर रहे थे। बुद्ध के शासन काल में उसका शासक शिशुनाग वंशी बिम्बसार था। जिसने वैशाली, कोसल और वत्स के प्राचीन आर्य घरानों मे विवाह करके अपनी मर्यादा बढ़ाई थी। तथा अंग को जीता था। यह राजा ई० पू० ५३७ में गद्दी पर था।

इसके बाद उसका पुत्र अजातशत्रु ई० पू० ४८५ में बैठा। यह पिता का वध करके गद्दी पर बैठा। उसने कोसल और वैशाली को ध्वस्त किया। तथा वैशाली और काशी राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। उसने पातालिका दुर्ग भी बनवाया।

वैशाली संग्राम--यह संग्राम अजातशत्रु ने लगभग ई० पू० ४६५ में किया था। अष्टकुल के वैशालीगण के लिच्छवि सघ के साथ मागधों का यह युद्ध महाभारत संग्राम के बाद सबसे बड़ा युद्ध था। यह युद्ध दस दिन तक चला था। तथा इसमें कई लाख मनुष्य हताहत हुए थे। इस युद्ध के बाद पूर्वी भारत के प्रायः सभी गणराज्य समाप्त कर दिए गए थे और मगध साम्राज्य में मिल गए थे।[1]

अजातशत्रु के बाद उसका पुत्र दर्भक और उसके बाद उदयन सम्राट् हुए। उदयन ने गिरिव्रज से हटा कर पाटलिपुत्र राजधानी बनाई। उदयन का पुत्र नन्दिवर्धन और उसके बाद उसका पुत्र महानन्दिन मगध की गद्दी पर आए। महानन्दिन ई० पू० ३९० से ३७० तक गद्दी पर थे।

नन्द वंश--महानन्दिन ने एक नाउन को अपनी प्रेयसी बनाया था। उसका

---

१. महाश्री मूल कल्प।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
पुत्र उग्रसेन था। युवा होने पर राज परिवार में षड़यन्त्र करके शिशुनाग वंश के उत्तराधिकारी को मार डाला और स्वयं महापद्म के नाम से सम्राट् बन बैठा। वह एक प्रतिभाशाली और वीर सेनानी था। उसने उत्तरी भारत के बचे-खुचे भाग को भी जीत कर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। पुराणों में उसे सर्व क्षत्रान्त कृत, एकच्छत्र, एक राट्, आदि नामों से पुकारा गया है। उसने ऐक्ष्वाकु, पाञ्चाल, कौरव्य, हैहय, आदि अनेक प्राचीन राज्यवंशों और मैथिल–शौरसेन आदि जनपदों को जीत कर अपने आधीन कर लिया था। उसका राज्य पूर्व में बगाल की खाड़ी से आरम्भ होकर पश्चिम में बंगाल तक विस्तृत था। हिमालय और विन्ध्याचल पर उसका एक छत्र शासन था। महानन्द के बाद उसके आठ पुत्र परिजनों ने पचास वर्ष राज्य किया। इस वंश के नौ नन्द पुराणों में प्रसिद्ध हैं।

पहिला विदेशी आक्रमण—ई० पू० ४५६ में, जब मगध की गद्दी पर दर्शक था—ईरानियों ने सिन्धु पर आक्रमण कर सिन्ध घाटी को अधिकृत कर लिया था। इसके बाद सम्राट् साइरस ने गान्धार और तक्षशिला को भी अपने राज्य में मिला लिया। सम्राट् दारा के काल में सिन्धु नदी की सारी घाटी, पश्चिमी पंजाब का कुछ भाग ईरानी साम्राज्य में आ गया था। ईरान के शाह को इन भारतीय भागों से कर के रूप में दस लाख पौण्ड मूल्य का सोना जाता था। यह रकम समूचे ईरान के कर की आय से भी अधिक थी। ईरानी सम्राट् ने अपनी सेना में भारतीय सेना का एक दस्ता भी रखा था। जिसने ई० पू० ४७९ में 'प्लेटो के युद्ध' में भाग लिया था।

हिन्दु नाम—ईरान के इस सम्पर्क से भारतीय शिल्प और संस्कृति पर फारसी शिल्प और संस्कृति का बहुत प्रभाव पड़ा। जिसमें सर्वोपरि यह—कि उन्होंने हमें 'हिन्दु' नाम दिया।

४—सभ्य विश्व पर एक विहंगम दृष्टि

धर्म युग—ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में—जब भारत में महापुरुष बुद्ध और तीर्थंकर महावीर ने अपना नवीन धर्मचक्र चलाया था—तब उन्हीं दिनों संसार के अन्य सभ्य देशों में भी अनेक महान् सन्त और महापुरुष पैदा हो रहे थे, जो युग प्रवर्तक विचारक थे। यद्यपि वे सब एक ही काल में नहीं हुए, परन्तु उनका जन्म काल लगभग एक दूसरे से निकट ही था—इसलिए हम ईसा पूर्व छठी शताब्दी को एक धर्मयुग कह सकते हैं। इस युग में सारे ही संसार में विचारों की एक लहर उठी, जिसने शताब्दियों की दृढ़ बद्ध रूढ़ियों–रीति रिवाजों, और सामाजिक बन्धनों, तथा दिमागी गुलामियों के प्रति बुद्धिवादियों का असन्तोष और किसी ऐसी वस्तु की खोज करने के लिए बेचैन कर दिया था, जो उनके अपने तात्कालिक जीवन में लाभदायक–हितकर और सुखकर हो। सदैव ही धर्म सुधारक जन मनुष्यों के जीवन सुधारने की भावना रखते हैं। वे क्रान्तिकारी ढंग पर समाज में फैली हुई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुराइयों पर आक्रमण करते हैं खासकर पुरानी परम्परा जब जन जीवन की उन्नति की बाधक होती है, तो वे उसका साहस पूर्वक विरोध करते हैं। और अपने आचरणों उपदेशों और धार्मिक विचारों द्वारा वे उच्च जीवन का एक ऐसा उदाहरण उपस्थित करते हैं जो असंख्य लोगों के लिए पीढ़ियों तक आदर्श और प्रेरणा का स्रोत बन जाता है।

जब इस युग में भारत में बुद्ध और महावीर धर्म क्रान्ति कर रहे थे। तब चीन में कनफ्यूसस और लाओ—जे ईरान में जरदुश्त या जोरेस्टर और पाइथागोरस अपनी क्रान्तिकारी भावनाओं का सर्जन कर रहे थे। वे पुरानी रूढ़ियों पर उस युग के मनुष्यों को नए जीवन के आदर्श बता रहे थे। कनफ्यूसस की शिक्षाओं का यह परिणाम हुआ कि चीनी लोग अधिक शिष्ठ-शीलवान और सभ्य बन गए। पाइथागोरस भी महावीर तीर्थंकर की भाँति अहिंसा का प्रचारक था। वह मांस नहीं खाता था। और यहीं उपदेश वह अपने शिष्यों को देता था।

पुरातन विश्व सभ्यताएँ—मिस्र, चीन और ईराक की सभ्यताएँ भारत के समान ही प्राचीन हैं। इन प्राचीन सभ्य देशों में कितने ही साम्राज्यों का उदय हुआ और वे अस्त हो गए। वैविलौन, असीरियन, कैल्डियन प्राचीन साम्राज्य थे। वैविलोन और निनिवे प्राचीन महा नगर थे। यूनान की सभ्यता इनके बाद की है। पर वह भी उस काल में महान् था। उसकी शान शौकत कला और संस्कृति आश्चर्य जनक थी। परन्तु केवल संसार में दो ही ऐसे देश हैं, जिनके अनगिनत परिवर्तनों—युद्धों और संघर्षों के बाद भी पुरानी सभ्यता का अटूट सूत्र कायम रहा। ये दोनों देश चीन और भारत हैं।

विश्व के प्राचीन नगर—जिन दिनों यूनान में एन्थेस, स्पारटा, थीब्स और कारिन्थ जैसे प्रसिद्ध नगर अपनी उन्नत अवस्था में सभ्य ससार का केन्द्र बने हुए थे, उन्हीं दिनों रोमनगर कीबुनियाद पड़ी। आगे चलकर रोम ने यूनान को जय किया और शताब्दियों तक वह सभ्मता और संस्कृति की दृष्टि से योरोप का नेतृत्व करता रहा। लगभग इसी काल में पुरानी दुनिया का दूसरा नगर 'कार्थेज' अफ्रीका के उत्तरी तट पर आबाद हो रहा था। जो शीघ्र ही एक समर्थ बन्दरगाह और संशक्त नगर बन गया। रोम के साथ इस नगर के निरन्तर युद्ध हुए और अन्त में इस नगर को रोमन लोगों ने नष्ट कर दिया।

यूनान के नगर राज्य—यह एक मार्के की बात है, कि यूनानियों ने बड़े २ साम्राज्य नहीं कायम किए। उन्होंने छोटे २ नगर राज्यों की स्थापना की थी। उनका हर एक शहर छोटा सा स्वतन्त्र राज्य होता था। ये राज्य प्रजातन्त्र प्रणाली पर थे। इन नगरों का कोई राजा न था। धनी नागरिक ही इनमें राज्य करते थे। सर्व साधारण को राज्य के मामलों में कोई अधिकार न था। नगरों में गुलाम बेचे खरीदे जाते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे । स्त्रियों को भी कोई सामाजिक अधिकार न था । यद्यपि इस काल में यूनानी लोग दक्षिण इटली, सिसिली और भूमध्य सागर के दूसरे किनारों तक फैल चुके थे । परन्तु वे जहां कहीं भी गए, उन्होंने नए २ राज्यों ही का निर्माण किया । बड़े साम्राज्य नहीं बनाए केवल यही बात नहीं—कि इन्होंने साम्राज्य नहीं बनाए । ये नगर आपस में भी संगठित न थे । बराबर आपस में लड़ते झगड़ते थे। छोटी २ बात पर ये परस्पर लड़ पड़ते थे । यद्यपि इन नगर राज्यों की संस्कृतिक और सामाजिक रूप में आपस में बांध रखने की अनेक कड़िया थीं । इनकी भाषा एक थी, धर्म एक था, देवी देवता नहीं थे । शिक्षा, सदौर्य, व्यायाम और खेल कूदों के ये लोग शौकीन थे । बहुधा वे मिलकर अलोम्पस पर्वत पर संयुक्त पैमाने पर खेल खेलने एकत्रित होते थे ।

ईरान का साम्राज्य और भारत पर प्रथम विदेशी आक्रमण—इन दिनों मेसापोटानिया - ईरान और एशियामाइनर में एक के बाद दूसरे साम्राज्य स्थापित हो रहे थे । पहिले आसिरियन, फिर मीडियन फिर बैबिलोनियन और बाद को ईरानी साम्राज्य बने । ईरानी साम्राज्य का प्रवर्तक साइरस था । जो ई० पू० ६०० से ५२९ तक सिंहासना रूढ़ रहा । इसे महान् कहा गया है । उसने अपने साम्राज्य को बहुत बढ़ाया। इसी ने भारत पर आक्रमण कर गाँधार और तक्षशिला पर अधिकार कर लिया । भारत पर यह सबसे प्रथम विदेशी आक्रमण था । साइरस के उत्तराधिकारी दारा ने अपना सामाज्य और भी बढ़ाया । उसने मिस्र, मध्य एशिया के कुछ भाग जय किए, तथा भारत में सिन्ध घाटी तक फारस साम्राज्य का विस्तार कर लिया ।

ईरान और यूनान का संघर्ष–दारा का ईरानी राज्य केवल विस्तार ही में बड़ा न था । उसका संगठन भी बहुत उत्तम था । वह ठेठ एशिया माइनर से सिन्ध की घाटियों तक फैला हुआ था । सारे साम्राज्य में उत्तम सड़कें, जलाशय बने थे । शाही डाक का उत्तम प्रबन्ध था । दारा की साम्राज्य लिप्सा और महत्त्वाकांक्षा ने उसे यूनान पर आक्रमण करने को प्रेरित किया । पहिले आक्रमण सफल न हुआ । सेना में बीमारी फैल गई और रसद की कमी हो गई । उसे विफल मनोरथ लौटना पड़ा । इसके बाद ई० पू० ४९० में उसने यूनान पर दूसरा आक्रमण किया । इस बार उस ने जल मार्ग से चल कर एथेन्स के सामने लंगर डाला । एथेन्स वासी घबरा उठे । उनके पास ईरान के इस सम्राट् का सामने करने योग्य शक्ति न थी । एथेन्स वासियों ने अपने प्रतिस्पर्ध्वी स्पार्टा वालों से सहायता मांगी । पर सहायता पहुँचने से प्रथम ही उन्हों ने दारा को मार भगाया । यह एक विचित्र और अकल्पित विजय थी । परन्तु इस युद्ध में एक ओर एथेन्स वासी थे, जो अपनी स्वतन्त्रता, आत्म रक्षा के लिए लड़े थे, दूसरी ओर वेतन भोगी सेना थी ।

दारा परास्त होकर ईरान जाने पर मर गया; और जैरेक्सीज तख्त पर बैठा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसने एक बड़ी सेना लेकर एशिया माइनर पार किया। यह दर्रेदानियाल से उतर कर योरोप की भूमि में पहुंचा। उसकी सेना खुश्की की राह आगे बढ़ी और समुद्री बेड़ा साथ चला। परन्तु समुद्र में भारी तूफान आया, और उसके बेड़े को भारी क्षति पहुँची। फिर भी उसकी सेना इतनी विशाल थी—कि यूनानी लोग उसे देख कर डर गए। उन्होंने आपसी झगड़े भुला दिए, और ईरानियों के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा कायम किया। वे पीछे हटते गए, और थर्मोपली तक ईरानी सेना को आगे बढ़ने दिया। थर्मोपली एक तंग घाटी थी। उसके एक ओर पहाड़ था दूसरी ओर समुद्र। इस दर्रे की रक्षा लियोनिडास केवल तीन सौ स्पार्टा के निवासियों के साथ कर रहा था, उसके साथ ग्यारह सौ दूसरे यूनानी भी थे। यहाँ ईरानी सेना को रोक दिया गया। एक एक योद्धा आता और उसके मरने पर दूसरा उसके स्थान पर आता। इस प्रकार लियोनिडास और उसके चौदह सो साथी सब काम आए। यह एक वीरत्त्व का असम प्रदर्शन था। क्यों कि ईरानी सेना की अथाह शक्ति से उसकी कोई समता ही न थी। यह धर्म संग्राम ई० पू० ४८० में हुआ; जिसने थर्मोपली को पवित्र तीर्थ बना दिया। आज भी थर्मोपली जाने वाले यात्री वहां एक पत्थर पर यह लेख पढ़ते है, "ओ जाने वाले मुसाफिर, स्पार्टा को जाकर बताना कि उसकी आज्ञा पालन करने वाले हम यहाँ पड़े हैं[१]"। अन्ततः इन वीरों के बलिदान होने पर भी ईरानी सेना रुकी नहीं-वह आगे बढ़ी। यूनानियों ने हथियार रख दिए और हार मान ली। परन्तु एथेन्स नगर निवासियों ने आत्म समर्पण नहीं किया। वे नगर खाली करके जहाजों के द्वारा अन्यत्र चले गए। ईरानियों ने एथेन्स को जला कर खाक कर दिया। परन्तु यूनानियों ने अपनी जल सैन्य का संगठन कर सैलेमिस टापू में ईरानी सेना से कठिन लोहा लिया। ईरानी जल सेना नष्ट कर दी गई, और जैरेक्सीज किसी तरह बच कर ईरान पहुँचा।

यूनान का उत्थान—ईरानियों के इस पराभव के दो परिणाम हुए। ईरानी साम्राज्य धीरे धीरे गिरने लगा, और यूनानी उन्नत होने लगे। ईरान के खतरे से यूनानी आपस के भेद भाव भूल कर एक हो गए थे। पर आगे उनमें फिर फूट पड़ गई। एथेन्स और स्पार्टा एक दूसरे के सब से अधिक प्रतिद्वन्दी थे, और उनके आपसी झगड़े चलते ही रहते थे। कला और विज्ञान में इस समय यूनान उन्नति कर रहा था—इसी युग में वहाँ फीडियास जैसा अप्रतिम शिल्पी और मूर्तिकार पैदा हुआ। सौकोक्लीज, एस्किलस' यूरियेडीज, एरिस्टोकेनीज, मेनेन्डर, पिण्डार, सैकी जैसे साहित्य श्रष्ठा नाटक कार और कवि जन्म ले रहे थे। उस काल में यूनान में अनेकांगी

१—Go tell to spart thou thet passest by,
That here obediant to there words we lie.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महत्ता उत्पन्न हो रही थी। एथेन्स उस काल में सब से अधिक महत्ता धारण कर गया था। वहाँ का नेता पैरिक्लीज था, जो बड़ा राजनीतिज्ञ था। तीस बरस तक वह एथेन्स में हकूमत करता रहा। एथेन्स नगर को उसने विशाल हर्म्यों–अट्टालिकाओं और चतुष्पथों से अलंकृत कर दिया। वहाँ बड़े बड़े विचारक और कलाकार पैदा हुए। यहीं पर यूनान का वह महान् दार्शनिक रहता था –जो उस युग का सब से बड़ा आदमी था। इसका जन्म ई० पू० ४७९ में हुआ, और ई० पू० ३९९ में वह अपने नए विचारों के प्रचार करने के अपराध में विष पिलाकर मार डाला गया। वह अपने अन्त समय तक अपने शिष्य अफलातून से आत्मा की अमरता पर वार्तालाप करता रहा। वह सत्य का खोजी और सत्य का उपदेष्टा था। सरकार ने उस पर मुकदमा चलाया, और उससे कहा—कि यदि वह लोगों से बहस मुवाहिसा बन्द करदे, तो उसे रिहा किया जा सकता है, इस पर उसने जवाब दिया— यदि आप लोग मुझे इस शर्त पर रिहा करना चाहते हैं कि मैं सत्य की खोज करना छोड़ दूं, तो मैं कहूंगा कि ए एथेन्स वासियो, मैं आप लोगों को धन्यवाद देता हूँ। पर मैं आपकी बात मानने की अपेक्षा ईश्वर की बात मानूंगा जिसने—जैसा कि मेरा विचार है मुझे यह काम सौंपा है, और जब तक मेरे दम में दम हैं मैं बाज न आऊँगा। मैं बराबर अपना तरीका कायम रखूँगा, और जो कोई एथेन्सवासी मुझे मिलेगा—उससे मैं कहूंगा कि–क्या तुम्हें शर्म नहीं आती, कि तुमने अपना ध्यान धन और इज्जत के पीछे लगा रक्खा है, और सत्य–ज्ञान और आत्मा का विचार नहीं करते हो। मैं नहीं जानता कि मौत क्या है ? पर मैं उससे नहीं डरता, पर मैं अपनी जगह और जिम्मेदारी को छोड़ कर भाग नहीं सकता।

अफलातून—इसे प्लेटो भी कहते हैं। यह सुकरात का शिष्य था। इसका जन्म ई० पू० ४२७ में हुआ, तथा ई० पू० ३४७ में वह मर गया। उसने एथेन्स में दर्शन और राजनीति–तथा अर्थशास्त्र के विद्या शिविर खोले तथा अनेक ग्रन्थ लिखे; जिनमें प्लेटो का प्रजातन्त्र, विश्व विख्यात है।

अरस्तू—सम्भवतः अरस्तू अफलातूं का शिष्य था। वह दूसरे ढङ्ग क दार्शनिक था। अफलातूं और सुकरात की भांति वह केवल तत्त्वज्ञान ही की चर्चा नहीं करता था। वह राजनीति और समाज शास्त्र का भी पण्डित था। अर्थशास्त्र को वह वैज्ञानिक दृष्टि से देखता था। वह प्राकृतिक विज्ञान में भी रुचि रखता था। वास्तव में वहदार्शनिक की अपेक्षा वैज्ञानिक और अर्थ शास्त्री अधिक था। उसे विश्व-विजयी सिकन्दर के गुरु होने का सुअवसर मिला। इसमें असाधारण प्रतिभा और विद्वत्ता थी। आज भी पश्चिमी राजनीति–तर्क और दर्शन का ज्ञान विद्यार्थी को उस समय तक नहीं हो सकता,जब तक वह इस महान् विचारक के ग्रन्थ न पढ़ डालें। इस का 'एनीति' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिकन्दर की पूर्व भूमि—सिकन्दर अपने गुरु का योग्य शिष्य था। इस गुरु ने उसकी प्रतिभा, तेजस्विता और महत्त्वाकांक्षा को समझ लिया और उसने उसे एक महान् सम्राट् और विश्वविजयी की भांति ढालना आरम्भ किया। उसने उसे विश्व की जातियों के रहन सहन–संस्कृति–राजनीति से परिचित किया। यूनान के नगर राज्यों के दोषों पर उसने विचार किया था, वह पड़ौसी ईरानी साम्राज्य के संगठन से वह प्रभावित था। उसने बालक सिकन्दर के मस्तिष्क में साम्राज्य की महत्ता भर दी। वातावरण इसके अनुकूल था। साहसी–तेजस्वी–प्रतिभाशाली सिकन्दर विश्व-साम्राज्य के सुपने देखने लगा, और अपनी उतावली प्रकृति के कारण उसने समय से कुछ पहिले—बीस वर्ष की अवस्था ही में तलवार उठाली। और उसके समर्थ गुरु ने उसके मस्तिष्क में जो साम्राज्य संगठन की रूपरेखा बना दी थी, उसे मूर्त रूप देने को उसने रकाब में पैर डाला।

५—सिकन्दर का अभियान

सिकन्दर—वास्तव में शुद्ध यूनानी न था। वह मकदूनिया मेसीडोनिया का निवासी था, जो यूनान के ठीक उत्तर में है। मकदूनिया वाले बहुत बातों में यूनानियों से समानता रखते थे। सिकन्दर का पिता फिलिप मकदूनिया का सरदार था। वह योग्य शासक था। अपने नगर राज्य की सुरक्षा के लिए उसने एक छोटी-सी परन्तु सुगठित सेना संग्रहीत कर ली थी। इसलिए सिकन्दर आगे जो करना चाहता था उसकी पृष्ठभूमि उसके पिता ने पहिले ही से तैयार कर ली थी। उसके गुरु ने उसे राजनीति और रणनीति की उत्तम शिक्षा दी थी। उसने उसमें यूनान का एक ऐसा विशाल साम्राज्य स्थापित करने की योजना की भावना अंकुरित की थी, जिसके आधीन सारा ही विश्व हो। वह विश्व विजय करके महान् साम्राज्य स्थापित करने के सुपने बचपन ही में देखा करता था। उसने अपने पड़ौसी ईरान के साम्राज्य की, ईरान के यूनान पर अभियान की बहुत-सी बातें सुन रखी थीं। वह न केवल फारस के समान अपना महान् साम्राज्य स्थापित करना चाहता था, अपितु वह फारस को जय करके यूनान पर उसके आक्रमण का खरा जवाब देने को उतावला हो रहा था। वह वीर–साहसी–चतुर और धैर्यवान् था। पर क्रोधी और जल्दबाज था। आगे चलकर वह इतिहास में पहिला विश्व-विजयी माना गया। उसने अनेक देश जीते। बीसियों शहर उसके नाम पर बसाए गए। परन्तु उसकी अन्तिम इच्छा पूरी नहीं हुई। वह सम्राट् न बन सका। उसने जो क्षणिक साम्राज्य स्थापित भी किया, वह शीघ्र ही बालू की दीवार की भांति ढह गया।

रकाब में पैर—बीस ही वर्ष की आयु में वह अपने पिता के नगर राज्य का स्वामी हो गया। महत्ता प्राप्त करने के होसले से वह ओत-प्रोत था। उसने अपने पिता की सेना लेकर फिनीशिया पर अधिकार कर लिया। इस से यूनान पर उसकी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाक बैठ गई। अब उसने अपने पुराने शत्रु ईरान पर आक्रमण करने के लिए समूचे यूनान को उभारा। यूनानी न फिलिप को चाहते थे, न सिकन्दर को। परन्तु कुछ तो उस से दब कर, और कुछ ईरान से बदला लेने की भावना से उसके झण्डे के नीचे आ गए। और सब ने एक मत हो ईरान पर धावा करने वाली सेना का सेनापति सिकन्दर को मान लिया।

थीब्स का विनाश—थीब्स नगर ने सिकन्दर का आधिपत्य नहीं स्वीकार किया और बलवा कर दिया। इस पर थीब्स पर उसने आक्रमण कर क्रूरता पूर्वक नगर को नष्ट कर डाला। इमारतें ढहा दीं, बहुत से नगर निवासियों को कत्ल कर डाला। बहुतों को गुलाम बना कर बेच दिया। इस से उसका आतंक सारे यूनान पर छा गया।

ईरान पर अभियान—अब वह ईरान की ओर अग्रसर हुआ। और पहिली ही मुठभेड में ईरान के बादशाह तीसरे दारा को, जो सैरेब्लीज का उत्तराधिकारी था, परास्त किया। इस बड़ी विजय से उसकी सेना के होसले बढ़ गए; और उसने मिस्र को—जो उस समय ईरान के आधीन था, जीत लिया। दूसरी बार उलट कर वह फिर ईरान पर आ टूटा। दारा इस बार विशाल सैन्य लेकर मैदान में आया, पर उसे मुंह की खानी पड़ी। एक लाख सैनिक उसके खेत रहे। और सिकन्दर ने राजधानी परसी पोलिस में घुस कर दारा के विशाल और शानदार महल को आग लगा कर भस्म कर दिया। और कहा—यह एथेन्स को भस्म करने का बदला है। इस अवसर पर दारा ने भारत के पुरुवर्ष से सहायता मांगी थी, पर पुरुवर्ष उसकी सहायता न कर सका। इस युद्ध में ईरानियों ने भारत की तलवारों का उपभोग किया था। मिस्र को जीत कर उसने वहाँ सिकन्दरिया नगर की नींव डाली। जो आगे संसार का प्रसिद्ध नगर बन गया। अब वह उत्तर की ओर बढ़ा, और बैक्ट्रिया, काबुल तथा अन्य छोटे-बड़े राज्यों को जय करता हुआ ई० पू० ३२७ में हिन्दुकुश आ पहुँचा। काबुल में उसने एक दुर्ग बनवाया, और एक वर्ष वहाँ ठहर कर वहाँ की दुर्दान्त जातियों से लड़ता रहा।

भारत की ओर—इसके बाद वह भारत को जय करने की महत्त्वाकांक्षा से भारत की ओर बढ़ा। भारत की समृद्धि—धन और सांस्कृतिक श्रेष्ठता की बड़ी-बड़ी कहानियां उसने सुनी थीं। वह सम्भवतः भारत ही को अपने साम्राज्य की राजधानी बनाना चाहता था। भारत की ख्याति ने उसकी आकांक्षाओं को बढ़ा दिया था। उसने खैबर का दर्रा पार कर, अटक के पास सिन्ध नद पार किया। भारत में पैर रखते ही उसे पद-पद पर छोटी-छोटी शक्तियों से लोहा लेना पड़ा। उन दिनों पश्चिमी पंजाब में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे। वे आसानी से आत्म समर्पण करने को तैयार न थे। पहिले उसने अश्मकों से मुठभेड़ की—इस राज्य को जीत कर उसने यहां कुछ भारतीय सेना संग्रह की। पर वह विद्रोही हो गई। उसने उन पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आक्रमण कर दिया, और उनके साथ लड़ते हुए अश्मक राज्य के सब स्त्री-पुरुष कट मरे।

ऐसे वीर और आग्रही शत्रुओं से उसका अभी तक सामना नहीं हुआ था। वह इन छोटी-छोटी शक्तियों से युद्ध करके अपनी सेना को थकाना भी न चाहता था। वह आगे बढ़ा तो झेलम और चुनाब के बीच पुरुवर्ष ने उसका अवरोध किया।

पुरुवर्ष से युद्ध—ज्यों ही उसने झेलम को पार किया—उसने पुरुवर्ष में अटल चट्टान की भाँति खड़े पुरुवर्ष को देखा। सिकन्दर असमंजस में पड़ गया। परन्तु अंधेरी रात में जब घोर वर्षा हो रही थी, और नदी में बाढ़ आई हुई थी, उसने चुपचाप नदी पार कर पुरुवर्ष पर आक्रमण कर दिया। घनघोर संग्राम हुआ। भाग्य और प्रकृति दोनों ही पुरुवर्ष से विमुख हो गए। वर्षा की कीचड़ में उसके रथ के पहिए फँसकर जाम हो गए और हाथी फिसल पड़े। पुरु वीरता पूर्वक लड़ा। उसे नौ घाव लगे। पर विजय सिकन्दर की हुई। जब उसे बन्दी करके सिकन्दर के सामने लाया गया—तो उसकी वीरता तथा स्वाभिमान से प्रभावित हो कर, तथा दूरदर्शिता से राजनीति का विचार कर, सिकन्दर ने उससे मित्रता कर ली, और, उसका राज्य तथा कुछ और सूबे देकर उसे लौटा दिया। तक्षशिला के राजा आभी ने उसकी आधीनता स्वीकार कर ली, अब वह रावी पार करके कठराज्यों को जीतता हुआ व्यासके किनारे पहुँचा। परन्तु यहीं उसके गुप्तचरों ने उसे सूचित किया कि उस ओर मगधका धनगुप्तनन्द चार हजार हाथी, बीस हजार सवार, और दो लाख पैदल सेन्य लिए उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। उसकी सैन्य ने साहस छोड़ दिया। और आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। पुरु यद्यपि इस युद्ध में परास्त हो गया था—पर भारतीय युद्ध कला और वीरत्व की छाप यवन सैनिकों के हृदयों पर अंकित हो गई थी। और भारतीय सैनिकों के बल पराक्रम की ऐसी धाक उनके मन पर बैठ गई थी कि उससे उनका साहस समाप्त हो गया था, उस समय नन्दवंश का आतंक सारे भारत पर छाया था। सिकन्दर स्वयं एक साहसी योद्धा था। फिर उसकी महत्वाकांक्षा बहुत भारी थी। परन्तु यूनानी सैनिकों ने अभी साम्राज्य के सुपने नहीं देखे थे। सिकन्दर ने उन्हें शौर्य का स्मरण कराया। इतिहास में उनका नाम अमर रहेगा—यह बताया। परन्तु इसका कोई नतीजा न निकला। वह दुःख से आहत होकर तीन दिन तक अपनी खेमे में से बाहर नहीं निकला। सिपाही अपने २ घर लौटने को उतावपले हो रहे थे। और अब उनसे कोई आशा नहीं की जा सकती थी। अन्त में उसने उन्हें वापस लौटने की आज्ञा दे दी। उसने झेलम और व्यास की मध्यवर्ती भूमि का शासक पुरुवर्ष को बनाया। तथा एक यूनानी सेनापति सिन्ध और आस पास के राज्यों की देखभाल को छोड़ा। और झेलम के ऊपरी भाग पर दो हजार किश्तियों का बेड़ा बनवाकर अपनी एक लाख बीस हजार सेना लेकर वापस फिरा।

वापसी—वापसी में भी उसे अनेक लड़ाकू जातियों से लोहा लेना पड़ा। परन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जयश्री उसी को मिली। इस समय वह अधिक क्रूर और हिंसक हो रहा था। पराजित राज्यों में कत्ल आम करता और आग लगाता वह जा रहा था। इस समय उसकी प्रिय लोग स्वतन्त्रता के प्रति सद्भाव की भावना समाप्त हो चली थी। उसके क्रूर कत्ले आम से भयभीत होकर कुछ राज्यों ने उससे संधिकर ली। वह सिन्ध नद के मुहाने पर पहुँच गया। यहां से उसने अपनी सेना के तीन भाग किए। एक भाग को आधुनिक सक्टवर शिकारपुर, क्वेटा, कधार और शास्तान की राह फारस भेज दिया। दूसरा भाग उसने जल-सेनापति नीरकीस की अध्यक्षता में सागर पथ से सामुद्रिक बेड़े के द्वारा भेजा। तीसरे भाग को उसने अपनी अध्यक्षता में रक्खा। और मेड्रोलिया (मकरान) की राह चलकर वह सूसा (शुशा) पहुंचा। यहां से चलकर वह एक वर्ष में बैबिलोनियां पहुंच गया। जहां मलेरिया से उसका ३३ वर्ष की आयु में ई० पू० ३२३ में देहान्त हो गया।

सिकन्दर के मनसूबे--भारत में आकर उसने पुरुवर्ष को जीता तो पर यह जीत उसे महंगी पड़ी। फिर दैवी सहायता से ही उसे यह विजय हाथ लगी थी। सिकन्दर पुरु के व्यक्तित्व-साहस और डील डौल ही से नहीं प्रभावित हुआ--उसे यह भी भय हुआ कि आगे न जाने कितने पुरुओं से मुकाबला करना पड़ेगा। और अभी तो उसे मगध के नन्द का सामना करना था। जिसकी अपार शक्ति का सारा समाचार उसके जासूसों ने उसे दे दिया था, इससे उसने केवल उदारता वंश ही नहीं--राजनितिक दूर-दार्शिता से भी यही ठीक समझा कि यह अधिक उपयुक्त होगा कि इसे कृतज्ञता पाशयों बान्ध लिया जाय। और वीरत्व तथा उदारता का संयुक्त उदाहरण उपस्थित किया जाय। जिससे और राजाओं से सुलह-सन्धि की राह खुले। तभा छोटे २ युद्धों के खतरे कम हों। क्योंकि उसकी दृष्टि मागधी सेना पर थी। वह अपनी शक्ति इन छोटे राजाओं में नष्ट करना नहीं चाहता था। वह समूचे भारत को जय करके पूरी एशिया का चक्रवर्ती सम्राट् बनने के सुपने देख रहा था। इसी से वह पंजाब की इन छोटी शक्तियों को मित्र बनाकर-उन्हें अपने पीठ का शत्रु बनाने की बजाय सहायक तथा पृष्ट-स्तम्भ बनाना चाह रहा था। इसी से उसने भारतीय सैन्य भी संग्रह की थी। पर इसमें उसे आंशिक सफलता मिलने पर भी उसका मनोरथ विफल ही रहा। उसकी सेना ने आगे बढ़ने का साहस न किया। वह पीछे लौट गया। और बैबिलोन पहुँचकर मर गया। एक बार रकाब में पैर देकर वह जीवित अपने घर मकदूनिया में नहीं लौटा।

वह बहुत ही कम आयु में मर गया। उसने अपनी छोटी सी जिन्दगी में कुछ शानदार लड़ाइयां जरूर जीतीं। उसके महान सेनापति होने में संदेह नहीं। लेकिन अभिमान और निर्दय आचरण ने उसके यश में धब्बा लगा दिया। कभी २ वह अभि-मान से अपने को जुपिठर का पुत्र और देवता कहाता था। उसने केवल सन्देह ही में अपने शुभ चिन्तकों को कत्ल करवा दिया था। नगर के नगर उसने विध्वंस कर डाले।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निस्सन्देह उसने एक साम्राज्य की स्थापना कर ली। पर उसे स्थायी बनाने की कोई ठोस बात उसने नहीं की। न सड़कें बनाईं, न यातायात-व्यापार-व्यवस्था कुछ की। मौत उसकी अकस्मात ही हुई। कदाचित् जीवित रहता तो कुछ करता। पर वह तो अपने को विश्वविजयी समझता था। एक बार तो बैठा २ वह इस बात पर रो उठा—कि अब जीतने को मेरे सामने कोई देश नहीं रहा। पर हकीकत तो यह थी—कि भारत का उसने केवल पश्चिमोत्तर प्रदेश का कुछ भाग ही जीता था। चीन की ओर तो वह गया ही नहीं, जो उस समय बड़ा राज्य था। इसलिए वह विश्वविजयी तो नहीं कहा सकता था।

सिकन्दर के बाद—उसके मरने पर उसके साथियों ने आपस में एक दूसरे को कत्ल कर दिया। इससे उसका साम्राज्य भंग हो गया। उसके सेनापतियों ने राज्य बाँट लिया। मिस्र में टालमी ने अपना राजवंश स्थापित किया, और एक दृढ़ राज्य की नींव डाली। उसने सिकन्दरिया को राजधानी बनाया। आगे सिकन्दरिया कला-दर्शन और विज्ञान-विद्या का एक प्रसिद्ध नगर बन गया। ईरान-ईराक और एशिया माइनर का दूसरा भाग सेनापति सेल्यूकस को मिला। उसी ने भारत के उत्तर-पश्चिमी विजित भारत पर भी अधिकार किया। पर उसका भारत में अधिकार कायम न रह सका। सिकन्दर की मृत्यु के कुछ बाद ही यूनानी सेना को वहाँ से मार भगाया गया।

सिकन्दर की विजयों से यूनान का नाम चारों ओर दूर २ तक फैल गया था। परन्तु उसकी संस्कृति धीमी पड़ गई थी। उसका स्वर्ण युग तेजी से समाप्त हो रहा था। सिकन्दर के पूर्वी धावे का यह परिणाम तो अवश्य हुआ कि पूर्व और पश्चिम के बीच नया सम्पर्क स्थापित हो गया। यूनानी लोग पूर्व की ओर बढ़ कर बहुत बड़ी संख्या में पुराने नगरों और अपने बसाए हुए शहरों में आ बसे। यद्यपि सिकन्दर के प्रथम भी पूर्व और पश्चिम में व्यापार सम्पर्क था, परन्तु सिकन्दर के बाद उसमें और बढ़ौतरी हुई। परन्तु यूनानियों के लिए सिकन्दर का आक्रमण दुर्भाग्य ही कहना चाहिए। उसके सैनिक अपने साथ ईराक के दलदलों से मलेरिया के मच्छर यूनान में ले गए। इस से वहाँ ऐसा मलेरिया फैला कि उस से यूनानी जाति ही कमजोर हो गई। स्वयं सिकन्दर की मृत्यु भी मलेरिया से हुई।

भारत पर प्रभाव—सिकन्दर भारत में आंधी की भांति आया, और तूफान की भांति चला गया। वह केवल एक आक्रांत की भांति ग्यारह मास भारत भूमि पर रहा। कहा जाता है कि उसके इस अभियान से भारतीय सस्कृति पर प्रभाव पड़ा। परन्तु वास्तव में भारत के सम्पर्क यूनान और फारस से बहुत पहिले ही से थे। इस अभियान से कुछ और परिचय बढ़ा। यूनानी युद्ध कला और सैनिक वृत्ति से भारतीयों के प्रत्यक्ष परिचय हो गया। एक हद तक भारतीय और यूनानी सम्पर्क सभ्यता मिल जुल गई। मुख्य बात यह है कि इस घटना से भारत को एक नया नाम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिला इन्डिया'। इन्डिया 'इन्डास' शब्द से बना है। इन्डास की उत्पत्ति इन्डस नदी (सिन्धु नदी) से हुई है। सिन्धु पार करने ही से भारत का नाम जैसे फारस वालों ने 'हिन्द' रखा था—वैसे ही यूनानियों ने 'इन्डिया' रखा जो, सारे योरोप ने मान्य किया।

मौर्य वंश की स्थापना—परन्तु सिकन्दर के भारत पर अभियान करने से जो एक महान् घटना-घटी वह मौर्य राज्य की स्थापना थी।

६—नए काल का उदय

महान् राजनैतिक घटना—भारत की राजनीति में चन्द्र गुप्त का प्रवेश महान् राजनैतिक घटना थी। चन्द्रगुप्त के साथ भारत में एक नए काल का आरम्भ हुआ। इस नए काल की सबसे बड़ी राजनैतिक घटना यह हुई—कि चन्द्रगुप्त की बुद्धि और शौर्य से इस युग में सम्पूर्ण उत्तरी भारत पहिले पहिल एक छत्र के नीचे आया। महाभारत के बाद से चली आती हुई अनाक्रामक नीति भंग हुई। जिसने भारत में अनेक छोटे राज्यों को जन्म दिया था।

दो महान् गुरु—जिस समय यूनान का विश्व विख्यात दार्शनिक अरस्तू युवक सिकन्दर को दर्शन-राजनीति-गणित और युद्ध नीति की शिक्षा देकर विश्व के सब से बड़े साम्राज्य की स्थापना के लिए तैयार कर रहा था, उसी समय भारत में वैसा ही महान् राजनीति का समर्थ आचार्य और अर्थशास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित चाणक्य एक दूसरे युवक चन्द्रगुप्त को नए युग के नवीन साम्राज्य की स्थापना की शिक्षा दे रहा था। और जिस समय सिकन्दर भारत से विफल मनोरथ लौट रहा था, चन्द्रगुप्त नए साम्राज्य की स्थापना के लिए रकाब में पैर डाल रहा था। जिस समय सिकन्दर ने वेबिलोनिया में अन्तिम सांस ली। उस समय चन्द्रगुप्त मगध के सिंहासन पर चढ़ रहा था।

आर्य चाणक्य का महान् व्यक्तित्व—आर्य चाणक्य इस काल का शीर्ष-स्थानीय व्यक्ति है। भारतीय संस्कृति में जो महान् उलट फेर हुए, उनका अधिकांश श्रेय इसी महापुरुष को है। इस पुरुष ने तीन महत्कार्य किए :—

(१) भारत संग्राम के बाद की अनाक्रामक नीति को भंग कर सम्पूर्ण भारत का एक महासाम्राज्य स्थापित किया।

(२) एक अनार्य और अक्षत्रिय व्यक्ति को सम्राट् बनाया, और प्राचीन आर्य परम्परा का उल्लंघन करके (जिसमें अश्वमेध करने पर ही सम्राट् की उपाधि दी जाती थी) चन्द्रगुप्त को बिना ही अश्वमेध के सम्राट् घोषित कर दिया। आर्य सम्राटों की भांति अश्वमेध नहीं कराया।

(३) उसने सब गण तन्त्रों और जनपदों को भी समाप्त कर दिया, जिनका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यापक संगठन दार्शनिक युग में हुआ था। अब तक साम्राज्य आर्य राजाओं के थे। शूद्र महानन्द तो अपनी सामर्थ्य से सम्राट् बन बैठा था। परन्तु चन्द्रगुप्त को तो चाणक्य ने ब्राह्मण आर्य होते हुए प्रश्रचय दिया। इस घटना से आर्यों और संकर जातियों का एक बार फिर राजनैतिक और सामाजिक सहयोग हो गया। और उसी का यह परिणाम हुआ कि आर्यों और संकरों—एवं बाहर से आए हुओं को मिल कर आज की हिन्दु जाति बनने की नींव जमीं। इस प्रकार चाणक्य ने न केबल राजनैतिक एकता पैदा की—उसने सामाजिक, साँस्कृतिक एकता भी दृढ़ की। प्रजातन्त्रों और जनपदों को भंग करने के उपाय उसने अपने अर्थशास्त्र में लिखे हैं।[१]

चाणक्य का कौटिल्य—आर्य चाणक्य की कूटनीति ऐसी सफल और प्रसिद्ध हुई कि उनका नाम ही कुटिल प्रसिद्ध हो गया। उन्हीं की कुटिल नीति ने प्रबल नन्द वंश का नाश किया, और मौर्यों के साम्राज्य की स्थापना की। यहां हम चाणक्य की कूटनीति का यत्किंचित दिग्दर्शन करेंगे।

तक्षशिला में आचार्य होने के बाद चाणक्य पाटलिपुत्र आया और चन्द्रगुप्त को अपने साथ तक्षशिला ले गया। उस समय महापद्मनन्द बूढ़े हो चले थे, और उनका अधिकार लड़के छीनना चाहते थे। इस से शासन में अव्यवस्था आगई थी। चन्द्रगुप्त के तक्षशिला जाने के एक वर्ष बाद ई० पू० ३३३ में महापद्म की मृत्यु हो गई। चाणक्य को पाटलीपुत्र के विग्रह का रत्ती २ हाल मिलता रहा, और वह अपनी योजना स्थिर करता रहा।[२] चन्द्रगुप्त के बड़े भाई शशिगुप्त को उसने युद्ध शिक्षा प्राप्त करने पहिले ही पच्छिम भेज दिया था, जो वाह्लीक के क्षत्रप विश्व (Bessus) की सेना में भरती हो गया था। और अपने अनुयायियों का गुट्ट बनाने लगा था।

जब सिकन्दर ने भारत पर अभियान किया, तो शशिगुप्त उस से जा मिला। सिकन्दर ने अरुण गिरि विजय कर वहाँ का शासक उसे ही बना दिया। ये सब काम उसने चाणक्य की आज्ञा से ही किए थे। अब; जब सिकन्दर आगे बढ़ा तो सिन्धु नद पार करते ही तक्षशिला के तरुण अधिपति आंभी ने चाणक्य के ही परामर्श से तीन हजार बैल और दस हजार भेड़ भेंट भेज कर सिकन्दर से मैत्री याचना की।[3]

उधर नन्द मन्त्री शकटार से मिलकर चाणक्य नन्दवंश के नाश का निरन्तर उपक्रम कर रहा था। शकटार स्वयं नन्दवंश का नाश किया चाह रहा था। शकटार से बराबर चाणक्य का व्यवहार चलता था।

१—कौटिलीय अ० ११ अ० १

२—V. A. Smith p. 5।

३—V. A. Smith P. 5।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ई० पू० ३३३ में जब महापद्मनन्द की मृत्यु हुई, तब चन्द्रगुप्त की आयु १२ वर्ष की थी। इसी आयु से उसे चाणक्य कूटनीति की शिक्षा देता आता था। महापद्म की मृत्यु के बाद शकटार ने उसके आठों पुत्रों को परस्पर लड़ा मारा। अन्त में धन नन्द बचा। यह सारी घटनाएँ ८–१० वर्ष में हो गईं। और चन्द्रगुप्त युवा हो गया। उसकी शिक्षा भी पूरी हो गई। अब सेना की आवश्यकता थी। परन्तु चाणक्य का दूसरा शिष्य चन्द्रगुप्त का बड़ा भाई शशिगुप्त प्रथम ही बाह्लीक और अरुण गिरि में सिकन्दर का विश्वास भाजन बन कर वहां का शासक बन गया था, तथा अच्छी सैन्य संग्रह कर चुका था। तक्षशिला का युवक राजा दुर्बल और असहाय था। चाणक्य और शकटार के षड़यन्त्रों के कारण तथा साम्राज्य की दशा डगमग होने से उधर से सहायता की उसे कोई आशा न थी। चाणक्य ही ने आस पास के राजाओं को उसके विरुद्ध उभार रक्खा था। इन सब बातों से भयभीत होकर ही उसने चाणक्य की सलाह से सिकन्दर को भेंट भेजकर मैत्री याचना की थी। आभी ने सिकन्दर का आतिथ्य किया और पांच सहस्र सेना उसे दी। जिन्हें लेकर उसने पुरुवर्ष से युद्ध किया। पुरुवर्ष तक्षशिल का विरोधी था। पुरुवर्ष ने पराजित होकर भी अपनी वीरता से सिकन्दर को प्रसन्न कर लिया और मित्र बना लिया। सिकन्दर भारत में प्रविष्ट होना चाहता था, और इसके लिए उसे पुरुवर्ष जैसे मित्रों की आवश्यकता थी।

पुरुवर्ष की पराजय से आभी का काम तो हो गया, पर चाणक्य का कार्य सिद्ध नहीं हुआ। सिकन्दर का आगे बढ़ने का प्रस्ताव उसे पसन्द न था। उत्तर भारत का विशाल साम्राज्य वह चन्द्रगुप्त को दिलाना चाहता था, अतः उसने गहरी कूटनीति खेली। चन्द्रगप्त सिकन्दर से तक्षशिला में मिला और उसके साथ रहने लगा। उसने यवनों की रणनीति सीखी। और जब सिकन्दर ने आगे बढ़ने का इरादा किया तो चन्द्रगुप्त ने यवन सैनिकों को बहका दिया। उन्हें उसने बड़े-बड़े भय दिखाए और विश्वास दिलाया कि आगे ऐसे युद्ध होंगे कि कोई सैनिक जीता घर वापस न जा सकेगा। यवन सेना ने वितस्ता (झेलम) के युद्ध में भारतीयों की रण सज्जा देख ही ली थी। अतः वह हिचक मिचक करने लगी। इसी बीच चाणक्य के कौशल से पौरस द्वितीय जिसने सिकन्दर की आधीनता स्वीकार कर ली थी, विद्रोही हो गया।[1] यह चन्द्रगुप्त का मित्र था। सिकन्दर ने इसे दबाने को रावी पार की – जहाँ उसे अनेक शत्रुओं का सामना करना पड़ा।[2] इसका सेना पर बुरा प्रभाव पड़ा। चन्द्रगुप्त ने सेना को बिल्कुल हताश कर दिया था। अन्ततः व्यास

१—V, A. smith, Early history of India.

२—इन शत्रुओं में मालव–क्षुद्रक आदि अनेक जातियाँ थीं। इन सब के पास ९००० पदातिक और १० हजार सवार तथा ८०० रथ थे। History of India (smith)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को पार करते २ सेना की हिम्मत टूट गई, और उसने आगे बढ़ने से कतई इन्कार कर दिया। सिकन्दर ने सेना को लाख समझाया; प्रलोभन दिए—पर व्यर्थ। सिकन्दर तीन दिन तक इसी दुःख से दुखी पड़ा रहा। अपने खीमे से भी नहीं निकला। अन्त में उसने सेना को लौटने की आज्ञा दी। चाणक्य और चन्द्रगुप्त की अभिसन्धि सफल हुई।[1] जब सिकन्दर को चन्द्रगुप्त की इन चालों का पता लगा तो उस से चन्द्रगुप्त की खूब नोंक-झोंक चलीं। चन्द्रगुप्त उसे खरी २ सुना कर चलता बना, और सिकन्दर भग्न मन भारत से लौट चला।

यह घटना ई० पू० ३२६ में हुई। उस समय पाटलिपुत्र में धननन्द राज्य करता था। उसके पास महती सेना थी और वह भारी सैन्य लेकर सिकन्दर के सम्मुख चला भी था; पर युद्ध हुआ ही नहीं।

चन्द्रगुप्त का अभियान—चन्द्रगुप्त ने पंचनद के राजाओं को मिला और शशिगुप्त की सहायता ले पंजाब में विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। और दो-तीन ही वर्ष में भारत से यवन शक्ति का बीज नाश कर दिया। अब वह पाटलिपुत्र की ओर बढ़ा। उसके साथ तक्षशिला का राजा, पौरस द्वितीय, शौभूति और कलिङ्गपति आदि राजा थे। उसने ई० पू० ३२३ से ३२१ के बीच धननन्द को मार कर पाटलीपुत्र हस्तगत किया, और ई०पू० ३२१ में पाटलीपुत्र के सिंहासन पर बैठा। नन्दों के उन्मूलन में चाणक्य को १२ वर्ष लगे।[2]

चाणक्य चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर बैठा कर ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने उसके सब शत्रुओं का भी विनाश किया और सुयोग्य मन्त्री राक्षस को—जो नन्द वंश का पुराना मन्त्री था, छल बल से राजी करके मन्त्री पद पर अभिषिक्त किया। इसके बाद उसने अर्थशास्त्र की रचना की और उसी के अनुसार राज्य का शासन करने की सलाह चन्द्रगुप्त को देकर स्वयं तपोवन को चला गया।

विष्णु गुप्त चाणक्य—चाणक्य का पूरा नाम विष्णु गुप्त चाणक्य था। कामन्दकीय नीतिसार के प्रारम्भिक श्लोकों के अनुसार वह विशाल वंश्य के कुल का था। वह महा तेजवान्, विश्रुत, चतुर्वेदविद्, और सब अर्थशास्त्रों का पण्डित था। मुद्राराक्षस के टीकाकार ढुंढिराज का कहना है—कि वह नीतिशास्त्र प्रणेता चणक का पुत्र था। पुरुषोत्तम की भाषा वृत्ति में लिखा है कि चणक ग्राम में जन्म लेने से इनका नाम चाणक्य हुआ।[3] वह तपोवन में दीर्घ काल जीवित रहकर विन्दुसार के राज्यकाल में मरा। उसे आमात्य सुवन्धु ने उसी की कुटिया में जला दिया।[4]

१—V. A. Smith.

२—मत्स्य पुराण २७२। २२।

३—महाभाष्य १।१।२४।५।३।५२।

४—परिशिष्ट पर्व।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

७—कौटिलीय अर्थशास्त्र

कौटिलीय अर्थशास्त्र—चाणक्य के अर्थशास्त्र को कौटिलीय अर्थशास्त्र कहा जाता है। संस्कृत साहित्य में यह ग्रन्थ अपना प्रथक् स्थान रखता है सबसे प्रथम इस ग्रन्थ को सन् १९०९ में मैसूर राजकीय ग्रन्थशाला के अध्यक्ष श्री श्याम शास्त्री ने प्रकाशित किया था तथा इसका अंग्रेजी भाषान्तर भी किया था। तभी से संसार के पण्डितों का ध्यान इस पर गया और तब से अब तक इस दुरूह ग्रन्थ को ठीक २ समझने की चेष्टा विद्वान् निरन्तर कर रहे हैं। कुछ दिन बाद इसकी एक प्राचीन टीका— चन्द्रिका भी प्राप्त हुई। जो यद्यपि अपूर्ण थी—परन्तु इससे इस ग्रन्थ की बहुत सी गुत्थियां सुलझ गईं। इसके बाद महामहोपाध्य गणपति शास्त्री ने प्राचीन टीकाओं के आधार पर अर्थशास्त्र की संस्कृत भाषा में एक विषद व्याख्या प्रकाशित की। जिससे अब यह ग्रन्थ बहुत प्रकाश में आ गया है।

ग्रन्थ का महत्त्व—यह महा कठिन ग्रन्थ हैं। इसमें अनेक अप्रसिद्ध परिभाषिक शब्द है। विषय संकेत से वर्णित है। और अभी तक इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में बहुत उलझनें शेष हैं।

विषय :—

१—विनयाधिकरण—आमात्य, गुप्तचर और राज पुरुषों की नियुक्ति तथा व्यवस्था के सम्बन्ध में।

२—अध्यक्ष प्रचार—राजपुरुषों के कर्तव्य व्यवस्था के सम्बन्ध में।

३—धर्मस्थी – न्याय और कानून के सम्बन्ध में।

४—कण्टक शोधन दण्ड और संरक्षा के सम्बन्ध में।

५—योग वृत्त—राज्य व्यवस्था के सम्बन्ध में।

६—मण्डलयोनि—प्रकृतियों के गुण। शान्ति और उद्योग। षाडगुण्य—राज्य वर्धन—समृद्धि वर्धन—और राज कार्य के सम्बन्ध।

८—व्यसनाधिकारक—पारस्परिक व्यवहार के सम्बन्ध में।

९—अभियास्यत्कर्म—सैनिक तैयारी के सम्बन्ध में।

१०—सांग्रमिक —सैन्य व्यवस्था और छावनी आदि के सम्बन्ध में।

११—संघ वृत्त भेद के प्रयोग और उपोशुदण्ड—आवलीयस—मन्त्र युद्ध के सम्बन्ध में।

१३—दुर्गलम्भोपाय—दुर्ग जय करने के सम्बन्ध में।

१४—औपनिषदिक—परघात प्रयोग के सम्बन्ध में।

१५—तन्त्रयुक्ति –गूढ़ उपदेशों के सम्बन्ध में।

८—मौर्यों की शासन व्यवस्था

मौर्यों का शासन—मौर्यों का शासन सूत्र तीस विभागों में बंटा था। उनकी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चतुरंगिणी सेना थी। जिसमें जल सेना की विशेषता थी।

सेना—चन्द्रगुप्त की सेना में ९०० हाथी, ८००० रथ, ३० हजार घोड़े और ६ लाख पैदल थे। इन्हें नियमित वेतन मिलता था[२]।

सेना की व्यवस्था—सेना की व्यवस्था तीस सभासदों के एक मण्डल के आधीन थी। इसमें छै विभाग थे। जो अपनी २ व्यवस्थाएं करते थे।

नगर शासन—नगर शासन भी तीस समासदों के छै मण्डलों में विभक्त था—

१. शिल्प उद्योग २. विदेश
३. जन्म मृत्यु ३. वाणिज्य
५. उद्योग-कारखाने ६. कर ग्रहण।

कर ग्रहण और शासन—कर आय का दशम अंश लिया जाता था। कर न देने पर प्राण दण्ड दिया जाता था[३]। प्रान्तीय शासन राज प्रतिनिधियों द्वारा होता था। दूर स्थित देशों की सब बातों की सूचना 'प्रति वेदक' देते थे, जो प्रतिदिन हर नगर या ग्राम का समाचार राजधानी में भेजते थे। गुप्तचरों का उत्कृष्ट प्रबन्ध था। उनकी एक संस्था प्रथक् थी[४]। और उनका जाल अन्य राजाओं में भी फैला हुआ था। कृषि विभाग अपने कार्य में बहुत तत्पर था। किसान पैदावार का चौथाई या छटा भाग देते थे। सिंचाई नहरों से होती थी। साल में दो फसलें होती थीं[५]। सोने चांदी और ताम्बे के सिक्कों का चलन था। खाने पीने की वस्तुओं में मिलावट करना अपराध माना जाता था।

राज्य में चार वाणिक पथ थे। खान का महकमा प्रथक् था। खानों से टीन-सोना-चांदी, लोहा ताम्बा खूब निकलते थे। पर राष्ट्र विभाग अत्यन्त महत्त्व पूर्ण था। मौर्य काल में पच्छिमी देशों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध थे। दीवानी फौजदारी की प्रथक् २ कचहरियाँ थी। दण्ड नीति कठोर थी। प्राण दण्ड साधारण बात थी। आठ पण चुराने पर भी प्राण दण्ड होता था। अपराधियों के लिए १८ प्रकार के दण्डों की व्यवस्था थी, जिसमें सात प्रकार से वेत लगाए जाते थे।

चन्द्रगुप्त काल में पाटलीपुत्र की आबादी ४ लाख थी।

९—सामाजिक जीवन

जाति और वर्ण—इस काल में चार वर्णों में आर्य समाज विभक्त था; बुद्ध ने

---

१. कौटिलीय अर्थशास्त्र अधि० ११ अध्याय १
२. प्लीनी।
३. अर्थशास्त्र—अधि० ४। २। १७
४. अर्थशास्त्र अ० १। ११-२२
५. मेगस्थनीज

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वर्णव्यवस्था को भिक्षुओं में अस्वीकार किया था, सवर्ण विवाह की मर्यादा स्थापित हो गई थी। पेशेवर जातियां सुगठित हो गई थीं। समान जाति की कन्या से विवाह करना श्रेष्ठ समझा जाता था। विवाह बड़े बूढ़े तय करते थे! लड़के लड़की से नहीं पूछा जाता था। फिर भी बड़े लोग नीच जाति की स्त्रियों से विवाह कर लेते थे और उनकी सन्तान वैध मानी जाती थी। क्षत्रियों को ब्राह्मण के समान या कुछ श्रेष्ठ समझा जाता था। परन्तु क्षत्रिय कोई प्रथक् जाति न थी, शासक या राजा जिनसे उनका परिवारिक सम्बन्ध था क्षत्रिय कहाते थे। राजाओं के प्रथक् २ कुल एक क्षत्रिय जाति में परिणित हो रहे थे। अब ये क्षत्रिय अपनी रक्त की शुद्धता पर बहुत ध्यान रखते थे। और इतर वर्ण की स्त्री की सन्तान को क्षत्रिय जाति में नहीं स्वीकार करते थे। विद्यार्थी विद्या पीठों और गुरुकुलों में पढ़ते थे।

ब्राह्मणों की भी जाति बनगई थी और वह जन्म से थी[1], वे नीच से नीच काम करने पर भी ब्राह्मण ही रहते थे। और सब वर्णों से अपने को उच्च समझने लगे थे। ब्राह्मणों में वर्णित जीवन चित्र उनका आदर्श था,वे चारों आश्रमों की मर्यादा भी पालते थे। तीनों वेदों का अध्ययन करने वाले की प्रतिष्ठा बहुत थी। कुछ ब्राह्मण ऐसे भी थे जो 'ब्रह्मबन्धु' (नीच ब्राह्मण) कहाते थे। वे यज्ञ करते थे, पुरोहित होते थे। शकुन बताते थे—मन्त्र तन्त्र से भूत प्रेत वश में करते थे। कुछ ब्राह्मण खेती भी करते थे वे 'कर्षक-ब्राह्मण, (कस्सक-ब्राह्मण) कहाते थे। व्यापार भी करते थे। बढ़ई का काम भी करते थे[2]।

वैश्यों की पक्की जाति नहीं बनी थीं। क्षत्रियों और ब्राह्मणों के बाद शेष सब वैश्य या 'गृहपति' कहाते थे। वे खेती और व्यापार करते थे, और अपने को 'कुल-पुत्त' कहते थे। वे अपनी बराबरी के कुल में विवाह करते थे। राज दरबार में उनके धन के अनुपात से उनका मान होता था।

उनका प्रतिनिधि सेट्ठि (श्रेष्ठी) कहाता था। उनके बालक भी ब्राह्मणों और क्षत्रियों की भाँति गुरुकुलों में पढ़ते थे। तक्षशिला में भी उनके बालक पढ़ते थे[3]। हर एक व्यापार या उद्यम करने वाले गृहपति की अलग श्रेणी थी।

'सुद्ध' शूद्र भी थे। पर उनकी कोई प्रथक् जाति न थी। जातकों में उन्हें 'हीन जाति' कहा है। सम्भवतः यह वैश्यों (सर्व साधारण) में पिछड़े हुए दरिद्र कम्भकर लोग थे।

'चाण्डाल, गांव से बाहर चाण्डाल गांव में रहते थे। उन्हें छूना देखना भी पाप माना जाता था[4]। उनकी छुई वस्तु अशुद्ध हो जाती थी। उनकी भाषा भी भिन्न

---

१. ब्राह्मणों नाम जातिया ब्राह्मणो, विनय पि० नि स्सगिय १०-२-१।
२. महासुत सोम जातक। गग्ग जातक। फनन्द जातक।
३. अष्ठान जातक।
४. मातंग जातक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी। 'पुक्कस भी उन्हीं के समान अछूत थे। वे फूल तोड़ कर निर्वाह करते थे[1]। और जानवरों को पकड़ते मारते थे। निषाद मछली मारते थे। वेण (टोकरी बनाने वाले) रथकार; चर्मकार, नहापति (नाई) कुम्भकार, तन्तवाय (जुलाहे) आदि भी हीन जाति गिने जाते थे।

मेगस्थनीज का वर्णन—मेगस्थनीज जो चन्द्रगुप्त की सभा में यवन राजदूत था। सात जातियों का उल्लेख करता है:—१–ब्राह्मण २–श्रमण ३–योद्धा ४–किसान ५–चरवाहे और शिकारी ६–शिल्पी ७–दूत।

सातों जाति की गणना बाद में एक प्रसिद्ध बात हो गई।

ब्राह्मण ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के सिवा नई संकर जातियों को भी गिना है—इनमें चाण्डाल, वैण, सूत, अद्यष्ठ, उग्र निषाद, पारसव, मागध और आयोगव आदि है। धर्म सूत्रों के पढ़ने से पता चलता है कि उन्होंने सब जातियों के नियम कस कर बांधे थे। ब्राह्मणों की कर्तव्य निष्ठा पर भी उन्होने अकुश रक्खा। जो ब्राह्मण कर्तव्य पालन नहीं करता था—वेद नहीं पढ़ता था। भीख मांग कर खाता था। वह दण्डनीय था[2]। धर्म सूत्र शूद्रों को वेद पढने से रोकते हैं। सगोत्र विवाह का निषेध करते हैं। आश्रमों की मर्यादा स्थिर करते हैं। सोलह संस्कारों पर बल देते हैं। गृहपति के ऊपर बहुत से कार्यों का भार डालते हैं।

साम्पतिक अवस्था—जातकों, पिटकों, अर्थशास्त्र और यूनानी इतिहास वेत्ताओं के आधार पर कहा जा सकता है—कि उन दिनों जमीदारी प्रथा न थी। किसान अपनी भूमि पर अधिकार रखते थे, राजा साल में एक बार उपज का दशमांश लेता था। गोचर भूमि छोड़ी जाती थी। ग्राम के मुखिया, ग्राम भोजक कहाते थे। गांवों में लोग एक साथ रहते थे। प्रत्येक गांव में ३० से १०० तक परिवार रहते थे, गांव अनेक प्रकार के थे-यथा—

१. जानपद ग्राम (जो नगरों के निकट थे)

१. पच्यन्त (प्रात्यन्त) जो सीमाओं के पास थे।

गांवों के चारों ओर चरागाह और जंगल होते थे–जहाँ सबको पशु चराने तथा ईंधन काटने का अधिकार का। गांव के मुखिया की देख रेख में खेत जोते–बोए और सींचे जाते थे। किसान अपने खेत के चारों ओर मुण्डेर न बना सकता था। एक घेरे में गाँव के सब खेत आ जाते थे। ये खेत उतने ही हिस्सों में बंटे होते थे जितने कुटुम्ब गाँव में होते थे। फसल कटने पर हर एक को उसका भाग मिल जाता। कुल खेतों पर पंचायत का अधिकार था, बिना पंचायत की आज्ञा के किसान न खेत बेच सकता था, न बटवारा कर सकता था। बटवारा होने पर सब पुत्रों को समान हिस्सा

---

१. सोलवीमंस जातक।

२. वशिष्ठ धर्म सूत्र।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मिलता था। स्त्रियों के आभूषण और वस्त्र उनकी सम्पत्ति माने जाते थे। लड़कियां माता की सम्पत्ति पाती थीं। पर वे खेतों में हिस्सा नहीं पा सकती थीं। गांवों के निवासी, सुखी, सम्पन्न, उद्योगी और संतुष्ठ थे।

नगर—नगर कम थे। मुख्य नगर उन दिनों २० से अधिक न थे। नगर चाहर दिवारी से घिरे रहते थे। नगर बस्तियों और महल्लों में बटा रहता था। एक-एक पेशे के लोग रहते थे। वहीं अपना कारबार भी करते थे। प्रत्येक नगर में एक पण्यगृह (बाजार) था। नगर में एक संस्थाध्यक्ष रहता था जो व्यापारों और व्यापारियों की देख भाल करता था[1]। चुङ्गी देनी पड़ती थी। नगरों में बाग, बगीचे, तालाब आदि होते थे। बड़े बड़े प्रासाद भी होते थे, जिनमें सात सात चौक होते थे। हम्माम (स्नानागार) होते थे। वेश्याओं के प्रथक् महल्ले थे। शराब की दुकानें भी होती थी। नगर की सफाई का बहुत ध्यान रक्खा जाता था।

इन नगरों से चीन, वैविलोन, फारस, लंका आदि में सत्थवाह (सार्थवाह) व्यापार विनिमिय करते थे। जो जलथल दोनों मार्गों से जाते आते थे। सूती और रेशमी वस्त्र, कवच, कम्बल, हथियार, जरी के वस्त्र, सुगन्ध पदार्थ, औषध, हाथी दाँत की वस्तु, जवाहरात, आभूषण विदेश भेजे जाते थे। सोने, चांदी, ताम्बे, के सिक्कों तथा कौड़ियों का चलन था। सिक्के ढाले नहीं जाते थे। ठप्पे से ठोके जाते थे। हुंडियों का भी चलन था। ब्याज पर रुपया लिया-दिया जाता था। देश देशन्तरों को जाने के बड़े बड़े राजमार्ग थे। जिनमें सुविधा, सुरक्षा आदि की उत्तम व्यवस्था थी। इन मार्गों को 'वाणिक् पथ' कहते थे[2]। व्यापारी सम्मिलित हो कर भी कारबार करते थे[3]। साझे में काम करने की प्रथा को 'संभूय-समुत्थान' कहते थे[4]।

---

१. कौटिलीय० ४। ७७
२. चुल्लि सेट्ठि जातक। वानेक जातक। सुघ्नु जातक।
३. कूट वनिज जातक। महावणिक जातक।
४. कौटिलीय अर्थशास्त्र ३। ६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पांचवां अध्याय

बौद्ध काल

ई० पू० ३२० से ई० पू० ५०० तक—८२० वर्ष

१—धर्मराज अशोक

अशोक जिस समय मगध के सिंहासन पर बैठा उस समय मगध साम्राज्य का विस्तार मध्य भारत से लेकर मध्य एशिया तक फैला हुआ था। भारत के दक्षिण पूर्वी और दक्षिणी भाग को अपने साम्राज्य में मिलाने के लिए कदाचित् अशोक ने कलिंग पर आक्रमण किया था। दक्षिणी समुद्र तट पर महानदी और कृष्णा नदी के बीच का देश कलिंग कहाता था।

कलिंग की विजय अशोक ने की, परन्तु इस रक्तपात से उसके मन में बड़ी विरक्ति हुई। और उसे युद्ध से घृणा हो गई। उसने निर्णय किया कि वह अब युद्ध न करेगा। इस समय सुदूर दक्षिण के एक छोटे-से भाग के अतिरिक्त समूचा भारत उसके अधिकार में था। इस छोटे-से टुकड़े को जीत लेना उसके लिए कठिन न था। पर उसने ऐसा नहीं किया। अशोक संसार का एकमात्र ऐसा सम्राट् है जिसने युद्ध में विजयी होने पर युद्ध का परित्याग किया। उसने घोषणा की कि कलिंग-युद्ध में जितने आदमी मारे गए या कैद हुए, उसका सौवाँ या हजारवाँ भाग भी यदि आज मारे जांय या कैद किए जांय तो प्रियदर्शी यह सहन न करेगा। उसने कहा—धर्म से मनुष्य का हृदय जीतना ही सच्ची विजय है। और इतिहास साक्षी है, कि अशोक ने यह विजय अपने देश में ही नहीं—दूर देशों में भी की। पश्चिमी एशिया-अफ्रीका और योरोप में भी देवानां प्रिय अशोक का नाम अमर हो गया।

अशोक केवल मन्त्र पाठ या पूजा पाठ ही को धर्म कृत्य नहीं समझता था। वह जन सेवा को सच्चा धर्म समझता था। उसने सारे देश में कुए खुदवाए, बाग लगाए, अस्पताल स्थापित किए। इस प्रकार उसने ३८ वर्ष राज्य किया, और शान्ति पूर्वक ई० पू० २२६ में उसकी मृत्यु हो गई। मृत्यु से कुछ दिन पूर्व वह राज पाट छोड़ भिक्षु हो गया था।

अशोक का परिवार—अशोक मौर्य साम्राज्य के संस्थापक महान् सम्राट् चंद्रगुप्त का पौत्र और बिन्दुसार का कनिष्ठ पुत्र था।[1] अशोक की माता का नाम 'शुभअंगी'

१—देखिए—शिला लेख १३वां।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था।[1] कोई-कोई उसका नाम 'धर्मा-अग्रमहिषी' बताते हैं।[2] अशोक के अनेक भाई थे। उनमें अशोक अपनी प्रतिभा तथा ज्ञान द्वारा सर्व शक्तिशाली हुआ।[3] अशोक का राज परिवार बहुत बड़ा था उसका उसने सम्राट् होने पर भली भांति पालन किया।[4] अशोक ने अपने पूर्वजों की भाति 'देवानां प्रिय' को अपना उपनाम बनाया।[5] वह प्रियदर्शी और प्रिय दर्शिन नाम से भी प्रसिद्ध हुआ।

अशोक के पिता बिन्दुसार ने २५ वर्ष राज्य किया। उसने प्रतापी चन्द्रगुप्त के साम्राज्य को भली भांति चलाया। पश्चिमी एशिया तथा मिस्र के यूनानी राजाओं से उसके अच्छे सम्बन्ध थे। परन्तु अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उसके राज्य में सर्वत्र अराजकता फैल गई थी। २५ वर्ष राज्य करने के बाद ई० पू० २७१ में उसकी मृत्यु हुई और इसी समय अशोक मगध की गद्दी पर बैठा। परन्तु घरेलू झगड़ों के कारण उसका राज्याभिषेक ई० पू० २६९ में हुआ।

अशोक की अनेक रानियां थीं, जिनमें असन्धिमित्रा[6], कारुवाली[7], विदिशा देवी[8], शाक्य कुमारी महादेवी[9], पद्मावती[10] और तिष्य रक्षिता[11] प्रमुख थी। असन्धिमित्रा[12] प्रधान रानी थी। अशोक के पांच पुत्र और दो

१—अशोकावदान (उत्तरी गाथा)

२—दक्षिणी गाथा।

३—महावंश। पाँचवाँ प्रकरण।

४—स्तम्भ लेख, सातवाँ, नं० ११ तथा चतुर्थ, षष्ठ, नवम और बारहवाँ शिला लेख।

५—आठवां शिला लेख। पांचवाँ शिला लेख तथा वैराट शिला लेख। 'प्रियदर्शी' तथा 'देवानां प्रिय' ये अशोक की पैत्रिक उपाधियां थीं। मुद्रा राक्षस में चन्द्रगुप्त को भी 'प्रिय दर्शनत्तो' कहा गया है। नागार्जुन गुहा लेख में 'दशलथ' 'देवानां प्रिय' लिखा है, जो अशोक का पौत्र था। महाभाष्य के रचयिता पातञ्जलि के अनुसार 'देवानां प्रिय' का अर्थ—भवान्, दीर्घायु और आयुष्मान् की भाँति सम्मान और प्रसाद के अर्थ में लिया जाता था। पर कदाचित् बाद में यह शब्द 'मूर्ख' के अर्थ में लिया जाने लगा। कात्यायन का एक वार्तिक है—देवानां प्रिय इति च (मूर्खे:) अतः देव प्रियः।
(भट्टोजि दीक्षित सिद्धान्त कौमुदी)

६—महावंश, २०वां अध्याय।

७—चतुर्थ गौण स्तम्भ लेख।

८—महावंश।

९—गाथा।

१०—गाथा।

११—दिव्यावदान।

१२—पांचवां शिला लेख।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुत्रियां थीं। पुत्रों के नाम—महेन्द्र, उज्जैनी, तिवाला, धर्म–विवर्धन और जलोका तथा पुत्रियों का—संघ मित्रा और चारुमती था। पौत्र दशलथ, सम्प्रति और सुमन थे[1]। दशलथ अशोक के बाद राज्याधिकारी हुआ[2]।

कलिंग विजय—सिंहासनारूढ़ होने के आठ वर्ष बाद ई० पू० २६१ में अशोक ने कलिंग को विजय किया। इस युद्ध में डेढ़ लाख मनुष्य बन्दी हुए, एक लाख आहत हुए और इससे कहीं अधिक मारे गए[3]।

कलिंग एक सुसम्पन्न और समृद्ध देश था। सारा प्रदेश उपजाऊ था। वहाँ के ग्राम–नगर हर्षोत्पल थे। यहाँ के हाथी हृष्ट पुष्ट और विशाल थे। वे बहुमूल्य होते थे। उस काल में हाथी सेना ही प्रधान शक्ति समझी जाती थी। इस समृद्धशाली देश का राजा भी महाशक्तिशाली था। इस राजा के शरीर रक्षकों में ६० हजार पैदल, १० हजार सवार और ७०० हाथी थे[4]।

कलिंग राज्य अशोक के साम्राज्य की अन्तर राजनीति में कण्टक स्वरूप था। आन्ध्र और परिन्दा के प्रान्त अशोक साम्राज्य के अन्तर्गत थे। कलिंग राज्य महानदी व कृष्णा के मध्यस्थ तटवर्ती प्रदेश था। वर्तमान उड़ीसा और मद्रास का अधिकांश उत्तरी भाग इस राज्य के अन्तर्गत था। उन दिनों कृष्णा और कावेरी–मण्डल प्रदेश को आंध्र कहते थे। अशोक साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी। और वर्तमान बंगाल का अधिकांश भाग मगध साम्राज्य के अन्तर्गत था। 'परिन्दा' सम्भवतः साम्राज्य की पूर्वी सीमा पर कदाचित् पूर्वी बंगाल में था। इस तरह कलिंग राज्य अन्तर राजनीति में एक कील की भांति गड़ा था। जो कभी भी चोड़ राज्य से गुरु मन्त्रणा कर सकता था। इसलिए साम्राज्य की कुशलता और एकीकरण के लिए कलिंग विजय अनिवार्य थी[5]।

कलिंग के सम्बन्ध में चीनी यात्री ह्वेनसांग लिखता है—'इस प्रदेश की परिधि दो सौ 'ली' है। इसकी राजनगरी २० ली है'। यह प्रान्त खूब उपजाऊ है। यह प्रदेश फल और फूलों के वृक्षों से भरपूर है। इस प्रदेश में सैंकड़ों 'ली' तक विस्तृत फैले हुए मनोरम वन्य और अटवी जंगल हैं। यहां बड़े २ भूरे हाथी पाए जाते हैं। जिनकी पड़ोसी देशों में बहुत मांग है। जलवायु और सूर्योत्पल तापपूर्ण है। यद्यपि यहां के लोग अधिकतर रूखे और असभ्य हैं, किन्तु वे सत्यवादी और विश्वसनीय हैं। प्राचीन काल में कलिंग राष्ट्र बहुत घना बसा था, यहां की जनसंख्या अगण्य थी। यहां

१—महावंश १३वां प्रकरण।

२—नागार्जुन–गुफा लेख।

३—सोलहवां शिला लेख।

४—मेगस्थनीज के विवरण Froan i, VI.

५—देखिए—१३वां शिला लेख, और श्री डा० भण्डारकर।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लोगों के कन्धे एक दूसरे से रगड़ खाते थे। यहाँ के लोगों के रथों के पहिए आपस में टकराते थे[१]।

अशोक का साम्राज्य—अशोक का साम्राज्य उत्तर में हिन्दुकुश तक तथा मकरान बिलोचिस्तान व अफगानिस्तान तक फैला था। काश्मीर और नैपाल उसके साम्राज्य के भाग थे। पूर्व में आसाम को छोड़कर दक्षिण में मैसूर तक समूचा भारतवर्ष उसके साम्राज्य के अन्तर्गत था। यह साम्राज्य पाँच भागों में बटा था जिनकी राजधानियां तक्षशिला, उज्जैन स्वर्णगढ़ी तौसकी तथा पाटलिपुत्र थीं। पाटलिपुत्र प्रधान राजनगरी थी। काश्मीर के नगर श्रीनगर की स्थापना अशोक ने ही की थी। नैपाल में भी उसने एक नगर बसाया था[२],

साम्राज्य से सम्बन्धित दो प्रकार के सीमान्त राज्य थे। एक वे जो स्वतन्त्र या अर्ध स्वतन्त्र थे। दूसरे वे जो विजित थे। ऐसे राज्यों में तुरमय (टालमी राज्य) अन्ति गोनस, मग, अलिक सुन्दर स्वतन्त्र राज्य थे। दक्षिण सीमा पर चोड़ पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरल और ताम्रपर्णी राज्य थे[३]। यवन, काम्बोज, भोज, पितनिक, आन्ध्र, पुलिन्द राज्य साम्राज्य के अन्तर्गत थे[४]। काम्बोज और यवन काबुल नदी के क्षेत्रों में थे। यह काबुल नदी वैदिक कुभा है। यह प्रान्त सिल्यूकस ने सन्धि में चन्द्रगुप्त को दिया था। यवन उत्तर पच्छिमी सीमा पर थे[५]। ये यवन राज्य उत्तर पच्छिमी सीमा पर कोकन और इन्डस के मध्य काम्बोज और गान्धार के समीपस्थ थे[६]। गान्धार और काम्बोज पूर्वी अफगानिस्तान से सिन्धु नदी तक के पच्छिमी हिमालय और पच्छिमी पंजाब तक फैले थे। वर्तमान कन्धार और काबुल का प्रदेश इसी में सम्मिलित था। राष्ट्रिक गण काठियावाड़ में थे[७]। विदर्भ भोजों का प्रदेश था[८]। पच्छिमी सीमान्त को अपरन्ता कहते थे। सम्राट् ने उन्हें स्वतन्त्र किया हुआ था[९]। आन्ध्र के शक्तिशाली राज्य का विस्तार कृष्णा नदी के मुहाने तक था।

१—ह्वेनसांग का यात्रा-विवरण।

२—राज तरंगिणी। ह्वेनसांग यात्रा विवरण, तथा दूसरा पांचवां और तेरहवां शिला लेख।

३—तेरहवां प्रज्ञापन।

४—शहबाज गढ़ीं का शिला लेख।

५—देखिए—अशोक की धर्म लिपियां, काशी नागरी प्रचारिणी सभा। तथा पांचवां शिला लेख और तेहरवां शिला लेख।

६—देखिए—ह्वेनसांग का विवरण।

७—श्री हुल्स।

८ बुलर।

९—कलिंग का द्वितीय शिला लेख।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ये सब राज्य पूर्ण आन्तरिक स्वतन्त्रता प्राप्त थे[१]। अशोक ,कहता है जब तक ये राज्य धर्म पथ पर चलेंगे, स्वतन्त्र रहेंगे[२]। इन प्रान्तों की देख भाल को अन्त: पाल नियुक्त थे और साम्राज्य की सीमा पर सम्राट् ने खास २ स्थानों पर गढ़ बनवाए थे।

अशोक के समकालीन राजा—अतियोक (यवनराज) तुरमय; अन्तिकिन, मग और अलिक सुन्दर अशोक के समकालीन राजा थे[३]। अन्तियोक सिल्यूकस का पौत्र था। यह सीरिया, वैक्ट्रिया और पश्चिमी एशियाई प्रदेशों का अधिपति था। इसका यवन साम्राज्य मौर्य साम्राज्य का पड़ौसी राज्य था। तुरमय मिस्र का द्वितीय टौलमी फिलाडेल फौस था। अन्तिकिनिया अन्तकिन मेसीडोनिया का राजा था। मग या मक मिस्र के राजा टालमी फिलाडेल फौस का भाई था। यह कैरीन का स्वामी था। कैरीन मिस्र के पच्छिम में है। अलिक सुन्दर एपिरस का राजा था[४]। अन्तियोक का राज्य अशोक साम्राज्य की सीमा पर था। शेष चारों राजा अन्तियोक के सीमावर्ती तथा अशोक से दूर थे[५]। इन राजाओं के साथ अशोक का क्षैत्य सम्बन्ध कायम था. सब राज्यों में एक दूसरे के दूत रहते थे[६]।

अशोक की शासन व्यवस्था—अशोक के शासनकाल के पहिले तेरह वर्षों का हाल अन्धकार पूर्ण है। उसके नए और प्रकाशमान जीवन के काल का आरम्भ कलिंग युद्ध के बाद का है। कहते हैं कि पहिले अशोक बड़ा क्रूर और क्रोधी था। जिसके कारण वह चण्डाशोक प्रसिद्ध हो गया था। कलिंग युद्ध के नर वध से वह द्रवित हुआ और उसका धर्माचरण बढ़ा—जिससे उसके सारे ही शासन की काया पलट हो गई। कदाचित् ही कोई दूसरा ऐसा राजा हुआ हो, जिसने धर्मभावना के कारण अपने राजकीय आचरण में इतना परिवर्तन किया हो। उसकी अपनी निजी आकांक्षाएं, राजकीय कामनाएं, विश्व कल्याण और जीव मंगल की अभिलाषाओं में परिवर्तित हो गईं। सैनिक वीरघोष मंगलकारी 'धर्मघोष' बन गया। शस्त्रों की विजय धर्म-विजय में बदल गई[७]।

१—डा० भन्डारकर

२—कलिंग का द्वितीय लेख।

३—शहवाज गढ़ी का तेरहवां शिलालेख।

४—J. R A. S. 194, P. 914–45 तथा कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इन्डिया Vol I, और शिलालेख तेरहवां।

५—देखिए कालसी का प्रज्ञापन।

६—देखिए तेरहवां शिलालेख।

७—मानसेरा का शिलालेख।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक का मौर्य साम्राज्य कई प्रांतों में बंटा था। युवराज अवस्था में अशोक उज्जैन और तक्षशिला में रह चुका था। प्रांतों का शासन प्रान्तीय शासक करते थे। जो प्रायः राजघराने के व्यक्ति होते थे। मुख्य प्रान्त चार थे:—गांधार, कलिंग, उज्जैन और दक्षिणी प्रान्त[१]। अशोक के शिलालेखों में पूर्व निर्दिष्ट तीन प्रान्तों के शासको को 'कुमार' कहा गया है। किन्तु सुवर्ण गिरि के शासक को ब्रह्मगिरि लेख में आर्य पुत्र कहा गया है। साधारणतया यह शब्द आर्य पत्नियां अपने पति के लिए प्रयोग किया करती थीं। परन्तु इस काल में 'आर्य-पुत्र' शब्द कुमारों की विशिष्ट पदवी मालूम होती है। महाबग्ग में आम्रपाली लिच्छवि राजाओं को आर्य पुत्र कहती है। इससे ज्ञात होता है कि आर्य पुत्र शब्द राजाओं के लिए भी प्रयुक्त होता था। भास ने भी अपने स्वप्नवासवदत्ता में उदयन को तीन बार 'आर्यपुत्र' सम्बोधन किया है[२]। अन्य छोटे छोटे प्रांत भी थे—पर उन पर राजकुमारों का शासन न था। सौराष्ट्र का शासक यवन तुहषास्प था। प्रान्तीय कुमारों के अधिकार बहुत होते थे। वे अपने प्रांतों में स्वतन्त्र हुआ करते थे। उज्जैन और तक्षशिला के कुमार अपने आप महामात्र नियुक्त कर सकते थे। कुमार थाण्यक महामात्रों को तीसरे वर्ष शासन की देख-भाल करने और जांच करने प्रान्तों के दौरों पर भेजते थे[३]। परन्तु तोषाली के महामात्रों की नियुक्ति सम्राट् करता था। इस प्रकार जहाँ उज्जैन और तक्षशिला का शासन कुमार थाण्यक के पूर्ण अधिकार में था। वहाँ तोषाली प्रान्त कुमार तथा महामात्रों के सम्मिलित शासन आधिपत्य में था। जिसका पूर्ण नियन्त्रण सम्राट् के हाथ में था। सुवर्णगिरि का शासक अन्य कुमार शासकों से बढ़कर था[४]। जो प्रांत सीधे सम्राट् के शासन में थे—उनके शासकों और महामात्रों को सम्राट स्वयं आज्ञाएं भेजते थे। कौसाम्बी तथा सारनाथ ऐसे ही प्रान्त थे। राज्य के अन्य कर्मचारियों में प्रादेसिके रज्जुक और युक्ता प्रमुख थे[५]। 'मुक्त' सम्भवतः पुलिस या नगर रक्षण का काम करते थे[६]। प्रादेशिक प्रान्तपति या कलक्टर को कहते थे। इनका काम राजस्व एकत्र करना होता था। ये नगर रक्षण भी करते थे। ये मन्त्रि मण्डल से सम्बन्धित होते थे[७]। रज्जुक भूमि की नाप (पैमाइश) करते थे। वे नाप और पैमाइश के प्रमुख कर्मचारी होते थे। बन्दोबस्त और सिंचाई भी उनके हाथ में था[८]। उनका

१—गौण शिलालेख।

२—देखिए—डा० भण्डारकर, अशोक विवरण।

३—कलिंग शिलालेख।

४—देखिए—कलिंग के लेख और प्रथम व द्वितीय शिलालेख।

५—चौथा शिलालेख।

६—J. R. A. S. The Edicts of Asoka ch. XIV

७—J. R. A. S. P. P. 384—5, 1914

८—J. R. A. S. 1914 The Edicts of Asoka.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिकार हजारों लोगों पर होता था।[१] एक कर्मचारी नगर व्यवहारिक कहाता था, जो नगराध्यक्ष होता था।[२] तीन अधिकारी धर्म व्यवस्था के लिए नियुक्त होते थे—(१) धर्म महामात्र, (२) स्त्रीअध्यक्ष महामात्र, (३) व्रजभूमिक। धर्म महामात्र धर्म प्रचार के लिए नियुक्त थे। सभी धर्मों की उन्नति करते तथा धर्मों में एकता उत्पन्न करते थे। वे लोगों की भलाई और सुख के निए नियत थे। देश विदेश में सब प्रकार के प्रजाजनों को उनकी भलाई और सुख सुविधा में सहायता देते थे। कैदियों, प्राणदण्ड पाए हुए अपराधियों, विपद्ग्रस्तों आदि की वे सहायता करते थे। राज-परिवार को भी वे धर्मरत रहने में सहायक होते थे। उन्हें प्रत्येक मनुष्य, राजपरिवार, प्रत्येक सम्प्रदाय की देखभाल करने तथा सब के धर्महित की उचित व्यवस्था करनी पड़ती थी[3] स्त्री अध्यक्ष महामात्र राजपरिवार की स्त्रियों में धर्मकार्य करते थे।[४] व्रजभूमिका या वचभूमिका राजकीय चरागाह और पशुओं के अध्यक्ष होते थे।[५] पशुओं के चिकित्सालयों की देखभाल, पेड़ लगाना तथा चरागाहों की व्यवस्था आदि इन्हें करनी पड़ती थी।[६]

महामात्र उच्च कर्मचारी को कहते थे। 'महति मात्रा यस्य महामात्रः'। ये अनेक प्रकार के होते थे। धर्म महामात्रों का उल्लेख तो हुआ ही है। एक अन्त महामात्र होते थे, जो सीमान्त प्रदेशों में धर्म कार्य किया करते थे।[७]

सम्राट् का शासन परिषद् के द्वारा होता था। परिषद् का कार्य राज कर्मचारियों के कार्य की देखभाल करना तथा साथ ही राज्य के कर्मचारियों से सम्राट् द्वारा प्रेषित आज्ञाओं का पालन कराना भी था। यह मन्त्री परिषद् होती थी।[८] कोई भी सम्राट् की आज्ञा प्रथम परिषद् में विचारार्थ आती थी। यह परिषद् कार्य निर्वाहक सभा थी। सम्राट् को अन्तिम दिनों में परिषद् ने पदच्युत कर दिया था तथा उन्हें धन देना बन्द कर दिया था ससे प्रतीत होता है कि परिषद् के नियन्त्रण में सम्राट् रहते थे। राजा ने प्रजा के हित के लिए प्रतिवेदक नियत किए थे, जिनको सम्राट् की आज्ञा थी कि दिनरात हर समय चाहे मैं खाता होऊँ या सोता होऊँ या वाटिका में भ्रमण करता होऊँ, सर्व प्रतिवेदक मुझे प्रजा के कार्य की सूचना दें।

१—चतुर्थ स्तम्भ लेख।

२—धौली का कलिंग शिला लेख।

३—देखिए—सातवां स्तम्भ लेख और सातवां शिला लेख।

४—देखिए—पाँचवां शिला लेख और सातवां स्तम्भ लेख।

५—द्वितीय शिला लेख, छठवां शिला लेख, सातवां स्तम्भ लेख, दूसरा स्तम्भ लेख।

६—सातवां स्तम्भ लेख।

७—J. R. A. S. P. P. ३८३, १९१४

८—तीसरा शिला लेख, तथा छठा शिला लेख।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सम्राट् का दया भाव दण्डित अपराधियों पर भी था। प्राणदण्ड प्राप्त अपराधियों को अपील का अवसर दिया जाता था। तथा दान आदि करने की प्रेरणा दी जाती थी।[१] प्रचलित दण्ड विधान में अशोक ने सुधार किए थे। दण्डों को नरम किया था। कठोर दण्डों को अमानुषिक ठहराया था, तथा दण्ड लघुता का सिद्धान्त अपनाया था।[२]

यद्यपि सम्राट् ने सैनिक अभियान बन्द कर दिए थे, पर उसकी सेना मुस्तैद रहती थी। उपद्रवी अटवी अथवा वनवासियों को उसने कहा था कि वे यदि अपना आचरण न सुधारेंगे तो उनकी दशा भी कलिंग के समान हो जायगी।[३] अशोक ने घने वृक्षों से ढके राजपथ बनवाए थे। पाटलिपुत्र से तक्षशिला तक सीधी सड़क जाती थी।[४] उस पर मील के पत्थर भी लगे थे। चिकित्सालय, बाग, बगीचे, तालाब आदि उसने पशुओं और मनुष्यों के लिए भी बनवाए थे।[५] इस प्रकार अशोक ने दान, दया, सत्यता, अहिंसा, सहिष्णुता और धर्म ही को अपना राजधर्म बना डाला था। सर्व लोकहित, विश्वमंगल अशोक का राजधर्म था।

धर्म विजय--अशोक की धर्म विजय अद्वितीय थी। प्रसिद्ध है कि एक दिन राजा ने स्वप्न देखा और दूसरे दिन वह वैशाली के महाविहार में पहुंचा। वहाँ उसने बड़े-बड़े भिक्षुओं को एकत्र कर उनके तर्क और धर्म वचन सुने। और फिर बौद्ध धर्म ग्रहण किया।[६] उन पर सब से भारी प्रभाव आचार्य उपगुप्त के उपदेशों का पड़ा। उन्हें ही उसने अपना आचार्य बनाया।[७] जेम्स फ्लीट का मत है कि अशोक ने बौद्ध धर्म ठीक-ठीक अर्थों में नहीं ग्रहण किया। सच्चे अर्थों में वह धर्म जो शिला लेखों में अङ्कित है--बौद्ध धर्म नहीं है। वह मानव धर्म है। वह मानव धर्म शास्त्र (१, ११४) के राजधर्म के अनुरूप है। उनका कथन है कि अशोक ने जो धर्म की व्याख्या की है, उसमें दुष्कर्मों से अपनी रक्षा, सुकर्म, दया, दान, सत्यता एवं पवित्रता ही प्रधान है। इसलिए शिला लेखों और स्तम्भ लेखों का तात्पर्य बौद्ध धर्म अथवा अन्य किसी धर्म का प्रचार करना न था। इस मन्तव्य में श्री फ्लीट यह तर्क देते हैं कि अशोक ने किसी भी धर्मलिपि में बुद्ध का उल्लेख नहीं किया। वास्तव में अशोक एक धार्मिक और सदाचारी राजा की भांति धर्मानुशासन

१--आठवाँ शिला लेख।
२--तेरहवाँ शिला लेख।
३--तेरहवां शिला लेख।
४--सम्भव है वर्तमान ग्रान्ड ट्रंक रोड ही हो।
५--द्वितीय शिला लेख।
६-- महावंश, प्रकरण ४
७--सुवस्कुल-उत्तरी गाथा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का प्रचार तथा प्रसार कर मानवीय सिद्धांतों पर—जो मानव धर्म शास्त्रों में लिखे हैं—अपनी प्रजा एव कर्मचारियों को लाना चाहता था। वह यह प्रकट करना चाहता था कि वह प्रजा से संयुक्त हो, किस अच्छाई के साथ राज काज कर सकता है। वह मानवों से परे रहकर, एवं उनके हित से परे कोई काम न करना चाहता था। इसी से शिला लेखों और स्तम्भों का यह धर्म, बौद्ध धर्म न था; अपितु वह राजाओं का सामान्य धर्म था जो मानव धर्मशास्त्र में लिखा है। उसने स्पष्ट ही अपने महामात्रों को यह आदेश दिए थे कि उन्हें यह न सोचना चाहिए कि वे बौद्ध धर्म के प्रचार के नियुक्त लिए गए हैं। उन्हे तो सब सम्प्रदायों के हित और उन्नति के लिए नियत किया गया है[1]। सातवें स्तम्भ लेख में संघ का उल्लेख है। पर संघ से बौद्ध संघ का नहीं, ब्राह्मण, जैन, बौद्ध, और अन्य धर्मों के साथ एक रूपता अथवा समानता के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अभिषिक्त होने के २८ वें वर्ष तक अशोक बौद्ध नहीं हुए। ३० वें वर्ष वे बौद्ध हुए और २॥ वर्ष उपासक रहे। पीछे ३३ वें वर्ष में उन्होंने बौद्ध संघ में प्रवेश किया[2]।

जेम्स फ्लीट की इस मान्यता में कुछ सत्य भी हैं। परन्तु वास्तव में अशोक को मूल प्रेरणा बौद्ध धर्म ही से मिली थी और उसने जिन सिद्धान्तों का प्रचार किया उनका आधार सिगालोवाद सुत्त में है। लेखों में भी वह स्पष्ट है[3]। इसी प्रकार महा मंगल सुत्त, सुत्त निपात २—४ से लिए गए हैं। वास्तव में अशोक में सभी धर्मों की अभिवृद्धि को ही धर्म का सत्य रूप माना है। उसने 'सारवृद्धि' पर जोर दिया है। 'सारवृद्धि' का अर्थ है अपने धर्म का आदर और बिना किसी आधार के दूसरे धर्मों का अनादर न करना। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने धर्म महामात्र, स्त्री अध्यक्ष महामात्र, व्रजभूमिक और दूसरे अधिकारी नियत किए थे। यह अशोक की सार्वलौकिकता थी। अभिषिक्त होने के २०वें साल अशोक ने बुद्ध के जन्म स्थान लुम्बिनी की यात्रा की। और वहां शेर की प्रतिमूर्त्ति शिला पर बनवाई और एक स्तम्भ वहां स्थापित किया[4]। उसने लुम्बिनी गांव पर का धर्मकर भी माफ कर दिया और राजस्व भी हटा दिया[5]।

बौद्ध धर्म की तीन महा सभाएँ हुई। पहिली पाटलिपुत्र में हुई थी, जिसका सभापति महाकस्सप था। दूसरी वैशाली में सम्राट् अशोक की अध्यक्षता में हुई।

---

१. देखिए पांचवाँ और सातवाँ शिलालेख।
२. J. R. A. S. 491–496 (1908)
३. देखिए—मानसेरा का प्रज्ञापन तथा ९वां शिलालेख और १२वां शिलालेख। कालसी का प्रज्ञापन और सारनाथ का गौण शिलालेख।
४. महापति पूजा तथा रूमिनिन्दी का शिला लेख।
५ दिव्यावदान।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस समय संघ में मतभेद होने लगे थे। अशोक ने यह सभा करके उठते हुए मतभेदों को दूर किया और संघ को सुगठित किया। इस सभा में मोग्गलिपुत्र तिष्य के नेतृत्व में साठ हजार मिथ्या भिक्षुओं को संघ से बहिष्कृत किया गया था[१]।

धर्म प्रचार--धर्म प्रचार के लिए उसने धर्म महामात्र आदि नियुक्त किए। शिला लेख, स्तम्भ लेख खुदवाए। और भिन्न२ देशों में प्रचारक भेजे[२]। उसने काश्मीर, महिममण्डल, अपरेतिका, यवन देश, हिमालय प्रदेश, महाराष्ट्र, लंका, सुवर्ण भूमि (पेगू और कौल) में धर्म प्रचारक भेजे। उसने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को भिक्षु बना लका भेजा, जहाँ उन्होंने आजीवन प्रचार किया[३]। महावंश के कथनानुसार अनेकों प्रदेशों ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया[४]। जहां लाखों करोड़ों की संख्या में लोग बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए[५]।

अशोक कालीन भारत–शिला लेखों तथा गाथाओं के आधार पर अशोक कालीन भारत पर जो प्रकाश पड़ता है, उसका उल्लेख भी यहां हम संक्षेप में करना चाहते हैं। उस काल में ब्राह्मण सन्यासी और बौद्ध श्रमण होते थे। अशोक दोनों का सम्मान करता था[६]। एक आजीवक साधु होते थे जो नंगे रहते थे, निगंठ भी नंगे रहते थे[७]। इन संघों में पाखण्डी बहुत थे। अशोक ने उन्हें सफेद वस्त्र पहनाकर संघ से निकाल दिया था। उस समय तक प्राग्भूत—बुद्ध बोद्धि सत्वों की पूजा प्रचलित हो गई थी[८]। ऐसे ही कोनाकानम स्तूप की यात्रा की थी, तथा उसका जीर्णोद्धार किया था। इससे पता लगता है कि ऐसे स्तूप अशोक से प्रथम ही बनने लगे थे। अशोक के किसी स्मारक पर जैसे चैत्य स्तूप स्तम्भ और शिला लेख कहीं भी बुद्ध की मूर्त्ति अंकित नहीं है। कानसी के शिला लेख के उत्तर ओर हाथी की रेखांकित प्रतिकृति है, जिसके लिए 'गजोत्तम' शब्द लिखा है[९]। शुभ्रहस्ती बुद्ध का द्योतक है। बौद्ध गाथाओं के अनुसार बोधिसत्त्व (आगामी बुद्ध) ने स्वर्ग को त्याग कर शुभहस्ती ही के रूप में अपनी

---

१. देखिए, सारनाथ स्तम्भ और सांची स्तम्भ लेख। तथा महावंश, प्रकरण ५वां।
२. देखिए--१३वां शिला लेख और महावंश प्रकरण ५।
३. देखिए--१३वां शिला लेख, ५वां शिला लेख, तथा List of missionaries sent out by Asoka. J. R. A. S. 1908, P, 8, Table IV.
४. महावंश प्रकरण १२। १०वां।
५. देखिए—महावंश, दीप वंश, समन्त पसादिका आदि गाथाओं तथा १३वां शिला लेख।
६. तृतीय शिला लेख।
७. सातवां शिला लेख।
८. निगलिव स्तम्भ लेख।
९. छठा शिला, लेख तथा १३वां गिरनार का शिला लेख।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माता के गर्भ में प्रवेश किया था। इस भावना का प्रचार अशोक काल में ही चला था।

विभिन्न सम्प्रदायों के लिए अशोक ने 'पाषउषि' अथवा 'पासंडम्हिह' या 'पासंड' शब्द का प्रयोग किया है[1]। यह शब्द सम्प्रदाय या धर्म के लिए प्रयुक्त किया गया है। 'पासंड' शब्द 'पाखण्ड' का अपभ्रष्ट रूप मालूम देता है पर श्री भण्डारकर कहते हैं कि 'पासंड' पार्षद या पार्षण्ड का विकृत रूप है। परन्तु पार्षण्ड शब्द अन्य संस्कृत ग्रन्थों में नहीं मिलता। अशोक काल में बोलचाल की भाषा में सम्भव है यह शब्द रहा हो। ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक काल में कर्मवाद का सिद्धान्त साधारण उपासक से लेकर सभी पार्षदों सम्प्रदायों आदि में जोर पकड़ रहा था। तथा दिव्य रूपों और स्वर्गीय उपहारों पर आस्था हो गई थी। कर्मवाद अशोककालीन भारत का धर्म हो चला था। परन्तु उस काल में भी अन्ध विश्वासों का बहुत जोर था। स्त्रियों में खासकर मिथ्या धर्म का प्रचार था[2]। जिसके कारण यज्ञ, किन्नर, गन्धर्व, नाग, सुपर्णी हास्ती, अश्व, काक आदि की पूजा होती थी। अनेक सम्प्रदायों में जटिल, अवरुद्धक, परिव्राजक, हस्तिपूजक, अश्वपूजक, गोपूजक, कुत्ता और कौवों के उपासक; यक्ष, गन्धर्व, चन्द्र, सूर्य, पुराण, महा मणिभद्र, वासुदेव बलदेव, ब्रह्मा, इन्द्र तथा विभिन्न दिशाओं के उपासक थे[3]।

जाति पाति के नियम उदार थे। छूआछूत न थी। न समुद्र यात्रा पर प्रतिबन्ध था। मांस भक्षण का काफी प्रचार था। राजा के रसोई घर में हजारों जीवों का वध शोरवे के लिए नित्य होता था[4]। अशोक ने उनका निषेध किया। अनेक पशु पक्षियों को अवध्य बताया[5]। उस काल में होम यज्ञ बलि की प्रथा भी थी, जिसे अशोक ने बन्द कर दिया था। समाज भी उसने बन्द कर दिए थे[6]। शिकार आखेट के स्थान पर धर्म यात्राएँ जारी की थीं[7]। शायद पर्दे की प्रथा थी। राजा का रनिवास 'अवरोध' कहाता था। पाणिनी का भी एक सूत्र 'असूर्य पश्या' हैं जिसका अर्थ काशिकाकार ने 'असूर्य पश्या–राजदारा' किया है। यह शब्द कौमुदी नाटक में भी एक राजकुमारी के लिए प्रयोग किया गया है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इसका अभिप्राय यह है कि तत्काल में स्त्री पुरुषों का सह समाज न था। कौटिल्य ने एक शब्द 'अनिष्कासिनी'

---

१. देखिए—१३वाँ प्रज्ञापन।
२. ९वां शिलालेख।
३. सुत्तपिटक निद्देस।
४. प्रथम शिलालेख।
५. ५वां स्तम्भ लेख।
६. प्रथम शिलालेख, शहबाजगढ़ी।
७. चतुर्थ स्तम्भ लेख।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्त्रियों के लिए प्रयोग किया हैं। इसका अर्थ होता है कि स्त्रियाँ बाहर नहीं निकलती थीं। अशोक ने स्त्री अध्यक्ष की नियुक्ति कदाचित इसीलिए प्रथक् की थी। परन्तु भिक्षुणी स्त्रियां बाहर घूमती थीं।

अशोक काल में अनेक वर्ग भी थे—भिषेयु (वैश्य) ब्राह्मण, अभेपु (?) भट, क्षत्रिय, दास, शूद्र थे[१]। केवल यवन देश में जाति-भेद न था[२]। क्षत्रिय कदाचित शासक जाति थी, पर यह उनकी जाति शायद नहीं थी। शूद्र वर्ग में मृत्यु और दास भी थे। अशोक ने पशुओं और मनुष्यों के अच्छे चिकित्सालय स्थापित किए थे।

अशोक काल में दो लिपियां प्रचलित थीं-एक ब्राह्मी लिपि,दूसरी खरोष्ट्री लिपि। खरोष्ट्री लिपि दांए से बांए लिखी जाती थी। फारसी लिपि की भांति, पर ब्राह्मी बांए से दांए लिखी जाती थी, सस्कृत की भाँति। खरोष्ट्री लिपि का प्रचार उत्तर-पश्चिम भारत के सीमा प्रांतों से लेकर चीन तुर्किस्तान तक था। ब्राह्मी लिपि कालान्तर में सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं की माता बनी। तिब्बत, सीलोन, ब्रह्मा की भाषाओं की माता भी ब्राह्मी लिपि है। खरोष्ट्री लिपि ५ वीं शताब्दी के लगभग भारत से लुप्त हुई।

अशोक के शिला लेखों में वर्ण विन्यास अथवा अक्षर विन्यास की विचित्रता है। शिला लेखों में कहीं भी समान व्यञ्जन, द्विगुणित नहीं किए गए हैं। इन लेखों में दो प्रकार की भाषा व्यवहार में लाई गई है। स्तम्भ लेखों की भाषा का भारत में बहुत प्रचार था। यह भाषा सम्पूर्ण मध्यदेश, बिहार, उड़ीसा और देहरादून तक प्रचलित थी। श्री भण्डारकर मौर्य दरबार की भाषा मागधी मानते हैं[३]। मध्यदेश और कलिंग तक इसी भाषा का चलन था। परन्तु उत्तरापथ के शाहबाजगढ़ी और मानसरा के लेखों की भाषा तथा दक्षिण के गिरनार की भाषा में अन्तर है।

अशोक के लेखों से यह प्रकट होता है कि साधारण जनता में शिक्षा का काफी प्रचार था। विद्या की उन्नति में बिहारों में बहुत कार्य हुआ।

वि० स्मिथ का मत है कि अशोक काल में शिक्षा का औसत प्रतिशत ब्रिटिश राज्य से बढ़कर थी। उस काल में लोगों के गृहस्थ जीवन और नागरिक सम्बन्ध अच्छे थे। कुटुम्ब धर्म के प्रमुख शिक्षालय थे। गृह जीवन का स्नेह बन्धन धर्म का प्रमुख लक्षण था। माता-पिता की सेवा, मित्रों, सम्बन्धियों के प्रति उदारता, ब्राह्मणों और श्रमणों की सेवा, प्राणियों का संयम आदि की भावना गृहस्थों में थी[४]। गृहस्थ साधु सन्तों का आदर करते थे।

---

१. शिला लेख ९, ११ और १३ तथा स्तम्भ लेख ७।
२. दूसरा शिला लेख
३. भण्डारकर का अशोक, पृ० २०७।
४. गिरनार का तीसरा लेख।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बहु विवाह और बहुभार्यत्व की प्रथा थी। अशोक की अनेक रानियाँ थीं। थोड़ी आयु में भी विवाह होते थे। राजकुमारी संघमित्रा का १४ वें वर्ष ब्याह हुआ। अठारहवें वर्ष उसका पति भिक्षु हुआ और बीसवें वर्ष वह भिक्षुणी हुई[1]।

कला-कौशल और वास्तु—अशोक कला का प्रेमी था। उसने असंख्य स्तूपों विहारों तथा नगरों और प्रासादों का निर्माण कराया[2]। उसने ८४ हजार विहार तीन वर्ष में ही बनवाए थे[3]। श्रीनगर और देवपट्टन इन दो नगरों का अशोक ने निर्माण किया। उसने काश्मीर प्रान्त की सारी आय बौद्ध विहार को दे दी थी। देवपट्टन नगर नैपाल में था। एक बार अशोक ने अपनी पुत्री चारुमती सहित नैपाल की यात्रा की थी; उस समय चारुमती के पति देवपाल ने वहीं बसने की इच्छा प्रकट की—अतः उसने वहां भिक्षु और भिक्षुणियों के लिए मठ बनवाए। चार स्तूप बनवाए और देवपट्टन नगर बसाया[4]। अशोक ने अपने आधीनस्थ सब राजाओं और प्रांत पतियों को विहार बनाने की आज्ञा दी थी, तथा स्वयं पाटलिपुत्र का अशोकाराम बनवाया था। सांची के स्तूप और भरहुत स्तूप भी अशोक के बनाए हुए थे। ह्वेनसांग ने सातवीं शताब्दी में अशोक के ८० स्तूप और विहार तथा काश्मीर में ५०० विहार देखे थे। काफिरस्तान में उसने सौ फुट ऊंचा स्तूप बनवाया था। जलालाबाद, उदरात, तक्षशिला में बड़े बड़े स्तूप थे। सिंहपुर का स्तूप २०० फीट ऊँचा था। थानेश्वर का ३०० फीट ऊंचा। प्रयाग कौशाम्बी, काशी, गया, कपिलवस्तु, श्रावस्ती, कुशीनगर, सारनाथ, गाजीपुर, महाशाल, वैशाली, पाटलीपुत्र–राजगृह, ताम्रलिप्ति, कर्णसुषण, कलिंग; चोल, द्राविड़, बल्लभी–महाराष्ट्र, मुलतान, चीनपटी, मथुरा आदि में बड़े बड़े स्तूप थे।

पाटलिपुत्र के अशोकाराम को ही कुक्कुटाराम कहते थे। विहारों और स्तूपों के अतिरिक्त प्रस्तर स्तम्भ भी थे। फाहियान ने ६ स्तम्भों का उल्लेख किया है। जिनमें दो श्रावस्ती के जैत वन विहार के द्वार के दोनों ओर थे। तीसरा संकाश्य में था; जो ५० हाथ ऊँचा था। इसके सिरे पर शेर की मूर्ति थी। पाँचवां छटा स्तम्भ पाटलिपुत्र में था। ह्वेनसांग १५ स्तम्भों की बात कहता है[5]। सांची का स्तूप बहुत बड़ा है। यह ईंटों का बना है। भरहुत का स्तूप भी ईंटों का था। इसके चारों ओर ७ फुट ऊंची पाषाण वेष्ठिनी थी। जिसमें बहुत सी बौद्ध गाथाएं चित्रित थीं। ये चित्र मौर्य चित्रकला के उत्कृष्ट नमूने थे। यह स्तूप अब नष्ट प्राय है।

---

१. महावंश।
२. दिव्यापदान, २७ वाँ प्रकरण।
३. महावंश और ह्वेनसांग।
४. कैम्ब्रिज हिस्ट्री पृ० ५०१।
५. देखिए फाहियान और ह्वेनसांग के वर्णन।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अशोककालीन सात गुफाएँ भी प्राप्त हैं, जो गया के पास परावर और नागार्जुन पहाड़ियों पर मिली हैं। ये गुफाएँ पहाड़ काट कर बनाई गई हैं। इन सात में से तीन अशोक के पौत्र दशलथ की बनाई हुई हैं। इन सब गुफाओं में मौर्यकालीन शिल्प की विशेषताएँ अङ्कित हैं। दीवारों और छतों पर चमकीली पालिश है। इनमें कई गुफाएँ आजीवकों को भेंट की गई थीं। कई उपगुप्त को भेंट की गई थीं।[1]

अशोककालीन वास्तु शास्त्र के सर्वोत्कृष्ट नमूने थे स्तूप, शिलास्तम्भ और गुहाभवन हैं। जिन पर अशोक की धर्मलिपियाँ अङ्कित हैं। वे कला के रूप में सर्व सुन्दर और परिपूर्ण नमूने हैं।[2] मौर्यकाल के शिलास्तम्भ-कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। ये स्तम्भ एकाकी; स्थूलाकार या पिण्डाकार हैं। ४ फीट वर्गाकार और ५० फीट लम्बा पाषाण स्तम्भ आजकल के वैज्ञानिकों को भी चकित करता है। इस समय सर्वसुन्दर स्तम्भ लौरिया–नन्दन गढ़ का है। इसके सिरे पर शर की मूर्त्ति बनी है। और अबेकस (abacus) सुन्दर हंसों से चित्रित हैं। हंस खाना चुगते दिखाए गए हैं। वे बुद्ध के शिष्यों के प्रतीक हैं।

रामपुरवा, सारनाथ, सांची के स्तम्भ भी सुन्दर हैं। सिंहों की चार मूर्त्तियों को आश्चर्यजनक कलापूर्ण चित्रित किया गया है। वही सिंह आज हमारा राष्ट्रीय चिन्ह बन गया है। सिंह की मूर्त्तियों के नीचे चार चक्र बने हैं। इनके मध्य में हाथी बैल तथा अश्व के चिन्ह हैं। नीचे का भाग विशाल घंटाकार है। सनकिरा के स्तम्भ के सिरे पर हाथी की मूर्त्ति है। रामपुरवा स्तम्भ के सिरे पर बैल की तथा लौरिया ऊराराज के स्तम्भ के सिरे पर गरुड़ की मूर्त्ति है।[3] यह प्रकट है कि अशोक-कालीन स्तम्भों के सिरे पर बहुधा सिंह, हंस, हाथी, बैल, गरुड़ चक्र और अश्व की प्रतिमूर्तियाँ अङ्कित रहा करती थीं। स्तम्भों पर चमकीली पालिश है जो मौर्य कलाकारों की उत्कृष्टता की द्योतक है। विद्वानों का मत है कि पाषाण तक्षकों की हस्त कुशलता उस समय पूर्णता को पहुँच चुकी थी। चमकीली पालिश को देखकर सत्रहवीं शताब्दी में टाम कैरट ने उसे पीतल का बताया था।[4] ये स्तम्भ चुनार पत्थर के बने हैं। इनमें से प्रत्येक का वज़न १४०० मन के लगभग होगा। आश्चर्य है कि कैसे ये उस काल में एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाए गए और खड़े किए गए होंगे। फिरोजशाह तुगलक ने जब तोपरा स्तम्भ को दिल्ली ले जाना चाहा था—उस सम्बन्ध में सिराज लिखता है—बादशाह ने दोआब के

१—महावंश और ह्वेनसांग का विवरण।

२—देखिए—फर्ग्यूसन की केम्ब्रिज हिस्ट्री, जि०, १।

३—V. Smith oxford Histor

४—V. Smith oxford History

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निवासियों तथा सब पैदल, और घुड़सवार सैनिकों को फर्मान भेजे कि वे वहां एकत्र हों। तब सेमल की रुई मगाई गई और स्तम्भ पर लपटी गई। नीव की जांच करने पर एक चौकोर पत्थर मिला। वह भी बाहर निकाल लिया गया। बाद में सारा स्तम्भ कच्ची खाल और घास में लपेट लिया गया, जिससे उस पर खरोंच न आ सके। तब ४२ पहियों की गाड़ी बनाई गई। जिसके हर पहिए पर रस्सियाँ बंधी थीं। रस्सियों को खींचने के लिए हजारों आदमी जुटे थे। बड़ी कठिनाई से स्तम्भ गाड़ी पर रक्खा गया। तब हर पहिए को धकेलने को २०० आदमी तैनात किए गए। इस प्रकार साढ़े आठ हजार मनुष्यों ने उस गाड़ी को खींचा। जब गाड़ी यमुना किनारे पहुंची—फिर उसे बड़ी-बड़ी वजनी २०० नावों पर रखा गया। तब स्तम्भ दिल्ली पहुँचा।[1]

पाटलिपुत्र में तो काष्ठ का ही बाहुल्य था। चन्द्रगुप्त तथा अशोक का महल काठ ही का था। पत्थर का शिल्प कदाचित् अशोक ही ने आरम्भ किया था। जिससे उसकी धर्मलिपियाँ चिर स्थायी रहें।[2] अशोक के स्तम्भ परसौ-यूनानी ढग के हैं।

अशोक के राज्य भर में सिंचाई का उत्तम प्रबन्ध था। कृषकों को पानी मिलने की सुन्दर व्यवस्था थी। सोने-चाँदी के आभूषण बनाने, पहनने का भी रिवाज था। उन पर रत्न जड़े जाते थे। मूर्त्तियां भी पत्थर और धातु की बनती थीं।[3] नगर निर्माण पद्धति से होता था। पाटलिपुत्र की काष्ठनगरी तथा राजा के भव्य प्रासाद को देखकर मेगस्थनीज ने उसे संसार के सब नगरों और राजभवनों से श्रेष्ठ बताया था।

अशोक की महत्ता--चान पैन्शियर का यह कथन सत्य है कि अशोक ने अपने लेखों में अपना व्यक्तित्व छिपा दिया है। वह एक सच्चा सरल और प्रजा-सेवी राजा था। वह मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र था तथा भूत दया का प्रेमी था। उसने सारा जीवन लोकहित में व्यतीत कर दिया। उसके सत्कर्म की उसकी राज-सत्ता बाधक भी थी तथा साधक भी। वह अपने प्रजा ही की नहीं, पड़ौसी देशों की प्रजा की भी भलाई चाहता था। उसका आदर्श सर्व कल्याण था। इसी आदर्श की पूर्ति करने के लिए वह राजकीय वैभवों को ठुकराकर आजीवन विश्व-कल्याण का हित करते रहे।[4] रेपसन और हाडी ने अशोक की तुलना कौन्स टैन्राइन सम्राट् से दी है। कौन्स टैन्राइन क्रिश्चियन धर्म का सरक्षक था। उसका धर्म

१--ईलियट का भारतवर्ष का इतिहास, तीसरा खण्ड।

२--छठा शिलालेख, मानसरा।

३--कैम्ब्रिज हिस्ट्री, प्रथम जिल्द।

४--दिग्गनिकाय सुत्त।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिवर्तन ईसाई धर्म के इतिहास में क्रान्ति का युग माना जाता है। यद्यपि दोनों अपने २ धर्म के संरक्षक थे। पर उनके आदर्श पृथक् थे। कौन्सटैन्टाइन के समय ईसाई धर्म प्रचलित धर्म था। पर अशोक के काल में बौद्ध धर्म केवल विहार के आसपास का ही धर्म था। उसमें तभी दोष होने लगे थे। अशोक ने उसे विश्व धर्म बना दिया। यदि रोमन साम्राज्य की भांति मौर्य साम्राज्य भी अशोक के बाद चिरस्थायी रहता तो निस्सन्देह समूचा भारत और समूचा एशिया बौद्ध धर्म के झण्डे के नीचे आ जाता। अशोक के कारण भारतवर्ष की आध्यात्मिक महत्ता विश्व की दूसरी जातियों पर स्थापित हुई। सब जातियों में एकता के भाव बढ़े। कला कौशल और ज्ञान की अभिवृद्धि हुई।

२—बौद्ध-सम्प्रदाय

दो सम्प्रदाय शाखाएँ—शिशुनाग वंशी सम्राटों ने तो बौद्ध धर्म को बुद्ध के जीवन काल ही में राज धर्म मान लिया था। उनके बाद नन्दों ने भी उनके प्रति उदार भाव रक्खा। बाद में मौर्य सम्राट् अशोक ने बौद्ध धर्म को महान् प्रश्रय दिया।

बुद्ध की मृत्यु ४८३ ई० पू० में हुई। उनके बाद के प्रथम १०० वर्षों में, अर्थात् ३८० ई० पू० तक बौद्ध संघ के दो सम्प्रदाय हो गए—

(१) स्थविरवाद (वृद्धों का सम्प्रदाय)

(२) महासांघिक (सुधारा हुआ सङ्घ)

अशोक काल के सम्प्रदाय—इसके बाद अगले सवा सौ वर्षों में बढ़ कर स्थविरवाद के बारह और महासंघिक के छः निकाय हो गए। निकाय का अर्थ शाखा है। इन अठारह निकायों के पिटक-विनय-सुत्त और अभिधम्म भी थे। सुत्तों और विनयों में तो समानता ही थी। पर अभिधम्म पिटक पुस्तकें भिन्न-भिन्न बना दी गई थीं। स्थविर वादियों के अभिधम्म की पुस्तक 'कथावत्थु' में प्राचीन निकायों में से अनेकों का खण्डन किया गया है। कथावत्थु अशोक काल में अशोक के धर्मगुरु मोग्गलि पुत्र तिष्य ने लिखी थी। अशोक के काल में २६९ ई० पू० में वह जिन सम्प्रदायों में बंट चुका था, उन सम्प्रदाय शाखाओं की यह सारिणी हम देते हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१८ निकाय —

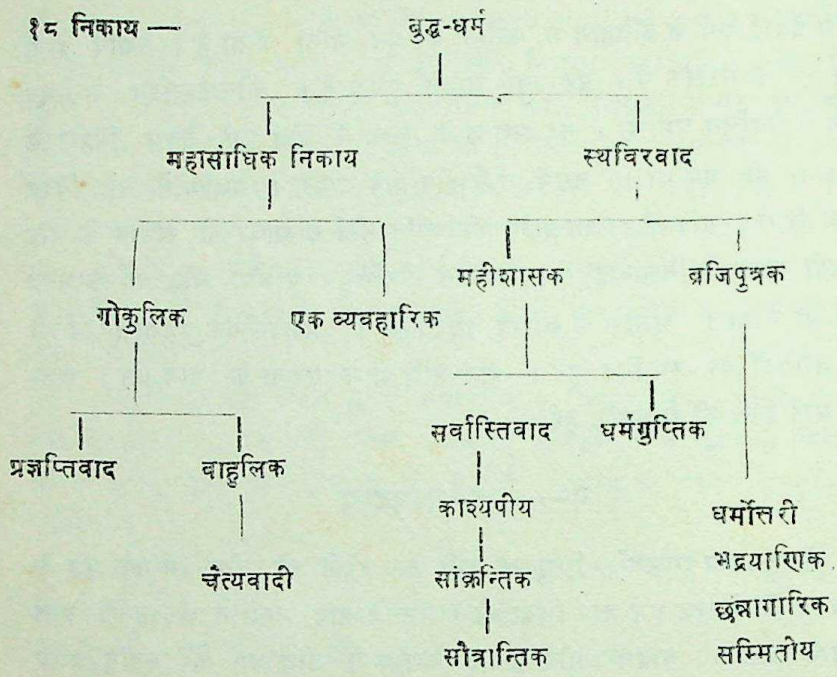

मौर्यों के शासन के अन्त तक मगध ही बौद्ध सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र रहा। मौर्य साम्राज्य के भंग होने पर बौद्ध सम्प्रदाय का केन्द्र भी पूर्व से पच्छिम की ओर हटने लगा। इसी समय सर्वास्तिवाद निकाय मगध से हट कर गोवर्धन–मथुरा पहुँचा। पीछे यवन शासन का पंजाब में प्रभाव होते-होते––कनिष्क के काल में ईसा की प्रथम शताब्दी के मध्य में ही गांधार और काश्मीर उसके प्रधान केन्द्र बन गए। यहीं वह पहिली बार यूनानी सम्पर्क में आया। और उसके विचार–कला तथा भाषा प्रवाह में परिवर्तन हुए।

दार्शनिक सम्प्रदाय—इन सब प्राचीन निकायों के दार्शनिक विचार भी थे। सर्वास्तिवाद और सौत्रान्तिक तो प्राचीन १८ निकायों से ही सम्बन्धित थे। ईसा की प्रथम शताब्दी में योगाचार और माध्यमिक दो और प्रकट हुए। आगे इन चारों ही दार्शनिक सम्प्रदायों का विकास हुआ।

महा संघिकों में एक निकाय 'चैत्यवाद' भी था। इसका केन्द्र आन्ध्र में धान्य-कटक का महाचैत्य था। आन्ध्र के पच्छिमी भाग में-जिसे आज महाराष्ट्र कहते हैं, एक सम्मतिक निकाय का जोर था। आगे चलकर इन्हीं दोनों में महायान का विकास हुआ। अर्वाचीन निकायों में एक उत्तरापथक और हेतुवाद भी था। उत्तरापथक काश्मीर गान्धार मेंप्रचलित था। योगाचार अफलातूं के विज्ञान वाद और प्रतीत्य समुत्पादका का कुछ मिश्रण सा था। लंकावतार सूत्र–वैपुल्पवादी पिटक से उसका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समर्थन होता था। नागार्जुन माध्यमिक वाद के समर्थन में प्रज्ञापारमितारों और अन्य सूत्र रचे गए।

नागार्जुन प्रथम बौद्ध सब से बड़ा दार्शनिक था। उसके दर्शन का विकास असंग और वसु मित्र ने किया। ये दोनों भिक्षु पठान थे। नागार्जुन से एक शताब्दी प्रथम पेशावर में अश्वघोष प्रसिद्ध कवि और बौद्ध विचारक था। इस प्रकार गान्धार में श्रेष्ठ बौद्ध मस्तिष्क और यूनानी मस्तिक एकत्र होकर नए दर्शन को ही नहीं—काव्य और नाटकों को भी एक नए प्राण दे रहे थे। उसी का ज्वलंत स्वरूप नागार्जुन की दार्शनिक विचार धारा में प्रगट हुआ। जिसके भारतीय दार्शनिकों को एक अभिनव उत्थान प्रदान किया।

३—बौद्ध धर्म का प्रभाव और विस्तार

बौद्ध धर्म के प्रसार का वातावरण—यह एक गम्भीरतथ्य है कि नई धर्म प्रणालियों का, चाहे वे कितनी ही उत्तम क्यों न हों—जन साधारण द्वारा स्वीकार किया जाना बहुत कुछ बाहरी घटनाओं पर निर्भर है। ईसाई धर्म ने अपनी आरंभिक शताब्दियों में बहुत कम उन्नति की। पर ज्योंही रोमन सम्राट् को स्टैन्टाइन ने उसे ग्रहण किया, यह धर्म सारे योरोप का धर्म बन गया। क्योंकि उस समय रोमन अधिकार और रोमन संस्कृति की सारे ही योरोप पर धाक थी। मुहम्मद के धर्म का तो उस समय प्रचार हुआ जबकि संसार में उसका विरोध करने वाला ही कोई न था। रोम का पतन हो चुका था। और योरोप में सैनिक संगठन न था। भारत में आर्यों का प्रचार भी पंजाब से आगे गंगा जमुना की घाटियों में फैलने के साथ २ हुआ। जबकि उन्होंने आदिवासियों को विजय किया। इसी प्रकार बुद्ध के धर्म का प्रचार, जिसमें ब्राह्मण और चाण्डाल में अन्तर नहीं माना गया, सबको समानाधिकार दिए गए, प्राचीन आर्यों के उत्तर पच्छिमी भारतीय क्षेत्रों की अपेक्षा मगध के अनार्य राज्य में अधिक हुआ।

मगध की अनुकूलता—ईसा की प्रथम तीसरी शताब्दी में ही मगध राज्य ने भारत में प्रधान स्थान ग्रहण कर लिया था। तब बौद्ध धर्म भी उसका राजाश्रय पाकट भारत का मुख्य धर्म हो गया। शिशुनाग वंश का अन्त ई० पू० ३७० में ही हो गया था। इस वंश को आर्य बहिष्कृत वंश माना जाता था। इस वंश के बिम्बसार और अजात शत्रु ने बड़े २ राज्यों को जीतकर अपने वंश और साम्राज्य की प्रतिष्ठा बढ़ाई थी। तथा बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। इनके बाद नन्दों का राज्य हुआ। वे शूद्रा से उत्पन्न नीचकुल का राज्य था। उसने और उसके ८पुत्रों ने लगभग ५०वर्ष राज्य किया। अन्तिम नन्द को चन्द्रगुप्त मौर्य ने आक्रान्त कर मगध की गद्दी छीन ली। चन्द्रगुप्त मौर्य एक अज्ञात कुल वंश का तरुण था। जिसके सम्बन्ध में भांति २ के अनुमान लगाए जाते हैं। इसे चाणक्य जैसे राजनीति निपुण ब्राह्मण की बुद्धि का आश्रय मिल गया। और यह मगध का अकस्मात् ही सम्राट् बन बैठा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक की धर्म विजय—यह घटना ई० पू० ३२० मे हुई। परन्तु न तो चन्द्र गुप्त ही और न उसका पुत्र बिन्दुसार ही बौद्ध धर्म में दीक्षित हुआ। पर बिन्दुसार के उत्तराधिकारी अशोक ने—जो ई० पू० २६० में गद्दी पर बैठा। बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया। उसने सम्पूर्ण भारतवर्ष में और भारत के बाहर भी बौद्ध धर्म का भारी प्रसार किया। अशोक का नाम बोलगा से लेकर जापान तक और साइबेरिया से लेकर लंका तक सत्कार की दृष्टि से देखा जाता है। अशोक का राज्य सारे उत्तरी भारतवर्ष में फैला हुआ था। उसके शिलालेख दिल्ली और इलाहाबाद में, पेशावर के निकट और गुजरात में, उड़ीसा और मैसूर में भी पाए जाते हैं। उसने बौद्धों की तीसरी सभा अपने राज्य के १८वें वर्ष में ई०पू० २४२ मे पाटली पुत्र में की। नौ मास तक यह सभा होती रही। इसका सभापतित्त्व किया मोग्गलि पुत्र तिष्य ने। इसमें एक हजार विद्वान् बौद्ध एकत्रित हुए थे। इसमें एक बार फिर पवित्र पाठों का उच्चारण किया गया। और वे निश्चित किए गए। इस सभा के बाद अशोक ने काश्मीर–गान्धार, मैसूर बनवासी और अपरंतक में (पच्छिमी पंजाब) महारत्थ, योन लोक (वैक्रिया और यूनान) हिमवन्त (मध्य हिमालय) सुवर्ण भूमि (वर्मा) और लंका में उपदेशक भेजे। उसकी आज्ञाओं का पालन चोल, (मद्रास प्रान्त) पाण्ड्य (मदुरा) सत्यपुर (सतपुड़ा पर्वत) केरल (ट्रावनकौर) लंका और सीरिया के यूनानी राजा एण्टीओकस के राज्यों में किया गया। उसने पांचों यूनानी राज्यों—सीरिया, मिस्र, मेसेडन, एपिरोस और सीरिन में दूत भेजे। उसने अपने तरुण प्रिय पुत्र महेन्द्र को भिक्षु बनाकर लंका भेजा, जिसने शीघ्र ही लंका के राजा को बौद्ध बना लिया। तथा लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार हो गया। महिन्द ने जहाँ २ कार्य किया–वे स्थान अब भी लंका में हैं। अनुरुद्धपुर के उजड़े हुए नगर से आठ मील की दूरी पर महिन्तले की पहाड़ी है। जहां लंका के राजा ने भारतवर्ष के भिक्षुओं के लिए विहार बनवाया था। महिन्द्र अत्यन्त वृद्धावस्था तक जीवित रहा। और लोगों को पवित्र धर्म की शिक्षा देता रहा। तिस्स और महिन्द्र की मृत्यु के उपरान्त लंका पर दो बार द्रविड़ों ने आक्रमण कर उसे विजय किया। परन्तु ईसा के लगभग ८८ वर्ष पहिले उन्हें वट्ट गामिनी ने निकाल दिया। उसी समय तीनों पिटक जो इतने वर्ष तक कण्ठग्र रखे गए थे। लिपिबद्ध किए गए[1]। ४५० ईस्वी में बुद्ध घोष लंका में गया और उसने अपने प्रसिद्ध भाष्य रचे। फिर उसने वर्मा में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। स्याम में ६३८ ई० में बौद्ध धर्म ने प्रवेश किया। इसी समय जावा और सुमात्रा में भी यह धर्म फैहलाया ये सब देश दक्षिणी बौद्ध धर्म या हीनयान के अनुयायी हुए। यदि मौर्य साम्राज्य रोमन साम्राज्य की भांति स्थायी रहता तो निश्चय ही भारत का सार्व भौम बौद्ध धर्म हो जाता।

उत्तरी बौद्ध धर्म—उत्तरी बौद्ध धर्म जो महायान के नाम से प्रसिद्ध था, ईस्वी सन के प्रारम्भ में उत्तर पच्छिम देशों में फैल गया था। और वह उस समय उन भूभागों

१—दीपवंश देखिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का मुख्य धर्म था। काश्मीर के राजा पुष्यमित्र ने ई० पू० दूसरी शताब्दी में बौद्धों का विनाश किया, उसके पुत्र अग्निमित्र ने गंगा तट पर यूनानियों से लोहा लिया। युद्ध में यूनानियों की विजय हुई, और उनके नेता मिनिंदर ने ईसा पूर्व १५० में साकल में राजधानी बना—अपना राज्य गंगा तट तक फैला दिया। इस विजयी और बुद्धिमान यूनानी राजा ने बौद्ध भिक्षुओं से सम्पर्क स्थापित किए। और भिक्षु नागसेन से उसने धार्मिक वार्तालाप किया, जो पाली ग्रन्थ में सुरक्षित है।

अशोक ने सीरिया और मिस्र में विद्वान् और निष्ठावान् उपदेशक भेजे। जो उन्हीं देशों में बस गए। उनके उपदेश, चरित्र और जीवन की वहां के निवासियों पर गहरी छाप पड़ी, और उन्होंने वहां बड़े समर्थ बौद्ध समाजों की स्थापना की। अलग्जैन्ड्रिया के थेरापूटस और पैलेस्टाइन के ऐसिनीज जो यूनान में सन्त प्रसिद्ध थे; बौद्ध भिक्षु थे। वे यूनान में बौद्ध धर्म सिद्धान्तों का उपदेश देते, और बौद्ध नीतियों पर अमल करते थे। पच्छिम के विचारों पर उनका भारी प्रभाव था। अशोक से तीन शताब्दियों बाद, जब ईसा मसीह जीवित था और यहूदियों में उपदेश दे रहा था—ये बौद्ध भिक्षु एसेनीज इतने प्रसिद्ध हो चुके थे। उनके विषय में प्लीनी जो ई० स० २३ और ७९ में हुआ कहता है—'डेडसी के पच्छिमी किनारों पर रहने वाले ऐसेनीज लोग है, वे वीतराग सम्प्रदाय के हैं, वे विवाह नहीं करते, और स्त्री प्रसंग को त्याज्य समझते हैं। वे अपने पास द्रव्य नहीं रखते। उनके पास नित्य भीड़ लगी रहती है। बहुत से मनुष्य अपने जीवन में दुर्भाग्यों के कारण उनका आश्रय लेते हैं।' यह रोमन इतिहासज्ञ ईसा मसीह के काल में पैलेस्टाहन में पूर्वी विचारों और समितियों की उन्नति की अन्य बातें भी बताता है। जिनका अभिप्राय यह है कि अशोक की तीन शताब्दियों के बाद पैलेस्टाइन में बौद्ध भिक्षुओं ने एक स्थायी प्रभाव पैदा कर लिया था। जिन का सांस्कृतिक प्रभाव ईसा मसीह और ईसाई धर्म दोनों पर समान भाव से पड़ा।

सीरिया में ईसा से पहिले तीसरी शताब्दि में बौद्ध धर्म का प्रचार हो रहा था, और ईसा मसीह के जन्म काल में पैलेस्टाइन में बौद्ध धर्म ग्रहण किया जा चुका था। बौद्ध लोग वहाँ भिन्न भिन्न नामों से रहते, और गौतम के सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। ईसा मसीह पर उनका प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि ईसा और बुद्ध की धर्म स्थापनाओं में इतनी समता है। कुछ विद्वानों का यह मत है—कि प्राचीन ईसाई धर्म वास्तव में एसिनीज लोगों को बौद्ध धर्म ही का एक रूप है। कम से कम यह तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि ईसाई धर्म धर्मनीति और सदाचार की दृष्टि से बौद्ध धर्म का ऋणी है।

ईसा के बाद पहिली शताब्दी में कनिष्क की आधीनता में यूची लोगों ने काश्मीर को जय किया। कनिष्क का महाराज्य काबुल, यारकन्द, खोकान, काश्मीर और राजस्थान में, सम्पूर्ण पंजाब में, दक्षिण में, गुजरात और सिन्ध, तथा पूर्व में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मथुरा तक फैला हुआ था। वह महायान पंथ का अनुयायी था। उसने ५०० अर्हन्तों की एक सभा की। इस सभा ने तीन भाष्य रचे। यदि इस सभा में अशोक की सभा की भांति धर्म ग्रन्थों के पाठ निश्चय किए गए होते तो उत्तरी बौद्ध धर्म साहित्य का एक स्थिर रूप हमारे सम्मुख होता। ऐसा न होने से यह धम प्राचीन धर्म से दूर होता गया।

ईसा मसीह और ईसाई धर्म पर बौद्ध प्रभाव—ईसा मसीह पर और ईसाई धर्म पर बौद्धधर्म की गहरी छाप दिखाई देती है। बौद्ध और ईसाई धर्मों की कथाएँ, कहानियाँ, रूपक, व्यवस्था और आदेशों की अद्भुत समानता है। खास कर महायान सम्प्रदाय की बातें उस से मिलती हैं। ललित बिस्तर के वर्णन ऐसे ही हैं। ईसा मसीह की भाँति गौतम बुद्ध के भी बारह प्रधान शिष्य थे। धर्म ग्रहण करने के समय जन्म संस्कार की प्रथा जान बैपटिष्ट ने ऐसेनीज से ग्रहण की थी, जो ईसा के जन्म के पहिले पलेस्टाइन में बौद्ध प्रचारक था। जब गैलील में ईसा एक युवक उपदेशक था तब वह जानबैपटिस्ट की यशो गाथा सुन उसके यहाँ गया था, और कुछ दिन उस के साथ रहा था। उसने जान से एसेनीज की बहुत सी आज्ञाओं और उपदेशों को सीखा, और जल संस्कार की रीति ग्रहण की थी। तभी से जल सस्कार ईसाई धर्म की एक मुख्य रीति बन गई। ईसाई बपनिस्मा लेते समय—पिता-पुत्र और पवित्रात्मा को स्वीकार करते हैं। जैसा कि बौद्ध दीक्षा के समय—बुद्ध धर्म और सघ की शरण को स्वीकार किया जाता था। यह त्रिवचन ईसाई और बौद्ध संस्कारों में समान ही है। इसके अतिरिक्त बाइबिल की कथाऐं बहुत अंश में बौद्ध जातकों के समान हैं। तिब्बत के लामा लोग घड़ी, टोपी, चोगा आदि चिन्ह, जिन्हें बड़े लामा लोग यात्रा अथवा मन्दिर के बाहर उत्सव के समय पहिनते हैं। अथवा पूजा के समय दोहरे गाने वाले, भजन झाड़, फूंक, धूप दान का पाँच सिकड़ियों में लटकाना, भक्तों के सिर पर लामाओं का सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद देना, माला, लामाओं का क्वारा रहना, संसार से वैराग्य मानना, उपवास, प्रार्थनाऐं, पवित्र जल, व पाप की स्वीकृति' माथे के बीच का भाग मुण्डाए रखना, महात्माओं की हड्डी की पूजा करना, पूजा स्थानों पर फल और रोशनी, वेदी पर स्वस्तिक चिन्ह, त्रिमूर्ति का एक्य धर्म पुस्तकों का गूढ़ भाषा में प्रवचन, ये सब ऐसी बातें हैं, जो रोमन केथलिक पादरियों से बहुत साम्य रखती हैं। इसी से तिब्बत में जब पहिले पहिल ईसाई पादरी गए, तो वहाँ के रीति-रिवाजों को देख कर दंग रह गए। इससे यह स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म की ईसाइयत पर गहरी छाप है।

नालन्द और विक्रम शिला के विश्वविद्यालय बौद्ध धर्म के विद्या और संस्कृति के ऐसे केन्द्र थे, कि उस काल में योरोप में वैसा एक भी मठ या विद्या केन्द्र न था। ईसाई धर्म के मठों की स्थापना भी बौद्ध मठों और विहारों के अनुकरण पर बनाए गए हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

४--महायान का उदय

अशोक के बाद—अशोक के बाद पाँच शताब्दियों तक, तीसरी शताब्दी पर्यन्त भारत में इन्हीं १८ निकायों की प्रधानता रही। जिनमें उत्तरी भारत, काश्मीर और गन्धार में क्रमशः सर्वास्तिवाद का प्रचार हुआ। ज्यों ज्यों बौद्ध धर्म का प्रसार पच्छिम की ओर होता गया। बौद्ध धर्म से ब्राह्मणों और जैनों का विचार सम्बन्धी मत भेद और भारी संघर्ष रहा। इसके बाद में उनसे यवनों का सम्पर्क हुआ, इन विदेशियों का ब्राह्मणों की अपेक्षा बौद्ध ही खुले दिल से स्वागत कर सके। फलतः ये भी बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित हुए। पर ये यवन बहुत सभ्य और संस्कृत जाति के थे। उनके मस्तिष्क में अफलातून और अरस्तू जैसे महान् दार्शनिकों के सिद्धान्त घूम रहे थे। इन स्वदेशी और विदेशी विचारधाराओं के संघर्ष से बौद्ध विचारधारा का वेग बढ़ गया। और महायान सम्प्रदाय की नीव पड़ी।

महायान बौद्ध धर्म के उच्च आदर्शों को व्यक्त करता है। महायान सम्प्रदाय में बुद्ध को देवता मान लिया गया। और बोधिसत्व की स्थापना हुई। बोधिसत्व की योग्यता चरम त्याग के आदर्शों पर स्थापित की गई। तथा धर्मग्रन्थों की भाषा संस्कृत स्वीकार की गई। महायान सम्प्रदाय में उच्च दार्शनिक विचारों तथा साहित्य का सूत्रपात हुआ। नागार्जुन–असंग–वसुवन्धु–दिङ्नाथ और धर्मकीर्ति आदि विद्वानों ने महायान के विचारों और दार्शनिक साहित्य से संसार को प्रभावित कर दिया। असंग ने बौद्ध दर्शन के साथ अफलातूं की विचारधारा का सामञ्जस्य किया। उसने विज्ञान को बौद्ध क्षणिकवाद के साथ जोड़ दिया। यही क्षणिक विज्ञानवाद आगे—वसुवन्धु–धर्मकीर्ति, दिङ्नाथ आदि बड़े-बड़े दार्शनिकों का पथ-प्रदर्शक बन गया।

कनिष्क का प्रभाव—ईसा की प्रथम शताब्दी में बंगाल की खाड़ी से अराल समुद्र तक शक राजा कनिष्क का राज्य विस्तार था। कनिष्क का समकालीन अश्वघोष था। अश्वघोष और कनिष्क दोनों ही सर्वास्तिवादी बौद्ध थे। पर जब ईसा की दूसरी–तीसरी शताब्दी में हूणों के आक्रमणों के कारण शक राजा भारत के भीतरी भागों में घुस गए, उस समय भी काश्मीर और हिमालय की तराई तथा गांधार में सर्वास्ति वादी सम्प्रदाय का ही प्रसार था। भदंत अश्वघोष; भदंत वसुमित्र, भदन्त मातृचेट्टि सर्वास्ति वादी भिक्षु थे। कनिष्क उनके उपासक थे। नागार्जुन भी महायान पन्थी थे, यह नहीं कहा जा सकता। नागार्जुन दूसरी शताब्दी के व्यक्ति थे। परन्तु नागार्जुन ने नई विचार परम्परा को आरम्भ किया था, और उन्होंने संस्कृत वाग्मय लिखने की परिपाटी चला दी थी। उनके बाद असंग काल तक चौथी शताब्दी में महायान का पूर्वोदय हुआ। और उसके बाद तीन शताब्दियों तक उसने उत्तरभारत के बौद्ध धर्म को आत्मसात किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वज्रयान और सिद्धों के सहजयान—सातवीं शताब्दी में महायान ही से वज्रयान-तन्त्रयान का जन्म हुआ, और आठवीं शताब्दी में सिद्धों का सहजयान प्रचलित हुआ। जो भारत में बौद्ध धर्म का अन्तिम रूप था।

सातवीं शताब्दी में भारत के महायान ही की प्रधानता थी। महायान का न अपना विनय पिटक था, न भिक्षु बनने की कोई धार्मिक विधि थी। नालन्द महायान सम्प्रदाय का गढ़ था। पर वहाँ सर्वास्तिवाद का विनय प्रचलित था। इस समय १८ निकायों में से केवल चार ही प्रचलित रह गए थे।

(१) **महासंघिक निकाय**—जिसकी सात शाखाएँ थीं। भारत में इसका कम प्रचार था। इसके प्रत्येक पिटक में एक लाख श्लोक थे-तीनों में तीन लाख थे।

(२) **स्थविर निकाय**—इसकी तीन शाखाएँ थीं। दक्षिण भारत और सिंहल में उसकी प्रधानता थी। पूर्वी बंगाल में भी इसके विहार थे।

(३) **मूल सर्वास्ति निकाय**—इसकी चार शाखाएँ थीं। उत्तरी भारत में सर्वत्र इसी का प्रचार था।

(४) **सम्मितीय निकाय**—इसकी भी चार शाखाएँ थीं, जिनका लाट और सिन्ध में प्रचार था।

मगध चारों ही निकायों का केन्द्र था—क्योंकि वहां वज्रासन (बोधिगया) और नालन्द विहार अन्तर निकायिक विद्यापीठ थे।

५—नागार्जुन प्रथम और उसका शून्यवाद

जन्म और शिक्षा—नागार्जुन का जन्म एक ब्राह्मण घर में विदर्भ में १७५ ई० में हुआ। पहिले उसने हिन्दु साहित्य और दर्शन पढ़े। पीछे बौद्ध साहित्य और दर्शनों का अध्ययन किया। पीछे उसने श्रीपर्वत (कौडा-गुन्टूर) को अपना निवास बनाया। उसने रसायन शास्त्र के भी प्रयोग किए। नागार्जुन का समकालीन आन्ध्र राजा गौतमी पुत्र यज्ञ श्री (१६५-१९६ ई०) था। उनकी कृतियों में-(१) माध्यमिक कारिका, (२) युक्तिषष्टिका, (३) प्रमाण विध्वंसन, (४) उपाय कौशल्य, (५) विग्रह व्यावर्तिनी कही जाती हैं। परन्तु प्राप्त-माध्यमिक कारिका और विग्रह व्यावर्तिनी ही हैं।

दार्शनिक विचार—विग्रह व्यावर्तिनी में उसने वस्तु-शून्यता प्रमाणित की है। वह कहता है—कि वस्तुओं में कोई स्थिर तत्त्व नहीं है, वह विच्छिन्न प्रवाहमात्र है। नागार्जुन को कारिका शैली का प्रवर्तक माना जा सकता है। कारिका में पद्य की-सी व्यवस्था और सूत्र की जैसी संक्षिप्त शैली है। नागार्जुन ने अपने तीन ग्रन्थ कारिका शैली ही में लिखे हैं। इन कारिकाओं पर व्याख्या भी उसने स्वयं की है। वह 'शून्य' के माहात्म्य को इस प्रकार कहता है—'जो शून्य को समझता है वह सभी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अर्थों को समझ सकता है। जो शून्य को नहीं समझता-यह कुछ भी नहीं समझ सकता। शून्य को समझने वाला प्रतीत्य-समुत्पाद को समझ सकता है। प्रतीत्य समुत्पाद को समझने वाला—आर्य सत्यों को समझ सकता है। आर्य सत्यों को समझने पर वह तृष्णा निरोध, निर्वाण आदि की प्राप्ति कर सकता है। वह धर्म, धर्म हेतु और धर्मफल भी जान सकता है। क्लेश, क्लेश हेतु और क्लेश फल भी जान सकता है।

शून्यता से नागार्जुन का अभिःप्राय यह है-कि विश्व और उसकी सभी जड़ चेतन वस्तुएँ किसी भी अचल तत्व से सर्वथा शून्य है। अर्थात् विश्व घटनाओं का नाम है। वह वस्तु समूह नहीं है।

नागार्जुन प्रतीत्य समुत्पाद के दो अर्थ करते हैं :—१-प्रत्यय से उत्पत्ति—अर्थात् सभी वस्तु कारण से उत्पन्न होती हैं। २-सभी वस्तु क्षण भर बाद नष्ट हो जाती हैं। फिर दूसरी नई घटना क्षण भर के लिए आती है। इस प्रकार उत्पत्ति का यह विभिन्न प्रवाह है। इसे ही वह मध्यम मार्ग कहता है। वह कहता है कि बुद्धान आत्मवादी थे, न भौतिक वादी। इसी से उनका मार्ग माध्यमिक (बीच का) है। आत्म वादियों की सतत विद्यमानता के विरुद्ध उसने विच्छिन्न या प्रतीत्य को रक्खा है, और भौतिकवादियों के सर्वथा उच्छेद के विरुद्ध प्रवाह को। नागार्जुन कहना हैं कि जिसकी उत्पत्ति-स्थिति और विनाश है,—उसकी परमार्थ सत्ता कभी नहीं मानी जा सकती। वह कहता है -वह सत् है न अ-सत् है। न सत् और असत् दोनों हैं। न सत् असत् दोनों नहीं हैं। कारक और कर्म की सत्ता अन्योन्याश्रित है। दोनों में किसी की भी स्वतन्त्र सत्ता नहीं हैं। इसी तरह सत्ता और असत्ता भी एक दूसरे पर आश्रित हैं। इसलिए ये प्रथक् २ सिद्ध नहीं किए जा सकते। कर्ता और कर्म के सम्बन्ध में वह कहता है—सत् रूप से क्रिया नहीं होती—अतः कर्म को कर्ता की आवश्यकता नहीं। इसी भांति कर्ता को कर्म की आवश्यकता नहीं।

नागार्जुन का दर्शन-शून्यवाद-दुनिया को शून्य मान कर उसकी समस्याओं के आस्तित्व से इन्कार करना है।

सुहृल्लेख-हमने बताया है कि आन्ध्रवंशी यज्ञ श्री गौतमी पुत्र सात वाहन राजा उसका मित्र था। यह भारी सम्राट् था; वह तीन समुद्रों का स्वामी था। उसे नागार्जुन ने एक सुहृल्लेख भेजा था। जिसका अनुवाद तिब्बत और चीन की भाषाओं में सुरक्षित है। इस लेख में लिखा था—

'धन को चंचल और असार समझो। उसे भिक्षुओं, ब्राह्मणों और मित्रों में बांट दो। सदाचार और शील को व्यवहार में लाओ। पर स्त्री को उसकी आयु के अनुसार मां-बहिन, बेटी समझो। लाभ-अलाभ, सुख, दुःख, स्तुति-निन्दा, मान-अपमान सब में समान भाव रखो। पत्नी को परिवार की अधिष्ठात्री जानो। मैं रूप नहीं हूं, रूप आत्मा नही है, आत्मा रूप में नहीं है, रूप आत्मा में नहीं है, इसी भांति वेदना आदि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चार स्कन्ध हैं। ये स्कन्ध न इच्छा से, न काल से, न प्रकृति से, न स्वभाव से, न ईश्वर से, और न बिना हेतु के पैदा होते हैं। समझो कि वे अविद्या और तृष्णा से पैदा होते हैं।

५—अन्य बौद्ध-दार्शनिक

असंग—असंग का जन्म ३५० ई० में पेशावर के एक पठान ब्राह्मण के घर हुआ। वसुवन्धु उसका छोटा भाई था। असंग योगाचार दर्शन का प्रथम आचार्य है। वह बड़ा भारी वाद शास्त्री था। असंग की पांच दार्शनिक कृतियों का पता लगा है। १–महायानोत्तर तन्त्र, २–सूत्रा लंकार, ३–योगाचार–भूमि वस्तु संग्रहणी, ४–बोधिसत्व ५–पिटकाव वाद। इनमें प्रथम तीन तिब्बती और चीनी भाषा में अनुवादित हुए हैं। योगाचार भूमि असंग का विशाल ग्रन्थ है, वह सत्रह भूमियों में विभक्त है। इसमें अनेक तर्कों—विषयों, विज्ञानों, दार्शनिक प्रश्नों पर विवेचना है। यह ग्रन्थ संस्कृत में है। यह ग्रन्थ बौद्ध सदाचार योग तथा धर्म तत्वों की विस्तृत विवेचना करता है।

दार्शनिक विचार - असंग क्षणिक विज्ञानवादी था। उसने सूत्रों की भाषा शैली अपनाई है। उसके दार्शनिक विचारों का सार इस प्रकार है—सब वस्तु सार शून्य और क्षणिक हैं। जगत का कोई कर्ता और संहारक नहीं है। पदार्थ में स्थिरता का भास भ्रममात्र है। आत्मा कुछ नहीं है। प्रतीत्य वाद का अर्थ असंग करता है–एक वस्तु को खत्मकरके दूसरी की उत्पत्ति। असंग ने तर्क शास्त्र को हेतुविद्या कहा है, तथा उस पर विस्तृत विवेचना की है। यह विवेचना गौतम के न्याय शास्त्र से विशद है। उसने अपने तर्क शास्त्र ही के वल पर अन्य मत का खण्डन किया है। असंग जगत कर्ता ईश्वर को भी नहीं मानता) यज्ञ हिंसा की निन्दा करता है। वर्णों की श्रेष्टता का विरोधी है। ग्रहण के फलाफल, ग्रह नक्षत्रों का प्रभाव आदि वह नहीं मानता। यह परमाणु को भी नित्य नहीं मानता।

वसुवन्धु–असंग का छोटा भाई वसुवन्धु बौद्ध दर्शनों का महा पण्डित हैं। वसुवन्धु के ग्रन्थ नष्ट हो गए हैं। उसका अभिधर्म कोष प्रौढ़ ग्रन्थ है। वह सर्वास्तिवाद पर एक विवेचन है। वसुवन्धु ने स्वयं उस पर भाष्य रचना की है। जो तिब्बत में प्राप्त हुआ है। वसुवन्धु दिग्नाथ के गुरु थे। उन्होंने न्याय पर वाद विधान एक ग्रन्थ लिखा है। वसुवन्धु समुद्र गुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय के अध्यायक भी रह चुके हैं। वे चौथी शताब्दी के उत्तरार्ध में जीवित थे।

दिङ्नाथ—दिङ्नाथ को मध्य काल के न्याय-शास्त्र का पिता माना जाता है। वे वसुवन्ध के शिष्य थे। पर इस शिष्य ने गुरु की प्रतिभा को फीकी कर दिया था। उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'न्याय मुख' है। इसके अतिरिक्त उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रमाण समुच्चय है। जो केवल तिब्बती भाषा में उपलब्ध हैं, तिब्बत भाषा ही में प्रमाण समुच्चय पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर महा वैयाकरणी काशिका विवरण पंजिका के कर्ता जिनेन्द्र बुद्धि (७०० ई०) की टीकाएँ भी हैं।

दिङ्नाग का जन्म तामिल प्रदेश में कांची (कैंजीवरम) नगरी के पास 'सिंह विक्रम' नामक गाँव में हुआ। यह जन्मतः ब्राह्मण थे। हिन्दु शास्त्र तथा व्याकरण पढ़ने के बाद ये भिक्षु बन कर नागदत्त भिक्षु से बौद्ध दर्शन पढ़ने लगे। एक बार पाठ पढ़ते हुए आत्मा के सम्बन्ध में उनका गुरु से मत-भेद हो गया। तब उन्होंने वह मठ छोड़ दिया और उत्तर भारत में आ वसुवन्धु के शिष्य हुए। विद्या प्राप्त होने पर उन्होंने बड़े-बड़े शास्त्रार्थ किए और अनेक प्रौढ़ ग्रन्थ लिखे। जिनमें प्रमाण समुच्चय प्रमुख हैं।

धर्मकीर्ति—धर्मकीर्ति उत्तर तामिल में तिरुमलै नामक ग्राम में ६०० ई० के लगभग उत्पन्न हुए। उन्होंने ब्राह्मणों के सब शास्त्र पढ़े, फिर नालन्द विश्व विद्यालय में आकर वहां के महान् विज्ञानवादी दार्शनिक धर्मपाल के शिष्य हो गए। उन्होंने आचार्य ईश्वरसेन से दिङ्नाथ का न्याय तर्क पढ़ा। फिर उन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे और शास्त्रार्थ किए। धर्मकीर्ति ने अनेक ग्रन्थ बौद्ध दर्शन और बौद्ध प्रमाण शास्त्र पर लिखे। जिनमें सात मूलग्रन्थ और अपने ही ग्रन्थों पर टीकाओं का पता चला है। धर्मकीर्ति की नीति बहुत व्यापक हुई। तिब्बती भाषा में सर्वाधिक बौद्ध न्याय के ग्रन्थ धर्मकीर्ति ही के हैं।

धर्मकीर्ति का प्रमाणवार्तिक ग्रन्थ दिङ्नाथ के प्रमाण समुच्चय की व्याख्या ही है। उस पर अनेक विद्वानों ने टीकाएँ की हैं। उसने सिर्फ प्रमाण ही पर सात ग्रन्थ लिखे हैं। धर्मकीर्ति की प्रतिभा का लोहा उनके प्रतिद्वन्दी भी मानते थे। जयन्त भट्ट ने, जो धर्मकीर्ति के कड़े आलोचक हैं—उन्हें 'सुनिपुण बुद्धि' कहा है। उन्होंने ब्राह्मणों की भांति जैन सिद्धान्तों का भी खण्डन किया।

नागसेन—हिमालय की तराई में पंजाब में कजंगल गांव में एक ब्राह्मण के घर ईसा पूर्व ११० में नागसेन का जन्म हुआ। पिता के घर ही में उसने वेद, व्याकरण आदि विद्या पढ़ी। फिर उसने बौद्ध भिक्षु रोहण का शिष्य बनकर बौद्ध साहित्य पढ़ा। फिर वह प्रसिद्ध विद्वान् अश्वगुप्त के शिष्य बने। अश्वगुप्त ने उन्हें अशोकाराम बिहार में पाटलिपुत्र भेज दिया, जहां उन्होंने आचार्य धर्मरक्षित के अन्तेवासी होकर बौद्ध तत्त्वज्ञान सीखा। और पिटकों का अध्ययन किया।

उन दिनों सागल का यवन राजा मिलिन्द था। जो स्वयं एक विद्वान् और लोकप्रिय राजा था, और जिसे शास्त्र चर्चा की रुचि थी। नागसेन संघ के आदेश से राजा मिलिन्द से मिलने के लिए सागल के असंख्येय परिवेण में पहुँचा। कुछ दिन पहले मिलिन्द ने प्रसिद्ध पंडित आयुपाल को निरुत्तर कर दिया था। जब उसने नागसेन का आना सुना, तो वह ५०० यवनों के साथ रथ पर सवार हो असंख्येय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिवेण में पहुंचा। और आवश्यक शिष्टाचार के बाद उसने कुछ प्रश्न नागसेन से किए। दूसरे दिन उसने उन्हें महल में निमन्त्रित किया। नागसेन और मिलिन्द के ये प्रश्न उपलभ्यपाली, मिलिन्दपंच में छः परिच्छेदों में है। चीनी भाषा में भी इनका अनुवाद हुआ है। इन प्रश्नोत्तरों में नागसेन ने बौद्धदर्शन के अनात्मवाद, कर्म, पुनर्जन्म, मन और भौतिक तत्त्व तथा निर्वाण की विषद व्याख्या की है। यह प्रश्नोत्तर बड़े रोचक और सोदाहरण हैं। इन प्रश्नों से यह प्रगट होता है कि नागसेन को भारतीय दर्शनों के ज्ञान के साथ-साथ यूनानी दर्शनों के ज्ञान का भी परिचय था। मिलिन्द और नागसेन का यह वाद-विवाद उस सांस्कृतिक घटना पर प्रकाश डालता है, जब भारतीय और यूनानी प्रतिभाएँ मिलकर भारत में नई विचार धाराओं को जन्म दे रही थीं।

७—विस्तार और लोप

भारतीय संस्कृति पर प्रभाव—भारत में बौद्ध धर्म का आरम्भ स्थविरवाद से हुआ। फिर उसमें अठारह निकाय बने. पीछे महायान और वज्रयान के रूप संगठित हुए। समय के अनुकूल एक का स्थान दूसरे ने लिया। आरम्भ में बौद्ध धर्म का विस्तार सारे भारत में हुआ। जब उसके अठारह निकाय बने, तब उसने यवनों और शकों को भारतीय जाति में मिलाने का महत्कार्य किया। इसी समय वह मध्य एशिया से चीन तक फैला। जावा, सुमात्रा, कम्बोज और आस पास के द्वीपों में उसका प्रसार हुआ। केवल महायान के रूप में वह कोरिया और जापान में गया। और वज्रयान के रूप में तिब्बत और मंगोलिया में पहुँचा। भारतीय संस्कृति पर उसका भारी व्यापक प्रभाव हुआ। आर्य न्याय के आचार्य, अक्षपाद, वात्स्यायन, वाचस्पति, उदयनाचार्य आदि की अपेक्षा नागार्जुन, दिङ्नाथ, वसुबन्धु, धर्मकीर्ति आदि ने अधिक व्यापक कार्य किया।

व्याकरण—संस्कृत व्याकरण में भी पूर्णता लाने में वह सहायक रहा। पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि ने संस्कृत व्याकरण रच संस्कृत का रूप संगठित किया। परन्तु काशिकार कार जयादित्य और न्यासकार जिनेन्द्र बुद्धि ने भी इस दिशा में बड़ा काम किया। पाणिनी सूत्रों पर वार्तिक रचने वाले पुरुषोत्तम देव बौद्ध थे। प्रसिद्ध कोषकार अमरसिंह बौद्ध था। अश्वघोष ने रामायण के बाद प्रथम संस्कृत काव्य—बुद्ध चरित और सौंदरानन्द लिखे। उसने नाटकों की भी रचना की। चन्द्रगोमि और लोकानन्द ने छठी शताब्दी में नाटक लिखे।

काव्य साहित्य—आठवीं शताब्दी में बौद्ध सिद्धों ने अपभ्रंश काव्य साहित्य रचा। जिसका व्यापक प्रभाव भारत की निर्गुण परम्परा पर पड़ा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कला—सांची, तिरहुत, मथुरा, धान्य कंटक, अजन्ता, अलपी, सुमराजी में जिस स्थापत्य और चित्रकला का प्रदर्शन हुआ। वह बौद्ध धर्म की भारत को अद्वितीय देन है।

आठवीं शताब्दी में जब शंकर उत्तर भारत में बौद्धों के विरोध का झण्डा खड़ा कर रहे थे—तब नालन्द विश्व विद्यालय और विक्रमशिला के विश्व विद्यालयों की स्थापना हो रही थी, और नालन्द में शान्ति रक्षित और धर्मोत्तर जैसे महान् पण्डित विराजमान थे। उस समय गौड़ में पाल राजाओं का बौद्ध राज्य भी स्थापित था। फिर भी बौद्ध धर्म में तन्त्र मन्त्र अभिचार और वाम मार्ग फैल गया था। जिस से भीतर ही भीतर बौद्ध धर्म की जड़ खोखली हो चुकी थी। समूचे पूर्वी भारत में वज्रयान की तूती बोल रही थी, और नालन्द तथा विक्रमशिला इसके अड्डे बनते जा रहे थे। जिनका प्रसार बिहार से आसाम तक था। बौद्ध भिक्षु अब तान्त्रिक सिद्ध कहाने लगे थे। वे वामा चारी होते थे।

चौरासी सिद्ध—ऐसे चौरासी सिद्ध प्रसिद्ध हैं। उनकी अलौकिक शक्तियों और सिद्धियों पर सर्व साधारण का विश्वास बढ़ रहा था। इन सिद्धों में नीच जाति के लोग—डोम, चमार, चाण्डाल, कहार, दर्जी, शूद्र तथा कम पढ़े लिखे लोग ही अधिक थे। उनमें प्रायः बहुत से ढोंगी और पाखण्डी थे। वे जनता पर प्रभाव जमाने को जन भाषा में अटपटी कविता करते थे।

सहजयान—वज्रयान का एक और विकृत रूप सहजयान का प्रवर्तन नालन्द के आचार्य सरहभद्र ने किया। इन्होंने वाम मार्ग पद्धति पर एक गुप्त गुह्य समाज की रचना की। जिस में मुक्त यौन सम्बन्ध के पोषक चक्र सम्वर आदि देवता, उनके मन्त्र और पूजा अनुष्ठान की प्रतिष्ठा की गई। शक्तियों सहित देवताओं की युगनद्ध मूर्तियाँ अश्लील मुद्राओं में पूजी जाने लगीं। साथ ही मन्त्र तन्त्र, मिथ्या विश्वास और ढोंग का भी प्रचार बढ़ा। अन्त में बख्त्यार खिलजी ने इन केन्द्रों को विध्वंस करके सैकड़ों वर्षों से संचित सम्पदा को तारा—कुरु कुल्ला, लोकेश्वर और मंजुश्री के मन्दिरों और मठों से लूट लिया। और वहाँ के पुजारियों, भिक्षुओं, सिद्धों का एक सिरे से कत्लेआम कर दिया। इस कत्लेआम में ऐसा बौद्धों का विनाश हुआ कि बौद्ध धर्म का नाम लेने वाला भारत में एक भी मनुष्य ढूँढे न मिला। इस सर्वनाश से जो भिक्षु बच रहे, उन्हें खड़े होने की जगह न रही। न उन पर जनता का विश्वास रहा, न उनका कोई संरक्षक रहा। भारतीय बौद्ध संघ के प्रधान काश्मीरी पण्डित शाक्य श्री भद्र विक्रम शिला विश्व विद्यालय के भङ्ग होने पर भाग कर पूर्वी बंगाल में विहार जगतला में पहुँचे, पीछे वहां से भाग कर नैपाल चले गए। विक्रम शिला के संघपति वर्षों भोट में रहे। पीछे काश्मीर में आकर उनका शरीरान्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ। इस प्रकार भारत में तुर्कों के आगमन के बाद १५० वर्षों ही में बौद्ध धर्म का भारत से सर्वथा लोप हो गया।

८--श्रमण-संस्कृति पर एक विहंगम दृष्टि

श्रमण संस्कृति के गुण दोष--सर्वस्व त्याग कर प्राणी मात्र पर दया करना यही बुद्ध की शिक्षा थी। ब्राह्मणों ने इसका विरोध किया, परन्तु बौद्ध श्रमणों के अनुपम प्रयत्नों से उसका प्रसार बढ़ता ही गया। अशोक के द्वारा बौद्ध धर्म को राज धर्म स्वीकार कर लेने पर उसका प्रसार भारत के बाहर तक हुआ। अशोक के काल से लेकर शिला दित्य के काल तक बौद्ध धर्म पूर्व की ओर निरन्तर फैलता रहा। जिन बौद्ध भारतीय श्रमणों ने भारत से बाहर धर्म प्रचार में सहायता दी-उससे पौराणिक संस्कृति को उदय होने का अवसर मिल गया।

आरामिक--संघारामों में रहने वाले भिक्षुओं का निर्वाह अब भिक्षा पर नहीं होता था। इसलिए संघारामों में आरामिक नियुक्त किए गए थे। वे संघाराम की जायदाद की धरती जोतते और लगान संघाराम को देते थे। समय पर बेगार भी करते थे। इस प्रकार संघरामों को अधिपति की हैसियत जमीदारों जैसी हो गई थी। उस काल के छोटे मोटे राजाओं से भी उनकी आर्थिक अवस्था अच्छी थी। ह्यु नसांग लिखता है कि काश्मीर में ५०० संघाराम थे। उनके लिए माध्यातिक अरहन्त ने आस पास के प्रदेशों से गरीब आदमियों को खरीदकर उन्हें संघारामों का आरामिक बनाया था। आरम्भ में इनकी दशा दासों जैसी थी, पर कालान्तर में ये आस पास के प्रदेशों के राजा बन गए थे। जब कनिष्क ने अपने राज्य काल में त्रिपिटक संशोधन कराया। और वह संस्करण उसने ताम्र पट्टों पर लिखवाकर पत्थर की एक बड़ी पेटी में रख जमीन में गड़वा दिया। तथा उस पर एक स्तूप बनवा दिया। फिर जब उसने वह देश त्यागा, तो उसने घुटने टेक कर यह सारा प्रदेश संघ को दान कर दिया। परन्तु कनिष्क की मृत्यु के कुछ काल बाद ही इन क्रीत आरामिकों ने विद्रोह कर देश पर कब्जा कर लिया, और अपने छोटे २ राज्य स्थापित कर लिए। उन्होंने भिक्षुओं को देश से निकाल दिया-तथा बुद्ध धर्म का विध्वस कर दिया। कालान्तर में इन क्रीत-आरामिक राजाओं की जाति किरात के नाम से प्रसिद्ध हुई।

कनिष्क के २०० वर्ष बाद तुखार के शावय वंशीय राजा ने तीन हजार योद्धाओं को व्यापारी कारवान का रूप देकर काश्मीर में प्रवेश किया। और अकस्मात् ही क्रीतों के राजा पर आक्रमण कर उसे मार डाला। तथा देश पर अधिकार कर भिक्षुओं को बुलाकर फिर काश्मीर में बसाया, और देश भिक्षु संघ को अर्पण कर दिया। क्रीतों का झगड़ा चलता ही रहा। उन्होंने फिर देश पर अधिकार कर लिया। और बौद्धों को निकाल दिया।

याम भंग-- इस प्रकार भिक्षु संघ परिग्रही बना। फिर परिग्रह की रक्षा करने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए शस्त्र उठाने से बचने के लिए उसने झूंठी सच्ची कल्पित कथाएँ धर्म में मिलाकर राजाओं को अपना रक्षक बनाया, इस से सत्य याम का भंग हुआ। ऐसी झूंठी असत्य कथाऐं कहने में जैनों और बौद्धों में होड़ लग गई। बौद्धों ने दशरथादि राजाओं की सोलह हजार स्त्रियां होने का वर्णन किया, जैन साधु उनसे भी आगे निकल गए। उन्होंने लिखा चक्रवर्ती राजा को सब ऋतुओं में सुख कारक और सुखस्पर्शवती बत्तीस हजार ऋतु कल्याणी स्त्रियां होती हैं। अन्य राजाओं की कन्याओं से चक्रवर्ती राजा जो ब्याह करता है उनकी सख्या भी बत्तीस हजार होती है। इस प्रकार कुल चौसठ हजार स्त्रियाँ उसकी होती हैं। इसके अतिरिक्त इस से दूनी एक लाख अट्ठाईस हजार रूपवती वेश्याएँ होती है। इस प्रकार चक्रवर्ती के उपभोग के लिए एक लाख बानवे हजार स्त्रियां रहती हैं।

भला इन बातों को पढ़कर क्यों न राजा प्रसन्न होते, और भिक्षुओं तथा साधुओं को प्रश्रय देते। इस प्रकार जैन—बौद्ध साधुओं ने मन्दिरों-बिहारों के रूप में परिग्रह आरम्भ कर, तरह २ की झूठी कथाएँ रच, राजाओं को खुश करने का धन्धा शुरु किया। जब दलित आरामिकों ने उनका विरोध किया, तो इन राजाओं ने उनका कत्ल आम करवाया। इससे उनका अपरिग्रह सत्य-और अहिंसा तीनों यामों का भंग हो गया। अब रह गया चौथा याम अस्तेय। पर राजाओं के दबाव और जोर जुल्म से जो कर वे आरामिकों से वसूल करते थे। वह एक प्रकार का स्तेय ही था। जबर्दस्ती ली हुई सम्पत्ति दान थोड़े ही होती है।

राजाओं के यहां जब राजसूय यज्ञ होते थे। तब केवल कमजोर राजाओं को जबर्दस्ती जीतकर उनसे धन हरण नहीं किया जाता था—सर्व साधारण को भी लूटा जाता था। किसानों के पशु—जबर्दस्ती खोल लिए जाते थे। और यज्ञ के वध स्तम्भों पर बांधकर वध किए जाते थे, इससे जनता आर्य धर्म से ऊब रही थी, और बौद्ध धर्म को उसने अपना परित्राता समझ उनका आश्रय लिया था—परन्तु जब मन्दिरों और संघारामें में जबर्दस्ती कर वसूल किए जाने लगे-तो लोग इनके भी विरोधी हो गए। इस प्रकार श्रमण संस्कृति कमजोर होती गई और समय आने पर पौराणिक संस्कृति का उदय हुआ

भारत में यद्यपि बाद में बौद्ध धर्म निःशेष हो गया, फिर भी जनता पर उसकी गहरी छाप पड़ी। बहुत प्रयत्न करने पर भी ब्राह्मणों के यज्ञ-यागों को पुनरुज्जीवन नहीं मिला। अशोक के बाद पुष्यमित्र ने और उसके बाद समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ किए, पर जनता में यज्ञ-प्रथा का पुनः प्रचलित होना असम्भव हो गया।

बौद्ध श्रमणों ने सदाचार तथा सब जातियों में समता-स्थापन की जो चेष्टा की उसका प्रभाव सर्वसाधारण पर बहुत पड़ा। उन्होंने ब्राह्मणों के विरोध की परवाह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न कर, ब्राह्मण से चाण्डाल तक मोक्ष है, यह कहा[1]। साथ ही उन्होंने बिहार और स्तूपों के रूप में कला-कौशल का विकास किया। आज हमें प्राचीन कला-कौशल के जो भी अवशेष प्राप्त हैं, उनमें अशोक के शिल्प स्तम्भ, काली आदि की गुफाएँ सांची आदि स्थानों के स्तूपों का ही अग्र स्थान है। बौद्धों के अनुसरण पर जैनों और पौराणिक काल के शैवों एवं वैष्णवों ने भी पीछे शिल्प-कला की ओर ध्यान दिया। बुद्ध ने गाथा कही कि—"बहुश्रुतता, शिल्पकला, उत्तम व्यवहार का अभ्यास और समयोचित भाषण, ये उत्तम मंगल हैं।"[2]

बुद्ध का धर्म यद्यपि राजाओं के लिए नहीं, सर्व साधारण के लिए था; परन्तु उसे उनके जीवन में ही उसे राजाश्रय प्राप्त हो गया था। साथ ही बुद्ध के निर्वाण के एक सौ वर्ष बाद तक वह बिहार अवध के छोटे से प्रांत के मध्यम वर्ग के लोगों का धर्म था। परन्तु अशोक के बाद यह परिस्थिति बदल गई। बौद्ध धर्म राजाश्रित हो गया। अशोक ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर अनेक बिहार बनवाए और ऐसी व्यवस्था की कि हजारों भिक्षुओं का निर्वाह सुख पूर्वक होता रहे। अशोक का अनुकरण उसकी प्रजा तथा आस पास के राजाओं ने भी किया और हजारों बिहार बनवाए। इस ढंग पर बिहारों की संख्या नब्बे हजार तक पहुँच गई।

राजाश्रय-प्राप्ति का प्रभाव—अशोक से राजाश्रय प्राप्त कर बौद्ध संघ में जो सबसे बड़ा परिवर्तन हुआ, वह यह कि बौद्ध संघ परिग्रही बन गया। बुद्ध के उपदेश अनुसार एक भिक्षु की निजू सम्पत्ति केवल तीन चार चीवर और एक भिक्षापात्र भर थी। केवल चातुर्मास में भिक्षु संघ को एक स्थान पर रहने तथा आठ महीने प्रवास करने का आदेश था। यदि भिक्षु संघ चातुर्मास के अतिरिक्त अन्य समय किसी स्थान पर अधिक ठहर जाता था तो उसकी आलोचना होने लगती थी।[3] परन्तु अशोक काल के बाद भिक्षु बड़े-बड़े विहारों में स्थायी रूप से रहने लगे, जहां उन्हें अनेक सुख-साधान प्राप्त थे। ऐसी अवस्था में यह स्वभाविक था कि उनमें अगुआ बनने की प्रतियोगिता उत्पन्न हो। सारे श्रमण पन्थों की एकता का अशोक का प्रयत्न तो दूर रहा, बौद्ध संघ में ही बासना के वशीभूत हो दलबन्दी और झगड़े होने लगे जिसके

१—"सयणो गोतमो चातुवण्णि सुद्धि पञ्जापेति" मज्झिम निकाय म० पण्णासक, अस्सलायन सुत्त।

२—'बाहु सच्चं च सिप्पं च विनयो च सुसिक्खितो, सुभासितात्रया वाचा एतं मंगल-मुत्तमम्।" (मंगल सुत्त)

३—'तेनखोपन समयेन भगवा तत्थेव राजगहे वस्संवसि, तत्थ हेंमन्त, तत्थ गिम्हं। मनुस्सा उज्झायन्ति, न हमेसं दिसा पक्खायन्तीति।' (विनय० वि० महावग्ग महाक्खन्धक)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निबटारे के लिए अशोक को ही बहुत उद्योग करना पड़ा[1] ।

विहारों में रह कर भिक्षुओं को अब भिक्षा से निर्वाह करने की आवश्यकता न रह गई, सब कुछ उन्हें वहीं मिलने लगा । साथ ही, आरामिक (सेवकों) की भी परिपाटी चल गई । और विहारों के रूप में परिग्रह का आरम्भ होने के बाद अहिंसा, अस्तेय और सत्य पर भिक्षु संघ स्थिर न रह सका । आरामिकों और अन्य प्रजाजनों से विहारों के लिए बलात् कर लिया जाने लगा और उन पर अत्याचार भी किए जाने लगे । इस प्रकार राजाश्रय प्राप्त होने से, अपरिग्रह, सत्य, अहिंसा और अस्तेय ये चारों यम भंग हो गए । इसी से श्रमण-संस्कृति का पतन हुआ और उस समय कोई अन्य उत्कृष्ट संस्कृति का उदय न होने से पौराणिक संस्कृति को उदय का अवसर मिल गया ।

बौद्ध धर्म और श्रमण संस्कृति—बुद्ध के काल में यज्ञ-याज्ञों की प्रथा बड़े लोगों में ही थी, सर्वसाधारण का वह धर्म न था । वे लोग यक्षों और देवताओं की पूजा किया करते थे । बौद्ध धर्म ने इन सब देवताओं का बहिष्कार न करके तथा उन में कुछ परिवर्तन करके उन्हें बुद्ध का अनुयायी बना लिया । यज्ञों की अनगिनत कथाएँ त्रिपिटक साहित्य में है । यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि जिस प्रकार ईसाई और मुसलमान धर्म-प्रचारकों ने दूसरों के देवताओं का नाश किया, उस प्रकार बौद्ध धर्म ने नहीं किया । तिब्बत, वर्मा, श्याम आदि देशों में इस नीति का बहुत उत्तम प्रभाव रहा, परन्तु भारत में बौद्ध धर्म के सम्मुख वैदिक धर्म था जो हिंसा को त्यागना नहीं चाहता था । इसका परिणाम यह हुआ कि इस देश में हिंसक और अहिंसक, दोनों ही प्रकार से देवता रह गए और इनकी पूजा से ही पौराणिक संस्कृति का जन्म हुआ । इन्द्र के नाम पर यज्ञों में पशु-बलि दी जाती थी । बुद्ध के शिष्यों ने उसे अहिंसक बना दिया[2] । बुद्ध के काल में ही इन्द्र पीछे रह गए थे । तत्कालीन किसी राजा का कुलदेव इन्द्र न था । इस काल में 'ब्रह्मा' आगे आया, और ब्राह्मणों ने उसे संसार का कर्ता-धर्ता बना दिया[3] । पर बौद्धों ने इस देवता का पूरा तिरस्कार किया[4] ।

अशोक के समय में यज्ञों का महत्त्व बहुत घट गया । पहले ही शिलालेख में उसने पशु-वध-युक्त यज्ञ का निषेध किया और उसने पशु-वध के विपरीत यावज्जीवन उद्योग किया । उसने बुद्ध ही को अपना देव बनाया । उसने कहा—

१—देखिए, अशोक का सारनाथ का शिलालेख ।

२—देखिए, कुलाब जातक और सक्क संयुत्त सुत्त ।

३—"ब्रह्मा देवानां प्रथमः संवभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता" मुण्डक उप० १।१

४—देखिए, दीघनिकाय, केवल सुत्त । विनयमहावग्ग, महाक्खन्धक, ब्रह्मयाचना कथा, मज्झिमनिकाय; अरिय परियेसन सुत्त ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मैंने जम्बूद्वीप के उन सब देवों को, जो सच्चे समझे जाते थे, झूठा सिद्ध कर दिया[१]।

अब न यज्ञ रहे न वैदिक देवता। ऐसी स्थिति में ब्राह्मणों के सम्मुख एक गम्भीर समस्या उपस्थित हो गई। गृह-संस्कार में थोड़ी-बहुत सहायता उन्हें गृहस्थों से मिल जाती थी, पर इस से क्या होता था। उन्होंने रोष के आवेश में आकर मौर्य राजाओं की गणना शूद्रों में कर दी। मौर्यों के बाद पुष्यमित्र ने यज्ञों को पुनर्जीवित किया। पर उसे विशेष सफलता नहीं मिली। अशोक का धर्म-चक्र दिग्दिगन्त में फैल चुका था। पुष्यमित्र के स्वल्प प्रयत्न से उसका उन्मूलन सम्भव न था। फिर इसी समय यवन (ग्रीक), शक आदि के बाहरी आक्रमण भारत पर होने लगे। उनमें जाति-भेद था ही नहीं। इससे स्वभावतः वे ब्राह्मण धर्म की अपेक्षा बौद्ध धर्म से शीघ्र ही प्रभावित हो गए। फलतः पुष्यमित्र और अग्निमित्र के बाद शताब्दियों तक यज्ञों का किसी ने नाम भी नहीं लिया[२]।

शकों का देवता—परन्तु इसी समय शकों द्वारा लाया हुआ नया देवता महादेव प्राप्त हुआ। वह मरुतों का पूर्वज था[३]। शक उसी वंश के थे[४]। आश्वलायन-गृहसूत्रों में रुद्र के लिए शूलगव यज्ञ का विधान है, जिस में एक बैल को मार कर उसकी आहुति दी जाती थी परन्तु बौद्धों के प्रभाव से वही बलि का बैल महादेव का प्रिय वाहन नन्दी हो गया, तथा देवता के साथ पुजने लगा। सम्भवतः यह परिवर्तन ईसा से दो तीन शताब्दी पूर्व हुआ[५]। पाणिनि काल में महेश्वर पूर्णरूप से प्रतिष्ठित हो गया था। पाणिनि कहता है कि उसने महेश्वर से व्याकरण समझा (येनाक्षर समाम्नायमधिगम्यमहेश्वरात्)। शकों के राज्य-विस्तार के साथ ही महादेव का प्रभाव बढ़ा। शकों से दक्षिण के शालीवाहनवंशी राजाओं ने युद्ध किए, फिर भी वे महेश्वर महादेव के भक्त थे। इसी समय ब्राह्मणों ने भी निरुपाय हो राजाश्रय प्राप्त करने के ध्येय से महेश्वर के पुजारी बनना स्वीकार कर लिया, क्योंकि शकों की देखा-देखी अन्य राजा भी महेश्वर की पूजा करने लगे थे। वराहमिहिर के कथनानुसार, ब्राह्मण भस्म-भूषित हो महेश्वर की पूजा करने लगे।

राजाश्रय प्राप्त होने से बड़े-बड़े बिहारों में श्रमण स्थायी रूप से रहने लगे थे। इनके लिए सुख के सभी साधन एकत्र थे। सम्भवतः उन बिहारों से ही आकृष्ट

१—"जम्बूदीपसि अभिसा देवाहुसुते दानिमिसाकटा", रूपनाथ का शिलालेख।

२—A Peep into the Early History of India. (श्री डा० रामकृष्ण भाण्डारकर कृत।)

३—'आतेपितमरुता सुम्नमेतु (ऋ० २-३३-९।)

४—संता इन्द्रो असृजदस्य शाकैः (ऋ० ५-३०-१०; देखिए इस ऋचा पर सायणभाष्य।)

५—आश्वलायन गृहसूत्र, अ० ४, खण्ड १०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होकर अल्पवय के तरुण स्त्री–पुरुष भिक्षु होने लगे। इन्हें जहाँ सब सुख–सुविधाएं एवं निश्चित जीवन का प्रबन्ध था, वहाँ ब्रह्मचर्य का कठोर व्रत पालन करना पड़ा। प्रतिकूल वातावरण में यह बलात् ब्रह्मचर्य का पालन, भिक्षु एवं भिक्षुणी, दोनों ही के लिए दुष्कर हो गया। भिक्षु के लिए स्त्री का स्पर्श भी निषिद्ध था। इसी कठोर नियम के कारण बौद्ध धर्म में वाम मार्ग की प्रवृत्ति ने जन्म लिया, तथा ईसा की छठीं सातवीं शताब्दी में बौद्ध श्रमणों ने तान्त्रिक ग्रन्थ रचकर तान्त्रिक वाम मार्ग की स्थापना कर ली। उधर हिन्दुओं ने भी वाम मार्ग में प्रविष्ट तरुण भिक्षुओं तथा जटिलों को मिलाकर पाशुपत दर्शन बना लिंग–पूजन प्रारम्भ कर दिया। आगे चलकर भैरवी चक्रों की भी स्थापना हो गई जिसमें नग्न स्त्री की पूजा तथा मद्य–मांस सेवन आदि की वीभत्स प्रथाएँ प्रचलित हो गयी।

गुप्तों का कुलदेव—गुप्त राजाओं ने वासुदेव कृष्ण को अपना कुलदेव बनाया। ब्राह्मणों को भी अपनी उदर–पूर्ति के लिए इस राजधर्म को अपनाना पड़ा। पौराणिक तथा बौद्ध गाथाएँ वासुदेव कृष्ण की कथाओं से भरी पड़ी हैं। इस काल में अनगिनत सम्प्रदाय उप-सम्प्रदाय देश में फैल गए थे। उसका उल्लेख चूल-निद्देस नामक बौद्ध ग्रन्थ में है। गुप्त राजा शकों के शत्रु तथा विजेता थे, अतः उन्होंने महेश्वर को अपना कुलदेव नहीं बनाया, वासुदेव कृष्ण इसी देश का प्राचीन देव था, इसे उन्होंने स्वीकार किया और ब्राह्मणों ने उसका महत्त्व बढ़ाने में पूरी शक्ति लगा दी। फिर भी, उन्होंने महादेव का उच्छेद नहीं किया। बौद्धों के प्रति भी उदार भाव रक्खा। वाकाटक राजवंश के द्वितीय रुद्रसेन महादेव के परम भक्त थे, पर चन्द्रगुप्त द्वितीय ने उन्हें अपनी पुत्री ब्याह दी। परन्तु शकों के ह्रासकाल में जिस तामसी भावना ने महादेव का रूपान्तर लिंग–पूजा के रूप में कर दिया, उसी भावना ने गुप्तों के ह्रासकाल में वासुदेव कृष्ण को भी गोपी-बिहारी के रूप में परिणत कर दिया जिसपर जयदेव पण्डित ने आगे चलकर गीत गोविंद नाम की श्रृंगार–कविता में वह चोर जार शिखामणि के रूप में प्रसिद्ध हो गए। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि बौद्धों की अवनति का बीज उनके द्वारा स्वीकृत राजाश्रय था। अशोक से राजाश्रय पाकर बौद्ध संघ को बहुत लाभ हुआ, बड़े-बड़े बिहार बने, बौद्ध भिक्षुओं ने देश–देशान्तर में जाकर धर्म-प्रचार किया, पर इससे उन्हें राजाश्रय की लत पड़ गयी और अनततः यह उनकी आदत हो गयी कि राजाश्रय के बिना उनका काम ही न चल सकता था। बौद्ध संघ अशोक का राजाश्रय पाकर परिग्रहवान् बना और जन-कल्याण के मार्ग से च्युत हो गया।

जब मौर्यों से उनके सेनापति ने उनका राज्य छीन लिया और यज्ञों को पुनरुज्जीवित किया तथा बौद्धों का पीड़न किया, तो बौद्धों ने जन-कल्याण का कार्य बिल्कुल ही त्याग दिया। वे फिर राजाश्रय प्राप्त करने की चेष्टा में लगे।

पुष्यमित्र, मौर्यों के समान साम्राज्य-स्थापन नहीं कर सका। उसे वायव्य दिशा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से होने वाले यवनों और शकों के प्रबल आक्रमणों का सामना करना पड़ा। इन प्रबल विदेशियों का पैर भारत में आगे बढ़ता ही गया। ऐसी अवस्था में इन बौद्धों ने उन विदेशी विजेताओं को प्रसन्न और अनुकूल करने का भगीरथ प्रयत्न किया और इसमेंउन्हें सफलता मिली। परन्तु भिक्षुओं के आचार-विचार उनकी प्रकृति और संस्कृति के अनुकूल न थे। वे अपने कुल-देवताओं को छोड़कर केवल बुद्ध की शरण जाने को तैयार नहीं हुए। इस पर बौद्धों ने उनके अनुकूल वातावरण उपस्थित कर दिया, फलतः कनिष्क की अध्यक्षता में उन्होंने महायान सम्प्रदाय की स्थापना कर दी। महायान पन्थ में कनिष्क की महिमा का बखान अशोक के समान ही किया गया है। पर कनिष्क ने अपने कुल-देवता को नहीं छोड़ा, हां, अपने सिक्कों पर उसने बुद्ध की मूर्त्ति भी छाप दी।

शक राजा बड़े वीर थे। शौर्य उनकी संस्कृति में था, फिर वे विजेता थे। उनका आश्रय पाकर बौद्धों ने फिर अपने धर्म का प्रभाव स्थापित किया, पर शकों को अपने अनुकूल बनाने के लिए उन्हें मूल बौद्ध साहित्य में बहुत परिवर्तन करने पड़े। यहां तक कि बुद्ध के वास्तविक मूल सिद्धान्तों का एक अंश मात्र ही उनके ग्रन्थों में रह गया। हां, सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त अवश्य नहीं त्यागे गए।

शकों के दो-तीन सौ वर्ष के राज्य-काल में इस महायान पन्थ का बड़ा प्रसार हुआ। और मूल स्थविरवाद, जिसे ये लोग हीनयान कहने लगे थे, बहुत पिछड़ गया। महायान, उत्तर का प्रधान बौद्ध धर्म बन गया। तिब्बत आदि देश उसी से प्रभावित हुए। केवल दक्षिण के सिंहल, वर्मा, स्याम और कम्बोडिया में मूल स्थविरवाद रह गया।

महायान में ब्राह्मणों की भाषा संस्कृत अपनाई गई तथा ब्राह्मणों के उन देवताओं को भी अपनाया गया, जो जनता के प्रिय थे। यवनों और शकों के राज्य में यज्ञों को बिलकुल ही प्रश्रय नहीं मिला, फलतः ब्राह्मण बिल्कुल ही निराश्रित हो गए। अब केवल एक बात थी। शकों के कुल-देवता महादेव को किसी भी देश में बौद्ध अपने साथ समाविष्ट न कर सके। महादेव से सम्बन्धित कथाओं को अहिंसक रूप देना शक्य न था। बस यही एक मार्ग ब्राह्मणों के लिए खुला रह गया और शक-राजाश्रय प्राप्त करने के लिए; इच्छा या अनिच्छा से, उन्होंने महादेव का उपासक होना स्वीकार कर लिया। इससे शक राजाओं का ही नहीं, माण्डलिकों का भी प्रश्रय उन्हें मिल गया। इसी बीच बिहारों के कठिन संयम से धैर्यच्युत हो श्रमणों ने तान्त्रिक वाम मार्ग का तथा उनके संसर्ग से जटिलों से संयुक्त होकर माहेश्वर-पूजा के स्थान पर लिंग-पूजा तथा पाशुपत का वाम मार्ग प्रचलित किया। ब्राह्मणों ने लिंग-पूजन भी स्वीकार कर लिया और उन्हें पाशुपत सम्प्रदाय का भी आश्रय मिल गया।

शकों के पतन के बाद—शकों का पतन होने पर चन्द्रगुप्त प्रथम ने गुप्त साम्राज्य की नींव डाली। उस पर समुद्रगुप्त ने महान् गुप्त साम्राज्य का प्रासाद खड़ा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया और अपना कुलदेव वासुदेव कृष्ण को बनाया। अब ब्राह्मणों ने यह विवेक करना छोड़ दिया कि किस देवता की पूजा करनी चाहिए, किसकी नहीं। जिससे राजाश्रय मिले, दक्षिणा मिले, वही देवता पूजने को वे तैयार हो गए। यही नहीं,पुराणों के नवीन संस्करण रच-रच कर वे उस देवता का यशोगान करने लगे। गुप्त सम्राटों ने वासुदेव को अपना कुलदेव बना कर भी अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता का भाव रक्खा। इससे ब्राह्मणों को काफी सुविधा रही। उन्होंने पुराण उपाख्यान रच-रचकर सर्वसाधारण में अन्य देवताओं की पूजा का भी प्रचलन किया। इससे जनता में भिन्न सम्प्रदाय और जाति-भेद का भाव फूट चला। ऐसी दशा में बौद्ध संघ का कर्तव्य था कि वह लोगों में समता लाने का उद्योग करता. क्योंकि बौद्ध धर्म तो पीड़ित जनता ही के लिए था, परन्तु उन्हें बिहारों की जागीरें प्राप्त थीं, राजा लोग पगड़ी उतार कर उनकी अभ्यर्थना करते थे, यथेच्छ भिक्षा से सद्गृहस्थी उनकी अभ्यर्थना और आतिथ्य करते थे, वे सुखी थे, सुखाभिलाषी थे, अब भला जनता के कल्याण की उन्हें क्या परवाह थी !

पतनोन्मुख संस्कृति—चीनी यात्री फाहियान, चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में भारत आया था। वह लिखता है—"मथुरा के प्रान्त में नदी के दोनों तरफ लगभग बीस संघाराम हैं। जिनमें तीन हजार भिक्षु रहते हैं। बौद्ध धर्म उत्कर्ष पर है. प्रदेश के राजागण भिक्षुओं को दान देते समय अपनी पगड़ी उतार कर एक ओर रख देते हैं। राजा, राज-परिवार और मन्त्रीगण अपने हाथों से भिक्षुओं को दान देते हैं, और उनका भोजन समाप्त होने तक दरी बिछा कर एक ओर बैठते हैं। भिक्षुओं के सम्मुख वे कभी उच्चासन पर नहीं बैठते।"... ..."देश भर में राजाओं और धनियों ने उनके लिए अनेक बिहार बनवा दिए हैं तथा नौकर-चाकर एवं गाय-बैलों के साथ जमीन, घर, बगीचे, गाँव, जागीर देकर उनके निर्वाह की व्यवस्था कर दी हैं, तथा लेख खुदवा कर परम्परा से उन्हें चालू रक्खा है। इन लेखों को कोई भंग नहीं करता। बिहारों में रहने वाले भिक्षुओं के लिए दरी, बिछौने; अन्न, वस्त्र आदि सब चीजों की व्यवस्था बिना काट-कतर के बिहारों की ओर से की जाती है। सब स्थानों पर यही व्यवस्था हैं[1]"।

इस प्रकार उनका काम चल रहा था। फाहियान के कथनानुसार ही इस समय मध्यभारत में छयानवे मिथ्यादृष्टि (१) सम्प्रदाय थे[2]।

हुएनसाँग सातवीं शताब्दी के प्रथम पाद में भारत आया। उस समय हर्ष उत्तर भारत का महानृप था। उस समय भी बौद्धों के बिहारों से सारा देश भरा हुआ था। फिर भी काश्मीर में बौद्धों के विरुद्ध लोगों ने विद्रोह किया था, तथा बंगाल के

---

१. Buddhist Records, Introduction.

२. Buddbist Records, XLVIII

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजा शशाँक ने बुद्ध गया के बिहारों का विध्वंस कर बोधिवृक्ष को जड़ से उखाड़ कर जला डाला था। परन्तु हर्ष, बौद्ध संघ का प्रसिद्ध प्रेमी था। वह प्रति पांचवें वर्ष प्रयाग में मोक्ष' नाम का बड़ा दरबार करके अपना सर्वस्व दान करता तथा भिक्षु के वस्त्र धारण करता था। वह बौद्ध श्रमणों तथा ब्राह्मणों, दोनों का सत्कार करता था, फिर भी ब्राह्मणों ने उसे मार डालने के प्रयत्न किए, क्योंकि बौद्धों के साथ उस का पक्षपात वे सहन नहीं कर सकते थे।

यद्यपि बुद्ध की स्पष्ट और आग्रहपूर्ण आज्ञा थी कि बुद्ध का उपदेश वैदिक भाषा न होकर प्रचलित लोकभाषा में हो, पर महायान के ग्रन्थकारों ने लोकभाषा का सर्वथा त्याग कर दिया। वस्तुतः उनकी दृष्टि में लोक-कल्याण की भावना ही नहीं रह गई थी। ने संघारामों की जागीर सुख से भोगते हुए उच्च वर्ग के दाताओं के लिए, जिन पर संघारामों का सारा सुख अवलम्बित था, उच्च संस्कृत भाषा में आश्चर्यचकित करने वाले न्यायादिक ग्रन्थों की रचना कर रहे थे। हर्ष से पूर्व गुप्त काल में तथा हर्ष के पश्चात् आठवीं शताब्दी के अन्त तक बौद्ध श्रमणों ने बहुत साहित्य-रचना की। वसुबन्ध के अभिधर्म कोष, दिङ्नाथ के प्रमाण-समुच्चय, शान्तिदेव के बोधिचर्यावतार, शान्तिरक्षित के तत्त्वसंग्रह जैसे उच्च कोटि के संस्कृत ग्रन्थों की रचना इसी काल में हुई। यद्यपि बहुत-सा बौद्ध साहित्य देश से लुप्त हो गया, पर उनके तिब्बती और चीनी अनुवाद उपलब्ध हुए हैं।

हिन्दु धर्म दी दशा—ब्राह्मणों ने इस युग में दो निरंकुश तत्त्व पैदा किए। एक सामन्त (राजा) दूसरा ईश्वर। दोनों ही शक्तियाँ अपरम्पार थीं। दोनों ही इच्छा होने पर सब कुछ कर सकते थे। इन दोनों (राजा और इश्वर) को बहुंधा एक करने की चेष्टा भी की गई। राजा को ईश्वर के अंश से उत्पन्न कहा गया। और राजा और ईश्वर के निरंकुश शासन के सम्मुख सिर झुकाना सर्व साधारण को ब्राह्मणों का धर्मानुशासन था। ब्राह्मण और सामन्त साथ थे। वे परस्पर सहायक और समर्थक थे। सामन्त ब्राह्मणों पर अपने भाई बन्धुओं से भी अधिक विश्वास रखता था। उसने शीघ्र ही उसे राज्य पुरोहित के स्थान पर मन्त्री बना लिया, और उनके राजैश्वर्य राजाओं के समान हो गए। उन्होंने हिन्दु समाज में से जनतन्त्र का बीज उखाड़ कर फेंक दिया।

आठवीं शताब्दी के प्रथम चरण में आदि शंकराचार्य ने अपना बौद्ध विरोधी कार्य आरम्भ किया।[1] परन्तु बौद्ध धर्म इससे प्रथम ही मृतप्राय हो गया था। तथा इससे प्रथम ही अरब के मुस्लिम विजेता मुहम्मद इब्नकासिम ने सिन्ध विजय कर लिया था। वहाँ उसका राज्य प्रारम्भ हुए सौ साल हो रहे थे, परन्तु हिन्दुओं की अभी आंखें न खुली थीं और देश में ऐसा कोई व्यक्ति न था जो हिन्दू संस्कृति का उसके सब दोष निकाल कर संचालन करता।

१—The date of Shankracharya by Prof. R. B. Pathak Indian Antiquary XI. 197

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उन दिनों ब्राह्मण मात्र के लिए पूर्ण भोग-सामग्री जुटाना सामन्त का धर्म हो गया। जिसका अनुसरण जनता ने भी किया। धीरे-धीरे दान का माहात्म्य बहुत बढ़ गया और उत्तरकालीन वातावरण में हिन्दू मन्दिर भारत की सम्पदा और वैभव के महान केन्द्र बन गए।

वाम मार्ग और भैरवी चक्रों का प्रसाद बौद्धों से ब्राह्मणों ने भी ग्रहण किया। वे धर्मतः एक पत्नी-व्रती नहीं रहे। पत्नियों के सिवा दान दक्षिणा तथा मोल मिली दासियों को रखने में उन्हें प्रतिबन्ध न था। बौद्ध भिक्षुओं तथा जैन यतिय की भांति वे बलात् ब्रह्मचर्य के खूंटे से नहीं बंधे हुए थे। यज्ञों में मद्य और मांस वैधानिक प्राप्त था ही।

सामन्त वर्ग की निरंकुशता कायम रखने के लिए पुरोहित वर्ग ने समाज को छिन्न-भिन्न कर दिया। भिन्न-भिन्न जांत पांत के बन्धन में बंध कर जनता अपंग हो गई। यहीं तक नहीं, छूआछूत का भूत भी उनके पीछे लग गया। अरब विद्वान् अलबरूनी जो ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में महमूद के साथ भारत आया था, वह अपने ग्रन्थ में लिखता है कि—"हिन्दू केवल मुसलमानों के ही हाथ का खाना खाने में परहेज नहीं करते, अपितु आपस में भी एक दूसरे का छुआ नहीं खाते।"

शूद्रों और नीच कही जाने वाली जातियों के प्रति तो हिन्दुओं की व्यवस्था अति निर्दय और अन्यायपूर्ण थी। शूद्रों के सम्बन्ध में स्मृतियों के विधान का सारांश यह है—

"उन्हें ज्ञान और मान मत दो। उनके धन का अपहरण निर्धन ब्राह्मण और द्विज यज्ञ के अवसर पर अथवा दुष्काल में मजे से करें। आपत्ति काल में यदि शूद्र उच्च वर्ण का कर्म करने लगे, तो उन्हें कठिन और क्लेश कारक दण्ड दो। शूद्र यदि उच्च वर्ण वाले का अपमान करे, या गाली दे—तो उसकी जीभ छेद देना चाहिए। यदि द्विज ऐसा करे—तो उसे केवल सचेत करके छोड़ दे। ब्राह्मण चाहे जैसा अपराध करे, उसे मृत्यु दण्ड नहीं दिया जाय। शूद्र द्विज स्त्री से यदि उसकी सम्मति से भी संभोग करे या विवाह करे तो उसे चौराहे पर तुषाग्नि में जला दिया जाय। परन्तु द्विज यदि शूद्रा के साथ ऐसा करे तो केवल धन दण्ड दिया जाय। शूद्र यदि वेद पाठ करे या सुन ले तो गलाए हुए सीसे को उसके कान में डाले और सरौते से उसकी जीभ छेदले।"[1] मलाबार दक्षिण की पंचम जाति के लिए अभी कुछ दिन पूर्व तक नगर की कुछ सड़कों पर चलने की मनाही थी तथा थूकने के लिए उन्हें अपने साथ ठीकरा रखना पड़ता था जिससे सड़क पर थूकने से सड़क दूषित न हो जाय।

इस काल में हिन्दुओं में पुराणों के पाठ से बाल बुद्धि उत्पन्न हो गई थी। पुराने दार्शनिक विचार तथा उपनिषदों की गहन व्याख्याएँ लोगों के मन से दूर हो

१—गौतम, मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, बृहस्पती, कात्यायन स्मृतियां देखिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गई। वे पौराणिक, कल्पित और असम्भाव्य कथाओं, उनके माहात्म्य और फलाफलों में ऐसे फँसे कि अंधविश्वास और भ्रान्त धारणाएँ उनके हृदय में विश्वास कर गई। ऐसी मनोवृत्ति जनता की होने पर, विविध धर्म विश्वास, अन्ध विश्वास, अनेक जाँत पांत, छुआछूत, निराशावाद और भाग्यवाद, प्रारब्ध आदि ने उनके संगठन को बखेर दिया और वे अपने सामाजिक, नैतिक, धार्मिक और वैयक्तिक जीवन में असंगठित, असम्बद्ध, असहाय और अकर्मण्य रह गए।

इस्लाम की तलवार—इसी से इस्लाम की तलवार जब उनकी गर्दन पर पड़ी, तब वे निरन्तर पराजित होने लगे। यद्यपि वे यहीं के निवासी थे, सहायता साधन उनके लिए सुलभ थे, उनका अपना देश था, राष्ट्र था, विदेशी आक्रान्ता फिर भी असहाय थे। यातायात की उन्हें असाधारण कठिनाइयाँ थीं, सहायता और सहयोग उनके लिए दुर्लभ थे। फिर भी वे जय प्राप्त करते रहे। हिन्दू पराजित होते थे, इसलिए नहीं कि उनमें शौर्य और वीरता का अभाव था। उस युग में वीरता और शौर्य में राजपूतों की समता की जाति पृथ्वी पर नहीं थी। फिर भी वे पराजित होने के लिए, जूझ मरने के लिए युद्धक्षेत्र में अग्रसर होते थे, जबकि मुस्लिम आक्रान्ताओं की भावना कठिन से कठिन समय में भी विजयोल्लास से ओतप्रोत थी। यदि हम पठानों, गुलामों, खिलजियों आदि की राज्य व्यवस्था पर गहरी दृष्टि डालें तो हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि उनके दरबार में विद्रोहों व षडयन्त्रों के घर बने हुए थे, और साधारण सरदार तथा गुलाम तक सुलतान का पराभव करके राजसत्ता छीन सकते थे। तब भी राजपूत अपनी सामर्थ्य से एक भी साम्राज्य की स्थापना न कर सके। यद्यपि उनके दरबार एकता, त्याग और शौर्य के आदर्श थे। वे हारते रहे, और एक के बाद दूसरे का पतन निरन्तर होता रहा। यह एक आश्चर्य-जनक बात थी, पर इसका मूल कारण वही था जो हम ऊपर कह आए हैं।

इस्लाम के शासक खलीफा (उमर और अब्बासी) एक उद्ग्रीव तथा प्रगतिशील शासक थे। उन्होंने बड़ी लगन एव तत्परता से विश्व की संस्कृतियों का अध्ययन किया। यूनानी तत्त्ववेत्ता अफलातून, अरस्तू तथा भारतीय वैद्यों, दार्शनिकों, गणितज्ञों, विद्वानों का उन्होंने सम्मानपूर्वक स्वागत किया। उनके ग्रन्थों का अरबी अनुवाद कराया। बगदाद विद्या के विकास और संस्कृति का केन्द्र बन गया। ज्ञान की ज्योति का जो दीपक बगदाद में जलाया गया; उसी से यूरोप ने अपने को प्रकाशित किया।

विदेशी आगन्तुकों का धर्मविलयन—गुप्तों के निरंकुश राजतन्त्र ने ईश्वर और राजा की सत्ता को चरम सीमा तक बढ़ाया। बौद्ध और जैन इस सर्व शक्तिवान् ईश्वर को नहीं मानते थे, परन्तु उन्होंने प्रवाहण जैबली के समाज पोषक और सत्ता का समर्थक पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया। पीछे वे जाति पांति, ज्योतिष, सामुद्रिक सब को मानने लगे। परन्तु उनमें विशेषता यह थी कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्होंने आगन्तुक विदेशी जातियों को सम्मानपूर्ण स्थान दिया। ब्राह्मणों ने अपनी दृष्टि में सब से ऊँचा स्थान अपने से केवल एक सीढ़ी नीचे दिया और इस प्रकार उन्हें क्षत्रिय बना लिया और परिस्थिति ने ब्राह्मण और क्षत्रियों को एक दूसरे के स्वार्थ में बांध दिया। ईसा की प्रारम्भिक तीन चार शताब्दियों में जबकि वे आगन्तुक क्षत्रिय बनाए जा रहे थे; बौद्ध धर्म अपंग कर दिया गया था। अब बौद्धों में भारत की किसी भी सामाजिक समस्या का कोई हल न था। वे लोगों की आंखों में चकाचौंध पैदा करने के लिए वाममार्ग की प्रवृत्ति अपने पूर्ववर्ती सिद्धों के दर्शनों को या तन्त्र, मन्त्र; जादू, टोना और योग के चमत्कार दिखाकर जनसाधारण को अपनी ओर आकर्षित करना चाहते थे। उनके अप्राकृतिक जीवन में भयानक बुराइयों का समावेश हो गया था और कुछ विचारक यह सोचने लगे थे कि मनुष्य को सहज स्वाभाविक जीवन पर लाना चाहिए परन्तु यह साधारण काम न था। इसलिए प्रारम्भ में ऐसे लोगों को छिप कर काम करना पड़ा। उन्होंने मुक्त यौन सम्बन्ध के पोषक चन्द्र संवर आदि देवता, उनके मन्त्र और पूजा प्रकार तैयार किए। गुह्य समाज एकत्रित होने लगे, जहां स्त्री–पुरुषों को सब प्रकार की स्वतन्त्रता दे दी गई और जिसका परिणाम यह हुआ कि यह सब काम सीमा से बहुत आगे बढ़कर अस्वाभाविक रूप में होने लगा।

सरहपा का सहजयान—सरहप्पा इस बात का समर्थक था कि सहज मानव की जो सहज आवश्यकताएँ हैं, इन्हें सहज रूप में पूरा होने देना चाहिए। वह भोग स्वातन्त्र्य को अति में नहीं ले जाना चाहता था। फिर भी सहज मार्ग से उसका मार्गच्युत होकर पाखण्ड मार्ग पर आ गया। और इसीलिए सरहप्पा का सहजयान, तन्त्र–मन्त्र, भूत–प्रेत और ऐसे ही हज़ारों मिथ्या विश्वासों और ढोंगों का केन्द्र बन गया और जब महमूद और मोहम्मदबिन–बख्त्यार की तलवार इनकी गरदन पर पड़ी तो इन सारे मिथ्या विश्वासों और दिव्य शक्तियों की पोल खुल गई। तथा तारा, कुर कुल्ला, लोकेश्वर और मंजुश्री के मन्दिरों और मठों में हजार-हजार वर्ष की जमा की हुई अपार सम्पत्ति इन ढोंगी पुजारियों और सिद्धों के साथ ध्वस्त हो गई और उन्हें भारत में पैर रखने को जगह न रही। जो बौद्ध भिक्षु बचे वे भारत से बाहर भाग गए। इसका परिणाम यह हुआ कि नालन्द और विक्रमशिला के ध्वंस के बाद कुछ ही पीढ़ियों में भारत के सर्व साधारण के हृदयों में से बौद्ध धर्म समाप्त हो गया।

९—मौर्योत्तर हिन्दु जागरण पर एक विहंगम दृष्टि

इसमें सन्देह नहीं कि धर्मराज अशोक के प्रयास से बौद्ध धर्म संसार का सर्वप्रथम विश्वधर्म बन गया, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उस समय हिन्दुत्व का सर्वथा लोप हो गया था। अशोक काल में भी ब्राह्मण धर्म अपने नए जीवन का विकास कर रहा था। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुत्व के इस जागरण में बहुत कुछ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुद्ध और महावीर और उनके उत्तराधिकारियों का हाथ था कि जिसने हिन्दुत्व की जड़ को दूर करके उसमें बौद्धिक क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी। यद्यपि हिन्दु जागरण का प्रबल स्वरूप गुप्त काल में देखने को मिला। परन्तु वास्तव में हिन्दुत्व पर बौद्ध धर्म की प्रतिक्रिया मौर्य-पतन के बाद ही दीखने लगी। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ईसा से लगभग २०० वर्ष पूर्व से लेकर ईसा की तीसरी शताब्दी तक ५०० वर्षों में हिन्दुत्व का नया विकास हुआ। इन दिनों भारत में कोई प्रबल राजनैतिक केन्द्रिय सत्ता नहीं थी। उत्तरी और पश्चिमी भारत में इन दिनों शुङ्गकण, यूनानी, शक और कुशाण राज्य स्थापित हो रहे थे और आन्ध्र में सात वाहमों का राज्य था।

ईसा पूर्व १८३ में मौर्य राज्यवंश का अन्त हुआ। अन्तिम मौर्य सम्राट् बृद्रथ को मार कर शुङ्ग सेनापति पुष्यमित्र सम्राट् बन गया। जिसके वंश के दस राजाओं ने ११२ वर्ष राज्य किया। ईसा पूर्व ७६ के लगभग शुङ्ग सम्राट् सुमित्र को काण्व वासुदेव आमात्य ने मार कर राज्य छीन लिया। काण्व वंश के चार राजाओं ने ४५ वर्ष राज्य किया। इसके बाद एक आन्ध्र दास सिंधुक ने काण्व सुशर्मण को मार कर राज्य हड़प लिया और इस वंश के तीस राजाओं ने ४५६ वर्ष मगध पर शासन किया। इस राज्यवंश का पतन ४३० ई० के लगभग हुआ। इस प्रकार शुङ्ग काण्व और आन्ध्र वंश के ४४ राजाओं ने ईसा पूर्व १८३ से ४३० ई० तक ६१३ वर्ष मगध के सिंहासन से प्रायः सम्पूर्ण दक्षिणी भारत पर शासन किया।

मगध महाराज्य के भंग होने पर—आन्ध्र राज्यवंश की समाप्ति पर अनेक विदेशी आक्रान्ताओं ने देश पर आक्रमण कर उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। मगध महाराज के अन्त होने के बाद सात आधीर राजा, दस गर्गभिल्ल राजा, सोलह शक राजा, आठ यवन राजा, चौदह तुषार राजा, तेरह मुंड राजा और ग्यारह मौन राजाओं ने भारत पर राज्य किया। इस प्रकार ईसा पूर्व छठी शताब्दी से पांचवीं शताब्दी तक ११०० वर्ष पर्यन्त जब तक आन्ध्रों का पतन नहीं हुआ तब तक मगध का महाराज्य ही भारत का मुख्य महाराजा रहा।

धर्म जय—यह एक मार्के की बात है कि इन राज्यों की जय-महाजय में धर्म जय का भारी सहयोग है। आपने देखा ही है कि प्रतापी मौर्य सम्राट् अशोक ने किस प्रकार बौद्ध धर्म को दिगन्त व्यापी कर दिया। परन्तु शुङ्ग सम्राटों ने बौद्ध धर्म को जड़ मूल से उखाड़ फेंकने में कसर नहीं छोड़ी। यह पुष्यमित्र पहिला ही अनार्य सम्राट् था जिसने अश्वमेध यज्ञ करके अपने को ब्राह्मण अनुमोदित हिन्दु धर्म में सांस्कृतिक रीति से प्रविष्ट कर लिया। परन्तु तुरुष्क कनिष्क ने फिर से बौद्धों की विजय वैजयन्ती देश-विदेशों में फैला दी। इसके बाद आन्ध्र राजाओं ने फिर हिन्दु धर्म को प्रश्रय दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कनिष्क का सांस्कृतिक प्रभाव—यह वह युग था जब संस्कृत भाषा का ह्रास हो गया था और सम्पूर्ण भारत में प्राकृत बोली जाती थी। इसी भाषा में हिन्दु तथा बौद्धों एवं जैनों का धर्म ग्रन्थ साहित्य भी लिखा जाता था। बुद्ध संस्कृत में प्रवचन देने के प्रबल विरोधी थे। परन्तु कनिष्क ने न केवल बौद्ध साहित्य को संस्कृत रूप देकर उसे दार्शनिक धर्म बना दिया—उसने संस्कृत साहित्य का भारी उपकार किया। कहना चाहिए—आज के उपलब्ध सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य का आधार भी इसी तुरुष्क सम्राट् के प्रसाद का फल है।

आन्ध्रों का उदयास्त—आन्ध्रों का एक छोटा-सा राज्य दक्षिण महाराष्ट्र में अति प्राचीन काल से था। जिसकी राजधानी पैठन (प्रतिष्ठान) थी। शुङ्ग सम्राटों की दिग्विजयों से आन्ध्रों में उत्तेजना आई। उन्होंने आस पास के प्राचीन राजवंशों को जीत कर उत्तर को बढ़ते २ चेदि और कौशाम्बी पर भी अधिकार कर लिया। इसके बाद जब पाटलिपुत्र के काण्व नरपति सुशर्मा अपने आन्ध्र दास बली के हाथ से मारे गए, तब तो आन्ध्रों का अधिकार कावेरी से गंगा तक हो गया। इस आन्ध्र वंश में गौतमी पुत्र सातकर्णी जैसे प्रतापी सम्राट् हुए। ईसा की पहली, दूसरी और तीसरी शताब्दी में निरन्तर संग्राम कर आन्ध्रों ने शकों को आगे नहीं बढ़ने दिया। इस प्रकार प्रबल प्रतापी शकों को—जिनका डंका संसार में बजता था, आन्ध्रों से दबना पड़ा। परन्तु ईसा की दूसरी शताब्दी के अन्त में क्षत्रप रुद्रदाम ने आन्ध्र नरेश पुलुमायी को हरा कर फिर मालवे पर अधिकार कर लिया। इसके बाद ही आन्ध्रों का भाग्य सूर्य अस्त हो गया, और ईसा की तीसरी शताब्दी में भारत में राजनैतिक अन्धकार छा गया।

राजनैतिक अन्धकार—इस अन्ध युग के १०० वर्षों में बड़े-बड़े युद्ध हुए। देश भर में अराजकता फैली रही। चेदि स्वतन्त्र हो गया और आन्ध्रों का बल क्षीण हो गया। इसी समय मगध के एक छोटे सरदार श्रीगुप्त ने पजाब के शक नरेशों के उजड़े हुए पाटलीपुत्र पर अधिकार कर लिया, और उसके पुत्र घटोत्कच ने शकों को बलहीन देख वहाँ स्वतन्त्रता का झण्डा फहरा दिया।

कनिष्क—कनिष्क ने (पुष्कलावती) पेशावर में राजधानी स्थापित कर बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया। उसने महायान बौद्धों का तीसरा संघ स्थापित किया। फिर चीन आदि महादेशों में बौद्ध धर्म प्रचारक भेजे, और शक सम्वत् चलाया। इस विदेशी धर्मनिष्ठ बौद्ध सम्राट् का राज्य विस्तार मध्य एशिया के देशों—काबुल तथा फारस के आधे भाग एवं काश्मीर और पंजाब पर था। विन्ध्याचल से अलताई पहाड़ तक पृथ्वी इसकी थी।

नहपान का अभियान—ईस्वी सन् की पहली शताब्दी में इस महा सम्राट् के सेनापति नहपान ने एक लाख प्रचण्ड शक सवारों को लेकर दक्षिण पंजाब के मालव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यौधेय गणराज पर भयानक आक्रमण किया, और फिर मालव नगरों को तहस-नहस करता तथा पूर्व की ओर मुंह कर मथुरा विजय करता हुआ, महोदय (कन्नौज) में पड़ी हुई आन्ध्र सेना को एक ओर छोड़, दक्षिण की ओर मुड़—अर्बुद पार कर आनर्त, लाट कच्छ देश जीत तथा महाराष्ट्र पर अधिकार कर अवन्ती और चेदि को जय करता आगे बढ़ा। वहां शिप्रा तट पर प्रतिष्ठान के आन्ध्र नरपति गौतमी पुत्र सात कर्णी ने सुशिक्षित आन्ध सेना ले शक सेनापति नहपान को पराजित किया। नहपान का यहीं निधन हुआ, और शकों के हौसले सदा के लिए पस्त हो गए। बची हुई शकसेना के सरदारों ने सौराष्ट्र पर अधिकार कर लिया।

क्षत्रप देव पुत्र—ये सरदार 'क्षत्रप' कहाते थे। सौराष्ठ के अधिपति दक्षिणी क्षत्रप और मथुरा के उत्तरी क्षत्रप कहाते थे। पुष्कलावती और साकल (स्याल कोट) के कनिष्क वंशी शक नरेशों से ये स्वतन्त्र थे, जो कि देवपुत्र कहाते थे।

शुङ्ग-काण्व अवसान—भारत भूमि में गहरी जमी हुई बौद्ध धर्म की जड़ को बल से उखाड़ कर, इस युग में अश्वमेध करके वेद की मर्यादा स्थापित कर, यवन, शक आदि म्लेच्छों का नाश कर—संवत् की स्थापना कर, भारत के मध्याकाश में सूर्य की भांति तप कर शुंग वंश अल्पकाल ही में समाप्त हो गया। प्रतापी सम्राट् वसुमित्र की अकाल मृत्यु हुई, और बालक सम्राट् सुमित्र विलास में फस अपने ही अन्तःपुर में निर्दय ब्राह्मण महामन्त्री वासुदेव काण्वायन द्वारा निर्दयता पूर्वक मार डाला गया।

बाहरी आक्रमण और कुषाण-शक—परन्तु काण्वायन वासुदेव के वंशधर पाटलीपुत्र के सिंहासन पर सुख पूर्वक राज्य न कर सके। इसी समय बाहरी आक्रमण प्रारम्भ हुए। वैक्ट्रिया में यूनानियों के राज्य से भारतीय नरेशों से कभी सन्धि और कभी विग्रह चलता ही रहता था। ई० पू० १२६ में यूची कुषाण तथा अन्य जातियों ने मध्य ऐशिया होकर काबुल को जीत सिन्ध नदी तक अपना अधिकार जमा लिया। कुषाण हविष्क ने वैक्ट्रिया राज्य का अन्त कर दिया। और वह काबुल का राजा बन बैठा। फिर उसने काश्मीर विजय कर वहां भी अपना राज्य स्थापित किया।

शुंग-सातवाहन—जिन दिनों शुंग वश का प्रताप मगध और मध्य देश में तप रहा था, और सात वाहन वंश दक्षिण-पथ में शक्ति संचय का रहा था, उन दिनों उत्तरी पश्चिमी भारत में यवन घुस आए थे, और शक आक्रान्ता सिन्धु और राजपूताने में अपना लोहे का चमत्कार दिखा रहे थे। इसके बाद पल्लवों और कुशाणों ने भी भारत में अपने राज्य स्थापित किए, और इसके बाद ही कुशाण मध्यदेश को आक्रांत करके मगध तक बढ आए।

यद्यपि इस समय भारत में कोई सार्वभौम सत्ता न थी, परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से यह काल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। इस दृष्टि से जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात इस काल में हुई, वह यह थी—कि यवन, शक, पल्लव व कुशाण जो आक्रान्ता के रूप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में भारत में आए थे उन्होंने बौद्ध, शैव, वैष्णव धर्म अपना लिए थे, और वे सर्वथा भारतीय बन गए थे। इतना ही नहीं, उन्होंने संस्कृत और प्राकृत भाषाओं को राज्य-भाषा बना लिया था और अब उनकी स्थिति विदेशी न रह गई थी। इसी काल में भारत के धर्म सभ्यता और संस्कृति का देश देशान्तरों में प्रचार हो रहा था। जिस धर्म घोष का आरम्भ अशोक ने देश देशान्तरों में किया था, उसे इस युग में बहुत बल मिला। कुशाण सम्राट् कनिष्क का साम्राज्य केवल भारत तक ही सीमित न था, हिन्दुकुश के पश्चिम और उत्तर में उसकी सीमाएँ चीन को छू रही थीं। कनिष्क के संरक्षण में बौद्ध धर्म के माध्यम से सम्पूर्ण मध्य एशिया भारतीय संस्कृति के प्रभाव में आ गया। इसी युग में चीन में भी बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ, साथ ही शैव और वैष्णव धर्म भी देश देशांतरों में पहुँचे। भारतीयों ने पूर्वी और दक्षिण पूर्वी एशिया में नए नए उपनिवेश बसाए और भारतीय धर्म भावना से वहाँ के मूल निवासियों को प्रभावित किया।

वैदिक धर्म का पुनरोत्थान—बौद्ध और जैन न ईश्वर को मानते थे, न वेद की अपौरुषेयता में ही विश्वास रखते थे। इस लिए यद्यपि यह धर्म भारतीय थे, परन्तु प्राचीन आर्यों के धर्मों के विरोधी थे। इस युग में इनके विरुद्ध भारत में और विदेशों में भी प्रतिक्रिया हुई। जिसके दो रूप बने।

प्रथम—प्राचीन वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ।

दूसरा—नवीन भागवत धर्म की स्थापना हुई।

इसके साथ ही यवन, शक, कुशाण आदि विदेशी जातियों के सम्पर्क से भारतीय कला और सामाजिक जीवन पर विदेशी प्रभाव पड़ा, और प्राचीन ग्रीस और रोम से भारत का घनिष्ट सम्बन्ध हो गया, जिस से भारत के विदेशी व्यापार को मुक्त द्वार मिला। चूंकि इस समय भारत में कोई शक्ति शाली केन्द्रीय शासन न था। इस लिए पुराने गण राज्य मालव, यौधेय, सुनन्द, आर्जुनस्यन, शिवि, लिच्छवी, आदि का पुनरुत्थान हुआ, जो इस काल में भारतीय राज्य शक्तियों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे।

महायान की स्थापना—इसी काल में कनिष्क के आश्रय में बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय की स्थापना हुई। यह इस बात का प्रमाण था कि मौर्यों के पतन के बाद बौद्ध धर्म ने—जो ब्राह्मत्त्व का मूलतः विरोधी था, संस्कृत भाषा को अपना कर ब्राह्मण लिबास पहन लिया था।

विदेशियों का भारतीय करण—इस काल तक जो विदेशी आक्रांता भारत में आए, उनमें शक विशेष उन्नत न थे। किन्तु बैक्ट्रिया के यवन और पार्थियन लोग सभ्य और सुसंस्कृत थे। इन उन्नत और सभ्य विदेशियों के द्वारा भारतीय धर्म और भाषा को अपना लेना कोई साधारण बात न थी। निःस्सन्देह भारतीय दृष्टि से इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काल में भारतीय ग्रीक लोगों की अपेक्षा अधिक उन्नत थे। उनकी सभ्यता और संस्कृति भी उत्कृष्ट थी।

राज तरंगिणी और कनिष्क वंश—यह पुस्तक पण्डित कल्हण की रचना है। इसमें भारत संग्राम से लेकर कनिष्क के उत्तराधिकारी तक का थोड़ी काव्यमयी भाषा में वर्णन है। इसमें काश्मीर का अच्छा इतिहास है। कनिष्क से लेकर विक्रमादित्य के सम सामयिक मातृगुप्त तक इस राजवंश के ३१ राजाओं ने लगभग ४७२ वर्ष राज्य किया। इनमें नर प्रथम बौद्धों का प्रबल शत्रु था। उसने बहुत से बौद्ध मठ जला डाले, बहुत से ब्राह्मणों को दे डाले। मिहिर कुल महाप्रतापी और विजयी था। उसने अपना राज्य करनाटक और लङ्का तक बढ़ाया। वह भी बौद्ध विरोधी था। प्रतापादित्य–मेघवाहन भी प्रतापी थे। ये बौद्ध थे।

गुजरात के शाह राजा—कनिष्क का महाराज्य गुजरात तक फैल चुका था, और यहाँ उसके आधीन क्षहरत जाति के राजा राज्य करते रहे थे। ये वही क्षत्रप थे, जो नहपान के पराभव के बाद स्वतन्त्र हो गए थे, और जिन्होंने मगध के आन्ध्र राजाओं से—जिनके आधीन सौराष्ट्र था अपनी स्वतन्त्रता स्थिर कर ली थी। ये लोग 'शाह' या 'क्षत्रप' कहाते थे। इनके दो सिक्के अब मिले हैं। इन सिक्कों पर शक सम्वत् छपा है। इस वंश के २७ राजाओं ने नहपान से रुद्रसिंह पर्यन्त ईसवी सन् ४१ से ई० सन् ३८८ तक सौराष्ट पर राज्य किया। इस राज्य वंश के बहुत से शिलालेख और सिक्के पच्छिमी भारत के भिन्न भिन्न देशों में मिले हैं। एक शिलालेख जो नासिक की गुफाओं में मिला है, उससे इन राजाओं के वैभव का पता लगता है। उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं :—

"सर्व सम्पन्न को। यह गुफा और ये छोटे तालाब गोवर्धन में त्रिरश्मि पर्वतों पर दिनाम के पुत्र राजा क्षहरत सत्रप नहपान के दामाद प्रिय उसवदात्त ने बनवाए थे, जिस ने तीन लाख गऊ और सोना ब्राह्मणों को दान दिया, और वार्णासा नदी पर तीर्थ बनवाकर ब्राह्मणों और देवताओं को सोलह ग्राम दिए, तथा प्रति वर्ष एक लाख ब्राह्मणों को भोजन कराया। पवित्र स्थान प्रभसु पर ब्राह्मणों के लिए आठ स्त्रियां रख दीं, भरु कच्छ, दशपुर, गोवर्धन और सोरपराग में चतुष्कोण, गृह और टिकने के स्थान बनवाए। वाटिका, तालाब और कूप बनवाए। हवा, परादा, दमन, तापी, कर बिना और दहनुका नदियों को पार करने के लिए उनमें डोंगियाँ छुड़वाईं। धर्म शाला बनवाई; और पौसारा चलाने के लिए स्थान दिए और पिण्डित कावड, गोवर्धन, सुवर्ण मुख, सोरप राग, रामतीर्थ और वाम गोल ग्राम के चरणों और परिसदों के बत्तीस नाधिगेरों के लिए एक हजार की जमा दी। ईश्वर की आज्ञा से मैं वर्षाकाल में हिरुध उत्तम भद्र को छुड़ाने के लिए मालव गया। मालव लोग (हमारे युद्ध वाद्यों का) नाद सुन कर भाग गए, और वे सब उत्तम भद्र क्षत्रियों के आधीन बन गए। वहां से मैं पोक्षरणी गया–वहाँ पूजा करके तीन हजार गायें और एक गांव दान दिया।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस लेख से तीन महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश पड़ता है—एक यह कि काश्मीर के बौद्ध सम्राटों के आधीनस्थ एक साधारण राजा कैसा सम्पन्न है, और ब्राह्मणों को सत्कार करने तथा दान देने में वह कितना प्रसन्न होता है ?

दूसरी यह कि सन् ईसवी के उपरान्त की शताब्दी में हिन्दु और बौद्ध धर्म के ये अनार्य और अभारतीय राजा किस प्रकार अपना कर साथ २ चलाते थे।

तीसरी यह कि सौराष्ट्रों ने उत्तमभद्र क्षत्रियों की सहायता के लिए मालव लोगों पर आक्रमण किया था।

शाह लोगों का एक महत्त्वपूर्ण लेख गिर्नार के निकट एक पुल पर खुदा है, जो रुद्र दामन का पुल कहाता है। रुद्र दामन नहपान के उपरान्त तीसरा राजा था, और उसने ईसा की दूसरी शताब्दी के बीच राज्य किया था। इस लेख में अशोक के दादा चन्द्रगुप्त का उल्लेख है। उसमें लिखा है-कि यह पुल नदी की बाढ़ में बह गया था, उसकी चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधान शिल्पी पुष्पगुप्त ने मरम्मत की। उसके उपरात अशोक के यवन राजा तुशय ने। इसके उपरान्त उसे महाक्षेत्र के रुद्र दामन ने सम्वत् ७२ (ई० १५० में) वह बनवाया गया। इस लेख में दक्षिणा पथ के राजा सातकर्णि को हरा कर सन्धि करने, तथा सौराष्ट्र, कच्छ और अन्य देशों को भी रुद्रदामन द्वारा विजय करने का उल्लेख है।

रुद्र दामन का यह लेख इस बात पर प्रकाश डालता है कि सौराष्ट्र के ये शाह राजा प्रसिद्ध आंध्रों की बरबादी करने वाले थे।

एक लेख नासिक की गुफा में और मिला है, जिसमें लिखा है कि आंध्र राजा गौतमी पुत्र ने सौराष्ट्र कच्छ और अन्य देशों को जय किया। और क्षहरत वंश का नाश कर दिया। यह ईसा की दूसरी शताब्दी का लेख है।

इस प्रकार मगध से आन्ध्र, पंजाब और काश्मीर से तुरुष्क (तुर्क) और सौराष्ट्र से शाह (शक) राजा सारे भारत वर्ष पर छा कर इन शताब्दियों में राज्य कर रहे थे। आर्य राजाओं का लोप हो चुका था, और आर्य जाति भी प्रजा वर्ग में रह गई थी। तथा ये विदेशी संस्कृति और सभ्यता में पूर्ण भारतीय बन चुके थे।

ई० पू० दूसरी शताब्दी से ईसा की ५ वीं शताब्दी तक—ई० पू० दूसरी शताब्दी से वैक्ट्रिया के यवनों का ई० की प्रथम शताब्दी में यूची तथा अन्य तूरानी जातियों का और अन्त में उनके आधीनस्थ शाह राजाओं का, जिन्होंने तीन शताब्दी तक सौराष्ट्र में राज्य किया—भारी वैभव था। उनका सैन्य बल भी असाधारण था। इसके उपरान्त ही अन्य जातियों ने भारत पर आक्रमण किए। अन्त में चौथी और पांचवीं शताब्दियों में टिड्डियों के दल के समान हूणों ने भारत पर आक्रमण किए। जिनके भय से फारस के राजा वहराम गौर को भारत में आश्रय लेना पड़ा। और जिनसे प्रतापी गुप्त सम्राटों ने कठिन लोहा लिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैदिक धर्म का हिन्दु स्वरूप—इन विदेशियों के भारतीय धर्मों में मिल जाने से आर्यों का वैदिक धर्म बदल कर हिन्दु धर्म हो गया। परन्तु उसमें ब्राह्मण धर्म की भाँति महत्ता ब्राह्मणों की ही रही। यही वह काल था जब रामायण और महाभारत के अन्तिम संस्करण तैयार हो रहे थे। स्मृति लिखी जा रही थी, कुछ उपनिषदों का निर्माण हो रहा था। पुराण रचे जा रहे थे। और दार्शनिक शाखाओं का विकास हो रहा था। आर्यों ने आर्येतर संस्कृतियों को अपनी सस्कृति में पचाने का महत्वपूर्ण कार्य इसी काल में किया। और वेदों; ब्राह्मणों और उपनिषदों का गुह्य ज्ञान पुराणों के द्वारा जन साधारण को सुलभ हुआ। तत्कालीन हिन्दु आचार्यों ने बौद्ध धर्म से यह शिक्षा ली कि जनता से धर्म की कोई बात छिपाकर न रखी जाय, और संसार त्याग और निराशा बाद की अपेक्षा जीवन का माध्यम सांसारिक रूप में ही रखा जाय। इसके लिए रामायण और महाभारत ये दो महाकाव्य बहुत उपयोगी प्रमाणित हुए। जिन्होंने लोक कथाओं के माध्यम से धार्मिक जागृति और चरित्र सगठन का हिन्दु संस्कारों में बीजारोपण किया। आगे चलकर तो रामायण और महाभारत हिन्दुओं के सबसे भारी ग्रन्थ बन गए। वेदों और उपनिषदों का तो लोग केवल नाम ही सुनते थे, परन्तु रामायण और महाभारत तो लोग पढ़ते थे। और बाल्मीकि और व्यास उनकी दृष्टि में चढ़ गए थे। रामायण में लंका से अयोध्या तक के प्रदेशों का सम्पर्क बाल्मीकि ने स्थापित किया। उसने भारतीय भौगोलिक एकता को स्थापित करने में बड़ी सहायता दी। रामायण से भी अधिक महाभारत को पढ़कर लोगों में जीवन की विविध समस्याओं, विचार धाराओं और संस्कृतियों में एक ऐसा सामञ्जस्य उत्पन्न कर दिया कि उसके बाद के साहित्यिक सृष्टाओं की विचार धाराओं का मूलाधार रामायण और महाभारत पर केन्द्रित हो गया जिससे भारत की विचार धारा में एकता की स्थापना हुई।

जिन आर्येतर जातियों ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति को अपनाया। वे अपने विदेशी देवताओं को भी आर्यवर्त्त में ले आए, और भारतीय हिन्दुओं ने भी उन देवताओं को अपना देवता स्वीकार कर लिया। आभीरों का कृष्ण गोपाल और शकों का शिव, कार्त्तिक और गणेश, दुर्गा और पार्वती इसी काल में हिन्दुओं के देवता बन गए। इससे एक लाभ यह हुआ कि जो विदेशी जातियां हिन्दु बन गई थीं, वे इस बात को भूल गई कि हम किसी पराए धर्म में दीक्षित हो गई हैं। इस समय साँस्कृतिक दृष्टिकोण से बौद्धों और हिन्दुओं में जो बड़ा भारी अन्तर था, वह यह था कि बौद्ध निवृति धर्म था और हिन्दु प्रवृति धर्म था। प्रवृति धर्म का सबसे बड़ा समर्थन गीता में है।

त्रिदेव—वैदिक धर्म देवताओं का था। तथा उपनिषदों का धर्म अगोचर ब्रह्म था। जो सर्वव्यापक ईश्वर का प्रतीक था। इस युग के वैष्णव धर्म में देवता स्वीकार कर लिए गए और उन सब के ऊपर ईश्वर को भी मंजूर कर लिया गया। बौद्ध धर्म में जो त्रैकत्व था उसके स्थान पर हिन्दुओं ने भी ब्रह्मा–विष्णु

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और शिव का त्रैकत्व स्थापित किया। आगे यह त्रैकत्त्व ईसाइयों में भी पिता-पुत्र और पवित्रात्मा के नाम से आ गया।

मूर्ति पूजन—आचार की दृष्टि से इस पौराणिक धर्म में नई वस्तु मूर्ति पूजा आई। वैदिक धर्म में जो कुछ देवता को अर्पण किया जाता था, उसे अग्नि मे आहुति देते थे, परन्तु अब देवता की मूर्ति के सम्मुख नैवेद्य चढ़ाया जाने लगा। दार्शनिक काल के अन्त तक राजा-पुरोहित और गृहस्थ यज्ञ करते थे—वे मूर्ति पूजन को नहीं जानते थे। परन्तु बौद्ध काल में, जब मनुस्मृति बन रही थी, मूर्ति पूजन का प्रचार बौद्धों में होने लगा था—परन्तु मनु देवताओं के त्रैकत्व को नहीं जानता, वह मूर्ति पूजा की निन्दा करता है। इस युग में मूर्ति पूजन हिन्दु धर्म की रीति हो गई और यज्ञ बीते युग की बात। मनुस्मृतिकार ईसा की प्रथम शताब्दी में तीन देवताओं को नहीं जानता, परन्तु छठी शताब्दी का कालीदास उन से भली भांति परिचित है।

विष्णु और लक्ष्मी—विष्णु और लक्ष्मी ये दो देवी-देवता प्रमुख पूजनीय ठहराए गए। हम देखते हैं कि विष्णु मरीचि कश्यप के पुत्र सूर्य का नाम था। और वह मानवों का प्रथम पुरुष है। श्री लक्ष्मी का नाम है और गुप्तवंशी श्री पर्वत के निवासी थे। इसलिए उन्होंने श्री लक्ष्मी को विष्णु पत्नी कल्पित किया।

गुप्त वंश के अन्त में उड़ीसा के केसरी राजा तथा उज्जयनी के मालव अवश्य शैव थे। इस काल में पौराणिक कल्पना के द्वारा वैदिक देवताओं का विविध रूप बन गया। और उनसे सम्बन्धित अनेक कथाओं का समावेश हो गया तथा आगे तक होता गया।

देवताओं की संख्या पुनर्जन्म और मुक्ति—तेतीस वैदिक देवताओं की संख्या अब तेतीस करोड़ हो गई। परन्तु ईश्वर तत्त्व सर्वोपरि रहा। पुण्य से स्वर्ग और पाप से नर्क वास होता है, यह भावना जड़ पकड़ गई। पुनर्जन्म के सिद्धान्त ने एक स्थिर रूप धारण कर लिया। मुक्ति का भी एक जटिल रूप आत्मा के साथ ही कल्पित कर लिया गया।

पवित्र और निष्पाप जीवन से सांसारिक विचारों और अभिलाषाओं से रहित रह कर आत्मा सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो सकती हैं। यह उपनिषद का विचार बौद्धों के निर्वाण में परिवर्तित हो गया। वहां से कुछ विकृत रूप धारण कर वेदान्त और पौराणिक धर्म में आया। आगे चल कर वैष्णव धर्म के अनेक रूप बने।

धर्मशास्त्र और स्मृतियां—दार्शनिक काल में हमें गौतम-वशिष्ठ बौद्धायन और आपस्तम्ब के धर्म सूत्र मिलते हैं। इस समय में उन धर्म सूत्रों का स्थान स्मृतियों ने लिया, और वे धर्मशास्त्र कहाए।

पौराणिक हिन्दु धर्म के प्रतिष्ठाता—बौद्ध धर्म के उपरान्त यह पौराणिक हिन्दु धर्म गुप्तवंशी राजाओं की छत्र छाया में पूर्ण विकसित हुआ। इस काल में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दो मुख्य हिन्दु वंश वैष्णव धर्म के प्रतिष्ठाता रहे—

१—गुप्त वंश २—वर्धन वंश

इसका मूल कारण है कि गुप्तवंशी राजा शुद्ध आर्य रक्त के न होने पर भी आंशिक रूप से आर्य रक्त से प्रभावित थे। उन्होने आर्षकालीन आर्य संस्कृति को अपना आदर्श बनाया था। परन्तु उस संस्कृति और उनके बीच प्रबल बौद्ध धर्म था, जो अशोक और कनिष्क जैसे महाराजा की छत्रछाया में देशदेशान्तर तक फैल चुका था। वह अब कोरा सम्प्रदाय न था, उसमें एक राष्ट्रतत्त्व सम्मिलित होगया था। और महायान सम्प्रदाय ने जब से उसका माध्यम संस्कृत को बनाया और सूत्रकालिक दार्शनिक भावना उसमें व्यापी, वह अति गहन और भारी धर्म हो गया। गुप्तवंशी राजनैतिक और धार्मिक दोनों ही कारणों से अब उसके प्रति असहिष्णु नहीं हो सकते थे। अतः उन्होंने जो अपना आदर्श आर्षकालीन आर्यों का रक्खा, परन्तु उसमें बौद्ध धर्म की तत्व विवेचना दर्शन और आचार सभी घुल मिल गए। उसी का रूप गुप्तों का वैष्णव धर्म रहा। आर्यों की भाषा संस्कृत; यज्ञ संस्कृति और ब्राह्मण तत्व लेकर उसमें उन्होंने बौद्धों का अहिंसातत्व और दर्शन आरोपित कर लिया।

त्रिमूर्ति—ब्रह्मा-विष्णु-महेश की त्रिमूर्त्ति ही हिन्दुओं का सांस्कृतिक मध्यबिन्दु बन गई। और इस साकार कल्पना ने उनमें वैदिक आर्यों से यह भेद उत्पन्न कर दिया कि यज्ञ वेदी के स्थान पर मन्दिर की स्थापना हुई और अग्निपूजन के स्थान पर प्रतिमा पूजन का प्रचलन हुआ। इस सम्बन्ध में उत्तर के आर्यों ने दक्षिण के द्रविणों की पद्धति का अनुकरण किया। आगे शताब्दियों तक विभिन्न जातियों के संस्कारों को आत्मसात करने की प्रतिक्रियाएँ होती रहीं, जो गुप्त काल तक चलती रहीं। निराकार के साथ साकार की उपासना, ईश्वर की त्रिमूर्त्ति, दुर्गा और गणेश, दशावतार, वेद-प्रामाण्य, निष्काम कर्म, पुनर्जन्म, कर्मफल, वर्णाश्रम, त्रिवर्ग, वैष्णव, शैव उपासना, मन्दिर, मूर्त्ति, तीर्थ, श्राद्ध, भक्ति, कर्मयोग में हिन्दुत्व के मुख्य योग बन गए।

शुङ्ग-सातवाहन-शकों का सांस्कृतिक प्रभाव—शुङ्ग-सातवाहन और शकों का इस काल भारतीय संस्कृति पर असाधारण प्रभाव पड़ा। खासकर नवीन साहित्य की रचना ने उसे नया मोड़ दिया। हिन्दु-बौद्ध और जैनों ने अथाह महत्वपूर्ण साहित्य की रचना इस काल में की। पतञ्जलि मुनि शुङ्ग पुष्यमित्र के के समकालीन थे। इन्होंने पाणिनि की अष्टाध्यायी पर महाभाष्य तथा योगशास्त्र रचा। और वैद्यक के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक का नया सम्पादन किया। स्मृतियों का आरम्भ भी इसी शुङ्ग काल में हुआ। ई० पू० १५० में प्रवक्ता भृगु ने मनुस्मृति का वर्तमान संस्करण किया और सुमति भार्गव ने इसका प्रवचन किया।[1]

मानव-सम्प्रदाय और मनुस्मृति—अति प्राचीन काल ही से विचारकों के अनेक सम्प्रदाय भारत में थे—उनमें एक मानव सम्प्रदाय भी था। कोई बड़ा आचार्य एक विचारधारा प्रारम्भ करता था—और उसके शिष्य उसका विकास करते थे।

१—देखिए—नारद स्मृति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ये सम्प्रदाय कोई धार्मिक सम्प्रदाय न थे। मात्र विचार सम्प्रदाय थे। मानव सम्प्रदाय भी उन दिनों ऐसा ही महत्वपूर्ण सम्प्रदाय था।[१] इसी सम्प्रदाय में मनु के एक परम्परागत शिष्य सुमति भार्गव थे, जिन्होंने मनुस्मृति की रचना की, और मानव सम्प्रदाय के विचारों को एकत्र किया। अपने समय की परिस्थितियों का भी उसने वर्णन किया। इसलिए मनुस्मृति शुङ्ग काल की सामाजिक जीवन की उत्तम व्याख्या है।

याज्ञवल्क्य स्मृति—विष्णु-स्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति का निर्माण भी लगभग इसी काल की रचना है। आगे और भी स्मृतियाँ बनीं—पर मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति ही हिन्दु धर्म की सर्वोपरि प्रामाणिक और महत्वपूर्ण स्मृतियां रहीं। ये दोनों स्मृतियाँ शुङ्ग-सातवाहन काल की सभ्यता पर एक व्यापक प्रभाव डालती हैं।

अन्य साहित्य—महाभारत और रामायण में भी सातवाहन राजाओं के काल में बहुत वृद्धि हुई, तथा सस्कृत और प्राकृत के अनेक नाटकों की रचना हुई। संस्कृत का प्रसिद्ध नाटककार भास कण्व-राज्यकाल में हुआ। जो मगध का निवासी था। अश्वघोष कनिष्क के राज्य में था। उसने 'बुद्ध चरित' महाकाव्य तथा अनेक नाटक लिखे। प्रसिद्ध नाटक 'मृच्छकटिक' का लेखक शूद्रक कवि सातवाहनों के शासन काल में था। नाट्यशास्त्र प्रणेता-भरत मुनि तथा काम सूत्र के रचयिता वात्स्यायन सातवाहन वंश के राज्यकाल में हुए।

सातवाहन राजा प्राकृत साहित्य के बड़े भारी संरक्षक रहे। इस वंश का राजा हाल स्वयं उत्तम कवि था, जिसने सप्त-शती लिखी। पैशाची प्राकृत का महान् कवि गुणाढ्य सातवाहन युग में हुआ। संस्कृत साहित्य के साथ प्राकृत साहित्य ने भी इस युग में असाधारण उन्नति की।

बौद्ध और जैन साहित्य—बौद्धों और जैनों के असंख्य ग्रन्थ इस काल में रचे गए। बौद्धों का महायान सम्प्रदाय सम्राट् कनिष्क के संरक्षण में स्थापित हुआ। और इस सम्प्रदाय का उत्कृष्ट साहित्य इसी काल में लिखा गया। बौद्धों के त्रिपिटक पर महाविभाषा नामक भाष्य रचना हुई। इस युग के बौद्ध विद्वानों में—अश्वघोष, पार्श्व और वसुमित्र प्रमुख थे। सिद्ध नागार्जुन प्रथम ने इसी काल में शून्यवाद का बौद्ध दर्शन लिखा।

जैन साहित्य भी बहुत रचा गया। वज्र स्वामी के शिष्य आर्यरक्षित ने जैन सूत्रों को अंग-उपाङ्ग आदि चार भागों में विभक्त किया।

२—कौटिलीय अर्थशास्त्र और कामन्दकीय नीतिसार में मानव सम्प्रदाय के मत उद्धृत हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

षड्दर्शन—षड्दर्शनों का वर्तमान रूप भी इसी काल में हुआ। जो भारतीय चिन्तन के प्रतीक रूप थे। यद्यपि इन में कुछ बहुत प्राचीन थे, परन्तु उनका वर्तमान रूप इसी काल में स्थिर हुआ।

ज्योतिष और आयुर्वेद—आयुर्वेद और ज्योतिष ने इस काल में बहुत उन्नति की। चरक सहिता का आचार्य अग्निवेश कनिष्क राज्य में था। पीछे पतञ्जलि ने उसका सम्पादन किया। सुश्रुत का वर्तमान रूप नागार्जुन ने सम्पादित इसी काल में किया। तथा नागार्जुन ने रसायन तथा दर्शन पर भी असाधारण रचनाएँ कीं। नागार्जुन—रसायन-लौहशास्त्र और विज्ञान का आचार्य था। अश्वघोष के बाद वही बौद्ध संघ का प्रधान बन गया था। उसने जनन विज्ञान पर भी एक ग्रन्थ लिखा था। उसकी माध्यमिक सूत्र वृत्ति उल्लेखनीय है।

ज्योतिष की गर्ग संहिता गर्गाचार्य ने इसी काल में लिखी।[1] इसमें यवनों के आक्रमण का विवरण ऐसा है कि आंखों देखा है।

१०—बौद्धों की स्थापत्य कला

यूनानी पद्धति—सिकन्दर ने भारत से लौटने पर प्राचीन यूनानी शिल्प की एक संस्कृति पीछे छोड़ी—उसके कारण प्राचीन भारतीय स्थापत्य कला में एक गम्भीर परिवर्तन हुआ। एन्टिओक से लेकर वैक्ट्रिया तक समस्त एशिया में इस नवीन संस्कृति ने प्रभाव डाला।

भारतीय पद्धति—गृह-निर्माण विद्या भारतीयों की इससे पूर्व भी बहुत उन्नत हो गई थी। उनके गृह-निर्माण की विद्या बिल्कुल स्वतन्त्र है। कन्धार और पंजाब में जो स्तम्भ मिले हैं, उनकी निर्माण-विधि स्पष्ट आयोनिक पद्धति की है। और यूनानियों की संस्कृति की उस पर स्पष्ट छाप है। परन्तु भारत में बम्बई से लेकर कटक तक ईसा के लगभग और उसके बाद के भी जो ध्वंसावशेष हैं वे विशुद्ध भारतीय पद्धति के हैं।

पत्थर की मूर्तियां खासकर यह प्रमाणित करती हैं कि भारतीयों की मूर्त्ति-निर्माण-कला उनकी अपनी है। डा० फर्ग्यूसन भरहुत के जंगलों का वर्णन—जो ईसा से २०० वर्ष पूर्व का था—करते हुए लिखते हैं कि इस बात पर जितना जोर दिया जाय, थोड़ा है कि इसमें जो शिल्प कला देखी जाती है, वह विशुद्ध भारतीय है। उसमें न मिस्र की कला का मिश्रण है, और न यूनानी कला का। नसीरिया और बेबिलोनिया की कोई नकल देखने को मिलती है, खम्भों के सिरों पर कुछ-कुछ पर्सी पोलिस की बनावट मिलती है, और उनमें फूल-पत्ती का काम भी वैसा ही है, परन्तु अन्य कारीगरी और मूर्तियों की खुदाई का काम शुद्ध भारतीय पद्धति पर है।

१—यह ग्रन्थ खण्डित ही प्राप्त है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बौद्ध कालीन इमारतें—बौद्ध काल की इमारतों में एक बात का पता लगता है कि बौद्धों से प्रथम पत्थर का उपयोग खास २ स्थानों पर—जैसे दीवारों, फाटकों, पुलों और नदी के बांधों में प्रयोग होता था—कभी २ महल या मन्दिरों में भी प्रयुक्त होता था, परन्तु साधारण घरों में तो ईंटों का ही प्रयोग होता था। इस समय की जैनियों और बौद्धों की जो इमारतें मिलती हैं, वे अनुमानतः चौथी-पांचवीं शताब्दी की है।

फर्ग्यूसन साहब ने बौद्ध कालीन इमारतों के पांच विभाग किए हैं :—

१—स्तम्भ २—स्तूप

३—जंगले (जो स्तूपों के घेरे बनते थे।)

४—चैत्य ५—विहार या मठ।

स्तम्भ—स्तम्भों में प्राधान्य अशोक के निर्माण किए स्तम्भों का है, जिन पर उसने धर्म-आज्ञाएँ खुदवाईं थीं। दिल्ली और प्रयाग के स्तम्भ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, जिन्हें सर्व प्रथम प्रिंसेप साहब ने पढ़ा था। प्रयाग के स्तम्भ पर फारसी अक्षरों में जहाँगीर बादशाह की राज्यारोहण तिथि खुदी है। सम्भवतः इस स्तम्भ की जहांगीर ने मरम्मत कराई थी। इन स्तम्भों पर सिंह नहीं हैं, परन्तु तिरहुत में जो स्तम्भ है, उस पर सिंह की तथा मथुरा और कन्नौज के बीच में संकाश्य के स्तम्भ पर खण्डित हाथी की मूर्ति है। यह हाथी इतना खण्डित है कि ह्वेनसांग ने उसे शेर समझा था। बम्बई और पूना के बीच कर्ली की जो गुफा है, उसके सामने वाली स्तम्भ के सिरे पर चार शेरों के मुख हैं।

दिल्ली का लौह स्तम्भ—दिल्ली में जो कुतुब मीनार के पास का लौह-स्तम्भ है, वह २२ फीट पृथ्वी के ऊपर तथा २० इन्च पृथ्वी के भीतर है। और उसका व्यास नीचे १६ इन्च तथा ऊपर सिरे पर १२ इन्च है उस पर जो लेख खुदा है—खेद है, उस पर कोई तिथि नहीं है। जेम्स प्रिंसेप के मत में वह चौथी शताब्दी का है और डा० भाऊदाजी ५ या ६ शताब्दी का कहते हैं। चाहे चौथी का हो या पांचवी-छठी का, परन्तु यह तो स्पष्ट है कि ५-६ शताब्दी में हिन्दू लोग लोहे के इतने बड़े खम्बे बना सकते थे; जैसे योरुप में अठारहवीं शताब्दी में बनने लगे हैं, फिर भी बहुत कम बनाए जा सकते हैं। लगभग ऐसे ही भारी खम्बे कर्णिक के मन्दिर की धरण में लगे हैं। जो इस बात के प्रमाण हैं कि यह कारीगरी केवल मर नहीं गई थी—वरन् जारी थी। साथ ही १४०० वर्ष तक हवा-पानी में रह कर भी वह जंग नहीं खा गया। यह बात भी असाधारण आश्चर्यजनक है।

भेलसा का स्तूप—भेलसा का स्तूप पूरब से पच्छिम २० मील लम्बे और उत्तर-दक्षिण १० मील चौड़े स्थान में है। यह भूपाल रियासत में है। ५-६ स्तूपों के समूह यहां हैं, जिनमें २०-३० स्तूप होंगे। इनका सर्वप्रथम वृत्तान्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जनरल वकिंघम ने सन् १८५४ में प्रकाशित किया था। इन स्तूपों में सांची का स्तूप सबसे बड़ा है। जिसकी बैठक १५ फीट ऊँची तथा गुम्बज ४२ फीट ऊँचा है। आधार के ठीक ऊपर का व्यास १०६ फीट ऊँचा है। जंगले ११ फीट ऊँचे और फाटक ३३ फीट ऊँचा है, जिनकी कारीगरी अत्यन्त उच्च कोटि की है। इसके बीच का भाग ठोस है और वह गारे में चुनी हुई ईंटों से बनाया गया है। इसके ऊपर गढ़े हुए पत्थर हैं; जिन पर मसाला और उस पर चित्रकारी थी, जो अब नष्ट हो गई है। इसके आस-पास के लगभग ६० छोटे-बड़े स्तूप भी लगभग इसी ढंग के हैं।

काशी सारनाथ—काशी सारनाथ का स्तूप उसी मृगदाव में बना है, जहाँ बुद्ध को सर्वप्रथम ज्ञान हुआ था। उसका पत्थर का आधार ९३ फीट व्यास में है, और वह ठोस ४३ फीट ऊंचा है। यह पृथ्वी से १२८ फीट ऊंचा है। उसके नीचे का भाग ८ पहल का है। इसके बनने का समय छठी-सातवीं शताब्दी है।

बंगाल का स्तूप—बंगाल में एक और स्तूप है, जिसे लोग जरासिन्ध की बैठक कहते हैं। इसका व्यास २८ फीट और ऊंचाई २१ फीट है। वह ४ फीट के आधार पर बनाया गया है। इसे ह्वेनसांग ने देखा था।

अमरावती का स्तूप—ह्वेनसांग ने अमरावती के स्तूप का जिक्र किया है, जो इस समय नहीं है। कन्धार में अनेक स्तूप अभी हैं। परन्तु कनिष्क का वह स्तूप जो ४७० फीट ऊँचा था और जिसे ह्वेनसाँग और फाह्यान ने देखा था, वह भी अब नहीं है। इधर के स्तूपों में सिंध और झेलम के मनिक्यल के स्तूप हैं। इस स्थान पर १५-२० स्तूप पाए गए थे। जिनमें से कुछ को रणजीत सिंह के फ्रैन्च सेनापति बेंटूर और कोर्ट साहेबों ने प्रथम बार सन् १८३० में खोला था। इनमें प्रधान स्तूप के गोलार्ध का व्यास १२७ फीट है और घेरा ४०० फीट के लगभग।

स्तूपों के चारों ओर के जंगले और फाटक बौद्ध काल की उत्कृष्ट कारीगरी के नमूने के तौर पर पेश किए जा सकते हैं। सर्व प्राचीन जंगले और फाटक बुद्ध गया और भरहुत के हैं। इनका समय २५० ई० पू० के लगभग है। बुध गया के जगले १३३ फीट लम्बे और ९८ फीट चौड़े हैं। समकोण चतुर्भुज आकार के हैं। और उनके खम्बे ५ फीट ११ इन्च ऊँचे हैं।

भरहुत के स्तूप—भरहुत के स्तूप को खोद २ कर लोगों ने बसने के लिए उपयोग में ले लिए हैं, पर जंगले अभी बचे हैं। वह पहले ८८ फीट व्यास का २७५ फीट लम्बा था। उनके चार द्वार थे, जिन पर ४ फीट ऊँची मूर्तियां थीं। पूर्वी फाटक के खम्बे २२ फीट ६ इन्च ऊंचे थे। धरनों पर कोई मनुष्य मूर्त्ति न थी।

नीचे की धरन पर हाथियों की एक पंक्ति थी। बीच की धरन पर शेरों और सबसे ऊपर घड़ियालों की। जंगला ९ फीट ऊँचा था और भीतर की ओर लगातार पत्थर की मूर्तियाँ खुदी थीं, जो एक सुन्दर बेल द्वारा जुदी की गई थीं। इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समय इनमें से १०० मूर्तियाँ पाई गई हैं। सभी में कथाओं के दृश्य हैं, और सब में जातक दिखलाए गए हैं, उनका नाम खुदा हुआ है। भारत वर्ष में केवल यही एक स्मारक है, जिसमें इस प्रकार लेख खुदे हुए हैं, इसी लिए ये जगले बहुत ही बहुमूल्य समझे जाते हैं।

सांची के स्तूपों का जो जंगला है, वह गोलाकार है, और उसका व्यास १४० फीट है। उसके खम्बे अष्ट पहलू तथा ८ फीट ऊँचे हैं। तथा २ फीट की दूरी पर हैं। सिरे पर तथा बीच में भी दो फीट ३ इञ्च मोटी धरनों से जुड़े हुए हैं। उन पर फूल पत्तियाँ और बेल बूटों का काम इतना घना है कि धरन बिल्कुल ढक गए हैं। यह स्तूप संभवतः अशोक के समय में बना है।

सांची के जंगलों का समय बुध गया और भरहुत के जंगलों से ३ शताब्दी बाद का और अमरावती के जगलों का समय ईसा की ५ वीं शताब्दी है। अमरावती बहुत काल तक आंध्र वंशीय राजाओं की राजधानी रहा है। अमरावती के जगले में फूल पत्तियों की बड़ी भरमार है। बड़े जगले का व्यास १९५ फीट और भीतरी का १६५ फीट है। इन दोनों के बीच यात्रा का मार्ग है। बड़ा जंगला बाहर से १४ फीट और भीतर से १२ फीट और छोटा ठोस और ६ फीद ऊँचा था। बड़े जंगले की दीवार में जानवरों और लड़कों की मूर्तियाँ खुदी थीं, और खम्बे अन्य खम्बों की तरह आठ पहल थे और उनपर फूल खुदे थे। बड़े जङ्गले में बाहर की अपेक्षा भीतर की ओर बहुत उत्तम काम था, और उसमें बुद्ध के जीवन–चरित्र के अथवा कहानियों के दृश्य भी उत्तमता के साथ खुदे थे।

चैत्य—दीवारें चुनकर नहीं उठाई जाती थीं, वरन् बड़े-बड़े पत्थरों को काट कर बनाई जाती थीं। इस समय २० से ३० तक चैत्य अभी तक प्राप्त हो चुके हैं, जो लगभग सभी चट्टान काटकर बनाए गए हैं। इन चैत्यों में बाहरी कोई सजावट नहीं है। भीतर अलबत्त बहुत खुदाई है। बम्बई प्रांत में ९ चैत्य हैं। इसका कारण इस प्राँत में गुफाओं की बहुतायत है। बिहार में राजगृह में एक गुफा है, जो कहा जाता है कि यह वही गुफा है; जिसमें बुद्ध की मृत्यु के बाद प्रथम सभा हुई थी। इसे ह्वेनसाँग ने देखा था। इसमें साधारण कारीगरी की गई है।

गुफाएँ—गया के १६ मील उत्तर अनेक गुफाएँ हैं। जिनमें एक गुफा लोमश की गुफा के नाम से प्रसिद्ध है। उसकी छत नोकीली वृत्ताकार है, और मुख पर सादे पत्थरों का काम है। भीतर ३३ फीट लम्बा और १९ फीट चौड़ा दालान है। जिसके आगे एक वृक्षाकार कोठरी है। ये सभी गुफाएँ ईसा से प्रथम तीसरी शताब्दी की खुदी हुई हैं। पच्छिमी घाट में ५–६ प्राचीन गुफाएँ हैं, जो मसीह से पूर्व की कही जा सकती हैं। भज की गुफा अधिक प्राचीन है। भज की गुफाओं में पत्थर के खम्बे भीतर की ओर झुके हुए हैं; जैसे काठ के खम्बे किसी इमारत में जोड़ देने के लिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तिरछे खड़े किए जाते हैं। गुफाओं की धरनें लकड़ी की हैं, जिनमें बहुत सी आज तक भी वर्तमान है। इस गुफा का समय ईसा से पूर्व तीसरी शताब्दी है। यह गुफा इस बात का प्रमाण है कि इस प्रकार लकड़ी के स्थान पर पत्थर का उपयोग होना शुरू हो गया।

वेदसोर में जो गुफाएँ हैं, वे कहीं अधिक उन्नत हैं। उनके खम्बे कुछ सीधे हैं, द्वार पर भी बौद्ध जंगलों जैसा काम है। इन गुफाओं का समय दूसरी शताब्दी अनुमान किया जाता है।

नासिक की गुफा, जो तीसरी शताब्दी की है, बहुत उत्तम है। खम्बे प्रायः सीधे हैं, तोरणों पर भी उच्च कोटि का कार्य किया जा रहा है।

पूना और बम्बई के बीच में कार्ली की गुफा, इस प्रकार की इमारतों की पूर्णावस्था को प्रकट करती है। इसके सीधे खम्बे, पत्थर की खुदाई, बनावट का ढंग, विशालता और पूर्णता अद्वितीय है।

अजन्ता—अजन्ता की ४ गुफाएँ ईसा की प्रथम से छटी शताब्दी तक की हैं। पीछे के समय के चैत्य में बुद्ध की मूर्तियां हैं, इनमें से सब से अन्तिम समय की बनी गुफा से जो बौद्ध धर्म का स्वरूप मिलता है वह हिन्दू धर्म के अति निकट हो जाता है।

एलोरा—एलोरा की गुफा बौद्ध काल के अन्त की है। उसके कमरे की लम्बाई ८५ फीट और चौड़ाई ४३ फीट है। और छत में सब बेल और नक्काशियाँ पत्थर में खुदी हैं, पर उनमें लकड़ी की खुदाई की नकल है। यहां का द्वार नाल के आकार का नहीं है, जो अन्य सभी गुफाओं का है। यह दुमंजिला मकान प्रतीत होता है और उस पर उत्तम खुदाई की गई है।

कन्हेरी—कन्हेरी की गुफाएँ (बम्बई के निकट) ५ वीं शताब्दी की है। जो कदाचित कार्ली की गुफाओं की नकल है।

बिहार—बिहारों में नालन्द का नाम सर्व प्रथम लिया जा सकता है, जो पटने के निकट बिहार में है। और जिसे ह्वेनसाँग ने देखा था। उसे कई राजाओं ने समय-समय पर बनवाया था। और एक राजा ने सब बिहारों को घेर कर १६०० फीट लम्बी और ४०० फीट चौडी एक दीवार बनवाई थी, जिसके ध्वंस अब भी हैं। इस घेरे के बाहर स्तूप और गुम्बज बनवाए गए थे, जिनमें से १०-१२ की पहचान कनिंगहम ने की थी। दीवारों के आसरन विशाल स्तूप और गहरी खाइयां देख कर बुद्धि चकराती है।

कटक और भुवनेश्वर—कटक और भुवनेश्वर के निकट उदयगिरि और खण्डगिरि की दोनों गुफायें-कलिंग के एक राजा ने बनवाईं थीं। उदयगिरि की व्याघ्र गुफा बहुत प्रसिद्ध है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अजन्ता के बिहार--अजन्ता की गुफाओं में जैसी स्पष्ट और सुन्दर मूर्तियाँ और कारीगरी है वैसी अन्यत्र किसी बिहार में नहीं। ये बिहार पांचवीं शताब्दी के हैं, जब कि भारत में गुप्तवंशी सम्राटों का साम्राज्य था।

प्रधान गुफा ६४ फीट लम्बी और उतनी ही चौड़ी है। उसमें २० खम्बे हैं। दोनों ओर साधुओं के रहने योग्य कोठरियाँ हैं। बीच में एक बड़ा दालान, आगे की ओर एक बरामदा और पीछे देवस्थान है। इसकी दीवारें चित्रों से परिपूर्ण है। जिनमें बुद्ध के जीवन और की कथाओं के दृश्य हैं। और छत में तथा खम्बों में बेल-बूटे आदि के काम हैं। जिनसे उसकी अद्भुत शोभा हो गई है। मूर्तियां स्वाभाविक और सुन्दर हैं। मनुष्यों के मुख मनोहर और भाव-पूर्ण हैं, और उनके हृद्गत विचारों को प्रकट करते हैं। स्त्रियों की मूर्तियां लचीली, हलकी और उत्तम हैं और उनमें वह मधुरता है, जो स्त्री-जाति में होती हैं। यह चित्र-कला आज भी पुरातत्त्व विदों और शिला शास्त्रियों के अध्ययन की वस्तु है।

अजन्ता की जो गुफा राशिचक्र की गुफा के नाम से मशहूर है, उसमें एक बुद्ध चक्र रखा है।

मण्डु गुफाएँ--मण्डु से ३० मील पच्छिम बोध नामी स्थान में ८ या ९ गुफाएं हैं। बड़ी गुफा में ९६ फीट लम्बा एक दालान और उससे सटी एक शाला है, जो ९४ फीट लम्बी और ४४ फीट चौड़ी है, और दालान तथा शाला के आगे २२० फीट लम्बा बरामदा है। दालान में २८ खम्बे, शाला में १६ खम्बे और बरामदे में १ पंक्ति में २० खम्बे सुशोभित हैं।

पहले बरामदे की पीछे की दीवार पर चित्रकारी थी, जिसमें घोड़ों और हाथियों पर भाषाएं अंकित थी--स्त्रियां पुरुषों से अधिक थीं, और उनमें प्रेम और नाच के भाव दिखाए हैं।

एलौरा चैत्य--एलौरा चैत्य से संलग्न भी बहुत सी विशाल गुफाएँ हैं। सब से बड़ी ११० फीट लम्बी और ७० फीट चौड़ी है। यहां पर ३ मन्दिर हैं, जिससे पता चलता है कि बौद्ध गुफाएँ धीरे-धीरे किस तरह मन्दिर बन रही थीं। एक मन्दिर दुमन्जिला है, दूसरा तिमन्जिला है। जिनमें बौद्ध कारीगरी है। तीसरा मन्दिर दशावतार का है, जिसकी कारीगरी तो वही है, पर पत्थर का काम हिन्दुओं के समान है। ९ वीं शताब्दी में हिन्दुओं ने कैलाश का जो मन्दिर यहाँ बनवाया है, उसने इस स्थान की बहुत प्रसिद्धि की है। इसमें बौद्धों के प्रतिकूल हिन्दू कारीगरी है--क्यों कि बौद्ध लोग तो चैत्य या बिहार पत्थर काट कर गुफा की तौर पर बनाते थे, परन्तु उसके बाद के हिन्दु चट्टानों को काट डालते थे और उसके भीतर मकान की तरह बनाते थे। जो चट्टानों से उपर उठा रहता था। एलोरा का यह मन्दिर इसी प्रकार का है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कन्दहार के विहार--कन्दहार के बिहारों पर यूनानी स्थापत्यकला का प्रभाव पड़ा है, यह बात हम शुरु में कह चुके हैं। लंका में अनुराधापुर में जो १० वीं शताब्दी में राजधानी रही है, प्राचीन स्तूपों और इमारतों के असंख्य खण्डहर पाए जाते हैं। लंका में जो सबसे बड़े स्तूप हैं, एक अभयगिरि पर है। जिसका घेरा ११०० फीट और ऊँचाई २४५ फीट है, और दूसरा चेतवन में जो कि उससे कुछ फीट ऊँचा है। इनमें से पहला ईसा से ८८ वर्ष पूर्व का बना है और दूसरा सन् २७५ में।

इन वर्णनों से स्पष्ट हो गया है कि ईसा से लगभग २ या ३ शताब्दी प्रथम भारतवर्ष में पत्थर का काम बहुत उत्तमता से होता रहा है।

११--स्वर्ण युग

गुप्त वंश का भारतीय राजनीति के क्षितिज पर उदय वंश भारत का स्वर्ण काल था।

गुप्तवंश के उद्दयिक महाराजा चन्द्रगुप्त प्रथम--आन्ध्रों के पतन के बाद मगध की छोटी सी रियासत पर श्री गुप्त राज्य करने लगा। इसका उत्तराधिकारी महाराज गुप्त घटोत्कच था। घटोत्कच के पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम ने वैशाली की लिच्छविराज कन्या से विवाह कर अपना बल बढ़ाया और कन्नौज तक का देश जीतकर गुप्त साम्राज्य की नीव रक्खी। तथा अपनी विरद 'परम वैष्णव' परम भट्टारक, परमेश्वर महाराजा धिराज स्थिर की। इसने फिर से बौद्धों को दलन करके ब्राह्मण धर्म को अंगीकार किया।

सम्राट समुद्र गुप्त--चन्द्रगुप्त प्रथम का पुत्र समुद्रगुप्त था। जिसकी अशोक स्तम्भ पर लिखी प्रशस्ति प्रयाग के किले में है। उससे इस महान् सम्राट् के प्रताप और कीर्ति का बहुत कुछ परिचय मिलता है। इसने बड़े ठाठ बाट से अश्वमेध यज्ञ करके प्राचीन आर्य नरेशों की भाँति सम्राट् की उपाधि धारण की[1]। इस महायज्ञ का यज्ञाश्य पूर्व और दक्षिण पथ में समस्त नरपालों को जीतता और सिन्धु पार शक, यवन, हूणों को हराता गंगा के किनारे लौट आया। इसी प्रबल प्रतापी सम्राट् के समय में भारत के प्राचीन प्रजातन्त्र मालव मौर्य का नाश हो गया और वे गुप्त साम्राज्य में मिल गए। यह संसार का महान् विजेता, संगीत साहित्य का ज्ञाता, राजनीतिज्ञ और कवि भी था। इसने पचास वर्ष भारत पर राज्य किया। वसुवन्धु और हरीषेण जैसे विद्वान् इसकी सभा के रत्न थे।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य--चन्द्रगुप्त द्वितीय का प्रताप मध्य गगन में पहुँचा। उसके सेनापति भट्टारक ने युवराज कुमार गुप्त के साथ एक महती सेना लेकर अवन्ती

१--इस युग में यह दूसरा अश्वमेध था। प्रथम अश्वमेध शुङ्ग वर पति पुष्यमित्र ने किया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के मालव सरदारों की सहायता से गुजरात और काठियावाड़ के शक क्षत्रपों का समूल उच्छेद कर डाला। इनको दबाने के लिए सेनापति भट्टारक प्रबल सेना के साथ वल्लभी में रहते थे, और युवराज कुमारगुप्त साम्राज्य की सेना का एक भाग लेकर दक्षिण के राजाओं से कर उगाहने के लिए उज्जयिनी में रहते थे। गान्धार, काम्बोज, वाल्हीक के शक देव पुत्रों से नियमित कर लेने के लिए छोटे कुमार गोविन्द गुप्त जालन्धर में साम्राज्य के प्रधान सेना बल के साथ रहते थे।

परम वैष्णव महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त प्रायः उज्जयिनी में रहते थे। इनका साम्राज्य अरब सागर तक पहुँच गया था। और सब प्रसिद्ध बन्दरगाह–जिनके द्वारा भारत से पच्छिमी देशों का वाणिज्य होता था, इनके अधिकार में आ गए थे। इससे गुप्त राज्य को अपरिमित आय होती थी। पच्छिमी राज्यों के सम्पर्क में आने से गुप्त साम्राज्य में कला कौशल का भी वाणिज्य की ही भांति विकास हुआ था। सिंहासन बत्तीसी और वैताल पच्चीसी में इस महान् सम्राट् के शौर्य वीर्य प्रताप और तेज का वर्णन लिखा है। इनकी सभा में महामान्य विद्वान् पण्डित थे, जिनमें कालीदास प्रमुख थे। यह सम्राट् सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य के आधे भाग के विकास का श्रेयय धारण करता है। साहित्य कला, विज्ञान आदि की उन्नति इसी सम्राट् के काल में हुई। इसी से इस काल को भारत का स्वर्ण काल कहा गया है। इसी काल में ब्राह्मण धर्म की पुनरावृत्ति हुई, संस्कृत, साहित्य की उन्नति हुई। कालिदास के सिवा इस काल में धन्वन्तरि; आर्यभट्ट, वराहमिहिर और ब्रह्म गुप्त ने विश्व विश्रुत ग्रन्थ आयुर्वेद और ज्योतिष विज्ञान पर लिखे।

कुमार गुप्त महेन्द्रादित्य—२२ वर्ष शासन करने के बाद ई० स० ४२२ के लगभग इस महान् सम्राट् की मृत्यु हुई। और कुमार गुप्त सिंहासन पर बैठे। इन्होंने युवराज स्कन्दगुप्त और राजमहिषी के रहते अनन्ता देवी से विवाह किया, और उन्हें पटरानी पद दे उनकी मूर्ति को मुद्रा में अंकित किया। इससे गुप्त वंश में फूट पड़ गई। और साम्राज्य का बल भंग हो गया। राज्य के स्तम्भ कुमारगुप्त से अप्रसन्न हो गए। राज्य के बड़े २ पद नीच और अयोग्य पुरुषों को सौंप दिए गए। इसी समय दुर्जय हूणों ने वर्फीले दुर्गम पर्वतों को उल्लंघन कर इक्षु नदी पार की।

श्वेत हूण—मध्य एशिया के ठण्डे पहाड़ों पर रहने वाले ये हूण संसार के सबसे भयानक मनुष्य थे। इनका रंग लाल, आँखें सर्प की सी, क्रूर और भयानक थीं। ये रात दिन घोड़े की पीठ पर सवार रहते और अचूक निशाना मारते थे। एक एक दिन में सौ सौ कोस का धावा कर जाते थे। ये टिड्डीदल की भांति पहाड़ों से निकल हरे भरे खेतों, बाग बगीचों, नगर ग्रामों को उजाड़ते, मारते काटते अवाधगति से चले जाते थे। अटलांटिक से पैसेफिक तक इन्होंने सारा भूमण्डल अपने वंश में कर लिया। इनके नामी सरदार अटीला ने रोम नगर को जलाकर खाक स्याह कर दिया था। इसके नाम को सुनकर योरोप थर थर कांपता था, उसका कहना था–जहां मेरे घोड़े की टाप पड़ जायगी वहां कभी घास न जमेगी। और वास्तव में जहां २ हूणों की महा सेना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुज़री वहां २ चिरकाल तक उजाड़ ही बना रहा।

हूण और गुप्त सम्राट्--समस्त भूमण्डल को मनुष्य रहित करने, सम्पूर्ण सभ्य संसार को सर्व नाश करने को दो लाख हूण सवारों का प्रचण्ड दल, इक्षु नदी (आक्सस) पार कर मार्तण्ड (समरकन्द) की ओर चला। इस भयानक सेना के वाल्हीक (वलख) की ओर बढ़ते ही समरकन्द के गुप्त सेनापति पीछे हटने लगे। सांडिनी सवारों ने तावड़ तोड़ विकट धावे मार कर पाटलीपुत्र पहुँचकर मार्तण्ड और पुष्कलावती के अधिकारियों के पत्र दिए। इसके साथ ही शक मण्डलेश्वर परम भट्टारक महाराज कुमार गोविन्द-गुप्त रात दिन की मंजिल मार कर राजधानी में आ पहुंचे। देश भर मेंश्वेत हूणों के आक्रमण का समाचार फैल गया। और मथुरा महोदय, पुष्कलावती, उज्जयिनी, शाकल आदि नगरों के सब काम काज बन्द हो गए। पच्छिम से डरे और भागे हुए मनुष्यों से उत्तरापथ की सड़कें भर गईं। सब लोग जानते थे कि यदि ये हूण भारत के हरे भरे मैदानों में उतर आए तो भारत श्मशान हो जायगा।

हूण संग्राम–इस विपत्ति ने गुप्त दर्बार को संगठित कर दिया। युवराजस्कन्द-गुप्त ने (काम्बोज का युद्ध) महाराज कुमार गोविन्दगुप्त को संग ले, महती सेना सहित महोदय (कन्नौज) में शिविर डाला। यहां भट्टारक कृष्णगुप्त उज्जयिनी से महती चमू लेकर आ मिले। अब स्कन्दगुप्त बिना दम लिए हाथियों को महोदय में छोड़ सिन्धु पार कर काम्बोज पहुँचे; समरकन्द को तहस नहस कर हूण यहाँ तक आ पहुँचे थे। पहिली ही मुठ भेड़ में हूणों के पैर उखड़ गए। और वे भागकर हिन्दुकुश के पार निकल गए। परन्तु उन्होंने लौटकर फिर आक्रमण किया और फिर बारम्बार आक्रमण किए।

हूण सरदार खिंगल--गुप्त सेना का बल क्षीण होने लगा, राजधानी से सेना की सहायता नहीं मिली। इसी समय सम्राट् कुमारगुप्त मर गए। और अनन्ता देवी और उनके साथियों ने सीमान्त पर डटी सेना को कोई सहायता नहीं भेजी। यह अभिसिन्ध पा हूण सरदार खिंगिल–स्कन्दगुप्त के सम्मुख सेना का एक भाग रख–शेष सैन्य को ले पामीर के शौन को पार कर काश्मीर में उतर आया। और सिन्धुनद के किनारे नाके बन्दी कर गुप्त सेना का सम्बन्ध राजधानी से काट दिया।

स्कन्दगुप्त का खड्ग—यह विपत्ति देख स्कन्दगुप्त ने अपने घोड़े की बाग सिन्ध-नद की ओर फेरी। और वीरता पूर्वक हूणों से लड़ते भिड़ते राजधानी पहुंच साम्राज्य मार ग्रहण किया।

इसके बाद बीस वर्ष उन्होंने हूणों से कठिन लोहा लिया। इस धैर्यवान् सम्राट् ने २० वर्ष घोड़े की पीठ खाली नहीं की। इसे पद पद पर हूणों को रक्त देना पड़ा। अन्त में हूणों की शक्ति क्षीण हो गई। अनेक बौद्ध हो गए। इसके बाद ई० स० ४६८ में स्कन्दगुप्त ने शरीर त्याग दिया।

गुप्त साम्राज्य का अवसाद—अब गुप्त राज्य कोष खाली हो चुका था। सैनिक लगातार लड़ते २ थक गए थे। कुमारगुप्त का छोटा पुत्र पुरगुप्त पाटलीपुत्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में सम्राट् बना। इसके बाद नरसिंह गुप्त बालादित्य के विश्वासघाती मन्त्रियों ने हूणों से सन्धि करली। वे तोरमाण की आधीनता में मथुरा तक बढ़ आए। उधर क्रूर मिहिरकुल ने सौराष्ट्र में लूटमार आरम्भ करदी। अब वे उज्जयिनी और पाटलीपुत्र को विध्वंस करने को आगे बढ़े। इन आततायियों के सम्मुख आने को सब भारतीय नरपति एक होकर खड़े हुए। थानेश्वर, कान्यकुब्ज, त्रिपुरी, दक्षिण के राजाओं ने परामर्श कर मन्दसौर के मालव-सरदार यशोधर्मन को—जिसने स्कन्दगुप्त के झण्डे के नीचे हूण युद्ध में शौर्य प्रकट किया था—सेनापति बनाया। यशोधर्मन ने सुगठित सेना संगठित कर हूणों पर, जो अजमेर के निकट छावनी डाले पड़े थे, आक्रमण किया। इस समय सम्राट् नरसिंहगुप्त बालादित्य हाथियों की भयङ्कर सेना ले महोदय में पड़े थे।

यशोधर्मन और कोलूर संग्राम—उत्तर की रक्षा का भार नरसिंह गुप्त के ऊपर छोड़ तथा प्राचीन मालव युद्ध प्रणाली का उल्लंघन कर, हाथी और पैदल उज्जयिनी में छोड़ केवल चुने हुए अश्वारोहियों को ले यशोधर्मन ने हूणों पर आक्रमण किया। और उनके उन दलों को—जो देश को आग और तलवार को भेट कर रहे थे, काटना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने उनका रसद और सब सामान लूट लिया। तथा उन्हें मरुभूमि की ओर हटने को विवश किया। हूण सेना सिमट कर मरुभूमि पार कर दक्षिण पञ्जाब में एकत्र हो गई। वहाँ हूण राज मिहिरकुल काश्मीर से अपनी समस्त सेना और नामी सरदारों के साथ आ मिला। उसने १ लाख सैन्य के साथ लूनी नदी के तीर पर डेरा डाला।

हूणों का पराभव—अजमेर में पड़ाव डाल महाराज यशोधर्मन विष्णु वर्धन ने चतुर दूतों को मरु सरदारों के पास भेज सुदृढ़ ऊंटों की सैन्य सग्रह कर ली। उस पर जल और सामान लाद वह मरुभूमि पार कर हूणों के सामने जा पहुँचा। भयानक युद्ध हुआ। अन्त में ५ हजार ऊंटों पर जमे हुए सैनिकों ने साहस पूर्वक धसारा किया। जिस से हूण सेना भाग खड़ी हुई। परास्त हूण पञ्जाब में भी पैर न जमा सके। वहां नरसिंह गुप्त ने उन्हें करारी मार दी। समूची हूण सेना तलवार के घाट उतार दी गई। भग्न हृदय मिहिरकुल काश्मीर पहुंचा, और बौद्ध होकर कष्ट से दिन व्यतीत करने लगा। अन्य बचे हुए हूण भी बौद्ध होकर भारतीयों में मिल गए।

इस युद्ध के ५०० वर्ष बाद तक किसी विदेशी ने भारत की ओर देखने का साहस नहीं किया।

मिहिरकुल का अग्नि प्रवेश—महाक्रूर मिहिरकुल ने सत्तर वर्ष राज्य किया, उसका अन्त समय दुःख से बीता। नरसिंह गुप्त ने उसे पकड़ा था[1]। अन्त में अग्नि प्रवेश कर उसने शरीर नाश किया।

१—सवर्ष सप्तति भुक्त्वः भुवं भूलोक भैरवः।
भूरि रोगार्पितवपुः प्राविशज्जातवेदसम्॥ (राज तरंगिणी)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यशोधर्मन विष्णुवर्धन--यशोधर्मन विष्णुवर्धन का प्रताप हूण विजेय से बहुत बढ़ा। क्रूर मिहिरकुल ने उसके चरणों में सिर रखकर क्षमा प्राप्त की[1]।

इस वीर नेता के सम्मुख सब छोटे बड़े राजाओं ने सिर झुकाया। और काश्मीर से आसाम तक और हिमालय से कावेरी तक सम्पूर्ण राजाओं ने उसे एक स्वर से महाराजाधिराज विष्णुवर्धन और विक्रमादित्य की उपाधि देकर अपना सम्राट् स्वीकार किया।

इसी प्रतापी राजा की कन्या यशोवती के गर्भ से— ५० वर्ष बाद कीर्तिमान् सम्राट् हर्ष का जन्म हुआ। जिसने पचास वर्ष भारत पर एक क्षत्र शासन किया।

स्कन्दगुप्त के बाद—स्कन्दगुप्त के बाद उनके पुत्र पुरगुप्त सम्राट् हुए। उन के उत्तराधिकारी बालादित्य प्रथम थे। ये बौद्ध हो गए[2]। पुरु गुप्त प्रसिद्ध बौद्धभिक्षु वसुवन्धु का मित्र था। उसने अपने पुत्र और रानी को वसुवन्धु से बौद्ध तत्त्व ज्ञान की शिक्षा दिलाई थी। बाद में राजा होने पर उसने वसुवन्धु को अपने पास बुला लिया था। तथा राज-काज में सहायता लिया करता था। ३६ वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हुई। इनके बाद कुमारगुप्त द्वितीय और फिर बुध गुप्त हुए। इसके बाद ही गुप्त साम्राज्य भंग हुआ[3]। बुध गुप्त (प्रतापादित्य) का समय ४७६ से ५०० ई० तक है[4]। इनके बाद इनके पुत्र तथागत गुप्त और उनके पुत्र भानुगुप्त दूसरे बालादित्य के नाम से मागध सम्राट् रहे।

ई० ५०० से ५१० के भीतर गुप्त कुल में गौड़ गुप्त का दूसरा शासक घराना स्थापित हुआ। जो हिन्दु था। इस वंश के अन्तिम सम्राट् तृतीय कुमारगुप्त ने ईशानवर्मन से हार कर अग्नि प्रवेश किया। ईशानवर्मन ५५४ ई० तक भारत के सम्राट् रहे।

कृष्णगुप्त का वंश—कृष्णगुप्त तथागत गुप्त के पिता भट्ट कुमारगुप्त द्वितीय के कुटुम्बी थे। इन्हीं के वंश में ईशानवर्मन हुए। इनके पुत्र शर्ववर्मन थे[5]। इनके पुत्र अनन्तिवर्मन का साम्राज्य ई० स० ६०० तक रहा।

इनके पीछे ग्रहवर्मन सम्राट् हुए; इनसे यशोधर्मन की पुत्री के पुत्र हर्षवर्धन की बहिन राज्यश्री का विवाह हुआ। इन्हें शत्रुओं ने कन्नौज पर आक्रमण करके

१—चूड़ा पुष्पोपहारै मिहिर कुल नृपेणार्चितं पादयुग्मम्।

(मन्दसौर का शिलालेख)

२—नालन्द से प्राप्त शिलालेख।

३—मंजु श्री मूलकल्प।

४—दीनाजपुर से प्राप्त ताम्रलेख।

५—इनके नाम का सिक्का मिला है, जो ई०स० ५५४ का है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार डाला। तब हर्षवर्धन ने अपनी बहिन को गद्दी पर बैठाया। और उसके ना से स्वयं राज्य किया। ई० स० ६०६ से ६४७ तक हर्षवर्धन उत्तरी भारत के सम्राट् रहे।

हर्ष का साम्राज्य टूटने पर फिर एक बार गुप्तवंश प्रबल हुआ।

यहां हम कृष्णगुप्त का वंश-वृक्ष देते हैं—

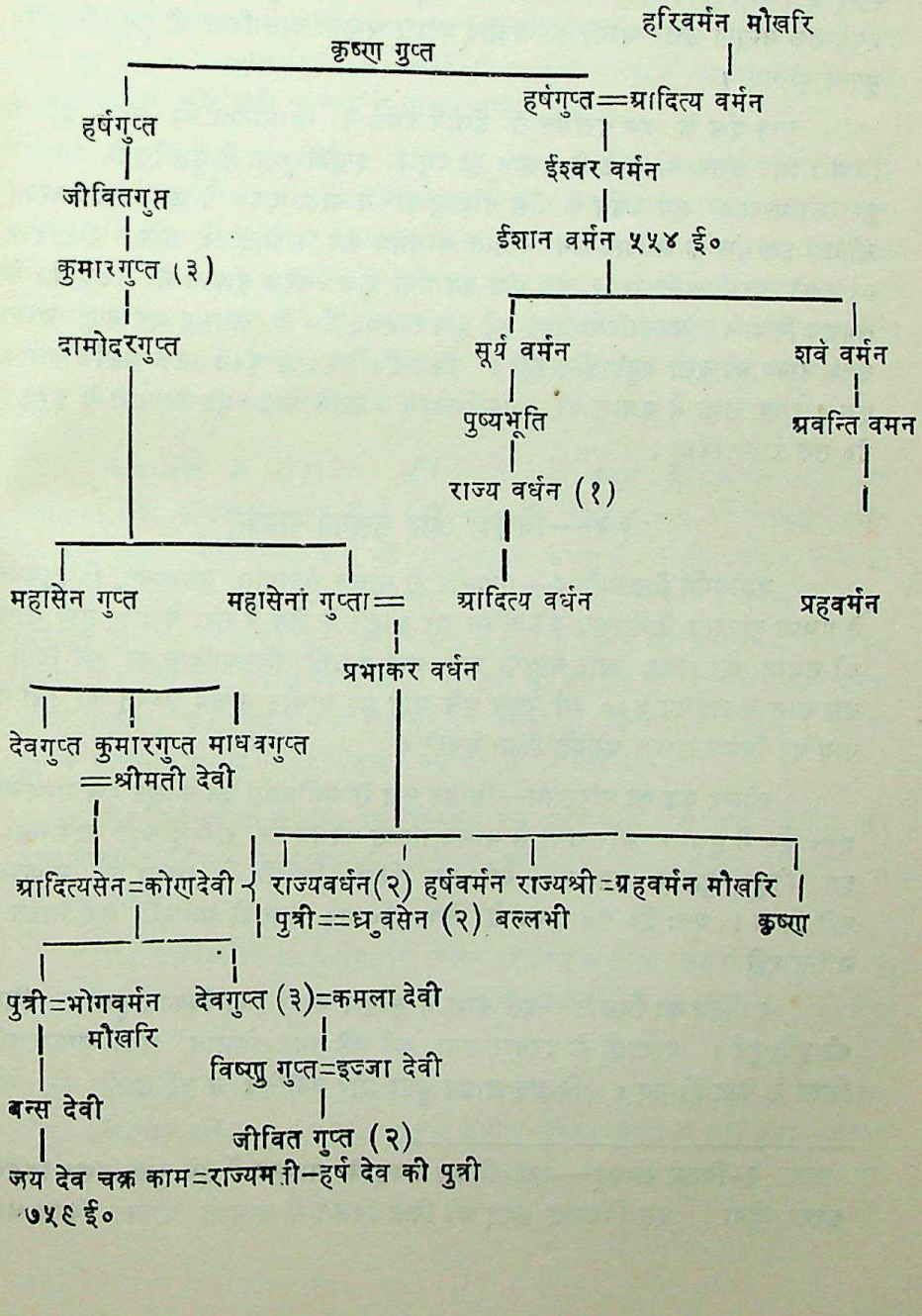

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तवंश का पराभव—हूण राज तुरमाण ने जब ५१० के लगभग मालवा पर अभियान किया, तो बालादित्य मगध और मालव छोड़ बङ्गाल में भाग गए। तोरमाण ने मगध और बनारस तक का देश अधिकृत कर लिया— और बालादित्य के पुत्र वज्रगुप्त को प्रकटादित्य की उपाधि दे अपने आधीन मगध का राजा बना दिया। परन्तु इसी साल तुरमाण बनारस में मर गया, तो उसका पुत्र मिहिर कुल ५११ से ५२६ तक सम्पूर्ण उत्तर भारत का सम्राट् रहा। अन्ततः बालादित्य भी हूणों के करद भूपाल हो गए।

गुप्त वंश के इस पराभव से ईशान वर्मन ने स्वाधीनता का प्रयास प्रारम्भ किया। और उत्तर भारत के वे सम्राट् हो गए। इन्होंने हूणों से युद्ध किया, दामोदर गुप्त को मारा। हर्ष वर्धन के पीछे गौड़ गुप्तों ने प्रायः ६६० से ७३० तक राज्य भोगा। इस वंश के आदित्य सेन ने तीन अश्वमेध कर सम्राट् पद पाया, और चोल नरेश को पराजित किया। इस वंश का अन्त पाल नरेश गोपाल ने ७७२ ई० के लगभग किया। प्रकटादित्य बहुत बूढ़े होकर ५८७ ई० के लगभग मर गए। परन्तु उनके राज्य की दशा बहुत हीन रही। फिर ई० ५९० से ६०७ तक शशांक नामक एक ब्राह्मण राजा ने बंगाल पर राज्य किया। उसके बाद शूद्र राजाओं ने ११९५ ई० तक राज्य किया।

१२—विक्रम और उसका सम्वत्

यशोधर्मन विक्रमादित्य—मन्दसौर के मालव सेनापति यशोधर्मन, विष्णुवर्धन ने प्रचण्ड हूणराज मिहिरकुल को दलित कर कोलूर के क्षेत्र में सदा के लिए हूण शक्ति को समाप्त कर दिया, और मालव जन गण ने उन्हें विक्रमादित्य का पद दिया। उस काल से लगभग ५०० वर्ष प्रथम चले आते हुए प्राचीन मालव सम्वत् को उसी के नाम पर विक्रम सम्वत् घोषित किया गया[1]।

कोलूर युद्ध का परिणाम—मिहिर कुल से यशोधर्मन का कोलूर युद्ध सम्भवतः ५२० ई० में हुआ। और तभी से मालव सम्वत् को विक्रम सम्वत् कहा जाने लगा। इस कोलूर युद्ध के बाद २०० वर्ष तक किसी विदेशी ने भारत पर आक्रमण नहीं किया। अतः ई० स० ५२० से लेकर ई० स० सातवीं शताब्दी तक भारत में शान्ति रही।

साहित्य का विकास—इस काल में संस्कृत काव्य का विकास हुआ। शिल्प की वृद्धि हुई। राजाओं के दरबार तथा बड़े बड़े नगर, विलास, धन, व्यापार और शिल्प के केन्द्र हो गए। विज्ञान जाग्रत हुआ और ज्योतिष ने नई उन्नति की; और

१—**विक्रम सम्वत्**—यहां विक्रम संवत् के सम्बन्ध में हमें कुछ विशद विवेचन करना पड़ेगा। इस विख्यात संवत् को किस विक्रम के नाम से घोषित किया जाय,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

धार्मिक कट्टरता ने हिन्दुओं को अच्छी तरह जकड़ लिया। हिन्दु और बौद्ध परस्पर मिल गए। गुप्त वंशी राजाओं की धर्मोदारता के भावों ने इस दिशा में बड़ा काम किया।

इस विषय में अभी तक ऐतिहासिक जन सन्देह में हैं। बहुत समय तक विद्वान् यह समझते रहे कि यह विक्रमादित्य ई० पू० ५६ में हुआ। जैसा कि संवत् के शब्द से जान पड़ता है। परन्तु अब यह धारणा बदल गई है, और विद्वानों का मत यह है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय को शकों को पराजित करने के कारण शकारि की उपाधि मिली और उसी के नाम से विक्रम सम्वत् चला।

हम देखते हैं कि चन्द्रगुप्त द्वितीय का काल ई० स० ४०१ से ४१४ तक के लगभग है (मथुरा में प्राप्त शिलालेख। सांची का शिलालेख)। अतः यह चन्द्रगुप्त द्वितीय जिसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी, विक्रम संवत् का जन्मदाता नहीं है। इस चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सौराष्ट्र के शक क्षत्रप को जय किया था, जो दक्षिण भारत का सब से बड़ा राजा था। और जिसे समुद्रगुप्त ने स्वतन्त्र छोड़ दिया था। इसमें सन्देह नहीं कि यह चन्द्रगुप्त द्वितीय की महान् विजय थी। और इसी से उसे विक्रम की उपाधि मिली थी।

अमरकोष के टीकाकार क्षीर स्वामी का कहना है कि—विक्रमादित्य-साहसांग और शकान्तक एक ही हैं। (अमरकोष टीका २।८।२) इसका समर्थन महेश्वर अपने विश्वप्रकाश कोष की भूमिका में करता है। (विश्वप्रकाश कोष की भूमिका, श्लोक १५।१६।) राजशेखर भी समर्थन करता है। (काव्य मीमांसा, अध्याय १०) भोज सरस्वती कण्ठाभरण में इसी साहसांग को संस्कृत का प्रचारक कहता है। जैन ग्रन्थ प्रबन्ध चिन्तामणि भी इसी का समर्थक है। (प्रबन्ध चिन्तामणि प्रथम प्रबन्ध) इसी साहसांग के संवत्सर का वर्णन ही शिलालेखों में है। (महीवा दुर्ग से प्राप्त शिलालेख। रोहिताश्व गढ़ का शिला लेख।)

इन उदाहरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि चन्द्रगुप्त द्वितीय का नाम साहसांक और विक्रमादित्य था। तथा उसके नाम का साहसांक नाम से संवत् भी प्रचलित था।

अब अलबरूनी के वर्णन पर ध्यान दीजिए। वह कहता है कि पूर्व से विक्रमादित्य ने आकर मुल्तान और लोनी दुर्ग के मध्यवर्ती करूर प्रदेश में शकों को पराजित किया।

परन्तु हम अच्छी तरह जानते हैं कि यह मुल्तान और लूनी दुर्ग के मध्यवर्ती करूर प्रदेश का प्रसिद्ध युद्ध शक और गुप्त वंशीय विक्रमादित्य में नहीं हुआ, प्रत्युत यशोधर्मन और हूणाधिप मिहिर कुल में हुआ था। तथ यह युद्ध एक महान् युग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिवर्तनकारी घटना थी। इससे दुर्दान्त हूणों का पूर्ण पराभव हो गया था और फिर ५०० वर्षों तक कोई विदेशी भारत पर नहीं आया।

हम यह भी जानते हैं कि इस विजेता को मालव गण ने विक्रमादित्य की उपाधि दी थी, और यह हिन्दु धर्म का रक्षक होने के नाते विष्णुवर्धन उपाधि का भी अधिष्ठाता हुआ था। अतः इसका नाम यशोधर्मन विष्णुवर्धन विक्रमादित्य था।

मालवगण के सम्बन्ध में डाक्टर भण्डारकर और डाक्टर टामस इस बात को एक मत से स्वीकार करते हैं कि उन्होंने अपने गणराज्य की स्थापना के समय मालव सम्वत् चलाया था। (Ibid Antiquary 1913 P. 199, J. R. A. S. 1914 PP. 413, 795, 1010, Ileid 1915–PP. 138, 502) मालव गण का राजनीतिक महत्त्व और स्वाधीन राज्य ईसवी चौथी शताब्दी तक बना रहा, अन्त में समुद्रगुप्त ने उन्हें अपने साम्राज्य में मिला लिया था।

मन्दसौर में श्री फ्लीट ने जो शिलालेख पाया था, उसमें भी मालवगण सम्वत् की चर्चा है। इसमें कुमारगुप्त का उल्लेख है और मालव सम्वत् ४९३ लिखा है। कुमारगुप्त का काल ई० ४१५ से ४४९ हैं। इस प्रकार ४९३–५७ = ४३६ ई० कुमारगुप्त का ठीक काल बनता है।

यही मालव सम्वत् आगे चल कर विक्रम सम्वत् प्रसिद्ध होता है। अब प्रश्न यह है कि किस विक्रम के नाम पर? चन्द्र गुप्त द्वितीय भी विक्रमादित्य है। परन्तु उसका काल ४१४ ई० है। उस समय से आगे तक––कुमारगुप्त के काल में भी यह सम्वत् विक्रम नाम से नहीं––मालव सम्वत् के नाम से गिना गया है, यद्यपि मालवगण गुप्त राज्य के अन्तर्गत हो चुके थे। इसके सिवा गुप्तों का एक पृथक् सम्वत् भी था। फिर चन्द्रगुप्त द्वितीय ने भी साहसाङ्क नाम से एक सम्बत् की स्थापना की थी।

यशोधर्मन—यशोधर्मन की वंश परम्परा के सम्बन्ध में सब बातें स्पष्ट नहीं हैं। परन्तु इस पुरुष ने स्कन्दगुप्त के झण्डे के नीचे हूण युद्ध में पराक्रम दिखा कर नाम कमाया था। और अवश्य ही यह मालवगण का ही प्रतिनिधि पुरुष था। मालव सैन्य इसके साथ थी। हूण मिहिरकुल पर अभियान के लिये उज्जयिनी में इसी के झण्डे के नीचे उत्तर और दक्षिण के समस्त नरपति और सरदार एकत्र हुए थे। इसी ने गुप्त साम्राज्य के बिखरे हुए बल को एकत्र किया था। थानेश्वर, कान्यकुब्ज और त्रिपुरी के राजाओं ने स्वेच्छा से उसकी सरदारी स्वीकार की थी। फिर इसी प्रबल प्रतापी सरदार ने कोलूर युद्ध में दुर्दान्त हूण अधिपति मिहिर कुल को सदा के लिये परास्त किया था। इसी से इसे मालव जन ने विक्रमादित्य की उपाधि दी और मालव सम्वत् को उसी के नाम से घोषित किया। अब हमें इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि विक्रम सम्वत् का प्रवर्तक यही मालव सरदार विष्णुवर्धन यशोधर्मन विक्रमादित्य है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्तकाल पर एक दृष्टि—गुप्तवंश के ६ राजाओं ने ई०स० ३०० से ४६० तक लगभग १६० वर्ष राज्य किया। इन में समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमारगुप्त प्रतापी पुरुष हुए। गुप्तकाल भारत का सर्वाधिक सम्पन्न काल रहा, और गुप्त सम्राट् अपने काल में पृथ्वी के सब से बड़े सम्राट् रहे। इस युग की सांस्कृतिक अवस्था तथा राजनीतिक और सामाजिक अवस्था सर्वोत्तम रही। इतिहासकार इसे स्वर्ण युग कहते हैं। वे अपने राज्य में उच्च शासन व्यवस्था कायम रखने में सफल हुए। उन्होंने करद राज्यों की परिपाटी डाली। इससे देश शान्त, सुखी और सुव्यवस्थित हो गया। उन्होंने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर जोर दिया। गुप्तचर विभाग को समाप्त कर दिया, प्रवेशाधिकार (पास पोर्ट) प्रथा को उठा दिया। दण्ड व्यवस्था ढीली की। जनता का आध्यात्मिक स्तर ऊँचा किया। मानव जीवन को सुधारने की चेष्टा की। कर बहुत कम कर दिए। जागीर प्रथा नष्ट कर दी। धार्मिक उदारता का व्यवहार

अपने कथन की पुष्टि में हमें तीन बातें और कहनी हैं :—

१—इतनी बड़ी विजय प्राप्त करने पर इस बड़े सरदार को सम्राट् पद पर अभिषिक्त करने की चर्चा उठी। उसे सम्राट् पद पर अभिषिक्त करने में जो बाधाऐं थीं। उनका आभास हमें सिंहासन बत्तीसी की उन पुतलियों की आपत्तियां सुनकर मिलता है जो इस सरदार को सिंहासन आरोहण के लिए रोकतीं थी। यदि वह विक्रमादित्य गुप्तवंशी प्रतापी चन्द्रगुप्त द्वितीय ही होता तो उसका इस प्रकार सिंहासन पर बैठने का प्रश्न ही नहीं उठता था। परन्तु अन्त में सब बाधाओं को पार करके इसने मालव सिंहासन को सुशोभित किया, और महाराजाधिराज पद को प्रदान कर काश्मीर से आसाम तक और हिमालय से कावेरी तक सब छोटे बड़े राजाओं ने इसे (विष्णुवर्धन हिन्दु धर्म रक्षक) और विक्रमादित्य (सूर्य के समान प्रतापी) की पदवी से सम्मानित किया, तथा मालव गण ने इसी के नाम पर अपने जातीय सम्वत् का प्रचलन किया।

२—इस सम्राट् की मृत्यु के बाद उसका पुत्र शिलादित्य प्रथम मालव का राजा रहा। इसका राज्य काल ५५० ई० है। यह उत्तर भारत का प्रतापी राजा था। ह्वेनसांग उसे धर्मात्मा कहता है—ह्वेनसांग और अलबरूनी भी विक्रम के उत्तराधिकारी का नाम शिलादित्य बताता है। इन दोनों ही बातों से हमें अपने सिद्धांत की पुष्टि होती है, शिलादित्य वास्तव में इस यशोधर्मन का पुत्र था न कि चन्द्रगुप्त द्वितीय का। जिसका काल निश्चय रूप से ४१४ ई० है।

३— इसी राजा ने हूणराज मिहिरकुल को परास्त कर अपनी ओर से मातृगुप्त को काश्मीर पर शासन करने भेजा था। जो इस राजा की मृत्यु के उपरान्त राज्य अपने पुत्र प्रवरसेन को देकर लौट आया था। इसी प्रवरसेन ने शिलादित्य पर चढ़ाई की थी, और शिलादित्य को परास्त कर वह प्रसिद्ध सिंहासन हस्तगत किया था। यह शिलादित्य विक्रम का उत्तराधिकारी है। (राज तरंगिणी कल्हण)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया। योग्यतम व्यक्ति को अधिकार दिया। जनता का जीवन शान्त और सुखी हुआ। जीव हत्या, शराब, प्याज, लहसुन और माँस का प्रचार रोका गया। दान-शीलता का महत्त्व बढ़ाया। यात्रियों रोगियों और नागरिकों को सब सुविधाएँ दी गई। साहित्य कला कौशल और संगीत का विकास हुआ।

हिन्दु धर्म का पुनर्जीवन—सबसे बड़ी बात जो गुप्तकाल में हुई, वह हिन्दु धर्म का पुनर्जीवन है। गुप्तवंश से पूर्व जो राजवंश हुए, वे या तो विदेशी थे या बौद्ध आदि। गुप्त वंश से पूर्व २०० वर्ष तक का इतिहास ब्राह्मण धर्म के ह्रास का इतिहास था। गुप्तकाल में इसकी पुनः स्थापना हुई। प्रत्येक राजनैतिक और सामाजिक कार्य कलाप हिन्दु धर्म द्वारा ही नियन्त्रित किए गए। इन सब कारणों से गुप्तकाल पौराणिक धर्म के पुनः स्थापना का युग है। इस युग में जनता के जीवन के प्रत्येक भाग पर सांस्कृतिक संचार हुआ। कला और संस्कृति की दृष्टि से गुप्तवंश से पूर्व राज वंशों में से किसी ने यूनानी भावना को अपनाया किसी ने गान्धार कला को।

पौराणिक धर्म—परन्तु गुप्त राज वंश ने पौराणिक धर्म और संस्कृति को अपनाया। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ करके प्राचीन आर्य कालीन राजाओं की संस्कृति का अनुकरण किया। धर्म-क्षेत्र में वैष्णव धर्म स्वीकार कर पौराणिक धर्म को एक पुष्ट नवीन रूप दिया। इसका सीधा प्रभाव बौद्धों की महायान शाखा पर हुआ, जो कनिष्क की छत्र छाया में नए रूप और पुष्ट रीति पर फैल गई थी। उसका यथेष्ट उच्छेद हो गया। फिर भी गुप्त सम्राटों ने वैष्णव धर्म को राजधर्म नहीं बनाया। राजपद को धर्म भावना से सर्वथा मुक्त रक्खा। सम्राट् जब स्वयं वैष्णव थे—उनके मन्त्री शैव थे, और सेनापति बौद्ध।

कला—कला में भी भारतीयकरण हुआ। ग्वालियर के निकट पथारी स्थान में एक मूर्ति मिली है, जो कृष्ण जन्म की है, यह भारतीय कला का उत्कृष्ट नमूना है। इलाहाबाद जिले के कौशाली गांव में शिव पार्वती की पत्थर की मूर्ति तत्कालीन मूर्ति कला का एक श्रेष्ठ उदाहरण है। इसी प्रकार गुप्त कालीन स्थपत्य और मूर्ति कला के जो अवशेष मिले हैं। अपनी विशेषता प्रकट करते हैं। मन्दिर निर्माण कला की जो स्थापना गुप्तकाल में हुई है। उसमें आज तक कोई संशोधन नहीं किया गया है। इस काल की मूर्तियों को देखकर हम कह सकते हैं—कि वे कुशन वंशीय विदेशी प्रभाव से बिल्कुल मुक्त है। अजन्ता गुफाओं की चित्र कला तथा मूर्ति कला वास्तव में गुप्त काल ही की कला के नमूने हैं। दिल्ली महरोली लोह स्तम्भ गुप्त कालीन धातु ज्ञान का एक उदाहरण है। ह्वान साँग ने एक ७० फीट ऊँची बुद्ध मूर्ति देखी थी।

साहित्य का निर्माण—ब्राह्मण धर्म की पुनरावृत्ति से सस्कृत कवियों का जो विकास हुआ उसने भारतीय सस्कृति में एक गहरी क्रान्ति उत्पन्न कर दी। संस्कृत अब मृत भाषा हो चुकी थी, और प्राकृत पाली का बोल बाला था। इस काल ही में संस्कृत काव्य और संस्कृत पुराणों की रचना हुई। स्मृतियां भी बनीं। इस प्रकार गुप्तकाल भारतीय संस्कृति के विकास का काल है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हूणों का पराभव और हिन्दुओं पर इसकी प्रति क्रिया—हूणों का भी प्रभाव भारतीय संस्कृति पर पड़ा। उनकी असह्य नृशंसता सब को असह्य हो गई। थोड़े ही काल में मध्य एशिया में हूणों के विरुद्ध एक लहर सी उत्पन्न हुई। ईरानी और तुर्क सेनाओं ने संगठित हो कर उनकी शक्ति को कुचल दिया। मध्य एशिया में उन की शक्ति नाश होने से भारत में रहने वाले हूणों को अब अपनी जन्म भूमि से प्राप्त होने वाली सहायता बन्द हो गई। यद्यपि यशोधर्मन विक्रमादित्य ने मिहिरकुल को परास्त कर सदा के लिए उन की कमर तोड़ दी थी। पीछे प्रभाकर वर्धन ने तो उनके साम्राज्य को छिन्न भिन्न ही कर दिया। फिर भी निरन्तर एक सौ वर्ष तक हूणों के निरन्तर आक्रमणों से गुप्त साम्राज्य की जड़ें खोखली हो गईं थीं। और उसकी पूर्ति के लिए कोई केन्द्रीय शक्ति नहीं उदय हुई थी, अतः समस्त उत्तरी पच्छिमी भारत छोटी छोटी रियासतों में विभक्त हो गया। जिन में पारस्परिक ईर्षा वैमनस्य, आदि के दोष प्रबल हो गए। फलतः हिन्दुओं में नैतिक पतन का बीज उगा।

हूणों के आगमन से हिन्दुओं की राज नैतिक विचार धारा की शृंखला भी भंग हुई, और उसके सब प्रजातन्त्र समाप्त हो गए। जन सभा और राज्य समिति की शक्तियां दिन पर दिन क्षीण होती गईं। तथा हिन्दु राजाओं में स्वेच्छा चारिता और निरंकुशता का प्रादुर्भाव हुआ। जनता को ठुकराना प्रारम्भ हुआ।

राजपूतों की उत्पत्ति—हूणों ने अपना साम्राज्य भँग होने पर जहाँ तहाँ दुर्ग बना लिए और निकटवर्ती किसी भी प्रभावशाली राज्य की आधीनता स्वीकार कर रहते रहे। उन्होंने भारतीय हिन्दुओं से विवाह सम्बन्ध भी स्थापित कर लिए और वे हिन्दुओं में मिल जुल गए। उन्हीं की सन्तति में से राजपूतों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार वर्तमान राजपूत शब्द भारतीय इतिहास में प्रकट हुआ।

परन्तु उच्च कुल के हिन्दुओं ने अपने रक्त की पवित्रता को बचाने के लिए हूणों के इस रक्त मिश्रण का विरोध किया। और सवर्णीय विवाहों की कड़ी व्यवस्था करली। इसका परिणाम यह हुआ कि जातीय बन्धन अति कठोर हो गए, और वे ही आगे चल कर हिन्दुओं के पतन के कारण बने। परन्तु हूण रक्त के मिश्रण का एक प्रभाव यह अवश्य हुआ—कि उनके संसर्ग से हिन्दुओं की जो राजपूत जाति खड़ी हुई—वह दुर्दम्य युद्ध प्रिय जाति बनी, और उसका युद्ध इतिहास आगे चलकर विश्व के वीरों के इतिहास में अप्रतिम रहा।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छठा अध्याय

धर्म साहित्य

१—स्मृतियां

मनुस्मृति—स्मृति ग्रन्थों का निर्माण शुङ्ग काल से आरम्भ हुआ। सब से प्रथम मनुस्मृति का निर्माण हुआ। हम पीछे बता चुके हैं कि उस काल में एक मानव सम्प्रदाय था जो विचार सम्प्रदाय था। मनुस्मृति उसी सम्प्रदाय के आचारों पर आधारित है। मानव धर्म सूत्र—जो दार्शनिक काल में सूत्र रूप में था—वह तब और इस काल में भी बहुत आदर की दृष्टि से देखा जाता था। परन्तु अब, बौद्धों; विदेशियों और प्राचीन आर्यों की मिली जुली जो एक समन्वय मूलक नई जाति बन गई थी, उसने मनुस्मृति की विचारधारा को भी बदल दिया।

वास्तव में मनुस्मृति दार्शनिक काल और बौद्ध काल की मध्यवर्ती कड़ी है। तथा इसमें शुङ्ग सातवाहनों के राज्यकाल की समाज व्यवस्था का सीधा सच्चा चित्रण है। परन्तु प्राचीन काल में जो धर्म सूत्र किसी न किसी वैदिक शाखा से सम्बन्धित रहते थे—उस प्रकार मनुस्मृति किसी भी वैदिक शाखा से सम्बन्धित नहीं है। उसे हम न आर्यों की विचारधारा के अनुकूल पाते हैं, न उत्तर कालीन पौराणिक विचारधारा के। वास्तव में वह उस काल की समाज व्वयस्था पर प्रकाश डालती है—जब बौद्ध सम्पर्क से वैदिक आर्यों का धर्म छिन्न-भिन्न हो चुका था। और कुछ बदलती हुई परिस्थितियों में फिर से उसकी स्थापना का प्रयत्न किया जा रहा था—जो तत्काल ही विदेशी आक्रान्ताओं के भारतीय करण से कुछ नया ही रूप धारण कर गया।

सब स्मृतियों में मनु का स्थान सर्वोच्च है। यह स्मृति पहिले सूत्र रूप में थी और मालूम होता है कि दार्शनिक काल में उसका बहुत मान था—दूसरे सूत्रकार भी उसे बड़े सत्कार की दृष्टि से देखते थे। परन्तु वर्तमान मनुस्मृति बौद्ध काल में छन्दोबद्ध लिखी गई है। उससे बौद्ध काल के चाल ढाल और रीतियों का ही पता लगता है। इस स्मृति में एक खास मार्के की बात यह है कि प्राचीन सूत्र किसी न किसी वैदिक शाखा से सम्बन्ध रखते थे—परन्तु मनु अपना सम्बन्ध किसी शाखा व सम्प्रदाय से नहीं रखता। उसने तत्कालीन आर्यों के लिए स्वतन्त्र नियम बनाए हैं। यही नहीं यह स्मृति पौराणिक काल के धर्म शास्त्रों से भी मतभेद रखती है। क्योंकि इसमें पौराणिक त्रिदेव को नहीं माना गया। वह मूर्ति पूजा को पाप समझता है। डाक्टर बुहलर का मत है कि यह स्मृति मसीह के उपरान्त पहिली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
शताब्दी में लिखी गई है। विवाह के सम्बन्ध में मनु के नियम सर्वथा वेद विरुद्ध प्रतीत होते हैं। वेद के मन्त्रों से यह स्पष्ट होता है कि उस काल में विवाह युवा युवतियों के हुआ करते थे—दोनों स्वतन्त्रता से एक दूसरे को वरण करते थे—विवाह के उत्तरदायित्व को समझते, और पति पत्नी भावों का समझते थे—वहां मनुस्मृति विवाह में कन्या का तो कोई अस्तित्व ही नहीं समझता। यद्यपि स्त्रियों की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में कुछ बातें मनु लिखता है—और वह कहता है कि स्त्रियों की पूजा होनी उचित है, परन्तु स्त्रियों की स्वतन्त्रता को वह पसन्द नहीं करता, स्त्रियां सदैव परतन्त्र और पुरुषों के आधीन रहें। यही उसकी इच्छा है। पुरुष स्त्रियों से सम्मान और प्रेम का व्यवहार तो रखे—पर वे उनके शरीर और आत्मा के स्वामी हैं—मनु की यही अभिलाषा अवश्य है।

सृष्टि उत्पत्ति—मनु में प्रारम्भ ही में सृष्टि उत्पत्ति का विषय दिया गया है। मनु कहता है कि उसका उत्पन्न करने वाला परमात्मा भगवान था।[१] उसके मन में इच्छा हुई कि अपने शरीर से अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न करनी चाहिए, तो उसने पहिले जल को उत्पन्न किया फिर उस जल में बीज डाला। तब वह बीज स्वर्ण के सदृश और सूर्य के समान अण्डे के आकार का हो गया, फिर उस अण्डे में ब्रह्मा सम्पूर्ण सृष्टि का अर्थात् जो उत्पन्न चेतन अचेतन है उसका पितामह आपसे आप उत्पन्न हो गया।[२] उस अण्डे में एक वर्ष रह कर और परमात्मा का ध्यान करके उस अण्डे को उसने दो भाग किया।[3] उन दोनों खण्डों में उसने स्वर्ग और पृथ्वी को बनाया। फिर उन दोनों के बीच में आकाश, आठों दिशा, और अचल समुद्र को भी रचा।[४]

फिर वेदों की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार किया है[५]—तब अग्नि वायु सूर्य से क्रम करके ब्रह्मा ने तीनों वेदों का अर्थात् ऋग्; यजुर, साम को यज्ञ सिद्धि के लिए निकाला। फिर जीव जन्तुओं की उत्पत्ति का वर्णन है कि ब्रह्मा ने अपने शरीर को दो भाग करके आधे से पुरुष और आधे से स्त्री बनाई। इसके पीछे उस सामर्थ्य से स्त्री से संगम करके उसने विराट पुरुष को उत्पन्न किया।[६]

हे महर्षि लोगो उस विराट पुरुष ने तप करके जिसको बनाया सो मैं ही हूँ। यह बात आप लोग जानिए और मैं सब का पैदा करने वाला हूं।[७] फिर मैंने प्रजा की उत्पत्ति की इच्छा कर और तपस्या करके पहिले दश बड़े ऋषियों को जो प्रजा पति हैं उत्पन्न किया।[८] उनके नाम ये हैं—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, तुलह; क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु, नारद।[९]

---

१. अध्याय १, श्लोक ८। २ १।९ श्लोक। ३. २२ श्लोक। ४. १३ श्लोक। ५. देखो अध्याय ८, १।२३ श्लोक। ६. अध्याय १, १।३२ श्लोक। ७. ३ श्लोक। ८. ३४ श्लोक। ९. ३४ श्लोक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इन ऋषियों ने सात बड़े तेजस्वी मनु को और देवताओं को और स्वर्गों को और महा प्रतापी बड़े २ ऋषियों को उत्पन्न किया[1]। फिर राक्षस, पिशाच, गधर्व अप्सरा, असुर, नाग, वसुकी आदि सर्प गरुड़ आदि पक्षी और पितरों के समूह को बनाया[2]। इसके पीछे बिजली–बज्र मेघ रोहित और इन्द्र धनुष, उल्का, केतु और नाना प्रकार के तारागण बनाए[3]। किन्नर, बानर, मत्स्य विविध प्रकार के पक्षी पशु, मृग, मनुष्य और द्विदन्त सांपों को बनाया[4]।

इसी प्रकार सारा चराचर सृष्टि का वर्णन है।

आचार–कुछ ऐसे आचारों के वर्णन है जिनका कोई अभिप्राय समझ में नहीं आता और जिनके कारण समाज में मिथ्या विचार फैल गए हैं। पूर्व दिशा की ओर मुख करके भोजन करने से आयुष दक्षिण की ओर यश, पश्चिम की ओर लक्ष्मी, उत्तर की ओर सत्य की वृद्धि होती है[5]। दिन में प्रातः काल सन्ध्या काल में उत्तर मुख होकर और रात्रि में दक्षिण मुख होकर दिशा फिरना[6]।

सिर को बाँधे हुए दक्षिण मुख बैठे हुए, जूता पहिने हुए जो भोजन करते हैं वह भोजन राक्षस को पहुँचता है[7]।

पशु में बिलारी, कुत्ता, सर्प नेडला, मूसा इन सभी में से कोई एक गुरु शिष्य के बीच से निकल जाए तो एक रात्रि दिन अनध्याय करना[8]।

क्षत्रिय से विवाहिता शूद्रा कन्या में क्रूर आचार विहार वाला शूद्र का शरीर वाला उग्र नाम की जाति वाला उत्पन्न होता है[9]। विष और रोग इन दोनों को नाश करने वाली जो वस्तु है उसका योग सब द्रव्य में करना और विष के नाश करने वाले जो रत्न हैं, उनको सर्वकाल में निश्चय से धारण करना[10]। जिस कारण से पुत नामक नरक से पिता का रक्षण करे उसी कारण से पुत्र कहाता है इस बात को ब्रह्मा जी ने कहा[11]।

मांसाहार—मांसाहार का मनुस्मृति में खुला उल्लेख है।

यज्ञ के अर्थ और सेवकों से भोजनार्थ प्रशस्त जो मृग और पक्षी हैं उनको ब्राह्मण मारे, क्योंकि अगस्त्य ऋषि ने पूर्व काल में वैसा किया था[12]। प्रोक्षण नाम संस्कार से संस्कृत जो माँस और यज्ञ में होम का जो शेष मांस है, इन दोनों मांस को भोजन करना और ब्राह्मणों को मांस भोजन की इच्छा जब हो तब यथाविधि से मांस भोजन करना, प्राण नाश में भी मांस भोजन करना[13]। शास्त्रोक्त विधि से सिद्ध जो माँस है उसको जो मनुष्य भक्षण नहीं करता वह परलोक में एहकीस २१

---

१. ३६ श्लोक। २. ३७ श्लोक। ३. ३८ श्लोक। ४. ३९ श्लोक।
५. अ० २ श्लोक ५२। ६. अ० ४ श्लोक ५०। ७. अ० श्लोक ३३८।
८. अ० श्लोक १२६। ९. अ० १० श्लोक ९। १०. अध्याय ७ श्लो० २१८।
११. अ० ९ श्लोक १३८। १२. अ० ५ श्लोक २२। १३. अ० ५ श्लोक २७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जन्म तक पशु योनि में प्राप्त होता है[1]। पशु को जो वृथा मारता है सो परलोक में उतने जन्म तक-जितने रोम पशु के है मारा जाता है[2]। सौ वर्ष तक वर्ष वर्ष में अश्वमेध यज्ञ को जो करता है और जो मास को भक्षण नहीं करता, दोनों का फल समान हैं[3]। जो बहुधा अकेले ही चरते है, सर्प आदि और जो बिना जाने मृग पक्षी है और पांच नख वाले बानर आदि इन सबको भक्षण न करना[4]।

साली, गोह, साही, गेडा, कछुआ, खरहा ये सब पांच नख वाले भक्षण के योग्य हैं। निषिद्ध के बिना ऊट को छोड़कर एक और दांत वाले भक्षण के योग्य है[5]। मछली के मांस से दो माँस तक, हरिण के मांस से ३ मांस तक, मैढ़ा के मांस से ४ महीने तक, और पक्षी के मांस से ५ महीने तक श्राद्ध में ब्राह्मण के खिलाने से पितर तृप्त रहते हैं[6]। बकरे के मांस से ६ महीने, चितले मृग के मांस से ७ महीने, राण मृग के मांस से ८ महीने, मृग के मांस से ९ महीने[7]। सुवर माँस से और भैंसे के मांस से १० महीने तृप्त रहते हैं। खरगोश और कछवे के मांस से ११ महीने पितृ तृप्त रहते हैं[8]।

विवाह—विवाह के सम्बन्ध में मनु कहता है:--

यदि गौ, बकरी, भेड़, द्रव्य और अन्य द्रव्यों से बहुत समृद्ध भी हो—तो भी इन आगे कहे "दोषयुक्त" कुलों की कन्या से विवाह न करे[9]।

वे कुल ये हैं--१-हीन क्रिय "जातकर्मादि रहित" २-पुरुष रहित, ३-वेद पाठ रहित, ४-बहुत बड़े बालों वाली, ५-बवासीर युक्त, ६-क्षय व्याधि से युक्त, ७-मन्दाग्नि, ८-मिर्गी, ९-श्वेतकुष्टी, १०-और गलितकुष्टी। इन दस कुलों को छोड़ दे। ॥ ७ ॥ और कपिल बालों वाली, कठोर बोलने वाली कबरी कन्या बिना बालोंवाली, बहुत बालों वाली, अधिक अग वाली और रोगिणी कन्या से विवाह न करे[10]।

नक्षत्र, वृक्ष नदी, म्लेच्छ, पहाड़, पक्षी, सर्प, शूद्र आदि नामों और भयंकर नामों वाली से भी न करे ॥ ९ ॥ सुन्दर अंग वाली, अच्छे नाम वाली, हंस और गज के सदृश गमन वाली, पतले रोमों वाली और दांतों वाली और कोमल शरीर वाली से विवाह करे[12]।

जिसके भाई न हो, जिसके पिता का पता न लगे, ज्ञानवान् पुरुष "जिसका प्रथम पुत्र अपने नाना को धर्म गोद से देना पड़े उसको "पुत्रिका" कहते हैं" "पुत्रिका" धर्म से डर कर उससे विवाह न करे।

---

१. अ० ५ ३५। २. अ० ५ श्लोक ३८। ३. अ० श्लोक ५३।
४. अ० ५ श्लोक १६। ५. श्लोक १७ ६. ३। २६८।
७. ३। ३६९। ८. ३। ३७०। ९. ॥ ६ ॥
१०. ॥ ८ ॥ अ० ३। ११. ॥ १० ॥ अ० ३। १२. अ० ३ ११।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों को प्रथम विवाह अपने वर्ण की कन्या से करना श्रेष्ठ है और कामाधीन विवाह करे तो, नीच भी श्रेष्ठ है।[१]

शूद्र को शूद्र की कन्या से, और वैश्य को वैश्य की और शूद्र की कन्या से, क्षत्रिय को शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय की कन्या से, और ब्राह्मण को शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण की कन्या से विवाह कर लेना भी बुरा नहीं है।[२] यह बात स्वयं मनु के ही अगले १४, १५, १७, १८ और १९ वें श्लोकों से विरुद्ध है।[३]

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, मोहवश अपने वर्ण से हीन वर्णस्थ स्त्री से विवाह करे तो सन्तान समेत अपने कुल की शूद्रता को प्राप्त करते हैं।[४]

शूद्रा से विवाह करने से पतित होता है, यह अत्रि और उतथ्य के पुत्र का मत है और उस सन्तान के सन्तान होने से पतित हो यह भृगु का वचन है।[५]

शूद्रा की शय्या पर आरोहण करने से ब्राह्मण नीच गति को प्राप्त होता है। और उससे सन्तान उत्पन्न करके तो ब्राह्मणत्व से ही हीन हो जाता है।[६] और जिस ब्राह्मण ने शूद्रा स्त्री के प्रधानत्व से होम, श्राद्ध और अतिथि भोजन कराना चाहा है, उसका अन्न पितृसज्ञक और देवता सज्ञक पुरुष ग्रहण नहीं करते और वह पुरुष स्वर्ग को प्राप्त नहीं होता।[७]

शूद्रा के मुख चुम्बन करने वाले पुरुष की और उसके मुंह की भाप लगने से उस पुरुष की और उससे उत्पन्न सन्तान की शुद्धि नहीं होती।[८]

चारों वर्णों के, परलोक और इस लोक में अच्छे बुरे आठ प्रकार के विवाहों को संक्षेप से सुनो।[९]

ब्राह्म १, दैव २, आर्ष ३, प्राजापत्य ४, आसुर ५, गान्धर्व ६, राक्षस ७ और ८वां पैशाच अति निन्दित है।[१०]

जो विवाह जिस वर्ण को योग्य है, और जो गुण दोष जिसमें है सो तुम से कहता हूं और सन्तान के गुण–दोष भी कहता हूँ।[११]

ब्राह्मण को क्रम से "ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गन्धर्व" छः विवाह धर्म है। वैश्य और शूद्र को भी ये ही विवाह धर्म सम्बन्धी है, परन्तु किसी को भी राक्षस विवाह योग्य नहीं।[१२]

ब्राह्मण को "ब्राह्म, देव, आर्ष प्राजापत्य" पहिले चार विवाह उत्तम हैं।

---

१. अ० ३ श्लोक १२। २. १२। १३ श्लोक। ३. अ० ३ श्लोक। ४. अ० ३ श्लोक १५। ५ अ० ३ श्लोक १६। ६. अ० ३ श्लोक १७। ७. अ० ३ श्लोक १८। ८. अध्याय ३ श्लोक १९। ९ अ० ३ श्लोक २०। १०. अ० ३ श्लोक २१। ११ अ० ३ श्लोक २२। १२. अ० ३ श्लोक २३।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'तुम दोनों साथ धर्म के आचरण करो', कन्यादान के समय वाणी से यह प्रार्थना करके जो सत्कार पूर्वक कन्यादान किया जाता है वह 'प्राजापत्य विवाह है।[1]

वर के माता पिता आदि और कन्या को यथाशक्ति धन देकर जो इच्छापूर्वक कन्यादान दिया जाता है वह 'आसुर' विवाह कहा जाता है।[2]

अपनी इच्छा से कन्या और वर का मिलाप मात्र होना, यह कामियों का मैथुन्य गान्धर्व विवाह' कहना चाहिए।[3]

विनाश करके, हस्तपादादि पर चोट मारके, मकान आदि फोड़के, गाली देती और रोती हुई कन्या को हठ से ले जाना 'राक्षस' विवाह कहाता है।[4]

सोती हुई, नशा पी हुई और बेहोश को, जहाँ मनुष्य न हो सम्भोग प्राप्त होना, वह पाप का मूल विवाहों में अधम आठवां पैशाच' विवाह है।[5]

ब्राह्मणों को जल से ही कन्यादान करना श्रेष्ठ है, और क्षत्रियादि वर्णों को परस्पर की इच्छा मात्र से कन्यादान होता है। जल का नियम नहीं है।[6]

पाणिग्रहण संस्कार अपने वर्ण की स्त्री के साथ कहा है। अपने वर्ण से भिन्न दूसरे वर्ण की स्त्रियों में विवाह कर्म में यह विधि जाननी चाहिए।[7]

स्त्रियों से व्यवहार—स्त्रियों के प्रति मनु के भाव भी सुनिए :—

शय्या, आसन, अलंकार इनके बनवाने का स्वभाव, काम, क्रोध, कठोरता, द्रोहभाव, कुचाल इन सब को स्त्रियों का स्वभाव मनु जी ने सृष्टि के आदि में कहा है इसलिए यत्न से उनकी रक्षा करनी चाहिए।[8]

स्त्री के साथ भोजन न करना और स्त्री भोजन करती हो, छींकती हो; सुख से बैठी हो तो उसको न देखना।[9]

भार्या, पुत्र, दास, शिष्य, सहोदर भाई इनसे अपराध हुआ हो तो रस्सी से और बाँस के फट्टे से इनको पीठना।[10]

मस्तक छोड़के पीठ में मारना इससे विपरीत जो ताड़ना करे तो चोर के दण्ड को पावे।[11]

स्त्री चाहे बाला हो चाहे युवती हो अथवा वृद्धा हो, परन्तु गृह में किसी कार्य को स्वतन्त्रता से न करे।[12]

बाल्यावस्था में पिता के अधीन रहे, युवावस्था में पति के वश में रहे, विधवा

---

१. अ० ३ श्लोक ३०। २. अ० ३ श्लोक ३१। ३. अ० ३ श्लोक ३२।
४. अ० ३ श्लोक ३३। ५. अ० ३ श्लोक ३४। ६. अ० ३ श्लोक ३५।
७. अ० ३ श्लोक ४३। ८. अ० ९ श्लोक १७। ९. अ० ४ श्लोक ४३।
१०. अ० ८ श्लोक २९९। ११. अ० ८ श्लोक ३००। १२. अ० ५ श्लोक १४७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होने पर पुत्रों के आधीन रहे। स्वतन्त्र होकर कभी न रहे।

ऋतु काल में अथवा अनऋतु काल में मन्त्र संस्कार करने वाला पति इस लोक में और परलोक में स्त्रियों को सुख देने वाला है।[२]

शील से रहित पति हो, अथवा दूसरी स्त्री के साथ प्रेम रखता हो, किम्बा गुणों से वर्जित हो—तो भी जो साध्वी स्त्री है; सो नित्य ही देवता की तरह पति की सेवा करें।[३]

स्त्रियों के यज्ञ व्रत उपवास पृथक् २ नहीं हैं। स्त्री केवल पति की सेवा ही से स्वर्ग में पूजित होती है।[४]

रात दिन पुरुष अपनी स्त्रियों को अस्वतन्त्र रक्खे, और विषयों में जो लगी हो उनको अपने में स्थापन करे।[५]

बाल्यावस्था में पिता, युवावस्था में पति, वृद्धावस्था में पुत्र स्त्रियों की रक्षा करते हैं। स्त्री स्वतन्त्र रहने के योग्य नहीं होती है।[६]

ब्रह्मा के सृष्टि समय से स्त्रियों का यह स्वभाव जानकर रक्षा के लिए पुरुष यत्न को करे।[७]

विवाह को छोड़ मन्त्रों से स्त्रियों की क्रिया नहीं है, यह धर्म व्यवस्था से प्राप्त है। शौच और मन्त्र इन दोनों से स्त्रियां रहित हैं। असत्य की तरह अशुभ है, यह शास्त्र की मर्यादा है।[८]

मद्य पीने वाली, शत्रुता करने वाली; व्याधि से युक्त, घात करने वाली, निरन्तर अर्थ का नाश करने, ऐसी स्त्री हो तो दूसरा विवाह करना।[९]

बांझ स्त्री, और वह जिसकी संतति हो होकर मर जाय, और जो कन्या को ही उत्पन्न करने वाली हो, ऐसी स्त्री के ऊपर क्रम से आठवें–दसवें–ग्यारहवें वर्ष में दूसरा विवाह करना, और अप्रिय बोलने वाली स्त्री के ऊपर तो तुरन्त दूसरा विवाह करना।[१०]

जाति और गुण के गर्व से पति की आज्ञा का उल्लङ्घन करने वाली स्त्री को राजा बहुत से मनुष्यों के सन्मुख कुत्तों से तुड़वावे।[११] स्त्री से प्रेम करती बार, विवाह, गौ के भोजन की वस्तु, ईंधन, ब्राह्मण की रक्षा—इनमें झूठ बोलने से पाप नहीं लगता।[१२]

वर्णसंकर—प्राचीन सूत्रकारों की भांति मनु ने भी चारों वर्णों को भिन्न-भिन्न जाति के संसर्ग से वंचित रखने की चेष्टा की है। बड़ी चतुराई से यह व्यवस्था

---

१. अ० ५ श्लोक १४८। २. अ० ५ श्लोक १५३। ३. अ० ५ श्लोक १५४। ४. अ० ५ श्लोक १५५। ५. अ० ९ श्लोक २। ६. अ० ९ श्लोक ३। ७. अ० ९ श्लोक १६। ८. अ० ९ श्लोक १८। ९. अ० ९ श्लोक ८०। १०. अ० ९ श्लोक ८१। ११. अ० ८ श्लोक ३७१। १२. अ० ८ श्लोक ११२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की गई है कि आर्यों के चारों वर्ण अनार्यों तथा इतर वर्णों एवं मिश्रित स्त्रियों से विवाह करके या बिना भी विवाह के सम्बन्ध रख कर उनकी संतान न पिता की जाति या गोत्र की ही हो, न दाय भाग की अधिकारिणी हो। उनकी एक नवीन ही जाति बन जाती है। मनु इन नई जातियों की एक सम्पूर्ण सूची देता है :—

पिता	माता	जाति
ब्राह्मण	वैश्य	अम्बष्ठ
ब्राह्मण	शूद्र	निषाद
क्षत्रिय	शूद्र	उग्र
क्षत्रिय	ब्राह्मण	सूत
वैश्य	ब्राह्मण	वैदेह
वैश्य	क्षत्रिय	मागध
शूद्र	वैश्य	आयोगव
शूद्र	क्षत्रिय	क्षत्री
शूद्र	ब्राह्मण	चाण्डाल
ब्राह्मण	उग्र	अवृत्त
ब्राह्मण	अम्बष्ठ	अंभीर
ब्राह्मण	अयोगव	धिग्वन
निषाद	शूद्र	पुक्कस
शूद्र	निषाद	कुप्कुटक
क्षत्री	उग्र	स्वपाक
वैदेहक	अम्बष्ट	वैण

द्विज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य	स्ववर्ण की पतित स्त्रियों में	व्रात्य
ब्राह्मण–व्रात्य	स्ववर्ण की पतित स्त्रियों में	भ्रिज कन्तक, अवन्त्य, वात धान, पुष्पघ, सखै।
क्षत्री–व्रात्य	स्ववर्ण की पतित स्त्रियों में	झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, नट, करन; सस, द्रविड़।
वैश्य–व्रात्य	,, ,, ,,	सुधन्वन, आचार्य, कारुश, विजन्मन, मैत्र, सात्वत।
दस्यु	अयोगव	सैरिन्ध्र
वैदेह	अयोगव	मैत्रेयक
निषाद	अयोगव	मार्गव; दास, कैवर्त।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निषाद	वैदेह	कारावर
वैदेहिक	कारावर	अन्ध्र
वैदेहिक	निषाद	मेद

यही भिन्न २ जातियाँ आगे चलकर बड़े २ राज्यों की अधिपति हुई हैं। वैदेह, मागध, क्षत्री, निषाद, मल्ल, झल्ल, लिच्छवि, द्रविड़, खस, अन्ध्र आदि जातियों के बड़े-बड़े राज्य और गणतन्त्र थे। मनु इन्हीं मिश्रित जातियों में पौन्ड्रक, उद्र, द्रविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पहलव, चीन, किरात और दरद लोगों को भी सम्मिलित कर देता है—वह उन्हें क्षत्रिय स्वीकार करता है—परन्तु धार्मिक अनुष्ठानों के न करने से पतित हो गए हैं—ऐसा प्रकट करता है।[1] एक मार्के की बात यह है—कि पेशेबन्द जातियां जैसे सुनार, लुहार, छीपा, ठठेरा, कुम्हार, जुलाहा आदि इन मिश्रित जातियों में सम्मिलत नहीं हैं। इस काल तक मालूम होता है कि ये पेशेबन्द जातियाँ आर्य जाति में ही मानी जाती थीं, और सम्भवतः वैश्यों में गिनी जाती थीं।

यह सर्वथा स्वाभाविक ही था—कि ज्यों-ज्यों पूर्व और दक्षिण की ओर आर्य बढ़ते गए और वहां की आदिम जातियों को विजित करते गए, और वहीं अपने राज्य कायम करते गए—वहां के लोगों को आर्य सभ्यता और धर्म में मिलाते गए—त्यों-त्यों उनकी स्त्रियों से विवाह भी करते गए। परन्तु इस अनार्य मिश्रण को उन्होंने अपनी रक्त परम्परा से भी और दाय भाग की परम्परा से भी दूर ही रखा। शुद्ध आर्य अलग रहे, और ये मिश्रित जातियां अलग रहीं। शुद्ध आर्य उन्हीं चार वर्णों में विभाजित रहे। जैसा कि हमने कहा—इन्हीं मिश्रित जातियों में से बहुतों ने भारत और भारत के बाहर बड़े-बड़े राज्य भी स्थापित किए। जैसे विदेहों ने मिथिला में, लिच्छवियों ने वैशाली में, मागधों ने पाटलीपुत्र और राजगृह में, मल्लों ने कौसल में, द्रविड़ों ने दक्षिण प्रदेशों में, आन्ध्रों ने मगध और गुजरात में। आभीर, गर्धभिल्ल, शक, यवन, तुषार, मुण्ड आदि जातियों ने भी राज्य किए। भारत के उत्तरकालीन इतिहास में हमें कुछ और वंश भी मिलते हैं। जिन्होंने विस्तृत भारत पर भिन्न २ समय पर राज्य किए। सम्भव है ये भी उसी मिश्रित जातियों की सूची में थे—जिनके वर्णन मनु ने किए थे। उसके बाद इनकी वृद्धि हुई। कुछ जातियों ने भारत के बाहर भी अपने राज्यों की स्थापना की। जैसे पौन्ड्रकों ने उत्तरी बंगाल में, उद्र लोगों ने उत्पल में, काम्बोजों ने काबुल में, यवनों ने बैक्ट्रिया में, पारदों और पल्लवों ने फारिस में, चीनों ने चीन में, किरातों ने पर्वतों में, आदि आदि।

इन सब मिश्रित जातियों का अकस्मात् ही उत्थान और शुद्ध आर्यों का

---

१. १० । ४० । ४४ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पराभव देश विदेश में होना भी काफी आश्चर्य की बात है। जिन विजयी आर्यों ने अपनी इन मिश्रित सन्तानों को अपने कुल और सम्पत्ति में भागीदार बनाने से भी इन्कार कर दिया था—हम देखते हैं वे आर्य प्रायः सर्वत्र ही प्रजा के रूप में रह गए थे और ये ही मिश्रित जाति एक युग तक समस्त संसार पर शासन करने लगी।

नियोग नियोग का अर्थ है पुत्र की प्राप्ति के लिए अस्थाई तौर पर किसी पुरुष से कोई सधवा या विधवा स्त्री सहवास करे। और वह पुत्र मृत या जीवित विवाहित पति का ही माना जाय। मालूम होता है कि प्राचीन काल में अन्य पुरानी जातियों में भी मृत या अशक्त पुरुष के लिए पुत्र प्राप्ति की यह रीति प्रचलित थी। बाइबिल से पता लगता है कि यहूदी लोगों में भी यह चाल थी। उस काल में जब अधिक मनुष्यों की आवश्यकता थी, पुत्रों का बहुत महत्त्व था। क्योंकि समाज का बल मनुष्यों की संख्या पर अवलम्बित था।

नियोग के लिए बहुत करके अपने कुटुम्बी पुरुष के ही पास जाने की आज्ञा थी। वह भी पुत्र प्राप्ति तक। यह आज्ञा तभी मिल सकती थी, जब पति किसी कारण से असमर्थ हो गया हो, या मर गया हो। यह नियोग कुटुम्बी पुरुष से, पति के भाई से, अथवा किसी प्रतिष्ठित ब्राह्मण से कराया जाता था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अत्यन्त प्राचीन काल में ही नियोग की प्रथा आर्यों में चल गई थी। साथ ही इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि यह प्रथा अति प्राचीन काल ही में बन्द भी हो गई थी। जैसे २ समाज का विस्तार होता गया और विभिन्न देशों में मनुष्य संख्या काफी होती गई। वैसे ही वैसे वैवाहिक उच्च कल्पनाएँ फैलती गईं—और नियोग की यह प्रथा उन्हें हीन सी प्रतीत होने लगी। क्योंकि इसमें सिर्फ पुत्र प्राप्ति और मनुष्य की संख्या बढ़ाने ही के लिए आचार को बहुत भारी जोखिम में डाला जाता था। बाद में जब आर्य स्त्रियों में पातिव्रत का महात्म्य बहुत बढ़ा चढ़ा कर प्रचार कर दिया गया, तब उस गौरव के कारण यह प्राचीन नियोग की रीति निन्द्य और त्याज्य करार दे दी गई। यद्यपि महाभारत काल में उसके उदाहरण देखे जाते हैं, पर ऐसा मालूम होता है कि उस समय तक उसका चलन रुक गया था। और कुल वधू इस काम में प्रसन्नता और उत्साह नहीं रखती थीं।

मनु में इस चर्चा पर खासा वाद विवाद किया गया है। और अनेक, कई प्राचीन कारण उपस्थित करके अन्त में उसे दोषयुक्त और निन्द्य ही करार दिया गया है। यह हम पहिले ही कह चुके हैं कि प्राचीन काल में भी जब कि उसका चलन था, उस सम्बन्ध में बहुत बन्धन थे। और यह ठीक तौर पर कहा जा सकता है कि किसी भी समय में उसके लिए अनियन्त्रित सम्बन्ध का रूप न था। आगे चल कर आर्यों ने पातिव्रत के महात्म्य को इतना बढ़ा दिया कि उस भावना ने नियोग की पद्धति को स्त्रियों की नजर में दूषित कर दिया। ब्राह्मणों और क्षत्रियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के विवाहों में ईर्षा और पारस्परिक स्पर्धा का अति सुन्दर उदाहरण शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का है।[1]

जिस स्त्री वा विधवा को अपने पति से सन्तान न होने पर अधिकार प्राप्त हो, वह अपने पति के भाई 'देवर' से वा पति के किसी दूसरे सपिण्ड से सन्तान उत्पन्न कर सकती है। पर इसके साथ ही वह बलपूर्वक यह भी कहता है कि विधवा को इस प्रकार सन्तान उत्पन्न करने को कभी नियोग नहीं करना चाहिए। धर्मशास्त्रों में इसकी आज्ञा नहीं है। और न अधिकार है--इस रीति को पण्डित पशु के योग्य समझते हैं।[2]

इससे पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि यद्यपि उसने प्राचीन नियमों को मानने का प्रयत्न किया है। पर वह इस नियम को आगे चलने देना पसन्द नहीं करता—और आगे के लिए अधिक शुद्ध नियम प्रचलित किया चाहता है। फिर भी उसने नियुक्त पुत्रों के लिए—जो बड़े भाई की स्त्री तथा विधवा में देवर द्वारा उत्पन्न हुए हैं, पिता की सम्पत्ति में हिस्सा दिया है।[3]

मनु के वर्णित बारह पुत्र—मनु ने जो १२ पुत्र लिखे हैं, उनमें से अन्तिम ग्यारह पुत्रों को असली पुत्र के निकृष्ट प्रतिनिधि बताया है।[4] ये बारहों पुत्र ये हैं—१–औरस 'अपनी पत्नी में अपने वीर्य से उत्पन्न पुत्र'। २–क्षत्रिय 'नियोग का पुत्र। ३–दत्तक 'गोद लिया पुत्र'। ४–कृत्रिम 'बनाया हुआ पुत्र'। ५–गूधोत्पन्न 'जिसके पिता का पता न हो और वह उस स्त्री के पति का पुत्र मान लिया जाय'। ६–कानीन 'कुवारी का पुत्र'। ७–सहोध 'वह पुत्र जो विवाह के समय गर्भ में हो'। ८–क्रीतक 'मोल लिया हुआ'। ९–पौनर्भव 'विधवा का दूसरे विवाह से उत्पन्न'। १०–स्वयंदत्त 'अनाथ पुत्र'। ११–पासंव 'ब्राह्मण का शूद्रा में उत्पन्न'।[5]

इनमें प्रथम ६ पुत्र सम्बन्धी और उत्तराधिकारी मात्र हैं, और अन्तिम ६ केवल सम्बन्धी।[6]

इनमें नियोग से उत्पन्न क्षेत्रज्ञ पुत्र को और सब के बाद ही दूसरा दर्जा दिया गया है। परन्तु कौटिल्य का मत भिन्न है। वह कहता है :—

"मेरे गुरु का मत है कि पर क्षेत्र में बोया बीज उस क्षेत्र के स्वामी का है। दूसरों का मत है कि वीर्य ग्रहण करने का पात्र होने से बालक उसका है जिसका वीर्य है। कौटिल्य के मत में वह दोनों पिताओं का पुत्र है"।[7]

---

१. महा० आदि० १५५। २. मनु १०।५९।१६। ९।६४।६८।
३. आ० ९। सू० १२०।१४६। ४. ९।१६२।
५. ९।१६७। १७८। ६. ९। १५८।
७. कौटिल्य अर्थशास्त्र १६४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह इस प्रकार इन पुत्रों की और उनके उत्तराधिकारों की व्याख्या करता है। इस पुत्र को वह क्षेत्रज कहता है और उनके अधिकारों का वर्णन इस प्रकार करता है, कि वह दोनों के उत्तराधिकारी मात्र होते हैं।

वर्णव्यवस्था—ब्राह्मण के कर्म—वेद पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान लेना देना, ये ६ ब्राह्मण के कर्म हैं।

क्षत्रिय के कर्म—प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, विषयों में न फँसना, ये ५ क्षत्रिय के कर्म हैं।

वैश्य के कर्म—पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, व्यापार और ब्याज तथा खेती ये ७ कर्म वैश्य के हैं।

शूद्र के कर्म—शूद्र का एक ही कर्म है कि स्वामी की सेवा करना और कभी निन्दा न करना।

इन कर्मों में गुणों का कहीं जिक्र नहीं है। वर्णों के इन चिन्हों से यदि गीता के वर्णों के गुण भी मिलाये जांय तो मनु के वर्णन से तो बहुत उत्तम निकलेंगे। एक यह बात भी मार्के की है कि क्षत्रिय तथा वैश्य के लिए दान देना और यज्ञ करना अनिवार्य बना दिया गया है। ब्राह्मणों के कर्मों में दान लेना भी सम्मिलित कर लिया गया है। आज केवल अनाथ, अपंगु, नीच और अयोग्य को छोड़कर कोई भी मान धनी दान नहीं लेता। इसी स्थान पर ब्राह्मणों की श्रेष्ठता भी बयान की गई है—

उत्तमाङ्ग से उत्पन्न होने के कारण, वेद पढ़ने के कारण—ब्राह्मण सब मनुष्यों का प्रभु है।[१]

जिसके मुख से आहुति निकलने पर देवतागण हव्य पाते हैं, उससे बड़ा इस पृथ्वी पर कौन है ?[२]

भूतों में प्राणी, प्राणियों में बुद्धिजीवी, उनमें मनुष्य—मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है।[3]

ब्राह्मण की उत्पत्ति ही धर्म की शाश्वत मूर्ति है क्योंकि वह धर्मार्थ उत्पन्न हुआ है, मोक्ष का अधिकारी है।[४]

ब्राह्मण जन्म से ही पृथ्वी में श्रेष्ठ है—वह सब प्राणियों का स्वामी और धर्म के खजाने का रक्षक है।[५]

जो कुछ भी वस्तु संसार में हैं वह सब ब्राह्मणों की निजी वस्तु के समान हैं। क्योंकि वह ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हैं और सबसे श्रेष्ठ हैं। इसलिए सब वस्तु का स्वामी ब्राह्मण है।[६]

---

१. १।९३। २. १।९५। ३. १–९६ ४. १।९८। ५. १।९९। ६. १।१००।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्राह्मण अपनी ही वस्तु का भोजन करता है--पहनता है और ब्राह्मण की दया से क्षत्रिय आदि भोग करते हैं।[१]

जिस प्रकार से संस्कार को प्राप्त हो अथवा न प्राप्त हो परन्तु अग्नि बड़ा देवता है वैसे ही ब्राह्मण पण्डित हो या मूर्ख हो वह बड़ा देवता है।[२]

ब्राह्मणों के लिए दण्ड भी खास रियायती है।

सदाचारी क्षत्रिय को मारने में ब्राह्मण को हत्या का चौथाई पातक है। वैश्य वध में आठवां भाग और शूद्र वध में सोलहवां।[३]

क्षत्रिय को अकारण मार कर ब्राह्मण व्रत करके १ बैल और १०० गाय दान करे। अथवा ३ वर्ष तपस्या करे।[४]

वैश्य को मार कर १ वर्ष तपस्या या १०० गायों का दान करे।[५]

शूद्र को मार कर ६ मास तपस्या और १ बैल और १० गाय दान करे।[६]

परन्तु शूद्र के लिए कठोर आज्ञाएँ हैं :—

शूद्र के लिए एक ही कर्म प्रभु ने ठहराया कि निश्चल होकर इन तीनों वर्णों की सेवा करना।[७]

मोल लिया हो, अथवा मोल न लिया हो, जो शूद्र है उससे दास्य कर्म कराना। क्योंकि ब्राह्मण के दास्य कर्म के लिए ब्रह्मा ने शूद्र को उत्पन्न किया है।[८]

दास्य कर्म से दास को स्वामी त्याग न करे तो दास दास्य कर्म से नहीं छूटे क्योंकि दास्य कर्म शूद्र के स्वभाव से उत्पन्न है उस कर्म को कौन छुड़ा सकता है।[९]

राजा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों की सेवा शूद्रों से करावे।[१०]

ब्राह्मण की सेवा ही शूद्र का बड़ा कर्म है इसको छोड़कर और जो करता है सो निष्फल है।[११]

यदि शूद्र धन का संचय कर सके तो भी न करे। क्योंकि शूद्र धन को पाकर ब्राह्मण ही की बाधा करता है।[१२]

ब्राह्मण दास शूद्र से धन ग्रहण करे, इसमें कुछ विचार न करे। क्योंकि उसका कुछ स्वत्व नहीं है वह अधन है। वह जो धन अर्जन करे उस धन का स्वामी उसका स्वामी है।[१३]

झूठा अन्न, पुराना कपड़ा, सार रहित धान्य, पुरानी शय्या, पुरानी गृह की सामग्री इन सब का आश्रित शूद्र है उसको देना।[१४]

---

१. १।१०१। २. ९।३१७। ३. ११।१२६। ४. ११।१२७। ५. ११।१२९। ६. ११।१३०। ७. अ० १ श्लोक ९१। ८. अ० ८ श्लोक ४१३। ९. अ० ८ श्लोक ४१४। १०. अ० ८ श्लोक ४१०। ११. अ० १ श्लोक १२। १२. अ० १० श्लोक १२९। १३. अ० ८ श्लोक ४१७। १४. अ० १० श्लोक १२५।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को कठोर वाणी से आक्षेप करे तो शूद्र की जिह्वा छेदन की जाय क्योंकि निकृष्ट अंग जो चरण है, वह उससे उत्पन्न है।[1]

जो शूद्र ब्राह्मण आदि को रे, तू, फलाने, ऐसे नीच शब्दों से नाम और जाति को उच्चारण करे, तो उसके मुख में बारह अंगुल की जलती हुई लोहे की कील डालना।[2]

ब्राह्मणों को गर्व से धर्म का उपदेश करने वाला जो शूद्र हो, उसके और कान में खौलते हुए तेल को राजा डाले।[3]

चाण्डाल जिस किसी अंग से बड़े लोगों के अंग पर प्रहार करे, उसके उस अंग को कटवा डालना, यही मनु जी की आज्ञा है।[4]

हाथ के उद्यम से मारे तो हाथ काटना और पांव के उद्यम से मारे तो पांव काटना।[5]

छोटा मनुष्य बड़े मनुष्य के साथ एक आसन पर बैठे तो उसकी कटि में चिन्ह करके निकाल देना, अथवा जिससे मरे न, ऐसी रीति से चूतड़ उसका काट देवे।[6]

दर्प से देह पर थूके तो दोनों ओठों का छेदन करे।[7]

ब्राह्मण के केश को अहङ्कार से पकड़ने वाला जो शूद्र है, उसका हाथ काटना यह विचार न करना कि इसको पीड़ा होगी।[8]

प्राणान्तक दण्ड के स्थान में ब्राह्मण का मूड़ मुड़ाना यही दण्ड है और वर्णों को प्राणान्तक दण्ड है।[9]

सर्व पाप से स्थित भी ब्राह्मण हो, परन्तु उसका वध कभी न करना, धन सहित और शरीर दण्ड रहित राज्य से निकाल देना।[10]

संसार में ब्राह्मणों के वध से दूसरा बड़ा अधर्म कोई नहीं है, इसलिए ब्राह्मण वध को मन से भी राजा चिन्तन न करे।[11]

ब्राह्मण बिल्ली, नेउला, नीलकण्ठ, मेढक, कूकर, गोह, उल्लू, कौवा इन्होंमें किसी एक को वध करे, तो शूद्र हत्या के व्रतों को करे।[12]

अथवा तीन रात दूध पीवे, इसमें अशक्त हो तो तीन रात चार कोस गमन करे। इसमें भी अशक्त हो तो तीन रात नदी में स्नान करे। इसमें भी अशक्त हो तो आपोहिष्ठा इस सूक्त का जप करे। यही शूद्र की हत्या का प्रायश्चित है। पर यह बिना इच्छा से वध में जानना।

---

१. ८।२७०। २. ८।७२१। ३. ८।२७२। ४. ८।२७९। ५. ८।२८०। ६. ८।२८१। ७. ८।२८२। ८. ८।२८३। ९. ८।३७९। १०. ८।३८०। ११. ८।३८१। १२. ११।१३२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाण्डाल और स्वपच :—

चाण्डाल, श्वपच ये दोनों ग्राम के बाहर निवास करें। पात्र से रहित रहें। इनका धन कुत्ता और गधा है।[1]

मुर्दे के वस्त्र को पहिरें, फूटे पात्र में भोजन करें, लोहे का गहना पहिने। नित्य ही डोलते रहें।[2]

धर्म का आचरण करने वाला इनका दर्शन आदि व्यवहार न करे, इन का विवाह आपस में होता है। और वे व्यवहार भी आपस ही में करें।[3]

इन का अन्न पराधीन है, फूटे पात्र में अन्न देना, रात को ग्राम नगर आदि में फिरने न पाएं।[4]

शूद्र को ज्ञान न देना, दास से भिन्न जो शूद्र है, उसको झूठा अन्न न देना, जिस हवि से होम हुआ है और जो बाकी रह गया है उसे शूद्र को न देना। धर्म और व्रत इसका उपदेश शूद्र को न करना।[5]

जो पुरुष शूद्र को धर्म और व्रत का उपदेश करता है सो उस शूद्र सहित असंवृत नाम नरक में जाता है।[6]

पूरी मनुस्मृति को पढ़ने से पता लगता है कि यह ग्रन्थ वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था को महत्त्व देने के लिए बना है। इसमें ब्राह्मणों और राजाओं के अधिकार खूब बढ़ाए गए हैं। और नीच जातियां खूब दबाई गई हैं। दण्ड और पाप पुण्य मिला दिए गए हैं। कुछ निर्दय है और कुछ केवल हास्यास्पद।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि ब्राह्मण जो ज्ञानवान है; अपराध करने पर कम दण्ड पाता है, और शूद्र जो मूर्ख है अधिक दण्ड पाता है।

निश्चय इस ग्रन्थ में जाति के अहङ्कारों को बहुत बढ़ा दिया है और ब्राह्मणों और शूद्रों में बहुत अन्तर उत्पन्न कर दिया है।

प्रायश्चित आदि बहुत सी बातों को हम विस्तारमय से छोड़ कर इस प्रसंग को यहीं समाप्त करते हैं।

अन्य स्मृतियां—मनु सहित २० स्मृतियों सूची हमें याज्ञवाल्क्य देता है। यद्यपि इस समय पचास से ऊपर स्मृतियां प्राप्त हैं। परन्तु यहां हम इन्हीं बीस स्मृतियों की सूची देते हैं।

---

१. १०।५२। २. १०।५२। ३. १०।५३। ४. १०।५४। ५ ४।८०। ६. ४।८१।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१. मनु	२. अत्रि	३. विष्णु	४. हाटी
५. याज्ञवल्क्य	६. उशणस	७. अंगिरस	८. यम
९. आपस्तम्ब	१०. संवर्त	११. कात्यायन	१२. बृहस्पति
१३. पराशर	१४. व्यास	१५. शंख	१६ लिखित
१७. दक्ष	१८. गौतम	१९. सातातप	२०. वशिष्ठ

पाराशर भी इन्हीं २० स्मृतियों के नाम का उल्लेख करता है । केवल उसने विष्णु के स्थान पर काश्यप, व्यास के स्थान पर गर्ग और यम के स्थान पर प्रचेतस का उल्लेख किया है । इन २० स्मृतियों में गौतम, अवापस्तम्ब और वशिष्ट दार्शनिक काल से तथा मनु बौद्ध काल से सम्बन्धित है । शेष १६ स्मृतियाँ सम्भवतः प्राचीन सूत्र ग्रन्थों के आधार पर बनाई गई हैं । परन्तु आधुनिक रूप में वे पौराणिक काल में अथवा मुसलमानों के भारत विजय की पीछे की शताब्दियों में परिवर्तित हुई है। यहां हम संक्षेप में इनका विवरण देते हैं:—

१– अत्रिः— एक छोटा सा ग्रन्थ है, जिसमें ४०० श्लोकों से भी कम हैं । उसमें आधुनिक शास्त्रों तथा प्राचीन वेदों को पढ़ने की महत्ता बताई गई है ।[1] फल्गू नदी में स्नान करने और गदाधर देव के दर्शन करने का उपदेश दिया है ।[2] शिव और विष्णु के चरणामृत पीने का उपदेश किया गया है, सब मलेच्छों से घृणा प्रकट की गई है"[3] विधवाओं को जलाने की रीति का उल्लेख है[4] उसमें उसके मुसलमानों की विजय के उपरान्त वर्तमान रूप में किए जाने के चिन्ह हैं ।

२–विष्णुः— उपरोक्त १६ धर्म शास्त्रों में केवल विष्णु ही गद्य में हैं । इस कारण वह सबसे अधिक प्राचीनता का स्वत्व रख सकता है । डाक्टर जोली ने काथक कल्प सूत्र के गृहयसूत्र से उसकी घनिष्ट समानता दिखलाई है । यह सूत्र निस्सन्देह दार्शनिक काल का है । डाक्टर बूहलर के समान वे भी इस बात का समर्थन करते हैं कि विष्णु धर्म शास्त्र का अधिकांश वास्तव में उसी कल्प सूत्र का प्राचीन धर्म सूत्र है । फिर भी यह प्राचीन ग्रन्थ कई बार संकलित और परिवर्तित किया गया जान पड़ता है । जिसका काल चौथी शताब्दी से ११ वीं शताब्दी तक है ।

अध्याय ६५ में प्राचीन और सच्चे काथक मंत्र दिऐ हैं, जो वैष्णव कार्य के लिये परिवर्तित और संकलित किये गये हैं । अध्याय ९७ में साख्य और योग दर्शनों के वैष्णव धर्म के साथ सम्बन्ध करने का यत्न किया गया है । अध्याय ७८ में आधुनिक सप्ताह के दिनों इतवार से लेकर सनीचर तक का उल्लेख है । जो कि प्राचीन ग्रन्थों में कहीं नहीं मिलता । अध्याय २० श्लोक ३ और २५, में विधवाओं के बलिदान करने का उल्लेख है । अध्याय ८४ म्लैच्छों के राज्य में श्राद्ध करने का निषेध है, और अध्याय ८५ में लग भग ५० तीर्थ स्थानों का वर्णन हैं । भूमिका का अध्याय जो कि

---

१. ११ । २. ५७ । ३. १८० । १८३ । ४. २०९ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निरन्तर श्लोकों में है, और जिसमें पृथ्वी एक सुन्दर स्त्री के रूप में क्षीर सागर में अपनी पत्नी लक्ष्मी के साथ लेटे विष्णु से परिचित कराई गई हैं । सम्भवत: इस आधुनिक ग्रन्थ के सौ अध्याओं में सब से पीछे के समय का है ।

३–हारीत:— यह दूसरा प्राचीन ग्रन्थ है जो पूर्णतया फिर से लिखा गया है । हारीत का उल्लेख बौद्धायन, वशिष्ट और आपस्तम्ब में है जो दार्शनिक काल के ग्रन्थ हैं । मिताक्षर और दाय भाग में हरीत के जो उद्धत वाक्य पाए जाते हैं वे सब गद्य सूत्रों में हैं । परन्तु हारीत का जो ग्रन्थ प्राप्त है वह लगातार श्लोकों में है और उसका विषय भी आधुनिक समय था । पहिले अध्याय में एक पौराणिक कथा है कि विष्णु अपनी पत्नी श्री के साथ एक कल्पित नाग पर जल में पड़े हैं और उनकी नाभि में एक कमल उत्पन्न हुआ जिसमें से ब्रह्मा उत्पन्न हुए जिन्होंने संसार की सृष्टि की । दूसरे अध्याय में नरसिंह देव की पूजा की गई है । और चौथे अध्याय में विष्णु की पूजा तथा सातवें अर्थात् अन्तिम अध्याय में योगशास्त्र का विषय है ।

४–याज्ञवल्क्य:—श्री स्टेंजलर और लेसन याज्ञवल्क्य का समय विक्रमादित्य के पहिले परन्तु बौद्धधर्म के प्रचार के उपरान्त निश्चित करते हैं । आधुनिक खोज से विद्वान लोग मनु का समय ईसा की १ वा २ शताब्दी पहिले वा उपरान्त निश्चित कर सके हैं और चूंकि याज्ञवल्क्य निस्सन्देह मनु के उपरान्त हुआ, अतएव उसका सम्भव समय ईसा के उपरान्त पाचवी शताब्दी अर्थात् पोराणिक काल के प्रारम्भ के लगभग है । इस ग्रन्थ की विषय सूची देखने से ही यह धारणा दृढ़ होती है । अध्याय २; श्लेक २९६ में बौद्ध भिक्षुणियों का उल्लेख है, तथा बौद्धों की रीति और सिद्धान्तों के बहुत से उल्लेख हैं । मनु उच्च जाति के मनुष्यों को शूद्र जाति की स्त्रियों से विवाह करने का अधिकार देता है । परन्तु याज्ञवल्क्य इस प्राचीन रीति का विरोध करता है

परन्तु बहुत सी बातों में याज्ञवल्क्य उत्तर काल के धर्म शास्त्रों की अपेक्षा मनु से अधिक मिलता है । १६ स्मृतियों में से केवल याज्ञवल्क्य ही ऐसी है जिस पर पौराणिक काल की बातों के लिये पूर्णतया विश्वास किया जा सकता है । यह ग्रन्थ तीस अध्यायों में हैं और उसमें एक हजार से अधिक श्लोक हैं ।[1]

५–उशनास:— अपने आधुनिक रूप में यह ग्रन्थ बहुत पीछे के समय का बना हुआ है । उसमें हिन्दु त्रिमूति है ।[2] और विधवाओं के सती होने का उल्लेख है ।[3] समुद्र यात्रा करने वाले को अपराधी ठहराया हैं ।[4] और पाप करने वाले के लिये अग्नि वा जल में आत्म बलिदान करने के आदेश है ।

---

१. १ । ५६ । २. ३ । ५० ।
३. ३ । ११७ । ४. ४ । ३३ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बहुत से नियमों, निषेधों और प्रायश्चितों की इस ग्रन्थ में विशेषता है। यह ग्रन्थ नौ अध्यायों तथा लगभग ६०० श्लोकों में सम्पूर्ण हुआ है[1]।

६-अंगिरसः—यह सत्ताइस श्लोकों का एक छोटा सा एक अध्याय वाला आधुनिक समय का ग्रन्थ है और नील की खेती को उत्तम जातियों के लिये अयोग्य अपवित्र लिखता है।

७-यमः—दार्शनिक काल में वशिष्ट ने यम का उल्लेख किया है, परन्तु यह ७८ श्लोकों का एक छोटा सा ग्रन्थ अब प्राप्त है। जो आधुनिक है। अगिरस के समान उसमें भी धोबी, चर्मकार, नाचने वाली, वरुद, केवर्त्त, मैद और भील लोगों को अछूत लिखा है।

८-संवर्त्तः—यह एक आधुनिक पद्य ग्रन्थ है, जिसमें २०० से अधिक श्लोक हैं। यम की भांति उसमें भी धोबियों, नाचने वालों और चर्मकारों को अछूत जाति मान है।

९-कात्यायनः—उन नियमों और रीतियों पर प्रकाश डालता है जिन्हें गोमिल ने अन्धकार में छोड़ दिया है। परन्तु यह धर्म शास्त्र उत्तरकालीन है। वह २९ अध्यायों में समाप्त है, जिनमें लगभग ५०० श्लोक हैं। अध्याय १ श्लोक ११ में गणेश तथा उसकी माताओं गौरी, पद्मा, शची, सावित्री, जया, विजया इत्यादि की पूजा के विषय में लिखा है। और यह भी लिखा है कि उनकी मूर्तियों की अथवा उजले वस्त्र पर लिखे हुए चित्रों की पूजा करनी चाहिऐ। अध्याय १२ श्लोक २ में जो कि गद्य में है हिन्दू त्रैकत्व का उल्लेख है। अध्याय १९; श्लोक ७ में उमा का उल्लेख है, और अध्याय २० श्लोक १० में राम का सीता की स्वर्ण प्रतिमा बनाकर यज्ञ करने का उल्लेख है।

१०-बृहस्पति—यह ८० श्लोकों का एक छोटा सा ग्रन्थ है। जो कि आधुनिक समय का बना हुआ है। उसमें ब्राह्मणों को भूमि दान देने के पुण्य का वर्णन है ब्राह्मण के कोप के भयानक फल को जताने का यत्न किया गया है। सीक्रेट बुक्स आफ दी ईस्ट में बृहस्पति के एक प्राचीन और प्रमाणिक ग्रन्थ का अनुवाद दर्ज है। पर वह इससे भिन्न है।

११-पराशरः—सबसे पीछे के धर्मशास्त्रों में से एक है। स्वयं संग्रहकर्त्ता कहता है[2] कि मनु सत्ययुग के लिए था, गौतम त्रेता युग के लिए, शंख और लिखित द्वापर के लिए थे। और पराशर कलियुग के लिए है। इसमें हिन्दू त्रैकत्व का उल्लेख[3] और विधवाओं के सतीदाह का उल्लेख[4] मिलता है। विधवा विवाह की यह आज्ञा देता है। यदि किसी स्त्री के पति का पता न लगे, अथवा वह मर जाय, अथवा

---

१. ८, ३४। २. २, २३। ३. १, १९। ४. ४ २८ और २९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योगी व जाति बाहर वा नपुंसक हो—तो पराशर उस स्त्री को दूसरा विवाह करने की आज्ञा देता है[1]। ग्रन्थ बारह अध्यायों में है और उसमें लगभग ६०० श्लोक हैं।

१३–**व्यास**—व्यास और भी आधुनिक है। वह निःसन्देह हिन्दू त्रैकत्व का उल्लेख करता है।[2] विधवाओं के सती होने की प्रशंसा करता है।[3] जाति के अधिकांश से बने हुए भिन्न-भिन्न व्यवसायों का नीच बनाया जाना बहुत से अन्य धर्मशास्त्रों की अपेक्षा व्यास में अधिक पूर्ण है। मुसलमानी राज्य में हिन्दुओं के साथ कैसा व्यवहार किया जाता था, इसका इसमें विस्तृत वर्णन है। इस छोटे से ग्रन्थ में चार अध्याय हैं जिनमें दो सौ से ऊपर श्लोक हैं।

१४–**शंख**—शंख भी विष्णु की भाँति एक प्राचीन ग्रन्थ था। परन्तु वह आधुनिक काल में पुनः पद्य में बनाया गया है। यद्यपि उसके दो अंश अब तक भी गद्य में हैं। डाक्टर बुहलर का विचार है कि गद्य के अंश शंख के मूल ग्रन्थ से लिए हुए असल सच्चे सूत्र हैं—यह ग्रन्थ मूल रूप में दार्शनिक काल में बना था, जो पूर्णतया सूत्रों में था। अध्याय ३ श्लोक ७ में मन्दिरों और शिव की मूर्ति का उल्लेख है। अध्याय ४ श्लोक ९ उच्च जाति के मनुष्यों का शूद्र जाति की स्त्री से विवाह करने का निषेध है। मनु ने इसका निषेध नहीं किया है। अ० ७ श्लोक २० में विष्णु का नाम वासुदेव लिखा है। अ० १४ श्लोक २–३ में ग्रन्थकार ने १६ तीर्थ स्थानों के नाम लिखे हैं। और अ० १४ श्लोक ३ में म्लेच्छ देशों में श्राद्ध करने अथवा जाने का निषेध किया है। परन्तु इस आधुनिक ग्रन्थ में भी विधवा विवाह की आज्ञा है।[4] इस ग्रन्थ में २८ अध्याय हैं, जिनमें तीनसौ श्लोकों से अधिक हैं।

१५–**लिखित**—९२ श्लोकों का एक छोटा सा आधुनिक ग्रन्थ है जिसमें देव मन्दिरों का '४' काशीवास करने का '११' और गया में पिण्ड देने का उल्लेख है।

१६–**दक्ष**—यह सात अध्यायों का एक आधुनिक ग्रन्थ है जिसमें गृहस्थ जीवन तथा पति–पत्नी के कर्तव्य का मनोहर वर्णन है। सतीदाह का भी इसमें विधान है।[5]

१७–**सातातप**—सातातप अपने आधुनिक रूप में १६ धर्मशास्त्रों में एक सबसे नवीन है और उसमें तीन आंख वाले रुद्र का[6], विष्णु की पूजा का[7], चार मुख वाले ब्रह्मा की मूर्ति का[8], और भैंसे पर चढ़े हुए तथा हाथ में दण्ड लिए हुए यम की मूर्ति का भी उल्लेख है।[9] उसमें विष्णु की पूजा श्री वत्सलाछन वासुदेव जगन्नाथ के नाम से कही गई है। उसकी स्वर्ण की मूर्ति वस्त्र से सुसज्जित करके पूजा के उपरान्त ब्राह्मणों को देनी चाहिए।[10] सरस्वती की भी जो कि अब

---

१. ४, २६। २. ३, २४। ३. २, ५३। ४. १५; ५३। ५. ४, २०। ६. १, १९। ७. १, २२। ८. २, ५। ९. २, २८। १०. २; २२, २५।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ब्रह्मा की स्त्री है, पूजा कही गई है।[1] और यह भी कहा गया है कि पाप से मुक्ति पाने के लिए हरिवंश और महाभारत को श्रवण करना चाहिए। इसके आगे गणेश[2], दोनों अश्विनों[3], कुबेर[4], प्रचेत[5] और इन्द्र[6] की मूर्तियों का उल्लेख है। इन सब स्वर्ण की मूर्तियों को भी केवल ब्राह्मणों को दान देने के लिए कहा गया है। संसार में कोई पाप वा कोई असाध्य रोग अथवा कोई गृहस्थी की आपत्ति वा सम्पत्ति अथवा कोई हानि ऐसी नहीं है जो ऐसे दान से पूरी न की जा सके। मुसलमानों के विजय के उपरान्त हिन्दू धर्म ने जो धर्म रूप धारण किया था, उसके जानने के लिए यह ग्रन्थ बहुमूल्य है।

इन स्मृतियों में उत्तरकालीन हिन्दुओं की समाज व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि—स्त्री–विवाह और उत्तराधिकारी इन तीन बातों पर सबसे अधिक जोर डाला गया है। इन तीनों बातों में भी प्रधान उत्तराधिकार का विषय है—जो कदाचित् उन दिनों अत्यधिक जटिल हो गया था।

हारीत—छः दायाद बन्धु मानता है।[7] औरस, क्षेत्रज, पौनर्भव, कानीन, पुत्रिक पुत्र और गूढ़ज।

जब दाय भाग हो तो एक बीसवां भाग पौनर्भव पुत्र को दिया जाय।[8]

धर्म कार्य के लिए परदेश गए पति के वास्ते ८ वर्ष, विद्याध्ययन के वास्ते गए पति के वास्ते ६ वर्ष और यश और कामार्थ गए पति के वास्ते ३ वर्ष तक बाट देखे।

यदि कन्या का शुल्क देने के पश्चात् शुल्क देने वाला 'पति' मर जाय तो उस "स्त्री' की अनुमति से उसका उसके देवर से विवाह किया जाय।

कानीन, सहोढ़, क्रीतक, पौनर्भव, स्वयंदत्त और शौद्र 'शुद्रा माता से पुत्र' यह ६ अदायाद बान्धव हैं।

औरस और क्षेत्रज पुत्र पिता की ऋक्थ के भागी होते हैं। शेष दश क्रम से "पहिले वर्णित पुत्र के अभाव में" गोत्र और ऋक्थ के भागी होते हैं।

पति से त्यागी या विधवा स्त्री यदि अपनी इच्छा से पुनर्विवाह करके "दूसरे पति से" सन्तान उत्पन्न करे तो वह सन्तान पौनर्भम कहलाती है।

जो स्त्री अक्षत योनि हो और पति के घर में जा कर भी आ गई हो तो भी दूसरे पति के साथ फिर संस्कार कर सकती है। "पति को या दूसरे पुरुष को त्याग कर फिर उसके पास आ जाय। और दूसरे पुरुष का आश्रय ले, तो वह पौनर्भव

---

१. २, २८। २. ११, ४४। ३. ४, १४। ४. ५, ३।
५. ५, १०। ६. ५, १७। ७. हारीत ५–३३१–१८७।
८. हारीत २–३४९–२१९।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दुबारा विवाह हुए पति या प्रथम त्यागे हुए पति के साथ पुनर्विवाह संस्कार की अधिकारिणी होती है।

क्षेत्रज आदि "पौनर्भव पुत्र इनमें सम्मिलित है" जो ग्यारह पुत्र बताए गए हैं उनको इस लिए बेटे की जगह माना जाता है कि क्रिया लोप न हो जाय[1]।

विष्णु स्मृति—चतुर्थ प्रकार का पुत्र पौनर्भव है। इन बारह प्रकार के पुत्रों में प्रथम वर्णित, पीछे वर्णित से श्रेष्ठ हैं। और वही दाय को पाता है। उसको शेष पुत्रों का विवाह करना चाहिए।

१५–२८ से ३० तक में १२ प्रकार के पुत्रों का वर्णन है। जिन में चतुर्थ पौनर्भव है और पहिली तीन प्रकार के पुत्र न होते हुए ऋक्थ का भागी होता है[2]।

शंख और लिखित के मत के अनुसार पौनर्भव पुत्र बन्धु और दायाद है[3]।

बृहस्पति स्मृति—मनु ने दर्जे वार १३ प्रकार के पुत्र बताए हैं जो क्रमवंश को जारी रखने वाले हैं। इनमें एक पौनर्भव है। पुत्रिका पुत्र इत्यादि, जिनमें पौनर्भव पुत्र सम्मिलित हैं सहायक "Subsidiary" पुत्र को कहते हैं। अर्थात् औरस पुत्र के अभाव में क्रम से पुत्र माने जाते हैं।

क्षत्रेज से अन्य (रत्नाकार के अनुसार कानीन और पौनर्भव) क्रम से पांचवें छटे और सातवें भाग को प्राप्त करते है[4]।

यमस्मृति—धर्म वेत्ता ऋषियों ने १२ प्रकार के पुत्र माने हैं ··· ··· पौनर्भव चतुर्थ है[5]।

प्रजापति स्मृति—बाल विधवा और अकारण ही पति से त्यागी हुई स्त्री पुनः विवाह दुखों को दूर कर सके, पुनर्विवाह करले।

एक युवा पत्नी जिसका संस्कार प्रथम चार प्रकार की रीतियों "ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्रजापत्य" धर्म विवाहों में से किसी विधि से हुआ हो, परन्तु उसने अपने पति का नाम प्रकट नहीं किया हो वह उसका पति परदेश चला गया हो, और उसकी कुशलक्षेम मिली हो, तो–यदि उस ने अपना बाहर जाना प्रत्यक्ष न किया हो, अर्थात् बिना कहे बाहर चला गया हो,तो सात रजोदर्शन तक उसकी बाट देखे। "सप्त तीर्थान्याकांक्षेत" परन्तु यदि बाहर गए पति का, यदि वह कह कर बाहर जाय, जिसकी कुशल के समाचार मिले हों, नाम प्रसिद्ध कर दिया गया हो। तो वह १ वर्ष तक बाट

१–मानव धर्म शास्त्र ६। ९७। १६। १६५। १७५। १७६। १८०।
२–विष्णु स्मृति १०। १५–१। १५–२६। २९। ३०।
३–२ कौल० डाईज–३३१–१८६।
४–१९। २५–३३–३४।
५–यम स्मृति २ कोल० डाईज० १४। ३३२–१९१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देखे। यदि बाहर गए पति की कुशल क्षेम नहीं मिली हो, तो वह नाम न प्रकट करने की दशा में "पांच रजोदर्शन तक, और प्रकट कर देने की दशा में १० रजोदर्शन तक बाट देखे। यदि स्त्री को शुल्क का कुछ भाग ही मिला हो, तो वह बाहर गए पति की–जिसके कुशल समाचार नहीं मिले हों, ३ रजोदर्शन तक और यदि समाचार मिले हों तो ७ रजोदर्शन तक राह देखे। यदि युवा पत्नी को शुल्क की पूरी रकम मिल गई हो–तो वह बाहर गए पति की–जिसके कुशल समाचार न मिले हों ५ रजोदर्शन तक, और यदि मिले हों तो १० रजोदर्शन तक बाट देखे। तत्पश्चात वह धर्म का निर्णय करने वाले राज्य कर्मचारियों की आज्ञा लेकर जिससे उसका जी चाहे पुनर्विवाह कर ले। कारण कि रजस्वला स्नान के पश्चात स्त्री से सभोग न करने पर कौटिल्य के मतानुसार पति धर्म में बाधा पड़ जाती है।

यदि पति बहुत काल से बाहर गया हो, सन्यासी हो गया हो या मर गया हो, तो और उसकी स्त्री निःसन्तान हो, तो सात रजोदर्शन और सन्तानवती हो तो एक वर्ष बाट देखे। तत्पश्चात वह अपने पति के भ्राता से पुनर्विवाह करले। यदि खोए पति के कई भाई हों, तो वह उससे विवाह करे जो आयु में उसके पहिले पति से दूसरे दर्जे पर हो, या उससे–जो सदाचारी हो और उसकी रक्षा कर सके। या उससे, जो सबसे छोटा और अविवाहित न हो।

बारह प्रकार के पुत्र उनसे प्रथम वर्णित पुत्रों के अभाव में क्रम से पिता की सम्पत्ति को पाते हैं। यदि एक ही प्रकार के कई पुत्र हों तो वह सब ऋक्थ के भागी होते हैं। पिता और भ्राता पुत्री के होते ऋक्थ को नहीं पा सकते, यदि पुत्र न हो तो पिता और भाई ऋक्थ के भागी होते हैं।

यदि एक स्त्री से दो पतियों से दो पुत्र हुए हों और माता का धन बांटने में झगड़ा करे, तो जिसके पिता से जो धन माता ने पाया हो–उसी का पुत्र उस धन को प्राप्त करे।

नारदीय धर्मशास्त्र—यदि पुत्रवती स्त्री पुत्र को छोड़कर दूसरे पुरुष के साथ रहने लगे तो वह पुरुष उसके स्त्री धन को पाए। यदि उस स्त्री के पास कोई सम्पत्ति न हो तो उसका पुत्र उसका ऋण चुकाए।

यदि स्त्री अपनी सम्पत्ति और सन्तान को लेकर दूसरे पुरुष का आश्रम ले, तो या तो वह दूसरा पुरुष उसके पूर्व पति का ऋण चुकाए या स्त्री को त्याग दे।

एक मृतक पुरुष जिसके धन या सन्तान न हो उसका ऋण वह चुकाए जो उसकी विधवा स्त्री के साथ संभोग करे। कारण कि वह स्त्री ही उसकी सम्पत्ति है।

विधवा को प्राप्त करने वाला, और पुत्र इन तीनों दायाद में ऋण उसको

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चुकाना चाहिए जो धन को पाए। यदि विधवा पुनर्विवाह न करे और कोई दायाद न हो तो पुत्र जिम्मेवार है। यदि दायाद और पुत्र न हो तो विधवा का दूसरा पति जिम्मेवार है।

अन्तिम प्रकार की स्वैरिणी और प्रथम प्रकार की पुनर्भू के पहिले पति का ऋण उनके सहवासी को चुकाना चाहिए।

अक्षिप्त और मोघ बीज नपुंसक चाहे वह अपनी स्त्रियों से संभोग करते भी हों, तब भी ६ मास बाट देखकर यदि उनके पतियों का दोष दूर न हो तो उनकी स्त्रियों को दूसरा पति प्राप्त करा देना चाहिए।

यदि पति "अन्यपति" हो, अर्थात् वह दूसरी स्त्री से संभोग कर सकता हो, पर अपनी स्त्री के लिये नपुंसक हो तो उसकी स्त्री दूसरा पति कर ले। यह नियम प्रजा पति का बनाया हुआ है।

स्त्रियों की उत्पत्ति सन्तानुत्पन्न करने को हुई। पत्नी क्षेत्र है और पति वीर्य दाता। क्षेत्र उसको दिया जाना चाहिए जो वीर्यवान हो। जो वीर्यवान नहीं, वह क्षेत्र का अधिकारी होने के अयोग्य है।

यदि वर कन्या से विवाह करके परदेश चला जाय तो कन्या ३ रजस्वला स्नान तक उसकी बाट देखे, फिर दूसरा वर चुनलें।

इनके उपरान्त और सात प्रकार की क्रम से वर्णित पत्नियां होती हैं जो-जिन से पहिले कोई और पुरुष संभोग कर चुका हो। इनमें पूनर्भू तीन प्रकार की और स्वरिणी चार प्रकार की होती है[१]।

याज्ञवल्क्य धर्म शास्त्र

जिस स्त्री का पुनः विवाह संस्कार हो। वह क्षत योनि हो या अक्षत योनि, पुनर्भू कहाती है[२]। जो "उसकी विधवा" स्त्री को ले उससे उसका ऋण दिलाया जाय[३]। बारह प्रकार के पुत्रों का वर्णन है जिनमें छठी प्रकार का पुत्र पौनर्भव बताया गया है। "पुनर्विवाहित" स्त्री का पुत्र चाहे वह क्षत योनि हो या अक्षत योनि पौनर्भव कहलाता है[४]।

वह स्त्री जो पाणिग्रहण संस्कार से ही दूषित हुई हो, और अक्षत योनि हो

१—नारदीय स्मृति १। २०-२१-२२-२३-२४। १२—१५। १६। १०। १९। २४। १२—४५।

२—याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र।

३—व्यवहार ५१।

४—व्यवहार अध्याय १२८ से १३२ तक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रथम प्रकार की पुनर्भू कहलाती है। उसका पुनः विवाह संस्कार होना चाहिए। स्त्री जो अपने कुमार पति को "अर्थात् युवा स्त्री बाल पति को" त्याग कर दूसरे पुरुष के पास चली जाय और फिर पहिले पति के पास आए "अर्थात् विवाह करके" वह द्वितीय प्रकार की पुनर्भू कहलाती है। बिधवा स्त्री जिसके पति के कोई भाई न हो और उसके सम्बन्धी उसको अपने ही वर्ण के सपिण्डों को दे दे–पुनर्विवाह कर दे, वह तीसरी प्रकार की पुनर्भू कहलाती हैं।

यदि एक दोष रहित कन्या का विवाह ऐसे पुरुष से हुआ हो, जिसमें कोई दोष जो विवाह से पहिले अज्ञात था–प्रकट हो जाय और वह कन्या दूसरे पुरुष से आप विवाह न करे तो उसके सम्बन्धी उससे ऐसा करा दें। यदि कोई सम्बन्धी जीवित न हो तो वह आप अपनी इच्छानुसार दूसरा पति कर ले।

पति के खो जाने, मर जाने, सन्यासी हो जाने, नपुंसक हो जाने और पतित हो जाने इन पाँच आपत्तियों में स्त्री को दूसरा पति करने का विधान है।

ब्राह्मणी खोये पति की ८ वर्ष तक बाट देखे। यदि सन्तान न हो तो केवल ४ वर्ष तक। तत्पश्चात् दूसरे पुरुष से विवाह कर ले। क्षत्राणी जिसके सन्तान हो छः वर्ष तक और जिसके सन्तान न हो वह तीन वर्ष तक, वैश्या सन्तानवती हो तो चार वर्ष और निःसन्तान हो तो दो वर्ष तक बाट देखे। शूद्रा के लिये जिसका पति बाहर गया हो कोई अवधि नहीं है। यदि पति जीवित हो और उसके समाचार मिलते रहे हो तो अवधि द्विगुणी होनी चाहिए।

उक्त नियम सृष्टिकर्ता ने उन स्त्रियों के निमित्त बनाए हैं जिनके पति खो जाय। यदि अवधि के समाप्त हो जाने पर स्त्री दूसरा पति कर ले तो वह दूषित नहीं होती। इसमें छः दायाद बन्धु हैं छः अदायाद बन्धु। प्रथम वर्णित पीछे वर्णित पुत्र से उत्तम है और पीछे वर्णित प्रथम वर्णित से अश्रेष्ठ।

पिता की मृत्यु के पश्चात यह पुत्र उसकी सम्पत्ति को पाएँ। उत्तम प्रकार के पुत्र के अभाव में उससे दूसरे दर्जे का पुत्र ऋक्थ का भागी है। बारह प्रकार के पुत्र बताए गए हैं जिनमें से सातवां पौनर्भव है। पहिले छः प्रकार के पुत्र न होने पर पौनर्भव पुत्र को अपनी माता के पहिले पति का ऋक्थ भागी बताया गया है[1]।

स्मृति पाराशर

एक विवाहित स्त्री इन पांचों आपत्तियों में दूसरा पति कर सकती है—अर्थात् यदि उसका पति बहुत काल तक अज्ञात रहे, या मर जाय, या सन्यासी हो जाय, नपुंसक हो जाय, या पतित हो जाय। 'नष्टे मृते परिव्रजते क्लीवे च पतिते पतौ पत्यौ'।

१—१३–४६। ४७–४८–९६–९७–९८–९९–१००–१९१। ४७–४८–४९। १३–४३ से ४९)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पंच स्वापत्सु नारीणां पति रन्यो विधीयते ।

पौनर्भव पुनर्विवाहित स्त्री का पुत्र है । चाहे वह स्त्री पहिले विवाह के पश्चात अक्षत योनि रही हो या क्षत योनि हो गई हो[1] ।

पहिले वर्णित बारह प्रकार के पुत्रों में वर्णित पुत्र के अभाव में पीछे वर्णित पुत्र को श्राद्ध करने और सम्पत्ति लेने का अधिकारी माना जाय[2] ।

स्मृति चन्द्रिका

पति से त्यागी हुई या विधवा स्त्री को, उसके पुनर्विवाहित पति से, जिससे उसने अपनी इच्छा से पुनर्विवाह किया हो, जो गर्भ रहे उसकी सन्तान पौनर्भव या पूनर्भू कहलाती है । उपरोक्त ग्यारह प्रकार के पुत्र औरस के अभाव में सहायक पुत्र हैं[3] ।

पौनर्भव आदि पुत्र पहले युगों में माने जाते थे । कलियुग में केवल दत्तक पुत्र ही माना जाता है ।

एक स्त्री के पुनर्विवाह से उत्पन्न पुत्र को-चाहे उसके प्रथम पति ने उसके साथ संभोग न किया हो, अर्थात् वह अक्षत योनि हो या उसके पहिले पति से संभोग हो गया हो, पौनर्भव कहते हैं ।

कलियुग में दत्तक के सिवाय शेष दस सहायक पुत्रों का प्रथम पति की सम्पत्ति पर अधिकार नहीं माना गया[4] ।

क्लीव पति को छोड़कर, या पतित पति को छोड़कर जो स्त्री दूसरे पति को प्राप्त करती है । वह पुनर्भू होती है, उस पुनर्भू में जो पुत्र उत्पन्न होता है वह पौनर्भव कहलाता है । और सपुत्र पुत्रि का पुत्र, क्षेत्रज, दत्तक पुत्र, कृत्रिम पुत्र, गूढ़ज और अपविद्ध ये पुत्र रिक्थ भागी होते हैं । कानंनन, सहोढ़, ऋति, पौनर्भव, स्वयदत्त और निषाद ये पुत्र गौत्र भागी होते हैं ।

बौधायन धर्म सूत्र—यदि कोई कन्या बलात्कार से छीनी गई हो और मन्त्रों से उसका संस्कार न हुआ हो, वह विधि पूर्वक दूसरों को देने योग्य है, जैसी कन्या है वैसी ही वह है ।

विवाह विधि होने पर जिसका भरता मर जाय तथा वह अक्षत योनि हो,

---

१ – पाराशर धर्मशास्त्र ४–३० । ०–१६–३० ।
२ – सरस्वती विलास २६ । ३५९ । ३७५
३ – स्मृति चन्द्रिका २७ । १० । ४--९--५ । ३-:१० ।
४—व्यवहार मयूख, दाय निर्णय विभाग कला २८ । ४५–४६ । २९ । व्यवहार माधवीय, ऋक्थ भाग ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और अपनी सुसराल में आती जाती भी हो, वह पुनर्भू विधि से पुनः संस्कार करने योग्य है[1]।

न्यायाधीश रानाडे ने कात्यायन का यह मत बताया है कि यदि पति असवर्ण, पतित, नपुंसक, नीच प्रकृति का, सगोत्री, दास या सदैव रोगी रहने वाला प्रमाणित हो तो विवाह संस्कार हो जाने पर भी कन्या को वापिस लेकर दूसरे पुरुष को वस्त्र आभूषण सहित दे दे।

वशिष्ट धर्म शास्त्र—जो अपने पूर्व पति को छोड़कर और दूसरे पुरुषों के साथ व्यवहार करके पहले पति के कुटुम्ब का आश्रय ले वह पुनर्भू कहलाती है।

जो स्त्री नपुंसक, पतित, या पागल पति को छोड़कर, या पति की मृत्यु के पश्चात दूसरे पुरुष से विवाह करती है वह पुनर्भू कहलाती है।

यदि कुमारी का मगेतर उसके वाक और जल सकल्प द्वारा दिए जाने के पश्चात परन्तु मन्त्रों से पाणिग्रहण होने से पहिले मर जाय तो उसके पिता का ही अधिकार होता है।

यदि किसी कुमारी का बलात्कार हुआ हो और मन्त्रों द्वारा संस्कार न हुआ हो तो उसको धर्मानुसार दूसरे पुरुष को दिया जा सकता है, वह कन्या तुल्य है।

स्मृति अर्थसार में बताया गया है कि विवाह के पूर्व आसुरी और गन्धर्व हरण में तीन रात्रि का और राक्षस और पैशाचिक हरण में चान्द्रायण व्रत करे।

यदि किसी कन्या का पति के मृत्यु के समय केवल मन्त्रों से ही संस्कार मात्र हुआ हो और वह अक्षत योनि हो तो उसका पुनः विवाह संस्कार होना चाहिये।

परदेश गये पति की स्त्री ५ वर्ष बाट देखे।

फिर ५ वर्ष बाद पति के पास चली जाय।

यदि धर्म और अर्थ के कारण न जा सके तो पति मर गया है ऐसा समझे।

पति के परदेश चले जाने पर ब्राह्मण की स्त्री ब्राह्मणी सन्तानवती हो तो ५ वर्ष तक, निःसन्तान हो तो ४ वर्ष, क्षत्रिय की स्त्री क्षत्राणी सन्तानवती हो तो ५ वर्ष और और निःसन्तान हो तो ३ वर्ष, वैश्यवर्ण की स्त्री वैश्या सन्तानवती हो तो ४ वर्ष, निःसन्तान हो तो २ वर्ष और शूद्रा सन्तानवती हो तो ३ वर्ष और निःसन्तान हो तो १ वर्ष तक बाट देखे। तत्पश्चात् पति के ऋक्थ भागियों भ्राताओं या सपिण्डों या समानोदकों या सगोत्रियों में से किसी को क्रमानुसार श्रेष्ठ मानकर उसे पुनर्विवाह कर ले।

१—बोधायन धर्म शास्त्र २।२।३।२७–३१–३२। १५—१६।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपने कुल में उत्तम पुरुष होने पर दूसरे कुल में न जाय।

एक पुनर्विवाहित स्त्री का पुत्र, चाहे वह प्रथम विवाह के पश्चात् क्षत योनि हो गई हो या अक्षत योनि रही हो, पौनर्भव कहाता है।

पौनर्भव आदि पुत्र औरस पुत्र के होते केवल भोजन वस्त्र के अधिकारी हैं।

पौनर्भव आदि पुत्र अदायाद बन्धु हैं। उनको सपिण्डता वा सगोत्रता के कारण तिलांजली आदि देना चाहिए। परन्तु औरस आदि के अभाव में वह पिता "माता के प्रथम पति" की ऋक्थ के भागी होते हैं।[1]

एक स्त्री का "दूसरे पति से" पुत्र पौनर्भव कहलाता है।

विवाह चिन्तामणि में १३ प्रकार के पुत्र बताये गये हैं, जिनमें चतुर्थ पौनर्भव है। आगे चलकर अन्य स्मृतिकारों के मतानुसार पौनर्भव का दर्जा छटा बताया गया है।[2] पौनर्भव पुत्र को बृहस्पति के मतानुसार सातवें हिस्से का, हारीत मतानुसार बीसवें हिस्से का और ब्रह्म पुराण के मतानुसार बाइसवें हिस्से का भागी बताया गया है। पौनर्भव पुत्र की विष्णु, मनु, याज्ञवल्क्य और कात्यायन के शब्दों में व्याख्या की गई है।

पति के मर जाने पर जो स्त्री धर्मिष्ट जीवन व्यतीत करना चाहे, उसको तुरन्त उसके दहेज के प्राप्य और आभरण तथा उसके शुल्क का बाकी भाग भी मिल जाना चाहिए। यदि इनके पाने के पश्चात् वह पुनर्विवाह करे तो उसको इनको व्याज समेत वापिस देना होगा। यदि उसको पुनर्विवाह की इच्छा हो तो पुनर्विवाह के समय जो कुछ उसके श्वसुर, और पति ने उसको दिया हो, वह उसको दे दिया जाय। यदि विधवा अपने श्वसुर के चुने हुए पुरुष के उपरान्त किसी अन्य पुरुष से पुनर्विवाह करे। तो जो कुछ उसके श्वसुर तथा पति ने उसको दिया हो उस पर उसका कोई अधिकार नहीं रहेगा। यदि वह अपने किसी सम्बन्धी के साथ पुनर्विवाह करे तो वह सम्बन्धी जो सम्पत्ति वह स्त्री अपने साथ ले गई हो, वह उसके पहिले श्वसुर को लौटा दे। जो कोई नियमानुसार एक स्त्री को अपनी रक्षा में ले; वही उसकी सम्पत्ति की रक्षा करे। किसी भी स्त्री को पुनर्विवाह कर लेने के पश्चात् अपने मृत पति की सम्पत्ति पर कोई भी अधिकार नहीं होगा। यदि वह धर्मिष्ट जीवन व्यतीत करे तो उसको स्त्रीधन पर पूरा अधिकार होगा। किसी स्त्री को जिसके सन्तान हो, पुनर्विवाह के पश्चात् स्त्री-धन को खर्च करने का अधिकार न होगा।[3]

---

१. वशिष्ठ धर्मशास्त्र (दत्त) १।१७–१९–१४–७२। ७३–७४। १७–७५–७६–७७–९७–९–४७।४८।४९।

२. विवाह चिन्ता मणि—३१

३. विवाह रत्नाकर—३२। १६–२०।१५२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सातवां अध्याय

पुराण

१–प्राचीन रूप

प्राचीन रूप—पुराण शब्द का अर्थ ही 'पुराना' है। प्राचीन शास्त्र को पुराण नाम से पुकारना स्वाभाविक ही बात है। इतिहास और पुराण वैदिक साहित्य का अंग हैं। पर प्राचीन काल में वैदिक साहित्य में ब्राह्मण, आरण्यक; शाखाएँ, प्रशाखाएँ श्रुति, स्मृति गृह्य तथा श्रौ सूत्र ये वेदांग कहाते थे।[1] तथा उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मण ग्रन्थों का वेद पर विशेष प्रभाव रहा। इसलिए प्रायः ब्राह्मण ग्रन्थ ही पुराण ग्रन्थ के नाम से प्रसिद्ध किए जाते रहे। परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों को ब्राह्मण संप्रदाय खूब छिपाकर रखता था।[2] उनकी बहुत-सी कथाएँ, बहुत-सी आख्यायिकाएँ, उनका गधों का बोझ एक ऐसी लुभानी वस्तु बन गई कि क्षत्रियों ने धीरे-धीरे उपनिषदों से ऊब कर पुराणों के रूप में नवीन साहित्य का संग्रह किया, और उन्हें पुरातन प्रसिद्ध करने को उनका नाम पुराण रक्खा। इतिहास, पुराण कल्प, गाथा और नाराशंसी इस साहित्यशाखा में मिला दिए गए।[3] शुरु में यह साहित्य-इतिहास ही कहाता रहा, और इतिहास तथा पुराण 'पञ्चम वेद' कहे जाते रहे[4] और उनका पढ़ना गौरव की बात समझी जाती रही[5]। परन्तु बाद में इतिहास की शाखा को

---

१. स्त्री शूद्र द्विज नन्दानां त्रयी न श्रुति गोचराः।
एवं चकार भगवानू व्यासः कृपण वत्सलः॥ भाग० अ० ४

२. तमितिहासञ्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानु वचनान।
इतिहासस्य च वै पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनम्य प्रियधाम भवति य एवं वेद। अथर्व वेद काण्ड १५ अनु० १ प्र० ६ मन्त्र ११।१२।

३. आख्यानैश्चाप्युदाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराण संहितां चक्रे पुराणार्थ विशारदः॥ विष्णु पुराण पर्व ३।६।१५।

४. सहोवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थं—
मितिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेद मिति। छान्दो० प्र० ७ खंड १

५. एवं विद्वान् वाको वाक्यमितिहासः पुराणमित्यहरहः स्वाध्यायमधीतेतएनन्तृप्तास्तर्पयन्ति सर्वैः कामैः सर्वभोगैः। शतपथ ११।५।७–९
अध्वर्युं ह वै होतारत्येवाध्वर्युस्तार्क्ष्यो वै पश्यतो राजेत्याह ·· तानुपदिशति पुराणां वेदः सोयमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षीतैवमेवाध्वर्युः सम्प्रेष्यति न प्रक्रमान जुहोति। शतपथ १३।४।३–१३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुराण से पृथक् कर दिया गया।[1]

परन्तु उत्तरकालीन हिन्दुओं ने पुराणों को दिन-पर-दिन अधिक महत्व दिया। वे एक बार समस्त जाति के एक मुख्य धर्म ग्रन्थ बन गए। यही नहीं, पुराण की उत्पत्ति भी कई ग्रन्थों में उसी प्रकार लिख दी गई, जिस प्रकार वेदों की।[2] शंकराचार्य तो इसके प्रामाण्य को वेद की भांति स्वीकार करने के इच्छुक थे।[3] जिस प्रकार वेद के विस्तार को ब्राह्मण शाखा आदि के द्वारा बढ़ाया जाता था; उसी प्रकार पुराण को भी उन्नत तथा समृद्ध करने का विधान किया जाता था।[4]

ऐसा जान पड़ता है, जिस प्रकार ब्राह्मणों ने चारों वेदों पर अधिकार प्राप्त किया था, उसी प्रकार उन्होंने पुराणों पर भी एकत्व अधिकार प्राप्त कर लिया था, एवं सब पुराणों को संग्रह करके सबसे प्रथम पुराण को संगठित रूप दिया था।[5] इस से पूर्व पुराण भी उसी प्रकार भिन्न-भिन्न मनुष्यों द्वारा भिन्न-भिन्न स्थानों पर लिख कर रख लिए जाते थे, जिस प्रकार अन्य वैदिक साहित्य। पत्रे के एक भाग पर जितना भाग आता था, उतना लिख लिया जाता था, उससे आगे दूसरे पत्रे पर लिखा जाता था, उससे आगे तीसरे पत्रे पर, इसी प्रकार समग्र पुस्तक समाप्त किया

---

१. एव मिमे सर्वे वेदा निर्मितस्सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणा सोपनिष्काः सेतिहासाः सान्वपाख्याताः सपुराणाः सस्वराः इत्यादि। गोपथ पूर्व भा० २

२. ऋचः सामानि छन्दाक्षसि पुराण यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः॥ अथर्व० ११।७।२४।
तथा टिप्पणी २
एवं वा अरेगस्य महतो भूतस्य निश्वसित मेतद्यऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणां विद्या उपनिषदः इत्यादि।
श० १४।६।१० तथा वृहदारण्यक २।४।११।

३. इतिहास पुराण मपि पौरुषेयत्वप्रमाणान्तरमूलातामाकांक्षते। ब्रह्म सूत्र भाष्य

४ इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थमुपवृंहयेत्। महाभारत

५. पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।
पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरेऽनध।
त्रिवर्ग साधनं पुण्यं शतकोटि प्रविस्तरम्। मत्स्य पुराण, अध्याय ५३
ब्रह्मांड पुराण, अ० १, शिव पुराण, अ० १,
नारद पुराण, अ० ९२।

शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम्।
प्रोक्ता माहिपुराणे च ब्रह्मणा व्यक्तरूपिणा। वामन पुराण अ० १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाता था। इस पुस्तक का एक पत्रा भी वही पुस्तक कहलाती थी, जो सम्पूर्ण पुस्तक का नाम होता था। जैसे ऋग्वेद के उतने भाग को जो एक पत्रे पर लिख लिया जाता था, भी ऋक् कहते थे, और सम्पूर्ण ऋग्वेद को भी 'ऋक्'। कालांतर में इस प्रकार के दोनों ऋग्वेदों में अन्तर दर्शाने के लिए सम्पूर्ण वेद को ऋक्संहिता तथा ऐसे पत्रों को ऋचाएँ कहने लगे। आगे इसी भाग को 'वर्ग' भी कहने लगे। इसी शब्द से फार्सी का वर्ग तथा अरबी का वर्क बना।[1] जहां-जहां वेदों तथा पुराण आदि का नाम बहुवचन में आता है, वहाँ–वहां इसी अर्थ का द्योतक है[2]।

इस प्रकार जब पत्रों पर पुस्तक पूरी हो जाती थी, तो उन में छिद्रकर के एक सूत्र में ग्रन्थ कर एकत्रित कर लिया जाता था। इस संग्रह को ग्रंथ' कहते थे, एवं उन पत्रों की संख्या को 'ग्रंथ संख्या अमुक ग्रन्थ की '५ हजार संख्या है' आदि का यही अर्थ होता है कि उक्त पुस्तक इतने पत्रों पर लिख कर पहिले ग्रथित किया गया था। यही कारण है कि आज जब अक्षर बड़े बड़े पत्रों पर लिखे जाते हैं एवं पहले की अपेक्षा बारीक और स्पष्ट भी होते हैं, तो प्राचीन गणना के अनुसार किसी ग्रन्थ की भी ग्रन्थ सँख्या पूर्ण नहीं मिलती। कालांतर में जब ग्रन्थ पहले की अपेक्षा अच्छे प्रकार और बारीक अक्षरों में लिखे गए, तो ग्रन्थों की संख्या घट गई। इस प्रकार जो अंतर सँख्या में पड़ गया, उसका सामजस्य करने के लिए वेद और शास्त्रों तथा शाखाओं के नष्ट होने की आख्यायिकाएँ प्रचरित की गई।

इस प्रकार पुराण का साहित्य भी धीरे धीरे स्वतन्त्र रूप से बढ़ने लगा। किन्तु इस पर ब्राह्मणेत्तर वर्णों ने (विशेष कर क्षत्रियों ने ही) ध्यान दिया। इसके सग्रह करने, एवं पठन पाठन का कार्य सूत मागध और बन्दियों को सौंपा गया, जो राज दर्बारों में कथक्कड़ या भाट रूप से रहते थे। इनका मुख्य कार्य राजाओं के चरित्रों का संग्रह रखना, उनकी वंशावली की रक्षा करना, एवं उपयुक्त अवसरों पर उन्हीं पुरानी बातों को सुना कर क्षत्रियों को युद्ध के लिए उत्तेजित करता होता था।

---

१. जितना भाग एक बार में पढा जाय, उसे अध्याय कहते हैं। एक पत्रे पर लिखी ऋचाएं वर्ग, एक सांस में पढ़े जाने वाले मंत्र सूक्त, एकत्रित संग्रह होने वाला अथवा एक बस्ते में बँधने वाला भाग मंडल, और एक जिल्द मे रहने वाला भाग पोथी कहलाता था।

२—देखिए टिप्पणी सात तथा

स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्रे धर्मं शास्त्राणि चैवहि।
आख्यानानीति हासांश्चपुराणान्यखिलानि च॥ मनु० ३। २३२
यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविनाराः।
तस्याद्यज्ञात्सर्वहूत ऋचः सामानि जज्ञिरे। यजुर्वेद ३४। ५ यजु०३१।७
यस्यहाचो त्रयानक्षनु ··सामानि यस्म लोमानि···अथर्व १०। २३ ४। २०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज चरितों के प्रसंग के साथ साथ उनकी यात्राओं का वर्णन भी इन में आने लगा। जिससे भूगोल भी पुराण का विषय बन गया। वर्तमान पुराणों में महात्म्या के रूप से जो भी स्थानों का वर्णन मिलता है, वह अत्यधिक अत्युक्ति पूर्ण और अपने वास्तविक अर्थ से बहुत परे हो गया है।

संस्कृत साहित्य का नवीन संस्करण— इस प्रकार यह पुराण साहित्य धीरे धीरे उन्नति करता रहा, एवं ब्रह्म संहिता का कलेवर होता रहा, किन्तु-साहित्य के इतिहास में एक समय आया, जब संपूर्ण वैदिक और पौराणिक साहित्य की जाँच की गई, तथा उसे संग्रह करके सुसंपादित किया गया। यह कार्य व्यास ने किया। उन्होंने जिस प्रकार वेदों का विभाग किया, उसी प्रकार सम्भवतः इतिहास और पुराण विषयक ग्रन्थों का भी संग्रह और संपादन किया।

व्यास ने अपने समय तक के संपूर्ण इतिहास ग्रन्थों को मथ कर एवं तीन वर्ष तक प्रयत्न करके महाभारत नामक इतिहास ग्रन्थ लिखा था,[1] जिस में महाभारत के युद्ध काल तक की संपूर्ण बातें आगई थीं। इस को उन्होंने अपने शिष्य वैशम्पायन पैल, सुमंत, जैमिनि और शुक को पढ़ाया। इस में जितने भाग में कौरव व पाँडवों के युद्ध का उल्लेख किया गया था, उतने भाग का नाम जय रक्खा गया था[2]।

१—भरतानांयतश्चायमितिहासो महाद्भुतः।
महतो इह्येनसोमर्त्यान्मोचयेदनुकीर्तितः
त्रिभिर्षैर्वर्लब्ध कामः कृष्ण द्वैपायनो मुनिः।

महा० आदि पर्व अध्याय ६२

वेदान्तध्यापया मास महाभारत पञ्चमान्।
सुमन्तु जैमिनि पैडं शुकं चैव स्वावतजम्॥ अध्याय ६३
प्रभु वंरिष्ठो वर हो वैशाम्पायन मेव च।
संहितास्त्वैः पद्म के बन भारतीय प्रकाशता॥

२—जयो नामेतिहासोग्यं श्रोतव्य विजिगीषुणा।
महीं विजयते राजा शत्रूंश्चपि पराजयेत्।
इदं पुसवनं श्रेष्ठमिदं स्वस्त्यनं महत्।
* * * * *
धर्म शास्त्र मिदं पुण्यमर्थशास्त्रमिद परम्।
मोक्ष शास्त्र मिदं प्रोक्त व्यासेनामित बुद्धिना।

महाभारत, आदि पर्व, अध्याय ६२

'जय' की कथा कहकर जीविका बिताने वाले ब्राह्मण को 'जयोपजीव' तथा महा-गुरु कहते थे। किन्तु कालान्तर में इस 'जय' शब्द की परिभाषा बदलकर इन प्रचलित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन में से प्रत्येक ने अपनी अपनी संहिताएँ रची थीं, एवं उनका प्रचार किया था।

पुराण संहिता की रचना के पीछे उसके प्रचार और विस्तार का कार्य व्यास ने सूत के पिता रोम हर्षण को दिया था।[1] यही कारण है कि प्रायः पुराण और इतिहासों को सब जगह सूत जी ही सुनाते देखे जाते हैं। इन प्राचीन पुराणों का स्थान जब नवीन पुराण संहिता ने लिया, तभी पुराण की परिभाषा भी इस प्रकार बदल दी गई—

संर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च,
वशानु चरितं चैव पुराणं पञ्च लक्षणम्

यहां यह भी ध्यान में रखने की बात है कि वैदिक विद्वान् पहिले भी तथा इस समय भी इन वर्तमान पुराणों को पुराण मानने में हिचकते थे। सायणाचार्य ने अपने ऐतरेय ब्राह्मण के उपक्रम में पुराण की विवेचना करते हुए लिखा है:—

पुराणों को भी 'जय' का महत्व देने के लिए प्रयत्न किया गया—

विष्णु धर्मादित्यधर्माशिवधर्माश्चाभरत,
कार्षीय वेदं पञ्चमं यत् महाभारतं स्मृतम्।
सौराश्च धर्मा राजेन्द्र नारदोक्ता महीपते
जयेति नाम ऐतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः॥ भविष्य पुराण अ० २

विष्णु, रुद्र और सूत्र सम्बन्धी ग्रन्थों को तथा नारदोक्त रामायण (वाल्मीकि को जो सुनाई थी) और महाभारत को 'जय' कहते थे। इसी श्लोक में "आदित्य धर्माः" कहकर भी जो 'सौरा" दूसरी बार कहा गया है, वह भविष्य पुराण को सम्मिलित करने के लिए कहा गया है। विष्णु, भागवत, गरुड़ और नारद ये चार विष्णु धर्मा' माने जाते हैं। और शैव मार्कण्डेय, लिंग, कूर्म, वराह, स्कन्द, और ब्रह्माँड 'शिव धर्मा' है। भविष्य आदित्य धर्मा। ब्राह्म-धर्म सम्बन्धी ब्रह्म पुराण तथा पद्म पुराण को 'जय' में नहीं गिना है।

१—इतिहास पुराणानां पिता में रोम हर्षणः। भाग० स्कन्ध १, अ० ४

२—एक अन्य स्थान पर शौनक ने भी पुराण की एक संहिता स्वीकार की है जो यह व्यास जी की रची थी।

पुराणे हि कथा दिव्या आदि वंशाश्च धीमताः।
कथ्यन्ते ये पुराणाभिः श्रुत पूर्वाः पितुस्तव॥ आदि० अ० ५

३—एतच्छ्रुत्वा रहः सूतो राजानमिदमब्रवीत्।
श्रूयतां यत्पुरा वृत्तं पुराणेषु मया श्रुतम्। बाल काँड

४—आख्यानैरुपाख्यानैर्गाथाभिः कल्प शुद्धिभिः।
पुराण सहितां चक्रे पुराणर्थं विशारदः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवासुराः संयत्ता आसिन्नत्यादयः इतिहासाः इदं वागो नेव किन्चदासो दित्यादिक जगतः प्रागवस्थानुपक्रम्य सर्ग प्रतिपादकं वाक्य जातंपुराणम् इत्यादि ।

शंकराचार्य का मत भी इसी प्रकार है—"इतिहास इत्शर्वंशीपुरूरवसोः सम्वादादिरुर्वशीहाप्सरा इत्यादि ब्राह्मणमेव । पुराणमसद्वा इदमग्रे आसीदित्यादि ।

व्यास ने स्थान-स्थान पर अपने समय से पूर्व प्रचलित पुराण संहिता का उल्लेख किया है[2] यथा ।

इमं वंशमहम् पूर्वं भार्गव ते महामुने ।
निगदामि यथा युक्तं पुराणाश्रय संयुतम् ।। आदि पर्व अध्याय ५।१५

महाराजा दशरथ ने भी व्यास से पूर्व पुराण का श्रवण किया था[3] ।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि अत्यन्त प्राचीन एक ब्रह्मसंहिता थी, ब्रह्मा ने व्यास ने पुराण संहिता तथा उससे पीछे के पुराणों को संग्रह करके एक और संहिता रची; विष्णु पुराण में भी एक ही संहिता का उल्लेख है । उसमें यह भी वर्णन किया है कि आगे यह पुराणाध्ययन की परम्परा किस प्रकार चली[4] । इसी पुराण के श्लोकों से यह भी पता चलता है कि इस एक संहिता के १८ पुराण किस प्रकार रचे गए ।

२--पुराणों का मध्यकाल

पुराण की ब्रह्म संहिता में किन-किन विषयों का उल्लेख किया गया था, यह बात जानने के साधन इस समय प्राप्त नहीं हैं । यद्यपि कुछ विद्वान् प्रचलित ब्रह्म पुराण को ब्रह्म संहिता बतलाते हैं । एवं उसे ही सर्व प्रथम तथा सबसे पुराना पुराण स्वीकार करने के लिए आग्रह करते देखे जाते हैं । किन्तु उनका यह कथन निराधार है ।

१-श्री कृष्ण लीला सम्बन्धी वर्णन का जैसा विस्तार इस पुराण में है, वह अत्यधिक कल्पित और आधुनिक है ।

२-इसी प्रकार वासुदेव महात्म्य तथा सम्पूर्ण भक्ति विषयक लेख प्रायः ज्यों का त्यों नारद पुराण से उद्धृत है । और नारद पुराण सबसे अन्तिम पुराण है । विशेष कर पुरुषोत्तम महात्म्य और जगन्नाथ तीर्थ का वर्णन । इसकी रचना प्रायः उसी समय को सिद्ध करती है, जब ११ शताब्दी में उक्त मन्दिर बनाया गया था ।

३-और भी जितनी घटनाएँ हैं, वे सब ब्रह्मा के पीछे की हैं, और उन्हें भूतकाल की क्रिया में ही लिखा गया है, इससे सिद्ध है कि यह पुराण उन घटनाओं के घटित हो जाने के पीछे किसी अन्य व्यक्ति द्वारा रचा गया । जिसने आदशार्थ इस ब्रह्मा के नाम के साथ मिला दिया ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कहा जाता है कि ब्रह्मा का वह आदिम ब्रह्म पुराण या ब्राह्म पुराण अप्राप्य है, जो उन्होंने १ लाख श्लोकों में रचा था[1]।

प्राचीन पुराणों का विषय—आरम्भ में पुराण का विषय वैदिक इतिहास, कल्प, शाखा और नाराँश की होते थे। 'इतिहास' के नाम से उसमें सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन, यज्ञों के विकास एवं प्रधान यज्ञकर्ताओं का हाल तथा यजमान, पुरोहित और ऋषियों का वंश, रक्खा जाता था। (कल्प) में यज्ञों में मन्त्रों का विनियोग, उनकी विस्तृत क्रिया, मन्त्रों का माध्यात्मिक और आधि भौतिक व्याख्यान, मन्त्रों के अर्थों के विकास का वर्णन आदि का समावेश किया जाता था। यज्ञ पात्रों की रचना उनका

प्रख्यातो व्यास शिष्योऽभूत सूतो वै रोमहर्षणः।
सुमतिश्चाग्निवर्चश्च मित्रयुः शांशपायनः॥
अकृतव्रणोऽथ सावर्णिः षट् शिष्यास्तस्यश्चाभवत्।
काश्यपः सहिता कर्ता सावर्णिः शांशपरायना;
रोमहर्षिणकाश्चाभ्यास्तिसृणां मूल संहिताः।
चतुष्ठचेनाप्येतेन संतिहानामिदं मुने।
आद्यं सर्वं पुराणानां ....

* * * *

१—ब्रह्मा के नाम से प्रायः प्रत्येक विषय के ग्रन्थों का लिखा जाना स्वीकार किया जाता है। ब्रह्मा ने धनुर्वेद संहिता, आयुर्वेद संहिता, काम शास्त्र, अर्थशास्त्र, मोक्षशास्त्र, धर्म शास्त्र, इतिहास, पुराण, ज्योतिषशास्त्र, आदि न मालूम किस किस विषय पर ग्रन्थ लिखे थे। इन ग्रन्थों में से कोई भी एक लाख से कम श्लोकों में नहीं लिखा गया कहा जाता है उदाहरणार्थ अगले पृष्ठ पर देखिए :—

ततोऽध्याय सहस्माणां शतञ्चक्रे स्वबुद्धि जम्।
यत्र धर्मस्तथैवार्थः कामश्चैवापि वर्णितः॥२९॥
त्रिवर्ग इतिविख्यातो गण एषः स्वयंभुवा।
चतुर्थ मोक्ष इत्येव पृथगर्थः पृथग्गुणाः॥३०॥ (शान्ति पर्व अ० ६०)

तथा—प्रजापतिहवै प्रजाः सृष्ट्वा तासां स्थिति निवंधनं त्रिवर्गस्य साधन साध्यानां शत सहस्रेण प्रोवाच। कामसूत्र० अ० १

इसी प्रकार—इह खल्वायुर्वेदोनाम यदुपाङ्ग मथर्ववेदेस्यानुयाद्यैव प्रजा श्लोक शत सहस्रमध्याय सहस्रञ्चक्रतवान् स्वयंभूः। सुश्रुत अध्याय १

इसी प्रकार अन्य विषयों के ग्रन्थों में लिखा पाया जाता है; किन्तु वे सभी ग्रंथ प्रायः नष्ट हो चुके हैं और अप्राप्त है। महाभारत के उक्त प्रकरण में तो ब्रह्माकृत नीतिशास्त्र की विषय सूची भी दी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपयोग की दृष्टि से विवेचनात्मक वर्णन, यज्ञ सामग्री का संग्रह और उसकी शुद्धि आदि भी इसी प्रकरण में समझी जाती थी। शाखाओं में इस प्रकार की कथाएँ लिखी जाती थीं, जो वैदिक मन्त्रों के शब्दों के आधार पर कल्पना की जाती थी। एवं जिनके आधिभौतिक भावों को छोड़कर वैयक्तिक इतिहास रच लिए गए थे। कालान्तर में इन गाथाओं के आधार पर आख्यान और उपाख्यान रचे गए थे मुक्त पुरुषों का वर्णन नाराशंसों में दिया जाता था। यहाँ हम प्रत्येक का उदाहरण देकर इस विषय को स्पष्ट करते हैं।

इतिहास—वैदिक ग्रन्थों में प्रायः देवासुर-संग्राम, वृतासुर-वध, यज्ञ का इतिहास, यक्ष के इतिहास का वर्णन, सृष्टि रचना का इतिहास, कश्यपर्षि का इतिहास आदि बहुत पुरानी घटनाएं हैं, जिनमें आर्यों का मध्य एशिया से भारत वर्ष में आकर बसने तथा यहाँ के, आदिम निवासियों के लड़ झगड़ कर निकालने का इतिहास मुख्य तया वर्णित है। इस प्रकार की घटनाओं में राजा बलि की कथा या वामन अवतार की कथा, शतपथ ब्राह्मण में अधिक विस्तार से दी गई है। अन्तर केवल इतना है—कि राक्षसों के अधिपति का नाम वहां कुछ भी नहीं दिया है, किंतु पुराणों में राजा बलि को असुराधिपति बना कर कथा को अत्यन्त रोचक बनाया गया है। देखिए :—

देवाश्च वाऽसुराश्च। उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे। ततो देवा अनुज्यमिवा सुरथ असुरा मेनिरेऽस्माकभये वेदं खलुभुवन मिति। १ ते हो चुः। हन्तेमाम् पृथिवीं विभजाम है तां विभज्योपजीवामेति। तामौक्ष्मणै श्चर्यभिः पश्चात्प्राञ्जो निभजमानाअभीयुः ॥२॥ तद्वै देवाः शुश्रुवुः। विभजन्ते ह वा इमामसुराः पृथिवीं प्रेत तदेष्यामो यत्रेमामसुरा विभजन्ते ऽके ततः स्याम यदस्यै न भजेमइति। ते यज्ञमेव विष्णुं पुरस्कृत्येयुः ॥३॥ ते हो चुः। अनुनोऽस्यां पृथिव्यामाभजता स्त्वे व नोप्यस्यां भाग इति। हा सुरा असूयन्त इवो चु यविदेवैष विष्णु रभिशेते त वद्वोदद्म इति ॥४॥ वामनोऽविष्णुरास। तद्देवा न विजीहिडिरोम इद्वै नोऽदुर्ये नो यज्ञ सम्मितम दुरिति ॥५ ते प्राञ्च विष्णु निपाद्य छन्दोभिरभितः पर्यगृह णन् गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृहणामीति दक्षिणतस्यैष्टुयेनत्वा छन्दसापरिगृहणामीत्युतरतऽ ॥ ६ ॥ तं छन्दोभरमितः परिगृह्य अविनं पुरस्तात् समाधाय तेनार्चन्तः श्राम्यन्तश्चेरु स्तेनेमांॐ सर्वांपृथिवीं ॐ समविन्दन्त तद्यदेने माॐ सर्वांॐ समविन्दन्ततस्माद्वेदिर्नाम। तस्मादाहुर्पावती वेदि स्तावती पृथिवीत्येतया हीमाॐ सर्वांॐ समविन्दन्तैवॐ इ वाऽइयाॐ सर्वाॐ स पत्नानाॐ संवृङ्क्ते निर्भजत्यस्यै स पत्नान्य एवमेतद्वेद ॥७॥

प्रजापति की दो सन्तानें देव और असुर थे, जिनमें सदा परस्पर शत्रुता बढ़ी-चढ़ी रहती थी। देवता हार गए और असुरों ने सब पृथिवी को अपनी समझ लिया, और बैल के चमड़े का तस्मा लेकर सब भूमि को परस्पर बांटने लगे। देवतों ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह सुन कर विचारा कि जब सब पृथिवी को आपस में बांट कर ये असुर अधिकार कर लेंगे, तो हमारा क्या होगा ? हमें यह पृथिवी नहीं मिलेगी, इस लिए वे यज्ञ अर्थात् विष्णु को आगे करके असुरों के पास गए, और कहा—कि पृथिवी में हमारा भी भाग है। असुरों ने कहा—जितने स्थान में तुम्हारा यज्ञ या विष्णु शयन करता है, उतनी भूमि तुम्हें देंगे। असुर देवों से इर्ष्या भी करते थे। विष्णु वामन आकार के अर्थात् बौना थे। किन्तु देव इस से भयभीत नहीं हुए कि हमें असुर केवल यज्ञ के बराबर ही स्थान देंगे। उन्होने विष्णु को आगे करके और यजुर्वेद के अध्याय एक के २७ वें मन्त्र 'गायत्रेण त्वा' आदि को पढ़ते हुए चारों दिशाओं में बढ़ना आरम्भ किया इस प्रकार वेदमन्त्र द्वारा विष्णु को सब तरफ से बचाते हुए देवों ने परिश्रम किया और सब तरफ को फैले। इस तरह उन्होंने यह सम्पूर्ण पृथिवी प्राप्त करली। क्यों कि उन्होंने यज्ञ के द्वारा पृथिवी को प्राप्त किया इस लिए यज्ञ भूमिका का नाम वेदि है। जितनी वेदि होती थीं, उतनी ही पृथिवी देवताओं की हो जाती थी।

इससे आगे इस प्रकार प्राप्त की हुई भूमि को खेती के योग्य जिस तरह देवों ने बनाई उस क्रम का वर्णन है।

एक अन्य स्थान पर यज्ञ का विस्तार तीनों लोकों में इस तरह लिखा है—

विष्णुस्त्वा क्रमतामिति। यज्ञो वै विष्णुः। सदेवेभ्य इमाँ विक्रान्ति विचक्रमे। यैषामिवं विक्रान्ति रिदमेव प्रथमेन पदेन पस्पराथेदमन्तरिक्षं द्वितीयेन दिवमुत्तमे नैताम्वेशेष एतस्मै विष्णु तज्ञो विक्रन्ति विक्रयते। शत० कांड १।१।२।१३

यज्ञ रूप विष्णु आप चलिए। उन्होंने चलना ऐसा आरम्भ किया कि प्रथम पग में इस सम्पूर्ण (पृथिवी) को पार कर लिया। दूसरे पग में अंतरिक्ष को, और तीसरे में उत्तम दिव स्थान को पार कर लिया। इसीलिए विष्णु की चाल थी।

इस कथा में असुरों का कोई राजा नहीं हैं, तो भी भूमि उनसे माँगी गई है। पुराणों में उनका राजा बलि यज्ञ करता है, एवं उसके दान से भयभीत होकर इन्द्र के कहने से विष्णु अकेले मांगने जाते हैं। मत्स्य पुराण के अनुसार विष्णु ने उतनी भूमि माँगी. जितनी उनके 'अग्नि रक्षा' या 'अग्नि गृह' के लिए यथेष्ट हो।[1] शायद इसका अभिप्राय यज्ञ की वेदि से ही है। बढ़ते-बढ़ते इस वैदिक काल की कथा ने पुराणों में वह स्वरूप प्राप्त कर लिया, जो इस समय उपलब्ध होता है।

दूसरी कथा सृष्टि-उत्पत्ति के सम्बन्ध में उस जल प्लाव की है जिसे आम तौर से नूर का तूफान कहा जाता है। मत्स्य पुराण में विशेष रूप से इसी आख्यान का

१—ममाग्नि शरणार्थं देहिराजन्यदभयम्। अ० २४६। ४८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विस्तार पूर्वक उल्लेख पाया जाता है। किन्तु इसका मूल भी उसी तरह प्राचीन ब्राह्मणों में मिलता है।[1]

मनु ने प्रातःकाल अवनेजन के लिए हाथ में जल लिया, उस में उसके हाथ में एक मछली आ गई। मछली बोली—"मेरा पालन कर, मैं तुझे पार करूंगी।" "तू मुझे किस से पार करेगी?" "यह सम्पूर्ण प्रजा डूबेगी, उस से मैं तुझे पार

१—मनवे ह वै प्रातः अवग्नेय मुदक माजह्नुयर्थेदं पाणिभ्यामवनेजनाया हरन्त्येवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणीऽप्रापेदे ।१। स हास्मै वाचमुवाद। विभृहि मा। पारपिष्यामित्वेति। कस्मान्मान्वस पारपिष्य सीत्पौद्य इमाः सर्वा प्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति। कथं ते भृति रिति ।२। सोवाच यावद्वै क्षुल्लका भवामो वह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवत्युत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति। कुम्भ्यां माग्रे विभरासि। स यदा तामभिवर्धऽथ कषूं खात्वा तस्यां मा विभराषि। स पदो तामधिवर्धा अथ मा समुद्रमभ्यवहरासि। तर्हि वाः मीतिनाष्ट्रो भवितास्मीति ।३। शशव्द्ध झष ग्रास। सहि ज्येष्ठं वर्धतेऽग्रथेतिथीथं समां तदौघ आगन्ता। तन्मा नावमुपकल्प्यो पासासै स औघ उत्थिते नावमापद्यासैतन्मा ततस्त्वा परपितास्मीति ।४। तमेव भूत्वा समुद्रमभ्य वजहार। स यतिथीं तत्समां परिदिदिदेशततिथीं समां नाव मुपकल्प्पो पासां चक्रे। स औघ उत्थिते नावमापेदे। तथं स मत्स्य उपन्याप्लुप्लवे। तस्य शृंगे नावः पाशं प्रतिमुमो च तेनैत मुत्तरं गिरि मतिदुद्राव ।५। सहोवाच अपीपरं वै त्वा वृक्षे नाव प्रतिवघ्नीश्रुव। तं तु त्वा मा गिरौ सन्त मुदकमन्त रछैत्सीधाव दुदुकथं समवायात्तावदन्व सर्पा सीति। स ह तावत्तावदेना वान्व ससर्प। तदप्तेत दुत्तरस्य गिरेर्मनोरब सर्पणं मित्य औफो ह ताः सर्वाः प्रजा निरुवाहा थेइ मनुरेवैकः परिशिशिषे ।६। सोऽर्चछ्राम्यंश्च चार प्रजा कामः। तत्रापि पाकपज्ञेमे जे। स घृतं दधिमस्त्वापिक्षा मित्यत्सु जुहवां चकार। ततः संवत्सरे योषित् सम्बभूव। सा ह पिकमाने वादेसाय तस्यै ह स्म घृतं पदे सन्तिष्ठते तया मित्रा वरुणौ सञ्जगमाते ।७। ताथं स हीयतुः। कासीति मनोर्दुहितेत्ये वा वयोब्रूविति नेति हो वाच य एव मामजीजनत तस्यै वा हमस्यीति। तस्या पीत्वमीषाते तद्वा जज्ञौ तद्वा न जज्ञा विति त्वे वेपाप सा मनु माजगाम ।८। ताथं इ मनुरुवाच कासीति। त्वदुहितेति। कथं भगवति ममदुहितेति या अभूरप्सु आहुतोरहौषीर्घृतं दधिमत्वा-पिक्षाततो माम जनीजनथाः। साशीरस्मा तां मा यज्ञेऽवकल्पय। यज्ञे चेद्वै माव कल्पयिष्पसि वहु प्रजया पशुभिर्भविष्यसि। याममुषाकां चाशिष माशाशिषेस सा ते सर्वा समर्विष्यतऽइति। तामेतन्मध्ये मज्ञस्या व कल्पपन्मध्तर्थ ह्येतयंज्ञ स्थध्तरा प्रपाजानुवाजानू ।९। तयाच्चं छ्राम्यञ्चक्तर प्रजा कामः। तपेमां प्रजातिं प्रजज्ञे। येयं मनोः प्रजातिर्याम्वेनया कां चाशिष माशास्त साऽस्मै सर्वा समर्धयत सैषा निदाने न यदिडा ।१०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करूँगी।" "तेरा पालन कैसे होगा ?" मछली ने कहा "जब तक मैं छोटी हूँ, तब तक मैं अपनी रक्षा नहीं कर सकती, तथा बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, इसलिए तुम मुझे पहले घड़े में रक्खो। जब मैं घड़े से बड़ी हो जाऊँ, तो मुझे बहते पानी की नाली बना कर उसमें डाल देना; जब मैं उससे भी बड़ी हो जाऊँ तो मुझे समुद्र में डाल देना। तब मैं अपनी रक्षा स्वयं कर सकूँगी। यह मछली वास्तव में अनादि ब्रह्म थी। अब वह मछली बड़ी हो गई। तब उसने कहा—"तुम इतनी प्रजा लेकर एक नाव बनाकर उसमें उसे रख कर स्वयं उस नाव में बैठना, तो मैं तुम्हें पार करूँगी।" उसे इस प्रकार बढ़ा कर उसने समुद्र में छोड़ दिया, और जितनी बड़ी नाव को उसने कहा था, उतनी बड़ी नाव बना कर उस प्रजा-समूह को उसमें बिठाया, तथा स्वयं उसमें बैठा। प्रलय की बाढ़ उठने पर उसने उस मत्स्य के शृङ्ग में नाव को रस्से से बाँधा, और वह मत्स्य उस नाव को लेकर उत्तरगिरि की तरफ दौड़ी। मत्स्य ने कहा—वहाँ तू उस नाव को वृक्ष से बांध देना। जब तक प्रलय का जल रहे, और पर्वत जल में डूबा रहे, तब तक तू उस नाव में रहना, तथा ज्यों-ज्यों पर्वत जल में डूबता जाय त्यों-त्यों तुम भी नाव को ऊपर को सरकाते जाना। ऐसा ही किया गया। इस प्रलय में इस प्रजा-समूह को छोड़कर शेष सब प्रजा डूब गई, केवल मनु शेष रहा।

मनु ने प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से श्रम किया (तप किया) और यज्ञ के द्वारा दही, दूध, घी आदि की आहुति जल में दी। एक वर्ष पीछे एक स्त्री उत्पन्न हुई। उसके पास मित्रावरुण आए, और उससे बोले—'तू कौन है ?' 'मनु की पुत्री' 'हम दोनों की, ऐसा कह'। 'नहीं मनु ने मुझे उत्पन्न किया है, मैं उसी की पुत्री हूं।'

वह मनु के पास चली गई। मनु ने उससे पूछा—'तू कौन है ?' 'तेरी लड़की।' 'हे भगवति ! तू मेरी पुत्री किस तरह है ?' 'वह जो आहुतियों के द्वारा घी, दूध और दही जल में डाला था, उस मे मेरा जन्म हुआ। मैं वही आशीः (वरदान) रूप हूं। इसलिए मुझे यज्ञ में स्थापित कर। यदि तू ऐसा करेगा, तो तेरे बहुत-सी प्रजा और पशु होंगे। और जिस किसी को इस आशीः से युक्त करेगा उसे भी सब समृद्धि प्राप्त होंगी।

मनु ने उसके साथ तप और श्रम किया, क्योंकि उसे प्रजा की कामना थी, जिस से मनु को यह प्रजा प्राप्त हुई। यह मनु की प्रजा उस आशीः से जो कामना करती है, वह उसे प्राप्त होता है। वह आशीः इडा थी।

यह सब प्रलय के मत्स्य, नाव और स्त्री (शतरूपा) की उत्पत्ति का वर्णन मत्स्य पुराण के आरम्भ के अध्यायों में यथावत् पाया जाता है। सृष्टि-उत्पत्ति के सम्बन्ध में इसी प्रकार की अनेक कल्पनाएँ पहले समय में प्रचलित थीं, जिनका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधार चाहे तो वेद के मन्त्र रहे हों, चाहे ऋषियों के अपने वे विचार, जिन्हें वेदों में स्थान नहीं मिला है, किन्तु ब्राह्मणों में वे विचार स्थान-स्थान पर पाए जाते हैं। मत्स्यावतार उसी का नमूना है। मत्स्यावतार की कथा भागवत के आठवें स्कन्ध के अन्तिम अध्याय में भी मिलती है। वहाँ मनु के स्थान में राजा सत्यव्रत का नाम दिया है, जो सूर्यवंशी था। किन्तु महाभारत के वन पर्व में इसी प्रसंग में अध्याय १८७ में वैवस्वत मनु का ही नाम पाया जाता है। दूसरा उदाहरण कूर्मावतार का है। लिखा है—

रसो वै कूर्मो रस मेवैतदुपदधाति। यो वै स एषां लोकानामप्सु प्रविद्धानां पराङ्रसोऽत्यक्षरत्स एष कूर्मस्तमे वै तदुपदधाति। यावानु वै रसस्तावानात्मा स एषः इमे एव लोकाः।१···स यत्कूर्मो नाम एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजाः असृजत यदसृत। करोत्रद्यदकरोत्तस्मात्कूर्मः। कश्यपो वै कूर्मस्तमादाहु सर्वाः प्रजाः काश्यपः इति। २ सयस कूर्मोऽसौ स आदित्यः प्राणो वै कूर्मः प्राणो हीयाः सर्वाः प्रजा करोति। शत० ७।४।१।१–१०।

तथा—अन्तरतः कूर्मः भूतपयन्तं तमब्रवीत् मम वै त्वङ्मासात्समभूत्। नेत्यब्रवीत् पूर्वमेवाहमिहासमिति। तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्। स सहसशीर्षाः पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्रपात्भूत्वो तिष्ठत्।३ तैत्तिरीयारण्यक १।२३।३

कूर्म को धारण करने का अभिप्राय यह है कि रस को धारण करता है, क्योंकि रस कूर्म को कहते हैं। जिसने जल में डूबे हुए इन लोकों का रस निकाल कर इन्हें शुष्क किया, अर्थात् जल में डूबी हुई पृथ्वी को सुखा कर बसने योग्य बनाया, वही कूर्म है। जितने रस हैं, उतनी आत्मा हैं, और वह ये दृश्यमान लोक ही हैं। वास्तव में वह कूर्म ही है, जिसने प्रजापति बनकर प्रजा को रचा; क्योंकि जो कर्त्ता है, वह कूर्म है। कूर्म ही कश्यप है, इसीलिए कहा जाता है कि कश्यप से यह प्रजा उत्पन्न हुई तथा प्रजा 'काश्यप' है। यह कूर्म ही आदित्य (सूर्य) है। कूर्म ही प्राण हैं, क्योंकि प्राण से ही यह प्रजा उत्पन्न हुई हैं।

इतना ही नहीं, किन्तु इस कूर्म को सहस्र शीर्षा सहस्रक्षः आदि पुरुष सूक्त वाला पुरुष भी तैत्तिरीयारण्यक में बताया है, लिखा है—"प्रजापति क शरीर से रस कंपायमान होकर इधर-उधर विचरने लगा। प्रजापति ने कहा—'कूर्म! तुम मेरी त्वचा और मांस से उत्पन्न हुए हो।' कूर्म ने कहा 'नहीं। किन्तु मैं तो यहाँ पहले से ही मौजूद था, यही तो पुरुष का पुरुषत्व है कि वह पहले से ही था।" देखो सहस्रशीर्षा पुरुष आदि।

कश्यप तथा उनकी स्त्रियों से अनेक प्रकार की प्रजाओं के उत्पन्न होने की कथाओं से वर्तमान पुराण व्याप्त हैं। इनका मूल केवल यही है कि 'कश्यप' पश्यक को कहते हैं। किन्तु उसकी अनेक स्त्रियों की कल्पना और उनसे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वृक्ष, सिंह, सर्प आदि की उत्पत्ति की कल्पना बिल्कुल पौराणिक है, वैदिक नहीं, तो भी उनका आधार ये ब्राह्मण ग्रंथ है। शतपथ ब्राह्मण का कांड २।५।१–४ तक देखिए।

"आरम्भ में पृथिवी जल में डूबी थी, केवल थोड़ी-सी जल से बाहर बची थी। उसे वराह ने जल से निकाला एवं मैथुन द्वारा प्रजा की सृष्टि की।" ऐसी कथा शतपथ में आती है। उसी कथा के आधार पर मत्स्य पुराणादि प्रचलित पुराणों में वराह अवतार की कथा लिखी गई है।[1] राक्षसों द्वारा भूमि का पीड़ित होकर विष्णु के पास जाना और प्रार्थना करना आदि बाद की रचना है।[2] इसी

१—अथ वराह विहतम्। इयत्यग्रऽआसीदितीयती इवाइय मग्रे पृथि व्यास। प्रादेश मात्री। तामेमूष इति। वराह उज्जघान। सोऽस्याः पति। प्रजापत्तिस्तेनैवैमे–तन्मिथुनेन प्रियेण धाम्ना समर्धयति कृत्समं करोति·····भूतस्य प्रथमजा इतीयं। वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा तदनयै वै नमेतत्समर्धयति कृत्सनं करोति।

शत० १४।१।२।३–६

२–जगदण्डमिदं पूर्वमासीद्दिव्यं हिरण्यमयम्;
प्रजापते रियं मूर्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः ॥१॥
भूयोष्टधाविभेदाण्डं विष्णुर्वैलोकजन्मकृत्;
चकार जगतश्चात्र विभागं स विभागकृत् ॥३॥
यच्छिद्रमूर्द्ध माकाशं विवराकृतितां गतम्।
विहितं विश्वृयोगेन यद्धस्तद्रसातचम् ॥४॥
यदण्डमकरोत्पूर्वं देवोलोक चिकीर्षया।
तत्र यत्सलिलां स्कन्धं सोऽभवत्काञ्चनो गिरिः ॥५॥
शैलै सहितै महती मेदिनी विषमाभवत् ॥६॥
तैश्च पर्वत जालौर्वैर्बहुयोजन विस्तृतैः।
पीड़िता गुरुभिर्देवी व्यथिता मेदिनी तदा ॥७॥
अशक्ता वै धारयितमधस्तात् प्राविशत्तदा।
पीड्यमाना भगवतस्तेजसा तस्य सा क्षितिः ॥९॥
पृथिवीं विशन्तीं दृष्ट्वातु तामधो मधुसूदनः।
उद्धारार्थं मनश्चक्र तस्या वै हितकाम्यया। मत्स्य. पुराण अ० २४८

तैत्तिरीयारण्यक में लिखा है—

आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्। तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाचरत्स इमामपश्यत्। तं वराहो भूत्वा हरत्। ७।१।५।१·

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार हिरण्याक्ष का पृथिवी को हर लेने की कथा नवीन है।[1]

कल्प—'वैदिक यज्ञ' के व्याख्यान के अवसर पर यज्ञों का इतिहास एवं उनके विकास-क्रम के सम्बन्ध में यथेष्ट लिखा जा चुका है। इस प्रसंग की अधिक बातें शतपथ ब्राह्मण के आदि के कांडों में विस्तार से लिखी है।

गाथा—पुरुरवा और उर्वशी का व्याख्यान ऐसी कथा का उदाहरण है, जिसका मूल वेद मंत्रों में पाया जाता है, किन्तु रूपांतर से। अहल्या, प्रजापति और उसकी पुत्री की कथा आदि उपाख्यान इसी प्रकार की गाथाएँ हैं। जिन्हें यहाँ विस्तार पूर्वक वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है।

नाराशंसी—शतपथ ब्राह्मण के दशवें कांड से आगे जनक, याज्ञवल्क्य, पौलायन, देवाप शौनक, परीक्षित, जनमेजय आदि अगणित नाराशंसी पाई जाती हैं।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में प्रायः सर्वत्र इन्हीं ग्रन्थों को अथवा इन ग्रन्थों के आधार सूत्र ग्रन्थों को 'पुराण' कहा गया है। सायण और शंकर जैसे विद्वान् भी इन्हीं ग्रन्थों की ओर संकेत करते हैं, और उनके प्रामाण्य पर बल देते हैं। किन्तु जब इन इतिहासों, कथाओं, कल्पों और पुराण आदिकों को एकत्रित करके ब्राह्मणः के नाम से प्रसिद्ध किया गया, तो फलतः उनकी पुराण संज्ञा न होकर उन ग्रन्थों में उनकी ब्राह्मणों के नाम से ही गणना होने लगी थी। इसीलिए व्यास ने आरम्भ से अपने समय तक के सब पुराणों को संग्रह करके एक संक्षिप्त पुराण संहिता लिखी[2] और उसे अपने शिष्यों को पढ़ाई। इन शिष्यों में प्रधान रोम हर्षण सूत था[3]। उसके साथ

तैत्तिरीय ब्राह्मण—स वराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत्। स पृथिवीय मधः आच्छत।
१।१।३

अथर्व वेद—वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजिहीते मृगाय।
तथा उद्धृतासि वराहेण कृष्णे न शत वाहुना।

१—शतपथ १३।३।४।६ में २० प्रधान-प्रधान अश्वमेध करने वाले राजाओं का इतिहास दिया है। इसी ब्राह्मण के अन्त में एक बहुत विस्तृत वंशावली भी दी गई है।

२—चतुर्लक्षमिदं प्रोक्तं व्यासेनाद्भुतकर्मणा,
इहलोक हितार्थाय संक्षिप्तं पमर्षिणा। मत्स्य० अ० ५३ श्लोक ५८

३—आख्या नैश्चोपाख्यानैर्गाथाभिः कल्प शुद्धिभिः।
पुराण संहिताश्चक्रे पुराणार्थं विशारदः ॥१५॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथ यद्यपि अकृत व्रण, सावर्णि, सुमति, जग्निवर्चा, मित्रयु और शाशांपायन ने भी पुराण संहिता पढ़ी थी, किन्तु इसका क्रमागत प्रचार रोम हर्षण ही करता रहा। उसने व्यास से स्वयं पढ़कर अपने शिष्य सूत को पढ़ाया, और सूत ने ऋषियों को सुनाया तथा उसके पश्चात् उसकी सहिता इसी प्रकार उसी सूत से सुनाई जाती रही[1]। इसके विरुद्ध सावर्णि, शाम्पायन तथा काश्यप तथा अमृत व्रण ने अपनी अपनी स्वतन्त्र संहिताएँ रचकर उनका प्रचार किया। ये संहिताएँ चार चार पादकी थीं, जो व्यास की संहिता के पश्चात् चार संहिता और तैयार हुई थी, इस प्रकार उस समय तक पांच संहिता थी। इनमें से प्रत्येक की श्लोक संख्या चार हजार अनुष्टुप से अधिक नहीं थी[2]। इस कथन की पुष्टि वायु और ब्राह्मांड पुराण से होती है। ये पुराण इस समय भी चार-चार पादों मे विभक्त हैं, किन्तु इनकी श्लोक संख्या में अन्तर है। इससे अनुमान होता है कि व्यास की पुराण संहिता तथा ये चार सहिताएँ होंगी, जो ब्रह्म सहिता से नवीनतर तथा मध्यकालीन शतपथ आदि सग्डीत पुराणों से नवीन थी[3]। किन्हीं-किन्हीं का कथन है कि अरुणारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृत व्रण, वैशाम्पायन और हारीत से परीक्षित ने छः पुराण सुने थे। किन्तु इस कथन के लिए कोई आधार नहीं है।

प्रख्यातो व्यास शिष्यो ऽभूत्सूतो वै रोम हर्षणः।
पुराण संहिता तस्मै हदौ व्यासो महाशुनिः ॥१६॥
सुमतिश्चाग्निना वर्च्चाश्च मित्रयुः शाशपायनः।
अकृत व्रणोऽथ सावर्णिः षट् शिष्यास्तस्य चा भवन ॥१७॥
काश्यपः सहिता कर्ता सावर्णिः शासपायनः।
रोम हर्षिका श्चान्यास्तिसृणां मूल संहिता ॥१८॥
चतुष्ठयेनाप्येतेन संहितानामिदं मुने।
आद्यं सर्वपुराणानां पुराणां ब्राह्ममुच्यते ॥१९॥
अष्टादश पुराणानि पुराणज्ञाः प्रचक्षते ॥२०॥ विष्णु पुराण पर्व ३। ६ अ० १६-३१

१—मत्पितुर्मम पित्रा च मया तुभ्यं निवेदितम्। मत्स्य० अध्याय ५७

२—पारजिटर नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १० पृष्ठ २९६ पर उद्धत। तथा सर्वास्ताहि चतुष्पादा सर्वास्ताश्चार्थ वाहिकाः। वायु पुराण

३—कुछ ग्रन्थों को आदि पुराण के नाम से कहा गया है, यथा—

श्रृणुष्वाहि पुराणेषु देवेभ्यश्च यथा श्रुतम्
ब्रह्मणानाञ्च वदतां श्रुत्वा वै महात्मनाम्। हरिवंश तथा पद्म पुराण।
प्रोक्तां इत्यादि पुराणेषु आदि वामन पुराण

किन्तु भागवत का क्रम इससे कुछ भिन्न है और उसमें व्यास के शिष्यों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यास ने एक पुराण लिखा, १८ नहीं। और उनके शिष्यों ने तीन पुराण तैयार किए और एक संहिता इन सब की अपेक्षा ब्राह्म संहिता थी। हमारा अनुमान है कि वर्तमान १२ पुराणों में से अधिकाँश इन्हीं ५ पुराणों के आधार पर लिखे गए, जिन्हें ब्रह्मा, व्यास तथा उनके शिष्यों ने लिखा था—ये ही पाँच ग्रन्थ आदि पुराण भी कहे जाते थे[1]।

आदि पुराण ग्रन्थ—अब प्रश्न यह है कि ये पाँच पुराण कौन से थे। इस प्रश्न का निश्चयात्मक उत्तर देना सरल नहीं है किन्तु हमारा अनुमान है कि व्यास ने स्वयं वह पुराण लिखा हो, जिसका नाम इस समय 'हरिवंश पुराण' है, वायु और ब्राह्मांड का उल्लेख ऊपर होचुका है। विशेष दो पुराण में एक मत्स्य होना सम्भव है, और दूसरा भविष्य, कूर्म या विष्णु में से कोई एक हो सकता है।

पुराणों का विषय—इन आदि पुराणों के उपादेय विषय केवल वही नहीं थे जो पहले 'पुराण' में समझे जाते थे, किन्तु उनमें भी अन्तर पड़ गया, तथा पुराण के विषय को इस प्रकार निश्चय किया गया।

संहिता को "मूल संहिता" लिखा है—

त्रय्यारुणिः, कश्यप, सावर्णि, अकृत ब्रह्म वैशाम्पायन और हारी ने व्यास शिष्य रोमहर्षण से पुराण पढ़े जो सूत का नाम था। इन सबसे सूत ने पढ़ा तथा कश्यप, सावर्णि सूत और अकृत प्रण ने व्यास के शिष्य से वार संहिता पढ़ी।

त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावार्णिरिकृत व्रणः।
वैशम्पायन हारीतौ षड्वै पौराणिका इमे ॥५॥
अधीयन्त व्यास शिष्यों संहितां मत्पितुर्मुखात्।
एकैकामहमे तेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम् ॥६॥
काश्यपोऽहम् च सावर्णी राम शिष्यो अकृत व्रणाः।
अधीमहि व्यास शिष्या च्चतश्रो मूल संहिता ॥७॥ स्कन्द १२ अध्याय ७

१—आख्यानै भारतादीतिहासैः। उपाख्यानैस्तप्रसंगैः ऋभु निदाघ कथाद्याः गाथाः पितृ पृथिवी गीताद्याः कल्पशुद्धि वराहादिकल्पवृत्तांन्त निर्णया। पितृ कल्प मंच कल्प विचित्रा। ऐतैः सह सर्गादि पञ्च लक्षणाहां पुराण संहितामष्टादश पुराणनां संक्षेपरूपी व्यासश्चक्रे यथोक्तं मात्स्ये पुराणं सर्व शास्त्रमित्यादि।

काश्यः अकृत व्रणः 'भाश्यपोह्यकृत व्रणः' इति वायूक्तेः। तिसृणां काश्यपादिना कृतानां संहितानां चतुर्थी रोमहर्षणि काख्या व्यासेन संक्षिप्ता रोमहर्षणना धीता स्वशिष्येभ्वः प्रतिपादिता रोमहर्षणिना शौनकादिभ्यः स्थापिता··· ··· एतत्संहिता चतुष्ठयंमूलाभूतत्वं सर्व पुराणानां साधारणम्। ब्राह्मपुराणाम् आद्यम् मूलभूतम्।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंश चरितंनैव पुराणं पञ्च लक्षणम् ।

विष्णु, ब्रह्मांड, श्री मद्भागवत, मत्स्य तथा अन्य सब पुराणों में तथा शुक्र नीति, अमर कोश और महाभारत आदि में भी पुराणों की परिभाषा इसी श्लोक के द्वारा की गई है ।

यहां यह कहना आवश्यक है कि व्यास के रचे पुराणों को चाहे आदि पुराण कहा जाता हो, या चाहे ब्रह्मा के रचे पुराण का यह नाम रहा हो, किन्तु व्याडि के समय तक यह उपलब्ध था, उपने उसका एक श्लोक भी अपने विकृति वल्ली नामक ग्रंथ में उद्धृत किया है ।[1] किंतु कात्यायन, मनुस्मृति का वर्तमान सस्करण जो भृगु कथित है, और बौद्ध ग्रन्थ सुत्तनिपात में यह शब्द बहुवचन में इन्हीं मूल-संहिता के लिए आया जान पड़ता है । उस समय पुराण केवल व्यास रचित ही नहीं समझे जाते थे, किंतु व्यास आदि रचित माने जाते थे । मनु के मेधातिथि नामक टीकाकार ने तो उक्त ग्रन्थ के तीसरे अध्याय के २३२ वें श्लोक की टीका में 'पुराणानि' शब्द की व्याख्या में यह बात स्पष्ट लिख दी है ।[2]

आदिम पाँच संहिताएँ और ब्राह्म या ब्रह्मांड पुराण—ऊपर ब्राह्म संहिता को सबसे प्राचीन कहा गया है, जिसे ब्रह्मा ने लिखा था, किंतु वह संहिता अब नष्ट हो चुकी है । एक पुराण 'ब्राह्म पुराण' के नाम से आज-कल प्रचलित है । कुछ लोग उसे ही उस प्राचीन संहिता का सशोधित रूप अनुमान करते हैं, और कुछ उसे ब्रह्मा रचित ही मान लेने के लिए आग्रह करते हैं । नारद पुराण में इसके विषय में लिखा है कि इस पुराण को व्यास जी ने सबसे पहले बनाया था ।[3] इस कथन से स्पष्ट है कि यह ब्रह्मा-रचित नहीं माना जा सकता ।

ब्रह्मांड पुराण—इसके विरुद्ध एक अन्य पुराण 'ब्रह्मांड पुराण' के नाम से भी मिलता है, जिसके विषय में उसी नारद पुराण में लिखा है :—

ब्रह्मांडञ्च चतुलक्षं पुराणत्वे न पठ्यते ।
तदेवयास्य गदितमत्राष्टादशधा पृथक् ।
पाराशर्य्येण मुनिना सर्वेषामपि मानद ।।

१—नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १०, पृष्ठ २९५

२—"पुराणानि व्यासादि प्रणीतानि सृष्ट्यादि वर्णन रूपाणि"

३ ब्राह्मं पुराणं तत्रादो सर्वलोक द्वितीय च ;
व्यासेन वेद विदुया सभाख्यातं महात्मना ।
तद्वैसर्व पुराणाख्यं ···· ··· दश साहस्रमुच्यते ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रह्मांड पुराण के श्लोकों की सख्या ४ लाख है, तथा उसी चार लाख श्लोकों की संख्या को व्यास जी ने अठारह भागों में बाँट दिया गया है। यह ब्रह्मांड पुराण ब्रह्मा ब्रह्मांड महात्म्यमेधि कृत्याब्रवीत्सुतः। मत्स्य ब्रह्मांड का वर्णन करने के लिए ब्रह्मा ने कहा था, तथा यह अठारह भागात्मक चतुर्लक्षी पुराण पहले एक शत कोटि विस्तार का था, जिसे व्यास जी ने ४ लाख में संक्षिप्त किया था[१]। अर्थात् प्राचीन ब्राह्म संहिता या ब्रह्मांड पुराण किसी न किसी रूप में व्यास जी के पश्चात् भी प्रचलित रहा, और वह ब्रह्मांड पुराण के रूप में था—यद्यपि उस की श्लोक संख्या इस समय १२००० से ८१००० तक बताई जाती है[२]। इस पुराण के चार पादों की श्लोक संख्या का क्रम वही हैं, जो युगों के वर्षों की संख्या का होता है।

अर्थात्	प्रथम पाद	(सतयुग)	४८००
	द्वितीय पाद	(त्रेता)	३६००
	तृतीय पाद	(द्वापर)	२४००
	चतुर्थ पाद	(कलि०)	१२००
		योग	१२०००

इस पुराण के दो संस्करण प्राप्त हैं—एक तो भारतीय और दूसरा वह, जिसे विक्रम की ५ वीं ६ ठी शताब्दी में अपने साथ भारत वासी वाली जावा आदि द्वीपों को ले गए थे। इस दूसरे संस्करण में भविष्य राज प्रकरण नहीं पाया जाता,

---

४—पुराणमेक मेवासीदस्मिन्–कल्पान्तरे नृप।
त्रिवर्ग साधनं पुण्यं शतकोटि प्रविस्तरम् ॥४॥
चतुलक्षमिदं प्रोक्तं व्यासेनाद्भुत कर्मणा।
इह लोक हितार्थाय संक्षिप्त परमर्षिणा॥ ५७–५८ मत्स्य पुराण अ० ५३

१—तच्च द्वादश साहस्रं ब्रह्मांड द्विशताधिकम्। मत्स्य० अ० ५३ १२२०० मत्स्य के अनुसार।
यच्च द्वादश साहस्रं भावि कल्प कथा युतम्—नारा पुराण १२००० हजार।
एवं द्वादश साहस्रं पुराणं कवयो विधुः।
यथा वेदश्चतुष्पादश्चतुष्पादं तथा युगम्।
यथा युगं चतुष्पादं विधाया विहितं स्वयम्।
चतुष्पादं पुराणन्तु ब्रह्मणा विहितं पुरा। ब्रह्मांड पुराण

इस के आधार पर तो ब्रह्मोक्त आद्य संहिता की संख्या १२००० मानी जा सकती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किंतु जनमेजय के प्रपौत्र अधिसीम कृष्ण तक की वंशावली दी है[1]। इससे स्पष्ट है कि इस पुराण की रचना उक्त महाराज के समय में हुई थी, अर्थात् व्यास ने वा उनके किसी शिष्य ने इस पुराण को उस समय ब्रह्म संहिता से संग्रह करके पूरा कर दिया था, दूसरी बात यह भी स्पष्ट है—कि इस पुराण में (तथा अन्य सब पुराणों में भी) भविष्य प्रकरण समय-समय पर बढ़ाया जाता रहा है। यह बात इस प्रकार स्पष्ट होती है कि अधिसीम कृष्ण तक के राजाओं के साथ भूत कालिक क्रिया लगाई है और आगे भविष्य कालिक क्रिया[2]। भविष्य राजवंश के अतिरिक्त दूसरा

१—हिंदी शब्द सागर प्रथम सस्करण पृष्ठ २१९५ स्तम्भ २

२—अधिसीम तक की वंशावलि—

तस्य पुत्रः शतानीको वलवान सत्य विक्रमः,
तस्य सुतं शतानीकं विप्रास्तंमभ्यषेचयत्।
पुत्रोऽश्वमेधदत्तोभूत् शतानीकस्य वीर्यवान्।
पुत्रोऽश्वमेधाद्वै जातः परपुरञ्जयः॥
अधिसीमाकृष्णोधर्मात्मासाम्प्रतोऽयं महायशाः,
यस्मिन्प्रशासति महीं युष्माभिरिदमा इतम्।
दुरायं दीर्घ सत्रंवै त्रीणि वर्षाणि पुष्करम्,
वर्ष द्वयं कुरुक्षेत्रे दृष द्वत्यां द्विजोत्तमाः।

यही प्रसङ्ग मत्स्य पुराण में भी इसी प्रकार प्रायः इन्हीं शब्दों में दिया गया है। अध्याय ५०

जनमेजयाच्छतानीकस्तस्माञ्जज्ञे च वीर्यवान्। जनमेजयः शयतानीकं पुत्रं राज्येऽभि षिक्तवान् ॥६५॥ अथाश्वमेधेन ततः शतानीकस्य वीर्यवान्। जज्ञेऽधिसीम कृष्णाख्यः साम्प्रत यो महयशाः ॥६६॥ तस्मिञ्छासति राष्ट्रन्तु युष्माभि रिदमाहृतं। दुरायं दीर्घ स त्रवै त्रीणि वर्षाणि पुष्करे। वर्ष द्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्या द्विजोत्तमाः ॥६७॥

विष्णु पुराण में केवल परीक्षित तक ही भूत कालिक या वर्तमान कालिक क्रिया का प्रयोग किया गया है, और आगे भविष्य वर्णन है :—

अभिमान्योरुत्तरायां परिक्षीणेषु कुरुष्वश्वत्थाम प्रयुक्त ब्रह्मास्त्रेण गर्भ एव भस्मी कृतो भगव तस्सकल सुरासुरवन्दित चरणयुगलस्यात्मेच्छया पुनर्जीवितभवाप्य परीक्षिञ्जज्ञे ॥५२॥ योऽयं साम्भ्रातमेतदुमण्डलम् खण्डिता यतिधर्मेण पालयतीति ॥५३॥ अंश ४ अध्याय २० अतः परं भविष्यानृप भूपाला-न्कीर्तयिष्यामि ॥१॥ योऽयं साम्प्रतमवनीपतिः परिक्षित्तस्यापि जनमेजयः श्रुतसेतनोग्रसेन भीमसेनाश्चत्वारः पुत्रा भविष्यन्ति···। अध्याय २१

भागवत भी परीक्षित तक का ही उल्लेख करता है। स्कन्ध ९ अ० २२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवादास्पद विषय तीर्थों के महात्म्य और व्रत आदि भी इस पुराण में हैं, जो अधिकता से पाए जाते हैं।

इनके सम्बंध में आजकल के पौराणिक पंडितों के साथ-साथ[1] हमारी भी यही सम्मति है कि इनमें से अधिकांश ही आधुनिक काल में रचित हुए हैं। इतना ही नहीं, सब तीर्थ, व्रत, कथा आदि बहुत सी बातें और महात्म्य सब पुराणों में ही आधुनिक हैं।

मत्स्य पुराण—यह पुराण भी प्राचीन है। परन्तु इसका भविष्य प्रत्यक्ष ही बाद की रचना है। इसके अतिरिक्त इस पुराण का बहुत सा स्थल ऐसा है, जिसे स्वयं सूत ने अपनी ओर से ऋषियों के प्रश्न करने पर कह दिया है। यद्यपि वे बातें मत्स्य भगवान् ने मनु से नहीं कही थीं। वास्तव में मत्स्य पुराण भी अधिसीम कृष्ण के समय की रचना है। और व्यास से भिन्न किसी व्यक्ति ने इसे लिखा है। संपूर्ण मत्स्य पुराण पढ़ लेने पर भी यह स्पष्ट होता है—कि इसे व्यास ने लिखकर सूत को सुनाने के लिए दिया हो अथवा व्यास का इस प्रचलित संहिता से कुछ भी सम्बन्ध रहा हो। यदि सम्बन्ध है, तो केवल इतना ही कि केवल एक स्थान पर अठारह पुराणों का लेखक सत्यवती पुत्र व्यास को कहा गया है, इस प्रसंग को छोड़ कर ग्रन्थ भर में व्यास का नाम नहीं आता।

संक्षिप्त विवरण—प्रचलित मत्स्य-पुराणों में २९१ अ० और १६,३७५ श्लोक मिलते हैं। इसकी श्लोक संख्या इसी पुराण में १४,००० लिखी है।[2] अन्य सब पुराणों की भी संक्षिप्त विषय सूची तथा श्लोक संख्या इस पुराण ने दी है। स्वयं इस पुराण की विस्तृत विषय-सूची भी ग्रन्थ के अन्त मे मिलती है। ये दोनों अध्याय स्पष्ट ही सब पुराणो के लिखे जाने के पश्चात् के हैं। और २९१ वाँ अध्याय तो नारद पुराण का ही एक अध्याय है। इतना ही नहीं किन्तु उसके अध्याय २५ से ४२ तक (कच देवयानी-आख्यान महाभारत आदि पर्व में अ० ७६ से ९३ तक तथा यथावत और २४९ समुद्र-मथन) आदि पर्व के अध्याय १८ में कुछ भेद से पढ़े गए हैं। उसके राज प्रकरण (अध्याय २२५ से २४७ तक) के लगभग ६० प्रति सैकड़ा ज्यों के त्यों मनुस्मृति के अध्याय ७, ८, ९ और ११ में पाए जाते हैं। सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन भी मनु के प्रथम अध्याय से बहुत मिलता है। वहां के प्रथम अध्याय के अनेक श्लोक ज्यों के

१—अष्टादश पुराण दर्पण पृष्ठ ४१४

२—श्रुतीनां यत्र कल्पादौ प्रकत्यर्थं जनार्द्दनः।
मत्स्य रूपेण मनवे नरसिंहस्य वर्णनम्॥
अधिकृत्या ब्रवीत् सा'त कल्प वृत्तं मुनीश्वराः।
तत्मात्स्यमिति जानीध्वं सहस्त्राणिचतुर्दश। अ० ५३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

त्यों यहां पाए जाते हैं, बल्कि यह कहना उचित होगा कि इस पुराण का यह प्रकरण मनु की अपेक्षा अधिक स्पष्ट, सुन्दर और पूर्ण है। पुराण के अध्याय २२६ से १२ श्लोकों में से ९ श्लोक मनु के हैं। शेष ४० प्रति सैकड़ा श्लोकों में से भी बहुत से महाभारत शान्ति पर्व के राज प्रकरण में मिल जाते हैं। अध्याय २०८ से २१४ तक सावित्री का उपाख्यान है, जो इस पुराण का एक अच्छा भाग है, किन्तु यह भी महाभारत के वन पर्व में अध्याय २९३ से २९९ तक पाया जाता है। यह प्रकरण महाभारत में अधिक विस्तृत है, तथा दोनों प्रकरणों के श्लोक भी एक से हैं। किन्तु पुराण का वर्णन संक्षिप्त है, और भारत की अपेक्षा कम रोचक है। इस पुराण का तारक-वध-प्रकरण (अध्याय १४६ से १६० तक) महाभारत के तारक वध (अध्याय २२६ से २३२ वन पर्व) से अत्यधिक सुन्दर और रोचक है। इसके अतिरिक्त श्राद्ध-प्रकरण पितृ कल्प, मन्वन्तर आदिमी कथा, वंश कीर्तन ऐसे विषय हैं, जो प्रायः भागो में महाभारत हरिवंश भागवत तथा अन्य पुराणों में भी पाए जाते हैं, किन्तु शब्दों में भेद है। वंश कीर्तन की समालोचना आगे यथेष्ट की गई है। किन्तु सबसे बुरा भाग इस पुराण का वह भाग है, जो अत्यन्त अश्लील हो गया है, जैसे—

१—ब्रह्मा का अपनी पुत्री को देखकर काम मोहित होना और उससे बलात्कार करना (अध्याय ३ और ४)।

२—इला की उत्पत्ति (अध्याय ११)

३—पुरुरवा की उत्पत्ति (अध्याय १२)

४—बुध की तारा में उत्पत्ति (अध्याय २४)

४—उतथ्य बृहस्पति, ममता और दीर्घतमस की कथा

६—भरद्वाज गौतम आदि की उत्पत्ति। आदि आदि २

यहां यह भी याद रखने की बात है कि ये तथा अन्य इस प्रकार की असम्बद्ध कथाएं मत्स्य के मुख से नहीं कहलाई गई हैं, किन्तु सुनने वाले ऋषियों के प्रश्न करने पर सूत ने अपनी तरफ से इन्हें कहा है। ऐसी कथाएं इस पुराण का भाग कदापि नहीं हो सकती[1]। ये प्रकरण इस ग्रन्थ के अध्यायों के बीच बीच में इस प्रकार ठूंसे गए हैं कि उनका असम्बद्ध होना स्पष्ट ज्ञात होता है, तथा थोड़े परिश्रम से ही इन को अलग करके यह पुराण क्रम-बद्ध और शुद्ध रूपों में तैयार किया जा सकता है। इस प्रकार

१—इस पुराण का आरम्भ इस तरह होता है कि शौनक आदि ऋषि नैमिषारण्य में दीर्घ सत्र की समाप्ति पर सूत से प्रश्न करते हैं कि उन्हें वह कथा सुनाई जाय जिसमे भगवान् के मत्स्य रूप धारण करने का कारण ज्ञात हो—कस्माच्च भगवान् विष्णु र्मत्स्य रूपत्वमाश्रितः अध्याय १ सूत्र उत्तर में मत्स्य पुराण की कथा आरम्भ कर देते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की सम्पूर्ण कथाएं ऐसी हैं, जो और पुराणों में भी पाई जाती हैं, किन्तु इस पुराण का तो उनसे महत्व ही घटता है।

प्रथम ९ अध्याय तक सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय तथा देव सृष्टि का वर्णन है। आगे ५० अध्याय तक चन्द्रवश, सूर्यवंश तथा उनके अनुवंशों का विस्तार लिखा है। बीच बीच में उक्त कथाएँ भी दी गई हैं। हमारे विचार मे यहां पुराण का प्रथम पाद समाप्त होना चाहिए। इस पुराण को अध्यायों के अतिरिक्त भाग या पादो मे बाँटा नहीं गया है। पुराणों के सम्बन्ध में यह एक असाधारण सी बात है।

आगे १२० अध्याय पर्यंत अनेक प्रकार के व्रत, दान तथा पूजाओं का माहात्म्य है। यहाँ नवग्रह-पूजा का भी वर्णन गाया है। इसी प्रसंग में तडाग-विधि तथा वृक्षोत्सव विधि का समावेश भी ध्यान देने योग्य है। इन व्रतों और कथाओं का अभिप्राय रुद्र का महत्व स्थापना मात्र है।

पौराणिक भूगोल—अध्याय ११३ से १२८ तक खगोल और भूगोल का वर्णन पौराणिक है। भूगोल स्वयं एक महत्व-पूर्ण विषय है। यद्यपि मत्स्य पुराणोक्त भूगोल इस पुराण का वास्तविक अंग नहीं जान पड़ता, क्योकि इसकी कथा भी सूत ने ऋषियों के प्रश्न करने पर अपनी ओर से कही है, तथा अध्याय ११५ के आरम्भ के श्लोकों की शैली हमारे कथन को पुष्ट करती है[1]। तो भी यह मानना पड़ेगा कि वर्तमान पुराणों का भूगोल किसी एक ही मूल--स्थान से लिया गया है, जो अब अप्राप्य है। यह विषय यद्यपि ११३ वें अध्याय से आरम्भ होता है, किन्तु ११४ वें अध्याय के पीछे फिर वंशावलि का कथन आरम्भ हो जाता है, और उस प्रसंग में पुरुरवा की कथा अध्याय १२० तक कही गई है। इसके पश्चात् १२३ अध्याय तक इस विषय को समाप्त किया गया है। इस प्रकार भूगोल के कुल अध्याय (माहात्म्य के अध्यायों को छोड़कर जो विशेषकर प्रयाग के सम्बन्ध में ही लिखे गए एवं सख्या में १० हैं—उनकी श्लोक संख्या २५७ या ३६० है। तथा श्लोक संख्या ४२५ के लगभग है। यहां उस भूगोल सम्बन्धी विवरण को नहीं गिना गया है; जो भिन्न-भिन्न कथाओ में प्रसंग के अनुसार लिखा मिलता है। जैसे इसी पुरुरवा की कथा के सिलसिले से हिमालय तथा पंजाब की नदियों और जंगलों का उत्तम और विस्तृत वर्णन पाया है।

पौराणिक भूगोल (और खगोल की भी) यह एक विशेषता है कि वे भूगोल और ब्रह्मांड की रीति-गति का निरीक्षण मेरु-स्थान अर्थात् उत्तरी ध्रुव (North Pole) पर बैठ कर करते हैं। इसी प्रकार से हमारा अनुमान है कि जहाँ से यह

२—अध्याय ११४ के पश्चात् मनु ने अब तक का श्रवण किया इस प्रकार बताया है और आगे पुरुरवा का इतिहास सुनने की इच्छा प्रकट की है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूगोल सम्बन्धी सामग्री ली गई है, वह मूल-स्रोत उसी प्राचीन समय का है, जब आर्य (मध्य एशिया) में रहते थे, और उन्होंने भूगोल तथा खगोल सम्बन्धी वृतांत संग्रह किए थे। वास्तव में मध्य एशिया अर्थात् ऐशिया के प्रसिद्ध सानु (Taldelaud) का जितना वैज्ञानिक और उत्तम वर्णन पुराणों में मिलता है, उतना आज कल की भूगोल की पुस्तकों में भी नहीं पाया जाता।

भूगोल का संक्षिप्त विवरण—यह भूगोल भिन्न-भिन्न लेखकों की शैली में न्यूनाधिक विस्तार के साथ नारद, भागवत, मत्स्य, विष्णु, अग्नि, कूर्म, गरुड़ आदि लगभग सभी प्रधान-प्रधान पुराणों में मिलता है, किन्तु सब का मूलभाव एक ही है।

जम्बू द्वीप पृथ्वी के मध्य में है। इसका प्रमाण लगभग आधे गोलार्द्ध के बराबर है। इसके चारों ओर शेष प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शक और पुष्कर द्वीप हैं। जम्बू द्वीप के चारों ओर शेष द्वीप हैं, इसका अभिप्राय: यह नहीं है कि

मनुरुवाच--चरितं बुध पुत्रस्य जनार्दन मया श्रुतं।
श्रुत: श्राद्ध विधि: पुण्य: सर्व पाप प्रणाशन: ॥१॥
धेन्वा प्रसूय मानाय: फले दानस्य मे श्रुतम्।
कृष्णा जिन प्रदानञ्च वृषोत्सर्ग तथैव च ॥२॥
श्रुत्वा रूपं नरेन्द्रस्य बुधपुत्रस्य केशव।
कौतूहलं समुत्पन्नं तन्मामचक्ष्व पृच्छत: ॥३॥

बुध चरित्र, श्राद्ध विधि (अध्याय, अध्याय २४ तक) प्रसूता गाय का दान, और कृष्णाजिन का दान तथा वृषोत्सर्ग सुनकर जब बुध पुत्र (पुरुरवा) के सम्बन्ध में सुनने की इच्छा है।

यहाँ दो बातों पर ध्यान देना उचित है, प्रथम तो अध्याय २४ के पीछे जो विषय इस पुराण में वर्णन किए गए हैं, उनके विषय में मनु ने कुछ भी नहीं कहा, जिससे जान पड़ता है कि ये विषय उसे नहीं सुनाए गए, किन्तु जैसा कि हमारा अनुमान है, ये सब बातें सूत ने ऋषियों को अपनी तरफ से सुनाई थीं और उनमें ही वर्तमान पौराणिक भूगोल का प्रसंग भी सम्मिलित है। दूसरे, प्रसूता गाय तथा कृष्णाजिन दान और वृषोत्सर्ग सम्बन्धी कुछ भी लेख इस प्रकरण तक इस पुराण में नहीं पाया जाता है। इससे अनुमान होता है कि ये प्रसंग इस पुराण से गुम हो चुके हैं, और उनके स्थान में वर्तमान अध्याय आ गए हैं। चौबीसवें अध्याय के पश्चात के जो मुख्य विषय ऊपर गिनाए गए हैं, उनको विचारने से भी वे नवीन रचना स्पष्ट दिखाई देते हैं।

यही कथन पौराणिक खगोल के विषय में भी लागू है, जो ५ अध्याय और ३६० श्लोकों में (अध्याय १२४ से १२८ तक) में वर्णित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे क्रम से इस द्वीप को वृत्त रूप से घेर रहे हैं, या जम्बू द्वीप के चारों ओर छः द्वीप छः वृत्तों में वर्तमान हैं किन्तु इसका यही अर्थ है कि यह महाद्वीप बीच में हैं, तथा शेष छः द्वीप चारों दिशाओं में वर्तमान हैं। इन छः द्वीपों का जो वृत्तांत पुराणों में उपलब्ध होता हैं, उसकी संगति लगा सकना बड़ा कठिन है। एक प्रकार से तो यह वृत्तांत बिल्कुल कल्पित जान पड़ता है, किन्तु जम्बू द्वीप का वृत्तात ज्यादा ठीक और समझ में आने वाला है।

जम्बू द्वीप के मध्य में इलावृत है, जिसका नाम सुमेरु भी है। यही उत्तरीय ध्रुव प्रांत है। यह द्वीप दो खण्डों में विभाजित है, अर्थात् दक्षिण भूमि या दक्षिणार्द्ध और उत्तर भूमि या उत्तरार्द्ध। मध्य भाग का नाम वेदि भी है। इस वेदि के दक्षिण में (१) भरतखंड या भारतवर्ष, (२) किंपुरुषवर्ष, (३) हरिवर्ष और उत्तर में (४) रम्यकवर्ष (५) हिरण्यमद वर्ष और (६) उत्तर कुरुवर्ष हैं। इनके मध्य में इलावृत, सुमेरु, देव्यपुरी या उत्तरी ध्रुव हैं।

दक्षिण वेदि के मध्य में मेरु है, जिसे आज कल पामीर (पादमेरु) कहते हैं। उससे नीचे किंपुरुष वर्ष और ऊपर हरिवर्ष हैं। इन देशों के नाम इस समय क्रम से चीन, तिब्बत, ईरान और दोनों साइबेरिया हैं। साईबेरिया (हरिवर्ष) और मेरु के मध्य में अलताई पहाड़ है, जिसे पुराणों में निषध पर्वत कहा है। किंपुरुष तथा मेरु के मध्य में हैमकूट है, जो क्यूनलून पहाड़ का सिलसिला इस समय कहा जाता है।

किंपुरुष के दक्षिण में हिमालय पहाड़ या हेमवत है, और उसके दक्षिण में भारतवर्ष। यह त्रिकोण है। इसी प्रकार उत्तर वेदि के उत्तर में नील पर्वत (रौकी पर्वत तथा ग्रीन लैंड के पहाड़) हैं, और उससे आगे रम्यक वर्ष। रम्यक वर्ष से नीचे श्वेत पर्वत (लारेन्टाइन एलैघनी तथा मध्य रौकी पर्वत माला) है और उससे आगे हिरण्य वर्ष (अमेरिका के संयुक्त राज्य) हैं। हिरण्यवर्ष और उत्तर कुरु के मध्य में शृङ्ग पर्वत (मीरा मैडर तथा दक्षिणी रौकी पहाड़) हैं। उस से आगे उत्तरी कुरु प्रांत हैं, जिन्हें आजकल कैलिफ़ोर्निया, मैक्सिको, न्यूकाटन ग्वीटेमाला आदि कहते हैं।

मेरु के पूर्व में भद्राश्व (पूर्वी चीन तथा मलाया, स्याम आदि) और पश्चिम में केतुमाल (योरोप महाद्वीप) है। पुराणों में इस मेरु को केन्द्र मान कर दक्षिण वेदि का वर्णन इस प्रकार किया है—

मेरु के पूर्व में भद्राश्व प्रांत, मन्दर पर्वत (अल्ताई, खिंगिल, तिसनतिंग आदि क्यूनलून पर्वत-माला की मुख्य-मुख्य श्रेणियाँ या उनमें से कोई) चैत्ररथ वन (वर्तमान गोबी का मरु देश) अरुणो महासर (वेकाल या लोमनोर झील में से कोई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तथा सीता नाम की गंगा यांग्टिसी क्यांग) हैं, जो भद्राश्व को सिंचित करके समुद्र (चीन महासागर) में गिरती है।

मेरु के दक्षिण में हरिवर्ष, गंधमादन पर्वत (कराकुरम आदि), गंधमादन वन (हिमालय पहाड़ का जंगल), महाभद्रनाल (टेंगरी नोर) तथा अलकनन्दा गगा (भागीरथी नदी) है, जो भारतवर्ष में होकर समुद्र (गगा सागर) में गिरती है।

पश्चिम में केतुमाल वर्ष वियुल (यूराल), वैभ्राज वन (साइबेरिया का बड़ा मैदान), सितोद सर, अरल सागर और चक्षु: नाम की गगा (Oxus ऑक्सस) है, जो पश्चिम गिरि और केतुमाल में बह कर समुद्र में गिरती है।

मेरु के उत्तर में रम्यक वर्ष, सुपार्श्व पर्वत (अल्ताई या शयन पवत में से कोई), नंदन वन (साइबेरिया का मैदान), मानस सर (वेकाल या बालकस में से कोई) और भद्रा गंगा (इर्टिश या यनीसी में से कोई) है, जो उत्तर गिरि (अल्ताई तथा सायना में से कोई) में बह कर समुद्र में गिरती है।

इन नदी पर्वतादि के अतिरिक्त प्रत्येक दिशा में छोटे-छोटे और भी पहाड़ हैं, जिन में मुख्य ये हैं—

पूर्व —सितांब, कुमुद, कुररी, वैकंक और माल्यवान।

दक्षिण—त्रिकूट, रुचक, शिशिर, पतंग और निषध।

पश्चिम—शिशिरवास, वैडूर्य, कपिल, गंधमादन, जातमिष।

उत्तर—शंखकूट, ऋषभ, हँस, नाग, कालंजष।

सुमेरु को मेरु या (पादमेरु=पामीर) से अलग करने के लिए सुमेरु का दूसरा नाम इलावृत भी रक्खा गया था।

मेरु जो निःसन्देह एशिया के अनेक उच्च स्थानों में से कोई चौड़ा मैदान है, सम्भवतः पामीर है, जिसके विषय में पुराणों में लिखा है कि यह पूर्व की ओर श्वेत रंग का दिखाई देता है और उधर सोना अधिक निकलता है। तिब्बत के निवासी इस भाग को ग्यागर' के नाम से बोलते हैं, जिस का अर्थ है वृहत्श्वेत' इधर थाँक मुन्नक, थाँक रौपक थाँक न्यान्मो, थाँक डालग, थाँक सारलंग और थाँक जालग आदि कितनी ही सोने की खाने हैं।

इसी प्रकार दक्षिणी भाग का नाम 'ग्यासर' है जिसका अर्थ महान् पीला है। इसी नाम से तिब्बत वासी रूस देश को बोलते हैं, क्योंकि रूस का राज्य यहां तक विस्तृत है। पुराणों के अनुसार इधर भी स्वर्ण की खान होनी चाहिए।

पश्चिमी पामीर का रंग पुराणकारों ने कृष्ण लिखा है, और तिब्बतवासी भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसे ग्यानाक (महान् कृष्ण) कहते हैं। इधर लोहे की बहुतायत लिखी हैं अफगानिस्तान की पहाड़ियों में लोहे की खानें बताई जाती हैं।

मेरु की चोटी पर ब्रह्मकेश या ब्रह्मस्थान हैं, जहां से चार दिशाओं को चार गंगा जाती हैं। इसका अर्थ यही है कि सम्पूर्ण मध्य एशिया के जल के बहाव (Water Shades) की कल्पना पौराणिक भूगोल शास्त्री इस प्रकार करते थे, जो आजकल भी बिल्कुल ठीक हैं। सीता पूर्व को बहने वाली नदी है, जो हस्ती मुखी से निकलती है। श्री Welford इसे ह्वांगहू (Hoango) चीन की नदी ठहराते हैं। किंतु इसको यांग्टिसी ही मानना अधिक उचित है। अलकनन्दा भारत में बहने वाली गंगा है, जिसका उद्गम गोमुखी है। केतुमास की गंगा चक्षुः है, जो अश्वमुखी से निकलती है। इसे विल्फर्ड ने Oxus बतलाया है। संस्कृत ग्रन्थों में इसे ही वंक्षु भी कहा है। उत्तर कुरु में बहने वाली भद्रा नामक गंगा सिंह मुखी से निकलती है और विल्फर्ड के मत में यह Cls है।

गंगा का गोमुखी से निकलना हम भारतवासियों को साधारणतः ज्ञात है, किंतु सिंधु का सिंह मुखी से, सतलज (शतद्रु) का कृष्णमुखी या (गोमुखी ?) से, ब्रह्मपुत्र का अश्वमुखी से, घाघरा (यां कौड़ियाली) का मयूर मुखी से निकलना हम सामान्यतः नहीं जानते, यद्यपि पुराणों में इनका कुछ कुछ संकेत पाया जाता है। सिंधु का उद्गम सिंह मी खम्बा और स्वयं यह नदी सिंह की खान, सिंह की खम्बा, (सिंह का गंगा या सैंह्यं की गंगा ?) या सिंधु की गंगा तिब्बत, और उसके निकट के प्रांतों में जहाँ सिंधु बहती है, कहे जाते हैं। इसी प्रकार शतद्रु को लैंगजन, खम्बा या वृषमुखी कहा है। शतद्रु का अर्थ है जिसे १०० स्थानों पर पार कर सकें अथवा जिस पर होकर जाने के १०० मार्ग या घाट हों और अर्थ की द्योतक जो नदी है और सिंधु में मिलती है उसका नाम ग्यामू रुफर्दो या गातंगचु या हस्तिपूखी (मातंगमुखी ?) है, कहीं यही तो वास्तविक शतद्रु नहीं है ? गंगा का तिब्बती नाम भाव चा खावाब या भावजा खम्बा या मयूरमुखी है। इसी प्रकार ब्रह्मपुत्र का नाम स्तरचुख खवाब या अश्वतर मुखी अथवा तमजन खम्बा है। खम्बा शब्द भी "यव्या" या "यछ्यः" का अपभ्रंश जान पड़ता है, जो नदी पर्याय है। ऐसी दशा में तो 'गंगा गममात्, शुतुद्री शुद्राविणी क्षिप्रद्राविणी, अशु :तुन्मेवदुवतीति सिंधुः स्यंदनात् आदि निरुक्त कल्पित जान पड़ते हैं।

मेरु[1] (थ्यान शान) का जल सात श्रोतों में भिन्न भिन्न दिशाओं को बहता है जो ८४ योजन तक बिना किसी नदी आदि के रूप के केवल पहाड़ी सोते मात्रा जान पड़ते हैं। फिर चारों दिशाओं को चार पर्वतों के द्वारा बाटर शेड बन जाने के कारण

---

१ · यहाँ से आगे का वृत्तांत ब्रह्मांड पुराण के अनुसार है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह जल चार नदियों में होकर समुद्र में चला जाता है। इनमें महेंद्र पर्वत (तिब्बत के पहाड़ों का वह भाग, जो ब्रह्मा में चित्र ग्राम (चटगाँव) तक पहुँच कर लीन हो गया है) का जल पूर्व दिशा को चैत्ररथ में बह कर अरुणोद में गिरता है। यह वछरच कूल होना सम्भव है। यहाँ से सीताँत पर्वत माला (Gholtan Wts) सुमन्त, सुमंजस, माधवन्त, वैकानन, मणिपर्वत और प्रषभ (Tisue tan wts) अल तीन ताग श्री श्रेणी, चमन ताग, नालशान, चूनचन शान, अलाशान, वशोलिमन, यूलिन आदि तिब्बत की पहाडियों में होकर भद्राश्व पहुंचता है। यह प्रदेश इस समय शानसी, कान फेंग और शानतुंग हैं। फिर पूर्वी द्वीपों के पास जापान द्वीप माला से अभिप्राय है। पूर्वी समुद्र में गिरता है।

दक्षिण स्रोतों का जल देवनन्दन या नन्दन बन में बह कर गंधमादन पर्वतों में जाता है। समर कन्द = सुमेरु खण्ड, काशगर और काशमीर के मध्य का मैदान चैत्ररथ कहा जाता है। इससे नीचे दक्षिण-पूर्व तथा दक्षिण-पश्चिम को जो पर्वत माला चली गई है, उसे गन्ध-मादन माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में छोटी तिब्बत के पहाड़ गन्ध-मादन हैं, जहां प्रत्येक सोते का नाम किसी समय अलकनन्दा रहा होगा जैसे इस समय भी कई अलकनन्दाएँ हैं। आगे यह त्रिकूट (कूर्म या कुर्रम तथा उस से आगे दक्षिण की दो पर्वतमालाएँ सुलेमान और हाला पहाड़ मिलकर) कलिंग (हिमालय की पूर्वी पहाड़ियाँ) ऋक्ष व निषाद (काबुल की पहाड़ी), तामाभ्र, स्वेतोदर (सफेद कोह) कुमुल (सिंधु पार वर्तमान गूमल की पहाड़ी) ये सब नैपाल और अफगानिस्तान के बीच के हिमालय के भाग हैं) वसुधार (कुमायु पर्वत प्राँत) हेमकूट देवशृंग पैशाचिक, पञ्चकूट और कैलाश घाटियाँ (ये सब नैपाल के निकट की चोटिएँ हैं, जिन्हें इस समय क्रम से धवलगिरि, नन्दादेवी, भूटान या दरद, आदि कहते हैं) यह जल भारत में सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र के द्वारा बह कर समुद्र में गिरता है। इसी कारण गंगा को पुराणों में त्रिपथा कहा है।

पश्चिम का जल वैभ्राज वन पूर्वी या चीनी (तुर्किस्तान का मैदान) में बह कर सीतोह या असितोह कुन्ड (अरल सागर जो समरकंद की एक झील है) में गिरता है। सुमक्ष पर्वत (जिसे अन्य पुराणों में सुपार्श्व भी कहा है) शिखी (अलबुर्ज), कपिल, कनक, कंक, वैडूर्य दूसरा गंधमादन, पिंजर, कुमुद मधुवन्त, गंजन (कोह स्याह जो अफगानिस्तान में है) मुकुट कृष्ण और श्वेत पर्वत का जल भी पश्चिम की ओर ही केतुमाल में होकर पश्चिमी समुद्र में गिरता है। इन पहाड़ों के नाम कजक मजन देरल, हमेदन, हेमाबन्द, किरमान अरारात, खरस, एन्टी टारस अर्थात् जेबिल मूसा, जेबिल उस्साभर, लवनानं की दो शाखाएँ श्वेत और कृष्ण कही जाती हैं से मिलाना चाहिए। सुमक्ष से अभिप्रायः समरकन्द की पहाड़ियों से है, जहां का जल, आक्सस, सुर्खाब, सर, आमू आदि अनेक नदियों के द्वारा, अरल सागर तक पहुँचता है। पश्चिमी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सागर के विवरण के सम्बन्ध में एक बात और भी कहनी आवश्यक है। एशिया की नदियों का जल लाल सागर और भूमध्य सागर दोनों में गिरता है। किंतु यहाँ केवल एक सागर का ही उल्लेख है। इस से अनुमान होता है कि जब का यह विवरण है, उस समय ये दोनों सागर स्वेज डमरु मध्य के द्वारा अलग न होंगे, तथा अफ्रीका और एशिया के मध्य में समुद्र लहरा रहा होगा। उस समय नील का डेल्टा या लोअर इजिप्ट भी न होगा, किंतु उसका स्थान भी समुद्र ने ही घेरा होगा।

उत्तर के जल-स्रोत का नाम पहले मद्र और आगे बढ़कर भद्र या भद्रसोम लिखा है। यह सुवर्ण (सुन्दर) सुपार्श्व में बह कर शीतोदक (वालकुश या इक्षुक= इषुक झील) में इकट्ठा होता है, जहाँ से भद्रसोम बन (अल्टाई=सुवर्ण घाटी) में बहकर अनेक स्रोतों में शंखकूट, वृषवत्सल, नील, कपिंजल, इन्द्रनील, महानील, हेम शृंग श्वेतशृंग, सुनाग, शतशृंग, पुष्कर, दुर्जराध, वराह, मयूर, जातुधी-पर्वतों में होकर बहा है, और आगे बढकर और भी बहुत-सी पहाड़ियों में बहा है, तथा विषुधाम नाम के त्रिकूट पर्वत (खतगा, ते मीर=त्रिमेरु=त्रिकूट) और उत्तर गन्ध-मादन (स्टेनोवाय = Perimorokaya) में होकर उत्तर समुद्र में गिरता है।

जान पड़ता है, सेमीपालासिको का दक्षिणार्ध ही भद्रसोम है। थ्यानशान से आगे झंगेरिया और उससे आगे great Altia बड़ी अल्ताई पर्वत माला है। इसी को सुवर्ण पार्श्व कहा गया है, क्योंकि अल्ताई शब्द का अर्थ भी सुवर्ण है। सम्भव है शीतोदक वालकश, जेशान; या आलकुश में से ही कोई अभीष्ट हो—क्योंकि यहाँ का जल कई स्रोतों के द्वारा थोड़ा-बहुत सभी झीलों में पड़ता है। शेष पर्वत भी झंगेरिया, टोनो पर्वतमाला, श्यनष्क, वेकाल पर्वतमाला, अवलोनोवाय; वरखोयष्क, कमश्वातका आदि की ओर संकेत करते हैं; साइबेरिया के दक्षिण-पश्चिम में यूराल की भी आबडोरस्क, यूराल और ईरमल तीन मुख्य शाखा हैं, अतः इसे भी त्रिकूट कहा जा सकता है। स्यनष्क=शत-शृंग तथा सैलेजिस्क==सहस्र शृंग का ग्रन्थ बताते हैं।

इस भाग के सम्बन्ध में विशेष बातें ये हैं—यहाँ के तुमाल वर्ष में गण्डकी नदी है। यहां की स्त्रियों की शोभा देखते ही काम उत्पन्न होता है। यहाँ पनस का पेड़ उगता है। ये तीनों बातें इधर मिलती हैं। गण्डकी वालगा है, जिसके पास के देश काकेशस या कोहकाफ का सौंदर्य जगद्विख्यात है। यहाँ की उपज भी पनस या कटहर (Arts corpose Intergri folia) है।

वायु-पुराण में पामीर के पश्चिम के विषय में लिखा है कि सुभक्ष और शिखी शैल के चारों ओर १०० योजन तक एक मैदान विस्तृत है, जहाँ भूमि से अग्नि निकलती है। इसका अभिप्राय ईरान के सानु (प्लेटो) से जान पड़ता है, जहाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन काल में ज्वालामुखी थे। सम्भव है उधर के अग्नि पूजकों की ओर भी यह संकेत रहा हो।

यहीं वृहस्पति का आश्रम था, तथा पर्वत के भीतर (घाटियों में ?) मातुलुंग नाम का बड़ा नगर है। दूसरा नगर कमुदा और अजन पर्वतों के बीच की घाटियों में भी है। कुमुद पुराणों में एक प्रसिद्ध नगरी है; जिसे श्रीराम ने कुश को दिया था। इसी नाम के पर्वत और नदी पर यह नगर बसा था, जिसे आजकल काशगर कहा जाता है। इसका विस्तार भी ५०० मील का माना जाता है। टालमी ने इसे कुमोदी लिखा है। अजन–पर्वत या कोह स्याह काशगर से दक्षिण–पश्चिम की ओर पैरो पामस जो कुमदशैल का नाम है, इसके सम्मुख है। ऐसा ही एक और सानुकृष्ण और पांडु पर्वत के बीच में है, जहाँ अनन्त सह–जाति का कमल होता है। कहना होगा कि अलबुर्ज के नीचे गुलाब के विस्तृत क्षेत्र हैं। शंकुकूट और वृषभ का घाटी में परुष्पक (पारसीक देश) हैं; जहां किन्नर, नाग और सिद्ध रहते हैं। शंकु शायद शिखी का ही दूसरा नाम है। काकेशस, अरारात और भारतीय सीमाँत पर्वतों के अथवा गुर्जिस्तान के पर्वतों के बीच में ईरान है, जो निःसन्देह आर्यों का पुराना उपनिवेश है. इसी लिए वहाँ के निवासियों को किन्नर नाग और सिद्ध कहा है। आगे लिखा है कि नाग पर्वत और कपिंजल के बीच में अनेक उपवन फल-फूलों से युक्त हैं। तब्रेज तथा आस-पास के जिले, जहाँ द्राक्षता, नागरंग और उन्नाब आदि के बड़े-बड़े बाग आजकल भी पाए जाते हैं।

पुष्पक और महामेध पर्वत के मध्य में एक ऊसर, चौरस और बियावान जंगल का उल्लेख है, जहां का जल स्वच्छ और भूमि कठोर बताई है। यहां घास नहीं उगती, साइबेरिया का किरगिज प्रांत तथा वहां की स्टिप (Stippl) यूराल के शाखा मुगोजर से अल्ताई तक विस्तृत है इससे आगे यह भी लिखा है कि यहां पशु तथा मनुष्य अत्यल्प रहते हैं, इसी लिए इस सम्पूर्ण प्रान्त को कानन कहते हैं। इससे आगे बढ़ कर कुछ बड़ी बड़ी झीलें, कण्टक, वृक्ष और गम्भीर पर्वत गुफाएँ हैं। इसी प्रकार पश्चिम का और भी शेष हाल अच्छा लिखा है। महानील पर्वत पर अश्रृमुख–जाति के किन्नरों को पतित क्षत्रिय बताया गया है। इनके भी अनेक नगर और दुर्गों का उल्लेख मिलता है। वेणुमान में रोमक, उलूक और महानेत्र ये तीन नगर हैं।

वायु पुराण में पूर्व के विषय में लिखा है कि वैकानन में गरुड़ की सन्तान तथा देवकूट पर मनुष्य और गन्धर्व आदि रहते हैं। जो कुबेर के नौकर हैं, और सर्वत्र खानों की खोज में फिरा करते हैं। करज पर्वत पर वृषभांक नाम महादेव रहते हैं।

वैकानन पर्वत स्पष्ट ही पूर्वोक्त तिब्बत का नाम है, जहाँ वे सोना खोदने वाली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिऊँटी रहती थीं, जिनका उल्लेख मेगास्थनीज ने किया है ।[1] देवकूट ही प्रसिद्ध कैलाश है, और वृषभांक का संकेत गोमुखी की तरफ जान पड़ता है ।

दक्षिण में वसुधार या कुमाऊँ का सामान्य वर्णन हैं । यहाँ देवों की सात पुरियों के अतिरिक्त ब्रह्मपुर भी है, और आज तक इसी नाम से प्रसिद्ध है ।

भारत खंड का विवरण—इन विवरणों के साथ-साथ अनेक नदियों और पर्वतों के नाम भी पुराणों ने लिखे हैं,जो उन-उन देश की भाषाओं के अनुसार न होकर संस्कृत-रूप में दिए हैं । आगे संक्षेप में भारत खण्ड का विवरण देकर हम इस विषय को अधिक विस्तार से नहीं लिखेंगे ।

जैसी पुराण की शैली है, भारतवर्ष का वर्णन भी उसके मध्य से ही आरम्भ किया गया है ।

इन्द्र द्वीप, कसेरुमम, ताम्रपर्ण, नभस्तिमानू, नाग द्वीप, सौम्य और गान्धर्व, ये भारतवर्ष के सात द्वीप हैं ।

महेन्द्र, मह्य, सह्य, शुक्तिमानू, (शक्तिमानू) ऋक्ष, विन्ध्या और पारिपात्र, ये सात पर्वत हैं ।

भारत की सीमा पूर्व में किरातों के देश और पश्चिम में यवनों के राज्य तक हैं । यहाँ की प्रधान प्रधान नदियां शतद्रु, चन्द्रभागा, सरयू, यमुना, गंगा, इरावती वितस्ता, विपाशा, देवकी कूहू (काबुल नदी), गोमती, (गोयल नदी), धूतपापा, बाहुदा, हषद्वती, कौशकी और लौहिनी, हिमालय से निकलती हैं । इनके अतिरिक्त और भी अनेक नदियां पुराणों में गिनाई हैं । जिनकी पूरी सूची यहां विस्तारभय से दी जानी असम्भव है ।

वेद स्मृति, वेदवती, (वेतवा) व्रतघ्नी, त्रिदिवा, वर्णाशा, (वनास चन्दन, (सिन्ध-काली), चर्मण्वती (चम्बल), सुरा, विदिशा; वेत्रवती आदि पारिपात्र से निकलती हैं । इससे स्पष्ट है कि पारिपात्र अर्वली के पूर्वी भाग का नाम है ।

नर्मदा, सुरसा, शोण (सोन); दशार्णा, महानदी, मन्दाकिनी, चित्रकूट, तामसी (टौंस), पिशाचिका, चित्रोत्पला, विशाला, मंजुला, वालवाहिनी आदि ऋक्षवान से निकली है । इस पर्वत से अभिप्राय कैमूर और अमर कंटक की श्रेणियों से स्पष्ट जान पड़ता है । भौगोलिक दृष्टि से यह पर्वत उस स्थान की सीमा है जहां तक ऋक्ष या सप्तर्षि रात्रि में आकाश में सदैव देखते हैं । क्योंकि यहां से उत्तर के देशों में छः मास तक वे दिखाई नहीं देते ।

तापी (ताप्ती) पयोष्णी, निर्विध्या, शीघ्रोष्ठा, महानदी (माही) विन्ता, वैतरणी, वलाका, कुमुदवती, महागौरी, दुर्गा, अन्त शिला आदि ये नदियाँ विन्ध्या पर्वत से निकलती हैं ।

१—Iut. Aut. Vol. IV p. 225

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोदावरी, भीमरथा (भीमा) कृष्णा, कावेरी, वेणा (वेन गंगा), वश्यता, तुंगभद्रा, सुप्रयोगा, कावेरी आदि सह्य पर्वत (पश्चिमी घाट) से निकल कर दक्षिण मे बहती हैं।

ऋतुमाला, ताम्रपर्णी, उत्पलावती आदि मलय पर्वत से निकलती हैं। यह सह्य पर्वत के दक्षिण भाग का नाम है। ये सब नदियां शीतल जल की हैं।

ऋष्य कुल्या, त्रिसोमा, गन्धमादन की नदियां हैं।

क्षिप्रा, पलाशिनी, ऋषि का वंशधारिणी शुक्तिभान तट की नदियाँ हैं। गंधमादन से रैवे तक और शुक्तिभान से मालवे के सानु से अभिप्राय है।

इन नदियों के तटों पर कुरु पन्चाल, मध्य देश में कामरूप पुण्ड्र कलिंग, मगध, दक्षिण में अपरान्त (कांकण), सौराष्ट्र, अर्बुद; मल्लक; मलय, पारिपात्र वासी सौवीर, सैंधव, हूण, माल्य, शाल्व, माद, रामठ आन्ध्र और पारसीक हैं।

यह विवरण अत्यन्त संक्षिप्त है। वास्तव में पौराणिक भूगोल के ऊपर स्वतन्त्र रूप से विचार करने की आवश्यकता है।

पातालों (भूस्तर Strate of earth) के सम्बन्ध में भी पुराण में आश्चर्यजनक भूगर्भ सम्बन्धी विज्ञान दिखाया गया है। यहाँ भिन्न-भिन्न पुराणों के अनुसार उनकी सारिणी दी जाती है :—

क्रम	आदित्य पुराण	वायु पुराण	विष्णु पुराण	कूर्म पुराण	मत्स्य पुराण	भाषा का नाम	लक्षण	विशेष
१	तल	अतल	आभाष तल	महातल		अशु	कृष्णभूमि	इन सप्त तलों का रूप तथा लक्षण सब पुराणों में किसी एक क्रम से नहीं पाए जाते हैं।
२	सुतल	वितल	इला	तलातल		अंवर ताल	शुक्लभूमि	
३	पाताल	नितल	वितल	रसातल		सर्करातल	रक्तभूमि	
४	अतल	गभस्तिमत	गमस्तल	तल		गभारित्त मन	पीतभूमि	
५	वितल	महातल	महातल	वितल		महातल	पाषाण भूमि	
६	मत्तल	सुतल	सुतल	सुतल		सुतल	शिलातल	
७	रसातल	जागार	पाताल	पाताल		रसातल	सुवर्ण वर्ण भूमि	

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पौराणिक खगोल—पौराणिक खगोल की दशा अधिक निराशा-जनक है। उसके सम्बन्ध में भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मानो इन्होंने अपने सम्पूर्ण निरीक्षण ध्रुव तथा मेरु पर बैठ कर किए थे। किन्तु गणना एक भी सही नहीं है। सूर्य आदि ग्रहों के रथों का कल्पित, परन्तु रोचक वर्णन इन्होंने लिखा है, जो बिल्कुल निःसार है। प्रायः प्रत्येक ग्रह के रथ में २–२ भिन्न-भिन्न रंगों के घोड़ों की कल्पना का भी आधार नहीं है। तो भी सूर्य के सम्बन्ध में कुछ बातें अच्छी भी लिखी हैं, जैसे सूर्य की किरणों के विषय में लिखा है कि ये सात प्रकार की होती हैं—(१) सुषुमना जो चन्द्र को प्रकाशित करती है। (२) हरिकेश, जिनके द्वारा नक्षत्रों का प्रकाश भूमि तक आता है। (३) विश्वकर्मा, जो बुद्धि को प्रकाश और गर्मी देती है। (४) विश्वश्रवा, जो शुक्र को पोषण करती है। (५) संयद्वसु, जो मंगल को प्रकाशादि पहुँचाती है। (६) अर्वावसु, जो बृहस्पति पर प्रभाव डालती है। (७) स्वरस् जो शनि का पालन करती है।

वर्ष के बारह महीनों में सूर्य की समान किरणें भूमि पर नहीं आतीं, इस बात को पुराणों में इस प्रकार समझाया गया है—

क्रम	मास	सूर्य की संज्ञा	किरण संख्या	विशेष
१	चैत्र	धाता	८०००	किन्तु इन नामों और संख्याओं के विषय में भी सब पुराणों का एक मत नहीं है।
२	वैशाख	यम	—	
३	ज्येष्ठ	मित्र	७०००	
४	आषाढ़	वरुण	५०००	
५	श्रावण	शक्र	७०००	
६	भाद्रपद	विवस्वान	१०००	
७	आश्विन	पूषा	६०००	
८	कार्तिक	पर्जन्य	९०००	
९	मार्गशीर्ष	अंशु	१००००	
१०	पौष	भग	११०००	
११	माघ	त्वष्टा	८०००	
१२	फाल्गुन	विष्णु	६०००	

यह कूर्म का मत है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसके अतिरिक्त प्रायः प्रत्येक पुराण में १२ मासों के सूर्य के ऋषि (उसका स्तवन करने वाले—ग्रथितंस्तैर्वीचिभिः स्तुवन्ति मुनयो रविम्), गन्धर्व और अप्सरा (नाचने गाने वाले—गन्धर्वाप्सरश्चैनं नृत्यैर्गेयैरुपासते), ग्रामणी, यक्ष (उसकी शक्ति का संग्रह करने वाले—ग्रामणी यज्ञ भूतानि कुर्वतेऽभीशु संग्रहम्), सर्प (सूर्य को चलाने वाले—सर्पावन्ति देवेश) और यातुधान या राक्षस (दूत—यातुधानां प्रप्सन्ति च) भी कल्पित किए गए हैं। इस विषय में भी सब का मत नहीं मिलता, किन्तु इनका मूल भी वेद ही है। नीचे के चक्र में वेद और पुराणों का मत दिया जाता है :—

नाम सूर्य	नाम ऋषि	नाग–सर्प	गधर्व	अप्सरा	ग्रामणी	राक्षस	मास
धाता	पुलस्त्य	वासुकी	तुंबरु	कृतस्थला	रथकृत्	हेति	मधु
अर्यमा	पुलह	संकीर्ण	नारद	पुञ्जिकस्थला	रथौजा	प्रहेति	माधव
मित्र	अत्रि	तक्षक	हाहा	मेनका	रथंतर	पुरुषाद	शुचि
वरुण	वशिष्ठ	रम्भक	हूहू	सहधन्या	रथकृत	वध	शुक्र
इन्द्र	अंगिरा	ऐलापत्र	प्रातः	प्रम्लोचा	विश्वासवसु	हेति	नभस्य
विवश्वान	भृगु	शंखपाल	रथः	निम्लोचन्ती	सुषेण	व्याघ्र	नभस
पर्जन्य	भरद्वाज	ऐरावत	चित्रसेन	विश्वाची	सेनजित्	चार	त्विष
पूषा	गौतम	धनञ्जय	वसुरुचि	घृताची	सुषेण	वात	ऊर्ज्ज
अंश	कश्यप	महापद्म	चित्रसेन	पूर्वचित्ती	तक्ष	विद्युत	सह
भग	क्रतु	कर्कोटक	पूर्णायु	उर्वशी	अरिष्टनेमि	सूर्य	सहम्य
त्वष्टा	जमदग्नि	कंवल	धृतराष्ट्र	तिलोत्तम	तटतजित	ब्रह्मोपेत	—
विष्णु	विश्वामित्र	गाथन्	सूर्यवर्चा	रम्भा	सत्यजित	यज्ञोपेत[1]	—

१—मत्स्य पुराण अध्याय १२६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सूर्य	ऋषि	ग्रामणी (यक्ष विक)	राक्षस	नाग या अश्व	गन्धर्व	अप्सरा	मास	पुराण
धाता	पुलस्त्य	रथकृत	हेति	वासुकि	तुम्बरु	जतुस्थला	चैत्र वैशाख	कूर्म
धाता	"	स्वभृत्	"	"	"	क्रतुस्थला	चैत्र	विष्णु
यम	पुलह	रथौजा	प्रहेति	कंकनील	नारद	पुञ्जिक-स्थला	ज्येष्ठ	कूर्म
अर्यमा	"	"	"	कच्छवीर	"	"	वैशाख	विष्णु
मित्र	अत्रि	रथचित्र	पौरुषेय	तक्षक	हाहा	मेनका	आषाढ़	कूर्म
"	"	रथस्वन	"	"	"	"	ज्येष्ठ	विष्णु
वरुण	वशिष्ठ	सुवाहक	वध	सर्वसुने	हूहू	सहजन्या	श्रावण	कूर्म
"	"	रथचित्र	रथ	रथचित्र	"	रम्भा	आषाढ़	विष्णु
शुक्र	अंगिरा	रथस्वन	सर्प	ऐलापुत्र	विश्वास वसु	प्रम्लोचा	भाद्र०	कूर्म
इन्द्र	"	?	सोता	"	"	"	श्रावण	विष्णु
विवस्वान	भृगु	वरुण	व्याघ्र	शंखपाल	उग्रसेन	अनुम्लोचा	आश्विन	कूर्म
"	"	आपूरण	"	"	"	"	भाद्र०	विष्णु
पूषा	भरद्वाज	सुशेष (सुषेण?)	अघ	ऐरावत	सुरुचिर	विश्वाची	कार्तिक	कुर्म
"	गौतम	"	वात	धनंजय	वसुरुचि	घृताची	आश्विन	वि०
पर्जन्य	गौतम	सेनजित	वात	"	वावसु	"	मार्ग०	कूर्म
"	भरद्वाज	"	?	ऐरावत	विश्वासवसु	विश्वाची	कार्तिक	वि०
अंशु	कश्यप	तार्क्ष्य	विद्युत	महापद्म	चित्रसेन	उर्वशी	पौष	कूर्म
अंश	"	"	"	"	"	"	मार्ग०	वि०
भग	क्रतु	अरिष्टनेमि	दिवाकर	कर्कोटक	ऊर्णायु	पूर्वचित्ति	माघ	कूर्म
भग	क्रतु	"	स्फूर्ज (सूर्य ?)	"	"	"	पौष	वि०
								कूर्म
त्वष्टा	जमदग्नि	कृतजित	ब्रह्मोपेत	कंवल	धृतराष्ट्र	रम्भा	फाल्गुण	कूर्म
"	"	ऋतजित्	"	"	"	तिलोत्तमा	माघ	वि०
विष्णु	कौशिक	सत्यजित्	यज्ञोपेत	अश्रुतर	सूर्यवचा	"	चैत्र	कूर्म
"	विश्वामित्र	"	"	"	"	रम्भा	फाल्गुन	वि०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सूर्य की रश्मि	सेनानी	ग्रामणी	अप्सरा	दल्क्षणु (राक्षस)	यातुधान	सर्प
हरिकेश	रथगृत् (रथभृत ?)	रथौजा	पुञ्जिकस्थला क्रतुस्थला	हेति, प्रहेति, पौरुषेय, वध	—	—
विश्वकर्मा	रथस्वन	रथचित्र	मेनकी सहजन्या	प्रहेति	प्रहेति	—
विश्वव्यचा	रथप्रोत	समरथ	प्रम्लाचन्ती अनुम्लोचन्ती	व्याघ्राः	—	प्रहेति
संयद्वसु	तार्क्ष्य	अरिष्टनेमि	विश्वाची घृताची	जायवात	—	—
अर्वाग्वसु	सेनजित	सुषेण	उर्वशी पूर्वचित्ती	अवुस्फूर्जतु विद्युत	—	—

यजुर्वेद अ० १५
मन्त्र १५-१९

इसी प्रकार अन्य पुराणों में भी अवांतर से ऋषि, गंधर्व, अप्सरा, राक्षस आदि के नाम पाए जाते हैं। किन्तु यजुर्वेद के मूल पाठ से इनका पाठन विरुद्ध होना तथा इन पौराणिक पाठ का भी परस्पर न मिलना इनकी उपादेयता का बाधक हो रहा है। साथ ही यह भी विचारणीय है कि यह विषय वेद-मूलक होने पर भी पुराण का विषय कितने अंश में गिना जाता है, क्योंकि 'सर्गश्चानुसर्गश्च' के लक्षणों में इन का समावेश नहीं होता।

आगे १२९वें अध्याय से १४०वें अध्याय तक पौराणिक विषय का एक विशेष प्रसंग मिलता है, जिसका नाम 'त्रिपुर नाश' है। रुद्र ने इसी दैत्यपुरी त्रय को नष्ट कर त्रिपुरारि का पद प्राप्त किया था। कुछ लोग ट्रिपोला को ही त्रिपुरी समझते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तारकासुर वध के पीछे दैत्यों ने अपनी शक्ति का संगठन किया, एवं मय ने तीन दुर्ग बनाकर उनकी रक्षा की। इनमें एक दुर्ग लोहे का था, जिसका अधिकार तारक नाम के एक राक्षस को दिया गया। दूसरा दुर्ग चाँदी का था, जिसका अधिकारी विद्युन्माली बना। और तीसरा दुर्ग सोने का था, जिस पर वह स्वयं अधिपति हुआ। ये दुर्ग क्रम से भूमि, अंतरिक्ष और स्वर्ग में थे। इस प्रकार अपनी शक्ति को संगठित करके उन्होंने फिर देवताओं को दुःख देना आरम्भ किया। अन्त में रुद्र ने उनके ये सब दुर्ग भस्म करके राक्षसों को भगा दिया। त्रिपुर-नाश की यही कथा है।

ऐसा प्रतीत होता है कि जब आर्य (देव) अपने प्राचीन स्थान मध्य एशिया या तिब्बत को छोड़ कर इधर-उधर बसने लगे, और दैत्य उनके साथ फैल रहे थे, तो दैत्यों ने इनकी शक्ति विच्छिन्न देखकर पहाड़ों पर, घाटियों में और मैदानों में अपने दुर्ग बना कर इन्हें परेशान करना शुरू कर दिया। इस दुर्ग-माला को नष्ट करने के पराक्रम-पूर्ण कार्य का इतिहास ही त्रिपुर-नाश का आख्यान है। इसके पश्चात् कदाचित् देव और असुर इस प्रकार द्वन्द्व युद्ध नहीं लड़े, किन्तु मैदानों में ऐसे ही प्रसंग घटते रहे। इस प्रकरण में उक्त तीनों दुर्ग मय पुरों की रचना का वर्णन पढ़ने योग्य है।

इससे आगे के अध्याय में श्राद्धानुकीर्तन का एक अध्याय है। यह विषय श्राद्ध कल्प में आना उचित था। किन्तु इससे आगे का अध्याय एक नए विषय का आरम्भ करता है, जो मन्वंतर तथा युग-वर्णन के नाम से प्रसिद्ध है। यह विषय अध्याय १४२-१४५ और १६४-१६६ में है। बीच में तारक-वध तथा प्रह्लाद का आख्यान है। इसी तारक वध के आधार पर कालिदास के कुमार संभव की सृष्टि बनाई जाती है। युगों की संख्या आदि में मनुस्मृति के प्रथम अध्याय के कितने ही श्लोक यथावत् पाए जाते हैं। १४२वें अध्याय में यज्ञ के विकास का अच्छा वर्णन किया है, जिस से यह भी अनुमान होता है कि इस पुराण का यह भाग तथा और भी बहुत-सा भाग—जो भविष्य का वर्णन करता है, या जिसमें विशेषकर तीर्थ-महात्म्य आदि पौराणिक विषयों का उल्लेख पाया जाता है—महात्मा बुद्ध के समय की या उसके पश्चात् की रचना है, जब हिंसा से लोगों की साधारणतया घृणा बढ़ती जा रही थी। उक्त अध्याय के आरम्भ में ऋषियों ने प्रश्न किया है—"सतयुग के सन्ध्याकाल एवं त्रेता के आरम्भ में जब औषधि वर्ग उत्पन्न होने लगा था और वर्षा आरम्भ होने के कारण ग्राम और नगरों में 'वार्ता' (खेतीबारी आदि रोज़गार) आरम्भ हो गई थी तथा वर्णाश्रम धर्म की स्थापना भी हो चुकी थी, और मंत्रों के संग्रह द्वारा संहिताओं की रचना भी हो रही थी, तो स्वायंभुव मन्वंतर में यज्ञ की क्या दशा थी ? इस प्रश्न का उत्तर लगभग ३८ श्लोकों में सूत जी ने दिया है, जिसका संक्षेप इस प्रकार है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्द्र[1] ने सबसे पहले अश्वमेध यज्ञ किया था। जब यज्ञ की सब तैयारी हो चुकी, एव होता, अध्वर्यु आदि अपने-अपने काम में लग गए तथा पशु-आलम्भन का समय आया, तो ऋषि और महर्षिगण दीन पशुओं को देखकर कम्पित हुए एवं उन्होंने विश्वभुज से पूछा कि यह यज्ञ की क्या विधि है? हिंसा-युक्त यह कार्य अधर्म है। हमें तो आपके इस यज्ञ में यह पशु-विधि (पशु की हिंसा विधि) अच्छी

१—कथ त्रेतायुग मुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम्; पूर्वे स्वायाभुवे सर्वो यथावत्प्रवर्तीहितः ॥१ अन्तर्हितायां संध्यायां सार्द्धं कृतयुगेनहि, कोलाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तदा ॥२॥ ओषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टि मर्जने, प्रतिष्ठायां वार्तायां ग्रामेषु च पुरेषु च ॥३॥ वर्णाश्रम प्रतिष्ठानं कृत्वामन्त्रैश्च तैः पुनः, सहितास्तु सु सङ्गत्य कथ यज्ञः प्रवर्तितः ॥४॥ मन्त्रान्वै योजयित्वा तु इहासुत्र च कर्म सु, तथा विश्व भुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत्प्रभुः ॥५॥ ··· तस्याश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः ॥६॥ ··· ··· आलब्धेषु च मध्ये तु तथा पशुगणेषुवै ॥९॥ ··· ··· अध्वर्युप्रैषकालेतु व्युत्थिता ऋषयस्तथा, महर्षयश्चतान् दृष्ट्वा दीनान्पशुगणांस्तदा ॥११॥ विश्वभुजते त्वपृच्छन् कथं यज्ञविधि स्तव, अधर्मो वलवानेषहिंसाधर्मेप्सयातव ॥१२॥ न वः पशुविधिस्त्विष्टस्तव यज्ञे सुरोत्तम, अधर्मो धर्मघाताय प्रारब्धः .पशुभिस्त्वया ॥१३॥ नायं धर्मोह्यधर्मोऽयं न हिंसाधर्म उच्यते, आगमेन भवान् धर्म प्रकरोतु यदिच्छति ॥१४॥ विधि दृष्टेन यज्ञेन धर्मेणाव्यसनेनतु ॥१४॥ यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ त्रिवर्गपरिपोषितैः, एषः यज्ञो महानिन्द्र स्वयभुविहितः पुरा ॥१५॥ तेषां विवादः सुमहान् जज्ञे इन्द्र महर्षिणाम्, जंगमेः स्थावरैः केन यष्टव्यमिति चोच्यते ॥१६॥ ते तु खिन्ना विवादेम शक्त्या युक्ता महर्षयः, संध्याय सममिन्द्रेण पप्रच्छुः खचर वसुम् ॥१७॥ श्रुत्वाव्याच वसुस्तेषामविचार्य वलावनम्, वेदशास्त्र मनुस्मृत्य यज्ञ तत्त्वमुवाच ह ॥१९॥ यथोपनीतै यष्टिव्यमिति होवाच पर्थिवः, यष्टव्यं पशुभिर्मेध्यैरथ मूल फलैरपि ॥२०॥ हिंसा स्वभावो यज्ञस्य इतिमे दर्शनागमः, तथैते भाविता मन्त्रा हिंसालिंगा महर्षिभिः ॥२१॥ दीर्घेण तपसायुक्तैस्तारकादीनिदर्शिभिः। तत्प्रमाणं मया पोक्तं तस्माच्छमितुमर्हथ ॥२२॥ यदि प्रमाणं स्वान्येव मंयंवाक्तानि वोद्विजाः, तथा प्रवृत्ततां यज्ञाह्यन्यथा मानृतं वचः ॥२३॥ एवं कृतोत्तरास्ते तु युज्यात्मानं ततो धिया, अवश्यंभाविनं दृष्ट्वा तमधोह्यंशयंस्तदा ॥२४॥ इत्युक्त मात्रोनृपतिः प्रविवेश रसातलम् धर्माणां संशयच्छेत्ता राजावसुरधोगतः ॥२६॥ तस्मान्न हिंस यज्ञेस्याद्यपुत्रां मृषिभिः पुरा, तस्यान्त हिंसा यज्ञञ्च प्रशसंति महर्षयः ॥२९॥ उञ्छोमूलं फलशाकमुदपात्रं तपोधना, दत्त्वा विभवतः स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः ॥३०॥ अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दयोभूतदयाशयः; ब्रह्मचर्य तपः शौच मनुक्रोशंक्षमा धृतिः ।३१ सनातनस्य धर्मस्य मूलमेव दुरासदम् ॥३२॥

इसी प्रकार के विचार भागवत के ११ वें स्कन्ध में भी पाए जाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं लगती। धर्म के नाश के लिए ही तो ये पशु वधार्थ होंगे। यह अधर्म है। धर्म नहीं है। हिंसा धर्म कदापि नहीं हो सकता। आपको वेद के अनुसार ही धर्म कार्य करना उचित है यह विधि के अनुकूल तथा धर्मानुसार होना चाहिए, क्योंकि यज्ञ की शक्ति से ही तो पुष्ट धर्म अर्थ और काम वाला यह यज्ञ पुराकाल में स्वयंभू ने बताया था। इस पर उस यज्ञ में यह प्रश्न उठा कि यज्ञ स्थावर पदार्थों से करना उचित है या जगम पदार्थों से? अन्त में वाद-विवाद से खिन्न होकर ऋषियों ने यह प्रश्न उत्तानपाद के पुत्र वसु से पूछा। वसु ने उनकी बात सुनी, तथा उनकी युक्तियों के बलाबल को विचार एवं वेद और शास्त्र के अनुसार यज्ञ तत्त्व के विषय में इस प्रकार उत्तर दिया—"यथा विधि प्राप्त किए गए पवित्र पशुओं तथा मूल फलों से यज्ञ करना उचित है, क्योंकि मेरा तो वैदिक विज्ञान यही है कि यज्ञ हिंसा से ही उत्पन्न होते हैं। तथा ऋषियों ने भी इन मन्त्रों को हिंसा का चिन्ह स्वरूप अनुभव किया है। इस प्रमाण के अनुसार आप को इन पशुओं का शयन (हिंसा) करनी चाहिए। आपके मन्त-वाक्य ही इसमें प्रमाण हैं; इस लिए आप उसी के अनुसार कार्य कीजिए।"

ब्राह्मण ऋषियों ने उसकी बात से निरुत्तर होकर बुद्धि-पूर्वक विचार किया, एवं भविष्य का विचार करके राजा को शाप दिया कि वह पतित हो। धर्म के संशय को मिटाने वाला राजा इस तरह पतित हो गया। इस से जान पड़ता है यज्ञ में इस पुराण के समय में हिंसा नहीं बताई गई थी; तथा हिंसा-यज्ञ की प्रशंसा भी ऋषिगण नहीं करते थे। वास्तव में शिलोच्छ, मूल-फल शाक जल आदि देने से ही ब्राह्मण स्वर्ग को गए थे। किसी से बैर न करना, लोभ न रखना, दया, भूतों पर दया, शयन ब्रह्मचर्य, तप, शौच, कठोर शब्द न कहना, क्षमा, धैर्य, बस, सनातन धर्म की मूल बातें ये ही हैं।

यज्ञ का यह वर्णन बुद्ध की शिक्षा के कितने पाठ हैं? सो अधिक विस्तार से कहने की आवश्यकता नहीं है।

मत्स्यपुराण का शेष भाग—मत्स्य-पुराण का यहां मुख्य और उतना भाग समाप्त हो जाता है, जितना मत्स्य-पुराण के अध्याय ५३ के श्लोक ४९-५० के अनुसार मत्स्य-पुराण समझा जाना उचित है। यह अवश्य है कि इस भाग में नरसिंह का विषय वर्णन हो जाने पर भी सप्त कल्पों का वृतांत नहीं आया है, किंतु यह विषय आगे भी पुराण-भर में कहीं नहीं पाया जाता। इसके विरुद्ध आगे के अध्यायों में पद्म-कल्प की सृष्टि-प्रलय और सृष्टि-रचना का वर्णन, मधु कैटभ आदि असुरों का देवासुर-संग्राम, कालनेमि, अन्धक, वृत्त आदि का वध, वाराणसी, नर्मदा, कावेरी, आदि का महात्म्य ऋषियों के गोत्र-प्रवर आदि का विस्तार, अनेक प्रकार के दानों की प्रशंसा आदि विषय पाए जाते हैं, जो स्वयं स्वतन्त्र रूप से एक पुराण का विषय हैं। इसी भाग में राजवंशों का भविष्य वर्णन, अनेक प्रकार के यात्रा आदि के मुहूर्त्त और शांति तथा अद्भुत क्रिया योग का वर्णन पाया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्रिया योग और रचना काल—यह क्रिया योग एक महत्त्व-पूर्ण अंग है। इस में भिन्न-भिन्न देवताओं की मूर्तियों की रचना, स्थापना, पूजन और उनके मकान मन्दिर आदि बनाने के नियम भी पाए जाते हैं।[1] एक प्रकार से यह क्रिया-योग ही मूर्ति-पूजन का विधायक सम्प्रदाय है। हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि मूर्ति-निर्माण कला आदि वास्तु विद्या की बातों का आरम्भ इसी समय से भारतवर्ष में होता है, नहीं, इस समय से बहुत पूर्व कम-से-कम १८ वास्तु विशारदों के रचे १८ वास्तुशास्त्र तैयार हो चुके थे।[2] प्रधान-प्रधान राजवंशों में राजा और महाराजाओं की मृत्यु के पश्चात् उनकी प्रतिमाएँ (Saratues) भी म्यूजिमों (देव कुलों) में रक्खी जाती थीं।[3] किंतु विशेष प्रकार के देवताओं की प्रतिमाएँ विशेष रूप में बना कर एवं अमुक वेश आदि से सुसज्जित करने आदि की व्यवस्था और उनकी पूजा तथा प्राण-प्रतिष्ठा आदि के नियम, ये सब बातें उसी समय की हैं, जब ब्राह्मण-गुरुओं का सम्प्रदाय अपने शिष्य वर्ग को जैन और बौद्धों के प्रभाव से उपन्मुक्त करने के लिए अत्यन्त चंचल था।

शुद्धि—उसी समय धर्म-भ्रष्ट राजाओं तथा अन्य मनुष्यों को भी शुद्ध करने की वह व्यवस्था दी जा रही थी, जिसके लिए आज हिंदू-समाज हिचकता है।[4] ये सब बातें स्पष्ट ही इस भाग की नवीनता और बौद्ध युग तथा यवनों के उत्कर्ष काल की सूचनाएं देकर ग्रन्थ के निर्माण-काल को बता रही हैं। महात्मा बुद्ध की शूद्र

१—क्रिया योगं प्रवक्ष्यामि देवताच्चानुकीर्तनम्, भुक्ति मुक्तिप्रदं सस्मान्नान्य •लोकेषु विद्यते ॥२॥ प्रतिष्ठायां सुराणान्तु देवताच्चानुकीर्तनम्। देवयज्ञोत्सवंचादि वन्धना-द्ये नमुच्यते ॥३॥ विष्णोस्तावत्प्रवक्ष्यामि यादृग्रूप प्रशस्यते शख चक्रधरं शान्तं पद्महस्तं गदाधरम् ॥४॥ ···· ··· अध्याय २५७

२—भृगुरत्रि वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा,
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः ॥२॥
ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च;
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्र वृहस्पति ॥३॥
अष्टादशैते विख्याता वास्तु शास्त्रोपदेशकाः ॥४॥

(मत्स्य पुराण अध्याय २५२)

३—नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १, पृष्ठ ९५ से १०६ तक।

४—वर्णाश्रम व्यवस्थानं तथा कार्यः विशेषतः,
स्वधर्म प्रच्युतानु राजा स्वधर्मे स्थापयेत्तथा ॥

(मत्स्य पुराण अध्याय २१५ श्लोक ६२)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और अति शूद्र को भी मानवीय अधिकार देने की नीति तथा संघ के संगठन ने ब्राह्मण-धर्मावलम्बी समाज में जो उथल-पुथल पैदा करती थी, उसका उल्लेख भी कहीं-कहीं मिल जाता है। किन्तु इस पुराण भर में महात्मा बुद्ध को विष्णु का नवां अवतार कहीं भी नहीं स्वीकार किया गया है, जैसा कि अन्य पुराणों में पाया जाता है।[1] उनके सम्बन्ध में केवल इतना ही लिखा है कि—'सञ्जय का पुत्र शाक्य होगा, शाक्य का शुद्धोदन राजा होगा, शुद्धोदन का सिद्धार्थ होगा।[2]

इसका यह अर्थ है कि मत्स्य पुराण अधिसीम कृष्ण के समय में अध्याय १६४ तक अथवा इसके लगभग ही तैयार किया गया था। किन्तु उस समय भी उसमें ये सब अध्याय नहीं थे, प्रत्युत कुछ अश्लील और अप्रासंगिक बातें समय-समय पर उसमें पीछे भी बढ़ती रहीं।

सूर्य वंशी मरु देव के पुत्र नक्षत्र या सुनक्षत्र के पश्चात् बुद्ध के समय से लगभग दस पीढ़ी पूर्व) इसका दूसरी बार सस्कार किया गया। यह सस्कार चाहे तो बुद्ध के समय में ही किया गया हो, अथवा उससे भी पीछे। किन्तु इस अनुमान का दृढ़ कारण यह है कि महाराज सुनक्षत्र का नाम भूतकालिक क्रिया में लिखा गया है, जैसा कि एक लेखक की दृष्टि से सामान्यतः लिखा जाना उचित और आवश्यक है। यह ठीक है कि यद्यपि इस से पहले और इससे आगे भी प्रायः सब नाम भविष्यकाल की क्रिया में पाए जाते हैं, किन्तु विशेष अभिप्राय को लेकर लिखने वाले लेखकों की परीक्षा या पकड़ तो ऐसी ही त्रुटियो से होती है।

वंश वर्णन—पुराणों का एक आवश्यक विषय वंश-वंशान्तरों की कथा है। देखा जाय तो वास्तविक पुराण यही है, क्योंकि इनकी रचना इसी उद्देश्य के लिए की गई थी। इसके अतिरिक्त पुराणों को छोड़ कर इस समय पुराने राजा-महाराजाओं के चरितो के जानने का साधन महाभारत और रामायण के अतिरिक्त पुराण ही हैं। महाभारत और रामायण जहाँ इस प्रकरण मे अधूरे हैं, वहाँ पुराणों की सहायता बड़ी उपयोगी है। फिर महाभारत के पश्चात् के इतिहास के लिए तो केवल ये पुराण ही प्रमाण रूप से ग्राह्य है। इस सम्बन्ध में हमने पीछे भी काफी विवेचन किया है।

१—एतस्मिन्नेव काले तु कलिना संस्तुतो हरिः ;
काश्यादुद्भवो देवो गौतमो नाम विश्रुत.।
बौद्ध धर्मञ्च संस्कृत्य पटलो प्राप्ततो हरिः। भविष्य पुराण

२—सञ्जयस्य सुतः शाक्यः शाक्याच्छुद्धौदनो नृपः ;
शुद्धौदनस्य भविता सिद्धार्थः पुष्कलः सुतः। मत्स्य० अ० २७२ श्लोक १२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पुराणों में सब मिला कर महाराज युधिष्ठिर के समय तक सूर्य और चन्द्र-वंशों के प्रायः १०० नाम मिल जाते हैं। कदाचित् इतना बड़ा वंश-वृक्ष संसार में किसी जाति में भी नहीं पाया जावेगा। इन राजाओं के नाम के साथ-साथ उनके सूक्ष्म चरित भी दिए गए हैं। किन्तु ये पुराण वंश किसी प्रकार भी पूर्ण नहीं माने जा सकते।

पार्जीटर ने पौराणिक राजाओं की एक क्रमबद्ध सूची छपवाई है। श्री पार्जीटर योरोपियन विद्वत् समाज में पुराण सम्बन्धी ज्ञान के लिए प्रमाण समझे जाते हैं। किन्तु उनकी यह सूची कितनी अधूरी है, इसका अन्दाज़ पाठक एक बात से ही कर लेंगे। पार्जिटर की सूची में ययाति को आदि से छठीं पीढ़ी में गिनाया है।[1] यहाँ इन्होंने मनु से वंश-पीढ़ियों की गणना की है और चन्द्र को छोड़ दिया है, जिसे स्पष्ट ही सात के स्थान में छः पीढ़ी रह गईं। किन्तु मत्स्य पुराण में इस विषय में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि ययाति प्रजापति से दसवें थे।[2] अब प्रजापति चाहे मनु को मानिए चाहे अत्रि को अथवा ब्रह्मा को मान लीजिए, किन्तु ययाति तक १० पीढ़ियाँ अवश्य मिलनी चाहिएँ। किन्तु इस समय मत्स्य पुराण में भी केवल आठ पीढ़ी ही पाई जाती हैं। वे आठ पीढ़ी ये हैं—१-ब्रह्मा, २-अत्रि, ३-चन्द्र, ४-बुध, ५-पुरुरवा, ६-आयु, ७-नहुष और ८-ययाति। ब्रह्मा के पश्चात् 'मनु' एक नाम और भी बढ़ाया जा सकता है, किन्तु दस नाम किसी प्रकार भी पूरे नहीं हो सकते। इसका अर्थ यह नहीं कि पार्जिटर जैसे योरोपियन विद्वानों के लेख नितांत भ्रष्ट और गलत रास्ते पर ले जाने वाले हैं। हमें उनका परिश्रम सराहना चाहिए तथा उस से लाभ भी उठाना चाहिए।

वंशावलियों के सम्बन्ध में एक बात और भी ध्यान देने की है। पुराणकारों ने सदैव ही पिता के पीछे पुत्र का नाम नहीं दिया है, किन्तु सर्वत्र वह नाम दिया है; जो पिछले व्यक्ति के पीछे राज्याभिषिक्त हुआ हो। यह व्यक्ति भी सदैव पिछले व्यक्ति का पुत्र नहीं होता था, किन्तु भाई, भतीजा, पोता अथवा अन्य सम्बन्धी भी हो सकता था। उदाहरण के लिए करावंश के प्रसंग का उल्लेख किया जाता है।

वृहद्भानु का पुत्र वृहत्मना था, जो अभिषिक्त हुआ था। उसका पुत्र जयद्रथ राज्य पर आया, उसका जनमेजय, उसका गंग, उसका कर्ण। यह कर्ण वही था, जो

१—Journal of the Royal Asitic Socicty of Great Britoin and Ireland 1910 P 26

२—ययातिः पूर्वजोऽस्माकं दशमो यः प्रजापतेः,
कथं सः शुक्र तनयां लेभे परम दुर्लभाम्। (मत्स्य० अ० २५ श्लोक ४)
यही बात महाभारत के आदि पर्व अध्याय ७६ श्लोक १ में कही है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महाभारत में दुर्योधन का सहायक होकर लड़ा था, एवं कुन्ती का पुत्र कहा जाता था इसको इस प्रकार कहा गया है—

वृहद्भानुस्सुतस्तस्य जज्ञे महात्मवान् ॥१००॥
वृहद्भानुस्य राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम् ।
नाम्ना जयद्रथ नाम तस्याद्वृहद्रथो नृपः ॥१०१॥
आसीद्वृहरथाच्चैव विश्वजिज्जनमेजयः ।
दायादस्तस्य चाङ्गो वै तस्यात्कर्णोऽभवन्नृपः ॥१०२॥
कर्णस्य वृषसेनस्तु····· ॥१०३॥ (अध्याय ४८)

किन्तु कर्ण अधिरथ सूत का पुत्र था, और उसकी अपनी वंश शाखा इस प्रकार है—

वृहद्भानु सुतो जज्ञे राजा नाम्ना वृहत्मनाः ।
तस्य पत्नी द्वयंह्यायासीत्छैव्यस्त तनये शुभे ॥१०५॥
यशो देवी च सत्या च तयोर्विशञ्च मे शृणु ।
जयद्रथन्तु राजानं यशोदेवी ह्यजीजनत् ॥१०६॥
सा वृहन्मनसः सत्या विजयं नाम विश्रुतम् ।
विजयस्य वृहत्पुत्रस्तस्य पुत्रो वृहद्रथः ॥१०७॥
वृहद्रथस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महामना ।
सत्यकर्मणोऽधिरथः सूतश्चाधिरथः सुतः ॥१०८॥
यः कर्ण प्रतिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतजः ।

इसके अनुसार वंश वृक्ष यों बनता है :—

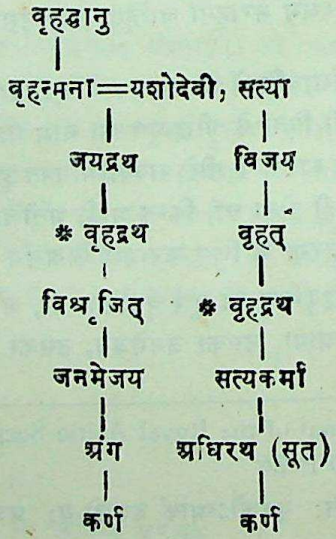

वृहन्मना के पीछे जयद्रथ अभिषिक्त हुआ और वह उसका पुत्र था। जयद्रथ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के पीछे गद्दी पर बृहद्रथ आया, किन्तु वह जयद्रथ का पुत्र नहीं, प्रत्युत उसके भाई का पुत्र था। शायद जयद्रथ अपुत्र रहा था। वंशावलि में उसे स्पष्ट उसका पुत्र भी नहीं कहा है। और यह भी नहीं कहा कि वह उसका भतीजा था, या दत्तक। किन्तु इस भेद को केवल पञ्चमी विभक्ति द्वारा (तस्याद्बृहद्रथो नृपः) लिखकर कहा—कि उसके पीछे वृहद्रथ राजा हुआ। वृहद्रथ के पश्चात् जनमेजय राजा हुआ। और यह भी वृहद्रथ का पुत्र नहीं जान पड़ता। इसका उत्तराधिकारी अंग भी इसका पुत्र न था। इसीलिये इसे स्पष्ट दायाद लिखा है, पुत्र नहीं। इसी प्रकार अंग का उत्तराधिकारी कर्ण भी था, जो अंग का पुत्र नहीं था। इसीलिए कर्ण को भी अंग का पुत्र नहीं लिखा है। ये विश्वजित्, जनमेजय और अंग इसी राजवंश के राजकुमार होंगे, जो युवराज के अभाव में, या उन्हें मारकर अथवा अन्य किन्हीं हेतुओं से एक के पीछे एक—पिता पुत्र का सम्बन्ध न होते हुए भी—राज्यासीन होते रहे। यही बात पुराणकार ने कही तो केवल पञ्चमी विभक्ति द्वारा [तस्मात् ····· नृपः] और कहीं तस्य पायाद. कहा है। पार्जिटर ने इस भेद को न समझ कर लिखा है कि ये शब्द प्रायः पिता—पुत्र का सम्बन्ध ही प्रकट करते हैं[1]। पुराणों में उत्तराधिकारी को प्रायः चार तरह से दिखाया गया है १—वह उसका पुत्र था या उससे उत्पन्न हुआ। जैसे "वृहद्भानु सुतो जज्ञे राजा नाम्ना वृहन्मन" (मत्स्य पुराण अ० ४८) या "विजयाद्रुरुको जज्ञे रुरुकांक्षु वृकः सुतः [गरुड़ पुराण पूर्वखण्ड अ० १३ श्लोक २८] कहीं षष्टी और केवल विभक्ति द्वारा उसका उत्तराधिकारी होना दिखाया है, जैसे 'दृढ़ श्वस्य प्रमोदश्च' तथा 'दृर्य्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत' (मत्स्य० अ० १२ श्लोक ३३) ये दोनों पिता—पुत्र के सम्बंध को प्रकट करते हैं। तीसरा ढंग पञ्चमी विभक्ति द्वारा प्रकट करने का ऊपर बताया जा चुका है, और चौथे ढंग में 'दायादः' कहा गया है। इसका उदाहरण भी ऊपर आ चुका है। दायाद का अभिप्रायः यही है कि वह भी राज्य पाने का अधिकारी था, और राज्य पर अन्य पत्र आदि निकट अधिकारियों के प्रभाव में वह राज्य पर बैठा। दायाद का अर्थ पुत्र, कुटुम्बी और सपिंड है।

इन वंशावलियों का मूल-आधार—आरम्भ में ये वंशावलियाँ किस प्रकार

१—yournal of R. A. S. Q. & Ivelim P. 8

इसके अतिरिक्त भागवत स्कन्ध १, अध्याय ३ में भी बुद्ध का अवतार होना स्वीकार किया गया। इस का अभिप्राय स्पष्टतया यही है कि ऐसे पुराण उस समय लिखे गए थे। जब बौद्धों और ब्राह्मणों का युद्ध समाप्त हो चुका था, एवं समाज में उनका प्रभाव इतना अधिक हो गया था, कि उसे विवश होकर पुराणकर्ता को स्वीकार करना पड़ा था। भागवत पुराण में रजि के पुत्रों का जैनी होकर धर्म-भ्रष्ट होने के अपराध में मारा जाना भी नहीं लिखा है। वास्तव में इसकी रचना के समय सुख, शांति और विलासिता की लहर देश-भर में उठ रही थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संग्रह की गई थीं, सो जान लेना इस समय कठिन है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इन का संग्रह भी प्राचीन संहिताओं में ही था, एवं इन्हीं के आधार पर ये लिखी गई हैं। स्थान-स्थान पर उदाहरण के रूप में उन प्राचीन संग्रहों के श्लोकों को भी इनमें उद्धृत किया गया है।[1] वंशावलियों के लेखक तथा संग्रह-कर्ता 'पुराविद्' 'पुराणज्ञ' 'पौराणिक' वंशविद्' 'वंश पुराणज्ञ' आदि आदर-सूचक शब्दों द्वारा स्मरण किए जाते थे। वे भी अपनी प्रतिष्ठा तथा सचाई का मर्म रखने के लिए प्रायः जैसी बातें सुनते, जानते या कही से ग्रहण करते थे, उसे वैसी ही 'इति अनुशुश्रुमः' इति जानीमः' 'इतिश्रुतम्' 'इत्युदाहरन्ति' 'अत्रानुवंश श्लोकोऽयं (या 'श्लोकाविमौ' अथवा 'श्लोका इमे') गीतो (या गीतौ, 'गीतां' = या 'गीयते' भी) विप्रैः=पुरातनैः' आदि शब्दों द्वारा प्रकट कर देते थे।

तो भी ये वंशावलियां पूर्ण नही हैं। स्थान-स्थान पर यद्यपि इन्हें विस्तृत तथा क्रम-बद्ध कहा गया है।[2] किन्तु यह कथन केवल अर्थ वाहमात्र है। ऐसे ही कहीं लम्बी-लम्बी सूचियों को भी संक्षिप्त कह किया है—'संक्षिप्तेन' या 'समासेन'[3]। किन्तु ये सूचियां न तो परस्पर बिल्कुल मिलती ही हैं और न विस्तृत हैं। ये संक्षिप्त अवश्य कही जा सकती है। इनमें राजाओं के नाम कहीं तद्धित दिए हैं। जैसे कृष्ण का नाम 'माधव' या 'यादव' या 'सात्वत' तथा एक और राजा का नाम भी सात्वत लिखा है, जो कुक्कुट पूका वंज था। अनेक साधारण राजाओं

१—उदाहरण के लिए देखिए—अत्रानुवंश श्लोकोऽयं गीतो विप्रैः पुरातनैः।
ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशो देवर्षि सत्कृतः;
क्षेमकं प्राप्यराजानं संस्थास्याति कलौयुगे ॥८८॥

तथा—इदञ्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभिषक्,
यं यं कराभ्यां स्पर्शति जीर्णं रोगिणमेव च।
पुनर्युवा च भवति तस्मात्तं शन्तनुं विदुः ॥४३॥ (मत्स्य० अध्याय ५०)

२—यदोर्वंश प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्य'ऽमित तेजसः;
विस्तरेणानुपूर्व्या च गदतो मे निबोधत ॥५॥
ययातेर्वंशमिच्छामि श्रोतुं विस्तरतो वद ॥४॥ (मत्स्य० अ० ४३)

हरिवंश—शृणुपुरोर्महाराज वशमुत्तमपौरुषम्,
विस्तरेणानुपूर्व्या च यत्र जातोऽसि पार्थिव ॥३॥ (अध्याय ३१)
यदोर्वंश प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः,
विस्तरेणानुपूर्व्यात्तु गदतो मे निशामय ॥ (अ० ३२ श्लोक १२९)

३—कूर्म-पुराण खण्ड १ अध्याय २१ श्लोक ६०
लिंग-पुराण खण्ड १ अध्याय ६८, श्लोक १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
के नाम इनमें छूट गए हैं या छोड़ दिए गए हैं। तो भी इन वंशावलियों का उपयोग इतिहास के लिए किया जा सकता है।

इस प्रकार का विषय-संग्रह उन पाँच संहिताओं में किया गया था, जिसका उल्लेख मत्स्य-पुराण की आलोचना में ऊपर दिखाया गया है। इन पुराणों से ही वर्तमान पुराणों की उत्पत्ति हुई।

२-वर्तमान पुराण-ग्रंथ

पुराणों का लक्षण—वतमान पुराण-ग्रंथों के लक्षण यद्यपि 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च' आदि श्लोक द्वारा ही बताए जाते हैं, किंतु उनकी विशेषता वास्तव में इन लक्षणों से अच्छे प्रकार प्रकट नहीं होती।

प्रचलित पुराणों में तीर्थों की महात्म्य, विधि, दिवस और पर्वों के उपलक्ष में उपवास करने यथा दान आदि देने का महात्म्य, शूद्र और स्त्री जाति को हीन बनाने का प्रयत्न, ब्राह्मणों का अलौकिक महात्म्य और उनका प्रभाव, देवताओं, ऋषियों तथा उनके अवतारों का भ्रष्ट चरित एवं उनके जीवन की गन्दी कथाएँ, पारस्परिक तथा साम्प्रदायिक द्वेष और लड़ाई-झगड़े आदि अनेक ऐसी ही बातें अधिकता से मिलती है। जो राष्ट्रीय दृष्टि से, धार्मिक विचार से, संस्कृति के अनुमान से और आर्य-जाति के पुराने गौरव को देखते कदापि आर्ष-ग्रन्थों के अनुरूप नहीं कही जा सकतीं। इन सब बातों पर आगे विचार किया जायगा।

पुराणों की संख्या—ऊपर कह आए हैं कि ५ मूल संहिता से वर्तमान पुराण बढ़ कर इस संख्या को पहुँचे हैं। इस समय पुराणों की संख्या अठारह प्रसिद्ध है। और कहा जाता है कि व्यास ने इन्हें लिखा था। इसका यथेष्ठ विवेचन ऊपर आ चुका है। अब केवल संख्या पर विचार करते हैं। क्या पुराण वास्तव में अठारह हैं ?

श्री मद्भागवत में नीचे लिखे अठारह नाम पाए जाते हैं—[1]

(१) ब्रह्म (२) पद्म (३) विष्णु (४) शिव (५) गरुड़ (६) नारद

१—एवं लक्ष्य लक्ष्याणि पुराणानि पराविदः। मुनयोऽष्टदश प्राहुः क्षुल्लकानि महान्ति च॥ ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं च गारुड़म्। नारदीयभागवतमाग्नेयं स्कान्द संज्ञितम्। भविष्यं ब्रह्म वैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम्। वाराहं मात्स्यं कौर्मञ्च ब्रह्माण्डमाख्यमिति त्रिषट्। (स्कन्द० १२ अ० ७, २२-२४)

भागवत की सम्मति में छोटे-बड़े सब पुराण और उपपुराण मिला कर अठारह ही हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(७) भागवत (८) आग्नेय (९) स्कंद (१०) भविष्य (११) ब्रह्मवैवर्त (१२) मार्कंडेय (१३) वामन (१४) वराह (१५) मात्स्य (१६) कूर्म (१७) ब्रह्मांड (१८) लिंग। भागवत की इसी सूची के अनुसार अठारह नाम लिंग, शिव, और पद्म पुराण में भी पाए जाते हैं[1]। किंतु देवी भागवत का नाम इनमें से किसी ने भी नहीं मिलाया है। यदि भागवत शब्द से श्रीमद्भागवत का ग्रहण न करके देवी भागवत का ग्रहण किया जाय, तो उसकी सूची के अनुसार वायु पुराण की गिनती अठारह में उचित है, तथा शिव-पुराण को छोड़ना चाहिए।[2] इस प्रकार देवी भागवत तथा वायु पुराण ये दो मिल कर पुराणों की संख्या २० हो जाती है। इधर वह्नि पुराण के नाम से एक पुस्तक और भी पाई जाती है, जिसे अग्नि पुराण कहा जाता है, और यह अग्नि-पुराण से भिन्न है[3]। इसी तरह ब्रह्म वैवर्त पुराण भी दो प्रकार का मिलता है—एक प्राचीन ब्रह्म वैवर्त और दूसरा केवल ब्रह्मवैवर्त। यह संख्या बाईस हो गई। मार्कंडेय पुराण में नृसिंह[4] पुराण की भी गणना की गई है, और देवी भागवत-

---

१—लिंग पुराण पूर्वार्द्ध० अ० ३९ श्लोक ६१-३; शिव पुराण अ० १, पद्म पुराण षष्टी उत्तर खण्ड अ० २३६।

२—चतुर्दश सहस्रञ्च मात्स्य माद्यं[१] ... मार्कण्डेयं[२] महाद्भुतम् ॥३॥

... ... भविष्यं[३] परिसंख्या तं ... ... भागवतं[४] किल ॥४॥

... ... पुराणं ब्राह्म[५] संज्ञकं ... ... ब्रह्मांडं[६] च शताधिकम् ॥५॥

... ... ब्रह्मवैवर्तञ्च[७] ... ... वामनाटकं[८] च वायव्य[९] षट्शतानि च ॥६॥

... ... वैष्णवं[१०] परमाद्भुतं ... ... वाराहं[११] ... ... पुराणं चाग्नि[१२] संज्ञकम्।

... ... नारद[१३] परम् मतम् ॥९॥ ... ... पद्माख्यं[१४] ... ... लिंगाख्यं[१५] चाति-

विस्तृतम् ॥१०॥ ... ... गारुड़[१६] .. पुराणं कूर्म[१७] भाषितम् ॥११॥

... ... स्कन्दाख्यं[१८] परमाद्भुतम् ॥१२॥

३—अष्टादश पुराण दर्पण पृष्ठ २०८

४—नृसिंह पुराण की स्वतन्त्र गणना केवल मार्कंडेय में ही की गई है। अन्यत्र नहीं। मत्स्य पुराण में लिखा है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कार ने नारद पुराण को रख कर शिवपुराण को छोड़ दिया है। इस प्रकार ये २४ हुए।

वास्तव में पुराणों की संख्या, और उनके नामों को लेकर प्राचीन काल से ही विवाद चला आता है। ऊपर कहा गया है कि इस समय दो भागवतें पाई जाती हैं— श्री मद्भागवत और देवी भागवत। श्री रामाश्रम स्वामी ने 'दुर्जन मुख चपेटिका' नामक पुस्तक लिखकर श्री मद्भागवत को ही वास्तविक पुराण ठहराया है। किन्तु इसका उत्तर श्री काशीनाथ भट्ट ने 'दुर्जन मुख महा चपेटिका' के नाम से दिया है, एवं देवी भागवत को पुराण सिद्ध किया है। और एक विद्वान् इन दोनों से बढ़ कर 'दुर्जन-मुख-पद्म-पादुका' भी लिख गए हैं। उन्हों ने भी देवी भागवत का पक्ष लिया है।

मत्स्य-पुराणकार ने नृसिंह, नांदी और सांवदा सूर्य इस प्रकार तीन पुराण और गिनाकर कहा है कि ये उपपुराण हैं। किंतु लिंग पुराण में नृसिंह पुराण को महापुराण ही स्वीकार किया है।

शेष उपपुराण— किंतु उप पुराणों की संख्या भी ऐसी ही अपरिमित है। सूत-संहिता में— (१) सत कुमार (२) नरसिंह (३) नन्दी (४) शिवधर्म (५) दुर्वासा (६) नारद (७) कपिल (८) नामन [मानव] (९) उक्षनस् (१०) ब्रह्मांड (११) वरुण (१२) काली (१३) वशिष्ठ (१४) माहेश्वर (१५) साव (१६) सूर्य (१७) पराशर (१८) मारीच (१९) भार्गव। इन नामों से १९ उपपुराण गिनाए हैं[1]। स्पष्ट ही ये मत्स्य-पुराण की अपेक्षा अत्यन्त नवीन हैं। इनके अतिरिक्त अष्टादश पुराण-दर्पण के कर्ता ने वृहद्नारदीय पुराण नामक एक उप-पुराण भी लिखा है। इतना ही नहीं किन्तु (२१) कापिल (२२) आदित्य (२३) महेश्वर (२४) भागवत (२५) वशिष्ठ (२६) कौर्म (२७) भार्गव (२८) आदि (२९) मुद्गल (३०) कल्कि (३१) देवी (३२) महाभागवत (३३) वृद्धर्म (३४) परानन्द (३५) पशुपति और (३६) सोम नामक पुस्तकें भी उप-पुराण के नाम से गिनी जाती हैं।[2]

पाद्मे पुराणे यत्रोक्तं नरसिंहोपवर्णनम्,
तच्चाष्टादश साहस्रं नारसिंह मुच्यते।
नन्दाया यत्र महात्म्यं कार्तिकेयेन वर्ण्यते,
नन्दी पुराणं तल्लोकेराख्यातमिति कीर्त्यते ॥६०॥
यत्रशांबं पुरस्कृत्य भविष्येऽपि कथानकम्,
प्रोच्यते तत्पुनर्लोके शाम्बमेतन्मुनिव्रताः ॥६१॥ अ० ५३

१- नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १० पृष्ठ ३२०-३२१

२- अष्टादश पुराण दर्पण पृष्ठ ४१४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मार्कंडेय पुराण—इस आपा पंथी में १२ पुराणों का छाँट निकालना परम कष्ट साध्य तो है ही, किन्तु सोचना यह है कि क्या पुराण १८ ही थे ? मार्कण्डेय पुराण के सम्पर्क में व्यास का नाम तक कहीं नहीं पाया जाता।[1] अष्टादश पुराणकर्ता ने इस पर जो सम्मति प्रकाशित की है, उसके अनुसार यह भिन्न भिन्न स्थानों से संग्रह किया गया है, कोई स्वतन्त्र रचना नही है। कुछ भी हो, इसे १८ पुराणों की सूची तथा पुराण-कोटि से भी निकाला नहीं जा सकता। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि १८ पुराण व्यास के ही बनाए हुए नहीं हैं। नारद-पुराण के अनुसार मार्कण्डेय ऋषि को पुराण-संहिता रचने का वरदान मिल चुका था, अतः यह संहिता उन्होंने रची थी—पुराण संहिताकर्तुं दत्तवान् वरमच्युतः। (अ० ५ श्लोक ११)

विष्णु पुराण—विष्णु पुराण के प्रथम अंश के प्रथम अध्याय में लिखा है कि पराशर मुनि से मैत्रेय ने जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के विषय में प्रश्न किए, तथा भूगोल, खगोल, वंश, मन्वन्तर, कल्प और उनका विभाग, युगधर्म, देवर्षि तथा मनुष्यों के चरित व्यासजी-कृत, वेद-शाखाओं के सम्पादन का वृत्तांत और वर्णाश्रम-धर्म की बातें जानना चाहीं। पराशर ने उत्तर दिया—मैत्रेय, तुमने खूब याद दिलाई, मेरे पितामह भगवान् वशिष्ठ ने मुझसे एक बात कही थी, वह सुनो। विश्वामित्र के भेजे हुए राक्षस ने मेरे मामा को खा डाला। यह सुन कर मेरे पितामह बहुत क्रुद्ध हुए। मैंने भी राक्षसों के नाश के लिए यज्ञ आरम्भ किया, जिससे सैंकड़ों राक्षस भस्म हो गए। तब मेरे पितामह वशिष्ठ ने मुझसे कहा—'बस, अब रहने दो, क्रोध छोड़ दो, अब ये राक्षस तुम्हारे पिता का अपराध नहीं करेंगे"। मैंने उनकी आज्ञा से अपना यज्ञ बन्द कर दिया। उसी समय उनके पास पुलस्त्य आए। मेरे पिता ने उन्हें अर्घ्य आदि देकर आसन पर बिठाया। मुझसे पुलस्त्य जी कहने लगे—"तुमने इस बेर वैर होते हुए भी अपने बड़ों के कहने से क्षमा दे दी, इसलिए तुम सब शास्त्रों को जान जाओगे। तुमने मेरे वंश का नाश नहीं किया, इसलिए मैं तुम को यह महान् वर देता हूं कि तुम पुराण-संहिता भी रचोगे। तुम्हारी बुद्धि निर्मल होगी"। मेरे पितामह वशिष्ठ ने भी यह सुन कर कहा—"हाँ, ऐसा ही होगा।" अब तुम्हारे पूछने से

१—अष्टादश पुराण दर्पण पृष्ठ २८७। मार्कण्डेय पुराण में जैमिनि ऋषि प्रश्नकर्ता तथा मार्कण्डेय उत्तरदाता हैं। उनका प्रश्नोत्तर रूप ही यह ग्रन्थ है, जिसमें इतिहास, भूगोल तथा संन्यास धर्म सम्बन्धी कथाएँ पाई जाती हैं। प्रसिद्ध मंदालसा उपाख्यान इसी ग्रन्थ का अङ्ग है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मुझे वह बात याद आ गई है, अतः मैं सम्पूर्ण पुराण-संहिता को तुझे समझाता हूँ, तू सुन।[1]

इसके आगे 'विष्णु-पुराण' का दूसरा अध्याय आरम्भ होता है, जिसमें प्रश्नों का उत्तर देना आरम्भ किया गया है।

१--सोऽहमिच्छामि धर्मज्ञ श्रोतुं त्वतो यथा जगत्। बभूव भूयश्च यथा महाभान भविष्यति ॥४॥ यन्मयं च जगद्ब्रह्मन्यतश्चैतच्चराचरं। लीनमासीद्यथा यत्रलयमेष्यति यत्र च ॥५॥ यत्प्रमाणानि भूतानि देवादीनाञ्च सम्भवम्, समुद्र पर्वतानाञ्च संस्थानञ्च यथा भुवः ॥६॥ सूर्यदीनाञ्च संस्थानम् प्रमाणं मुनिसत्तमं देवादीनां तथा वंशान्मनून्मन्वन्तराणि च ॥ ७ ॥ कल्पान्कल्प विभागांश्च चातुर्युग विकल्पितान्, कल्पान्तस्य स्वरूपञ्च युगधर्मांश्चं कृत्सनशः ॥८॥ देवर्षि पार्थिवानाञ्च चरितं यन्महामुने; वेदशाखा प्रणयनं यथावद्व्यास कर्तृकम् ॥९॥ धर्माश्चं ब्राह्मणादीनां तथा चाश्रमवासिनां, श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वं त्वत्तो वशिष्ठनन्दन ॥१०॥ श्री पराशर उवाच। साधु मैत्रेय धर्मज्ञ स्मारितोस्मि पुरातनम्; पितु-पिता मे भगवान् वशिष्ठो यदुवाच ह ॥१२॥ विश्वामित्र प्रयुक्तेन रक्षसा भक्षिता पुरा, श्रुतस्तातस्ततः क्रोधो मैत्रेयाभून्मा मातुलः ॥१३॥ ततोऽहं रक्षासां सत्रं विनाशाय समारभ। भस्मीभूताश्च शतशस्तस्मिन् सत्रे निशाचराः ॥१४॥ ततः संक्षीयमाणेषु तेषु रक्षस्वशेषतः; मामूवाच महामाणे वशिष्ठो यत्पितामहः ॥१५॥ अलमत्यन्त कोपेन तात मनुमित्रं जहि, राक्षसानापराध्यन्ति पितुस्ते विहितं हितत् ॥१६॥ मूढ़ानामेव भवति क्रोधो ज्ञानावतां कुतः, हन्यते तालकः केन यतः स्वकृतभुक्पुमान् ॥१७॥ अलं निशाचरैर्दग्धैर्दीनैरपकारिभिः, सत्रं ते विरमत्वे तत्क्षमासारा हि साधवः ॥२०॥ एवं तातेन तेनाहंमनुनीतो महात्मना, उपसंहृतवान्सत्रं सद्यस्तद्वाक्य गौरवान् ॥२१॥ ततः प्रीमः सभगवान्वशिष्ठो मुनिसत्तमः, संप्रातश्चतदा तत्र पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुत ॥२२॥ पितामहेन दत्तार्घ्यः कृतासन परिग्रहः; मामुवाच महाभागो मैत्रेय पुलस्त्यात्मजः ॥२३॥ वैरे महति यद्वावयाद्गुरोरद्याश्रिता क्षमा, त्वया तस्मात्समस्तानि भवाञ्शास्त्राणि वेत्स्यति ॥२४॥ सन्ततेर्न ममच्छेदः क्रुद्धेनापि यतः कृतः, त्वया तस्यान्महाभाग ददाम्यन्यं महावरं ॥ २५ ॥ पुराण संहिता कर्ता भवान्नूतत्र भविष्यति, देवता पारमार्थ्यञ्च यथावद्वेत्स्यते भवान् ॥२६॥ प्रवृते च निवृते च कर्मणितेविमलामतिः, मत्प्रसादादसंदिग्धा तव वत्स भविष्यति ॥२७॥ ततश्चप्राह भगवान्वशिष्ठो मे पितामहः, पुलस्त्येन यदुक्तं ते सर्वमेतद्भविष्यति ॥२८॥ इति पूर्वं वशिष्ठेन पुलस्त्येन च धीमता, यदुक्तं तत्स्मृतिं यातित्वत्प्रश्नादखिले मम ॥२९॥ सोऽहं वदाम्यशेषंते मैत्रेय परिपृच्छते, पुराणसंहिता सम्यक तां निबोध यथातथम् ॥३०॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार पराशरोक्त विष्णु-पुराण भी मत्स्य तथा मार्कंडेय पुराण की तरह व्यास कृत नहीं है। यह ठीक है कि इसके तीसरे अंश के छठे अध्याय में श्लोक २१ से २३ तक १२ पुराणों के नाम गिनाए गए हैं, और उनमें वैष्णव पुराण भी आया है, किंतु ये श्लोक इसी क्रम से मार्कंडेय और पद्म में भी पाए जाते हैं; अतः इनके विषय में यह निश्चय पूर्वक नहीं माना जा सकता कि ये श्लोक बाहर से लाकर किसी ने न मिला दिए होंगे।[1] यदि इन श्लोकों को इसी पुराण का मान भी लिया जाय, तो भी यह मानना पड़ेगा कि व्यास ने भी कोई विष्णु-पुराण लिखा होगा जो यह नहीं है, किंतु नष्ट हो गया है।

विष्णु पुराण की श्लोक संख्या २३००० हजार बतलाई जाती है। यह संख्या व्यास के रचे पुराण की है। इस प्रचलित पुराण में ६ अंश तथा प्राय ६ सहस्र श्लोक मिलते हैं। शेष संख्या पूर्ण करने के लिए विष्णु धर्मोत्तर नाम के ग्रन्थ को भी इस में मिलाया जाता है, किंतु तब भी इसकी संख्या १५००० से अधिक नहीं बढ़ती। ऐसी दशा में शेष श्लोकों के नष्ट हो जाने की कल्पना की जाती है। परन्तु वास्तव में न तो व्यास जी ने कोई विष्णु पुराण लिखा था, और न उसमें २३००० श्लोक थे। आज से लगभग २२०० वर्ष पहले शङ्कराचार्य जी ने "यस्मिन्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्त्यते विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसा ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः। मुक्तिं चेतसि यः स्थितो मलधियां पुंसां ददात्यव्ययः। किं चित्रं यदधः प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते" यह श्लोक उद्धृत करके इसे उक्त पुराण के अन्त का कहा है। इस समय यह इस पुराण के अन्तिम अंश के अन्तिम अध्याय के ६४ श्लोकों में से ५७ वाँ पाया जाता है।[2] उन्होंने स्पष्ट ही इसके अनुसार छः अंश वाले पुराण को विष्णु पुराण ठहराया है। यही नहीं, बल्कि विष्णु धर्मोत्तर का उल्लेख करते समय एक और स्थान पर उसे स्वतन्त्र ग्रन्थ माना है। एक बात और है, विष्णु-पुराण की विस्तृत सूची लिखते समय नारद पुराण के लेखक ने उस भविष्य वंश का वर्णन नहीं किया है, जो इस समय इस छः अंश वाले पुराण के अंश चार अध्याय २१ से २४ तक में गिनाए हैं। इन अध्यायों में शुंग, कण्व, गुप्त, शातकर्णी, म्लेच्छ, यवन आदि राजाओं का उल्लेख पाया जाता है। इस से स्पष्ट है कि इस पुराण में भी यह सब कुछ उसी प्रकार उस समय बढाया गया,

---

१—इस पुराण पर श्रीधर स्वामी रचित आत्म प्रकाश तथा विष्णु स्तमी की विष्णु चित्तीय नाम की दो टीकाएँ मिलती हैं। ये भी इसी छः अंश वाले पुराण को अपूर्ण नहीं मानतीं।

२—खेमराज श्री० वैंकटेश्वर का छपा विष्णु पुराण देखिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होगा; जैसे मत्स्त पुराण में यह वृद्धि की गई थी।[1]

अग्नि पुराण—इसी प्रकार अग्नि-पुराण भी व्यास के बहुत पश्चात्, बल्कि बुद्ध के भी बहुत काल पीछे (शायद उसी समय जब मत्स्य-पुराण को परिवर्द्धित कर के उसके द्वारा ब्राह्मण सँस्कृति को संगठित किया गया था) लिखा गया था; क्योंकि इस में गौतम बुद्ध को स्पष्ट भूत कालिक क्रिया में लिखा है।[2]

अग्नि पुराण में भी ब्राह्मण संस्कृति को संगठित करने एवं पौराणिक धर्म स्थापित करने के प्रयत्नों का पूरा पूरा आभास पाया जाता है। महाराज विक्रमादित्य शकारि तक राज वंशावलि के अतिरिक्त इसमें धर्मशास्त्र, राजनीति प्रजा-धर्म, आयुर्वेद, व्याकरण, रस, अलङ्कार, शस्त्र-विद्या (धनुर्वेद), शिल्प शास्त्र, तक्षण कला, प्रतिमा-निर्माण कला, व्यवहार प्रदर्शन, स्वप्न, शकुन, छन्द; कोश आदि के अतिरिक्त नैत्यिक दिनचर्या आदि भी कितनी ही ऐसी इसमें दी गई हैं, जिनका सम्बन्ध समाज के जीवन से है। यह सब कुछ रचना अधिकतर उसी प्रकार संग्रह की गई है; जैसे मत्स्य पुराण का राजनीति प्रकरण या नारदीय पुराण का वेदांग प्रकरण (आगे नारद पुराण के प्रसंग में देखिए।) अग्नि पुराण का स्वर्गादि वर्ग विशिष्ठ कोष एक प्रकार से अमरसिंह के प्रसिद्ध अमर कोष का संक्षिप्त संस्करण है। श्लोक के श्लोक ज्यों-के-त्यों यहाँ उद्धृत पाए जाते हैं। आयुर्वेद, ज्योतिष, साहित्य शास्त्र, स्थापत्थ कला आदि बातें पुराण का विषय नही है, किंतु जब यह पुराण लिखा गया था (अर्थात् शकारिका शासन समय) उस समय भारत की संस्कृति का पुनः संगठन हो रहा था, और बुद्ध के सिद्धान्त तथा उनका दर्शन शास्त्र भी भारतीय संस्कृति का अङ्ग स्वीकार किया जा चुका था, अतः यह सब एकत्रित ग्रन्थ रूप में किया जा रहा था। उसी आवेश में रची हुई कृतियों में, इस अग्नि पुराण का भी जन्म हुआ। यही बात गरुड़ पुराण के सम्बन्ध में भी अक्षरशः ठीक है।

ऐसी दशा में अग्निपुराण को भी व्यास की रचना नहीं कहा जा सकता।[3] यद्यपि पुराना होने के कारण इसका उपयोगित्व भुलाया नहीं जा सकता, किन्तु पुराणों की

१—नारद पुराण में विष्णु पुराण के चतुर्थ अंश की विषय सूची केवल एक श्लोक में इस तरह दी है :—

सूर्यवंश कथा पुण्यं, सोम वंशानुकीर्तनम्,
चतुर्थांशे मुनिश्रेष्ठ नामाराजकथोचितम्।

२—माया मोह स्वरूपोऽसौ शुद्धोदन सुतोऽभवत्।
(अग्नि पुराण अध्याय १३ श्लोक २)

३—अग्नि पुराण और वन्हि पुराण इस प्रकार दो पुस्तकें पाई जाती हैं, किंतु प्रकाशित केवल अग्नि पुराण ही हुआ है। इसमें नारद पुराण की सूची के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संख्या १८ ही क्यों प्रसिद्ध हुई ? इस प्रश्न का उत्तर ठीक ठीक नहीं दिया जा सकता। अब भागवत पर भी एक दृष्टि डालिए। यह भी प्रधान और महत्व-पूर्ण ग्रन्थों में गिना जाता है।

श्रीमद्भागवत—भागवत नाम के दो ग्रन्थ पाए जाते हैं, यह बात ऊपर कही जा चुकी है। यहां हम श्रीमद्भागवत के विषय में ही चर्चा करेंगे। देवी भागवत के विषय में नहीं।

इसकी श्लोक संख्या १८००० कही जाती है, किंतु गणना करने पर १४०८० बैठते हैं। अनुष्टुप् की गणना से यह १५००० से अधिक किसी प्रकार नहीं हो सकते। यद्यपि इसके १२ स्कन्ध मिलते हैं, किंतु वास्तविक ग्रन्थ में प्रथम दो स्कन्ध (२० अध्याय और १२१६ श्लोक) नहीं गिनने चाहिएँ, क्योंकि वास्तव में भागवत तो वही है, जो परीक्षित ने सुना होगा, और महात्मा शुक का आख्यान; यदि इस आख्यान को ठीक माना जाए कि शुकदेव ने यह ग्रंथ महाराज को सुनाया होगा।[1] तीसरे स्कन्ध से ही आरम्भ होती है।

अनुसार अग्नि-वशिष्ठ-संवाद और ईशान कल्प के प्रकरण नहीं पाए जाते, किंतु और सब कुछ पाया जाता है। इसकी सख्या १५० ० (नारद) या १६००० (मत्स्य) बताई जाती है, किंतु इस मिलते १२००० से अधिक प्राप्त नहीं होते। स्कन्द पुराण में लिखा है कि अग्नि पुराण का विषय अग्नि का माहात्म्य ही मुख्यतया है, किंतु इस पुराण में यह बात भी नहीं है, वृद्ध शातातप स्मृति में वह्नि पुराण के नाम से कुछ श्लोक उद्धृत किए गए हैं, किन्तु वे श्लोक भी इस पुराण में नहीं पाए जाते। वल्लाल सेन ने (दान सागर में) भी जो श्लोक उद्धृत किए हैं, वे भी इसमें नहीं पाए जाते, किंतु ये बातें वह्नि पुराण में मिल जाती हैं। (ना० प्रचारिणी पत्रिका के भाग १०, पृष्ठ ३१६ के '८ अग्नि पुराण' लेख का सारांश)

मत्स्य पुराण में लिखा है कि ईशान कल्प के वृतांत कल्प के प्रसंग में अग्नि ने वशिष्ठ को उपदेश दिया है, वही अग्नि पुराण है (अ० ५३ श्लोक २८) किंतु इसमें यह भी नहीं पाया जाता।

१—इदं भागवतं नाम पुराण ब्रह्म सम्मितम् ;
उत्तम श्लोक चरितं चकार भगवाऋषिः ।।४०।।
तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम्,
स तु संश्रावया मास महाराजं परीक्षितम् ।।४२।।

तथा दूसरे स्कन्ध के अन्त में लिखा है:— स्कन्ध १, अध्याय ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस पुराण को ब्रह्म संहिता के अनुसार रचा हुआ कहा गया है।[1] और नारद आदि पुराणों की तरह सूत इसे शौनक आदि ऋषियों को सुनाने वाले हैं। किन्तु क्या शुकदेव ने वही भागवत राजा को सुनाई थी, जो उन्होंने पढ़ी थी! हमारा दृढ़ विश्वास है कि नहीं। महाराज परीक्षित प्रश्न करते गए, और उन प्रश्नों के शुकदेव जी को उनका समाधान करना पड़ता था। राजा परीक्षित प्रश्नकर्ता थे, और श्री शुकदेव जी उत्तर दाता। इन प्रश्नोत्तरों के संग्रह ग्रन्थ का नाम ही इस समय भागवत माना जाता है, जो व्यास का रचा कदापि नहीं हो सकता।

श्री शुकदेव तथा परीक्षित की समकालीनता—इतिहास की दृष्टि से यह भी स्वीकार नहीं किया जा सकता कि राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से भागवत सुनी होगी, क्यों कि ये दोनों समकालीन नहीं थे, प्रत्युत व्यास के जीवन में स्वर्गवास कर चुके थे। इधर इतिहास का क्रम इस प्रकार है—कि ३६ वर्ष ८ मास और २५ दिन राज्य करने के पश्चात् पाण्डव बन को गए, और उनके पीछे ६० वर्ष परीक्षित ने जब राज्य कर लिया, तो महाभारत के युद्ध से लगभग ९६ वर्ष पीछे महाराज परीक्षित को उक्त ग्रन्थ सुनने का अवसर आया। किन्तु भीष्म अपने जीवन में ही स्वर्ग यात्रा से कुछ दिन पूर्व महाराज युधिष्ठिर को सूचना देते हैं कि शुकदेव देवलोक को जा चुके।[2]

यही प्रसंग नारद पुराण में भी विस्तार-पूर्वक दिया है। ऐसी दशा में इस की संगति कदापि नहीं लग सकती; कि १०० वर्ष पीछे शुकदेव परलोक से आकर परीक्षित को भागवत सुनाते।

राज्ञा परीक्षिता पृष्टो यदवोचन्महामुनिः,
तद्वोऽभिधास्ये शृणुतराज्ञः प्रश्नानुसारतः।

इसके अनुसार तो स्पष्ट ही १२ स्कन्धों में से २ स्कन्ध, २९ अध्याय तथा १३०० श्लोक भागवत की श्लोक संख्या में और कम हो जाते हैं।

१—देवीयामल तन्त्र में तो स्पष्ट ही इसका खण्डन है कि शुकदेव ने परीक्षित को यह ग्रन्थ सुनाया था :—

श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं वेद सम्मतम्,
पारीक्षितायोप दिष्टं सत्यवत्यंग जन्मना ॥१॥

किन्तु यह देवी भागवत के विषय में कहा गया है। वास्तव में भागवत की राज वंशावली से तो इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि भागवत की रचना परीक्षित के समय में हुई थी। (स्कन्ध ९ अध्याय २२ के श्लोक ३३ से ३५ तक देखिए)

२—शुकस्तु मारुतादूर्ध्वं गतिं कृत्वान्तरिक्षगाम्,
दर्शयित्वा प्रभावं स्वम् ब्रह्म भूतोऽभवत्तदा। (शान्ति० ३३३।१९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्या भागवत असल पुराना पुराण हो सकता है ? जब भागवत का रचयिता व्यास या शुकदेव को नहीं ठहराया जा सकता तो उसे आदि संहिता या सूत संहिता अथवा मूल संहिताओं में से भी कोई संहिता कैसे स्वीकार किया जा सकता है ? यादव कुल के नाश होने का वर्णन ११वें स्कंध के ३०वें अध्याय में भूतकाल में जिस शैली से किया गया है, उससे भी इस की रचना परीक्षित के समय के बाद की ही सिद्ध होती है। दशम स्कंध में श्रीकृष्ण की लीला का जिस ढंग से शृङ्गार और भक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है, उसके अनुसार तथा समग्र ग्रंथ की शैली भक्ति-प्रधान होने के कारण, यही अनुमान होता है कि भागवत का बहुत-सा भाग नवीन काल में परिवर्द्धित किया गया था, तथा वह संहिता, जो परीक्षित के समय में लिखी गई थी, छिन्न-भिन्न हो चुकी है।

पुराण १८ क्यों हैं ? ऐसी दशा में 'अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवती सुतः" आदि वाक्यों का कुछ भी वास्तविक मूल्य नहीं है। आरम्भ में पुराण अठारह नहीं थे, मध्य काल में भी उनकी संख्या १८ स्वीकार नहीं की गई थी, व्यास ने भी १८ पुराण नहीं बनाए थे। किन्तु १८ ज्योतिःशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थ पाए जाते हैं। १८ स्मृति मिलती हैं। १८ स्थापत्य कला के ग्रन्थ रचे गए थे। १८ पर्वों में महाभारत का विभाग किया गया है। ऐसी दशा में, जान पड़ता है, १८ संख्या को साहित्य-शास्त्र में विशेष महत्त्व मिल गया था। सात्विक, राजसी और तामसी भेद से भी पुराणों को ६-६ के तीन षट्कों में बांटा जाता है। विशेषकर यह विभाग श्रीमद्भागवत् और गीता के लिए स्वीकार किया गया है। कहने का अभिप्राय यह कि वर्तमान स्वरूप में आते-आते पुराणों को १८ की संख्या भी प्राप्त हो गई। यह संख्या धीरे-धीरे बढ़ती गई, और आज तक बढ़ती जा रही है। पुराण जब १८ से अधिक हो गए तो उप पुराणों की सृष्टि की गई, और वे भी १८ ठहराए गए। किन्तु जब उप पुराणों की संख्या भी १८ तक पहुँच चुकी, तो अति पुराणों की रचना की गई [1] और अति पुराणों का क्रम अभी जारी है।

भविष्यत् पुराण—यह कहा जाना असम्भव नहीं, तो असम्भव-जैसा ही है कि किस पुराण का प्रवेश पुराण-कोटि में कब हुआ। ऊपर जिन पुराणों का उल्लेख हो चुका है, उनके अतिरिक्त पुराने कहे जाने वाले पुराणों में भविष्यत् पुराण का नाम भी लिया जा सकता है। आपस्तंब धर्म सूत्र में इस पुराण के नाम से कुछ श्लोक उद्धृत किए गए हैं। यद्यपि वे श्लोक वर्तमान भविष्यत् पुराण में यथावत् नहीं पाए जाते, किन्तु प्रायः वे ही श्लोक, कुछ फेर फार से पाए जाते

१—अष्टादश पुराण दर्पण पृष्ठ ४१४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं।[1] भविष्य पुराण का वर्तमान कलेवर बहुत बढ़ाया जा चुका है। इस समय जो खेमराज के यहाँ का छपा भविष्य पुराण प्राप्त होता है। इसमें तो विकटावती (Victavti) ईसा, मूसा, मुहम्मद, कबीर, आदि न मालूम क्या २ लिखकर मिला दिया गया है। अंग्रेजों की भाषा के विषय में लिखा है कि वे चन्द्रवार को मंडे और रविवार को संडे कहेंगे और साठ को सिक्स्टी ?[2] इस पुराण की श्लोक संख्या प्रायः सर्वत्र १४,५०० मानी जाती है, किन्तु उक्त संस्करण में २६९७२ श्लोक पाए जाते हैं। यदि इनमें से भविष्योत्तर खण्ड को एक स्वतन्त्र पुस्तक मान कर उसे अलग भी कर दें तो भी १८,३७८ श्लोक रहते हैं, जो पुरानी सख्या से ३,७२८ अधिक हैं। पार्जिटर की सम्मति इस पुराण के सम्बन्ध में बड़ी अद्भुत है। उनका मत है कि भविष्य राज्यवंश का क्रम सर्व प्रथम इसी पुराण में रक्खा गया था, और शेष पुराणों ने इसी से उद्धृत किया है।[3] कदाचित् इसमें कुछ सार हो। इसके अतिरिक्त

१—आभूत संप्लवास्ते स्वर्गजितः पुनः सर्गे वीजार्था भवन्तीति भविष्यत् पुराणे।
आपस्त० २।२४।५-६।

यही बात प्रचलित भविष्यत् पुराण में इस प्रकार पाई जाती है—

प्रवर्तन्ते पुनः सर्वे वीजार्थं ता भवन्ति हि,
वीजार्थेन स्थितास्तत्र पुनः सर्गस्य कारणात्।
ततस्ताः सृज्यमानास्तु सन्तानार्थं भवन्ति हि,

२—देहली नगरे राज्यं दशाब्दं माधवेन वै ॥६०॥
नन्दिन्या गोश्च रुण्डाद्वै जाता म्लेच्छा महायशाः,
गुरुण्डा जातयस्तेषां तास्तु तेषु सदा स्थिता।

३—विकटान्वय सम्भूता गुरुण्डा वानराननाः,
वणिगार्थमिहा याता गौरुण्डावौद्ध मारिणिः ॥७१॥
ईशपुत्रे मते संस्थास्तेषां हृदयमुत्तमम्,
नगर्य्यां कलिकातायां स्थापयामासु रद्भुतम्।
विकटे पश्चिमे दीपे तत्पत्नी विकटावती। भविष्य पुराण प्र० प ३ अ० २२।

इस पुराण के भविष्य पर्व के प्रथम अध्याय में बुन्देलखण्ड के राजाओं और परमारों का इतिहास हैं। दूसरे अध्याय में यह, जाट आदि क्षुद्र क्षत्रिय जाति के महाराजाओं का उल्लेख है। तीसरे अध्याय में कछभुज, उदयपुर, सिद्ध, द्वारिका आदि पश्चिमी भारत के राजाओं के नाम और इतिहास आदि दिए हैं। चतुर्थ अध्याय में परिहार वंश का और छठे अध्याय में देहली के गुलाम, मुगल, तैमूर आदि के नामों का वर्णन है। आगे के अध्याय में रामानन्द, निंबार्क

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्राह्म पर्व में लिखा है कि सब पुराण १२-१२ सहस्र श्लोकों के थे। पीछे स्कन्ध बढ़ कर १ लाख का और भविष्य ५० हज़ार का हो गया। भागवत और मत्स्य पुराणों में स्कन्ध को ८१ हज़ार का तथा भविष्य को साढ़े चौदह हज़ार का ही लिखा है। शायद उन ग्रन्थों में उक्त सूची मिलाते समय ये ग्रन्थ इतने ही मिलते होंगे।

पार्जिटर का मत—पार्जिटर ने पुराणों के सम्बन्ध में जो अपना मत निश्चय किया है, वह विशेषकर वंशावलियों तक ही परिमित है, किन्तु वह भी जानने योग्य है। उनकी राय है कि पुराणों की वंशावलियों के मूल श्लोक प्राकृत में थे क्योंकि—

(१) कुछ श्लोकों की मात्राएँ न्यूनाधिक हैं, किन्तु उनके प्राकृतिक रूप दे देने पर वे मात्राएँ ठीक हो जाती हैं।

(२) संस्कृत-श्लोकों में भी कहीं-कहीं प्राकृतिक पद आ जाते हैं।

(३) संस्कृत-शब्दों के रखने से कहीं-कहीं वाक्य-विन्यास में बड़ा विरोध हो जाता है किन्तु उनके पर्यायवाची प्राकृत शब्दों के रखने से वह मिट जाता है।

(४) नामों को संस्कृत रूप देने में भी भूलें की गई हैं।

(५) ह, च, बा, वै आदि निरर्थक अव्ययों की अधिकता भी इसी हेतु से देखी जाती है।

(६) सन्धि नियम विरुद्ध पाई जाती है।

(७) भागवत में एक पंक्ति की पंक्ति पाली भाषा की ज्यों-की-त्यों आ गई है—अथ मागध राजानो भवितारो वदामि ते।

ये दोष मत्स्य, वायु, और ब्रह्माण्ड में सर्वत्र तथा विष्णु और भगवानमें कहीं-कहीं पाए जाते हैं। मत्स्य, वायु और विष्णु पुराणों में नकल करने की जो अशुद्धियाँ आ गई हैं, उनसे यह भी सिद्ध होता है कि उस समय ये पुराण खरोष्ठी लिपि में लिखे हुए थे।

आदि की उत्पत्ति और आठवें अध्याय में माधवाचार्य, श्रीधराचार्य मट्टोजि दीक्षित का इतिहास लिखा है। आगे के दो अध्यायों में कृष्ण चैतन्य, शंकरादि का और बारहव तथा तेरहवें में गोरखनाथ तथा अघोर पंथ का वर्णन है। इसी प्रकार १४ में रामानुज, १६ में नामदेव, १७ में कबीर, पीपा, नित्यानन्द १८ वें में रैदास, २० में जगन्नाथ पुरी और २२ में तिमिरलिंग, अलाउद्दीन, अकबर, शिवाजी, मुगल, नादिर, कलकत्ता, पार्लिमेंट (अष्ट कौशल) विक्टोरिया, लार्डल, वार्डलो, विकट, वृजिल, जाल, वरलिन आदि नाम आए हैं तथा उनका वर्णन है। अन्तिम २३ वें अध्याय में मुहम्मद तथा सोमनाथ और उसके तोड़ने वाले का इतिहास है।

नागरी प्र० पत्रिका भाग १० पृष्ठ ३१७ पर उद्धृत।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्राह्मणों का जितना भी हस्तक्षेप बढ़ता गया, उतनी ही पुराणों की प्रामाणिकता नष्ट होती गई; अर्थात् जो पुराण परम्परा या अनुश्रुतियों के आधार पर सूतों से अधिकार में सुरक्षित रहते आए, उनमें क्षेपक का कम अवसर मिला, क्योंकि वे उनमें क्षेपक उसी प्रकार नहीं मिलाते थे, जैसे ब्राह्मण श्रुतियों में क्षेपक नहीं डालते थे, उनके लिए पुराण उनकी वैसी ही गौरवशाली श्रुतियाँ थीं, जैसी ब्राह्मणों के लिए उन की श्रुतियाँ थीं। किंतु ब्राह्मण इन पुराणों में क्षेपक मिलाने में कुण्ठित नहीं होते थे।[1]

पुराणों के सम्बन्ध में एक बात बड़ी आश्चर्य-जनक है कि उनमें दक्षिण भारत का उल्लेख नहीं पाया जाता, और यदि कहीं कुछ मिलता भी है, तो वह अत्यन्त कम। इसका कारण यही हो सकता है कि महाभारत के पश्चात् और मुसलमानों के भारत पर आक्रमण करने के समय तक भारतीय संस्कृति का केन्द्र उत्तर-भारत (काशी; मथुरा, मगध, इन्द्र प्रस्थ, अजमेर आदि) स्थान ही रहे थे, दक्षिण में कोई ऐसा स्थान नहीं था, जिसकी ओर भारत को अपनी संस्कृति-पूर्ण करने के लिए देखना हो सकता है, लंका के साथ-साथ दक्षिण भारत में भी बौद्ध धर्म का प्रचार हो जाने पर उत्तर के ब्राह्मण विद्वानों ने उधर से बिल्कुल ही उदासीनता स्वीकार कर ली थी।

साम्प्रदायिकता—प्रचलित अष्टादश पुराणों में ऐसे प्रकरणों की कमी नहीं है जो द्वेष के कारण ही पीछे लिख दिए गए हैं। उदाहरण—"विष्णु-दर्शन मात्रेण शिवद्रोहः प्रजायते" और "धिक्-धिक् कपालम्" इत्यादि। जहां कहीं ऐसे श्लोक कण्ठी-माला-तिलक-सम्बन्धी विरोध के दिखाई दें, और देवताओं की सम्प्रदाय-सम्बन्धी निन्दा हो, वह अंश सम्प्रदाय के आग्रही पुरुषों के मिलाए हुए ही प्रक्षिप्त अंश हैं।[2] पुराणों के प्रक्षिप्त भाग के सम्बन्ध में अष्टादश पुराण के लेखक ने एक बात और भी लिखी है कि यदि कहीं पुराणों में स्वामी शंकराचार्य के परवर्ती काल की कथा या आधुनिक प्रसंग पाए जाएँ; जो पुराण-कर्ता के समय में न हों, यदि वह भविष्य रूप में न हों, तो प्रक्षिप्त होने में सन्देह नहीं है। कारण, इस समय एक तो पुराण पूर्ण-स्थिति में नहीं मिलते, दूसरे किसी-किसी स्थल में सम्प्रदाय के पक्ष पातियों ने अनुचित मेलकर निष्पक्षपात महात्माओं की बुद्धि में पुराणों के गौरव में बड़ा विघ्न उपस्थित कर दिया है।[3]

इन्द्र—वास्तव में देवताओं की निंदा साम्प्रदायी लोगों के अनुग्रह से पुराणों के अधिकतर क्षेत्र में व्याप्त देखी जाती है। कोई देवता या ऋषि या मुनि, जिसका

१—नागरी-प्रचारिणी पत्रिका भाग १० पृष्ठ ३०२-३०३ पर उद्धृत मत का सारांश।

२—अष्टादश पुराण दर्पण की भूमिका पृष्ठ २

३—पृष्ठ ४९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नाम आदर से लिया जाना उचित है, पुराण में निष्कलंक नहीं बचा है। इन्द्र की विजय के लिए शुक्र रुद्र के पास वृहस्पति के समान मन्त्र लेने गए। महादेव जी ने उन्हें तप बताया कि पहले १०० वर्ष तक धूम्रपान करो, तब बताऐंगे। उन्होंने ऐसा करके मन्त्र पाया। इन्द्र ने यह सुनकर अपनी पुत्री जयन्ती को शुक्र के पास भेजा, कि जाओ शुक्र का तप भंग करो, या वह हम पर भी ऐसे ही दयालु हों। जयन्ती गई, और शुक्र ने उससे सौ वर्ष तक छिप कर बिहार किया।[1]

इन्द्र का गौतम का वेष धारण करके अहिल्या से संभोग करना।[2] कुबेर की स्त्री चित्र सेना को बहकाना तथा उसके ढूंढने को आई, दासी नाड़ी जंघा को मारने के अपराध में नारद के शाप से स्त्री हो जाना।[3] विश्वास घात करके अदिति के पुत्रों को गर्भ में टुकड़े-टुकड़े करना, तथा वृत्रासुर से भी विश्वास घात करके उसको मार डालना, उर्वशी और इन्द्र की कथा,[4] आदि कथाएँ इन्द्र के जीवन का बड़ा वीभत्स वर्णन करती हैं।

चन्द्र—चन्द्र के गुरु पत्नी तारा से व्यभिचार की कथा बड़ी घृणा-पूर्ण ढंग से लिखी है।[5] उसको अधिक विषय-भोग से क्षय रोग होना और अपनी सब स्त्रियों से समान रीति से व्यवहार न करने का लांछन देना देव चरित के लिए अशोभनीय है।

सूर्य—कर्ण की उत्पत्ति जिस प्रकार के बलात्कार-पूर्ण व्यभिचार से लिखी है वह आजकल के ताजी रात में भी दण्डनीय है।[6] उसकी स्त्री संज्ञा का घोड़ी बनना तथा सूर्य का अपनी दासी से भोग करना (जिस से शनैश्चर की उत्पत्ति हुई), विश्वकर्मा के द्वारा उसके शरीर का छीला जाना, अपना पत्नी सज्ञा को घोड़ी रूप में देख कर, स्वयं उनका घोड़ा बनकर विषय करना, तथा संज्ञा का वीर्य को नाक के द्वारा निकाल कर अश्विनी कुमारों को जन्म देना अद्भुत बातें हैं।[7]

१—देवी भागवत स्कन्ध ४, अध्याय १२ तथा पद्म पुराण स्वर्ग घण्ड अ० २४,

२—ब्रह्म वैवर्त्त पुराण कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय ६१, गणेश पुराण, मार्कंडेय पुराण अध्याय ५।

३—नृसिंह पुराण अ० ६३

४—पद्म पुरा० सृष्टि खण्ड अ० १२ तथा अ० १७

५—देवी भागवत स्कन्ध १ अ० ९, ब्रह्म वैवर्त प्रकृति खण्ड अध्याय ५८, मत्स्य पुराण अध्याय २४। श्री मद्भागवत आदि प्रायः सब पुराणों में यह चरित पाया जाता है।

६—देवी भागवत स्कन्ध २ अ० ६। महाभारत आदि पर्व में भी यह कथा है।

७—पद्म पुराण सृष्टि खण्ड अध्याय ८, मत्स्य पराण अ० ११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वशिष्ठ विश्वामित्र का युद्ध—मार्कंडेय पुराण में वशिष्ठ और विश्वामित्र के जिस प्रकार के झगड़ों और द्वेषों का वर्णन है, वह कई स्थान पर सभ्यता की सीमा से निकल गया है।

वृहस्पति—वृहस्पति की स्त्री तारा के अतिरिक्त वृहस्पति और उतथ्य की कथा, उनका व्यभिचार, दीर्घतमस की उत्पत्ति तथा १०० वर्ष तक कपट से शुक्र का रूप धारण करके राक्षसों को धोखा देने का वृतांत देव गुरु के लिए सम्मान जनक नहीं कहा जा सकता।[१]

शुक्र—शुक्राचार्य तो साक्षात् असुरों के गुरु थे। इन्द्र की पुत्री जयन्ती से यह स्वयं बिना विवाह के ही सम्भोग करते रहे, तथा कच ने देवयानी को कभी स्वीकार नहीं किया। अपनी पुत्री देवयानी का अनुचित सम्बन्ध कच (वृहस्पति पुत्र) से उचित समझते रहे।[२]

कश्यपादि ऋषि—कश्यप ने वरुण की गाएँ चुराईं।[३] भृगु ने महादेव को शाप दिया कि तुम्हारा रूप योनि और लिंग का हो।[४] संक्षेप में ब्रह्मा, विष्णु, और इन्द्रादि देवताओं का, और वशिष्ठ वामदेवादि के चरित की देवी भागवत अध्याय ४ में अच्छी समालोचना की गई है।[५] ब्रह्मा का स्वपुत्री से

१—महाभारत आदि पर्व अ० १०४, मत्स्य पुराण अ० ४२ में अपने भाई उतथ्य की स्त्री से दीर्घतमस को उत्पन्न किया, और ४९ में भरद्वाज को। दोनों बार ममता गर्भवती थी।

२—मत्स्य पुराण अ० २५ से २६ तक

३—देवी भागवत स्कन्ध ४ अध्याय ३

४—पद्म पुराण उत्तर खण्ड अ० २५५

५—मूल श्लोक इस प्रकार है :—

गुरुः सुराणामनिशं सर्व विद्यानिधिस्तथा,
सुतोऽङ्गिरस एवासौ सकथं छलकृन्मुनिः।
धर्म शास्त्रेषु सर्वेषु सत्यं धर्मस्य कारणम्, कथं मुनिभिर्येन परमात्माऽपिलभ्यते ?
वाचस्पतिस्तथा मिथ्यावक्ताचेद्दानवान्प्रति, कः सत्यवक्तासंसारे भविष्यति
गृहाश्रमी ? अमराणां गुरुः साक्षान्मिथ्यावादी स्वयंयदि ; तदा कः सत्व वक्ता-
स्याद्राजसस्तामसः पुनः। हरि ब्रह्मा शचिकान्तस्तथाऽन्ये सुर सत्तमाः, सर्वेछल
विधौदक्षा मनुष्याणां च का कथा ? कामक्रोधाभि सतप्ता लोभोपहत चेतसः।
छले दक्षा सुराः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः। वशिष्ठो वाम देवश्च विश्वामित्रो
गुरुस्तथा, ऐते पापरताः क्रात्र गतिर्धर्मस्यमानदा ? इन्द्रोऽग्निश्चन्द्रमावेधाः
परदारामिलंपटाः, आर्यत्वं भुवनेष्वेषु स्थितं कुत्रमुनेबद ? वचनं कस्य मंतव्व-
मुपदेशधिपान ! सर्वे लोभाभिभूतास्ते देवाचमनुषस्तदा। किं विष्णुः किं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व्यभिचार[1] की बात भुला देने पर भी उनका व्यभिचार-दोष दूर नहीं होता। उन्होंने यज्ञ से उत्पन्न हुई कन्या से मैथुन करना चाहा, अतः उनका शिर काटा गया[2], या उन्होंने स्वयं नरक के भय से प्राण त्याग दिए। किंतु जिसका वीर्य किसी स्त्री (पार्वती) के चरण देख कर ही स्खलित हो गया। वह किस प्रकार ब्रह्मचारी या उर्ध्वरेता हो सकता है?[3] ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण की गौएँ ही नहीं चुराईं, किन्तु झूंठ भी बोले, तथा विष्णु से अपना बड़प्पन स्वीकार कराने के लिए बच्चों की तरह लड़े भी।[4]

विष्णु—इसी प्रकार विष्णु का जलन्धर की स्त्री वृन्दा को धोखा देना और उससे व्यभिचार करना[5], बार-बार मोहिनी रूप धारण करना; तथा ब्रह्मा को लुभाना।[6] लक्ष्मी; गंगा और सरस्वती जैसी तीन स्त्रियों के पति होकर भी नारद का पर्वतादि को धोका देकर अम्बरीष की पुत्री से स्वयम्बर करना[7]। शिव जी से जो शरभ पक्षी बने थे, नृसिंह रूप होकर लड़ना[8]। आदि चरित भी देवचरित कहलाने योग्य नहीं है।

शिव—शिव या महादेव जी का पुराण-वर्णित चरित इन सबसे बढ़कर है। स्त्रियों में निर्लज्ज भाव से चले जाना, उनके सामने काम क्रीड़ा करना, निर्लज्ज शब्द कहना[9]। काम विकार में लिप्त रहना, लड़ना-झगड़ना, आदि विशेषताएं हैं।[10]

शूद्र और स्त्री—देवर्षि-चरित में अधिक जाने की आवश्यकता नहीं है।

शिवो ब्रह्माथवा किं वृहस्पतिः, देहवान प्रभवत्येव विकारैः संयुतस्तदा। रागी विष्णुः शिवो रागी ब्रह्माऽपि राग संयुतः, राग वान्किमकृत्यं वै न करोति नराधिपाः?

१--श्रीमद्भागवत स्कन्ध ३ अ० १२, मत्स्य पुराण अ० २ से ४ तक।

२--वामन पुराण अ० ४९, ब्रह्मवैवर्त पु० कृष्ण खड अध्याय ३५ आदि; शिवपुराण ज्ञान सहिता अ० ४८

३ विष्णु पुराण धर्मसहिता अ० १० तथा गणेश पुराण अ० ३३

४--शिव पुराण विद्येश्वरी संहिता अ० ६ तथा श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० अ० १३

५-६--पद्म पुराण उत्तर खण्ड अध्याय १५, स्त्री खण्ड अ० ४, पाताल खण्ड अ० ७५ मत्स्य पुराण अ० २५१; श्रीमद्भागवत स्कन्ध ८ अध्याय ८

७--लिंग पुराण अध्याय ५, ब्रह्मवैवर्त पुराण प्रकृति खण्ड

८--लिंग पुराण अ० ९६

९--पद्म पुराण सृष्टि खण्ड अध्याय १७, लिंग पुराण अध्याय २९, शिव पुराण ज्ञान संहिता अध्याय ११, श्रीमद्भागवत स्कन्ध ८ अध्याय १२, तथा स्कन्ध १ अध्याय १८

१०-- ब्रह्मवैवर्त पराण गणेश खण्ड अ० ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुराणों के ऊपर ही हिन्दू समाज में स्त्री जाति और शूद्रों के पतन का उत्तरदायित्व है, क्योंकि एक-एक पुरुष के अनेक स्त्रियों से, दो-चार से नहीं, किन्तु १६-१६ हजार स्त्रियों से विवाह कराने का प्रतिपादन यही करते हैं। इसके अतिरिक्त अगणित सुन्दर दासियाँ अलग होती थीं[1] कोई दिन, वार, तिथि, पर्व या महीना ऐसा नहीं छोड़ा गया, जब उपवास व्रत के द्वारा मोक्ष प्राप्त न हो सकता हो।

नदी या पर्वत भारतवर्ष-भर में शायद ही कोई आश्चर्य पूर्ण माहात्म्य के बिना मिलेगा। स्वयं पुराणों के नाम लेने मात्र से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।[2] बल्कि देवों को तो वेदों की अपेक्षा पुराण ही अधिक प्रिय हैं।[3] आंवला और पीपल के देखने, छूने और प्रणाम करने तक से ही मोक्ष मिल सकती है।[4] तुलसी का माहात्म्य भी कुछ इसी प्रकार का है। भगवान को कौड़ी देने का फल, मन्दिर

१—स्त्री शूद्र द्विज बन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।
कर्म श्रेयसि मूढ़ानां श्रेय एवं भवेदिह॥ (श्रीमद्भागवत स्कन्ध १ अ० ४)
स्त्री शूद्र द्विज बन्धूनां ना वेद श्रवणम् मतम्।
(देवी भागवत स्कन्ध १, अ० ३)

२—अष्टादश पुराणानां नाम धेयानि यः पठेत्;
त्रि संध्यं नित्यमश्वमेधफलं लभेद्। (मार्कण्डेय पुराण—मत्स्य पुराण)
तथा—ब्रह्महत्यादि पापानि यान्यन्यान्यशुभानि च,
तानि सर्वाणि नश्यन्ति तृणां वातहतं यथा। वहीं।

३—यथैतानि ममेष्ठानि पुराणानि सदा मुने,
न तथा चतुरो वेदान् चाङ्गानि महामते। (शिवपुराण धर्म संहिता)

४—इत्येवमुक्ता मुनिना हि पृष्टास्ते वै कुमाराः किल नारदेन।
सम्पूजिताः शास्त्र विदा वरिष्ठाः कृताह्निका जग्मुरमेष लोकम्॥१॥
नारदोऽपि ततो विप्राः कुमारेभ्य समीहितम्।
लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं भृशं प्रीतिमनाह्यभूत्॥६॥
स तस्मात्स्वर्ण नदी तीरादागत्य पितुरन्तिके।
प्रणम्य सत्कृतः पित्रा ब्रह्मणा निषसाद च॥७॥
कुमारेभ्य श्रुतं यच्च ज्ञान विज्ञान संयुतम्।
वर्णया मास तत्त्वे न सोऽपि श्रुत्वामुमोद च॥८॥
अथ प्रणम्यशिरसा लब्ध्वाशीर्मुनिसत्तमः।
आजमाग वै कैलाशं मुनि सिद्ध निषेवितम्॥९॥
पप्रच्छ शाम्भव ज्ञान पशुपाश विमोक्षणम्।
सः शिवः सादरं तस्य भक्त्या सन्तुष्ट मानयः॥२२॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनाने तथा उसे लिपवाने-पुतवाने का फल, वहाँ झाड़ू देने के फल—मोक्ष से कम कदापि नहीं मिलता। इसी प्रकार अनेक प्रकार के जंत्र-मंत्र और तन्त्र हैं, जिनके फल भी ऐसे ही हैं। स्तोत्रों का प्रचार पुराणों की एक विशेषता है। सब पुराणों की श्लोक संख्या मिलाकर एकत्र करने से जान पड़ेगा कि उनका आधे के लगभग स्तोत्र, माहात्म्य, यन्त्र, गन्त्र तथा ऊपर वर्णित जैसे विषयों से ही पूर्ण है। छोटी-छोटी और सीधी-सादी बातों की भी पुराणों ने बड़ी दुर्दशा की है। मनु के इला एक पुत्री और सुद्युम्न या इल एक पुत्र था। इनको एक करके सुद्युम्न को कभी स्त्री और कभी पुरुष हो जाने की हास्यजनक कथा रच ली गई। द्रोण, अगस्त्य, शर-स्तम्भ, जरासन्ध आदि नामों के शब्दार्थों के अनुसार उनके जन्म की अत्यन्त नियम-विरुद्ध कथाएँ रचली गईं। ब्राह्मणों को कड़े-से-कड़े अपराध के लिए भी दण्ड से मुक्ति की व्यवस्था कर दी गई। उनका माहात्म्य भी देवताओं से कुछ कम नहीं रक्खा, प्रत्युत उन्हें 'भूसुर' ही कह डाला।

पिछले पृष्ठों में हम कई ऐसे पुराणों का संक्षिप्त तथा एक पुराण का विस्तृत उल्लेख कर चुके हैं, जो पुराने संस्करणों के ही नवीन और परिवर्धित संस्करण समझे जाते हैं। आगे हम एक ऐसे पुराण का आलोचनात्मक संक्षिप्तांश देते हैं, जो इन सब की अपेक्षा नवीन काल की रचना है,

नारद पुराण—नारद पुराण क्रम में सामान्यतः छठा गिना जाता है, किन्तु यह हमारे विचार में अन्तिम होना चाहिए, क्योंकि इसमें सब पुराणों की

योग अष्टांग संयुक्तं प्राह प्रणत वत्सलः।
स तथा शांभव ज्ञानं शङ्कराल्लोकशङ्करात् ॥२३॥
एतद्वः कीर्तिनं विप्रानारदोयं महन्मया ॥२५॥
उपाख्यानं वेदसेयं सर्वं शास्त्र निदर्शनम्।
चतुष्पादसमायुक्तं श्रृण्वतां ज्ञान वर्द्धनम् ॥२६॥
तथैव नारदीयं तु पुराणेषु प्रकीर्तितम्।
शान्तिरस्तु शिवं चास्तु सर्वेषां वो द्विजोत्तमाः ॥४७॥
गमिष्यामि गुरोः पार्श्वं व्यासस्यामित तेजसः।
इत्युत्वाभ्यचितः सूतः शौनकाद्यैर्महात्मभिः ॥४८॥
आज्ञापृश्च पुनः सर्वैर्दर्शनार्थं गुरोर्ययौ।
तेपि सर्वे द्विजश्रेष्ठाः शौनकाद्या समाहिताः।
श्रुतं सर्वमनुष्ठाय तथतस्थुश्च सत्रिणः ॥४९॥

State Museum, LUCKNOW.
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विस्तृत विषय-सूची तथा श्लोक-संख्या भी दी है।

वर्तमान नारद पुराण की श्लोक -संख्या २५ हजार बताई जाती है, किन्तु राय बहादुर पंडित बैजनाथ बी० ए० ने इस में २३००० श्लोक गिने हैं।[1] नहीं कह सकते कि ये श्लोक कहाँ की छपी संहिता में उन्होंने गिने है। श्री वेंकटेश्वर प्रैस की संहिता में हमने १७०४३ श्लोक गिने हैं। अतः इसकी वर्तमान ग्रन्थ संख्या १७ सहस्र से अधिक की नही मानी जा सकती।

इस पुराण के प्रथम भाग को पूर्व भाग तथा शेष भाग को उत्तरार्द्ध भाग मान कर विभाजित किया गया है। प्रथम भाग या पूर्वार्द्ध के चार पाद हैं जिनकी श्लोक संख्या इस प्रकार है:—

प्रथम पाद	अध्याय	१-४४	श्लोक संख्या	३५६५
दूसरा पाद	अ०	४५-६३	,,	२६५६
तीसरा पाद	अ०	६४-९१	,,	४१०३
चौथा पाद	अ०	९२ से १२५	,,	१७४४

उत्तरार्धभाग में केवल एक भाग तथा ८० अध्याय और श्लोक ४९७५ हैं।

मत्स्य पुराण में लिखा है:—

यत्राह नारदो धर्मान् वृहत्कल्पश्रयानिह,[2]
पञ्चविंशत साहस्त्रि नारदीय तदुच्यते।

इसी प्रकार शिव उप पुराण के उत्तर खण्ड में भी है:—

नारदोक्तं पुराण नारदीयं प्रचक्ष्यते।

यहां यह कह देना भी आवश्यक है कि एक पुस्तक वृहन्नारदीय पुराण तथा दूसरा लघु वृहन्नारदीय पुराण के नाम से भी मिलते हैं। इनके सम्बन्ध में अष्टादश पुराण दर्पण में लिखा है—

वृहन्नारदीय पुराण नाम से भी एक वैष्णव ग्रन्थ मुद्रित हुआ है। वह महापुराण नहीं है, उप-पुराण गिना जा सकता है। लघु वृहन्नारदीय नाम की भी छोटी पोथी पाई जाती है, पर वह पुराण या उप पुराण श्रेणी में नहीं मिनी जा सकती।[3] इसी प्रकार कार्तिक माहात्म्य, दत्तात्रेयस्तोत्र, पार्थिवलिंग माहात्म्य,

---

१—नागरी प्रचारिणी पत्रिका भा० १० पृष्ठ ३१५
२—अष्टादश पुराण दर्पण पृष्ठ १९९-२००
३—अष्टादश पुराण दर्पण पृष्ठ २०१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मृग-व्याध कथा, यादव गिरि माहात्म्य, श्रीकृष्ण माहात्म्य; संकर गणपति-स्तोत्र इत्यादि कई पोथियाँ नारद पुराण के नाम से प्रचलित है।[1]

किंतु प्रचलित नारदीय पुराण के अनेक अध्यायों के अन्त में पुष्पिका रूप से इसी पुराण को बृहन्नारदीय में भी लिखा है। तथा कार्तिक-माहात्म्य आदि सभी विषय इस पुराण में न्यूनाधिक रूप से पाए जाते हैं, अतः ये सब छोटी-मोटी पुस्तकें उपपुराण आदि नई बातें विशेष रूप से कुछ नहीं बताते, किन्तु इसी पुराण के विकृत भाग माने जा सकते हैं।

मत्स्य पुराण तथा शिव उपपुराण के लक्षणानुसार यह पुराण नारद पुराण नहीं माना जा सकता, क्योंकि इस पुराण में नारद तो कहीं भी, एक अध्याय मे भी, उपदेश देते दिखाई नहीं पड़ते। हाँ, नारद को उपदेश अवश्य दिया गया है, अर्थात् सम्वाद रूप से सनक से नारद ने इस पुराण में उपदेश लिया है, एवं इसे सुना है। यह आश्चर्य की बात है—कि इसके उत्तर भाग में नारद का नाम भी नहीं आता। वहां नारद ने एक भी प्रश्न नहीं किया, और न सनत कुमार ने उत्तर रूप से उपदेश दिया है, किन्तु मान्धाता और वशिष्ठ का सम्वाद रूप यह आख्यान है। इस ५००० श्लोकों वाले उत्तर भाग का वास्तविक अभिप्राय केवल एकादशी-माहात्म्य की स्थापना करना है। इससे अधिक इस भाग का इस पुराण से कुछ सम्बन्ध नहीं। इन ५ हजार श्लोकों को इस पुराण में न गिनने के लिए यही एक यथेष्ट प्रमाण है। जिस खण्ड में नारद का नाम भी नहीं—न वक्ता रूप से, न श्रोता रूप से, उसे नारद के शिर मंढ कर उसका कहा हुआ 'नादोक्त' कहकर इस पुराण में ठूंसना धींगा मुश्ती है।

इस पुराण में केवल एकादशी-महात्म्य और जगन्नाथादि तीर्थों का माहात्म्य है। पुराण लक्षणों में कही गई एक बात भी इसमें नहीं बताई गई है। हां, जगन्नाथ-माहात्म्य के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है—कि इस भाग की रचना उक्त मन्दिर बनने के पश्चात् हुई है। बल्कि यह कहना अधिक ठीक है कि जगन्नाथ-माहात्म्य सम्बन्धी सम्पूर्ण प्रकरण ब्रह्म पुराण म उठाकर यहाँ अविकल रूप से धर दिया है।[2] यदि इन ५ सहस्र श्लोकों को इस ग्रन्थ से अलग कर दिया जाय, तो इस ग्रन्थ का सिर्फ माहात्म्य ही अधिक न हो जाय,बल्कि इस पर से साम्प्रदायिकता की छाप भी हट जाय, क्योंकि इसका उत्तर भाग विचारने से वैष्णव-सम्प्रदाय का विशेष ग्रन्थ तो समझा जाता है, किन्तु पूर्व भाग के विशेष विषयों की आलोचना करने से कोई विशेष साम्प्रदायिक ग्रन्थ नहीं समझा जाता।[3]

१— अष्टादश पुराण दर्पण पृष्ठ २०१

२—अष्टादश पुराणदर्पन पृष्ठ ६६।

३— ,, ,, पृष्ठ २००

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक बात और है। ग्रन्थ का माहात्म्य ग्रन्थ के आरम्भ में या अन्त में दिया जाया करता है। इस पुराण का माहात्म्य भी पूर्व भाग के चार पादों के अन्त में दिया है—कि नारद ने यह ज्ञान सनत कुमार से सुन कर अपने घर आ अपने पिता ब्रह्मा को सुनाया था, और इन से आशीर्वाद प्राप्त किया। इसके पश्चात् उसने शंभु से अष्टांग योग प्राप्त किया। बस यही चतुष्पाद युता नारद पुराण है। जिसका माहात्म्य आगे लिखा है, और पुराण श्रवण की विधि बताई है। दूसरा पुराण और उसका माहात्म्य सुनकर ही उक्त शौनक आदि ऋषि, जिन्होंने इस पुराण को रोम हर्षण के पुत्र सूत से सुना था, अपने-अपने आश्रमों को लौट गए।[1]

किंतु इसी प्रकार का एक माहात्म्य पाँचवें पाद के अन्त में दिया है, जिसमें इस पुराण को पञ्च पाददात्मक तथा २५००० श्लोकों को लिखा है। वास्तव में यह माहात्म्य पूर्वोक्त माहात्म्य की नकल में लिखा गया है। यही कारण है कि कहीं कहीं तो पूर्वोक्त माहात्म्य के शब्द भी आगे-पीछे लाकर रख दिए गए हैं। जैसे—

पूर्व माहात्म्य	उत्तर माहात्म्य
उपाख्यानं वेदसमं सर्वशास्त्र निदर्शनम्,	पञ्चपाद समायुक्ता कृष्ण द्वैपायनेन ह,
चतुष्पादसमायुक्तं शृण्वतां ज्ञानवर्द्धनम्।	पञ्चविंशतिसाहस्री संहितेयं प्रकीर्तिता।
य एतत्कीर्तये विप्रानारदीयं शिवालये,	अस्यां वैश्रूयपाणायां सर्व संदेह भञ्जनम्।
समाजे द्विज मुख्यानां तथा केशवमन्दिरे।	पुण्यतीर्थं समासाद्य नैमिषं पुष्करं गया।
मथुरायां प्रयागे च पुरुषोत्तम सन्निधौ,	मथुरां द्वारिका विप्रानरनारायणाश्रयम्,
सेतौ काञ्च्यांकुशस्थल्यां गंगाद्वारेकुशस्थले।	कुरुक्षेत्रं नर्मदाञ्च क्षेत्रं पुरुषोत्तमम्।
पुष्करेषु नदी तीरे यत्रकुत्रापि भक्तिमान्;	हविष्याशी धराशायी निःसंगोविजितेन्द्रियः,
उपवास परो वा हविष्याशीजितेन्द्रिया।	पठित्वा संहितामेनां मुच्यते भवसागरात्।
यः एतत्पठते भक्त्याश्रृणुया द्वासमाहिता;	एकादशी वृतानाञ्च सरितां जाह्नवीयथा,
यथा श्रेष्ठा नदी गंगा पुष्करं च सरोयथा।	वृन्दावनमरण्यानां क्षेत्राणां कौरवं यथा,
काशीपुरी नगो मेरु देवो नारायणो हरिः,	यथा काशीपुरीणां च तीर्थानां मथुरा यथा,
कृतं युगं साम वेदो धेनुर्विप्रमम्बु च।	सरसां पुष्करं विप्राः पुराणानामिदं तथा।
तथैव नारदीयं तु पुराणेषु प्रकीर्तितम्।	

इस उत्तर खण्ड का एक अभिप्राय यह भी है—कि द्वादशी विद्धा एकादशी-माहात्म्य के उपाख्यान के प्रसंग द्वारा एक क्षत्रिय राजा के चरित्र को कलंकित रूप में दिखाया जाय, इन सब प्रमाणों और युक्तियों के आधार पर ये ५ सहस्र श्लोक

---

१ —पीछे देखिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रक्षिप्त मानने ही पड़ेंगे। शेष चार पादात्मक नारदीय पुराण का विवरण इस प्रकार है :—

सूत शौनक संवाद--शौनक आदि २६००० ऋषियों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपाय जानने के लिए सूत रोमहर्षण के पास जाकर निम्नलिखित प्रश्न किए :—

येनेदमखिलं जातं यदाधारं यदात्मकम् ,
यस्मिन्प्रतिष्ठितं तात यस्मिवाश्रेयमिष्यति ।
केन विष्णुः प्रसन्नः स्यात् सः कथं पूज्यतेनरैः ,
कथं वर्णाश्रमाचारश्चातिथेः पूजनं कथम् ।
सफलं स्याद् यथाकर्म मोक्षोपायः कथं नृणाम्,
भक्त्या किं प्रष्यते पुम्भिस्तथा भक्तिश्च कीदृशी

सूत ने उत्तर में इस विषय में वहीं सुनाने की प्रतिज्ञा की जो सनकादि ने नारद को सुनाया था।

प्रथम पाद–सृष्टि का संक्षेप वर्णन—यह विषय कुछ तो अध्याय ३ में है, किंतु विस्तार से ४२ ४३ और ४४ वें अध्याय में लिखा गया है इन तीनों अध्यायों के सब श्लोक प्रायः इसी क्रम से महाभारत शांति पर्व के अध्याय १८२ से १९२ तथा १९४ और १९५ में मिलते हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि पुराण में जहाँ पृष्टा नारद और उत्तरदाता सनक हैं, महाभारत में वहाँ पृष्टा युधिष्ठिर और उत्तरदाता भीष्म हैं, किन्तु दोनों जगह यह प्रसग भृगु के मुख से भरद्वाज को सुनवाया गया है। इस प्रकार ३४६ श्लोकों का यह प्रसग नारद पुराण का अपना नहीं है, किंतु संग्रह करने वाले ने भारत से उठा कर इस अंश की पूर्ति की है। इतना ही नहीं, किन्तु पुराण का ४५ वां अध्याय जनक पञ्च शिखि सम्वाद भी उसी पर्व के २१२–९ वें अध्याय की ज्यों-की त्यों नकल है।

नाना धर्म कथा--सोमवंशी सुमति विभांडक मुनि के पूर्व जन्म का इतिहास (अध्याय २०), भद्रशील ब्राह्मण की कथा एकादशी प्रसंग में (अध्याय २३), यज्ञमालि, सुमालि ब्राह्मणों के मोक्ष प्राप्त करने की कथा (अध्याय ३६), गुलिका नाम के शिकारी की कथा (अध्याय ३७) और जय ध्वज राजा का इतिहास, ये कथाएँ विष्णु-भक्ति की स्थापना में दी हैं।

नारद-पुराण में दी हुई विषय-सूची के अनुसार इसे प्रथम पाद में इतना ही होना चाहिए, किन्तु शेष अध्यायों का वर्णित विषय भी यहाँ बतला देना आवश्यक है। गंगा की उत्पत्ति, उसका इतिहास और माहात्म्य तथा तत्सम्बन्धी कथाएँ अध्याय६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
से १६ तक। गंशीर्षा मादि १२ मासों की एकादशी (दशमी-युक्त), पौर्णिमा तथा अन्य तिथियों के व्रतों का माहात्म्य (अध्याय १७-१९ और २१-२२) सदाचार और सामान्य धर्म वर्णन (अध्याय २४ से ३२ तक) भक्ति मार्ग का वर्णन (अध्याय ३३-३४, ४१ (मन्वन्तर निरूपण अध्याय ४० भूगोल वर्णन (अध्याय ३) नारद-कृत विष्णु स्तुति (अध्याय २)।

इन विषयों में बहुत सी बातें महाभारत आदि ग्रन्थों में यथावत् पाई जाती हैं, या और पुराणों में मिल जाती हैं। भूगोल वर्णन न तो कुछ विस्तृत है, और न उसमें कोई ऐसी महत्त्व-पूर्ण बात है, जो और किसी पुराण में न मिल जाती हो। हाँ, एक बात अवश्य है। भारतवर्ष की प्रशंसा लिखते समय उच्छिष्ट (जूठा अन्न आदि) खाने का माहात्म्य अवश्य इस पुराण की उसी प्रकार विशेषता है[1];जिस प्रकार पुरुषोत्तम-माहात्म्य और उसका कारण केवल यही है—कि जगन्नाथ-माहात्म्य के साथ साथ उच्छिष्ट खाने का माहात्म्य आरम्भ हुआ।

मन्वन्तर वर्णनाध्याय में केवल चौदह मनुओं तथा उनके इन्द्र इन्द्राणियों के नाम गिनाए हैं, शेष कुछ भी वृतांत नहीं दिया है, अतः यह अध्याय नाम-मात्र पुराण लक्षण की पूर्ति करने के लिए किसी ने इसमें रख दिया है।

दूसरा पाद—इस पर्व का नाम मोक्षधर्म पाद है। इसमें मोक्ष के उपायों का निरूपण, वेदांगों का कथन और महात्मा शुक का जीवन-चरित भी दिया है। ग्रन्थ का यह सम्पूर्ण भाग भी इधर उधर से संग्रह किया गया है। शुक चरित्र पुराणों के ५०वें अध्याय के १-७ श्लोक से आरम्भ करके बीच में वेद-वेदांगों का विवरण आरम्भ होता है। तत्पश्चात् अध्याय ५८ से ६२ तक यह प्रकरण चला गया है। यह सम्पूर्ण प्रकरण महाभारत में शांति पर्व अध्याय २३० से २५५ तक तथा ३२८ से ३३३ तक विस्तार पूर्वक दिया है। वहीं से इसे संक्षिप्त करके और कहीं कहीं एक दो श्लोक का पाठांतर करके उद्धृत कर दिया गया है। हां, महाभारत में जहां प्रश्न कर्ता युधिष्ठिर तथा उत्तरदाता भीष्म हैं। यहां पूर्ववत् प्रश्नकर्ता नारद तथा उत्तर-दाता सनत हैं। वास्तव में यदि यह प्रकरण महाभारत के नाम से ही पूर्ण रूप से उद्धृत किया गया होता, तो बहुत अच्छा था; क्योंकि वर्तमान दशा में यह पुराणस्थ प्रकरण जहां-तहां जटिल, असम्बद्ध तथा अस्पष्ट हो गया है। महाभारत में एक स्थान पर शुक की पाताल से भारत की यात्रा करने का महत्त्व-पूर्ण उल्लेख है, जो पुराण में छोड़ दिया गया है। इसी प्रकार एक स्थान पर उन्होंने नारद से भी कुछ उपदेश लिया है, जो यहाँ सनत के मुख से ही कहलाया गया है।

१—भक्त्योच्छिष्टान्न सेवी च याति विष्णोः परं पदम्। अ० ३-५४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेदांग-वर्णन ५० वें अध्याय से ५७ वें अध्याय तक है। पहला अध्याय याज्ञवल्कीय शिक्षा के अनुकरण पर प्रायः उसी के पाठ के अनुसार है। दूसरे अध्यायों में नक्षत्र कल्प, वेदकल्प, संहिता कल्प, आंगिरस कल्प, शांति कल्प—इस प्रकार पांच कल्पों का उल्लेख मिलता है। यह अध्याय १५३ श्लोकों में है। 'नक्षत्र कल्प में नक्षत्रों के देवता, वेद कल्प में ऋग्वेदादि का विधान, संहिता कल्प में मंत्रों के छन्द देवता और ऋषियों का निर्देश तथा आंगिरस कल्प में मारण आदि छः प्रकार के अभिचारों का वर्णन है। शांति कल्प में दिव्य, भौम और आंतरिक्ष उपद्रवों की शांति कही जाती है।' इस प्रकार कल्पों का संक्षिप्त लक्षण कह कर पुराणकार ने गृह्य कल्प के नाम से लगभग १४४ श्लोकों में हवन करने की सामान्य विधि, वेदी और यज्ञ-पात्रों का वर्णन आदि और नवग्रह पूजा तथा ऐसी ही सामान्य कर्मकाँड की बातें बताकर इस अध्याय को समाप्त किया है।

व्याकरण वाले ५२वें अध्याय में पाणिनि के प्रसिद्ध और सुप्तिङन्त सम्बन्धी सूत्रों को अनुष्टुप रूप रख दिया है। कुछ कठिन धातुओं के सिद्ध रूप भी दिए हैं। कहने का अभिप्राय यह है, कि यह न तो सम्पूर्ण पाणिनीय है, और न स्वयं पूरा व्याकरण का ग्रन्थ और किसी का रचित है, किन्तु पाणिनीय सूत्रों का अनुष्टुप छन्दों में एक संस्करण है, जिसमें नियमों के साथ उदाहरण भी दिए हैं। (श्लोक ९६)

निरुक्त सम्बन्धी ५२वां अध्याय अत्यन्त निराशा जनक है। आरम्भ में निरुक्त विषयक प्रसिद्ध "कृचिद्वर्णागमस्तम्" आदि श्लोक देकर उसके उदाहरण दिए हैं, फिर कुछ प्रसिद्ध वैदिक शब्दों की रचना बताई है। आगे धातु पाठ दिया है। अध्याय के अन्त में लिखा भी है—"गण पाठः सूत्रपाठेः धातु पाठस्तथैव च, पाठोऽनुनासिकानां च पारायण मिहोच्यते।" वास्तव में इसमें कुछ सिद्ध शब्दों का संग्रह मात्र है। निरुक्त में शब्दों की निरुक्ति होनी चाहिए; जो यहाँ नाममात्र भी नहीं हैं। ये २२ श्लोक व्यर्थ से हैं।

५४वाँ अध्याय ज्योतिर्वेदांग-सम्बन्धी है। पहले ज्योतिष को वेदांग बताकर उसके स्कन्ध गिनाए हैं—गणित, जातक और स्कन्ध संहिता गणित के विषय को परिकर्मादि के नाम से लीलावती को उसी के क्रम से और उसी के शब्दों में, उदाहरण छोड़ कर वर्णन किया है। इतना विशेष है कि यह पुराण सम्पूर्ण, केवल एक अध्याय को छोड़ कर, अनुष्टुप छन्द में लिखा गया है; अतः लीलावती में जो श्लोक इस छन्द में मिलते हैं; वे तो ज्यों-के-त्यों रख दिए हैं। शेष श्लोकों को तोड़-मरोड़ कर अनुष्टुप बना दिया है। इस से विषयक्लिष्ट, अस्पष्ट और असम्बद्ध हो गया है। तिस पर यह सम्पूर्ण वेदांग प्रकरण अत्यन्त अशुद्ध छापा गया है, जिस से इस पुराण का महत्व नष्ट हो गया है। ६० श्लोकों में इस विषय को कह कर आगे १२७ श्लोकों में सूर्य सिद्धांत के प्रथम तीन अध्यायों के कितनों ही श्लोक जहाँ-तहाँ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मे उठाकर रख दिए हैं। ये भी अत्यन्त अशुद्ध तथा असम्बद्ध हो गए हैं। बीच में श्लोक छोड़ने से या २ श्लोकों का एक श्लोक करने से भी विषय जटिल होने के कारण इस प्रकरण की दुरूहता बढ़ गई।

५८ वें अध्याय में भी लीलावती की तरह वृहज्जातक की नकल की है। वे ही २६ विषय इसमे वर्णन किए गए हैं, जिन्हें वृहज्जातक के लेखक ने अपने ग्रथ के सूची पत्र में गिनाया है। यह केवल छन्दों का है। यहाँ ३६६ श्लोकों का अनुष्टुप है और ग्रंथ में कई प्रकार के छन्द पाए जाते हैं। यह प्रकरण फलित ज्योतिषियों के लिए जितना उपयोगी हो सकता है, उतना ही अधिक भ्रष्ट और अशुद्ध छपा है। ५६ वें अध्याय में संहिता का स्वरूप, ग्रहचार, अब्द लक्षण, तिथि-वासर नक्षत्र योग, त्रिथ्यर्ध सज्ञक, मुहूर्त्त, उपग्रह, सूर्य संक्रांति आदि बहुत सी वे बातें ही हैं, जो फलित सम्बन्धी ग्रन्थों मे पाई जाती हैं। नारद संहिता के नाम से जो ग्रंथ इस समय मिलता है उस म यह ७५८ श्लोकों का अध्याय बड़ा और अधिक उपयोगी जान पड़ता है। किंतु अशुद्ध छपने के कारण कुछ भी काम नहीं आ सकता।

इस सम्बन्ध के अन्तिम अध्याय में छन्द शास्त्र विषयक परिभाषाएं, छन्दों के लक्षण और नाम तथा नष्ट. उद्दिष्ट और प्रस्तार आदि के नियम हैं। वास्तव में इस प्रकरण के कुल २१ श्लोक 'वृत्तरत्नाकर' नामक पुस्तक (श्री प० केदारनाथ भट्ट रचित) से लेकर अत्यन्त अशुद्ध और असम्बद्ध दशा में यहाँ रख दिए गए हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है :—

पुराण का श्लोक	वृत्त रत्नाकर का पाठ
१	१ अध्याय का ४ यथावत्
२–४	६–७ श्लोकों का सरल रूप
५	९–१० श्लोकों का सरल रूप
६	१२ का विकृत रूप
७	१३ और १४ का आधा-आधा भाग
८	१५–१६ का भ्रष्ट रूप
९	१७ का विकृत रूप
१०	१८ पाठान्तर–युक्त
११–१३	१९–२१ यथावत् तथा २२ का पूर्वार्द्ध
१४	६ अध्याय का २–३ संक्षिप्त
१५–१६	६ अध्याय का ४–५ संक्षिप्त
१७–२०	६ से ९ वें श्लोक तक अशुद्ध पाठ युक्त
२१ उपसंहार का श्लोक	

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार छन्दःशास्त्र का यह अधूरा वर्णन अधिक उपयोगी नहीं है, भ्रष्ट दशा में है। सन्तोष केवल इतना ही है कि इसके सभी वर्णित विषय अपनी वास्तविक दशा में उन ग्रन्थों में मिलते हैं, जहाँ से वे लिए गए हैं।

तीसरा पाद—तीसरे पाद का विषय तन्त्र विद्या है। आरम्भ में तन्त्र-शास्त्र की स्थापना करके सत्व, रजस् और तमोगुण के विचार से देवगणों को तीन कोटि में विभाजित किया है फिर मन्त्रों की शक्ति बीज उच्चार आदि का उल्लेख है। स्त्रीपुंनपुंसक, बाल, युवा, वृद्ध आदि अनेक प्रकार से भी मन्त्रों का विभाग करके अनेक मन्त्रों के जपने और सिद्ध करने के नियम दिए हैं। नारद पुराण की सूची के अनुसार इस पाद में गणेश, सूर्य, विष्णु (तथा पशुपति के पाश का विमोचन) के मन्त्रों का शोधन, दीक्षा तथा उनका उच्चार और पूजन ही नहीं, किन्तु प्रयोग, कवच तथा सहस्रनामात्मक स्तोत्र भी इस भाग में होने चाहिए। चाहे ये विषय इसमें इस समय इतने विस्तार से नहीं मिलते, जितने मिलने चाहिए, किन्तु इन मन्त्रों से भी अधिक नृसिंह का यन्त्र और मन्त्र, हयग्रीव का मन्त्र, श्री लक्ष्मण मन्त्र, हनुमान मन्त्र तथा दीप दान आदि, कार्तवीय का मन्त्र, इन दोनों के कवच आदि बहुत-सी बातें बाहर की भी दी हैं। काली, सरस्वती, शक्ति आदि के मन्त्र, कवच और पटल भी इसी खण्ड में मिलते हैं। यह प्रसंग अध्याय ७१ से ८८ तक निरन्तर चला गया है। सूची में इसका उल्लेख न होने एवं पुराण के विषय से विरुद्ध होने के कारण तान्त्रिक युग की इस रचना को इस पुराण से अलग ही गिनना उचित है। तो भी अलबरूनी ने जब इस पुराण को देखा, तो उसमें इस अध्याय के अनेक विषय उसे मिले थे, अतः मानना पड़ेगा कि यह सब कुछ पुराना ही मसाला है।

चौथा पाद—चौथे पाद में १०९ अध्याय तक १२ पुराणों की विषय-सूची दी है। देवी भागवत को १२ पुराणों में स्वीकार नहीं किया गया है। इन अध्यायों से ही निश्चय होता है कि सब पुराणों के पश्चात् इसकी रचना की गई। वास्तव में किसी समय पर, चाहे बारहवीं शताब्दि में अथवा इससे पूर्व जब भी पुराणों का यह संस्करण सम्पादित किया गया था, तभी यह १९ अध्याय इसमें पुराणों की रक्षा के लिए लगाए गए थे। इस पुराण में यह प्रकरण सब से अधिक महत्व का है, क्योंकि इसके द्वारा शेष पुराणों की भी जाँच हो सकती है। प्रत्येक पुराण की विषय सूची के साथ इसके श्लोकों की प्रसिद्ध संख्या भी इस सूची में गिनाई गई है। इस पुराण-विषय-सूची से यह भी ज्ञात होता है कि इस पुराण के सङ्कलन होने के समय पद्म-पुराण में पाखण्ड-लक्षण, मायावाद की निन्दा आदि साम्प्रदायिक विरोध की बातें नहीं थीं। इसी से अनुमान होता है कि साम्प्रदायिक विरोध की बातें पीछे से मिला दी हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आगे के १५ अध्यायों में १२ महीनों की १५ तिथियों के व्रतों का माहात्म्य है। इसी प्रकार का साहित्य तथा माहात्म्य आदि विषय आज कल पौराणिक साहित्य की मुख्यताएँ समझी जाती हैं, किन्तु वास्तव में ये विषय प्राचीन पुराणों से भिन्न हैं, क्योंकि पुराण-लक्षणों में इस विषय का समावेश किसी प्रकार नहीं हो सकता, अतः ये अध्याय भी अधिक प्राचीन नहीं माने जा सकते।

पुराण का रचना काल—जैसा कि ऊपर से स्पष्ट है—(१) इसमें जगन्नाथ के मन्दिर का उल्लेख है। (२) इसमें लीलावती के श्लोक ज्यों-के त्यों पाए जाते हैं। (३) इसमें वृत्त रत्नाकर के श्लोक उद्धृत देखे जाते हैं। इनमें सब पुराणों की विस्तृत सूची देखी जाती है, इसलिए यही निश्चय जान पड़ता है कि यह पुराण या कम से कम इसका यह वेदांग भाग, जिसके लिए अति प्राचीन होने की कल्पना की जा सकती है—शाके १०७२ वि० से १२०७ की रचना है, इससे अधिक पुराना किसी प्रकार नहीं हो सकता। क्योंकि (१) जगन्नाथ के मन्दिर का निर्माण गंग वंश के पाँचवें राजा अनग भीमदेव ने सं० १२४१ के पश्चात् किया था। अवश्य ही यह इस मूर्ति का उपक्रम सन् ३१२ में आरम्भ हो गया था। एवं ४७४ ई० में इसकी कल्पना भी एक प्रकार से हो चुकी थी, किन्तु इसका अधिक महत्व वैष्णव आचार्यों के समय में ही बढ़ा था। हो सकता है, इन चार पादो में जहां-तहां संक्षिप्त उल्लेख इसी प्राचीन मन्दिर का किया गया हो, किन्तु यह नवीन माहात्म्य सब वैष्णव आचार्यों के समय की रचना है, जिनका युग पन्द्रहवीं शताब्दि के पश्चात् आरम्भ हुआ था। (२) लीलावती की रचना सं० १०७२ शाके शालिवाहन में हुई थी यथा—

रसगुण पूर्ण महो समशक समयेऽभवान्म मोत्पत्तिः ?
रसगुण वर्षेण मया सिद्धान्त शिरोमणी रचिता।
(सिद्धांत शिरोमणि प्रश्ना० ५८)

सूर्य सिद्धांत, वृहद् जातक, पाणिनीय, सिद्धांत शिरोमणि तथा वृत रत्नाकर जैसे स्वतन्त्र और उद्भट विद्वानों के विषय में यह कल्पना करने का अवसर इसलिए नहीं है कि उन्होंने अपने-अपने विषय को शास्त्रीय ढग से और क्रम पूर्वक सम्पादित किया है और ये ग्रन्थ सब शुद्ध तथा वास्तविक दशा में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त उन ग्रन्थकारों ने जहाँ-तहाँ उन अन्य विद्वानों का उल्लेख भी किया है, जिनके ग्रन्थ उन्होंने देखे या पढ़े थे, किन्तु पुराण का वर्णन अधूरा, दुरूह तथा खण्डित है।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आठवां अध्याय

बृहत्तर भारत

१ - वैदिक विकास का गतिरोध

ईसा की छठी शताब्दी से लेकर १९ वीं शताब्दी के आरम्भ तक जो बौद्धिक विकास का अवरोध हुआ, वह भारत तक ही सीमित न रहा, लगभग सारे ही सभ्य संसार में इसका प्रभाव रहा। कहना चाहिए कि छठी शताब्दी तक जो बौद्धिक सभ्यता भारत ने अर्जन की थी, वही सारे विश्व की पूंजी रही और जिन जिन देशों से भारत का सम्पर्क इस काल में हुआ उनमें एक नवीन जीवन का संचार हुआ। योरुप में बौद्धिक जागरण १४ वीं शताब्दी में हुआ और विज्ञान का आरम्भ १६वीं शताब्दी में। अरबों ने भारत से जो ज्ञानार्जन किया था, योरुप के बौद्धिक विकास पर उसीकी छाया पड़ी।

प्राचीन आर्य—यह बात इतिहास से प्रमाणित है कि सुमेर और बेबीलोन का सिन्धु सभ्यता से सम्पर्क था और वैदिक आर्यों और प्राचीन ईरानियों के बीच लगभग साम्य था, क्योंकि आर्यों के उपनिवेश मैसोपाटिया तक फैले हुए थे और ईरानी प्रदेश के मितन्नी और हित्तात राजा वैदिक देवताओं की प्राथना किया करते थे। यह बात भी अब स्वीकार करली गई है कि ईसा मसीह से शताब्दियों पूर्व बौद्ध धर्म पश्चिमी एशिया में प्रचलित हो गया था। सम्भवतः यही कारण है कि बौद्ध और ईसाई धर्मों के बीच कुछ सांस्कृतिक साम्यता के चिन्ह पाए जाते हैं। अत्यन्त प्राचीन काल से सिन्ध के मुहाने और ईरान की खाड़ी होकर भारत के बीच वाणिज्य व्यापार चलता था। ईसा पूर्व ९७५ में सम्राट् सुलेमान ने अपना राजमहल सजाने के लिए भारत से बहुत सी सामग्री मंगवाई थी। यूनान से भारत का सम्बन्ध सिकन्दर से भी पहले था और दोनों देशों में दोनों देशों की संस्कृति और भाषा के जानकार थे। इस काल में भारत और ईरान के बीच की कड़ी फारस था। ईसा पूर्व ४८० में ईरानियों ने जो यूनान पर आक्रमण किया था उसमें बहुत से भारतीय योद्धा सम्मिलित थे। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी का पाणिनी यवनानी लिपि का उल्लेख करता है।

भारतीय विचार धारा का प्राचीन सभ्य संसार पर प्रभाव—यूनानी दर्शन पर ब्राह्मणों के सर्वात्मवाद सा स्पष्ट प्रभाव है। पिथागोरस जो ईसा पूर्व ५८० में जीवित था, उसने मिश्र, असीरिया और भारत के ब्राह्मण विद्वानों की संगति की थी, वह पुनर्जन्म में विश्वास रखता था और यह शिक्षा उसे भारत ही से प्राप्त हुई थी। ७ वीं शताब्दी में पिथागोरस ने यूनान को दर्शन गणित और धर्म के जो सिन्द्धान्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बताए थे, वे भारत में छठी शताब्दी से पूर्व ही विसिकत हो चुके थे। वह महावीर और बुद्ध के समान ही हिंसा का विरोधी था। अफलातून ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त के साथ कर्मवाद के सिद्धान्त को मिलाकर जिस नवीन दर्शन की स्थापना की थी–वह भारतीय था। उसकी प्रसिद्ध पुस्तक रिपब्लिक यह प्रकट करती है कि कर्मानुसार मनुष्य की आत्मा पशु की योनि में और पशु का आत्म मनुष्य की योनि में जाती है। अफलातून की यह कल्पना कि पृथ्वी परमात्मा का शरीर है स्वर्ग मस्तक है, सूर्य और चन्द्रमा आँखें हैं और आकाश मन है। वह उपनिषदों के विराट पुरुष का रूप है। जिस प्रकार भारत में चार वर्ण थे, लगभग वैसा ही विभाजन अफलातून ने अपनी रिपब्लिक में किया है और वह समाज को तीन विभागों में बाँटता है। भारतीय जिस प्रकार चार वर्णों को ब्रह्मा के अंगों से उत्पन्न मानते हैं, उसी भांति सकरात भी उन्हें परम पुरुष से उत्पन्न बताता है। प्लोटिनस ईश्वर को नेति नेति कहता है। जो उपनिषदों के नेतिवाद से प्रभावित है। सिकन्दर के बाद भारत और यूनान के राजनैतिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध और भी घनिष्ट हुए। चन्द्रगुप्त ने यूनानी सेनापति की कन्या से विवाह कर उसे भारत की साम्राज्ञी बनाया। मेगस्थनीज भारत में पाटलीपुत्र अनेक बार आया और भारत में काफी दिनों तक रहा। सीरिया के यूनानी दरबार से भारत में राजदूत आते थे। पाटलीपुत्र में सीरिया का राजदूत डेमक्स था। बिन्दुसार ने एन्टीयोकस प्रथम से शराब मंगवाई थी और अशोक ने अपने प्रचारक सब एशियाई देशों में और मेसोडोनियां में भी भेजे थे। मौर्य साम्राज्य के टूटने के बाद जब वंक्रियन लोगों का साम्राज्य पंजाब में स्थापित हुआ तो स्यालकोट के राजा मिनिन्डर ने बौद्ध धर्म कबूल कर लिया और बौद्ध साहित्य में मिलिन्द के नाम से प्रसिद्ध है। उसके बाद कनिष्क, कुशान ने बौद्ध होकर जब बुद्ध की पहली मूर्ति बनवाई। तब उसने यूनान, भारत, ईरान और चीन से शिल्पियों को बुलाया था। जिनके द्वारा कनिष्क के राजकाल में गान्धार कला का विकास हुआ।

कुशान राजाओं के काल में ही रोमनसाम्राज्य फरात नदी तक फैला हुआ था, इससे उत्तर भारत के राजाओं के रोम से सम्बन्ध थे। भारत के राजाओं के दूत यूनान के दरबार में जाते रहते थे। दक्षिण भारत की बहुत सी उपज उन दिनों रोम में खपती थी, इसलिए मलाबार से रोम तक समुद्री रास्ता दोनों देशों के लिए खुला था। ईसा की पहली शताब्दी में योरुप और भारत के बीच स्थल का मार्ग बहुत छोटा था। पहली सदी में भारत से इटली तक केवल १६ सप्ताहों का मार्ग था। उन दिनों तामिल राजाओं के रनवासों में यूनान की रानियां रहती थी।

ईसा की पहली शताब्दी में भारतीय दर्शन एशिया माईनर और मिश्र में इतना प्रसिद्ध हो चुका था–कि तक्षशिला के विद्यालय में बहुत बड़ी संख्या में वहाँ के छात्र आते थे। प्लाटीरस ने जो अफलातून के दर्शन की व्याख्या की है उसमें आत्मा की मुक्ति का स्वरूप वर्णन किया है, वह उपनिषदो के मोक्ष और बौद्धों के निर्वाण की प्रतिध्वनि है, ईसा की दूसरी शताब्दी के मध्य भाग में एलेग्जेन्ड्रिया में बौद्धो की संख्या

CC-0. Agamnigam Foundation Foundation, Chandigarh

बहुत अधिक थी और यूनानी लोग आदर पूर्वक उन्हें अपना गुरु मानते थे। उन दिनों एलेग्जेन्ड्रिया में तक्षशिला के समान बड़ा भारी विद्याकेन्द्र था, और वहाँ का पुस्ताकालय जगत् प्रसिद्ध था जिसे ६४२ ईस्वी में खलीफा उमर ने एलेग्जेन्ड्रिया को जय करके जलवा डाला था, और मुसलमान इस पुस्तकालय की पाण्डुलिपियों को जला-जला कर छै महीने तक अपने हमाम गरम करते रहे थे।

अरब और भारत—सन् ७६२ में बगदार नगर की स्थापना हुई, और तभी से यह भारत और योरोप के बीच की एक कड़ी बना रहा। जब तक कि इसे तेरहवीं शताब्दी के मध्य में चंगेज खाँ और हलाकू ने इस नगर को विध्वंस न कर दिया। परन्तु जब तक यह नगर समृद्ध रहा—भारतीय ज्ञान को योरोप तक पहुँचाने में इसका प्रबल हाथ रहा। अरबों ने भारत और यूनान से ही सांस्कृतिक शिक्षा ग्रहण की थी। उस काल में भारत ने एक अंश तक यूनान से प्रभावित होकर जिन विद्याओं का विकास किया वे विद्याएँ अरब के माध्यम से ही योरोप में पहुँचीं। निस्सन्देह अरब और रोम से भी भारत को कुछ ज्ञान-दान मिला, जो हमारे ज्योतिष ग्रन्थों में रोमक सिद्धान्त और पौलिष सिद्धान्त है। जो रोमन सिद्धान्त से और एलेग्जेन्ड्रिया के विद्वान पौल के सिद्धान्तों से सम्बन्धित है। यह बात स्पष्ट है कि भारत के ज्योतिष और गणित के ग्रन्थों का अनुवाद पहले अरबी में हुआ और तब लैटिन में। चरक संहिता का अनुवाद भी अरबी में हुआ और उसके बाद लैटिन में। प्राचीन काल में अरब भारतीय संस्कृति और ज्ञान से प्रभावित था। हिजरी सन की दूसरी शताब्दी में उन्होने बौद्ध साहित्य का अरबी में अनुवाद किया जो किताबुल बुद्ध और बिलावर व बुदाशिक के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार ज्योतिष और गणित के अनुवाद 'सिन्ध हिन्द' के नाम से, सुवुत का अनुवाद सुरसुरुत के नाम से और चरक का अनुवाद सिरक के नाम से, पंचतन्त्र का अनुवाद कलिलादमना के नाम से और चाणक्य नीति का अनुवाद शानक्य के नाम से और हितोपदेश का अनुवाद विदपा के नाम से किया गया है। इसके अतिरिक्त अलबरूनी, अलअन्सारी, अलनदाम, अलबिन्दी सुलेमान और मसूरी ने भारत के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है। हमारे अङ्कगणित के अङ्क भारत से अरब गए और अरब से योरोप पहुँचे। अरबी में अभी तक अङ्कों को हिन्दसा कहते हैं।

भारतीय कथा साहित्य का प्रसार—जातक, पंचतन्त्र हितोपदेश और शुक-सप्तमी में लिखी भारतीय कथाएँ बहुत प्राचीन काल से इन देशों में पहुंच गई थीं। अरेबियन नाइट्स के लेखक ने स्वीकार किया है कि इन कहानियों का आधार ईरानी; यूनानी और भारतीय कहानियाँ हैं। इन कहानियों की रचना सन् ९५० के आस-पास हुई। एसेसफेबुल्स में जो जीव जन्तु की कहानियाँ हैं उनमें आगे वाले जीव सिंह, शृगाल, हाथी और मोर सब भारतीय हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्वी द्वीप समूह—वर्मा और श्याम से दक्षिण और पूर्व की ओर जो भू भाग और द्वीप समूह हैं। उन्हीं का नाम बृहत्तर भारत है। श्याम से पूर्व की ओर हिन्दचीन 'इन्डो चाईना' है, वह भारत ही का भाग है। इण्डो-नेशिया दो यूनानी शब्दों से बना है। इण्डो-नेसस जिस का अर्थ होता है 'भारत-द्वीप'। जिन भू भागों और द्वीपों को बृहत्तर भारत कहा गया है, वे किसी समय भारत के ही अङ्ग थे। भारतीय जन व्यापार और धर्म प्रचार के लिए दूर देशों तक चले जाते थे, और बड़ी बड़ी नौकाओं द्वारा हजारों मीलों के समुद्रों को पार करते थे। भारत का पूर्वी और पश्चिमी दोनों ही देशों के साथ व्यापार का और सांस्कृतिक सम्बन्ध भी चलता था। इसीसे बर्मा, श्याम, भारत, चीन, मलाया, जावा और बाली में भारतीय संस्कृति के अनगिनत चिन्ह मिलते हैं। अब यद्यपि इन देशों में इस्लाम और ईसाई मत का प्रचार हो गया है और हिन्दु वहां बहुत कम है परन्तु हिन्दुत्व के साँस्कृतिक प्रभाव इन सारे द्वीप समूहों में हैं। जावा के मुसलमान मूर्तियों पर फूल चढ़ाते हैं, मन्दिरों में आरती करते हैं। उनके नाटक और गीत रामायण और महाभारत की कथाओं पर आधारित हैं। उनके नाम और उपाधियां संस्कृतनिष्ठ हैं। इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति का नाम सुकर्ण और प्रधान मन्त्री का नाम शास्त्र अमित जय से निकला हुआ है। जो–गजकर्ता के सुलतान की उपाधि भूनौ सेनापति है। जावा और सुमात्रा के नाम भी सुसस्कृत हैं। इसी से इण्डो नेशिया के राष्ट्रपति सुकर्ण ने एक बार भारत के प्रधान मन्त्री को लिखा था कि आपका देश और आपकी जनता इतिहास के आरम्भ काल से ही हमारे साथ रक्त और संस्कृति दोनों ही रूपों में बँधी है। इण्डिया नाम को हम एक क्षण के लिए भी नहीं भूल सकते। क्यों कि यह शब्द हमारे देश का प्रथमार्द्ध है। जो–गजकर्त्ता नाम भी 'योग्य कर्त्ता' का बिगड़ा हुआ नाम है। जो जावा और सुमात्रा के समान शुद्ध सांस्कृतित नाम है, आप के प्राचीन देश के सांस्कृतिक उत्तराधिकार हमें कहां तक प्राप्त हैं? इसका एक उज्ज्वल प्रमाण मेरा नाम भी है।

बृहत्तर भारत का महत्त्व—प्राचीन भारत के संस्कृतिक विकास की दृष्टि से बृहत्तर भारत का महत्त्व बहुत अधिक है। अशोक के काल में आचार्य मोग्लि पुत्र तिष्य ने जो विदेशों में धर्म दूत भेज कर भारतीय संस्कृति का वहाँ बीज बोया आगे चल कर वह बहुत सफल हुआ। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में जिस बीज का आरोपण किया गया था—वह ईसा की ५वीं शताब्दी में एक ऐसा विराट् रूप धारण कर गया–कि उसकी शाखाएँ पच्छिम में ईरान से लेकर पूर्व में इन्डोनेशिया और जापान तक, तथा उत्तर में साइबेरिया की सीमा से लेकर दक्षिण में सिंहल द्वीप तक फैल गईं। इस संस्कृति प्रसार का श्री गणेश बौद्धों ने किया—पीछे वैष्णव और शैव धर्माचार्य भी वहां पहुँचे, और अपने धर्म की वहाँ स्थापना की। एक प्रकार से यह भारतीय संस्कृति मूलक सार्वभौम धर्म साम्राज्य की स्थापना थी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सारनाथ में बौद्ध धर्म की स्थापना करते समय बुद्ध ने अपने प्रथम पांच शिष्यों से कहा था—भिक्षुओ ! सबके हित के लिए, और सबके सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिए विचरण करो—एक साथ दो मत जाओ। तब कौन जानता था—कि बुद्ध की यह आज्ञा हिन्दुकुश की दुर्लभ पर्वतमाला को लांघ कर; और समुद्रों को पार करके सुदूर देशों में अष्टाङ्ग मार्ग के आलोक से आधी दुनियां के मनुष्यों को आलोकित करेंगी। बौद्धों ने चीन, जापान, इण्डोनेशिया, इण्डो चाइना, वर्मा, श्याम, अफगानिस्तान, लंका, तुर्किस्तान आदि देशों में बुद्ध का संदेश पहुँचाया। पीछे भार-शिव और गुप्त वंशियों के काल में भागवत और शैवों ने समुद्र पार पूर्वी व दक्षिण पूर्वी एशिया में अपने धर्मों का प्रचार किया। जैनों ने भी यह उद्योग किया। फल स्वरूप इन देशों में भारतीय धर्म ही नहीं, भारतीय भाषा, साहित्य आदर्श और संस्कृति की भी स्थापना हो गई।

हिन्द चीन—हिन्द चीन का क्षेत्रफल २ लाख ८६ हजार वर्ग मील और जन-संख्या २ करोड़ ७० लाख है। इस समय इस देश में ५ प्रांत हैं। कोचीन चीन, अन्नम, कम्बोडिया, टोन्किग और लाओ। प्राचीन काल में अन्नम के दक्षिणी भाग में श्रीमार नामका हिन्दु राजा राज करता था। कम्बोडिया कम्बोज का रूपान्तर है, महाभारत के अनुसार यहां का राजा सुदक्षिण कौरवों के पक्ष में लड़ा था। उसके बाद ईसा की प्रथम शताब्दी में कम्बोडिया में हिन्दुओं का राज स्थापित था। इन हिंदु उपनिवेशों को चीनी लोग फुनान कहते थे। दूसरी शताब्दी में यहां के राजा की उपाधि बर्मन थी।

हिन्दचीन में समुद्र के किनारे पर चम्पा का राजा था। सम्भवतः यह राज भारतीय चम्पा के निवासियों ने बसाया हो। इस देश की मूर्तियां, रीति रस्म और स्थापत्य भारतीय संस्कृति की प्रधानता रखता है। कम्बोडिया में बालक को यज्ञो-पवीत दिया जाता है। और यज्ञोपवीत के बाद उसे गुरु के घर जाना पड़ता है। कम्बोडिया का अङ्गकोर स्थान भारतीय मूर्ति कला स्थापत्य का बड़ा भारी खण्डहर है। अब से कोई ७०० वर्ष पूर्व अंगकोर पूर्वी विश्व में एक समृद्ध हिन्दू राजधानी थी। जिसमें १० लाख से अधिक लोग रहते थे। १४ वीं शताब्दी में यह नगरी उजड़ गई थी। कम्बोडिया के लोग संस्कृत के भारी पण्डित होते थे। वे भारत की भांति आश्रम में रह कर विद्या पढते थे। राज परिवार के लोग श्रद्धा पूर्वक ब्राह्मणों से वेद की ऋचाएँ ज्योतिष-न्याय और व्याकरण पढ़ते थे। खमेर के शिलालेखों में वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, योग और न्याय का उल्लेख है। कम्बोडिया में भारतीय संगीत का भी बहुत चलन था। भारतीय गीतकार अपने गीतों में बहुधा काम्बोज की चर्चा करते हैं।

फूनान राज्य—ईसा की प्रथम शताब्दी में कौन्डिन्य नाम का एक ब्राह्मण सब से प्रथम हिन्द चीन पहुँचा। और उसने वहाँ हिन्दु उपनिवेश की स्थापना की।

चीनी इतिहास उसे 'फूनान' के नाम से उल्लेख करता है। उसने यहाँ के जंगली असभ्य लोगों को वस्त्र पहिनना और बस्ती बसा कर रहना सिखाया। कौण्डिन्य के उत्तराधिकारी राजा फानू-चे-मन ने ईसा की तीसरी शताब्दी के प्रथम चरण में फूनान राज्य का बहुत विस्तार किया। तीसरी शताब्दी के मध्य भाग में फूनान का राजदूत भारत मे आया था। उन दिनों पाटलीपुत्र में कनिष्क के उत्तराधिकारी मुरुण्ड का राज्य था, उसके दरबार में यह राजदूत गया था। पाँचवीं शताब्दी में वहाँ का राजा जयवर्मा था, जो कौण्डिन्य का वंशज था। उसने ४८४ ई० में नागसेन भिक्षु को चीन के दरबार में अपना राजदूत बनाकर भेजा था।

५१४ ई० में जयवर्मा की मृत्यु हुई। उसका पुत्र रुद्रवर्मा फूनान का राजा बना। उसने ५३९ ई० में अपना राजदूत चीन दरबार में भेजा था। फूनान के ये राजा शैव धर्मी थे, और उनकी भाषा संस्कृत थी। जयवर्मा की रानी का नाम कुलप्रभावती था। रानी कुलप्रभावती और उसके पुत्र रुद्रवर्मा द्वारा उत्कीर्ण शिला-लेख शुद्ध संस्कृत भाषा में उपलब्ध हैं। उन से प्रमाणित होता है कि फूनान राज्य शैव होने पर भी बौद्ध और वैष्णव धर्म को प्रश्रय देता था। ऐसे लेख मिले हैं जिनमें वहाँ बौद्ध स्तूपों के निर्माण का उल्लेख है। जयवर्मा के दरबार में दो विद्वान् बौद्ध भिक्षु संघपाल और भद्रसेन थे, जिन्होंने अनेक बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया था। फूनान का कौन्डिन्य ब्राह्मण का राज्य ईसा की छठी शताब्दी तक रहा। बाद में उसे काम्बोज के राजा ने—जो पहिले फूनान के आधीन था, अपने राज्य में मिला लिया।

लगभग आठवीं शताब्दी तक—निरन्तर तीन सौ वर्ष तक, हिन्दचीन में अलग-अलग तीन हिन्दू राज्य रहे। नवीं शताब्दी में काम्बोज के जयवर्मा ने इन राज्यों को मिला कर एक साम्राज्य स्थापित किया। और अंगकोर को साम्राज्य की राजधानी बनाया।

अंगकोर—अंगकोर-थाम की राजधानी सारे पूर्वी द्वीप समूहों में शानदार अगकोर के नाम से प्रसिद्ध है। इसी के निकट 'अंगकोर वाट' प्रसिद्ध मन्दिर था। ईसा की तेरहवीं शताब्दी में चीनी राजदूत जो काम्बोज के राज दरबार में भेजा गया था, अंगकोर की भव्य अट्टालिकाओं की प्रशंसा करता नहीं अघाता। कहा जाता है कि वहाँ के राजा यशोवर्मा ने नवीं शताब्दी में यशोधरपुर नामक नगर बसाया, तथा उसे अपनी राजधानी बनाया था। अंगकोर कदाचित् उसी का नाम आगे पूर्वी द्वीप समूहों में प्रसिद्ध हुआ। अंगकोर-थाम के भग्नावशेष अब उस पूर्व समृद्धि के मौन साक्षी हैं। इस नगरी के चारों ओर ३३० फीट चौड़ी खाई थी, जिसके भीतर की ओर मजबूत प्राचीर बनी थी। नगर वर्गाकार था जिसकी प्रत्येक भुजा लम्बाई में दो मील थी। नगर के द्वार विशाल थे, जिसके दोनों ओर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रक्षकों के मकान बने थे। तीन सिर वाले विशाल हाथी द्वारों की मीनारों को अपनी पीठ पर थामे हुए थे। सौ फीट चौड़े और मील भर लम्बे पाँच राजमार्ग द्वारों से राजभवन तक गए थे। पक्की चिनाई के अनेक सरोवर नगर में थे, नगर के मध्य भाग में एक विशाल शिव मन्दिर था, जिसके तीन खण्ड थे। प्रत्येक खण्ड पर एक-एक ऊँची मीनार थी। बीच की मीनार भग्नावस्था में भी १५० फीट के लगभग है। ऊँची मीनार के चारों ओर छोटी-छोटी अनेक मीनारें थीं, जिनके चारों ओर एक-एक नर-मूर्ति बनी हुई है; जो समाधिस्थ शिव की है। इस विशाल मन्दिर का तक्षण और चित्रकारी अद्भुत है। पौराणिक मन्दिरों के इतने प्राचीन अवशेष भारत में भी नहीं हैं। बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में काम्बोज का राजा सूर्यवर्मा द्वितीय था। उसने एक विशाल शिव मन्दिर बनवाया था, जो अंगकोर-वाट के रूप में अभी तक है। और एक बौद्ध विहार प्रसिद्ध है। इसकी चारों ओर की खाई की चौड़ाई ७०० फीट है, जिसे पार करने को पच्छिम की ओर एक पुल है। पुल पार करने पर हजार फुट चौड़ा फाटक है। उसके बाद यह विराट मन्दिर है। अंगकोर थोरम और अगकोर-वाट के अतिरिक्त प्रासादों के अनगिनत खण्डहर वहां हैं, जो अतीत काल की हिन्दु संस्कृति के विस्तार की कहानी कह रहे हैं—कि वहाँ पहले पौराणिक हिन्दु राज्य था, पीछे वह बौद्ध धर्म प्रभावित हो गया।

चम्पा—हिन्द चीन में चम्पा का हिन्दु राज्य भी प्राचीन था, उसकी स्थापना चीनी इतिहास के आधार पर १९२ ई० के लगभग हुई थी। इसकी स्थिति काम्बोज राज्य के पूर्व और आधुनिक अनाम के दक्षिणी भाग में थी। ईसा की तीसरी शताब्दी में ही अनाम का 'पाण्डुरंगम' नगर बहुत समृद्ध था। इसके २०० वर्ष बाद कम्बुज राज्य समृद्ध हुआ। चम्पा का पहिला राजा श्रीमार था उसके उत्तराधिकारी सभी भारतीय संस्कृति और धर्म के अनुयायी थे। उनकी भाषा संस्कृत और धर्म शैव था। इनके अनेक उत्कीर्ण लेख दक्षिणी अनाम में प्राप्त हुए हैं। चीनी अनुश्रुति के अनुसार चम्पा के हिन्दु राजा ने ई० स० ३४० में चीन के सम्राट् के पास दूत भेज कर चीन और चम्पा राज्य की सीमाओं के विवाद तय करने की चेष्टा की थी—परन्तु चीन सम्राट् के सहमत न होने से चम्पा के राजा ने ई० स० ३४७ में चीन पर आक्रमण कर न्हुत नाम का उपजाऊ प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया था। और होन-सोन पर्वत माला तक चम्पा का राज्य फैल गया था। इसी युद्ध में चम्पा के राजा फनवेन की मृत्यु भी हुई थी। उसके उत्तराधिकारी फनफो के काल में ई० स० ३४९ से ३८० तक और उसके बाद तक भी चीन इन खोए हुए प्रान्तों के लिए प्रयत्न करता रहा था। चम्पा के राजाओं के फनवेन आदि नाम चीनी अनुश्रुति के अनुसार हैं। वहाँ के राजा फनहुता का असली नाम धर्म महाराज श्री भद्रवर्मा था। इस राजा के अनेक उत्कीर्ण लेख चम्पा में मिले हैं। श्री भद्रवर्मा वेदों का महा पण्डित था। उसी ने भद्रेश्वर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वामी शिव की मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी। आगे यह मन्दिर चम्पा में धर्म और संस्कृति का केन्द्र बन गया था और इसकी कीर्ति दूर २ तक फैल गई थी। भद्रवर्मा का उत्तराधिकारी गंगाराज ई० स० ४१३–४१५ में राज्य की अव्यवस्था से खिन्न होकर गंगा पार करके भारत चला आया था। वहाँ के राजा इन्द्रवर्मा को एक शिलालेख में षड्दर्शन, बौद्ध दर्शन, काशिकावृत्ति, सहित पाणिनीय व्याकरण और उत्तर कल्प का प्रकाण्ड पण्डित कहा गया है।[1] इन लेखों में शक सम्वत् का उपभोग हुआ है।

कम्बुज राज्य—यह हिन्दु राज्य आरम्भ में फुनान राज्य के आधीन था, पीछे वहाँ के राजा भवकर्मा ने फूनान के राजा रुद्रवर्मा को परास्त कर उसे अपने राज्य में मिला लिया। इस से कम्बुज का हिन्दु राज्य अत्यन्त समृद्ध हो गया। स्याम के सीमान्त पर एक शिव लिङ्ग मिला है, जिसकी पीठिका पर यह लेख उत्कीर्ण है—"धनुष के पराक्रम से जीती निधियों को प्रदान कर उभयलोक करधारी राजा श्री धववर्मा ने अम्बक के इस लिङ्ग की स्थापना की।" एक दूसरा लेख इसी भववर्मा का और मिला है, जिस पर लिखा है—"वह श्री भववर्मा की भगिनी तथा श्री वीरवर्मा की पुत्री थी, जो अपने पति और धर्म की भक्ति में दूसरी अरुन्धती थी। उसी हिरण्मयी की माता को—जिसने पत्नी के रूप में ग्रहण किया, उस ब्राह्मणों में सोम समान स्वामी सामवेदवित् अग्रगण्य श्री सोमवर्मा ने पूजा विधि और अतुलदान के साथ सूर्य और त्रिभुवनेश्वर की प्रतिष्ठा की। प्रति दिन अखण्ड पाठ के लिए उसने रामायण पुराण के साथ सम्पूर्ण भारत को प्रदान किया।"

ये लेख छठी शताब्दी के कम्बुज राज्य की हिन्दु संस्कृति पर यथेष्ट प्रकाश डालते हैं। और वहाँ के शैव राजा की भारतीय भावना को प्रकट करते हैं। भववर्मा के बाद महेन्द्र वर्मा कम्बुज राज्य के स्वामी बने, उनके भी शिलालेख प्राप्त हैं। जो सातवीं शताब्दी में शिव पद पूजा की प्रतिष्ठा से सम्बन्धित हैं। महेन्द्रवर्मा के पुत्र ईशान वर्मा ने ईशानपुर नगर बसा उसे अपनी राजधानी बनाया था। वह वह महानृप हर्षवर्धन का समकालीन था। इसने ई० ६१६ में अपना दूत मण्डल चीन भेजा था। ईशान वर्धन के उत्तराधिकारियों के उत्कीर्ण लेखों में शकाव्द का प्रयोग है। इन सन प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि काम्बोज में धर्म–भाषा–जाति सब कुछ भारतीय था। नवीं शताब्दी में काम्बोज पर जयवर्मा का राज्य था, जिसके राज्य में यह राज्य खूब फला फूला। जयवर्मा के बाद उसका पुत्र जयवर्धन और फिर इन्द्रवर्मा तथा उसका पुत्र यशोवर्मा वहाँ का शासक बना। इन्द्रवर्मा प्रतापी

१—मीमांस षट्तर्क जिनेन्द्र सूर्मिस्स काशिका व्याकरणोदकोप्यः। आख्यान शैवोत्तर कल्पमीनः पठिष्ठ एनेष्विति सत्कवीनाम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

व्यक्ति था। उसने चम्पा राज्य को जय किया। इन सब ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रकाश डालने वाले शुद्ध परिष्कृत संस्कृत भाषा के शिलालेख वहां प्राप्त हुए हैं।

जावा में सातवीं शताब्दी में शैलेन्द्र वंशी राजाओं ने अपने साम्राज्य स्थापित किए। उस समय उन्होंने कम्बुज पर भी आक्रमण किया था। नवीं शताब्दी तक कम्बुज शैलेन्द्र साम्राज्य के अन्तर्गत रहा। नवीं शताब्दी के आरम्भ ही में जयवर्मा ने कम्बुज को फिर स्वतन्त्र कर लिया, और १२९६ ई० तक उसके वंशजो का हिन्दु राज्य कायम रहा। अकस्मात इस राज्य पर एक दैवी विपत्ति आई। ई० स० १३०० लगभग कीचड़ जमा हो जाने से मीकांग नदी का मुहाना बन्द हो गया और नदी का जल बहने का मार्ग न पाकर लौट कर नगर के चारों ओर फैल गया। जिससे सारे उपजाऊ खेत नष्ट हो गए और तराई और कछार के रूप में परिवर्तित हो गए। इस तरह अंगकोर उजड़ गया। इसी समय कम्बुज पर कई दिशाओं से आक्रमण हुआ। अनामी लोगों ने पूर्व से, तथा वहाँ के निकटवर्तियों ने पच्छिम से तथा उत्तर से मंगोलों ने आक्रमण किया। अन्त मे १२९६ ई० में मंगोल सम्राट् चंगेज खाँ ने कम्बुज को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। पर अगकोर फिर न बसा, और वहीं जंगलों में छिप गया।

ब्रह्म देश—इसे आजकल वरमा कहते हैं। प्राचीन काल में इसे स्वर्ण भूमि कहा जाता था—वह दक्षिणी वरमा का एक भाग था। अशोक ने स्थावेक शोण और उत्तर को वरमा में धर्म प्रचार के लिए भेजा था। इसका उल्लेख महावंश में है। पाँचवीं शताब्दी तक वरमा बौद्ध धर्म से भली भांति प्रभावित हो गया था। आजकल जहाँ प्रोम नगर है—वहाँ से पाँच मील के अन्तर पर दक्षिण में श्रीक्षेत्र नगर था, जो ब्यू जाति वालों की राजधानी थी। इसके अवशेष अब हन्यावजा क्षेत्र में हैं। हन्यावजा के निकट मौत्रगन ग्राम में स्वर्णपत्र पर उत्कीर्ण दो लेख प्राप्त हुए हैं—जिनमें कदम्ब लिपि और पाली भाषा में बुद्ध के वचन उत्कीर्ण हैं। हन्यावजा के अवशेषों में भग्न शिला लेखों के अतिरिक्त एक पुस्तक की पाण्डु-लिपि भी मिली है जो पाली भाषा में लिखी हुई है। इन सब आधारों पर हम कह सकते हैं कि पाँचवीं शताब्दी तक वरमा भारत के धर्म—भारत की भाषा भारतीय लिपि और भारतीय संस्कृति को अपना रहा था। धीरे-धीरे वह आगे पूर्णरूपेण बौद्ध धर्म का अनुयायी बन गया।

वरमा और स्याम दोनों चीन को खिराज देते थे। पर यह वास्तव में एक प्रकार की भेंट थी, जिसमें चीन का बड़प्पन माना गया था। चीन सम्राट् इस भेंट के बदले बहुमूल्य उपहार इन देशों के राजाओं को भेजते थे। मंगोलों का आक्रमण होने से पहिले वरमा की राजधानी पगान थी। यह शहर उत्तरी वरमा में था। २०० वर्षों तक यह बरमा की राजधानी रहा। यह बड़ा सुन्दर नगर था। आनन्द मन्दिर इसकी सर्वश्रेष्ठ स्थापत्य कला का नमूना था। जो संसार भर में श्रेष्ठ बौद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्थापत्य का नमूना समझा गया था। आज भी इस नगर के ध्वंस देखने से नगर की शालीनता प्रकट होती है। ग्यारहवीं शताब्दी तक यह नगर सम्पन्न और गुलज़ार था।

बाली—बाली द्वीप भारत से ३००० मील दूर जावा सुमात्रा से पूर्व की ओर है। इसका क्षेत्रफल २२४३ वर्ग मील और जनसंख्या १५ लाख है, इसमें अधिकांश हिन्दू हैं जो शैव हैं। उनके मन्त्र और स्तोत्र सब संस्कृत में होते हैं। पुरोहित को पादण्ड कहते हैं। अन्य द्वीपों में भी अब हिन्दु धर्म का लोप गया है, परन्तु बाली में वह अब भी जीवित है। पुराणों में वामन बलि की कथा है। कहा गया है कि बलि को पाताल में बांध कर रखा गया था। संभव है यह स्थान बाली द्वीप ही हो। कहा जाता है कि कभी बाली द्वीप भारत से स्थल मार्ग से जुड़ा हुआ था। चीनी इतिहासकार का कथन है कि बाली के राजा कौन्डिन्य वंश के थे, और उनका चीन से सम्बन्ध था। इत्सिंग नामक चीनी यात्री का कथन है कि बाली की जनता ने मूल सर्वास्ती निकाय को ग्रहण किया था। बाली की मूल भाषा मलाई है। उसमें संस्कृत के शब्द बहुत हैं। बाली के ब्राह्मण संस्कृत पर निष्ठा रखते हैं। वे चतुर्वर्ण को मानते हैं, मुर्दों को जलाते हैं। वे श्रद्धा भी करते हैं। वहां की जनता पर रामायण और महाभारत का व्यापक प्रभाव है।

यव द्वीप—जावा हिन्दचीन के अन्तर्गत द्वीपों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। जावा का प्राचीन नाम यव द्वीप है जिसका उल्लेख रामायण के किष्किन्धा काण्ड में आया है। जबकि सुग्रीव बानरों को सीता की खोज में भेजते हैं। कथा सरित्सागर में भी यवद्वीप का नाम है और ब्रह्माण्ड पुराण में यवद्वीप के साथ मलयद्वीप, अंगद्वीप, शंखद्वीप, कुशद्वीप और वराहद्वीप का भी उल्लेख है। जावा का क्षेत्रफल ४१४८० वर्ग मील है, और जनसंख्या ५ करोड़ के लगभग है। वहां की अधिक जनता अब इस्लाम धर्म को मानती है और हिन्दू बहुत कम हैं। परन्तु वहां की मुस्लिम जनता भी हिन्दु संस्कृति और भावों से पृथक नहीं हुई है। रामायण और महाभारत का उन पर काफी प्रभाव है। वे इनकी कथाओं के नायकों को अपना आदर्श मानते हैं और रामायण और महाभारत के चरित्रों पर वहां रात-रात भर नाटक होते हैं। वहां के खंडहरों और मन्दिरों में प्राचीन हिन्दुत्व का स्वरूप प्रकट है। इतिहासकारों का कहना है कि अब से कोई २००० वर्ष पूर्व कम्बोड और जावा में दक्षिण भारत के हिन्दुओं ने अपने उपनिवेश बनाए थे। जावा में अजिशक नाम से एक सम्बत् प्रचलित है। यह सम्वत् सन् ७८ ईस्वी में आरम्भ होता है। यही सन् भारत में शक सम्वत् का है। इससे अनुमान होता है कि जावा का सम्वत् भी शक सम्वत् है। ईसा की दूसरी शताब्दी में जावा पर एक हिन्दू राजा राज्य कर रहा था, जिसका नाम देवबर्मन था।[1] जावा में हिन्दू स्थापत्य और मूर्तिकला का बाहुल्य है। इनमें

१—श्री आर०सी० मजूमदार कृत हिन्दू कोलोनीज़ इन दी फार ईस्ट।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कुछ तो खण्डहर हैं और कुछ अच्छी अवस्था में भी हैं। बोरोबुदर प्रम्बनम चण्डी—कलासन और डिग्रंगाप्लेटो के मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। संसार के प्राचीनतम मन्दिरों की सूची में बोरोबुदर अद्वितीय है। वहां के हिन्दु स्थापत्न और कला को देखने के लिए दूर देश के लोग पहुँचते हैं। कहा जाता है कि यह मन्दिर श्री विजय के शैलेन्द्र वंश के राजाओं ने आठवीं शताब्दी के मध्यकाल में बनवाया था। जावा में पाँच सौ से अधिक मन्दिर थे जिनमें पत्थर के काम संसार भर से अधिक सुन्दर और कलापूर्ण थे। प्रधान मन्दिर हैं, ६५० से ९५० के बीच बने थे। फाहियान भारत से लौटती बार जावा में ठहरा था। वह कहता है—यहां भारतीय जन बहुत हैं। उनकी दशा सम्पन्न है। वे शैव धर्म को मानते हैं। फाहियान जिस जहाज द्वारा जावा गया था। उसी जहाज में दो सौ भारतीय व्यापारी भी जावा जा रहे थे।

पाँचवीं शताब्दी में गुणवर्मा ने यवद्वीप और उसके आस पास के क्षेत्रों में बौद्ध धर्म का प्रसार किया। वह काश्मीर के राजा संधानन्द का पुत्र और हरिभद्र का पौत्र था। वह बालकाल ही से धर्मभक्ति और बौद्ध धर्म प्रभावित था। जब उस के पिता की मृत्यु हुई, तो उससे राज काज सम्भालने को कहा गया था। उसने राज सिंहासन त्याग, भिक्षुव्रत ही को अंगीकार किया। पहले वह लंका गया, और फिर जावा। जावा की राजमाता उसके प्रभाव में आ गई और बौद्ध हो गई। पीछे माता की प्रेरणा से वहाँ के राजा ने भी बौद्धधर्म अंगीकार कर लिया। इसी समय किसी विदेशी आक्रांता ने उस पर आक्रमण किया, उसके सामने धर्म संकट आया कि युद्ध हिंसा है—युद्ध करना चाहिए या नहीं। पर अन्त में उसने आक्रांता को मारना हिंसा नहीं है, यह निर्णय कर युद्ध किया, तथा आक्रांता को मार भगाया। गुणवर्मा की धर्म भावना और शौर्य से चीन सम्राट् भी प्रभावित हुआ। और उसने दूत भेजकर उसे चीन में आमन्त्रित किया। चीन सम्राट् का अनुरोध गुणवर्मा ने स्वीकार किया, और वह ४३१ ई० में चीन के बन्दरगाह नानकिंग पर जा पहुँचा। गुणवर्मा ने नन्दी नाम के एक भारतीय व्यापारी के जहाज से यह यात्रा की थी।

जावा में संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण शिलालेख लिखे हैं, जिन में चौथी पाँचवी शताब्दी में गुण पूर्णवर्मा ने उत्कीर्ण कराए थे। पूर्णवर्मा की राजधानी तारूमा थी, जो वर्तमान जाकर्ता के निकट थी। इन लेखों से प्रकट है कि पूर्णवर्मा के पूर्वज राजाधिराज ने चन्द भागा नहर खुदवाकर उसे समुद्र तक मिलाया था। पूर्णवर्मा ने स्वयं भी एक नहर खुदवाई थी।

सुमात्रा—सन् ४१३ में फाहियान सुमात्रा गया था। और वहां उसने ब्राह्मण धर्म को बहुत समृद्ध पाया था। पांचवीं सदी में काश्मीर के राजा गुणवर्मा ने बौद्धभिक्षु होकर जावा की यात्रा की, और वहाँ के राजा और रानी को बौद्ध धर्म की दीक्षा दी। तब से जावा में ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। जावा,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुमात्रा और बाली में बौद्ध धर्म और हिन्दु धर्म घुल मिल गए हैं। वहां पर विष्णु गरुण, गणेश, शिव और बुद्ध की मिली जुली सी मूर्तियाँ मिलती हैं। ब्रह्मा, विष्णु; महेश और बुद्ध चार प्रधान देवता माने जाते हैं। इन्डोनेशिया में ५ वीं शताब्दी में ब्राह्मण धर्म की प्रधानता थी। जब बंगाल बिहार में पाल वंशी राजाओं का राज था, तो जावा सुमात्रा में भी बौद्ध राजा राज करते थे। जावा और सुमात्रा से आने वाले विद्यार्थियों और यात्रियों के लिये सुमात्रा के बौद्ध राजा बाल पुत्र ने नालन्द में एक बिहार बनवाया था। सुमात्रा का आकार जावा से चौगुना है परन्तु जन-संख्या ६६ लाख से ज्यादा नहीं है। प्राचीन काल में इसे स्वर्ण द्वीप कहते थे। सुमात्रा की राजधानी श्री विजय थी। जिसे आज पलेमबंग कहते हैं। सातवीं शताद्वी में यह नगरी अत्यन्त समृद्ध थी। इसके आधीन दूसरे द्वीपसमूह में श्री विजय बौद्ध धर्म और संस्कृति का प्रधान अड्डा था। यहां का राजा भारत और चीन दोनों देशों से घनिष्ट सम्बन्ध रखता था—यहां पर दक्षिण भारत के चोल राजाओं ने आक्रमण किए। इत्सिंग ने भारत आते हुए छः मास तक सुमात्रा में ठहर कर पाली और संस्कृत का अध्ययन किया था। निःसन्देह उस समय इन विद्याओं के केन्द्र इन देशों में रहे होंगे। इत्सिंग जब नालन्द विश्वविद्यालय में पहुंचा था, तो विद्यालय में प्रविष्ट होने के पूर्व १०८ द्वार पण्डितों ने उसकी जाँच की थी। इत्सिंग ने नालन्द में १० वर्ष तक अध्ययन किया। कहा जाता है—कि प्रसिद्ध दार्शनिक धर्म कीर्ति सुमात्रा गए थे। वहां की कीर्ति सुन कर विक्रम शिला के मठाधिपति श्री दिपङ्कर श्री ज्ञान सुमात्रा गए थे। यह भी प्रसिद्ध है कि आचार्य शांत रक्षित तिब्बत जाने से पहले धर्म कीर्ति से मिलने सुमात्रा गए थे।

शैलेन्द्र वंश—सातवीं शताब्दी में सुमात्रा में शैलेन्द्र वंश बहुत प्रतापी था। उसकी राजधानी श्री विजय थी। उसने जावा, मलाया, काम्बोज, और दक्षिणी वर्मा को भी जीत कर अपने राज्य में मिला लिया था। इन राजाओं के अनेक शिलालेख सुमात्रा और जावा में मिले हैं। जो संस्कृत में हैं। शैलेन्द्र वंश बौद्ध-धर्मावलम्बी था। इससे उनके प्रमाण से इन सब द्वीप समूहों में बौद्ध धर्म का अच्छा प्रसार हुआ। इस वंश में इन पूर्वी द्वीप समूहों में वैसा ही बड़ा हिन्दु साम्राज्य स्थापित किया था। जैसा गुप्तों ने भारत में किया था। इस वंश का भारत से भी सम्पर्क था। क्योंकि भारत में भी इनके सम्बन्धित शिलालेख मिले हैं। चीनी और अरबी लेखकों ने इनके सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है। अरबी लेखक इब्नरोस्ता कहता है कि जावक (जावा) का महाराजा महान् शासक तथा द्वीपों का स्वामी है। उस जैसा धनी और शक्तिशाली राजा दूसरा नहीं है। न उतनी आय किसी राजा की है। नालन्द में श्री विजय के शैलेन्द्र का एक ताम्रपत्र मिला है—जिस में लिखा है—'शैलेन्द्र वंश तिलक यव भूमि पाल महाराज श्री बालपुत्र देव ने नालन्द में एक बिहार निर्माण कराया, और उसके लिए राजा देवपाल से कहकर राज गृह जिले के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नन्दिबन का मणि नाटक, नाटिका ग्राम तथा हस्ति ग्राम और गया के विषय (जिले) के पामालक गांव का दान किया। इस ताम्रलेख से यह भी प्रमाणित है कि पाल-वंशी राजाओं की भांति शैलेन्द्र वश भी नालन्द का संरक्षक था। शैलेन्द्र वंश की कीर्ति और प्रतिष्ठा के द्योतक स्तूप तथा बिहार अभी तक दक्षिण पूर्वी एशिया के विविध प्रदेशों में विद्यमान हैं। एक प्राचीन अवशेष कलसन मन्दिर है, जो आठवीं शताब्दी में बना है। इसे शैलेन्द्र राजा पणकरण ने ७७८ ई० में बनवाया था और कलस गाँव नामक एक ग्राम के साथ भिक्षु संघ को दे दिया था। यह मन्दिर अपनी कला का एक उत्कृष्ट नमूना है।

बरोवदूर, शैलेन्द्र युग की एक महान् कृति है, यह एक चैत्य है। जो सांची के स्तूप के समान एक पहाड़ी पर स्थित है। यह स्तूप चारों ओर एक के ऊपर एक सीढ़ी नुमा चक्करों से मिला कर बनाया गया है। जिनमें ऊपर की ओर का प्रत्येक चक्कर अपने से नीचे वाले चक्कर से थोड़ा भीतर की ओर सिमटा हुआ है। सबसे ऊपर के चक्कर के ऊपर घण्टाकार चैत्य है। नीचे चक्कर की लम्बाई ३९३ फीट है, और सबसे ऊपर ९० फीट। इस विचित्र चैत्य के विविध गलियारों में सब मिला कर १५०० चित्रावलियां हैं। जिनका सम्बन्ध जातक बौद्ध कथाओं से है।

श्री विजय—सुमात्रा की राजधानी श्रीविजय थी। जो पहाड़ों में बसी हुई भारी नगरी थी। पारेमबाँग नदी के मुहाने पर इसका बन्दरगाह था। सुमात्रा का साम्राज्य श्रीविजय का बौद्ध साम्राज्य कहाता था। एक वह भी समय था--जब श्रीविजय साम्राज्य के आधीन सुमात्रा, मलाया, किलियाद्वन, वोर्नियों, सेलेवीज, आधा जावा, और फारमूसा टापू का आधा भाग, लंका, और कैरन के पास दक्षिण चीन का एक बन्दरगाह भी था। श्रीविजय साम्राज्य वाणिज्य की आधार शिला पर बनी एक सामुद्रिक शक्ति थी। इस राज्य ने बन्दरगाहों और युद्ध केन्द्रों की ठीक व्यवस्था रक्खी थी, और वे आस पास के समुद्रों पर अधिकार रखते थे। वर्तमान सिंगापुर भी सुमात्रा वालों की बस्ती थी, जिसका प्राचीन नाम सिंहार था। ग्यारहवीं शताब्दी में जब दक्षिण में चोल साम्राज्य का मध्याह्न था। श्री विजय साम्राज्य भी अपनी पूरी कला पर था। ग्यारहवीं शताब्दी में चीनी सम्राट् ने सुमात्रा के राजा के लिए अनेक ताम्बे के घण्टे उपहार में भेजे थे। जिनके बदले में सुमात्रा के राजा ने मोती, हाथी दांत, और सस्कृत की पुस्तकें भेजी थीं। तथा स्वर्ण पत्र पर उत्कीर्ण कराकर एक पत्र भी संस्कृत भाषा का भेजा था। यह साम्राज्य बारहवीं शताब्दी तक ग्वेशाल साम्राज्य तथा मलेशिया के व्यापार का प्रधान केन्द्र बना रहा। ई० स० १३७७ में एक पल्लहव उपनिवेश ने इसे परास्त किया। यद्यपि यह साम्राज्य बहुत बड़ा और समर्थ था, और उसने प्रायः सभी पूर्वी द्वीप समूहों को अधिकृत किया था--पर पूर्वी जावा स्वतन्त्र रहा। वह न केवल श्रीविजय के राजनीतिक अधिकार में नहीं आया—बौद्ध भी नहीं बना। उसने प्राचीन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दु धर्म ही को कायम रखा। परन्तु दोनों द्वीपों में संघर्ष चलता ही रहा। जावा का यह राज्य व्यापार का केन्द्र और खुश हाल था। बारहवीं शताब्दी से ही वह श्री विजय को दबाने लगा था, अन्त में १३७७ में कठिन संग्राम के बाद श्री विजय और सिंगापुर दोनों का पतन हुआ। और इस महा साम्राज्य का अन्त होकर तीसरा मज्जापहित साम्राज्य उठ खड़ा हुआ।

मज्जापहित साम्राज्य—श्री विजय साम्राज्य को पराजित कर मज्जापहित साम्राज्य का उदय हुआ था। यह साम्राज्य जावा के पूर्वी भाग में स्थापित हुआ था। इसने अपनी जल सेना बहुत बढ़ा ली थी। तेहरवीं शताब्दी में इस नगर की बुनियाद पडी। और यह नगर साम्राज्य की राजधानी बन गयी। चीन के संघर्ष में इस राज्य को पूर्व में सर्व प्रथम बन्दूकें मिल गई। जिससे इसकी शक्ति बढ़ती गई। इस की जल और स्थल सेना अत्यन्त कम स्थिति थी। महारानी सुहिता के राज्य काल में राजधानी अत्यन्त सम्पन्न अवस्था में थी। टैक्स–चुंगी और विदेशी व्यापार पर कर और मालगुजारी की प्रणाली थी। सब सरकारी महकमें प्रथक् २ थे। एक सबसे उत्तम न्यायालय था। जिसमें दो प्रधान और सात जज होते थे। ब्राह्मण पुरोहितो के अधिकार असीम थे। पर राजा का अंकुश उन पर भी था। देश की भीतरी व्यवस्था का अधिकार मन्त्री के हाथ में था। वास्तव में यहां की राज्य व्यवस्था बहुत अंशों में कौटिल्य के अर्थशस्त्र के जैसी थी। यह एक व्यापारिणिक साम्राज्य था। और आयात निर्यात का अत्युत्तम प्रबन्ध यही था। भारत—चीन और उपनिवेशों से इस राज्य के गहरे व्यापार सम्बन्ध थे। राज नगरी बड़ी सुन्दर और भव्य थी। बीचों बीच शिव का मन्दिर था। शानदार इमारतें थीं। ई० स० १३७७ में इसने श्री विजय का पतन किया, और १४२६ में उसका ह्रास आरम्भ हुआ। वह साम्राज्य न रह गया। ५० वर्ष वह ज्यों त्यों चलता रहा। फिर मलक्का के मुसलमान राज्य ने उसपर कब्जा कर लिया। इस प्रकार मलेशिया का यह तीसरी हिन्दु साम्राज्य खत्म हुआ। ये तीन साम्राज्य काम्बोज, श्री विजय और मज्जापहित थे। जिन्होने शताब्दियो तक इन द्वीपों में भारतीय संस्कृति का प्रसार किया था, जिनके अमिट चिन्ह अब भी प्राप्त होते हैं। इस संस्कृति की विशेषता यह थी--कि उसकी आत्मा भारतीय थी, पर उसमें प्रभाव चीनी संस्कृति का था।

बोर्नियो—हिन्द चीन में बोर्नियो सबसे बड़ा द्वीप है। इसके सबसे पुराने उत्कीर्ण लेख महकम नदी तट पर उपलब्ध हुए हैं। जिनसे सूचित होता है कि ई० ४०० के लगभग अश्ववर्मा राजा के पुत्र मूल वर्मा ने दान पुण्य और यज्ञ किए थे। संस्कृत भाषा के ये लेख जिन साम्यों पर खुदे हैं—वे राजा मूल वर्मा के यज्ञों में भूप की भांति काम में आए थे। इन यज्ञों के अवसर पर राजा ने वप्रकेश्वर तीर्थ में बीस हजार गायों का और बहुत सा स्वर्ण दान किया गया था। पूर्वी बोर्नियो में जो ध्वंस ज्ञात हुआ हैं। उनमें कोम्बेड की गुफा अत्यन्त महत्व पूर्ण है। जो तेलेन नदी की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपनी धारा के पूर्व में है। गुफा में दो कोठरियां है। पिछली कोठरी में वस्लुएँ पत्थर से बनी बारह मूर्तियाँ हैं। जो शिव गणेश नन्दी अगस्त्य–नन्दीश्वर–ब्रह्मा—स्कन्द और महाकाल की है। वोर्नियो में अन्यत्र भी ऐसे बहुत अवशेष मिले हैं। जो वहाँ पौराणिक सत्ता को स्वीकार करते हैं। फिलीफीन और सेलेबीज द्वीपों में भी ऐसी मूर्तियाँ मिली हैं जो इन सुदूरवर्ती द्वीपों में भारतीय सस्कृति और धर्म प्रचार को प्रमाणित करती हैं।

दक्षिण पूर्वी एशिया में उपनिवेश स्थापना—दक्षिण पूर्वी एशिया में उपनिवेश स्थापना सम्राटों या राजाओं ने नहीं की, यात्रियों, व्यापारियों और जनों ने बंगाल की खाड़ी को पार कर इन द्वीपों में उन्होंने अपनी बस्तियां बसाईं। साहासिक योद्धाओं की महत्वकांक्षा, व्यापारियों की अर्थ चिन्ता और धर्म प्रचारकों की परमार्थ भावना ही इन उपनिवेशों की स्थापना में प्रमुख थी। भारत के साथ इनका सब प्रकार का सम्बन्ध था। वास्तव में ये उपनिवेश भारत ही के अंग थे। और उस काल में सुदूर पूर्व एशिया भारतीय धर्म, संस्कृति और सभ्यता से प्रभावित था।

चीन - चीन से भारत का सम्बन्ध बहुत प्राचीन है। परन्तु सबसे पहला जो भारतीय चीन गया, वह मातंग काश्यप था, जिसका समय ईसा की पहली शताब्दी इसके बाद पाँचवीं शताब्दी के आस पास काश्मीर के किसी आमात्य का पुत्र भारत से चीन गया। वहां उसने चीनी राजकुमारी से विवाह किया--जिससे एक पुत्र हुआ, जिसका नाम कुमार जीव रखा गया। इसकी शिक्षा काश्मीर में हुई। कुमार जीव संस्कृत और चीनी भाषाओं का प्रकाण्ड विद्वान हुआ। उसने अश्वघोष नागार्जुन और भारतीय विद्वानों और कवियों के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद किया। वह चीन मे महायान सम्प्रदाय का महान प्रचारक माना जाता है।

चीन यात्रियों में फाहियान प्रसिद्ध पुरुष है, जो पांचवीं शताब्दी में भारत आए। जिनका विवरण इतिहास प्रसिद्ध है। दूसरे यात्री हुएनसांग थे, जो सातवीं शताब्दी में भारत आए, जब कि हर्ष वर्धन कन्नौज में राज कर रहा था। उनके विवरणों से पता लगता है कि उन दिनों मध्य एशिया में बौद्ध राजाओं का राज था, और वहाँ के तुर्क भी बौद्ध थे। उसने खुरासान ईराक, मौसुल और सीरिया के उपान्त तक बौद्धों को देखा था। इत्सिंग भी सातवीं शताब्दी में आए। यहाँ नालन्द में वर्षों तक पढ़ते रहे, और बहुत से ग्रन्थ अपने साथ ले गए। बौद्ध धर्म की अवनति के साथ चीन से भारत के सम्बन्ध समाप्त हो गए।

बर्मा और श्याम की विचार कला दोनों ही भारतीय संस्कृति से प्रभावित हैं। भारतीय उपनिवेश बर्मा और श्याम से बहुत आगे तक फैला था। सन् १९३७ तक बर्मा भारत का एक प्रान्त माना जाता था।

३५२ ई० में समुद्र गुप्त के काल में कोरिया में बुद्ध धर्म का प्रचार था। और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वहाँ ब्राह्मी लिपि लिखी जाती थी। यशोधर्मन के काल में जापान और तिब्बत में बौद्ध धर्म था। बाद में तिब्बत के राजा ने नालन्द के मुख्य आचार्य शान्त रक्षित को तिब्बत बुलाया था।

सबसे महत्त्व पूर्ण बात यह है कि इस वृहत्तर भारत की भाषाएँ और लिपियां तो भिन्न-भिन्न रहीं, परन्तु उनकी वर्णमाला संस्कृत पर आधारित रहीं।

३—उत्तर-पश्चिम के उपनिवेश

गान्धार काम्बोज और वाल्हीक—बौद्ध काल में गान्धार और काम्बोज भारत के सोलह महा जनपदों में गिना जाता था। काम्बोज हिन्दुकुश के उस पार पामीर के पार्वत्य प्रदेश को कहते थे—जिसे अब बदखशां कहते हैं। तथा गान्धार जनपद में सिन्ध नद के पूर्वी-पश्चिमी दोनों तट परिगणित थे। जिनकी राजधानी क्रमशः तक्षशिला और पुष्करावती थी। काम्बोज से आगे बलख में भी भारतीय संस्कृति का प्रचार था, जिसे वाल्हीक कहते थे। मौर्य काल में यह सम्पर्क नए सिरे से बढ़ा। जब अशोक ने धर्म विजय के लिए खोतन तथा उसके समीपवर्ती प्रदेशों में उपनिवेश स्थापनाएँ की। अशोक का यह आरम्भ गुप्त काल में सम्पूर्ण हुआ। इस काल में वहाँ बहुत भारतीय जाकर बस गए, और वहाँ के मूल निवासियों से विवाह सम्बन्ध स्थापित कर सांस्कृतिक आदान प्रदान किया। तथा भारतीय संस्कृति-धर्म और सभ्यता की स्थापना की।

अन्य उपनिवेश—इस प्रदेश में शैल देश (काशगर), चौक्कुक (यारकन्द), खोतन्न (खोतन), चल्मद (शानशान), भरुक (पौलुशिया), कुची (कुचर), अग्निदेश (करासहर), कोचांग (तुर्फान) थे। आठ राज्य भारतियों के थे—जिनमें खोतन्न और कुची प्रमुख थे। यहाँ सर्वथा भारतीय धर्म व संस्कृति का बोल बाला था। इन राज्यों में अधिक संख्या में भारतीयों की बस्तियाँ थीं। यहाँ की भाषा प्राकृत थी, जो खरोष्ट्री लिपि में लिखी जाती थी। मौर्य काल में यह लिपि सारे उत्तरी पश्चिमी क्षेत्रों में प्रचलित थी। गुप्त काल में वहाँ ब्राह्मी लिपि का प्रयोग हुआ। तथा ब्राह्मी लिपि के साथ ही संस्कृत का भी समावेश हुआ। सर्व साधारण प्राकृत ही का प्रयोग करते थे। ई० की चौथी शताब्दी में जब फाहियान यहां आया था, तब यहां के निवासियों को उसने धर्म और संस्कृति में हिन्दु पाया गया था। भिक्षु संस्कृत पढ़ते थे। और बौद्ध धर्म का अनुशीलन करने थे। वहाँ से बहुत सी संस्कृत पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं।

खोतन—अशोक के एक पुत्र ने कुसान द्वारा खोतन में भारतीय बस्ती बसाई थी, यह बात तिब्बती ऐतिहासिक अनुश्रुति में है। खोतन के सम्बन्ध में फाहियान कहता है कि यहाँ बौद्ध भिक्षुओं की संख्या हजारों की है। तथा यहां के सब निवासी बौद्ध हैं। भिक्षु महायान सम्प्रदाय के हैं। लोगों ने अपने घरों के सामने स्तूप

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बनाए हैं, जिनमें कोई भी बीस फीट से ऊँचाई में कम नहीं है। खोतन में फाहियान गोमती विहार में ठहरा था। जिसमें तीन हज़ार भिक्षु रहते थे। वे सब एक साथ भोजन करते थे। भोजन काल का वातावरण शान्त रहता था। सब भिक्षु मौन हो भोजन करते थे। वह कहता है—खोतन में १४ विहार हैं, जो बड़े हैं। छोटे-छोटे और भी बहुत हैं। यहाँ के बौद्ध एक यात्रा का उत्सव मनाते हैं। उस समय सारे नगर की सफाई होती है, बाज़ार सजाए जाते हैं। जलूस में सब से आगे गोमती विहार के तीन हज़ार भिक्षु रहते हैं। नगर से ३-४ मील के अन्तर पर चार पहियों का रथ तैयार होता है, जिसकी ऊँचाई तीस फुट से भी अधिक होती है। यह एक चलता फिरता चैत्य जैसा होता है, जिसे तोरण आदि से सजाया जाता है। रथ के ठीक बीचों बीच भगवान बुद्ध की प्रतिमा रहती है। केन्द्र की बुद्ध मूर्ति के पीछे और अगल-बगल में बोधि सत्वों और देवों की मूर्तियाँ रक्खी जाती हैं। ये सब मूर्तियाँ सोने-चांदी की होती हैं। जब सवारी नगर द्वार से १०० गज के अन्तर पर रह जाती है; तब राजा उसका स्वागत करता है। इस अवसर पर वह राजकीय परिधान त्याग कर उपासकों के वस्त्र धारण करता है, और नगे पैर चल कर अपने पार्श्वचरों के साथ रथ यात्रा के स्वागत के लिए आगे आता है। मूर्ति के निकट आकर वह पुष्पगन्ध से मूर्ति की अर्चना करता है।

फाहियान एक नए बिहार का भी उल्लेख करता है जो अस्सी साल में बनकर तैयार हुआ था, तथा जो २५० फीट ऊँचा था। इसे सोने चांदी से सजाया गया था। भिक्षुओं के निवास के इसमें सुन्दर भवन थे। दूर २ के राजा यहाँ बहुमूल्य भेट लेकर आते थे और उपहार भेजते थे। इस प्रकार चतुर्थ शताब्दी में खोतन बौद्ध धर्म का केन्द्र था। जहां न केवल चैत्य और विहार थे—अपितु वह विद्या और शिक्षा का भी केन्द्र था, इसकी ख्याति इनको दी गई थी कि ई० ४३३ में चीन का प्रसिद्ध विद्वान धर्म क्षेत्र महा परिनिर्वाण सूत्र की खोज में खोतन आया था।

खोतान में जो खुदाई हुई है उससे बौद्ध बिहारों के चैत्यों-मूर्तियों के बहुत अवशेष मिले हैं। बहुत सी पाण्डुलिपि और चित्र भी मिले हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि ईसा की आठवीं शताब्दी के अन्त तक खोतान मध्य एशिया और चीन में बौद्ध धर्म प्रचार का केन्द्र था। महत्त्वपूर्ण अवशेष योत्कन—रावक, दण्डिन और उलिक में मिले हैं। गुप्तकाल में खोतन उपनिवेश खूब सम्पन्न था, गुप्त साम्राज्य में खोतान-काम्बोज और गान्धार की संस्कृति भारतीय संस्कृति के और भी निकट आई। खोतन से १३ मील दूर मासी मजार में नीया और लोन—लोन में कुछ महत्वपूर्ण लेख भी प्राप्त हुए हैं, जो खरोष्टी लिपि में है। और लकड़ी के तख्तों पर अंकित हैं। ये तख्तियाँ ७½ से १५ इन्च तक लम्बी, और डेढ़ से ढाई इन्च तक चौड़ी है। कुछ पहिया चौकोर भी हैं। इन पर दोनों ओर सादा पहियों को लगाकर ख़िफाफे की भांति बन्दकर इन पर मुहर लगा दी जाती थी। और एक ओर पाने वाले और दूसरा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ग्रोर पत्र दूत का नाम लिखा जाता था। खरोष्ट्री लिपि में चमड़ें पर लिखे कुछ लेख भी मिले हैं। जिनकी लम्बाई ६ से १२ इन्च ग्रौर चौड़ाई २ से ६ इन्च है। ये राजकीय मामलों के पत्र हैं। ग्रौर इनकी भाषा धम्मपद की प्राकृत से मिलती है। ये लेख ईसा की दूसरी तीसरी शताब्दी के समझे जाते हैं। तिब्बती ग्रनुश्रुति के ग्रनुसार खोतन का राजा तीसरी शताब्दी में विजय सम्भव था, वश के सभी राजाग्रों के नाम के ग्रागे विजय शब्द लगा हुग्रा है। विजय सम्भव के गुरु का नाम ग्रार्य वैरोचन था। इन्होंने भारत की ब्राह्मी लिपि के ग्राधार पर खोतन के लिए खोतन भाषा की एक लिपि तैयार की थी। इस वश का राजा विजय वीर्य प्रसिद्ध था—उसने भारतीय भिक्षु बुद्ध दूत के तत्वावधा में ग्रनेक बिहारों ग्रौर स्तूपों का निर्माण कराया था।

कूची--वरा हमिहिर ने वृह-संहिता में शक-पल्हव ग्रादि के साथ एक 'कुशिक' जाति का उल्लेख किया है। एक चीनी संस्कृत कोष में इसका नाम 'कुचिनं' लिखा है। चीनी भाषा में कुची कहते हैं। यह कुची राज्य उत्तरी तरिम उपत्यका में था। चौथी शताब्दी में यह सारा प्रदेश बौद्ध था, ग्रौर यहां के बौद्ध विहारों तथा चैत्यों की संख्या दस हज़ार थी। जिनमें बहुत से ग्रत्यन्त विशाल थे। तामू के विहार में १७० भिक्षु रहते थे। वहां के चार प्रधान विहार बुद्ध स्वामी नामक ग्राचार्य के ग्राधीन थे। इसी ग्राचार्य के ग्राधीन एक भिक्षुणियों का भी विहार था, जो प्रायः राज घरानों की थी। पामीर प्रदेश में जो ग्रनेक बौद्ध राजकुल थे। उन्हीं राजकुलों की कुमारियां भिक्षुणी बनकर इस विहार में रहती थीं।

कुमार जीव—प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् कुमार जीव की मातृ भूमि भी कूची ही थी। उसका पिता कुमारायन एक राज पुत्र था, जो युवावस्था ही में भिक्षु हो गया था। भिक्षु होकर वह कुची पहुंचा। वहाँ के राजा ने उसका सत्कार कर उसे राज गुरु पद दिया। पर कुमारायन पर राजा की बहिन जीवा मोहित हो गई ग्रौर दोनों का विवाह हो गया। इनके दो पुत्र हुए--कुमार जीव ग्रौर पुष्पदेव। कुमारजीव ग्रभी ७ वर्ष का बालक ही था--कि उसकी माता भिक्षुणी हो गई, ग्रौर कुमारजीव को लेकर काश्मीर ग्राई। उन दिनों काश्मीर में बंधुदत्त प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् रहता था। उसने कुमारजीव को उसका शिष्य बना दिया। यह भिक्षु वहाँ के राजा का भाई था। बंधुदत्त के पास रहकर कुमारजीव ने सब बौद्ध ग्रागम पढ़े। फिर वह वहाँ से सब बौद्ध शास्त्रों में निष्णान्त होकर शैल देश (काशगर) चला ग्राया। जहाँ उसने सांगोपांग वेदों का ग्रध्ययन किया। दर्शन ग्रौर ज्योतिष भी पढ़ा। उन दिनों-शैव देश वैदिक धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था। वेद ग्रौर दर्शन तथा ज्योतिष में निष्णांत होकर वह चोक्रुक (चारकन्द) ग्राया। यहां उसने प्रसिद्ध नागर्जुन, ग्रार्यदेव जैसे महान् दार्शनिकों से बौद्ध दर्शनों तथा महायान के रहस्यों को जाना। इसके बाद वह नियम पूर्वक महायान में दीक्षित हो गया, ग्रौर सर्व विद्या निष्णांत होकर ग्रपनी-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जन्म भूमि कूची लौटा। वहाँ उसका बड़ा सत्कार हुआ। उसने एक विद्यापीट स्थापित की, और छात्रों को पढ़ाना आरम्भ किया। थोड़े ही दिनों में उसकी ख्याति दूर दूर फैल गई, और कूची प्रसिद्ध विद्यातीर्थ बन गया। ई० ३८३ में कूची पर चीन ने आक्रमण किया, और कूची को परास्त किया। वहाँ से बहुत से कैदी चीन ले जाए गए। जिन में एक कुमारजीव भी था। उसकी ख्याति सुनकर सम्राट् ने उसे दरबार में बुलवाया। ४०१ में कुमार जीव ने राजधानी पहुंच कर सम्राट् से मुलाकात की। सम्राट् ने उसका आदर किया और उसे संस्कृत के प्रामाणिक बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद करने का काम सौंपा। उसकी आधीनता में अनेक विद्वान् भी रख दिए गए। उसने १० वर्षों में १०६ संस्कृत ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। कुमार जीव के द्वारा ही चीन में महायान का प्रचार हुआ। उसके अगाध पाण्डित्य की चर्चा चीन में घर घर होने लगी, और दूर दूर के वटुक उससे ज्ञानदान पाने आने लगे। अपनी सहायता के लिए कुमार जीव ने बहुत विद्वानों को चीन में बुलवाया। पुण्य घात, बुद्ध यश, गौतम, सघदेव धर्म यश, गुणवर्मन, गुण भद्र और बुद्धवर्मन आदि विद्वान् उसके निमन्त्रण पर चीन गए। वे सब वहां धर्माचार्य की भांति माने गए। उन्हीं के प्रयास से सारा चीन बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया। इन्हीं विद्वानों ने इन ग्रन्थ रत्नों की राशि संचित की जो आज हमें उपलब्ध होकर प्राचीन लुप्त बौद्ध गरिमा को हम पर प्रकट कर रहे हैं। उनका मूल संस्कृत रूप अब नष्ट हो चुका--पर चीनी अनुवाद उपलब्ध है। जो विद्वान् चीन इस काल में गए, वे भारत लौटे नहीं--वहीं उन्हों ने भूमि समाधि ली। कुमारजीव महा पण्डित की ई० ४१२ में मृत्यु हुई।

तुर्फान-काशगर—तुर्फान के मरु प्रदेश में बड़ा प्राचीन नगरों के ध्वंस मिले हैं, जिनमें संस्कृत-चीनी, ईरानी और तुर्की भाषाओं के हस्तलेख प्राप्त हुए हैं। पांचवीं शताब्दी में वहां बौद्ध धर्म का भारी प्रचार था। ई० ४७० में वहां के राजा चाऊ ने मैत्रेय का मन्दिर बनवाया था। जहां एक लेख उसकी स्थापना की स्मृति में उत्कीर्ण था।

काशगर कनिष्क साम्राज्य के अन्तर्गत था। स० ४०० में जब फाहियान वहां आया, तब पञ्च वार्षिक महोत्सव मनाया जा रहा था। जिसमें बुद्ध की अस्थि के दर्शन किए जाते थे। वहां के बौद्ध बिहार में इस समय १००० भिक्षु रहते थे। जो महाचीन सम्प्रदाय के थे। ४६० ई० में काशगर के राजा ने चीन के दरबार में बुद्ध के चीवर को भेजा था।

सहस्त्र बुद्ध बिहार गुहा— तुर्फान के पार चीन की सीमा पर तुङ्गह्वांग स्थान पर दक्षिण पच्छिम नंगे पहाड़ों पर बहुत सी बौद्ध गुफाएँ हैं। उन्हें सहस्त्र बुद्ध गुहा बिहार कहते हैं। ये गुहाएँ ईसा की चौथी शताब्दी की बनी है, और तुंगहाङ्ग से नौ मील के अन्तर पर हैं। ये गुहाएं हजार गज से भी अधिक विस्तार में फैली है। उनकी दीवारों पर चित्र अङ्कित हैं। तथा सुन्दर मूर्तियां भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
हैं। ये चित्र और मूर्तियां अजन्ता जैसी ही हैं, इनमें भारतीय–चीनी और गांधार कला का मिश्रण है। तथा ये अभी भी अखण्ड हैं। अनेक चित्रों में ईरानी और नैपाली कला का भी प्रभाव है। चित्र बोधि सत्वों, अर्हन्तों, देवताओं तथा सांसारिक जीवन के है, और उनका सम्बन्ध महायान सम्प्रदाय से है। तुन–हवाँग की गुहाओं में भारी पुस्तक भण्डार भी प्राप्त हुआ है। जो एक भूमिगत गुहा में भरा था। ये पुस्तकें चीनी; तिब्बत, उहगुर और संस्कृत भाषा में हैं। इनमें अनेक में ब्राह्मी, अनेक में खरोष्ट्री लिपि का प्रयोग हुआ है। पुस्तकें हजारों की संख्या में प्राप्त हुई हैं।

कूचा, काशगर, लेग्नन आदि मध्य एशिया के स्थानों पर भी पुस्तकें प्राप्त हुई हैं, जिनसे इन प्रदेशों में भारतीय धर्म–भाषा, और संस्कृति का प्रचार प्रमाणित होता है। ये गुहाएँ चौहदवीं शताब्दी तक बनती रहीं, और इस बीच जो दान-निर्माण आदि हुए उनके अनेक उत्कीर्ण लेख यहां मिले हैं।

सीरिया और मेसापोटामियाँ—प्राचीन सीरिया और मेसोपोटामिया में भी भारतीय उपनिवेश थे। युफ्रेटस नदी के तट पर उनके दो बड़े बड़े मन्दिर थे। जिन्हें सेन्ट ग्रेगरी ने ई० स० ३०४ में नष्ट किया, और भारतीय बस्तियों को उजाड़ दिया।

उन्होंने पूर्वीय द्वीप समूहों में और पश्चिमोत्तर सीमा पर मध्य एशिया में अपने उपनिवेश स्थापित किए। साम्राज्यों का संगठन किया। राज्यों की मर्यादाएँ बांधी। और ये राज्य शताब्दियों तक भारत से बाहर भारतीय संस्कृति धर्म और समाज रचना करते रहे। जब मुसलिम आक्रान्ताओं और योरोपियनों ने इन द्वीपों पर अधिकार जमाया; तो इन्होंने उनके आगे सिर झुकाने से इन्कार कर दिया, और वे समरांगण में जूझ मरे।

इसी काल में बौद्ध दार्शनिकों का उदय हुआ। और कर्ले और नासिक के चैत्य, भरहुत और साँची के स्तूप, गान्धार मथुरा और अमरावती की मूर्तियां तथा अजन्ता की चित्रकला और तक्षण का प्रकटीकरण हुआ।

— :०*०:—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ६

हर्ष–महानृप

१––वंश और व्यक्तित्व

महान विजेता और राजराजेश्वर धर्मवर्धन यशोधर्मन विक्रमादित्य के ५० वर्ष बाद उस की बहिन यशोमती के गर्भ से कीर्तिमान हर्ष महानृप उससे भी बढ़कर युग परिवर्तन में समर्थ पुरुष हुआ। जिसने पचास वर्ष भारत पर एक छत्र राज्य किया।

जिस प्रकार यशोधर्मन ने एक साधारण सेना नायक से उन्नत होकर महान् मालव साम्राज्य स्थापित किया उसी प्रकार हर्ष ने अपनी विजयों से अपने को राजाधिराज बनाया। साथ ही साहित्य-धर्म और संस्कृति पर अद्भुत छाप डाली।

हर्ष महानृप एक प्रकार से पुराण युग के अन्तिम छोर पर उत्पन्न हुआ। और प्राचीन नरपतियों में वही एक ऐसा पुरुष है जिसका अधिकाधिक प्रामाणिक वृत्त हमें प्राप्त है।

हर्ष के प्रामाणिक वृत्त जानने के तीन स्रोत हमारे पास हैं।

१—बाणकृत हर्ष चरित[1]।

२—चीनी भिक्षु युआन–चांग का विवरण[2]

३—हर्ष के तीन उपलब्ध लेख[3]।

इस वंश का प्रवर्तक परम माहेश्वर पुष्पभूति था जो एक दाक्षिणात्य तान्त्रिक भैरवाचार्य का शिष्य था[4]। छठी शताब्दी की समाप्ति पर जब कन्नौज के मौखरी और मालवा के गुप्त राज्य परस्पर युद्ध करके अपनी शक्ति क्षीण कर रहे थे, उस समय इस वंश के आदित्यवर्धन ने मालव राजा महासेन गुप्त की बहिन महासेना से विवाह करके अपनी शक्ति बढ़ाई। उसके पुत्र प्रभाकरवर्धन ने हूणों को परास्त कर सिन्ध–गुजरात और अन्य कई राज्यों पर अधिकार कर राजाधिराज का पद प्राप्त किया। उसने अपने मामा महासेन गुप्त को भी हराया और उसके दो पुत्र

१—यह हर्ष का अन्तरंग मित्र–सभासद और राज कवि था।

२—इसने सम्राट् के साथ रहकर उसका जीवन और कार्य आंखों से देखे थे।

३—सोनपत ताम्र मुद्रा (फ्लीट कृत गुप्त इन्सक्रिप्शन सं ५२) हर्ष सम्वत (लगभग ६२८ ई०) का बाँसखेरा पटल (ताम्र पत्र) और सम्वत ६३१ का मधुवन का ताम्र लेख।

४– हर्ष चरित पृ० ११५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुमारगुप्त एवं माधवगुप्त को अपने यहां ले आया। प्रभाकरवर्धन के दो पुत्र राज्यवर्धन और हर्षवर्धन तथा एक पुत्री राज्यश्री थी। राज्यश्री का विवाह कन्नौज के मौखरी राजा अवन्तिवर्मन के पुत्र ग्रहवर्मन से हुआ था। यह विवाह ६०५ ई० में हुआ। छठी शताब्दी में आदित्य वर्धन का वंश ही सर्वोपरि था। इसी समय प्रभाकर वर्धन की मृत्यु हुई उस समय ज्येष्ठ पुत्र राज्यवर्धन हूणों से युद्ध में व्यस्त थे। पिता की मृत्यु के समाचार पाकर वे राज्यभिषेक के लिए थानेश्वर लौट रहे थे, कि मार्ग ही में उसे सूचना मिली कि मालव राजा देवगुप्त ने बंगाल के राजा शशाङ्क की सहायता से ग्रहवर्मन पर आक्रमण करके उसे मार डाला है और राज्यश्री को बन्दी कर लिया है। उन्होंने तुरन्त मालवा की ओर बाग मोड़ी और सम्मुख युद्ध में देवगुप्त को परास्त किया। इसके बाद जब वह लौट रहे थे—बंगाल के शशाङ्क से उनका सामना हो गया जो देवगुप्त की सहायता करने एक प्रबल सैन्य दल के साथ आ रहा था, इस युद्ध में राज्यवर्धन की मृत्यु हुई।

इस समय हर्ष की आयु केवल १६ वर्ष की थी, वह पिता–बहनोई और भाई की मृत्यु तथा बहिन के बन्दी होने के समाचार से एक दम विक्षिप्त हो गया। और उसने सारी पृथ्वी को जीत लेने की प्रतिज्ञा की[१]। उसने वृद्ध सेनापति को पुकार कर कहा –

"मैं आर्य के चरण रज की शपथ करके कहता हूं कि यदि थोड़े ही दिनों में इस पृथ्वी को गौड़ों से निश्शेष न कर दूं और उन सब राजाओं को जो अपने पापों से दुर्विनीत बन गए हैं; पैरों में बेड़िया पहनाकर इस धरा मण्डल को झंकृत न कर दूं तो अपने इस पातकी शरीर की घी से भभकती हुई अग्नि में पतिङ्गे के समान भस्म कर दूंगा"। यह कहकर उसने महा सन्धि विग्रहाधिकारी को आदेश दिया—

"सब राजा लोग कर देने अथवा शस्त्र ग्रहण करने के लिए दिशाओं पर टूटने अथवा चंवर पकड़ने के लिए, अपने हाथों को सुसज्जित कर लें। वे अपने सिरों अथवा अपने धनुषों को झुकावें, मेरी आज्ञा से अपने कानों को कृतार्थ करें; या अपनी प्रत्यञ्चा ठीक करें। अपने मस्तकों को मेरे चरणों की धूलि से अथवा युद्ध के शिरस्त्राण से अलंकृत करें[२]।"

उस समय भी सारा देश छोटे बड़े अनेक जनपदों में बंटा हुआ था। उसने उन सब के बीच एक ध्रुव राजनैतिक प्रभुत्व स्थापना करने का संकल्प किया, और ५०० हाथियों, २० हजार अश्वारोहियों तथा ५० हजार पादातियों की विशाल सैन्य ले विजय कूच किया और निरन्तर ६ वर्ष युद्ध करके पांच भारतों को अपनी शरण में लाने में सफल हुआ।

१—यावन्मया न सकला जिता भूमिस्तावन्मे ब्रह्मचर्यम्, (हर्ष च० २५६)।
२—हर्ष च० १९४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अजेय पुलकेशी द्वितीय—हर्ष की सामहिक विजयों का एक मात्र अपवाद दक्षिण के प्रतापी सम्राट् पुलकेशी द्वितीय था। जिसे वह पराजित न कर सका। वहां उसे परास्त होना पड़ा और पुलकेशी ने परमेश्वर की दूसरी उपाधि प्राप्त की[१]। इस प्रकार भारत का आधिपत्य उस काल में दो व्यक्तियों में बट गया। पुलकेशी द्वितीय को उसके यक्केरी शिलालेख[२] में निश्चित रूप से 'दक्षिणापथ पृथिव्याः स्वामी' कहा है। इस युद्ध के बाद उसका हस्तिबल ६० हजार और अश्वबल १,००,००० कर दिया गया था। इसी प्रबल वाहिनी के कारण बिना शस्त्र उठाए उसने ४० वर्ष शान्ति से शासन किया।

प्रभाकरवर्धन का राज्य विजय—बाण द्वारा हमें पता लगता है कि हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन ने गान्धार, सिंधु देश; हूण देश, मालव, गुजरात और लाट अपने आधीन में कर लिए थे। उसके अन्तिम दिनों में हूणों और मालवों ने सिर उठाया था। जिनपर राज्यवर्धन को अभियान करना पड़ा था।

कपिश राज्य—हर्ष के राज्य काल में गांधार कपिश के राज्य (काफिरस्तान) के आधीन हो गया था—कपिश के आधीन और भी १० पड़ौसी राज्य थे। अतः इस समय पच्छिम में कपिश हर्ष की प्रतिस्पर्धा करने वाला देश था। उत्तर में साकल का राज्य था; जिसके आधीन मुलतान एव पहाड़ी राज्य थे। परन्तु कपिश और काश्मीर के राजा बौद्ध थे। कपिश का राजा तो मोक्ष परिषदें भी करता था। उसके राज्य में १०० से अधिक बिहार थे।[3] चीनी यात्री हुआन चांग जब वापस गया तो यह राजा उसके रक्षक की भाँति कुछ दूर उसके साथ गया था।

काश्मीर राज्य—काश्मीर का राजा भी धर्मिष्ठ बौद्ध था। इस चीनी यात्री को वह भी बहुत मानता था। वह दो वर्ष काश्मीर में अध्ययन के लिए रहा, राजा ने उसे हस्तलिखित पुस्तकों को उतारने के लिए २० लेखक और सेवा के लिए पांच आदमी दिए थे। इस राजा का नाम सम्भवतः दुर्लभवर्धन था।[४] इसी से बलात् हर्ष ने बुद्ध की दन्त धातु लाकर कन्नौज में प्रतिष्ठित किया था।

अन्य राज्य—इस समय में उज्जैन, जुझौति, महेश्वरपुर में एक एक ब्राह्मण राजा का राज्य था। पार्यात्र (विराट्) में एक वैश्य राजा का, दक्षिण कौसल में

१—'समर संसक्त-सकलोत्तरापथेश्वर-श्रीहर्षवर्धनपराजयोपलब्ध-परमेश्वरापर नामधेयः। Inseription nos. 401 and 404 in Ep. Ind., VOL. V, Kielhorms. List and p. 202 and in IA, VI. 87, VIII 244 IX. 125 and XI 68.

२—Ep. Ind. V. P. 8

३—Watters, P. 123

४—राजतरंगिणी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और गुर्जर में एक एक बौद्ध राजा थे। सिन्ध में एक शूद्र बौद्ध राजा था, हरद्वार के निकट मतिपुर में एक हिन्दू शूद्र राज्य करता था; और सुवर्ण गोत्र पर स्त्रियों का प्रभुत्त्व था। पूर्वी देश हर्ष ने विजय कर लिया था।

शशांक और भास्करवर्मा--केवल गौड़ शशांक ही हर्ष और बौद्ध धर्म का शत्रु था, उड़ीसा हर्ष के साम्राज्य का प्रान्त था, और आसाम का राजा भास्करवर्मा हर्ष का मित्र था। इस प्रकार हर्ष एक तौर पर उत्तरी भारत का सार्वभौम राजा था। इसी से दक्षिण भारत के शिलालेखों में उसे 'सकल उत्तराधीश्वर' कहा है। ग्रहवर्मा के मर जाने से राजश्री के आग्रह से हर्ष ने कन्नौज राज्य को भी थानेश्वर में सँयुक्त कर लिया था! इस बड़े राजा ने जब कजुधिर (राज महल) से कान्यकुब्ज की यात्रा की थी, तब इस राजकीय यात्रा में आसाम का कुमारराज अपने सारे अनुयायियों सहित २० हजार हाथी और ३० हजार जहाज[1] लेकर हर्ष की सेवा में उपस्थित हुआ था। तथा उसकी राज सभा में पाँच भारतों के १८ राज विद्यमान रहते थे। इस यात्रा का वर्णन करते हुए लेखक लिखता है कि:—

"दूसरे दिन प्रभात में जब शिलादित्य राज और कुमारराज के सामरिक अनुयाई जहाजों पर चढ़ और ध्रुव भट्टराज के परिचारक अपने हाथियों पर सवार हुए, तो अठारह देशों के राजा भी आज्ञानुसार परिचारक वर्ग में आ मिले। सम्राट् के साथ कई सो मनुष्य सुनहरे ढोल लेकर चल रहे थे, जो उसके प्रत्येक पग के साथ डंके की चोट मारते थे। यह प्रतिष्ठा उसी के लिए सुरक्षित थी।"

हर्ष की सभाएँ--इन विजयों के पश्चात् हर्ष ने तीस बरस शांति पूर्वक राज्य किया, ये तीस बरस धर्म और संस्कृति की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व पूर्ण घटनाओं से भरे हुए हैं। जिनमें प्रधान घटना कन्नौज की धर्म सभा है, जिसमें महायान सिद्धांतों का प्रचार किया गया था। इस सभा का मुख्य नेता चीनी भिक्षु युवान-चांग है।

युवान-चाँग—जिन दिनों हर्ष अपने साम्राज्य को दृढ़ कर रहा था, उन दिनों युवान-चांग नालन्द विश्वविद्यालय में ज्ञानार्जन कर रहा था। आसाम के राजा कुमार गुप्त ने उससे ज्ञानगोष्टि करनी चाही, और नालन्द के मठाधीस शीलभद्र को एक विशेष सन्देशहर के हाथ पत्र भेजकर युवान-चाँग को बुलवा भेजा। परन्तु आचार्य ने राजा की प्रार्थना स्वीकार नहीं की। तो उसने दूसरा सन्देशहर भेजा, पर आचार्य ने तब भी नहीं सुनी। तब तीसरी बार उसने क्रोध करके शीलभद्र के लिए अपने हाथ से पत्र लिखा—कि यदि चीनी भिक्षु को नहीं भेजा जायगा; तो मैं शशाङ्क की भाँति, जिसने हाल ही में बोधि वृक्ष को जड़ से उखाड़ फैंका है; नालन्द के बिहार को मलिया मेंट करने अपने हाथियों और सेनाओं को भेजूंगा। इस धमकी

१—Life P. 172

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से डर कर आचार्य ने चीनी भिक्षु को राजा के पास रक्षकवर्ग के साथ भेज दिया। वह एक महीने वहाँ रहा और राजा को उपदेश देता रहा। इसी समय हर्ष ने इस भिक्षु की तलवी की। आसाम के राजा ने उत्तर दिया—कि महाराज मेरा सिर चाहें तो ले सकते हैं परन्तु मेरे इस पाहुने को नहीं ले सकते। हर्ष ने तुरन्त उत्तर दिया कि—"मैं सिर के लिए ही आप को कष्ट दूंगा"। इस पर कुमार ने आधीनता स्वीकार करली, और २० हजार हाथी और तीस हजार नौका लेकर वह चीनी भिक्षु को लेकर सम्राट् के शिविर में उपस्थित हुआ।

भिक्षु की शिक्षा से राजा का मन महायान धर्म की ओर फिर गया, और उस ने यह कन्नौज की सभा करने का विचार किया।

कन्नौज की धर्म सभा—हर्ष ने भिक्षु से यह भेंट बंगाल के अभियान काल में कजुधिर में की थी। उसी समय उसी स्थान से भिन्न भिन्न राज्य मे यह आज्ञा भेजी गई थीं कि भिन्न भिन्न धार्मिक सम्प्रदायो और मतों के सारे शिष्य, श्रमण, ब्राह्मण और पाँच भारतों के नास्तिक सिद्धांतवादी चीन से आए हुए धर्माचार्य की शास्त्रीय व्याख्या की परीक्षा के लिए कन्नौज में एकत्रित हों।

शिविर से कन्नौज तक की यात्रा बड़े ठाट से हुई। आसामा का राजा अपने चीनी भिक्षु के साथ गगा के उत्तरी तट से और सम्राट् ने दक्षिणी तट से प्रयाण किया। उनके पीछे किश्तियों में और हाथियों पर, तुरही, ढोल, बाँसुरी और वीणा बजाते उनका सैन्य दल कूंच कर रहा था। लाखों दर्शकों की भीड़ पीछे थी। ९० दिन यात्रा करके जब सम्राट् नियत स्थान पर पहुँचे, तो स्वागत के विए १८ राजा, ३ हजार बौद्ध भिक्षु. ३ हजार ब्राह्मण और निर्ग्रन्थ और नालन्द से आए एक हजार बौद्ध विद्वानु वहाँ एकत्रित थे। दो बड़े फूंस के मण्डप बनाए गए थे, जिनमें २००० मनुष्य बैठ सकते थे। बुद्ध की काय परिमाण वाली स्वर्ण मूर्ति के लिए एक सिंहासन वहाँ स्थापित किया गया था।

सभा भवन में जब प्रवेश किया गया,—तब एक सज्जित हाथी पर बुद्ध की प्रतिमा रक्खी गई। इन्द्र के स्थान पर सम्राट् और ब्रह्मा के स्थान पर आसाम का राजा कुमारभास्कर हाथों में छत्र चमर लिए चले। उनके पीछे एक हाथी पर रत्न और पुष्पों के सम्भार लदे हुए थे। तीसरे हाथी पर स्वयं चीनी भिक्षु युवान-चाँग और सम्राट् के आमात्य थे। उनके पीछे ३०० हाथियों पर विभिन्न देशों के राजकुमार मुख्य आमात्य और धर्माचार्य लोग थे।

जब जुलूस सभा भवन में पहुंचा तो सबसे पहिले बुद्ध प्रतिमा वेदी पर प्रतिष्ठित की गई। उसके बाद राजा और युआन चांग ने प्रवेश करके उसपर भेंट चढ़ाई, फिर पद के अनुसार १८ राजा, एक हजार प्रमुख भिक्षु और ५०० विद्वानु—ब्राह्मण नास्तिक और भिन्न भिन्न राज्यों के महामन्त्रियों में से २०० चुने हुए मन्त्रियों ने।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
शेष सदस्य सभा भवन के द्वार के बाहर ही बैठाए गए । इस के बाद राजा ने चीनी यात्री को एक मँच पर आसन ग्रहण करने, और अधिवेशन का सभापति बनने का अनुरोध किया ।

युग्रान चाँग ने महायान के सिद्धाँतों की व्याख्या के साथ सभा का कार्य प्रारंभ किया । तथा नालन्द के भिक्षु मिंगहिएन से शास्त्रार्थ का अनुरोध किया ।

सभा भवन के बाहर यह घोषणा लिखकर लगा दी गई, कि यदि कोई विद्वान् मेरे कथनोपकथन में एक भी बात सिद्धान्त, और युक्ति के विपरीत प्रमाणित करेगा या इसके तर्क को अप्रमाणित सिद्ध करेगा, तो प्रतिवादी की इच्छानुसार मैं अपना सिर अर्पण करूँगा ।

परन्तु रात होने तक किसी ने एक शब्द भी विरोध में नहीं प्रकट किया । इससे सम्राट् ने प्रसन्न होकर उस दिन की सभा स्थगित की । इस दिन के बाद पांच दिन तक सभा का कार्य चलता रहा । हीनयान के कुछ बौद्धों ने विरोध का उपक्रम किया और चीनी भिक्षु को मार डालने का षड़यन्त्र रचा । तब सम्राट ने यह घोषणा की—कि जो कोई चीनी भिक्षु को तनिक भी क्षति पहुंचाने की चेष्टा करेगा, उसका शिरच्छेद तुरन्त होगा, तथा उसके विरुद्ध जो शब्द मुंह से निकालेगा, उसकी जीभ काट ली जायगी । इसका परिणाम यह हुआ कि विरोधी लोग सभा से चले गए, और फिर सभा १८ दिन तक होती रही ।

इसमें महायान सिद्धान्तों पर बड़े बड़े विद्वानों के प्रांजुल भाषा में व्याख्यान हुए । गूढ विषयों पर शास्त्रार्थ हुए । कुछ ब्राह्मणों ने षड़यन्त्र करके सभा मण्डप में आग लगा दी, इस अपराध में ५०० ब्राह्मणों को देश निकाला दिया गया । सभा की समाप्ति पर सम्राट् ने चीनी भिक्षु को १० सहस्त्र स्वर्ण ३० सहस्त्र रजत, और एक सौ उत्तम वस्त्र दिए । तथा १८ राजाओं ने भी उसे उपहार देने चाहे, पर उस ने अस्वीकार किया । फिर उसका हाथी पर जुलूस निकाल कर यह घोषणा की गई कि उसने सत्य सिद्धांत की स्थापना कर दी है । तथा विरोधी सिद्धांतों को परास्त कर दिया है ।

मोक्ष परिषद् – हर्ष के राज्य की दूसरी महती घटना उसकी मोक्ष परिषदें थीं; जिन्हें वह प्रति पाँचवें वर्ष गंगा यमुना के संगम (प्रयाग) पर राजकीय उपहारों के वितरण के लिए किया करता था । कन्नौज की इस महती धर्म सभा की समाप्ति पर उसने अपनी छटी मोक्ष परिषद् की । इस समय चीनी भिक्षु युवान-चांग चीन लौटने की तैयारी में था, परन्तु सम्राट् ने उससे अनुवय की—कि वह इस परिषद् में अवश्य सम्मिलित हो । यात्री ने यह कह कर स्वीकृति दी—जब महाराज को दूसरों के कल्याण के लिए अपना कोष लुटाना नहीं अखरता; तो मुझे घर की यात्रा में थोड़ा विलम्ब कैसे अखर सकता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार राजा इस सम्मान्य चीनी भिक्षु एवं १८ राजाओं के साथ प्रयाग पहुँचा। जहां ५ लाखा जन प्रथम ही एकत्र होकर इस महापर्व की प्रतिष्ठा बढ़ा रहे थे।

इस अवसर पर सम्राट् केवल सेना के उपकरणों को छोड़ कर अपना सर्वस्व स्वर्ण रत्न दान कर देता था। यह दान का अखाड़ा ५ मील के घेरे में संगम के पच्छिम के उस रेतीले भाग में जहाँ अब कुम्भ लगता है, बनाया गया था। पांचों भारतों के श्रमणों, नास्तिकों, निर्ग्रन्थों, दीनों, अनाथों और विक्लांगों को दान के अखाड़े में आकर दान ग्रहण करने का निमन्त्रण दिया गया था। एक बाँस की वाड बनाई गई। जिसकी प्रत्येक भुजा नाप में १००० कदम थी, मध्य में बहुत से छप्पर के घर थे, जिनमें सोना, चाँदी, मोती आदि बहुमूल्य विधि रक्खी गईं। तथा सोने चाँदी की मुद्राएं, रेशमी और सूती वस्त्र आदि सैंकड़ों वस्तु गोदामों में भरी पड़ी थीं। बाहर भोजन करने के बड़े बड़े स्थान बनाए गए थे। एक हजार मनुष्यों के विश्राम योग्य बड़े बड़े घर भी बनाए गए थे।

गंगा के उत्तरी तट पर सम्राट् का, संगम के पच्छिम में बल्लभी राज का, और यमुना के दक्षिणी तट पर आसाम के राजा का तम्बू था। बल्लभी शिविर के पच्छिम भाग में सब दान लेने वाले एकत्र थे।

परिषद की कार्यवाही सम्राट् के अनुयायी वर्ग के, कुमार राज के जहाजों में बैठे कर्मचारियों के, ध्रुव भट्ट के हाथियों पर आरूढ़ परिचारकों के तथा १८ राजाओं के सम्मिलित सैनिक जुलूस से आरम्भ हुई।

पहिले दिन सभा भूमि में छप्परदार भवन के बीच बुद्ध प्रतिमा की प्रतिष्ठा-पूजन हुआ। फिर अधिक बहुमूल्य वस्त्रों और पदार्थों का वितरण प्रारम्भ हुआ। दूसरे और तीसरे दिन सूर्य और शिव की मूर्तियों की स्थापना हुई, इसके बाद बुद्ध के सम्मान में दी गई आधी वस्तुओं के मूल्य का केवल आधा दान दिया गया। चौथे दिन १० हजार चुने हुए भिक्षुओं को दान वितरण हुआ। प्रत्येक को भांति भांति के पेयखाद्य पदार्थों के अतिरिक्त फूल सुगन्धि, १०० स्वर्ण मुद्रा एक मोती और एक सूती पोशाक दी गई। इसके बाद बीस दिन ब्राह्मणों को और १० दिन नस्तिकों को विविध धन पदार्थ दान दिए गए। पीछे १० दिन दूर दूर के भिखारियों को दान दिया गया। फिर आठवां वितरण गरीबों, दीनों, अनाथों के लिए था। जिसमें पूरा एक महीना लगा। अब तक ५ वर्ष का संचय समाप्त हो गया। हाथी घोड़े और सेना को छोड़कर जिनकी राजपद की व्यवस्था एवं रक्षा के लिए आवश्यकता थी कुछ शेष न रहा। अब राजा ने अपने शरीर के वस्त्र, रत्न, हार, कुण्डल, कंगन माल्य, मण्ठ मणि, और दैवी कमान शिरोमणि भी सुयोग्य याचकों को दे दी। और अपनी बहिन राज्य श्री से एक वरती हुई पोशाक माँग कर पहन दश दिशाओं के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बुद्धों की आराधना की। इस प्रकार इन पंचवर्षीय मोक्षपरिषदों में हर्ष ने वैयक्तिक दान की पराकाष्ठा कर दी।

परिषद की समाप्ति कर चीनी यात्री और दस दिन रोका गया। इस समय भी सम्राट् और कुमार राज ने उसे स्वर्ण रत्न भेंट करने चाहे, पर उसने केवल राह की सर्दी से बचने के लिए कुमार राज का एक पश्मीने का कोट ही स्वीकार किया, शेष वस्तुओं को अस्वीकार कर दिया।

चीनी यात्री की विदा—जब चीनी भिक्षु विदा होने लगा तब आसाम के कुमारराज ने उससे कहा—"यदि आचार्य पाद मेरे राज्य में रहकर मेरी धार्मिक पूजा को ग्रहण करें, तो मैं आचार्य पाद की ओर से १०० बिहारों की स्थापना करने को तैयार हूं।"

परन्तु इस चीनी भिक्षु को चीन में धर्म प्रचार करना था। उसने आशीर्वाद देकर विदा मांगी। उसे उत्तर भारत के उधित नाम के राजा की रक्षा में विदा किया गया, जिसके साथ एक बड़ा हाथी सम्राट् ने भेजा था। फिर वह कई सौ फुर्तीले घुड़ सवार और कुमार राज तथा ध्रुव भट्ट को ले यात्री से पुनः जा मिला, और तब अन्तिम बिदाई ली।

हर्ष का शासन—हर्ष ने अपनी कच्ची अवस्था में जब राज्य की बागडोर अपने हाथ में ली, तब वह कठिनाइयों और विपत्तियों से घिरा हुआ था। परन्तु अपने अदम्य साहस और योग्यता से उसने परिस्थिति पर विजय प्राप्त कर ली; और विजयी होने के बाद अपनी रण यात्राओं के समाप्त होते ही उसने धर्म और शासन सम्बन्धी यात्राओं का तांता बाँध दिया। सच पूछा जाय तो वह इस कार्य में अशोक से भी आगे निकल गया।

दौरे के समय वह जंगम प्रासादों (सफरी महलों) में ठहरता था।[1] ये महल घास के कलापूर्ण रीति से बनाए जाते थे' जो सम्राट् के जाने पर जला दिए जाते थे। उसकी यात्रा कैसी ठाठ की होती थी, इसका वर्णन हम पीछे कर चुके हैं। सम्राट् का शिविर-प्रसिद्ध मातहत राजाओं के शिविरों से परिवेष्ठित रहता था। उसमें चार प्रांगण होते थे। चौथे प्राँगण में सम्राट् एक मण्डप के नीचे मुक्तामय शिला-पट्ट पर नीलम और लाल के पीढ़े पर पैर रखकर बैठता था। वहीं आगन्तुक उसका दर्शन करते थे। प्रवेश द्वार पर हाथियों के यूथ और सजे हुए घोड़े खड़े रहते थे। एक भाग में ऊंटों की सेना भी रहती थी। हजारों सफेद झूलते हुए चंवरों की सम्राट् के ऊपर छत्र सी बन जाती थी। शिविर के भीतर जाने की व्यवस्था महाप्रतीहारों के के हाथ में थी।[2] राजा भोजन के बाद आगन्तुकों को दर्शन देता था। बड़े बड़े

१—Life, P. 177

२—बाण हर्ष चरित ६२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजा दूर देश से आकर सम्राट् के दर्शनों की आशा में दिन बिताते थे। और उस समय की बाट जोहते थे जब राजाधिराज उनके दृष्टि गोचर हों। समय समय पर बाहर निकलते और भीतर जाते हुए अन्त: पुरीय प्रतिहारों के सेवकों के पीछे भाँति भांति के सहस्त्रों प्रार्थी उत्कण्ठा से यह पूछते चले जाते थे कि हमें राज दर्शन का मिलना कब सम्भव हो सकता है ?

वाण कहता है कि वह—दौवारिक पारियान से बताए हुए मार्ग का अनुसरण करता हुआ आधीन राजाओं से भरे प्राङ्गणों को पार कर चौथे प्रांगण में पहुँचा, जहां उसने एक मण्डप के सामने खुले स्थान पर, दूर एक पंक्ति में स्थित शस्त्रधारी परिचारकों से परिकृत सम्राट् हर्ष को देखा, उसके समीप ही उसके विशेष प्रीतिभाजन बैठे हुए थे। उनमें मालवा का एक राजकुमार उसके निकट बैठा हुआ था, और वह स्वयं एक मोती जैसे विमल पत्थर के सिंहासन पर आसीन अपने शरीर भार को अपनी भुजा पर डाले हुए, जो आसन के पर्यन्त भाग पर टिकी हुई थी। आधीन राजाओं के साथ क्रीड़ामग्न था, उसका बांया पैर नीलमों के बने और पद्मरागों की मेखला से परिवद्ध एक महार्घ विशाल पाद पीठ पर लीला पूर्वक विन्यस्त था।[1]

स्थाण्वीश्वर की राजधानी विजयध्वनि, तूर्य नाद, चारणों और भाटों के गीतों और काम काज की कलकल से झंकृत रहती थी। ... . महल के चार प्रांगण थे। उसमें मकर मुखी प्रणालियों से सुगन्धित जल को बहाने वाली विविध क्रीड़ा-वापियां भरी थी महल के आंगन में सिंह अपने पिंजरों में देखे जाते थे। विविध वन मानुष वानर दुर्लभ पक्षी, जल मानुष दम्पति, जिनके गले कनक शृंखलाओं से बन्धे थे। कस्तूरी हिरन–जो अपने परिमल से दिशाओं को सुरभित करते थे। चमरी गायें घूमती हुई शुक्र सारिकाऐं आदि सोने के मुलम्मे लगे बाँस के पींजरों में बन्द थे, जो अनेक सुभाषिक कहने में प्रवीण थे। प्रवाल के पींजरों में रक्खे चकोर, जिन्हें आसाम के राजा ने उपहार में दिया था—शोभा बढ़ाते थे। देहरी पर अनेकों वेषधारियों की भीड़ लगी रहती थी।[2]

वह सोने चांदी के कलसों से स्नान करता था, और सहस्त्रों गाय–रत्न स्पर्धा ब्राह्मणों को दान देता था। यात्रा में उसके भृतक भारिक (कुली) उसके सुवर्ण पाद पीठों, कलशों, प्यालों, पीकदानों, स्नान की द्रोणियों को लेकर इठलाते हुए चलते थे। रसोई के उपकरणों को ढोने वालों के पास शूकर चर्म से बनी रस्सियों से बंधे बकरे थे, लटकती गौरैयों और हरिणों के लम्बायमान अग्रभागों के समूह होते थे। शश-शावक, सागवात और बांस के कोपलों का संग्रह था। शुक्ल वस्त्रों से ढके गोरस भाण्ड थे। अग्नि कुण्डों, चूल्हों, तापिकाओं, शूलों ताम्र के कड़ाहों;

१—हर्ष ७२
२—हर्ष १५५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भर्जन पात्रों की रेल पेल से भरे कण्डील थे । मार्गस्थ ग्रामीण जन टोकरियों में दही, गुड़, खांड और फूलों के उपहार लिए पर्यटनशील सम्राट् की राह जोहते थे । अन्तर्निविष्ट रेशमी तागों से दैदीप्यमान एक तुषार धवल अधोवस्त्र; एक मणिमय मेखला, और झिलमिलाते हुए खचित सितारों से अलंकृत एक झीना ऊर्ध्ववस्त्र उस की पोशाक थी । वह मोतियों की माला और अन्य आभरण पहनता था, जिनसे वह दोनों ओर फैले हुए मणिमय पक्षों से युक्त माणिक्य महीधर सा दीख पड़ता था । उसके पास अनेक स्त्री परिचारिकाएँ थीं । वो चंवर वाहिनी, चरण ग्राहिणी आदि थी ।

राज काज निष्पन्न करने को दीर्घाङ्गिक (हरकारे) और सर्वगत (जासूस) थे । मन्त्रि परिषद् राज्य काज चलाती थी ।[1] उसी का राजनैतिक प्रभुत्त्व थी । महासामन्तों, महाराजाओं, दौः साधनिकों; प्रमाताराओं, राजस्थानियों; कुमारामात्यों, उपरिकों, विषय पतियों, व्यवस्थित और अल्पवस्थित सैनिकों, आदि के साहचर्य से राज्य शासन चलता था । मन्त्री और राज कर्मचारियों को वेतन नकद नहीं, जागीरों के रूप में मिलता था । सेना विभाग को नकद वेतन मिलता था । सेना चतुरंगिणी थी । सैनिकों के पास भाले, ढाल धनुष; वाण; तलवार, चन्द्रहास, कुठार, तोमर, प्रास, लम्बीवर्छी और भांति भांति के गोफन (भिन्दिपाल) होते थे ।[2]

यद्यपि सब राजकाज नेकी के साथ होते थे और अपराधों की संख्या कम थी, फिर भी डाकू और चोरों का भय था । दण्ड की व्यवस्था सन्तोष जनक थी । राज की नीति उदार थी । कर हल्के थे तथा सरकारी आवश्यकताएँ कम थीं । लोग शांत और कानून पर चलने वाले थे—तथा पैत्रिक पेशे और जायदाद की रक्षा करते थे । ग्राम्य शासन था । सम्राट् सामन्त राजाओं के मण्डल का केन्द्र था । ये सामन्त और प्रत्यन्त नरपति सम्राट् की टहल वरदारी करते तथा उसके लिए युद्ध करते थे ।[3] सम्राट् अपने साम्राज्य में सर्व श्रेष्ठ पर्यटक और परिश्रम शील कर्मचारी था । उसकी विरुद महानृप, परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, सम्राट् एकाधिराज, परमदैवत और चक्रवर्ती था । राज कर्मचारियों के नाम निम्न प्रकार थे :—

उपरिक–महाराज	(सूबेदार गवर्नर)
गोप्ता	गवर्नर
भोगिय	जागीरदार
भोगपति	राज प्रतिनिधि
राजस्थानीय, राष्ट्रिय, राष्ट्रपति	वाइसराय

१—हर्ष० ।
२—Beal, i 83. Watters i 171.
३—युवानचांग विवरण । ताम्रलेख ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राजामात्य, कुमारामात्य	गवर्नर के कौन्सिलर
महत्तर	गाँव का मुखिया
शौल्किक	चुँगी का अफसर
अग्रहारिक	देवोत्तर सम्पति के देख भाल करने वाले।
धुपाधिकरण	भूमि-कर उगाहने वाला अफसर
तलवाटक	पटवारी
पुस्तपाल	दफ्तर का अधिपति
महासर्वदण्डनायक आदि	चीफ जस्टिस

राज्य की आय के स्रोत ये थे :—

उद्रङ्ग	भूमिकर
उपरिकर	लगान
वात	खनिज
भूत	बकाया
धान्य	उपज का भाग
हिरण्य	सोना
आदेय	भेंट—नज़राने
विष्टिक	बेगार हर्जाने
दशापराध	जुर्माने

पुलिस को चाट कहते थे। सोने चाँदी और तांबे के सिक्के चलते थे।

धर्म और विद्या—इस काल में आध्यात्म ज्ञान पर सारे ऐशिया में भारतवर्ष का एकान्तिक अधिकार था। चीन से भारत की यात्रा में प्रकृति और मनुष्यों की भीतियों और बाधाओं का भय भी युआन-चांग और उससे पूर्ववर्ती चीनी विद्वानों को भारतीय ज्ञान के प्राप्त करने की अभिलाषा को न रोक सका। कनिष्क के समय से बंगाल के धर्मपाल के समय तक; प्रायः दश शताब्दियों की अवधि में, उत्सुक चीनी विद्यार्थियों का सतत प्रवाह भारतवर्ष और उसके विश्वविद्यालयों की ओर यहां के विद्यानिधि आचार्यों के चरणों में बैठकर ज्ञान पिपासा तृप्त करने बराबर आता रहा। भारतवर्ष के साथ चीन के इस सांस्कृति सम्पर्क का इतिहास तीन अति प्रसिद्ध ज्ञानी प्रतिनिधियों (फाहियान, युवान चांग और इत्सिग) की कृतियों में सन्निविष्ट है। इन चीनी मनीषियों की भारत यात्रा यहां के ज्ञान के समक्ष एक श्रद्धाञ्जलि है। यह वह ज्ञान था। जिसकी ज्योति भारत की भौगोलिक सीमाओं को पार करके अनेक देशों तक फैल गया था। उत्तर की पर्वत श्रृंखला और दक्षिण की सागर भेद

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मेखला से अतीत इन देशों के समुच्चय को हम उस समय का वह वृहत्तर भारत कह सकते हैं, जिसमें ज्ञान धर्म कृत एक्य था।

यद्यपि हर्ष महायान सम्प्रदाय से प्रभावित था परन्तु गुप्त सम्राटों में जो ब्राह्मण धर्म और संस्कृति का पुनरुत्थान किया था, और हिन्दु धर्म को जो गति दी थी, उसके कारण वह सबसे प्रबल था। उन दिनों भारत विदेशों में ब्राह्मणों का देश (ब्रह्मावर्त) के नाम से विख्यात था[1]। सम्मानित लोग संस्कृत बोलते थे। अनेक तापस सम्प्रदाय जिनके वंश और पन्थ प्रथक २ थे, ब्राह्मण धर्म द्वारा एकीभूत थे। इन तापसों में वीतराग अर्हत, मास्करी, श्वेतपटभिक्षु, भागवत, वर्णी, केशलुञ्चक; कापिल, जैन, लोकायतिक, काणाद, औपनिषद, नैयायिक, धातुवादी, धर्म शास्त्री, पाञ्चरात्रिक शैव, कर्यटी, काष्ठमुनि, दग्धमुण्ड, पाण्डुशी, पिण्डपाती, कापालिक और तांत्रिक चुदिङ्क आदि थे।

यद्यपि इनमें पाखण्डी बहुत थे पर चीनी यात्री कहता है कि इनमें ऐसे मनुष्य भी हैं, जो ज्ञान में पारंगत करे, सूक्ष्मतत्त्व के प्रेमी तथा एकान्त सन्तुष्ट हैं। तथा संयम से जीवन निर्वाह करते हैं। इनमें ऐसे भी हैं जिन्होंने सम्पात्ति—गृह सुख साभाजिक जीवन के आमोद प्रमोद यहाँ तक कि यशोलिप्सा को भी ज्ञान की साधना में बाधक होने के कारण ठुकरा दिया है, और अकिञ्चन बनकर रहते हैं[2]।

हर्ष के काल में यद्यपि बौद्ध धर्म पतनोन्मुखी था, परन्तु हीनयान और महायान के १८ सम्प्रदाय उन दिनों प्रचलित थे। इनमें जोरदार वाद विवाद होते थे। इनमें से कुछ ने अपने साहित्य और विहार की रचना की थी। युआन चाङ्ग ने इन सम्प्रदायों के ५ हजार विहार देखे थे, जो विद्यापीठ का काम देते थे, और जहां बौद्धभिक्षु रहते थे। जिन की संख्या २ लाख से भी अधिक थी। इनके सिवा और भी बौद्ध तथा बौद्धेत्तर लाखों भिक्षु एवं साधु थे[3]।

काश्मीर बौद्ध धर्म का महान् केन्द्र था, जहां के राजा ने इस चीनी यात्री की सुश्रुषा के लिए भच'एंग और उसके शिष्यों को नियुक्त किया था, जालन्धर के नगर धर विहार में उसने ४ मास रहकर चन्द्रवमा नामी विद्वान् से अध्ययन किया था। श्रुघ्नन के विहार में जयगुप्त नामक विद्वान से जाड़े भर और चैत्र मास के अन्त तक विद्याध्ययन करता रहा था। मतिपुर के एक विहार में उसने ९० वर्ष के एक वृद्ध पण्डित से जो गुणप्रभ का, शिष्य था गुणप्रभ के एक ग्रन्थ को कई महीने तक पढ़ा था। कान्य कुब्ज के भद्र विहार में युवान चाङ्ग

१—युवान–चांग।
२—युवान चांङ्ग।
३—राइस डेविड 'A RS1891. PP. 418·20

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तीन महीने आचार्य वीर्यसेन के पास रहा था। वैशाली के श्वेतपुर विहार में उसने एक ग्रन्थ प्राप्त किया, और नालन्द के निकट तिलोशिक विहार में, जो चोटी के विद्वानों का केन्द्र था वह रहा था। गया का महाबोधि विहार अपने एक सहस्त्र उपासकों के उत्तम विनय सम्बन्धी सदाचार के लिए प्रसिद्ध था। पुण्यवर्धन का एक विहार इतना प्रसिद्ध था कि वहाँ बृहत्तर भारत के अनेक विद्वान छात्र आते थे। मुंगेर में आचार्य तथा गतगुप्त और क्षान्तिसिंह से शिक्षा ग्रहण करता हुआ वह एक वर्ष ठहरा था। कर्ण सुषण के रक्तामृत विहार में भी उसने अध्ययन किया था। ये सब विहार उन दिनों बौद्ध ज्ञान और संस्कृति के विद्या पीठों के रूप में देश भर में प्रसिद्ध थे।

२--विश्व विद्यालय

बौद्ध युग में भारत का प्रधान शिला केन्द्र तक्षशिला था। जब मगध राज्य का उदय हुआ, तो शिला केन्द्र काशी—वाराणसी बन गया। जब राजाश्रय प्राप्त होने पर बौद्ध विहारों और मठों की स्थापना हुई, तो बौद्ध भिक्षुओं के अध्ययन केन्द्र भी स्थापित हुए। इस काल में नालन्द; विक्रमशिला और उदयन्तपुरी के महाविहार महाविद्यालय का रूप धारण कर गए थे। इनमें बौद्ध दर्शन और धर्म ग्रन्थों के साथ चिकित्सा ज्योतिष—गणित और आर्य वैदिक धर्म का भी पठन पाठन होता था। उस समय के हिन्दु राजाओं ने ही इन विहारों को आश्रय दिया था, अतः यहाँ हिन्दु धर्म और दर्शन की भी शिक्षा का प्रबन्ध था। यह बौद्ध और हिन्दु धर्म भी सहिष्णुता का प्रतीक था। इन विद्या केन्द्रों की ख्याति और प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई थी, और तिब्बत-चीन-वर्मा, लंका आदि से छात्र वहां विद्याध्ययन के लिए आते थे।

नालन्द—नालन्द महाविहार इन शिक्षाकेन्द्रों में सर्वोपरि था। इसकी स्थापना गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त ने ई० स० ४२० के लगभग की थी। कुमारगुप्त से प्रथम भी नालन्द विद्या केन्द्र था। कुमारगुप्त ने उसे महाविद्यालय का रूप दिया। यहाँ बड़ी-बड़ी इमारतें बनवाईं और अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के खर्चे के लिए बड़ी-बड़ी जायदादें लगा दीं। धीरे-धीरे उसकी ख्याति बढ़ चली और देश विदेश के विद्यार्थी वहाँ आने लगे। ह्वेनसांग और इत्सिंग ने नालन्द का विवरण लिखा है। ह्वेनसांग नालन्द में दस वर्ष रहा था। उसने वहाँ बौद्ध दर्शनों की शिक्षा पाई। अध्यापक भी रहा और यहीं उसने अपने देश ले जाने के लिए पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ तैयार कीं। वहाँ के आचार्यों की ख्याति देश-देशान्तरों में उनके योग्य शिष्यों ने फैला दी थी। वास्तव में ये अनेक विद्याओं के पण्डित होते थे और उनका दिगन्त आदर होता था। ह्वेनसांग और इत्सिंग के अतिरिक्त यहाँ जो विदेशी छात्र आए, उनमें चीनीश्रमण हिएनचिन तीन साल वहां रहा, इसका भारतीय नाम प्रकाशमणि था। कोरिया का भिक्षु आर्यवर्मन बहुत दिन नालन्द में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहा, वहीं उसकी मृत्यु भी हुई। चेहंग भी एक चीनी छात्र था, जो सातवीं शताब्दी में आया और आठ वर्ष वहाँ रहा।

प्रवेशिका-परीक्षा और शिक्षा-पद्धति—नालन्द की शिक्षा प्रणाली कितनी उच्च कोटि की थी, इसका कुछ अनुमान हम ह्वेनसांग के दिए हुए द्वार-पंडित के उल्लेख से कर सकते हैं। विद्यालय के चारों ओर मध्य भारत के किसी राजा की जो सम्भवतः "हर्ष ही थे" बनवाई हुई, एक ऊंची प्राचीर थी। उसमें केवल एक ही द्वार था। उस द्वार पर एक प्रकांड विद्वान द्वार-पण्डित रहता था। वह उन नए विद्यार्थियों की परीक्षा लेता था, जो विद्यालय में दाखिल होने के लिए सुदूरवर्ती देशों से आते थे। यही उन लोगों की प्रवेशिका परीक्षा थी। जो द्वार-पण्डित के प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर न दे सकते थे, उन्हें निराश होकर लौट जाना पड़ता था। इस परीक्षा में सफल होने के लिए प्राचीन और नवीन ग्रन्थों का अध्ययन करना आवश्यक था। नवागत विद्यार्थियों को कठिन शास्त्रार्थ द्वारा अपनी योग्यता सिद्ध करनी पड़ती थी। यह परीक्षा इतनी कठिन थी कि दस में ७ या ८ प्रवेशार्थी असफल होकर लौट जाते थे। विक्रमशिला में भी यही प्रणाली थी। वहां छः द्वार थे। सब पर एक-एक द्वार पण्डित थे। जो दो–तीन विद्यार्थी सफल होते थे, उनका भी सारा अभिमान विद्यालय के भीतर जाने पर चूर हो जाता था। द्वार परीक्षा की इतनी कठिनता होते हुए भी ह्वेनसांग के समय में विद्यार्थियों की संख्या दस हजार थी। वहां के अध्यापक लब्धप्रतिष्ठ बौद्ध भिक्षु थे। शिक्षा पद्धति प्राचीन गुरुकुलों के ढङ्ग की थी। छात्र बड़े गुरु भक्त थे। बौद्ध धर्म ग्रन्थों के अतिरिक्त यहां वेद, हेतु विद्या, शब्द विद्या, तन्त्र सांख्य, तथा अन्य विविध विषय भी पढ़ाए जाते थे। ह्वेनसांग के समय में, एक सहस्र ऐसे विद्वान थे, जो दस विषयों में निपुण थे। पाँच सौ ऐसे थे, जो ३० विषयों में पण्डित थे। और दस ऐसे थे, जो ५० विषयों के पारंगत थे। तत्कालीन, कुलपति, प्रधानाचार्य, शीलभद्र तो सभी विषयों के पारदर्शी थे। ह्वेनसांग ने यहां आकर इन्हीं का शिष्यत्व ग्रहण किया था। पुनः इत्सिङ्ग के विवरण से पता चलता है कि यहां शिक्षा के दो विभाग थे, प्राथमिक और उच्च। प्राथमिक शिक्षा में सबसे पहले व्याकरण पढ़ना पड़ता था। उसके बाद क्रम से हेतुविद्या, अभिधर्मकोष और जातक को पढ़ना पड़ता था। इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा समाप्त कर लेने पर विद्यार्थी उच्च शिक्षा ग्रहण करने के योग्य होते थे। तब उन्हें विद्वान अध्यापकों के साथ संभाव्य प्रश्नों पर शास्त्रार्थ करके ज्ञानार्जन करना पड़ता था। इस तरह जब उनकी शिक्षा समाप्त हो जाती थी, तब वे राजसभा में जाते थे; वहां अपनी विद्वत्ता का परिचय देकर किसी राजकीय पद पर नियुक्त होते या भूमि आदि का दान पाते थे।

प्रखर प्रतिभा वाले विद्वानों का नाम प्रमुख एवं उच्च द्वारों पर अधिकतर दिया जाता था। परन्तु जिन लोगों की प्रवृत्ति अधिक विद्याप्रदि करने की होती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी—वे और कोई काम न करके अपने अध्ययन का क्रम बनाए रखते थे। उन्हें वेदों और शास्त्रों का भी अध्ययन करना पड़ता था। परस्पर वार्तालाप में गुरुओं से शिष्यों को निरन्तर अमूल्य उपदेश मिला करते थे। ह्वेनसांग ने लिखा है कि सारा दिन ज्ञान-चर्चा और वाद-विवाद में तथा गूढ़ प्रश्नों के समाधान में बीतता था।

नियमानुशासन—विद्यालय का नियमानुशासन भी प्रशंसनीय था। सब लोगों को संघ के उन सभी नियमों का पालन करना पड़ता था, जिन्हें स्वयं भगवान् बुद्ध ने स्थिर किया था। भेद भाव न था। राजा हो या रङ्क, छोटा हो या बड़ा, बूढ़ा हो या जवान—सब पर नियम समान भाव से लागू थे। जो लोग जितने अधिक समय के शिष्य होते थे, उनका पद उतना ही उच्च गिना जाता था, अर्थात् विद्या के अनुसार उनका पद होता था।

संघ के सभी निवासियों को सब काम ठीक समय पर करना पड़ता था। पूजा-पाठ-भोजन, शयन सबके लिए समय नियत था। समय ज्ञान के लिए जल घड़ी का प्रबन्ध था। उसी के अनुसार सूचना देने के लिए घन्टा बजाया जाता था। घन्टा बजाने के लिए लड़के और 'कर्मदान" (विशेष कर्मचारी) नियुक्त थे। इत्सिङ्ग ने जल घड़ी और घण्टे का बड़ा रोचक वर्णन किया है। यदि कोई अनियत समय पर कोई काम करते पाया जाता तो नियमानुसार दण्ड का भागी होता था। ह्वेनसाँग लिखता है। "इस संघाराम के नियम जैसे कठोर हैं वैसे ही भिक्षु भी उनका पालन करने में तत्पर हैं, और सम्पूर्ण भारतवर्ष भक्ति के साथ इन लोगों का अनुसरण करता है। छात्रवास की कोठरियों में उनके सोने के लिए जो पत्थर के मन्च बने हुए हैं, वे इस ढंग के हैं कि—उन पर शायद ही कोई सुख की नींद सो सके। निश्चय ही वे जान बूझकर ऐसे बनाए गए थे। संघाराम की एक-एक कोठरी में एक-एक विद्यार्थी के रहने का प्रबन्ध था। उसी में उनकी चीजें रखने तथा सोने की भी व्यवस्था थी। विद्यालय में ऐसे सौ मन्च बने हुए थे, जिन पर गुरु बैठकर शिष्यों को शिक्षा देते थे। वाद-विवाद के लिये बड़े-बड़े कमरे बने हुए थे, जिनमें दो हजार भिक्षु एक साथ बैठ सकते थे। ज्योतिर्विद्या की पढ़ाई के लिये ऊंचे-ऊंचे मान मन्दिर बने हुए थे।

विद्यालय के आय-व्यय आदि का प्रबन्ध—इस शिक्षा केन्द्र में विशुद्ध निःशुल्क शिक्षार्थी अध्ययन कर सकते थे। बिना किसी तरह के खर्चे के ही उनकी आवश्यकताएँ पूरी हो जाती थीं। ह्वेनसांग ने लिखा है कि देश के तत्कालीन राजा ने एक सौ गांवों का कर विद्यालय के लिये अलग कर दिया था। यह राजा सम्भवतः "हर्ष" ही होगा। हर्ष के सम्बन्ध में ह्वेनसांग ने लिखा है—"जब हर्ष ने संघाराम में बुद्ध प्रतिमा बनवाने का निश्चय किया, तब उन्होंने कहा, मैं अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिये प्रतिदिन संघ के चालीस भिक्षुओं को भोजन कराऊंगा। इसके अतिरिक्त उक्त गांवों के २०० गृहस्थ भी कई सौ मन चावल और कई सौ मन दूध तथा मक्खन प्रति दिन दान करते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्यालय की ओर से विद्यार्थियों के लिए अन्न वस्त्र, शय्या और औषधि का समुचित प्रबन्ध था। ह्वेनसांग जब तक नालन्दा में रहा तब तक उसे प्रतिदिन १२० नीबू, २० सुपारी, आधी छटांक कपूर और लगभग ३।। सेर महाशालि चावल मिलता रहा। इसके अतिरिक्त उसे प्रति मास लगभग ३४ सेर तेल; यथेष्ट मक्खन और अन्य आवश्यक वस्तुऐं भी मिलती थीं। इत्सिङ्ग के समय में विद्यालय के अधिकार में २०० गांव आ चुके थे। ये गांव राजाओं की कई पीढ़ियों के दान के फल थे। आगे चलकर पालवंशी राजाओं के समय में भी इस तरह की सहायता और दान की प्रणाली जारी रही। श्री हीरानन शास्त्री को नालन्दा में श्री देवपाल देव का एक ताम्रपत्र मिला था। उसमें देवपाल द्वारा महाविहार के संचालन के लिए और चतुर्दिक से आए हुए भिक्षुकों के सेवा-सत्कार तथा धर्म ग्रन्थों के लिखने के लिए "राजगृह" और गया जिले के ५ गांवों के दान का उल्लेख है। इसी प्रकार अन्त तक एक के बाद दूसरे राजा से सहायता मिलती गई। इसीलिए यहाँ के विद्यार्थी जीवन की आवश्यकताओं की चिन्ता से मुक्त होकर, निःशुल्क शिक्षा पाते हुए निरन्तर ज्ञानार्जन में दत्तचित्त रहते थे।

पुस्तकालय—विद्यालय में एक बहुत विशाल पुस्तकालय भी था। इसके लिए यहां धम्मं गज नामक स्थान में तीन भव्य भवन बने हुए थे—रत्नसागर, रत्नदधि, रत्नरंजक। इनमें रत्नदधि नौ खण्ड का था। इन खण्डों में असंख्य पुस्तकें सजी रहती थीं। पुस्तकालय में बौद्ध धर्म ग्रन्थों की प्रतिलिपि तैयार करने के लिए अनेक भिक्षु नियुक्त थे। दूर-दूर देशों के विद्वान भी यहाँ आकर यहां के ग्रन्थों की प्रतिलिपि ले जाया करते थे। ह्वेनसांग यहाँ दो वर्ष रह कर ६५७ ग्रन्थों की प्रतिलिपि तैयार करके अपने साथ ले गया था। इत्सिङ्ग भी अपने साथ कोई चार सौ पुस्तकों की प्रतिलिपि ले गया था। नालन्द के हस्तलिपिकार अपनी तैयार की हुई हस्तलिपि में अपने नाम के साथ-साथ तत्कालीन राजा के राज्यकाल का भी उल्लेख कर देते थे। यही कारण है कि नालन्द की जो हस्तलिखित पुस्तकें आज कल यत्र तत्र मिल जाती हैं, उनके समय का बोध सुगमता से हो जाता है। ऐसे मिल जाने वाले ग्रन्थों में कितने ही पाल-कालीन हैं। इससे मालूम होता है कि उस समय बहुत से ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ तैयार की गई थीं। नालन्द के कई हस्तलिखित ग्रन्थ आज केम्बिज और लन्दन के पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं।

महाविद्यालय के कुछ प्रसिद्ध विद्वान—नालन्दा-महाविहार में विद्या के सभी साधन विद्यमान थे। इसीलिए यहाँ से एक से एक दिग्गज विद्वान निकलते थे, जो केवल स्वदेश में ही नहीं सुदूर विदेशों में भी जाकर ज्ञान का प्रचार करते थे। ह्वनसांग ने कुछ उद्भट पण्डितों का नामोल्लेख किया है। लिखा है कि प्रत्येक विद्वान ने कोई दस-दस पुस्तकें और टीकाएँ बनाई थीं, जो चारों ओर देश में प्रचलित हुईं और अब तक प्रसिद्ध हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपनी विद्वत्ता से ज्ञानहीन संसारी मनुष्यों को प्रबुद्ध करने वाले धर्मपाल और चन्द्रपाल अपने श्रेष्ठ उपदेश की धारा दूर तक प्रवाहित करने वाले गुणमति और स्थिरमति, सुस्पष्ट युक्तियों वाले प्रभामित्र, विशुद्ध वाग्मी जिनमित्र, आदर्श चरित्रवान और बुद्धिमान ज्ञानचन्द्र, शीघ्रबुद्ध तथा शीलभद्र—महाविहार के शिक्षकों में प्रमुख थे। इनमें जिनमित्र "मूलसर्वास्तिवाद-निकाय" के प्रणेता थे। ह्वेनसांग के समय में शीलभद्र ही विद्यालय के प्रधानाचार्य थे। वे बंगाल के एक राजकुमार थे। पर संसार से विरक्त हो धर्म और विद्यानी उपासना में लग गए थे। सभी सूत्रों और शास्त्रों पर उनका अबाध अधिकार था। ह्वेनसांग इन्हीं का शिष्य रहा। इत्सिंग ने उनके अतिरिक्त नागार्जुन देव, अश्वघोष, वसुबन्धु, दिङ्नाग, कमलशील. रत्नसिंह प्रभृति अन्य कई विद्वानों का उल्लेख किया है। नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में नालन्द के विद्वान 'शान्तिरक्षित" भोटदेश (तिब्बत) के राजा द्वारा निमन्त्रित होकर वहाँ गए थे। उन्हीं के द्वारा वहाँ के आधुनिक "लामा" धर्म स्थापित हुआ। उन्हें वहाँ "आचार्य बोधिसत्व" की उपाधि मिली थी। उनके बाद नालन्द से "कमलशील" निमन्त्रित होकर वहां गए और अभिधर्म शाखा के अध्यक्ष बनाए गए। वीरदेव को देवपाल ने नालन्द का प्रधानाचार्य बनाया था। जयपाल के समय में नालन्द महाविहार के प्रधानाचार्य "दीपंकर श्री ज्ञान" थे, जिन्हें भोट के राजा की प्रार्थना के अनुसार वहां जाना पड़ा था।

धार्मिक आदर्श और महाविहार के विशिष्ट मन्दिर आवास भवन आदि नलन्दा-महाविहार का धार्मिक आदर्श बौद्ध धर्म का महायान सम्प्रदाय था। यहां सर्वास्तिवाद की प्रधानता थी। ह्वेनसांग के समय में यह विद्यालय तांत्रिक मत का केन्द्र हो रहा था। नालन्द-महाविहार की यह विशेषता थी कि यद्यपि वह सर्वतोभावेन बौद्ध विद्यालय था, तथापि साम्प्रदायिक असहिष्णुता वहां न थी। वहां बौद्ध मूर्तियों के साथ शिव-पार्वती आदि हिन्दू देव-देवियों की मूर्तियाँ भी थीं। अध्यापकों और छात्रों के रहने के लिए वहां एक से एक विस्तृत, विशाल और दर्शनीय भवन बने हुए थे। यहां का एक विहार कोई दो सौ फीट ऊंचा था। बालादित्य राजा का बनवाया हुआ एक विहार दो-तीन सौ फीट ऊंचा था, यह बहुत विशाल था। ह्वेनसाँग लिखता है—"इसकी सुन्दरता; विस्तार और उसके भीतर बुद्धदेव की मूर्ति आदि सब बातें ठीक वैसी ही हैं जैसे बोधिसत्व के नीचे वाले विहार में हैं। बुद्धभद्र का निवास-भवन, जिसमें ह्वेनसाँग ठहरा था, चार खण्ड का था। इन विशाल एवं मनोहर मन्दिरों की प्रशंसा में ह्वेनसाँग के जीवनी लेखक, हुई-ली ने लिखा है—

"समलंकृत शिखर तथा सुषमापूर्ण अट्टालिकाएं उत्तुंग गिरि-शृंगों की तरह परस्पर सम्मिलित हैं। बेधशालाएँ प्रात.कालीन वाष्प में लुप्त सी जान पड़ती हैं और ऊपर के कमरे बादलों से भी ऊंचे जान पड़ते हैं। खिड़कियों से यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देखा जा सकता है कि हवा और मेघ किस प्रकार नए आकारों की सृष्टि करते हैं। गगनचुम्बी यन्त्र गृहों के ऊपर सूर्य चन्द्र ग्रहण का स्पष्ट निरीक्षण किया जा सकता है। गहरे और निर्मल जलाशय लाल और नीले कमलों को बड़ी सुन्दरता से धारण किए हुए है। बीच २ में उन पर विस्तीर्ण अमराइयों की बड़ी सुन्दर छाया पड़ती है। बाहर केसरी चैत्य, जिनमें भिक्षुओं के आवास हैं चार खण्ड के है। सीढ़ियों में सर्पाकार झुकाव, छतों के सुसज्जित छोर, खम्बे की नफीस नक्काशी, वेदिकाओं (Railings) की मनोहर पंक्तियां, खपरैल छतों के ऊपर हजारों रंगों में प्रतिबिम्बित प्रकाश ये सब मिलकर दृश्य की श्री वृद्धि करते हैं।

वास्तु तथा मूर्ति कला—नालन्द की वास्तु तथा मूर्ति कला के सम्बन्ध में कुछ कहे बिना यह विवरण अधूरा रह जायेगा। यहाँ क भवनों की छेकन (Lay out Plan) में इतना सौष्ठव है, कि आज खोद कर निकाले गए भग्नावशेषों की दशा में भी उन्हें देखकर भी आश्चर्य होता है। और उनकी बनी हुई दशा का चित्र आप ही आप आंखो के आगे खिच जाता है। एक के बाद एक भवन यहाँ स्थापति इस खूबी से बनाए हैं, मानों सारे विद्यापीठ का नक्शा उन्होंने पहले ही से सोच रखा हो। कोई भी इमारत ऐसी नहीं है, जो बेजोड़, बेमेल वा कुठौर मालूम पड़ती हो। जिस भवन-मालिका के निर्माण में एक सहस्त्र वर्ष का लबा समय लगा हो, वहां ऐसे सौष्ठव का निर्माण पहुंचे हुए शिल्पियों के ही मस्तिष्क का ही काम हैं। नालन्द की खुदाई के पहले भारतीय स्थापत्य के इतिहास के विद्वानों का मत था कि इमारतों में कमानियों; डाटों (Arches) का प्रयोग भारत ने अरब से सीखा है, पहले से भारतीय वस्तु शिल्पी कमानो के सिद्धान्त से अनभिज्ञ थे। किन्तु नालन्द के उद्घटित होने पर यह अनुमान निर्मूल सिद्ध हुआ।

यहाँ की इमारतों की पुष्ट और सुडोल ईंट ऐसी सुघड़ता से चिनी गई हैं कि कहीं २ तो दरज तक नहीं मालूम होती। नालन्द के छात्रावास और कगरे आदि देखने से सचमुच ही आजकल के प्रसिद्ध विद्यालय भी फीके से लगते हैं। कहीं कहीं मंचादि की भित्तियों पर ऐसी सुन्दर चित्र मूर्तिकारी है कि देखते ही बनता है। कहीं बुद्ध के जातक के कथाओं की बातें अंकित है, कहीं शिव और पार्वती की प्रतिकृति, कहीं बाजा बजाती हुई किन्नरियां, कहीं गजलक्ष, कहीं अग्नि, कहीं कुबेर, कहीं मकराकृत आदि। एक स्तूप के निकट भूमि स्पर्श मुद्रा में बुद्धदेव की एक भव्य विशाल मूर्ति है। वह आकार में शायद 'बुद्ध-गया की मूर्ति के लगभग होगी। यहां के लोग उसे आजकल बटुक भैरव की मूर्ति समझते हैं और उसकी पूजा करते हैं। यहां इमारतों पर जो कतिपय बुद्ध मूर्तियाँ मसाले की बनी हैं—वे इतनी भावपूर्ण हैं कि उनका शब्द चित्रण असम्भव सा है। बुद्ध के प्रशान्त भव्य मुख मण्डल पर दया, करुणा और दिव्य सौदर्न्य की जो अभिव्यक्ति शिल्पी ने की हैं, उनके विमल और ध्यानस्थ नेत्रों से जो आभा आर्द्रता, गम्भीरता, एकाग्रता एवं विश्व-वेदना उसने टपकाई है उसे देखकर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दर्शक मुग्ध रह जाता है। छोटी २ धातु प्रतिमाओं में तो लोकोत्तर भावों की व्यंजनाएँ तो कलावन्तों ने कमाल कर दिया है। अंग प्रमाण (एनाटोमी) की जो पाश्चात्य परिभाषा है, उसका चाहे इन मूर्तियों में अभाव हो; किन्तु भाव और कल्पना के विदर्शन में ये अद्वितीय हैं। कला का वास्तविक उद्देश्य हृदय में लोकोत्तर आनन्द का उद्बोधन' इनके द्वारा सिद्ध होता है।

कूप और जलाशय—हुएनसांग ने नालन्द के एक विशाल कूप का वर्णन किया है। खुदाई में भी एक अठपहला सुन्दर कुआँ मिलता है। प्राचीन जलाशय अब भी यहां की शोभा बढ़ा रहे हैं। एक तालाब तो ऐसा हैं, जिसमें स्नान करने से लोगों का ऐसा ही विचार है कि कुष्ठ रोग दूर हो जाता है। शरद् ऋतु में ये जलाशय विकसित कमलों से भर जाते हैं।

प्रहार और संहार—नालन्द के संघारामों के देखने से जान पड़ता है कि उन पर हृदयहीन शत्रुओं के अनेक प्रहार हुए थे। कुछ मन्दिर और आवास प्राचीन भग्नावशेषों के ऊपर बने मालूम होते हैं। नालन्द महाविहार पर प्रथम आघात संभवतः बालादित्य (नरसिंह गुप्त) के शत्रु "मिहिरकुल" का हुआ होगा। बालादित्य –राजा ने इमारतों की फिर मरम्मत करा दी होगी। दूसरा प्रहार "शशाँक" का हुआ होगा। इस बार मरम्मत हर्षवर्धन ने कराई होगी।

संघारामों के चारों ओर ऊंची चहार दीवारी बनाने का उद्देश्य सम्भवतः उन्हें बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित रखना ही होगा। नालन्द पर अन्तिम घोर प्रहार मुसलमानों का हुआ। इस प्रहार को संहार ही कहना चाहिए। मुसलमान इतिहासकार 'मिनाज' के अनुसार मगध पर मुसलमानों की चढ़ाई का समय उन्नीसवीं ईस्वी हैं। उसी समय इधर के तीनों विद्यालयों नालन्द, विक्रमाशिला और उदन्तपुर का विध्वंस हुआ। तारानाथ का कथन है कि मगध की पहली चढ़ाई में मुसलमानों को निराश होकर भाग जाना था। पर दूसरी चढ़ाई में मुहम्मद बरिन्तयार अचानक बड़ी चढ़ाई के साथ टूट पड़ा। उसके आक्रमण का पता किसी को न था। उस समय मगध के राजा गोविन्दपाल थे। वे बहुत बूढ़े हो गए थे। लड़ाई में वे वीर–गति को प्राप्त हुए।

फिर तो खूब लूट–पाट मची। उसी समय नालन्द महाविहार का विनाश हुआ। बहुत से भिक्षु मार डाले गए। कुछ विदेशों में भाग गए। उसके बाद तिब्बती प्रमाण के अनुसार नालन्द को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया गया। "मुद्रितभद्र" नामक एक भिक्षुक ने वहाँ के चैत्यों और मन्दिरों की मरम्मत कराई। मगध के किसी राजा के मन्त्री "कुक्कुट सिद्धि" ने एक और मन्दिर का निर्माण किया। एक समय जब उसमें धर्मोपदेश हो रहा था; दरिद्र तीर्थक वहाँ आ पहुँचे। कुछ दुष्ट चंचल भिक्षुओं ने उन पर अशुद्ध जल फेंककर उनका अपमान किया। इससे वे कुछ क्रुद्ध हो गए। और अवसर पाकर उन्होंने विहार में आग लगा दी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खुदाई में जो मन्दिर आदि निकल रहे हैं उनमें जलाए जाने का स्पष्ट प्रमाण मिल रहा है। बालादित्य के शिलालेख से भी इस बात की सत्यता सिद्ध होती है। उस शिलालेख में अग्नि दाह केवल एक मन्दिर के मरम्मत किए जाने का उल्लेख है। नालन्द में प्रादन जले हुए चावल के कण भी इस बात की स्पष्ट सूचना देते हैं। सम्भव है कि चावल के इन कणों में हुएनसांग द्वारा प्रशंसित उस 'महाशलि" चावल के कण भी हों, जो उसे अन्यान्य वस्तुओं के साथ प्रतिदिन मिलता था। उस चावल के कण बड़े पुष्ट होते थे। भात तो बहुत ही सुगन्धित और मीठा होता था। वह चावल केवल मगध में ही होता था और राजा महाराजाओं तथा धार्मिक महात्माओं को ही मिलता था। इसीलिए उसका नाम "महाशलि" पड़ा था।

विक्रमशिला—विक्रमशिला विद्या केन्द्र की स्थापना पालवंशी राजा धर्मपाल ने ९वीं शताब्दी में की थी। धर्मपाल बौद्ध था और अपने को उसने परम परमेश्वर परम भट्टारक महाराजाधिराज की उपाधि से विभूषित किया था। धर्मपाल के विक्रमशिला में १०८ आचार्यों की नियुक्त की थी। और खर्च के लिए बहुत धन राशि दी थी। उसके उत्तराधिकारियों ने भी उसका अनुसरण किया। यह विद्या केन्द्र भी बहुत प्रसिद्ध हुआ। यहां के उत्तीर्ण छात्र को पाल राजा पण्डित की पदवी से विभूषित करते थे। विक्रमशिला के विकास ने नालन्द की कीर्ति को मन्द कर दिया था। और इसमें ह्रास के चिन्ह उदय होने लगे थे।

विक्रमशिला में भी द्वार पण्डित होते थे। जिनकी संख्या छः थी। इस महा विहार में प्रथक् २ विषयों के दो महा विद्यालय थे और प्रत्येक विषय का एक एक द्वार पण्डित था। तारानाथ ने लिखा है कि विक्रमशिला के दक्षिण द्वार का द्वार-पण्डित प्रज्ञाकरमति था। पूर्वी द्वार का रत्नाकर शास्त्री, पच्छिमी द्वार का वागीश्वर कीर्ति, उत्तरी द्वार का ज्ञान श्री मित्र था। ये द्वार पण्डित बड़े योग्य विद्वान होते थे। विक्रमशिला में प्रत्येक विषय के १०८ शिक्षक थे। इस प्रकार कुल शिक्षक ६४८ थे। वहां के बड़े भवन में ८००० विद्यार्थी बैठ सकते थे। अवश्य ही विद्यार्थियों की संख्या हजारों होगी। महाविहार के बाहर अतिथि शाला थी, जहां प्रविष्ट होने के इच्छुक विद्यार्थी ठहरते थे। महा विहार दुर्ग की भांति चार दीवारी से आवेष्ठित था। विक्रम-शिला महायान तन्त्र के ज्ञान विज्ञान अध्ययन का प्रधान केन्द्र था। इस युग में तन्त्र विद्या का बहुत प्रचार हो गया था। बौद्ध और हिन्दु दोनों ही तान्त्रिक साधनाएँ कहते थे। तन्त्रवाद को प्रधानता देने का श्रेय विक्रमशिला विद्यालय ही को था।

यहां के अनेक विद्यार्थियों ने ज्ञान क्षेत्र में बहुत ख्याति प्राप्त की। इनमें शरत्न ब्रज, रत्न कीर्ति, ज्ञान श्री मित्र, रत्नाकर शान्ति और दीपंकर अतिश के नाम उल्लेखनीय है। अतिश को तिब्बत में बुलाया गया था। उसी ने वहाँ लामाधर्म की स्थापना की। रत्नकीर्ति अतिश का गुरु था। और ज्ञान श्री मित्र अतिश का उत्तरा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराधिकारी। अतिश के तिब्बत चले जाने पर ज्ञान श्री मित्र ही विक्रमशिला महा बिहार का आचार्य नियुक्त हुआ था। यह महा विद्यालय वर्तमान भागलपुर के पास कहीं था।

उदयन्तपुर—इसकी स्थापना पालवंश के प्रवर्तक राजा गोपाल ने की थी। यह बिहार उस स्थान पर था, जहां वर्तमान 'बिहार शरीफ' नगर है। सम्भवतः इस महाविहार के नाम पर ही सारे प्रांत को बिहार कहने लगे थे। नालन्द और विक्रमशिला की स्थापना से यह विद्या केन्द्र कुछ दब सा गया था। पर बारहवीं शताब्दी में इसमें हजारों विद्यार्थी और सैंकड़ों आचार्य निवास करते थे। जिनका संकेत हमें प्राप्त शिलालेखों से मिलता है। ई० स० ११९९ में जब मूहम्मद बिन वख्तियार खिलजी ने राजा गोविन्द पाल के काल में बिहार पर आक्रमण किया। उदयन्तपुरी से बिहार को दुर्ग समझ कर उस पर आक्रमण किया तो यहां के आचार्यों और भिक्षुओं ने शस्त्र ग्रहण कर उसका सामना किया था, और जब तक एक भी भिक्षु जीवित रहा—विहार में मुसलमान प्रविष्ट नहीं हो सके। बिहार पर अधिकार कर उसने यहाँ के विशाल पुस्तकालय को आग की भेंट कर दिया। जिससे प्राचीन भारत के ज्ञान विज्ञान का भण्डार जल कर खाक हो गया।

दिवाकर मुनि का आश्रम—इस काल में इस महान् विद्यापीठ की समता करने वाला दिवाकर मित्र मुनि का आश्रम था। जो बिन्ध्य कान्तार के गहन बनों में स्थित था। इस एकान्त वनस्थली में तत्कालीन ज्ञान और संस्कृति अपने रूप में विद्यमान थी। मत और आचार में एक दूसरे से भिन्न नाना देशों के छात्र यहाँ सत्य की जिज्ञासा के लिए बन्धु भाव से रहते थे। श्रवण, मनन, प्रत्युच्चरण, शंका-समाधान, व्युत्पत्ति प्रदर्शन; वाद विवाद, अभ्यास और व्याख्या—ये यहाँ के छात्रों के कार्य थे। इस आश्रम में अर्हत, श्वेतपट, पाण्डुरि भिक्षु, मस्करी, वर्णी, भागवत, पांचरात्र, शैव, केशलुञ्चक, लोकायतिक, नास्तिक, कपिल, काणाद औषनिव और ऐश्वर्य कारणिक जैसे दार्शनिक, कर्म शास्त्री, शाब्दिक और पुराण पारंगत कर्मकाण्ड के धुरन्धर सांततन्तव भौतिक विज्ञान के आचार्य, धातुविद्या के कारन्ध भी रहते थे। त्रिशरण (बुद्धधर्म संघ) के अनुयाती और शाक्य शासन (बौद्ध कानून) के पण्डित वसु बन्धु के कोश के व्याख्याता और बोधि सत्त्व जातकों के पण्डित वहाँ थे।

ब्राह्मण वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन करते थे। जिनमें आयुर्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद सम्मिलित थे[1]।

चारों वेद जिन में लगभग एक लाख छन्द थे; मौखिक परम्परा से पढ़े जाते थे।[2]

१—Walters. 159

१—इत्सिंग (ई० ६७२–८८)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मदुरा का सँगम—सुदूर दक्षिण में मदुरा में एक विद्यापीठ था । जिसका नाम संगम था । तक्षशिला की भांति इसमें भी विविध विषयों के प्रसिद्ध आचार्य रहते थे । सच पूछा जाय तो तामिल साहित्य का विकास यहीं हुआ । यहां के आचार्य कोटे आचार्य ही नहीं थे, भारी ग्रन्थकार भी थे । इन्होंने अनेक महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ लिखे । जिनमें तिरुवल्लुकर का 'कुरल' सबसे प्रसिद्ध हैं, और विश्व साहित्य में अप्रतिम है । इसमें धर्म अर्थ काम मोक्ष—इन चार विभागों द्वारा मानव जीवन के प्रति सन्मार्ग का प्रदर्शन किया गया है, इसके अतिरिक्त मणि मेखला और शीलद्यति कारम् प्रसिद्ध तामिल काव्य भी इसी संगम में रचे गए ।

अन्य विद्या केन्द्र—इन प्रसिद्ध विद्या केन्द्रों के अतिरिक्त काशी, नव द्वीप, वल्लभी और धारानगरी के विद्या केन्द्र भी बहुत महत्त्वपूर्ण थे । जहाँ राजाओं, धनिकों और सर्व साधारण का इन्हें सब भाँति आश्रय सहारा मिलता था । परमार भोज ने जो महान विद्या व्यसनी था, धारानगरी में उत्कृष्ट विद्या केन्द्र स्थापित किया ।

३—तात्कालिक संस्कृतिक जीवन

पाठ्य-क्रम—इत्सिंग के कथनानुसार उस काल का पाठ्य-क्रम इस प्रकार था :—

१—सिद्धिरस्तु—यह पहली पाठ्य पुस्तक थी । जिसमें वर्ण माला के ४९ अक्षर और १० हजार अक्षरों के बराबर ३०० श्लोक थे । इसके बाद व्याकरण पढ़ाया जाता था ।

२—पाणिनि सूत्र—धातु और तीनों खिल ।

३—काशीका—वृत्ति नामक टीका—जिसका रचियता जयादित्य हर्ष के समकालीन था । यह वृत्ति १८००० श्लोकों के बराबर थी ।

४—गद्य पद्य रचना ।

व्याकरण और षद योजना के इस आरम्भ के ज्ञान के बाद छात्र विशेष विद्याओं का अध्ययन करते थे । विद्याओं की संख्या पांच थी :—

(१) शब्द विद्या (व्याकरण)
(२) शिल्पस्थान विद्या (कला और शिल्प)
(३) चिकित्सा (वैद्यक)
(४) हेतु विद्या (तर्कशास्त्र)
(५) आध्यात्म विद्या ।

तर्कशास्त्र की पाठ्य पुस्तकों में नागार्जुन का 'न्याय-द्वार तारक शास्त्र' पढ़ाया जाता था । निबन्ध रचना और आदर्श साहित्य के नमूनों में जातक माला और नागार्जुन कृत सुहृल्लेख पढ़ाया जाता था । सुहृल्लेख एक पद्यात्मक प्रशस्ति थीं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुद्ध स्त्रोत्र नाम की १५० पद्यों की एक पुस्तक और थी। इस अध्ययन को समाप्त करके फिर किसी एक विषय में विशेषता प्राप्त की जाती थी।

विश्रुत विद्वान् गुणभद्र बौद्ध धर्म के पाँच अंगों के अतिरिक्त ज्योतिष, गणित, वैद्यक और प्रेत विद्या भी जानता था।

विशेष विद्याओं में एक व्याकरण था, जिसकी पाठ्य पुस्तकों में चूर्णि या पातञ्जल महाभाष्य २४ हजार श्लोकों के समान था। इसे विद्यार्थी तीन वर्षों में पढ़ता था। महाभाष्य पर एक वृत्ति भर्तृहरि शास्त्र २५ हजार श्लोकों के बराबर थी। यह राजर्षि पाँच भारतों में विख्यात था। जो ई० स० ६५१ में मरा। भर्तृहरि ही की एक रचना 'वाक्य प्रदीप' थी जिसमें आगम प्रमाण के अनुकूल अनुमान प्रमाण और हेतुओं का विवेचन था। भर्तृहरि का एक और भी व्याकरण था-जो ३० ० श्लोकों के बराबर था,और जिस पर १५ हजार श्लोकों के बराबर एक टीका भर्तृहरि के समकालीन धर्मपाल कृत थी।

बौद्ध साहित्य में त्रिपिटक के विनय-सूत्र और शास्त्र १५० और ४०० श्लोकों के दो सूक्त जो मातृचेत के बनाए हुए थे, और सारे भारतवर्ष के बौद्ध भिक्षुओं को सिखाए जाते थे। अश्वघोष का 'बुद्ध चरित काव्य' पांच भारतों तथा दक्षिण सागर के द्वीपों में सर्वत्र पढ़ाया गाया जाता था। योग में योगाचार्य शास्त्र और असंग के आठ शास्त्रों का अध्ययन होता था। तर्कशास्त्र के अन्तर्गत आठ ग्रन्थ थे। अभिधर्म में छः पाद या निबन्ध और आगमों में चार निकायों का निर्देश था।

इनमें भर्तृहरि-काशिका के संयुक्त रचयिता जयादित्य और वामन तथा धर्मपाल जिन्होंने बेड़ावृत्ति का श्लोक भाग लिखा और जो नालन्द विद्यालय के मुख्याचार्य के पद पर शीलभद्र के पूर्व अधिकारी थे। तार्किक धर्मकीर्ति. राहुलमित्र, ताम्रलिप्ति में पूर्वी भारत का प्रधान भिक्षु और रत्न कूट सूत्र का रचयिता था। चन्द्र जिसने वेणान्तर जातक पर एक नाटक की रचना की थी। जिनप्रभ, ज्ञानचन्द्र, रत्नसिंह ये सब नालन्द के आचार्य थे। ये सब हर्ष के समकालीन थे। इनके सिवा बाण भट्ट जो उस काल का कृत विद्या और हर्ष का राज कवि था।

इस कवि ने उस काल के विख्यात साहित्य कर्णाधारों में भाषा कवि ईशान, वर्णना प्रधान कवि वेणी भारत और प्राकृत कवि वायुनिकार का उल्लेख किया है। किरातार्जुनीय काव्य का रचयिता महाकवि भारवि भी इसी काल में विद्यमान था। वह सन् ६३४ई० के ऐहोल शिलालेख में लब्ध प्रतिष्ठ कवि के रूप में सम्मुख आता है, कवि कुमारदास जिसने 'जानकी-हरण' महा काव्य लिखा, इसी काल में था। 'शिशुपाल वध' काव्य का रचयिता महा कवि माघ पण्डित भी इस काल में विद्यमान था। अख्यायिका कार वसुबन्धु इससे कुछ काल पूर्व था। बाण की कादम्बरी को पूर्ण करने वाला बाण का पुत्र भूषणभट्ट तथा राजसी कवि कांची का पल्लव राजा महेन्द्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्म जिसने 'मत्त विलास' नाम का प्रहसन रचा, तथा हर्ष के प्रतिस्पर्धी दक्षिणापथ सम्राट् पुलकेशी द्वितीय को राज कवि रविकीर्ति जिसने ई० स० ६३४ के ऐहोल के शिलालेख में काव्य रूप में अपने आश्रयदाता के विक्रमों का कीर्तन किया है। जिस में उसने अपनी तुलना कालीदास और भारवि से की है। अलङ्कार का निष्णान्त पण्डित था। इसके अतिरिक्त सूर्य शतक का रचयिता वाण का श्वसुर मयूर कवि तथा मातंग दिवाकर भी इसी काल के कवि सम्राट् हैं।

हर्ष का धर्मभाव और पाण्डित्य—हर्ष ने अपना जीवन बौद्ध की भांति नहीं प्रारम्भ किया था। न वह बुद्ध के अनुयायी के रूप में संकीर्ण विचार ही रखता था। उसका कुलक्रमागत धर्म शैव था। पीछे वह बौद्ध मर्म के महायान सम्प्रदाय से अवश्य प्रभावित हुआ था। रत्नावली; प्रियदर्शिका और नागानन्द ये तीन नाटक हर्ष के रचे हुए कहे जाते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि इन्हें वाण ने हर्ष के लिए लिखा था। इसमें सन्देह नहीं कि इन रचनाओं की शैली वाण की शैली से मिलती है। इनमें से प्रथम के दो नाटकों की प्रस्तावना में वह ब्राह्मण धर्म के प्रमुख देवता शिव, गौरी, गंगा; ब्रह्मा, कृष्ण, लक्ष्मी आदि देवताओं का उल्लेख करता है। तीसरे नाटक में पीछे के दो अंश बौद्ध भावना के द्योतक हैं, तथा प्रारम्भ में भी बुद्ध की स्तुति उसमें की गई है। परन्तु उसमें भी ब्राह्मणों के देवताओं का उल्लेख है। हर्ष की सोनपत वाली ताम्र मुद्रा में हर्ष का पिता सूर्य का उपासक प्रकट किया गया है। सम्भव है कि बौद्ध तपस्वी दिवाकरमित्र और चीनी भिक्षु युवानचांग के प्रभाव से वह अपने उत्तर जीवन में बौद्ध प्रभावित हो गया हो। वह वर्ष में एक बार २१ दिन तक सब बौद्ध भिक्षुओं को एकत्रित करता और उनसे शास्त्रार्थ कराकर उनकी परीक्षा लेता था। उसने गंगा तट पर सहस्त्रों स्तूप बनवाए थे, जो १०० फुट ऊंचे थे।[1] उसके दान से प्रतिदिन १००० बौद्ध भिक्षु और ५०० ब्राह्मण भोजन पाते थे। उसने सारे साम्राज्य में राज मार्गों पर पुण्यशालाएँ, आतुरालय और विद्यालय बनवाए थे। जहाँ मुफ्त भोजन, औषध और विश्राम की व्यवस्था थी। उसने विद्वानों से ५०० काव्य लोकप्रिय विषयों पर लिखवाए जो जातक-माला के नाम से विख्यात थे।[2] इन लेखकों में विख्यात कवि आर्य शूर भी था।

हर्ष ने बोधिसत्त्व जीमूतवाहन की कथा को पद्यात्मक रूप दिया, जिसने एक नाग के लिए आत्मार्पण किया। इस नाटक का नाम नागानन्द रक्खा और उसे संगीत मय बना कर, और उसमें नृत्य अभिनय का समावेश करके उस का अभिनय कराया था। कहते हैं कि उपर्युक्त तीन नाटिकाएँ के अतिरिक्त उसने एक

१—युवान चांग

२—इत्सिंग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्याकरण भी रचा था। गीत गोविन्द का रचयिता जयदेव भास और कालीदास के साथ उसकी उपमा देता है।

यदि बांस खेड़ा पटल लेख को उसने स्वयं लिखा है। जिसकी अन्तिम पंक्ति में सम्राट् के हस्ताक्षर हैं। तो वह एक कुशल लेखन कलाकोविद भी है। हर्ष ने विद्वानों का भी सत्कार किया था। उसने हरिदत्त पण्डित को उत्कर्ष के शिखिर पर पहुंचाया था।[1] जयसेन पण्डित को उड़ीसा के ८० ग्राम भेंट करना चाहा था, जिसे उस ब्राह्मण ने अस्वीकार कर दिया था।

आर्थिक स्थिति—इस काल में समृद्धि के केन्द्र नगर थे—जिनमें कुछ का उदय हर्ष काल में हुआ था। कुछ पुराने ऐतिहासिक नगरों का ह्रास हुआ। पाटलिपुत्र अब उत्तरी भारत का प्रधान नगर नहीं रह गया था। उसका स्थान कन्नौज ने ले लिया था। जहां दस हजार भिक्षुओं के लिए १०० बिहार तथा २०० हिन्दु देव मन्दिर थे। नगर पांच मील लम्बा, १।। मील चौड़ा। ऊंचे भवनों से सुसज्जित उद्यान, तड़ाग और विदेशों से संग्रहीत भाण्डागारों से परिपूर्ण था। नागरिक सम्पन्न मृदु भाषी थे, और उत्तम रेशमी वस्त्र धारण करते थे। प्रयाग भी इस समय महत्त्व पूर्ण स्थान हो गया। जहां यह राजा पञ्च वार्षिकी मोक्ष परिषदें करता था; जिसमें योग देने पांचों भारतों से ५ लाख यात्री आते थे। श्रावस्ती उजड़ चुकी थी। कपिल वस्तु भी शून्य हो गया था। वैशाली खण्डहरों का ढेर हो गया था[2]। परन्तु पूर्वी भारत में नालन्द और पच्छिमी भारत में बलभी नए केन्द्र स्थापित हो रहे थे। मथुरा जो चार मील के घेरे में था, अपने मन्दिरों और बिहारों तथा अशोक के बनाए स्तूपों के लिए जो बुद्ध के प्रमुख सिक्कों के अवशेषों पर बनाए गए थे, प्रसिद्ध था। थानेश्वर में १०० मन्दिर थे और वह भारी व्यापार की मण्डी थी। बिजनौर के निकट मतिपुर जिसमें ५० मन्दिर थे, जो अन्न फल और फूलों से सम्पन्न था। मयूर (हरद्वार) प्रसिद्ध पुण्य क्षेत्र था। गो विषाण (रामपुर या पीलीभीत) अहिच्छत्र संकाश्य, अयोध्या जिसमें १०० बौद्ध बिहार और १० मन्दिर थे। कोशाम्बी उजड़ रहा था, पर बाराणसी खूब सम्पन्न था, वहां सौ से अधिक मन्दिर थे। बहु-भूमिक प्रासाद और अनगिनत महल अपरिमित धन से भरपूर थे। बिहार में चम्पा राज महल, बंगाल में पुण्यवर्धन (रङ्गपुर) समृद्ध थे। ताम्रलिप्त, कर्ण सुवर्ण और कामरूप समृद्ध नगर थे। विनिमय में सोने चांदी के सिक्के, कौड़ियां और मोती प्रचलित थे।

सामाजिक जीवन—ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे। अन्तर्जातीय विवाह नहीं होते थे उच्चजाति में प्याज, लहसुन का प्रचार न था। साधारण भोजन दूध घी; शक्कर,

---

१—Ep And. T. 180 (शिलालेख)
२—युआन-चांग।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुड़, सरसों का तेल, भूना हुआ अन्न था स्त्रियां शिक्षिता होती थीं। वसन्तोत्सव धूमधाम से मनाया जाता था। बाल विवाह भी होते थे। पर विधवा विवाह निषिद्ध था। सती प्रथा थी। समुद्र यात्राऐं प्रचलित थीं। दो दो सौ आरोही जहाज में बैठते थे। ई० स० ६०३ में ६ बड़े और १०० छोटे जहाजों में भरकर भारत के पच्छिमी तट से लगभग ७००० भारतीय जिनमें किसान शिल्पी योद्धा वैद्य और लेखक थे, जावा में बसने के लिए गए थे। उन्हीं के हस्त कौशल आज हम जावा के वोरोबुदुर और प्राम्बनम के विशाल मन्दिरों में पाते हैं। इस समय यहां आदित्यवर्मन नाम का राजा राज्य करता था। सुमात्रा में इत्सिंग ने २ वर्ष पाली और संस्कृत का अध्ययन किया था। तथा राजधानी में उसने १००० भिक्षु देखे थे[1]। इत्सिंग ने इन द्वीपों के ग्यारह से अधिक राजा गिनाए हैं, जो सब बौद्ध थे।

यह स्वीकार करना होगा कि हर्ष के काल में भारत की सीमाओं से परे दक्षिण समुद्र के द्वीपों और पूर्वी देशों की ओर वृहत्तर भारत का भारी विकास हुआ था। चीनी यात्री युवान चाङ्ग ने चीन से भारत को आते समय मार्ग के सब देशों को हर्ष के भारत से प्रभावित पाया था। संक्षेप में हर्ष का भारत एक भव्य भारत था। यह महान राजा जीमूत वाहन के मुख से जैसे अपने ही विषय में कहता है—

स्व शरीरमपि परार्थे यः खलु दद्यामयाचितः कृपया,
राज्यस्यकृते स कथं प्राणिं वध क्रौर्यमनुमन्ये।

हर्ष के तीन रूपक और हर्ष चरित—हर्ष कृत तीनों रूपक प्रियदर्शिका, नागानन्द और रत्नावलि के सम्बन्ध में यह किम्वदन्ती हैं ही कि वे वाण द्वारा लिखित हैं। हमारा वक्तव्य केवल यह है कि ये तीनों रूपक चाहे स्वयं हर्ष ने लिखे हों या उनकी संरक्षकता में वाण ने, या किसी अन्य कवि ने लिखे हों—वे एक ही काल में एक ही कलम से लिखे गए हैं और उनमें ७वीं शताब्दी के भारतीय जीवन का सच्चा चित्र है। यद्यपि इनकी रचना दर्वारी जनों के ही मनोरंजन के लिए हुई थी तथा इनके विषय भी अति संकुचित अन्तःपुर की प्रेम घटनाओं के पक्षों तक ही सीमित है, परन्तु उनसे उस काल के जीवन पर प्रकाश अवश्य पड़ता है।

अन्तःपुर के वर्णन—राजाओं की अनेक रानियां होती थीं जो राजा के मरने पर सती हो जाती थी[2]। उनके अतिरिक्त अन्तःपुर में अनेक दासियां भी होती थीं। अन्तःपुर की रक्षा कुबड़े, बौने और बूढ़े लोग करते थे[3]। ऊंचे दर्जे की स्त्रियों में कुछ पर्दा था। रानी की अवगुंठन की चर्चा आती है[4]। रानी की सहेलियों में पण्डिता,

---

१—ईलियत Hinduism and Buddism.
२—प्रिय दर्शिका पृ० १७
३—प्रिय दर्शिका पृ० ७५
४—रत्नावलि अ० ४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्त्रियां भी रहती थीं जो कभी २ रूपक या दृश्यों की रचना करके उनके अभिनय से राज वर्गी स्त्रियों का मनोरंजन करती थी[१]। राजा का विदूषक ब्राह्मण प्राय: ऐसा व्यक्ति होता था कि राजा के सेवक भी उसकी हंसी उड़ाया करते तथा अपमान किया करते थे[२]। राज प्रासाद की दीवारें सफेद रेशमी पर्दे लटकाकर सजाई जाती थीं। फर्श पर चन्दन के अर्क का छिड़काव होता था। जिसमें कस्तूरी मिली होती थी। केवड़े की सुगन्ध बहुत पसन्द की जाती थी। कमरे के एक गुप्त कक्ष में सफेद पलंग और जड़ाऊ पायदान रखा जाता था, जहाँ राजा दोपहर के स्नान के बाद आराम करता था उस समय कोई किशोरी दासी अपने नव कमल दल सी कोमल हथेली से धीरे २ उसके पांव सहलाया करती थी। दूसरे देशों के राजाओं और मन्त्रियों से वह यही भेंट करता था तथा घनिष्ट मित्रों से भी यहीं मिलता था[३]। राजा यन्त्र-मन्त्र तन्त्रों का ज्ञाता तथा विषों के उतारों का जानने वाला भी होता था[४]।

उज्जयनी और वहां के नागरिकों का एक शब्द चित्र हम बाण के आधार पर यहां खींचते हैं--

"उज्जयिनी एक उज्ज्वल सौख्य सम्पन्न नगरी है, जो केन्द्र होने से दक्षिण और पच्छिमी भारत की सम्पत्ति की अधिकारिणी है। उसके चारों ओर एक खाई है तथा रक्षा के लिए एक सुदृढ़ प्राचीर है, जो श्वेत चूने से पुती हुई है। उसमें जगह जगह गगन चुम्बी गुम्बज हैं; बाजार वाणिज्य सामग्री से भरा हुआ है। मोती मूंगा और रत्नों का क्रय विक्रय साधारण व्यापार है। घरों की दीवारें चित्र विचित्र चित्रों से चित्रित हैं। जो पौराणिक देवताओं के तथा नित्य जीवन से सम्बन्धित हैं। चौराहों पर मन्दिर बने हैं, जिन पर श्वेत ध्वज फहरा रहीं हैं। कामध्वज के मन्दिर की ध्वजा पर मीन का चित्र है। बसन्त और शरद् में लोग व्यापक उत्सव करते हैं। जहां घन्टे बजाए जाते हैं, खूब हो हल्ला होता है। राजा के शुभागम की तथा विशेष सूचनाऐं शंख बजाकर दी जाती हैं। वेद मन्त्रों के उच्चारण के मधुर शब्द बहुधा कानों मे सुख वर्षा करते हैं। बाटिकाओं में निरन्तर चरस से सिंचाई होती है। कुओं पर पक्की जगत है। घरों में तहखाने हैं। जिनमें जाने के लिये सीढ़ियां बनी होती हैं। नगरी के बाहर घने पेड़ों के अंधेरे झुण्ड हैं। क्षिप्रा नदी जो चर्मण्वती की सहायक है नगर को छूती हुई बहती है। नगर के आस पास कमलों से ढकी हुई अनेक पुष्करिणियों की बहार दीख पड़ती है[५]।"

"इस समृद्ध नगरी के नागरिक बड़े प्रसन्न और सुखी हैं। उन्हें अपने कुओं

१--प्रिय दर्शिका पृ० ४७

२--नागानन्द पृ० ४४--हर्ष चरित पृ० २०९

३--कादम्बरी

४--प्रिय दर्शिका अ० ४

५--कादम्बरी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पुल, मन्दिर, बाग, और तड़ागों पर गर्व है। राज मार्ग पर पशुओं को पिलाने के लिए जलाशय बने हुए हैं, जो ऊपर से छाए हुए हैं। विद्यार्थियों के लिए धर्मशालाएँ तथा नागरिकों के लिए उत्सवालय बने हुए हैं। समुद्र के उत्तम से उत्तम रत्न उज्जयिनी के बाजारों में खिंचे चले आते हैं। यहाँ के लोग यद्यपि वीर हैं, परन्तु शीलवान और मृदु भाषी भी है। वे सत्य का आंचल पकड़े हैं, सुघड़ और सुन्दर हैं, अतिथिसेवी हैं, अतिथियों से भेंट पाने के इच्छुक नहीं हैं। धन और प्रेम के उपासक हैं, न्यायशील हैं। ललित कलाओं के अनुरागी हैं। उनकी बातचीत सूक्तियों और सुकल्पनाओं से अलंकृत रहती है। उनका पहनावा शानदार और निर्दोष है। वे विदेशी भाषाएँ भी जानते हैं। कथा कहानी और पुराणवार्ता सुनने सुनाने के रसिक हैं। जुआ खेलने का उन्हें व्यसन है। तोता मैना पालने का शौक है। अम्बारी वाले तथा हौदों से सजे हुए हाथी और सुसज्जित घोड़े बहुत हैं।"[1]

अब चांडाल बस्ती की भी एक झलक देखिए :—

"चाण्डाल बस्ती नगर से प्रथक् है। यह दुनिया भर के दोषों का घर है। चाण्डालों के लड़के शिकार खेलने, कुत्तों की डोरियाँ खींचने और छोड़ने तथा बाज सधाने तथा जाल की मरम्मत करने में, हथियार सजाने और मछलियां पकड़ने में व्यस्त रहते हैं। उनकी झौंपड़ियां बाँसों के घने जँगलों में छिपी होती हैं। उनके हातों की सीमायें खोपड़ियों के ढेरों की बनी होती हैं। राह में कूड़े कर्कट के और हड्डियों के ढेर पड़े हैं। झौंपड़े के आंगन में खून, चरबी और माँस के लोथड़ों की कींचड़ सी हो रही है। वे जँगली रेशम का भद्दा सा पहनावा पहनते हैं। बिछोनों की जगह सूखी खालें काम में लाते हैं। उनके घरों में संतरी का काम कुत्ते करते हैं, वे गायों पर सवारी करते हैं।"

यह वीभत्स शब्द चित्र कदाचित् उन जरायम पेशा जातियों के पुरखों का है, जो अपनी प्रथक् बस्तियों में आज भी भारतवर्ष में पाई जाती हैं। उन दिनों कदाचित् इन पर आजकल जैसे बन्धन न थे और वे अधिक सुखी और स्वच्छन्द थे।

हर्षवर्धन के प्रपिता भैरवाचार्य नामक एक तांत्रिक शैव के शिष्य थे। उन्हीं भैरवाचार्य का एक शब्द चित्र जो बाण ने हर्ष चरित में चित्रित किया है हम यहां उपस्थित करते हैं, इससे तत्कालीन एक साधु का स्वरूप हम देख सकेंगे।

'उसके साथ योगियों का एक जमघट रहता था। वह भोर ही उठकर स्नान करता, अष्टविधि पूजन और हवन करता था। धरती पर गाय के गोबर का चौका लगाकर उस पर बाघम्बर बिछा कर यह तपस्वी बैठता था। उसके चारों ओर

१—कादम्बरी।
२—कादम्बरी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भस्म की एक रेखा खींची होती थी। वह एक काला ऊनी चोला पहने रहता था। जटा को ऊपर की ओर गांठ बाँधता, जिनमें माला की गोल गोल मणिकाएँ लटकती थीं। उसकी अवस्था पचपन के लगभग होगी। सिर के बाल कहीं कहीं गंजे हो गए थे, और चंदिया कहीं कहीं गंजी दीखती थी। कान बालों से ढ़के रहते थे। मस्तक चौड़ा था, और उस पर भस्म का तिलक विराज रहा था। कभी कभी वह तेवरी चढ़ा लेता था। उसकी लम्बी लम्बी आंखें पीली थी, जिनके कानों में लाल डोरे दिखाई देते थे। उसकी नाक का सिरा गरुड़ पक्षी की चोंच की भाँति मुड़ा हुआ था। दांत गिरने लग गए थे, पर जो रह गए थे, वे शेकर की कलगी के समान श्वेत थे। उसका होठ जरा नीचे को लटका हुआ था। लम्बे लम्बे कानों में बिल्लौरी मुद्राएँ शोभा दे रही थीं। एक बाँह में वह लोहे का नलप पहने था, जहाँ जड़ी-बूटियों से निर्मित एक यन्त्र भी बंधा था। दाहिने हाथ से वह माला जपता रहता था। उसके वक्षस्थल पर लटकती लम्बी डाड़ी, मानो एक झाड़ थी। जो हृदय को वासनाओं के मल से साफ रखती थी। कोपीन पवित्र क्षौम से बना हुआ उजवल था। उसके पाँव के तलवे कोमल और लाल थे, और वह निरन्तर खड़ाऊँ पहने रहता था। जो बिलकुल श्वेत और धुली हुई थी। उसके पास बांस का एक दंड था। जिसके सिरे पर लोहे का शूल लगा था। वह बात चीत बहुत कम और धीरे धीरे करता था। साथ ही मुस्कुराता भी जाता था। उसके गंभीर विवेकवान चहरे पर दया और बुद्धि की झलक थी।[1]

अब एक राजोत्सव का भी शब्द चित्र देखिए—राज कुमार का जन्म हुआ है, जिसकी सूचना नगर निवासियों को मिल गई है। वे दिल खोलकर आनन्द उत्सव मनाने में मग्न है—

नरसिंह और ढोल ऊंचे और सुरीले ध्वनियों में बज रहे हैं। घोड़े हिनहिना रहे हैं, हाथी सूंड उठा उठा कर मौज कर रहे हैं। ब्राह्मण उज्ज्वल श्वेत वस्त्र पहिने वेद मन्त्रों का पाठ करते हुए, शिशु राजकुमार को ड्योढियों पर आकर आशीर्वाद दे रहे हैं। राज कुल के ज्येष्ठ जन शीघ्रता से राज प्रासाद में जुट रहे हैं। बहुत से बन्दी मुक्त कर दिए गए हैं, वे अपनी धूल भरी लम्बी लम्बी डाढ़ियां हिलाते उछल कूद करते समारोह में आ मिले हैं। इस धूमधाम में राज प्रसाद का सारा प्रबन्ध गड़बड़ हो गया है। जनता की भीड़ बल्लभ-वरदारों की तनिक भी परवाह किए बिना रनिवास तक पहुंच गई है। इस समय स्वामी और दास सब समान हैं। बड़े घरों की देवियाँ भीड़ में गली गली मारी फिरने वाली स्त्रियों के साथ हंस रही हैं। पड़ौस के राजाओं की रानियां सहस्त्रों की संख्या में अपने पीछे दासों और दासियों के सिरों पर भांति भांति की भेंट लिवाए राज प्रासाद की ओर आती दिखाई देती थीं। सुरालयों से गुलाबी रंग की सुरा के स्रोत बह रहे थे, और लोगों की उच्छृंखल भीड़

१—हर्ष चरित पृ० २६३-२६४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे झिझक बेहूदा छेड़ छाड़ करती, और वे रोक टोक, ऊधम मचाती फिर रही थी। लोग आनन्द से पागलों का त्यौहार सा मना रहे थे, क्योंकि यह राजकुमार के जन्म का मंगल दिन था।[1]

अब आप विन्ध्य अंचल के एक ग्राम का शब्द चित्र देखिए।

"गांव के चारों ओर दूर दूर तक जंगल फैला है, वहां बड़ के देवसार पेड़ थे, जिनके चारों ओर सूखी शाखाओं से गायों के लिए बाड़े बना लिऐ गए थे। बहुधा बाघ आक्रमण कर बछड़ों को ले जाते हैं। इनके लिए किसानों ने फंदे लगाए हुए हैं। जंगलों में कहीं कहीं धानों के खेत खलियान और फसलें देख पड़ती हैं। खेती बहुत कम होती है, लोग खेतों को फावड़े से खोद कर उसमें बीज बोते हैं। फसल की रक्षा के लिए खेतों में ऊँचे ऊँचे मसान हैं। जहाँ बैठ कर किसान जंगली जानवरों को डरा कर भगा देते हैं। सड़क पर के पेड़ों से छोटी मंडैया बनाई हुई हैं, उनमें लकड़ी की तिपाइयों पर जलपात्र धरे रहते हैं। लोहारों ने कोयला तैयार करने के लिए भट्टियाँ बना रक्खी हैं। जिन में ढेर की ढेर लकड़ियाँ जल रही हैं, गांव के लोग कुल्हाड़े कन्धों पर रक्खे तथा खाने के बर्तन गले में लटकाए लकड़ी काटने जा रहे हैं। बहुतों के आगे आगे भारी बैलों की जोड़ियां भी हैं। अहेरी और व्याध हाथों में जाल और पींजरे लिए अपने धन्धे की धुन में निकले हैं। लोग हर प्रकार की जँगली पैदावार जैसे मधु मोर छल, मोम आदि एकत्र करने का धन्धा करते हैं। स्त्रियां जंगली फलों के टोकरे सिरों पर रखकर चली आ रही हैं। गन्ने के खेतों को बाड़ें लगाकर यत्न से रक्षित किया जाता है। इधर उधर जिधर देखो कृष्ण मृग चौकड़ी लगाते नजर पड़ते हैं। गांव वालों की झौंपड़ियाँ काँस और काँटेदार झाड़ियों के बीच एक दूसरे से दूर दूर फैली हुई हैं। कुकुरों की ध्वनि से इन बिखरे हुए घरों की स्थिति का पता चलता है। भीतें बांस के पत्तों, डालियों और घास फूँस से बनी हैं। उनमें कहीं कहीं रंग के छींटे भी दिखाई देते हैं, लोगों ने छोटे छोटे जानवर जैसे जंगली बिल्ली, सांप, नेवले, बड़े प्रेम से पाले हैं।"[2]

पाठक समझ सकते हैं कि यह ग्राम्य जीवन आज के ग्राम्य जीवन से कितना भिन्न है?

———

१— हर्ष चरित पृ० १११-११२
२—हर्ष चरित पृ० २२५ से २२९ तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चतुर्थ खण्ड

पहिला अध्याय

मध्य युग

[ई० स० ६४७ से ११९२ तक—५४५ वर्ष]

१—मध्य युग

मध्य युग—साधारणतया योरोप का मध्य युग पश्चिमी रोम साम्राज्य के विनाश काल (ई० स० ४७६) से आरम्भ होकर तुर्की द्वारा कस्तुन्तुनिया की विजय के समय (ई० स० १४५३) तक समझा जाता है। यह लगभग एक हजार वर्ष का काल योरोप ही नहीं—सम्पूर्ण मनुष्य जाति के इतिहास के विकास में एक विशेष और महत्त्वपूर्ण पड़ाव की स्थिति रखता है। यह काल योरोप के प्राचीन प्रामाणिक साहित्य के युग को उसके वर्तमान इतिहास से मिलाता है। प्राचीन यूनानी और रोमन उत्कर्ष के समय में जिन-जिन जातियों और नगरों का सिक्का जारी था, उनकी राजनैतिक महत्ता के पतन का यही समय है। इसी समय में योरोप के अनेक वंशों का नए सिरे से संगठन हुआ—जिन्होंने प्राचीन सभ्यता से प्रभावित अपनी नई सभ्यता को जन्म दिया। रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय और पोप के शासन प्रभाव के स्थान पर इसी काल में समानता की भावना का सारे योरोप में प्रसार हुआ।

भारतीय मध्ययुग—अब हमें इस प्रश्न पर विचार करना है कि भारत का मध्ययुग कौनसा काल स्थिर किया जाय। अंग्रेजी राज्य में भारतीय इतिहास को बुद्ध पूर्व, बौद्ध, हिन्दु-मुसलमान और अंग्रेजी युगों में विभक्त किया गया। परन्तु सांस्कृतिक और राजनैतिक दोनों ही दृष्टि से यह काल विभाग ठीक नहीं था। जिन विद्वानों ने इतिहास पूर्व युग की सीमा बुद्ध जन्म काल रक्खी; उन्होंने तो इस युग को एकदम अन्धकार में ही डाल दिया, और उस पर प्रामाणिक न राजनैतिक न सांस्कृतिक प्रकाश डाला। केवल विहंगम दृष्टि ही डाली—वह भी पाश्चात्य पण्डितों के अन्धानुसरण पर। अंग्रेजी राज्य में किसी विद्वान ने इस युग को स्वतन्त्र मस्तिष्क से अध्ययन ही नहीं किया। इसी से इस काल के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न भारतीय और अभारतीय पण्डितों ने निम्न काल कल्पना ही की। इन विद्वानों में श्री ईश्वरी प्रसाद ने हर्ष की मृत्यु को मध्ययुग का प्रारम्भ और मुगल विजयों पर उसका अन्त माना है। उनका यह मत बहुत अंश में हमने मान्य किया है परन्तु हमने हर्ष की मृत्यु के बाद (६४७) से पृथ्वीराज की मृत्यु पर्यंत ११९२ ई० तक मध्ययुग माना है। इस युग को हमने दो भागों में विभक्त किया है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(१) कन्नौज काल—पहिला भाग कन्नौज काल है, जो हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद लगभग २०० वर्ष तक चलता है। इस काल में कन्नौज ही उत्तर भारत की राजनैतिक और सांस्कृतिक क्रान्ति का केन्द्र बनता है। गुप्त वंश ने ई० स० ३२० से ४५५ तक के लगभग १७५ वर्षों के राज्य काल में एक नई सुदृढ़ और संगठित हिन्दु सभ्यता को उत्तर भारत में जन्म दिया। और अपनी पूर्ववर्तिनी तथा उत्तर कालीन अराजक भूमि को बहुत सुरम्य बनाया। इसके बाद महाराज हर्षवर्धन का समृद्ध और प्रभावशाली ४१ वर्ष का शासन—जो निस्सन्देह गुप्तकालीन राज्यसत्ता की पृष्ठभूमि पर सम्पन्न था, गुप्त सभ्यता की अन्तिम झलक थी। हर्ष के पीछे दो शताब्दियों तक तो कन्नौज ही उत्तर भारत का उन देशी विदेशी आक्रान्ताओं का लक्ष्य-बिन्दु बना रहा—जो अपनी प्रबल सत्ता रखती थीं।

२–राजपूत काल—हर्ष की मृत्यु के बाद ४०० वर्षों तक बहुत से विदेशी आक्रान्ताओं ने भारत में पदार्पण किया। वे सब यहां के निवासियों में मिश्रित हो गए। पूर्व आक्रान्ता, जिन्हें चन्द्रगुप्त द्वितीय और यशोधर्मन विक्रमादित्य ने परास्त किया था, वे प्रथम ही यहां के निवासियों से मिल चुके थे। परन्तु यह मिश्रण हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद बहुत बढ़ गया। इससे भारतीय उपजाति विभाग में एक नई वृद्धि हुई। और राजपूतों की एक नई जाति बनी। जो प्राचीन वंशों से पृथक् थी, और उसकी भिन्न-भिन्न अनेक शाखाऐं थीं। इस मध्ययुग में उसने अपने पृथक् राजपूत नए वंश और नए राज्य स्थापित कर लिए। हम इस लगभग २५० वर्ष के काल को जिसका प्रारम्भ कन्नौज पतन से है और समाप्ति पृथ्वीराज के पतन पर, राजपूत काल कहते हैं—जो मध्ययुग का दूसरा भाग है।

२—कन्नौज काल

[ई० स० ६४७ से ८४३ तक=१९६ वर्ष]

हर्ष की मृत्यु के बाद—ई० स० ६४७ में हर्ष की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु होते ही उत्तरी भारत में अराजकता फैल गई। ई० स० ५९८ में दुर्लभवर्द्धन ने हर्ष के जीवन काल ही में काश्मीर में कारकोर वंश की स्थापना कर ली थी[1] तथा गुजरात में मैत्रिक वंश ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी। मगध द्वितीय गुप्त वंश की शक्तियों का केन्द्र बन गया। समस्त देश में छोटी-छोटी रियासतें बन गईं। और उनमें कन्नौज पर अधिकार करने के लिए संघर्ष होता रहा, जो दो शताब्दी तक चलता ही रहा। कन्नौज पर कभी कोई और कभी कोई अधिकार करता रहा। इसलिए यह काल उत्तरी भारत में कन्नौज काल कहा जा सकता है।

१—रमेशचन्द दत्त; आर्य सभ्यता का इतिहास। भाग ४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तिब्बत पर अधिकार—हर्ष की मृत्यु होने पर उसके एक आमात्य अर्जुन ने कन्नौज अधिकृत कर लिया। उसने एक बार किसी कारण वश अपने दरबार में उपस्थित चीनी राजदूत पर आक्रमण कर दिया, जिस पर तिब्बत के राजा श्रांग-स्तमसगम ने चढ़ाई कर अर्जुन को बन्दी कर लिया। इसके बाद आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक कन्नौज तिब्बत का आधीन राज्य रहा।

यशोवर्मन—आठवीं शताब्दी के लगभग यशोवर्मन ने कन्नौज अधिकृत किया। और विहार के राजा जीवगुप्त को हरा कर विहार और बंगाल अधिकृत कर लिया। इस प्रकार यशोवर्मन संयुक्त प्रान्त बंगाल और विहार का राजा हो गया, और कन्नौज फिर उत्तर भारत का प्रमुख नगर बन गया। यशोवर्मन ने काश्मीर के ललितादित्य से मैत्री कर उसकी सहायता से तिब्बत पर आक्रमण कर दिया, पर सफलता नहीं मिली। अन्त में ललितादित्य से उसकी मैत्री भी भंग हो गई और दोनों में युद्ध हुआ, जिसमें ई० स० ७४० में ललितादित्य ने यशोवर्मन को परास्त किया। यशोवर्मन जैसा महान् योद्धा था, वैसा ही साहित्य मर्मज्ञ भी था। संस्कृत का प्रसिद्ध कवि, महावीर चरित–उत्तर रामचरित और मालती माधव का यशस्वी प्रणेता भवभूति उसी की राजसभा की शोभा बढ़ाता था। प्राकृत का महाकवि वाक्पति—जिसने यशोवर्मन की विजय यात्राओं का वर्णन किया है, उसका सभा-पण्डित था। यशोवर्मन की पराजय के बाद भी कन्नौज पर अधिकार यशोवर्मन के उत्तराधिकारियों ही का रहा।

यशोवर्मन के बाद—ललितादित्य के पुत्र जयापीड़ ने कन्नौज के राजा वज्रायुध को परास्त कर इन्द्रायुध को वहाँ का राजा बनाया—परन्तु ई० स० ८७५ में मगध के राजा धर्मपाल ने उसे पदच्युत कर अपने आश्रित चक्रायुध को कन्नौज की गद्दी दी। इसके बाद गुर्जर प्रतिहार राजा नागभट्ट ने कन्नौज पर चढ़ाई कर चक्रायुध को परास्त किया और कन्नौज पर अपना अधिकार जमाया। तब से ११वीं शताब्दी के मध्य तक कन्नौज पर प्रतिहारों का राज्य रहा। यही प्रतिहार वंश आगे चल कर 'परिहार' राजपूत वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि बीच-बीच में दक्षिण के राष्ट्रकूटों तथा बंगाल के पालों ने कन्नौज पर अल्प कालीन अधिकार किया—पर वह हर बार परिहारों के हाथ में चला गया। परिहार वंश के राजा भोज के काल में परिहारों का फिर बल बंधा और कन्नौज फिर से उत्तरी भारत का केन्द्र बना। भोज ने ई० स० ८४३ से ८९० तक राज्य किया। इसने चेदी के राज्य और बंगाल के पालों को जीता। लगभग सारे उत्तर भारत पर उसका राज्य फैल गया। इसके बाद उसका पुत्र महेन्द्रपाल गद्दी पर बैठा। प्रसिद्ध कविराज शेखर—जिसने प्राकृत कर्पूर मंजरी लिखा है, इसी का गुरु था। इसी के शासन काल में अरब यात्री अलमसउदी भारत में आया। महेन्द्रपाल पिता की भाँति सशक्त राजा न था। अतः राष्ट्रकूटों से बारम्बार संघर्ष होते रहने से परिहारों का बल क्षीण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हो गया, और जब ई० स० में महमूद गजनवी ने राज्यपाल के काल में कन्नौज पर आक्रमण किया। तो उससे कुछ भी करते करते न बन पड़ा, तथा महमूद ने एक ही दिन में उसके सात दुर्ग जय कर लिए।

इसके बाद गहरवार वंश ने कन्नौज अधिकृत किया। यही वंश आगे राठौर कहाया। बारहवीं शताब्दी तक उसका प्रताप प्रबल रहा। इस वंश के राजा जयचन्द ने राज सूय यज्ञ किया। परन्तु उसकी और दिल्ली के चौहान राजा पृथ्वीराज की ईर्षाग्नि में अन्ततः भारत का भाग्य फूटा, और ई० स० १०३७ में मुहम्मद गोरी ने दिल्ली और कन्नौज के दोनों राज्यों पर अधिकार कर लिया।

इस प्रकार हर्षवर्धन के समय से मुस्लिम विजय तक आठवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक, कन्नौज उत्तरी भारत का मध्य बिन्दु अवश्य बना रहा, और इन चार सौ वर्षों तक के भारत का सांस्कृतिक विकास भी कन्नौज में केन्द्रित रहा। परन्तु कन्नौज का प्राधान्य ई० स० ८४३ के बाद भोज की मृत्यु होने पर समाप्त हो गया।

३—राजपूत काल

(राजपूतों के राजवंश)

बल्लभी वंश—गुप्तवंश के पराभव होने पर एक हूण सेनापति भटार्थ स्वतन्त्र हो गया, और उसने सौराष्ट्र के वल्लभी वंश की स्थापना की। भटार्थ वीर सेनानी था। इसका काल ४६० ई० के लगभग है। भटार्थ के चार पुत्र हुए। धरसेन (प्रथम), द्रोणसिंह, ध्रुवसेन (प्रथम) धरपत्त। इनमें से द्रोणसिंह ने कन्नौज के महाराज से राजा की पदवी पाई, और वह श्री महाराज कहाया। उनके शेष दो भाई भी श्री महाराज ध्रुवसेन और श्री महाराज धरपत्त कहाए। धरपत्त का पुत्र गुहसेन पराक्रमी था। उसका पुत्र धरसेन द्वितीय दानी था। इस राजवंश की सूची प्राप्त लेखों से इस प्रकार वंशवृक्ष बनाती है :—

(अगले पृष्ठ पर देखिए)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भटार्क
(४६० ई० के लगभग)

- धरसेन (प्रथम)
- द्रोणसिंह
- ध्रुवसेन (प्रथम) (५२६ ई०)
- धरपत्त
  - गुहसेन (५५९ ई० | ५६७ ई०
    - धरसेन (द्वितीय) (५७१ ई० | ५८९ ई०)
      - शीलादित्य प्रथम (६०५–६०९ ई०)
        - देरभट
          - शीलादित्य द्वितीय, खरग्रह द्वितीय, ध्रुवसेन तृतीय ६५७ ई०
            - शीलादित्य तृतीय ६७८ ई०
              - शीलादित्य चतुर्थ ६९१ ई०
                - शीलादित्य पंचम ७२२ ई०
                - शीलादित्य षष्ठ ७६० ई०
                - शीलादित्य सप्तम् ७६६ ई०
      - खरग्रह प्रथम
        - धरसेन तृतीय
        - ध्रुवसेन द्वितीय ६२१ ई०
          - धरसेन चतुर्थ ६४५ ई०

इस प्रकार इस वंश के अन्तिम राजा शीलादित्य सप्तम ने आठवी शताब्दी के अन्त तक राज्य किया।

चीनी यात्री हुऐन सांग ने वल्लभी लोगों को सम्पन्न और उनके नगर को समृद्ध पाया था।

राजपूत पच्छिमी भारत के प्रभुत्त्व में वल्लभी वंश के उत्तराधिकारी हैं। जिस समय आठवीं शताब्दी में वल्लभी वंश पतनोन्मुख हो रहा था। राजपूतों का प्रभुत्त्व पच्छिमी भारत में बढ़ रहा था। आठवीं शताब्दी के अन्त में वल्लभी लोगों के स्थान पर राजपूत प्रबल हुए, और वल्लभीपुर का पतन होकर पाटन का उदय हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आठवीं शताब्दी ही में उज्जैन और कन्नौज के वंशों का लोप हो गया, और फिर दसवीं शताब्दी तक उत्तर भारत का इतिहास पूर्णतया शून्य रहा। सम्पूर्ण उत्तरी भारत में इस काल की स्थापत्य कला का एक भी नमूना हमें देखने को नहीं मिलता।

वास्तव में आठवीं शताब्दी का अन्धकार युग युद्धों और अराजकता तथा प्राचीन प्रणालियों और वंशों के नाश का युग है।

बंगाल और उड़ीसा के राज्य—बौद्ध काल के अन्त तक बंगाल एक सशक्त राज्य रहा। सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गौड़ के निकट कर्ण सुवर्ण के राजा शशाँक ने प्रतापी शीलादित्य के बड़े भाई को युद्ध में परास्त कर मार डाला था। ६४० में ह्वेन साँग ने पुण्ड्र, समतत, कामरूप, ताम्रलिप्त और कर्ण सुवर्ण के समृद्ध और प्रबल राज्य देखे थे। ये राज्य आधुनिक हिसाब से राजशाही; ढाका, आसाम, वर्दवान और प्रेसेडेन्सी डिवीजनों में थे। इस के बाद बंगाल और उड़ीसा में पाल और सेन वंश ने नवीं, दशवीं शताब्दी में राज्य किए। पाल वंशी बौद्ध थे, और पच्छिमी और उत्तरी बंगाल पर शासन करते थे। सेन वंशी पूर्वी बङ्गाल के शासक थे, यही वंश पाँच ब्राह्मणों और पांच कायस्थों को कन्नौज से लाया था। आगे चल कर इनका वंश बढ़ा, और वे बङ्गाल में फैल गए। इस वंश की राजधानी ढाके के निकट विक्रमपुर थी। ये लोग हिन्दुधर्म मानते थे, और सम्भवतः सौराष्ट्र के वल्लभी कुल से सम्बन्धित थे।

मगध और बङ्गाल का पालवंश—बौद्ध काल के अन्त तक बङ्गाल एक सशक्त राज्य रहा। सातवीं शताब्दी के अन्त में हर्ष के प्रतिस्पर्द्धी शशाङ्क की मृत्यु के बाद बंगाल में अराजकता फैल गई। इस से क्षुब्ध हो कर वहाँ की प्रजा ने गोपाल नामक एक बौद्ध को अपना राजा बना लिया था। इसी ने पाल वंश की नीव डाली थी। उसके बाद उसका पुत्र धर्मपाल राजा हुआ। वह एक प्रभावशाली राजा था। उसने मगध को जय किया- और कन्नौज के इन्द्रायुध को परास्त किया, और चक्रायुध को राजा बनाया। इस पर इन्द्रायुध ने प्रतीहार राजा नाग भट्ट द्वितीय की शरण ली। उसने प्रतिहारों का संघ बना कर इन्द्रायुध की सहायता की। इससे धर्मपाल और चक्रायुध परास्त हुए। परन्तु इसी समय दक्षिण के राष्ट्र कूट राजा गोविन्द तृतीय ने प्रतिहार नाग भट्ट द्वितीय और धर्मपाल को हराकर उत्तरी भारत में राष्ट्र-कूटों का राज्य स्थापित किया—परन्तु वह स्थिर न रहा। धर्मपाल के पुत्र देवपाल ने फिर कन्नौज को अधिकृत कर लिया।

धर्मपाल का राज्य कन्नौज से विन्ध्याचल पर्यन्त फैला था। उसने विक्रमशिला और उदन्तपुर के विश्वविद्यालयों की स्थापना की। उसका उत्तराधिकारी देवपाल भी प्रसिद्ध राजा था, उसने कलिंग पर विजय की। यह कला और साहित्य का प्रेमी था। उसने नालन्द के मन्दिर का जिसे जावा और सतवन के राजा ने बनवाया था, पुनः निर्माण कराया, और सुन्दर प्रतिमाएं स्थापित की। परन्तु उसके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उत्तराधिकारी से प्रतीहार भोज ने कन्नौज छीन ली। इसके बाद इस वंश में महीपाल ने कुछ प्रवलता प्राप्त की। परन्तु आगे यह वंश क्षीण होता गया, और बारहवीं शताब्दी में सैन वंश ने उसे बंगाल से निकाल बाहर किया। अब उसका मगध पर एक छोटा सा राज्य रह गया। और उसकी शक्ति इतनी अल्प रह गई—कि जब मुहम्मद गौरी के सेनानी वख्तियार को खिलजी ने विहार पर केवल २०० सिपाही ले कर आक्रमण किया; तो उससे वह नहीं रोका गया, और वख्तियार ने भेड़ बकरी की तरह प्रजा को काट डाला—विहार अधिकृत कर लिया। मठों और मूर्तियों को विध्वंस कर दिया। नालन्द को तहस नहस कर दिया। सब बौद्ध भिक्षुओं को काट डाला। और बौद्धों का ऐसा विनाश किया—कि नाम को भी एक बौद्ध भारत में न रह गया।

इसमें सन्देह नहीं कि इस मुसलमान साहसिक की यह एक अद्भुत विजय थी, पर इसमें उसका शौर्य नहीं—तत्कालीन हिन्दु और बौद्ध राजाओं की अधोगति का ही प्रमाण मिलता है। यद्यपि पाल राजा सशक्त, कला प्रेमी, और प्रजा पालक थे। जावा और सुमात्रा के राजाओं से भी उनके मैत्री सम्बन्ध थे, परन्तु वे इतने असावधान थे कि साधारण आक्रमण से ही उनकी समाप्ति हो गई।

ये लोग दक्षिण के ब्राह्मण थे, और आजीविका की खोज में बंगाल में आए थे। इस कुल में शासन सत्ता की स्थापना ई० स० १०२० में सामन्त सैन ने की थी। इस वंश के वल्लाल सेन और लक्ष्मण सेन प्रमुख पुरुष हुए। वल्लाल सेन ने ही कुलीन प्रथा का बंगाल में प्रचलन किया, और अनेक संस्कृत ग्रन्थों की रचना कराई। लक्ष्मण सेन ने इलाहाबाद तक अपना राज्य फैला दिया। गीत गोविन्द का रचयिता जयदेव इसी की सभा का रत्न था। अन्त में ई०१३०० में वख्तियार ने इसपर आक्रमण किया। लक्ष्मण सेन पूर्व की ओर भाग गया, और फिर कुछ देर टिमटिमा कर इस वंश का दीप बुझ गया।

उड़ीसा—उड़ीसा में दार्शनिक काल में आर्यों का आगमन हुआ। वहां चट्टानों में कटी हुई गुफाओं और भवनों में वहां के प्राचीन आर्यों के अवशेष हैं। जो बंगाल में नहीं हैं। इन गुफाओं में बौद्ध भिक्षुओं ने निवास किया था। इनमें से कुछ अशोक से प्रथम की है। कटक और पुरी के बीचों बीच जंगल में दो वलुए पत्थरों की पहाड़ियां एकाएक उठी हुई हैं, इनकी चोटियों पर तथा उनके चारों ओर अनेक कोठरियां और गुफाएं तथा इमारतें हैं। पीछे की खोदी हुई कुछ बड़ी २ गुफाएँ भी हैं, उनमें पत्थर की नक्काशी तथा स्थपत्य के अच्छे नमूने हैं। ये उत्तम बौद्ध गुफाऐं निश्चय ही अशोक की कलिंग विजय के पीछे बनाई गई थीं[1]।

यहां के बौद्धा यमन राजाओं को ई० स० ४७४ में निकालकर ययाति केसरी

१—एशियाटिक रिसर्चेज ११वां भाग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

State Museum, LUCKNOW.

ने केसरी वंश को स्थापित किया ।तथा पौराणिक धर्म की प्रतिष्ठा की । इस वंश ने सात शताब्दियों तक राज्य किया । उड़ीसा का प्राभाणिक इतिहास इसी वंश से प्रारम्भ होता है, इस वंश में ई० स० ४७६ से ई० स० ११३२ तक कुल ४५ राजा हुए । इनकी राजधानी भुवनेश्वर थी, जिसे उन्होंने मन्दिरों और भवनों से सुशोभित किया । जो आज भी भारतीयस्थपत्य कला के आदर्श हैं । नृप केसरी ने ई० ९४१–९५४ में कटक नगर की नींव डाली । ये राजा शैव रहे और सम्भवतः भुवनेश्वर की प्राचीन शिव मूर्ति के उपासक रहे ।

काश्मीर—हूणों के पराभव के बाद विक्रमादित्य ने मातृगुप्त को काश्मीर में शासन करने के लिए भेजा । उसी वंश का सातवां राजा दुर्लभवर्द्धन ई० स० ५९८ में काश्मीर की गद्दी पर था । इस वंश का अधिकार ई० स० ११२७ तक काश्मीर पर रहा और इस बीच ६१ राजाओं ने इस भाग पर राज्य किया ।

इस वंश के विक्रमादित्य दूसरे राजा उत्तराधिकारी प्रवरसेन ने प्रथम शिलादित्य को युद्ध में पराजित किया और विक्रम का वह प्रसिद्ध सिंहासन ले आया जो उसने विजय के चिन्ह स्वरूप प्राप्त किया था तथा सिंहासन बत्तीसी ने जिसे विख्यात कर दिया है । इस वंश का दूसरा राजा ललितदित्य ई० स० ६९७ में हुआ, जिसने ३० वर्ष राज्य किया । इसने कन्नौज के राजा यशोवर्मन को परास्त किया और उसके दर्बारी कवि भवभूति को अपने साथ लाया जो कालिदास के बाद सर्व-श्रेष्ठ नाटककार है । उसने पूर्व और दक्षिण की ओर बढ़कर कलिंग गौड़ और कर्नाटक को भी जय किया तथा समुद्र के द्वीपों को भी जय किया । अन्त में हिमालय पार करने के प्रत्यत्न में उसकी मृत्यु हुई । उसने बहुत से भवन निर्माण कराए–वह मुहम्मद बिनकासिम का समकालीन था और सम्भवतः कासिम के उत्तराधिकारी सिन्ध के अधिकारी को भी उसने जय किया था वज्रादित्य–जिसने ७३४ से ७४१ ई० तक राज्य किया एक बदनाम राजा था । उसकी बहुत सी स्त्रियां थीं और उसने बहुत लोगों को म्लेच्छों के हाथ बेच डाला था ।

प्रतापी जयापीड़ ने ७४५ से ७७६ ई० तक ३१ वर्ष राज्य किया । इसने पाणिनी पर पातञ्जलमहाभाष्य को संग्रहीत करने और उसका नए सिरे से सम्पादन करने में विद्वानों को नियोजित किया । उसने पौन्ड्रवर्धन—गया के राजा जयन्त की पुत्री कल्याणी देवी से विवाह किया । और नैपाल पर चढ़ाई की, परन्तु वहां उसे बन्दी होना पड़ा ।

अवन्तिवर्मन ने ई० स० ८५५ में एक नए वंश को स्थापित किया । और उसने २८ वर्ष राज्य किया । उसने सिन्धु और वितस्ता पर बड़े २ बांध बंधवाए और उनकी धाराओं को बदला । वह इस वंश का पहला वैष्णव राजा था । उसका पुत्र शंकरवर्मन भी बड़ा विजयी हुआ । जो ब्राह्मणों के षड़यन्त्र से मारा गया । उसकी दुराचारिणी रानी सुरन्ध्रा ने तांत्रिकों और एकांगों की सहायता से २ वर्ष राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किया । पीछे इन लालची लोगों ने एक से एक बढ़कर अयोग्य और दुराचारी राजाओं को गद्दी पर बैठाया–उतारा । जिनमें क्षेमगुप्त (९५०–९५८) में सबसे अधिक निर्लज्ज था । उसके पुत्र अभिमन्यु ने १४ वर्ष राज्य किया। उसके उपरांत उसकी माता दिद्दा ने तीन बालक राजाओं को मारकर २३ वर्ष (९८० से १००३) तक राज्य किया । जिस समय काश्मीर की स्वर्ग भूमि को ये दूषित राजे कलंकित कर रहे थे, उस समय भारत का सबसे बड़ा शत्रु महमूद गजनवी भारत को रोंदने की तैयारी कर रहा था । पिता का राज्य समाप्त होने से प्रथम ही उसका प्रथम आक्रमण भारत पर हो गया । ईसा की बाहरवीं शताब्दी में कल्हण ने राज तरगिणी लिखी । जिसमें ८वीं शताब्दी के बाद का काश्मीर राजवंश का इतिहास हैं ।

४––पंजाब और सिन्ध

पंजाब––हर्ष के समय में पंजाब में कुशन वंश के राजा शासन कर रहे थे । ई० स० ९८५–१००१ में जब जयपाल वहाँ का शासक था; सुबुक्तगीन ने पंजाब पर आक्रमण किया । जयपाल ने अजमेर कन्नौज और दिल्ली के राजाओं की सहायता मांगी । सबने सहायता भेजी, पर जयपाल की पराज्य हुई । फिर १००१ के लगभग महमूद गजनवी ने जयपाल पर आक्रमण किया और उसे बन्दी बना लिया । इससे दुःखी होकर उसने अग्नि प्रवेश कर आत्मघात कर लिया । पंजाब पर उसका पुत्र आनन्द पाल राजा हुआ । इसके समय में ई० स० १०१३–२१ के बीच महमूद ने निरन्तर कई आक्रमण किए और उसके राज्य को खूब लूटा । पीछे उसका पुत्र त्रिलोचनपाल महमूद से परास्त हुआ और उसी के साथ साही वँश की समाप्ति हुई ।

सिन्ध––ई० ७०० के लगभग सिन्ध पर एक ब्राह्मण राजा दाहिर राज्य करता था उसका प्रभुत्व सारे सिन्ध और दक्षिण पंजाब पर था । और उसके आधीन अनेक राजा थे । एक प्रकार की प्राचीन संघ पद्धति पर उसका राज्य चल रहा था । ऐसे संघ शासक स्थानीय स्वराज्य के ही में रूप थे । जो स्वतन्त्र विकास के लिए उत्तम थे । तथा इनसे कला और साहित्य का भी विकास होता था । सभ्यता की प्रगति में भी ये सहायक थे । परन्तु इनसे राजनैतिक शक्ति की कमी ही होती थी । केन्द्रीय अधिकार की निर्बलता से नेतृत्व में बाधा होती, और किसी भी निर्बल राजा के शत्रु से मिल जाने का भय बना रहता था । प्रान्तीय एकता का भाव भी पुष्ट नहीं हो पाता था । आठवीं शताब्दी में जब सिन्ध पर आक्रमण हुआ, और उसके बाद ११ वीं शताब्दी में जब विदेशियों के आक्रमण का भारत को सामना करना पड़ा, तब यह सँघ शासन सदोष प्रमाणित हुआ ।

ई० स० ७१२ में ईराक के हाकिम हज्जाज ने अपने भतीजे मुहम्मद बिन-कासिम को सात हजार सवार देकर सिन्ध के दाहिर राजा के विरुद्ध कुछ डूबे हुए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जहाजों का बदला लेने के लिए भेजा। दाहिर परास्त हुआ और उसकी रानी ने जोहर किया। कासिम ने आगे बढ़कर सारे सिन्ध को आधीन कर लिया। युद्ध में उसने निर्दय व्यवहार किया, पर जय पाने पर सदय व्यवहार किया। परन्तु यह अरबी शासन देर तक न रहा। खलीफाओं के पारस्परिक विग्रह के कारण सिन्ध का अरब शासन ढीला हो गया और सिन्ध पर फिर हिन्दु राज्य स्थापित हो गया, जो बारहवीं शताब्दी तक चला। बारहवीं शताब्दी में वह फिर मुसलमानों के हाथ में चला गया जो ६ सौ वर्ष पर्यन्त रहा।

५—अन्य राजपूत वंश

चौहान—चौहानों ने साम्हर के आस पास अपना राज्य स्थापित किया था। बारहवीं शताब्दी के लगभग विग्रहराज चतुर्थ इस वंश का प्रबल प्रतापी राजा हुआ। उसने गुड़गांवा, दिल्ली और हरियाना प्रान्त तँवरों से छीन लिए। उसके उत्तराधिकारी पृथ्वीराज का कन्नौज के राठौर जयचन्द से विग्रह हुआ—फलतः दोनों राज्य तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ ही में मुसलमानों के हाथ में पहुँच गए। अजमेर भी जो चौहानों का मुसलमानों के हाथ जा पहुँचा। परन्तु चौहान रणथम्भोर में राज्य स्थापित करके बहुत काल तक मुसलमानों से लोहा लेते गए।

चन्देल—चन्देलों ने नवीं शताब्दी में अपने राज्य की स्थापना की। ये प्राचीन बुंदेलखण्ड के राजपूत थे। दसवीं शताब्दी के आरम्भ में ये प्रतिहारों की आधीनता से मुक्त हुए। उन्होन कलिंजर को जीता और कन्नौज के प्रतिहार राजा देवपाल को जीत कर अपनी कीर्ति बढ़ाई। इस वंश का प्रतापी राजा यशोवर्मन का पुत्र छंग था जिसने ई० स० ९५०–१००० में यमुना नदी तक अपने राज्य को बढ़ाया। खुजराहो के प्रसिद्ध मन्दिर इसी ने बनवाए। इस वंश के अन्तिम राजा परमाल को ई० स० ११८२ में पृथ्वीराज चौहान ने परास्त किया। अन्त में ई० स० १२०३ में कुतबुद्दीन ऐबक ने चन्देल राज्य पर अपना अधिकार कर लिया।

चन्देल राज्यों ने महोबा, कलिंजर आदि नगरों को मन्दिरों आदि से बहुत सम्पन्न किया और कृषि वाणिज्य की उन्नति की।

ग्वालियर—ग्वालियर जो प्रतिहार वंश का एक प्रान्त था, ई० स० ९९० में कछवाहा सरदार वज्रसदन ने उसे स्वतन्त्र राज्य का रूप दिया। ई० स० ११२८ में ग्वालियर चन्देलों के आधीन हो गया।

बघेलखण्ड के कलचुरी—चन्देल राज्य के दक्षिण जबलपुर के निकट बघेलखण्ड में कलचुरी वंश का राज्य था। इसकी राजधानी त्रिपुरी थी, और यह चेदि वंश परम्परा में था। बारहवीं शताब्दी के अन्त में यह राज्य रीवाँ के बघेलों के हाथ में चला गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मालवा के परमार - प्रतिहार वंश की समाप्ति पर मालवा के परमार स्वतन्त्र हो गए और ई० स० १०१८–६० में इस वश का प्रसिद्ध राजा भोज धारा नगरी को राजधानी बनाकर गद्दी पर बैठा। उसने ज्योतिष और साहित्य को प्रोत्साहन दिया। कला–काव्य और नाटक की नई शैलियों का प्रचार किया। विद्वानों को प्रश्रय दिया; पत्थरों पर काव्य, ज्योतिष और अलंकार के ग्रन्थ खुदवाए। तथा धार के विद्यालय को विशाल बनवाया। उसने अनेक पाठशालाएं खुलवाकर निरक्षरता नाश का बीड़ा उठाया। और २५० वर्ग मील से अधिक घेरे में भोजपुर झील पहाड़ों के पानी को रोक कर बनवाई। उसे गुजरात के सोलंकी और बघेलखण्ड के चेदि वंशों से युद्ध करना पड़ा, जिसमें पराजित होकर वह मारा गया। इस वंश के अन्तिम राजा भोज द्वितीय को अलाउद्दीन खिलजी ने परास्त कर मालवा को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

गुजरात के सोलंकी—इस वंश की स्थापना मूलराज प्रथम ने की थी। दसवीं शताब्दी तक ये प्रतिहारों के आधीन थे। इसके बाद स्वतन्त्र हो गए और अन्हिलपट्टन में राजधानी बनाई। इस वंश के राजा भीमदेव प्रथम के समय में महमूद गजनवी ने गुजरात पर आक्रमण कर प्रसिद्ध सोमनाथ के मन्दिर को लूटा। इस वंश का प्रतापी राजा कुमारपाल ११४३–७४ में था जिसके राज्य में प्रसिद्ध जैन विद्वान कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र सूरि था। इस वंश के अन्तिम राजा कर्णदेव को अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति ने परास्त कर गुजरात को खिलजी साम्राज्य में मिला लिया तथा उसकी रानी और पुत्री को भी हरण किया।

६—दक्षिण के राजवंश

आन्ध्र—आन्ध्रों का प्राचीन राज्य दक्षिण भारत में मसीह के पूर्व ही प्रथम शताब्दी ही से विद्या और स्मृति के सूत्रों का सम्प्रदाय स्थापित कर चुका था। ईस्वी सन के उपरान्त आन्ध्रों ने मगध और उत्तरी भारतवर्ष पर अधिकार जमाया था। आन्ध्रों और गुप्तों के पराभव के बाद वल्लभी लोग गुजरात और पश्चिमी भारत के स्वामी हुए। उनके उत्तराधिकारी राजपूत थे।

चालुक्य वंश—जिस काल में वल्लभी लोगों का गुजरात में उदय हो रहा था, दक्षिण में चालुक्यों की एक राजपूत शाखा प्रबल होती जा रही थी। इस शाखा का मूल प्रवर्तक पांचवी शताब्दी के मध्य काल में पुलकेशी प्रथम था, जो हूण वंश परम्परा में था। इस प्रतापी राजा ने वातापि को राजधानी बना अश्वमेध यज्ञ किया था। और पृथ्वीवल्लभ की उपाधि धारण की थी। उसके उत्तराधिकारियों ने सम्पूर्ण बम्बई प्रेसीडेन्सी और हैदराबाद के वर्तमान राज्य को अपने राज्य में मिला लिया था। इसी वंश के राजा पुलकेशिन द्वितीय ने ई० स० ६०८–६४२ में गुजरात, तेलगू और मध्य प्रान्त के पूर्वी भू भाग को जो महाकोशल कहाता था,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधिकृत कर लिया था। तथा कर्नाटक को विजय कर अपने भाई को वहां का राजा बनाया था। हर्ष को इसने युद्ध में परास्त किया, जिस से इन दोनों नृपतियों में सन्धि हो गई। और नर्वदा नदी दोनों राज्यों की सीमा निर्धारित हो गई। यह महानृपति अपने निकटवर्ती पल्लवराज नरसिंहवर्मन द्वारा परास्त होकर भाग गया। यह अपने समय का विख्यात राजा था। फारिस के राजा खुसरू द्वितीय से उसकी मित्रता थी। अजन्ता गुहा में एक चित्र अंकित है; जिसमें खुसरो द्वितीय का राजदूत पुलकेशिन द्वितीय को सम्राट का पत्र भेंट कर रहा है। उसके उत्तराधिकारियों से पल्लव राज्य का संघर्ष चलता रहा, अन्त में कीर्तिवर्मन द्वितीय को राष्ट्रकूट राजा दन्तिवर्मन ने परास्त कर चालुक्य सत्ता की समाप्ति की।

यह वंश हिन्दु धर्म का अनुयायी तथा कला और साहित्य का उन्नायक था। उसके शासन काल में अगणित मन्दिर तथा विशाल भवन तैयार हुए।

द्वितीय चालुक्य वंश--पुरातन चालुक्य वंश के भंग हो जाने पर उसी की एक शाखा का उदय ई० स० ९७३ में तैलप द्वितीय ने कल्याणी में द्वितीय चालुक्य वंश की स्थापना की। उसने सुदूर दक्षिण के चौलो को, गुजरात के चालुक्यों को, तथा चेदि और परमारों को पराजित किया। चोल चालुक्य संघर्ष कई पीढ़ी तक चला। इस वंश में अनेक प्रतापी राजा हुए जिनमें सोमेश्वर प्रथम और विक्रमादित्य षष्ठम् प्रमुख हैं। ई० स० ११५६ में तैलप तृतीय के काल में इस वंश का पराभव हुआ और उसके सेनापति विज्जल ने यह राज्य अधिकृत कर लिया। उसी के राज्य में लिंगायत नामक एक नया शैव सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ।

इसी की एक शाखा पूर्वी चालुक्य की रही। पुलकेशी द्वितीय ने कलिंग और आन्ध्र को जय कर अपने भाई को राजा बना दिया था। उसने मद्रास के गोदावरी जिले में वेनगी नामक स्थान को अपनी राजधानी बनाया। तथा उसके पुत्र जयसिंह ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। जिसे राजेन्द्र चोल ने ई० स० ११६४ में पराजित किया। ई० स० ११९० में कल्याणी के चालुक्य पूर्णतया पराजित हुए और उनके स्थान पर तीन नए वश स्थापित हुए।

१--द्वार समुद्र के होयसल

२--देवगिरि के यादव

३--वारगल के काकतीय

होयसल वंश का ई० स० १११०-११३० में मैसूर के समीपवर्ती प्रदेश पर अधिकार रहा। ई० स० १३१० में अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफूर ने इस राज्य को अपने साम्राज्य में मिलाया।

देवगिरि का यादव वंश ई० स० ११७८ में उन्नत हुआ और देवगिरि के समीपवर्ती प्रदेश पर अधिकार कर बैठा। १२१०-१२२४ में इस वंश के राजा सिन्धन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने गुजरात जय कर चालुक्यों की समता पर साम्राज्य स्थापित करना चाहा, परन्तु ई० स० १२९४ में अलाउद्दीन ने इसे अपने साम्राज्य में मिला लिया।

वारंगल काकतीय वँश तैलंगाना (हैदराबाद) के पूर्वी भागों पर राज्य करते थे। यह वश १३१० ई० में मलिक काफूर द्वारा परास्त हो कर खिलजी साम्राज्य में मिल गया।

पल्लव वंश--कोची का पल्लव वंश प्राचीन था इस वंश के राजा महेन्द्र वर्मन नृसिंह वर्मन, प्रसिद्ध हुए। नृसिंह वर्मन ने ही पुलकेशिन द्वितीय को पराजित किया था। उसने लंकाधिपति को आश्रय दिया। यह वंश ९वीं शताब्दी में समाप्त हुआ। पल्लव राज्य संस्कृत साहित्य का मुख्य केन्द्र था। उसकी राजधानी काँची थी इस वंश ने बड़ी २ इमारत बनवाईं।

पाण्डय--कृष्णा नदी के दक्षिण और द्रविड़ों के प्राचीन देश में जो कन्या कुमारी तक फैला हुआ था, पाण्डयों ने ईसा की पहिली शताब्दी में अपना राज्य जमा लिया था। जो ऐसा समृद्ध और सभ्य था कि पच्छिमी जातियों के साथ उसका व्यापार विनिमय चलता था। इस राज्य की राजधानी दो बार बदली गई। और अन्त में मदुरा में नियत हुई। और यहीं वह टालेमी के समय तक तथा उसके बाद तक भी रही। यह राज्य भारत के एक दम दक्षिण से उस भाग में है, जिसमें आजकल टिन्नीवेली और मदुरा के जिले सम्मिलित हैं। इसके उत्तर की ओर चोल राज्य की स्थापना हुई थी जो गोदावरी के समीप और उसके उत्तर की ओर फैला हुआ था। इसकी राजधानी काञ्ची थी यह नगर संस्कृत साहित्य में विद्या के लिए अति प्रसिद्ध है। और ह्वेनत्सांग ने उसे सब भाँति सम्पन्न देखा था। उस समय इस विद्या के केन्द्र के सम्बन्ध उत्तर में कन्नौज और उज्जैन के साथ जुड़े हुए थे। ८वीं शताब्दी के उपरान्त यह राज्य कर्नाटक और कलिंग के बहुत निकट तक फैल गया था। ई० स० १३१०-११ में इसे मलिक काफूर ने खिलजी राज्य में मिला लिया।

चेर और चोल वंश—चेर वंश प्राचीन था, उसके आधीन बड़े २ बन्दरगाह और व्यापार केन्द्र थे।

चोल के प्राचीन वंश में कारोमण्डल और मद्रास का तटवर्ती देश था। इस वंश के राजाओं ने मदुरा और लंका के राजाओं को जीता, और त्रिचनापल्ली के निकट उरपुर को राजधानी बनाया। इस वंश के राजा राज राज महान ने ई० स० ९८५ में समस्त दक्षिण भारत को जय किया। उसने लंका पच्छिमी समुद्र तट, पूर्वी चालुक्य राज्य और कलिंग को जय किया, मालावार के समुद्र तट को विध्वंस कर के चेर राज्य को क्षति पहुंचाई, पाड्यों को परास्त किया। वेनगी के राजा से सन्धिकर उससे विवाह सम्बन्ध स्थापित किया। उसने तंजौर के प्रसिद्ध मन्दिर का निर्माण किया। उसका उत्तराधिकारी राजेन्द्र चोल भी बड़ा प्रतापी था। उसने पीगु अन्डमान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और निकोवार द्वीपों पर अधिकार किया, मैसूर के गंग वंश और चालुक्यों को हीन-शक्ति किया। त्रिचनापल्लीं में नई राजधानी बनाई। विहार बंगाल के राजा महीपाल को पराजित किया। त्रिचनापल्ली को अट्टालिकाओं से सुसज्जित किया। ई० स० १३१० में यह राज्य खिलजी साम्राज्य में मिला लिया गया।

दक्षिण भारत की संस्कृति में चोल कला का भारी प्रभुत्व है। इसमें विदेशी कला का मिश्रण नहीं है। चोल नरेश कला और विज्ञान के बड़े हिमायती थे। तंजौर और चोलापरम के सुन्दर और विशाल मन्दिर चोल स्थापत्य कला के उत्तम उदाहरण हैं। चोल कला के उदाहरण हमें लका और जावा में भी मिलते हैं यह स्पष्ट है कि चोल केवल महान शासक ही नहीं, निर्माता भी थे। उन्होंने दिल खोलकर भव्य भवनों का निर्माण किया था।

उनका राज्य प्रबन्ध दायित्वपूर्ण और व्यवस्थित था। प्रजा की सुख सुविधा के सम्पूर्ण साधनों पर विकास किया गया था। उनके पास स्थल और जल की सशक्त सैन्य थी। यह वह काल था जब सम्पूर्ण भारत में छोटी २ रियासतें बनी हुई थीं और ये परस्पर ईर्षा द्वेष के वशीभूत होकर लड़ती रहतीं थी। जिसके कारण मुसलमानों के आक्रमण निरन्तर सफल होते रहे थे। चोल राजा स्वेच्छाचारी न थे। उन पर समितियों का नियन्त्रण था। उत्तराधिकारी को मन्त्री चुनते थे। यह यद्यपि वंश परंपरागत ही होता था।

पाण्डय—पाण्डय वंशीय राजा जैन हो गए थे, परन्तु आगे चलकर जैन धर्म दक्षिण से लोप हो गया था। पल्लव राजधानी कांचीवरम में अनेक बौद्ध विहार थे। युवानचाङ्ग ने यहां १० हजार भिक्षु देखे थे। प्रसिद्ध भिक्षु धर्मपाल जो तक्षशिला का आचार्य और युवानचाङ्ग का शिक्षक था; यहीं का था। जैनों और ब्राह्मणों के संघर्ष से यहां शैव और वैष्णव सम्प्रदायों की स्थापना हो गई थी।

दक्षिण के इन तीनों राज्यों का विस्तार भिन्न वंशों और राजाओं के अधिकार के अनुसार घटता बढ़ता रहा। पाण्डय ही सबसे प्राचीन थे। परन्तु ई० स० के उपरान्त चोल और कांञ्ची के राजा सब से प्रसिद्ध और प्रबल हो गए। और वे चालुक्यों की पूर्वी शाखा से युद्ध करते रहे।

दसवीं शताब्दी के अन्त में मैसूर में एक प्रवल राजपूत वंश 'वल्लाल वंश' का उदय हुआ। ११ वीं शताब्दी में उन्होंने सारे कर्नाटक को अपने आधीन कर लिया, और पच्छिमी चालुक्यों के दक्षिणी राज्य को भी अपने राज्य में मिला लिया। यह वंश १४ वीं शताब्दी के प्रथम चरण तक कर्नाटक और मालावार में सर्व प्रधान रहा। ई० स० १३१० में मुसलमानों ने इसका अन्त किया।

राष्ट्र कूट—राष्ट्रकूटों का वंश दक्षिण में प्राचीन था। परन्तु इस वंश के दन्ती दुर्ग ने चालुक्य राजा कीर्तिवर्मन को परास्त कर इस वंश को उन्नत किया, उस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ने मान्यखेट (मालखेड़-हैदराबाद) को राजधानी बना, कांची और कलिंग को जय कर अपने राज्य को अति विस्तृत कर लिया। परन्तु उसके व्यवहार से असन्तुष्ट हो, राजपुरुषों ने उसके चचा कृष्ण प्रथम को गद्दी पर बैठाया। कृष्ण प्रथम (७६० से ७७५) तक राजा रहा। इसने ऐलोरा का प्रसिद्ध कैलाश मन्दिर बनवाया। इस वंश के राजा ध्रुव ने उत्तर की ओर बढ़ कर पाल प्रतिहारों को परास्त कर कन्नौज अधिकृत किया। इसके बाद इस वंश में गोविन्द तृतीय, अमोघवर्ष और कृष्ण तृतीय प्रमुख राजा हुए। अमोघवर्ष जैन था और प्रसिद्ध जैन ग्रंथ 'रत्नमालिका' का वह रचियता था। कृष्ण तृतीय ने कांची और तंजौर चोल वंश से जय किये। इस वंश के अन्तिम राजा कर्क को द्वितीय चालुक्य राजा तैलक ने परास्त किया, और तब से कल्याणी के चालुक्यों का राष्ट्रकूट साम्राज्य पर अधिकार हो गया। राष्ट्र कूटों की सिन्ध के अरब राज्य से मित्रता रही। वे कला-व्यापार तथा संस्कृत साहित्य को प्रोत्साहन देते रहे। ऐलोरा का उनका कैलाश मन्दिर संसार की अद्भुत वस्तुओं में से एक है।

७--दक्षिण संस्कृति

दक्षिण के इन सब राज्यों पर जिन का हम ने उल्लेख किया है, द्रविड-संस्कृति की छाप थी। द्रविड जाति वर्गों में विभक्त थी, जो व्यवसाय के अनुसार बने थे।[1] इन वर्गों में कृषक, ग्वाल, मछेरे, शिकारी और विविध कार्य कर्त्ता थे। इनके ये वर्ग व्यवसाय के आधार पर थे, जन्म से नहीं। स्त्रियों में परदा न था। बहु विवाह होते थे। वे अच्छे अतिथि सत्कार करने वाले थे। चावल, माँस उन का भोजन था, पहले वे वृक्षों और सूर्य की पूजा करते थे। पीछे जैन बौद्ध तथा वैष्णव धर्म के प्रभाव में आकर इन्द्र, विष्णु, वरुण और कृष्ण की उपासना करने लगे थे।

चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में ही जैनों ने दक्षिण में बसना प्रारम्भ कर दिया था, जब पाण्ड्य राजाओं ने जैनधर्म स्वीकार किया। तब जैन धर्म प्रबल हुआ, परन्तु पीछे यह धर्म वहां से लोप हो गया।

बौद्धों का प्रसार अशोक काल में हुआ। परन्तु इसकी जड़ वहाँ न जमी। और उपर्युक्त तीन हिन्दु धर्म गुरुओं ने जैनों और बौद्धों के प्रभाव से दक्षिण को सर्वथा मुक्त कर दिया।

द्रविड जन भौतिक सभ्यता में बहुत उन्नत थे। वे अच्छे नाविक और व्यापारी थे। उन्होंने बहुत पूर्ण वेविलोनिया तक में अपने व्यापार केन्द्र स्थापित कर लिए थे। तथा रोम और यूनान में भी उनके अच्छे व्यापार केन्द्र थे। ई० स० की प्रथम शताब्दी

१—तोलकाधियम् (तामिल ग्रन्थ)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही में तामिल बन्दरगाहों से चावल, गर्म मसाले, पीपल यूनान को और महीन मलमल, गर्म मसाले हीरे जवाहरात आदि रोम तथा अन्य देशों को भेजे जाते थे। मिश्र के बादशाहों पाशाओं की मलमली पोशाक भारतीय कारीगरों द्वारा बनती थी। तेरहवीं शताब्दी में वेनिस का प्रसिद्ध व्यापारी मारको पोलो इन्हीं बन्दरगाहों पर उतरा था। इन सब व्यापारों ने द्रविण देश को धनधान्य से पूर्ण बना दिया था। और चुङ्गी की आय ने राज्यों को मालामाल बना दिया था। संगीत और ललित कलाओं में भी यह प्रांत उतना ही अग्रगामी था, जितना शिल्प और वाणिज्य में। बुनाई कला में तो उन्होंने इतनी उन्नति की थी—कि वहां छत्तीस प्रकार का सूती कपड़ा बुना जाता था।

लकड़ी और पत्थर की कला का प्रादुर्भाव पल्लव राजाओं के शिल्प में है, दक्षिण अर्काट में दादापुरम का चोल मन्दिर तथा तंजौर शोलापुर के मन्दिर द्रविड कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

द्रविड भाषाओं में तामिल सर्व प्रमुख है। चोल और चेर राजाओं के प्रोत्साहन से जैन, बौद्ध, शैव्य तथा वैष्णव विद्वानों ने इस साहित्य की बहुत उन्नति की। अन्य द्रविड भाषाओं में भी साहित्य की प्रगति हुई, इससे तामिल साहित्य का दर्जा भारतीय भाषाओं के साहित्य में संस्कृत के बाद दूसरा हो गया।

८—छः शताब्दियों का सिंहावलोकन

नीति का ह्रास—इन शताब्दियों में भारत में एक भी ऐसी राजनीतिक शक्ति नहीं उदय हुई, जो देश के बड़े भाग पर किसी साम्राज्य की स्थापना कर सकती। जिससे सारा देश एक सूत्र में ग्रसित हो जाता। एक प्रकार से यह युग अराजकता और अव्यवस्था का युग रहा। मौर्य चन्द्रगुप्त ने आर्य चाणक्य से प्रेरणा पाकर हिमालय से समुद्र पर्यंत हजार योजन विस्तीर्ण जिस विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी, और गुप्त सम्राटों में जिसे हिंदुकुश के उस पार वह्लिक देश तक विस्तृत किया था। वह अब छिन्न भिन्न हो गया था। और उसका स्थान ऐसे छोटे छोटे राजाओं में ले लिया था, जो आपस में सदा लड़ते रहते थे। जो वीर और कष्ट सहिष्णु होने पर भी साम्राज्य की स्थापना करने में समर्थ नहीं हुए। सातवीं शताब्दी के आरम्भ में स्थानेश्वर और कन्नौज के राजा हर्षवर्धन ने उत्तर भारत में तथा चालुक्य पुलकेशी द्वितीय ने दक्षिणापथ में अवश्य विशाल साम्राज्यों की स्थापना की। पर वे साम्राज्य चिरस्थायी न रहे। आठवीं शताब्दी में उत्तरी भारत में पाल, गुर्जर, प्रतीहार, कर्कोटक आदि राज्य वंशों का उदय हुआ, और दक्षिणी भारत में राष्ट्रकूट, पल्लव, गंग, चोल, चालुक्य आदि राज्य वंशों की स्थापना हुई। यही दशा नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी तक बनी रहीं। शासन करने वाली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शक्तियां इस काल में बदलती रहीं, पर राजनीतिक दशा उन्नत नहीं हुई। गुप्त साम्राज्य भंग होने पर जो राजनीतिक अव्यवस्था उत्पन्न हुई, वह इन छः शताब्दियों तक वैसी ही रही।

धर्म और मन—धर्म भी मन स्थिति को आलम्बन देता है, परन्तु इस समय भारत में हिंदु और बौद्ध दोनों ही धर्मों में ऐसी विकृति आ गई थी कि वह स्वयं अधोगति को पहुंच रहे थे।

सामन्त पद्धति—ऐसी ही दुर्दशा शासन पद्धति की भी थी। छोटे छोटे राज्यों के उदय होने से तथा राजा की वैक्तिक शक्ति के अनुसार उनकी सीमाएँ निरन्तर टूटती रहने से भारत में सामन्ती राज्य बन गए थे। जो सर्वथा निरंकुश और स्वेच्छाचारी थे। वे अवसर पाते ही विजय यात्रा तथा युद्ध को निकल पड़ते थे। इस काल में लिखे हुए 'युक्तिकल्पतरु' नामक नीति ग्रन्थ में लेखक ने यह प्रश्न किया है कि बड़े राज्य का चक्रवर्ती भी राजा कहाता है, और एक ग्राम का स्वामी राजा कहाता है। यह कैसी बात है? इसका वह स्वय ही उत्तर देता है—कि जो कोई भी अपने क्षेत्र में राज शासन स्वीकार कराने में समर्थ हो--वही राजा है। यह वास्तव में सामन्त पद्धति के राजा की यथार्थ व्याख्या है। यह व्याख्या उस राज मर्यादा से भिन्न है। जो महाभारत, कौटिलीय, अर्थशास्त्र, कामन्द आदि नीति ग्रन्थों में लिखी है।

इस काल में भारतीय धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक दशा बहुत उलझी सी रही। बौद्ध, जैन, और हिन्दु धर्म तथा उनके अनेक सम्प्रदाय जिस प्रकार नए-नए रूप धारण करते जाते थे, वह एक आश्चर्यजनक बात थी। इस काल में अनेकों सम्प्रदायों का अस्त हुआ; और अनेकों नवीन उदय हुए। अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों का उदय हुआ। भिन्न भिन्न परम्पर विरोधी मत मतान्तरों का विकास, ह्रास और संघर्ष का यह विवरण आश्चर्यजनक है।

साहित्य का शृगार—यह भी एक आश्चर्य की बात है कि इस युग में भारत में अनेक कवि, दार्शनिक, स्मृतिकार और विज्ञानवेत्ता हुए। बहुत सा संस्कृत और प्राकृत साहित्य रचा गया। परन्तु उन्होंने व्यास वाल्मीकि जैसी असाधारण प्रतिभा का परिचय नहीं दिया। मौर्यों और गुप्तों के काल में जो सर्वतोमुखी उन्नति भारत में हुई थी। उसका इस युग में कहीं पता ही न था। देश के विचारक इस समय निराशावादी हो रहे थे; और उनकी ज्ञान तथा शक्ति का ह्रास हो रहा था। यह भी एक महत्त्वपूर्ण बात है--कि इस युग में भारत ही में नहीं; संसार के अन्य देशों में भी ऐसी ही भावनाएँ चल रही थीं। रोमन साम्राज्य भंग हो चुका था, और योरोप एक अराजकता और अव्यवस्था में से गुजर रहा था। दसवीं शताब्दी में यही दशा चीन की भी हो रही थी। इस अव्यवस्था का कारण राजनीतिक एकता और व्यवस्था का अभाव ही था। छोटे छोटे राज्य वंश उठ रहे थे, और परस्पर लड़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहे थे, जिनसे वे परिस्थितियाँ नष्ट हो रही थीं, जिनसे किसी देश को उन्नत होने का आश्रय मिलता है।

सामन्त पद्धति—मौर्य साम्राज्य ने प्राचीन जनपदों की स्वतन्त्र सत्ता कायम रखी थी। इसी से पाटलीपुत्र और तक्षशिला जैसे नगरों का शासन पौर सभा के प्रमुख करते थे, और भी जनपदों में वहाँ की जनपद सभाएं अधिकार सम्पन्न थीं। परन्तु इस काल में सामन्त पद्धति की स्थापना से यह बात कायम न रही। शासन का अधिकार जनपद को न रहकर राजवंश का एकाधिकार हो गया। और राजवंश से सम्बन्धित श्रेणी ही राजशक्ति की उपभोक्ता हो गई। चालुक्य, परमार, गंग, चन्देल, कलचुरी, गुर्जर, प्रतिहार, राष्ट्रकूट आदि राजवंश जहाँ सत्तारूढ़ हुए, उन्हीं के हाथ में सारी राजशक्ति आ गई। प्रजा सर्वथा निरीह रह गई। इसी से राज-व्यवस्था में प्रजा को उत्साह न रहा, और समाज का जीवन ह्रासोन्मुख हो गया। यह अब तक के भारतीय जीवन की नयी परिस्थिति थी, जो सामन्त पद्धति से उत्पन्न हो गई थी।

मौर्य-नन्द-शुङ्ग केवल राजवंश थे। इन नामों से किसी जाति की सूचना नहीं मिलती थी, परन्तु इस युग में चन्देल-परमार-राठौर-चालुक्य-राष्ट्रकूट आदि एक जाति बन गए थे। और वह राज्य केवल उस राजवंश ही का न कहलाता था, वह उस जाति का राज्य कहाता था। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक था कि राजा किसी व्यवस्थित राजसभा के द्वारा नहीं—अपनी जाति के प्रमुख पुरुषों को जागीरें और रियासतें बांट कर उनकी सहायता से राज्य शासन करता था।

इसी से राजा और राजकुल ही नहीं, उसकी जाति के सभी लोग निरंकुश हो गए थे। अब यदि राजा स्वयं दयालु और बुद्धिमान हुआ तो ठीक नहीं तो प्रजा को असहाय भाव से राजा की स्वेच्छाचारिता और क्रूर आचरण सहने पड़ते थे। कल्हण ने राज तरंगिणी में काश्मीर के उन्मत्तावन्ती राजा का उल्लेख किया है, जो गर्भवती स्त्रियों के पेट चिरवा कर बच्चों को निकालने और कर्मचारियों के अङ्ग कटवाने में आनन्दित होता था। इसी भांति अकाल पड़ने पर काश्मीर के एक राजा ने राज्य का सारा चावल अपने अधिकार में कर लिया था, और उसे मनमानी कीमत पर बेचा था। ऐसे स्वेच्छाचारी राजाओं के प्रति प्रायः विद्रोह और षड्यन्त्र होते रहते थे।

सामन्त पद्धति का दूसरा दोष यह था, कि उन राजाओं की सारी शक्ति युद्ध में केन्द्रित रहती थी, प्रजा के हित तथा कल्याण की बात पर वे विचार ही न कर सकते थे। इसी से बीच २ अराजकता फूट निकलती थी।

ग्राम संस्थाएँ—कदाचित् इस विद्रोही प्रतिक्रिया के फल स्वरूप ही इस युग में ग्राम संस्थाएँ कायम हुईं—जो इस युग की भारतीय इतिहास में एक महत्त्व-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्ण वस्तु थी। इन ग्राम संस्थाओं का अस्तित्व आगे अंग्रेजी राज्य तक भी कायम रहा। ये ग्राम संस्थाएँ छोटे छोटे लोक-राज्य थे, जो अपने में पूर्ण थे। एक के बाद दूसरे राजवंश आए और गए पर ये ग्राम संस्थाएँ कायम रहीं। और उन्होंने भारतीय जनता की रक्षा में उस परिवर्तन के अस्थिर युग में बहुत काम किया। इन ग्राम संस्थाओं का उल्लेख हमें अनेक 'ताम्र-पट्टों में मिलता है। विशेषकर दक्षिण भारत में उपलब्ध उत्कीर्ण लेख इस सम्बन्ध में अच्छा प्रकाश डालते हैं।

इन ग्राम सभाओं में ग्राम के प्रायः सब वयस्क समझदार लोग सम्मिलित होते थे। ये सभाएँ या तो वृक्ष के नीचे होती थीं, या मन्दिरों में। कहीं-कहीं ग्रामों में सभा भवन भी बने हुए थे। इस सभा का अध्यक्ष ग्रामणी कहाता था। इसके आधीन अनेक समितियाँ चुनी जाती थीं, जो भिन्न २ कार्य करती थीं। दान, जलाशय, धर्म स्थान, न्याय, खेत–चरागाह, अतिथि तथा ऐसे ही अन्य ग्राम सम्बंधी कार्य थे जिन्हें ये समितियाँ करती थी। सम्पन्न–शिक्षित और ईमानदार व्यक्ति ही समितियों का सदस्य बनता था। अपराधी या बेईमान आदमी को तुरन्त बहिष्कृत कर दिया जाता था। प्रायः ग्राम पृथक २ मुहल्लों में बँटा होता था—प्रत्येक मुहल्ले से प्रतिनिधि चुन कर ग्राम सभा में आते थे। योग्यता और अनुभव के आधार पर उन्हें काम दिए जाते थे। सभी योग्य पुरुषों को समिति में चुनने के अवसर प्राप्त हो सकें, इसलिए यह नियम था कि वे ही पुरुष सदस्य चुने जाते थे जो पिछले तीन वर्षों से किसी समिति के सदस्य न रहे हों।

ये ग्राम संस्थाएँ वे सभी काम करती थीं जो राज्य करता था। अपने क्षेत्रों के झगड़े टंटों का फैसला करना, मण्डी–बाजार का प्रबंध करना, टैक्स वसूल करना, गाँव के उत्थान के लिए नए टैक्स लगाना, जलाशयों–उद्यानों–खेती–चरागाहों की देख भाल करना। ये सभी काम ग्राम संस्थाएँ करती थीं। लोग इस संस्था से बैंक का काम भी लेते थे। उसके पास रुपया–पैसा जमा कर देते थे। सभा उसके धन पर सूद देती, तथा उसकी इच्छानुसार उसके सूद को तथा धन को खर्च करती थी। दुर्भिक्ष–बाढ़ आदि दैवी आपदाओं में ये सभाएँ बड़ा भारी कार्य करती थीं। ऐसी अवस्था में वे उधार रुपया लेकर भी खर्च करती थीं। शत्रुओं और डाकुओं से ग्राम की रक्षा करने का काम भी उनका था। जो ग्रामवासी किसी विपत्ति में ग्राम की सेवा करते हुए अपना उत्सर्ग भाव प्रकट करता था, उसे सभा ग्राम की उपज से विशेष भाग दिलवाती थी।

ग्राम की हानि करने वाले को ग्राम-द्रोही कह कर दण्ड दिया जाता था। दण्ड ऐसा होता था कि वह ग्रामवासियों की नजर से गिर जाय। यह सभा ग्राम से राजकीय कर को वसूल करके हिसाब सहित उसे राजकोष में जमा करती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

९—समाज

वर्ण और जाति—हिन्दुओं की प्राचीन वर्ण व्यवस्था को जैनों और बौद्धों ने काफी धक्का पहुँचाने का यत्न किया, तथा बाहरी जातियों के आगमन ने भी इस व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा की। परन्तु इस काल में हिन्दु धर्म की पुन स्थापना के साथ वर्ण व्यवस्था की फिर से उन्नति हुई। ह्वेनसांग चारों वर्णों का उल्लेख करता है :—

ब्राह्मण—इस काल में ब्राह्मण सब से श्रेष्ठ हो गए थे। शिक्षा और विद्या में वे सर्वोपरि थे। सभी वर्ण इन की प्रधानता स्वीकार करते थे। शासन में प्रायः मन्त्री ब्राह्मण होता था। कभी कभी वे सेनापति भी बनते थे। राज सत्ता पर ब्राह्मणों का अधिकार सम्भवतः चाणक्य के बाद ही बढ़ा। चाणक्य ने जिस भगीरथ प्रयत्न से नन्दों का नाश कर अज्ञात कुल चन्द्रगुप्त को भारत का सम्राट् बनाया तथा अर्थशास्त्र रचा, उसने राजनीति में ब्राह्मणों का प्रवेश करा दिया। अबुजैद लिखता है –"धर्म और विज्ञान में प्रयत्न करने वाले व्यक्ति ब्राह्मण कहाते हैं। उनमें अनेक ज्योतिषी, कवि, दार्शनिक और दैवज्ञ राजा के दरबार में रहते हैं।[२] अल-मसऊदी लिखता है—कि ब्राह्मणों का आम और श्रेष्ठ कुल की भाँति सम्मान होता है। ब्राह्मण ही कुल क्रम से मन्त्री होते आए हैं।[3]

पाठक जानते हैं कि मनु ने ब्राह्मणों वे षट् कर्म बनाए थे-वेद पढ़ना-पढ़ाना। यज्ञ करना कराना। दान लेना और देना। जैन बौद्ध धर्म के उदय के साथ ही ब्राह्मणों के इन षट् कर्मों में बहुत बाधा पढ़ गई। यज्ञ आदि की परिपाटी बन्द हो गई, वेद पढ़ने वाले कम हो गए—दान लेने वाले अन्य सम्प्रदाय खड़े हो गए। इससे ब्राह्मणों को अन्य कार्य भी करने पड़े। इस काल में जो नई स्मृतियां बनीं उनमें ब्राह्मणों के कार्यों का विस्तार कर दिया। वे क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों का भी काम करने लगे। ब्राह्मण पुरोहित का, तथा क्षत्रिय राज तथा सेना का काम करने लगे थे—इस लिए कृषि वैश्यों के पल्ले पड़ी थी। पीछे बौद्ध धर्म का उदय तथा उद्योग वाणिज्य के विकास होने पर वैश्यों ने जैन बौद्ध होकर कृषि को पाप तथा कष्ट साध्य होने पर त्याग दिया, और वाणिज्य करने लगे। यह अवसर देख निरुपाय ब्राह्मण कृषि पर गुजारा करने लगे। पाराशर स्मृति में सब वर्णों को कृषि करने की स्वाधीनता

१—हुऐनसांग जि० १ पृ० १६९

२—इलियट हिस्ट्री आफ इण्डिया जि० १ पृ० ६

३—चि० चि० वैद्य० हिस्ट्री आफ मिडिविल इन्डिया जि० २ पृ० १८१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देदी गई।[1] अन्य स्मृतिकारों ने तो सब वर्णों को शस्त्रग्रहण करने का भी अधिकार दे दिया।[2] इन नियमों का कारण स्पष्ट था। जैसे ब्राह्मणों के हाथ से धर्म सत्ता छिन चुकी थी--वैसे ही क्षत्रियों के हाथ से राज सत्ता। विविध संकर तथा बाहर से आए हुए जन राजा बन बैठे थे। ऐसी हालत में क्षत्रियों को भी कृषि अपनानी पड़ी। तथा मारकाट और आक्रमण के काल में इन स्मृतिकारों को सबको शस्त्र ग्रहण का अधिकार भी देना पड़ा।

इस काल में ब्राह्मण शिल्प, व्यापार तथा दुकानदारी भी करते थे। पर वे नमक, तिल (यदि स्वयं बोया न हो तो) दूध, शहद, शराब और मांस नहीं बेच सकते थे। वे ब्याज भी लेना निंद्य समझते थे। रहन सहन, खान पान में वे शौचाचार का बड़ा ध्यान रखते थे। और सदा इस बात का ध्यान रखते थे कि वे अन्य वर्णों से ऊँचे माने जांय, तथा प्रथक् रहें। राज नियमों तथा राजसत्ता ने भी उन्हें इस काल में अन्य वर्णों से ऊँचा बना रहने में सहायता दी। कानून उनके लिए विशेष रियायत रखते थे। परन्तु वास्तविक बात तो यह थी कि इस काल में वर्णों का प्राचीन कर्तव्य विभाग शिथिल हो गया था। और सभी वर्ण अपनी अपनी इच्छानुसार काम करने लगे थे। पीछे राजा लोग भी–जो वास्तव में सङ्कर या विदेशी जाति के थे, इस बात की परवा न करके कि वे किस जाति के हैं? योग्य व्यक्तियों को उच्च पद पर नियुक्त करने लग गए थे।[3]

उप जातियां—यद्यपि छठी शताब्दी के काल में भारत में प्रमुख यही चार वर्ण थे। कुछ नीच जातियाँ भी थीं। ग्यरहवीं शताब्दी में अलबरूनी ने भी इन्हीं चार वर्णों का उल्लेख किया है[4]। परन्तु कुछ शिला लेखों से पता चलता है कि इस समय में वर्णों की उपजातियां बनने लगी थीं। अलबरूनी ने सम्भवत: पुस्तकें पढ़कर लिखा है, सामाजिक स्थिति का ठीक अध्ययन नहीं किया। ई० स० १००० तक ब्राह्मणों की भिन्न २ जातियों का पता नहीं लगता। उस समय तक ब्राह्मणों का भेद शाखा और गोत्र का उल्लेख करके ही किया जाता था[5]। बारहवीं शताब्दी

१--षडकर्म सहितो विप्र: कृषि कर्म च कारयेत्।
क्षत्रियोऽपि कृषिं कृत्वा देवान् विप्रांश्च पूजयेत्।
वैश्य: शूद्रस्तथा कुर्यात् कृषि वाणिज्य शिल्पकम्।
(पाराशर स्मृति अ० २। श्लोक २। १८। १९)

२—प्राणत्राणे वर्ण संकरे वा ब्राह्मण वैश्यौ शस्त्र माददीयाताम्।
वशिष्ठ स्मृति अ० ३

३—चि० चि० वैद्य० दि० आ० मि० ई० जि० २ पृ० १८१–१८२

४ –अलबरूनी जि० १ पृ० १००

५--देखो १०५० ई० के बुन्देलों के ताम्रपत्र में भारद्वाज गोत्र यजुर्वेदीय शाखा के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में ऐसे उपनामों का बहुत प्रयोग होने लगा था, जिनमें कुछ नाम ये हैं, दीक्षित, राउत, ठाकुर, पाठक, उपाध्याय और पटवर्धन आदि गोत्र और प्रवर इस समय तक भी प्रचलित थे। परन्तु उपनामों की प्रधानता बढ़ती ही जाती थी। शिला लेखों में पण्डित; दीक्षित, द्विवेदी, चतुर्वेदी, अवस्थिक; माथुर, त्रिपुर, अकोला, डेंडवाण आदि नाम मिलते हैं। जो वास्तव में उनके कार्य तथा स्थान से सम्बन्धित है। बाद में इनमें से अनेक उप नाम भिन्न २ जातियों में परिणत हो गए। और यह जाति भेद बढ़ता ही गया। इस जाति भेद की वृद्धि में २। ३ कारणों ने बहुत सहायता दी।

जाति भेद—प्रथम तो भोजन सम्बन्धी विभिन्नता ने मांसाहारी और शाकाहारी ये दो भारी भेद हो गए। भिन्न २ रीति-रिवाजों और विचारों के कारण भी भेद पैदा हुऐ। दार्शनिक तथा धार्मिक सम्प्रदायों में विभिन्नता होने से भी अनेक जातियां बनीं। इस काल तक ब्राह्मण पंच गौड़ और पंच द्रविड़ इन दो मुख्य शाखाओं में नहीं बटे थे। यह भेद १२०० ई० के बाद हुआ। और मांसहार इसका मूल कारण था[1]। ग्यारहवीं शताब्दी में गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज ने सिद्धपुर में रुद्र महालय विशाल शिव मन्दिर बनाया. जिसकी प्रतिष्ठा के लिए कन्नौज, कुरुक्षेत्र, आदि उत्तरीय प्रदेशों से एक हजार ब्राह्मणों को बुलाया। और उन्हें गांव जागीर देकर वहीं बसा लिया। उत्तर से आने के कारण वे औदीच्य; ब्राह्मण कहलाए। परन्तु गुजरात में बसने के कारण उनकी सख्या द्रविड़ों में हो गई, जो वास्तव में गौड़ों में होनी चाहिए थीं[2]।

क्षत्रिय और राजपूत—क्षत्रियों के सम्बन्ध में बहुत गड़बड़ हुई। इस काल में शुद्ध क्षत्रियों का एक भी वंश राज्याधिकार पर न था। अनुलोम और प्रतिलोम विवाह परिपाटी तथा शकों हूणों एवं अन्य जातियों के अन्धाधुन्ध मिश्रण के कारण तथा राज्य भ्रष्ट होने के कारण क्षत्रियों का वंश सर्वथा लोप ही हो गया। उस प्राचीन क्षत्रिय वश के रक्त के मिश्रण से जो नई राजपूत जाति खड़ी हुई इसके शुद्ध वैष्णव

ब्राह्मण का उल्लेख। तथा १०७७ ई० के कलचुरी लेख में जो गोरखपुर जिले के कहन नामक स्थान से प्राप्त हुआ हैं, ब्राह्मणों के नाम के साथ शाखा गोत्रादि के अतिरिक्त उनके निवास के ग्रामों का भी उल्लेख है। बड़नगर की कुमारपाल प्रस्ति (११५१ ई०) में नागर ब्राह्मण का उल्लेख तथा कोंकड़ा के बारहवीं सदी के लेख में ३२ ब्राह्मणों के नाम है, जिनके गोत्र तो है, पर शाखा नहीं। परन्तु ब्राह्मणों के उपनाम साथ दिए हैं। जो अनेक पेशे या स्थानों या अन्य विशेषताओं के कारण बने हुए हैं।

१—त्रि० चि० वै० हिह आ० किडि० ह० जि ३ पृ० ३ अ०-(१

२—रा० व० गौ० ही० ओझा राजपूताने का इतिहास जि० १। पृ० २१५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और शैव धर्म अपनाया तथा ब्राह्मणों की आधीनता में अपने को स्थानापन्न क्षत्रिय ही घोषित किया।

इस काल के प्रारम्भ में जो राजपूत राजा रहे, वो प्रायः विद्वान और पण्डित रहे। हर्ष साहित्य का मार्मिक ज्ञाता था ही, पूर्वीय चालुक्य राजा विनयादित्य गणित का महापण्डित था। लोग उसे गुणक कहते थे। राजा भोज की विद्वत्ता लोक प्रसिद्ध है। उसने वास्तुद्या, व्याकरण, अलंकार, योग और ज्योतिष के अधिकारपूर्ण अनेक ग्रन्थ लिखे। चौहान-विग्रह राज (चतुर्थ का लिखा हरकेलि नाटक शिलाओं पर खुदा उपलब्ध हुआ है। इसी प्रकार अन्य राजाओं के भी ग्रन्थ हैं।

वर्ण व्यवस्था में व्यक्तिक्रम होने तथा क्षत्रियों के पास भूमि न रहने से उन्होंने भी ब्राह्मणों की भांति भिन्न २ पेशे करने प्रारम्भ कर दिए। राजपूतों ने भी ऐसा ही किया। इब्न खुरदाद ने भारत में ७ जातियाँ गिनाई हैं[1]।

राजपूत प्रारम्भ में शराब नहीं पीते थे। अलमसूदी लिखता है कि कोई राजा शराब पी ले तो वह शासन के योग्य नहीं समझा जाता। हुएनसाँग भी उन्हें पवित्र-जीवी तथा मितव्ययी कहता है। राजतरंगिणी में राजपूतों के ३६ वंशों का उल्लेख किया है। एक बात इन राजपूतों में अवश्य रही—अनेक जातिभेद होने पर भी सब राजपूतों में खान पान और बेटी व्यवहार समान ही रहा।

वैश्य—वैश्य इन दिनों पशु पालन-दान यज्ञ अध्ययन, वाणिज्य, ब्याज व्यवहार तथा कृषि करते थे। हम बता आए हैं कि जैनों और बौद्धों में कृषि पाप कर्म माना है। तथा वह कष्ट साध्य भी था। अतः सम्पन्न वैश्य ७वीं शताब्दी के प्रारम्भ ही में कृषि को त्याग चुके थे। ह्वेनसांग वैश्यों को व्यापारियों का वर्ग बताता है। वह चौथा वर्ग कृषको या शूद्रों को कहता है[2]।

वैश्यों ने इस युग में काफी उन्नति की। धन समृद्धि में वे बढ़ गए। राज कार्य करने, राज मन्त्री होने सेनापति बनने और युद्ध में लड़ने के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। शिला लेखों से पता चलता है कि इस काल के अन्तिम भाग में उनमें जातिभेद उत्पन्न हो गया था[3]।

शूद्र—सेवक वर्ग की गिनती शूद्रों में थी। पर शूद्र अस्पर्श्य न थे। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों की भांति शूद्रों को भी पंच महायज्ञ करने का अधिकार था। यह

१—वि० वि० वंद्य हि० आ० मिडि० इन्डिया जि० २ पृ० १४९-८०।

२—ह्वेन्सांग जि० १ पृष्ठ १६९

३—म. म. गो० ही० ओझा, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पतंजलि के महाभाष्य तथा उनके टीकाकार कैयट से सिद्ध है[1]। विष्णु स्मृति में दो प्रकार के शूद्र का उल्लेख है--एक श्रद्धी दूसरा इतर[2]।

धीरे २ अनेक संकर जातियां जो अनुलोम प्रतिलोम से उत्पन्न हुई थीं, इनमें आकर मिल गईं। और इन सबने मिलकर कृषि, शिल्प, कला आदि अपना ली। हाथ से करने के काम यथा किसान, लुहार, राज, रंगरेज, धोबी, जुलाहा, तक्षक कुम्हार आदि हो गए। इसी काल में पेशेवश शूद्रों की भिन्न २ जातियां बन गईं। संकर जातियां भी अपना असल रूप खोकर पेशेवर जातियां बन गईं, तथा शूद्रों में परिगणित हो गईं। ऐसे लोगों के लिए ह्वेनसांग कहता है कि ऐसी अनेक पेशेवर जातियाँ हैं जो अपने को चारों वर्णों में से किसी के अन्तर्गत नहीं मानतीं।

अलबरूनी शूद्रों के बाद अन्त्यजों का उल्लेख करता है। जिन्हें वह आठ श्रेणियों में विभक्त करता है। धोबी, चमार, मदारी, टोकरी और ढाल बनाने वाले, मल्लाह, धीवर, शिकारी, जुलाहे। वह कहता है वर्णधर्मी इनके साथ नहीं रहते। शहरों और गाँवों से बाहर ये रहते हैं[3]।

कायस्थ--विशेष जातियां जो इस काल में बनी, उनमें एक कायस्थ हैं। ब्राह्मणों और क्षत्रियों में कुछ लोग लेखक या अहलकारी का कार्य करते थे। पहिले कायस्थ कोई जाति न थी। कोटा के पास कणसवा ग्राम में एक शिलालेख ८वीं शताब्दी का प्राप्त हुआ है। उसमें कायस्थ शब्द अहलकारी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ये लोग आगे चलकर राजनीति और कूटनीतिक षडयन्त्रों में भी भाग लेते थे। इसीलिए याज्ञवल्क्य स्मृति में खास तौर पर राजा को सावधान किया गया है कि इनसे प्रजा की रक्षा करें[4]।

सूरजधज कायस्थ अपना निकास शाकद्वीप मग ब्राह्मणों से बताते हैं। बालभ कायस्थ अपने को क्षत्रिय बताते हैं, जैसा कि सोहल रचित उदयसुन्दरी कथा से प्रकट है।

अन्त्यज व चाण्डाल--इस समय भारत में केवल दो ही जातियां अन्त्यज थीं। (१) चाण्डाल, (२) मृतप। चाण्डाल नगर के बाहर रहते थे। नगर में आते समय वे बाँस की लकड़ी को जमीन में पीटते रहते थे। वे जंगली जानवरों को मार कर उनका

१--शूद्राणाम् निरवसितानाम् २। ४। १०। पाणिनि सूत्र पर भाष्य है--'एवं तर्हि यज्ञात्कर्मणोऽनिरवसितानाम् अर्थात् जो शूद्र यज्ञ कम से बहिष्कृत न हों; वे अवहिष्कृत समझे जाय' इसकी टीका करते हुए कैयट ने लिखा है--'शूद्राणां पंच यज्ञानुष्ठानेऽधिकारो स्तीतिभाव'। (महाभाष्य प्रदीप)

२--शूद्रोऽपि द्विविधोज्ञेयः श्राद्धी चैवेतरस्तथा। विष्णु स्मृति अ० ५

३--अलबरूनी जिल्द १ पृष्ठ १०१

४--रा० ब. गौ० ही. ओझा, मध्य० भा० संस्कृति पृ० ४८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

माँस बेचते थे। मृतप श्मशान में चौकीदारी करते—और मुर्दों के कफन आदि लेते थे।

वर्णों के पारस्परिक सम्बन्ध—इस समय तक भी चारों वर्णों के पारस्परिक सम्बन्ध एकतामूलक थे। खान पान में छुआछूत का भाव न था। सवर्ण विवाह की श्रेष्ठता स्थापित हो चुकी थी, परन्तु अनुलोम विवाह निषिद्ध न थे। याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मण के लिए शूद्र कन्या से विवाह का निषेध अवश्य कर दिया था, पर ऐसे विवाह इस काल में होते थे। वाण ने शूद्र कन्या से उत्पन्न ब्राह्मण पुत्र पारशव का उल्लेख किया है। मण्डोर के प्रतिहारों के ई० स० ८३७ और ८६१ ई० के लेखों में ब्राह्मण हरिश्चद्र का क्षत्रिय कन्या भद्रा से विवाह करने का उल्लेख है। ब्राह्मण कविराज शेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी चौहान कन्या थी। दक्षिण में ये ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि ब्राह्मणों ने क्षत्रिय कन्याओं से विवाह किया।

१०—दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी

अलबरूनी का साक्ष्य—आठवीं और दसवीं शताब्दी के प्रमाण पत्र हमें जहाँ वाण और युवानचाङ्ग द्वारा उपलब्ध हैं, वहां ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी की भारतीय स्थिति का साक्षी अरब का मुस्लिम पण्डित अलबरूनी है। वह ई० स० १०३० में लिखता है और केवल प्रसंग क्रम से ही वह कुछ ऐसी बातें व्यक्त कर गया है जो भ्रान्त होने पर भी तत्कालीन भारत की सामाजिक स्थिति पर कुछ प्रकाश डालती हैं। कुछ मुस्लिम भौगोलिकों तथा ऐतिहासिकों ने भी इस काल पर प्रकाश डाला है, परन्तु वे सब अभी तक सिन्ध-पंजाब तथा समुद्र तट से आगे बढ़े ही न थे इसलिए उनके वर्णन भी भ्रान्त है। रूपक साहित्य में राज शेखर की कर्पूरमन्जरी— जिसकी रचना तिथि ई० स० ९०० है, तथा राज शेखर की अन्य रचनाऐं भी तत्कालीन सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालती हैं। कर्पूरमंजरी सम्पूर्ण प्राकृत भाषा में है। इसका अंग्रेजी अनुवाद सी. एच लेनमेन तथा हिन्दी अनुवाद भारतेन्द्रु हरिश्चन्द्र ने किया हैं। शिला लेखों की यथेष्ठ संख्याएं इस युग पर प्रकाश डालती है, जिनका अनुशीलन भारतीय लिपि माला(Erigraphic Indea) में है। इण्डियन ऐन्टिक्वेरी (Indian Antiguary) या एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल रायल, ऐशियाटिक सोसाइटी लन्दन की बम्बई शाखा और दूसरी संस्थाओं, ने ऐसा साहित्य प्रकाशित किया है, जिस से हमें इस काल के जीवन का ज्ञान हो सकता है। सोमदेव ने कथासरित्सागर ई० स० १०७० में लिखा है।

रहन सहन—चुङ्गी का महसूल प्रचलित था, और चौकी पर से तिजारती माल ले जाने पर भी थोड़ा महसूल देना पड़ता था। खेतों में धान और गेहूँ बहुतायत से उत्पन्न होते थे। सरसों, खरबूजा और कद्दू की खेती भी होती थी, लोगों का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

साधारण भोजन दूध, घी, चीनी, रोटी और भुना हुआ अन्न था। सरसों का तेल भी काम में आता था। मछली, भेड़ और हिरण का माँस स्वादिष्ट भोजनों में गिना जाता था। विविध पेय प्रचलित थे, वैश्य लोग एक तीव्र मादक आसव पिया करते थे। खाना हाथ से खाते थे। रोगी ताम्बे के चम्मच काम में लेते थे।[1]

प्रायः रोग होने पर एक सप्ताह का उपवास किया जाता था। इस से यदि लाभ न हो तो फिर औषध दी जाती थी। मुर्दे जलाए जाते थे—तथा जल प्रवाह भी होता था। कभी कभी जंगल में मुर्दों को फैंक आते थे। हिन्दु मृतकों का शोक मनाते और रोते पीटते थे—पर बौद्ध ऐसा नहीं करते थे।[2]

दण्ड—दण्ड कठोर था। पर अपराधियों की अधिकता न थी। अपराधी प्रायः समाज से प्रथक् करके आजीवन बन्दी बना दिए जाते थे। शासन, समाज या गुरुजनों के विरोधी का अंग भंग कर दिया जाता था, या उसे देश निष्काशन का दण्ड मिलता था। प्रतिवादी की सहमति से जुर्माना भी यथेष्ट समझा जाता था। अपराध प्रमाणित करने के लिए कुछ परीक्षाएँ नियत थी—जैसे यदि अपराधी पानी में फेंक देने पर भी डूबे नहीं, आग और विष से भी बच जाय, तो यह निरपराध समझा जाता था।[3] चारों वर्गों के अतिरिक्त देश में अनगिनित सङ्कर और मिश्रित जातियां थीं।[4]

भूमि अधिकार और राज्य की आय—आजमगढ़ जिले के माधववन के दान का जो पट्टा ताम्र पत्र पर खुदा मिला है, उससे पांच प्रकार के लगानों का पता लगता है।[5] जो ग्रामीणों को भूमि पर कब्जा करने के लिए देने पड़ते थे :—

(१) तुलामाया (२) पैदावार का नियत अंश (३) नकद रकम (४) वैयक्तिक बेगार (५) अन्य आय।

तुलामाया—सम्भवतः उपज की तुलाई से मिलती जुलती कोई रीति होगी। जो पुराने ढंग की देहाती मण्डियों में अब भी कहीं कहीं प्रचलित है। यह नहीं कहा जा सकता कि पैदावार का अंश, नकद रुपया और बेगार की सेवा। तीनों हर स्वत्त्वाधिकारी को एक साथ ही देने पड़ते थे, या भिन्न प्रकार की भूमि से प्रकारानुसार तीनों में से कोई एक लगान वसूल होता था। अधिक सम्भव यह है कि विशेष भूसत्त्व पर कोई न कोई देय होगा। परन्तु गांवों में सभी का प्रचार होगा। 'अन्य

१—युवान चांग प्र० भा० पृ० १७६-१७७
२—युवान चांग प्र० भा० पृ० १४७--१७५
३—युवान चांग प्र० भा० पृ० १७१--१७२
४—युवान चांग प्र० भा० पृ० १६८
५—एटिंग हैजोन पृ० १४९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आय' में उन विविध क्रमों महसूलों या सवाई आदि का समावेश सम्भव है जो देहातों में आज तक वसूल की जाती है।

युवानचांग कहता है कि भारत पर राज्य कर चीन की अपेक्षा हल्का है, तथा शासन भी नरम है। राजा की भूसम्पत्ति चार भागों में नियत थी—एक शासन के व्यय और राजकीय धर्म नृत्यों में, दूसरी उच्चाधिकारियों की जागीरों के लिए, पुरस्कार और पारितोषिक के लिए, विविध सम्प्रदायों की भेंट के लिए। राजा की भू सम्पत्ति में खेती करने वालों से उपज का षष्ठांश लगान के रूप में लिया जाता था। भूमिदान की चाल अधिक थी, और राज्य के पद भोगियों को वेतन के बदले प्रायः जमीनें दी जाती थीं।[1]

जातियां और पहनावा—अजेन्टा की गुफाऐं जिनका समय छठी, सातवीं शताब्दी है, हर्षकालीन पहनावे और जातियों को बहुत अंश में व्यक्त करती हैं। इस स्थान पर भीतों पर जो उत्कृष्ट चित्र चित्रित किए गए हैं, उनसे तत्कालीन पहनावे पर भारी प्रकाश पड़ता है। स्त्रियों के नखशिख पर यूनानी प्रभाव है। सम्भव है कि इस का कारण यह हो कि यूनानी या ईरानी चित्रकारों से सहायता ली गई हो, बोधि सत्त्वों के चित्र उच्च कोटि की कला के द्योतक हैं।[2] एक चित्र में कोई राजकुमार स्नान कर रहा है। उसके काले और घूघरवाले बाल हैं, वह एक चौकी पर बैठा है. और सेवक उस पर बतनों से जल डाल रहे हैं।[3] इस चित्र से बाण के शब्द चित्रों की बहुत समता है। बाग की गुफाओं में स्त्रियों की दो मण्डलियों के चित्र हैं, जो चित्र कला की पराकाष्ठा के द्योतक हैं।[4]

चित्रों के चहरों की रंगत भिन्न भिन्न है। रूप रेखा और सिर के पहरावे में भेद है। वस्त्रों में न्यूनाधिक्य हैं लगभग नग्न चित्र से लेकर पूरे पहरावे के चित्र हैं। जो इन दोनों मण्डलियों में चित्रित हैं। इन चित्रों से यह स्पष्ट है कि उस समय जो भिन्न भिन्न जातियों का संमिश्रण हो रहा था, उसने अभी स्थिर रूप नहीं धारण किया था।

सूर्य की पूजा—सूर्य की पूजा भी प्राचीन है। ब्राह्मणों और गृह्य सूत्रों में इसका विधान है। वाराह मिहिर ने लिखा है कि सूर्य की मूर्ति की पूजा मगों के द्वारा प्रचलित हुई है। सूर्य की मूर्ति द्विभुज होती थी। दोनों हाथों में कमल, सिर पर किरीट, छाती पर कवच; और पैरों में घुटने से लम्बे बूंट। केवल सूर्य ही की

१—युवान चांग प्र० भा०
२—अजन्टा चित्र ११
३—अजन्टा चित्र १२
४—बाग गुफा चित्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूर्ति ऐसी मिली है, जिसके पैरों में बूट मिले हैं। भविष्य पुराण में लिखा है कि सूर्य की मूर्ति के पैर खुले नहीं रहने चाहिएँ। इसी पुराण में एक कथा है कि राजा साम्ब (कृष्ण और जाम्बवन्ती का पुत्र) ने सूर्य की उपासना से आरोग्य लाभ किया। और सूर्य की मूर्ति स्थापित करनी चाही पर ब्राह्मणों ने कहा—देव पूजा से प्राप्त होने वाले द्रव्य से ब्रह्म-क्रिया नहीं होती। यह कह कर अस्वीकार कर दिया। तब राजा ने शाक द्वीप (ईरान का दक्षिण-पूर्वी भाग) से मग जाति के ब्राह्मणों को बुलाया।[1] मग अपनी उत्पत्ति ब्राह्मण कन्या और सूर्य द्वारा मानते हैं। वे सब सूर्य की पूजा करते हैं। अलबरूनी लिखता है कि—भारत के तमाम सूर्य मन्दिरों के पुजारी ईरानी मग होते हैं। राजपूताने में ये अब सेवक या भोजक कहे जाते हैं। अभी भी सूर्य के बहुत से मन्दिर भारत में हैं। जिनमें सबसे विशाल संगमरमर का बना हुआ मन्दिर सिरोही राज्य के वरमाण गाँव में है। यह प्राचीन मन्दिर है, तथा इसके स्तम्भों पर नवीं तथा दसवीं शताब्दी के लेख खुदे हैं।[2] जिनमें उस मन्दिर को दिए हुए दानों का वर्णन है।

जैसे शिव मन्दिर में नन्दी और विष्णु मन्दिर में गरुड़ वाहन रूप हैं, वैसे ही सूर्य मन्दिर में सूर्य के सामने चतुरस्र स्तम्भ के ऊपर कीली पर घूमता हुआ उसके वाहन स्वरूप एक कमलाकृति चक्र रहता है। ऐसा चक्र आज भी कई मन्दिरों में है। इस रथ को खींचने वाले ७ घोड़ों की कल्पना की गई है। इसी से सूर्य को सप्ताश्व या सप्त सप्ति कहते हैं। कुछ मूर्तियों में सूर्य के नीचे ७ घोड़े भी बने हुए हैं। एक सूर्य मन्दिर में बाहर की ओर सात घोड़ों वाली सूर्य की कुछ ऐसी मूर्तियाँ भी मिली हैं, जिनके नीचे का भाग बूट सहित सूर्य का और ऊपर का ब्रह्मा-विष्णु या शिव का है।[3] झालरापाटण राज्य में पाटण के पद्मनाभ नामक विष्णु मन्दिर के पीछे के ताक में कुछ ऐसी मूर्ति हैं, जिसमें सूर्य-ब्रह्मा-विष्णु तीनों का मिश्रण पाया जाता है। यह मन्दिर १० वीं शताब्दी का बना हुआ है।[4] वर्तमान विद्यमान सूर्य मन्दिरों में सबसे प्राचीन मंदसौर का सूर्य मन्दिर है जो ई० स० ४३७ का बना हुआ है। यह बात उसके शिलालेख से प्रकट है। मुलतान का सूर्य मन्दिर, जिसका वर्णन ह्वेनसांग ने किया है, उसे ११वीं शताब्दी में अलबरूनी ने भी वैसा ही देखा था। हर्ष के एक ताम्र पत्र में उसके पिता प्रभाकर वर्धन तथा पूर्वज आदित्यवर्धन

१—भविष्य पुराण ब्रह्म पर्व अध्याय १३९, श्लोक ४-५-२८।२९।३०

२—म० म० रा० ब० गं० ही० ओझा—मध्यभारत कालीन भारत की संस्कृति, पृ० ३१।

३—रा० ब० गो० ही० ओझा—मध्यकालीन भारतीय संस्कृति पृ० ३१

४— ,, ,, ,,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को परमादित्य भक्त कहा गया है। सूर्य के पुत्र रैवत की घोड़े पर बैठी मूर्तियाँ मिली हैं। इसके पैरों में भी वैसे ही बूट हैं।[1]

अष्ट देवताओं की मूर्ति—इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, मरुत, कुबेर और ईश (शिव) की मूर्तियाँ आठ दिग्पालों की मूर्ति के नाम से मन्दिरों में निर्दिष्ट दिशाओं में अनुक्रम से लगी पाई जाती हैं। अष्ट दिग्पालों की कल्पना भी प्राचीन है। पतंजलि ने महाभाष्य में धनपति कुबेर के मन्दिर में मृदंग, शंख और तूणव (वंसी) के बजाने का उल्लेख है।[2] वास्तविक बात यह है कि जब हिन्दुओं में मूर्ति पूजा का चलन चल गया, तो देवता क्या ग्रह, नक्षत्रों समय, नदी तक की मूर्तियाँ बन कर पुजने लगीं। बाद मे भिन्न-भिन्न मूर्ति पूजकों में द्वेष भाव भी न रहा। ऐसे ताम्र लेख प्राप्त हुए है जिन से पता लगता है कि एक राजा परम वैष्णव है तो उसका पुत्र परम माहेश्वर। अन्त में पाँच देवता—सूर्य–विष्णु–देवी, रुद्र, और शिव मुख्य उपास्य देव रह गए – इन्हें पंचायतन कहते हैं। ऐसे पंचायतन मन्दिर भी हैं, तथा घरों में भी पूजा होती है। मन्दिरों में प्रायः यह नियम है कि जिस देवता का मन्दिर होता है, उसकी मूर्ति मध्य में तथा अन्यों की चारों कोनों पर होती हैं।[3]

हिन्दु धर्म पर सामान्य दृष्टि—पाठक यह जानते हैं कि हिन्दु धर्म के सर्व प्रामाणिक ग्रन्थ वेद हैं। इस काल में भी वेदों का पठन–पाठन होता था, पर उनकी वह प्रधानता अब न रह गई थी। अलबरूनी कहता है कि—ब्राह्मण वेदों को अर्थ समझे ही बिना कंठस्थ कर लेते हैं। तथा बहुत थोड़े ब्राह्मण उसका अर्थ समझने की चेष्टा करते हैं। ब्राह्मण क्षत्रियों को वेद पढ़ाते हैं, वैश्यों तथा शूद्रों को नहीं।[4] वैश्य लोगों ने इसी उपेक्षा के कारण बौद्ध और जैन धर्म अंगीकार कर वेद पढ़ना स्वयं ही छोड़ दिया। तब से उनका सम्बन्ध वेदों से सर्वथा ही छूट गया। अलबरूनी कहता है कि वेद लिखे नहीं जाते, याद किए जाते हैं। इस कारण से भी बहुत सा वेद साहित्य नष्ट हो गया।[5] पीछे जब वेदों के स्थान पर पुराणों का प्रचलन हुआ, तथा पौराणिक संस्कृति का उदय हुआ, श्राद्ध तर्पण की प्रथा प्रचलित हो गई, यज्ञों का प्रचार कम होकर देव पूजन की प्रथा आम हो गई तो जन साधारण वेदों से बहुत ही दूर हो गए।

---

१. सर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर कृत वै० शे० खण्ड अ० पृष्ठ १५१–५५।

२. पाणिनि सूत्र २।२।३४, पर पतंजलि भाष्य देखो।

३. म० म० रा० व० गौरी शंकर०, ही० ओ० मध्य कालीन भारतीय संस्कृति पृष्ठ ३२।

४. अलबरूनी इण्डिया साचूकृत अ० अनु० जिल्द १ पृष्ठ १२९।

५. अलबरूनी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस काल से प्रथम ही मन्दिरों की भांति मठों की भी स्थापना हुई। सम्भवतः यह बौद्धों के अनुकरण पर हुआ। भिन्न २ सम्प्रदायों और उप सम्प्रदायों के साधु और सन्यासी मठों में रहते थे। ऐसे शिला लेख मिले हैं, जिनमें मन्दिरों के साथ मठ बाग और व्याख्यान शालाओं का भी उल्लेख है। बौद्धों की रथ यात्रा का भी अनुकरण हिन्दुओं ने किया। इसका उल्लेख याज्ञवल्क्य स्मृति और उसकी मिताक्षरा टीका में है। इन सब कारणों से विचार धारा का स्रोत बदल जाने पर साहित्य में भी परिनर्तन अनिवार्य था। इसी काल में नई नई स्मृतियां बनी, जिनमें तत्कालीन रीति रस्मों का उल्लेख है। पुराणों के नए संस्करण तैयार हुए जिनमें बौद्धों और जैनों से मिलती जुलती अनेक बातों का समावेश कर लिया गया। व्रत उपवास आदि का भी प्रचार बढ़ा। भिन्न २ देवताओं के नाम से खास २ व्रत किए जाने लगे। इन व्रतों और उपवासों की परिपाटी भी हिन्दुओं ने जैनों और बौद्धों से ग्रहण की। एकादशी जन्माष्टमी; देव शयनी, दुर्गाष्टमी, ऋषिपचमी, देव प्रबोधनी, गौरी तृतीया; बसन्त पचमी अक्षय तृतीया आदि त्यौहारों पर हिन्दुओं के व्रत रखने का उल्लेख अलबरूनी ने किया है। परन्तु उसने राम नवमी का उल्लेख नहीं किया है। इससे ऐसा अनुभव होता है उस समय तक पंजाब तथा उत्तर भारत में राम नवमी का प्रचार न था। अलबरूनी ने और भी कई धार्मिक त्यौहारों का भी वर्णन किया है। जिनमें अनेक खास तौर पर स्त्रियों के लिए होते थे[1]।

प्रायश्चित्त—स्मृतियों में आचार सम्बन्धी जो नई वस्तु प्रविष्ट हुई वह प्रायश्चित्त थी। इस समय तक साधारण सामाजिक नियम भी धर्म का रूप पा गए थे। उनका यथावत पालन न करने से प्रायश्चित करना पड़ता था। अन्त्यजों के साथ तथा निषिद्ध भोजन करने, रजस्वला स्त्री तथा अन्त्यजों को स्पर्श करने, ऊंटनी का दूध पीने; शूद्र स्त्री गौ; क्षत्रिय और ब्राह्मण की हत्या करने, समुद्र यात्रा करने, जबर्दस्ती दास बनाने, स्त्रियों के बलात्; म्लेच्छों द्वारा छीने जाने पर फिर शुद्ध न करने, व्यभिचार, मद्यपान, गोमांस भक्षण, अपवित्र वस्तु स्पर्श; शिखाच्छेदन, यज्ञोपवीत के बिना भोजन आदि बातों पर चान्द्रायण, कृच्छ आदि भिन्न २ प्रायश्चितों का विधान इन स्मृतियों में यत्न पूर्वक लिखा गया है। अस्पृश्यता आदि को इस काल के अन्त में दोष माना गया। इन सब बातों से हिन्दू धर्म में संकीर्णता की वृद्धि हुई।

धार्मिक सहिष्णुता तथा उसका प्रभाव—इस काल की सबसे महत्वपूर्ण वस्तु धार्मिक सहिष्णुता है; जो विविध हिन्दु सम्प्रदायों तथा जैनों और बौद्धों के बीच इस युग के अन्त में उत्पन्न हो गई थी।

ब्रह्मा विष्णु शिव के पूजकों में एकता के परिणाम स्वरूप पंचायतन पूजा प्रचलित हुई। सब देवी देवता एक ही ईश्वर की भिन्न २ शक्तियों के सूचक प्रतिनिधि

१—वि० वि० वैध हिस्ट्री आफ मिडिएवल इन्डिया जि० ३ पृष्ठ ५३९–४६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माने गए। कन्नौज का प्रतिहार राजा एक वैष्णव था, तो दूसरा परम शैव; और तीसरा भगवती का उपासक, चौथा परम आदित्य भक्त। बौद्धों और हिन्दुओं में सहिष्णुता के फल स्वरूप सामाजिक और धार्मिक एकता का रूप बन गया था। कन्नौज के गाहडवालवंशी परम शैव गोविन्द चन्द्र ने दो बौद्ध भिक्षुओं को विहार के लिए ६ गांव दिए। बौद्ध राजा मदन पाल ने अपनी स्त्री को महाभारत सुनाने वाले ब्राह्मण को एक गांव दिया था। परम शैव गोवन्दचन्द्र की स्त्री बौद्ध थी, जैनों और हिन्दुओं में तो विवाह सम्बन्ध स धारण हो गए थे। ऐसे भी उदाहरण हैं कि पिता बौद्ध है तो पुत्र वैष्णव, और पिता हिन्दु है तो पुत्र बौद्ध। दोनों इतने समीप आ गए थे और उनमें परस्पर इतनी समानता उत्पन्न हो गई थी कि उनकी देव कथाओं में भेद करना कठिन हो गया था। जैनों और बौद्धों के धर्म प्रर्वतकों को हिन्दुओं ने अपने अवतारों में गिन लिया था। इसलिए जैनों के २४ तीर्थकरों, बौद्धों के २४ बोधि-सत्वों और हिन्दुओं के २४ अवतारों में भाव साम्य है।

इस समय यद्यपि तीनों धर्म चल रहे थें। परन्तु उनमें अनेक दोष और निर्बलताएँ आ गई थीं। और इस हीन भावना का प्रभाव तीनों पर समान भाव से पड़ रहा था।

बौद्ध धर्म का पतन—इस काल में भारतवर्ष में तीन धर्म मुख्य थे। हिन्दु, बौद्ध और जैन। सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते २ बौद्ध धर्म अवनति की ओर जाने लगा—तो भी उसका प्रभाव अवश्य रहा।

अब बुद्ध को देवता मान उनकी भक्ति का प्रतिपादन किया गया था। तथा बुद्ध की मूर्तियां बनने लगी थीं। इसके बाद २४ अतीत, २४ वर्तमान, और २४ भावी बुद्धों की कल्पना की गई। साथ ही बोधि सत्वों और अनेक तान्त्रिक देवियों आदि की भी कल्पना की गई तथा इनकी मूर्तियां बनने और उनकी पूजा होने लगी। बौद्ध भिक्षुओं ने गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी भक्ति मार्ग हारा निर्वाण पद प्राप्ति को सम्भव बताया।

हिन्दु दर्शनों का प्रभाव—महायान के उदय होने पर इसका प्रचार बहुत हुआ था। क्योंकि तब उसे ही राजाश्रय प्राप्त था। बौद्ध दर्शन पर यूनानी दशन तथा हिन्दु दर्शनों का भी प्रभाव पड़ा। परन्तु बौद्ध धर्म भी समाज में घर कर गया था। वह नष्ट होते २ हिन्दु धर्म पर गहरा प्रभाव डाले बिना न रहा। हिन्दुओं ने बुद्ध को विष्णु का अवतार स्वीकार कर लिया, इससे दोनों धर्मों में इतनी समानता बढ़ गई कि बौद्ध और हिन्दु दन्त कथाओं में भेद करना कठिन हो गया। परन्तु बौद्ध धर्म जीवन के निकट नहीं रह गया था। इसी से लोग बौद्ध धर्म को छोड़ कर हिन्दु धर्म का जिसमें जीवन की सब प्रकार की स्वतन्त्रताएँ थी, आश्रय लेने लगे।

अहिंसावाद की प्रतिक्रिया—बौद्ध धर्म का अहिंसावाद यद्यपि प्रभावशाली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था —पर वह व्यवहारिक न था। राजाओं को युद्ध करने पड़ते थे। साधारण जनता भी मांसाहार छोड़ना पसन्द नहीं करती थी। हिन्दु धर्म में ये रुकावटें न थीं, फिर ब्राह्मणों ने बुद्ध को विष्णु का अवतार स्वीकार ही कर लिया था। विष्णु के बुद्धावतार की एक मूर्ति अजमेर के म्यूजियम में है। उसे देखा जा सकता है कि किस प्रकार इस मूर्ति में हिन्दु देवत्व और बुद्ध देवत्व का एकीकरण हुआ है। अति प्राचीन काल से ईश्वरवाद पर विश्वास करने वाली जनता के लिए अवीश्वरवाद आत्मसात नहीं हो रहा था। बौद्धों का वेदों पर अविश्वास भी बहुत खटकता था। फिर गुप्तकाल में वैष्णव कर्म पुराण प्रतिष्ठा और संस्कृत का भारी प्रचार हुआ। इस काल में इन सब कारणों से बौद्ध धर्म बहुत फीका पड़ गया था।

युवान चांग का कथन--युवान चांग सातवीं शताब्दी के प्रथम चरण में भारत में आया। उस समय सारे देश में बौद्धों के बिहारों की भरमार थी। फिर भी काश्मीर की जनता ने बौद्ध बिहारों के विरुद्ध विद्रोह किया था। यह बात उसने सुनी थी। साथ ही बंगाल के राजा शशाँक ने बुद्ध गया के बिहारों का जो विध्वंस किया था, और बोधि वृक्ष को जड़ से उखाड़ डाला था तथा मगध के बिहारो पर शशांक ने जो संकट ढाया था--उसका उल्लेख उसने अपने ग्रन्थ में किया है।[1] विसेन्टस्मिथ शशांक को गुप्तवंशी मानते हैं। परन्तु मञ्जु श्रीमूल कल्प[2] में उसे ब्राह्मण लिखा है। हम जानते हैं कि इसी शशांक ने हर्ष वर्धन के बड़े भाई की षड़यन्त्र रच कर हत्या कराई थी।

हर्ष वर्धन पर दोष—हर्षवर्धन का बौद्ध संघ के विषय में पक्षपात प्रसिद्ध है। हमें वह घटना याद है कि जब धर्म संघ काल में मण्डप में आग लगा दी गई थी। आग लगाने वाले ने बताया था कि इस षड़यन्त्र में अनेक ब्राह्मण सम्मिलित हैं। वास्तव में वह ५०० विद्वान् ब्राह्मणों का संयुक्त षड़यन्त्र था। राजा का बौद्ध श्रवणों का इतना सम्मान उन्हें सहन नहीं हुआ था। इन ब्राह्मणों में पाशुपत लोग भी थे। बहुत सम्भव है कि शशांक का भिक्षुओं पर अत्याचार भी इन्हीं ब्राह्मणों और पाशुपतों का ब्राह्मण विद्वेष हो। शशांक के आक्रमणों से केवल मगध ही में नहीं—भारत के अन्य प्रान्तों में भी बौद्ध धर्म पर संकट काल आ गया। यह सौभाग्य ही समझना चाहिए कि श्री हर्ष राज्यारूढ़ हुआ, और उसने बौद्ध धर्म की बुझती ज्योति को कुछ काल तक जाग्रत रक्खा।

बौद्धों का अवसाद--इस संकट काल से बौद्धों को सावधान हो जाना चाहिए था। बुद्ध ने अहिंसा सेवा और प्रेम का तथा ब्रह्मचर्य का, जो पाठ पढ़ाया था, उससे जनता का उपकार करना चाहिए था--परन्तु बौद्धों ने ऐसा नहीं किया। वे

१—युवान चांग यात्रा विवरण,

२—मञ्जु श्री मूलकल्प, श्लोक ७३०,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुद्ध की शिक्षा को सर्वथा भूल गए। बिहारों में बैठ कर उच्च वर्ग को आश्चर्य-चकित करने के लिए वे दार्शनिक ग्रन्थ रचते चले गए। उच्चवर्गी जनों से उन्हें जागीरें मिलती थीं। तथा उन के संघारामों का खर्चा मजे में चलता था। फिर भला वे क्यों जनता के हित के लिए परिश्रम करते।

बौद्ध साहित्य रचना—श्री हर्ष के पूर्व गुप्त राजाओं के समय में तथा हर्ष के पश्चात् आठवीं शताब्दी के अन्त तक बौद्ध श्रमणों ने बहुत साहित्य रचा। वसुवंधु के अवि धर्म कोष, दिङ्नाथ के प्रमाण समुच्चय, शान्तिदेव के बोधि चर्यावतार, शान्ति रक्षित के तत्त्व संग्रह जैसे उत्तमोत्तम बोद्ध संस्कृत ग्रन्थों की इस काल में रचना हुई। यद्यपि इस देश से इस काल का बहुत सा बौद्ध साहित्य लुप्त हो चुका है पर उनके चीनी और तिब्बती अनुवाद उपलब्ध हैं। अभी आशा है कि तिब्बत और चीन के प्राचीन विहारों में छिपे पड़े मूल संस्कृत ग्रन्थ तथा अन्य विलुप्त ग्रन्थ भी मिल जांयगे।

बौद्ध पतन—अन्तिम मौर्य राजा वृहद्रथ को मार कर जब शुंगवंशी पुष्यमित्र ने मगध पर अधिकार करके दो अश्वमेध यज्ञ किए--तभी राजस्थान के राजा पाराशरी के पुत्र सर्वतात ने मध्यमिका नगरी में अश्वमेध किया। इसी प्रकार दक्षिण में आन्ध्र (सातवाहन) वंशी वैदिश्री शातकर्णी के राज्यकाल में अश्वमेध-राजसूय और दाशरात्र आदि वैदिक यज्ञ हुए। गुप्तवशी समुद्रगुप्त और वाकाटक वंशियों ने भी अश्वमेध आदि यज्ञ किए थे।[1] इस प्रकार मौर्य काल की समाप्ति से ही वैदिक धर्म की प्रवृत्ति तथा बौद्ध धर्म की अवनति होती गई। ह्वेनसांग सातवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म को पतनोन्मुख पाता है। हर्ष निस्सन्देह हिन्दुधर्मी होने पर भी बौद्ध धर्म की ओर अत्यन्त रुचि रखता था। हर्ष की भांति अन्य राजा भी सातवीं शताब्दी में हिन्दु होने पर भी बौद्ध धर्म के प्रति सद्भाव रखते थे।

नागवंशी देवदत्त ने कोशवर्धन पर्वत के पूर्व में एक बौद्ध मन्दिर और मठ बनवाया था।[2] परन्तु ये सारी बातें बौद्ध धर्म को जीवित न रख सकीं। क्योंकि वह जन-कल्याण से दूर होकर एक के बाद एक तन्त्र की रचना कर अपने सम्प्रदाय की रक्षा करने का प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु दिन में बुद्ध की पूजा और रात्रि में नग्न स्त्री की पूजा वाममार्ग विधि से करने का परस्पर मेल कहां था? ब्राह्मण लोग शैवधर्मी हो खुल्लम खुल्ला लिंग पूजा कर रहे थे। ब्राह्मणों का सामना करने को बौद्धों ने इसी समय मञ्जु श्री मूल कल्प जैसे पुराणों की रचना प्रारम्भ कर दी। परन्तु ब्राह्मणों के सामने उन्हें सफलता नहीं मिली।

---

१. देखिए, तत्कालीन शिला लेख।

२. देखिए शेरगढ़ (कोटा राज्य) में प्राप्त वि० सं० ८४७ का प्राप्त शिलालेख।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बौद्धों का वेद विरोधी भाव हिन्दुओं को बहुत खटका, कुमारिल भट्ट तथा दूसरे ब्राह्मणों ने बौद्धों के अनीश्वर वाद और वेद विरोध को कड़े शब्दों में चैलेंज किया। उन्होंने दोनों सिद्धांतों का खण्डन किया—और उसका परिणाम भी बहुत व्यापक हुआ। फिर कुमारिल के बाद ही शङ्कराचार्य ने नए सिरे से इस आन्दोलन को चलाया। शङ्कर के आन्दोलन की व्यापकता का पता शङ्कर दिग्विजय के इस श्लोक से प्रकट है जो कुमारिल के मुँह से कहलाया गया है—जिसका अर्थ यह है—कि—"वेदार्थ से विमुख बौद्धों को नष्ट करने के लिए आप कार्तिकेय रूप उत्पन्न हुए हैं।"[1]

ब्राह्मणों और पाशुपतों की विरोध शक्ति—इस काल में बहुत से ब्राह्मणों और पाशुपतों ने बौद्धों के विरोध में अपनी शक्ति लगाई। बौद्ध भिक्षु अब वाह्याडम्बरों और अधिकार लिप्सा में फंस गए थे। धन लिप्सा भी उनकी वैसी ही बढ़ गई थी; जैसी अनीश्वर की भावना। श्रद्धालु ग्रहस्थों और राजाओं से उन्हें खाने को माल मलीदे तथा रहने को बिहार प्राप्त होते थे। वे सब प्रकार के भोगों को भोगते हुए मठों और बिहारों में आराम से रहते थे। जनता के सुख दुख का उन्हें ध्यान ही न रह गया था। न वे अब विदेश यात्रा करते थे। जिन श्रमणों ने हिमालय के ऊपर के खोतान जैसे निर्जन प्रदेश में यात्रा कर चीनी लोगों को सद्धर्म की शिक्षा दी थी, वे ही श्रमण अब समझने लगे थे कि हमारे संघाराम की चाहरदीवारी के अन्दर ही सारा विश्व है। ये संघाराम ही अब उनके पींजरे थे, जिनमें बन्द रह कर वे निरर्थक सूत्रों को रट रट कर अपना अकर्मण्य जीवन व्यतीत किया करते थे।

इस काल में बौद्ध धर्म का रूप और भी विकृत हो गया था। मन्त्र शक्ति और तान्त्रिक क्रियाओं का उसमें प्रवेश हो गया था, और इस समय वज्रयानी बौद्ध सिद्ध मन्त्रसिद्धियों द्वारा बाममार्ग की स्थापना कर रहे थे। पौराणिक हिन्दु धर्म भी शाक्त बाममार्ग में प्रवृत्त हो रहा था; जो वज्रयान जैसा ही था। इस प्रकार बौद्ध और हिन्दु दोनों ही धर्म वाम मार्गी हो चले थे। जिस से देश का सदाचार और उच्च आदर्श गिरता जा रहा था। धर्म भावनाओं के आदर्शों के स्थान अब रहस्यमयी क्रियाओं ने ले लिए थे, और अब उनमें वह शक्ति न रही थी—जो पूर्व काल में यवन, शक, पार्थियन, कुशाण, हूण आदि विदेशी जातियों को आत्मसात करने में सफल हुई थी—इसी से दसवीं शताब्दी के बाद जब महमूद ने भारत पर आक्रमण किया, और तुर्क लोग भारत में बसने लगे, तो भारतीय उन्हें अपने धर्म और समाज में प्रविष्ट करने में असफल रहे।

बौद्ध धर्म का दिनों दिनों पतन होता गया, और यह परिणाम हुआ कि राजा

१—श्रुत्यर्थं धर्मं विमुखान् सुगतान् निहन्तुं। जातं गुवं भुवि भवन्तमहं जाने।
(शङ्कर दिग्विजय)

CC-0. Agamnigam Foundation Foundation, Chandigarh

श्रय और धर्म मर्यादा से च्युत हो कर तथा हिन्दु धर्म और मुस्लिम आक्रमण के घात से उसका भारत से अन्त में समूल नाश हो गया। ई० स० की १२ वीं शताब्दी के ही अन्त तक मगध और बंगाल को छोड़ कर भारत वर्ष के प्रायः सभी विभागों में बौद्ध धर्म नष्ट प्रायः हो चुका था, और वैदिक धर्म ने उसका स्थान ले लिया था।

ईसा की सोलहवीं शताब्दी में सिंहल का राजा राजसिंह अपने पिता की हत्या करके गद्दी पर बैठा। उसने बौद्ध संघ को आमन्त्रित करके प्रितृ वध का प्रायश्चित्त पूछा। पर भिक्षु संघ ने व्यवस्था दी–कि प्रायश्चित देना हमारे लिए अशक्य है, तब उसके शैव धर्म अङ्गीकार कर लिया, और भिक्षुसंघ का ऐसा भये कर संहार किया—कि ४।५ ही वर्ष में सिंहल में एक भी भिक्षु न रह गया। बड़े बड़े बौद्ध पुस्तकालयों को वह पूरे तीन मास तक जलवाता रहा। यह राजा सौभाग्य से जंगल में जामुन खाने गया था—वहां जहरीला कांटा पैर में लग जाने से शीघ्र ही मर गया। पर अपने राज्य के अल्पकाल ही में सिंहल द्वीप से बौद्ध धर्म को उसने नष्ट कर दिया।[1]

परन्तु सिंहल में शैव धर्म स्थिर नहीं रह सका। क्योंकि हजारों वर्ष से वहाँ के लोगों की संस्कृति में ही बौद्ध धर्म घर कर गया था। दूसरे–शैव सन्यासी एवं तामिल थे। इससे सिंहल निवासी उनसे घृणा करते थे। इस कारण राजा के मरने पर विमल धर्म सूर्य राजा शैवों को निकाल कर पुनः बौद्ध धर्म की स्थापना करनी पड़ी। पर संघ की स्थापना के लिए सिंहल में बौद्ध रह ही न गए थे—अतः उसने श्याम देश से भिक्षु बुलाए। इसी से आज कल सिंहल में जो बौद्धधर्म है—उसे स्याम निकाय कहते हैं।

११—जैन धर्म

यही दशा जैनधर्म की भी हुई। जैन धर्म बौद्ध धर्म से कुछ पूर्व ही भारत में प्रादुर्भूत हुआ था। गौतम के निर्वाण के पूर्व ही महावीर की मृत्यु हो चुकी थी। उस काल में वैदिक हिन्दु धर्म के मुख्य ६ सिद्धान्त थे—

१—वेद ईश्वरीय ज्ञान है।
२—वैदिक देवता–इन्द्र, वरुण आदि की पूजा।
३—यक्ष और पशुवध।
४—वर्णाश्रम व्यवस्था।
५—आत्मा का अमरत्व।
६—कर्मफल और पुनर्जन्म।

१—महावंश ९३ परिच्छेद। (मरण कथा सिंहेल में प्रचलित है)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महावीर और बुद्ध ने उपर्युक्त प्रथम ५ सिद्धांत अस्वीकार किए थे। महावीर ने केवल दो, आश्रम–वानप्रस्थ और सन्यास मान्य किए थे। परमात्मा को दोनों ने अस्वीकार किया था। बुद्ध ने तो इस पर विचार भी नहीं किया।

जैन मतान्तर––बुद्ध धर्म की भांति जैन धर्म में भी मतान्तर हुए। यद्यपि यह धर्म बौद्ध धर्म से प्राचीन था––परन्तु उसका प्रचार बौद्ध धर्म के समान नहीं हुआ। इसके कारण थे। एक तो यह—कि बौद्ध सिद्धान्त शीघ्र ही लिख लिए गए थे, परन्तु जैन सिद्धांत बहुत काल तक ग्रन्थ रूप में परिणित नहीं किए गए। ईस्वी सन् की ५ वीं शताब्दी के मध्य में देवर्धिगणि क्षमा श्रमण ने वल्लभी की धर्म परिषत् में जैन धर्म ग्रन्थ लिपि वद्ध किए।

दूसरा कारण यह था कि जैन साधुओं की अपेक्षा बौद्ध भिक्षुओं का जीवन अधिक सरल और कम कठोर तपस्या मूलक था। इसके सिवा बौद्धों की भांति जैनों के संघ नहीं संगठित हुए। बौद्धों की अपेक्षा जैन साधुओं की चर्या अति अव्यवहार्य और कठोर थी।

तीसरा कारण यह था कि बौद्ध धर्म की भांति जैन धर्म को राजाश्रय नहीं प्राप्त हुआ। जैनों को अशोक और कनिष्क जैसे राजा नहीं मिले। केवल कलिंग के राजा खारबेला ने—जो ई० स० की दूसरी शताब्दी के आस पास हुआ, जैन धर्म स्वीकार कर उसकी कुछ उन्नति की। इसी से जैन धर्म की प्रगति मन्द रही[१]।

दक्षिण में प्रचार—इस काल में जैन धर्म का प्रचार आन्ध्र, तमिल, कर्नाटक राजपूताना; गुजरात, मालवा तथा विहार और उड़ीसा के कुछ भाग में था। जैनों की प्रगति––सच पूछा जाय तो दक्षिण में ही विशेष हुई। वहाँ वे संस्कृत बहुल भाषा का प्रयोग करते थे. इसका यह परिणाम हुआ कि दक्षिण की तामिल, आन्ध्र आदि भाषाओं में संस्कृत शब्दों की बहुतायत हो गई। जैनों ने वहाँ अपनी पाठशालाएँ भी खोली। जहां बालकों को सबसे पहिले 'ॐ नमः सिद्धाम्' वाक्य सिखाया जाता था। जो जैनों का उस समय का नमस्कार वाक्य था। तामिल प्रदेश में पाण्य और चोल राजाओं ने जैन गुरुओं को दान दिए। उनके लिए मथुरा के पास मठ और मन्दिर बनवाए। धीरे २ जैनों में भी मूर्ति पूजा का प्रचलन हुआ, तथा तीर्थंकरों की मूर्तियाँ बनने लगीं। परन्तु इस काल में वहां भी जैन धर्म का ह्रास होने लगा था।

ई० सन की सातवीं शताब्दी के आरम्भ में शशांक ने जिस प्रकार उत्तर के बौद्धों को सताना प्रारम्भ किया था—उसी प्रकार नेडुमारना या सुन्दर पाण्य ने उसी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दक्षिण के जैनों पर अत्याचार करना आरम्भ किया। यह राजा पहिले जैन धर्मी था, पर उसकी पत्नी के गुरु तिरुज्ञान संमद ने उसे शैव धर्म में

१—सी० वी० वैद्य। हिस्ट्री आफ मीडिरएवल इन्डिया। जिल्द ३, पृष्ठ ४०६—१०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दीक्षित कर लिया। तब से वह जैन यतिग्रों का कट्टर शत्रु बन गया। उसने उन पर बड़े २ ग्रत्याचार किए, ग्रौर ग्राठ हजार से ग्रधिक जैन साधुग्रों की निर्दयता पूर्वक हत्या कर डाली। उसके इस क्रूर कार्य को ग्रर्काट के तिरुवत्तूर मन्दिर की दीवारों में खोदकर चित्रित किया गया है[1]।

शैवों से संघर्ष--शैव मत के ब्राह्मणों ने वहां जैन धर्म को बहुत क्षति पहुंचाई। चोल राजाग्रों ने, जो पीछे शैव हो गए थे, जैन धर्म को वहाँ से उठाने के काफी प्रयत्न किए। राज राज चोल ने मथुरा के मन्दिर में बहुत से शैव साधुग्रों की प्रतिमाएँ बनवाकर रखवाईं। कर्नाटक में पहिले चालुक्यों ने जैन धर्म को यथेष्ट उत्तेजन दिया था, तथा ई० स० ८००–१००० तक चालुक्यों के राज्य काल में जैन धम बहुत उन्नत हुग्रा। परन्तु इसके बाद ई० स० १०००—१२०० में चालुक्य राजाग्रों ने शैव धर्म स्वीकार कर लिया, ग्रौर जैन धर्म की विरोधी क्रियाऐं प्रारम्भ कर दीं। मन्दिरों में से जैन प्रतिमाऐं उठाकर वहां पौराणिक देवताग्रों की प्रतिमाएं स्थापित कर दी।

तुंग भद्रा से उस पार का कर्नाटक प्रदेश गंगवंशी राजा के ग्राधीन था, जो जैन था। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में चोल राजाग्रों ने गग वंशी राजा को परास्त किया। पीछे होयसल राजाग्रों ने गंगवाडि पर ग्रधिकार कर लिया। पहले वे भी जैन थे, परन्तु रामानुज ने विष्णुवर्धन को वैष्णव बना कर मैसूर में वैष्णव मत का प्रचार प्रारम्भ कर दिया था। इससे दक्षिण में जैन धर्म को बड़ा भारी धक्का लगा। राजाग्रों ने इन शैवों से प्रभावित होकर जैनियों पर यथेष्ठ ग्रत्याचार किए। इसी प्रकार उड़ीसा के राजाग्रों ने शैव ब्राह्मणों के साथ मिलकर जैनों पर ग्रत्याचार कर वहां से उनका मूलोच्छेद कर दिया।[2]

दक्षिण ग्रौर पच्छिम--जब दक्षिण में जैनों का इस प्रकार ह्रास हो रहा था, तब पच्छिम में वह पनप रहा था। राजपूताना, मालवा ग्रौर गुजरात में इस धर्म की बहुत वृद्धि हुई। यद्यपि इन प्रदेशों के राजा शैव थे, परन्तु उन्होंने जैनों को बहुत प्रश्रय दिया। जैनों की इस वृद्धि का मुख्य कारण हेमचन्द्र ग्राचार्य था। जो गुर्जरेश्वर कुमार पाल का गुरु तथा संस्कृत प्राकृत का महापण्डित था। कुमार पाल ने उसके प्रभाव में ग्राकर जैन धर्म स्वीकार कर लिया था। तथा उसकी उन्नति के लिए भारी प्रयत्न किया। जिससे गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, राजपूताना ग्रौर मालवे में जैन धम का बहुत प्रचार हुग्रा।[3]

१—Early Histoy of India. P. P. 474-75

२--सी० वी० वैद्य, हिस्ट्री ग्राफ मीडिएवल इन्डिया जिल्द ३। पृ० ४०६–१०।

३--सी० वी० वैद्य हिस्ट्री ग्राफ मीडिएवल इन्डिया जि० ३ पृ० ४११।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भारत के अन्य प्रदेशों में जैनों का थोड़ा बहुत प्रचार हुआ। मारवाड़ी व्यापारियों ने जैन मन्दिर बनवाए, परन्तु जैनों के अनुयायी बहुत कम हुए।

शैवों के अत्याचार--शैवों ने जैनों और बौद्धों के आखेट का कोई अवसर ही नहीं चूका। तथा यह कार्य सोलहवीं शताब्दी तक जारी रक्खा, और इस का प्रभाव सिंहल द्वीप तक पड़ा। केवल यही बात नहीं कि ये राजा शैवों के फुसलाने पर ही बौद्धों और जैनों पर अत्याचार करते थे। वास्तव में यह काम सेना के लिए धन प्राप्त करने का एक साधन बन गया था। क्यों कि उस समय देश की सारी सम्पत्ति बौद्ध और जैन मन्दिरों तथा बिहारों में एकत्र हो गई थी। बौद्ध बिहारों तथा उपाश्रयों की जागीरें छीन लेने का यह अच्छा बहाना था, इसी कारण इन राजाओं ने शैवों का नेतृत्व धारण कर बौद्धों और जैनों का उत्पीड़न प्रारम्भ किया।

ब्राह्मण धर्म-- जब बौद्धों और जैनों का उदय हुआ, तब ब्राह्मण धर्म का मुख्य रूप ईश्वर उपासना, हिंसामय यज्ञ, और वर्णाश्रम व्यवस्था का था। ईश्वर की उपासना भिन्न भिन्न नामों और रूपों में होती थी। प्रायः सारे भारत वर्ष में वैदिक धर्म फैला था। बौद्धों और जैनों के अभ्युदय से ब्राह्मण धर्म को बहुत क्षति पहुँची। फिर भी वह धर्म नष्ट नहीं हुआ। ज्योंही बौद्धों और जैनों का पतन हुआ। हिन्दु धर्म बड़ी तीव्रगति से विकसित हुआ। विशेष कर उस दशा में–जब कि उसे सुङ्गवंश तथा गुप्तवंश का प्रभावशाली राजाश्रय मिल गया।

जैसे बौद्ध और जैन सिद्धांत हिन्दु दर्शनों पर आधारित थे। उसी प्रकार जैनों और बौद्धों से ब्राह्मणों ने अनेक बातें अपने धर्म में लीं। जिनमें मूर्ति पूजा मुख्य थी। बुद्ध काल में यक्ष मूर्ति की पूजा होती थी। ई० पू० २०० के नगरों के शिलालेख में सकर्षण और वासुदेव की मूर्ति पूजा के लिए मन्दिर बनाने का उल्लेख है। मूर्ति पूजा का यह सब से प्राचीन प्राप्त उदाहरण हैं। पर इससे यह अवश्य समझ पड़ता है कि मूर्ति पूजा उस काल से बहुत प्रथम से प्रचलित थी। आगे चल कर ब्राह्मण धर्म में भी भिन्न भिन्न सम्प्रदाय फैलने लगे।

१२—वैष्णव सम्प्रदाय

भागवत गीता के विराट् रूप के वर्णन को उपलक्षण बना कर सात्वतों (यादवों) ने वासुदेव की उपासना प्रचलित की—जो सात्वत या भागवत सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुई। विधियों की जटिलता और बौद्धों तथा जैनों की विरोध भावना से प्रभावित जनता कर्म काण्ड और यज्ञ विधानों से ऊब गई थी। इस लिए इस नए भक्ति मार्ग को उन्होंने पसन्द किया। इसमें न बौद्धिक योग्यता की आवश्यकता थी, न धन खर्च करने की। मेगस्थनीज ने ई० स० पूर्व की चौथी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शताब्दी में मथुरा के शौर सेनी यादवों के सम्बन्ध में हरि, कृष्ण, वासुदेव (हेरिक्लिस) की पूजा का उल्लेख किया है। यानी तीनों ने अपने सूत्रों में बासुदेव का उल्लेख किया है। जिस पर टीका करते हुए पतञ्जलि ने वासुदेव को आराध्य देव माना है। सम्भव है पाणिनि के समय में (ई० पू० ६००) बासुदेव की पूजा प्रचलित हो, इससे यह भी सम्भावना करनी पड़ी कि भागवत धर्म तथा मूर्ति पूजन इस काल से भी अधिक प्रथम से प्रचलित हो।[1]

परन्तु वैष्णव धर्म ने प्राचीन यज्ञ याग नहीं छोड़े। वे अश्वमेधादि बड़े बड़े यज्ञ करते रहे। उनमें पशु हिंसा होती रही--बाद में बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर उन्होंने अपने धर्म में अहिंसा को प्रधानता दी।

भागवत धर्म और उसका उत्तरकालीन रूप--प्राचीन भागवत सम्प्रदाय का मुख्य ग्रन्थ पञ्चरात्र सँहिता है। इस सम्प्रदाय वाले अभिगमन (मन्दिरों में जाना), उपादान (पूजन द्रव्य एकत्र करना); इज्या (पूजन), स्वाध्याय (मन्त्र पाठ) और योग (ध्यान) से भगवान का साक्षात्कार होना मानते थे।

बाद में वैष्णवों ने विष्णु के २४ अवतारों ब्रह्मा, नारद, नर नारायण, कपिल, वामन, परशुराम, वेदव्यास, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिंह, दत्तात्रेय; यज्ञ, ऋषभदेव, पृथुराम, वलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, हँस और हयग्रीव की कल्पना की। जिनमें दस--मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि मुख्य माने गए। यह भी सम्भव है, यह २४ अवतारों की कल्पना बौद्धों और जैनों के २४ तीर्थंकरों और बोधिसत्त्वों के अनुकरण पर उनके पीछे की गई हो। बुद्ध और ऋषभदेव को हिन्दु अवतारों में परिगणित करने से स्पष्ट है कि बौद्धों और जैनों का प्रभाव हिन्दु धर्म पर पड़ रहा था। विष्णु के मन्दिर ई० स० पू० २०० से लेकर अब तक बनते रहे। शिलालेखों और ताम्र पत्रों एवं प्राचीन ग्रन्थों में विष्णु के पूजने वालों का उल्लेख है।

दक्षिण में भागवत सम्प्रदाय का प्रचार नवीं शताब्दी में हुआ। उधर के आलवार राजा कृष्ण पूजक थे। बाद में आलवार राम भक्त बन गए। यद्यपि राम को भी विष्णु का अवतार मान लिया गया था, परन्तु यह एक आश्चर्य की बात है कि दसवीं शताब्दी तक राम का कहीं कोई मन्दिर नहीं बना--न राम पूजा प्रचलित हुई। रामनौमी आदि त्यौहार तथा राम पूजा का प्रचलन बाद में हुआ।

पौराणिक अवतारवाद--पुराणों के अनुसार कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है। विष्णु का नाम हमें ऋग्वेद में मिलता है। महाभारत भी विष्णु को

१--सर रामकृष्ण गोपल भाण्डारकर कृत वैष्णव शैविज्म एण्ड अदर माइनर रिलीजस सिस्टम्स पृष्ठ० ८। १०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परमात्मा कहकर नारायण, कृष्ण और वासुदेव का वर्णन करता है। विष्णु के मन्दिर बहुत कम हैं। शेषशायी विष्णु के मन्दिर भुवनेश्वर, जगन्नाथ पुरी, खजराहों में, तथा अन्यत्र भी हैं। परन्तु कृष्ण के मन्दिर बहुत अधिक हैं।

नारायण को भी विष्णु कहा गया है। परन्तु एक नारायण युधिष्ठिरकाल के ऋषि हैं। जिन्होंने ऋग्वेद के पुरुष सूक्त की रचना की है तथा यजुर्वेद का एक भाग भी बनाया है। 'शतपथ ब्राह्मण' में नारायण को परमात्मा से उत्पन्न माना है। नारायण 'पंच-रात्र' धर्म का भी प्रवर्तक है। ब्रह्मा को भी नारायण कहा गया है, इनका सम्बन्ध आदिम जल से है। 'तैत्तिरीय आरण्यक' में नारायण परमात्मा है। महाभारत उद्योग-पर्व में अर्जुन को ही नारायण कहा है। महाभारत के नारदीय-खंड में नारायण श्वेतद्वीप में नारद को वासुदेव की महीमा सुनाते हैं। उनका प्रतिस्थापित 'पञ्चरात्र' धर्म 'एकान्त तथा एकान्तिक' भी कहा गया है। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ--इन सातों चित्र शिखण्डियों तथा स्वायंभुव मनु ने यह मत स्वीकार किया। इसमें नरनारायण, कृष्ण और हरि, धर्म और अहिंसा के पुत्र एवं परमात्मा के चार रूप माने गए हैं, तथा यह सात्वतों का मत कहा गया है।

विचारणीय बात यह है—कि अवतारवाद, जो पौराणिक धर्म का प्रधान सिद्धांत है, वह उत्तर बौद्धकालीन है। इसका अभिप्राय यह है कि बौद्ध काल के पूर्ववर्ती हिन्दु साहित्य में अवतारों का वर्णन नहीं है। इस साहित्य में प्रजापति और ब्रह्मा के वर्णन में मत्स्य, कच्छ, वाराह रूपों में कार्य विशेष का होना मात्र लिखा है। वाल्मीकीय रामायण में राम को अवतार नहीं माना गया है, परन्तु उसके नवीन सँस्करणों में अवतार तथा व्यूह का कथन है। निस्सन्देह ये नवीन भाग चौथी शताब्दी ईसा पूर्व जोड़े गए हैं। महाभारत के नारायणीय खण्ड में मत्स्य, बाराह, कच्छ नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, हँस और कल्कि अवतार कहे गए हैं। गीता में केवल कृष्ण ही को भगवान् और अवतार माना गया है। हरिवंश में छैः अवतार हैं; तथा वायु-वाराह, अग्नि पुराण और भागवत में दस अवतार हैं। इन सब में राम और कृष्ण दोनों को अवतार माना गया है। पातञ्जल भाष्य और अमरकोष में राम का नाम नहीं है, भवभूति ने राम को अवतार माना है।

पौराणिक तथ्य और इतिहास--अब, इन सब पौराणिक तथ्यों को यदि इतिहास की तराजू पर तोला जाय तो यह निष्कर्ष निकलेगा--

प्रायः ६०० ई० पू० के पाणिनि वासुदेव देवता को जानते थे। ५०० ई० पू०; गीता में कृष्ण भगवान् विष्णु हैं। ४०० ई० पू० के बौद्धग्रन्थ 'निद्देश' में लोग बलदेव और कृष्ण की पूजा करते थे। बलदेव का माहात्म्य व्यूह पूजन था। तीसरी शताब्दी ई० पू० में ग्रीक राजदूत मेगस्थनीज ने मथुरा में शौर सैनों को कृष्ण पूजन करते देखा था। दुसरी शताब्दी में ई० पू० के पतञ्जलि बासुदेव को पूज्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

देवता मानते थे। दूसरी शताब्दी ई० पू० का प्राप्त घोसुण्डी का शिलालेख संकर्षण और वासुदेव के पूजन मण्डप का बनना कहता है। दूसरी शताब्दी ई० पू० का वेसनगर वाला शिलालेख वासुदेव का गरुड़ध्वज बनना बताता है। पहली शताब्दी ई० पू० का प्राप्त नानाघाट वाला लेख वासुदेव तथा संकर्षण का पूजन बताता है। पहली दूसरी शताब्दी के निकट मथुरा के पास वाले आभीर बालकृष्ण का पूजन करते थे। ईसा की प्रथम शताब्दी का 'घटक जातक' नामक बौद्ध ग्रन्थ बालकृष्ण की कथा कहता है। तथा प्रथम शताब्दी ही का अमरकोष कृष्ण को दामोदर बताता है। तीसरी शताब्दी के गुप्त राजा अपने को परम भागवत बताते हैं।

ई० स० ३८३ का एक लेख जनार्दन का ध्वज स्तम्भ बनना बताता है। गुप्त सम्राट चन्द्र का पाँचवीं शताब्दी का कुतुबमीनार के सामने वाला लोह स्तम्भ विष्णुध्वज स्तम्भ था। चौथी-पाँचवीं शताब्दी के आड़वार तामिल वाला सत संघ नारायण विष्णु का स्तवन करता है। पाँचवीं शताब्दी के कालिदास गोपाल कृष्ण की महिमा गाते हैं। छठी शताब्दी के बराहमिहिर भागवत विष्णु का पूजन लिखते हैं। आठवीं शताब्दी के शङ्कराचार्य से प्रथम का महाभारत वाला नारायणीय खण्ड नारायण द्वारा नारद को एकांतक मत बताता है। व्यूह पूजन में राम-कृष्ण को वह विवेक बताता है। सन् १०१३ का 'धर्म परीक्षा' नामक जैन ग्रन्थ राम और बुद्ध के अवतार का समर्थन करता है।

वैष्णव धर्म पर एक दृष्टि—इन सब आधारों पर निर्भर होकर यदि वैष्णव धर्म पर एक दृष्टि डाली जाय, तो यह निष्कर्ष निकलता है, कि विष्णु वैदिक देवता उपेन्द्र थे, ऋग्वेद में इनका मान था। पर अन्य वेदों में वह मान न रहा। उपनिषदों में इन्हें कहीं परमात्मा से उत्पन्न कहा गया, कहीं स्वयं परमात्मा। बौद्ध काल के आरम्भ से वासुदेव के नाम की महिमा बढ़ी। और गीता में इन्हें ही कृष्ण के नाम से भगवान् और ईश्वर कहा गया। गीता में श्रीकृष्ण कहीं अपने को अवतार कहते हैं, कहीं ईश्वर। आगे पौराणिक साहित्य में त्रिवेद का रूप बना। अठारह प्रमुख पुराणों में छै पुराण वैष्णव धर्म पर हैं। इतने ही शैव पुराण भी हैं, परन्तु वैष्णव पुराण शैव पुराणों से अधिक गम्भीर और मान्य हैं। इन कारणों से प्रकट होता है कि पौराणिक काल के प्रमुख देवता विष्णु ही हैं। यह एक मार्के की बात है कि पुराणों में त्रिवेद पर ही विशेष जोर डाला गया है, परमेश्वर पर नहीं।

जातकों के अतिरिक्त वासुदेव का उल्लेख चूलनिद्देस में है। जहां अनेक देवताओं की गणना करते हुए—वासुदेव वतिकाना वासुदेव देवता। बलदेव वतिकानां बलदेव देवता' ऐसा लिखा है। महाराष्ट्र में 'वसुदेवा' और मध्य प्रदेश के सागर आदि जिलों में वसुदेवा' सम्प्रदाय के लोग अब भी भीख मांगते हैं। ये लोग मोर पंख की ऊँची नोकदार टोपी और लम्बा चोगा पहनते हैं, जिन पर कौड़ियां टंकी होती हैं। वे प्रातःकाल वासुदेव के गाने गाकर भीख मांगते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
मैगस्थनीज के कथनानुसार वासुदेव भारत का हेराकुलस था।

गुप्त राज्य—गुप्त राजा शकों के शत्रु थे। शकों के राज्य नष्ट करके उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया था। शकों का देवता महेश्वर महादेव था—जो विदेशी था। इसलिए गुप्त राजाओं ने उसे अपना कुलदेवता न बनाकर वासुदेव को कुलदेवता बनाया। गुप्तों का कुलदेवता होते ही ब्राह्मणों ने वासुदेव कृष्ण का महत्त्व बढ़ाने में अपनी शक्ति लगा दी। शकों के ह्रास काल में जिस प्रकार महादेव का रूपांनान्तर लिंग रूप में हुआ, उसी प्रकार गुप्तों के राज्य का अन्त होने पर वासुदेव का रूपान्तर वाममार्गी ढंग पर होने लगा। राजा जैसे जैसे विलासी होते गए—अपने देवता को विलास में लिप्त करते गए। गुप्तों के समकालीन कालिदास ने कहा—

'वर्हेणेस्मारित रुचिन गोपवेशस्य विष्णोः'

इससे प्रमाणित होता है, कि कृष्ण का विलासी गोपाल रूप उसी काल में व्यक्त होने लगा था।

महाभारत—अब तनिक महाभारत पर ऐतिहासिक दृष्टि दीजिए। भारत काव्य को महाभारत का रूप गुप्त काल में ही दिया गया। गुप्तों को शकों का सामना करना था, और लोगों में युद्ध प्रेम कायम रखना था। इस काम में महाभारत का वही उपयोग गुप्त काल में हुआ, जो आज के युग में 'आल्हा' वीरकाव्य का हुआ। उसे अन्तिम रूप मेगस्थनीज के बाद मिला।

श्रीमद्भागवत और सूरसागर—ईश्वर तत्त्व से समाविष्ट आधुनिक अवतार कृष्ण का सर्वाङ्ग वर्णन केवल दो ग्रन्थों में ही मिलता है। संस्कृत में श्रीमद्भागवत में और हिन्दी में सूरसागर में। कहा जाता है कि सूरसागर भागवत् का एक स्वतन्त्र अनुवाद है। बाहरी नजर से दोनों में समता दीखती है, परन्तु ध्यान से देखने पर दोनों का भेद समझ में आता है। यह बात भी प्रकट हो जाती है, कि सूरसागर ने कृष्ण को कितना महत्त्व दिया। यद्यपि दोनों ग्रन्थ बारह स्कन्धों में समाप्त हुए हैं, और प्रत्येक स्कन्ध की कथा वस्तु में साम्य भी है। श्रीमद्भागवत् अवतारवाद का ग्रन्थ है, यद्यपि उसमें अन्य अवतारों की अपेक्षा कृष्ण को ही प्रमुखता दी गई है। पर सूरसागर तो कृष्ण पूजा का ही ग्रन्थ है। श्रीमद्भागवत् के केवल दशम स्कन्ध में ही कृष्ण चर्चा है। पर इसी स्कन्ध की भागवत् में महत्ता भी है। भागवत् के ३३५ अध्यायों में ९० कृष्णावतार से सम्बन्धित हैं। पर सूरसागर के ४००० पदों में ३६०० पदों में कृष्ण का वर्णन है। भागवत् और सागर दोनों ही में दशम स्कन्ध दो भागों में विभक्त हैं—एक पूर्वार्द्ध, दूसरा उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध में गोकुल भूमि की लीला वर्णित है, उत्तरार्द्ध में द्वारिका भूमि की। भागवत् में कृष्ण चरित की कथा ९० में से ४९ अध्यायों में; तथा उत्तरार्द्ध की कथा ४१ अध्यायों में दी गई है। परन्तु सूरसागर में पूर्वार्द्ध की कथा ३५०० पदों में, तथा उत्तरार्द्ध केवल १३० पदों में ही है। इससे स्पष्ट है कि सूरदास के इष्टदेव सम्पूर्ण कृष्ण नहीं, गोकुल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
भूमि के बालकृष्ण ही हैं। द्वारिकावासी या महाभारत के नेता कृष्ण की ओर सूरसागर रचयिता की दृष्टि नहीं है।

शंकर का दुस्साहस—उपनिषद्, गीता और वेदान्त सूत्र इन तीनों के संगठन को प्रस्थानत्रयी कहते हैं। यह नाम श्री शकराचार्य ने दिया है। तीनों में प्रधान उपनिषद् हैं। गीता में कहा है कि उपनिषद् रूपी गाय का दूध दुहकर गीता द्वारा अर्जुन को पिलाया गया है। इस प्रकार गीता और वेदान्त दर्शन दोनों उपनिषदों के ही आधार पर बनाए गए हैं। ये उपनिषद् ब्राह्मणों के भाग हैं। शंकराचार्य ने सब प्रमाण उपनिषदों से ही लेकर ब्रह्म सूत्रों का भाष्य किया। वेदान्त दर्शन न्याय-वैशेषिक-योग-मीमांसा सब का विरोध करता है। शंकर ने वेदान्त सूत्रों से ही सब का सगठन किया है। इसके अधिकांश सूत्र तैत्तिरीय और वृहदारण्यक उपनिषद् के आधार पर बनाए गए हैं। और उनका मूल उद्देश्य वही अन्ध तत्त्व है, अर्थात् आत्मनिष्ठा। आर्य वेद को श्रुति तथा मनु आदिस्मृतियों को स्मृति मानते थे। वैदिक क्रिया-कलाप का विधि-विधान स्मृतियों में था। तथा दर्शन समीक्षा ग्रन्थ थे। इस प्रकार श्रुति-स्मृति और दर्शन आर्य संस्कृति के मूलाधार थे। परन्तु शंकर ने वेद के स्थान पर उपनिषदों को श्रुति, गीता को स्मृति और ब्रह्मसूत्रों को समीक्षा ग्रन्थ बनाकर उन्हें प्रस्थानत्रयी नाम दिया। उन्हें इसलिए यह दुस्साहस करना पड़ा--कि उन्हें जिन तत्त्वों की आवश्यकता थी, वे न वेद में थे, न स्मृतियों में। इसका प्रभाव आर्य संस्कृति पर यह पड़ा— कि वह वेद और स्मृति से विमुख होकर सम्प्रदाय की ओर अभिमुख हो गई, और वेदान्त यथार्थ में— वेदों का अन्त करने वाला प्रमाणित हो गया।

सम्प्रदाय और वामाचार—ईसा की छठी-सातवीं शताब्दी में ही बौद्धों ने वज्रयान और सहजयान की स्थापना कर वाममार्ग प्रचलित कर दिया था। पीछे जो पाशुपत दर्शन बना—वह बौद्ध और हिन्दु वामाचार का सम्मिश्रण था—वामाचार का यह विष बौद्ध-जैन-शैव-वैष्णव सभी में फैल गया। छठी-सातवीं शताब्दी में लिखे गए बौद्धतन्त्र ग्रन्थ बड़े ही वीभत्स हैं। पाशुपत आम्नाय वालों ही ने शिवमूर्ति के स्थान पर लिंगपूजन की विधि प्रचलित की। ह्वेनसांग ने काशी में विश्वनाथ की सौ फुट ऊँची तांबे की मूर्ति देखी थी। उसने भारत में कहीं भी लिंगपूजन नहीं देखा। परन्तु महमूद ग़जनवी के जमाने में सर्वत्र लिंगपूजा प्रचलित हो गई थी, और उसके साथ शिव का नाम स्थायी रूप से जुड़ गया था। लोग वामाचार को भूलकर भी शुद्ध शिवलिंग पूजन में लगे थे। इसी समय मञ्जुश्री आदि पुराणों की रचना हुई। ऐसा ही जैनों ने किया, बौद्धों और जैनों की प्रतिक्रियारूप कापालिकों का शैवपंथ निकला। जिन्होंने तलवार-मद्य और स्त्री की सहायता से सब को अपने रंग में रंग लिया।

शठकोपाचार्य और यवनाचार्य ने जो उद्योग किए उसके फलस्वरूप ईस की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीसरी शताब्दी में दक्षिण में विष्णु स्वामी ने वैष्णवपंथ की नींव डाली। जिसे रामानुजस्वामी ने पुष्ट किया। जिन्होंने मद्रास के राजा विष्णुवर्धन को शिष्य बनाकर जैनों के सिर तेल की घानी में पिस दिए। उधर चोल राजा कुलोत्तुंग ने रामानुज के साथी कुरत्तालवार की आंखें निकाल लीं, तथा प्रत्येक वैष्णव को तलवार के घाट उतारा। शिव और विष्णु दोनों ही अन्ततः लड़ाके देवता तो हैं ही। दोनों ने दैत्य वश के संहार करने में कभी उचित अनुचित का विचार नहीं किया। फिर उनके अनुयायी क्यों करते? अन्ततः दक्षिण में विष्णु और वासुदेव की पूजा प्रचलित हो गई, पर इस पूजा को वैदिक आधार प्राप्त न था, इसीलिए रामानुज ने प्रस्थानत्रयी का सहारा लिया, और श्री भाष्य की रचना की। रामानुज के बाद माध्वाचार्य ने वैष्णवों की नई शाखा स्थापित की। यह समय उत्तर भारत में मुसलमानों के उदय का था। जैसी राजनीतिक अन्धाधुन्ध चल रही थी, वैसी ही धार्मिक भी। कोई छोटा मोटा जमीदार जैसे थोड़ी सेना एकत्र कर आस पास का इलाका लूट कर राजा बन बैठता था, वैसे ही कोई भी विद्वान ब्राह्मण अपने अनुकूल ब्रह्मसूत्र का भा य रच कर एक नया सम्प्रदाय खड़ा कर देता था। जनता के सुख दुःख से उस समय न राजा का वास्ता था, न इन धार्मिक ब्राह्मणों का। वैष्णव शाखा के तीसरे प्रवर्तक निम्बार्क ने बारहवीं शताब्दी में वासुदेव पूजा को दूसरी दिशा में मोड़ा, और विष्णु लक्ष्मी और कृष्ण–रुक्मिणी को एक ओर हटा कर राधाकृष्ण की पूजा को महत्व दिया।

बंगाल में चैतन्य ने भी राधाकृष्ण को प्रश्रय दिया। धीरे–धीरे वाम-तत्व की प्रधानता बढ़ी, और कृष्ण की अपेक्षा राधा को अधिक महत्व मिलने लगा। कृष्ण और गोपियों की क्रीड़ाएँ गुप्तकाल ही में उच्चवर्ग में प्रिय हो चली थीं, अब राधा को परकीया के रूप में खुल्लमखुल्ला आगे लाकर उसी के आधार पर वामाचार स्थापित किया गया—जिसका सबसे नग्न किन्तु मनमोहक रूप हम जयदेव के गीत गोविन्द में देख सकते हैं।

वल्लभाचार्य की परम्परा—कृष्ण भक्ति परम्परा की रचनाओं का आरम्भ हिन्दी में वल्लभाचार्य के समय से हुआ। वल्लभाचार्य ने प्रस्थानत्रयी पर भाष्य रचा। और शुद्धाद्वैत मत का प्रतिपादन किया। इन्होंने कृष्ण को परम ब्रह्म–पुरुषोत्तम माना। तथा उनके लोक को बैकुण्ठ। गोलोक को व्यापी बैकुण्ठ का एक खण्ड। इसके अन्तर्गत वृक्ष, वन—यमुना–गोवर्धन–निकुंज आदि सभी नित्य हैं। और इनमें कृष्ण अलक्ष भाव से गोचारण तथा रास क्रीड़ा किया करते हैं। इस लीला में यदि जीव प्रविष्ट हो पाता है, तो उसे परम गति होती है। भगवद् अनुग्रह को ये पोषण या पुष्टि मानते हैं, इसी से इनका सम्प्रदाय पुष्टि मार्ग कहाता है। इन्होंने अपने सम्प्रदाय में केवल प्रेम लक्षणा भक्ति को अगीकृत किया है।

ब्रज साहित्य में वल्लभीय तल्लीनता के उन्नायक सूरदास हैं, जिस समय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूरदास ने अपनी साहित्य सुधा से व्रजमण्डल को मुखरित किया, उस समय हिन्दी भाषा काफी उन्नत और सम्पन्न हो चुकी थी। तथा वह सुकवियों के प्रादुर्भाव का प्रकृत काल था। मुस्लिम विभीषिका क्षीण हो चली थी। हिन्दू सुगठित होने लगे थे। अवतार, त्रिमूर्ति, प्रतिमा तथा तीर्थ हिन्दू-धर्म के प्रतीक हो गए थे। तर्कवाद तथा श्रृद्धावाद की प्रतियोगिता समाप्त हो चली थी। तर्कवाद अपना काम कर चुका था, और उसने बौद्ध तथा जैन प्रभाव से पौराणिक धर्म को मुक्त कर दिया था। सूफीवाद को लेकर जो मुस्लिम सन्त हिन्दू तत्व में मुस्लिम खुदावाद का मिश्रण करना चाहते थे, विफल हो चुके थे। मुस्लिम तल्वार खुदावाद को बलात् हिन्दू समाज में प्रविष्ट करने के प्रयास में २०० वर्ष तक रक्त स्नान करके कुण्ठित हो चुकी थी। और अब पौराणिक धर्म का सामना करने वाला देश में कोई न था। लोगों को अब धर्म सिद्धांत समझने की उतनी आवश्यकता न थी, जितनी संगठित होने की। रामानन्द स्वामी दार्शनिकों और सूफियों पर विजय पा चुके थे, और हिन्दू समाज को तर्कवाद और एकेश्वरवाद से हटाकर श्रद्धापूर्ण कर चुके थे। उन्हीं की परम्परा में कबीर और नानक अथक साहस करके जनता की जड़ता दूर करने के प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु अभी एक साहसी और समर्थ धर्म नेता की आवश्यकता थी, इसी समय वल्लभाचार्य ने वाममार्गी भक्ति का मार्ग प्रदर्शन किया, जो अति लोकप्रिय हो उठा।

वल्लभीय तल्लनीता में सूर एक बारगी ही डूब गए। उनके नेत्रहीन अन्धकार पूर्ण संसार में मानव शैशव ऊधम मचाता हुआ उनकी निराश प्रसुप्त भावनाओं को जगाकर गुदगुदा गया। उन्होंने चमत्कृत हो मानस नेत्रों से उस शैशव का सलोना श्याम रूप देखा, उसकी मधुर तोतली किलकारी सुनी। उनका मचलना, इठलाना, तुतलाना देखा—उनका घुटनों के बल चढ़ना, हंसना देखा, तो सूर की सम्पूर्ण मानव सत्ता जाग उठी। उन्होंने मानव मेदिनी पर अपने संस्कृत हृदय का वात्सल्य रस बखेरना प्रारम्भ किया, और आनन्दध्वनि से जनपद को मुखरित कर दिया। मानव जनपद ने अब उस कामल-श्यामल बालमूर्ति को देखा--जिसमें कोमलता, विश्वास, पवित्रता, प्यार और आनन्द ही भरा था तो उस बालमूर्ति को सिर पर उठाकर वह आनन्दातिरेक से उन्मत्त हो नाचने लगा।

शंकराचार्य का उत्तर भारत में प्रवेश—शंकराचार्य का उत्तर भारत में प्रवेश भारतीय धर्म क्षेत्र की असाधारण घटना है, वैदिक काल से तथागत बुद्ध काल तक उत्तर भारत ही हिन्दू सभ्यता और धर्म का केन्द्र रहा। धर्म और संस्कृति मूलक साहित्य वेद, उपनिषद्, दर्शन, ब्राह्मण और सूत्र ग्रन्थ उत्तर भारत में ही लिखे गए। उत्तर भारत ही में धर्म और समाज के नेता उत्पन्न हुए। और सहस्त्रों वर्षों तक उत्तर भारत से दक्षिण की ओर धर्म और संस्कृति की गंगा का प्रवाह निरन्तर बहता रहा।

परन्तु मसीहे की आठवीं शताब्दी में यह एक सर्वथा नवीन और असाधारण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सांस्कृतिक घटना घटी—कि धर्म का प्रथम प्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित हुआ। शंकराचार्य ही इस धर्म प्रवाह को लेकर दक्षिण से उत्तर भारत में आए, और अपनी असाधारण सामर्थ्य से इस धर्म तत्व का उत्तर भारत में आरोप किया। शंकर का लाया हुआ यह धर्म सर्वथा नवीन धर्म था। जिसने उत्तर भारत के जन जन को अपने व्यापक अंक में लपेट लिया। शंकर के इस धर्म प्रवर्तन को हम सम्प्रदाय प्रवर्तन कहेंगे। इस धर्म प्रवर्तन के फल स्वरूप आर्यों का वैदिक धर्म हिन्दु धर्म बन गया।

अब आप एक बार समूचे हिन्दु धर्म पर आरम्भ से दृष्टि डालिए। वैदिक आर्यों के पहिले भी भारत में एक संस्कृत धर्म था, इस धर्म में और मिश्र, ईराक और एशिया माइनर तथा भूमध्य सागरीय प्रदेशों की सस्कृतियों और वंशों में बहुत समानता थी। आर्यों का वैदिक धर्म ऐहिकता प्रधान था। बल; वीर्य, पराक्रम, विजय, शत्रुनाश कीर्ति; कवित्व, विद्वत्ता, आरोग्य, दीर्घायुष्य, पर्जन्य, पशु, शस्य. सुवर्ण, धन आदि ऐहिक साधनों की कामनाओं से वैदिक साहित्य भरा पड़ा है। संक्षेप में वैदिक धर्म भौतिक वादी धर्म था। यह आर्यों का धर्म था; और उन का अवैदिक प्रजा पर अधिकार था, यद्यपि यह अधिकार सार्वभौम न था। आर्यों ने वह अधिकार दो मार्गों द्वारा प्राप्त किया था; प्रत्यक्ष राज सत्ता द्वारा, और ब्राह्मण पुरोहितों के धार्मिक आधिपत्य के द्वारा। अवैदिक लोगों को अपनी आधीनता में रखने में धर्म कल्पना का ही अधिक उपयोग किया गया था। जिनमें प्रधानता वैदिक यज्ञों की रहीं। आगे श्रौत–स्मति धर्म ने वैदिकेतरों को सामाजिक दासता में रखने के लिए उन्हें वैदिक धर्माचरण का अधिकार नहीं दिया। प्राचीन धर्म सूत्रों में वेदाध्ययन करने पर शूद्रादिकों को प्राण दण्ड देने की व्यवस्था है। इस प्रकार वैदिक यज्ञ और स्मार्त धर्म से पवित्र हुआ आर्य ही तब समाज का सच्चा स्वामी होता था। परन्तु इस यज्ञ प्रधान वैदिक समाज में भी क्रान्ति हुई। कल्पसूत्र, धर्म सूत्र, वेदांग, व्याकरण काम शास्त्र और मोक्ष शास्त्र की उत्पति हुई। मोक्ष शास्त्र का आरम्भ उपनिषदों से हुआ। उपनिषदों ने वैदिक यज्ञों और देवताओं की समीक्षा करके उनकी व्यर्थता सिद्ध की, और ब्रह्मवाद और मानसिक उपासना का सम्प्रदाय उत्पन्न किया। वेदिकेतरों ने भी नए विचारों को जन्म दिया, जिसके फल स्वरूप ब्रह्मवाद, वैराग्यवाद, परिव्रज्या और एकेश्वर भक्ति के नए धर्म उत्पन्न हुए। और ऐसी सामाजिक स्थिति उत्पन्न हो गई–कि वैदिक गृह धर्म और यज्ञ धर्म का निर्वाह कठिन हो गया। क्योंकि वैदिक धर्म की अपेक्षा इस इस नई धर्म संस्था का निरालापन यह था—कि इसमें सब धर्मों के लिए श्रेय का मार्ग खोल दिया गया था। इसमें समाज का किसी भी परिस्थिति और जाति का उच्च नीच पतित मानव भी शुद्ध होकर परम धार्मिक पदवी को पा सकता था। ये संसार के सबसे प्राचीन विश्व धर्म थे – जिन्होंने वैदिक आर्यों की समाज सस्था के विरुद्ध सिर उठाया। उस समय तक जीवन विज्ञान और समाज शास्त्र इतना परिपक्व नहीं हो पाया था, कि सामाजिक जीवन की ठीक ठीक व्यवस्था

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की जा सकती। अतः भोगतृष्णा के नाश ही को परम सत्य मान लिया गया। उन्होंने जीवन और जगत को दुःखमय ही देखा। कपिल, बुद्ध और जिनमुनि महावीर ने आज से २५०० वर्ष पूर्व इस दुखवादी तत्व ज्ञान की प्रतिष्ठा की थी। इस नए धर्म के सबसे बड़े नेता तथागत बुद्ध थे। उनके शिष्यों में समाज के सारे स्तरों के लोग थे। ब्राह्मण, राजा, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अतिशूद्र और स्त्रियाँ थीं। तपस्सु और मल्लिक वैश्य थे। उपालि नाई था, काश्यप बन्धु जटिल, और चुन्द लुहार, सारिपुत्र और मोग्गलान ब्राह्मण; आनन्द और देवदत्त क्षत्रिय, अम्बपाली वेश्या, तथा मगध, कौसल, वैशाली और कपिलवस्तु के राजा उनके शिष्य थे। बुद्ध लोगों को उनकी बोलचाल की भाषा में उपदेश देते थे। उन उपदेशों को स्थविरवादी बुद्ध अनुयायियों ने पाली भाषा में महासाँघिकों ने पैशाची भाषा में, और सामन्तीयों ने अपभ्रंश में कलम बद्ध किया। यह साहित्य त्रिपिटक नाम से आगे विख्यात हुआ। बुद्ध ने सत्य, अहिंसा, सादा जीवन, मिताहार, तृष्णाक्षय, और जीवन की क्षणभंगुरता पर उपदेश दिए। गौतम बुद्ध जिस काल में अपने उपदेश दे रहे थे, वह काल भारतीय समाज में बुद्धि प्रधान था। उपनिषदों से लेकर षट्दर्शन तक के उस काल में भारतीय बौद्धिक विचार-उत्कर्ष की अन्तिम सीमा पर पहुँच गए थे। मैक्समूलर ने इस काल को भारतीय नव जीवन युग कहा है। तथागत बुद्ध इस विचार आन्दोलन के मध्य विन्दु थे। उनके जन्म के पूर्व चार्वाक बृहस्पति, उशना, कपिल, कणाद, अजित केश कम्बली आदि बड़े-बड़े तार्किक, तत्त्वज्ञ और अर्थशास्त्री उन्हें राह दिखा गए थे। बुद्ध के सौ वर्ष बाद ही सिकन्दर भारत में आया, जिस से ग्रीकों का सम्पर्क भारतीयों को मिला। इसी विचार-आन्दोलन भूमि में मौर्यों का साम्राज्य स्थापित हुआ, जो हिन्दुओं का सब से बड़ा साम्राज्य था। इस का जन्म बौद्धोत्तर काल में हुआ। परन्तु रोमन साम्राज्य की भांति यह चिर-स्थायी न हो पाया। इसलिए ईसाई धर्म की भाँति यह विश्वधर्म समूचे भारत में एकरूप न हो सका, फिर भी मौर्य सम्राट् अशोक ने इसे भारत की सीमाओं से पार कर इसे संसार का सर्व प्रथम विश्वधर्म होने में मदद की। मौर्य साम्राज्य को विदीर्ण कर जो पुष्यमित्र ने फिर से ब्राह्मण-धर्म की स्थापना की; सो वह उसे पूर्व वैदिक धर्म की वेदी पर स्थापित नहीं कर सका। उसने पुराने—नए सब प्रचलित—अप्रचलित धर्मों, सम्प्रदायों, हीन देवताओं की पूजा विधियाँ आदि को मिला कर उसे स्मार्त पौराणिक हिन्दु धर्म का नया रूप दे दिया। इससे अर्थ शास्त्रीय लौकिक कायदे की समाज संस्था स्थापित न हो सकी, जैसा कि ईसाई संस्कृति के आधार पर रोमन साम्राज्य ने सारे जगत को कायदे संस्था का दान दिया था।

दुबारा श्रुति स्मृति पुराणोक्त हिन्दुधर्म की स्थापना से समाज क्रान्ति की गति धीमी पड़ गई, और भारतीय समाज एक दीर्घकालीन स्थैर्य के युग में प्रविष्ट हो गया। इस युग में काव्य, नाटक, टीका, भाष्य, अलङ्कार और तर्कशास्त्र की तो प्रगति अच्छी हुई, पर नव जीवन निर्माण करने वाली हलचल समाप्त हो गई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
इसी दीर्घकालीन स्थैर्य युग के अन्तिम चरण में, मसीह की सातवीं शताब्दी में उत्तर भारत में कुमारिल भट्ट और दक्षिण में शङ्कराचार्य का जन्म हुआ। इन दोनों महापुरुषों ने हिन्दु धर्म को नया रूप दिया।

कुमारिल सातवीं शती के अन्तिम चरण में और शङ्कर आठवीं शती के प्रथम चरण में उत्पन्न हुए। कुमारिल ने अपने पूर्वमीमांसा की वार्तिक में धर्म प्रामाण्य की सूक्ष्म छानबीन की, वेदों का स्वतः प्रामाण्य भारी परिष्कार से सिद्ध किया। उन्होंने धर्मशास्त्र निर्णय की ऐसी विशिष्ट पद्धति निकाली कि बारह सौ बरस बीत जाने पर भी पडितगण उसी पद्धति से धर्म व्यवस्था करते रहे। कुमारिल वैदिक यज्ञ मार्ग और स्मार्त गृहस्थ धर्म का पुनरुज्जीवन करना चाहते थे, परन्तु शङ्कर के दिग्विजय से उनका यह प्रयत्न विफल हो गया। कुमारिल भट्ट ने जिस प्रामाण्य की स्थापना करके पंडितों को मोह लिया था, उसे शङ्कर ने भी ग्रहण किया, पर जिस प्रवृत्तिवाद की स्थापना कुमारिल ने की थी, उसे शङ्कर ने त्याग दिया। क्योंकि वह श्रौत-स्मार्त प्रवृत्तिमार्ग था, भौतिकवाद पर आधारित नहीं था। उन दिनों अगतिकता का इतना आधिक्य था कि शङ्कर ने अगतिकता का ही तत्वज्ञान मायावाद और सन्यासवाद के रूप में प्रतिष्ठित किया। शङ्कराचार्य बड़े प्रतिभाशाली पुरुष थे, उनकी बौद्धिक और मानसिक स्थिति अत्यन्त श्रेष्ठ थी। उन्होंने अपने काल तक के सारे परम्परा से प्राप्त तत्त्वज्ञान और विचार सम्प्रदाय बुद्धि की कसौटी पर कस डाले। उन्होंने शैवों-वैष्णवों का एकेश्वरवाद, और सर्वेश्वरवाद, कणाद और नैयायिकों का परमाणुवाद, सांख्यों का जड़प्रकृतिवाद, बौद्धों का क्षणिकवाद और विज्ञान वा जैनों का अनेकान्तवाद, चार्वाक का देहात्मवाद, और योगियों का योगदर्शन आदि विचारधाराओं को अनुपपन्नत्व तर्क दृष्टि से साधा। उन्होंने यह भी प्रगट किया कि उनका ब्रह्मवाद भी मानव बुद्धि से नहीं, तर्क से ही सिद्ध है। उन्होंने कहा कि बुद्धि से आत्मा और पुनर्जन्म का निर्णय नहीं हो सकता है। उन्होंने कहा कि सारे मानवीय विचार जीवन और विश्व सम्बन्धी खोज करने ही से कुण्ठित हो जाते हैं। इसलिए वस्तु अनिर्वचनीय है। वह अस्ति-नास्ति कुछ भी नहीं है, इसलिए वह मिथ्या है। वस्तु विषयक विचारों की अगतिकता ही पर उनका मायावाद स्थापित हुआ। परन्तु श्रुति के प्रामाण्य को माने बिना वस्तु का मिथ्यात्व सिद्ध नहीं हो सकता था। श्रुति ने कहा है—ब्रह्म ही सत्य है, अतः जगत मिथ्या है —यह उन्होंने स्थिर किया।

इस प्रकार शंकर का मायावाद अगतिकता के कारण कुण्ठित बुद्धि का फल है। यह ब्रह्मवाद या मायावाद बुद्धि की समीक्षक प्रणाली से सिद्ध नहीं किया जा सकता था, इसी से उन्होंने श्रुति प्रामाण्य का आश्रय लिया। इसका फल यह हुआ कि उपनिषद् काल के बाद भारत में जो बुद्धिवाद और तत्वज्ञान का विकास हुआ था, वह दब गया। दर्शन अथवा तत्वज्ञान वस्तु की-विश्व की मानव बुद्धि से की हुई छान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बीन है। उस समय यदि विज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ होता तो शंकराचार्य के प्रखर तर्कशास्त्र से छिन्न भिन्न तत्कालीन तत्वज्ञान के विनाश से नवीन भौतिक वाद उत्पन्न हो सकता था। परन्तु उस समय सामाजिक परिस्थिति विज्ञान के अनुकूल न थी, अतः मायावाद — जो विज्ञान का उल्टा स्वरूप था, उत्पन्न हुआ और तत्कालीन विकसित सारा बौद्धिक पराक्रम व्यर्थ गया। बारहवीं शताब्दी से लेकर हिन्दु राज्यों के अन्त होने तक यही मायावाद, भक्तिवाद और जाति भेद ही हिन्दु धर्म का सच्चा स्वरूप रहा। जो मुसलमानों और मराठों के राज्य काल में भी चलता रहा।

परन्तु शंकराचार्य इस नवीन विचार परम्परा के मूलभूत विचारक और प्रचारक न थे। मूल प्रचारक एक गोष्ठी थी, जिसके मूल पुरुष बादरायण थे। बादरायण की शिष्य परम्परा में बादरायण के शुक; शुक के गौड़पाद, गौड़पाद के गोविन्द और गोविन्द के शंकराचार्य शिष्य थे। बादरायण ने वेदान्त दर्शन लिखा। महत्वपूर्ण बात यह है—कि यह गोष्ठी दक्षिण भारत में संगठित हुई थी। पूर्व मीमांसा के समक्ष वेदान्त को उत्तर मीमांसा कहा गया। परन्तु दोनों में भारी अन्तर था। पूर्व मीमाँस में उत्तर भारत के आर्यों की वैदिक संस्कृति थी, वैदिक कर्मकांड की व्याख्या थी। उसका मूलधार वेद था। परन्तु वेदान्त का मूलाधार उपनिषद थे। उसमें उपनिषद् को ही श्रुति के नाम से पुकारा गया था। क्योंकि वेदान्त में जिस ब्रह्म जिज्ञासा की बात कही गई है, वह वेद में नहीं था, उपनिषद में था। अतः बादरायण गोष्ठी ने उपनिषद् को श्रुति कहकर एक नई समस्या खड़ी कर दी थी। श्रुति के साथ स्मृति और समीक्षा दर्शन की आवश्यकता थी, अतः शकराचार्य ने गीता को स्मृति और वेदान्त को समीक्षा दर्शन का रूप दिया। इस प्रकार जैसे बौद्ध साहित्य में त्रिपिटक साहित्य का संगठन था, वैसा ही संगठन शकर ने उपनिषद् गीता और वेदान्त को मिलाकर प्रस्थान त्रयी के नाम से विख्यात किया। इसी प्रस्थान त्रयी के द्वारा शंकर ने उत्तर भारत के विद्वानों को पछाड़ डाला और कुमारिल के कर्म कांड और यज्ञ मीमांसा पर पानी फेर दिया। शंकर के इस असाधारण प्रयास के कारण उत्तर भारत में वैदिक धर्म का लोप हो गया और नए हिन्दु धर्म की स्थापना हुई, जिसका मूल आधार प्रस्थानत्रयी था। यह एक ऐसा असाधारण प्रयास था, कि जिसने एक ओर तो सनातन से चले आते हुए उत्तर से दक्षिण की ओर के सांस्कृतिक धर्म प्रवाह का रुख ही फेर दिया, और अब धर्म प्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर आना आरम्भ हुआ, जो रामानुज, रामानन्द, निम्बार्क स्वामी, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी और बल्लभाचार्य तक पन्द्रहवीं शताब्दी पर्वत निरन्तर चलता रहा, तथा इस का सांस्कतिक प्रभाव यह हुआ कि दक्षिण की द्रविड़ संस्कृति और उत्तर की आर्य संस्कृति का मेल हो गया। जिसने न केवल धर्म क्षेत्र में अपितु साहित्य और सामाजिक क्षेत्रों में भी उत्तर भारत और दक्षिण भारत की एकता सम्पादित की।

शंकराचार्य का यह अमोघ प्रभाव था—कि अकेले उन्हीं के उद्योग से उत्तर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शंकराचार्य का यह अमोघ प्रभाव था, कि अकेले उन्हीं के उद्योग से उत्तर भारत में यह वेद रहित धर्म स्थापित हो गया, और किसी ने इस पर विचार ही नहीं किया। सनातन ही से वेद संहिताभाग को श्रुति कहा जाता रहा था, तथा उपनिषद्, ब्राह्मणों के कतिपय भाग थे। गीता–में ही लिखा है —'ऋषि भिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः प्रथक्'। यही सब छन्द उपनिषदों से लेकर ब्रह्मसूत्रों में ग्रथित किए गए हैं। शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्रों के भाष्य में, जहां जहाँ श्रुति प्रामाण्य की आवश्यकता हुई है, इन्हीं उपनिषदों से प्रमाण उद्धृत किए हैं। यह कैसे आश्चर्य की बात है कि उस समय उत्तर भारत में एक भी पण्डित ऐसा उन्हें न मिला, जो उन्हें ललकार कर यह कहता---कि श्रुति तो संहिता को कहते हैं। शंकर के प्रखर तेज के सामने सभी की बुद्धि कुंठित हो गई। और शंकर ने उत्तर भारत से वैदिकों को धर्मच्युत कर दिया। जिस तरह उन्होंने उपनिषदों को श्रुति बनाया, उसी तरह गीता को स्मृति बना दिया। इस समय तक गीता को किसी ने भी स्मृति नहीं कहा था। मनु, याज्ञवल्क्य आदि की स्मृतियां ही स्मृति कहाती थीं। पर उनमें वे शब्द प्रमाण नहीं थे जिनकी शंकर को आवश्यकता थी। इसलिए ब्रह्मसूत्रों के भाष्य में जहां जहां स्मृति के प्रमाणों की आवश्यकता हुई, वहाँ शंकर ने गीता ही के श्लोक उद्धृत किए हैं। वेदान्त के अनेक सूत्र गीता और उपनिषद् में आए हुए शब्दों का खुलासा ही है। जैसे–वेदान्त सूत्र "स्मृतेश्च"–गीता के–"ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति" की ओर संकेत करता है। और 'अपिचस्मर्यते" सूत्र 'ममैवांशोजीवलोके जीवभूतः सनातनः" के आधार पर है। इन सूत्रों में स्मृति के प्रमाणों की जिज्ञासा है, जिसकी पूर्ति गीता ही कर सकती थी। शंकराचार्य वेदान्त भाष्य में स्वयं लिखते हैं--'स्मर्यते भगवद् गीतासु गीतास्वपिच स्मर्यते।'

शंकराचार्य ने प्रस्थानत्रयी पर तो भाष्य किया ही, और भी अनेक ग्रन्थों की रचना की। उन्होंने बहुत कम आयु पाई। परन्तु इसी अल्प आयु में उन्होंने युग पलट दिया। उत्तर से दक्षिण तक उनकी कीर्ति फैल गई। उन्होंने सच्चे अर्थों में दिग्विजय किया, और अद्वैतवाद की दुन्दुभी समूचे उत्तर भारत में बज उठी। बड़े बड़े दिग्गज विद्वान् उनकी शिष्य मण्डली की शोभा बढ़ा रहे थे। जिन्होंने शंकर मत पर वार्तिक लिखी। उन्होंने भारत की चार दिशाओं में चार पीठों की स्थापना की। जिनकी परम्परा अब तक चली आती है।

पौराणिक आक्रमण—गुप्त राजा वासुदेव के भक्त थे, फिर भी वे बौद्ध विद्वेषी न थे। उन्होंने बौद्धों के बहुत से विहार बनवाए और संघारामों को जागीरें दीं। परन्तु उनके राज्य काल में पुराणों में अनेक उलट फेर किए गए परन्तु बुद्ध पर उन्होंने सीधा आक्रमण नहीं किया—प्रत्युत् बुद्ध को विष्णु अवतार माना। परन्तु शिलादित्य के बाद ब्राह्मणों के लिए बुद्ध को विष्णु अवतार मानना प्रिय न रहा। सर्व साधारण में भ्रान्त धारणाएँ फैलने लगीं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शैव राजा यद्यपि बौद्धों का उत्पीड़न कर रहे थे--फिर भी जनता में उनके प्रति आदर भाव था। शंकराचार्य ने युक्ति पूर्वक कहा -'यह बुद्ध मोह में डालकर लोगों के नाश का प्रयत्न करने वाला है[1]"।

पौराणिक ब्राह्मण शंकराचार्य के इस संकेत को समझ गए। तथा पुराणों में ऐसी ही बातों का समावेश कर दिया। यहां हम ऐसे दो एक उदाहरण देते हैं—

"देवासुर संग्राम में देवों की पराजय हुई। तब उन्होंने क्षीरसागर के उत्तर में जाकर तप आरम्भ किया। और विष्णु के निकट जा उसकी स्तुति की। विष्णु ने प्रसन्न होकर अपने शरीर से माया मोह का निर्माण कर देवों को दिया। माया मोह मुण्डी, दिगम्बर, और मोर पंख धारी बनकर असुरों के पास गया, और मधुर वाणी से बोला--'हे दैत्यपति, आप यह तपश्चर्या क्यों करते हैं? उन्होंने कहा—पारत्रिक फल लाभ के लिए हम यह तप करते हैं। इसमें तुम्हारा क्या कहना है। तब उसने कहा—'यही धर्म मोक्षदायक है। इसमें स्थिर होकर आप मुक्ति प्राप्त करेंगे। इस प्रकार माया मोह ने अनेकान्त वाद (स्याद्वाद) का उपदेश देकर उन दैत्यों को वैदिक धर्म से छुड़ा दिया।

अनन्तर रक्तपट धारण कर और जितेन्द्रिय होकर माया मोह दूसरे असुरों के पास गया, और उनसे बोला—यदि तुम्हें स्वर्ग अथवा निर्वाण की इच्छा हो तो तुम पशुघातादि दुष्ट कर्म न करो। संसार को विज्ञानमय समझो। सम्बुद्ध ने यही बताया है, इस प्रकार की युक्तियों से माया मोह ने उन दैत्यों को वैदिक धर्म से परावृत्त किया। इसके बाद देवताओं ने युद्ध करके उनको परास्त किया[2]।

१३--तन्त्र ग्रन्थ

अत्यन्त प्राचीन काल से ही आग्नेयों के सम्पर्क से प्राचीन आर्यों में भूत, प्रेत, वृक्ष और नाग पूजा प्रचलित हुई। तथा उन्हीं विश्वासों को साहित्य का रूप अथर्ववेद में प्रकट हुआ। जो तन्त्र का मूलाधार था। कालान्तर में जब जैनों और बौद्धों की प्रतिक्रिया से वैदिक यज्ञ याग बन्द होने लगे—इन वैदिक देवताओं की पूजा भी कम हो चली, और उसका स्थान विष्णु, शिव और शक्ति की पूजा ने लिया, जिससे तन्त्र शास्त्र का विकास हुआ। यद्यपि जैनों और बौद्धों ने वैदिक यज्ञों पर आक्रमण किया था—किन्तु कालान्तर में तन्त्र विश्वास में वह भी अधिकाधिक ही फंसते गए, जिससे क्रमशः संहिता, आगम और तन्त्र ग्रन्थों की रचना हुई। तन्त्र ग्रन्थ क्रमशः वैष्णव, शव और शाक्तों के ग्रन्थ हैं, परन्तु जैन और बौद्धों ने भी इस विषय पर अनेक ग्रन्थ बनाए हैं।

यद्यपि इन ग्रन्थों की रचना ईसा की पूर्व शताब्दी में ही आरम्भ हो चुकी

१—अपि च वाह्यार्थ-विज्ञान शून्यवाद-त्रयमितरतेर विरुद्धमुपदिशता सुगतेन स्पष्टी कृतमात्मनोऽसंवद्ध प्रलापित्वं प्रद्वेषो वा प्रजासु विरुद्ध प्रतिपत्या विमुह्ये-युरिमः प्रजाइति।

२—विष्णु पुराण अ० १७—४८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किन्तु ईस्वी दूसरी शताब्दी से इनका निश्चित पता लगता है। अहिर्बुध्न्य संहिता सब से प्राचीन संहिताओं में से एक है। इसके रचयिता साँख्य का कारिका के रचयिता ईश्वर कृष्ण के समकालीन थे, क्योंकि वह षष्टि तन्त्र का उल्लेख करते हैं। तंत्र संहिताएं इस समय से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक बनती रही है।

शैव आगमों के विषय में विद्वानों को बहुत कम विदित हैं। ये अट्ठाईस हैं, और प्रत्येक आगम के उप आगम भी हैं। इनका समय प्रथम शताब्दी से नौवीं शताब्दी तक अनुमान किया जाता है।

तन्त्र के विषय में सबसे प्रथम निश्चित सम्मति देने वाले विद्वान् सरजान वुडराफ (Sir john Woodroff) हैं। इन्होंने इस विषय पर अनेक ग्रन्थ लिखकर इस विषय को बहुत सुगम बना दिया है। तंत्र ग्रंथों में उनकी संख्या ६४ लिखी है। किन्तु इस समय इनकी संख्या इससे कहीं अधिक है। इनका मूल उत्पति स्थान बंगाल प्रतीत होता है। जहां से ये आसाम, नेपाल, तिब्बत और चीन तक फैल गए, किन्तु बाद में तो यह भारत भर में फल गए। इनका प्रभाव पुराणों पर भी बहुत पड़ा है।

योग दर्शन तथा बौद्धों और जैनों के वामाचार भी तन्त्र ग्रंथों की रचना में सहायक हुए। ये एक अन्धविश्वास की पराकाष्ठा थी कि इन ग्रंथों में दैनिक चमत्कारों को प्राप्त करने के लिए अंधकार मय कठोर और वीभत्स साधन उपचारों के अथक वर्णन भरे पड़े हैं। ये वास्तव में दूषित मस्तिष्क की मिथ्या कल्पानाऐं हैं। तंत्र ग्रंथों से हम हिन्दु मत का रोग ग्रसित होना प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरा अध्याय

हिन्दुओं और जैनों की स्थापत्य कला

बौद्ध स्थापत्य कला पाँचवीं शताब्दी में समाप्त हो जाती है। इसके बाद के समय के बहुत कम भवन निर्माण हुए मिलते हैं। साथ ही हिन्दू और जैनों की कारीगरी के नमूने इसके बाद देखने को मिलते हैं।

उड़ीसा—उड़ीसा की कारीगरी पाँचवी शताब्दी के बाद की है। उड़ीसा का भुवनेश्वर नगर हिन्दू-मन्दिरों की उच्च प्राचीन कला के लिए अप्रतिम हैं। उत्तरी भारतवर्ष के मन्दिरों की बनावट में एक विशेषता सर्वत्र यह देखने को मिलती है, कि विमान के ऊँचे बुर्ज का आकार वक्रीय होता है और उसके सिरे पर अमलक होता है। जो आँवले के आकार का समझा जाता है। उनमें न खम्बे होते हैं, और न खण्डों का चिह्न। द्वारों पर शुण्डाकार कार्निसदार सिरे होते हैं। बनारस के वर्तमान मन्दिर यद्यपि २०० वर्ष से प्राचीन नहीं, परन्तु उनमें भी यही प्राचीन कला की झलक है।

भुवनेश्वर—भुवनेश्वर में सैंकड़ों मन्दिर थे, जो अब ध्वंस हो गए हैं। अब जो वर्तमान हैं, उन्हें देखकर दर्शक को आश्चर्यचकित होना पड़ता है। सबसे प्रसिद्ध भुवनेश्वर का बड़ा मन्दिर है, जो ई० स० ६१७ या ६५७ के बीच बना है। उसकी पहली इमारत जिसमें विमान और द्वार सम्मिलित हैं, १६० फीट लम्बी थी, और उसके उपरांत बारहवीं शताब्दी में उसमें नाट्य-मन्दिर और भोग मन्दिर बनवाए गए। विमान के भीतर का भाग १६ फीट का एक समचतुर्भुज है, और वह १८० फीट ऊँचा है। यह समस्त इमारत पत्थर की है। इसके बाहर का भाग बहुत ही उत्तम खुदाई के काम से चित्रित हुआ है। प्रत्येक पत्थर पर एक-एक प्रकार की खुदाई है, मूर्त्ति-निर्माण का काम बहुत ही उच्च श्रेणी का और बड़े ही सुन्दर नमूने का है।

करनार के भवन—करनार के प्रसिद्ध काला मन्दिर का अब केवल बरामदा ही रह गया है। वह १२४१ ई० का बना हुआ समझा जाता है। उसकी गच ४० फीट की चौकोर है, और उसकी छत भीतर की ओर ढालुआँ होते हुए २० फीट तक हो गई है; वहाँ उस पर चौरस पत्थर की छत पाट दी गई है, जो कि लोहे की २१ वा २३ फीट लम्बी धरनों पर है। उससे हिन्दुओं की उस काल में लोहे को ढालने की विद्या प्रकट होती है। इसके बाहरी भाग में बारहों कोनों तथा मोड़ों पर बहुत ही सुन्दर चित्र बिचित्र खुदाई का काम है, ईंटें ऐसी सुन्दरता और विचार के साथ लगाई गई हैं, जिसकी बराबरी कोई सच्चा यवन कठिनता से कर सकता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पुरी—पुरी का जगन्नाथ का मन्दिर उड़ीसा में—वैष्णव-धर्म द्वारा शैव धर्म को दबा लेने के उपरांत बना था। उससे केवल धर्म का परिवर्तन होना ही प्रकट नहीं होता, उसके आकार-प्रकार से विदित होता है कि इस शिल्प को इस प्रान्त में काफी धक्का लगा था।[1]

इस मन्दिर का विमान बीच में ८५ फीट लम्बा है, और वह १९२ फीट की ऊँचाई तक उठा हुआ है। बरामदे को लेकर उसकी पूरी लम्बाई १५५ फीट है और नाट्य-मन्दिर तथा भोग मन्दिर को लेकर, वह ३०० फीट लम्बा है।

बुन्देलखण्ड—बुन्देलखण्ड में प्राचीन हिन्दु मन्दिर उड़ीसा को छोड़ कर उत्तरी भारतवर्ष के और सब स्थानों की अपेक्षा अधिक हैं। बुन्देलखण्ड के खजुराहों में ३० बड़े-बड़े मन्दिर हैं, जिनमें से प्राय: सब ९५० से लेकर १०५० ई० के भीतर के हैं। यही समय राजकीय उलटफेर के अन्धकाल के उपरांत राजपूतों की प्रबलता की पहली शताब्दी है। यहाँ का निर्माण उड़ीसा से भिन्न है। एक ऊँचे विमान के चारों ओर बहुत से छोटे-छोटे विमान उसको घेरे हुए हैं। उसकी कुर्सी ऊँची है, और उसके चारों ओर मूर्त्तियों की खुदी हुई तीन पक्तियाँ है। कुल मूर्त्तियाँ ८७२ हैं; इनके साथ बेल-बूटे का काम भी हुआ है। इस मन्दिर की ऊंचाई ११६ फीट अर्थात् चबूतरे के ऊपर ८८ फीट है। उसके बाहर का रूप बहुत ही भड़कीला है।

भूपाल—भूपाल प्रान्त में ११ वीं शताब्दी के एक मन्दिर का पूरा नमूना शेष है। उसे मालवा के किसी राजा ने सन् १०६० ई० में बनवाया था। विमान बहुत ही सुन्दर और भव्य है। वह अमलक के चार चौरस बंदों से सुसज्जित है। और उसके चारों ओर के अमलक पर भी बहुत अच्छी नक्काशी का काम है।

चित्तौर—राजपूताने में चित्तौर के खण्डहरों में महाराना कुंभा की रानी के मन्दिर की कारीगरी खास वस्तु है, साथ ही कुंभा का विजय-स्तम्भ भी देखने योग्य है। ये इमारतें १४१८ से १४६८ ई० में बनी हैं, जो इस समय बिल्कुल खण्डहर हो गई हैं। मन्दिर के विमान और बरामदे दोनों ही में उड़ीसा का ढंग है। मन्दिर के चारों ओर खम्बों की पंक्तियाँ हैं, और चारों कोनों पर चार छोटी २ कोठरियाँ हैं। ऐसा ही द्वार पर भी है।

महाराष्ट्र—महाराष्ट्र के मन्दिरों में भी उत्तर भारत की कारीगरी की चेष्टा की गई है, पर उनमें उतनी उत्तमता नहीं आ पाई है। यह बात विचारणीय है कि महाराष्ट्र मालवा, उड़ीसा, बुन्देलखण्ड और राजपूताने में जहाँ इतनी अधिकता से मन्दिर हमें देखने को मिल रहे हैं, वहाँ यमुना-गंगा की बीच के देश में, जहाँ

१—फर्ग्यूसन कृत—हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड ईस्टर्न आर्चिटकचर।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हिन्दुओं का खास प्राबल्य रहा है, मन्दिरों की बड़ी कमी है, उसका कारण स्पष्ट यही है कि मुसलमानों ने आक्रमण करके जहां प्राचीन मन्दिरों को ध्वंस करके मसजिदें बनवाईं, वहां मन्दिरों के निर्माण को भी रोक दिया।

गिरनार—गिरनार जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ अनेक जैन मन्दिर है, जो दसवीं शताब्दी के बनाए हुए हैं। गिरनार में अशोक ने भी अपनी आज्ञाएँ खुदवाई थीं, और शाह तथा गुप्त वंश के राजाओं ने अपने शिला-लेख खुदवाए थे।

सोमनाथ—इसी के निकट ही सोमनाथ का प्राचीन मन्दिर था, जिसे कि महमूद गजनवी ने नष्ट कर दिया था। गिरनार के वर्तमान मन्दिरों एक तेजपाल और वस्तुपाल का बनवाया हुआ है।

आबू के जैन मन्दिर—आबू के दो अद्वितीय मन्दिर जैन इमारतों के उत्कृष्ट नमूने हैं। ये सम्पूर्ण श्वेत संगमरमर के हैं। यह पत्थर ३०० मील से कटवाकर मंगाया गया था। इनमें से एक मन्दिर बिमलशाह ने १०३२ ई० में और दूसरा तेजपाल और वस्तुपाल का बनवाया हुआ है। यह तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बना था। इसके बरामदे के खम्बों और गुम्बज के भीतर जो खुदाई का काम है, वह भारतवर्ष की उस काल की कला का अद्वितीय नमूना है।

महाराष्ट्र और द्रविड़ कला—महाराष्ट्र यद्यपि दक्षिण प्रांत में है, और महाराष्ट्र-लोगों की द्रविड़-जाति से बहुत घनिष्ठता है, पर मालूम होता है उन पर उत्तर प्रदेश की संस्कृति की बड़ी छाप लगी थी। परन्तु कृष्णा नदी के दक्षिण के प्रायद्वीप की इमारतें बिल्कुल ही उत्तर भारत की कला से विपरीत पृथक् द्रविड़ ढंग से बनी है। इस कला में बौद्ध-पद्धति का प्रभाव पाया जाता है। यह बात विचारने योग्य है कि उड़ीसा की प्राचीन से प्राचीन इमारत में भी बौद्धकालीन कला का कोई प्रभाव नहीं है। यद्यपि बौद्धों का वहाँ अधिक संसर्ग था, परन्तु द्रविड़ कला में है। ये इमारतें बौद्धों की तरह गुफा खोदकर बनाई गई हैं।

एलोरा का कैलाश मन्दिर—एलोरा का कैलाश का मन्दिर आठवीं-नवीं शताब्दी का बनाया हुआ है। यह कृष्णा नदी से बहुत दूर उत्तर में है। प्रतीत होता है, इसी समय चालुक्य राजाओं का पतन तथा चोलों का विस्तार उत्तर की ओर हुआ था।

चट्टान में २७० फीट लम्बा और १५० फीट चौड़ा एक बड़ा गढ़ा खोदा गया है। इस चौकोर गढ़े के बीच में मन्दिर है जिसका विमान ८० वा ९० फीट ऊँचा है और जिसके आगे का बड़ा बरामदा १६ खम्बों पर है, यह एक पुल तथा गोपुर अर्थात् फाटक के द्वारा मन्दिर से मिला हुआ है। इसके सिवाय दो दीप दान और चारों ओर छोटी-छोटी कोठरियाँ हैं। यह मन्दिर की पूर्ण बनावट के ढांचे का है, परन्तु वह ठोस चट्टान को काटकर बनाया गया है और इन बड़ी ईमारतों का एक ही पत्थर बनने के कारण उनमें वह पायदारी, मजबूती और शान है,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जो कि सब देखने वालों को आश्चर्यचकित करती हैं। चारों ओर की कोठरियाँ बौद्ध इमारतों के ढङ्ग पर हैं, परन्तु इन सातों कोठरियों में से प्रत्येक में भिन्न भिन्न देवताओं की स्थापना है। इसकी बनावट से प्राचीन बौद्ध युग से हिंदू युग का विकास विदित होता है।

दक्षिण के मन्दिर—जिन शताब्दियों में उत्तरी भारतवर्ष तथा दक्षिण में भी मुसलमानों को अधिकार था। उस काल में कृष्णा नदी के दक्षिण में दक्षिणी ढंग के मन्दिरों का निर्माण अद्भुत रीति और परिश्रम के साथ हो रहा था। वे उस समय भी अपना निर्माण जारी रख रहे थे—जब १८ वीं शताब्दी में अँग्रेज़ और फ्रांसीसी लोग कर्नाटक पर प्रभुत्व पाने के लिए झगड़ रहे थे।

तंजौर के मन्दिर—दक्षिण में उठाकर बनाए हुए सबसे प्राचीन मन्दिरों में तन्जौर का बड़ा मन्दिर है, परन्तु उसकी तिथि भी १४ वीं शताब्दी से पहले निश्चित नहीं की जा सकती। कहते हैं कि उसे प्राचीन कांचीवरम् अर्थात् कांची के एक राजा ने बनवाया था। इसका नीचे का सीधा भाग दो खण्ड का ऊँचा है, और इसके ऊपर इमारत शुण्डाकार होकर १३ खण्डों की ऊँची है। इसके सिरे पर एक गुम्बज है; जो एक ही बड़े पत्थर का बना हुआ है। इसकी पूरी ऊँचाई १९० फीट है, और यह एक भव्य मन्दिर है। यह इमारत यद्यपि एलोरा के चट्टान खोदकर बने हुए मंदिर से भिन्न है, यद्यपि उसमें पद्धति वहीं काम में लाई गई है।

चिलम्बरम् का मन्दिर—दक्षिणी भारत के सबसे प्राचीन मन्दिरों में समुद्र तट पर कावेरी नदी के मुहाने के कुछ उत्तर चिल्लम्बरं का मन्दिर हैं। जो दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में बनवाया गया था। परन्तु इसके सबसे उत्तम भाग १५ वीं, १६ वीं और १७ वीं शताब्दियों के बने हुए हैं। इन्हीं शताब्दियों में बड़े गोपुर अर्थात् फाटक, पार्वती का मन्दिर तथा अगला भाग बनाया गया था। जो अद्भुत रीति से सुन्दर है। १००० खम्बों के दालान के खम्बे सामने की ओर २४ और लम्बान की ओर ४१ की पंक्तियों में हैं। कड़े पत्थरों के खम्बों का कुञ्ज जिनमें से प्रत्येक खंबा एक ही पत्थर का बना हुआ है, और सब पर थोड़ा बहुत नक्काशी का काम है। स्थापत्य का एक प्रभावशाली नमूना है।

तन्जौर के निकट शरिंघम का भव्य मन्दिर १८ वीं शताब्दी में बनना आरम्भ हुआ, परन्तु वह पूरा नहीं हो सका। इस मन्दिर का बनना फ्रांसीसियों के कारण रुक गया था, जिन्होंने कि त्रिचिनापल्ली के लेने के लिए अँगरेजों से १० वर्ष तक युद्ध करने के समय में यहाँ रह कर किलाबन्दी की थी। इसके १४ या १५ सुन्दर नक्काशीदार फाटक दूर से देखने पर अद्भुत प्रतीत होते हैं। परन्तु बीच की उत्तम बनावट सबके ऊपर उठी हुई नहीं है। यह त्रुटि दक्षिण के प्रायः सब बड़े-बड़े मन्दिरों में पाई जाती है। वे सब थोड़े या अधिक इमारतों के समूह हैं, जो सुन्दरता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और काम की उत्तमता में आंख को चकाचौंध में डालने वाले हैं, परन्तु उनमें उत्तरी भारतवर्ष के मन्दिरों की भाँति दृष्टि किठी बीच की अद्भुत इमारत पर नहीं ठहरती ।

मदुरा—मदुरा में एक बड़ा मन्दिर है, जो कि १६ वीं शताब्दी में प्रारम्भ किया गया था, परन्तु मन्दिर को १७ वीं शताब्दी में त्रिमुल नायक ने पूर्ण किया ।

यह एक बड़ा चौखूंटा मन्दिर है जो कि लगभग ८४० फीट लम्बा और ७२० फीट चौड़ा है, उसमें ९ गोपुर तथा १००० खम्बों का दालान है । जिनकी पत्थर की नक्काशियाँ इस प्रकार की बहुत सी अन्य इमारतों से बढ़कर है । इस मन्दिर के सिवा मदुरा में एक प्रसिद्ध चोलत्री भी है. जिसे इसी नायक ने राजा के यहाँ दस दिन भेंट करने के अवसर पर मुख्य देवता के लिए बनवाया था । यह ३३३ फीट लम्बी और १०५ फीट चौड़ा एक बड़ा दालान है, जिसमें खम्बों की चार पंक्तियाँ हैं, और उनमें से सब पर बहुत सुन्दर नक्काशी है ।

रामेश्वरम्—सुदूर दक्षिण के अन्तिम छोर पर रामेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर है, जिसमें द्रविड़ ढङ्ग की परिपूर्ण सुन्दरता देखने में आती है । यह मन्दिर प्राचीन विमान को छोड़ कर १७ वीं शताब्दी का बना हुआ है । मन्दिर के चारों ओर ८८६ फीट लम्बी और ६७२ फीट चौड़ी और २० फीट ऊंची दीवार का घेरा है, इसके चारों ओर चार बड़े-बड़े गोपुर हैं परन्तु इनमें से केवल एक ही पूरा बना है । परन्तु मन्दिर का भव्य दिखाब उसके लम्बे दालान में है, जो कि लगभग ४००० फीट लम्बे हैं । उसकी चौड़ाई २० फीट से ३० फीट तक है और ऊंजाई ३० फीट है । इसके सम्बन्ध में फर्यूसन ने लिखा है —कोई नक्काशी उस विचार को प्रकट नहीं कर सकती, जो कि लगातार ७०० फीट की लम्बाई तक इस परिश्रम की कारीगरी को देखने से होती है । हमारे कोई गिर्जे ५०० फीट से अधिक ऊचे नहीं हैं, और सेंटपीटर के गिर्जे का मध्य भाग भी द्वार से लेकर पूजा स्थान तक केवल ६०० फीट लम्बा है । यहाँ बगल के लम्बे दालान ७०० फीट लम्बे हैं, और वे उन फैले हुए पतले दालानों से जुड़े हुए हैं जिन का काम स्वयं उनकी ही भाँति सुन्दर और उत्तम है । इनके भिन्न-भिन्न उपायों और प्रकाश के प्रबन्ध से ऐसा प्रभाव उत्पन्न होता है, जो कि निस्संदेह भारतवर्ष में और कहीं नहीं पाया जाता । यहां हमें ४००० फीट तक लम्बे दालान मिलते हैं, जिनके दोनों ओर कड़े से कड़े पत्थरों पर नक्काशी की गई है । यहाँ पर परिश्रम की जो अधिकता देखने में आती है, उसका प्रभाव नक्काशी के गुण की अपेक्षा बहुत अधिक होता है, और वह एक प्रकार की मनोहरता और अद्भुतता को लिए हुए एक ऐसा प्रभाव उत्पन्न करता है—जो भारतवर्ष के किसी मन्दिर में नहीं पाया जाता ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काञ्चीवरम—काँचीवरम् वा काँची के प्राचीन नगर में बहुत मन्दिर हैं, जो कि प्रायः इतने विशाल हैं, जितने अन्यत्र कहीं नहीं मिलते। काँचीवरम् एक मन्दिर में कई बड़े-बड़े गोपुर और १००० हजार खम्बों का एक दालान तथा उत्तम मण्डप और बड़े-बड़े तालाब हैं, जिनमें सीढ़ियां भी हैं।

विटोपा के मन्दिर--विजय नगर के राजाओं ने विटोपा में जो मन्दिर बनाए थे उनका अगला भाग बड़ा मनोरम है। यह समस्त सख्त पत्थरों से बना है। इस की खुदाई बहुत परिश्रम से की गई है, और भी बहुत सी ऐसी ही इमारतें पाई जाती है। विजय नगर से १०० मील दक्षिण पूर्व की ओर एक तरपुत्री स्थान है। वहां इन राजाओं की सर्वोत्तम इमारतें हैं। वहां अब एक उजाड़ मन्दिर के दो गोपुर खण्ड हैं, जिनमें एक तो पूरा और दूसरा खण्डित है। डा० फर्गुसन ने इनके विषय में लिखा है—

"यह समस्त खड़ा भाग बहुत उत्तम खुदाई के काम से ढका हुआ है। वह एक सुन्दर ठोस पत्थर पर बहुत ही उत्तम गहराई और शुद्धता के साथ बना हुआ है। और इसका अन्य बनावटों से अधिक और सम्भवतः विशेष मनोहर प्रभाव है।"

दक्षिण की जैन इमारतें—दक्षिण में जो जैन इमारतें हैं, उनमें भी द्राविड़ ढग है। चंद्रगिरि पर्वत पर १५ जैन मंदिर हैं। प्रत्येक के भीतर १ दालान है, जिसके चारों ओर बरामदे हैं। जिनके पीछे की ओर तीर्थंकर का प्रधान मूर्ति की कोठरी के ऊपर विमान बना है।

दक्षिण के जैनियों ने पर्वताकार मूर्तियां भी बनाई हैं, जो उत्तर भारत में नहीं देख पड़तीं। ऐसी एक मूर्ति श्रावन वेलगुल में हैं। जो ७० फीट ३ इञ्च ऊँची हैं, और जो एक ठोस पहाड़ी के कारण बनाई गई है। मिस्र को छोड़ कर अन्यत्र कहीं इतनी बड़ी मूर्तियाँ नहीं देख पड़तीं। फर्गुसन का मत है. कि ईजिप्ट में भी इतनी बड़ी कोई मूर्ति नहीं है। ऐसी कई मूर्तियाँ हैं, जो गौतम राजा की मूर्तियाँ कहाती हैं।

मैसूर और कर्नाटक की कला—एक तीसरे ढङ्ग की इमारतें-जो कृष्णा और विन्ध्याचल के मध्यवर्ती प्रदेश में दीख पड़ती हैं, उपर्युक्त पद्धति से भिन्न हैं। इन मन्दिरों का आधार बहुभुज तारे के रूप का होता है। दीवारें कुछ दूर तक सीधी उठती हैं, और तब ढ़ालुआं होती हुई एक बिंदु पर मिल जाती हैं। मैसूर और कर्नाटक में ऐसी इमारतें हैं। मैसूर और कर्नाटक में वल्लाल राजाओं ने १००० ईस्वी से १३१० तक राज्य किया था, और तीन स्थानों पर बहुत से मन्दिर बनवाए थे। एक सोमनाथपुर में, जो विनयादित्य ने सन् १०४३ में बनवाया था। इसकी ऊंचाई सिर्फ ३० फुट है, पर उसमें अद्भुत बारीक काम नींव से लेकर सिरे तक है वह भारत वर्ष के सबसे उत्तम श्रेणी के खुदाई के काम से ढका हुआ है; ये मन्दिर इस

CC-0. Agamnigam Foundation. Digitized by eGangotri Siddhanta Gyaan Kosha Foundation, Chandigarh

प्रकार से बनाए गए हैं, कि वे इमारत के बाह्य रूप में कोई विशेष हस्तक्षेप नहीं करते, वरन् उसे ऐसी शोभा देते हैं—जो केवल हिंदू-शिल्प के नमूनों में पाई जाती है। यदि इस मंदिर का सम्पूर्ण चित्र देना सम्भव होता, तो सम्भवतः भारतवर्ष में और कोई ऐसी वस्तु नहीं होती, जिससे उसके बनाने वालों की योग्यता का अधिक परिचय मिलता; परन्तु कैट ईश्वर के मन्दिर से अधिक उत्तम उसके निकट का हुल्लाविड़ का बड़ा दोहरा मंदिर है। यदि वह दोहरा मंदिर पूरा बन गया होता, तो यह एक ऐसी इमारत होती जिस पर हिंदू गृह-निर्माण-विद्या के प्रशंसक अपनी स्थिति लेना चाहते। परन्तु दुर्भाग्य-वश यह इमारत समाप्त न हो सकी, ६८ वर्ष तक यह बनती रही, और इसके उपरांत सन् १३१० में मुसलमानों की विजय ने इसका बनना रोक दिया। इसके सम्बन्ध में फर्ग्यूसन कहते हैं—

"निस्संदेह इतने पेचीले और इतने भिन्न भिन्न प्रकार के नमूनों का दृष्टांत द्वारा समझना असम्भव है। यह इमारत पांच या छः फीट ऊंचे एक चबूतरे पर है, जिसमें बड़े-बड़े पत्थर की पटिया लगी हैं। इस चबूतरे के ऊपर हाथियों की एक पंक्ति खुदी है, जो लगभग ७२० फीट लम्बी है। उसमें २००० हाथियों से कम नहीं हैं; और उनमें से अधिक पर साज तथा सवार भी इस भाँति खुदे हुए हैं, जैसा कि केवल पूर्व देशवासी इन्हें बना सकते हैं। इनके ऊपर शार्दूलों अर्थात् कल्पित सिंहों की पंक्ति है, जो इस मन्दिर को बनाने वाले होइसल वल्लालों का राज्य चिह्न हैं। इनके उपरांत बड़े सुन्दर चित्र-विचित्र बेल-बूटों का काम है, उसके ऊपर घुड़ सवारों की पंक्ति और दूसरे बेल-बूटों का काम है और उसके ऊपर रामायण के दृश्य यथा लङ्का विजय तथा अन्य भिन्न घटनाओं के दृश्य खुदे हुए हैं। यह पहिले मन्दिर की भांति ७०० फीट लम्बा है, इसके उपरांत स्वर्ग के पशु और पक्षियों की मूर्तियां हैं, और पूर्व ओर बराबर मनुष्यों के झुन्ड की पंक्ति हैं और फिर कटघरे के सहित एक कार्निस है; जिसमें बराबर खाने हैं, जिनमें से प्रत्येक खानों में दो मूर्तियाँ हैं। इनके ऊपर जालीदार पत्थर की खिड़कियाँ हैं, जो कि वैलूर के मन्दिर की भाँति हैं। यद्यपि उनमें इतना अधिक और इतने भिन्न भिन्न प्रकार का काम नहीं है; मध्य में खिड़कियों के स्थान पर पहिले बेल-बूटे हैं, और उसके उपरांत देवताओं और स्वर्ग की अप्सराओं तथा हिंदू कथाओं की अन्य बातों की पंक्ति हैं। यह पंक्ति जो साढ़े पांच फीट ऊंची हैं, इमारत के सम्पूर्ण पश्चिमी ओर भी हैं, तथा उसकी लम्बाई ४०० फीट के लगभग है। इसमें शिव तथा उसकी जांघ पर उसकी पत्नी पार्वती की मूर्ति कम से कम १४ बार दी गई हैं। विष्णु के नवों अवतार की भी इसमें मूर्तियां हैं। ब्रह्मा की तीन या चार मूर्तियां हैं, और इसमें हिंदुओं की कथाओं के प्रत्येक देवता दिए हैं। इनमें से कुछ मूर्तियों में ऐसा महीन काम है कि उसका चित्र केवल फोटोग्राफ के द्वारा लिया जा सकता है, और सम्भवतः वह धैर्यवान मनुष्यों के परिश्रम का पूरब में भी सबसे अद्भुत नमूना समझा जा सकता है।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ह्यूलेविड़ और पार्थियन की कला साम्य—ह्यूलेविड़ के मंदिर की समता एथेंस के पार्थी नान की कला से की जा सकती है। दोनों इमारतें एक सी हैं, तथा वे गृह-निर्माण—विद्या के दोनों ओर के अन्तिम सिरे हैं—जो अपनी-अपनी श्रेणी के सबसे उत्तम नमूने हैं, जिनमें गृहनिर्माण करने की समस्त विद्या केन्द्रित है।

पार्थीनान गृह-निर्माण की विशेषता यह है कि उसका प्रत्येक अंग गणित की शुद्धता और कारीगरी के साथ बनाया गया है, उसमें पत्थर का काम उसके निर्माण को पूर्णता पर पहुँचाने के लिए यथेष्ठ है।

ह्यूलेविड़ का मन्दिर इसके विपरीत है। वह समकोण है, परन्तु उसके बाह्य रूप भिन्न भिन्न प्रकार के हैं, तथा उसकी बनावट में और भी अधिक भिन्नता है। पार्थीनान के खम्बे एक से हैं। परन्तु भारतवर्ष के इस मन्दिर के कोई दो खम्बे भी एक से नहीं हैं। प्रत्येक बेल का प्रत्येक घुमाव जुदी जुदी भांति का है। सारी इमारत में कोई दो मण्डप एक से नहीं हैं, और प्रत्येक में उत्कृष्ट कारीगरी और कल्पना की अधिकता देखने में आती है। मनुष्यों के धर्म की सब निगूढ़ बातों तथा मानवी विचार की सब बातों के चित्र इन दीवारों में अंकित हैं।

दूसरा मन्दिर बेलूर में है, जिसे विष्णुवर्धन ने १११४ में बनवाया था। उसमें प्रधान मंदिर के चारों ओर ४ या ५ अन्य मन्दिर तथा बहुत सी छोटी-छोटी इमारतें हैं, जो एक ऊंची दीवार से घिरी है। और उसमें दो उत्तम गोपुर हैं। इनकी खिड़कियां में उत्कृष्ट खुदाई का काम है। वल्लाल राजाओं का तीसरा और अंतिम मन्दिर हुल्लाविड़ में है, यह कैयटेश्वर का मन्दिर कहाता है।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीसरा अध्याय

साहित्य काल

ईस्वी सन् ५०० से ईस्वी सन् १००० तक = ५०० वर्ष

१--नाटक और काव्य

साहित्य सर्जन का आरम्भ—हम यह ठीक ठीक नहीं कह सकते—कि साहित्य सर्जन का आरम्भ कब हुआ। महान् नाटककारभास ई० पू० पाँचवीं शताब्दी में हमें सबसे प्राचीन कवि उपलब्ध है। परन्तु हम सहित्योदय काल ईस्वी सन ५०० से ही मानते हैं, जब कि साहित्य का शृंगार उत्कर्ष की चरम कोटि पर पहुँचा। तथापि हम आरम्भ भास ही से करेंगे।

महान् आश्चर्य—संस्कृत साहित्य के सम्बन्ध में यह एक महान् आश्चर्य की बात है, कि जहां इस काल में सब प्राचीन राजवंशों और परम्पराओं का विनाश और पराभव हुआ—संस्कृत साहित्य का वह नवीन रूप उदय हुआ—जो पृथ्वी पर सबसे अधिक कोमल भावना और मानवीय कल्पना की दृष्टि से अप्रतिम है।

सारी पृथ्वी पर यदि कोई महत्वपूर्ण वस्तु है—जो मानवीय कल्पना और कोमल भावना को अमर बना देती है, तो वह संस्कृत साहित्य है। यद्यपि इसका प्रारम्भ नन्द और गुप्त राजवंशों के काल से भी प्रथम होता है, और राजपूत काल तक बढ़ता चला जाता है, परन्तु संस्कृत साहित्य का हृदय इसी काल में निर्मित हुआ।

भास और उसकी साहित्य निधि—सन १९०९ ई० में ट्रावनकोर के संस्कृत पाण्डु-लिपियों के प्रकाशन विभाग के अध्यक्ष महा महोपाध्याय गणपति शास्त्री को अकस्मात ही खोज करते हुए ताल-पत्र पर लिखे प्राचीन नाटकों के कुछ पत्रे पद्मनाभ पुर के निकट मन लिक्कर माथम नामक ग्राम में मिले। कुल १०५ पत्रे थे। प्रत्येक मे दस पंक्ति और बीस 'ग्रन्थ' थे। जो प्राचीन मलयालम अक्षरों में लिखे हुए थे। ये पन्ने लगभग तीन सौ बरस पूर्व के लिखे हुए थे—परन्तु आरम्भ के बारह पन्नों को छोड़ कर अक्षरों में कोई खास अन्तर न था। शैली और आकृति से ऐसा प्रतीत होता था, जैसे किसी ऋषि की महान् रचना हो। उसमें उच्च कोटि का काव्यदर्श था। पन्नों की छान बीन करने से ज्ञात हुआ कि वे दस रूपक हैं, जो भास प्रणीत है। इस समय से पूर्व तक हम कालिदास अथवा अश्वघोष को ही सर्व प्रथम कवि समझते थे। इन रूपकों की प्राप्ति से इस सैकड़ों वर्ष की धारणा का अन्त हो गया; और सर्व प्राचीन सर्व प्रथम संस्कृत के महान कवि और नाटककार भास का उदय हुआ। जिन दस रूपकों की इस प्रकार अकस्मात् ही उपलब्धि हुई वे ये थे--

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(१) स्वप्न नाटकम्। (२) प्रतिज्ञा नाटिका (३) पञ्च रात्रम् (४) चारु दत्तम्। (५) दूतो घटोत्कचम् (६) अविभारकम् (७) बाल चरितम् (८) मध्यम व्यायोगः (९) कर्ण भारम् (१०) उस भङ्गम्।

रूपकों की आकृति—साधारण तथा संस्कृत नाटकों का आरम्भ 'नन्दी' से होता है, और तब 'नान्द्यन्ते सूत्र धारः' ऐसा कहा जाता है। परन्तु इन रूपकों में इस परम्परा का उल्लंघन था। उनका आरम्भ ही 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्र धार[1]:' इस प्रकार होता है। और तब 'मंगल-श्लोक' पाठ है। तथा उसी में रूपक के विषय का परिचय भी आ जाता है। इसके बाद प्रस्तावना' के स्थान पर इन रूपकों में 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त तीसरी एक बात यह—कि कालिदास शूद्रक और अन्य नाटककारों की पद्धति ऐसी रही है कि प्रस्तावना ही में लेखक का नाम, रचना का नाम और रचना का सन्दर्भ संकेत भी होता है। परन्तु इन रूपकों में यह बात न थी। 'स्थापना' में न लेखक का नाम था—न रचना का। 'भरत वाक्य' में जहाँ रूपक की समाप्ति होती है—खास तौर पर यह प्रार्थना की गई है—हमारे सिंह विक्रम सम्राट की जय हो, यहीं पर नाटक का नाम भी दिया गया है।

रूपकों में कुछ साधारण ध्वनियाँ या वाक्य हैं, जो प्रायः सभी में प्रयुक्त हैं। जैसे 'एवमार्य मिश्रान् विज्ञापयामि'। 'अये किन्नु खलु मयि विज्ञानपन व्यग्रे शब्द इव श्रूयते'। 'अङ्ग ! पश्यामि' आदि ऐसे वाक्य खण्ड हैं। परन्तु प्रतिज्ञा, चारुदत्त, अविमार कम् प्रतिमा, कर्ण भार में ऐसा नहीं है। रूपक के व्यक्तियों के नाम की प्रशस्ति में प्रतिज्ञा, पंचरात्र, प्रतिभा और स्वप्न नाटिका में यह श्लोक हैं—

'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुष लेवेव दृष्टिर्निष्कलतां गता॥

इसी प्रकार 'किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशंकितंमे' यह वाक्य खण्ड चारुदत्त और बाल चरित्र में प्रथम अंक में ही है। इस प्रकार की वचन सादृष्यता और भी अनेक स्थानों पर पाई जाती हैं।

रूपकों की रचना—भिन्न २ रूपकों में वचन सादृष्यता से यह तो हम आसानी से समझ सकते हैं—कि ये रचनाएँ एक ही व्यक्ति की है। क्योंकि स्थापना में न लेखक का नाम है—न रचना का। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं, कि संस्कृत के

१—इमां सागर पर्यंतां हिमवद् विन्ध्य कुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंह प्रशास्तु नः॥
अथवा (स्वप्न वासवासतृदत्ता) तथा बाल चरितम
भवन्त्व रजसो गावः परचक्रं प्रणश्यतु।
इमामपि भहीं कृत्स्नां राजसिंह प्रशास्तुनः॥' प्रतिज्ञा अविभारक+आधा श्लोक पन्चरात्र में है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाटक जब इस स्तर पर पहुँच चुके थे--उनसे यह रचना प्राचीन है। और उस काल तक उस पद्धति का विकास नहीं हुआ था, जिसे कालिदास और उसके उत्तर-कालीन कवियों ने अपनाया है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि इन रचनाओं से हम यह अनायास ही जान सकते हैं, कि लेखक की कवित्व शक्ति और ज्ञान असाधारण था। प्राचीन आचार्य अभिनव गुप्त पाद और अन्य जनों ने स्वप्नवासवदत्ता की चर्चा की है। पर वह यही समझते रहे, कि उसका अब नाम शेष है और वह रचना नष्ट हो चुकी। श्रुति मुक्तावलि में राजशेखर अवश्य इस ग्रन्थ का उसके लेखक के नाम के साथ उल्लेख करता है।[1] इस उल्लेख से ही पता चला कि यह लुप्त स्वप्न-वासवदत्ता भासकृत है। इस प्रकार न केवल इस आकस्मिक ढग से यह अपूर्व रूपक, जिसे आचार्यगण लुप्त कह चुके थे, मिल गया। और उसके रचयिता का नाम भास है यह भी पता चल गया। कालिदास ने मालवियाअग्नि मित्र की प्रस्तावना में भी भास का इस प्रकार उल्लेख किया है--'ग्रथित यशसं भास सौमिल्ल कवि पुत्रादीनां प्रवन्धानतिक्रम्य" इसके अतिरिक्त वाण ने हर्ष चरित में एक श्लोक में भी भास का उल्लेख किया है।[2] इस प्रकार इस बात का पता लग गया—कि ये रूपक भास कृत हैं। विशेषकर "वाणभट्ट का सूत्रधार कृतारम्भै" वाक्य भास के इन रूपकों का ठीक पता दे गया। क्योंकि ये सब 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' से ही आरम्भ होते हैं।

अन्य पाण्डुलिपियां—स्वप्नवासवदत्ता जो इन सब रूपकों में सर्वश्रेष्ठ है दन्त कथाओं में सुनी जाती थी। चारुदत्त और कर्णभार की अपूर्ण पाण्डुलिपियाँ भी प्राप्त हुईं। एक दो अन्य पाण्डुलिपियाँ भी और गणपति शास्त्री को उपलब्ध हुई। इसके बाद भास की एक रचना 'दूतकाव्य' भी प्राप्त हुई।

भास का काल—स्वप्नवासवदत्ता के सम्बन्ध में वन्द्य घात्य-सर्वानन्द ने अपनी अमरकोष टीका सरवस्य में 'शृंगार वीर करुणा' और 'स्वपिशमात्मसात्कर्तुं उदयनस्य पद्मावतीपरिणयोऽर्थं शृंगारः स्वप्नवासवदत्ते' तृतीयस्तस्यैव वासवदत्ता परिणयः काम शृंगारः, यह वाक्य लिखा है। यह आचार्य ११५९ ई० में जीवित था। आचार्य अभिनव गुप्तपाद जो मसीह की दसवीं शताब्दी में जीवित थे- अपने ग्रन्थ 'भरत नाट्य वेदवृत्ति' में एक वाक्य लिखते हैं—क्वचित् क्रीड़ा यथा स्वप्न-वासवदत्तायाम्। इसी प्रकार दरिद्र चारुदत्त नाटक का भी उल्लेख किया है।

वामन--जो आनन्दवर्धन से बहुत पूर्ववर्ती है, उसने ईसा की नवीं शताब्दी में

१--भास नाटक चक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

२--सूत्रधार कृतारम्भैर्नाटकैर्वहुभूमिकैः।
सपताकै यशो लेभे भासो देव कुलैरिवि॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध्वन्यालोक लिखी। उसमें वह उसके चतुर्थ अधिकरण के तीसरे अध्याय में काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति में निम्न श्लोक उद्धृत करता है—

'शरच्छशांक गौरेण वाताविद्धेन भामिनि।
काश पुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम॥

यह श्लोक स्वप्नवासवदत्ता का है। पंचम अधिकरण के दूसरे अध्याय में वह फिर भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण के एक श्लोक का एक चरण उद्धृत करता है—यो भर्तृ पिण्डस्य कृतेन युध्येत्। फिर पंचम अधिकरण के प्रथम अध्याय में वहीं का यह श्लोक उद्धृत करता है—

यासां वलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां
हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्त पूर्वः।
तारवेव पूर्व वलिरूढ़ यवांकुरासु,
वीणाञ्जलिः पतति कीट मुखावलीढ़ः।

यह श्लोक चारुदत्त के प्रथम अङ्क में है। एक श्लोक का अर्धभाग जो बाल चरित और चारुदत्त दोनों में हैं महाकवि दण्डिन ने अपने काव्यादर्श के दूसरे परिच्छेद में उद्धृत किया है। पूरा श्लोक इस प्रकार है--

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
इतीदमपि भूयिष्ठमुत्प्रेक्षालक्षणान्वितम्॥

दण्डिन् नवीं शताब्दी का कवि है।

उद्योत ने अपने ध्वन्यालोकालोचन स्वप्नवासवदत्ता की वह आर्या उद्यत की है--

'सञ्चित पक्ष्मकपाटं नयन द्वारं स्वरूप तड़नेन।
उद्घाटच स्म प्रविष्ठा हृदयं गृहं मे नृप तनूजा॥'

इसी प्रकार बालचरित का निम्नलिखित श्लोक साहित्य दर्पण के नवें परिच्छेद की आठवीं कारिका में उद्धृत है—

उत्साहातिशमं वत्स, तव वाल्यं च पश्यतः।
मम हर्ष विषादाभ्यामाक्रान्तं युगपन्मनः॥

भामा ने भी अपने काव्यालङ्कार में प्रतिज्ञा नाटक से उद्धरण लिए हैं। भामा कालिदास का पूर्ववर्ती पुरुष है, क्योंकि वह जहाँ माधवी, रामाशर्मा, अस्माकवंस रत्नहरण, अच्युतोत्तर आदि अपरिचित कवियों तथा कोषों का उल्लेख करता है, वहाँ कालिदास का नाम नहीं लेता।

विष्णुगुप्त चाणक्य--जो ई० पू० चौथी शताब्दी में चन्द्रगुप्त सम्राट् का महामात्य था, अपने अर्थशास्त्र में प्रतिज्ञायौगन्धरायण के चतुर्थ अङ्क का एक श्लोक उद्धृत करता है। श्लोक यह है--

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नवं शरावं सलिलस्य पूर्णं सुसंस्कृतं दर्भ कृतोत्तरीयम् ।
तत् तस्य मा भून्नरकं च गच्छेद् यो भृतृ पिण्डस्य कृतेन युध्येत् ।।[1]

इस श्लोक को उद्धृत करते समय वह स्वयं कहता है--'अपीह श्लोकौ भवतः' जो इस बात का प्रमाण है कि वे उद्धृत हैं। इन सब आधारों पर हम भास को विष्णुगुप्त चाणक्य से भी प्राचीन पाते हैं। और उसका काल सम्भवतः ई० पू० चौथी शताब्दी से भी आगे जाता है।

प्रतिमा नाटक में रावण राम को सम्बोधन कर के कहता है—भोः। काश्यप-गोत्रोऽस्मि साङ्गोपांग वेद मधीये, मानवीय धर्मशास्त्रं-माहेश्वरं योगशास्त्रं वाहर्स्पत्य अर्थ शास्त्रं, प्राचेतस श्राद्धकल्पं च।' यहाँ वह मेधातिथि का भी उल्लेख करता है--जो मानव धर्म सूत्र का टीकाकार है। निस्सदेह वह चाणक्य के अर्थशास्त्र का उल्लेख नहीं करता। परन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात भास के नाटकों में वे भाषा सम्बन्धी आर्ष प्रयोग हैं, जो उसे पाणिनि से पूर्ववर्ती प्रमाणित करते हैं।

रचनाओं का मूल्याङ्कन—रूपकों के पात्रों की एक रूपता और उनके भाव-प्रकाशन की पुरातन पद्धति अद्वितीय है। उनकी भाषा इतनी शुद्ध-साफ-कोमल और प्रभावशाली है, और इतना माधुर्य उसमें है--जैसा कि समूचे संस्कृत साहित्य में कहीं भी मिलना दुर्लभ है। पच्चीस शताब्दियाँ बीत जाने पर भी उसमें वही जीवन है। प्रत्येक वाक्य सार्थक है। अर्थ गम्भीर्य-लालित्य से परिपूर्ण है। छोटे-छोटे पदों में सूत्र कालिक संक्षिप्ती करण की भावना है। और उन अति संक्षिप्त वाक्यों में सुन्दरता से भाव प्रकाशन किया गया है। जिस का मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव पड़ता है। विविध भावभगिमाऐं नाना परिस्थितियों की भाव द्योतक इस ढंग से उपस्थित की गई हैं--कि जिससे लेखक का भाषा और भावों पर असाध्य अधिकार प्रकट होता है। उसमें न तो उत्तरकालीन कवियों की भांति अलङ्कारों और उपमाओं का बोझिल स्वरूप है। न रस प्रकाशन के लिए भाषा में तनिक भी कृत्रिमता आ पाई है। ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा और भावों का एक प्रवाह है जो अविच्छिन्न गति से बह रहा है, और जिसमें प्राचीन ऋषियों की सूक्ति का सम्पूर्ण गाम्भीर्य और सुषमा उपस्थित है। रूपकों में सर्वत्र ही उत्कृष्ट प्रसाद गुण है, और उनकी शैली आश्चर्यजनक है।

भास के उत्तरकालीन कवि—कालिदास जैसे महान् कवि भी भास की गरिमा को उल्लंघन करने में समर्थन नहीं हो सके हैं। भास तो उनसे प्रत्येक दिशा में अग्रगामी है। अभिज्ञान शकुन्तला में--जो कालिदास की सर्व श्रेष्ठ रचना है--भास के अनेक सन्दर्भ उद्धृत हैं।

१--अर्थशास्त्र—अभिकरण १०। अध्याय ३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभिषेक नाटक के चतुर्थ अङ्क में एक श्लोक है—

यस्यां न प्रियमण्डनापि महिषी देवस्य मन्दोदरी ।
स्नेहाल्लुम्पति पल्लवान् न च पुनर्वीजन्ति यस्यांभयात् ।।
वीजन्तो मलयानिला अपि करै रस्पृष्ट बालद्रुमाः ।
सेयं शक्ररिपोरशोक वनिका भग्नेति विज्ञाप्यताम् ।।

ठीक इससे मिलता जुलता श्लोक शकुन्तला के चतुर्थ अङ्क में है—

पातु न प्रथमं व्यवसति पयो युष्मास्वपीतेषु या ।
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।।
आद्ये वः कुसुम प्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः ।
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वै रनुज्ञायताम् ।।

कालिदास का यह श्लोक भास के उपरोक्त श्लोक का अनुगत है । केवल भाषा के माधुर्य और भाव प्रकाशन की एकरूपता ही नहीं–मण्डन–'प्रिय मण्डनापि' 'स्नेहात्' 'पल्लवान्' आदि शब्द भास के ही ज्यों के त्यों कालिदास ने काम में लिए हैं ।

और भी देखिए––बाल चरित के प्रथम अंक में एक श्लोक है––देवकी जब बालकृष्ण को वसुदेव को देती है––तब उसके हृदय की द्विधा कवि कहता है––उस का शरीर तो वहीं रहता है, पर हृदय बालक के साथ है श्लोक यह है—

हृदये नेहतत्रांगैर्द्विधा भूतेव गच्छति ।
यथा न भसितोये च चन्द्रलेखा द्विधा कृता ।।

अब इस श्लोक से शकुन्तला के प्रथम अङ्क के इस श्लोक की तुलना कीजिए—

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः ।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ।

स्वप्न वासवदत्ता में एक पंक्ति प्रथम अङ्क में है—

'विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्य चकिता देशागत प्रत्ययाः ।

इसकी तुलना शकुन्तला की इस पंक्ति से कीजिए—

'विश्वासोप गमादभिन्न गतयः शब्दं सहन्ते मृगाः ।

और भी देखिए—

'पविसजादे, पविस । तवोवणाणिणाम अदिहिजणस्य सअगेहम्'
(स्वप्न वासवदत्ता)

उत्तर :—

'भोदु भोदु अय्ये ! विस्सत्थहिन । इमिणा वहुमाणवअणेण अणुगहिदह्मि'
(स्वत्न वासवदत्ता)

बिल्कुल ऐसा ही भाव शकुन्तला की इन पंक्तियों में है—

'भवतु ! भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमाति थ्याम् ।
(शकुन्तला प्रथम अङ्क)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और भी है—

न खलु न खलूत्सारणा कार्या। 'पश्य'
परिहरतु भवानु नृपापवादं ;
न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम् ।
नगर परिभवानू विमोक्तु मेते ,
वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति ।

(स्वप्न वासवदत्ता; अङ्क १ श्लोक ५)

ठीक यही भाव इस श्लोक में है—

यथा च सैनिकास्तपोवनं दूरादेव परिहरत्ति, तथा निषेद्धव्याः ।
पश्य, शम प्रधानेषु तपोधनेषु गूढ़ं हि दाहात्मकमस्ति तेजः ।।
स्पर्शानुकूला इव सूर्य कान्ता स्तदन्यतेजोभि भवाद् वमन्ति ।

(शकुन्तला द्वितीय अङ्क श्लोक ७)

देखिए :—

श्रुति सुख निनदे ! कथं नु देव्याः ।
स्तन युगले जघन स्थले च सुप्ता ।।
विहग गण रजो विकीर्ण दण्डा ।
प्रतिभयमध्युषितास्यरण्य वासम् ।। (स्वप्न वासवदत्ता)

अब इसकी तुलना इस श्लोक से कीजिए :—

तव सुचरितमङ्गुलीय नूनं ।
प्रतनु ममेव विभाव्यते फलेन ।
अरुण नख मनोहरा सुतस्या ,
श्च्युतमसिलब्ध पदं यच्छङ्गुलीषु ।

(शकुन्तला अङ्क ४ श्लोक ११)

इस प्रकार के और भी स्थान हैं—जहाँ महाकवि कालिदास ने स्पष्ट ही भास का भावापहरण किया है। यही बात हम अन्य कवियों के विषय में भी कह सकते हैं। भवभूति ही को लीजिए। उत्तर राम चरित के दूसरे अङ्क में भगवती आत्रेयी का प्रवचन और स्वप्न वासवदत्ता के प्रथम अङ्क में ब्रह्मचारी का सन्दर्भ मिलाइए, तथा विद्याधर के छटे अङ्क में, और अभिषेक नाटिका के छठे अंक में वर्णित तथ्य देखिए। मालती माधव के पांचवे अंक में प्रयुक्त 'दण्डक' और अविमारक के पांचवें अंक में प्रयुक्त 'दण्डक' की समता देखिए। ऐसा ही श्री हर्ष और भास में समता आप देखेंगे।

शूद्रक का मृच्छकटिक कालिदास से भी प्राचीन कहा जाता है। उसमें भास के दरिद्र चारुदत्त से असाधारण समता है। जैसे के तैसे वाक्य भास के उठा लिए गए हैं। देखिए—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'यासां वलि भवति मद्गृह देहलीनां ;
हंसैश्च सारस गणैश्च विभक्त पुष्पः ।
तास्वेव पूर्व वलि रूढ़यवांकुरासु,
वीजाञ्जलिः पतति कीट मुखावलीढ़ः ।
(चारुदत्त नाटिका प्रथम अंक)

यासां वलिः सपदि मद्गृहदेहलीनां,
हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्त पूर्वः ।
तास्वेव सप्रति विरूढ़ तृणांकुरासु,
बीजाञ्जलिः पतति कीट मुखांवलीढ़ः । (मृच्छ कटिक)

चारुदत्त के तीसरे अक में—

चारुदत्तः— वयस्य । वीणानामा समुद्रोत्थितं रत्नम् । कुतः;

विदूषकः-- कामं पससेदु भवं । मम खु दाव गाअन्तो मणुस्सो इत्थिआवि पठती उभअ आदरंणंदेदि । गाअन्तो दाव मणुस्सो रत्तसुमणां वेट्ठिदो वि अ पुरोहिदो दिढ़ण सोभइ । इत्थिआ वि पठन्ति छिण्णणासा वि अ धेणुआ अदि-विरूवा होइ ।

अब देखिए-मृच्छ कटिक में—

चारुदत्तः—अहो, अहो, साधु साधु रेमिलेन गीतम् । वीणाहि नामा समुद्रोस्तिथितं रत्नम् । कुतः,

विदूषक—मम दाव दुवेहिं जेव्वहस्सं जा अदि । इत्थिआए सक्क अं पठन्तीए मणुस्सेण अ काअलिं गाअन्तेण । इत्थिआ दाव सक्क अं पठन्ती दिण्णणवणस्सा विअगिट्टी अ सुसुहाअदि । मणुस्सो वि काअलिं गाअन्तो सुक्खु सु मणो दामवेट्ठिदो वुड्ढ़ पुरोहिदो वि अ मन्तं जवन्तो दिढं मे ण रोअदि।

इसी प्रकार अनेक स्थल हैं । चारुदत्त और मृच्छकटिक का तो कथानक ही एक है । स्पष्ट ही वह चारुदत्त पर आधारित है । किन्तु मृच्छकटिक में चारुदत्त से कुछ अंश भिन्न भी हैं । कहा जा सकता है कि चारुदत्त का संक्षिप्त रूपक बढ़ा कर पूरा नाटक विकसित किया गया है । फिर भी शूद्रक को नाटक का मौलिक लेखक नहीं कहा जा सकता । शूद्रक कालिदास का उत्तरकालीन कवि है । पर वामन से प्राचीन है । वामन ने आपने काव्यालंकार में उसका उल्लेख किया है ।[1] इन सब आधारों पर कहा जा सकता है कि भास सभी प्रमुख प्राचीन महा कवियों का आधार रहा है ।

महत्त्वपूर्ण संकेत--भास ने "आपृच्छामि भवन्तौ" जैसे पदों में स्पष्ठ ही व्याकरणाचार्य पाणिनि का उल्लंघन किया है । जिस मनीषि की साहित्य सम्पदा

१--शूद्रकादि रचितेषु प्रवन्धेष्वस्य (श्लेषाख्यगुणस्य) भूयानु प्रपञ्चोदृष्यते !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाल्मीकि से कम नहीं है—वह अज्ञान वंश अशुद्ध प्रयोग करेगा यह नहीं कहा जा सकता। वास्तव में ऐसे प्रयोग इस बात के प्रमाण है, कि भास पाणिनि से पूर्वकालीन पुरुष है। कालिदास का यह वचन "प्रथित यशसां भास सौमिल्लक विपुत्रादीनाम्" इस बात का प्रमाण है कि कालिदास के काल में भास का नाम प्रतिष्ठा पूवक लिया जाता था। परन्तु शूद्रक के काल में भास की रचनाएं लुप्त हो रहीं थीं। यही कारण था कि भास के दरिद्र चारुदत्त के आधार पर उसके बिखरे हुए संदर्भों पर शूद्रक ने मृच्छकटिक की रचना की, जो प्रसिद्ध हो गई, और किसी ने भी इस बात पर सन्देह नहीं किया—कि वह भास की रचना पर आधारित है। सम्भव है कि पाणिनि भास के काल तक अपना व्याकरण रच चुका हो। परन्तु यह तो स्पष्ट है कि पाणिनि के व्याकरण की प्रसिद्धि बहुत काल बाद—वार्तिक और महाभाष्य की रचना से हुई होगी। इसलिए भास ने ऐसे प्रयोग दिए हैं जो पाणिनि व्याकरण से समर्पित नहीं है। निस्संदेह यह एक विचारणीय बात है कि ये महत्वपूर्ण रचनाएं एक दम लुप्त हो गईं। और केवल उनका नाम मांत्र रह गया। न व्याडिने न गुणाढय ने उसका उल्लेख किया। जो हो यह विना संकोच कहा जा सकता है कि भास की यह साहित्य निधि—संस्कृत साहित्य की अमूल्य सम्पदा है। हम यह भी आशा करते हैं कि अभी भास की और भी रचनाएं हमें उपलब्ध होगी। स्वप्न वासव दत्ता का कुछ समर्थन हमें सारदातनय के भाव प्रकाश में मिलता है जो १२वीं शताब्दी का ग्रन्थ है। उसका सातवां अधिकार कुछ रूपक ही के ढग पर लिखा है—

प्रशान्त रस भूयिष्ठं प्रशान्तं नाम नाटकम्।
न्यासो न्यास समुद्भेदो वीजोक्ति वीज दर्शनम्॥
ततोऽनुद्दिष्ट संहारः प्रशान्ते पञ्च सन्धयः।
सात्वती वृत्तिरत्र स्यादिति द्रौहिणिरब्रवीत्॥
स्वप्नवासंवदत्ताख्य मुदाहरण मत्रतु।
आच्छिद्य भूपाद् व्यसनाद् देवी मागधिकाकरे॥
न्यस्तायतस्ततों (स्यास्य न्यासाद) मुख सान्धिरयं भवेत्।
न्यासस्य च प्रति मुखं समुद्भेद उदाहृतम्॥
पद्मावत्या मुखं वीक्ष्य विशेषकविभूषितम्।
जीवत्यावन्ति केत्येतद् ज्ञातं भूमि भुजा यथा॥
उत्कण्ठितेन सोद्वेगं वीजोक्ति नाम कीर्तनम्।
एहिवासवदत्तेति (?) क्व यासीत्यादिदृष्यते॥
सहावस्थितंवयोरेकं प्राप्यान्यस्य गवेषणम्।
दर्शन स्पर्शना लापैरेतद् स्यात् वीज दर्शनम्॥
(अत्रोदाहरणम्)
चिर प्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रति वोधितः।
त देवी न पश्यामि यस्य घोषवती प्रिया॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि न्ते भूयः प्रियं कुर्यामिति वाग् यत्र नोच्यते ।
तमनुद्दिष्ट सहारमित्याहुभरतादयः ॥

इन उद्धरणों में उस घटना का आभास मिलता है, जो स्वप्न वासवदत्ता में ही वर्णित है।

भोजदेव के शृंगार प्रकाश में जो ११ वीं शताब्दी का ग्रन्थ है। एक वलि के रचयिता विद्या नाथ का संकेत है जिसने स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख किया है।[1]

कालिदास—भास के बाद सौष्ठव की दृष्टि से कालिदास ही का नाम संस्कृत साहित्य में सर्वोपरि आता है। संसार के सर्वश्रेष्ठ नाटककारों में उनकी गणना की जाती है।

कालिदास के समय के विषय में बहुत मत भेद है। प्रसिद्ध है कि वह विक्रमादित्य के सभा पण्डित थे--पर यह विक्रमादित्य कौन से हैं ? तथा उनका समय क्या है ? इस पर विद्वानों के भिन्न मत हैं। हमारा मत है कि कालिदास म लव विजेता यशोधर्मन विक्रमादित्य के समकालीन थे। जिनका काल छठी शताब्दी का पूर्वपाद है।

कालिदास के ग्रन्थ---कालिदास के सात ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं-- (१) रघुवंश (२) कुमार संभव (३) मेघदूत। (४) ऋतु संहार। (५) मालविकाग्नि मित्र। (६) विक्रमोर्वशी। (७) अभिज्ञान-शाकुन्तल। इनमें प्रथम दो महाकाव्य हैं, और तृतीय, चतुर्थ खण्ड काव्य, तथा अन्तिम तीन नाटक हैं।

रघुवंश—सूर्य वंशी राजा रघु की दिग्विजय का काव्य है। सूर्य वंश भारत का अति प्राचीन आर्य राज वंश है। उसकी वंशावलि १४ पुराणों में दी हुई है। परन्तु सभी पुराणों में मत भेद है। केवल एक ब्रह्म पुराण ही ऐसा है, जिसमें दिलीप के पुत्र रघु, रघु के अज, अज के दशरथ और दशरथ के पुत्र राम कहे गए हैं। इनके बाद के नौ राजाओं के सम्बन्ध में 'रघुवंश' विष्णु पुराण और 'वायु पुराण' एक मत हैं। ये नौ राजा—कुश, अतिथि, निषध, नल, नभ, पुण्डरीक, क्षेमधन्वा, देवानीक और अहीगनु हैं। उपर्युक्त इन चौदह राजाओं के अतिरिक्त कालिदास ने पारियात्र, शिल, उल्लाभ, वज्रनाभ, शंखण, व्युसिताश्व, विश्वसह, हिरण्यनाभ, कौशल्य, ब्रह्मिष्ठ पुत्र पुष्य; ध्रुवासंधि, सुदर्शन एवं अग्निवर्ण और इन पन्द्रह राजाओं का वर्णन किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि कालिदास सूर्यवशी वंशावली के लिए ब्रह्म, विष्णु एवं वायु इन तीन पुराणों पर आधारित हैं। पुराणों में प्रसिद्ध प्रसिद्ध

१—स्वप्नवासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः। पद्मावती रहितं च तदवलोक्य तस्या एव शयनीयं सुस्वाप, वासवदत्तां च स्वप्नवद स्वप्ने ददर्श; स्वप्नाय मानश्च वासवदत्तामाबभाषे। स्वप्न शब्देन चेह स्वाचो वा स्वप्न दर्शनं वा स्वप्नायितं या विवक्षितम्।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजाओं के विशेष वर्णन भी यत्रतत्र है। कालिदास ने कुछ तो उनके आधार पर, और कुछ कल्पना के सहारे अपने वर्णन सम्पूर्ण किए हैं। रघुवंश के तृतीय सर्ग में रानी सुदक्षिणा का दौहद लक्षण और रघु के जन्म का वर्णन शिव पुराण के पार्वती खण्ड के पाँचवें अध्याय में वर्णित मैना के दौहद लक्षण तथा पार्वती जन्म के वर्णन से भाव और भाषा दोनों ही में मिलता जुलता है। शिव पुराण और रघुवंश के इन अँशों में अत्यधिक साम्य है। हां कवि चमत्कार कालिदास का प्रथक् है।

'कुमार सम्भव' तो शिव पुराण के पार्वती खण्ड एवँ कुमार खण्ड पर ही आधारित है। यहाँ तक कि कुमार सम्भव की भाव-भाषा शैली तक शिवपुराण ही की है। केवल छन्द, कल्पना, चमत्कार कवि के अपने हैं।

'मेघ दूत' के सम्बन्ध में मल्लिनाथ कहते हैं—

'हनुमान के द्वारा सीता के पास राम के सन्देश को हृदय में रख कर कालिदास ने मेघदूत की रचना की है।[1] परन्तु प्राणनाथ सरस्वती की धारणा है कि मेघदूत के रचने की प्रेरणा कवि को कदाचित् घटकर्पर के यमक काव्य से मिली है।[2] मेघदूत पर वाल्मीकि का प्रभाव स्पष्ट है।[3] परन्तु वाल्मीकि का विप्रलम्भ ही कवि ने लिया है—कल्पनाएँ और सूक्तियाँ उसकी अपनी हैं।'

'ऋतु संहार' में कवि ने प्रकृति निरीक्षण किया है। जो सुन्दर है। 'मालविकाग्नि मित्र' एक ऐतिहासिक नाटक है। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के अन्तिम चरण में अन्तिम मौर्य सम्राट् वृहद्रथ को उसके ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र ने वध कर राज्य छीना था। उसके राज्य का विस्तार दक्षिण में नर्मदा नदी तक, और उत्तर में कोशल तक, पूर्व में मगध और पच्छिम में पञ्जाब के जालंधर-शाकल तक विस्तृत था। पाटलिपुत्र, अयोध्या, विदिशा, जालधर और शाकल जैसे नगर उसके राज्य के अन्तर्गत थे। पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र था। जो पिता के राज्यकाल में विदिशा का शाशक था। यह नाटक विदिशा के शासक अग्निमित्र से ही सम्बन्धित है। अग्नि मित्र अपने पिता के मरने पर ई० पू० १५१ में पाटलिपुत्र का सम्राट् हुआ। यह नाटक सत्य कथा पर आधारित है। वृहद्रथ मौर्य के दरबार में दो विरोधी दल थे। एक प्रधान मन्त्री का, दूसरा प्रधान सेनापति का। प्रधान मन्त्री का सहायक यज्ञसेन विदर्भ का, तथा अग्निमित्र विदिशा का शासक वृहद्रथ के जीवन काल में ही थे। किन्तु जब वृहद्रथ को मार कर और प्रधान मन्त्री को कैद करके पुष्यमित्र राजा

१—सीतां प्रति रामस्य हनुमत् सन्देशं मनसिनिधाय मेघ संदेशं कपिः कृतवानित्याहुः।
मेघदूत-श्लोक ३-संजीवनी टीका।

२—कालिदास का मेघदूतम्---एस० राय० और के० राय० इन्ट्रोडक्शन पृ० १०।

३—'इत्याख्याते पवन-तनयं मैथिलीवोन्मुखी सा'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बना तो यज्ञसेन स्वतन्त्र राजा बन बैठा। इस पर अग्निमित्र ने उस पर चढ़ाई कर, उसे परास्त किया। और उसका राज्य दोनों के सम्बन्धियों में बट गया। ये सब ऐतिहासिक बातें और मालविका धारणी—इरावती; वीरसेन, वाहतव, सुमति, अग्निमित्र का पुत्र वसुमित्र—जिसने सिन्धु तट पर यवनों को परास्त किया था—ऐतिहासिक कृति है।

विक्रमोर्वशीय' नाटक में विक्रम (पराक्रम) द्वारा उर्वशी को जीतने का आख्यान वर्णित है। पर 'विक्रम' शब्द यहाँ श्लेष मूलक है। इस नाटक में स्थान स्थान पर इस श्लेष का उपयोग किया है। नाटक की कथा का आधार ऋग्वेद का प्रथम मण्डल, सूक्त ३१ मन्त्र ४ है। जहाँ पुरुरूवा को अग्निदेव का रक्षक कहा है। ऋग्वेद के १० वें मण्डल का ९५ वां सूक्त समूचा पुरूरुवा और उर्वशी सम्वाद का है। सगर्भा उर्वशी–पुरुरूवा का साथ छोड़ कर स्वर्ग चली गई थी। उसके विरह में व्याकुल राजा ने कुरुक्षेत्र में उसे पाकर उससे साथ रहने की प्रतिज्ञा की थी।[1] यही कहानी भिन्न भिन्न रूप में मत्स्य पुराण[2], भागवत[3], विष्णुपुराण[4], सायण भाष्य[5] तथा कथा सरित्सागर में[6] वर्णित है।

कहानी का सार यह है कि—मित्र और वरुण यज्ञ में दीक्षित थे; उर्वशी शृंगार किए उनके निकट आई। उन्होंने उसे मनुष्य की पत्नी होने का श्राप दिया। उर्वशी पुरूरुवा के पास गई, और विवाह किया। उसके पास दो भेड़ें थीं। राजा से उसने दो प्रतिज्ञा कराई। एक तो उन भेड़ों की रक्षा करने की—दूसरी यह--कि वह राजा को नंगा न देखे। प्रतिज्ञा भंग होने पर मैं स्वर्ग चली जाऊँगी। ऐसा उसने प्रण किया। वे बहुत दिन साथ रहे। तब इन्द्र ने गन्धर्वों को उर्वशी को लेने भेजा। वे रात में उसकी भेड़ें चुरा ले गए। उर्वशी के चिल्लाने पर राजा नँगा ही भाग खड़ा हुआ। दोनों व्रत भंग होने पर उर्वशी गन्धर्वों के साथ चली गई। राजा उसके विरह में पागल बना घूमता रहा। अन्त में कुरुक्षेत्र में (अथवा मानसरोवर तट पर) उसने उर्वशी को देखा। उर्वशी ने उसे उसका पुत्र आयु दे दिया। फिर उस से राजा ने पांच पुत्र उत्पन्न किए। अन्त में अग्निदेव की आराधना से स्वर्ग लाभ कर पुरुरूवा ने उर्वशी को पाया।

---

१. शुभकर्मकर्ता यह पुरूरुवा तुम्हारे पास रहने की अभिलाषा करता है, मेर हृदय जल रहा है। हे उर्वशी! लौट आओ। ऋग्वेद। प्रथम मण्डल। सूक्त ३१ मन्त्र १७।

२. अध्याय ११--१२

३. स्कन्ध ९, अध्याय १४

४. अध्याय ४

५. ऋग्वेद मण्डल १० सू० ९५ भाष्य।

६. ल० ३ त० ३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालिदास ने मूल कथा में बहुत परिवर्तन किए हैं, और अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल पर उसमें भाव सौन्दर्य की सृष्टि की है। जिससे कहानी का स्वरूप अति सुन्दर हो गया है। नाटक में प्रतिद्वन्दिता लाने को उसने रानी उशीनरी की कल्पना की है। भरत मुनि का शाप और इन्द्र की कृपा नाटक में समत्व लाती है। गन्धमादन पर्वत पर कुमार वन में उर्वशी के प्रवेश करने की घटना भी कवि प्रतिभा का वमत्कार है। विप्रमोर्वशी और मालविकाग्निमित्र में प्रेम वियोग की ऐसी गहरी रेखाएँ खींची गई हैं, जो हृदय पटल पर अङ्कित हो जाती है। अभिज्ञान शकुन्तला कालिदास की सर्वश्रेष्ठ रचना है। विश्व के जिस पुरुष ने इसे पढ़ा—वह कह सकता है कि इसमें शकुन्तला की जो मूर्ति स्थापित हुई है, उससे बढ़कर मृदु और मनोहर स्त्री मूर्ति की कल्पना आज तक मनुष्य नहीं कर सका। कुछ विद्वान इस कहानी का मूलाधार पद्म पुराण और कुछ महाभारत बताते हैं। महाभारत में आदि पर्व के ६८वें से ७४ वें अध्यायों तक में यह कथा कही गई है। परन्तु कालिदास की कथा में पुराण वर्णित कथा से अन्तर है। कालिदास ने कहानी का परिष्कार किया है। महाभारत के वर्णन के अनुसार दुष्यन्त का व्यवहार निष्ठुर और चरित्र हीन प्रतीत होता है। अभिज्ञान शकुन्तला में दुष्यन्त और शकुन्तला दोनों ही के चरित्र को गम्भीर प्रकट किया है। दुष्यन्त ने शकुन्तला से अपनी ओर से प्रेम भिक्षा नहीं मांगी है, प्रेम पत्र पहिले शकुन्तला ने लिखा है। कहानी के बीच में दुर्वासा के शाप की कल्पना और अंगूठी द्वारा उनके पूरे होने की बात कालिदास की अपनी मौलिक कल्पना है। कालिदास की शकुन्तला ६ वर्ष के पुत्र को लेकर नहीं, सगर्भावस्था ही में दुष्यन्त के पास जाती है। दुष्यन्त का विरह वर्णन भी कवि की अपनी कल्पना है। महाभारत की कहानी का अन्त रूखा है, कुछ अस्वाभाविक रूप भी है। परन्तु कालिदास ने अपनी प्रतिभा से उसे अतीव भावपूर्ण और मोहक बना डाला है।

कालिदास का भारत—कालिदास की रचनाओं से तत्कालीन भारत की भौगोलिक स्थिति तथा राजनीति एवं धर्मनीति पर बड़ा भारी प्रकाश पड़ता है। कालिदास को अपने समय के सम्पूर्ण भारत का कामरूम से गांधार तक एवं काम्बोज से कुमारी अन्तरीप तक का ज्ञान था। उसने हिमालय और हिन्द महासागर के प्रभावशाली वर्णन किए हैं। उसके वर्णन अत्यन्त मधुर और सरस हैं। रघु दिग्विजय मार्ग, मेघ मार्ग एवं पुष्पक की लङ्का से अयोध्या तक की यात्रा का वर्णन बहुत ही सजीव है। लताओं, वनों, नदियों के वर्णन में कालिदास की नैसर्गिक प्रतिभा का चमत्कार दिखाई देता है। रघु दिग्विजय में वह भारत की सीमा इस प्रकार वर्णन करता है कि—पूर्व में ब्रह्मदेश और बंगाल की खाड़ी, दक्षिण में भारत सागर, पच्छिम में अरब सागर, और पारस्यदेश; उत्तर में हिमालय तथा उसके पार चीन–तुर्किस्तान तथा उत्तरी कुरु आदि देश। भारत के सीमा प्रांतों के देश, पूर्व

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में वंग-कलिंग, दक्षिण में पाण्य राज्य। पच्छिम में केरल, अपरांत में गांधार, तथा उत्तर में काम्बोज और कामरूप। वह काबुल गांधार को भारत का प्रांत कहता है। ब्रह्मा-सीलोन को वह भारत का अंग नहीं मानता।

इन्दुमती स्वयंवर में जो अनेक राजाओं की सूची दी है, उससे पता लगता है कि उस काल में भारत में छोटे-बड़े बहुत राजा थे। स्वयंवर में आठ महा प्रतापी स्वतन्त्र नरेश आए थे। मगधेश्वर, अंगनाथ, अवनिपति, माहिष्मती-नरेश सूरसेनीय, कलिंगनाथ, पाण्ड्य नरेश और अयोध्यापति। इनमें अवन्ति और मगध के महाराज का बड़ा प्रताप था। छोटे-छोटे राजा तो बहुत थे। प्रांतों में सुह्य, वंग, कलिंग, पाण्ड्य; केरल, अपरांत, केकय, निषध, काम्बोज, उत्सव संकेत, कामरूप, गांधार, मगध, अंग, अवन्ति, अनूप, शूरसेन; विदर्भ, जनस्थान, कोशल, मिथिला, माल, दशार्ण, वत्स, ब्रह्मावर्त, कनखल, यज्ञभूमि और काश्मीर उल्लेखनीय हैं। इस सूची में बौद्धकालीन महा जनपदों में से काशी-वज्जी; मल्ल, चेदि, कुरु पाँचाल, अश्मक और मत्स्य इन आठ प्रांतों का वर्णन नहीं है।

नगरों में अलका, विदिशा, उज्जयिनी, दशपुर, पुष्यपुर, माहिष्मती, मथुरा, उरगपुर, मिथिला, नन्दि ग्राम, लेभा, साकेत, कुशावती और हस्तिनापुर ये चौदह नाम प्रमुख हैं। वह हिमालय की तराई में; विंध्य के दक्षिण में, जनस्थान में अनेक तपस्वियों के आश्रम के संकेत करता है। इन आश्रमों में यज्ञ धूम उठते रहते थे। उनमें एक-एक कुलपति रहते थे। स्त्रियों का स्थान ऊँचा था।

पर्वतों में हिमालय, मैनाक; मन्दर; महेन्द्र, मलय; दुर्दर, सह्य; विंध्य, चित्रकूट, माल्यवान्, गोवर्धन; रामगिरि, आम्रकूट, नीलगिरि, कनखल और कैलाश के उल्लेख मिलते हैं। नदियों में भागीरथी, मन्दाकिनि, महाकोशी, रेखा, वेगवती; सरयु, निर्वन्ध्या, शिप्रा, गभीरा, चर्मण्वती; सरस्वती, जान्हवी, कपिशा, कावेरी, लौहित्य, कालिंदी, गोदावरी और मालिनी आदि नदियों का उल्लेख मिलता है। नगरों में उज्जयिनी तथा गंगा यमुना संगम को उसने सर्वश्रेष्ठ बताया है। भारतीय ऋतुओं, पशु पक्षियों, तथा तत्कालीन आध्यात्मिकता-दार्शनिकता; भक्ति भावना का भी विशद वर्णन है।

अश्वघोष—संस्कृत साहित्य में 'अश्वघोष' का नाम बौद्ध धर्म सम्बन्धी काव्य ग्रन्थ के लेखकों में अग्रगण्य है। उसके बुद्धचरित और सौन्दरनन्द महाकाव्य प्रसिद्ध है। अश्वघोष का काल कनिष्क का काल कहा जाता है, जो ईसा की पहिली शताब्दी के लगभग है। इस कवि का एक और ग्रन्थ सूत्रालङ्कार भी बताया जाता है। अश्वघोष अयोध्या का निवासी ब्राह्मण था। उसकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था। आचार्य भदन्त, महावादी तथा महाकवि की उपाधि से वह अलंकृत था। इत्सिंग, जो ईस्वी ६७१ से ६९५ तक भारत में रहा, अश्वघोष को महान कवि और आचार्य कहता है। उसके काल में अश्वघोष के ग्रन्थों का बहुत मान था। कहा जाता है कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अश्वघोष के दो और ग्रन्थ बताए जाते हैं—मण्डी स्तोत्र गाथा और कल्पना मण्डी टीका। उसके कुछ अधूरे नाटक मध्य एशिया में पाए गए हैं।

अश्वघोष एक बहुज्ञ और बहुश्रुत आदमी था। उसने महाभारत और रामायण का उल्लेख किया है, सांख्य और वैशेषिक दर्शनों से उसका पूर्ण परिचय है। जैन तत्त्वों से और दर्शन से भी उसका परिचय है। परन्तु वह बुद्ध का पूरा भक्त है, सौदरनन्द महाकाव्य बुद्ध चरित से पहिले लिखा गया है। वह यद्यपि कालिदास की कोटि का कवि नहीं है, और उसने अन्तःकरण की प्रेरणा से विशुद्ध काव्य नहीं लिखे, प्रचारार्थ लिखे हैं। यह बात उसने सौदरनन्द के अठारहवें सर्ग के अन्तिम श्लोकों में स्पष्ट कही भी है। फिर भी उसकी कविता कालिदास से टक्कर लेती है। बहुत विद्वानों का मत है कि कालिदास ने अश्वघोष का अनुसरण किया है। अश्वघोष कवि की अपेक्षा दार्शनिक अधिक था। उसने शब्दालङ्कारों का बहुत प्रयोग किया है; कहीं-कहीं अन्त्यानुप्रास मिलाने की भी चेष्टा की है।

बुद्ध चरित की अभी जो प्रति उपलब्ध है उसमें केवल १७ सर्ग हैं। उसकी रचना का लक्ष्य वास्तव में एक महान आदर्श है। इस काव्य के केवल तेरह सर्ग ही अश्वघोष ने लिखे हैं। शेष सर्ग लगभग १०० वर्ष पूर्व अमृतानन्द नामक एक नैपाली पण्डित ने लिखे हैं। परन्तु ई० स० ४१४ और ४२१ के बीच जो बुद्ध चरित का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ है उसमें तथा बुद्ध चरित के तिब्बती अनुवाद में २८ सर्ग बताए गए हैं। बुद्ध चरित के प्रथम सर्ग में बुद्ध के जन्म और महत्त्व का वर्णन है। दूसरे में शुद्धोदन के द्वारा उन्हें अन्तःपुर में रखकर सभी सांसारिक भोगों में आसक्त रखने की चेष्टा का वर्णन है। यहीं यशोधरा से उसका विवाह सम्पन्न हो जाता है, और राहुल का जन्म होता है। तीसरे सर्ग में बुहद् व्याधिग्रस्त और मरे हुए मनुष्य को देखकर बुद्ध के हृदय में संवेग उत्पन्न होता है। चौथे सर्ग में शुद्धोदन के पुरोहित की आज्ञा से सुन्दरियों का उन्हें कामासक्त बनाए रखने के प्रयत्न की चर्चा है। पाँचवे सर्ग में अभिनिष्क्रमण का, और छठे में छन्दक के लौटने और सातवे में बुद्ध के तपोवन में प्रवेश होने का वर्णन है। आठवें सर्ग में शुद्धोदन और अन्तःपुर के स्त्री-पुरुषों का करुण विलाप है। नवे सर्ग में बुद्ध के राजगृह गमन; ग्यारहवें में मगधेश्वर से वार्तालाप, बारहवें में अराड नामक ऋषि से बुद्ध की भेंट, और तेरहवें में मार विजय की चर्चा है। चौदहवें में बौद्धधर्म की शिक्षाएँ तथा पन्द्रहवें और सोलहवें में धर्म चक्र प्रवर्तन तथा सत्रहवें में बुद्ध का निर्वाण वर्णित है। साहित्य की दृष्टि से यह शांत रस प्रधान काव्य है। शैली वैदर्भी है। भाषा सरल और अलकृत है। पर कालिदास जैसा भाषा परिष्कार नहीं है।

सौदरनन्द का विषय नन्द और सुन्दरी की वह कहानी है, जो महावग्ग और निदान कथा में कही गई है। काव्य का आरम्भ कपिलवस्तु नगरी के निर्माण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से होता है। आगे शुद्धोदन के गुणों–सुशासन, बुद्ध के सौतेले भाई नन्द का जन्म, सुन्दरी का रूप वर्णन और नन्द का उसके साथ विवाह वर्णित है। बुद्ध नन्द के द्वार पर भिक्षा के लिए आते हैं, और लौट जाते हैं। बाद में नन्द परिव्राजक बनता है। सुन्दरी विलाप करती है। नन्द फिर गृहस्थ होना चाहता है – तब बुद्ध नन्द को लेकर स्वर्ग की ओर जाते हैं, वहाँ अप्सराओं को दिखाते हैं। और उन्हें प्राप्त करने के लिए तपस्या करने का उपदेश देते हैं। फिर आनन्द उसे निर्वाण का रहस्य बताता है। तब वह बुद्ध के पास जा निर्वाण का मार्ग पूछता है, और निर्वाण पाने की चेष्टा करता है। इस काव्य में जीवन का द्वन्द खूब दिखाया है। आठ से अधिक सर्ग होने से यह महाकाव्य कहाता है।

हर्ष के तीन नाटक—कालिदास के १०० वर्ष बाद भारत के विजयी और दानी सम्राट् हर्ष ने रत्नावली, नागानंद और प्रियदर्शिका नाटिका लिखीं। इन नाटकों के लेखक ने निश्चय ही कालिदास से स्पर्धा की है। रत्नावली में एक प्रेम कथा है परन्तु उसमें कालिदास का रस नहीं है, नागानन्द एक बौद्ध नाटक है, इसमें हिन्दु देवता और देवियों को बौद्धों की पूज्य वस्तुओं के साथ हम मिश्रित पाते हैं। यद्यपि यह भी एक प्रेम कथा है, परन्तु इसमें भाव क स्थान पर घटना प्रधान हैं। नाटक के अन्तिम दो अङ्कों में कथा में बौद्ध भावना का पुट लगता है, और नायक जीमूत वाहन एक नाग के बदले दया द्रवित होकर अपना शरीर गरुड़ को अर्पण करता है। पर अन्त में देव कृपा से वह जीवित हो जाता है।

कहा जाता है कि ये नाटक भी हर्ष ने धन देकर कवियों से अपने नाम पर लिखाए थे।

भवभूति के तीन नाटक—भवभूति इस विद्वान् राजा के १०० वर्ष बाद उत्पन्न हुआ। यह विदर्भ का ब्राह्मण था, परन्तु कन्नौज के यशोवर्मन के राज दरबार में आ गया था, बाद में काश्मीर का राजा ललितादित्य इसे काश्मीर ले गया था। इस कवि के वर्णन में लालित्य और प्रकृति पर्यवेक्षण अपूर्व है। इसके तीन नाटक हमें मिलते हैं—१–मालती माधव, २–महावीर चरित्र, ३–उत्तर रामचरित। इस कवि में मौलिक सूझ हैं, और इसका उत्तर रामचरित विप्रलम्भ शृङ्गार का अप्रतिम नाटक है। मालती माधव में कवि की कोमल कल्पना के साथ ही उसका वर्णन सौष्ठव भी अपूर्व है। उसने प्रकृति और मानुषी मनोभावों को अद्वितीय ढंग पर प्रकट किया है। उत्तर रामचरित में वह वियोगिनी सीता का इस प्रकार वर्णन करता है:—

"परिपाण्डु दुर्बल कपोल सुन्दरं दधती विलोल कवरीकमाननम्। करुणस्य मूर्तिरिव वा शरीरिणी विरह व्यथेव वन मेति जानकी।"

और जब निर्वासिता चिर विरहिणी निर्दोष सीता पति के चरणों में प्रणाम करती है, उस पति को—जिसने उसे बिना अपराध घर से बहिष्कृत कर दिया था,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह भी गर्भाकाल की असहाय अवस्था में, तो यह चिरस्थाई प्रेम का पृथ्वी पर सबसे उत्कृष्ठ उदाहरण बन जाता है। मनुष्य की कल्पना ने सुशील प्रेम की अधिष्ठात्री और क्षमाशीला सीता से बढ़ कर उत्तम-पवित्र और देवतुल्य स्त्री मूर्ति भवभूति से प्रथम रची ही न थी।

भास, कालिदास और भवभूति का वर्णन करके हम संस्कृत के श्रेष्ठ नाटककारों का वर्णन पूर्ण समझते हैं। इस समय—जो संस्कृत साहित्य का सर्वोत्तम काल है, सैंकड़ों नाटक रचे गए, जिनमें बहुत लुप्त हो गए होंगे। श्री विल्सन ने सस्कृत के प्राप्त प्राचीन नाटकों की संख्या ६० गिनी है। अब भास के २२ नाटक मिलकर शतक के लगभग पहुंचते हैं। परन्तु इनमें पूर्वोक्त नाटकों के सिवा तीन नाम और प्रसिद्ध हैं--मृच्छकटिक, मुद्राराक्षस और वेणी संहार।

मृच्छ कटिक शूद्रक नाम के राजा का बनाया हुआ है, परन्तु यह भास के दरिद्र चारुदत्त की छाया है। दरिद्र चारुदत्त अभी पूरा नहीं मिला है, पर उसका उत्तराङ्ग मृच्छ्र कटिक में हम पाते हैं। यह नाटक छठी शताब्दी का बना है। इस की कथा भूमि भी उज्जयिनी है—परन्तु इसका नायक एक दरिद्र ब्राह्मण और नायिका एक उदार मना वेश्या है। यह नाटक एक वेश्या को प्रसिष्ठा की पराकाष्ठा की भूमि पर प्रादुर्भूत करता है। इस भूमिका का श्रेय भास को है या शूद्रक को यह अवश्य विचारणीय है। इस नाटक में त्रिदेव (ब्रह्म, विष्णु और शिव) का अस्तित्व है। बौद्धों के प्रति घृणा के भाव हैं। मनुस्मृति न्याय का प्रधान ग्रन्थ मानी गई है। उसमें प्राचीन काल के नागर जीवन की सच्ची झलक है, जिसमें द्यूत, राज्य प्रबन्ध, न्याय आदि की व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है।

मुद्रा राक्षस—मुद्रा राक्षस इसके बाद का नाटक है। इसका लेखक विशाखदत्त नाम का एक राजा है। इस राजा के सम्बन्ध में अधिक परिचय ज्ञात नहीं है। यद्यपि वह ई० पू० ३२० की घटना पर प्रकाश डालता है, परन्तु लिखा हुआ १० वीं शताब्दी के लगभग का है। संस्कृत साहित्य में एक यही ऐसा नाटक है—जो प्रेम कथा के स्थान पर गहरी कूट नीति की चाल पर आधारित है। चाणक्य कौटिल्य का एक गहन चरित्र चित्रण इस नाटक में हमें प्राप्त है।

वेणी संहार—वेणी संहार भट्ट नारायण का लिखा है। कहा जाता है यह ब्राह्मण उनमें से एक है जिन्हें आदिसुर कन्नौज से बंगाल में लाया था। नाटक की कथा भूमि महाभारत से ली हुई है। इसके वाक्य प्रभावशाली है, परन्तु भाषा कटु है।

भारवि—कालिदास की काव्य में स्पर्धा करने वाला कवि भारवि है। भारवि में कवि के सब महान् गुण हैं। यह सत्य है कि कालीदास की कल्पना; भावों की कोमलता और वर्णन की मनोहरता एवं मधुरता को वह नहीं पा सकता है, परन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विचार और भाषा की प्रबलता और उत्तेजना में वह कालिदास से आगे बढ़ गया है।

इसका केवल एक ही काव्य–किरातार्जुनीय, प्राप्त है। और वह संस्कृत का सब से उत्तेजक और समर्थ काव्य है। इसकी कथा भूमि महाभारत है। अर्जुन की तपस्या के वर्णन में कवि की भाषा का सम्पूर्ण ओज प्रकट हुआ है। भारवि के इस प्रसिद्ध काव्य में कोई मनोरञ्जक कथा या विलक्षण कल्पना नहीं है। पर उसके विचार और वाक्यों में वह प्रभाव और प्रबलता है, जिसने इस ग्रन्थ को प्राचीन हिंदुओं की अमर रचना में स्थान दिया है, यह कवि सातवीं शताब्दी में दक्षिण के चालुक्य राजा विष्णुवर्धन का सभा पण्डित था।

भर्तृहरि—भर्तृहरि के सम्बन्ध में चीनी यात्री इत्सिंग कहता है - कि वह शिलादित्य द्वितीय का समकालीन है। भर्तृहरि के शतकों में यद्यपि सम्पूर्ण हिन्दु तत्त्व हैं, फिर भी वह बौद्धों के प्रभाव से मुक्त नहीं। काव्य की सुन्दरता और तीक्ष्णता ने भर्तृहरि को चिरजीवी कर दिया है।

भट्टीकाव्य—भट्टीकाव्य के रचयिता भट्टी कवि सातवीं शताब्दी के हैं। इसमें रामायण की संक्षिप्त कथा है। परन्तु इस काव्य की विशेषता यह है कि वह व्याकरण सिखाने के लिए बनाया गया है। धातु और शब्दों के वे सब रूप जो याद रखने कठिन हैं; इस काव्य के उत्तम पदों में व्यक्त किए गए हैं। इस काव्य मे यद्यपि कालिदास और भारवि की सौन्दर्य भावना नहीं है, परन्तु शब्दों और वाक्यों की रचना पूर्ण और अद्वितीय है।

नैषध और माघ—हर्ष का नैषध और माघ का शिशुपाल वध, ये दो काव्य ११ वीं और बारहवीं शताब्दी के हैं। जब कि भारत राजपूतों के आधीन हो गया था। दोनों की कथा भूमि महाभारत है। नैषध में नल दमयन्ती की हृदय वेधक कथा है। राजशेखर इस कवि को बनारस का और विद्यापति बगाल का कहता है। काव्य की भाषा–व्यंग, अलङ्कार और भाव गम्भीर्य सब कुछ अद्भुत है।

शिशुपाल वध माघ कवि की एक मात्र प्राप्त रचना है। भोज प्रबन्ध के अनुसार इसे धार के राजा भोज का समकालीन तथा ग्यारहवी शताब्दी का कहा जाता है। इस कवि की रचना में अर्थ गाम्भीर्य, उपमा और पद लालित्य तीनों का समावेश है, तथा यह प्रसिद्ध है— नव सर्गेगते माघे नवशब्दो न विद्यते।

अर्थात् माघ के नौ सर्ग पढ़ने पर संस्कृत साहित्य का कोई नया शब्द अपरिचित नहीं रह जाता। यह कवि गुजरात का था।

गीत गोविन्द—संस्कृत भाषा का एक मात्र गेय काव्य जयदेव का गीत गोविंद है—जयदेव १२ वीं शताब्दी में बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन की सभा में था। इसमें राधा कृष्ण की वासना का प्रभावशाली और अप्रतिम शब्द चित्रण है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२—कथा साहित्य

जातक कथा--भारतीय कथा साहित्य चिर परिचित हैं । सबसे प्राचीन कहानियाँ हमें जातक ग्रन्थों में मिलती हैं। जिनका समय ईसा से तीन शताब्दि प्रथम है। इनमें से बहुतों का प्रचार योरोप में हो चुका है ।

पञ्चतन्त्र और उसके अनुवाद--पञ्चतन्त्र की कहानियां संस्कृत गद्य में संकलित की जाने के पूर्व सम्भवतः कई शताब्दियों से भारत में प्रचलित थीं । इस ग्रन्थ का फार्सी अनुवाद नौ शेरवाँ के राज्यकाल में ई० स० ५३१–५७२ में हुआ । इससे यह तो निश्चय है कि यह ग्रन्थ पांचवीं–छठी शताब्दी में अवश्य बन गया था । फार्सी से इसका अनुवाद अरबी में, और अरबी से ई० स० १००० के लगभग यूनानी में, तथा यूनानी से लैटिन में अनुवाद हुआ। हिब्रू और स्पेनिश भाषा में इसका अनुवाद तेरहवीं शताब्दी के मध्यकाल में हुआ। और जर्मन भाषा में १५ वीं शताब्दी में। इसके बाद योरोप की भिन्न २ भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ ।

अब आप छटी शताब्दी से ७वीं शताब्दी की ओर आइए—तो आप देखेंगे कि संस्कृत गद्य और पद्य दोनों में बनावटी भाषा और भड़कीले वर्णन बढ़ गए हैं । दण्डी ने ७वीं शताब्दी में अपना दश कुमार चरित लिखा, और इसकी भाषा काफी अलँकृत है ।

परन्तु अलंकार और समासों की बहार तो आपको बाण भट्ट की कादम्बरी में देखने को मिलता है। जो शिलादित्य द्वितीय और हर्षवर्धन की सभा का राज पण्डित हैं। इसी ने रत्नावलि नाटक और हर्ष चरित भी लिखा है। यह ब्राह्मण कवि नाटककार और अभिनेता संस्कृत की अलंकृत भाषा लिखने में सब कवियो से आगे बढ़ गया है ।

वासवदत्ता—सुबन्धु ने 'वासवदत्ता' गद्य काव्य इसी काल में लिखा। यह कवि भी इसी राजा के राज्य में था। इन संस्कृत उपन्यासों में प्रारब्ध भोग तथा घटना वैचित्र्य का उत्कर्ष है ।

वृहत्कथा—वृहत्कथा–पैशाची भाषा में गुणाढ्य कवि ने लिखी थी। उसी के आधार पर १२वीं शताब्दी में काश्मीर के पण्डित सोमदेव ने काश्मीर की रानी सूर्यवती को उसके पोते हर्ष देव की मृत्यु पर जी बहलाने के लिए संक्षिप्त करके संस्कृत में लिखा था। जो 'कथा सरित सागर के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ की भूमिका में वह कहता है–कि इन कथाओं को पहले पहल पाणिनि के समालोचक और मौर्य चन्द्रगुप्त के मन्त्री कात्यायन ने कहा था, और एक पिचाश ने उन्हें सुनकर दक्षिण भारत के कवि गुणाढ्य को सुनाया था, जिस पर उसने पैशाची भाषा में उन्हें लिखा था।

इस पुस्तक की सारी कथाएँ लगभग विहार उज्जैन–मगध और उत्तरप्रान्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के आस पास के राजाओं और मनुष्यों से सम्बन्धित है। सोमदेव की कथा सरित्सागर १८ भाग और २४ अध्यायों में विभक्त है। और उसमें प्रायः भारत में प्रचलित सब दन्त कथाएँ आ गई हैं। इनमें बहुत सी महाभारत–रामायण–यन्त्र तन्त्र, वैताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी की कहानियाँ है, इन कहानियों से गृहस्थ जीवन एवं चरित्र तथ चाल व्यवहार का पता लगता है।

हितोपदेश—हितोपदेश पञ्च तन्त्र के एक अन्श का संग्रह है! ग्यारहवीं शताब्दी में क्षेमेन्द्र ने वृहत्कथा मंजरी लिखी। इसी प्रकार वैताल पञ्चविंशति, सिंहासन द्वात्रिंशिका और शुक सप्तति नामक कथा ग्रन्थों का निर्माण हुआ।

कुमारदास—कुमारदास ने सातवी शताब्दी में जानकी हरण महाकाव्य लिखा। यह सिंहल देश वासी थे। त्रिविक्रम ने ९ वीं शताब्दी में नलचम्पू लिखा। राजशेखर ने दसवीं शताब्दी में प्राकृत में कर्पूर मंजरी लिखा। प्रचण्ड पाण्डव, बाल रामायण आदि नाटक भी इसी के लिखे हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक कवि हुए, जिन्होंने इस काल में संस्कृत साहित्य का भण्डार भरा। भवभूति के बाद इन कवियों की शैली में कृत्रिमता आती गई। और संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत की ओर ध्यान अधिक गया। इस काल की कविता में सहज सौन्दर्य के स्थान पर अलंकार श्लेष अधिक होता गया।

इतिहास ग्रन्थ—इस काल में कुछ इतिवृत्त भी लिखे गए। वाण ने हर्ष चरित लिखा। कन्नौज के यशोवर्मन के काल में वाक् पतिराज ने प्राकृत में 'गउड़ वट्ठी' नामक ग्रन्थ लिखा। यशोवर्मा के गौड़ विजय का वर्णन इसमें है। विल्हण ने बारहवीं शताब्दी में चालुक्य विक्रमादित्य का वृतान्त 'विक्रमाँक देव चरित लिखा। ग्यारहवीं शताब्दी में पद्मगुप्त ने मालव राज, सिन्धुराज का चरित 'नवसाहसांक' नाम से लिखा। वल्लाल ने राजा भोज का चरित 'भोज प्रवध' लिखा, तथा कल्हण ने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'राज तरंगिणी' लिखी; जिसमें काश्मीर का क्रमवद्ध इतिहास है।

वृत्त प्रशस्ति काव्य—जयानक ने 'पृथ्वीराज विजय' चौहान पृथ्वी राज की प्रशंसा में, और हेमचन्द्र ने 'कुमार पाल चरित' चालुक्य कुमार पाल की प्रशंसा में लिखा। जो १२ वीं शताब्दी का ग्रंथ है। सोमेश्वर कृत 'कीर्ति कौमुदी'। अमरसिंह कृत 'सुकृत कीर्तन' जयसिंह सूरिकृत, हम्मीर मदमर्दन, मेरुतुंग कृत 'प्रवन्धचिंतामणि' राजशेखर कृत, चतुर्विंशति प्रवन्ध, नय चन्द्र सूरि कृत 'हम्मीर महा काव्य', आनन्द भट्ट कृत वल्लाल चरित, चन्द्र प्रभसूरि कृत, 'प्रभावक चरित' महत्त्वपूर्ण रचानाएँ हैं।

साहित्य–व्याकरण–कोश और दर्शन ग्रन्थ—अलंकार-शास्त्र में काव्य के भिन्न रसों की सूक्ष्म विवेचना की गई। छठी शताब्दी में भामह ने 'काव्यालंकार' लिखा। आठवीं शताब्दी में दण्डीवामन ने, आनन्द वर्धन ने नवीं शताब्दी में, और अभिनव गुप्त और मम्मट ने इसी युग में साहित्य ग्रन्थ रचे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्याकरण ग्रन्थों में सातवीं शताब्दी में जयादित्य पण्डित ने अष्टाध्यायी पर काशिका वृत्ति लिखी। जो महाभाष्य के बाद पाणिनि सूत्रों पर सबसे महत्त्व पूर्ण व्याख्या थी। भर्तृहरि के वाक्य प्रदीप; महाभाष्य दीपिका, महाभाष्य त्रिपदी नामक व्याकरण ग्रन्थ भी इसी काल में लिखे गए। शर्ववर्मा ने पाणिनि परम्परा से पृथक् अपना व्याकरण ग्रंथ 'कातन्त्र' लिखा। जिसका प्रचार भारत से बाहर बहुत हुआ। मध्य एशिया और वालिद्वीप में इसकी प्राचीन प्रतियाँ मिली हैं।

कोश ग्रन्थों में अमरकोश अमरसिंह ने इसी युग में लिखा था। जो इतना लोकप्रिय हुआ कि उस पर पचास से अधिक टीकाएँ लिखी गईं। जिनमें क्षीर स्वामी की टीका—जो ग्यारहवीं शताब्दी में लिखी गई, अधिक प्रसिद्ध है। अभिधान चिंतामणि, अनेकार्थ वैजयन्ती, अभिधान रत्नमाला, आदि अन्य भी कोष ग्रन्थ रचे गए। कामशास्त्र, संगीत, राजनीति आदि विषयों पर भी अनेक पुस्तकें इस युग में लिखी गई, जिससे संस्कृत साहित्य का भण्डार समृद्ध होता ही गया।

दार्शनिक ग्रन्थ--दर्शन शास्त्र इस युग में हिन्दु, जैन, बौद्ध तीनों ही सम्प्रदायों के लिखे गए। इससे साहित्य का यह अंग इस युग में विकास की चरम सीमा को पहुँच गया।

बौद्ध दर्शन--चौथी शताब्दी में बौद्ध विद्वान् असंग ने महायानोत्तर तन्त्र, सूत्रालङ्कार आदि ग्रन्थ क्षणिक विज्ञान के प्रतिपादन में लिखे। पाँचवीं शताब्दी में दिङ्नाथ ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रमाण समुच्चय लिखा। ये दोनों बौद्ध दार्शनिक इस युग के पूर्ववर्ती हैं। इस युग में धर्मकीर्ति ने सातवीं शताब्दी में प्रमाण वार्तिक और प्रमाण विनिश्चय लिखे जो बौद्ध-ससार में बहुत प्रतिष्ठित हुए, तथा इनका अनुवाद तिब्बती-चीनी भाषाओं में हुआ। असंग के विज्ञानवाद को इन्होंने तर्क से प्रतिपादन किया, और उसे परिष्कृत रूप दिया। शांतिरक्षित-कमलशील और ज्ञानश्री जैसे महान् बौद्ध दार्शनिकों ने भी अपने ग्रन्थ लिखे। यद्यपि वज्रयान के रूप में बौद्ध धर्म वाममार्ग की राह जा रहा था, पर ये विद्वान् दार्शनिक अत्यन्त योग्यता से दार्शनिक सिद्धांतों की विवेचना कर रहे थे। बौद्ध दर्शन के चार प्रधान सम्प्रदायों वैभाषिक सौत्रान्तिक-योगाचार और माध्यमिक के समर्थन में इस युग में विशाल साहित्य रचा गया।

हिन्दु-दर्शन—जैमिनी की मीमांसा पर दूसरी शताब्दी में उपवर्ष भवदास और शवर स्वामी ने वृत्तियां लिखी थीं। शवर स्वामी का शवर भाष्य मीमांसा पर प्रामाणिक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। आठवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में कुमारिल भट्ट ने इस पर वार्तिक लिखा। मण्डनमिश्र ने विधि विवेक और भावना विवेक नामक ग्रन्थ लिखे। वेदान्त सूत्रों पर भी विषद् भाष्य लिखे गए। जिनमें शङ्कर भाष्य अति प्रसिद्ध हुआ। शङ्कर के भाष्य में ब्रह्म ही की सत्ता मानी गई थी, जीव की नहीं। अतः आगे रामानुज ने (११४० ई०), मध्व (१२३८ ई०), निम्बार्क (१२५० ई०) और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वल्लभाचार्य ने (१५०० ई०) में वेदान्त सूत्रों की भिन्न २ व्याख्या मूलक भाष्य रचे। शंकर ने अद्वैत सिद्धांत प्रतिपादन किया था। रामानुज ने विशिष्टाद्वैत सिद्धांत स्थापित कर जीव-जगत-ईश्वर के दो रूपों की व्याख्या की। मध्वाचार्य ने ईश्वर और जीव की दो सत्ताओं का प्रतिपादन किया। उनका मत 'द्वैत' कहाया। निम्बार्क ने जीव और ईश्वर को पारमार्थिक दृष्टि से अभिन्न माना; पर व्यवहारिक दृष्टि से उसकी भिन्न सत्ता स्वीकार की। इस से उनके मत को द्वैताद्वैत कहते हैं। वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन किया। शंकर के भाष्य पर नवीं शताब्दी में वाचस्पति ने भामती टीका लिखी। अन्य वेदांत के ग्रन्थों में श्री हर्ष (१२ वीं शताब्दी) का खण्डन खाद्य, चित्सुखाचार्य (१३ वीं शताब्दी) की तत्त्व दीपिका, विद्यारण्य (१४ वीं शताब्दी) कीं पंचदशी और मधु सूदन सरस्वती (१६वीं शताब्दी) की अद्वैत सिद्धि प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे गए।

गौतम के न्याय पर एक प्राचीन भाष्य वात्स्यायन का था। जो ईसा की दूसरी शताब्दी में लिखा गया था। इस युग में न्याय पर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गए। उद्योतकर (६ ठी शताब्दी) वाचस्पति मिस्र (९ वीं शताब्दी); जयन्त भट्ट (९ वीं शताब्दी) उदयनाचार्य (१० वीं शताब्दी) ने अपने ग्रन्थ लिखे। तेरहवीं शताब्दी में गंगेश उपाध्याय ने 'नव्य न्याय' लिख कर तर्कशास्त्र को एक नया रूप दिया।

सांख्य योग दर्शनों पर भी तथा वैशेषिक पर अनेक ग्रन्थ रचे गए। आचार्य प्रशस्त पाद के वैशेषिक ग्रन्थ पर व्योमशिवाचार्य ने (आठवीं शताब्दी), उदयनाचार्य (दसवीं शताब्दी), श्रीधराचार्य (दसवीं शताब्दी) की टीकाएँ तथा वाचस्पति मिस्र की (नवीं शताब्दी) लिखी सांख्यदर्शन पर तत्त्व कौमुदी; और योगदर्शन पर भोज द्वारा लिखी भोजवृत्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रकार इस काल में प्राचीन आर्यदर्शन पर विषद विवेचना करके उसका अत्यन्त गौरव बढ़ाया गया।

जैनदर्शन—जैन-दर्शनों का आरम्भ उमास्वाति और कुन्द कुन्दाचार्य ने ईसा की प्रथम शताब्दी में किया था। आगे इस युग में सिंहसेन दिवाकर (पांचवी शताब्दी) समन्त भद्र (सातवीं शताब्दी), हरिभद्र (आठवीं शताब्दी), भट्ट अकलंक (८ वीं श०); विद्यानन्द (नवीं शताब्दी), हेमचन्द्र (ग्यारहवीं शताब्दी) तथा मल्लसेन सूरि (तेरहवीं शताब्दी) में विविध जैन दर्शनों की रचना की।

३—ज्योतिष

वेदाङ्ग ज्योतिष—ज्योतिष वेदों का अंग है। उसका लौकिक व्यवहार था, केवल समय को निश्चित रीति से जानना। आर्यों ने चन्द्रमा और सूर्य की गति जान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कर वर्ष गणना की थी; तथा २७ नक्षत्रों का पता लगा लिया था। ज्योतिष के अन्य तत्वों के साथ सूर्य तथा नक्षत्रों, ग्रहों का पारस्परिक तारतम्य उन्होंने जान लिया था—तथा वर्ष को बारह चांद्रमासों में बांट लिया था। चांद्र वर्ष को सौर वर्ष में मिलाने के लिए एक तेरहवां अधिक मास जोड़ लिया जाता था।[1]

वर्ष की छैः ऋतुओं के नाम ऋग्वेद में अनुक्रम से—मधु, माधव, सुक्त, सुचि, नभ, और नभस्य थे। तथा इनका सम्बन्ध भिन्न भिन्न देवताओं से था।[2] चन्द्रमा को भिन्न भिन्न नामों से उसकी परिस्थिति के अनुसार पुकारा जाता था। पूर्णिमा का चन्द्रमा राका कहा जाता था। नव चन्द्र के प्रथम दिन को 'सिनिवलि' कहते थे। नवीन चन्द्रमा को गुङ्गु कहते थे।[3] नक्षत्रों के हिसाब से भी चन्द्रमा की स्थिति थी।[4] इस प्रकार ऋग्वेद काल तक सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र और पृथ्वी के सम्बन्धों का ज्ञान हो चुका था।

उपनिषद् और ब्राह्मण काल में ज्योतिष विद्या में बहुत उन्नति हुई, और ज्योतिष एक प्रथक् विज्ञान बन गया। तथा उस समय तक राशि चक्र का अन्तिम रूप निर्धारित हो गया था। उन दिनों ज्योतिषियों को 'नक्षत्र दर्श' या गणक कहते थे। कृष्ण यजुर्वेद में २८ नक्षत्रों के नाम पूरे दिए हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा अथर्वण संहिता में इसके पीछे के नाम दिए हुए हैं, शतपथ ब्राह्मण में एक ऐसा वर्णन है कि नक्षत्रों के संयोग से जो चन्द्रमा की स्थिति होती है उनका नया रूप होता है। वहां लिखा है--कि वह कृत्रिका नक्षत्र में दो अग्निहोत्र कर सकता है, क्योंकि कृत्रिका नक्षत्र अग्नि के नक्षत्र हैं।[5] वह रोहिणी में भी अग्नि प्रज्वलित कर सकता है। क्योंकि प्रजापति ने प्रजा की इच्छा से रोहिणी में अग्नि जलाई थी।[6]

वह मृगशीर्ष में भी अग्नि जला सकता है, क्योकि मृगशीर्ष निस्सन्देह प्रजापति का सिर है ... वह फाल्गुनी में भी अग्नि जला सकता है। ये फाल्गुनी इन्द्र के नक्षत्र हैं, और इनका नाम भी उन्हीं के अनुसार है। क्योंकि इन्द्र का गुप्त नाम अर्जुन है और ये फाल्गुनी भी अर्जुन कहाते हैं।

इन उद्धरणों से पता चलता है कि होमाग्नि नक्षत्रों के अनुसार जलाई जाती थी। इसी प्रकार जो यज्ञ एक वर्ष तक होते थे, वे सूर्य की वार्षिकगति से स्थिर किए जाते थे। इस विषय में डाक्टर हांग जिन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण का अनुवाद किया था, लिखते हैं :—

---

१. ऋग्वेद १।२५।८
२. ऋग्वेद १।२।२६
३. ऋग्वेद ८।३।२०
४. ऋग्वेद १०।८५।१३
५. तैत्तिरीय ब्राह्मण ४।५ और शुल्क यजुर्वेद ३०।१०।२०
६. शतपथ ब्रा० २।१।२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बड़े बड़े यज्ञ प्रायः वसन्त ऋतु में किए जाते थे। जिसमें चैत्र वैशाख का महीना पड़ता था। ऐतरेय ब्राह्मण के चतुर्थ खण्ड से पता लगता है, कि सत्र जो १ वर्ष तक होता था—केवल सूर्य के वार्षिक मार्ग का अनुसरण था। उसके दो स्पष्ट भाग होते थे। प्रत्येक भाग में ३०। ३० दिन के छः मास होते थे। इन दोनों के बीच में विषुवत् अर्थात् सम दिन होता था, जो कि सम को दो भागों में बांटता था। इन दोनों अर्ध भागों के विधान बिलकुल एक ही थे, परन्तु दूसरे अर्ध भाग में वे उल्टे क्रम से किए जाते थे। इसके उत्तरायण होने से दिन का बड़ा होना, और दक्षिणायन होने से उनका छोटा होना प्रकट किया गया था। क्योंकि घटना बढ़ना ठीक हिसाब से होता था।

राशि चक्र—यह बात विचारणीय है कि राशि चक्र अन्तिम बार ब्राह्मण काल में ईसा से लगभग ११७७ वर्ष पूर्व ठीक किया गया था, डा० कोलब्रुक का मत है कि हिन्दुओं ने नक्षत्रों को अपने ही विचारों से ठीक किया था। और इसके पीछे वैदिक विधानों में, और नक्षत्रों के हिसाब से चन्द्रमा की स्थिति में जो घनिष्ट सम्बन्ध है उस पर ध्यान देने से यह निस्संदेह प्रमाणित होता है कि उनकी यह विद्या अपनी है।

चीन की सिउ प्रणाली—प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान् वायोट ने सन् १८६० में चीन की सिउ प्रणाली की उत्पत्ति चीन देश से लिखी है, और उसका यह मतलब निकाला है कि हिन्दु नक्षत्र और अरब मंजिल चीन से लिए गए थे। जर्मन के विद्वान लसन की भी यही सम्मति है। सन् १८६० में और ६१ में दो लेख प्रकाशित हुए थे,जो प्रो०वेवर के थे। इनमें उन्होंने चीन की सिउ और अरबों की मंजिल तथा नक्षत्रों के विषय में हिन्दुओं के आधुनिक सिद्धांतों से क्रम संख्या सीमावद्ध तारों, और दूरी की समानता में मिलती है। प्रो० वेवर ने नक्षत्रों की उत्पत्ति चीन से होने का खण्डन किया है। और सिद्ध किया है कि अरब मंजिल भी अरबों ने भारतियों से ली है। यही सम्मति श्री कोलब्रुक ने भी सन् १८०७ में स्थिर की थी। उन्होंने लिखा था कि हिंदुओं का 'क्रांति मण्डल' जान पड़ता है-उन्हीं का है, उसे अरब वालों ने निस्संदेह लिया है।"

अध्यापक वेवर को इस प्रकार चीनी और अरबी सिद्धांतों का खण्डन करके अपना यह सिद्धांत अवश्य स्थिर करना पड़ा—कि कदाचित् हिन्दु लोगों ने वेविलोन से यह प्रथा ली हो—परन्तु असीरियन विद्वानों को वेविलोन ग्रन्थों में राशि चक्र का पता नहीं मिलता।

नक्षत्र—अध्यापक मैक्स मूलक ने इस विषय में लिखा है—"२७ नक्षत्र जो कि भारत वर्ष में एक प्रकार के चाँद्र राशि चक्र की भांति चुने गए थे, वे वेविलोन से आए समझे जाते थे। परन्तु वेवलियन का राशिचक्र सौर्य है, और वहां के शिलालेखों में-जिनसे कि बहुत सी बातें प्रकट हुई हैं। बार-बार खोज करने पर भी चांद्र राशिचक्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का कोई चिह्न तक नहीं मिला। इस पर भी यदि यही कल्पना की जाय, कि वेविलोन में चांद्र राशि चक्र पाया गया है तो भी जिस मनुष्य ने वैदिक ग्रन्थों और प्राचीन वैदिक सस्कारों को पढ़ा है—वह कदापि इस बात को सहज में न मान लेगा कि आकाश का यह सरल विभाग हिंदुओं ने वेविलोन देश वासियों से लिया था'।

ब्राह्मण काल में ही राशि चक्र को जानने के सिवा बड़ी घटनाओं की तिथि स्थिर करने के लिए आर्यों ने अयनान्तों को जाना। और वर्ष को महीनों में विभक्त किया। प्रत्येक महीने का नाम उस नक्षत्र के हिसाब से रक्खा—जिसमें कि उस महीने का पूर्ण चन्द्र होता था।

पाश्चात्य विद्वानों का मत है, कि चांद्र राशि चक्र ईसा से पूर्व पन्द्रहवीं शताब्दी में स्थिर किया गया था; और महीनों का नाम ईसा से पूर्व बारहवीं शताब्दी में रक्खा गया। ईस्वी सन् के उपरांत सौर राशिचक्र का ज्ञान ग्रीस देश वासियों से उद्धृत किया गया।

अठारह ग्रन्थों की सूची—परन्तु वास्तविक उन्नति जो इस विद्या में हुई, वह बौद्ध काल में हुई। यद्यपि अयन सम्बन्धी विन्दु, तथा चन्द्र राशि चक्र और अन्य कई बातें ब्राह्मण काल में जानी जा चुकी थीं, परन्तु फिर भी कोई खास ग्रंथ इस विषय पर निर्माण नहीं हुआ था। हिंदु ग्रन्थकारों ने १८ ग्रन्थों की एक सूची का जिक्र किया है, जिनमें बहुत से अब नहीं मिलते। वह सूची इस प्रकार है:—

१. पाराशर सिद्धांत	२. गर्ग सिद्धांत	३. ब्रह्म सिद्धांत
४. सूर्य ,,	५. व्यास ,,	६. वशिष्ठ ,,
७. अत्रि ,,	८. कश्यप ,,	९. नारद ,,
१०. मरिचि ,,	११. मनु ,,	१२. अङ्गिरस ,,
१३. रोमक ,,	१४. पुलिश ,,	१५. च्यवन ,,
१६. यवन ,,	१७. भृगु ,,	१८. सौनक या सोम सि०

पाराशर और गर्ग—अध्यापक विलसन का मत है कि हिंदु ज्योतिष ग्रन्थों में पाराशर सब से प्राचीन है। इसके उपरांत गर्ग है। पाराशर का ग्रन्थ संहिता के नाम से प्रख्यात है। उसका पौराणिक काल में खूब मान था—वराहमिहिर ने उसके उद्धरण दिए हैं। इन उद्धरणों को देखकर कहा जा सकता है कि उस ग्रन्थ के कुछ अंश गद्य थे। इसका बहुत सा भाग अनुष्टुप छन्द में हैं। आर्या छन्द भी हैं। भारत वर्ष के भूगोल के सम्बन्ध में इसमें पूरा एक अध्याय है। जिसे वराहमिहिर ने रूप बदल कर वृहत्संहिता के पन्द्रहवें अध्याय में ज्यों का त्यों रख दिया है। पाराशर ने पच्छिमी भारतवर्ष में यवनों का उल्लेख किया है, इससे स्पष्ट होता है, कि इस ग्रन्थ का समय ईसा से २०० वर्ष से अधिक का नहीं है।

गर्ग वह ग्रंथकार है जिसके द्वारा ईसा से २०० वर्ष पूर्व यूनानियों का भारत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर आक्रमण होने का पता चलता है । यूनानी यद्यपि म्लेच्छ समझे जाते थे—पर वह उनके विद्वानों का सम्मान करता है । उसने लिखा है— "यवन म्लेच्छ हैं पर वे ज्योतिष के पूर्ण विद्वान हैं, इस लिए उनका सत्कार ब्राह्मणों से अधिक ऋषियों की तरह किया जाता है ।

अपने ग्रन्थ के ऐतिहासिक अंश में गर्ग ४ युगों का उल्लेख करता है, जिसमें महाभारत युद्ध के समय से लेकर वह तीसरे युग की समाप्ति और चौथे की प्रवृति स्वीकार करता है । इसके बाद उसने मगध के शिशुनाग वंश और फिर मौर्य वंश के राजाओं का उल्लेख किया है । गर्ग कहता है--'इसके पीछे पापात्मा साहसी यूनानी साकेत (अवध) पांचाल और मथुरा को आधीन करके कुसुमध्वज (पटना) पहुँचेंगे । इसके बाद सब देशों में उलट पुलट हो जाएगी ।

ईसा से प्रथम दूसरी शताब्दी में वेक्ट्रिया के लोगों का पटने तक भारत वर्ष को जीत लेने का वर्णन बहुत ही महत्त्व पूर्ण है । डाक्टर गोल्डस्टूकट ने इस आक्रमण का वृतान्त पतन्जलि के ग्रन्थों से खोज कर निकाला है,और इसी आधार पर उन्हो ने पतन्जलि का जन्म काल नियत किया है । गर्ग आगे कहता है:--

"अजेय यवन मध्य प्रदेश में नहीं रहेंगे । उनमें एक प्रबल युद्ध होगा । तब इस युग के अन्त में यूनानियों का नाश होने पर प्रबल ७ राजा अवध में राज्य करेंगे" इसके बाद लुटेरे शकों का उल्लेख है, ये वे ही यूची लोग हैं–जिन्होंने ईसा से १३० वर्ष पूर्व वेक्ट्रिया के राज्य को नष्ट कर दिया था । इन्हीं शकों की लूटपाट के वर्णन में गर्ग का ग्रन्थ समाप्त हो जाता है । गर्ग का समय इन सब बातों को देखते ईसा से १०० वर्ष पूर्व निर्णय होता है ।

गर्ग के पाँच प्रसिद्ध सिद्धांत हैं—जिनके आधार पर छठी शताब्दी में वाराह-मिहिर ने अपनी पञ्चसिद्धान्तिका लिखी है । वे पांचों सिद्धांत ये हैं-- १--ब्रह्म पैतामह । २--सूर्य वा सौर्य । ३--वशिष्ठ । ४--रोमक और ५–पुलिश ।

पैतामह सिद्धांत--ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन ब्रह्म या पैतामह सिद्धांत का पूर्ण स्थान ब्रह्मगुप्त के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'स्फुट ब्रह्म सिद्धांत' ने ले लिया है, एलबरूनी ने इस स्फुट ब्रह्म सिद्धांत की एक प्रति ग्यारहवीं शताब्दी में पाई थी और उसने उसका उल्लेख अपने भारत वर्ष के वृतांत में किया है ।

सूर्य सिद्धान्त--सूर्य सिद्धांत प्रसिद्ध ग्रंथ है । परन्तु उस मूल ग्रन्थ में इतना परिवर्तन हुआ है; और वह बार बार इतनी बार संकलित हुआ है–कि मूलग्रन्थ से वह बहुत दूर हो गया है । मूल ग्रन्थ तो हमें अब उपलब्ध ही नहीं है । यह बौद्ध काल का ग्रन्थ है । और पौराणिक काल में उसने अपना वर्तमान स्वरूप प्राप्त किया है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वाराह मिहिर का भाष्यकार जो दसवीं शताब्दी में उत्पन्न हुआ है, उसने अपने समय के सूर्य सिद्धांत से छः श्लोक उद्धृत किए हैं—जो वर्तमान ग्रन्थ में नहीं मिलते। वर्तमान सूर्य सिद्धांत में १४ अध्याय हैं। और उसमें ग्रहों के मध्यमस्थान और वास्तविक स्थान, समय का विषय, सूर्य और चन्द्र ग्रहण, ग्रहों और नक्षत्रों के योग, ग्रहों और नक्षत्रों के प्रकाशवृत्तीय उदय और अस्त, चन्द्रमा की कला और उसके स्कन्धों के स्थान, सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति, ज्योतिष सम्बन्धी मन्त्रों के बनाने की रीति, जगत की उत्पत्ति और भिन्न भिन्न प्रकार के समयों का उल्लेख है।

वशिष्ठ सिद्धांत—एलवरूनी वशिष्ठ सिद्धांत को विष्णुदत्त का बनाया बताता है। परन्तु ब्रह्मगुप्त का कहना है कि यह ग्रन्थ प्राचीन था—विष्णुदत्त ने शोधा था। आज कल वशिष्ठ नाम से जो ग्रन्थ वर्तमान है–वह आधुनिक है।

रोमक सिद्धांत—रोमक सिद्धांत को ब्रह्मगुप्त और एलवरूनी दोनों ही ने श्री सेन का बताया है--परन्तु आज कल जो रोमक सिद्धांत मिलता है, उसमें ईसा की जन्म पत्री, बावर के राज्य का वर्णन, तथा अकबर के सिन्ध विजय का वर्णन आदि है।

पुलिश सिद्धांत--पुलिश सिद्धांत भी एलवरूनी को मालूम था, और उसने उसे यूनानी पोलस का बनाया हुआ बताया है। प्रो० वेवर का मत है—कि यह पोलस वही है, जो पोलस एलेजन्ड्रीनस के नाम से प्रख्यात है, और जिसने इस्तगाज नामक ज्योतिष ग्रन्थ लिखा था।

डा० कोलब्रुक-जो हिन्दू ज्योतिष को अध्ययन करने वाले प्रथम योरोपियन हैं-वे उत्तरकालीन के ज्योतिष ज्ञान के सम्बन्ध में लिखते हैं:--

"हिन्दुओं ने समय को निश्चित करने के लिए जो ज्योतिष शास्त्र बनाया था–उसने निस्संदेह बहुत प्राचीन समय में ही कुछ उन्नति कर ली थी। उनके सामाजिक और धर्म सम्बन्धी पञ्चांग मुख्यतः चंद्रमा और सूर्य के अनुसार होते थे। परन्तु वे केवल इन्हीं के अनुसार नहीं थे। जो उन लोगों ने चन्द्रमा और सूर्य की गति को ध्यान–पूर्वक जान लिया था और ऐसी सफलता प्राप्त की थी कि उन्होंने चन्द्रमा का जो युति भगण निश्चय किया था, जिससे कि उनका खास सम्बन्ध था, वह यूनानियों की अपेक्षा विशेष शुद्ध है। उन्होंने क्रांति वृत्त को २७ या २८ भागों में विभक्त किया है जो कि स्पष्ट चन्द्रमा के दिन की संख्या से जाना गया है, और यह सिद्धांत जो उन्हीं का निर्माण किया हुआ जान पड़ता है निस्संदेह अरब के लोगों से लिया गया था। स्थिर तारों को देखने के कारण उन्हें उनमें से सब से प्रसिद्ध तारों की स्थिति का ज्ञान हुआ, और धर्म सम्बन्धी कार्यों के लिए तथा मिथ्या विश्वास के कारण उन्होंने उन तारों के सूर्य के साथ उदय होने को तथा अन्य बातों को जाना।"

अन्य तत्त्वों के साथ सूर्य–ग्रहों तथा नक्षत्रों की पूजा उनके धर्म सम्बन्धी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परिज्ञान में एक मुख्य बात थी, जिसका उपदेश वेदों में किया गया है। और वे धर्म के कारण इन नक्षत्र आदि को निरन्तर ध्यान पूर्वक देखने के लिए वाध्य हुए। वे सब से भड़कीले मुख्यग्रहों से विशेष परिचित थे, और उन्होंने अपने पवित्र और सामाजिक पञ्चाङ्ग के निश्चित करने में सूर्य और चन्द्रमा के सहित वृहस्पति का काल ६० वर्षों के प्रसिद्ध चक्र के रूप में रक्खा है।

यह बात पीछे कही जा चुकी है कि सूर्य राशि चक्र यूनानियों से लिया गया है। हिन्दुओं के राशि चक्र के बारह भाग करने और प्रत्येक भाग को उन्हीं पशुओं के चित्रों से अङ्कित करने के तथा उन्हीं अर्थ के नामों से पुकारने से जैसा कि यूनानी लोग करते थे—इसमें बहुत कम सन्देह रह जाता है कि सन ईस्वी के उपरांत हिन्दुओं ने यूनानियों से ज्योतिष की बातें बढ़ाई थी।

आर्य भट्ट—आर्य भट्ट पौराणिक काल में ज्योतिष और बीजगणित का पहिला हिंदु ज्योतिषाचार्य है। उसका जन्म ४७६ ईस्वी में हुआ। उसने आर्य-भट्टीय ग्रंथ लिखा, जिसमें कि गीति का पाद, गणित पाद, कालक्रिया पाद और गोलपाद हैं।

इस ग्रन्थ को डा०कर्न ने प्रकाशित किया है। इसमें इस ज्योतिषाचार्य ने पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने के सिद्धांत तथा सूर्य और चंद्र ग्रहणों के सच्चे कारण का समर्थन दिया है। यद्यपि उसके समकालीन विद्वान् ग्रहण के सम्बन्ध में उसके विचार से सहमत हो गए थे। कालिदास ने रघुवंश (१६।४०) में एक उपमा देते हुए कहा है—जो वस्तु वास्तव में पृथ्वी की छाया है उसे लोग चन्द्रमा की अपवित्रता समझते हैं।' गोलपाद में आर्यभट्ट ने सौर राशि चक्र के बारहों भागों के नाम दिए हैं। आर्यभट्ट ने पृथ्वी की परिधि की जो गणना की है—यानी चार चार कोस के ३३०० योजन, वह लगभग ठीक है।

आर्यभट्ट का जन्म पाटली पुत्र में हुआ था, और उसने छठी शताब्दी के प्रारंभ में अपने ग्रन्थ लिखे हैं। इस शताब्दी में विद्या की उन्नति ने प्रतापी विक्रमादित्य के कारण बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की थी।

वराह मिहिर—आर्यभट्ट के बाद वराहमिहिर का समय आता है, जो अवन्ति में उत्पन्न हुआ था। वह आदित्य दास का पुत्र था, जो स्वयं ज्योतिषी था। एलबरूनी की राय में उसका समय ५०५ ईस्वी है। यह विक्रमादित्य के नवरत्न में था—डा० भाऊदाजी उसकी मृत्यु का सन् ५८७ अनुमान करते हैं।

उसने अपनी प्रसिद्ध पंचसिद्धांतिका में उन्हीं पाँच प्राचीन सिद्धांतों को संकलित किया है; जिन का उल्लेख हम पीछे कर आए हैं।

वराहमिहिर की वृहत्सहिता—वराहमिहिर ने 'वृहत्संहिता' भी लिखी है। जिसे डा० कर्न ने सम्पादित किया है। इस ग्रन्थ में भिन्न भिन्न विषयों पर पूरे १०६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अध्याय हैं। पहले बीस अध्यायों में सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी और ग्रहों का वर्णन है। १२ वें से २९ वें तक वृष्टि, हवा, भूचाल उल्का; इन्द्रधनुष, आँधी, वज्र आदि का विषय है। ४० से ४२ तक ग्रहों और वनस्पतियों का, तथा भिन्न ऋतुओं में प्राप्त होने वाली व्यापार की सामग्रियों का विषय है। अध्याय ४३-६० तक बहुत सी फुटकर बातों का तथा घर बनाने, बगीचे लगाने, मन्दिर मूर्ति, आदि का विषय है। अध्याय ६१ से ७८ तक में भिन्न २ पशुओं और मनुष्यों तथा स्त्रियों आदि का विषय है। अध्याय ७९ से ८५ तक रत्न और सामग्री आदि का वर्णन है। अध्याय ८६ से ९६ तक सब प्रकार के शकुनों का वर्णन है। ९७ से १०६ तक फुटकर विषयों का वर्णन है। जिन में विवाह, राशि चक्र के भाग इत्यादि भी सम्मिलित हैं।

इस विशाल ग्रन्थ में ज्योतिष का उच्च ज्ञान तो है ही, पर साथ ही और बहुत से उत्तम और उपयोगी विषय भी हैं—जो इतिहास जानने वालों के बड़े काम के हैं। १४ वें अध्याय में छठी शताब्दी के भारत का पूरा भूगोल है। और उसमें बहुत से प्रांतों और नगरों का उल्लेख है। ४१ वें अध्याय में और ४२ वें अध्याय में वाणिज्य और शिल्प की वस्तुओं और वनस्पतिओं के बहुत से नाम हैं। जिनके द्वारा तत्कालीन सभ्यता की बहुत सी बातें जानी जा सकती हैं। ६१ से ६७ तक भिन्न २ प्रकार के पशुओं का उल्लेख है, और ७९ से ८५ तक भिन्न २ प्रकार की वस्तुओं का, हीरे से लेकर दांत साफ करने की कूंची तक का वर्णन हैं। ८५ वें अध्याय में भिन्न २ मूर्तियां तथा राम, वलि, आठ, चार व दो हाथों के विष्णु, वलदेव, कृष्ण और वलदेव के बीच एक देवी, साम्ब, चार मुख वाले ब्रह्मा, इन्द्र, शिव, और उसकी पत्नी, अरहंतो, देवता बुद्ध, सूर्य, लिंग, यम, वरुण और कुवेर, और हाथी के मुख वाले गणेश की मूर्ति बनाने के नियम हैं। ६० वें अध्याय में कहा गया है—भागवत लोग विष्णु की, मग सूर्य की, द्विज शिव की, ब्राह्मण ब्रह्मा की, शाक्य और नंगे जैनी दयालु और वीतरात देवता की पूजा करते हैं। इस ग्रन्थ से पता लगता है कि उस काल में सभी पन्थ वाले अपने २ मतानुसार पूजा उपासना करते थे।

ब्रह्म गुप्त—इस ग्रन्थ रत्न के बाद ६२८ ई० में ब्रह्म गुप्त ने अपना ब्रह्म स्फुट सिद्धांत लिखा है। इसमें २१ अध्याय हैं। प्रथम के १० अध्यायों में ज्योतिष की प्रणालियों का वर्णन है। जिसमें ग्रहों के स्थानों, सूर्य और चंद्र ग्रहण की गणना, चंद्रमा के स्कन्धों की स्थिति, ग्रहों और नक्षत्रों इत्यादि का उल्लेख है। इसके उपरांत के १० अध्यायों में स्फुट विषय हैं; अन्तिम अध्याय में स्फोरिक्स के विषय के लेख में ज्योतिष की प्रणाली का वर्णन किया है।

भास्कराचार्य—ब्रह्म गुप्त के बाद भारत में राज विप्लव का समय आया, इसके बाद जब राजपूतों का उदय हुआ—तब १११४ में प्रसिद्ध भास्कराचार्य उत्पन्न हुआ, जिसने सिद्धान्त शिरोमणि नाम का बड़ा भारी ग्रन्थ लिखा। जो कि ११५०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ई० में समाप्त हुआ था। इसके प्रारम्भ के भाग बीजगणित और लीलावती हैं, जो अङ्कगणित हैं। इनका अनुवाद योरोप की भाषाओं में हो चुका है, और गोलीय त्रिकोण मिति पर गोलाध्याय के अंश का विलकिन्सन ने अनुवाद किया है। जिसे गणित के प्रसिद्ध आचार्य वापूदेव ने सशोधन किया था। इस ग्रन्थ में गणित के ऐसे प्रश्न हल किए गए हैं—जो योरोप में १७वीं और १८वीं शताब्दि तक नहीं प्राप्त हुए थे। बीजगणित ने अद्भुत उन्नति कर ली थी। बीजगणित की ज्योतिष सम्बन्धी खोज और उनका रेखागणित सम्बन्धी प्रमाणों में प्रयोग करना हिन्दुओं का आविष्कार था, जिसकी सराहना यूरोप के गणिताचार्य आज भी करते हैं।

'स' को निकालना, जिसमें 'अ'; स'^{२} + एक वर्ग संख्या हो। इस प्रश्न को फ्रेमेट ने १७वीं शताब्दि में योरोप के बीजगणितज्ञों के पास भेजा था। अन्त में ह्यूलर ने इसे हल किया। और उसी बात को प्राप्त किया, जिसे १२वीं शताब्दि में भास्कराचार्य ने प्राप्त किया था। भास्कराचार्य ने एक प्रश्न को ठीक उसी तरह हल किया है—जिसे लार्ड ब्रोकर ने १६५७ में आविष्कृत किया था। इसी प्रश्न का हल जिसे सातवीं शताब्दि में ब्रह्मगुप्त ने किया था, करने का निष्फल उद्योग ह्यूलर ने किया।

रेखागणित--एक बात ध्यान देने योग्य है कि रेखागणित का प्रारम्भ मसीह से ८०० वर्ष प्रथम यज्ञ की रेखाओं के लिए प्रचलित हुआ था—वह बीजगणित और अङ्कगणित की उन्नति के काल में पिछड़ गया था, इसे उन्होंने जब यूनानियों को सिखाया था तो फिर पीछे उन्नत हुआ। कल्प सूत्रों में रेखागणित के सिद्धान्त थे। ई० पू० आठवीं शताब्दि में आर्यों ने यूनानियों को उसके मूल सिद्धान्त बताए थे। परन्तु जब वदिक वेदियों का बनना बन्द हो गया, तो रेखागणित का विकास भी समाप्त हो गया, और रेखागणित सम्बन्धी प्रश्न बीजगणित द्वारा हल किए गए। अरबी ग्रन्थकारों ने ईसा की आठवीं शताब्दि में हिन्दुओं के बीजगणित के ग्रन्थों का अनुवाद किया। उसके बाद योरोप उनसे परिचित हुआ। त्रिकोणमिति में भी हिन्दु ससार के सबसे प्राचीन गुरु थे। गणित शास्त्र में उन्हीं ने दशमलव प्रणाली निकाली थी जिसे अरब के लोगों ने सीख कर उसे योरोप वासियों को सिखाया।

४—गणित

गणित का आरम्भ—गणित शास्त्र के आरम्भ करने के लिए—मनुष्य के पास उस काल में शून्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। किन्तु क्या शून्य की कल्पना भी किसी के मस्तिष्क में यों ही आगई होगी? वह अपने चारों ओर नदी, वृक्ष; पर्वत, पशु पक्षी, जल, स्थल; स्त्री, पुरुष आदि न मालूम क्या-क्या देखता था, ऐसी दशा में उसे शून्य का ध्यान स्वयं क्योंकर आना सम्भव था। इस प्रश्न का समाधान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भले प्रकार से न हो सकने के अभाव में हो, यह कल्पना की जाती है कि 'अङ्क' निर्माण हो जाने के पीछे ही 'शून्य' की रचना की गई थी।[1]

विकास का क्रम, शून्य, अङ्क और संख्या—जिस तरह शून्य और अङ्कों में से किसी एक का प्राथक्य निश्चय पूर्वक जानना कठिन है, इसी तरह यह कहना भी कठिन है कि 'संख्यान' करना, अर्थात् बोलकर गिनना मानव जाति ने पहिले सीखा, अथवा 'अङ्कन' या लिखकर प्रकट करना पहिले शुरू न किया। कहा जाता है कि बोलना लिखने की अपेक्षा सरल और स्वाभाविक है, अतः मनुष्य ने पहिले संख्या का उच्चारण करना ही आरम्भ किया होगा, और जब लेखन कला का विकास होना आरम्भ हुआ था, तो उसने संख्याओं के लिए भी उन अक्षरों या चिन्हों की कल्पना की होगी, जिन्हें 'अङ्क' कहते हैं।

गणना का आरम्भ—आर्य लोग अक्षरों की कल्पना के प्रथम ही अङ्क गणना करना सीख गए थे। अनुश्रुति-क्रमीय इतिहास के अनुसार देव युग में शिव के पार्षदों को 'गण'[2] कहा जाता था। जिस का अर्थ यह होता है कि 'वह गिन लिया गया'। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है—कि शिव के अनुचर गिने हुए रहते थे, किन्तु ब्रह्मा तथा विष्णु के बिना गिने हुए। शायद शिव को अङ्क शास्त्र का आदिम आचार्य मानने के हेतु यही माना गया है। आगे चल कर यही 'गण' शब्द एक ऐसी सेना की संख्या के लिए नियत हो गया था, जिसमें २७ रथ, २७ हाथी, २१ घोड़े और १३५ पैदल होते थे। और इसके अधिपति को 'गणेश' कहते थे। किन्तु शिव के गणों के अधिपति को गणपति ही कहते थे। क्योंकि शिव के गण और आगे के सैन्य-शास्त्रीय परिभाषा के गण परस्पर भिन्न थे, अतः उनके अधिपति बोधक शब्द भी दो ही रखे गए—गणपति और गणेश। आगे चल कर ये दोनों शब्द पर्याय रूप से व्यवहार में आने लगे, और यह आदिम भेद भुला दिया गया।

गणित का वैज्ञानिक विवेचन—गणित-शास्त्र का वैज्ञानिक विवेचना के अनुसार आरम्भ यहीं से होता है। विष्णु पुराण और मत्स्य पुराण[3] से जाना जाता है--कि यज्ञ का आरम्भ त्रेता युग के आरम्भ में हुआ था। उसी समय से कृषि, वार्ता, वर्णाश्रम धर्म, राजनीति, नगर स्थापना, दुर्ग रचना आदि. अनेक कलाओं का परिष्कार हुआ था। और इन सब बातों में गणित की जितनी अनिवार्य आवश्यक्ता है, उसके देखते हुए यह मानना पड़ता है, कि गणित शास्त्र का आरम्भ काल भी यहीं से है

१—'शुनः संप्रसरणवा च दीर्घत्वमितियत्' के अनुसार कुत्ते का जम्भाई लेकर बढ़ने का नाम भी शून्य था. और निःसार वस्तु को भी शून्य कहते थे।

२—प्रमथे गणः' अमर कोषः प्रमथे रुदानुचरे इति माहेश्वरः।

३—विष्णु पुराण, अध्याय ६ अंश १, मत्स्य पुराण अ० १४२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यज्ञ के लिए अनेक प्रकार की यज्ञ वेदियाँ या यज्ञ कुण्ड बनाने पड़ते थे—जो आकृति और परिमाण भेद से बड़े विचित्र होते थे। वैदिक ऋषियों को जिस तरह अपने मन्त्रों की रक्षा की चिन्ता रहती थी, एवं उनकी रक्षा के लिए वे स्वरों और व्यञ्जनों की गिनती करने के उपरांत भी उनके क्रम की रक्षा के लिए अनेक प्रकार के जटा, वल्लभी, घन आदि पाठों की कल्पना करते थे। उसी तरह वे यज्ञ विधि को भी सब प्रकार से विधि पूर्वक सम्पन्न करने के लिए पूर्ण प्रयत्न करते थे। जिस शास्त्र में इन प्रयत्नों का उल्लेख किया गया है, उसे कल्प सूत्र कहा जाता है। ये कल्प-सूत्र भी अनेक हैं, एवं 'श्रौत' तथा 'गृह्य' भेद से दो प्रकार के हैं। उन्हीं में यज्ञ कुण्डों की रचना पूर्ति के नियम दिए हैं, जिनसे वैदिक काल के ऋषियों की गणितज्ञता का—विशेष कर के ज्यामिति सम्बन्धी गणितज्ञता का अनुमान होता है।

नाम संख्या—आरम्भ में मनुष्य ने अपने निकट के पदार्थों को विशिष्ट रूप देने के लिए प्रत्येक का कुछ न कुछ नाम रखा था, जो प्रायः किसी बाहरी पदार्थ के गुण-कर्म या स्वभाव की उपमा पर होता था। कदाचित् रंग (काला, पीला, नीला, हरा आदि) प्रथम वस्तु हो सकती है, जिसने मनुष्य को अपनी ओर आकृष्ट किया हो, और उनके आधार पर उसने अपने निकट के बन्धुओं, सम्बन्धियों आदि के नाम कल्पित किए हों, जैसे—कृष्ण, श्याम, नीलद्युति, नभस, हरि, श्वेत (श्वेत केतु), पीताम्बर आदि। किन्तु शीघ्र ही मनुष्य का ध्यान संसार के बाहिरी पदार्थों की एकता या अनेकता पर जाने लगा होगा, और जिस पदार्थ को वे संसार में एक देखते थे, उसी के नाम से एक का बोध कराने का क्रम स्वीकार कर लिया होगा। जैसे—चद्रमा एक दिखाई देता है, अतः एक का बोधक शब्द चन्द्र बना लिया गया, इसी प्रकार नेत्र या कर्ण को दो का बोधक, तथा हस्तपाद को भी दो का बोधक समझा होगा। दिशाओं की उपमा पर इस शब्द को दस का बोधक ठहराया। इस प्रकार की गिनती गिनने की प्रणाली सबसे प्राचीन, सब से मौलिक एव सबसे अधिक स्वभाविक थी। किन्तु इन शब्दों को न संख्या ही कह सकते हैं, और न अङ्क। इस प्रकार के एक शब्द के द्वारा ४९ तक की संख्या प्रदर्शित की जा सकती है।[1] किन्तु उर्वर-

---

१—संख्या बोधक शब्दों की सूची :—अभ्र, अम्बर, ख, छिद्र, दिव, नभस्, विपत्, (१) व्योम, गगन आदि आकाश वाची शब्द अज; इन्द्र; इला, कुक्ष्मा, चंद्र, धरणी, निशाकर; पृथिवी, भूमि, रूप, वसुधा, विधु, शशि, सित, रुच, सित, त्विट् आदि ईश्वर, भूमि तथा चंद्र वाचक शब्द (१) अक्षि, अश्वि, ईक्षण, दस्र, दृग्, पक्ष, वाहु; भुज, यम, यमल, युग्म, लोचन आदि। नेत्र, नाम; कृष्ण, सूर्य, पक्ष के वाचक, वाहु तथा अश्विनी कुमारों के पर्याय (२) अग्नि, गुण; ज्वलन,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मस्तिष्क आर्यों ने इस प्रकार के शब्दों को ही अंक में मान कर उन्हें स्थानीय मूल्य भी दिया। यह ठीक है कि न तो ये शब्द एक समय में ही तैयार हुए होंगे, और न स्थानीय मूल्य का नियम ही एक दिन में निश्चित किया गया होगा। भारत के गणित शास्त्र में संख्या न करने की यह प्रणाली अतिविचित्र है, और संसार भर में कहीं भी इस प्रकार की गणना नहीं देखी जाती। एक बार इकाई दहाई के अनुसार स्थानीय मूल्य निश्चय कर लेने के पश्चात् इसी प्रणाली के द्वारा गुणा, भाग, योग तथा ऋण की क्रिया बड़ी सरलता से की जा सकती है। सिद्धांत शिरोमणि, सूर्य-सिद्धांत, आर्य भट्टीय, ब्रह्म स्फुट सिद्धांत, पैतामह सिद्धांत आदि सब ही प्राचीन ग्रन्थों में इस पद्धति के द्वारा गणित का उपदेश किया गया है। किन्तु आर्यों का विकास युक्त मस्तिष्क अधिक काल तक इस प्रकार की नाम संख्या प्रणाली में आबद्ध नहीं रहा। शीघ्र ही उन्हों ने संख्या बोधक शब्दों की भी सृष्टि करली।

संख्या बोधक शब्द—यजुर्वेद के अध्याय १२ मन्त्र २४ में विषय संख्या (एक दो-तीन-पांच-सात) आदि तैंतीस तक गिनाई हैं। और २५वें मन्त्र में सम संख्याएं चार-चार की वृद्धि के क्रम से लिखी हुई हैं। इन मन्त्रों में आई संख्याओं के वही नाम दिए हैं, जो आज कल संस्कृत में प्रचलित हैं। इस से विदित होता है-कि ये नाम निर्माण करने से पूर्व नव तक के अंकों के नाम भी रच लिए गए थे। यजुर्वेद तथा ऋग्वेद में ऐसे मन्त्रों की कमी नहीं है, जहाँ ९ तक की सख्याओं के नाम आए हैं। अथर्व वेद के एक ही सूक्त में १० तक की संख्याएं क्रम से पढ़ी गई

त्रि; दहन, पावक, वह्नि, वीति होत्र, शिखि, द्रुतभुक्त आदि अग्नि वाचक शब्द (३) अनल, अम्बुधि, अवधि, जलधि, निगम, युग राम, वद्धि, वेद, श्रुति, सागर, आदि (४) इषु, वाण, मार्गण, विषय, शर, शिलीमुख; शायक (५) अङ्ग, ऋतु, तर्क, रस आदि (६) अद्रि, अग, अचल, ऋषि, तुरग, नग, पर्वत, महीधर, मुनि, शैल (७) आशा, इभ, उरग, कुञ्जर, खग, दिग्गज, द्विप, भुजग, वसु, हस्ति (८) अंक, गो, नन्द, रन्ध्र (९) ककुभ (१०) ईश, ईशान, रुद्र, शिव, शूलि (११) अर्क, इन, अरुण, प्रभाकर, रवि, सूर्य (१२) विश्व (१३) इन्द्र, जिष्णु (१४) तिथि (१५) भूप (१६) अत्यांट, धन (१७) अष्टि (२०) जिन, तीर्थङ्कर; सिद्ध (२४) तत्व (२५) ऋक्ष, ऋ नक्षत्र (२७) दशन, दन्त, रदन (३२) देव, सुर, अमर (३३) मरुत (४९)

स्पष्ट ही इस सूची में कुछ शब्द अत्यन्त नवीन हैं; इस लिए अनुमान होता है कि इस प्रणाली की गणना में पीछे तक वृद्धि होती रही है। थोड़े से विचार से ही नए और पुराने शब्द छाँटे जा सकते हैं। कुछ संख्या के लिए इस सूची में कोई शब्द नहीं हैं। किन्तु इतने शब्दों से ही गिनती सब हो सकती हैं जैसे—५१३७५७६४ = कृततुं मुनि पञ्चद्रि गुणेन्दु विषया— (सूर्य सिद्धांत)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh
State Museum LUCKNOW.

हैं।[1] इन मन्त्रों में १० तक संख्याएँ गिना कर आगे नहीं गिनाई हैं। इसका अर्थ यह है—कि ऋषि शून्य और उसके पश्चात् इकाई तथा दहाई का महत्व समझते थे। संख्याओं को एक नियत अन्तर से सारणी में लिखने से उनकी क्रम पूर्वक योग क्रिया, तथा गुणा की क्रिया भी सरलता से समझ में आ जाती हैं। यही बात उक्त यजुर्वेद के दो मन्त्रों में भी दिखाई है। चार की संख्या को अड़तालीस तक (अर्थात् १२ स्थान तक) क्रम से बढ़ा कर उक्त मन्त्र में बताया गया है-कि निरन्तर १२ बार जोड़ने से या १२ से गुणा देने से ४ की संख्या ४८ हो जाती है — ४ + ४ + ४ + ४ (बारह बार)=४८। ४ × १२=४८। इसी तरह ४८ − ४ ÷ ४ − ··· (बारह बार) = ० और ४८ ÷ ४ = १२। किन्तु २४ वें मन्त्र में केवल योग और ऋण का क्रम दिखाया है।

दस तक का गिनने का क्रम बहुत से सभ्य देशों में पाया जाता है। रोमन क्रम में भी १० तक अङ्क पाए जाते हैं, किन्तु आगे की सख्याएँ बनाने के लिए उन्हें नए-नए अङ्क बनाने पड़े हैं। जैसे—I II III IV V VI VII VIII IX और X लिख लेने के पीछे भी ५० के लिए L और १०० के लिए C तथा ५०० के लिए D और एक हजार के लिए M की कल्पना करनी पड़ी है। इससे आगे लिखने के लिए उन्हें इन्हीं अङ्कों को उल्टा या टेढ़ा लिख कर अपनी आवश्यकता पूर्ण करनी पड़ती हैं। किन्तु भारतीय ऋषियों के ये नव तक के क्रम पूर्वक अङ्क ससार भर की गणित करने के लिए यथेष्ट हैं, उन्हें इन शून्य तथा नौ अङ्कों के अतिरिक्त और कोई नया अङ्क नहीं रचना पड़ा था। वे पचास को ५ और शून्य के द्वारा, सौ को १ तथा दो शून्यों के द्वारा व्यक्त करते थे, इसी प्रकार पाँच सौ को ५०० तथा हजार को १००० लिखकर स्पष्ट कर देते थे। किन्तु आर्य ऋषियों के लिए ऐसा करना इसी लिए सम्भव हो गया था—कि उन्होंने दस स्थानीय गणना का आविष्कार कर लिया था। दश स्थानीय पद्धति को आज कल डेसीमल सिस्टम या दशमलव पद्धति कहा जाता है।

दशमलव प्रणाली—दशमलव शब्द का अर्थ है १०वाँ भाग या $\frac{१}{१०}$। किन्तु एक ही संख्या किसी का दशम भाग होकर दूसरी संख्या का दश गुणा भी हो सकती है। जैसे १० सौ का १० वां भाग, तथा १ का दश गुणा है। जिस पद्धति से हम १० को १०० का दसवां भाग भी तथा एक का १० गुणा भी दिखा सकते हैं उसे दशमलव पद्धति कहते हैं। इस पद्धति के अनुसार बाईं तरफ का स्थान गुणा का और दाहिनी

१—न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युचयते। न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते। नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युचते। तमिदं निगतं सहः स एष एक वदेक एव। सर्वेऽस्मिन्देवा एकवृतो भवन्ति।

(अथर्व वेद, काण्ड १३ अनुवाक ४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रफ का स्थान भाग का है। जैसे--५५५ की सख्या में बाईं तरफ के ५ से आरंभ कर पाँच का अङ्क दाहिनी तरफ को तीसरा है। इसका यह अर्थ हुआ कि यह एक की अपेक्षा तीसरे दशम स्थानीय भागांश के स्थान पर है, अर्थात् इस स्थान का मूल्य प्रथम बायें स्थान के पाँच की अपेक्षा १÷१०÷१०÷१० = $\frac{५}{१०००}$ है। यहां बाईं तरफ के पांच का मूल्य ५०० है। अतः इस दाहिनी तरफ वाले ५ का मूल्य = $\frac{५००}{१०००}$ ५· है दशमलव पद्धति में, जहाँ दोनों प्रकार के अङ्क लिखने होते हैं, अर्थात् पूर्णाङ्क और अशांक, वहाँ पूर्णाङ्क की समाप्ति पर एक बिन्दु रख कर तब दाहिनी तरफ को अङ्क लिखते हैं, और इस अड़चन को दूर करके सुविधा पैदा करने के लिए दशमलव पद्धति के दो भाग कर दिए गए हैं-एक तो पूर्णाङ्क पद्धति,जिसका क्रम बाईं ओर से आरम्भ होता है, अर्थात् अन्तिम बायां अङ्क इस पद्धति में प्रथम स्थानीय या इकाई कहलाता है, और दूसरी दशांशांक पद्धति, जिसका क्रम दाहिनी ओर को रहता है, तथा प्रथम स्थान को दशांश कहते हैं। प्रथम प्रकार की पद्धति को इकाई दहाई की पद्धति भी कहते हैं। दूसरे प्रकार की पद्धति का कोई विशेष नाम नहीं है परन्तु उसे भी उन्हीं शब्दों के 'अंश' बढ़ा कर पढ़ा जा सकता है, जैसे दहाई, दशांश, सैंकड़ा, शतांश, हजार, सहस्रांश आदि।

अङ्कानाम वामतो गति—इससे यह स्पष्ट है कि अङ्कों की गति दो प्रकार की हो जाती है, उल्टी और सीधी, या वृद्धि तथा ह्रास। वृद्धि का स्रोत स्त्री या शक्ति अथवा प्रकृति को ही ऋषि लोग अनुभव करते थे, और वह उसे वामांग भी इसी कारण कहते थे। फलतः वृद्धि-क्रम को उन्होंने वाम पक्ष दिया। और ह्रास पक्ष को दक्षिण। वामपक्ष को देव पक्ष भी कह सकते हैं, क्यों कि दक्षिण पक्ष या पितृ-पक्ष ह्रास का बोधक एवं देवपक्ष वृद्धि का बोधक है।

यह प्रत्यक्ष है कि प्रथम पद्धति का प्रचलन ही अधिक है। अतः उसके लिए ही यह सूत्र बनाया गया कि 'अङ्कानां वामतो गतिः'।

अङ्कों का विकास--आरम्भ में एक वस्तु के लिए एक चिन्ह, दो वस्तुओं के लिए दो चिन्ह, इसी प्रकार ९ वस्तुओं के लिए ९ चिन्ह बनाए जाते थे। किन्तु जहां किसी भी वस्तु के न होने का भाव प्रकट करना होता था=--वहाँ 'शून्य' की कल्पना की जाती थी। ये चिन्ह खड़ी या पड़ी (या —) रेखा से मिलते जुलते होते थे। भारतवर्ष के अङ्कों का विकास पड़ी रेखा के चिन्हों या अङ्कों से माना जाता है। पहिले ही शून्य या आकाश की कल्पना को अभाव के लिए ग्रहण करना कोई साधारण बात नहीं थी। आकाश में कोई भी वस्तु बिना किसी परिवर्तन के प्रवेश कर सकती है, इसी तरह किसी भी संख्या में से आकाश के स्थान में कोई भी अङ्क डाल दिया, उसमें केवल वही अन्तर पड़ेगा जो इस अङ्क के डालने से पड़ सकता था। यह अनन्त है, विस्तृत है। खाली स्थान को पूर्ण करने का काम बिना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उस स्थान का मूल्य बढ़ाए किया जा सकता है। किन्तु अङ्कों को ९ तक चला कर ही समाप्त कर देना एक ऐसा वैज्ञानिक सत्य है कि उसे समस्त संसार ने भारतवर्ष से ही सीखा है। भारतवासी संसार भर की सम्पूर्ण संख्याएँ इन नौ अङ्कों से ही तैयार कर लेते हैं। वास्तव में यदि देखा जाय तो नौ अङ्कों के लिए नौ प्रकार के चिन्हों के कल्पना करने में ही आर्यों ने अपना, विशेष कौशल दिखाया है। रोमन गणना में ९ तक की गिनती में आपको केवल तीन ही अङ्क अर्थात् I V और X प्राप्त होंगे, किन्तु आगे चल कर उन्हें पचास के लिए अलग (L) और १०० के लिए (C) और तथा पांच सौ और हजार के लिए कभी क्रम से D तथा M की कल्पना करनी पड़ी, किन्तु फिर भी गिनती पूरी नहीं होती। इस प्रकार रोमन लोगों ने अपने सात अङ्कों की सृष्टि से केवल हजार तक की गिनती पूरी की, किन्तु हिन्दु पद्धति के अनुसार कोई भी चार अङ्क इतना कार्य कर लेते थे। इस में भी कितने ही अङ्क बार-बार दुहराने पड़ते हैं, किन्तु हिन्दु अङ्क-पद्धति में यह बाधा भी नहीं है।

दशांश पद्धति—किन्तु हिन्दुओं की इस महत्ता का कारण उनकी वह दशांश पद्धति है—जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यह सर्व प्रथम भातीय पद्धति है। भारत वर्ष की भाषाओं के अतिरिक्त (जो संस्कृत का ही रूपांतर हैं) और किसी देश भाषा में प्रत्येक दश-दशोत्तर स्थानीय अङ्क के लिए स्वतन्त्र नाम नहीं हैं, और ये नाम इतने पुराने हैं—कि यजुर्वेद के अध्याय १७ मन्त्र २ में भी पाए जाते हैं—वे नाम ये हैं—एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, अर्बुद, न्युर्बुद, समुद्र, मध्य, अन्त, परार्द्ध। यहाँ ये १३ स्थानों के नाम हैं। संस्कृत के गणित सम्बंधी ग्रंथों में ये साधारणतः १२ सँख्या तक के लिए मिलते हैं।[1] किंतु बौद्ध ग्रँथों में ५३ स्थानों तक के भी नाम पाए जाते हैं। कदाचित् संसार के किसी राष्ट्र की भाषा में भी सात अङ्कों से अधिक की संख्या के लिए स्वतन्त्र नाम नहीं है, और साधारणतः सब राष्ट्रों की भाषा में इस प्रकार के चार नाम से अधिक नहीं पाए जाते, किन्तु उन नामों की संख्या ५ से अधिक कभी भी नहीं होती। अंग्रेजी में—जिसका आधार यूनानी और

१—लीलावती में ये १२ नाम दिए हैं—

एक दश शत सहस्रायुत लक्ष प्रत्युत कोटयः। अर्बुद मब्जंखर्वंनिखर्व महापद्म शङ्क स्यात्। जलधिश्चान्त्यं मध्यं पराद्धमिति दशोत्तर गुणाः।

किसी अन्य ग्रन्थ में ये १९ अङ्क भी लिखे हैं—

एक दश शतं चैव सहस्रमयुतं तथा।
लक्षञ्च नियुतञ्चैव, कोटिरर्बुद मेव च।
वृन्दः खर्वो नि खर्वश्च शंखः पद्मञ्च सागरः।
अन्त्यं मध्यं पराद्धयंञ्च दश वृद्धया यथा क्रमम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लैटिन भाषाएँ हैं। इकाई, दहाई, सैंकड़ा, हजार और दस लाख के लिए क्रम से One, Ten, Hundred, Thousand & Million ये पाँच नाम हैं। यूनानी में भी ऐसे स्वतन्त्र नाम पाँच ही हैं, और अन्तिम नाम मिरिषड से केवल १० हजार का बोध हो सकता है। यदि १४८४४३६८२१५५ संख्या को पढ़ा जाय, तो भारतीय पद्धति के अनुसार इसे इस तरह पढ़ेंगे—१ अन्त ४ मध्य ८ समुद्र, ४ न्युर्बुद ४ अर्बुद ३ प्रयुत ६ नियुत ८ अयुत २ सहस्र १ शत ५ दश और ५। अरब की पद्धति के अनुसार इसे १४८ हजार हजार हजार, ४ सौ हजार हजार, ४३ हजार हजार, ६ सौ हजार, ८२ हजार १ सौ ५५ पढ़ा जायगा। यूनानी पद्धति से एक हजार, ४ सौ चौरासी, दस हजार, दस हजार, चार हजार तीन सौ अड़सट दस हजार, दो एक सौ पचपन।

इससे आप अनुमान कर सकते हैं कि भारतीय पद्धति कितनी स्वाभाविक, सीधी और सुबोध तथा अनुक्रमिक है। अरब देश में भारत से इन ९ अङ्कों के पहुंचने से जिस प्रकार की गिनती प्रचलित थी, उसे हम आज कल भी फार्सी रक़मों के रूप में देखते हैं। किंतु वहाँ भी अधिकतर गिनतियों के लिए चिन्ह हैं, तथा बड़े परिमाण की संख्याएँ कदापि शुद्धता पूर्वक लिखी पढ़ी नहीं जा सकतीं।

वेदाङ्ग—इस प्रकार अङ्क, संख्या और उनकी दशमलव पद्धति स्थापित हो जाने के पीछे उन नियमों का आविष्कार किया गया था। जिनके आधार पर सम्पूर्ण गणित शास्त्र की स्थिति निर्भर है, और जिन्हें 'परिकर्माष्टक' के नाम से भारत की गणित पुस्तकों में लिखा गया है। यद्यपि प्राचीन ज्योतिष या गणित की पुस्तकें इस क्रम से या इतनी अधिक उपलब्ध नहीं होती हैं कि उनके आधार पर यह कहा जा सके कि इन नियमों की जानकारी किस क्रम से हुई थी, किन्तु ज्योतिर्वेदाँग एक ऐसा पुस्तक अवश्य उपलब्ध है, जिस से उस समय तक के खगोल और गणित-शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान का कुछ कुछ अनुमान हो सकता है। यद्यपि यह ग्रन्थ अति-प्राचीन काल का नहीं समझा जाता। किंतु इस से अधिक और ग्रंथ ऐसा पुराना इस समय उपलब्ध नहीं है—जिसमें गणित के सीधे साधे नियमों का ऐसी सुन्दरता से उपयोग किया गया हो।

इस ग्रंथ के श्लोक ८ के आधार पर, श्री सुधाकर द्विवेदी ने इस ग्रन्थ का रचना स्थान ३४° ४५″ पर (कहीं पेशावर के निकट) अनुमान किया है। इस के ७ वें श्लोक में धनिष्ठा के आरम्भ में विषव सम्पात के बदलने का भी स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। जिससे इस की रचना का समय कम से कम आज से ४ हजार वर्ष

पहिले अनुमान किया जाता है।[1] इस ग्रन्थ के रचयिता के विषय में दो मत हैं। प्रथम तथा पुराना मत यह है:—कि इसे 'लगध' नामक किन्हीं पण्डित ने लिखा था। ऐसे नाम काश्मीर के विद्वानों के प्रायः देखे जाते हैं। इस कल्पना का आधार 'आर्य ज्योतिषम्' का निम्नलिखित श्लोक है :—

प्रणम्य शिरसाकीलमभिवाद्य सरस्वतीम्। कोल ज्ञानं प्रवक्ष्यांमि लगधस्य महात्मनः॥

यह मगध कौन थे, कहां उत्पन्न हुए; आदि बातों का उल्लेख कहीं नहीं पाया जाता। इस ज्योतिर्वेदांग के

१—भिन्न भिन्न ग्रन्थों में उत्तरायण आरम्भ होने का समय या वसन्त समाप्त का नक्षत्र अलग-अलग इस तरह पाया जाता है:—

नाम ग्रन्थ	उत्तरायण का आरम्भ	वसंतारम्भ	दक्षिणायन का आरंभ	शरदारम्भ	आज से कितने वर्ष पूर्व
शतपथ ब्राह्मण	धनिष्ठा १/४	कृतिका ३/४	मधा १/२	अनुराधा १/४	मूल का ३ चरण
मैत्र्युपनिषद्	धनिष्ठा १/२	कृतिका १/२	मधा १/४	विशाखा ४ चरण	उत्तराभाद्र का दूसरा चरण
ज्योतिर्वेदांग	धनिष्ठा १/४	भरणी ४ चरण	आश्लेषा १/२	विशाखा १/२	आद्रा का पहला चरण
विष्णु पुराण	विशाखी ३ चरण	मेष का आदि अश्विनी १/४	कृत्तिका का प्रथम चरण	चित्रा के तीसरे चरण से	
आजकल	मूल का तीसरा चरण	उत्तरायण दूसरा चरण	मेष का आरम्भ	आद्री का पहिला चरण	उत्तराफाल्गुनी का चौथा चरण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नाम ग्रन्थ	उत्तरायण के आरम्भ का नक्षत्र	वसंतारम्भ का नक्षत्र	दक्षिणायन के आरंभ का नक्षत्र	शरदारम्भ का नक्षत्र	आज से कितने दिन पूर्व
* शतपथ ब्राह्मण	धनिष्ठा का चौथा चरण	कृतिका का तीसरा चरण	मघा का दूसरा चरण	अनुराधा का दूसरा चरण	५$\frac{१}{४}$ नक्षत्र = ५२५० वर्ष
÷ मैत्र्युपनिषद्	धनिष्ठा का दूसरा चरण	कृतिका का दूसरा चरण	मघा का प्रथम चरण	विशाखा का चौथा चरण	४$\frac{१}{४}$ नक्षत्र = ४७५० वर्ष
ज्योतिर्वेदांग	धनिष्ठा का पहिला चरण	भरणी का चौथा चरण	आश्लेषा का दूसरा चरण	विशाखा का दूसरा चरण	४$\frac{१}{२}$ नक्षत्र = ४५०० वर्ष
↑ वृहत्संहिता	मकर का आदि	(उत्तराषाढ़ का ती० चरण	पुष्य का १ चरण		२$\frac{१}{४}$ नक्षत्र = २२५० वर्ष
+ विष्णु पुराण	श्रवणा का दूसरा चरण	मेष का आदि व० (अश्विनी का दूसरा चरण	पुनर्वसु	तुल का आदि (चित्रा का तीसरा घरण)	२$\frac{३}{४}$ नक्षत्र = २७५० वर्ष
× आजकल	मूल का तीसरा चरण	उत्तराभाद्र का दूसरा चरण	आद्रा का प्रथम चरण	उत्तराफाल्गुनी का चौथा चरण	

सम्पाद बिन्दु की गति पश्चिम की ओर मध्यममान से प्रति १००० वर्ष में एक नक्षत्र के बराबर मानी गई है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रायः सब ही श्लोक 'याजुष ज्योतिष' में भी पाए जाते हैं, किन्तु उसके ग्रन्थकर्ता के विषय में 'याजुष ज्योतिष' में निम्नलिखित श्लोक प्राप्त होता है :—

पञ्च संवत्सरमयं युगाध्यक्ष प्रजापतिं ।
दिनर्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसाशुचिः ।।१।।
ज्योतिष । मानयनं पुण्यं प्रवक्ष्या म्यनुपूर्वशः ।
सम्मतं ब्राह्मणेन्द्राणां यज्ञकोलार्थं सिद्धये ।।२।।

यद्यपि ये दोनों श्लोक आर्य ज्योतिर्वेदांग में पाए जाते हैं, किन्तु उक्त लगध वाला श्लोक याजुष ज्योतिष में भी नहीं मिलता । इन दोनों श्लोकों के आधार पर श्री सुधाकर द्विवेदी शुचि नामक के किसी विद्वान् को इस पुस्तक का कर्ता ठहराते हैं । ज्योतिर्वेदांग के नाम से इस समय ये ही ४२ या ४३ श्लोक भिन्न-भिन्न नामों से किञ्चित पाठ भेद के साथ मिलते हैं, कहीं २ इन्हें आथर्वण ज्योतिष' कह कर भी संग्रह कर दिया गया है ।

इसमें लिखा है कि यज्ञों का काल जानने के लिए यह ज्योतिशास्त्र कहा जाता है । वेदों की उत्पति ही यज्ञों के लिए हुई है, और यज्ञों का विशेष फल अमुक-अमुक समय पर करने से प्राप्त होता है । अतः यज्ञ सम्बन्धी काल के निश्चय करने के लिए यह काल विधान शास्त्र रचा गया है । जैसे मोरों का भूषणं उसकी शिखा हैं, और सर्पों का भूषण उनकी मणि हैं । उसी तरह वेदांग सम्बन्धी शास्त्रों में गणित का स्थान शिर्ष स्थानीय है ।[1]

---

* कृत्रिका स्वादधीत । एता इ वै प्राच्यैर्दिशो न च्यवन्ते । सर्वाशा इवा अन्धनि नक्षत्राणि प्राच्यैर्दिशश्च्यवन्ते । २. १. १.

÷ मघाघ श्रविष्ठाद्यर्द्धा मैत्र्युपनिषद ।

↑ साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटाद्यं मृगादितश्चान्यत् । अ० ३ श्लोक २

+ मेषादो च कुलादौ च मैत्रेय विषुवं स्मृतम् ।।७४।।
सदा तुल्यमहोरात्रं करोति तिमिराहः ।
प्रथमे कृत्तिका भागे यदा भास्वांस्तदा शशिः ।
विशाखानां चतुर्थांशे मुनि तिष्ठत्यसंशयः ।।७६।।
विशाखानां यदा सूर्य चरत्यशं तृतीयकम् ।
तदैव विषुवाख्योऽयं कालः शास्त्रेमिधीयते ।।७८।।

× मर्यादा भाग २३, अङ्क ६, पृष्ट ३७३

१—वेदा हि यज्ञार्थमभि प्रवृताः कालानुपूर्वाविहिताश्च यज्ञाः ।
तस्मादिदं काल विधान शास्त्रं यो ज्यौतिषं वेति स वेद यज्ञान् ।।३
यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तरद्वद्वदाङ्ग शास्त्राणां गणितं मूर्धनि तिष्ठति ।।४

CC-0. Agamnigam Foundation. Digitized by eGangotri Research Foundation, Chandigarh

इन उद्धरणों से यह ज्ञात होता है कि वर्ष भर का पञ्चांग, काल गणना की आवश्यकता के लिए, केवल यज्ञों के उपयोग में आने की दृष्टि से ही आरम्भ में तैयार किया जाता था, क्योंकि वह कार्य बिना गणित के जाने हुए नहीं हो सकता था। अतः गणित-शास्त्र का महत्त्व व्याकरण, शिक्षा आदि अन्य वेदाङ्गों से अधिक स्वीकार किया जाता था।

वैदिक पञ्चाङ्ग—इस समय तक के प्राप्त हुए गणित शास्त्र के द्वारा जो पञ्चांग तैयार होता था वह पाँच वर्ष का होता था, तथा उसमें इतनी बातें लिखी होती थीं:—

पाँच वर्ष के समय को एक युग कहते थे। जिसका आरम्भ माघ शुल्क प्रतिपदा से होता था। युग के पांचों वर्षों के प्रथम और अन्तिम दिन गिन कर निश्चय किए जाते थे। युग वर्षों को चांद्र और सौर गतियों के साथ रखने के लिए एक युग में दो अधि मासों की व्यवस्था की जाती थी। वर्ष को सूर्य की गति के अनुसार उत्तरायण और दक्षिणायन में विभक्त करके प्रत्येक अयन को तीन तीन ऋतुओं में बाँट कर वर्ष में छः ऋतु मानते थे। पञ्चाङ्ग में दिखाया जाता था—कि कौन सा अयन किस तिथि को किस दिन और किस नक्षत्र में आरम्भ होगा ? चन्द्रमा और सूर्य की क्रान्ति के मार्ग को २७ नक्षत्रों में बाँटा गया था, और सूर्य की गणना भी उस नक्षत्र के नाम से होती थी जिसमें वह गमन करता हुआ जाना जाता था। 'राशि' शब्द इस पुस्तक में दो स्थानों पर आया है। किन्तु इसका अर्थ दोनों जगह वस्तु, पदार्थ या सख्या आदि है। ऋतुओं को मास और अर्ध मास में बाँट कर चांद्र तिथियों तथा पर्वों की कल्पना की गई थी। अयन के स्तम्भ में रात्रि दिन की वृद्धि और हानि बताने के लिए रात्रिमान और दिनमान पल या प्रस्थ में दिखाया जाता था, जिस के लिए 'जल घड़ी' बना ली गई थी। तिथि और नक्षत्र को स्पष्ट करने के लिए एक दो संस्कार विशेष भी किए जाते थे। सावन दिन को माध्यम मान कर चान्द्र तिथियों और नाक्षत्र दिनों में क्षयबृद्धि दिखाई जाती थी। सूर्य-वर्ष का मान बहुत कुछ ठीक २ जान लिया गया था। नक्षत्रों को क्रूर, और उग्र तथा शुभ इस तरह तीन भागों में बाँट कर यज्ञों को आरम्भ करने के लिए एक प्रकार के मुहूर्त शास्त्र की कल्पना भी की गई थी। किन्तु इन सबसे बढ़ कर अपनी गणित को ठीक ठीक रखने के लिए इन्हें 'वेध' भी किया जाता था। इस पञ्चांग में दिन मान के साथ-साथ तिथि मान, नक्षत्रमान और वार भी दिए जाते थे। इस प्रकार उस ध्रुवा पर वह पञ्चाङ्ग तैयार किया जाता था—जो इस छोटे से ग्रन्थ में उपलब्ध होता है।

ये सब बातें जानने के लिए इस वेदाङ्ग में जोड़ने; घटाने, गुणने और भाग करने के नियमों का उपयोग किया गया है, किन्तु, कई बातों के लिए त्रैराशिक तथा कुट्टकी गणित को भी काम में लाना पड़ता था। इस पुस्तक भर में सर्वत्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सख्यावाचक शब्दों का उपयोग स्वतन्त्रता पूर्वक किया गया है, केवल एक स्थान पर 'ऋतु' शब्द को छः के स्थान में उपयुक्त किया गया है, किन्तु इस शब्द का यह अर्थ सदिग्ध है—भाष्यकार- इस पर भिन्न २ मत लिख कर एक दूसरे का खण्डन करते हैं।

इस विवरण से हम अनुमान कर सकते हैं— कि उस काल में साधारण गणित सम्बन्धी ज्ञान के सहारे भारतवर्ष के ज्योतिषियों ने खगोल या ज्योतिःशास्त्र में कितनी अधिक उन्नति कर ली थी। इस वेदांग में मंगल आदि शेष ग्रहों का उल्लेख नहीं पाया जाता, तथा ग्रन्थ के अन्त में इसे—'सोम, सूर्य, स्तृ, चरित' सूर्य चन्द्रमा और नक्षत्रों के चरित (गति) का पुस्तक कहा गया हैं। तो भी वर्ष और महीनों के आरम्भ होने, तथा सूर्य आदि के उदय-अस्त का समय, दिन, ऋतु, अयन और मास का व्याख्यान हसमें दिया गया है। उस काल में पदार्थों के तोल की ही परिभाषा नहीं बन चुकी थी। अपितु समय के विभागों—घड़ी, पल, मुहूर्त, नाड़ी, आदि—की परिभाषा भी रच ली गई थी। तथा अंकों और संख्याओं का व्यवहार स्वतन्त्रता पूर्वक होता था।

वेद द्वारा सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन होने के समय की परीक्षा करने करने की परिपाटी वैदिक पञ्चांग बनाने वाले पुरोहितों या गणकों में निरन्तर जारी रही, यह बात इसी से स्पष्ट होती है—कि शतपथ, तैत्तिरीय, विष्णु पुराण, महाभारत तथा वृहत्संहिता आदि ग्रन्थों में भिन्न २ नक्षत्रों में सूर्य के अयन बदलने का उल्लेख पाया जाता है। इतना ही नहीं, किन्तु इस शास्त्र का अध्ययन करना गौरव पूर्ण समझा जाता था, तथा 'पित्र्यं'; 'राशि', 'दैव', 'निधि', और 'नक्षत्रविद्या' आदि गणित सम्बन्धी कई शाखाएँ बन चुकी थीं।[1]

सूर्य की गति के अनुसार वर्ष को १२ भागों या छः ऋतुओं में बांट कर यद्यपि प्रत्येक ऋतु (और मास के भी) सूर्य के देवताओं की कल्पना यद्यपि प्राचीन साहित्य में पाई जाती है।[2] किन्तु यह आश्चर्य है कि उन ऋषियों ने १२ राशियों में भी

१—स हो वाचर्ग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेद, सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराणं-पञ्चमं वेदानां वेद पित्र्यं राशि दैवं निधि ··· ··· ब्रह्म विद्या भूतविद्या क्षत्र-विद्यां नक्षत्र विद्याॐ।। सूर्य देवजन विद्यामेतद्भगवोऽध्येमि।

छान्दो० अध्याय १।२

पित्र्य विद्यां = पितृ यज्ञ करने के लिए मुहूर्त आदि जानने की विद्या। राशि विद्या २, अंक विद्या या राशियों की विद्या, दैव विद्या = सूर्य चन्द्र आदि की विद्या। निधि विद्या, खनिज विद्या = समय विभाग की विद्या या काल ज्ञान, नक्षत्र विद्या = तारे सम्बन्धी गतियों का ज्ञान आदि।

२—'संसार के संवत्' में वैदिक पञ्चांग का अत्यन्त विस्तार से वर्णन दिया गया है।

CC-0. Agamnigam Foundation. Digitized by eGangotri Siddhanta Gyaan Kosha Foundation, Chandigarh

आकाश मण्डल को विभक्त करने की कल्पना क्यों नहीं की। २७ नक्षत्रों में चन्द्रमा के चलने का उल्लेख ही ऋग्वेद के ८ वें मण्डल के तीसरे सूक्त में नहीं पाया जाता। किन्तु चन्द्रमा युक्त अमावस्या (सिनी वाली का उल्लेख भी यजुर्वेद में मिलता है। नक्षत्रों के नामों की पूर्ण सूची अथर्व वेद तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण के अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण में भी मिलती है। शतपथ ब्राह्मण के २, १, २ में भिन्न २ नक्षत्रों में यज्ञ आरम्भ करने के फलों की विवेचना की गई है। यजुर्वेद के ३० वें अध्याय के दसवें और तीसवें मन्त्र में क्रम से 'नक्षत्र दर्शम्' तथा 'गणक' शब्दों के द्वारा ज्योतिः शास्त्र जानने वालों का उल्लेख दिया गया है।

यद्यपि इस नक्षत्र चक्र को इस दशा में भी कोई कोई योरोप के विद्वान भारत वासियों की निजी खोज स्वीकार न करके यही कहते हैं—कि भारत वासियों ने इसे चीन, अरब, बैबीलोनिया अथवा और किसी देश से लिया है। किन्तु उनकी युक्तियों का अब तक पूरी तरह से खण्डन हो चुका है।

भारतीय गणित शास्त्र अर्थात् अंक गणित के विषय में भास्कराचार्य ने लिखा है—कि सम्पूर्ण गणित केवल त्रैराशिक का ही खेल है, विशेष कुछ नहीं। उल्लसदमलमतीदां त्रैराशिकमात्रमेव पाटी।[1]

परिकर्माष्टक—भारतीय पाटी गणित या अङ्कगणित का नमूना भास्कर की पाटी गणित या लीलावती, और आर्य भट्ट तथा श्री धरआदि अनेक विद्वानों के सिद्धांत ग्रन्थों के पाटी गणिताध्याय में देखा जा सकता है। भारतीय पाटी गणित में प्रथम चार नियमों (गुणा, भाग तथा जोड़ घटाने) का उन्नत करके वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल तक बढ़ाया गया है। यह गणित पूर्णाङ्क तथा भिन्नांकों में भी विकसित हुआ। इन कार्यों को 'परिकर्माष्टक' कहते हैं।

शून्य—सबसे महत्व-पूर्ण गणित का भाग वह है—जहाँ शून्य की विवेचना की गई है। वास्तव में शून्य की कल्पना भारतीय मस्तिष्क का एक उत्तअद्भुत कार्य है। भास्कर ने अपनी लीलावती में इसके सम्बन्ध में लिखा है :—

योगे खं क्षेप समं वर्गादौ खं खभाजितो राशिः।
खहरः स्यात् खगुणः खं खगुणश्चिन्त्यश्चशेष विधौ॥
शून्ये गुणके जाते खंहारश्चेत् पुनस्तदा राशिः।
अविकृत एव ज्ञेयस्तथैव खेनोनितश्च युत॥१-२

इसका अर्थ इस तरह समझिए:—

$५+० = ५$; $\sqrt{०} = ०$; $\sqrt[3]{०} = ०$; $५ \times ० = ०$; $०^2 = ० \times ० = ०$; $०^3 = ० \times ० \times ० = ०$; $५ - ० = ५$; $५ \div ० = \frac{५}{०}$।

१—बीज गणितम् पृष्ठ १७९, सन् १८८८ ई०।

किन्तु—इस प्रश्न को देखिए—किसी राशि को शून्य से गुणा किया। फिर उसे अपने आधे में जोड़ा, और उसे गुणा किया, तथा शून्य का भाग दिया। इस तरह उत्तर ६३ मिला; वह संख्या क्या है? न्यास ६३ ÷ ० = $\frac{६३}{०}$ ÷ ३ = २१। यह अपने अंक का ड्योड़ा है अतः वह संख्या १४ हुई।

प्रश्न के अनुसार यह इस प्रकार है:— $\frac{३(१४ \times ०) + \frac{१४ \times ०}{२}}{०}$

यहाँ आरम्भ में ही शून्य से १४ को गुणने पर शून्य आना चाहिए, तथा आगे प्रश्न ही नहीं बनता।

किसी संख्या को शून्य से भाग देने पर खहर ∝ लब्धि आती है, किन्तु यहां लब्धि ६३ स्वीकार की गई है।

शून्य के मूल्य के सम्बन्ध में प्राचीन भारत के गणित वेत्तातों ने यथेष्ट गम्भीरता से विचार किया है। यदि किसी संख्या को $\frac{१}{२}$ से गुणा करें, तो उसका अर्थ यह है—कि वह गुणा अपनी वास्तविक कीमत का $\frac{१}{२}$ रह जाता है। इसी तरह आगे भी बड़ी से बड़ी भिन्न से गुणा करने पर वह अपने वास्तविक मूल्य का अत्यन्त सूक्ष्म भाग शेष रह सकता है; किन्तु शून्य से गुणा या भाग करने की दशा में उसका मूल्य क्या होगा? यह एक दिलचस्प प्रश्न है। जिस पर भास्कर ने उक्त श्लोक में विचार किया है। शून्य न कोई संख्या हैं; और न उसका कुछ मूल्य है। किन्तु उसका उपयोग केवल यही है—कि उसके द्वारा हम किसी ऐसे अंक का स्थानीय मूल्य जान सकते हैं जिसके पहिले या पीछे कुछ स्थानों पर कोई भी अंक नहीं होता। वास्तव में रिक्त स्थान की सूचना देने के लिए इस चिह्न की कल्पना की गई है। इसी लिए किसी अंक में इसे जोड़ने या घटाने से उस अङ्क के मूल्य पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। स्वयं शून्य का वर्ग, घन, वर्गमूल या घन मूल आदि भी इसी कारण कुछ नहीं होता। किन्तु किसी अङ्क को शून्य से गुणने पर उस अङ्क का गुणनफल शून्य क्यों रह जाता है? इसके उत्तर में यह युक्ति है—कि यदि ऐसी दशा में गुणनफल उसी संख्या के बराबर हो—तो वह १ के गुणनफल के बराबर होगा। किन्तु शून्य १ के बराबर नहीं है। यदि एक से कम किसी भी छोटी से छोटी कीमत की भिन्न से गुणा किया जाय; तो भी वह भिन्नात्मक संख्या मूल्य में शून्य के बराबर स्वीकार नहीं की जा सकती, क्योंकि स्वयं शून्य का मूल्य तो कुछ भी नहीं होता। उसका ऐसा कोई भी कम से कम अंशात्मक मूल्य भी कल्पित नहीं किया जा सकता—जो शून्य से अधिक न हो, तथा कम भी न हो। जो गुण्य संख्या को ही ऋण कर दे। इसी लिए शून्य का मूल्य केवल ऐसा अभाव स्वीकार किया गया है, जो अपने द्वारा जोड़ या घटाने की क्रिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से भी मूल्य संख्या पर कुछ प्रभाव नहीं डालता। किन्तु ऐसा अङ्क (यदि शून्य को अभिधा के लिए अङ्क कहा जा सकता है, तो कह लीजिए) भाग और गुणा की क्रिया के द्वारा प्रभाव अवश्य डालेगा। और वह इस प्रकार है—

५ × २ = ५ + ५ अर्थात् ५ की संख्या को दो बार एकत्रित किया। यहाँ ५ की संख्या पहिले गिनने के लिए—अथवा पाणिनि की परिभाषा में 'उपदेश' के लिए) बोली गई है; अतः उस उपदेश के लिए बोली गई संख्या को परस्पर दो बार जोड़ने से उस उपदेश वाली संख्या का द्विगुण हो गया।

५ × ० = ० अर्थात् उस उपदेश की संख्या को शून्य दो बार एकत्रित करने से शून्य का गुणनफल शून्य इस लिए आवेगा—कि उपदेश की संख्या उपदेश में ही रही। वास्तव में वह एक बार भी नहीं जोड़ी गई। जब मूल्य संख्या ही प्रयोग में नहीं आई, तो फल भी अभाव रहा, इसी प्रकार :—

५ ÷ २ का अर्थ भी यह है—कि ५ की संख्या को शून्य से भाग करने के लिए ५ की संख्या को २ स्थानों में बाँटना या विभाग करना है। वह पाँच की संख्या दो स्थानों में भाग देने पर अलग अलग $\frac{५}{२}$ के बराबर हो जायगी। तथा ५ ÷ ० का अर्थ यह है—कि पाँच को शून्य स्थान में विभक्त करना है। यह शून्य किसी भी अङ्क से कम है। चाहे उसका मूल्य कम से कम कितना ही क्यों न हो। फलतः ५ को हमें एक स्थान में भी विभक्त नहीं करना पड़ा। तो क्या संख्या ज्यों की त्यों रही? नहीं! यदि आप एक से भाग देते तो, वह संख्या ५ ज्यों की त्यों रहती। किन्तु यह अवश्य एक से कम है, और उसके मूल्य को भास्कर ने 'खहर' के नाम से प्रकट किया है। जिसको $\frac{१०}{\infty}$ लिखते हैं। यहाँ भी यदि वास्तव में देखा जाय, तो उपदेश की संख्या प्रयोग में नहीं आ सकी, किन्तु उसके मूल्य की कल्पना करनी पड़ी है। फिर भी इसका अभिप्राय यह अवश्य है, कि ० की अपेक्षा खहर अधिक मूल्य वाला है।

ऊपर जो उदाहरण दिया गया है। वह भास्कराचार्य ने स्वयं अपने ग्रन्थ में व्यास कर के दिखाया है, तथा साथ ही यह भी लिखा है—कि इस 'खहर' का मान अनन्त होता है—

खेन भक्तश्च राशिः। अयमनन्तो राशिः खहर इत्युच्यते। अस्मिन् विकारः खहरे न राशावपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु। वहु ष्वपिस्याल्लाय सृष्टिकालेऽनन्ते भूतगणेषु यद्वत्। (४ वीजगणित पृष्ट ७)

भास्कर की यह उपपत्ति विचित्र तथा आज कल की योरोपीय परिपाटी से भिन्न है।

भास्कर को जोड़ने और घटाने की उत्क्रम पद्धति, वर्ग करने की क्रिया, उस का शून्य व्यवहार, भागाप वह की रीति, सुवर्ण और रत्नों की गणित, छन्दः चित्ति,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा श्रेष्ठी व्यवहार (Arithmatical & Geometrical Progressions) आधुनिक गणित पाटियों से नवीन है, तथा इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर जानने के बड़े सरल और विचित्र नियम उसने बताए हैं। इसी प्रकार इष्ट कर्म, वर्गकर्म, गुणा कर्म आदि के नियम भी भारतीय गणित की मौलिकता को दृढ़ करते हैं।

क्षेत्रमिति—लीलावती का दूसरा भाग क्षेत्रमिति सम्बन्धी है, जिसमें रेखा-गणित के नियमों का उपयोग किया गया है। वास्तव में ज्यामिति या रेखा गणित का व्यवहार भारत वर्ष में वैदिक यज्ञ याजों के लिए बहुत ही प्राचीन काल में होने लगा था। जितना पुराना कल्प शास्त्र अर्थात् यज्ञों के विधायक नियमों को माना जाता है उससे कम पुराना यह क्षेत्रमिति या रेखा गणित का शास्त्र माना जाना आवश्यक है, और गणित शास्त्र इससे भी पुराना मानना पड़ता है। तैत्तिरीय-संहिता ५. ४. ११ में भिन्न २ प्रकार की वेदियों के नाम तथा बौधायन और आपस्तम्भ के सूत्र ग्रन्थों में इनकी चिनाई तथा ईंट आदि बनाने के नियमों का सविस्तार वर्णन है। यदि इस पुराने साहित्य को आर्य शिल्प शास्त्र का आधार कहा जाय, तो अनुचित नहीं। संक्षेप में ये बातें इस तरह लिखी हैं—

(१) चतुस्रश्येन वेदि श्येन पक्षी के आकार की वर्गाकार ईंटों से बनाई जाती थी। सबसे प्राचीन वेदी यही समझी जाती थी।

(२) श्येन-वक्र-पक्ष-व्यस्तपुच्छ वेदी का आकार पंख फैलाए तथा पूँछ मोड़े हुए श्येन पक्षी के जैसा होता था।

(३) कंकचिती, कंक पक्षी के दोनों पैरों युक्त आकार की वेदी।

(४) अलज चिती-प्राय ३ के जैसे आकार वाली।

(५) प्रउग् चिती-रथ के अग्र त्रिकोण कृति वाले जुए तथा के आकार की वेदी।

(६) उभयतः प्रउगचिती—जिस में उक्त प्रकार की रचना दो तरफ को होती है।

(७) रथ चक्र चिती या वृत्ताकार।

(८, ९) चतुस्रद्रोण चिती, और परिमण्डल द्रोण चिती चौकोर या गोल घड़े के आकार की वेदियाँ।

(१०) सार-रथ चक्रचिती जो (७) के आकार की होती हैं।

(११) परिचय चिती (१२) समूह्य चिती भी गोलाकार होती हैं।

(१३) स्मशान चिती ऐसी चौकोर जिसका एक सिरा कम चौड़ा तथा नीचा और दूसरा सिरा अधिक चौड़ा तथा ऊँचा होता है। यह वेदी ढालू होती है।

(१४) वक्रांग कूर्म चिती (१५) त्रिकोण कूर्म चिती और परिमण्डल कूर्म चिती। ये तीनों वेदियें कच्छप के आकार की क्रम से मुड़ी हुई, त्रिकोण तथा चक्राकार होती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसी वेदियों की रचना में विशेषता यह होती थी—कि वेदियों का चाहे आकार कुछ भी रहे। किन्तु उनका क्षेत्रफल समान ही रहता था। जैसे चतस्रश्येन वेदि का आकार एक पुरुष अर्थात् ७½ फीट वर्ग का होता था। (जिस की प्रत्येक भुजा ७½ फीट ऊँची होती थी)। इस का क्षेत्रफल $\frac{१५}{२} \times \frac{१५}{२} = \frac{२२५}{४} = ५६\frac{१}{४}$ वर्ग फीट होता है। अब जो भी वेदि आप उक्त आकार में से किसी आकार को बनाएंगे, उनमें से प्रत्येक का क्षेत्रफल ५६¼ वर्ग फीट होना चाहिए। यह प्रत्यक्ष ही है कि भिन्न २ आकृति के क्षेत्रों को समान क्षेत्रफल की दूसरी आकृति में परिवर्तन करने के लिए अत्युच्च रेखा गणित के ज्ञान की आवश्यकता है। इस कार्य के लिए पुराने वैदिक पुरोहितों या गणकों को, दो या अधिक वर्गायतों के समान क्षेत्रफल वाला एक वर्गाकार आयतन बनाना पड़ता था। कभी दो वर्गों के क्षेत्रफल के अन्तर के बराबर वर्ग बनाना पड़ता था। कभी समकोण दीर्घ वाहु के क्षेत्रफल के बराबर वर्गायत की आवश्यकता पड़ती थी, और कभी एक वर्गानत के क्षेत्रफल के बराबर क्षेत्र का वृत्त बनाना पड़ता था। इस प्रकार के परिश्रम का फल यह हुआ—कि मा, प्रमा, प्रतिमा (पैमाना, पैमाने के आधार पर बनाई आकृति और बिना पैमाने की आकृति के ज्ञान का विकास हुआ। यह नापने का कार्य उस समय एक तांबे के टुकड़े, या बाट से लिया जाता था—जिसे 'सुल्व' या 'शुल्व' कहते थे, एवं इस विद्या का नाम 'शुल्व विद्या' तथा ऐसे ग्रन्थों का नाम 'सुल्व-सुत्र' पड़ चुका था। इन्हीं सूत्र ग्रन्थों के आधार पर आज योरोप के विद्वानु निश्चय पूर्वक कहते हैं—कि जिस रेखागणित के साध्य (अ० १ साध्य ४७) का श्रेय पैथा गौरस को दिया जाता है वास्तव में वह साध्य भारत में उसके जन्म से कम से कम २०० वर्ष पूर्व सिद्ध हो चुका था, तथा पैथौ गोरस ने भी उसे वहीं से प्राप्त किया था। किसी वर्गायत भुज और कर्ण का परस्पर अनुपात १ : १·४१४२१५६ उस समय जाना गया था—जो आज कल $\sqrt{२} = १·४१४२१३$ ·· स्वीकार किया जाता है। प्राचीन आर्यों का यह गणित-फल ५ दशमलवांश तक (१ लाखवाँ भाग तक) शुद्ध है। ज्यामिति के माप कार्य में इतनी अधिक शुद्धता वास्तव में प्रशंसनीय है—जो केवल गणित के नियमों के आधार पर ही नहीं जानी गई थी अपितु व्यवहार द्वारा सिद्ध की गई थी। किसी दिए हुए वर्गाकार आयत के क्षेत्रफल के समान क्षेत्रफल का वृत्त बनाने के लिए

वर्गायत के $\frac{\text{भुजा}}{२} + \left(\frac{\text{कर्ण}}{२} - २\left(\frac{\text{कर्ण} - \text{भुर्ज}}{३}\right)\right), \frac{\text{भुजा}}{२} + \frac{\text{कर्ण}}{२} - २\left(\frac{\text{कर्ण} - \text{भुजा}}{३}\right)$ के समान त्रिज्यार्द्ध बनानी चाहिए। इसकी विलोम क्रिया का सूत्र

व्यास का $\frac{७}{८} + \frac{१}{८ \times २९} - \frac{१}{८ \times २९ \times ६} + \frac{१}{८ \times २९ \times ६ \times ८}$ इष्ट वर्गक्षेत्र का भुज मालूम किया गया था। ये दोनों फल लगभग ठीक हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस तरह यूनानियों से सदियों पूर्व भी अपनी आवश्यकताओं के दबाव के कारण भारतीय ऋषियों ने रेखागणित का आविष्कार कर के उसे गणित के द्वारा व्यवहार में लाना आरम्भ कर दिया था, किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि भारतवर्ष की प्रसिद्धि उसके रेखागणित ज्ञान के लिए ऐसी अधिक नहीं हुई, जैसी उसके शिष्य पैथो गौरस तथा यूनानी विद्वान् यूक्लिड आदि की हुई। इसके दो कारण हो सकते हैं, बौद्धकाल के उदय के साथ साथ यज्ञों का ह्रास होने लगा; और फिर इस शास्त्र का उपयोग केवल शिल्प कार्यों में ही रह गया, एवं लोगों ने इधर ध्यान देना छोड़ दिया। यह ठीक है कि १६ वीं और १७ वीं शताब्दी तक भी 'कुण्ड सिद्धि' तथा कुण्ड प्रक्रिया आदि ग्रन्थ भारत में रचे जाते रहे थे, उन ग्रन्थों में सुल्व-सूत्रों की पद्धति पर ही, और भी कई आकृतियों के कुण्ड बनाने की कल्पना की गई है, एवं तद्विषयक नियम आदि दिए हैं, किन्तु इस विषय पर वैज्ञानिक विचार की धारा यहाँ इतने समय तक बराबर रुकी ही रही, और पूर्व समय के जैसे नए नए आविष्कार यहाँ नहीं हो सके। दूसरा कारण यह है--कि जब रेखागणित के नियमों का उपयोग पाटीगणित तथा बीजगणित में ही होने लगा तो खगोल (ज्योतिः शास्त्र) को छोड़ कर इसकी व्यवहारिक आवश्यकता ही कहीं नहीं रही। इस लिए खगोल शास्त्र के आचार्य तो उसमें भू त्रिकोण मिति, गोलीय त्रिकोणमिति आदि सूक्ष्म बातों पर विचार करते रहे, शेष सबने उसे छोड़ दिया।

इस प्रकार भारतीय पाटीगणित की, जहाँ और दो विशेषताएँ हैं। वहाँ ज्यामिति के नियमों को भी पाटीगणित के रूप में व्यवहार में लाने की विशेषता भी मुख्य है। करणों को लाने की जिस लघु क्रिया का उपयोग भास्कर ने अपनी पाटी में किया है उसकी सिद्धि रेखागणित पञ्चम अध्याय के बिना नहीं हो सकती। इसी प्रकार ज्याओं की सूक्ष्म कल्पना समकोण, पञ्च, षड़, सप्त, अष्ट, नव कोण आदि क्षेत्रों का क्षेत्रफल जानने के नियम, त्रिज्या और परिधि का अनुपात आदि की उपपत्ति बिना ज्यामिति के असम्भव है।

बीजगणित—किन्तु पाटी गणित का भी मूल बीजगणित है। जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट है। आरम्भ में चन्द्रमा, सूर्य, आँख, कान, दाँत, उँगली आदि की उपमा पर अङ्कों क नाम रक्खे गए थे। देखा जाय तो बीजगणित का आधार भी इसी प्रकार की कल्पना से आरम्भ होता है। इस लिए बीजगणित के लिए तो यह कहना और भी कठिन है--कि इसका आरम्भ भारत वर्ष में कब और किस प्रकार हुआ होगा? तो भी विचारने और ध्यान देने से यही बात ठीक जान पड़ती है--कि लेखन कला के आविष्कार से पहिले, जब व्यक्त अङ्कों का जन्म नहीं हुआ था, और अभीष्ट संख्याओं को अव्यक्त के द्वारा ही प्रकट किया जाता था। तब ही इस व्यक्त-गणित का आविष्कार हुआ होगा। अक्षरों के संकेत से अपरिचित मनुष्य अलग-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अलग रंगों की गोलियों के द्वारा ही व्यक्त पदार्थों का बोध करने का उल्लेख बीजगणित की पुस्तकों में स्पष्ट मिलता है। क्योंकि लेखन कला के पीछे जब बीजगणित के ग्रन्थ तैयार किए गए तो उन्हीं रंगों के सूचक शब्दों का व्यवहार उन पुस्तकों में किया गया। संस्कृत के बीजगणित के ग्रन्थों में कालक, तीलक, पीतक, लोहितक, श्वेतक, चित्रक; कपिलक; पिंगलक; पाटलक; धूयुक, श्यामक, मेचक और यावक आदि रंगवाची शब्द व्यवहृत् किए गए हैं।[1] किन्तु भास्कराचार्य ने इन शब्दों के स्थान में क ख आदि कल्पना करने का भी संकेत किया है।[2]

योरोप में अभी थोड़े दिनों से ही बड़े बड़े समीकरणों में x के स्थान में बड़ी बड़ी अव्यक्त संख्याएँ Algebrical Expressions रख कर प्रश्न को सरल बनाने का उपक्रम आरम्भ हुआ है। किन्तु भारत वर्ष में इस पद्धति से कठिन प्रश्नों को सरल बना कर उत्तर निकालने का प्रचार था। इतना ही नहीं, किन्तु इस पर विस्तृत और पाण्डित्य पूर्ण ग्रन्थ लिखे जाते थे। जिनमें बीजगणित सम्बन्धी नियमों के सिद्धान्तों को लेकर वाद-विवाद उठाया जाता था, तथा उन सिद्धांतों की उपपत्ति पर शास्त्रार्थ किया जाता था। स्वयं भास्कर ने अपने बीज गणित के पृष्ठ १७९ पर लिखा हैं--कि ब्रह्मगुप्त, श्रीधर और पद्म नाम के बड़े बड़े और विस्तृत बीजगणित देख कर ही, उनका सार लेकर यह ग्रंथ संक्षेप में, किन्तु उपपत्ति सहित

१--'यावक' के स्थान में प्रायः 'यावत् तावत्' शब्द का व्यवहार देखा जाता है। इस सम्बन्ध में विज्ञान भाग २५ पृष्ठ ४२-४३ का निम्नलिखित भाग पढ़ने योग्य है—"बीज गणित के सभी करणों में अन्यत्र पदार्थ के मान मानने के लिए सभी रँगवाची शब्दों का ही प्रयोग किया गया हैं। केवल प्रथम शब्द यावत्तावत रंगवाची न होने से चित्त में कुछ शङ्का उत्पन्न होती है। संस्कृत में यावक महावर को कहते हैं। जो कि लाह से बना हुआ लाल रङ्ग होता है। मंगल कार्यों में पुरुष और स्त्रियों के पैर इस से रंगे जाते थे, और पैर के नखों में भी इसी को भर देते थे। रंगवाची ही सब शब्दों के प्रयोग से निश्चय होता हैं--कि पहिले के लोगों ने यावक ही को ग्रहण किया था। पीछे से भास्करादिकों ने इसके स्थान में लेखक दोष से अथवा स्वयं अपनी इच्छा से यावत्तावत को रक्खा। क्योंकि पृथूदक चोबे की की हुई ब्रह्म गुप्त के सिद्धान्त की टीका में यावत्तावत के स्थान में यावक ही मिलता है।

२--इदमनेक वर्ण समीकरणं बीजं यत्रोदाहरणे द्वि त्र्यादयोऽव्यक्तराशयो भवन्ति। तेषां यावत्तावदादयो वर्णाः मानेषु कल्प्यास्तेऽत्रपूर्वाचार्यैः कल्पिताः यावत्तावत कालक, नीलक, पीतक लोहीतक, हरितक, श्वेतक, चित्रक, कपिलक, धूम्रक, पाटलक; शवलक, श्यामलक, मेचक इत्यादि। अथवा कादीन्यक्षराणि अव्यक्तानां संज्ञाः असङ्करार्थं कल्प्याः। बीजगणितं पृष्ठ १११-११२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिया गया था, ये ग्रन्थ इस समय नहीं मिलते, केवल ब्रह्मगुप्त के बीजगणित का कुछ भाग को बुक को सन् १८१७ में प्राप्त हुआ था, जिसका अंग्रेजी अनुवाद भी छपा था। भास्कराचार्य ने आर्य भट्ट के बीजगणित का उल्लेख नहीं किया है।

आर्य भट्ट का बीज गणित सबसे पुराना है, उसका रचना काल ४७६ ई० माना जाता है, यदि उसका जन्म विक्रम से कुछ समय पूर्व भी सिद्ध होता है। उसने गणितपाद, काल क्रिया पाद तथा गोत्र पाद ये तीन ग्रन्थ लिखे हैं, जो भाषानुवाद सहित प्रकाशित हो चुके हैं[1]। आर्य भट्ट ने तो अपने ग्रन्थ भर में ही अङ्कों और सख्याओं के लिए अपने सांकेतिक चिन्हों का व्यवहार किया हैं। वराहमिहिर ने भी अपने पञ्च सिद्धान्तिका में उसकी चर्चा की है उसके ग्रन्थ एक प्रकार से खगोलीय गणित के ग्रन्थ होने से प्रत्यक्ष रूप से बीजगणित पर विचार नहीं करते। ब्रह्मगुप्त ने सन् ६२९ में अपना बीज ग्रन्थ बनाया था, तथा वर्ग समीकरण सिद्ध करने की जो युक्ति उसने आज से १३०० वर्ष पहले लिखी थी बड़ी आज तक सब जगह व्यवहार में आ रही है। इसी नियम के सम्बन्ध में श्रीधर की युक्ति का उल्लेख न करना भी आवश्यक है। क्योंकि स्वयं भास्कराचार्य ने ही उसकी महत्ता को स्वीकार के अपने बीज में उसे स्थान दिया है।

भास्कराचार्य का बीज अन्तिम ग्रन्थ है। इसके पश्चात् भारत में स्वतन्त्रता से इस विषय पर किसी ने विचार नहीं किया। उन्होंने अपने ग्रन्थ में पृष्ठ ९२ पर अव्यक्त वर्ग समीकरण (Ouadratic Equation) का वर्णन करते हुए लिखा है—कि वर्ग, धन और चतुर्घति के समीकरणों में अपनी बुद्धि से इष्ट अङ्क को जोड़ने घटाने, गुणने तथा भाग देने से यह क्रियाएँ सिद्ध होती हैं। बीजगणित के ईक्वेशन के प्रश्नों में faclors करने की विधि यद्यपि आजकल बतलाई जाती है, किन्तु वास्तव में ऐसे प्रश्नों की सिद्धि भास्कर ने मणक की बुद्धि पर छोड़ दिया हैं। इसीलिए भास्कर ने कहा है कि सम्पूर्ण बीज बुद्धि का खेल मात्र है।

३—ब्रह्मादयः श्रीधर पद्मनाभबीजानि यस्मादिति विस्तृतानि।
आदाम तत्सारमकारि नूनं सयुक्ति युक्तं लघु शिष्य तुष्टचै।

२—प्रणिपत्यैकमनेकं कं सत्यां देवतां परं ब्रह्म।
आर्यभट्टस्त्रीणि गहति गणितं काल क्रियां गोलम्।

३—मूल सूत्र इस प्रकार है—चतुराहत वर्ग समै रूपैः पक्ष द्वयं गुणयेत्।
अव्यक्त वर्ग रूपै युक्तौ पक्षौ ततो मूलम्।

इस प्रकार से अव्यक का मान ऋणात्मक और धनात्क दोनों प्रकार से आएगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भास्कर ने अपने बीज के पृष्ठ १०१ पर पद्मनाभ के निम्नलिखित सूत्र का खण्डन किया है :—

व्यक्त पक्षस्य चेन्मूलमन्य पक्षर्णरूपतः ।
अल्पं धनर्णगं कृत्वा दिविधोत्पद्यते मितिः ।।

अव्यक्त वर्ग समीकरण (Quadratic Equation) में अव्यक्त के सदा दो उत्तर प्राप्त होते हैं—ऋणात्मक और धनात्मक । किन्तु ऋण संख्या में आने वाले उत्तर का ससार में व्यवहार नहीं होता—अतः इस अश में यह नियम अव्यवहार्य है किन्तु शास्त्रीय सिद्धान्त है । पद्मनाभ आचार्य ने यही बात अपने उक्त सूत्र में लिखी है, किन्तु भास्कर ने उसे अव्यवहार्य होने के कारण स्वीकार नहीं किया । तो भी भास्कराचार्य ने धन समीकरण का एक उदाहरण दिया है । यह दूसरी बात है कि उसने उसका उत्तर एक ही निकाला है ।

योरोप से तुलना—फीमैट ने १७वीं सदी में, आज से केवल तीन सौ वर्ष पूर्व ही इङ्गलैण्ड के बीजगणितज्ञों से $a \times २ + b$ में $\times$ का ऐसा मूल्य पूछा था—जिस से उक्त संख्या का उत्तर वर्ग हो जाय । यूलर ने सन् १७७० में इस प्रश्न का जो उत्तर निकाला, वह वही था, जो भास्कर ने सन् ११५० में अपने बीज में लिख दिया था । लार्ड बाउंकर ने भी सन् १६५७ में एक प्रश्न का वही उत्तर निकाला, जो भास्कराचार्य निकाल चुके थे । इस सम्बन्ध में हम नीचे लिखी पंक्तियाँ समीकरण मीमांसा की भूमिका से उद्धृत करते हैं :—

ऐसा कहा जाता है कि अलमामून खलीफा (८१३–८३३ ई०) के राज्य काल में रहने वाले मुहम्मद बिन अलख्वारजमी राजशाही दूतों के संग अफगानिस्तान गए और लौटती समय भारतवर्ष होते हुए आए । आने के थोड़े ही समय के बाद सन् ८३० ई० में उन्होंने बीजगणित की एक पोथी लिखी । इस पोथी के वर्णित विषय उन्हीं के आविष्कार किए नहीं मालूम पड़ते, वरन् भारतवर्ष ही के ब्रह्मगुप्त, भट्ट बलभद्र या और किसी विद्वान् के बीजगणित से अनुवाद किए गए हैं, या उनके आधार पर लिखे गए हैं ।

भारतवर्ष में एक वर्ण समीकरण, अनेक वर्ण समीकरण, मध्यमा हरण समीकरण और भावित समीकरण, इस तरह चार प्रकार के समीकरणों का आविष्कार किया गया था ।

ज्योतिःशास्त्र में बीजगणित का व्यवहार—ज्योतिःशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में ग्रह स्पष्ट करने, छाया स्पष्ट करने तथा कोण-शंकु आदि ज्ञात करने के लिए जो नियम दिए गए हैं, उनकी सिद्धि बिना बीजगणित के हो ही नहीं सकती ।

१—उदाहरणार्थ कोण-शंकु विषयक सूर्य सिद्धान्त का निम्नलिखित सूत्र देखिए : –

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्रिज्यावर्गाद्धृतोऽग्रज्या वर्गोनाद् द्वादशाहृतात् ।
पुनर्द्वादश निघ्नाच्च लभ्यते यत्फलं बुधैः ।।
शकुवर्गाद्धि संयुक्त विषुवद्वर्ग भाजितात् ।
तदेवकरणी नाम तां पृथक् स्थापयेद्बुवः ।।२९।।
अर्कघ्नी विषुवच्छायाग्रज्यया गुणिता तथा ।
भक्ता फलाख्यं तद्वर्ग संयुक्त करणी पद्म् ।।३०।।
फलेन हीन संयुक्तां दक्षिणोत्तर गोलयोः ।
याम्योर्विदिशोः शंकुरेवं याम्योत्तरेरवौ ।।३१।।
परिभ्रमति शङ्कोस्तु शंकुरुत्तरयोस्तु सः ।
तत् त्रिज्या वर्ग विश्लेषान्मूलं दृग्ज्याभिधीयते ।।३२।।

इन पाँच श्लोकों का सार यह है :--

$$\text{करणी} = \frac{\left(\frac{\text{त्रिज्या}^2}{२} = \text{अग्रज्या}^2\right) \times १४४}{\frac{१२^2}{२} + \text{पलभा}^2}$$

$$\text{फल} = \frac{१२ \times \text{पलभा} \times \text{अग्रज्या}}{\frac{१२^2}{२} + \text{पलभा}^2}$$

$$\text{कोणशंकु} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^2} \pm \text{फल}$$

$$\text{इतज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{कोण शंकु}^2}$$

इन सब की सिद्धि यहाँ विस्तार पूर्वक देने से पाठकों को विशेष लाभ न होगा, अतः इनकी विस्तृत व्याख्या सूर्य सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार विज्ञान भाष्य के पृष्ठ ३९४ से ४२० तक देखना चाहिए ।

चलन कलन (Differntial calculus)—ग्रहों के तात्कालिक स्पष्ट करने में जिस प्रकार के नियमों का उपयोग किया जाता है । उन्हें आजकल Differntial calculus कहते हैं । प्राचीन शास्त्रों में तात्कालिक गणित के लिए भी विशेष परिश्रम किया गया था, तथा इस सम्बन्ध के अनेक कठिन-कठिन नियमों की जानकारी की गई थी ।[1]

खगोल विद्या वैदिक—ऊपर ज्योतिर्वेदांग का उल्लेख करते समय कह आए हैं कि उसमें चन्द्रमा और सूर्य के सिवाय और किसी ग्रह या उपग्रह का नाम नहीं पढ़ा गया है । किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता--कि उस समय और

१— देखिए—सुधाकर जी द्विवेदी के चलन कलन ग्रन्थ की भूमिका ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रहों का ज्ञान ही लोगों को नहीं था। यदि वेदांग में सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण का उल्लेख नहीं पाया जाता, तो क्या उस समय सूर्य ग्रहणों का ज्ञान भी लोगों को नहीं था। ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल के ४० वें सूक्त में अत्रि ऋषि के द्वारा वेध किए गए सूर्य ग्रहण का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है।[1]

चन्द्र के साथ बुध और शुक्र की युति का उल्लेख यजुर्वेद अध्याय ८ मन्त्र ४९ में है।[2] सूर्य के साथ इन्हीं दोनों ग्रहों की युतियों का उल्लेख और भी चमत्कारिक भाषा में अथर्ववेद काण्ड ९ के सूक्त ९ मन्त्र १४–१५ में किया गया है। जहाँ एक को पुरुष, तथा दूसरे को स्त्री कहा है, एवं एक को अन्धा (काणा) और दूसरे को नेत्र वाला बताया है।[3] शुक्र का नाम ऋग्वेद में स्पष्ट वेनः या वेनस लिखा है।[4] मंगल के सम्बन्ध में यजुर्वेद के १६वें अध्याय का छठा मन्त्र पढ़ने लायक हैं। उसमें लिखा है कि वह लाल रंग का चमकता हुआ तथा कुछ कुछ धुँधला तथातेजस्वी है।[5] ऋग्वेद के अनुसार वृहस्पति ग्रह मण्डल में सर्व प्रथम उत्पन्न हुआ, वह सब से बड़ा ग्रह है। एवं इसके ७ उपग्रह तथा यह स्वयं बड़े वेग से चलता है।[6] इसका ज्ञान सर्व प्रथम उस समय हुआ

१—यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्त अग्ये अशक्नुवत्॥ मन्त्र ९

२—ककुभॐ रूपं वृषमस्य रोचते वृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः! यत्ते सोमादादभ्यन्नाम जागृवितस्मैत्वा गृहणामि तस्मै ते सोम मोमाय स्वाहा।

३—सूर्यस्य चक्षू रजसैत्या वृत्तं यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा॥१४॥ स्त्रियः सतीस्तां उमे पुंसग्राहु पश्यदक्षरावान्न विचेतदन्धः। कविर्य पुत्रः स ईं मांचिकेत स्रस्ता विजानात् स पितुष्पिता सनू॥१५॥

४—अयं वेनश्चोदयत्पृश्नि गर्भाज्योतिर्जरायू सुसो विभाने। मण्डल १० सूक्त १२३

५—असौ यस्ताम्रो अरुण उत वभ्रुः सुमंगलः। ये चैन ॐ रुद्राः अभितो दिक्षुश्रिताः सहस्रषोऽवैषा ॐ हेडईमहे।

मंगल लाल, चमकदार तथा कुछ २ धुंधला सा कल्याणकारी होता है। यदि यह पूर्व दिशा में आद्रा नक्षत्र में उक्त रूप में दिखाई दे, तो लोक में बड़ा जन-संहार होता है।

६—वृहस्पतिः प्रथमं जायमानः महोज्योतिषः परमे व्योम न। सप्तास्पस्तु विजा तो खेण कि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि। ऋग्वेद ४; ५०–४। सम्पूर्ण सूक्त भर में वृहस्पति का वर्णन है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था।[1] जो लाल तथा अग्निमय था।[2] एक ग्रन्थ स्थान पर वृहस्पति मंडल को नीले, पीले रंग का,[3] तथा शनि को तीन शृंगों वाला लिखा है।[4] सम्भव है कि शनि के वलयों को ही वैदिक ऋषियों ने शृंग लिख दिया हो। तैत्तरीय ब्राह्मण के लेखक को ज्ञान था कि दिन में नक्षत्र सूर्य के कारण उदय नहीं होते[5], तथा इन में से कितनों ही में प्रजा रहती है।[6] इसी प्रकार चन्द्रमा के विषय में सूर्य रश्मियों से उसका प्रकाशित होना एवं सदैव उसके एक ही पृष्ठ का इस कारण दिखाई देना कि वह उतने ही समय में अपनी कीली पर भी घूमता है जितने समय में पृथ्वी की परिक्रमा करता है। उसका नक्षत्र चक्र में गमन करना आदि बातें भी प्राचीन समय में ज्ञात थीं।[7] अथर्व वेद में सप्तर्षि मण्डल, तथा २७ नक्षत्रों के ही नाम नहीं आते हैं अपितु नौका पुञ्ज, अजगर, शिशुभार, मत्स्य पुञ्ज; श्वान तथा और भी अनेक नक्षत्र पुञ्जों के नाम उसमें तथा ऋग्वेद में मिलते हैं।[8]

१—वृहस्पतिः प्रथमं जायमानस्तिष्य नक्षत्रमभिसम्बभूव। तै० ब्रा० ३।१।१

२—येऽगाराअसंस्तेऽगिरसो भवन्यदङ्गाराः पुनरवशांता ताउददीप्यंत तद्वृहस्पतिरभवत्। ऐतरेय० ३। ३४

३—आ वेधसं नील पृष्ठ वृहन्तं वृहस्पतिं सदने सादयध्वम्। सादद्योनिं दम आदीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषँ सपेय। १२ आधर्णसिर्वृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः। ग्नावसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातु शृङ्गोवृषभोवयोधा १३ आदि ऋग्वेद मन्त्र ५ सूक्त ४३।

४—प्रवाहुग्वाभ्र अग्रे क्षत्तारायातेयुः। तेषांमिन्द्रः क्षत्रारायादत्त। न वा इमानि क्षत्राण्य भूयन्निति। तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वं। २। ७। १८

५—सलिलं वा इदमन्तरासीत्। तहतरन्। तत्तारकारणं तारक त्वं। यो वा इह यजते अमुं स लोकं नक्षत्रे। तन्न क्षत्राणां नक्षत्रत्व। देव गृही वै नक्षत्राणि। य ऐवँ वेद। यानि वा इमानि पृथिव्यां श्चित्राणि तानि नक्षत्राणि।
तै० वहीं १-५-२

६—इन्द्रेण रोचनादिवोइल्लानि इंहितानि च। स्थिराणि न पराणुहो अथर्वे० २०। २८। ३

७—चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिविउदेनभगे सूर्यरश्मिमिश्चन्द्रमा।
तै० ब्रा० ३।४।७।१
चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरी सृपाणि भुवनेजवानि तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामिनाकम्। अथर्व० १९। ७। १
यथाहि हिमवतः पार्श्वं पृष्ठं चन्द्रमसः तथा। न दृष्टपूर्वं मनुष्यैः आदि महाभारत शान्ति० अध्याय १००

८—नक्षत्रों के नामों की सूची—अथर्ववेद काण्ड १९ सूक्त ७ मन्त्र २-५ तक यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैदिक काल में खगोल सम्बन्धी इतनी जानकारी के साथ साथ यदि वेदांग ज्योतिष में इसका उल्लेख नहीं पाया जाता, तो इसका कारण यही है कि यज्ञों के समय निर्धारण करने में इस शेष ग्रह आदिकों से विशेष सहायता नहीं ली जाती थी. अतः उनका उल्लेख भी नहीं किया गया। किंतु सूर्य समेत ७ ग्रहों के चक्र का उल्लेख अथर्व वेद में स्पष्ट रूप से किया गया है।[1]

सिद्धांत ग्रन्थ—खगोल सम्बन्धी ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थ–ऐसा ज्ञात होता है, वैदिक समय में ही संग्रह किए जाने लगे थे। कश्यपाचार्य ने इस तरह १८ सिद्धांत ग्रन्थों के नाम गिनाए हैं :—

सर्य पितामहो व्यासो वशिष्ठो ऽत्रि पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिराः॥
लोमशः पुलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः।
शौनकोऽष्टादशैवेते ज्योतिः शास्त्र प्रवृत्तृकाः॥

अत्रि ऋषि—इस समय सूर्य; पितामह, व्यास, वशिष्ठ, पराशर, लोमश और ब्रह्म सिद्धांत के नाम से ग्रन्थ पाए जाते हैं। वशिष्ठ के दो सिद्धान्त हैं :— वृहद्वशिष्ठ और लघु वशिष्ठ। अत्रि का नाम ऋग्वेद के ५ वें मण्डल के ४० वें सूक्त

गणना कृत्तिकादि है। इसी काण्ड के सूक्त ८ मन्त्र २ में २८ नक्षत्र भी लिखे हैं। यजुर्वेद १।७ में "गंधर्वा सप्तविंशतिः" २७ नक्षत्र कहे हैं।

सप्तर्षि—सप्तर्षीन् वा इदं ब्रूभो यो देवीः। अथर्व० ११।४।६।११

अमी ऋक्षानिहितास उच्चा न कृ दृदृशे कुह चिद्दे वेयु.। ऋग्वेद १।२४।१०

नौका पुञ्ज आदि—हिरण्यमयी नौ रचद्धिरण्यवन्धना दिवि।
अथर्व० ५।४।४-५ तत्रामृतस्य पुष्पं देवा कुष्ठ मन्वतः॥४
हिरण्यमया पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यमया।
ना वो हिरण्यमयी रासन् याभिः कुष्ठ निरावदन्त्॥५

शिशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसायेम्यो अस्यसि। न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परिपश्यसि भूमिं पूर्व स्माद्धंस्युत्तस्मिन् समुद्रे। ये त्रयः काल काञ्जादिवि देवा इव श्रिताः। अथर्व० ११।२।२४

तान्ससर्वान्ह्व अतयेऽस्मा अरिष्टतातपे। काण्ड ६।८०।२

अतिप्रवासारमैयौश्वानौ चतुरक्षौ शवलौ साधुना यथा।
यौ ते श्वानौ यमरक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृ चक्षसौ॥
ताभ्यामेनं परिवेहि राजन्स्वस्ति चास्मा अनमीवञ्च धेहि।
ऋग्वेद १०।१४।१०–११

१· –सप्त चक्रान् वहति कालः एषः सप्तास्य नाभीरमृतं नपक्षः।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स इयेते प्रथमोनुदेवः॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में वर्णित प्रसिद्ध ग्रहण की घटना के सम्बन्ध में वैदिक विद्वानों में विश्रुत है। तिलक ने इस सूक्त के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किए हैं उन्हें हम उनके Oreon नामक ग्रन्थ से अनूदित करने के लिए क्षमा चाहते हैं—ऋग्वेद मण्डल ५ के ४०वें सूक्त में एक सूर्य ग्रहण का उल्लेख है, जो पहिले पहिल कुछ निर्णय के साथ जाना गया था। यह ज्ञान अत्रि ऋषि ने सर्व प्रथम प्राप्त किया था। साँख्यायन ब्राह्मण (२४।३) में तथा ताण्ड्य ब्राह्मण (४।५।२।६—१३) में भी इस सर्व ग्रास्स सूर्य ग्रहण का उल्लेख पाया जाता हैं। क्योंकि यह ग्रहण विषुव दिन से ३ दिन पहिले हुआ था, अतः इसके सम्बन्ध में सर्व साधारण की उत्तेजना और भी अधिक हो गई होगी। ऐसा जान पड़ता है कि इस सर्वग्रास ग्रहण के अवसर पर इतना अन्धकार हुआ था—कि दिन में तारे चमकने लगे थे, क्योंकि उक्त सूक्त के मन्त्र ५ के 'भुवनान्य दीधयुः पदों का यही अर्थ निकलता है। ६वें मन्त्र में बताया गया है कि ऋषि ने इस ग्रहण का ज्ञान तुरीय यन्त्र की सहायता से (तुरीयेण ब्रह्मणा विन्ददत्रिः) प्राप्त किया था। सायण ने इसका अर्थ किया है कि उसने चौथे यन्त्र से सूर्य ग्रहण का ज्ञान प्राप्त किया था। किन्तु जिस मन्त्र में ये शब्द आते हैं वह चाहे ६ मन्त्र से गिनने पर १० वां होने पर चौथा मंत्र होना सम्भव है, जिससे सायण का कोई यज्ञपरक अभिप्राय सिद्ध होता हो, परन्तु वास्तव में यह शब्द 'तुरीय के द्वारा अत्रि ने जाना' यहीं अर्थ बताते हैं। सिद्धान्त शिरोमणि अध्याय ११ श्लोक १५ में तुरीय यन्त्र का विशद वर्णन है[1]। चाहे वैदिक जमाने में कोई यंत्र रहना सम्भव न भी हो, किन्तु इस अर्थ में कोई सन्देह नहीं होना चाहिए कि इन शब्दों से अभिप्रायः किसी वेध मंत्र का ही है। 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ निस्सन्देह 'वेद मंत्र' होता है, किन्तु इस तरह का ज्ञान प्राप्त करने की क्रिया को भी ब्रह्म कहा जा सकता है। स्वयं सायण ने ही मण्डल २।२।७ में इस पद का अर्थ काम या 'क्रिया' किया है, और मेरी समझ में इसका कोई कारण नहीं आता कि 'तुरीयेण ब्रह्मा' का अर्थ 'तुरीय की क्रिया के द्वारा' या 'तुरीय के द्वारा' क्यों नहीं किया जा सकता क्योंकि इस प्रकार सम्पूर्ण सूक्त भर का क्रम वद्ध और सीधा अर्थ हो जाता हैं'। (पृ० १५९—१६०)

प्राचीन सूर्य सिद्धान्त—ऋग्वेद के ५वें मण्डल के ४०वें सूत्र में संसार की सबसे पुरानी खगोल सम्बन्धी वेध क्रिया का इतिहास संकेत है। सूर्य सिद्धान्तकार ने अपने ग्रन्थ का रचना काल वैवस्वत मनु काल के आरम्भ में बताया है[2]।

१—दलीकृतं चक्रमुशन्ति चायं, को दण्ड खण्ड खलु तुर्भगोलम्।
इसका उपयोग चक्र यन्त्र की तरह ही होता होगा।

२—कल्यादस्याचमनवः षड्व्यतीताः ससन्धयः।
वैवस्वतस्य च मनोर्युगानां त्रिघनो गतः। २२
अष्टाविंशाद्युगदस्याधातमेतत्कृतं युगम्। २३ अध्याय १ तथा श्लोक २ भी देखिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साक्षी के अभाव में हम किसी ऐसे सूर्य सिद्धान्त की सत्ता न भी मानें तो कम से कम दो बातें तो स्वीकार करनी ही पड़ेंगी—अर्थात् ज्योतिः शास्त्र की खगोल शाखा सम्बन्धी खोज करने का क्रम आर्यों ने इतने अधिक पुराने समय में आरम्भ कर दिया था, और उनके प्राचीन शास्त्र जिस शैली पर लिखे गए थे – वह शैली इन प्रचलित ग्रन्थों के जैसी ही होगी[1]।

अन्य सिद्धान्त ग्रन्थ :—सिद्धान्त ग्रन्थों में से पैतामह जैसे दो चार ग्रन्थ गद्य में भी पाए जाते हैं, किन्तु सामान्यतः उनकी रचना अनष्टुयर्या आर्या छन्दों में या और किसी अधिक प्रचलित छन्दों में की गई है। प्रायः सबही ग्रन्थों का आधार कोई एक ग्रन्थ जान पड़ता है, जहाँ से मूल अभिप्रायः लेकर भिन्न २ लेखकों ने अपने ग्रन्थ रचे हैं, क्योंकि मूलतः प्रायः सब ही सिद्धान्त एक बात को भिन्न २ शब्दों में कहते हैं। अवश्य ही कही २ मगणों की संख्या में अथवा किसी २ स्थान में उन छन्दों में जो निकालकर रखे गए हैं थोड़ा बहुत भेद भी पाया जाता है, ऐसा ग्रन्थ कोई भी नहीं है जिसके दो चार श्लोक अन्य ग्रन्थों में ज्यों के त्यों न पाए जाते हों। सोम सिद्धान्त के ३३१ श्लोकों में से आधे से अधिक श्लोक सूर्य सिद्धान्त में आए हैं। इस ग्रंथ में कुल १० अध्याय हैं। ब्रह्म सिद्धान्त मे ६ अध्याय तथा ६७१ श्लोक हैं। इस ग्रन्थ को ब्रह्मा ने नारद को पढ़ाया था, ऐसा इसके आदि में ही लिखा पाया जाता है। किन्तु इस के श्लोकों की रचना अधिकतर स्वतन्त्र कवि की कृति है। पैतामह सिद्धान्त के नाम से जो ग्रन्थ मिलता है—वह वास्तव में विष्णुधर्मोत्तर ग्रन्थ का एक अंश है। वृद्ध वशिष्ठ सिद्धान्त की रचना भी अधिकतर सूर्य सिद्धान्त से मिल जाती

१—सिद्धान्त तत्त्व विवेक के लेखक ने ज्योति शास्त्र के विकास का क्रम इस तरह लिखा है—

ब्रह्मा प्राह च नारदाय हिमगुर्यच्छौनकायामलम्।
माण्डव्याय वशिष्ठ संज्ञक मुनिः सूर्यो मयाव्याहयत्।
प्रत्याक्षागम युक्तियुक्त, तदिदं शास्त्रम् विहायान्यथा।
यत्कुर्वन्ति नराधमास्तु तदसद्वेदोक्ति शून्या भृशम्।

इनके अतिरिक्त मय, शुक्र, गर्ग, पाराशर, असित, देवल, वृद्ध गर्ग, कश्यप, भृगु, वशिष्ठ, वृहस्पति, मनु, सारस्वत, ऋषिपुत्र, व्यास, भानु, विष्णु गुप्त, यवन, रोमक, सिद्धासन, नन्दी, नग्रजित् आदि संहिताकार भी कहे जाते हैं। शाकल्य आदि कई ऋषियों के नामों से भी स्थान २ पर श्लोक या गद्यमय वाक्य उद्धृत पाए जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ज्योतिः शास्त्र में प्राचीन आर्यों ने बहुत सा साहित्य तैयार किया था।

अठारह सिद्धान्तकारों में यद्यपि सोम और ब्रह्म का नाम नहीं आया है; किन्तु इनके नाम से सिद्धान्त ग्रंथ प्राप्त होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। इसमें १३ अध्याय हैं, अन्तिम अध्याय में पौराणिक क्रम से भूगोल का वर्णन पाया जाता है। इस पुस्तक की पुष्पिका में इसे 'विश्व प्रकाश का गणित स्कन्ध' लिखा है, जिसमें ५४४ श्लोक हैं, इसकी रचना पौराणिक काल की जान पड़ती है। किन्तु इन सब सिद्धान्तों में पूर्ण तथा आनुक्रमिक रूप से सूर्य सिद्धान्त ही है, और प्रायः इसका ही सर्वत्र प्रचार है। सूर्य सिद्धान्त के १४ अध्यायों में कुल ५३५ श्लोक हैं यदि वशिष्ठ सिद्धान्त में से प्रश्नोत्तर सम्बन्धी श्लोक कम कर दिए जाय, जो प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में ५ से कम नहीं है—तो उस की श्लोक संख्या ५०० से कम रह जाती है।

युग पद्धति और ग्रहों के मगण—इन ग्रन्थों की प्रधान विशेषता युग पद्धति तथा युगों के मगणों की संख्या देकर ग्रह-गणित समझाने की कथा है। यह आज तक भी निर्णय नहीं हो सका कि युग-मगणों की संख्या ऋषियों ने किस प्रकार ज्ञात की थी[1]। हो सकता है कि चन्द्र से लेकर शनि तक के मगण बार बार वेध द्वारा ही ऋषियों ने जाने हों, किन्तु मन्दोच्चों के मगण किसी प्रकार भी प्रत्यक्ष वेध से सिद्ध नहीं किए जा सकते, क्योंकि इनकी गति अत्यन्त कम है सूर्य मन्दोच्च के एक कल्प में केवल ३८७ मगण होते हैं, जिसकी एक वर्ष की गति ·११६१ विकला से अधिक नहीं होती। अवश्य ये सूक्ष्म गति वाले मगण भारतवासियों ने यूनानियों से नहीं लिए थे, क्योंकि यूनानियों की गणना भारत की गणना की अपेक्षा अशुद्ध तथा स्थूल है। दोनों देशों के विद्वानों की गणना का मुकाबिला सूर्य सिद्धान्त के विज्ञानभाष्य पृष्ठ ५२ पर किया गया है, जिनसे प्रकट होता है कि भारतीय सिद्धान्तकारों ने केवल स्वतन्त्र अनुभव से इन सब मगणों को जाना था, न कि यूनानियों वा अन्य देश वालों से

१—सातुतत्तद्भाषा कुशलेन तत्तत् क्षेत्र संस्थानज्ञेन श्रुत गोलेनैव श्रौतुं शक्यते नान्येन। यह मन्दशीघ्रोच्च पाताः स्वस्व भार्गेषु गच्छन्तः एतावतः पर्यायान् कल्ये कुवन्तीत्यत्रागम एव प्रमाणम्। स चागमो महता कालेन लेख का ध्यापकाध्येत् दोषै र्बहुधा जातः तदा कतमस्य प्रामाणाम्? अत्र यद्येवमुच्यते गणित स्कन्ध उपपत्तिमाने वागयः प्रमाणम्। उपपत्या ये सिध्यन्ति मगणास्ते ग्राह्याःस्तदपि न यतोऽतिप्राज्ञेन पुरुषेणोपपतिर्ज्ञातुमेव शक्यते। न तदा तेषां मगणाना मियता-कर्तुं शक्यते पुरुषायुषोल्पत्वात्। उपपत्तौ तुग्रहः प्रत्यहं यन्त्रेण वेध्यः मगणान्तं यावत्, एवं शनैचश्रस्यतावद्वर्षाणां त्रिंशता मगण पूर्यते। मन्दोच्चावान्तु वर्ष शतैरनेकैः। अतो नाममर्थं पुरुष साध्य इति। अतएवाति प्राज्ञागणकाः साप्रतोप लब्ध्यनुसारिणा प्रौढ़ प्रणकस्वीकृत कमप्यागममङ्गीकृत्य ग्रहगणित आत्मनो गणित गोलयोर्निरतिशयं कौशलं दर्शयितुं तथान्यैर्भ्रान्ति ज्ञानेनान्यथोदितानर्थाश्च निराकर्तुमन्यान् ग्रन्थान् रचयन्ति। भास्कराचार्य का मत—सूर्य सिद्धांत के विज्ञान भाष्य पृ० ३७ पर उद्धृत।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सीखा था, जैसा कि कुछ पश्चिमी विद्वानों का मत है। यही मत दूसरी युक्तियों के आधार पर सुकुमार रञ्जन दास ने भी व्यक्त किया है।[1]

दिन—सिद्धान्तों में सप्ताह के नाम भी प्राप्त होते हैं। यद्यपि संसार भर में वार ७ ही पाए जाते हैं, और सर्वत्र उनका क्रम भी एक ही है, किन्तु इनका आरम्भ कहां से हुआ, इस विषय में विद्वानों का मत भेद हैं। सच बात तो यह है कि सप्ताह के नामों की व्युत्पत्ति भारत को छोड़कर 'सब ही देशों में कल्पित देवी देवताओं के पूजन के साथ की जाती है। अरब वाले अपने सप्ताह के दिनों को पहिला दिन–दूसरा दिन आदि कहते हैं; किन्तु केवल भारतवासी ही उनके नामों को सात ग्रहों से मिलाकर उनकी व्युत्पत्ति के विषय में कुछ वैज्ञानिक कारण बताते हैं। सिद्धान्तों के अनुसार ग्रहों की कक्षा इस क्रम से है—शनि, वृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्रमा। ये ग्रह पृथ्वी से क्रम से निकट होते गए हैं अर्थात् शनि सबसे दूर और चन्द्रमा सबसे निकट हैं। किसी वार के २४ घण्टों में बारी-बारी से ये ग्रह भी इसी क्रम से घण्टापति या होरापति माने गए हैं। इस तरह शनिवार को सूर्य शनि के होरा में उदय होकर फिर ८वें, १५वें और २२वें घण्टे में शनि का होरा बर्तता है। तेईसवां होरा वृहस्पति का और चौबीसवां मगल का होता है। उसके पीछे २५वां घण्टा या अगले दिन का पहिला घण्टा सूर्य का होता है, इसीलिए शनिवार के पीछे रविवार या सूर्यवार गिना जाता है। उस दिन का भी २२वां घण्टा सूर्य का होकर २३वां शुक्र और २४वां बुध का होता है, तथा २५वां चन्द्र का अतः रविवार के पीछे चन्द्रवार ही आरम्भ होता है। इसी तरह सब ही दिन अपने होरा आरम्भ होते हैं तथा उनसे आगे के ग्रह का होरा आता रहता है; जिस से वार बन जाता है।

भारतीयों ने, क्योंकि ग्रहों से सम्बन्ध स्थिर करके ही ये नाम रखे थे, अतः वे वार के दिन के नाम को भी ग्रह के नाम के अनुसार ही कई प्रकार से लिखते पढ़ते हैं, जैसे रविवार को आदित्यवार, सूर्यवार, दिवाकर दिन आदि, सोमवार को चन्द्रवार आदि, वृहस्पतिवार को गुरुवार आदि और शुक्रवार को भृगुवार आदि। इन मूल नामों की नकल सब ही देशों ने की थी. और इन्होंने भी अपने नाम इसी प्रकार रखे थे, किन्तु वे इस तरह से एक वार को कई तरह से नहीं बोल सकते, चाहे एक ग्रह के कई नाम भी हों; जैसे बुध को वैडस्नैस्डे के अतिरिक्त अर्करीडे नहीं कहा जा सकता या थर्स डे को जुपिटर डे कहना असम्भव है। यह युक्ति ही दिनों के भारतीय नामों की मौलिकता सिद्ध करने के लिए यथेष्ट है।

इसके अतिरिक्त वेदाङ्ग के पञ्चाङ्ग में भी वार निर्णय का उल्लेख किया

१—"The Journal of Oriental Research" Inobid in the Vedic Magazine & Gurukl Sarvaehar Sept. 1928.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया है। ऋग्वेद में 'अहः' शब्द के अतिरिक्त वासर शब्द भी आया है। यज्ञों के लिए 'प्रथमाह', द्वितीमाह, पञ्चमाह, सप्ताह, द्वादशाह आदि की गिनती की जाती थी, क्योंकि यज्ञ का आरम्भ किसी भी दिन हो सकता था; वे वार के अधीन नहीं थे। यही कारण है कि ऐसे अवसरों पर वार के नामों का उल्लेख नहीं पाया जाता।

राशि चक्र—राशि चक्र की १२ राशियों का नाम सिद्धान्त ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से पाया जाता है, यद्यपि राशियों का कार्य वेदांग में नक्षत्रों से लिया गया है। विदेशी विद्वान् इसके आधार पर कहते हैं कि संस्कृत में १२ राशियों के नाम प्रायः यूनानी नामों के अनुवाद हैं, अतः यह राशि चक्र का विधान यूनानियों या बैबीलोनिया वालों से भारतवासियों ने ग्रहण किया था।

यह मानना पड़ेगा कि भारतवासी सूर्य को ऋतु का कारण समझते थे[1], एवं वर्ष को १२ मास में विभक्त कर चुके थे।[2] ये १२ मास भी ३६० सौर दिवसों में बांटे गए थे, तथा चन्द्र वर्ष और सवन दिन की गणना समान करने के लिए एक मल मास की कल्पना भी वैदिक काल में पुष्ट हो चुकी थी।[3] प्रत्येक मास के सूर्य के नाम भी आगे चल कर नियत कर लिए गए थे। इस प्रकार सूर्य के मार्ग के १२ भागों की कल्पना करके भी भारतवासी खगोल के राशिचक्र की कल्पना नहीं कर सके होंगे यह बड़े आश्चर्य की बात है। हो सकता है कि ये १२ विभाग स्वयं करके भी उन्होंने उनके नामों के लिए विदेशियों का आश्रय लिया हो। और कोई भी कारण नहीं हो सकता कि भारतवासियों ने ही ये नाम यूनानियों से लिए। प्रचलित राशियों के नामों की उपपत्ति का सन्तोषजनक उत्तर अभी नहीं दिया जा सका है और न अभी किसी वैदिक ग्रन्थ में उनके समानार्थी शब्द पाए गए हैं, किन्तु मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह, वृश्चिक आदि नामों में ऐसा कौनसा नाम है, जिसका प्रयोग वेद में प्रसंग के अनुसार नहीं किया गया हो। जष और मत्स्य नामक तारापुञ्जों का उल्लेख अथर्व वेद में पीछे दिखा चुके हैं। ऐसी दशा में यह बिल्कुल सन्दिग्ध है कि संस्कृत साहित्य में ये नाम विदेश से आए।

१—मुखं वा एतदृतुनां यदृतेन। तैत्तिरीय० ११।२।१७ यस्माद्वाता ऋतुथापवन्ते। अथर्व वेद १३।३।२

२—द्वादश प्रधयश्चक्रमेकम् त्रीणि नभ्यानिक उतच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः।
तथा—द्वादशाकृति दिव आहुः। ऋग्वेद मं० १ सूक्त १६४ मंत्र १२ और ४८

३—अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते। अथर्ववेद १३।३।८
तथा वेद मासो धृतव्रतो द्वादशः प्रजावतः। वेदीय उपजायते। ऋग्वेद मं० १।२५।८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूर्य का एक नाम 'हरिः' भी है, और उसका बहुवचन 'हरय'[1] है वह किरणों के अर्थ में वेद में व्यवहार किया गया है। किन्तु यूनानी में सूर्य को 'हेलि' कहते हैं। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि हेलि के यूनानी नाम को देखकर सूर्य का 'हरिः' नाम रख लिया गया है ?

सिद्धान्त ग्रन्थों में संक्षेप में इतने विषयों का उल्लेख किया जाता है—(१) ग्रहों के महायुगीय (या युगीय) मगणों, मन्दोच्चों, शीघ्रच्चों और पातों की संख्या बताकर उनके आधार पर ग्रहों को मध्यम स्थान पर जाना (Mean Place of the Planet) तथा सावन, सौर, चान्द्र आदि दिनों की कल्पना की संख्या कहकर चान्द्र तिथि, सौर तिथि और मास की गणना करना, और अहर्गण बनाकर आगे की गणित की भित्ती तैयार करना। ग्रहों को स्पष्ट करने के लिए दशांश, अक्षांश, नाड़ीवलय, दिक्मंडल आदि की योजना करना, भूमि का व्यास आदि जानकर अक्षज्या आदि बनाना। (२) ग्रहों को स्पष्ट करने तथा तात्कालिक बनाने के लिए अनेक तरह के संस्कार देकर गणित करना, ग्रहों के उदय, अस्त; वक्री, मार्गी शीघ्रचर, मन्दचर आदि जानना, धुज्या, क्षितिज्या, चरज्या आदि के द्वारा ग्रहों का वास्तविक स्थान निकालना आदि। (३) त्रिप्रश्नाधिकार में सूर्य के वेध से देश और काल की जानकारी प्राप्त करना अर्थात् प्रत्येक ग्रह, नक्षत्र आदि का अपने इष्ट स्थान से देश और काल जानने के लिए सूक्ष्म रीति से गणित द्वारा विवेचन करना, अनेक प्रकार से काल (समय) को जानना, सूर्य की क्रान्ति से उसका सायन, भोग, नतांश, मध्यकालिक छाया, छायाकर्ण, उदय, अस्त का समय, दिनमान आदि जानना। ये दोनों स्थान केवल त्रिकोण मिति, गोलीय त्रिकोण मिति तथा बीजगणित की उच्च जानकारी के बिना समझे नहीं जा सकते। (४) चन्द्र ग्रहण के लिए दोनों के व्यास जानना, चन्द्रकक्षा में पृथ्वी की छाया जानना, चन्द्र के पात का स्थान मालूम करना, तथा कहाँ रहने से कब और क्यों ग्रहण पड़ता है आदि ज्ञात करना; ग्रहण का स्वरूप, आरम्भ, मध्य और अन्त जानना आदि। (५) सूर्य ग्रहण सूर्य के लवन और नति को जानना अम्बन का संस्कार देकर असत्कर्म से अमावस्या का काल निश्चय करना, नति और चन्द्रमा के क्षर जान कर ग्रहण की स्थिति, विभर्द, स्पर्श, मोक्ष आदि जानना। (६) पिछले दो विषयों को परिलेख (Diagram) आदि के द्वारा स्पष्ट समझाना, और ग्रहणों की परिलेखी (Drawing) खींचना। (७) ग्रहों के युद्ध, समागम, युति, उदय और अस्त की विवेचना, इक्कर्म की रीति से युद्ध समागम आदि का स्थान और संयम जानना, पञ्चताराओं के मध्यम तथा स्पष्ट बिम्बमान निकालना युद्ध या युतिकाल में ग्रहों के आने जाने की दशा जानना आदि। ये भी एक प्रकार के ग्रहण हैं, तथा प्रायः कई अँशों में वैसी ही क्रिया उनके लिए भी यहाँ करनी पड़ती है। (८) ग्रहों के अतिरिक्त

१—कृष्णं निपानं हरयः सुपर्णाअपो वसाना दिवमुत्पतन्ति। ऋ० १।१६४।४७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्य नक्षत्रों के साथ ग्रहों की युति जानना, नक्षत्रों के भोग, ध्रुवा तथा विक्षेप ज्ञात करना, नक्षत्रों को आकाश में देख कर पहिचानना एवं वेध करना, योग ताराओं को पहिचानना। (९) ग्रहों के उदयास्त आदि के समय का निर्णय करना, नक्षत्रों और ग्रहों के कालांश तथा क्षेत्रांश जानना। (१०) चन्द्र का उदयास्त जानना, चन्द्र के उदय होने का प्रकार निकालना और यह ज्ञात करना कि उसका शृंग किस दिशा को उठा हुआ निकलेगा, चन्द्रमा के कालांश तथा उसके सित और असितम्मान का साधन करना। (११) पातों की व्याख्या तथा पात बिन्दु की गति की विवेचना। (१२) भूगोलाध्याय, भूमिका विस्तार, गणित सम्बन्धी भूगोल, ऋतु विज्ञान, पृथिवी से सूर्य चन्द्र आदि की दूरी। (१३) यन्त्रों का वर्णन जिनका उपयोग भारत में प्राचीन काल से होता आ रहा है। (१४) चान्द्रमान सूर्य मान, दैव मान, पितृ मान आदि मानों की परिभाषा।

भू केन्द्रक और सूर्य केन्द्रक सिद्धांत—इस प्रकार खगोल शास्त्र को भारत के विद्वानों ने बहुत समय पहिले ही पूरा कर लिया था। इनमें से अनेक बातें तो योरोप में पिछले १००–२०० वर्ष के भीतर ही जानी जा सकी हैं। भारत के सब ही ज्योतियों ने भू केन्द्रक सिद्धान्त grocentric & theory का अनुसरण नहीं किया है। किन्तु आर्य भट्ट ने सूर्य के शुक सिद्धान्त के अनुसार गणना की, तथा भूमिका सूर्य की परिक्रमा करना स्वीकार किया है। आकर्षण का सिद्धान्त भारत में वैदिक काल में ही ज्ञात था, एवं सूर्य को आकर्षण का एक प्रधान केन्द्र माना गया था—सूर्य स्वयं भी अपने नाभि–बिन्दुओं में घूमता है।[1]

यन्त्रों का वर्णन—ज्योतिः शास्त्र मुख्यतया कील या समय से सम्बन्ध रखता है, तथा उसके नियमों की सचाई ज्ञान सूर्य आदि ग्रहों की स्थिति को प्रत्यक्ष देख कर होता है। इन्हीं अभिप्रायों के लिए प्राचीन काल से ही भारत के गणितज्ञों के अनेक यन्त्रों की सृष्टि की थी।[2] एक बात और भी है। गणित चाहे कितनी सूक्ष्म की

१—आकृष्णेन रजसावर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च।
हिरण्येन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ यजुर्वेद॥

२—काल संसाधनार्थाय तथा यन्त्राणि साधयेत्।
शंकु यष्टि धनुश्चक्रैश्छाया यन्त्रैरनेकधा॥
गुरूपदेशाद्विज्ञेयं काल ज्ञानमतन्द्रितै।
सूर्य सि० अ० १३ श्लोक १९–२० आदि
ग्रहनक्षत्र चरितं ज्ञात्वा गोलं च तत्वतः। अध्याय १३ श्लोक २५
दिनगत कालावयवाज्ञातुमशक्या यतोविनायन्त्रैः।
वक्ष्ये यन्त्राणि ततः स्फुटानि संक्षेपः कतिचित्॥
सिद्धांत शिरोमणि पंचाध्याक १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाय, फिर भी कुछ न कुछ वास्तविक से भूल रह ही जाती है। चाहे वह 'विकला-कोट्यांशादि नाम लक्ष्यत्वात्' जैसी अत्यल्प होने के कारण हमें प्रत्यक्ष न जान पड़े, और कालान्तर में यही अशुद्धि बढ़ते बढ़ते जब अधिक बढ़ जाती है तो उसे सुधारना पड़ता है। इसे 'बीज देकर सुधारना' या (Correction) कहते हैं। इस बीज के लिए भी यह आवश्यकता पड़ती है कि समय २ पर यन्त्रों के द्वारा ग्रहों को वेध कर स्पष्ट देखा जाय।[1] इसी लिए प्राचीन काल में अनेक प्रकार के उपयोगी यन्त्र बनाए गए थे।

तुर्य यन्त्र—ऐसे यन्त्रों में से तुरीय या तुर्य यन्त्र का उल्लेख ऊपर (तुरीयेण ब्रह्मणा) किया जा चुका है। सिद्धांत शिरोमणिकार ने इसका उल्लेख चक्र यन्त्र और चाप यन्त्र के साथ किया है। अतः वहाँ ही इसके विषय में विशेष लिखा जाएगा। कुछ विद्वानों का विचार है कि शंकु यन्त्र भी वैदिक समय में व्यवहार में होता था।

घटी यन्त्र—समय मापने के सबसे प्राचीन यन्त्र का नाम भी घटी का और आजकल भी उसे घड़ी कहते हैं। घड़ी शब्द स्वयं 'घटी' की अपभ्रंश है, किसी समय में दिन को ६० विभागों में बाँटा गया था, और एक भाग को 'घड़ी' या 'घरी' कहा जाता था। इतना समय बतलाने वाले उपकरण को भी सर्व साधारण मनुष्य घड़ी कहने लगे। प्राचीन घड़ी का रूप इस प्रचलित जेबी या लङ्गर वाली अथवा स्प्रिङ्गदार घड़ियों से अलग था। वे जल-घड़ी या पानी की घड़ी होती थीं, और दो प्रकार की बनाई जाती थीं—जिस से एक घड़ी का समय जानते थे, उसे घटी (वा नाड़िका यन्त्र भी) कहते थे, और जिससे एक घण्टे का समय जानते थे। उसे कयाल यन्त्र कहते थे। धातु की एक नलिका ऐसी बनाई जाती थी—जो एक द्रोण से ३ कुडव जल से भर जाती थी। उसको 'नाड़ी' 'नड़िका' या 'नाली' भी कहते थे। इतने मान की नली जितनी लम्बी होती थी, नापने में उतनी ही सुविधा पड़ती थी। इसके साठ भाग करके प्रत्येक भाग को चिन्हित कर देते थे, एवं प्रत्येक भाग को 'पल' कहते थे, अर्थात् १ नाड़ी या घड़ी में ६० पल कल्पना किए गए। किन्तु वैदिक पञ्चांग में नाड़िका से छोटी समय की इकाई प्रस्थ स्वीकार की गई है,

---

१—युगानां परिवर्तनेन कालभेदोऽत्र कारणम्॥ सूर्य० अध्याय १। ९

तथा—तथा च कालवेशन ग्रहचारे किञ्चिद्वैलक्ष्यण्यं भवतीति युगान्तरे तत्तदनन्तरं ग्रहचारेषु प्रसाध्य लोकव्यवहारार्थं शास्त्रान्तरमिव.....प्रत्युपदिश्यते इति भावः। एकञ्च युगमध्येऽप्यवान्तरे काले ग्रहचारेष्वन्तर दर्शने तत्तत्काले तदन्तरं प्रसाध्य ग्रन्थास्तत्कालवर्तमानाभि युक्ताः कुर्वन्ति। तदिदमन्तरं पूर्व-ग्रन्थे बीजमित्यामनन्ति। गूढ़ार्थ प्रकाशिका।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और एक नाड़ी में १५$\frac{१}{४}$ प्रस्थ माने जाते थे, तथा एक प्रस्थ का भाग ३$\frac{५७}{६१}$ पल होता था। प्रस्थ की कल्पना ही सब से पहिले समय नापने के लिए क्यों की गई? यह भी एक अच्छा प्रश्न है। वेदांग में लिखा है कि एक अयन काल (अर्थात् ६ मास) में दिन रात की ह्रासवृद्धि का अन्तर ६ घड़ी होता है। इन ६ मासों में १८३ सावन दिन होते हैं। अतः यह $\frac{+}{-}$ का अन्तर भी १८३ भागों में ही बाँटना उचित समझा, एवं ६ घड़ी को १८३ भागों में बाँट दिया गया। छः घड़ी या दिन रात्रि के $\frac{१}{६०}$ भाग का १८३ वाँ भाग $= \frac{६०}{६०} \times \frac{६०}{६०} \times \frac{१}{१८३} = \frac{१२०}{६६०}$ ही प्रति दिन रात्रि की वृद्धि ह्रास का मान था। इतने समय को 'प्रस्थ' मान कर निश्चय किया कि एक अयन में १८३ प्रस्थ रात्रि का ह्रास होकर दूसरे अयन में इतनी ही वृद्धि होती है, और यह सब मिलकर ६ घड़ी के बराबर होता है।

प्रस्थ का मान—प्रस्थ एक तोल का नाम है। उक्त गणना के अनुसार एक घड़ी में $\frac{१८३}{१२}$ = १५$\frac{१}{४}$ प्रस्थ होते हैं। ऊपर प्रस्थ का मान '१ द्रोण–३ कुड़व' बताया गया है—जो १९०$\frac{५}{८}$ पल का होता है। पल कहीं चार तोले का और कहीं ८ तोले का लिखा मिलता है, चाहे—पल का मान कुछ भी माना जाय, उक्त अनुपात में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ेगा। १५$\frac{१}{४}$ प्रस्थ जल की नली का $\frac{१}{१५\frac{१}{४}}$ भाग जितने समय में निकलता था। उस काल को उस समय 'प्रस्थ' नामक समय की इकाई समझा जाता था। यह जल कैसे निकलता था? किसी बड़े पात्र में एक एक प्रस्थ के माप के जल के चिन्ह करके उसकी पैंदी में उक्त नली लगाकर उसका जल निकाला जाता होगा। यह जल जिस पात्र में पड़ता होगा। उसमें भी उक्त निशान होते होंगे। बस यहीं नली यन्त्र या नलिका यंत्र होगा, जिससे उस समय काल की माप करते थे। उसकी जाँच दोनों पात्रों में होती थी—जिस पात्र से निकलता था। उसके चिन्हों से गत प्रस्थों की, और जिसमें जल पड़ता था—उस से शेष चिन्हों की।

पल—किन्तु बाद को इस यन्त्र में सुधार किया गया और दिन का उक्त ६० का भाग पूरे ६० भागों में बाँटकर प्रत्येक भाग का नाम 'पल' रखा गया, एवं प्रस्थ के स्थान में जल की इकाई भी पल ही स्वीकार की गई। श्रीपति आदि विद्वानों ने लिखा है कि जितने समय में एक पल जल बाहर गिरता है उतने समय को 'एक पल', तथा जितने समय में साठ पल जल गिरता है उतने समय को एक घड़ी कहते हैं। इस प्रकार के घडी यन्त्र के विषय में कौटलीय अर्थ शास्त्र में एक विशेष बात लिखी है, कि चार माशे सोने की चार अंगुल लम्बी शलाका (तार) की मोटाई के बराबर छिन्द्र जिस कुम्भ आदि पात्र की पैंदी में हों; उसमें से १ नाड़ी में १ आढक जल निकल जाता है[१]।

१—सुवर्ण माषकाश्चत्वारश्चतुरंगुलायामाः कुम्भच्छिन्द्रमाढकमंमसोवा नाड़िका।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूर्य सिद्धांत में इस यंत्र का स्वरूप इस तरह वर्णन किया गया है—ताम्बे का प्याला, जिसके पैंदे में ऐसा छिद्र हों जिसमें होकर जल भर जाने के कारण वह एक रात दिन में किसी जल भरे पात्र में रख देने से ६० बार डूबे वह घटी यंत्र कहलाता है[२] वास्तव में यह घटी यन्त्र बनाने के सिद्धांत का वर्णन है किसी घटी यंत्र का वर्णन नहीं है। वराहमिहिर, तथा ब्रह्मगुप्तादि ने भी इस का वर्णन लगभग ऐसा ही दिया है। किन्तु लल्लाचार्य ने अपने ग्रन्थ 'शिष्यधी वृद्धिद' के यन्त्राध्याय में विस्तृत वर्णन दिया है। उसने लिखा है १० पल ताम्बा लेकर उसका ६ अंगुल ऊँचा तथा १२ अंगुल चौड़ा प्याला बनवावे, उसमें ६० पल चल आता है। इसकी पैंदी में ३$\frac{1}{2}$ माशे सोने को ४ अंगुल लम्बी शलाका की मोटाई के बराबर छिद्र करे; यह यन्त्र नाद आदि जल पात्र में रखने से एक दिन रात में ६० बार डूबेगा[3]। सिद्धांत शिरोमणि-कार फिर अपने ग्रन्थ में सिद्धांत रूप से ही इस यन्त्र का उल्लेख करते हैं[१]। किन्तु अकबर के समय में इस यन्त्र का जो वर्णन अबुलफजल ने आइन अकबरी में लिखा है वह भी पढ़ने लायक है। उसने लिखा है कि हिन्दू लोग एक सेर ताम्बे का ऐसा प्याला बनाते हैं जो ऊपर परिधि में १२ अङ्गुल होता है और पैंदी की तरफ आते आते चौड़ाई में घटने लगती है, इसकी पैंदी में १ माशे सोने की ५ अंगुल लम्बी सुई की मोटाई के बराबर छेद किया जाता है; जिसमें होकर इसमें पानी जाता है। जब इसे नांद में भरे पानी में छोड़ देते हैं, और इसमें पानी भरने लगता है, तो १ घड़ी में यह पूरा भर जाता है[२]। ऐसा जान पड़ता है कि छिद्र करने के स्थान पर ४ माशे या ३$\frac{1}{3}$ माशे सोने की पोली शलाका बनाकर उसके द्वारा भी जल लेने की कोई २ व्यवस्था करते थे, और क्योंकि इस यंत्र में यह सोने की नली जल लेने या निकालने

कौटलीय अर्थशास्त्र प्रकरण ३८

कौटल्य के समय की कालागणना इस प्रकार है:—

१ नाड़ी = ४० कला = १२०० काष्ठा = ६००० निमेष = १२००० लव = २४००० त्रुटि।

२—ताम्रपात्रमधश्छिद्रं न्यस्तं कुण्डेऽमलाम्भसि।
षष्टिमज्जत्यहीं रात्रे स्फुट यन्त्रं कपालकम्। अ० १३ श्लोक २४।

३—दशभिः शुल्वस्य पलैः पात्रं कलशार्ध सन्निभं घटितम्।
हस्तार्थ मुख व्यास समघट वृत्तं दलोच्छ्रायम्।
सत्र्यंश मापकत्रय कृतनलया समस वृत्तयाहेम्ना।
चतुरङ्गुलया विद्धं मज्जति विमले जले नाड्या।
इसी अभिप्राय के श्लोक श्रीपति ने भी लिखे हैं—
शुल्वस्य दिग्सिविहितं पलैर्यत् षड्ङ्गुलोच्चं द्विगुणायतास्यम्।
तदम्भ सा षष्ठिपलैः प्रपूर्य पात्रं घटार्धप्रमितं घटी स्यात्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के लिए लगती थी, अतः इस यंत्र को नाली या नाड़ी यंत्र भी कहते थे।

शंकु यन्त्र—शंकु यन्त्र १२ अंगुल का शंकु के आकार का होता था, जिस पर अंगुल २ पर चिन्ह दिए होते थे। इस का भी उल्लेख कौटल्य के अर्थशास्त्र में व्यवहारिक दृष्टि से ही किया गया है। लिखा है कि जब मध्यान्ह से पहिले शंकु की छाया ८ गुनी हो–तो दिन का $\frac{1}{16}$ गत समझे, जब ६ गुनी हो तो $\frac{1}{14}$ भाग गत समझे, जब ४ गुनी हो तो $\frac{1}{2}$ भाग गत समझे, इसी तरह २ गुनी छाया से $\frac{1}{6}$ भाग, शंकु के बराबर लम्बी छाया से $\frac{1}{4}$, शंकु के $\frac{2}{3}$ की समान लम्बी छाया से $\frac{3}{10}$, $\frac{1}{3}$ लम्बी छाया से $\frac{3}{2}$ तथा शून्य छाया से $\frac{1}{2}$ भाग गत समझे। मध्यान्ह के पीछे इसी तरह उल्टे क्रम से प्राप्त भाग को शेष समझे तथा गत को मध्यान्ह में मिलाकर सम्पूर्ण गत जान ले[3]।

इस यंत्र को शंकु यन्त्र, छाया पौरुष यन्त्र, नर यन्त्र और शंकु द्वादशाङ्गुल भी कहते हैं। सूर्य सिद्धांतकार ने 'शंकु' और 'नर' ये दो नाम लिखे हैं, तथा इसका उपयोग मेघ आदि की सूर्य पर आड़ न होने पर सूक्ष्म काल साधन करने के लिए बताया है[1]। त्रि प्रश्नाध्याय के आरम्भ में इसी के द्वारा दिशा और काल साधन के लिए नियम दिए हैं[2]। कौटल्य के अर्थशास्त्र में इसे छाया पौरुष यंत्र लिखा है। सिद्धांत शिरोमणिकार ने इसे शंकु तथा शंकु यंत्र लिखा है, तथा बताया है कि इसका उपयोग दिशा, देश और काल के जानने में होता है[3]। ब्रह्मगुप्त ने लिखा है—

मूले द्वचंगुल विपुल सूच्यग्रो द्वादशाङ्गुलोच्चयः।
शंकुतलाग्र विद्धोग्रावेध लम्बाद ज्ञेयः।

शंकु यंत्र मूल में दो अंगुल विस्तार का और नोक पर सुई के जैसा बारीक तथा १२ अंगुल लम्बा होना चाहिए। इसे जहाँ खड़ा किया जाय, वहां से जहाँ तक

सत्र्यंश मास त्रय निर्मिता या हेम्नः शलाका चतुरङ्गुलास्यात्।
विद्धतया प्राकृन यंत्र पात्रँ प्रपूर्यते नाड़िकयाम्बुना तत्।

१—घटदल रूपा घटिता घटिका ताम्रीतले पृथुच्छिद्रा।
धुनि शनि मज्जन मित्या भक्तं धुनिशं घटीमानम्।
सिद्धांत शिरोमणि मंत्राध्याय श्लोक ८

२—आईने अकबरी के सन् १८९२ के छपे स्कररण के पृष्ठ ५७१ से अनुवादित।

३—द्वादशाङ्गुलो वितस्तिः छाया पौरुषञ्च। छाया यामष्टपौरुष्या मष्टादश भाग–श्छेद्यः। षट्पौरुष्यां चतुर्दश भागः। चतुष्यौरुष्यामष्टम भागः। द्विपौरुष्यां षड्भागः। पौरुष्यां चतुर्भागः। अष्टाङ्गुल्या त्रयोदश भागः। चतुरङ्गुलायां अष्टभागाः। अच्छायो मध्यांह इति। परावृते दिवसे शेषमेव विधान्। कौटिलीय अर्थ शास्त्र प्रकरण ३८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसकी छाया पड़े, वहां की जगह से लम्ब आदि जानने चाहिए। सिद्धाँत शिरोमणिकार इसे हाथी दाँत का बनाना बताते हैं।

जयपुर का शंकु यंत्र—जयपुर की वेध शाला में शंकु यंत्र का एक चबूतरा बना हुआ है, जिसका व्यास ३३ गज ९ इंच के लगभग है। इसके मध्य में शँकु गाढ़ने के लिये गढ़ा भी बना है। वृत्त को ६ भाग में बांटकर प्रत्येक भाग को १५ भागों में विभक्त किया गया है और वह भाग भी फिर १० भागों में बांटा गया है। इसी प्रकार अन्तिम अभाग करने के लिए प्रत्येक सब से छोटे भाग को ३ भागों में बांट कर इस ३६० अंश वाले वृत्त को ४३२०० भागों में बांटा है, जिसका प्रत्येक भाग ३० विकला के समान है। शंकु स्थापित न होने का कारण शायद यही है—कि इस यंत्र का उपयोग नहीं समझा गया। यदि यह क्षेत्र साफ और चिकना भी हो—तो ज्याखण्ड की कल्पना करके इस पर से कोटिज्या, उत्क्रमूज्या आदि ज्याएँ भी सरलता से सिद्ध हो सकती हैं।

५—भूगोल

भू परिभाषा—'भू' पृथ्वी का पर्याय और 'गोल' किसी गोल वस्तु का वाचक है। अतः भूगोल से पार्थिवगोल या उस पिण्ड का अभिप्राय है जिस पर यह

१—नर यंत्र तथा साधुं दिवा च विमले रवौ।
छायाः संसाधनैः प्रोक्तं काल साधन मुत्र तमम्। अ० १३ श्लोक २४

२—शिला तलेऽम्बु संशुद्धेवज्रलेपेऽपिवाससे।
तत्र शंक्वङ्गुलैरेव सम मण्डल मालिखेत। १
तंमध्ये स्थापयेच्छंकु कल्पना द्वादशाग्रुलम्।
तच्छायाग्रं संस्पृशद्यत्रवृत्ते पूर्वापरार्धयोः ।।२।।
तत्र विन्दू विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ।
तन्मध्ये तिमिना रेखी कर्तव्या दक्षिणोत्तरा ।।३।।
याम्पोत्तर दिशोर्मध्ये तिमिना पूर्व पश्चिमा।
दिङ्मध्य मत्स्यौः संसाध्या विदिशस्तद्वदेवहि ।।४।।
चतुस्त्रं वहिः कुर्यात्सूत्रैमध्या द्विनिर्गतैः।
भुज सूत्राङ्गुलैस्तत्र दत्तैरिस्ष्ठ प्रभास्मृताः ।।५।।
प्राक् पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सम मण्डलम्।
उन्मण्डलञ्च विपुवन्मण्डलं परिकीर्त्यते ।।६।।
रेखा प्राच्य परासाध्या विषुवद्छाग्रगा तथा।
इष्ट छाया विषुवतोर्मध्यमग्राभिधीयते ।।७।। त्रिप्रश्नाध्याय

३—समतल मस्तक परिधिर्भ्रमसिद्धो दन्ति दन्तजः शँकुः।
तच्छायसः प्रोक्तं ज्ञानं दिक् देश कालानाम्। यन्त्राध्याय।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रहते हैं। यह शब्द चन्द्र-गोल, सौर-गोल आदि की अपेक्षा अधिक रूढ़ है, और इसका अर्थ पृथ्वी का गोला है। पृथ्वी के मुख्य-मुख्य भागों, ऋतुओं तथा अन्यान्य प्राकृतिक दशाओं, पैदावार, बोली, मानव जाति उसकी विद्या, सभ्यता राजनीति, कला, व्यापार अर्थात् संक्षेप में सृष्टि के उद्भव (उत्पत्ति) विभव (स्थिति) और पराभव (प्रलय) के वर्णन को भूगोल-विद्या कहते हैं।

प्राचीन सिद्धांत—प्राचीन भारतीय विद्वानों ने भूगोल विद्या को खगोल विद्या की एक शाखा समझा था। उन्होंने सौराण्ड (Solar System) के और ग्रहों के साथ-साथ इस गोल का वर्णन भी अपने गोल-ग्रंथों में लिखा है। सूर्य सिद्धांत, आर्य भट्टीय सिद्धांत, शिरोमणि आदि ग्रन्थों के लेखक बराबर अपने ग्रन्थों में भूगोल के सम्बंध में भी एक-एक अध्याय लिखते रहे थे, जिसमें पृथ्वी की गणित, आकृति और गति आदि के अतिरिक्त पर्वत, नदी, सरोवर और मुख्य-मुख्य मानव जातियों तथा उनके नगरों का वर्णन पाया जाता है। साथ ही सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम भी वे देते हैं।

पृथ्वी का आकार—

अल्पकायतया लोका स्वस्थान्सर्वतोमुखम्।
पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्राकारां वसुन्धराम्।
सव्यं भ्रमति देवानां अपसव्यं सुरद्विषाम्।
उपरिष्टाद्भूगोलोयं व्यक्षेपश्चान्मुख; सदा।
अतस्तत्र दिनं त्रिशन्नाड़िकं शर्वरी तथा।
हानिवृद्धी सदावामं सुरासुर विभागयोः।
सर्वत्रैव महीगोले स्वस्थानमुपरिस्थितम्।
मन्यन्ते खे यतो गोलस्तस्यक्वोर्ध्वं क्वाप्यधः। सूर्य सिद्धान्त
भूगृह्यमानं गोलार्द्धं स्वच्छाया च वर्णानि।
अर्द्धानि यथासारं सूर्याभिमुखं दीप्यते। आर्य भट्टीय गोलपाद
अनुलोमगतिनौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानिभानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्।
उदयोयो लङ्कायां सोऽस्तमपस्सवितुरेव सिद्धपुरे।
मध्यान्हो यवकोटयां रोमक विषयेऽर्द्धरात्रः स्यात्। आर्य भट्ट
भूवृत्त पादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता।
भद्राश्चवर्षे नगरी स्वर्णआकार तोरणा। ३८
याम्यायां भारते वर्षे लङ्कातस्मिन्महापुरी।
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता। ३९
उदक् सिद्धिपुरी नाम कुरुवर्षे प्रकीर्तिता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तस्यां सिद्धा महात्मानो निवसन्ति गतव्यथाः। ४०
भूवृत्त पाद विवरास्ताश्चान्योन्यं प्रतिष्ठिताः। ४१
तासामुपरिगो याति विषुवत्स्थो दिवाकरः।
न तासु विषुवच्छाया नाक्षस्योन्नति रिष्यते। ४२
भद्राश्लेयरिगः कुर्याद भारते तूदयम् रविः।
रात्र्यर्द्धं केतुमालेतु कुरावस्तमयं तदा। ७०

सूर्य सिद्धान्त अ० ७२

पृथ्वी हम लोगों को वृत्ताकार–गोलाण्ड के आकार की अपेक्षा कुम्हार के चाक के समान चपटी दिखाई देती है। उसके वृत्ताकार होने में जो युक्तियाँ ऊपर श्लोकों में दी गई हैं वे संक्षेप में इस प्रकार हैं :—

(१) सुमेरु वासी देवों को यह पृथिवी सुमेरु वासी असुरों की उलटी दिशा में घूमती हुई जान पड़ती है, जो वास्तव में एक ही प्रकार से घूमती है। इसका कारण केवल ध्रुव विन्दुओं का वैपरीत्य है। इसका कारण यह है कि वे निवासी अपने से भिन्न दिशा वालों को दक्षिणवासी मानते हैं। इन्हीं ध्रुव विन्दुओं के अन्तर के अनुसार सामान्य ३० घड़ी की रात्रि घटती बढ़ती रहती है। इस ह्रास-वृद्धि का क्रम भी दोनों गोलार्द्धों में उसी तरह विपरीत है, अर्थात् जब उत्तरी ध्रुव देशों या कर्क रेखा के उत्तर में दिन (या रात) का घटना आरम्भ होता है। यह वृद्धि या ह्रास का व्यतिक्रम बिना पृथ्वी की वक्रता के नहीं हो सकता।

(२) सम्पूर्ण ग्रहों का (और उसी प्रकार पृथ्वी का भी) आधा भाग तो सूर्य के सामने रहने से प्रकाशित रहता है और आधा स्वयं ग्रह की छाया से ही प्रभाहीन रहता है, अर्थात् सूर्य के सामने जिस ग्रह का जो भाग आ गया, वहाँ दिन हो गया और शेष भाग में रात्रि। स्मरण रहे कि इस तरह सूर्य के सामने भी आधा ही भाग आता है; और सूर्य से बचा हुआ भी आधा ही भाग रहता है। इस विषमता का कारण एक गेंद को दीपक के सामने रखने से बिल्कुल स्पष्ट हो जावेगा।

(३) सब ही तारा आदि प्रकाशपुञ्ज हमें पूर्व से पश्चिम चलते जान पड़ते हैं। किंतु वास्तव में बात यह है कि जिस तरह किसी नाव या किसी और ऐसी सवारी में जहाँ बैठने वाले को हाल न लगे; को बैठा हुआ व्यक्ति अपने सामने के स्थिर वृक्ष मकान, नगर आदि को अपने से उल्टी दिशा में चलते देखते हैं उसी भू–नौका में बैठकर पश्चिम से पूर्व जाने वालों को (पृथ्वी वासियों को) वे तारा आदि पूर्व से पश्चिम को जाते दिखाई देते हैं। इस गति का फल यह होता है कि पृथ्वी पर एक ही समव में परम क्रांति भाग्य (गभस्तिमान् प्रदेश) में मध्याह्न, संध्या, अर्धरात्रि तथा प्रातः देख पड़ते हैं—लंका में उदय तो सिद्धपुरी में अस्त, और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यवकोटि में मध्याह्न तथा रोमक में मध्यरात्रि भी उसी एक समय में देखी जाती हैं। इस विरोध का कारण पृथ्वी की सतत वक्रता है। इन चारों विशेष नगरों के सम्बन्ध में लिखा है—कि भू वृत पर भारतवर्ष से पूर्व में भद्राश्व प्रांत में सुनहरी प्राकार और तोरण वाली यम (व) कोटि नगरी है। भारत के दक्षिण में लङ्का प्रधानपुरी है, और भारत वर्ष के पश्चिम में केतुमाल वर्ष में प्रसिद्ध रोमक नगर है। इसी प्रकार भारत वर्ष के उत्तर में कुरुवर्ष देश की राजधानी सिद्धपुरी है, जहां अनेक अनुभवी और उदार विद्वान् पुरुष निवास करते हैं। ये सब ही नगर भूवृत पर पाद पाद के अन्तर पर अर्थात् विषुवरेखा पर—या उसके निकट परस्पर ९०° अंश पर स्थित हैं, इसी लिए उन देशों में विषुवत छाया नहीं पड़ती है। हां यह अवश्य है कि जब भद्राश्व में मध्यान्ह होता है तो भारतवर्ष में उदय और केतुमाल में अर्ध-रात्रि तथा कुरु वर्ष में सूर्यास्त देखा जाता है।

सूर्य सिद्धांत का यह वर्णन भूगोल के आकार को, उसकी सतत गोलाई को, अच्छी तरह स्पष्ट कर रहा है।

सिद्धांत शिरीमणि के विद्वान् रचयिता ने 'चक्राकार' सम्बन्धी पुराणोक्ति का अच्छी तरह युक्तिपूर्ण खण्डन किया है। इसी से लोकालोक पर्वत, उदयाचल, अस्ताचल, तथा कुरान के कीचड़ के चश्मे आदि की कल्पित गाथाओं की निर्मूलता भी सिद्ध हो जाती है। तो भी पृथ्वी के गोल होने के सम्बन्ध में यहाँ थोड़ी सी विवेचना और की जाती है।

ऋग्वेद में लिखा है :—

चक्राणासः परिणाहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः। नहिन्वानां सस्तिरुस्त इन्द्रं परिष्वशो अदधात्सूर्येण। १-३३-८ तथा आप्रा रजांसि दिव्या पार्थिवा श्लोका देवः कृणुते स्वायधर्मणे। प्रवाहू अस्राक् सविता सवीमति निवेशयन् प्रसुवन्निर्भि जगत्। ऋ० ४। ५३-३।

किन्तु वर्तमान युग में प्रत्यक्ष के बराबर कोई प्रमाण स्वीकार नहीं किया जाता। इस लिए आवश्यक है कि पृथ्वी की वक्रता भी प्रत्यक्ष दिखाई जाय। यदि कोई जहाज दूर से आ रहा हो, तो हम सबसे पहिले जहाज के छोटे शिखर को ही देखेंगे, उसके बड़े तथा विस्तीर्ण पैंदे को नहीं। किन्तु वास्तव में होना यही चाहिए था—कि हम सबसे पहले उसके बड़े भाग को ही देखते; और छोटी चीज को उस समय, जब जहाज हमारे अधिक निकट आ जाता। ऐसा न होने का कारण पृथ्वी की सतत् वक्रता ही है—जिसका उल्लेख किया जा रहा है। वह जहाज के नीचे के बड़े भाग को देखने नहीं देती। ज्यों ज्यों दो वस्तुओं का अन्तर बढ़कर अधिक होता है, त्यों २ यह वक्रता अधिकाअधिक होकर पृथ्वी तल के निकट की बड़ी बड़ी वस्तुओं को भी हमारी दृष्टि से ढक लेती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२) यदि किसी गेंद पर एक नियत बिन्दु से एक ही दिशा को, बिना और किसी दिशा को मुड़े हुए, रेखा खींचें–तो वृत्ताकार घूम कर अन्त में हम उसी बिन्दु पर आ जाएंगे । इसी तरह भू तल के किसी स्थान से पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण को चल कर अगर हम बिना मुड़े हुए चले जायें, तो कुछ समय में हम उसी जगह आ जाएंगे, जहाँ से चले थे । इसका कारण केवल यही है—कि भू गोल गोलाकार है । इस तरह की कितनी ही भू परिक्रमाएँ अब तक की जा चुकी है ।

(३) ग्रहण के अवसर पर पृथ्वी की छाया ही सूर्य चन्द्र के प्रकाश को रोकती है, और वह छाया गोल होती है । इस से यही अनुमान पुष्ट होता है --कि पृथ्वी गोल है । क्यों कि छायाधार के अनुसार ही छाया पड़ा करती है ।

(४) जब सूर्य बुध, शुक्र आदि ग्रहों के विषय में यह निश्चय हो चुका है—कि वे गोल हैं तो उन ग्रहों के समान ही यह भू–ग्रह भी गोल क्यों न हो ?

(५) ज्यों ज्यों अधिक ऊंचाई पर हम पहुँच जाते हैं, त्यों त्यों भू तल का अधिक भाग हमें दिखाई देने लगता है । क्योंकि इस से पृथ्वी के मोड़ का विघ्न उसे देखने से नहीं रोक सकता । हवाई जहाजों के द्वारा एक समय मे अधिक से अधिक आधा भूगोल ही देखा जाना सम्भव है, शेष आधा भूगोल नहीं देखा जा सकता । क्यों कि वह भाग इस दिखाई देने वाले आधे भाग की आड़ में होता है । इससे भी एक गेंद की तरह उसका मुड़ा होना ही सिद्ध होता है ।

पृथ्वी का परिमाण—स्पष्ट है कि सब से बड़ा वृत्त जो भूतल पर बनाया जा सकता है वह विषुवत् वृत ही हो सकता है । और पृथ्वी की परिक्रमा करने वाले व्यक्ति या तो अपनी परिक्रमा के द्वारा, या उक्त वृत्त पर चल कर, उसकी परिक्रमा करते हैं, या उससे छोटे वृत्त पर चल कर; उसके चारों ओर घूम जाते हैं । किन्तु यह मानना पड़ेगा—कि पृथ्वी परिमित है, और माप के द्वारा उसका विस्तार तथा परिमाण आदि जाना जा सकता है । अतः पृथ्वी की तरह गोल आकार के पदार्थों का परिमाण आदि जिस तरह नापा जा सकता है । उसकी कुछ चर्चा यहीं करना आवश्यक है ।

विषुवत् रेखा को यदि पृथ्वी वृत्त की परिधि स्वीकार कर ली जाय, तो वृत्त का क्षेत्रफल और व्यास जानना, भूमिति के सामान्य प्रश्न रह जाते हैं । किन्तु प्रत्येक मनुष्य के लिए स्वयं भू परिक्रमा करके भू परिधि की सम्पूर्ण लम्बाई जान लेना सम्भव नहीं है, इसी लिए यहाँ अन्य उपायों का भी उल्लेख किया जाएगा ।

ऊपर ध्रुवदेशों का व्यास एक योजन बतलाया गया है । यह भाग गोलाकार नहीं, किन्तु चिपटे हैं, तथा एक ही समय में भिन्न भिन्न स्थानों में कहीं प्रातः, कहीं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संध्या, कहीं मध्यान्ह, और कहीं अर्ध रात्रि होने के विषय में भी कहा गया है। नौकास्थ पुरुष की यात्रा के उदाहरण से पृथ्वी का पश्चिम से पूर्व को जाने की बात भी ऊपर कही गई है। इन्हीं सबके आधार पर भूगोल के परिमाण की कई बातें स्पष्ट होती है।

अपनी आड़ पर घूमते हुए लट्टू की तरह—जिसके सामने दीपक भी रक्खा हो, पृथ्वी अपने अक्ष पर २४ घण्टे या ६० घड़ी में एक चक्कर कर लेती है। इसे ही दिन रात या अहोरात्रि भी कहते हैं। यह ६०/२ घड़ी का दिवस— रात्रि मान, अभस्ति मान या परम क्रान्ति वृत्त के देशों में सदा समान रहता है, किन्तु क्रान्तिवृत्त से बाहर (अर्थात् कर्क और मकर रेखा की सीमा से क्रमशः उत्तर और दक्षिण को निकल कर) रात्रि मान, तथा दिनमान में अन्तर पड़ने लगता है। यहाँ यह बात भी ध्यान देने की है—कि जो दिन मान २४ घण्टे का समझा जाता है, वह वास्तव में २३ घण्टा और ५६ मिनट तथा ४ सेकिण्ड के लगभग है, पूरा २४ घण्टा नहीं। वेद की एक ऋचा है :—

अनवद्या स्त्रिंशतं योजनान्ये कैकाक्रतुं परियन्ति सद्यः।

जहाँ सूर्योदय होता हैं, वहाँ से ३० योजन आगे (पश्चिम में) उषा होती है। इस तरह भू वृत्त के २४ यौ ६० भाग हो जाते हैं। एक घण्टा या एक घड़ी में भू वृत्त के ६० वें या २४ वें भाग में सूर्य का प्रकाश पहुँच जाता है, अर्थात् इतने समय में भू वृत्त के इतना अंश का आगे का भाग उक्त स्थान पर आ जाता है। इन दो विशिष्ठ स्थानों का अन्तर रेखांशों के द्वारा जाना जाता है, तथा दो स्थानों के समय के अन्तर को भी रेखांश के द्वारा प्रकट करते हैं। इस प्रकार की गणित का नियम यह है :—

वृत्त (अर्थात् २६० अंश) ६० घड़ी में पूर्ण होता है, तो ६० = १ वृत्त हुई। जब ३६० अंश तो ६० घड़ी में तो अमुक दो स्थानों का अन्तर (अंशात्मक) कितने समय में ! एक घड़ी में ६ अंश, तथा १० पल में १ अंश की गति इस प्रकार निकलती है।

यह याद रखने की बात है कि जितने स्थान एक ही रेखांश पर होते हैं, उन में सूर्योदय, मध्यान्ह, अस्त तथा मध्यरात्रि आदि सब कार्य एक साथ होते हैं।

इस प्रकार दो रेखांशों के मध्य के भू वृत्त को नाप कर ६० या २४ से गुणा करने से भूवृत्त परिधि निकल आती है। सूर्य सिद्धान्त में इसे ५०५९ योजन कहा है, और योरोप के विद्वान् २४८९९ मील कहते हैं। इस परिधि का व्यास सूर्य सिद्धान्त ने १६०० योजन तथा आर्य भट्ट ने १५०० योजन बयाया है, किन्तु पाश्चात्य विद्वान् १९२६ मील बताते हैं। चेम्बर्स इनसाई क्लोपीडिया में इसे ७९२६·६, तथा इण्टर नेशनल ज्योगरफी में ७९२८·४८५ ··· मील या ४१८५२४०४ फीट बतलाया है। इस सामान्य अन्तर का कारण गणित के नियमों की भिन्नता मात्र है। आर्य भट्ट

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के सम्बन्ध में नहीं कहा जा सकता—उसने यह व्यास किस समय की है, क्योंकि उस की सम्मति में पृथ्वी की बनावट समय समय पर बढ़ती घटती रहती है। इस लिए पृथ्वी के गोले का प्रमाण भी घटता बढ़ता रहता है। इस विषय में आर्य भट्ट तथा नवीन भूगर्भवेताओं के सिद्धान्त आगे दिए जाएंगे। इस प्रकार सम्भव है कि यही बात गणित-भूगोलों के सम्बन्ध में भी कही जा सके।[1]

१—सूर्य सिद्धान्त की गणित :—

योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णे द्विगुणानितु।
तद्वर्गतो दश गुणात्पदं भू परिधिर्भवेत्॥

पृथ्वी का व्यास १६०० योजन तथा उसकी परिधि $\sqrt{१६००^{२} \times १०}$ है। अब $\sqrt{१६००^{२} \times १०} = \sqrt{२५६००००००} = ५०५९·६४४०००$ आदि।

ब्राह्म स्फुट सिद्धान्त तथा सिद्धान्त शिरोमणि में क्रम से १५८१ और १५८१$\frac{१}{३४}$ योजन व्यास तथा ४५८१ से कुछ अधिक, और ४९६७ योजन परिधि लिखी है।

मृद्दहनजल मयानां विष्कम्भो योजनैः क्विनेन्दुनाम्।
शशि वसु तिथि भिर्यम पक्ष रसैः शून्य वसु वेदैः॥

(ब्रह्म स्फुट सिद्धांत तथा सिद्धान्त शिरोमणि भुवकोश श्लोक ५१-२)

सूर्य सिद्धांत के अनुसार π का मूल्य ३·१६२३ है किन्तु भास्कर का मत १२५० : ३९२७ : : १ : ३·१४१६ से कम, किन्तु ३·१४१५९९४२ से अधिक है। सूर्य सिद्धान्त के दिए व्यास को यदि भास्कर की π के मूल्य से गुणें, तो परिधि ५०२६·५७०० योजन आती है। किन्तु सूर्य सिद्धांत के अनुसार $\sqrt{१०}$ से गुणा करने पर ५०५९·७ से कुछ अधिक निकलती है। इसी अनुपात को आज कल भी पश्चिमी विद्वान् भास्कर के मतानुसार १ : ३ : १४१५९ गिनते हैं। आर्कीमीडीज ने इसे ३·१४२८१७ स्वीकार किया है। प्राचीनों में ब्राह्म सिद्धांत और सूर्य सिद्धांत एक ही मूल्य निश्चय करते हैं। इसी तरह पाश्चात्य विद्वानों के सिद्धांत भी देखिए:—

(१) १२१५ : ५७०२

(२) १०१० : ३१७३

(३) १३३ : ३५५ एड्रीयन मिटीयस का सिद्धान्त

(४) ३·१४१५९२६५३५ और ३·१४१५९२६५३७ के मध्य में पीला (yeela) का सिद्धान्त।

इस प्रकार मूल सूत्र मे आचार्यों का मतानैक्य सर्वत्र देखा जाता है। फिर फल एक कैसे निकल सकता है। किन्तु इस प्रकार के मतभेद से जो अन्तर प्राप्त होता है, हजारों, लाखों; या सैंकड़ों का भी नहीं हो सकता, जैसा कि—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऊपर कहा गया है कि ध्रुवदेश चिपटे हैं, तथा ध्रुव सम्बन्धी व्यास भी इसी कारण वैषव व्यास की अपेक्षा कुछ कम हो गया है। यह अन्तर उक्त साईक्लोपीड़िया में २७ मील तथा भूगोल में १४२६२४ फीट दिया है।

गयास उल्लुग़ात में लिखे व्यास का अन्तर है। परिधि के एक अंश को योजनों में नाप कर शेष ३५९ अंशों के योजन गणित द्वारा जान लिए जाते हैं। ब्रह्म-सिद्धान्त के अनुसार ४९९९·६ के लगभग परिधि का मान है। इसी परिधि को यदि भास्कर के सूत्र से निकाला जाय, तो ४५८१ होगी।

एक अड़चन योजन के माप की है। कहीं ८ कोस का योजन स्वीकार किया जाता है; और कहीं चार कोस का। आर्य भट्ट का मत है:—

यवोदरैरङ्गुलमष्टसंख्यैर्हस्तोऽङ्गुलैष्षडगुणितैश्चतुर्भिः।
हस्तैश्चतुर्भिर्भवतीह दण्डः क्रोशः सहस्र द्वितीयेन तेषाम्

२ हजार गज का कोश बैठता है, और ४ कोश का योजन। यदि स्वीकार किया जाय; जैसा कि अधिक विद्वानों का मत है, तो योजन में ८००० गज होते हैं। किन्तु इस गणित से सम्पूर्ण ज्योतिः शास्त्र की गणनाएँ मेल नहीं खाती।

चन्द्रगुप्त के दरबार में उपस्थित रह कर वृतान्त लिखने वाले मेगास्थनीज ने अपने वृतान्त में एक स्थान पर लिखा था—कि राज्य के बड़े बड़े कर्मचारियों में से किसी के सुपुर्द बाजार रहता है, किसी के नगर और किसी के सिपाही। ये सड़क बनाते हैं और हर दसवीं स्टेडिया पर (Stadia) रास्ते और दूरी को सूचित करने के लिए स्तम्भ उठाते हैं।" सौभाग्य से मेगास्थनीज का यह लेख उसके शेष बचे बचाए वर्णन में अब भी प्राप्त होता है। एवं वह छप कर प्रकाशित भी हो गया है। ये स्तम्भ कोस कोस भर पर थे, और कोस को १० नल्व में बांटा था। मेगास्थनीज प्रत्येक नल्व को यहाँ स्टेडिया कहता है—जो उसी के देश की एक माप का नाम है। यह ६०० कदम या ५८२ अंग्रेजी फिट, अर्थात् १९४ गज के बराबर होता है। यही एक नल्व था। इस प्रकार के दस नल्वों के १ कोस होने का उल्लेख अमर-कोश में भी पाया जाता है—'नल्वः किष्कुचतुः शतम्' भूमि वर्ग। यह नल्व ४०० हाथ का, और एक कोश ४०० × १० = ४००० हाथ या २००० गज का होता था। इसका चतुर्गुण ८००० गज के, अंग्रेजी गज इस प्रकार होंगे—१९० × १० × ४ = ७७४०; $\frac{७७४०}{१७६०}$ = ४·४ अंग्रेजी मील = एक योजन। ब्रह्म सिद्धान्त में कदाचित् इसी गणना से ४·५ मील के योजन को स्वीकार किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आजकल योजन का स्थान 'मील' ने ग्रहण किया है।

चेम्वर्स के विश्वकोष में लिखा है कि रोमन भाषा के मिलीयेर Melliare से निकला है। जिसका अर्थ '१००० कदम' है। रोमन कदम ५ रोमन फिट का; और एक रोमन फुट ११·६५ तथा ११·६० इञ्च के मध्य के बराबर होता है। इस तरह एक रोमन मील वर्तमान मील से लगभग १४३ गज कम था। योरोप के भिन्न भिन्न भागों में मील का माप अलग अलग पाया जाता है। इस विभिन्नता का कोई कारण ज्ञात नहीं होता। पहिले ५०० अंग्रेजी फीट का मील गिना जाता था। इस समय भौगोलिक या सामुद्रिक मील १ विकला या १·१५१ अंग्रेजी मील के लगभग बराबर माना जाता है। जर्मनी में भौगोलिक मील का चौगुना एक सामान्य मील स्वीकार किया जाता है। यह जर्मनी मील योजन के प्रायः लगभग होता है। जब एक प्रचलित माप का यह ढंग है, तो हजारों वर्ष के पुराने योजन और कोस की गणना का निश्चय करना तो बड़ा ही कठिन है।

एक बात और भी है—पृथ्वी के व्यास का परिमाण निकालने के लिए, जिस एक अंश को नाप कर गणित करने का विधान किया गया है। उस से भिन्न नियम भारतीय गणितज्ञ नीलाम्बर मैथिल ने वेध द्वारा भू व्यास जानने को इस प्रकार लिखा है:—

किसी यन्त्र से वा त्रिकोण मिति के द्वारा किसी पर्वत श्रृंग या ऊंचे स्थान की चोटी की ऊँचाई जान कर इस प्रकार भू व्यास जाना जाता है :—

यहाँ नीचे के भाग का कोण = ∠ पृ" वेक वे वेधशाला, के केन्द्र तथा पृ और पृ" पृथ्वी है। इस कोण का मान = ९०° − ∠ पृ" वे क इसकी कोटि = ∠ वे ख पृ। अनुपात वे ख त्रिभुज में।

ज्या ∠ वे ख पृ : वे पृ भुज : : ज्या ∠ पृ वे ख : पृ ख भुज

ज्या वे ख पृ : वे पृ भुज : : ज्या ∠ ९०° : वे ख के पृ ख त्रिकोण में ∠ पृ समकोण होने से जात्य है। और △ के पृ' ख में पृ' समकोण होने से जात्य है। दोनों ज्यात △ में कर्ण के ख एक ही है, अतः जात्य तुल्य हुए, और पृ ख भुज के पृ भुज के समान हुआ, अब वे ख में पृ ख के तुल्य ख पृ' जोड़ने से वे पृ' का मान हुआ, वे पृ' के जात्य में पृ' समकोण है वे कोण और के कोटि है; अनुपात—

ज्या ∠ वे के पृ' : वे पृ भुज : : ∠ के वे पृ : के पृ : के पृ' भुज यही व्यासार्द्ध है।

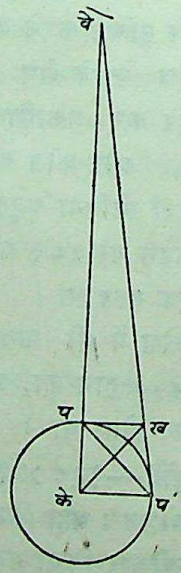

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूर्य कितने भूतल पर सीधी किरणें फैंकता है। इस अथवा एक अंश में कितने योजन होते हैं। इस विषय में सूर्य सिद्धांत कार ने लिखा है:—

भूवृत्तं क्रान्तिभागघ्नं भगणांश विभाजितम् ।
अवाप्त योजनैरर्को व्यक्षाद्यत्युपरिस्थितम् ।। अ० १२–९

भूवृत को भगणांश से भाग दें, तो क्रान्ति भाग के वे योजन प्राप्त होंगे। जहां सूर्य की किरणें सीधी पड़ेंगी। किन्तु क्रान्ति वृत्त के भीतर के देशों के लिए ही यह नियम है, सर्वत्र के लिए नहीं। इस प्रकार एक अंश का मूल्य १३·१२५ योजन या ३३६४८० और ३३६३६१ फीट के मध्य में है। अक्षांशों के भिन्न भिन्न रेखांशों की योजनात्मक गणना इस अध्याय के अन्त में दी गई है।

इसी प्रकार दोनों ध्रुवों का व्यवधान नापने के लिए भी सूत्र दण्ड दोनों आकाशस्त ध्रुव होंगे। सूर्य सिद्धांत में लिखा है:—

मेरोरुभयतो मध्ये ध्रुव तारे नभः स्थिते ।
निरक्षदेश स्थानां उभये क्षितिजाश्रये ।।
अतो नाक्षोच्छ्रयस्तासु ध्रुवयोः क्षितिजस्थयोः ।
नवति लम्बकांशास्तु मेरो रक्षांशकास्तथा ।। अ० १२ । ४३–४४

तथा आर्य भट्टीय :—

निरक्षदेशे क्षितिमण्डलेपगौ
ध्रुवौ नरः पश्यति दक्षिणोत्तराविति ।।

दोनों मेरुओं के ऊपर आकाश में दो ध्रुव तारे हैं (जिन के कारण मेरु भी ध्रुव कहे जाते हैं) जो निरक्ष देश से दिखाई पड़ते हैं। यह निरक्षदेश विषुवस्थान ही है। जहाँ से वे ध्रुवतारे क्षितिज में दिखाई देते हैं। यहाँ इनकी उन्नति शून्य होती है। अतः इस स्थान को निरक्ष देश भी कहते हैं। आर्य भट्टीय के विद्वान् टीककार ने लिखा है—

"उदग्दिशंयाति यथा यथा नरस्तथा तथा खान्नमृक्षमण्डलम् ।
उदग्ध्रुवं पश्यति चोन्नतं क्षितिरिति ।।"

ज्यों २ कोई मनुष्य निरक्षस्थान से उत्तर या दक्षिण की ओर जाता है; त्यों त्यों आकाशस्थ सप्तर्षि मण्डल और उत्तरी ध्रुव भूतल से ऊँचे दिखाई देते हैं। यही उन्नति अक्षांश कही जाती है। इस प्रकार किसी भी स्थान का अक्षांश या ध्रुवोन्नति जान लेना सरल है। ध्रुव में निरक्ष देख के लम्बक के ९० अंश मान लिए गए हैं। जो अक्षांश विषुव के उत्तर में हैं, वे उत्तर अक्षांश तथा उनसे भिन्न

इस नियम के द्वारा गणित करने में कोण के मूल्य में थोड़ा भी अन्तर रह जाने से अधिक अशुद्ध फल आता है। योरोपियन प्रायः इसी नियम के द्वारा गणना करके भू व्यास मान निकालते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दक्षिण अक्षांश कहलाते हैं। किन्हीं दो अंशों के बीच के रेखांशों का मूल्य प्रायः सदा एक सा नही होता, क्योंकि भूगोल सतत् गोलाकार या वृत्ताकार नहीं है किन्तु अण्डाकार है। ध्रुवों के चिपटा हो जाने से जो अन्तर वैषव भू परिधि तथा दो समसूत्र मध्यान्ह रेखाओं के योग में पड़ता है। वह ४३ मील से अधिक नहीं है।

पृथ्वी का विस्तार साधारणतया ४९ कोटि योजन समझा जाता है। भागवत आदि पुराणों में ४९ कोटि योजन भूमि विस्तार लिखा है। हमारे विचार के अनुसार 'विस्तार' शब्द का अर्थ यहाँ क्षेत्रफल हैं। आजकल पृथ्वी का क्षेत्रफल १९७०००००० वर्ग मील है। और घनफल २६००००००००० घन मील। पुराणों का आप्तत्व सिद्ध करने के लिए लिखा गया है—

बीच में पृथ्वी आ जाती है। अभी ऊपर कहा गया है कि प्रत्येक गोल केवल आधा ही सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित रहता है, तथा सूर्य की अपेक्षा चन्द्रमा हमारे निकट भी है। इस लिए जब चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करते करते सूर्य और पृथ्वी के बीच में आ जाता है, तो पृथ्वी पर सूर्य का प्रकाश स्वतन्त्रता से नहीं आता, प्रत्युत् कहीं २ चन्द्रमा उसे रोक लेता है। इस दशा में हम सूर्य को नहीं देख पाते; तथा समझते हैं कि सूर्य पर चन्द्रमा की छाया पड़ती है। अपनी अपनी कक्षा में जाते समय प्रकाश का इस तरह जहाँ से जितना भी अवरोध देख पड़ता है, वहां उतना ही 'ग्रहण' होता है। गणित में समझने के लिए सम्पूर्ण ग्रह विम्ब २० बिस्वे माना जाता है। इन २० विस्वों का जितना भाग ग्रहण के द्वारा अवरुद्ध होता है, उतने विस्वे ग्रहण माना जाता है।

इसी तरह जब भूमि बीच में आ जाती है और चन्द्रमा अपना प्रकाशित भाग पूर्णमा को सूर्य के सम्मुख रखता हुआ अपनी कक्षा में आता है, तो भूमि सूर्य से चन्द्र को, जाते हुए प्रकाश को रोक लेती है। यह चन्द्र ग्रहण हो जाता है। इस विषय का अधिक और प्रधानतया सम्बन्ध खगोलीय गणित से है। अतः इस सम्बन्ध के नियम आदि यहाँ उद्धृत नहीं किए जाते हैं। ग्रह लाघव, सिद्धांत शिरोमणि, सूर्य सिद्धांत आदि ग्रन्थों में "आच्छादयत्यर्कमिन्दु" इत्यादि। वैज्ञानिक विवेचनाऐं स्पष्ट पाई जाती हैं। राहु केतु की कहानी कपोल कल्पना इसमें सन्देह नहीं कि संसार की अनेक जातियाँ इस ग्रहण के असली तात्पर्य को न समझ कर आज भी भ्रम में हैं। ईसाई मुसलमान भी इस भ्रम से नहीं बच सके थे, तथा योरोपवासी भी इस के वैज्ञानिक सिद्धान्त को ३०० वर्ष से पहिले नहीं जानते थे।

जिस प्रकार चन्द्र और पृथ्वी की गति से ग्रहण लग जाता है। उसी तरह चन्द्रमा के प्रभाव से हम 'पृथ्वी पर एक बात और भी प्रत्यक्ष देखते हैं, किन्तु उसके पूर्व 'सूर्य' का वर्णन करना आवश्यक है।

सूर्य की दूरी – सूर्य की पृथ्वी से मध्य दूरी ९३०००००० मील या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१९६००००० योजन पाश्चात्य मत के अनुसार है । सूर्य सिद्धांत की बताई हुई दूरी इसका केवल ३० वाँ भाग है । इसी तरह व्यास भी योरोपियन विद्वानों के बताए हुए परिमाण का $\frac{1}{30}$ है, अर्थात् वे ८६६५०० मील या १७३४०० योजन तथा ये ४४१० योजन मानते हैं। पाश्चात्यों को भी सूर्य की यह दूरी बड़ी कठिनता से ज्ञात हुई थी । लंवन या parralex की मान्यता के अनुसार सन् १६७० में रिछर Richer ने पैरिस में यह अन्त ९·५″ या ८७०००००० मील निश्चित किया था। दूसरे ज्योतिषी फ्लेमस्ट्रीट Flamestreet ने यह लवन १०″ जाना,और ८१७००००० मील अन्तर बताया। इसी तरह पिकार्ड ने लंवन २०″, और अन्तर ४१००००००० मील निकाला, तथा लोहिरे Lohire ने १३६००००००० मील दूरी बताई। इस समय की गणना के अनुसार सूर्य का ठीक २ लंवन ८·८०६″ तथा अन्तर ९२८३०००० मील स्वीकार किया जाता है ।

सूर्य की दूरी जानने की रीति—दो अलग अलग स्थानों का अन्तर जानने का एक नियम यह हैं—कि उन स्थानों का अन्तर नाप लिया जाय। किन्तु इस से भी सरल नियम त्रिकोण मिति का है । दो निश्चित दूरी के स्थानों से अभीष्ट वस्तु या ऊँचाई तक भुजाएँ डाल कर कोण बनाए जाते हैं। जिन का आधार वह निश्चित दूरी होती है—जो पहिले से जान ली गई है । इस तरह एक भुजा तथा दो कोणों का परिमाण ठीक ठीक मालूम हो जाता है । फिर बाकी भुजाओं और कोणों का मूल्य त्रिकोण मिति से जान लेते हैं। ऊपर जो सूर्य की दूरी के सम्बन्ध में अनेक मत दिखाए गए हैं। उसका कारण यही था, कि कोणों के नापने में भूल रहती थी ।

प्रकाश के द्वारा ग्रहों की दूरी जानना —प्रकाश की गति से भी हिसाब लगा कर प्रकाशित ग्रह पुञ्जों का अन्तर ज्ञात हो जाता है । प्रकाश एक सैकिण्ड में १८६००० मील चलता है । पृथ्वी और सूर्य के बीच में शुक्र अथवा चन्द्र आदि किसी ग्रह के आ जाने से जो युति या ग्रहण हो जाता है उनकी छाया से भी सूर्य की दूरी नाप ली जा सकती है । किन्तु से सब ही नियम, प्रकाश की गति के नियम को छोड़ कर, त्रिकोण मिती सम्बन्धी हैं ।

सूर्य और पृथ्वी का सम्बन्ध—सूर्य ग्रहपति तथा पृथ्वी ग्रह है। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है । यह परिक्रमा का समय ३६५·२५६३६ दिन है। जो सौर बर्ष भी कहा जाता है। यही मत पाश्चात्य भी है । सूर्य से पृथ्वी को प्रकाश और गर्मी मिलती हैं। दिन रात में अन्तर भी पृथ्वी के उक्त परिक्रमण के कारण ही पैदा होता है । ऋतु परिवर्तन सूर्य से ही होता है। सूर्य अपनी आकर्षण शक्ति से भूमि को अपनी तरफ खींच रहा है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों अपनी अपनी आकर्षण शक्ति से जो प्रभाव संयुक्त रूप से डालते हैं उसे ज्वार भाटा कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूर्य की गति के सम्बन्ध में लिखा गया है :—

आकर्षण: —

आकृष्णेन रजसावर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च ।
हिरण्येन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन् ।। यजुर्वेद
मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलोव्योम्नि तिष्ठति ।
बिभ्राणपरमांशक्ति ब्रह्मणोधारणात्मिकाम् ।। सूर्य सिद्धाँत
मूर्तो धर्ता चेद्धरित्र्यास्ततोऽन्यस्तस्याप्यन्योऽस्यैवमत्रानवस्था ।
अन्ते कल्प्या चेत्स्वशक्तिः किमाद्ये,
किन्नो भूमेः साष्टमूर्तेश्च मूर्तिः ।।४।। सिद्धान्त शिरोमणि भुवनकोष

निराधार पृथ्वी आकाश में ब्रह्म की धारणा नामक शक्ति के द्वारा घूमती रहती है । इसी शक्ति ने इसे धारण कर रक्खा है । उस शक्ति का दूसरा नाम आकर्षण तथा उसके एक विशेष केन्द्र Center of gravitation का नाम कृष्ण सूर्य है । अन्यत्र पुराण आदि में जो शूष, कूर्म, वराह, मछली, गाय का सींग आदि लिखे हैं, वे कल्पित हैं । यह शक्ति प्रत्येक पदार्थ में पाई जाती है । यदि कोई बाधक पदार्थ बीच में न आए, तो प्रत्येक पदार्थ अन्य पदाथ को अपनी ओर तथा उन पदार्थों से अपने आप उनकी ओर आकृष्ट करता, और होता रहता है । यह आकर्षण शक्ति भूगोल क जल स्तर पर भी विशेष प्रभाव डालती है । समस्त भू क्षेत्र पर जितना भी जल फैल रहा है । वह सब ही इस शक्ति से क्षुब्ध होता है ।

पृथ्वी का आकर्षण स्वभावत प्रत्येक पदार्थ को पहले अपनी तरफ को ही खींचता है । जो पदार्थ भूतल के अधिक निकट हैं, वे उन पदार्थों की अपेक्षा अधिक आकृष्ट होते हैं, जो भूतल से दूर हैं । अगर आकृष्ट पदार्थ कम शक्ति वाला है, तो वह आकर्षक में लीन हो सकता है । अब यह प्रश्न उठता है कि सूर्य सब ग्रहों को अपने में लीन क्यों नहीं कर लेता ? इसके कई कारण हैं—प्रथम तो पृथ्वी के अतिरिक्त और भी कितने ही ग्रह पृथ्वी की तरह उसे खींचे हुए है । दूसरी शक्ति स्वयं एक नष्ट न होने वाला पदार्थ है, और यदि किसी वस्तु में उसका एक बार प्रवेश हो जाने के पीछे कोई बाधक शक्ति आड़े न जाय, तो वह पदार्थ शक्ति के आधीन रहेगा । ग्रह आदि पदार्थ इस शक्ति के अधीन हैं, और उनका मार्ग एक सरल रेखा में है, क्यों कि प्रत्येक पदार्थ अबाधित अवस्था में यदि फैंका जाय, तो सरल रेखा में ही चलता है । इस सरल रेखात्मक मार्ग को ईषद् गोलाकार मार्ग में बदलना, इसी शक्ति का कार्य है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सूर्य केन्द्र से आकृष्ट ग्रह अ अ' गार्ग को न जा कर क स्थान पर जा पहुँचा, फिर क क' सरल मार्ग को छोड़ कर उसे ख स्थान पर जाना पड़ा, इसी प्रकार ख' ग' घ' आदि सरल भागों के स्थान होने पर भी उसे ख, ग, घ आदि स्थानों पर ही पहुँचना पड़ा ।

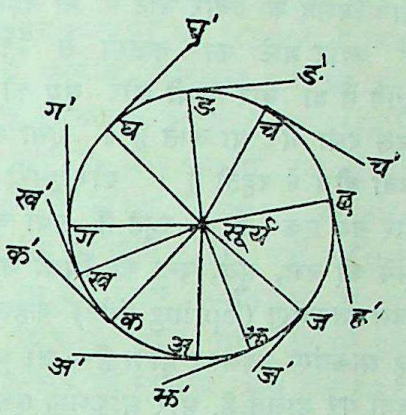

ज्वार भाटा—इस आकर्षण का दूसरा प्रभाव ज्वार-भाटा के नाम से जाना जाता है । पृथ्वी पर सूर्य और चन्द्रमा का दो प्रकार से आकर्षण होता है । एक तो सूर्य-चन्द्रमा का एक ही दिशा से संयुक्त आकर्षण और दूसरा दोनों पर भिन्न भिन्न दिशा से विरुद्ध और अलग अलग आकर्षण । प्रथम प्रकार का आकर्षण प्रबल (sprtng) और दूसरी तरह का निर्बल (neap) कहलाता है ।

स्वभावतः ही आकर्षण का पृथ्वी के उस भाग पर अधिक पड़ता है, जो चन्द्रमा की तरफ तथा उसके अधिक पास होता है । चन्द्रमा का आकर्षण स्थल की अपेक्षा जल पर अधिक देखा जाता है, जल, सोम, सौम्य, द्रव्य, हिम आदि शब्दों का चन्द्रमा तथा चन्द्रवाची शब्दों से एक विशेष सम्बन्ध संस्कृत साहित्य में देख पड़ता है । इस आकर्षण शक्ति से चन्द्रमा की किरणें भूतल के जल को अपनी तरफ खींचती हैं । यह खिचाव हम जल के उठाव के रूप में देखते हैं— जसे ज्वार या टाइट Tide कहते हैं । जब उठाव का वेग घटने लगता है, तो उसे भाटा कहते हैं । बारह घण्टे तक पृथ्वी का एक गोलार्द्ध चन्द्रमा के सम्मुख रहता है । अतः वहीं पहिले ६ घण्टों में जल चढ़ता, तथा पिछले ६ घण्टों में उतरता है । इस तरह हर २४ घण्टों में प्रत्येक स्थान पर एक बार जल बढ़ता, और एक बार घटता रहता है । किन्तु पृथ्वी गोल है, और जब पृथ्वी का एक भाग चन्द्रमा के सामने रहता है, तो दूसरा भाग ऐसी दशा में रहता है—कि उसका जलस्तर भूमि और चन्द्रमा के बीच में आ जाएगा । किन्तु वहाँ भी आकर्षण का प्रभाव पड़ता है । इस तरह एक ही समय पर ऐसे दो स्थानों पर जिन का अन्तर १८० अंश होता है , ज्वार भाटा आता है । इसी तरह सूर्य के आकर्षण से भी जलोत्थान होता है । किन्तु वह इतना अधिक नहीं होता । क्योंकि वह हम से इतना अधिक दूर है, कि उसके आकर्षण का प्रभाव उतना अधिक नहीं होता; तथा सूर्य का अधिक आकर्षण स्थल पर ही होता है ।

साधारणतया किसी नियत स्थान पर चन्द्रमा प्रति दिन पिछले दिन की अपेक्षा १ घण्टा के लगभग देर में दिखाई दिया करता है । इतना ही अन्तर उस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थान विशेष के ज्वार भाटे में भी पड़ता हुआ देखा जाता है। इससे स्पष्ट है—कि ज्वार भाटे का चन्द्रमा से कितना अधिक सम्बन्ध है। चन्द्रमा एक महीने में दो बार पृथ्वी और सूर्य की सीध में आता है—जिससे ये तीनों एक ही सरल रेखा में आ जाते हैं। ऐसा एक बार तो पूर्णमासी को होता है—जब पृथ्वी बीच में रहती हैं। और दूसरी बार अमावस्या को होता है—जब चन्द्रमा और सूर्य एक तरफ रहते हैं, तथा चन्द्रमा बीच में रहता है। इस अवसर पर भूमि का जल, सूर्य, चन्द्र की मिली शक्ति से खींचा जाता है, और यही आकर्षण प्रबल आकर्षण (Spring tide) कहलाता है। इन दोनों प्रबल आकर्षणों में भी वह आकर्षण प्रबलतर होता है—जो अमावस्या के दिन सूर्य चन्द्र एक ओर रह कर पृथ्वी पर डालते हैं, और आकर्षण एक ही तरफ को अधिक करते हैं।

शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष की अष्टमी को सूर्य पृथ्वी और चन्द्रमा परस्पर समकोण के रूप में रहते हैं। जिससे उनकी आकर्षण शक्ति छिन्न भिन्न हो जाती है, और भाटा भी निर्बल होता है। यही अष्टमी का ज्वार भाटा निर्बल या Neap tide कहते हैं।

ऋतु अयन और दिनमान—

नवति लंकाशास्तु मेरोऽक्षांशकास्तथा।
मेषादौ देव भागस्थे देवानां याति दर्शनम्॥
असुराणां तुलादौतु सूर्यस्तद्भागसञ्जरः॥४५॥
देवा सुराः विषुवति क्षितिजास्थं दिवाकरम्।
पश्यन्न न्योन्यमेतेषां वामसव्ये दिनक्षये॥४७॥

सूर्य सिद्धांत, श्लोक ५१ पर्यन्त

देवों का एक दिन—पृथ्वी का अक्ष पृथ्वी की कक्षा पर सदा समान कोण पर नहीं रहता, क्यों कि पृथ्वी की कक्षा भी अण्डाकार है स्वयं पृथ्वी का अक्ष भू क्षा पर २३·३० अंश झुक रहा है। इसका फल यह होता है– कि यह अक्ष रेखा ६६½ अंश झुकी रहती है। कन्या और मीन के दस दस अंश बीतने पर इस अक्ष की स्थिति इस तरह की हो जाती है—कि उसके कारण विषुवच्छाया कहीं नहीं पड़ती। इस अवसर पर दिन रात बराबर हो जाते हैं, अर्थात् विषुवच्छाया के घटने बढ़ने के अनुसार ही दिन घटता बढ़ता और रात बढ़ती घटती रहती है। वर्ष में दो बार दिन रात बराबर होने का अवसर इस लिए आता है कि दो बिन्दु ही एक दूसरे के सामने ऐसे पड़ते हैं– जो भू परिक्रमा के मार्ग को अर्थात् भूकक्षा को अण्डाकार बनाते हैं। इन दोनों बिन्दुओं पर पहुंचे के पीछे ही सूर्य उत्तरायण या दक्षिणायन होता है। मिथुन के दस अंश बीतने पर मकर के १० अंश से चलकर लगभग २१ जून को पृथ्वी की स्थिति इस तरह की होती है—कि सूर्य विम्व विषुवत या क्षितिज से २३·३० अंश पृथ्वी के उत्तरार्द्ध को उठा हुआ देख पड़ता है; तथा विषुवच्छाया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दक्षिण गोलार्द्ध में पड़ने लगती है। इसी अवान्तर में उत्तर गोल में ध्रुव प्रान्त तक सूर्य की किरणें जा पहुँचती हैं, और सुमेरु बिन्दु पर भी २४ घण्टे के लिए सूर्य के दर्शन हो जाते हैं। यहाँ तक पहुँचने के पश्चात् उत्तरायण सूर्य की वृद्धि की समाप्ति समझी जाती है। इस समय स्पष्ट ही उत्तरी गोलार्द्ध में प्रकाश और गर्मी अधिक पहुँचती है। अतः ऋतु भी गर्म रहतीं हैं, और आकाश उज्ज्वल दिखाई देता है। अधिक समय तक सूर्य के दर्शन होने के कारण दिनमान में भी वृद्धि होती होती है—जिस की पूर्ण अवस्था भी २१ जून को होती है। यही उत्तरायण या देव दिवस का मध्यान्ह काल होता है। इस उत्तरायण या देव दिन का आरम्भ अथवा दूसरे शब्दों में उत्तरी गोलार्द्ध में रात्रि का ह्रास, तथा दिन की वृद्धि का आरम्भ २० मार्च या मीन के १० अंश बीत जाने पर स्पष्टतः ज्ञात होने लगता है, जो २१ जून को पूर्ण वृद्धि को पहुंच कर फिर घटने लगता है। यह घटाव या ह्रास २२ सितम्बर तक जब कन्या के १० अंश हो जाते हैं—इस परिणाम तक होता है कि दिन घटते घटते रात के बराबर ही रह जाता है, और आगे को २१ दिसम्बर तक रात्रि की यह वृद्धि होती रहती है। यह २२ सितम्बर वह अन्तिम दिन है—जब कि सूर्य उत्तरी ध्रुव प्रांत में अखिरी बार दिखाई पड़ता है। सूर्य की गति का यह परिवर्तन, (वास्तव में पृथ्वी की गति का ही परिवर्तन) दक्षिणायन कहलाता है। जिसका आरम्भ उक्त २१ जून को आरम्भ हो जाता है। जैसे रात्रि के १२ बजे से हमारा दिन आरम्भ होता है। किन्तु सामन्यतः हम मानते हैं—सूर्योदय से ही। उसी तरह देवलोक या उत्तरार्द्ध में दिवस का आरम्भ तो २१ दिसम्बर के पीछे आरम्भ हो जाता है। किन्तु सूर्योदय २० मार्च से पहिले नहीं होता। उत्तरायण का यही ६ मास का समय ग्रीष्म प्रधान बसन्त गर्मी और हेमन्त ऋतुओं का होता है। इसी तरह २१ जून के पीछे फिर पृथ्वी की गति बदलती है, और देव दिन की हानि आरम्भ होती है—जो २२ सितम्बर के निकट देव रात्रि में परिणित होने लगती है। यह देव रात्रि २१ दिसम्बर तक अपने मध्यान्ह पर जा पहुंचती है। जब उधर असुरों का मध्यान्ह होता है। दक्षिण गोल में इस समय पृथ्वी की स्थिति के कारण सुर्य दर्शन, प्रकाश और गर्मी की वही दशा रहती है—जो पहिले उत्तरी गोल में थी। असुरों के मध्यान्ह के पीछे कुमेरु, और उसके पास के देशों में सूर्य उसी प्रकार क्षितिज से २३·३० अंश उठा दिखाई देता है। जैसे उत्तरी गोल में सुमेरु से दिखाई दिया था। यह देव रात्रि २२ जून को आरम्भ हो कर २१ दिवस को अपने मध्यान्ह पर पहुँचती है और उधर उत्तरी गोल में इन्हीं तिथियों पर असुरों का दिन आरम्भ होकर वह भी मध्यान्ह को जा पहुंचता है। इस समय दक्षिणार्द्ध में ग्रीष्म प्रधान तथा उत्तरार्द्ध में शीत प्रधान ऋतुऐं बर्तती हैं। इस दिव्य रात्रि-दिन के अवान्तर में दोनों लोकों में रात और दिन का क्रम से घटना बढ़ना होता रहता है। इसी लिए कहा जाता है-कि देवों और असुरों का एक दिन रात मनुष्यों के एक वर्ष के बराबर होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सौर मण्डल—जिस तरह सूर्य और चन्द्रमा का प्रभाव भूमि पर पड़ता है। इसी तरह अन्य ग्रहों का प्रभाव भी हमारे भूगोल पर क्या पड़ता है ? यह बात अभी तक स्पष्ट रूप से नहीं जानी गई है। वराह मिहिर ने अपनी वृहत्सहिता में मङ्गल आदि ग्रहों के बारे में लिखा है—कि अमुक अमुक स्थिति में मेघों का गर्भ, गर्भपात या वर्षण आदि करते हैं। इसी रूप से दूसरे ग्रह भी पार्थिव जगत पर अपना प्रभाव डालते हैं। इस विषय की जानकारी के लिए ऋतु विज्ञान सम्बन्धी वर्णन उन्हीं ग्रन्थों में देखना चाहिए। यहाँ सौर मण्डल के शेष मुख्य मुख्य ग्रहों का सामान्यतया उल्लेख किया जाता है।

बुध—सूर्य के समीपतम बुध की कक्षा है। इसका अंग्रेजी नाम मर्करी-ओ वोडन (Murcury, woden) है। यह आकार में पृथ्वी का $\frac{1}{18}$ है। इसके वर्षमान आदि परिशिष्ट में अन्य ग्रहों के वर्षमान आदि के साथ दिए गए हैं। योरोप के ज्योतिषी इसका चिन्ह ☿ और भारत के ज्योतिषी ♂ मानते हैं।

शुक्र या वेन—बुध के पश्चात् इसकी कक्षा है। यह डीलडौल में पृथ्वी के बराबर है। शुक्र से हमारी पृथ्वी ऐसी जान पड़ती है—जैसा शुक्र हमें पृथ्वी से जान पड़ता है। यह ताराग्रह संध्या को पश्चिम में, तथा प्रातः काल पूर्व में देख पड़ता है। बुध और शुक्र दोनों उज्जवल तारे हैं, तथा आकाश में स्पष्ट देख पड़ते हैं। शुक्र को 'काणा' कहा जाता है। इसका कारण यह है—कि चन्द्रमा की तरह इसकी कलाएं भी घटती बढ़ती रहती हैं। इसके सम्बन्ध में एक विचार यह भी है—कि इस ग्रह में एक बड़ा गड्ढा है, और जब हमें बढ़ा दिखाई देने लगता है, तो वह एक प्रकार से प्रभा हीन जान पड़ता है। इसका संकेत योरोपियन ♀ तथा भारतवासी ✡ मानते हैं।

मंगल—शुक्र से आगे हमारे भूगोल की कक्षा है, और उससे आगे मंगल की। मंगल को कुज या भौम भी कहते हैं। भारत वर्ष के ज्योतिषी इसे भूमि का पुत्र इस लिए मानते हैं, कि इसकी कक्षा पृथ्वी से आगे है। शायद इस कक्षा में पृथ्वी के भू गर्भ सम्बन्धी इतिहास की एक कथा का भी निवेश है। कहा जाता है—कि पृथ्वी की कुक्षि अर्थात् प्रशान्त महासागर से इसका जन्म हुआ। इसी तरह चन्द्रमा को भी बुध से पैदा हुआ माना जाता है। इसके दो चन्द्रमा हैं, जिनमें से एक तो रात्रि में ही इसकी दो परिक्रमा कर लेता है। और दूसरा दो दिन में एक परिक्रमा करता है। यह आकार में पृथ्वी का आठवां भाग है। इसका योरोपियन संकेत ♂ और भारतीय संकेत ▷ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वृहस्पति मंगल से आगे वृहस्पति की कक्षा है। सूर्य को ज्योति शास्त्र का आचार्य समझा जाता है। असुरों का ज्योतिः शास्त्र शुक्र से; देवों का वृहस्पति से, तथा प्रत्येक अन्य राष्ट्र का सूर्य से आरम्भ होता है। सम्भवतः पहिले इन २ जातियों ने अपना अपना ज्योतिः शास्त्र इन्हीं ग्रहों से आकर्षित होकर आरम्भ किया था। शुक्र को भृगु वा अङ्गिरा, गुरु को वृहस्पति या अङ्गिरस; पृथ्वी को काश्यपी, बुध को सौम्य या रौहिणेय, और शनिश्चर को शौरिया सौरि (सूर्य का पुत्र) कहते हैं। वृहस्पति या गुरु सब ग्रहों से बड़ा है। इसके रथ के घोड़ों की संख्या ८ बताई जाती है, जो इसके चन्द्रमा हो सकते हैं। इस का योरोपियन चिन्ह और भारतीय चिन्ह माना जाता है।

शनैश्चर—वृहस्पति के पीछे शनैश्चर की कक्षा है। इस ग्रह का अंग्रेजी नाम 'सैटर्न' है। इससे पहले वृहस्पति और मंगल के नाम अंग्रेजी में 'जुपिटर' और 'मार्स' हैं। पृथ्वी की अपेक्षा यह ग्रह १०७ गुणा बड़ा है। २६ घड़ी १५ पल या १०½ घण्टा इसका अहोरात्र का मान है। शनैश्चर पद के अर्थ हैं—जो धीरे धीरे चले, और शनैश्चर का परिक्रमण काल सब से अधिक है। इस ग्रह के दुरवीक्षण यन्त्र से देखने पर इसके चारों ओर एक वलय देखा गया है। यह वलय दो लपेटों के भीतर, एक काली लपेट, और फिर दो चमकीली लपेटों से बना है। सब लपेटे अनुमान से ९३९२ योजन की हैं। इसके दश चन्द्रमा तो जाने जा चुके हैं। इनमें एक चन्द्रमा तो पश्चिम से पूर्व को चलता है। ऐसे ही एक चन्द्रमा वृहस्पतिका भी उल्टा चलता है। इस ग्रह का चिन्ह h और 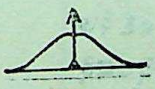 हैं।

अन्य ग्रह—इन ग्रहों के अतिरिक्त दो ग्रह और भी हैं। यूरेनस या वरुण और नेप्च्यून या प्रजापति। यह ग्रह योरोप में क्रम से सन् १७८१ और १८४६ में देखे गए। इन दोनों ग्रहों तथा बुध और शुक्र का भी अहोरात्र काल अभी निश्चय नहीं हैं। यूरेनस के चार उपग्रह और नेप्च्यून के १ चन्द्रमा हैं। इनके चिन्ह 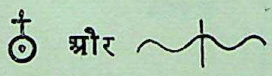 हैं। भारतवर्ष के ज्योतिषी इनका चिन्ह कुछ नहीं बतलाते। ये ग्रह पृथ्वी की अपेक्षा क्रम से १७४ और ३० गुणा हैं।

राहु और केतु—अर्वाचीन फलित ज्योतिषी राहु और केतु को भी दो ग्रह मानते हैं। परन्तु वास्तव में ज्योतिर्गणित के अनुसार यह कोई ग्रह नहीं हैं, किन्तु दो बिन्दु हैं। ऊपर कह आए हैं कि पृथ्वी के चारों ओर चन्द्रमा, और पृथ्वी चन्द्रमा समेत सूर्य की परिक्रमा करती है। इस दशा में यह स्पष्ट है—कि चन्द्र और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी के दोनों वृत्त एक दूसरे को दो भिन्न स्थानों में काटेंगे। इन्हीं दो स्थानों को राहु और केतु कहते हैं, तथा इन्हीं बिंदुओं पर आने पर ग्रहण होता है।

अन्य खेचर—इन ग्रहों की भांति कुछ अन्य खेचर भी हैं—जो परिक्रमा करते हैं। परन्तु उनके मार्ग गति आदि निश्चित नहीं होते। उन्हें केतु या चोटीदार तारे कहते हैं। इनकी संख्या भारत वासियों ने एक सहस्र के लगभग निश्चय की है, तथा उनका परिवर्तन काल आदि भी प्रत्येक केतु के आदि व्याख्याता के नाम समेत लिखे मिलते हैं।

परिशिष्ट--१

अक्षांश	१ अक्षांश का मान	१ रेखांश का मान	अक्षांश	दिन	रात्रि
०	३६२७४६*	३६५२३१÷			
५	३६२७४४	३६३८५१	६७°	१	११
१०	३६२७८५८	३५९७१९	६९°	२	१०
१५	३६२७९०५	३५२८६६			
२०	३६३१८०	३४३३४२	७३°	३	९
२५	३६३४०८	३३१२१३			
३०	३६३६७४	३१५५५९	७८"	४	८
३५	३६३९६८	२९९५१५	८४°	५	७
४०	३६४२८१	२८०१७७			
४५	३६४६०५	२५८६९८	९०°	६	६
५०	६४९३०	२३५२३६			
५५	३६५२४५	२९०९६७			
६०	३६५५४०	१८३०८३			
६५	३६५८०८	१५४७८७			
७०	३६६०४०	१२५२९३			
७५	३६६२२८	९४८३०			
८०	३६६३६६	६३६३२			
८५	३६६४५१	३१९४०			
९०	३६६४८०	०			

यह ऊपर का गणित उत्तर और दक्षिण गोलों में समान हैं।

---

* इस अंतर का कारण पृथ्वी की वह गोलाई है—जो ध्रुव प्रदेश से विषुव की ओर जाने पर धीरे धीरे बढ़ती है।

÷ इस अंतर का कारण विषव के उत्तर दक्षिण का चिपटापन है।

१- यह सारिणी the Iuternational geog' से उद्धृत की गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सौराण्ड विवरण की सारिणी

	चिन्ह		नाम		सूर्य से मध्यन्तर	गुरुत्वाकर्षण	वर्षमान		स्पष्ट व्यास (मलि)	व्यास पाश्चात्य	कक्षा का झुकाव	अहोरात्रिमान
	पौरस्त्य	पाश्चात्य	पौर:	पाश्चात्य			सौर मत	पाश्चात्य मत				घंटा-मि०-सि०
वाणाकार मंडल		☿	ज्ञ, बुध	मर्करी Mercury	३५३४००००	०·३८७	८७·९५८५	८७·९७	२९९०	८·७″	७° ०′ ८″	२५- ०- ० ?
पञ्चकोण मण्डल		♀	वेन: शुक्र	वेनस Vanus	६७२७००००	०·७२३	२२४·६९८५	२२४·७०	७६६०	३८·१″	३° २३′ ३५″	२३-२१-२३ ?
		⊕	भू, धरा, कु. गौ०	अर्थ Erth	९३०००००	१·०००	३६५·२५८७५	३६५·२६	७९२६			२३-५६- ४
त्रिकोण मं०		♂	भौम, कज, मंगल	मार्स Mars	१४१७३००००	१·५२४	६८६·९९७५	६८६·८८	४२००	१७·३″	१° ५१′ २″	२४-३७-२३
दीर्घ चतस्र मण्डल		♃	गुरु, बृ०	ज्युपिटर Jupitar	४८३८८००००	५·२०३	४३३२·३२०६	४३३२·५९	८६०००	४०·७″	१° १८′ ४१″	९-५५-३७
धनुषाकार मण्डल		♄	सौरि शनिश्चर	सैटर्न Saturn	८८७१३००००	९·५३९	१०७६५·२०	१०७५९·२४	७२०००	१७·५″	२° २९′ ४०″	१०-१४-१४
शूर्पाकार मंडल			वरुण	यूरेनम Urenus	१७८४०२००००	१९·१८३		३०६८८·३९	३३०००	३·९″	०° ४६′ २१″	
ध्वजाकार मण्डल		♅	प्रजापति कः	नेप्च्यून neptune	२७९५०६००००	३०·०४५		६०१८१·११	३७०००	२·८″	१° ४७′ ०″	
चतुष्क मं०		☽	चन्द्रमा	मून Moon	पृथ्वी से मध्यन्तर २३७३०००		२७·३२१६७	२७·३२	२१६०	३१·२६″	५° ८′ ८०″	२७- ७-४३
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२

यह सारिणी १, ३, ७ अङ्क स्तम्भों को छोड़ कर Astronomy for Amateures के ११९ पृष्ठ से उद्धृत की गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन ग्रहों के अतिरिक्त और भी कई सौ छोटे छोटे ग्रह हैं। कभी कभी बुद्ध की गति में कुछ विक्षेप होता है इस से अनुमान है कि बुध और सूर्य के बीच में कोई छोटा ग्रह और है। ऊपर बताए छोटे २ ग्रह पिण्ड मंगल और गुरु की कक्षा के बीच में है, उनमें कुछ तो तोल में कुछ सेर ही होंगे।

आकाश में कभी २ तारे से टूटते देखे जाते हैं। वास्तव में वे तारे नहीं टूटते, किन्तु वे ऐसे ही पार्थिव पिण्ड हैं—जिन्हें उल्का कहते हैं। वायु के संघर्ष से वे दीप्त देख पड़ते हैं, और यदि भूमि के आकर्षण से वे पृथ्वी पर गिर पड़े, तो उन्हें उल्का पात कहते हैं। ये सदा ही देख पड़ते हैं, परन्तु एक निश्चित समय के पीछे ये सब से अधिक देखे जाते हैं।

ग्रहों की कक्षा अण्डाकार है, और सूर्य से अन्तर की न्यूनाधिकता के साथ २ आकर्षण का प्रभाव भी घटता रहता है। इसी लिए ग्रहों की कई गति गोल शास्त्रों में बताई गई हैं। जैसे मन्द चार (सूर्य का अन्तर अधिक होने पर चाल कम होना) अतिचार (सूर्य के निकट होने पर अपनी नियत गति से अधिक चलना), वक्र (आयत गति से चलना) सरल आदि।

९--गणित सम्बन्धी भूगोल

परिभाषा—गणित सम्बन्धी भूगोल से हमारा अभिप्रायः 'भू-ग्रह-विषयक' गणित है। पृथ्वी भी सौराण्ड का एक ग्रह है, और गणित सम्बन्धी भूगोल में इसी ग्रह का गणित किया गया है, पृथ्वी का व्यास, परिधि, आकार; परिमाण; गति; कक्षा एवं अन्य ग्रहों से पृथ्वी का सम्बन्ध आदि बातों का समावेश इस प्रकरण में होता है। इस बात का विचार भी यहां ही किया गया है—कि पृथ्वी तथा उस के उपग्रह और अन्य ग्रहों की गति का पृथ्वी पर क्या प्रभाव पड़ता है। इन प्रभावों को ही भौगोलिक तथा साहित्यिक भाषा में हम दिन-रात, शुक्ल पक्ष, कृष्ण पक्ष, जाड़ा, गर्मी, वर्षा, बसन्त, ज्वार भाटा आदि कहते हैं।

सौराण्ड--पृथ्वी ब्रह्माण्ड के सौरमण्डल या सौराण्ड का एक छोटा सा ग्रह है। सूर्य का नाम संस्कृत पुस्तकों में 'ग्रह-पति' लिखा है।[1] और नामों के साथ-साथ सूर्य का एक नाम 'सविता' या सम्पूर्ण जगत का उत्पादक तथा पालक भी है। वास्तव में 'संसार' शब्द से जितने लोकों का बोध होता है; उससे कहीं अधिक लोकों का स्वामी, रक्षक, नेता और संक्षेप में विधाता यही है। मित्र, विवस्वान्; पूषा, सूर्य आदि देवता विषयक अनेक मंत्र वेदों में है—जिनमें सूर्य बिम्ब का वर्णन कहीं तो गणित के सम्बन्ध में, और कहीं गति के सम्बन्ध में दिया गया है। गर्मी आदि

---

१. विभावसुर्ग्रहपतिस्त्विषांपतिरहर्पतिः॥ अमर कोष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का दाता होने के कारण उसके इन गुणों की स्तुति भी की गई है। जहां तक सूर्य की किरणों का प्रसार होता है—उतने क्षेत्र को सूर्य सिद्धांत और सिद्धांत शिरोमणि आदि सिद्धांत ग्रथों में 'आकाश कक्षा' माना गया है, सूर्य सिद्धांत के अनुसार यह क्षेत्र १८७,१०८,०८६,४००,०००,० योजन है।[1] इतने योजन विस्तृत आकाश में जो कुछ भी है, उसका वर्णन खगोल शास्त्रों से ज्ञात होता है। हमारी पृथ्वी भी इसी परिधि के अन्तर्गत है। अतः उक्त खगोल में ही हमारे भूगोल का वर्णन भी सम्मिलित है। इसी भू ग्रह के वर्णन का नाम भूगोल विद्या है।

आगे के विषय को स्पष्ट करने के लिए यहाँ कुछ परिभाषिक शब्द दिए जाते हैं :—

ग्रह - सूर्य की परिक्रमा करने वाले पिण्ड को कहते हैं।

आकाश में जितने प्रकाशित पुञ्ज दीखते हैं, उनमें कोई 'नक्षत्र' कोई 'तारा' कोई 'ग्रह' और कोई उपग्रह हैं। इस समय तक पृथ्वी के अतिरिक्त बुध, मंगल, शुक्र, गुरु, शनिश्चर, वरुण (यूरेनस) और प्रजापति (नेप्च्यून) ये सात ग्रह और जाने गए हैं। जितने समय में जिस ग्रह की परिक्रमा समाप्त होती है उतने समय को 'वर्ष' या परिक्रमण काल कहते हैं। सूर्य के चतुर्दिग् परिभ्रमण करने को परिक्रमण कहते हैं, किन्तु अपनी कीली पर घूमने को परिभ्रमण कहा जाता है।

नक्षत्र—ऐसे अनेक ताराओं का समूह कहलाता है—जो सदैव किसी आकार विशेष की स्थिति में एक नियत स्थान पर उसी अनुपात से दृष्ट पड़ते हैं। नक्षत्र २७ हैं। इन्हीं २७ भागों में ज्योतिषियों ने खगोल को केवल गणित शास्त्र की सुगमता के लिए कल्पित भागों में बांट डाला है। इन भागों के नाम अश्विनी, भरणी आदि हैं। इनके स्थान नियत हैं, अर्थात् वे सदा एक दूसरे से अमुक अंशों के अन्तर पर देख पड़ते हैं। इन २७ भागों को भी प्रत्येक के चार भाग करके १०८ में विभक्त किया गया है, और ये १०८ भाग १२ भागों में कर दिए गए हैं। इन १२ भागों को 'राशि' कहते हैं—जिन के नाम मेष, वृष आदि हैं। इस से स्पष्ट है कि खगोल चक्र १२ भागों में, तथा २७ भागों में इस प्रकार दो भिन्न भिन्न प्रकार से गणित की सुविधा के लिए विभाजित किया गया है।

जिस मार्ग में होकर ग्रह, सूर्य की परिक्रमा करते हैं। उसे ग्रह मार्ग कहते हैं. इसी का दूसरा नाम ग्रह कक्षा भी है। जिस मार्ग से सूर्य आता जाता देख पड़ता है, उसे क्रान्ति वृत्त कहते हैं। नक्षत्रों की परिभाषा में कह आए

---

१. ख व्योम खत्रय ख सागर षट्कनाग, व्योमाष्ट शून्य यमरूप नगाष्टचंद्राः ॥
ब्रह्माण्ड सम्पुट परिभ्रमणं समन्तादभ्यन्तरे दिनकरस्य कर प्रसारः ॥
सूर्य सिद्धतां० अ० १२।६१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं कि खगोल १२ तथा २७ भागों में विभक्त है। इस का यह भी अर्थ है कि प्रत्येक ग्रह मार्ग; ग्रह कक्षा या खगोलीय वृत्त भी इन्हीं १२ राशि तथा २७ नक्षत्रों में विभाजित है।

नक्षत्र दो प्रकार के हैं :— (१) स्थिर और (२) चल।

'स्थिर नक्षत्र' वे कहलाते हैं—जो अपनी कक्षा उक्त २७ या १२ भाग वाले खगोल भाग में नहीं बनाते–जैसे ध्रुव, अगस्त्य, सप्तर्षि आदि। ये नक्षत्र भी अपनी अक्ष रेखा पर घूमते हैं, तथा किसी पिण्ड की परिक्रमा भी करते जान पड़ते हैं, किंतु इनकी इस दूसरी गति की कक्षा इतनी अधिक नहीं है—जो स्पष्ट रूप से जान पड़े।

'चल नक्षत्र' वे हैं जो ग्रहों के समान अपनी कक्षा बनाते स्पष्ट देख पड़ते हैं।

उपग्रह—उन छोटे छोटे गृह–पिण्डों को कहते हैं, जो किसी एक गृह की परिक्रमा करते हैं, एवं उस ग्रह के साथ साथ सूर्य की परिक्रमा भी कर लेते हैं। ये उपग्रह और गृह सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं। इन गृहों और उप गृहों के भ्रमण का मार्ग वृताकार नहीं। किन्तु अण्डाकार होता है। गृहों का व्यास, क्षेत्रफल, सूर्य से अन्तर; कक्षा का परिमाण, दिनमान एव वर्ष का परिमाण उपगृहों की संख्या आदि के विवरण सौराण्ड-सारिणि में देखिए।

जितने समय में कोई गृह या उपगृह एक बार अपनी कीली पर घूम लेता है, वह काल उस पिण्ड का 'दिन' या परिभ्रमण काल कहा जाता है। पृथ्वी या कुगोल का दिवस-काल (अहोरात्रि का परिमाण) ६० घड़ी या २४ घण्टे है। तथा सूर्य का दिन रात हमारे २१ दिन ८ घण्टे और २२।। मिनट का है। केवल दिन कहने से लोक में दिन रात दोनों का गृहण किया जाता है।

अक्ष—अथवा कीली उस कल्पित रेखा का नाम है—जो किसी पिण्ड के उत्तरी और दक्षिणी दोनों सिरों को केन्द्र में होकर छुए। पृथ्वी की अक्ष रेखा ७८९९·६ मील या १५९५ योजन है।

विषुवत् वृत्त—उस कल्पित रेखा का नाम है – जो पृथ्वी के उत्तरी और दक्षिणी दोनों कोणों (अक्षान्त बिन्दुओं) से समान अन्तर पर पूर्व; पश्चिम को खींची जाती है। यह वृत्त परिधि भी कहा जाता है। इसका विस्तार ५०५९ योजन या २४८९९ मील है। वह रेखा जो अक्ष रेखा के समान विषुवत् वृत्त के दो बिन्दुओं को केन्द्र में होकर छूती है, ७९२६·६ मील या १६०० योजन है। इस प्रकार पृथ्वी के दो व्यास हैं– 'आक्ष' और 'वैषव'। ये रेखा कुगोल को उत्तरार्द्ध-दक्षिणार्द्ध में विभाजित करती है।

ध्रुव –पृथ्वी की अक्ष रेखा के दोनों आधारों को ध्रुव कहते हैं। उत्तरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधार का नाम उत्तरी ध्रुव या सुमेरु और दक्षिणी आधार का नाम दक्षिणी ध्रुव या कुमेरु है। ध्रुव स्थल अर्थात् ध्रुव बिन्दुओं के चतुर्दिग का भूतल कुछ चिपटा होता है। यही कारण है कि अक्ष व्यास वैषव व्यास की अपेक्षा कुछ कम है। आर्यभट्ट के मतानुसार पृथ्वी का व्यास १५०० योजन एवं मेरुओं का व्यास एक-एक योजन है।[1]

सूर्य की किरणों के प्रसार के अनुसार भूतल ३ भागों में बांटा गया है :—

(१) शीत कटिबन्ध या ध्रुव प्रांत। यह उतने भू भाग का नाम है, जहां तक सूर्य की किरणें ६ मास तक निरन्तर दीखती रहती हैं, और फिर ६ मास तक दिखाई नहीं देतीं। यही ६ मास का दिन, और ६ मास की रात्रि भी कहलाती हैं। ध्रुव देश दो हैं—जहां छः मास का दिन और छः मास की रात्रि अर्थात् हमारे एक वर्ष का अहोरात्रि होता है। इनमें उत्तरी ध्रुव या सुमेरु को देवलोक भी कहते हैं, और दक्षिण ध्रुव देश को नरक वड़वा या कुमेरु। इन दोनों देशों का विस्तार ध्रुव बिन्दुओं से ३३०४५ फीट तक माना जाता है। जो रेखाएँ इन दो देशों को शेष भू भाग से पृथक् करने के लिए कल्पित की जाती हैं, वे क्रम से 'उत्तरी शीत कटिबन्ध' तथा 'दक्षिणी शीत कटिबन्ध' कहलाती हैं। इन दोनों अक्ष बिन्दुओं का नाम ध्रुव इस कारण भी है—कि वहां आकाशस्थ ध्रुव तारा शिर पर दिखाई देते हैं।[2]

ध्रुव लोकों के पश्चात् भूगोल का दूसरा भाग 'मध्य लोक' है। जिसका विस्तार उक्त शीत कटिबन्धों से आरम्भ होता है; तथा उत्तर में इसकी सीमा कर्क रेखा और दक्षिण में मकर रेखा कल्पना की जाती है। ये रेखायें उक्त कटिबन्ध रेखाओं से २४° के अन्तर पर हैं। दिन रात का घटना बढ़ना भी इन्हीं देशों में होता है। उत्तर या दक्षिण ६४° पर शीत ऋतु में ८॥ घड़ी का दिन एवं गर्मी में इतनी ही रात्रि हो जाती है।

तीसरा भाग या लोक 'गभस्तिमान्' कहलाता है। इस भाग का विस्तार कर्क और मकर रेखा के मध्य में है। इन देशों में सूर्य की किरणें सदा समानभाव से पड़ती हैं, और दिनमान में न्यूनाधिकता नहीं होती। विषुवत रेखा के उत्तर दक्षिण २२° ४५' तक यह लोक विस्तृत है शेष दोनों लोकों के विरुद्ध इसमें दोनों यान–पितृयान और देवयान मिले हैं।

१—नृषि योजनं भू व्यासो कमेरोः। आर्य भट्टीयम्

२—उपरिष्टात्स्थितस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः।

अधस्त्यदसुरास्तद्वर्द्वाद्वषन्तोन्योन्यमाश्रिताः। सूर्य० १२।३५

तथा—स्वमेरुसूयलमध्ये नरको वड़वामुखश्च जल मध्ये।

अमरमरामन्यन्ते परस्परमधस्थितन्नन्यतमम्। आर्य० १२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सप्तलोक या हफ्त अक़लीम—सप्तलोकों से वही अभिप्राय है, जो 'हफ्त अक़लीम' से है । हफ्त अकलीम के अनुसार ६ रेखाओं के द्वारा भूतल आबोहवा या जलवायु के अनुसार बांटा गया है ।

दिशा—आकाश की भिन्न भिन्न स्थितियों का नाम 'दिशा' है—जो तीन, चार, आठ, बाइस से भी अधिक कल्पित की जा सकती हैं । जब दो स्थानों—बिन्दुओं का अन्तर १२०° होता है तो तीन दिशाएं —पूर्व, उत्तर और दक्षिण मानी जाएंगी । जब चार बिन्दुओ में से प्रत्येक का अन्तर ९०° या एक पूर्ण समकोण हो, तो चार दिशाएँ गिनी जाती हैं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण । साधारण विचार से एवं गणना की सरलता के लिए इन्हीं चार दिशाओं की गणना मुख्य मानी गई है ।

दिशाओं के सम्बन्ध को आकृतिएँ :—

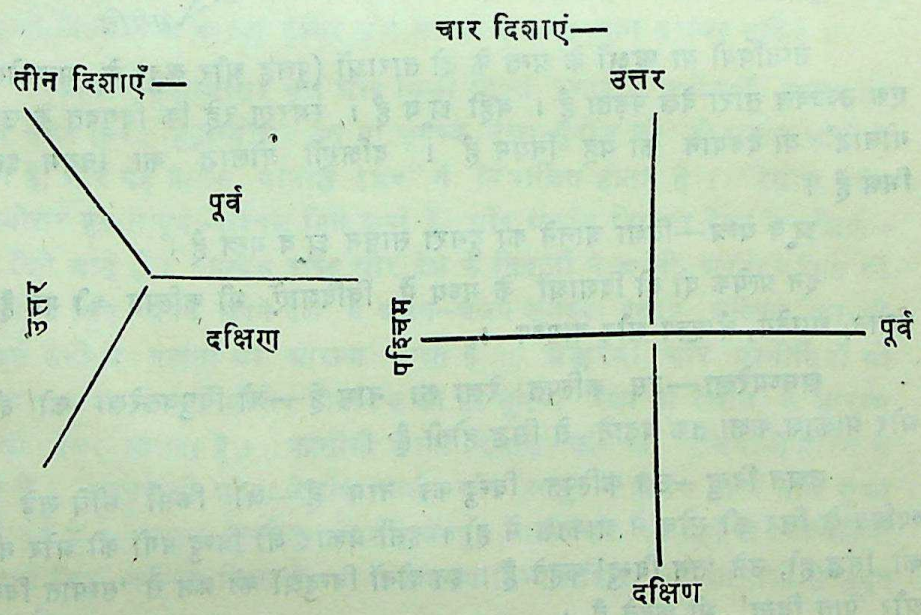

दिशा बोध दिशाओं का बोध सूर्योदय और ध्रुव की सहायता से सरलता पूर्वक हो सकता है । जिस ओर सूर्य निकलता है उस भाग को पूर्व और उसके सम्मुख भाग को पश्चिम कहते हैं । इन दोनों दिशा बिन्दुओं के ९०° अंश पर उत्तर और दक्षिण दिशा बिन्दु होते हैं । इन चार बिन्दुओं के मध्यवर्ती स्थान में और भी बहुत सी उप-दिशाओं की कल्पना की जा सकती है । मध्याह्न में सूर्य दक्षिण की ओर रहता है और दक्षिण के सामने ही उत्तर दिशा है ।

रात्रि में ध्रुव तारा की सहायता से दिशाएँ जानी जाती हैं । आकाश में उत्तर की ओर सात तारे इस आकृति में दिखाई देते हैं—जिन्हें सप्तर्षि कहते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्यों कि इनका वैज्ञानिक बोध सर्व प्रथम उन्हीं सप्तर्षियों ने किया था, जिनके नाम इस तारा पुञ्ज के साथ लिखे हैं :---

सप्तर्षि मण्डल

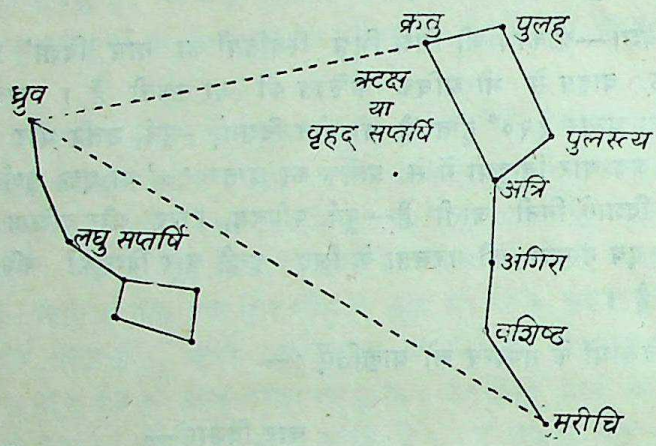

सप्तर्षियों या ऋक्षों के अन्त के दो ताराओं (पुलह और क्रतु) के समकोण में एक उज्ज्वल तारा देख पड़ता है। वही ध्रुव है। स्मरण रहे कि विषुवत के उत्तरी गोलार्द्ध या देवयान का यह नियम है। दक्षिणी गोलार्द्ध का नियम इस से भिन्न है।

ध्रुव यन्त्र—दिशा जानने का दूसरा साधन ध्रुव यन्त्र है।

इन प्रत्येक दो दो दिशाओं के मध्य में विदिशाऐं भी कल्पित की गई हैं—ईशान, आग्नेय, नैऋत्य और वायव्य।

खमध्यरेखा—उस कल्पित रेखा का नाम है—जो विषुवतरेखा को दोनों ओर आकाश कक्षा तक बढ़ाने से सिद्ध होती है।

उन्नत बिन्दु—उस कल्पित बिन्दु का नाम है—जो किसी सीधे खड़े हुए व्यक्ति के सिर की सीध में आकाश में हो। इसी प्रकार जो बिन्दु पगों की ओर नीचे को सिद्ध हो, उसे 'तन बिन्दु' कहते हैं। इन दोनों बिन्दुओं को क्रम से 'सम्पात बिन्दु' और 'पात बिन्दु' भी कहते हैं।

जिस स्थान पर आकाश और पृथ्वी मिले दिखाई दें, उसे 'क्षितिज वृत्त' कहते हैं। 'खवर्ती चक्र (Verticle cirele) अर्थात् वह वृत जो आकाश में पात बिन्दु में और सम्पात बिन्दुओं में होकर जाता है-क्षितिज पर समकोण रूप में कल्पित किया जाता है।

उच्च या उन्नति—किसी वस्तु और खवर्ती चक्र का वह अन्तर जहाँ उक्त पिण्ड का सम्पात बिंदु खवर्ती चक्र का स्पर्शक है; किसी कोण बनाने वाली रेखा के द्वारा जाना जाता है। यह रेखा जन्य कोण 'उन्नत' या 'उच्च' कहा जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो वृत आकाश में ध्रुव बिंदुओं में प्रोत एवं खमध्य रेखा पर समकोणात्मक होकर गमन करते हैं, उन्हें होरा वृत्त कहते हैं। होरा लगभग एक घण्टे के बराबर होता है। विद्वानों का अनुमान है--कि 'अहोरात्रि' पद के आद्यन्तांक्षरों के लोप हो जाने से, इस पद की सृष्टि हुई है। अङ्गरेजी का Hour शब्द भी इससे मिलता जुलता है—जो स्वयं लैटिन के होरा Hora प्रद से व्युत्पन्न हुआ समझा जाता है।

जो वृत्त उन्नत बिंदु तथा ध्रुवों में प्रोत होकर जाता है। उसे 'याम्योत्तर' रेखा कहते हैं। भूयाम्योत्तर वृत्त या भूमध्य रेखा उस वृत्त को कहते हैं--जो इसी प्रकार ध्रुव से ध्रुव तक भूतल पर कल्पित किया जाता है। जब कोई आकाशीय पिण्ड इस वृत्त में देखा जाता है, तो अधिकतम उच्च कहा जाता है।

अक्षांश-विषुवत् रेखा और किसी नियत स्थान के मध्यवर्ती अन्तर को अक्षांश कहते हैं। ध्रुव और विषुवत् रेखा के मध्य का अन्तर ९०° में बांटा गया है, किंतु भूतल की विषमता के कारण प्रत्येक अंश का योजनात्मक मान बराबर नहीं है।

रेखांश—भूयाम्योत्तर वृत्त और किसी नियत स्थान के मध्यवर्ती अन्तर को रेखांश कहते हैं। भूयाम्योत्तर वृत या भूमध्य रेखा भूगोल को दो समान भागों में बाँटता है, और यह प्रत्येक गोलार्द्ध १८०° में विभाजित होता है। रेखांश सदैव भूयाम्योत्तर वृत से पूर्व-पश्चिम गिने जाते हैं; और अक्षांश विषुवत रेखा से दक्षिण-उत्तर गिने जाते हैं। प्रत्येक राष्ट्र और देश के विद्वानों ने अपनी अपनी गणित की सरलता के लिए अपने अपने देश में अलग-अलग भूमध्य रेखाएँ कल्पित कर ली हैं, एवं उसी से गणना का आरम्भ करते हैं। अङ्गरेजों और फ्रांसीसियों को छोड़ कर, प्रायः सम्पूर्ण योरोप ग्रीनविच को ही भूमध्य रेखा या रेखांश के आरम्भ होने की रेखा मानता है। फ्रांसीसी अपना रेखांश फ्रांस की राजधानी पेरिस से गिनते हैं। भारतवासी अपना रेखांश उज्जैन और लङ्का में होकर जाने वाले भूवृत को मानते थे। मथुरा, कुरुक्षेत्र, काशी, जयपुर आदि को भी यहाँ के ज्योतिषियों ने रेखांश बिंदु कल्पित किया है। इस समय निम्नलिखित वेध शालाओं से भूवृत कल्पित किए जाते हैं :—

सिडनी (आस्ट्रेलिया)	ग्रीनविच से	१५१° १२ फीट २३" पूर्व
मद्रास (भारत)	,,	८०° १४ ,, ५०" पूर्व
बम्बई (भारत)	,,	७२° ४८ ,, ५५" पूर्व
रोम (इटली)	,,	१२° २८ ,, ४०" पूर्व
म्यूनिक (जर्मनी)	,,	११° ३६ ,, ३२" पूर्व
ब्रूसैल्स (बेलजियम्)	,,	४° २२ फीट ११" पूर्व
पेरिस (फ्रांस)	,,	२° २० फीट १५" पूर्व

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मैड्रिड (स्पेन)	,,	३°	४१ फीट १५″ पश्चिम
फैरो द्वीप (कल्पित रेखांश)	,,	१७३°	९ फीद ४५″ पश्चिम
वाशिंगटन (अमेरिका)	,,	७३°	३ फीट १′ पश्चिम
मैक्सिको	,,	९९°	६ फीट ३९″ पश्चिम

भारतवर्ष की प्राचीन वेधशालाओं में से कुछ के नाम ये हैं—लङ्का, मथुरा, उज्जैन, जयपुर, काशी, विजय नगर, इन्द्रप्रस्थ व दिल्ली आदि।

७--आयुर्वेद

आयुर्वेद अथर्व का उपवेद हैं। इस काल में आयुर्वेद का अष्टाङ्ग सम्पन्न हुआ। अष्टांगों का विवरण इस प्रकार है—

अष्टांग आयुर्वेद—

१-शल्य—बाहरी वस्तुओं जैसे—तीर, लकड़ी, मिट्टी आदि को घाव से निकालने और उनसे जो सूझन, पीव आदि हों—एवं सब प्रकार के घावों और फोड़ों को आराम करने की विद्या।

२-शालाक्य—आंख, नाक, कान आदि बाहरी अङ्गों के रोगों की चिकित्सा।

३-काय—शारीरिक रोगों की चिकित्सा।

४-भूतविद्या—स्नायविक और मानसिक रोगों की चिकित्सा।

५-कौमारभृत्य—बच्चों की रक्षा और चिकित्सा।

६-अगद—विष चिकित्सा।

७-रसायन—बुढ़ापे और मृत्यु को टालने के उपाय का विज्ञान।

८-वाजीकरण—पुरुषत्त्व (sex) सम्बन्धी चिकित्सा।

औषधि शास्त्र पर इस काल में और बौद्ध काल में बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे गए। जिनमें चरक और सुश्रुत प्रमुख हैं। चरक औषध शास्त्र है, और सुश्रुत सर्जरी का शास्त्र। आठवीं शताब्दी में बगदाद के खलीफा हारुनरशीद ने आयुर्वेदिक के ग्रन्थों का अरबी भाषा में अनुवाद कराया था।

चरक—चरक आठ खण्डों में विभक्त हैं:—

१-सूत्र स्थान—जिसमें औषधि की उत्पत्ति, वैद्य के कर्तव्य; औषधि प्रयोग, रोग चिकित्सा, औषधि शास्त्र और पथ्य का वर्णन है।

२-निदान स्थान—जिसमें रोगों के लक्षण और उनकी उत्पत्ति के कारणों का वर्णन है।

३-विमान स्थान—जिसमें महामारी, पथ्य की प्रकृति, रोग विवरण, औषध प्रयोग, तथा शरीर के रसों का वर्णन है।

४-शरीर स्थान--जिसमें आत्मा की प्रकृति, गर्भाधान, जातियों के भेद,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तत्वों के गुण, शरीर के अङ्गोपाङ्ग वर्णित हैं, शरीर और आत्मा के सम्बन्ध का भी इसी में वर्णन है ।

५-इन्द्रिय स्थान—जिसमें इंद्रियों और उनके रोगों का, देह के रंग, वाणी के दोष, शरीर और इन्द्रियों के विकार, बल घटने तथा मृत्यु का वर्णन है ।

६-चिकित्सा स्थान—रोग चिकित्सा, आरोग्य वृद्धि तथा दीर्घायु होने का वर्णन है ।

७-कल्प स्थान—इसमें शरीर शुद्धि और काया कल्प वर्णित हैं ।

८-सिद्धि स्थान—औषध शोधन, मूत्र स्थान, गर्भ स्थान, आँतों में पिचकारी लगाना, मर्म स्थान आदि का वर्णन हैं ।

ग्रंथ में आत्रेय अपने शिष्य अग्निवेश को शिक्षा देते हैं ।

सुश्रुत—सुश्रुत सम्भवतः चरक के पीछे बना है, इसका रचयिता धन्वन्तरि है । इस ग्रंथ को ६ भागों में विभक्त किया गया है ।

१-सूत्र स्थान—जिसमें औषधियों, शरीर तत्वों, और भिन्न २ रोगों, वैद्यक के शस्त्रों, और औषधियों के चुनने तथा शस्त्र प्रयोग का विषय है । साथ ही सर्जटी की और व्रण उपचार की बातें भी हैं ।

२-निदान स्थान--में रोग लक्षण, और कारणों पर विचार किया गया है ।

३-शरीर स्थान में शरीर के अवयवों का और उसकी बनावट का वर्णन है ।

४-चिकित्सा स्थान में रोग चिकित्सा है । असाधारण गर्भ को निकालने का वर्णन है ।

५-कल्प स्थान में विष उतारने वाली दवाईयों का वर्णन है । भिन्न भिन्न विषों का वर्णन है ।

६—उत्तर स्थान में बाहरी अंग आँख, नाक, कान आदि के रोग तथा उपचारों का वर्णन है । अन्य रोगों का वर्णन है ।

इस में संदेह नहीं—कि यह चिकित्सा शास्त्र आर्ष काल में पुष्ट हुआ, और मुगल काल तक होता रहा ।

अन्य ग्रन्थ —उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों के सिवा वाग्भट् और माधव निदान आठवीं शताब्दी में लिखे गए । ग्यारहवीं शताब्दी में बंगाल के चक्र पाणिदत्त ने चक्रदत्त लिखा । तथा चरक, सुश्रुत पर टीकाएँ लिखीं । बारहवीं शताब्दी में शार्ङ्गधर संहिता लिखी गई ।

रसायन ग्रन्थ —रसायन विज्ञान का विकास बौद्धकाल में हुआ, और इस पर भोटतिब्बत और चीन का प्रभाव पड़ा मालूम देता है । रासायनिक मिश्रणों का ज्ञान हिन्दुओं को बहुत प्राचीन काल से था । नमक पच्छिमी भारत में पाया जाता था । सुहागा तिब्बत से आता था । शोरा और सोडा, फटकरी, नौसादर भारत में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनते थे। चूना, कोयला, गंधक का उपयोग प्राचीन काल से ज्ञात था। खार और तेजाब बनाना भी हिंदु जानते थे, उन्हीं धातुओं को भस्म करके औषधि के रूप में उन का उपयोग करने में अद्भुत कुशलता प्राप्त की थी। सांखिया तथा पारे का प्रयोग, ताम्बा, टीन, लोहा, सीसा और जस्त के अम्लजद से. लोहे, ताम्बे, सुरमे, पारे और संखिए के गन्धन से ताम्बे, जस्त, और लोहे के गंधित से, तांबे के द्वियम्लेत तथा सीसे और लोहे के कर्बनेत से भी परिचित थे। वे धातुओं को मारने, अर्क खींचने, थिराने की विद्या में पारंगत थे। जड़ी बनस्पतियों का उनका ज्ञान परिपूर्ण था। सुश्रुत में जड़ी बूटियों सम्बन्धी भूगोल का वर्णन है।

पथरी निकालना, मरे गर्भ को पेट से निकालना और १२७ शस्त्रों का चीड़-फाड़ के कामों में प्रयोग करना हिंदु जानते थे। यन्त्र, क्षार-अग्नि से दागना, शलाका सींगी, सेफस्त खोलना, जोंक लगाना वे जानते थे।

शस्त्र सब धातु के होते थे। वे खड़े बाल को चीर सकते थे। विद्या की परीक्षा पशुओं के और मनुष्यों के मृत शरीर पर करते थे।

अब से २२०० वर्ष प्रथम सिकन्दर ने, और ११०० वर्ष पहिले खलीफा हारून रशीद ने हिंदु वैद्यों को अपने यहाँ रक्खा था, और चरक, सुश्रुत का अरबी में अनुवाद कराया था।

पशु चिकित्सा—पशु चिकित्सा पर भी इस युग में ग्रन्थ लिखे गए, जिनमें पाल कार्य त्रिचित गजचिकित्सा, गजायुर्वेद, गजदर्पण, गज परीक्षा और अश्वतन्त्र प्रमुख हैं। जो अब उपलब्ध नहीं हैं।

वास्तुशास्त्र पर राजा भोज का 'समरांगण सूत्रधार' और 'युक्ति कल्पतरु' महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गए।

८—औषध विज्ञान (Pharmacology)

द्रव्यम् (Matter)—द्रव्य तीन प्रकार के हैं:—

१ जंगम—शहद, गोरस, पित्त, चर्बी, मज्जा, खून, मांस, विष्ठा, मूत्र, चमड़ी; हड्डी, नस, सींग, खुर, नख, केश, लोम, गोरोचन आदि, जो मनुष्य, पशु, पक्षी और जीवित जीवों से प्राप्त होते हैं।

२ पार्थिव—सोना, चांदी, तांबा, जस्त, रांग, सीसा, लोहा, शिलाजीत, बालू, सोनामाखी, खर्पर या मुर्दा संग, मनसिल, हरवाल, हीरा आदि रत्न, सैन्ध्य नमक, गेरू, खरिया मिट्टी, कसीस, सुर्मा आदि, जो खानों से निकलते हैं।

३ औद्भिद्—जो धरती फोड़ कर निकलते हैं, ये ४ प्रकार के होते हैं:—

(१) वनस्पति (जिन पर बिना ही फूल के फल लगते हैं—जैसे बड़, पीपल)।

(२) वीरुध (जिन की बेल चलती है)

(३) वानस्पत्य (जिन पर फूल लग कर फल आते हैं, जैसे आम जामन)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(४) औषध (जो फल आने पर सूख जाते हैं जैसे गेहूं, जौ)

द्रव्य में पदार्थ—द्रव्यो में ५ पदार्थ होते हैं:—

(१) रस (२) गुण (३) वीर्य (४) विपाक (५) प्रभाव ।

पदार्थ विवेचन—औषधि के वैद्यकीय उपयोगों का Rationale का ज्ञान होने के लिए द्रव्य और उसके रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव का ज्ञान होना जरूरी है। अधिकांश औषधियों की वैद्यकीय उपयोगिता इसी ज्ञान की सहायता से सिद्ध होती है । सुश्रुत के ४० वें अध्याय में— तद् द्रव्यमात्मना किञ्चित्' श्लोक में जो 'आत्मा' शब्द आया है, उसका मतलब यही है – कि द्रव्य की रचना पञ्च महा-भूतात्मक है। संक्षेप में द्रव्य को हम Composition of drvgs कह सकते हैं ।

रस—'रस्यते आस्वाद्यतइतिरसः । रसनार्थोरसः (चरक) औषधियों का जिह्वाग्राह्य अर्थ । इस अर्थ के अनुसार सब औषधियां मधुरादि छैः रसों में विभक्त की गई है। 'यद्यपि रस की व्याख्या 'रसनाग्राह्य' की गई है, फिर भी औषधियों के रसों का ग्रहण जिह्वा के अतिरिक्त अन्य अङ्गों से भी होता है । अन्तर इतना ही हैं कि जिह्वा पर रस की संवेदना अन्य अंगों की अपेक्षा अधिक विशेष रूप से होती है। जैसे कटु कषाय रस का ज्ञान जैसा जीभ पर होता है, वैसा ही गले में भी होता है, आमाशय तथा त्वचा पर होता है । शरीर में रस का कार्य निपात स्थान के साथ के साथ सम्बन्ध, होते ही होता है । उसमें रूपांतर की आवश्यकता नहीं होती । 'रसं विपाते द्रव्यणाम्–चरक' रस विद्यान्निपातेन (अष्टांग हृदय) । रस का यह कार्य वहुधा निपात स्थान के ऊपर प्रत्यक्षतया हुआ करता है, और उसी स्थान पर मर्यादित रहता है । जैसे फटकरी में कषाय रस है, उसका प्रयोग चमड़ी पर होते ही स्थानिक सिका स्राव बन्द हो जाता है । आँखों में करने से पानी बहना बन्द हो जाता है, और मुंह के द्वारा सेवन करने पर आमाशय तथा आन्त्र का स्राव (अतिसार) कम हो जाता है। कभी कभी रस स्थानिक Narve terminel द्वारा Reflexaction से भी काम करता है । (अम्लः क्षालयतेमुखम्', लवणः स्यन्दयत्यास्यम्', 'कटुः स्रावयत्यक्षिनासास्यम्') ये Reflexaction के ही उदाहरण हैं ।

पाश्चात्य वैद्यक में विवेचन—पाश्चात्य वैद्यक में आयुर्वेद की भाँति रसों की कल्पना नहीं है–फिर भीं सुविधा के लिए तिक्त (Bitters) कषाय (Astringents) और अम्ल (Acids) ऐसे रसों के अनुसार औषधियों के कुछ वर्ग किए गए हैं । पाश्चात्य वैद्यक में रस के लिए कोई ठीक पर्याय नहीं है जो इस के पूरे अर्थ को बता सके, क्यों कि Taste (रुचि) के अतिरिक्त रस में आधुनिक परिभाषा के अनुसार औषधियों की स्थानिक, प्रत्यक्ष, तथा प्राथमिक क्रिया (Local, direct and Primary action of drugs) भी अन्तभूर्त है ।

रस–अनुरस—औषधि में छओं रस व्यक्त और अव्यक्त दो प्रकार से उपस्थित रहते हैं। इन्हीं को रस और अनुरस कहा गया है । सर्वकार्य द्रव्य पञ्च महाभूतात्मक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होने से केवल एक रस युक्त नहीं हो सकते। 'तस्मान्नैक रसं द्रव्यं भूतसंघात संभवम्-वाग्भट्) प्रत्येक द्रव्य में एक या दो बलवान् व्यक्त रस होते हैं। कई अल्पबल-अव्यक्त रस होते हैं। ये अव्यक्त रस अपना अस्तित्व व्यक्त रस के समान नहीं प्रकट करते। (तत्रव्यक्तो रसः। अनुरसस्तु रसेनाभिभूतत्वादव्यक्तः-संग्रह) इस लिए प्रत्येक द्रव्य के रस का निर्देश उसके बलवान् रस के अनुसार ही किया जाता है। चरक विमान स्थान के आठवें अध्याय में षड़ास्थापन वर्ग वर्णन के प्रसंग में लिखा गया है कि—

यत्तुषड्विधमास्थापनमेक रसमित्याचक्षते भिषजस्तद् दुर्लभतमं संसृस् रस भूपिष्ठत्वाद् द्रव्याणाम्। तस्मान्मधुराणि च मधुर प्रायाणि च मधुर विपाकानि च मधुर विपाकानि च मधुर प्रभावाणि च मधुर स्कन्धे मधुराण्ये व कृत्वोपदेक्ष्यन्ते तथे-तराणि द्रव्याण्यपि।

रस तत्त्व—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन तत्त्वों में यथा संख्य एक एक की वृद्धि से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये गुण उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार जल का गुण रस है। वही जलमय रस पृथिव्यादि शेष महाभूतों के संसर्ग से विदग्ध होकर छै प्रकार का हो जाता है :—

१-मधुर २-अम्ल ३-लवण ४-कटुक ५-तिक्त और ६-कषाय। ये ६ रस फिर परस्पर मिलकर ६३ प्रकारों में विभक्त हो जाते हैं।

पृथ्वी और जल के गुणों की अधिकता से मधुर रस होता है, पृथ्वी और अग्नि के गुणों की अधिकता से अम्ल रस होता है। जल और अग्नि के गुणों की अधिकता से कटुक रस होतः है। वायु और आकाश के गुणों की अधिकता से तिक्त-कडुआ रस होता है। पृथ्वी और वायु की अधिकता से कषाय रस होता है।

क्ष्मापोऽग्निक्ष्मांऽबुतेजः ख वाध्वग्न्यनिलगोऽनिलैः।
द्वयोल्वर्णैः क्रमाद् भूतैर्मधुरादि रसोद्भवः—अष्टांग हृदय॥

इन छः रसों के योग से जो ६३ भेद बनते हैं वे इस प्रकार हैं—

दो-दो के	१५
३।३ के	२०
४।४ के	१५
५।५ के	६
१।१ के	६
६ का	१
कुल योग	६३

रस वर्ग—आयुर्वेद में रस वर्ग बनाए गए हैं :—

काकोल्यादि गण	मधुर वर्ग
दाडिमादिगण	अम्लवर्ग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सैन्धवादिगण	लवण वर्ग
पिप्पल्यादिगण	कटुकवर्ग
आरग्वधादिगण	तिक्तवर्ग
न्यग्रोधादिगण	कषायवर्ग

पाश्चात्य वैद्यक में रसों के अनुसार औषधि गुण धर्म वर्णन नहीं है, केवल तिक्त Bitters और कषाय (Astringents) रसयुत जो वनौषधियाँ हैं उनका वर्णन कषय वर्ग Vegitable butters and कषाय वर्ग Vegitable Astrangents कह कर कहा गया है; परन्तु आयुर्वेद में रसों को द्रव्य गुण का एक आधार माना गया है और प्रत्येक रस में शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों का पोषण करने तथा रोग नाश की शक्ति बताई गई है। (देखिए सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय ४२)

गुण (Pharma Cological actions)—औषधियों के वैद्यकीय कार्यों के द्योतक गुण होते हैं। ये २० हैं। (गुरुमन्दहि मस्निग्धश्लक्ष्णसान्द्र मृदुस्थिराः। गुणाः सुसूक्ष्म विषदा विंशतिः सविधर्मयाः। इन्द्रियार्था व्यपायी च विकासी चापरे गुणाः (अष्टाङ्ग हृदय) ये गुण Phisical Properties नहीं हैं। ये प्रत्यक्ष होते हैं पर ये कर्मानुमेय हैं। (कर्मनिस्त्वनुमीयन्ते नाना द्रग्माश्रया गुणाः।) इनका उत्कर्षापकर्ष संस्कार तथा भावनाओं से होता है। यद्यपि गुण वाची कुछ शब्द औषधियों के Phisical State को प्रकट करते हैं, पर औषध विज्ञान की परिभाषा में गुण मुख्यतया शरीरगत विविध क्रियाओं के द्योतक होते हैं। (प्रकृति विकृति विचार देश काल वशास्तेश्चाश्रयेषु द्रव्य संज्ञकेषु गुणाः गुरु लघु शीतोष्ण स्निग्धरूक्षाद्याः (चरक)।

वीर्य (Potency)—इसके दो अर्थ हैं—(१) वीर्यन्तु क्रियते येन या क्रिया। ना वीर्य कुरुते किंचित् सर्वा वीर्य कृता क्रिया (चरक)। येन कुर्वन्ति तद्वीर्यम्। (सुश्रुत) येनेति रसेन वा विपाकेन वा प्रभावेण वा गुर्वादि परत्वादि भिर्वा गुणैर्या क्रिया तर्पण ह्लादनशमनादि रूपा कृत्स्ना क्रियत इत्युपदिश्यते तस्यां क्रियायां तद्रसादि वीर्यम्। (चक्रपाणिदत्त टीका) संक्षेप में जिसके द्वारा औषधि का कार्य निष्पन्न होता है वह वीर्य है। औषधियाँ तरुण होने पर वीर्य अल्प होता है पक्व होने पर वीर्य परिणत होता है तथा पुरानी होने पर वीर्य हीन हो जाता है। तत्र वर्षासु औषधयस्तरुणोल्पवीर्याः। ताएव औषधयः काल परिणामात् परिणत वीर्या भवन्ति (सुश्रुत) वर्षातीत सर्वधान्यं परित्यजति गौरवम्। न तुत्यजति तद्वीर्यं वीर्यं मुञ्चत्यतः क्रमात्।) पाश्चात्य वैद्यक में वीर्य के लिये कोई शब्द नहीं है, पर Potency कह सकते हैं। रस, विपाक, प्रभाव के गुणों के अतिरिक्त द्रव्य का जो विशेष कार्यकारी गुण है, उसे वीर्य कहते हैं। शीत और ऊष्ण नाम से वीर्य दो प्रकार का है इसलिए औषधियों के वीर्य का सम्बन्ध शरीरगत Biochemical और Metobolic Processes के साथ मालूम पड़ता है। जैसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हरड़ और आंवला दोनों गुण कर्म में समान हैं पर वीर्य में विपरीत हैं। हरड़ उष्ण वीर्य है और आंवला शीत वीर्य। अष्टाङ्ग हृदय में लिखा है—तत्रोष्णश्रम तृडग्लानि स्वेद दाहाशु पाकिताः। शर्म च वात कफयोः करोति शिशिरं पुनः। ह्लादनं जीवनं स्तम्भं प्रसादं रक्त पित्तयोः।

विपाक—जाठरेणाऽग्नियोगाद्यदुदेति रसान्तरम्। रसानां परिणामस्ते स विपाक इति स्मृतः। (अष्टाङ्गहृदय) महास्रोत में जठराग्नि के सयोग से रस कारण भूत द्रव्यों का पचन होने के पश्चात् शरीर में जो रसान्तर उत्पन्न होता है वह विपाक है। विपाक निष्ठापाक को भी कहते हैं। चरक मधुर-अम्ल तथा कटु तीन विपाक बताता है, परन्तु सुश्रुत मधुर और कटु दो ही कहता है। इन विपाकों का प्रभाव रस के समान ही होता है, फर्क यही है कि विपाक का कार्य Sistemetic, Indirect and Secondary तथा रस से वलवत्तर है। विपाक का वलावल द्रव्यगत रस के वलावल पर निर्भर होता है। (विपाक लक्षणस्याल्य मध्य भूयिष्ठतां प्रति। द्रव्याणां गुण वैषिष्ठवाद् तत्र तत्रोपलक्षयेत्। (चरक) विपाक ४ प्रकार का है—(१) प्रतिरस विपाक, (२) अनवस्थित विपाक, (३) त्रिविध विपाक, (४) द्विविध विपाक।

औषधियों के रसवीर्य और विपाक की उपलब्धि—रस का ज्ञान तो जिह्वा के छूते ही हो जाता है। विपाक का ज्ञान शरीर में औषधि के पचन होने के पीछे दोषों की वृद्धि प्रकोप या शमन देखकर होता है। तथा वीर्य का ज्ञान कभी शरीर के साथ सम्बन्ध होते ही और कभी शरीर पर जो कार्य होता है, उससे। और कभी उक्त दोनों प्रकार से होता है। संक्षेप में रस का ज्ञान प्रत्यक्ष, विपाक का अप्रत्यक्ष और वीर्य का दोनों रीति से होता है। (रसोनिपाते द्रव्याणां विपाकः कर्मनिष्ठया। वीर्यं यावदधीवासान्निपाताच्चोपलक्ष्यते (चरक)।

द्रव्य व्याख्या—क्रिया गुणवत्—क्रिया गुणाश्च सन्त्यस्मिन्निति (वैशेषिक) जिसमें क्रिया और गुण हों वह द्रव्य है।

कुछ लोग द्रव्य को प्रधान मानते हैं क्योंकि वह स्थिर, नित्य और रसादि का आश्रय स्थान है। तथा कर्म द्रव्य पर ही होते हैं। कुछ कहते हैं कि रस प्रधान है। क्योंकि रस ही से द्रव्य का अनुमान होता है।

कुछ कहते हैं वीर्य प्रधान है, क्योंकि औषधि के कर्म की सिद्धि वीर्य के द्वारा ही होती है। वमन, विरेचन, संशमन, संग्राहक, अग्निदीपन, पीड़न, लेखन, बृंहण, रसायन, वाजीकरण, शोथकरण; शोथ विलयन, दहन, दारण, मादन, प्राण नाशन तथा विषप्रशमन आदि औषधि कर्म वीर्य की प्रधानता ही से होते हैं। वीर्य कहीं कहीं रस विरोधी होता है।

कुछ आचार्य कहते हैं कि विपाक ही प्रधान है, क्योंकि सब द्रव्यों का योग्य अयोग्य विपाक होने पर ही उनकी शरीर क्रिया निर्भर है। सब द्रव्य योग्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अयोग्य विपाक होने पर गुण या दोष उत्पन्न करते हैं। किन्तु चरक कहता है कि किसी एक की सर्व श्रेष्ठता सर्वावस्था में नहीं हो सकती। (किंचिद्रसेन कुरुते कर्म वीर्येण चापरम्। द्रव्य गुणेन पाकेन प्रभावेण च किंचन। श्रुश्रुत कहता है—वीर्य के बिना पाक नहीं, रस के बिना वीर्य नहीं, और द्रव्य के बिना रस नहीं। रस वीर्य और विपाक का अधिष्ठान द्रव्य ही है।

प्रभाव—आयुर्वेद में औषधियों के वैद्यकीय उपयोगों की मीमांसा या उपपत्ति उनके पञ्च तत्त्वात्मक संगठन, रस, गुण, वीर्य और विपाक की सहायता से की जाती हैं। रसादि द्वारा चिकित्सा में प्रयुक्त हुई अधिक संख्य औषधियों के उपयोगों का कार्य कारण मीमांसा ज्ञात हो जाती है। तथापि खदिर, तुवरक, विषमणि आदि कुछ ऐसे द्रव्य हैं, जिनके उपयोगों की मीमांसा रसादि द्वारा नहीं हो सकती हैं। इस लिए इन औषधियों को 'अमीमांस्य' या 'अचिन्त्य' कहा है। इसका अभिप्राय है 'रसवीर्य विपाक तयाऽचिन्त्यं वाऽमीमांस्यं वा'। औषधि की इस अचिन्त्यं कार्य शक्ति को ही 'प्रभाव' कहते हैं। रस वीर्य विपाकानां सामान्य यन्त्र लक्ष्यते। विशेषः कर्मणां चैव प्रभाव स्वस्य च स्मृतः। प्रभावोऽचिन्त्यं उच्यते। (चरक) सर्वातिशायी द्रव्य स्वभावः प्रभाव इत्याम्नातः (अष्टांग हृदय)

पाश्चात्य औषधि गुण विज्ञान में भी औषधियों के वैद्यकीय उपयोगों के सम्बन्ध में मीमांस्य और अमीमांस्य ऐसे दो भेद किए जाते हैं। जिनके उपयोग की मीमांसा उपलब्ध वैज्ञानिक तत्वों के अनुसार नहीं की जा सकती। केवल अनुभवों के आधार पर उनका उपयोग निर्भर होता है। उनको 'अमीमांस्य' या Empherical कहते हैं। जैसे मलेरिया के लिये क्विनैन तथा कालाजार के लिये Antimony and its Preparations तथा यक्ष्मा के लिए Gold। इसी अमीमांस्य कार्य को आयुर्वेद में प्रभाव कहा गया है। जिसे Empherical action कहते हैं।

अधिकृत गण—समान गुण कर्म वीर्य विपाक और प्रभाव वाले द्रव्यों को आयुर्वेद चिकित्सोपयोगी अधिकृत गण बनाए हैं। ये कुल ३७ हैं। इनके द्रव्यों का विस्तार चिकित्सा में स्थान स्थान पर हैं। रोग और रोगी की दशा देखकर वैद्य इन गणों से चूर्ण, लेप, कषाय, घृत आदि बना कर काम में ले सकता है। दोषों (वात पित कफ) के मिश्रित या भिन्न भिन्न भेदों का विचार कर एक ही गण के अनेक मिश्र औषधों का उपयोग हो सकता है। सारे गण का भी और दो चार औषध छांट कर भी।

द्रव्य भेद—द्रव्य भेद अनेक हैं—यथा

एकान्तहितकर—जो स्वास्थ्य वृद्धि करे।

एकान्ताहत—जो स्वास्थ्य को खराब करे।

हिताहित—जो एक ही समय में एक अङ्ग पर हित का और दूसरे पर अहित कर हों।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संयोग विरुद्ध—जब दोनों के संयोग से एक तीसरा पदार्थ बन जाय—जो शरीर के लिए अहित कर (Camically Incompatible)

मान विरुद्ध—मात्रा के प्रतिकूल। जैसे घी शहद समान नहीं खाना।

संस्कार विरुद्ध—जैसे शहद गर्म करना।

जब दो पदार्थों का संयोग खास प्रमाण में घातक होता है। तब वह मान विरुद्ध कहाता है।

रस द्वन्द्व —रस, वीर्य और विपाक की दृष्टि से दो-दो विरुद्ध रस; जैसे—मधुर लवण। रस में विरुद्ध मधुर और कषाय रस, रस और विपाक में विरुद्ध हैं। अम्ल और तिक्त सब बातों में विरुद्ध है, लवण कटुक विपाक में विरुद्ध है। कटु तिक्त तथा कटु और कषाय रस और वीर्य में विरुद्ध है। रस वीर्य और विपाक का विरोध है, उसे Physiolgical Incompatibility कहते हैं। एक और प्रकार का विरोध है, उसे स्वरूप विरोध Physical incompatibility कहते हैं। जैसे—ऊष्ण और ठण्डे पदार्थ एक साथ खाना।

रस द्वन्द इस तालिका में देखिए: —

रस	विपाक	वीर्य
मधुर	मधुर	शीतवीर्य
अम्ल	मधुर	शीतवीर्य
लवण	मधुर	शीतवीर्य
तिक्त	कटु	शीतवीर्य
कटु	कटु	शीतवीर्य
कषाय	कटु	शीतवीर्य

वैरोधिका निमित्त व्याधि चिकित्सा - विरोधी द्रव्यों के सेवन से उत्पन्न—(पाण्डयान्ध्यवीसर्पदकोदराणां विस्फोट कोन्माद भगन्दराणाम्। मूर्छामदाध्मान गल्यमयानां पाण्डवामयस्यामविषस्य चैव। किलास कुष्ट ग्रहणी गदानां शोषास्य पित्त ज्वर पीनस्यनाम्। सन्तान दोषस्य तथैव मृत्योर्विरुद्धमन्नं प्रवदंति हेतुम् (चरक सूत्र०) रोगों की चिकित्सा दो प्रकार की है— (१) आगतव्याधि चिकित्सा Curative treatment (२) अनागन व्याधि चिकित्सा Prophylactic treatment-इनमें दूसरी प्रतिषेधक चिकित्सा विरुद्ध पदार्थों का थोड़ी ही मात्रा में शरीर पर अभि= संस्कार करके की जानी चाहिए।

'भट्टारकेणतु तथा विधैर्वा द्रव्यैः पूर्वं मभिसंस्कारः शरीरस्य इत्यस्य वाक्यस्य व्याघ्युत्पत्यनैकान्तिक प्रदर्शन परत्वंमङ्गीकृत्य तथाविधैरिति च विरुद्ध समानि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परामृश्य विरुद्धैरेव पूर्वसंस्कारो व्याध्यनुत्पत्तिहेतुरिति सात्म्याहार प्रायतया द्वितीयोऽपि पक्षो य उद्भासितः सोऽस्माभिरुपेक्षित एव (टीका–इन्दु)।

आजकल यही व्याधि प्रतिषेधक सीरम तथा वैक्सीन Serum or Vaccine चिकित्सा प्रचलित है। विरुद्ध पदार्थजन्य रोग का प्रतिषेध उन्हीं विरुद्ध पदार्थों का शरीर पर अभिसंस्कार करना है (तैरेव वा पूर्व शरीरस्यभि संस्कृतिः)।

९—रसशास्त्र

रसायन का आरम्भ—सभी पाश्चात्य पण्डितों ने यह स्वीकार किया है—कि रसशास्त्र का जन्म हिन्दुस्तान में ही हुआ है। यहाँ से यहूदी लोगों के द्वारा यह विद्या योरोप में गई। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में रस विद्या शास्त्र के रूप में नहीं, कला के रूप में प्रचलित हुई। गंध नाग (Galena) में चांदी तथा स्वर्णमाक्षिक में सोना समावेशित है, ऐसी उनकी प्रारम्भ में धारणा बनी। मोरथोथा पानी में घोल कर उसमें लौह खण्ड डालने से लोहे पर ताम्बा चढ़ जाता हैं, यह देख कर यह धारणा की गई कि लोहे से ताम्बा बन सकता है। सीसा और रांग एकत्र गलाने से वह चांदी जैसा दीखता है। इस पर यह धारणा की गई कि ये दोनों धातु चांदी की प्राथमिक धातु हैं। Galena से चांदी तथा Pyrites से सोने का सम्बन्ध है। इस आधार पर यह मान लिया गया कि ये दोनों चांदी व सोने की उपधातु हैं। इसका आशय यह था कि इन दोनों खनिजों में ये दोनों धातु मिश्रित हैं। इस धारणा का समर्थन प्राचीन मिश्र के कुछ लेखों से होता है।

चरक सुश्रुत में धातुवाद नहीं है। परन्तु कहीं कहीं धातु उपधातुओं का वर्णन अवश्य है। रसार्णव से हमें कुछ पूर्ववर्ती रससिद्धों का विवरण मिलता है। इजीप्ट में प्राचीन काल में यह विद्या जैसे शूरों के हाथ में थी, उसी भांति भारत में इसका प्रारम्भ बौद्ध भिक्षुओं तथा नाथ साधुओं के हाथ से हुआ, जो इसे नितांत गुह्य कहते थे।

दो–तीन धातुओं को मिश्रित करना आर्य लोग बहुत प्राचीन काल से जानते थे। लोहे को ताव देना, Enamel करना, कांच बनाना भी जानते थे। भारत में स्वर्ण बहुत मिलता था। इसे अन्तिम धातु समझा गया है। चांदी का प्रचलन भी बहुत प्राचीन है। ताम्बे को खान से निकालना—उसमें रांगा मिलाकर मिश्र धातु Bronze बनाना, ताम्बे–जस्त से पीतल बनाना भारतीय जानते थे। रांग भारत से योरोप को जाता था। इसके संस्कृत नाम 'कस्तीर' से 'कासदिर' फारसी शब्द बना है। अरबों से ग्रीकों ने उसे ग्रहण किया। योरोप वाले इसे श्वेत सीसा कहते थे। सीसा भारत में बहुत है। सोना–चांदी और ताम्बे के बाद लोहा उपयोगी धातु है। इसकी बहुत खान हैं, पर लोहा निकालने तथा शुद्ध करने में दिक्कतें होती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भारतीय फौलाद बना सकते थे। हिंगुल से पारा निकाला जाता था। अनेक उपधातु खनिज और कृतुभ उपयोग में आती थीं, Oxide of Copper, जंग, नीला थोथा, प्रयोग होता था। जस्त को व्रण रोपण में, मुर्दाश्रृंग को बाहरी प्रयोग में लाते थे। सिरके में सीसा डालकर White Lead तैयार किया जाता था। रंग और श्रृङ्गार में सिंदूर, हिंगुल, औषध में, अंजन, गेरू, मनसिल, हरताल, सुर्मा, हस्तिदन्त आदि काम में आते थे। मंडूर व वंगभस्म को Mordant करने में काम लाते थे। सिरका, गन्धक, फटकरी, मोम, कपूर, शिलाजीत, सज्जी, नमक का ज्ञान था।

रस सिद्धि–कीमिया—रस सिद्ध गुरु परम्परा से भारत से बाहर से रस कला को सीखते, तथा अन्यों से गुप्त रखते थे। हीन धातुओं से युति प्रयुति द्वारा उच्च–धातु बनाने का प्रयत्न करने वाले कीमियागर अनेक रस सिद्ध प्रसिद्ध है। वास्तव में उन्हीं की खटपट से भारतीय रस शास्त्र का जन्म हुआ। ये सिद्ध सर्वत्र ही पाखण्डी नहीं होते थे, एक धातु दूसरी धातु के रूप में बदल सकती है, इस तत्त्व पर उनकी आस्था थी। अग्नि, वायु, पानी की सहायता से काल पाकर धातुओं के रूप में फेर फार होता है, यह सत्य वे जान गए थे। धातुओं के बाह्य रूप में अन्तर उत्पन्न ये कर सकते थे। सीसा, राँगा, रांगा चांदी; पीतल व सोना इनमें जो अन्तर है—उसकी अपेक्षा. रस क्रिया से धातुओं के रूप में जो अन्तर पड़ता था; वह विलक्षण होता था। तांबा रस क्रिया से सोना जैसा दीखता है। सखिया की सहायता से कुछ धातुओं का रूप परिवर्तित होता है। ताम्बे में खर्पर–तुत्थ मिलाने से सोने की आभा आती है। गन्धक चांदी तथा अन्य धातु का काला रंग कर देता है, इसके उन्होंने अनुभव किए।

मूल कल्पना—एक धातु की दूसरी धातु पृथ्वी में बनने के समय मूल धातु कौन है, इस पर उन्होंने पारा गन्धक को मूल धातु माना। उनकी यह धारणा हुई—कि प्रत्येक धातु में कम अधिक गन्धक और पारा होता है। उसी से वह धातु संगठित हुआ है। व उसमें भिन्न मात्रा में पारा गन्धक मिलाने से उस धातु को दूसरी धातु के रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। धातु का अंग पारे से तथा रंग गन्धक से बनता है। शुद्ध लोहे में अधिक शुद्ध पारा है। इसी कारण आग का उस पर प्रभाव नहीं पड़ा। हीन लोह में गन्धक अधिक है, इसी से उसके स्वभाव के कारण आग में अन्तर आता है। पारा और गन्धक भिन्न २ प्रमाण में शुद्धावस्था में मिश्रित होकर भिन्न २ धातुओं का निर्माण करते हैं। सोने में लाल गन्धक तथा चाँदी में श्वेत गन्धक का मिश्रण है।

मध्यस्थ—भांति भांति के गन्धक और भांति भांति के पारद का मिश्रण होने से जो अन्तर आता है उसके निवारण के लिए मध्यस्थ की कल्पना की गई। मध्यस्थ का महत्त्व अभ्रक को दिया गया। भारतीय रसायन में पारे और गन्धक के बाद अभ्रक का ही स्थान है। सारांश यह–कि पारा व गन्धक अभ्रक सत्त्व के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मध्यस्थ होने पर ही तीनों एक जीव होते हैं। यही बीज है। इसी को डाल कर हीन धातु से उत्तम धातु बनते हैं। धातुओं के रंग बदलने की तथा रंगने की विद्या भी उन्हों के पूर्ण रूप से मालूम की थी। रससार–जो धातुवाद Alcemi का महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ है, श्री गोविन्दाचार्य कृत तेरहवीं शताब्दी में लिखा गया है, उसमें लिखा है—रंगाकृष्टि प्रवक्ष्यमि यथा जानामि तत्वतः; न कुत्रचित्प्रयोगोस्ति शास्त्रेऽपि च न दृष्यते। रसोपरस धातुनांरगद्राव सुशोभनं। एतद्बौद्धाविजानन्ति भोटदेश निवासिनः।

इस आचार्य का कहना है—कि धातुओं को रंगने की विद्या भोट देशवासी बौद्ध जानते हैं। इसे रसायन में (Kapili Kriya) कहा गया है। ताम्बा और जस्त मिलने से उसका रंग सोने के समान हो जाता है, परन्तु उसमें सखिया मिलाने से उसका रंग चांदी जैसा हो जाता है। शीसे में पारा मिलाने से रांग जैसा हो जाता है।

बीज कल्पना—इन सिद्धों की ऐसी विचार धारा रही जैसे जीव और वनस्पति की उत्पत्ति बीज से होती है। उसी भांति पृथ्वी के गर्भ में जो धातु बनती है, वह भी किसी बीज ही के द्वारा बनती है। बीज की यह कल्पना बहुत प्राचीन है। बीज देने वाला पुरुष और बीज ग्रहण करने वाली स्त्री। तथा उसे धारण कर उस में परिवतन करने वाला गर्भाशय। ऐसी तीन वस्तु आवश्यक हुईं। इसी कल्पना पर हर बीज (पारा) पार्वती रज (गन्धक) और (गर्भाशय) अभ्रक। मैनसिल, आक का दूध, स्वर्ण माक्षिक अथवा गन्धक और सिगरफ से भस्म किये स्वर्ण को, जो तीन बार जीवित करके भस्म करे, वह स्वर्ण बीज हैं (रस पद्धति) सोने में सीसा और अभ्रक सत्त्व मिला के जो बीज तैयार होता है, उसके साथ पारद जारण करने से पारा बद्ध होता है। (रस चिन्ता मणि)

विड—पारे में सोने को ग्रास करने के लिए जो तीव्र भूख उत्पन्न करते हैं, वे विड हैं। (रसेन्द्र सारप०) विड की सहायता धातु से की दूसरी धातु बनती है। घीग्वार का रस, धतुरे का रस, कनेर का रस इनसे गन्धक को धूप के सौ भावना दे, तो यह स्वर्ण जारण के योग्य विड है। साधु, बौद्ध भिक्षु, कापालिक, तान्त्रिक तथा नाथ लोग यह विद्या जानते थे।

हेम कर्म—कीमिया, हेमकर्म या तार कर्म को कहते हैं, ग्यारहवीं शताब्दी में ग्रीक निवासी Suridas नामक सिद्ध ने इसी अर्थ का एक ऐसा ही पर्यायवाची शब्द कहा है। हरित–आल = हरताल में सोना है। इस विश्वास पर भी बहुत क्रियाऐं की गई।

ग्रह प्रभाव—ऐसी भी कल्पना की गई—कि प्रत्येक धातु पर ग्रह का प्रभाव है। सोना–सूर्य, चांदी–चन्द्र, तांबा–शुक्र, लोहा–मंगल, रांग–गुरु, सीसा–शनि, का मेल है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अरब और योरोप—अरब लोग भी भारतीयों की भांति यही मानते हैं—कि सब धातु पारा और गन्धक से बनते हैं। अरबों ने यह शास्त्र योरोप में पहुंचाया, और योरोप में १९ वीं शताब्दी पर्यन्त यह शास्त्र कीमिया की अवस्था में रहा।

देह सिद्धि—हिन्दु रस शास्त्र के दो भाग हुए हैं—एक प्रायोगिक और दूसरा देह सिद्धि, जो जरामरण को हरण करके शरीर को अजर अमर करे। देह सिद्धि और लोह सिद्धि को हिन्दु रासायनिकों ने मिला जुला कर एक कर दिया, और कहा—लोह सिद्धि परीक्षा है, रस लोह सिद्ध होने पर देह सिद्ध करता है।

पारा—हिन्दु रसायन में पारे का सब से बड़ा महत्त्व है। पारे को रस कहा गया है। पीछे जिस दवा में पारे का कुछ भी हिस्सा हो, वही रस कहा गया। रस का अर्थ है—'रसनात्सर्व धातूनां रस इत्यभिधीयते। जरारुंङ् मृत्यु नांशाय रस्यते वा रसोमतः'। (र० सा० प०)

पारे के १८ संस्कार कहे गए हैं:—

(१) स्वेदन (२) मर्दन (३) मूर्छन (४) उत्थापन
(५) पातन (६) रोधन (७) नियमन (८) दीपन
(९) ग्रासमान (१०) चारण (११) गर्भद्रुति (१२) वाह्यद्रुति
(१३) जारण (१४) रंजन (१५) सारण (६६) क्रामण
(१७) वेध (१८) उत्थान।

इस काम के लिए सब धातु, उपधातु, रत्न, उप रस, अनेक प्रकार के काँच, दिव्यौषधि, उनके तैल, क्षार, जड़, जंगम, विष, मूत्र, पित्त, रक्त, अम्ल वर्ग आदि द्रव्यों के अतिरिक्त ६२ प्रकार के यन्त्र और २८ प्रकार की मूषा तथा इतने ही पुट आवश्यक हैं।

सिद्ध पारद के विषय में लिखा है—'सिद्धे रसे करिष्यामि निर्दारिद्र्यगद जगत्। (रस रत्न समुच्चय)

महारस—अभ्रक, वैक्रान्त, माक्षिक, विमल, शिलाजतु, सस्यक, मोर थोथा, चपल, और रसक इन्हें महारस कहा है। ये पारे के पूरक द्रव्य हैं।

उपरस—गन्धक, गेरू, कासीस, फटकरी, हरताल, मनःशिला, अंजन, ककुष्ट, कंपिल्ल, गौरीपाषाण, (संखिया) नवसादर, कौड़ी, अग्निजार, सिन्दूर, हिंगुलु, मुर्दासंग, उपरस है। जो महारसों के सहायक हैं।

रत्नोपरत्न—रत्नों का रासायनिक और औषध रूप उपयोग भारतीय रसायन में है:—

रसे रसायने दाने धारणेदेवतार्चने।
सुरक्ष्याणि सुजातीनि रत्नान्युक्तानि सिद्धये। (रस रत्न समुच्यय)

रत्नों को रसबन्ध कारक माना है—यत्नतः सग्रहीतव्या रसवन्धन काणत्।
(रस रत्न समुच्यय)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रत्नों का सम्बन्ध नक्षत्र ग्रहों से भी है :—

सूर्य	मानिक	चन्द्र	मोती	मंगल	प्रवाल
बुध	पन्ना	गुरु	पुखराज	शुक्र	हीरा
शनि	नीलम्	राहु	गोमेद	केतु	ल्हसुनिया ।

पारस-मणि—पारा और हीरा के मिश्रण से पारस मणि बनती है, ऐसा माना गया है। इसके लिए हीरे को मोम की भांति बनाने के प्रयोग हैं :—

वज्रं तित्तिरमांसेन वेष्टयेद्दापयेन्मुखे ।
अतिस्थूलस्य भेकस्य मुखं सूत्रेण वेष्टयेत् ।
निखनेद्धस्तमात्रायां भूमौ यासात्समुद्धरेत् ।
मण्डूकेसंपुटे रुध्वासभ्यग्गजपुटे पचेत् ।
तद्वज्रं पूर्वगोलस्थं जानुमध्ये गतं दिनम् ।
भवेद् वज्रौदनं साक्षान्मार्यं पश्चाच्च योजयेत् ।

धातु—हिन्दु रसायन में शुद्ध धातु चार मानी हैं—सोना, चांदी, ताम्बा और लोहा। सीसा और रांग को 'पूतीलोह' कहा है। पीतल–कांसा और लोह को मिश्र धातु माना है।

सब धातुओं को लोह कहा है। लोह शब्द लुह् धातु से बना है। इसका अर्थ है खींचना। प्राचीन ग्रन्थों में लोह शब्द Metals के अर्थों में प्रयुक्त मिलता है। तथा धातु शब्द इन लोहों के Ores के लिए प्रयुक्त हुआ है। धातु का अर्थ है धारण करने वाला। इन धातुओं के औषधीय दृष्टि से शोधन मारण के प्रयोग दिए गए हैं, जो औषधि शास्त्र का महत्त्वपूर्ण भाग है।

धातु-भस्म—प्रायः सभी धातुओं की भस्म गंधक पारे के सहयोग से होती है। भस्म को बारम्बार जिन्दा करके मारना और जब तक निरुत्थ न हो जाय मारते जाने का विधान है। निरुत्थ भस्म को औषधि रूप में सेवन करने का विधान है।

निरुत्थ भस्म—निरुत्थ का अर्थ है—कि जो फिर जीवित न हो। वास्तव में भस्म–करण से धातु का विघटित अनुरूप बनता है। परमाणु का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता, और पदार्थ का अस्तित्व अणु की अवस्था ही में रहता है। ये अणु परमाणु भार युक्त हैं। तथा भिन्न-भिन्न परमाणुओं और तत्त्वों में वन्धन क्षमता है। जो परिस्थिति के अनुरूप बदलती रहती है। कुछ परमाणु स्वयं ही टूटकर दूसरी जाति के बन जाते हैं। कुछ को रासायनिक रीति से तोड़ा जा सकता है। नाग के परमाणु तोड़ कर हम उसे पारदीय रूप दे सकते हैं। तथा पारद से स्वर्ण बना सकते हैं। पारद यद्यपि अपने रूप में सुलभ है। आवश्यकता है कि लघु परमाणु भार को अपेक्षित गुरु परमाणु भार के रूप में व्यवस्थित किया जाय। यह परमाणु विघटन ही निरुत्थ भस्म है, जो फिर जीवित नहीं होती।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धातु में लय—हिन्दु रसायन शास्त्री का कहना है कि काष्ठौषधि नाग में, नाग वंग में, वंग ताम्र में, ताम्र तार में, तार स्वर्ण में और स्वर्ण पारे में लय होता है। इसी से यह धातु वेधी–शरीर वेधी तत्त्व स्थिर देह पुरुष को बनाता है।

दिव्यौषधि—रसकल्प में दिव्यौषधि भी आवश्यक है। ये ६० प्रकार की हैं—तृण, गुल्म, लता, वल्ली, वृक्ष, जाडति, विसर्पिणी, सोमवल्ली, जलजा, अजगरी, गोनसी, त्रिजटा, ईश्वरी, भूतकशी, कृष्णवल्ली, रुदन्ती, वृद्धमुण्डी, लघुती, शम्बरा, वाराही, जातकी, नालकन्दा, अशोका, पुलाग पात्रका, सुगन्धक्षीरिणी, नागिनी, सपर्वा, छत्री, शम्वरी, देवी, वज्रवल्ली, चित्रक, पालाशलतिका, कुमुदी, कौमारिकन्द, सिंहिका, क्षीरकन्दा, तृणकन्द, पद्मदण्डी, ब्रह्मदण्डी, सोमदण्डी, विजया, चन्दनगन्धिका, कीटमारी, व्याघ्री, गरुणी, मयूरशिखा, हेमलता, आसुरी व्याघ्रपादलता, सप्तपर्णी, गोमारा, भृङ्गा, समरी, वज्री, रक्तपर्णी आदि आदि।

रसायन—यद्यपि रसायन का अर्थ Chamsty है। परन्तु हिन्दु चिकित्सा शास्त्र में रसायन का अर्थ ही भिन्न है—

'यज्जरा व्याधि विध्वंसि भेषजं तद्रसायनम्।

आयुर्वेद में रसायन का पृथक प्रकरण चरक सुश्रुत और अन्य ग्रन्थों में है। यह एक स्वतन्त्र ही चिकित्सा पद्धति है, जो रोगी की नहीं - तन्दुरुस्त पुरुष की होती है। इससे मनुष्य को वृद्धावस्था से रोक कर युवा बनाया जा सकता है। ऐसे पुराने प्रयोग सब वनस्पति मूलक हैं। परन्तु रस शास्त्र में ये रसमूलक हो गए हैं।

रसायन औषधियों में मण्डूक पर्णी, मुलहटी, गिलोय, शंखष्थी, पीपल, त्रिफला, वायविडंग, वाराहीकन्द, पलाश, हरड़, चित्रक, निबोली और अश्वगन्धा के प्रचलित प्रयोग हैं।

कल्प—परन्तु महत्वपूर्ण कल्प चिकित्सा है—जिसमें सोमकल्प, अम्लवेतस कल्प, स्वर्ण कल्प, चित्रक कल्प, हरीतकी कल्प, आमलक कल्प, काकमाची कल्प आदि अनेक कल्प हैं।

नित्यनाथ सिद्ध के रस रत्नाकर के चतुर्थ खण्ड को रसायन खण्ड कहा है। यह छोटी सी महत्वपूर्ण पुस्तक है, जो कुछ दिन पूर्व तक दुष्प्राप्य थी। उसमें औषधि और रस दोनों ही प्रकार के अद्भुत और आश्चर्य जनक प्रयोग लिखे गए हैं।

वाजीकरण—इस विषय का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, परन्तु सभी ग्रन्थों में वाजीकरण प्रयोग हैं। वाजीकरण बलपुष्टिदाता प्रयोग है। यह भी एक पृथक विषय है। 'वाजीकरणमन्विच्छेत्सततं विषयी पुमान्। पुष्टिस्तुष्टिरपत्यं च गुणवत्तत्र संश्रितम् (गदनिग्रह)

वाजीकरण द्रव्य—उर्द, अष्टवर्ग, आंवला, विदारी कन्द, मुलहटी, काकडा सींगी, तालमखाना, भिलावा, पीपल, गेहूं, तिल, शतावर, नागवला, त्रिकटु, गोखरू, मूसली, सोठ, जायफल, जावत्री, केसर, कस्तूरी, बड़ आदि आदि।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौथा अध्याय

संस्कृत साहित्य-सम्पदा

इस काल तक की सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य सम्पदा को हम चार भागों में विभक्त करते हैं :—

१—प्राच्य धर्म ग्रन्थावली :—

इस के अन्तर्गत निम्नलिखित ग्रन्थों का समावेश है :—

क) चारों वेद (सभाष्य) (ख) वेदों के ब्राह्मण ग्रन्थ (ग) शिक्षा ग्रन्थ (प्रति शाख्य आदि) (घ) कल्प (श्रौत सूत्र, गृह सूत्र) (ङ) परिशिष्ठ (च) व्याकरण (छ) निरुक्त (ज) निघण्टु (झ) छन्द (ञ) ज्योतिष (ट) अनुक्रमणिका (ठ) उपनिषद (ड) षड् दर्शन और उनका साहित्य (ढ) बौद्ध दर्शन त्रिपिटक (जातक)

,, ,, हीनयान (पाली भाषा)

,, ,, महायान (संस्कृत भाषा)

(त) जैन ग्रन्थ (थ) तन्त्र ग्रन्थ— I. संहिता (वैष्णव) ; II. तन्त्र (शाक्त) III. आगम (शैव) (द) स्मृति ।

२—पुराण ग्रन्थावली :—

(क) १८ पुराण (ख) १८ उपपुराण (ग) अन्य फुटकर ग्रन्थ (घ) वाल्मीकि रामामण (ङ) महाभारत ।

३—संस्कृत साहित्य ग्रन्थावली—

(क) ई० पू० पांचवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी पर्यन्त तक का उपलब्ध साहित्य :—

i. नाटक ii. काव्य iii. गद्य iv. पद्य v. चम्पू vi. साहित्य अलङ्कार आदि vii. चरित्र ।

४—बौद्ध दर्शन, हिन्दू दर्शन; जैन दर्शन ।

५—विज्ञान-साहित्य ग्रन्थावली :—

(क) ज्योतिष (ख) आयुर्वेद (ग) रसायन (घ) वास्तु शास्त्र ।

यह कुल साहित्य ६० हजार पृष्ठ के लगभग होता है। यदि हम ३०० पृष्ठ प्रति मास इसका अध्ययन करें, तो १६ वर्षों में हम इसे पढ़कर समाप्त कर सकते हैं ।

(क) काव्य नाटक — ईसा से पूर्व पांचवीं शताब्दी	(१)	भासः	प्रतिमा
	(२)	,,	अभिषेक
	(३)	,,	मध्यमव्यायोग
	(४)	,,	दूत वाक्य
	(५)–(२२)		अवशेष नाटक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ईसा प्रथम शताब्दि जो	(२३) अश्वघोषः	बुद्ध चरित्र
कनिष्क सभा में था	(२४) कालिदास	(५ वीं शताब्दि) रघुवंश
५ वीं शताब्दी	(२५) ,,	कुमार संभव
	(२६) ,,	मेघ दूत
	(२७) ,,	ऋतुसंहार
	(२८) ,,	अभिज्ञान शाकुन्तल
	(२९) ,,	विक्रमोर्वशी
	(३०) ,,	मालविकाग्निमित्र
	(३१) भारविः	(६ वीं शताब्दी) किरातार्जुनीय
	(३२) घटकर्पर	(६ वीं) घटकर्पर
	(३३) शूद्रकः	(६ वीं) मृच्छ कटिक
	(३४) दण्डी	(६ वीं) दश कुमार चरित
	(३५) भर्तृहरि या भट्टि	(७ वीं) भट्टि काव्य
	(३६) भर्तृहरि	(७ वीं) शतकत्रय
	(३७) अमरु	(७ वीं) अमरु शतक
	(३८) हर्षवर्धन	(७ वीं) रत्नावली
	(३९) ,,	(७ वीं) नागानन्द
	(४०) सुबन्ध	(७ वीं) वासवदत्ता (काव्य)
	(४१) वाण	(७ वीं) कादम्बरी
	(४२) ,,	(७ वीं) हर्ष चरित
	(४३) कविराज	(८०८ई०) राघवपाण्डवीयकाव्य
	(४४) भवभूति	(८ वीं शताब्दी) मालती माधव
	(४५) ,,	(८ वीं श०) महावीर चरित
	(४६) ,,	(८ वीं श०) उत्तर रामचरित
	(४७) विशाखदत्त	(८ वीं श०) मुद्राराक्षस
	(४८) रत्नाकार	(९ वीं) हर विजय काव्य
	(४९) कालिदास द्वितीय	(९ वीं) नलोदय काव्य
	(५०) ,, ,,	सेतुबन्ध काव्य (प्राकृत)
	(५१) ,, ,,	शृंगार तिलक
	(५२) भट्ट नारायण	(८४०ई०) वेणी संहार नाटक
	(५३) राजशेखर	(९०० ई०) विद्धशाल भञ्जिका
	(५४) ,,	(९०० ई०) कर्पूर मंजरी (प्राकृत) नाटक
	(५५) ,,	,, बाल रामायण नाटक
	(५६) ,,	,, प्रचण्ड पाण्डव या बाल भारत
	(५७) माघ	(दसवीं) शिशुपाल बध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(५८) पद्म गुप्त (दसवीं) नवसाहसांक चरित (चरित्र ग्रंथ)
(५९) हाल कवि (दसवीं) सप्त शतक (प्राकृत)
(६०) क्षेमीश्वर (दसवीं) चण्ड कौशिक नाटक
(६१) बिलहण (ग्यारहवीं) चौर पञ्चाशिका
(६२) दामोदर मिश्र (११ वीं) हनुमान्नाटक
(६३) कृष्ण मिश्र (,,) प्रबोध चन्द्रोदय नाटक
(६४) श्री हर्ष (१२ वीं) नैषधीय चरित
(६५) जयदेव कवि (१२ वीं) गीत गोविन्द
(६६) पञ्च तन्त्र
(६७) हितोपदेश
(६८) वैताल पञ्चविंशति
(६९) सिंहासन द्वात्रिंशिका
(७२) शुक सप्तति
(७१) सोमदेव (१०७० ई०) कथा सरित सागर
(७२) क्षेमेन्द्र (१०३७ ई०) वृहतकथा मंजरी आदि २।

(ख) साहित्य ग्रन्थ— (१) भरत मुनिः नाट्यशास्त्र
(२) भामहः [छठी शताब्दी] काव्यालंकार सूत्र
(३) मम्मट [आठवीं श०] काव्य प्रकाश
(४) विश्वनाथ कविराज साहित्य दर्पण
(५) अप्पय दीक्षित कुवल्यानन्द
(६) ,, चित्र मीमांसा
(६) (क) ,, वृत्ति 'वार्तिक
(७) जगन्नाथ पण्डितराज चित्र मीमांसा खण्डन
(८) ,, रस गंगाधर
(९) मांजे सरस्वती कण्ठाभरण
(१०) मुकुल भट्ट अभिधावृत्तिमातृका
(११) विश्वेश्वर पण्डित अलङ्कार कौस्तुभ
(१२) रूप गोस्वामी उज्वल नील मणि
(१३) गंगानन्द कविराज कर्णभूषण
(१४) गोविन्द काव्यप्रदीप
(१५) दण्डी काव्यादर्श
(१६) वाग्भट काव्यानुशासन
(१७) ,, वाग्भट्टालंकार
(१८) हेमचन्द्र काव्यानुशासन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(१९) उद्भट — काव्यालंकार संग्रह
(२०) ,, — काव्यालकार
(२१) आशाधर भट्ट — कुवलयानन्द कारिका
(२२) धनञ्जय — दशरूपक
(२३) विद्या भूषण — साहित्य कौमुदो
(२४) अच्युतराय — साहित्यसार
(२५) पिंगलछन्दार्णव वृत्ति
(२६) दामोदर मिश्र — वाणी भूषण
(२७) वृत्त रत्नाकर छन्दोमञ्जरी
(२७) श्रुतबोध
(२९) छन्द चिन्ह आदि आदि

(३) चरित्र —
(१) नील मत पुराण
(२) कल्हण — राज तरंगिणी
(३) पृथ्वीराज विजय
(४) विल्हण — विक्रमांक देवचरित
(५) पद्म गुप्त — नवसाहसांक चरित
(६) परिमल — रामपाल चरित
(७) वल्लाल चरित
(८) कुमारपाल चरित
(९) पृथ्वीराज विजय
(१०) भोज प्रबन्ध आदि आदि

१—अपभ्रंश और प्राकृत साहित्य

भाषा का प्रश्न—अब हम इस बात की ओर आप का ध्यान आकर्षित किया चाहते हैं—कि इस काल में किस प्रकार संस्कृत भाषा का यह पुनरुज्जीवन हुआ। आप जानते हैं कि आर्षकाल में ही प्राकृत भाषा में पुराण रचना प्रारम्भ हो गई थी। जिसे सूत पढ़ते थे। इसके बाद बुद्ध ने विशेष रीति पर इस बात पर जोर दिया—कि उसकी सब शिक्षाओं का माध्यम लोक भाषा ही में हो। परन्तु कनिष्क की तीसरी सभा होने के बाद जब महायान सम्प्रदाय की स्थापना हुई, और बौद्ध साहित्य ने संस्कृत का रूप और दार्शनिक भावना अंगीकार कर ली—तब हिन्दु विद्वानों का ध्यान भी संस्कृत की ओर अधिक हुआ। ब्राह्मण तो प्रथम ही से संस्कृत के प्रचारक थे। और लोक भाषा को स्त्रियों और अपठितों की भाषा समझते थे। अब गुप्तों के उदय के साथ जब फिर से हिन्दु धर्म की स्थापना हुई—तो जन साहित्य भी सस्कृत में रचा गया। पुराण—जो निश्चय ही प्राकृत में रचे गए थे। संस्कृत में अनुवादित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुए, इसका सरल प्रमाण यह है—कि उनमें छन्दोभंग के जो दोष हैं वे यदि प्राकृत में छन्द लिखे जाय, तो नहीं रहते हैं। इसी प्रकार काव्य-नाटक और कहानी भी संस्कृत में लिखी गईं।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं—कि उस काल में सर्व साधारण में संस्कृत भाषा का लोक प्रचार फिर से हो गया। वर रुचि ने प्राकृत का पहला व्याकरण इसी काल में सम्भवतः ई० स० ५ के लगभग लिखा। इसमें उसने चार प्रकार की प्राकृतों का वर्णन किया है :—

१—महाराष्ट्री या ठेठ प्राकृत २—शौर सैनी
३—पैशाची ४—मागधी

पिछली दोनों भाषाओं का विकास शौर सेनी से बताया है। उत्तरी भारत में इन प्राकृत भाषाओं का प्रचार धीरे धीरे उस प्राचीन पाली भाषा से हुआ, जो बुद्ध की पवित्र भाषा थी। राज नैतिक और धार्मिक संस्कृति, जो गिरते हुए बौद्ध धर्म के स्थान पर एक नए हिन्दु धर्म को स्थापित करने का कारण हुई, उन का निश्चय ही पाली के स्थान पर नवीन प्राकृत भाषाओं के प्रचार का भारी प्रभाव था।

ध्यान देने की बात यह है—कि राजनैतिक और धार्मिक उलट फेर के साथ बोल चाल की भाषा में एकाएक परिवर्तन नहीं होता। आप देखते हैं कि वैदिक काल के समाप्त होते ही गंगा और यमुना की घाटी में बसने वाले भारतीयों में ब्राह्मणों ने संस्कृत को अपनाया, मगध राज्य और गौतम बुद्ध के उदय के साथ ब्राह्मणों की संस्कृत का महत्त्व पाली ने प्राप्त किया। परन्तु बौद्ध धर्म के पतन और गुप्तों के उदय पर जब पौराणिक हिन्दु धर्म की रूप रेखा बन रही थी। प्राकृत भाषाऐं पाली का स्थान ले रहीं थी। और फिर जब प्राचीन जातियों का लोप, और राजपूतों का उदय ई० की दसवीं शताब्दी में हुआ, तो अपभ्रंश ने भारत की सार्वभौम भाषा का रूप ग्रहण किया, जो आगे चलकर हिन्दी भाषा बन गई।

पाली और सस्कृत, संस्कृत सश्लिष्ठ संस्कृत से अविच्छिन्न भाषाऐं थीं। परन्तु अपभ्रंश संस्कृत से सर्वथा विच्छिन्न प्रथक् भाषा थी।

अब विचारणीय बात यह है—कि क्या कालिदास और भारवि ने मृत भाषा में साहित्य रचा ? क्या उनके काल में संस्कृत मर चुकी थी ? क्या इस प्रकार किसी मृत भाषा का शृंगार हो सकता है जैसा संस्कृत का इस युग में हुआ।

इसका स्पष्ट उत्तर यही है—कि इस युग में भी संस्कृत उसी प्रकार जीवित थी। जैसी अन्य लोक भाषाऐं। विद्वानों और राज सभाओं में संस्कृत भाषा ही बोली जाती थी। विद्वान् संस्कृत ही में विवाद करते थे। सब राजाज्ञाऐं और विज्ञप्तियाँ संस्कृत में ही निकलती थीं। संस्कृत में ही छन्द गाए जाते थे। सब शिक्षित और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभ्य लोग संस्कृत बोलते थे। सभ्य जनों को संस्कृत पढ़ना आवश्यक था। सर्व-साधारण भी—जो प्राकृत बोलते थे। संस्कृत समझ लेते थे।

पूर्वी प्रदेशों में बैठे बौद्ध सिद्ध और जैन साधु अपभ्रंश में रचनाएं कर रहे थे—उनमें बहुत संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे, फिर भी वे अपभ्रंश में रचनाएं करते ही थे। अपभ्रंश धीरे धीरे साहित्य की भाषा बनती जाती थी।

यह युग अपभ्रंश के चरम विकास का युग है। अपभ्रंश में बौद्ध, जैन, हिन्दु तीनों ही कवियों ने इस काल में बहुत रचना की है।

अपभ्रंश साहित्य—आठवीं शताब्दी से १३ वीं शताब्दी के अन्त तक लगभग ५०० वर्षों में ५३ हिन्दु कवियों का परिचय हमें अभी तक उपलब्ध हैं। इनमें आठवीं शताब्दी में चार, नवीं में तेरह, दसवीं में सात, ग्यारहवीं में छः, बारहवीं में १४ और तेरहवीं में ९ हैं। इनमें उन्तीस कवि बौद्ध, सोलह जैन, एक मुसलमान, और १५ हिन्दु और दो सन्त कवि है।

आठवीं शताब्दी के चार कवियों में तीन बौद्ध और एक जैन कवि है। नवीं शताब्दी में कुल तेरह कवि हैं, और वे सब के सब बौद्ध हैं। दसवीं शताब्दी में कुल सात कवियों में चार जैन और तीन बौद्ध हैं। ग्यारहवीं शताब्दी में एक मुसलमान, दो हिन्दु और तीन जैन कवि हैं। बौद्ध कवि एक भी नहीं है। बारहवीं शताब्दी में कुल १४ कवियों में ८ हिन्दु और छै जैन कवि हैं। बौद्ध एक भी नहीं है। तेरहवीं शताब्दी में नौ कवियों में केवल दो जैन, दो सन्त और शेष सब हिन्दु कवि हैं।

ये सब कवि पुरानी हिन्दी या अपभ्रंश की साहित्य रचना करते हैं। आठवीं और नवीं शताब्दियों में सब से प्रथम बौद्ध सिद्ध अपभ्रंश में रचना करते हैं—इन दोनों शताब्दियों में केवल एक जैन कवि स्वयंभू है। बौद्ध सिद्धों की रचना रहस्य मयी सांकेतिक भाषा में हैं। और इन रचनाओं में उस संयम-ब्रह्मचर्य और तप की विरोध भावना फूट पड़ी है, जिस की स्थापना बुद्ध ने की है। ये बौद्ध सिद्ध नवीन बौद्ध शाखा की स्थापना करते हैं। जिस में शरीर सुख ही को दुःख वाद का विरोधी माना गया है। बौद्ध धर्म की पतनोत्मुखी गति का इस से पता लगता है। जैन कवि स्वयंभू बड़ा भारी कवि है। उसने जैन होते हुए भी 'रामायण' और 'महाभारत' महाकाव्य रचे हैं। इन काव्यों में उस का महान् कवित्व और पण्डित्य प्रदर्शित है। समुद्रों, बनों, महलों तथा सामन्तो का उसका वर्णन अद्वितीय है, भाव और रस का परिपाक असाधारण है। यह कवि जाति का ब्राह्मण और धर्म का जैन था, यह ध्रुवधारा वर्ष के राज्य काल में था।[1] ध्रुव धारा वर्ष राष्ट्र कूट वंश का महान् विजेता था। वह ८८० ई० स० में कन्नौज आया था, सम्भवतः तभी उसका आमात्य रयड़ा इस महान् कवि को वहां से दक्षिण ले गया था।

१—ध्रुवराय राय व तस्य भु अग्गशत्ति एसीसु यासुयायेण। (रामा० २० वीं संधि)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दसवीं शताब्दी में बौद्ध कवियों का ह्रास प्रारम्भ होता है, और ग्यारहवीं शताब्दी के बाद हमें एक भी बौद्ध कवि नहीं मिलता। ई० स० ११९७ में बख्तियार खिलजी ने विहार और बंगाल की विजय करने के समय बौद्धों का कत्ले आम करके उनका भारत में नाम निशेष कर दिया था, तथा उनके सांस्कृतिक केन्द्र नालन्द और विक्रम शिलांके विश्व विद्यालयों को उजाड़ कर भस्मीभूत कर दिया था।

दसवीं शताब्दी के मध्य काल में (ई० स० ९५९–७२) में हम महाकवि पुष्पदन्त को पाते हैं, जिसका नाम 'अभिमान मेरु' प्रसिद्ध था। इसने सामन्तों की कड़ी आलोचना की है, यह बड़ा स्वाभिमानी व्यक्ति था। इसकी प्रसिद्ध रचना महापुराण, तिसट्ठि–महापुरिस–गुणालङ्कार, 'जसहर चरिउ (यशोहर–चरित्र) नाय-कुमार चरित्र (नागकुमार चरित्र) प्राप्त हैं। यह अद्वितीय कवि अपनी प्रतिभा; कवित्व शक्ति और विविध विषय व्यापकता में इस काल का असाधारण कवि है। यह राष्ट्रकूट कृष्ण का समकालीन था, जो उस समय भारत का सबसे बड़ा हिन्दु राजा था, और जिसने चोल युवराज राजादित्य को मार कर कुमारी तक सम्पूर्ण देश पर अधिकार कर लिया था। इसका जन्म स्थल दिल्ली–रोहतक के निकट था, परन्तु उसने रचना दक्षिण में मान्यखेट (मालखेड) हैदराबाद में की है।

दो कलिकाल सर्वज्ञ—इसी काल में हमें दो और महान् व्यक्ति मिलते हैं, जो 'कलिकाल सर्वज्ञ' के नाम से विख्यात हुए। एक बौद्ध सिद्ध रत्नाकर शान्तिपाद (शान्तिपा) ई० स० १०००) हैं दूसरे हेमचन्द्र सूरि (१०८८–११७९) रत्नाकर शान्तिपाद बौद्ध सिद्ध हैं; और गौड़ राजा विग्रहपाद के गुरु तथा विक्रमशिला विश्व विद्यालय के आचार्य थे। ये अपने युग के अप्रतिम दार्शनिक और विद्वान् थे। इन्होंने दर्शन ग्रन्थ तथा छन्द शास्त्र पर रचनाएँ की हैं। इनका एक ग्रन्थ 'सुख–दुःख-द्वय परित्याग दृष्टि' प्रसिद्ध है। ये रहस्यवाद के प्रसिद्ध कवि हैं।

हेमचन्द्राचार्य जैन गुजरात अनहिलवाड़े के सोलंकी राजा कर्ण, जयसिंह, सिद्धराज, कुमारपाल; अजयपाल, मूलराज द्वितीय और भीमदेव द्वितीय के समकालीन हैं। इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं—१–प्राकृत व्याकरण, २–छन्दानुशासन; ३–देशो नाम माला। (कोश) ये महात्मा जन्म से वैश्य तथा धर्म से जैन यति थे।

अब्दुररहमान—अब्दुररहमान मुलतान का एक नव मुस्लिम जुलाहा ई० स० १०१० में श्रेष्ठ रचना करता है। यह सर्व प्रथम ज्ञात मुसलमान हिन्दी कवि है। इसकी भाषा और कला खूब परिष्कृत है। इसने 'संनेह–रासय' (संदेश–रासक) लिखा, जो अपूर्ण मिला है।

मेरुतुङ्ग—प्रबन्ध चिन्तामणि के लेखक आचार्य मेरुतुङ्ग ग्यारहवीं शताब्दी में हुए। ये बब्बर त्रिपुरा चेदी के निवासी तथा कलचुरि कर्ण के दरबार में थे। 'प्राकृत–पिङ्गल' में इनकी मर्म स्पर्शी कविताओं के उदाहरण हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नरपति नाल्ह ने ई० स० ११५६ में वीसलदेव रासो लिखा, जिसमें अजयदेव के पुत्र अर्णोराज के पुत्र वीसलदेव चतुर्थ विग्रहराज का चरित्र वर्णित है। यह केदार तथा मधुकर कन्नौज के जयचन्द के दरबार में थे। इन्होंने 'जयचन्द प्रकाश' तथा 'जयमयंकजस चन्द्रिका' लिखी हैं।[1]

जगनिक ई० स० ११७४ में मौहबे के परमार्दि देव के आश्रित थे। ये कलिन्जर या मौहबे के परमार्दि देव चदेल थे, तथा कन्नौज के आश्रित थे। इन्होंने मौहबे के दो सामन्त आल्हा और ऊदल के वीर चरित को गीतात्मक काव्य में बुंदेलखण्डी भाषा में लिखा है, जो उत्तरी भारत में अति प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं। आज कल जो आल्हा लोक प्रचलित है, वह जगनिक के प्राचीन आल्ह खण्ड के आधार पर कण्ठानुसरण द्वारा प्रचलित हुआ है।

चन्दवरदाई—चन्दवरदाई ई० स० १२०० के एक समर्थ कवि हैं, जो दिल्लीपति पृथ्वीराज का दरबारी कवि तथा मित्र भी था। यह जाति का भट्ट तथा पंजाब का निवासी था। यह व्याकरण, काव्य, छन्द, साहित्य, ज्योतिष, पुराण आदि विद्याओं का पारंगत था। इसकी कवित्व प्रतिभा के विषय में प्रसिद्ध है कि यह अदृष्ट वर्णन भी कर सकता था। इसी महाकवि ने पृथ्वीराज के वर्णन में 'पृथ्वीराज रासो' लिखा है। यह ढाई हजार पृष्ठों का भारी काव्य है, जो वीर और शृङ्गार का अद्भुत ग्रन्थ है। इसमें पृथ्वीराज के युद्धों, विवाहों, मृगया आदि का वर्णन है। इस ग्रन्थ का निर्माण उस काल में हुआ जब अपभ्रंश भाषाओं की समाप्ति हो रही थी और हिन्दी का आदि रूप प्रकट हो रहा था। ग्रन्थ की भाषा में माधुर्य प्रसाद की मात्रा कम तथा ओज अधिक है। उसकी भाषा कठिन है, संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। पौराणिक ज्ञान को खूब प्रकट किया गया है। अनेक भाषाओं का मिश्रण इस ग्रन्थ में है।

इस ग्रन्थ से ऐतिहासिक तथ्यों का मेल नहीं खाता। कुछ विद्वान् इसे सोलहवीं शताब्दी का ग्रन्थ कहते हैं। परन्तु यह ग्रन्थ चिरकाल से भारतीय विद्वानों को आकर्षित करता आ रहा है।

१—ये ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। इनका उल्लेख मात्र सिंधायल दयालदास कृत 'राठौडारी ख्यात' में मिलता है, जो बीकानेर के राज पुस्तक भण्डार में सुरक्षित है।

कमल प्रेस, मेरठ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट

आधार-साहित्य

(Biblography)

१. वेद और वैदिक साहित्य—

ऋग्वेद
शुक्ल यजुर्वेद संहिता
कृष्ण यजुर्वेद-तैत्तिरीय ब्राह्मण और उस पर सायण भाष्य
अथर्ववेद
सामवेद
मैत्रायिणी संहिता
एतरेय ब्राह्मण
शतपथ ब्राह्मण
तैत्तिरीय ब्राह्मण
ताण्डच ब्राह्मण
जैमिनि ब्राह्मण
गौपथ ब्राह्मण
पंचविंश ब्राह्मण
कात्यायन की ऋग्वेद की सर्वानुक्रमणिका
शौनकीय बृहद्देवता
निरूक्त—यास्क
तैत्तिरीय—आरण्यक
मैत्र्याण्युपनिषद्
कौपीतनि उपनिषद्
जैमिनीय उपनिषद्
मुण्डकोपनिषद्
छान्दोग्य उपनिषद्
शाँख्यायन श्रौत सूत्र
कात्यायन श्रौत सूत्र
बौधायन श्रौत सूत्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२. धर्म प्रामण्य-आधार—

कण्व धर्म सूत्र
गौतम धर्म सूत्र
वशिष्ठ धर्म सूत्र
बौधायन धर्म सूत्र
सांख्यायन धर्म सूत्र
आश्वलायन धर्म सूत्र
आपस्तम्ब धर्म सूत्र
मनुस्मृति
याज्ञवल्क्य स्मृति
आश्वलायन गृह सूत्र
व्यवहार मयूख
व्यवहार माधवीय
सरस्वती-विलास
स्मृति चन्द्रिका
विवाह-चिन्तामणि
विवाह-रत्नाकर
श्राद्ध कल्प
योग वाशिष्ठ

३. पुराण साहित्य—

महाभारत
श्रीमद्भागवत्
विष्णु पुराण
शिव पुराण
हरिवंश पुराण
मत्स्य पुराण
वायु पुराण
अग्नि पुराण
स्कन्द पुराण
ब्रह्माण्ड पुराण
ब्रह्म पुराण
पद्म पुराण
मार्कण्डेय पुराण
वामन पुराण
गणेश पुराण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नृसिंह पुराण
भविष्य पुराण
कूर्म पुराण
नारद पुराण
अष्टादश पुराण दर्पण
वाल्मीकीय रामायण
दुर्गा सप्तशती

४. साहित्य—

रघुवंश—कालिदास
अभिज्ञान शाकुन्तल
स्वप्नबासव दत्ता—भास
कादम्बरी—वाण
प्रियदर्शिका—हर्ष
कथा सरितसागर
रत्नावलि
नागानन्द—हर्ष
हर्षचरित—वाण
मेघदूत पर—एस० राय और के० राय का इन्ट्रोडक्शन
सौदरनन्द
प्रतिमा—भास
उत्तर रामचरित—भवभूति

५. अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक-विज्ञान—

कौटिलीय अर्थशास्त्र
कामन्दकीय अर्थशास्त्र
वात्स्यायन कामसूत्र
वृहत्संहिता
महाभाष्य
अष्टाध्यायी
भेल संहिता
पाराशर सिद्धान्त
गर्ग सिद्धान्त
पैतामह सिद्धान्त
सूर्य सिद्धान्त
वशिष्ठ सिद्धान्त
रोमक सिद्धांत
पुलिश सिद्धान्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भट्टीय ग्रंथ-आर्य भट्ट
वृहत्संहिता-वराह मिहिर
ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त–ब्रह्म गुप्त
सिद्धाँत शिरोमणी–भास्कराचार्य
अष्टाँग आयुवेद
चरक
सुश्रुत
वाग्भट् और माधव निदान
चक्रदत्त
शार्ङ्गधर संहिता
रसायन ग्रंथ
गजचिकित्सा
गजायुर्वेद
गज दर्पण
गज परीक्षा
समरांगण सूत्रधार
युक्तिकल्पतरु

६. बौद्ध-जैन प्रामाण्य—

सुत्तानिपात धर्म सुत्त
कुम्भकार जातक
कौशल-संयुक्त सुत्त
कूट दन्त सुत्त
जातक अट्ट कथा
विविध तीर्थ कल्प
विकृत वल्ली . . व्याडि
कूट दन्त सुत्त
महाश्री मूल कल्प
श्वेत केतु जातक
महा वग्ग
वासेत्थु सुत्त
अंगुत्तर निकाय
चेतिय जातक
महागोविन्द सुत्त
चुल्लु-कलिंग-जातक
अवदान शतक
भरिदत्त जातक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भद्दसाल जातक
कुणाल जातक
महासुत्त सोम जातक
गग्ग जातक
मातंग जातक
चुल्लि सेट्ठि जातक—महावणिक जातक
महावंश अशोकावदान
दिव्यावदान
दशवैकल्प सुत्त
भगवती सुत्त
जैन कल्प सूत्र
दीप वंश अशोवदान (उत्तर-दक्षिण गाथा)

७. इतिहास—

राज तरंगिणी
भगवद्दत्त—वैदिक वाङ्मय का इतिहास
सर रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर—स्मारक ग्रन्थ तथा वै० कोमोयोरेशन एस्से
चिन्तामणि विनायक वैद्य—हिस्ट्री आफ मिडिविल इण्डिया
राय बहादुर गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा—राजपूताने का इतिहास तथा मध्य कालीन भारत का इतिहास
आर० सी० मजूमदार—हिन्दु कोलोनीज इन-द-फार ईस्ट
ईलियट—हिन्दुज्म एण्ड बुधिज्म तथा हिस्ट्री आफ इण्डिया
अलबरूनी—इन्डिया साचूक्त
फर्गूसन—हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड ईस्टर्न आर्चिटेक्चर तथा कैम्ब्रिज हिस्ट्री
इत्सिंग—यात्रा विवरण
ह्वेनसाँग—यात्रा विवरण
मेगस्थनीज—यात्रा विवरण
आर० बी० पाठक—द-डेट-आफ शंकराचार्य
स्मिथ—आक्सफोर्ड हिस्ट्री, अरली हिस्ट्री आफ इण्डिया
मार्सडन—हिस्ट्री आफ इण्डिया
रिजडेविड—बुधिस्ट इण्डिया
कनिघंम—जिल्द ५
फाहियान—यात्रा विवरण
बुधिस्ट रेकार्ड—इन्ट्रोडक्शन
हिस्ट्री आफ अरेवियन—एन्ड्रच्-क्रिस्टन
हिस्ट्री आफ सुमेर-एण्ड अक्काड

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिस्ट्री आफ बैविलौन
इण्डिया—फ्राम-द-डान—रत्न-स्वामी
इन्डो आर्यन एण्ड हिन्दी
प्रि आर्यन एण्ड द-प्रि द्रवडियन
प्रि हिस्टारिक इण्डिया—पंचानन मित्र
दि-आर्यन एण्ड दी द्रवड़ियन
हिस्टोरियन्स हिस्ट्री आफ-द-वर्ल्ड
द-अरली हिस्ट्री आफ इण्डो ईरानियनस—त्रेजीउल कीथ
हिस्ट्री-आफ-द-वर्ल्ड—हार्मस-वर्थ ।
टालमी का भारत
हिस्ट्री आफ पर्शिया जिल्द १ व २—लेफ्टिनेन्ट कर्नल Sykes.
टाड—राजस्थान
टर्नर—हिस्ट्री
पीकौक—इण्डिया इन ग्रीस
हेरोडोटस—हुल्स
स्ट्रैबो—व्हुलर
प्लीनी—सियुकी

८. खोज-गवषेणा अध्ययन—

इन साइ क्लोपेडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स
ओरिजन एण्ड स्प्रैड आफ-द-तामिल्स
रसातल—नन्दलाल
लिटरेचर एण्ड आरचीटेक्चर अन्डर दि मुगल्स
ऋग्वैदिक इन्डिया
साइन्स आफ लैंग्वेजेज
माइथस आफ बैबिलोनिया एण्ड असीरिया
ओरिजन एण्ड डेवलपमेंट आफ बङ्गाल लेंग्वेजेज
द ऋग्वेदिक हिस्ट्री शोइंग हाउ-द-फिनियन्स हैड देअर अर्लीएस्ट होम इन इण्डिया
ए स्टडी इन हिन्दु सोशल पालिसी
ऋग्वैदिक कल्चर आफ प्रि हिस्टारिक इन्डस
एपिक माइथोलौजी
नाईन ट्राइब्ज़ आफ सेंण्ट्रल आस्ट्रिया—वाल्डविन स्पेन्सर
ऋग्वेदिक कल्चर आफ-द प्रिहिस्टारिक इण्डस
वैदिक सभ्यता—त्रिवेदी
क्रानोलाजी आफ एन्शियन्ट इन्डिया—डा० सीता नाथ प्रधान
एन्शियन्ट इन्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन—पार्जीटर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आर्यों की प्राचीन सभ्यता का इतिहास—रमेशचन्द्र दत्त ।
ट्राइब्स एन्ड कास्ट आफ यू० पी० जिल्द ३
संस्कृत साहित्य का इतिहास—मेक्समूलर
पाणिनिकालीन भारत—वासुदेव शरण अग्रवाल
ए पीप इन टु दि अरली हिस्ट्री आफ इण्डिया ।

९ स्तम्भ-शिला-पट्ट-लेख-मुद्राएँ—
एरण का शिलालेख
मन्दसौर का शिलालेख
नालन्द का शिलालेख
दीनाजपुर का ताम्र लेख
शर्व वर्मन की मुद्राएँ
अशोक के शिलालेख और आज्ञाएँ तथा स्तम्भ लेख ।

१० पत्रिका-जर्नल आदि—
जनरल रायल एशियाटिक सोसाइटी
इन्साइक्लोपेडिया आफ रिलीजन एन्ड एथिक्स
इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली ।
जनरल आफ-द-रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल
नागरी प्रचारिणा पत्रिका काशी
मर्यादा—प्रयाग
इंग्लिश मैन
नवभारत टाइम्स
मैन्युएल आफ जोग्राफी
जनरल आफ-द-बिहार एन्ड रिसर्च सोसाइटी

११ स्फुट—
चेम्बर डिक्शनरी
न्यू इण्डिया एन्टिक्लेरी
हिन्दु व्यू आफ लाइफ 310 राधाकृष्ण
दि सुमेर आर्यन डिक्शनरी
बाइबिल, नया-पुराना अहदनामा ।
अन्य पत्र पत्रिकाओं के विविध लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

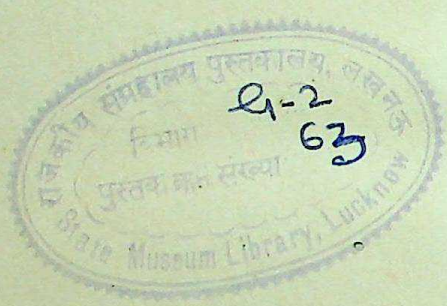

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh